हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 जुलाई 2014 अंक : 4



प्रधान सम्पादक
राकेश शर्मा

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

उप सम्पादक
सतपाल

आवरण एवं रेखांकन
सर्वजीत सिंह

कम्पोजिंग एवं प ष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्कः 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

यदि मानव हमेशा सतर्क रहे, तो उसके हृदय में कुविचार आ ही नहीं सकते।

– स्वामी रामकृष्ण परमहंस

इस अंक में

अपनी बात

वर्षा ऋतु सर्वत्र नई उमंग, नए उल्लास का संचार करती है। वर्षा की बूंदों से समूचा वनस्पति एवं जीव-जन्तु जगत झुलसा देने वाली गर्मी से राहत पाकर आत्म-विभोर हो जाता है। वर्षा के अभाव में वीरान व उजाड़ पड़ी जमीन अपनी प्यास बुझाकर पुनः हरी भरी हो उठती है और देखते ही देखते चहुं ओर हरियाली का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। भारतीय संस्कृति व साहित्य में इस ऋतु की व्याख्या निराली है। सद्यः स्नात प्रकृति का सान्निध्य पाकर कविमन भी कल्पना की उड़ानें भरता हुआ कविताओं और साहित्य की अन्य विधाओं का सृजन करना आरम्भ कर देता है। महाकवि कालीदास की महान कृति 'मेघदूत' काव्य खण्ड साहित्य जगत को वर्षा ऋतु की अनुपम भेंट कहा जा सकता है। गीत, संगीत और नृत्य जैसी लोक कलाओं के संगम से समूचा वातावरण उत्सवमय हो जाता है। हिमाचल प्रदेश में इस ऋतु का अपना एक अलग ही महत्त्व है। यह ऋतु हिमाचली जनजीवन में अनेक त्योहारों एवं पर्वों का पैगाम लेकर आती है। इस ऋतु में लोक पर्वों एवं धार्मिक आयोजनों की धूम रहती है। प्रदेश भर में सायर मेलों का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया जाता है। पारम्परिक वेशभूषा में सुसज्जित स्थानीय लोग इन उत्सवों में बड़े उत्साह के साथ भाग लेते हैं। प्रदेश के चम्बा जनपद का सुप्रसिद्ध मिंजर महोत्सव इस ऋतु का प्रमुख त्योहार है। चम्बा नगर के ऐतिहासिक चौगान में मनाए जाने वाले इस महोत्सव का आगाज श्री लक्ष्मी नारायण तथा श्री रघुनाथ जी को नव मंजरी भेंट करने के साथ होता है। मिंजर महोत्सव के पहले दिन सुनहरी धागों से निर्मित नव मंजरी वितरित की जाती है। महोत्सव के दौरान श्रावण मास के दूसरे रविवार से तीसरे रविवार तक मिंजर बांधी जाती है और बाद में इसे नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। यह मेला सदियों से हमारी कृषि आर्थिकी की समृद्धता तथा आपसी सौहार्द का परिचायक है। चम्बा जनपद अपनी इस सांस्कृतिक विरासत के साथ-साथ चम्बा रूमाल, चम्बा चप्पल और वर्ष 1908 में स्थापित भूरि सिंह संग्रहालय के लिए भी विश्वविख्यात है। प्रस्तुत अंक में नियमित सामग्री के साथ-साथ ऐतिहासिक चम्बा नगर और मिंजर महोत्सव पर विशेष लेखक, हिमाचल का संस्कृत नाट्य साहित्य, हिमाचली लोकगीतों में नारी, पर्यावरण तथा विकास पर सामग्री जुटाई गई है। जैसे वर्षा ऋतु अपने प्राकृतिक दायित्व का निर्वहन करते हुए धरती को हराभरा बनाती है। वर्षा की एक-एक बूंद जीवनदायिनी है। वैसे ही हमें भी इस मौसम में वन महोत्सव जैसे आयोजनों में पौधरोपण जैसे पुनीत कार्य में सक्रिय योगदान देकर हरित आवरण को बढ़ाने में अपना सहयोग देना चाहिए जिससे पर्यावरण को बचाने तथा पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखने में सहायता मिलेगी।

सम्पादक

आलेख

चंबा जनपद की सांस्कृतिक धरोहर मिंजर महोत्सव

● सुदर्शन वशिष्ठ

लोक कवि 'चम्बे दा फुल्ल' का वर्णन करते हैं। 'चम्बे दी कली' की सुगन्ध पंजाब तक फैली और गीतों के बोल बनी। चम्पा के सुगन्धित वृक्षों से सुवासित रहा होगा कभी चम्बा। क्या यही वह चम्पा का फूल था जो कालान्तर में चम्बा बना!

इतिहासकारों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं का मत है कि चम्बा की पुरातन राजधानी राजा साहिल वर्मन द्वारा बसाई गई।

कहा जाता है कि चम्बा नाम राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चम्पावती के नाम पर रखा क्योंकि उसी की इच्छा से इस राजधानी की स्थली चुनी गई थी। दूसरा मानना है कि यह नाम चम्पक वृक्ष से पड़ा जो आज भी यहां होता है और अपनी सुगन्ध बिखेरता है।

वोगल ने स्वीकार किया है कि चम्बा की स्थापना साहिल वर्मन द्वारा ही की गई क्योंकि साहिल वर्मन के पुत्र तथा पौत्र द्वारा दो ताम्रपत्र जारी किए गए थे जो राजधानी चम्बा से किए गए। इनमें चम्बा को 'चम्पक' लिखा गया है। चम्बा की स्थापना दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की गई होगी। वोगल ने प्रोफैसर डेविड की इस बात को नकारा है कि अंग की राजधानी चम्पा का नाम रावी के किनारे बसी चम्पा नगरी के नाम पर रखा गया था। अंगदेश में चम्पा मध्य देश की प्राचीनतम नगरियों में से एक था, जिसका संस्कृत साहित्य में प्रचुर वर्णन है। किन्तु रावी के किनारे चम्पा का उल्लेख दसवीं शताब्दी से पहले नहीं किया गया। चम्पा का सर्वप्रथम उल्लेख राजतरंगिनी में कश्मीर के राजा अनन्तदेव के समय आता है। अतः जब रावी के किनारे चम्पा की स्थापना हुई, अंग की चम्पा समाप्त हो चुकी थी, यह महत्त्व खो चुकी थी।

राजा साहिल वर्मन ने 920 ई0 में राज्य सम्भाला। चम्बा गज़ेटियर तथा हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स में साहिल वर्मन के समय में कुल्लू के साथ लम्बे युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में चम्बा की सेना को 'गद्दी सेना' कहा गया है। साहिल वर्मन ने निचली रावी घाटी को जीत लिया। युद्ध में चर्पटनाथ, रानी तथा राजकुमारी भी साथ थे।

साहिल वर्मन के राजगद्दी सम्भालने के बाद ब्रह्मपुर में चौरासी सिद्ध आये और राजा की सेवा से प्रसन्न होकर दस पुत्र होने का वरदान दिया। जब तक वे ब्रह्मपुर में रहे, राजा के दस पुत्र और एक कन्या हुई, जिसका नाम चम्पावती रखा।

चम्पावती को स्थान पसंद आने पर राजा ने यहां राजधानी बसाने का निर्णय लिया। यहां के राणा ने सारी भूमि ब्राह्मणों को दी थी जो इसे बेचना नहीं चाहते थे। आखिर राजा और ब्राह्मणों में समझौता हुआ और राजा ने नगर में प्रत्येक विवाह अवसर पर चार चकली (मुद्राएं) देने का वचन दिया। राजा ने राजधानी बनाई और चम्पा नाम रखा।

1839 में विगने ने चम्बा की जनसंख्या चार हजार से पांच हजार आंकी थी। वोगल ने 1911 में इसे छः हजार बताया। उस समय सबसे महत्त्वपूर्ण बिल्डिंग महल की थी जिसका सबसे पुराना भाग अट्ठारहवीं शताब्दी में मध्य में बना।

छह मंदिरों का लक्ष्मीनारायण मंदिर समूह, चमेसणी मंदिर, हरिराय मंदिर आज उस ऐतिहासिक वैभव की याद दिलाते हैं जो इस राजधानी के अतीत के साथ जुड़ा हुआ है। इस समय लक्ष्मीनारायण मंदिर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के पास है। मंदिर समूह राज्य के अधीन। चमेसणी मंदिर प्रदेश सरकार के भाषा एवं संस्कृति विभाग के अधीन राज्य संरक्षित स्मारक था, अब भारतीय पुरातत्व विभाग के अधीन है।

चम्बा की स्थापना के विषय में दो त्रासद घटनायें भी जुड़ी हुई हैं। चम्बा में आज भी चम्पावती का मंदिर है, जिसे चमेसणी मंदिर कहा जाता है। राजकुमारी चम्पावती बहुत धार्मिक विचारों की थी। वह एक योगी के पास नित्यप्रति धर्म चर्चा के लिए जाती थी। राजा को उस पर संदेह हो गया और एक दिन वह उसके पीछे चल दिया। राजकुमारी कुटिया में अदृश्य हो गई और राजा ने उसकी स्मृति से चम्पावती मंदिर बनवाया।

प्रदेश के अधिकांश भागों में फाल्गुन के आगमन के साथ मेले-उत्सवों का आयोजन प्रारम्भ हो जाता है। वर्ष भर ये उत्सव तथा मेले अच्छी फसल आने की सम्भावना में, फसल की कटाई के बाद तथा फुरसत के क्षणों में मनाये जाते हैं। चंबा जिले का ऐसा ही एक मेला है मिंजर मेला। मिंजर उत्सव के प्रथम दिन सुनहरी धागों से बनी नव मंजरी या मिंजर मिठाई व फलों के साथ बांटी जाती है। सर्वप्रथम यह नवमंजरी श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्री रघुनाथ जी को भेंट की जाती है। श्रावण मास के द्वितीय रविवार से तृतीय रविवार तक मिंजर बांधी जाती है। इसके बाद इसे नदी में विसर्जित कर दिया जाता है।

दूसरी कथा और भी अधिक करुणाजनक है। नगर में पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। राजा के बहुत प्रयत्न करने पर भी व्यवस्था नहीं हो पाई। अन्त में नगर के पीछे से सरोता नहर में पानी लाया गया। पानी उस नहर मे नहीं आया और इसे किसी दैवी शक्ति का प्रकोप माना गया। ब्राह्मणों से सलाह करने पर बताया गया कि यदि राजा, रानी या पुत्र की बलि दे तभी पानी आयेगा। दूसरे मत के अनुसार राजा को स्वप्न आया कि यदि वह अपने पुत्र की बलि दे तभी पानी आएगा। ऐसा जानने पर रानी के पुत्र की अपेक्षा अपने को बलि के लिए प्रस्तुत किया। रानी ने सती वेश धारण कर प्रस्थान किया और नहर के मूल स्थान में दफन होकर बलिदान दिया। कहा जाता है कि रानी के दफन होते ही पानी बहने लगा। इस हृदयग्राही प्रसंग का वर्णन आज भी लोकगीतों में किया जाता है।

रानी के बलि स्थान पर मंदिर बनाया गया और हर वर्ष मेला मनाया जाने लगा। आज भी पन्द्रह चैत्र से पहली वैशाख तक मेला लगता है और इसे रानी सूही मेला कहा जाता है।

युगाकर वर्मन, साहिल वर्मन के उत्तराधिकारी पुत्र ने एक ताम्रपत्र में अपनी माता के नाम 'नीनादेवी' का उल्लेख किया है, जो सम्भवतः यही रानी थी। ताम्रपत्र के 'चम्पक' का नाम भी आता है। 'चम्पक' नगर का उल्लेख 1649 के लक्ष्मी नारायण मंदिर लेख में भी है। कुछ दूसरे दस्तावेजों में भी चम्पक नाम लिखा गया है।

जिस पुत्री के नाम राजधानी बनाई, जिस रानी का वहां बलिदान हुआ, उस राजधानी में राजा की क्या सहानुभूति रही होगी, यह विचारणीय विषय है। किन्तु गजेटियर या अन्य इतिहासकार कहते हैं कि राजा ने लक्ष्मी नारायण का मंदिर बनवाया। जिसके लिये राजा ने अपने पुत्रों को विंध्याचल में संगमरमर लाने भेजा। इन्हें वापिस आते हुए लुटेरों ने मार डाला। अंत में राजा ने युगाकर वर्मन को भेजा जिसपर भी लुटेरों ने हमला किया किन्तु सन्यासियों ही सहायता से उसने लुटेरों को मार भगाया। युगाकर द्वारा लाये संगमरमर से विष्णु की प्रतिमा बनाई गई। साहिल वर्मन ने योगी चर्पटनाथ के सम्मान के चकली सिक्के में फटा हुआ कान बनवाया, जिसमें बाद के राजाओं ने विष्णु पाद भी जोड़ा।

साहिल वर्मन के समय का कोई ताम्रपत्र नहीं मिलता है, सम्भवतः इसीलिये यह लोकश्रुतियां अधिक मात्रा में प्रचलित हैं। साहिल वर्मन ने कीर, त्रिगर्त और कुल्लू को भी हराया और इलाके छीने।

वर्तमान

चम्पा या वर्तमान चम्बा वैदिक नदी रावी के किनारे एक ऊंचे स्थान पर बसा है। इस राजधानी की स्थली व बनावट बहुत कुछ वैसी ही है जैसी कुल्लू, या सुजानपुर की है। मुख्य द्वार और चौगाान इन राजधानियों की विशेषता है। चम्बा का मुख्य द्वार अब जिस स्थान पर है, शहर के लिए प्रवेश उससे ठीक दूसरी ओर बन गया है। बस रस्सों के पुल द्वारा दूसरी ओर प्रवेश करती है। पुराने मुख्य द्वार के साथ सुंदर चौगान है जो द्वार के सामने सड़क के कारण दो भागों में बंट गया है। यह सड़क सीधी लक्ष्मीनारायण मंदिर और महलों को जाती है। चौगाान, जो कभी लम्बा चौड़ा रहा होगा, सड़क के निचली ओर अभी सुरक्षित है। इसके अंतिम सिरे पर खुला मंच बना है। मंच से आगे सड़क पार कर सर्किट हाऊस है। ऊपर की ओर चौगान समाप्त सा हो गया है। सड़क के साथ दुकानें तथा खोखे हैं। दूसरी ओर भी बाजार है जो सर्किट हाऊस से होता हुआ बस स्टैण्ड तक जाता है। खोखों की लाइन में ही ऊपर की ओर अंतिम छोर में 14 सितम्बर, 1908 को स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय है, जिसे नये भवन में बदल दिया गया है जो पुरानी बिल्डिंग के साथ ही है।

मुख्य द्वार के साथ बाईं ओर पहला मंदिर है, हरिराय मंदिर। यह भगवान विष्णु को समर्पित है। मंदिर में राजा सोम वर्मन द्वारा दिया गया ताम्रपत्र है। जिससे ज्ञात होता है कि मंदिर का निर्माण ग्याहरवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लक्ष्मण वर्मन द्वारा हुआ जो राजपरिवार का ही सदस्य था।

चौगान के दूसरी ओर बाजार से ऊपर चमेसणी माता का मंदिर है। शिखर शैली का यह मंदिर राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चम्पावती की याद में बनवाया।

महल के उत्तर में एक पंक्ति में छः प्रस्तर मंदिर खडे हैं जो

इस समय चम्बा की पहचान बने हुए हैं। इनमें से तीन विष्णु को समर्पित हैं, तो तीन शिव को। सबसे पहला मंदिर लक्ष्मीनारायण का है और इसे ही मुख्य मंदिर माना जाता है। मंदिर साहिल वर्मन ने बनवाया। चन्द्रगुप्त और त्रिमुख, जो शिव समर्पित हैं, साहिल वर्मन द्वारा, गौरी शंकर मंदिर युगाकर वर्मन द्वारा बनवाया माना जाता है।

मिंजर महोत्सव

प्रदेश के अधिकांश भागों में फागुन के आगमन के साथ मेले-उत्सवों का आयोजन प्रारम्भ हो जाता है। वर्ष भर ये उत्सव तथा मेले अच्छी फसल आने की सम्भावना में, फसल की कटाई के बाद तथा फुरसत के क्षणों में मनाये जाते हैं। ऐसा ही एक मेला है मिंजर मेला। चम्बा नगरी प्रदेश की पुरातन राजधानी नगरी है। कांगड़ा (सुजानपुर), कुल्लू, मण्डी नाहन, रामपुर की भांति यहां भी राजमहल हैं। बीच में सुंदर चौगान है। चौगान मिंजर का उत्सव मनाया जाता है।

मिंजर उत्सव के प्रथम दिन सुनहरी धागों से बनी नव मंजरी या मिंजर मिठाई व फलों के साथ बांटी जाती है। सर्वप्रथम यह नवमंजरी श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्री रघुनाथ जी को भेंट की जाती है। श्रावण मास के द्वितीय रविवार से तृतीय रविवार तक मिंजर बांधी जाती है। इसके बाद इसे नदी में विसर्जित कर दिया जाता है।

मिंजर मेला मनाये जाने के विषय में विभिन्न धारणाएं हैं। 'मंजरी महोत्सव' नामक एक पुस्तिका में इस उत्सव का आरम्भ दसवीं शताब्दी बताया गया है। राजा साहिल वर्मन के समय उनके गुरु चरपटनाथ ने इस उत्सव की योजना बनाई। एक अन्य धारणा है कि उत्सव वरुण देवता की पूजा के लिए मनाया जाता है।

रंग महल अब नाम का महल है जिसमें सरकारी कार्यालय हैं। अखण्ड चण्डी महल, जनाना महल इसके बाद बनाये गए, अपनी वास्तुकला से आज भी आकर्षित करते हैं। इस समय अखण्ड चण्डी महल में राजकीय महाविद्यालय है। जनाना महल में अभी भी राजपरिवार के सदस्य रहते हैं।

चम्बा इस समय चम्बा रूमाल, चम्बा चप्पल और मिंजर मेले के लिए विश्व प्रसिद्ध है। सन् 1908 में स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय चम्बा की शान है।

किंवदंती यह भी है कि सदियों पहले इरावती नदी वर्तमान चम्बा के चौगान से बहती थी। नदी की दाईं ओर हरिराय मंदिर। एक साधु, जो चम्पावती नगरी में रहता था, प्रतिदिन नदी पार कर हरिराय के दर्शन करने जाया करता था। तत्कालीन राजा साहिल वर्मन तथा नागरिकों ने साधु से आग्रह किया कि वे ऐसा उपाय करें जिससे सभी लोग सुगमता से हरिराय के दर्शन कर सकें। साधु ने सभी को चम्पावती मंदिर के पास एकत्रित होने को कहा। वहां उन्होंने कुछ ब्राह्मणों को साथ लेकर एक यज्ञ किया जो सात दिन तक चला। सात रंग के धागों को मिलकार एक रस्सी बनाई गई। इस सप्तवर्णी धागे को मिंजर कहा गया।

एक अन्य मान्यता ने अनुसार चम्बा का राजा प्रताप सिंह वर्मन (1559) कांगड़ा के राजा पर विजय प्राप्ति के बाद वापसी कर भटियात आया तो वहां के लोगों ने उसका स्वागत मक्की अथवा धान की मंजरियां भेंट कर किया। राजा ने इस भेंट को संभाल कर रखा। इस विजय में राजा को अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। इस विजय की खुशी में उत्सव मनाने की प्रथा आरम्भ हुई। 'हिस्ट्री आफ पंजाब हिल्ज स्टेट्स' में उल्लेख है कि राजा प्रताप सिंह वर्मन ने कटोच सेना को हराया और चड़ी तथा घरो को अपने अधीन कर लिया।

रियासती समय में इस उत्सव का प्रारम्भ राजा द्वारा ही होता था। अब मिंजर स्थानीय प्राासन द्वारा भेंट की जाती है। 1955 से स्थानीय प्राासन द्वारा ध्वजारोहण के साथ इस उत्सव का आरम्भ किया जाने लगा।

इस समय चम्बा के चौगान में विभिन्न संगठनों, संस्थाओं और विभागों द्वारा प्रदर्शनियां लगाई जाती हैं। दिन में खेलों व खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। मेले में बाहर से व्यापारी, छोटे दुकानदार तथा खेल तमाशा दिखाने वाले भी आते हैं।

चौगान के एक किनारे भूमिगत कलाकेन्द्र का निर्माण हुआ है जहां रात्रि के समय सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। प्रदेश तथा देश के सांस्कृतिक दल यहां कार्यक्रम देते हैं।

अंतिम दिन लोग अखण्ड चण्डी महल में एकत्रित होते हैं जहां से एक शोभा यात्रा निकलती है। श्री रघुवीर की प्रतिमा को पालकी में रखा जाता है जिसके साथ परम्परागत वादक, आधुनिक बैंड, प्रशासनिक अधिकारी तथा गण्यमान्य नागरिक चलते हैं। शोभायात्रा पुलिस लाइन से होती हुई रावी नदी के किनारे पहुंचती हैं। यहां सभी लोगों को एक एक पान तथा इत्र भेंट किया जाता है। लाल रंग के कपड़े में एक नारियल, एक रुपया, फल और मिंजर रख कर नदी में प्रवाहित किया जाता है। सभी लोग यहां अपनी अपनी मिंजरों को जल में प्रवाहित कर देते हैं। मिंजर प्रवाहित करने के बाद शोभा यात्रा चौगान में वापस लौट आती है। रियासती समय में मिंजर विसर्जन के समय भैंसा भी प्रवाहित किया जाता था और चम्पा के फूलों का इत्र बांटा जाता था। अब यह परम्परा समाप्त हो गई है।

मिंजर के दिनों पूरे सम्ताह घरों में 'कुंजड़ी' और मल्हार' के स्वर गूंजते हैं। सायं सांस्कृतिक कार्यक्रम से पूर्व भी ये गीत गाये जाते हैं। चम्बा के गीत कर्णप्रिय हैं। इन दिनों इनकी स्वर लहरी पूरे नगर की हवा में समा जाती है।

'अभिनंदन' कृष्ण निवास
लोअर पंथा घाटी, शिमला-171009, मो. 94180-85595

आलेख

हिमाचल का संस्कृत नाट्य साहित्य

● डॉ. ओम्प्रकाश सारस्वत

साहित्य समीक्षकों ने नाटकों को भी काव्यों की तरह रसोद्भावक माना है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' उक्ति नाटकों को काव्यों/महाकाव्यों की तुलना में एक अलग अर्थवत्ता और महत्ता प्रदान करती है। नाटक में ज्ञान और व्यवहार की व्यापकता को देखते हुए इसे 'पंचमवेद' तक कहा गया है।

संस्कृत साहित्य में नाटक प्राचीन विधा है। इसके प्रमुख तत्त्व वैदिक ग्रंथों में उपलब्ध है। कहा भी गया है

जग्राह पाठ्यम् ॠग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।।

इसके अतिरिक्त रामायण एवं महाभारत काल में नाटकों के तत्त्व और विकसित रूप में मिलते हैं। रामायण में नट, नर्तक, कुशीलव नाटक एवं रंग आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। अयोध्याकांड में नर्तकों की गोष्ठी का एवं व्यामिश्र (मिश्रित भाषाओं वाले) नाटक का उल्लेख है। महाभारत के विराट्पर्व में रंगशाला, नट, नर्तक, नायक तथा सूत्रधार और नाट्य सम्बंधी शब्दों का स्पष्ट निदर्शन है। भरत मुनि ने त्रिपुरदाह, समुद्रमंथन एवं प्रलम्बवध नामक नाटकों का वर्णन किया है।

पाणिनि (ई. पू. 900) के सूत्र 'पराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः' से विदित होता है कि उस समय तक अभिनय की शिक्षा हेतु पृथक् ग्रंथों का निर्माण होने लग गया था। महाभाष्यकार पतंजलि (190 ई. पूर्व.) ने अपने ग्रंथ महाभाष्य में कंसवध और बलिबंधन नामक दो नाटकों का उल्लेख किया है। नागपुर की पहाड़ियों में (ई. पू. 200 वर्ष) प्राप्त नाट्यशाला से प्रमाणित होता है कि संस्कृत नाटकों का अभिनय उस समय तक खूब प्रचार पा गया था। तीन शतक ई. पू. रचे गए भास के नाटक इस बात के पुष्ट आधार हैं कि भारत में संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ वैदिक संहिता काल से लेकर उत्तरोत्तर विकसित होता अद्यावधि कभी मंद कभी तीव्र रूप में गतिमान है।

भारतीय संस्कृत नाटकों के सम्बंध में वीर मृतकों के प्रति उत्पन्न श्रद्धाभावना के प्रदर्शन से, प्राकृतिक परिवर्तनों को मूर्तरूप देने की मनोवृत्ति से, कठपुतलियों के नृत्य से छायानाटकों से अथवा मे पोल नृत्य से, उत्पत्ति जो कल्पनाएं की गई हैं, के सब अनुमानाश्रित हैं। वास्तव में इतने समृद्ध रसरसांगोपेत नाटकों की उत्पत्ति इन उपर्युक्त एकांगी अनुमानों से कथमपि समर्थित नहीं होती। संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति एवं विकास का अपना एक व्यापक जातीय आधार है जिसका भारतीय मानसिकता एवं उसकी भावभूमि से गहरे सम्बद्ध है और जिसे किसी भी लचर विदेशी अनुमान से जोड़ा नहीं जा सकता।

हिमाचल का संस्कृत नाटक

हिमाचल में संस्कृत नाट्य-रचना का इतिहास भी आधुनिक संस्कृत-साहित्य से ही जुड़ा है। यहां जो भी नाटक उपलब्ध हैं, वे स्वातंत्र्योत्तर काल के ही हैं। सब नाटक आधुनिक विचारधारा, नवीन भावबोध, सामयिक सोच और वर्तमान समस्याओं से अनुप्राणित है। नाटकों में अपने समय की बात और प्रकृति को प्रदर्शित करने की चेष्टा है। यहां के नाट्य साहित्य को हम इस प्रकार देख सकते हैं।

वत्सला

श्री दुर्गादत्त शास्त्री द्वारा रचित 'वत्सला' नाटक हिमाचल प्रदेश में मान्य लोकवीर 'गूगा' की एक लोककथा पर आधृत है। दुर्गादत्त जी का संस्कृत जगत् में बड़ा मान है। आप एक श्रेष्ठ कवि, सुघड़ गद्यकार तथा प्रबुद्ध नाटककार हैं। नाटक को लोक में स्वीकृत कराने की दृष्टि से ही संभवतः शास्त्री जी ने 'वत्सला' की कथा को लोक परम्परा से चुना है। नाटक 'लोकवृत्तानुकरणम्' है अतः वत्सला की कथा, नाटककार के शब्दों में मानसिकता के अधिक निकट बैठती है। नाटककार के शब्दों में 'बरसात के मौसम में, भादों महीने की कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को गूगा का मेला ग्राम-ग्राम में लगता है। जहां घूम कर लोकनाट्य मण्डलियां इस लोक कथा पर आधारित विविध गीतों को गाती हैं। इन गीतों को

पाणिनि (ई. पू. ९००) के सूत्र 'पराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः' से विदित होता है कि उस समय तक अभिनय की शिक्षा हेतु पृथक् ग्रंथों का निर्माण होने लग गया था। महाभाष्यकार पतंजलि (190 ई. पूर्व.) ने अपने ग्रंथ महाभाष्य में कंसवध और बलिबंधन नामक दो नाटकों का उल्लेख किया है। नागपुर की पहाड़ियों में (ई. पू. 200 वर्ष) प्राप्त नाट्यशाला से प्रमाणित होता है कि संस्कृत नाटकों का अभिनय उस समय तक खूब प्रचार पा गया था।

बड़े ध्यान व लगन से सुनकर मैंने नाटक की कथा वस्तु का संचय किया है।'[1]

छह अंकों में आयामित यह नाटक भले ही लोक के अनेक तत्त्वों एवं संस्कृति को समेटता है फिर भी नाटक में वर्णित अनेक घटनाएं, समस्याएं एवं चिंताएं एक व्यापक फलक पर अपना सामयिक सरोकार दर्शाती हैं। गगन द्वारा, विदेशी शक्ति को अपनी मातृभूमि पर पदार्पण हेतु उकसाने वाले अपने मौसेरे भाइयों को दंड देना, अपनी माता की आज्ञा से वनवास जाना, फिर घोर तपस्या करके भूमि समाधि लेना आदि इतिहास की कुछ प्राचीन घटनाओं की ओर भी संकेत करती हैं। नाटककार ने नाटक का ताना-बाना अच्छा बुना है, और अपना एक मंतव्य रखकर उसे आगे बढ़ाया है। लोक से कथाओं का संचय कर और कुछ भावविशेष एवं कथ्यविशेष को सरल संस्कृत श्लोकों तथा लोकधुनों की अनुरूपता में गीतिकाओं का निर्माण कर संस्कृत को जनसाधारण के निकट लाने में इस नाटक का योग रेखांकनीय है। इस नाटक में आठ संस्कृत छंदों और चौदह गीतिकाओं का प्रयोग हुआ है जो शास्त्री की कवित्व पर पकड़ का द्योतक है। एक ओर संस्कृत और दूसरी ओर सामने हिंदी में अनुवाद, संस्कृत न जानने वालों को भी नाटक का प्रभूत रसास्वादन करा देता है।

तृणजातकम्

दुर्गादत्त जी का द्वितीय नाटक है। यह मानवीय मन में उदित भावनाओं के जाल को नाट्य बनाता है। नाटककार की चिंता है कि मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण का यह नाटक कब तक चलता रहेगा? कब तक हमारी नारी जाति अपमानित होती रहेगी? विचारों की इस ऊहापोह को विभिन्न पात्रों के माध्यम से शास्त्री जी ने यह 'तृणजातकम्' नाटक रचा है।

'तृणजातकम्' बंधुआ मजदूरी, सूदखोरी, जाति प्रथा, मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषणादि समस्याओं को उजागर करता है। संस्कृत में ऐसे लघु एवं समस्यासंवलित नाटकों का प्रचलन कम है। शास्त्री जी का आधुनिक रंगकर्म एवं नाट्यप्रेम से प्रेरित होकर किया गया यह एक उम्दा प्रयास है। नाटक की भाषा, सरल भावनुसारिणी है। स्थान-स्थान पर पद्यों का प्रयोग भी रुचिकर है

क्लिश्यन्ति रूपवन्तोऽपि धनहीनाः पदे-पदे।
रूपेण नेत्रयोस्त्रिप्तिर् न क्षुधा तेन शाम्यति।[2]

नाट्यबंध में शास्त्री जी ने परंपरागत परिपाटी का ही अनुसरण किया है। नट-नटी आदि के प्रयोग के साथ अंत में भरतवाक्यादि की प्रस्तुति इनके नाटकों का प्राचीन पद्धति के अग्रसारण में सहयोग करती दिखती है।

भाषा एवं संवादों में सामयिकता का पुट है। कहीं-कहीं संवाद स्थानीय भावों को संस्कृत में ढालने की चेष्टा में सोचने को भी थोड़ा बाध्य करते हैं। इसी प्रकार शास्त्री जी चूंकि संस्कृत के पंडित हैं अतः वे अपनी विद्वता के बल पर भी श्लोकों का निर्माण करने में सक्षम दिखते हैं। दुर्गादत्त जी का संस्कृत नाट्य जगत् में उल्लेख्य योग है।

भूमिपुत्रम्

इसी क्रम में आश्विन पौष, 2044 तद्नुसार सितंबर-दिसंबर 1987 के विश्वसंस्कृतम[3] के नाटक विशेषांक में प्रकाशित इन पंक्तियों के लेखक के नाटक 'भूमिपुत्रम्' की भी चर्चा की जा सकती है। नाटक के प्रारंभ में ही 'भूमिपुत्रम्' की सार्थकता अर्थवत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है

यो याति यत्र प्रिय पुत्रधनानि त्यक्तवा
मातुः सुखं च परतोऽपि निजप्रियां वा
युद्धाय कष्टसमये, स हि भूमिपुत्रः
शेषास्तु पुत्र इति नाम विडम्बयन्ति।[4]

'भूमिपुत्रम्' की कथावस्तु भारत-पाकिस्तान के युद्ध को समक्ष रखकर वितन्वित की गई है। कथानायक स्कंद, शत्रु द्वारा देश पर किए गए आक्रमण को लक्ष्य करके युद्धभूमि में जाना चाहता है जिस पर उसकी माता वत्सला तथा प्रेमिका शालिनी वहां न जाने की ज़िद करती हैं किंतु पिता वासुदेव धैर्य नहीं तजते हैं और पुत्र के मार्ग की बाधा नहीं बनते। पश्चात् शत्रुसेना पराजित होती है और स्कंद वीरता के अलंकरण से सम्मानित होता है। नाटक देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय भावधारा का समर्थक है।

पात्रानुकूल नाटक के लघु-लघु संवाद नाटक और कथ्य को गति देते हैं। एक उदाहरण देखा जा सकता है

स्कंद : परं तात्! अहं तु मातृभूमि सेवितुं युद्धे गमिष्यामि। अयमेवासरः जन्मभूमि सेवितुम्।
वत्सला : पुत्र ! : पूर्व निजमातुः सेवा करणीया, अनंतर मातृभूमेः।

हिमाचल में मौलिक नाट्य रचना के अलावा कुछ संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिंदी के नाटकों का अनुवाद भी हुआ है। नाट्य साहित्य को समृद्ध करने हेतु इस अनुवाद का अतिरिक्त महत्त्व है। शुरू-शुरू में सभी भाषाएं अपने कोष में तरह-तरह के उपयोगी रत्नों का समाहार करती हैं। विश्व की प्रायः कोई ऐसी भाषा नहीं जिसने दूसरी भाषा की उत्भृष्ट कृतियों को अनुवाद के माध्यम से ही अपना न बनाया हो।

स्कंद : परं मातः। जन्मभूमिरपि मातृवदेव मान्या। अस्माकं गुरवः कथयन्तिस्म यत् मातुः सेवांयाः अवसरास् तु अनेके, परं मातृभमेः सेवायाः अवसराः यदा-कदा एव आयान्ति।

वसुदेव : पुत्र! तव चेद् एताहशी एव प्रतिज्ञा, गच्छ तावत्। इमां तव मातरम् अहं प्रवोधयिष्यामि।

स्कंद : शोभनम् तात् शोभनम् देहि मे आशीर्वादम्।

वासुदेव : गच्छ पुत्र! शुभास्ते पन्धानः सन्तु। युद्धे रक्षतु भगवती[5]

यह नाटक मूलतः चूंकि रेडियो नाटक है अतः इसमें ध्वनि नाटक की तकनीकों को ध्यान में रखा गया है। प्रसंगारंभ, प्रसंग समाप्ति एवं संगीत द्वारा विविध भावों का द्योतन यहां संस्कृत नाटकों की परंपरा में प्रयोग भी है तथा नवता सूचक भी।

संगच्छाधवम्

यह नाटक भी उक्त पंक्तियों के ही लेखक का है। प्रस्तुत ध्वनि नाटक में एकता की निरंतर आवश्यकता पर बल दिया गया है। नाटक भारत की विविध क्षेत्रीय उन्नति का परिचय कराते हुए भी इसके लिए प्रतिपद एकजुटता का प्रस्ताव करता है। भारत ने तब-तब ही हानि सही है जब-जब इसके चिंतन और कार्य में विश्रृंखलता आई है। भेदवाद किसी के लिए कहीं भी श्रेयस्कर नहीं। प्रस्तुत नाटक गुरु-शिष्यों के बीच संवाद-वाद शैली में तथ्यों पर विचारता हुआ अपना मनतव्य उजागर करता है। पारस्परिक सहयोग और समादर से एकता की बात पुष्ट की गई है।

लोकेश

गुरुवर! छृश्यतेऽपि यत् तानि एवं राष्ट्राणि सर्वतः प्रगतिशीलानि सन्ति यत्र जनसमूहेषु परस्परं समादरः, सम्प्रदायेषु, सद्भाव।

सद्भाव : धर्मेषु सहनशीलता एवं जातिषु सहयोगः, वर्णेषु मैत्री

शीला : तथा च परस्परस्यापि चिंता, नियमानां पालनम् सच्चरित्रस्य स्वीकारः

सुवीर : एवमेव व समाजस्य, वर्गाणां, राष्ट्रस्य च समग्र विकासस्य प्रयत्नों भवति।

प्रस्तुत नाटक सामाजिक चेतना को वाणी देता हुआ अपने आशय को प्रस्तावित करता है। भाषा एवं नाट्य विधान में यह बड़े प्रपंच का वितानक नहीं है। संस्कृत नाट्य-परंपरा में यह रेडियो नाट्य तकनीक एक नई दिशा भी कही जा सकती है।

कोई भी निर्देशक इन दोनों नाटकों को बड़ी आसानी से मंचीय नाटकों में बदल सकता है। थोड़े से रंगनिर्देशों से ये लघु नाटक एक निश्चित समयावधि के बीच मंचित हो सकते हैं। वैसे भी आज के इस भागमभाग भरे युग में समय का अभाव ही हो रहा है। सर्वत्र लघुता पनप रही है। ऐसे में ऐसे लघु-लघु नाटकों की सृजन और मंचन की क्षीण होती संस्कृत नाट्य परंपरा को कुछ हद तक सुरक्षित रखा जा सकता है। ऊपरि चर्चित ऐसे लघु नाटकों में बड़े-बड़े नाटकों की-सी दोहरी, तिहरी कथा-वितन्विति नहीं होती, अनेक अंकों गर्भाकों का विधान नहीं रहता संधियों-सन्ध्यंगों आदि से मुक्ति रहती है। कथा गति में भी एक अबाधता प्राप्त होती है। किंतु इसका आशय नहीं है कि बड़े नाटक, बहु-अंकीय नाटक नहीं लिखे जाने चाहिए।

अनूदित नाटक

हिमाचल में मौलिक नाट्य रचना के अलावा कुछ संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिंदी के नाटकों का अनुवाद भी हुआ है। नाट्य साहित्य को समृद्ध करने हेतु इस अनुवाद का अतिरिक्त महत्त्व है। शुरू-शुरू में सभी भाषाएं अपने कोष में तरह-तरह के उपयोगी रत्नों का समाहार करती हैं। विश्व की प्रायः कोई ऐसी भाषा नहीं जिसने दूसरी भाषा की उत्भृष्ट कृतियों को अनुवाद के माध्यम से ही अपना न बनाया हो।

अंग्रेजी से अनूदित नाटकों में तो केशव शर्मा द्वारा हिमाचल के संस्कृत नाट्य साहित्य में तीन प्रकार की अनूदित कृतियां उपलब्ध होती है। अंग्रेजी से संस्कृत में अनूदित, हिंदी से संस्कृत में अनूदित तथा संस्कृत से पहाड़ी में अनुवाद।

अंग्रेजी से संस्कृत में अनूदित नाटक

अंग्रेजी से अनूदित नाटकों में हमें प्रो. केशव शर्मा द्वारा अनूदित प्रसिद्ध आंग्ल नाट्यकार शेक्सपीयर के ख्यात नाटक 'द टेम्पेस्ट' का झंझा नाम से अनुवाद उपलब्ध है। विज्ञों के अनुसार 'द टेम्पेस्ट' कथा का कुछ साम्य भारतीय नाटककार कालिदास के 'शकुन्तलम्' से भी पाया जाता है। टेम्पेस्ट नाटक की नायिका मिराण्डा, शाकुन्तलम् नाटक की शकुन्तला से तुलित की जाती है। प्रमुख घटनाओं से झंझावात को छोड़कर टेम्पेस्ट की द्वीपीय स्थिति

एवं नारी मनोभावों का चिमण शाकुन्तलम् के मुख्य पात्र महर्षि से मेल खाती है।

प्रो. केशव शर्मा ने टेम्पेस्ट के अनुवाद में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अंग्रेजी से सीधे संस्कृत में अनुवाद की अवस्था में विश्वनीयता बढ़ जाती है। यदि यही नाटक किसी दूसरी भाषा में रचा जाकर फिर अंग्रेजी के माध्यम से संस्कृत में आता तो बात और होती किंतु चूंकि अंग्रेजी से सीधे संस्कृत में आया है। अतः ग्राह्यता के अधिक निकट है। प्रो. शर्मा ने अनुवाद में गद्य-गद्य दोनों को उपयोग किया है। वाक्यों में उलझाव तथा भाषा में दुसहता का अभाव है। कथोपकथन संस्कृत में भी अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ते हैं। अनुवाद ने संवादों का पचा कर विनिर्मित किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है

प्रोस्पेरों किमाशमस्वत? पुनरपि दृष्टातामनुगच्छसिध कि याच से।

एरियल स्वातंञसम्।

प्रोस्पेरो मसामयिकी याचना। अलमत्र बहुभाषितेन।

पांच अंकों में रचित इस नाटक की कथा वस्तु स्वातंत्रादि विभिन्न विषयों में निबद्ध मुख्यतः मानवीय भावनाओं की बारीक चित्रण में कृतकार्य है। संस्कृत इस कृति का मौलिक जैसा मूल्य लगता है। इसी प्रकार अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के नाटक 'ओथेलो' का प्रो. खुशी राम शर्मा द्वारा किया गया अनुवाद भी पठनीय बन पड़ा है। अनुवादक प्रो. शर्मा ने भावों भाषा एवं नाट्य कार्य को सुबोध बनाने की पूरी चेष्टा की है।

भोला रामस्य जीवः

प्रस्तुत नाटक हिंदी के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के भोला राम का जीव नामक व्यंग्य निबंध का संस्कृत अनुवाद है। धर्मराज की सभा में पांच दिनों से दूत के द्वारा लाया जाता हुआ मरणोपरांत भोला राम का जीव, नहीं पहुंचता है। पता करने पर ज्ञात होता है कि भोलाराम का जीव अपनी पेंशन के निपटारे हेतु मूल्य लोक में ही रह गया था। क्योंकि उसे आशंका हो गई थी कि उसकी पेंशन मरने के कई वर्षों तक भी उसके बंधु-बांधवों को प्राप्त नहीं हो सकती है।

यह नाटक संस्कृत नाट्य परिपाटी से हटकर एक हास्य व्यंग्य की परंपरा का आधुनिता के आलोक में चित्रण अनुवाद में व्यंग्य लेख का नाट्ययान्तर अच्छा उदाहरण है। भाषा सहजग्राह तथा अर्थानगामिनी है। नाटक अपने अभिकल्पन में नूतन दृष्टि को समेटता हुआ भी पुरानी शैली के नाटकों की भरतवाक्य की तर्ज पर अवसित होता है। रूपांतरकार इसी कामना/अभिलाषा को किसी दूसरे प्रकार से, कहीं किसी पात्र के माध्यम से कहलवा सकता था।

पहाड़ी भाषा में अनूदित नाटक

कुछ विद्वानों ने पहाड़ी (हिमाचल की विभिन्न बोलियों जिनका समेकित नाम 'पहाड़ी भाषा' कहा गया है) में भी संस्कृत की नाट्यकृतियों का अनुवाद किया है। इस क्षेत्र में पंडित दुर्गादत्त शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्कृत के प्रथम नाटककार मास के प्रसिद्ध नाटक 'स्वप्नवासवदत्त' और महाकवि कालिदास के 'विडमोर्वशीयम्' का हिमाचल की प्रमुख विभाषा कांगड़ी में अनुवाद करके संस्कृत और पहाड़ी दोनों की प्रसिद्धि की है। शास्त्री जी ने अपने अनुवाद में गद्य की जगह गद्य और पद्य की जगह पद्य का विधान करके नाटक की भाघानी स्वाभाविकता की ओर नाट्यविधान की मौलिकता को बरकरार रखने की कोशिश की है। शास्त्री जी ने संस्कृत के अनुष्टय, इन्वज्रा, उपेन्द्रवजाजि छंदों का अनुवाद कार्य का भी कुशल निर्वाह किया है।

इसी क्रम में श्री चंद्रशेखर बेबस का नाम भी महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने महाकवि भास के 'दूतकथोत्तकचमूष एकांकी का कुल्लवी में अनुवाद किया है। इसी कड़ी में प्रो. मनसाराम शर्मा अरुण का भी योगदान स्मरणीय है जिन्होंने महाकवि भास के ही 'बालचरितम्' नाटक का बिलासपुरी में अनुवाद करके अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

परिश्रम सापेक्ष इस अनुवाद कार्य में प्रो. केशवराम शर्मा के कार्य भी किसी उपलब्धि से कम नहीं। इन्होंने भी नाटककार भास के अभिषेक नाटक का अनुवाद कर पहाड़ी कोष की समृद्धि की है। इसी तरह आचार्य गोकुलचन्द्र के 'पंचरात्रम्' और इतवाक्यम् के अनुवाद भी पठनीय बन पड़े हैं। ये अनुवाद महासुई बोली में है। इसी प्रक्रिया में पंडित चक्रधारी शास्त्री दूतवाक्यम् का कांगड़ी में अनुवाद, डॉ. कर्म सिंह के 'स्वप्नवास्वदत्तम्' का चम्बयाली में भाषांतरण महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

विद्वद्वर्ग के लिए भले ही इन पहाड़ी अनुवादों का महत्त्व बड़े कार्यों में सम्मिलित न हो, किंतु इन अनुवादों ने एक तो अपने-अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम को तरजीह है दूसरे इनसे संस्कृत के वे 'कठिनाई से लभ्य ग्रंथ सर्वसाधारण के लिए सुलभ हो गए हैं। अपनी बोली-विभाषा में छपे इन नाटकों को पढ़कर उस बोली का संस्कृत से अनभिव्यक्ति भी एक महान् दाय से जुड़ा हुआ महसूस करेगा।

हिमाचल में इन नाटकों से अतिरिक्त भी हो सकता है, नाटक हों जो मेरी पहुंच के दायरे में न आ सके हों। सारे ही नाटकों नाट्यलेखकों को समेट लेने का दावा इस आलेख का कतई नहीं है। फिर साहित्य में इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती। इतिहास कई ज्ञात-अज्ञात स्रोतों से बनता रहता है और समयानुसार चर्चित होता रहता है।

जी-6, नाल्सवुड कॉलोनी, छोटा शिमला, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 002

आलेख

हिमाचली लोकगीतों में नारी

• विश्वामित्र नेगी

पुरातन काल से ही हमारे भारतीय समाज में नारी की पूजा होती आई है। उसे देवी स्वरूप पूजा गया है। हमारे प्राचीन मनीषा ने नारी को 'देवी सर्वभूतेषु' कहा है और उसे देवी के पद पर बिठा दिया है। अथर्ववेद में वर्णित है यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवताः

यत्र वास्तु न पूज्यन्ते, र्स्वास्त्राफला क्रिया।

अर्थात् जिस कुल में नारी की पूजा अर्थात् सत्कार होता है, उस कुल में दिव्यगुणी, संस्कारी और उत्तम संतानें उत्पन्न होती हैं। जिस कुल में स्त्रियों का सम्मान और उनकी पूजा नहीं होती, वहां जानो उनकी सब क्रिया निष्फल है। परन्तु जब व्यावहारिक धरातल की बात आती है तो कई बार हमारा समाज दो कदम पीछे हट जाता है। वहां वह नारी के लिए चार दिवारी का निर्माण करता है और उसे घर की सजावट और मन बहलाने का खिलौना मात्र बना देता है। समाज में इसी मानसिकता के फलस्वरूप हमारे समाज में नारियों की स्थिति दयनीय रही है।

नारी सदियों से पुरुषवादी मानसिकता का शिकार होती आई नारी जीवन को लोक-गायकों ने अपनी वाणी में विशेष स्थान दिया है। भारतवर्ष की बहुरंगी संस्कृति के लोक-गीतों में नारी की पीड़ा मुख्य रूप से मुखर हुई है। इन गीतों में नारी जीवन की कठिन दिनचर्या और पुरुषों के मनमाने अत्याचारों एवं शोषण का विशद् वर्णन मिलता है। नारी की स्थिति पूरे विश्व में कमोबेश एक-सी ही रही है किंतु इसमें काल का अंतर जरूर रहा होगा।

हालांकि हम अपने प्राचीन इतिहास को गौरवपूर्ण मानते हैं। लेकिन भारत में समय के हर काल में महिलाओं के प्रति समाज का नजरिया भेदभाव पूर्ण रहा है। बात चाहे रामायण काल की हो, महाभारत का या मध्ययुगीन काल, महिला के साथ धर्म, परंपराओं और मान्यताओं के नाम पर शोषण होता रहा है। रामायण काल में सीता को भी अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी थी। ऐसी ही महाभारत काल में द्रौपदी चीरहरण घटना को आज के तर्कशील युग में भी वीभत्स ही कहा जाएगा। हमारे धर्मशास्त्रों में ऐसी घटनाओं को जिस भी नजरिए से देखा गया हो, लेकिन पुरुष प्रधान समाज हमेशा से ही नारी शक्ति पर हावी रहा है।

हिमाचल में भी स्त्रियों की दशा देश के अन्य भागों की भांति ही भिन्न नहीं थी। यहां पर भी कन्या जन्म को अशुभ माना जाता था। यदि कोई बच्ची बचकर पल भी गई तो उसे जीवन पर्यंत भेदभाव, शोषण यहां तक कि बाल-विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियों का भी शिकार होना पड़ता था। प्रायः ऐसी घटनाओं से द्रवित होकर लोक-गायकों ने इसे गीतों का रूप दिया है। इस प्रदेश में गाए जाने वाले अधिकतर लोकगीत घटना प्रदान होते हैं। इस प्रदेश में भी महिलाओं का शोषण पौराणिक काल से होता आया है। इस युग से संबंधित घटना सिरमौर जिले में स्थित माता रेणुका झील पर आधारित है। इस सम्बंध में प्रचलित किंवदंति के अनुसार ऋषि जमदग्नि अपनी पत्नी रेणुका के साथ राम सरंग पर्वत पर तपस्या करते थे। ऋषि प्रतिदिन गिरि गंगा का जल उपयोग अपने दिनचर्या में करते थे। उनकी पतिव्रता धर्मपत्नी रेणुका प्रतिदिन कच्चे घड़े में नदी से पानी लाती थी। एक बार आश्रम में विलंब से पहुंचने पर ऋषि जमदग्नि रेणुका के सतीत्व पर आशंकित हो गए। आशंकित ऋषि ने अपने पुत्रों से मां का वध करने को कहा। चारों बड़े पुत्रों ने मातृवध से इनकार किया, किंतु परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया और मां का वध कर दिया। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार हालांकि परशुराम ने माता को पुनर्जीवित करने के वचन के बाद ही ऋषि पिता की आज्ञा का पालन किया। लेकिन यदि हम सामान्य तर्क की दृष्टि से देखें तो एक मां के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है, कि पुरुष वर्चस्वादी नजरिए को सही ठहराने के लिए उसका स्वयं अपने पुत्र के हाथों वध हो।

हिमाचल के इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिल जाएंगे जिसमें स्त्रियों को कभी चरित्र, कभी दैवीय आज्ञा, तो कभी जन-कल्याण के नाम पर बलि वेदी पर चढ़ा दिया गया। ऐसी ही हजार वर्ष पूर्व एक घटना की याद में चंबा में सूही का मेला मनाया जाता है। यह मेला मानवता की मूर्ति उस रानी की याद दिलाता है जिसने अपनी प्रजा को पानी उपलब्ध कराने के लिए अपने प्राणों की



आहुति दे दी थी। रानी के बलिदान की याद में प्रतिवर्ष चैत्र मास में यहां सूही का मेला लगता है। इस मेले में एक विशिष्ट गीत गाया जाता है, जिसे सुखरात कहते हैं। इस गीत को विशेषतया भरमौर की स्त्रियां गद्‌दनें गाती हैं। इस दिन लड़कियां माता सूही के मंदिर में धुरेई नृत्य एवं गायन करती हैं। इस हृदय-विदारक सुखरात गीत के बोल निम्न प्रकार हैं :

गुडके चमके भाउमा मेघा हो
हो रानी चम्पाली रे देशा हो
कुथरू दी आई काली बादल हो
कुथरा दा बरसेया मेघा हो
छाती दी आई काली बादली हो
नैणा दा बरसेया मेघा हो
ठण्डा पानी किहां करी पीणा हो
तेरे नैण हेरी-हेरी जीणा हो।

भावार्थ इस प्रकार है हे गरजने, चमकने और बरसने वाले बादलो! तुम चम्बा की रानी के देश में बरसो। किंतु जब आकाश तारों से भरा हो, तो बादल कहां गरजेंगे और बरसेंगे। यह काला बादल का टुकड़ा कहां से आया? और यह मेघ कहां से उमड़ पड़े। छाती से काला बादल आया और आंखों से मेघ बरसेगा। यह ठण्डा पानी हम कैसे पियेंगे, इससे अच्छा तो यही होता कि तू जिंदा रहती और हम तेरे नयनों को देख-देखकर जी लेते। यह गीत हमें हजार वर्ष पूर्व रानी के जन-कल्याण के निमित्त आत्म-त्याग की याद फिर ताजा करा देता है।

लोक गीतों में सबसे अधिक प्रसंग प्रेम गीतों का होता है क्योंकि प्रेम एक ऐसी अनुभूति है जिसे भाषा संपूर्ण प्राणी जगत समझता है। प्रेमी जोड़े अकसर अपने प्रेम को शादी की मंजिल तक नहीं पहुंचा पाते, कभी सामाजिक परंपराओं के कारण तो कभी पारिवारिक भेद के कारण। कितने ही प्रेमी युग्लों को समाज ने या तो अकाल मृत्यु दे दी या अलग कर दिया। ऐसी घटनाओं से जब लोक कवि का हृदय आहत होता है तो गीत रूपी सरिता निकलती है। ऐसा ही एक गीत 'गल्लां होई बीतियां' जिला चम्बा में विशेष लोकप्रिय है। इस गीत के बोल इस प्रकार हैं :

बाडुए सुगाइए तू कजो झांकदी
झाखा कजो भारदी
दो हथ बुटणे दे लाया फूलमू
गल्ला होई बीतियां
बुटणा लवाण तेरी ताई चाचियां
रांझू सकी भाभियां
जिन्हा दे मना बिच चाओ रांझू गल्ला होई बीतियां।
कुनी ब्राह्मणें तेरा ब्याह लिखिया
रांझू वियाह लिखाया।
कुनी कीती कुड़माई रांझू गल्ला होई बीतियां।
रखो तो कहारो मेरी पालकीयां, रखो पालकियां
फुलमू जो दाग लगाना जाणी, गल्ला होई बितियां
बाएं हत्थे रांझू चिता ते चिणी
रांझू चिता से चिणी
देहणे हथे लाया लांवू भाइयो
गल्ला होई बीतियां।

इस गीत भावार्थ इस प्रकार से है रांझू का विवाह हो रहा है, उबटन की रस्म हो रही है। रांझू जब देखता है कि फुलमू झांककर देख रही है, तो कहता है फुलमू बाड़ी से क्यों झांक-झांककर व्यर्थ समय गवां रही हो, आ और उबटन लगाती जा। पिछली बातें आई-गई समझो। फुलमू उत्तर देती है उबटन तेरी ताई, चाचियां और सगी भाभियां लगाएं जिनके दिल में चाव है। किस कठोर ब्राह्मण ने तेरा ब्याह लिखा और सगाई किसने कराई? फुलमू टूटा हुआ दिल लेकर घर गई और आने वाले कल ने कुछ और ही देखा। दूसरे दिन एक तरफ रांझू की बारात जा रही थी और दूसरी ओर फुलमू की अर्थी को उसके संबंधी श्मशान ले जा रहे थे। रांझू ने यह सब देखा और वह चुप न रह सका और कहा मेरी पालकी उठाने वाले कहारो! मेरी पालकी रख दो। रांझू ने दाएं हाथ से चिता बनाई और बाएं हाथ से चिता में आग लगा दी।

इस गीत के पीछे की घटना यह है कि रांझू एक संपन्न जागीदार का बेटा था और फुलमू एक गरीब गडरिये की बेटी। वे दोनों बचपन से साथ खेलते-कूदते बड़े हुए। युवा होने पर उनका प्रेम लोगों की चर्चा का विषय बन गया और रांझू के पिता को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने एक गरीब लड़की से अपने बेटे का विवाह करने में अपनी मानहानि समझा और रांझू की सगाई किसी और से कर दी। इस प्रकार फुलमू का दिल टूट गया और उसने

अपनी जान दे दी।

इसी प्रकार का एक अन्य गीत कुंजु-चंचलो चम्बा तथा लगभग हिमाचल के सभी क्षेत्रों में बहुत प्रसिद्ध है। यह गीत प्रेमी-युगल के शादी के पश्चात मिलने पर आधारित है। इस गीत के बोल हैं

कूंजू कपड़े ध्योआं छम-छम रोआं चंचलो
मुख बोल जवानी हो।
हाय वो मेरिये जिन्दे मुख बोल जवानी हो।
चंचलो मेरे कने हथ मत लान्दा कूंजूआ
विच गजरा निशानी हो।
हाये वो मेरिये जिन्दे विच गजरा निशानी हो...

इस गीत में कुंजू एक संपन्न परिवार का बेटा है और चंचलो मध्यम परिवार की लड़की। उनका परस्पर प्रेम हो जाता है जो लोगों को अखरता है। कुंजू तंग होकर गांव छोड़कर चला जाता है और फौज में भर्ती हो जाता है। कुछ समय पश्चात जब वह गांव वापस लौटता है तो उसे मालूम होता है कि चंचलो के माता-पिता ने जबरदस्ती उसकी शादी किसी और से कर दी है। कहते है इससे कुंजू के दिल को बहुत आघात लगा और गांव छोड़कर वापस चला गया और फिर लौटकर कभी गांव नहीं आया।

प्राचीन काल से ही हमारा समाज नारियों को कमजोर एवं अबला सोचकर उसका शोषण करता आया है। परंतु इतिहास और लोक साहित्य में कई ऐसी घटनाओं का वर्णन मिलता है जब इसी अबला नारी ने समाज के इन सब बंधनों को तोड़ दिया। एक ऐसा ही लोग-गीत बुशैहर राजवंश से संबंधित है। इस लोकगीत को किन्नौर में गाया जाता है। इस गीत को इस क्षेत्र में 'दाईजीचू गीथङ' (बड़ी बहन का गीत) शीर्षक से गाया जाता है। गीत के बोल इस प्रकार हैं

गोली गो होना, हाया बे होना
ज्ञालसा खोना रामपूरा, पोचा ला डेन चोटङ मन्डयाला।
बीरूल च दिग्योश, बीरूल ता लोनना दाई जीचू ब्याहकोर।
लाला बानियास लोतोश, नीङ राजासु बेटी।
थालु चु मुटङरी, जैविजयो पोखरिङ।
नू मन्डयाली राजा, जाखरयो होम।
नीङ राजासू बेटी, दायलो मेटङ् माबाश।
खो शियाचु चिमे तोन्ना, दुखङ् बनना मेटङ्।
राजासू बेटी सुख देया मेटङ्
भगवानपूरी दाईजेच हाचिस मेटङ बदाश।

इस गीत के अनुसार राजकुमारी भगवानपुरी का विवाह मंडी रियासत के अधेड़ राजा से होता है। कुछ समय पश्चात् राजा मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय राजघरानों में स्त्रियों पर बहुत-सी पाबंदियां लगी होती थीं। राजघरानों में विधवाओं का अपने घर वापस लौटना नामुमकिन था। परंतु राजकुमारी भगवानपुरी ने अपने साहस से इस परंपरा को एक नया मोड़ दिया। गीत के अंत में राजकुमारी अपने घर वापस लौटती है।

यहां के लोक-गीतों में केवल पुरुषों द्वारा महिलाओं के शोषण को उजागर ही नहीं किया गया है अपितु यहां के गीतों में ऐसी घटनाओं का भी वर्णन है जब नारी ने नारी का शोषण किया, ऐसा ही एक गीत 'बारां ता बरियां' है। इस गीत में सास द्वारा बहू को दी गई प्रताड़ना का वर्णन मिलता है

बारां ता बरियां सस्सू ब्याहे कीते होइयां
पुत्तर तेरा नजरी नी आया ऐ?
काहली न होया नूहे बौरी न होयां
पुत्तर मेरा बागा जो आया ऐ...

यह लोकगीत कांगड़ा क्षेत्र में प्रचलित है। इसका नायक विवाह के बारह साल बाद घर लौटता है और मां से पूछता है तुम्हारी बहू नजर नहीं आ रही? मां कहती है वह नींद को प्यार करने वाली सोई पड़ी है। वह उठता है और बाग से ठंडा लेकर आता है और सोई हुई पत्नी को मारता है। जब वह नहीं उठती तो वह उसके मुंह में हाथ फेरता है। वह मरी पड़ी है। वह आत्मग्लानि में जोगी बन जाता है। और कहता है दुश्मन मां, मरी को मार दिलवाई। मैं जोगी बन गया मां, अब तेरे देश कभी नहीं आऊंगा।

इस क्षेत्र में कुछ गीत ऐसे भी हैं जो केवल स्त्रियों का गीत माना जाता है। इसे किसी पुरुष के सामने गाने में वे संकोच करती हैं। इन गीतों को 'छींजा' गीत कहते हैं। समाज के प्रतिबंधों, गृहस्थ जीवन की समस्याओं, व्यक्तिगत कुंठाओं का इन गीतों में सजीव चित्रण हुआ है। बुजुर्ग महिलाओं का कहना है कि बहुधा वे इन 'छींजा' गीतों के माध्यम से अपनी नवौढ़ा बधुओं एवं अन्य युवतियों की मनोदशा को जान लेती है। निम्न छींजा गीत में बहन द्वारा भाई की सहायता करने पर सास के हाथों उसकी दुर्दशा का वर्णन है

परलीया बात नी सासुए कुण आएगा
परलरीया बात नी नूंहे बीरण तेरा आएगा।
चुकदी ए लाज घडौलू
पाणी रा की जांदीए...

इस 'छींज' गीत में बहन का दुखद अंत होता है। घर से बहन देखती है, दूर रास्ते से कोई आ रहा है। वह सास से पूछती है कौन आ रहा है? सास ने कहा तुम्हारा भाई है। वह जल लाने का बहाना बनाकर घर से निकलती है। भाई से उस पर आई विपत्तियों को सुनकर अपना चौसर हार सहायता के लिए उसे दे देती है। घर लौटने पर सास हार के विषय में पूछती है। उत्तर में बहू कहती है कि हाथ-मुंह धोते समय बावली में गिर गया। सास समझ गई। बहू के इस दुस्साहस का दंड दिया जाना आवश्यक है। दंड स्वरूप उसे जिंदा दिवार में चिनवा दिया गया।

सास प्रताड़ना से संबंधित एक लोकगीत 'बाण्ठीन युभदासी' (सुंदरी युभदासी) जिला किन्नौर में बहुत लोकप्रिय है। इस गीत में

सास, सौतन द्वेष और बहुपत्नी विवाह की खामियों को भी उजागर किया गया है।

अनडोचु देन शुवङ्, शुवङ सनतङ् चो
शुम कोलड्ङ कायङ्, दूरे हात तोश?
दूरे ता लोनना, शुगे माथसु छाङा, नेगी रत्न सिंह
नेगी रत्न सिंह, जाङु चोन्डी डोलयो...

इस गीत का भावार्थ है शौङ गांव के देव मंदिर प्रांगण में वलयकार नृत्य लगा हुआ है। नृत्य का नेतृत्व शौङ माथस के पुत्र नेगी रत्न सिंह कर रहे हैं। नृत्य के मध्य सुंदरी युम दासी को देखते ही रत्न सिंह नेतृत्व छोड़कर युभदासी के पास आकर नृत्य करने लगता है। युभदासी इसका विरोध करती है और कहती है, मेरे भाई बंधु खतरनाक है तुम पर चाबुक बरसाएंगे। बाद के वर्षो में रत्नदास जो विवाहित था, किसी तरह युमदासी से विवाह कर लेता है। विवाह के पश्चात वह घर का सारा काम करती सौतन और सास की तानें सुनती है। कुछ वर्षो से थुमदासी अस्वस्थ रहने लगी परन्तु उसकी सास ने जबरदस्ती उसे रेवड़ के साथ कंडे भेजा। अपने दो अबोध बालकों को लेकर वह कंडे गई और वहां बीमारी की वजह से उसका प्राणान्त हुआ।

असफल प्रेम पर भी बहुत से लोकगीत यहां प्रचलित हैं। किन्नौर में ठाकुर मोनी शीर्षक से एक गीत गाया जाता है। यह गीत असफल प्रेम कहानी के धरातल पर बुना गया है। कामरू गांव की दुद्यान वंश की लड़की का प्रेम सांड्ला गांव के रेजाल्टो खानदान के पुत्र से हो जाता है। दुर्भाग्यवश ठाकुर मोनी का विवाह रोघी निवासी साङ्चयान के पुत्र से हो जाता है। जब उसे ठाकुर मोनी के प्रेम प्रसंग के बारे में पता चलता है तो वह खेत में काम करती ठाकुर मोनी को गोली मार देता है। इस प्रकार इस गीत की नायिका का दुखद अंत होता है।

पुराने समय में इस क्षेत्र में महिलाओं का शोषण किस सीमा तक होता था, यह अत्यंत मार्मिक एवं हृदयविदारक गीत 'भींऊरे' को सुनने के पश्चात लगता है। रानी सूही की तरह यह लोक गीत भी सामाजिक कुरीति मनुष्य की बलि प्रथा पर आधारित है। लोक गीतों के माध्यम से इस प्रदेश में भी ऐसी कई घटनाओं का प्रमाण मिलता है जिसमें किसी कार्य की पूर्ति हेतु तथा दैवीय प्रकोप से बचने के लिए महिलाओं की बलि दी जाती थी। 'भीऊरे' नामक लोकगीत में इस कुरीति का मार्मिक विवरण मिलता है। इस गाथा गीत में जब काफी समय से भींऊरी मायके नहीं आती है तो माता-पिता बेटी का कुशलक्षेम जानने के लिए बेलु नामक व्यक्ति को भेजते हैं। बेलु को भींऊरी के ससुराल पहुंचकर पता चलता है कि गांव में पानी की नहर लाने हेतु देवी पूजा स्वरूप ससुराल वालों ने उसकी बलि दे डाली है। गीत के बोल इस प्रकार हैं

मेरीए भींऊरीऐ धीए मेरीए भींऊरीऐ धीए
दहाचे थे कौया के मुंहू धीऐ दहाचे थे कौणके जै धीऐ।

लोक गीतों में कई गीत ऐसे भी हैं, जिनमें नायिका ने सामाजिक बंधनों को तोड़कर अपने भविष्य का खुद निर्माण किया। इन लोक गीतों में 'बांठिन सूरजमणि' (सुंदरी सूरजमणि) किन्नौर क्षेत्र में गाया जाता है। यह लोक गीत उस समय की महिलाओं के लिए पथ-प्रदर्शक था। यह गीत अन्य पारंपरिक गीतों के विषय से अलग है। इस लोकगीत में नायिका के प्रेमी के अकाल मृत्यु के परिणामस्वरूप नायिका के सांसारिक बंधनों के प्रति उन्मुकता और जीवन के उच्च लक्ष्य के प्रति जागृति अमर कहानी है।

साजो गोह् दयाली रो बै आए, मेरे ना भींऊरे से आए
ओरी री ध्याणै गोई आए, मेरे ना भींऊरे से आए
बेलुआ बौइदू मेरा जाए, बेलुआ बौइदू तू वी जाए
सौए दै भींऊरी रे लाए, पौंता दै भींऊरी रा ल्याए।

इस गीत का भावार्थ है ऐ मेरी बेटी भींऊरी मैंने तुझे गेहूं तथा घी से पाला-पोसा है। देखो, दिवाली की संक्रांति आ गई है, पर हमारी भींऊरी अभी तक नहीं आई। ऐ बेलु तुम मेरी बेटी को बुलाने जाओ। वेलु भींऊरी को बुलाने चला जाता है।

चौपाल में पानी की नहर बन रही है। नहर के लिए मनुष्य बलि की आवश्यकता है। सियाने लोगों ने सभा बुलाकर यह तय कर लिया कि भींऊरी की बलि दी जाएगी। भींऊरी के ससुराल वालों को समझा दिया गया। भींऊरी की सास ने सिड़कू और उसके पश्चात सिड़कू का किल्टा तथा घी की सुराही लेकर चल पड़ी। ज्यों ही भींऊरी ने सिड़कू का किल्टा तथा घी की सुराही नीचे रखी, उसके सिर पर कुदाली का प्रहार हुआ। बेलु यह बात भींऊरी की मां को सुना रहा था।

लोक गीतों में कई गीत ऐसे भी हैं, जिनमें नायिका ने सामाजिक बंधनों को तोड़कर अपने भविष्य का खुद निर्माण किया। इन लोक गीतों में 'बांठिन सूरजमणि' (सुंदरी सूरजमणि) किन्नौर क्षेत्र में गाया जाता है। यह लोक गीत उस समय की महिलाओं के लिए पथ-प्रदर्शक था। यह गीत अन्य पारंपरिक गीतों के विषय से अलग है। इस लोकगीत में नायिका के प्रेमी के अकाल मृत्यु के परिणामस्वरूप नायिका के सांसारिक बंधनों के प्रति उन्मुकता और जीवन के उच्च लक्ष्य के प्रति जागृति अमर कहानी है।

गो-लि गो होना, हया-बे-होना

लघु कथा

सीनियर सिटीज़न

● नरेन्द्र कुमार गौड़

बिजली का बिल भरने गए वृद्ध को लाइन में लगे जब काफी देर हो गई तो उसने चिल्लाना शुरू कर दिया। ये क्या मजाक है? मैं इतनी देर से लाइन में लगा हूं...यहां सीनियर सिटीज़न को कोई अहमियत ही नहीं दे रहा है। एक बूढ़ा आदमी इतनी देर से लाइन में लगा है, किंतु किसी को कोई परवाह ही नहीं। सीनियर सिटीजन के लिए यहां अलग से काउंटर भी नहीं है। मैं इसकी शिकायत करूंगा।

तभी भीड़ से एक स्वर उभरा   अंकल, पहले सीनियर सिटीज़न होने का सम्मान घर में तो प्राप्त कर लो, बाद में दूसरों को दोष देना।

सीनियर सिटीज़न तो घर में बस बिजली, पानी, टेलिफोन आदि का बिल भरने तथा पोते-पोतियों की स्कूल की फीस भरने व उन्हें स्कूल की बस तक छोड़ने व घर तक लाने का ही काम करते हैं। जब आपके घर वालों को ही आपको इस उम्र में यहां भेजने में शर्म नहीं आई तो आप दूसरों से क्या उम्मीद करते हो?

कड़वा सच सुनकर बुजुर्ग चुप होकर इधर-उधर देखने लगा।

153/5, ए-ब्लॉक, शीतला कॉलोनी,
गुड़गांव, हरियाणा-122 001

वल खुनङ गिनम, ख्यलटोचु गोरिङ देन
ख्यालतु इपोटो जाई।
सूरजमोनीऊ सुनचो, सेनाजीत दोर बीतोक।
शीमिक माबचग्या, सेनाजीतु शीमिक।

प्रस्तुत गीत प्रदेश में गाई जाने वाले पारंपरिक गीतों के विषय से अलग है। यह गीत नारी की रूढ़िगत पारंपरिक छवि को तोड़ती है और एक नया मार्ग प्रशस्त करती है। वह रास्ता है, शिक्षा का, विद्या का, ज्ञान का। सूरजमणि के प्रेमी की अकाल मृत्यु के पश्चात माता-पिता उसका ब्याह कहीं और तय करते हैं। वह शादी के प्रस्ताव का विरोध करती है और पिता से विद्या ग्रहण करने की अपनी तीव्र इच्छा जाहिर करती है। पिता भी हामी भर देते हैं।

मनुष्य जाति का पूरा इतिहास ही नारी शोषण का इतिहास रहा है। पुरुष ने कभी भी उसे हमसफर साथी, मित्र तथा बराबरी का स्थान नहीं दिया। पुरुष की इसी मानसिकता से त्रस्त महिलाओं की व्यथा को लोक गायिका ने इस प्रकार वाणी दी है

जोरमङ् मा न्याशो, छेचछाङ जोरमङ्
जोरमङ मो किमो, शिमिक आईदू कीमो

अर्थात् जन्म नहीं चाहिए स्त्री का जन्म अपने घर में, मृत्यु पराये घर में।

आधुनिक युग में भले ही महिलाओं ने प्रगति की है और वह जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। लेकिन पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के प्रति पुरुषों की सोच में कोई खास फर्क नहीं आया है। आज भी कितनी नारियां इन पुरुषसत्तात्मक कुरीतियों की शिकार होती रहती हैं। देश का कानून भी आज तक महिलाओं को पूर्ण समानता का अधिकार नहीं दिला पाया है। नारी सशक्तिकरण के इस युग में भी हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र किन्नौर और लाहौल-स्पीरति में स्त्रियों को संपत्ति के अधिकार से वंचित रखा गया है। अपने अधिकारों के लिए यहां की नारियां संघर्षरत हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि एक दिन वह भी सभ्य समाज की स्त्रियों की भांति आत्मनिर्भर, स्वतंत्र एवं स्वच्छंद हो।

गांव व डाकघर बटसेरी, तहसील सांगला, जिला किन्नौर,
हिमाचल प्रदेश, मो. 94599 61436

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. धार्मिक और आध्यात्मिक लोकगीत, डॉ. बंशीराम शर्मा (मुख्य संपादक), जीवन प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, हि. प्र., 1983
2. पर्वतीय लोकगीत, विमला कुठियाला (संकलन अनुवाद) अमर कलोनी, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 2002
3. पहाड़ी लोकगीत, ओमचंद हांडा (संकलन अनु.) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1961
4. रोदिया धारा-हसते गीत, शक्ति चंद शक्ति (संकलन-अनु.), सविता प्रकाशन, कांगड़ा, हि. प्र., 1975
5. हिमाचल के लोकगीत, हरिकृष्ण मिट्टू
6. डॉ. बंशीराम, किन्नर लोक साहित्य, 1976, ललित प्रकाशन, बिलासपुरी, हि. प्र.
7. शरभ नेगी, हिमालय पुत्र किन्नरों की लोकगाथाएं, (प्रणय एवं त्रासदिक प्रसंग), एच.जी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
8. टाशी छेरिङ नेगी, किन्नरी सभ्यता और साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005
9. सोमसी (त्रैमासिक पत्रिका), 2001 से 2006 तक का विशेषांक, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, हि. प्र.

आलेख

दलित साहित्य में सहानुभूति व स्वानुभूति के अंतर्द्वंद्व

● डॉ. प्रभा दीक्षित

वर्तमान समय में स्त्री एवं दलित-विमर्श साहित्य केन्द्र में होने का कारण यह है कि आए दिन अखबारी सूचना के अनुसार महिलाओं एवं अधिकांश दलितों का उत्पीड़न व्यापक पैमाने पर होता रहता है। प्रशासन एवं पुलिस की उदासीनता या आर्थिक दबाव के कारण दबंगों का विरोध न करने की आदत भी इसका एक अहम कारण है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि पिछले हज़ार वर्षों से परतंत्र भारत में वर्ण-व्यवस्था के तहत दलित वर्ग नारकीय जीवन व्यतीत करता रहा। इस काल खण्ड में यदि मानवीय आधार पर दलित-मुक्ति के कुछ प्रयास किए भी गए तो उसका कोई व्यापक प्रभाव भारतीय समाज में दृष्टिगत नहीं हुआ। संत काव्य या भक्ति काव्य को इसके प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है।

साहित्य कभी जीवन से कटकर अपनी अस्मिता या अपनी पहचान की निरंतरता नहीं बना सकता। वर्तमान समय में दलित-उत्पीड़न के कारकों के व्यापक आयामों पर विमर्श भी यह स्पष्ट कर देता है कि दलित उत्पीड़न आजादी के इतने वर्षों के बाद भी बंद नहीं है। इस संदर्भ में दलित लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि अपनी पुस्तक 'मुख्यधारा और दलित साहित्य' में कहते हैं "गोहाना कांड का फैसला पंचायत ने खुलेआम किया था। प्रशासन, पुलिस, बुद्धिजीवी नेता सिर्फ तमाशबीन थे। पुलिस का चरित्र तो और भी संदिग्ध तथा जातिवादी था। क्योंकि एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी बस्ती में जाकर घोषणा करता है कि सभी लोग बस्ती खाली कर दें। जाट बस्ती को आग लगाने जा रहे हैं।"

ऐसी भयावह मनुष्यताद्रोही स्थितियों के दौरान क्या किसी भी समृद्ध भाषा का लेखक या कवि खामोश रह सकता है। शायद यही कारण है कि वर्तमान समय में 'दलित-मुक्ति' का प्रश्न साहित्य की केंद्रीय चिंताओं में दृष्टिगत हो रहा है। हां, साहित्यकार भी समाज का एक साधारण आदमी होता है और सामाजिक विसंगतियों का प्रभाव उसके साहित्य में भी आ सकता है। इस प्रभाव के अंतर्गत जातिवाद का कोढ़ भी शामिल है। वर्ग या जाति को एक सीमा तक स्वीकारने के बाद भी यह कहा जाएगा कि कोई भी 'जेनुइन' लेखक वह आदर्शवादी हो या यथार्थवादी कभी किसी मनुष्यताद्रोही अमानुषिक, समाज-विरोधी कार्यों के समर्थन में खड़ा नहीं हो सकता। और यदि खड़ा होता है तो उसे साहित्यकार नहीं कहा जाना चाहिए। विगत हज़ारों वर्षों के नारकीय जीवन एवं वर्तमान के दलित उत्पीड़न का प्रभाव दक्षिण के दलित-साहित्य के बाद अब हिंदी साहित्य में भी स्पष्ट दिखाई दे रहा है। उक्त जाति-भेद की त्रासदी एक दिन में नहीं स्थापित हो सकती, इसके लिए एक लंबे कालखंड की आवश्यकता थी। इस आधार पर हम वैदिक काल को भी संदेह के घेरे में ले सकते हैं। हां, बहुत संभव है प्राचीन काल की वर्ण-व्यवस्था कुछ उदार रही हो एवं आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक या बौद्धिक प्रभाव के कारण लोगों को वर्ण बदलने का सुयोग प्राप्त हो जाता हो। क्योंकि प्राचीन काल में ऐसे प्रभावशाली ऋषियों का भी वर्णन मिलता है जो शूद्र थे एवं जिनको संपूर्ण समाज आदरणीय समझता था। इस संदर्भ में मराठी भाषा के प्रसिद्ध दलित लेखक चंद्र कुमार बरठे लिखते हैं "इस बात के विपुल प्रमाण प्राप्त होते हैं कि उस समय भी अभिजात्य वर्गों के जो व्यक्ति विद्या प्राप्त कर लेते थे या किसी भी गुण के कारण मानने लायक हो जाते थे उन्हें पूरे समाज द्वारा मान्यता सम्मान और आदर दिया जाता था। उस समय ऐसे अनेक ऋषियों का वर्णन मिलता है जो अभिजात्य वर्ग के नहीं थे। जिनके कुल, गोत्र का अता-पता नहीं था, किंतु जिन्होंने अपने उत्कृष्ट कार्यों के कारण ऋषि पद प्राप्त किया था। कवष, ऐलष, सत्यकाम, जाबाल, तुर कावषेय आदि अनेक ऐसे ऋषियों के विवरण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं।" हिंदी क्षेत्र के लोग वेद व्यास एवं वाल्मीकि जैसे लेखकों से परिचित हैं जो अपनी लेखकीय क्षमताओं और काव्य गुणों के कारण जाने जाते हैं। बहरहाल, आदमी आदमी के विभेद का प्रारंभिक काल भी यही उत्तर वैदिक काल ही रहा होगा। हां, चंद्रकुमार वरठे का भाषा के अभिजात्य एवं वर्ग जैसे शब्दों से यह संकेत प्राप्त होता है कि प्रारंभ में जाति से अधिक वर्ग प्रभावशाली रहा होगा और शायद शम्बूक या एकलव्य के साथ जो त्रासदी घटी,

उसका कारण भी उनका यह वर्ग रहा होगा।

मैं पूरी विनम्रता के साथ अपनी बात कहना चाहती हूं एवं आवश्यक भी नहीं (सभी) मेरी बातों से सहमत हों कि जातीय निर्माण के पूर्व ही भारतीय समाज में वर्ग भेद आकार ग्रहण कर चुका था और इसी वर्ग भेद के बाद में जाति-भेद का आविष्कार किया होगा। काश महाभारत के एलकव्य एवं कर्ण दोनों अपनी आत्मकथाएं लिखते तो संभवतः कुछ दलित लेखक या चिंतक उन्हें सहानुभूति व स्वानुभूति के विवाद में अवश्य उलझा देते। अतीत की वस्तुस्थिति कुछ भी रही हो, वर्ण-व्यवस्था जो वर्गीय आधार पर कायम हुई, ने जाति-प्रथा के कोढ़ को जन्म दिया; जो विश्व स्तर पर आज भारत को कलंकित ही नहीं कर रही अपितु मानवीय आधार पर उसे कठघरे में भी खड़ा कर रही है। इससे हमें मुक्ति पानी ही चाहिए। जहां तक दलित साहित्य के प्रभावशाली अवदान को चिह्नित करने के लिए सहानुभूति व स्वानुभूति का प्रश्न साहित्यिक विमर्श में उठाया जा रहा है। मेरे विचार से यह भी आपसी वैमनस्यपूर्ण नहीं है और इसमें बहुत अधिक बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता भी नहीं है। यह बात भी सत्य है कि जो व्यक्ति या वर्ग उत्पीड़ित होता है, वह अपनी पीड़ा को दूसरों की अपेक्षा अधिक जानता है एवं अधिक अनुभवजनित ईमानदारी से व्यक्त कर सकता है किंतु चेतना (या सहानुभूति) के आधार पर दूसरे की पीड़ा को शब्द देने वाले रचनाकार को मात्र उक्त कारणों से कठघरे में खड़ा नहीं किया जा सकता है। कैंसर का मरीज अपने कष्ट को अनुभव कर सकता है मगर शरीर विज्ञान को जानने वाले डॉक्टर की भांति अपना इलाज नहीं कर सकता है। हां, अगर मरीज खुद डॉक्टर हो तो ऐसा संभव है। कभी-कभी उत्पीड़ित कौमें मानसिक रूप से इतनी टूट जाती हैं या अभिजात्यवर्गीय नैतिकता का प्रभाव उनकी चेतना को इतना कुंद कर देता है, कि वे अपने उत्पीड़न के विरुद्ध प्रतिरोध करने की क्षमता खो देता है। आज भी दूरदराज गांवों के दलित वृद्ध संपन्न वर्ग के युवकों को देखकर चारपाई से उठकर खड़े हो जाते हैं। यह संस्कारगत मानसिक गुलामी बेहद खतरनाक होती है जिसके प्रभाव को जल्दी खत्म नहीं किया जा सकता। एक सफल साहित्यकार होने के नाते मुंशी प्रेमचंद ने इस मनोदशा का वर्णन किया है एवं इससे मुक्त होने की घोषणा भी अपने लेखों में की है। आज चंद दलित लेखक प्रेमचंद की संदर्भो से काटकर आलोचना कर रहे हैं। कई लेखक उन्हें दलित विरोधी भी कह रहे हैं। जबकि प्रेमचंद को अपने जीवन काल में सवर्ण-विरोधी के नाम से अपनी आलोचना सुनने को मिली थी। मार्क्स या एंगिल्स को मजदूर वर्ग का नहीं कहा जा सकता, किंतु मजदूरों का पक्षधर क्या कोई दूसरा लेखक उनके समकक्ष दृष्टिगत होता है। वाल्तेयर, जिन्होंने चर्च एवं ईसाई धर्म की कठोर आलोचना की थी, एक पादरी के पुत्र थे। राजा राम मोहन राय पहले स्त्री पक्षधर भारतीय पुरुष थे जिन्होंने स्त्री-अस्मिता के लिए संघर्ष किया। प्राचीन काल में वैदिक धर्म के आलोचक गौतम बुद्ध स्वयं एक राजा के पुत्र थे जिन्होंने स्त्री-अस्मिता के लिए संघर्ष किया। प्राचीन काल में वैदिक धर्म के आलोचक गौतम बुद्ध स्वयं एक राजा के पुत्र थे जिन्होंने विश्व में दुःख अधिक होने की घोषणा की थी, करुणा को अपने चिंतन का आधार बनाया एवं दलितों, गरीबों, उत्पीड़ितों की मुक्ति के प्रयासों में अपना राजपाट त्यागकर जीवन भर लगे रहे। उदाहरण और भी दिए जा सकते हैं, यहां मैं यही कहना चाहती हूं कि अपने मिशन (लक्ष्य) की प्राप्ति के लिए चेतना का होना एक अनिवार्य शर्त है। इसी आधार पर लोग अपने आपको डी क्लास भी करते हैं। आज दलित शब्द को दक्षिण भारत के साहित्यकार छोड़ने की बात लिख रहे हैं। हिंदी साहित्य के छायावादी काल में राष्ट्रवाद या प्रगतिवाद का जोर था। कुछ लोग फैशन के तौर पर प्रगतिवादी बने मगर टिके नहीं, उनका खुलासा भी हुआ। वर्तमान समय में यह भी सब चल रहा है, इसका खुलासा भी होगा किंतु राजेंद्र यादव, मैनेजर पांडेय, कमलेश्वर, बजरंग बिहारी तिवारी के साहित्य का मूल्यांकन क्या आप जाति के आधार पर करेंगे। समतामूलक समाज की स्थापना करने के लिए दीर्घकालीन संघर्ष के लिए अपने मित्रों और शत्रुओं की पहचान भी रखनी होगी।

जाति-प्रथा एक सामाजिक बुराई है जिसे समाप्त किया जाना चाहिए। इस बारे में राजकिशोर लिखते हैं, "समाजवादी रास्ते को विफल और अवरुद्ध कर सवर्ण समाज ने मुक्त प्रतिद्वंद्विता पर आधारित नई आर्थिक नीति में अपने भविष्य का इंतजाम कर लिया है। इससे पिछड़ी और दलित जातियों की आर्थिक तथा सामाजिक मुक्ति का प्रश्न और पेचीदा हो गया है। अतः उनके बीच से ही ऐसे तेजस्वी नेतृत्व का विकास ज्यादा स्वाभाविक लगता है, जो पूरे भारतीय समाज में समता और संपन्नता का दर्शन फैला सके। जातिप्रथा वही तोड़ेगा जो देश की प्रगति के रास्ते में मौजूद दूसरे अवरोधों को भी तोड़ेगा।"

उक्त बात को कथित लेखक क्यों नहीं समझते या समझते हुए भी सहानुभूति व स्वानुभूति जैसे अनावश्यक प्रश्नों को उठाते हुए, साहित्य में जातीय आरक्षण बनाने का प्रयास करते हैं। दलित साहित्य आज अपनी समृद्धता के साथ और विस्तार ले रहा है। आज महाराष्ट्र के दलित लेखक बौद्धिक-विमर्श में कहां जा रहे हैं। वे समाज में बुनियादी परिवर्तन की बात कह रहे हैं और हिंदी के दलित लेखक स्वानुभूति के नाम पर जाति के इर्दगिर्द घूमते रहना चाहते हैं या दलित नाम की एक उच्च्य जाति की स्थापना में लगे हैं, अन्यथा स्वानुभूति के आधार पर साहित्य के मूल्यांकन का क्या अर्थ है? इस संदर्भ में मराठी भाषा के प्रसिद्ध लेखक अपनी पुस्तक में लिखते हैं "महाराष्ट्र में दलित नेता और साहित्यकार अपने बल पर और अपने साहित्य के आधार पर डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में उनके विचारों से लैस हो, सामाजिक के साथ-साथ राजनैतिक प्रतिबद्धता और पुष्ट दृष्टिकोण के साथ उभरे। इसी कारण वहां

दलित साहित्य एक क्रांतिकारी और स्पष्ट समझ के साथ विकसित हुआ, जबकि हिंदी पट्टी में उसे अभी भारतेंदु काल की शैशवावस्था के दायरे में ही माना जाता है।" क्या कहना चाहते हैं लिंबाले! यही तो कि देश की सामाजिक स्थिति, जाति-प्रथा आदि के साथ उस राजनीति पर दृष्टि डालिए जो करोड़ों आम लोगों के शोषण-दोहन का कारण है। दूसरे शब्दों में अम्बेडकर के साथ शहीद भगत सिंह को पढ़े और जाने कि वह दलित-उत्थान के बारे में क्या सोचते हैं? दलित साहित्य के कुछ अपने मूल्य हैं जिनके आधार पर साहित्य का मूल्यांकन होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि मैला ढोने वाला दलित ही अपनी स्वानुभूति के आधार पर या सवर्णों की घृणा के कारण उच्च कोटि का साहित्य भी लिख ले।

यदि भारतीय समाज में जाति समाप्त भी हो जाए तो क्या शोषण मुक्त समाज भी स्थापित हो जाएगा? क्या आदमी के द्वारा आदमी का शोषण समाप्त हो जाएगा? वर्तमान भूमंडलीकरण के पैरोकार एवं समाज के कर्णधार यही तो चाहते हैं कि दलित वर्ग के कुछ प्रतिशत लोग समृद्ध हो जाएं और हमारी मशीन का पुर्जा बन जाए। क्या आधुनिक दलित (क्रीमी लेयर) का मिजाज आप नहीं देख रहे हैं? क्या चंद आत्मकथाएं, कहानियां, लेख या कविताएं लिखकर किसी समान अधिकारों वाले समाज की संरचना कर सकते हैं। नहीं, इसके लिए अर्थात् अपने अधिकारों के लिए हमें संघर्ष करना होगा, साहित्य को वैचारिक अस्त्र की भांति प्रयोग करना होगा, एक प्रतिरोधी संस्कृति गढ़नी होगी क्योंकि बिना बुनियादी परिवर्तन के हम किसी समतामूलक समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते।

128/222, वाई वन ब्लॉक, किदवईनगर, कानपुर, उत्तर प्रदेश-208001, मो. 093367 02090

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओम प्रकाश वाल्मीकि 'मुख्यधारा एवं दलित साहित्य', पृष्ठ 55, आलेख–दलित नैतिकता बनाम वर्चस्ववाद', सामयिक प्रकाशन–3320–21, जटवाड़ा,नेताजी सुभाषं मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 2009
2. डॉ. चंद्र कुमार वरठे 'दलित साहित्य आंदोलन', 'दलित साहित्य प्राचीन उत्स', पृ. 14, रचना प्रकाशन, 57 नाटानी भवन, मिश्र राजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर–302 001, प्रथम संस्करण 1997
3. आर.ए. दिवाकर, संपादक 'कमेरी–दुनिया' अंक 7, जुलाई 2010, प्रकाशक मुद्र आर.ए. दिवाकर, इंद्रानगर, जैतीपुर रोड, घाटमपुर, कानपुर–209208
4. राजकिशोर 'जाति का जहर' आलेख जाति कौन तोड़ेगा, पृ.139, संपादक राजकिशेर, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
5. शरण कुमार लिंबाले 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, अनुवादक रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली–'110002, प्रथम संस्करण 2000, पृ. 14
6. कंवल भारती– दलित विमर्श की भूमिका, इतिहासबोध प्रकाशन बी–239, चंद्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद–211004

लघु कथा

भूख

● राधेश्याम 'भारतीय'



राज किशोर का बापू नवनिर्मित इमारत पर काम कर रहा था। ठेकेदार की लापरवाही के कारण उस इमारत की छत ढह गई। वह वहीं दबकर मर गया।

आज तीसरे दिन उसका अंतिम संस्कार हो रहा था।

श्मशान घाट में राज किशोर अपने बापू को मुखाग्नि देने आगे बढ़ा तो न जाने क्या सोचकर वहीं रुक गया।

"बेटे आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ हैं।" एक बुजुर्ग ने यह कहते हुए राज किशोर को हिम्मत दी।

वह बढ़ा, पर अपने छोटे भाई की ओर, और जलती हुई लकड़ी उसे पकड़ाते हुए बोला, "भाई, बापू को मुखाग्नि तू दे।"

"अरे बेटे! यह तुम क्या कर रहे हो? बाप को अग्नि देने का काम बड़े बेटे का होता है। ऐसा करने से तुम्हारे बापू को मोक्ष मिलेगा। बेटे तुम ही अग्नि दो। यह तो वैसे भी बहुत छोटा है।" उसी बुजुर्ग ने समझाते हुए कहा।

"दादा..." इतना कह वह सुबक-सुबक कर रोने लगा।

बूढ़े ने उसे गले से लगा लिया। और उसे चिता की ओर ले जाने लगा।

"नहीं, दादा, अग्नि छोटा ही देगा।"

"पर क्यों?" बुजुर्ग ने पूछा।

"दादा घर में खाने को कुछ नहीं है। यदि मैंने अग्नि दी तो एक सप्ताह मुझे घर पर बैठना पड़ेगा और... बिना दिहाड़ी काम नहीं चलेगा...इसलिए।" इतना कह वह छोटे भाई को लेकर बापू की चिता की ओर चल पड़ा।

नसीब विहार कॉलोनी, घरौंडा, करनाल, हरियाणा,
मो. 0 93153 82236

आलेख

शहीद भगत सिंह की विरासत

● संगम वर्मा



शहीद भगत सिंह भारतीय इतिहास के एक ऐसे युगपुरुष हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में स्वयं को बलिदान करके न केवल एक आदर्श प्रस्तुत किया वरन् एक चिंतक के रूप में क्रांतिकारी विचारधारा का मजबूत आधार भी रखा। भगत सिंह की स्पष्ट जीवन दृष्टि समय-समय पर युवाओं का मार्गदर्शन करती रही है। भगत सिंह की विरासत इसी बिंदु से आरम्भ होती है। कोई भी चिंतनधारा समय के अनुरूप यदि स्वयं को ढाल लेती है तो वह जीवित रहती है अन्यथा वह ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु बनकर रह जाया करती है। भगत सिंह की विचारधारा मूलतः मार्क्सवादी चिंतनधारा से जुड़ी हुई है, इस दृष्टिकोण से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक दृष्टि से जिन्होंने चिंतन-मनन किया है, निस्संदेह वे हर प्रकार से भगत सिंह की विचारधारा से जुड़े हुए हैं। इस विचारधारा में समय ने जो विकृतियां उत्पन्न की हैं, उन्हें भगत सिंह की विरासत से जोड़ना उनके साथ अन्याय होगा।

भगत सिंह की विरासत पर बात करने से पहले हम लोगों के लिए यह जान लेना आवश्यक होगा कि वो क्या है, जो भगत सिंह ने चली आ रही परम्परा में कुछ नया जोड़ा। यदि निष्पक्ष होकर देखा जाए तो ये बात स्पष्टतः रूप से कही जा सकती है कि भारतीय परम्परा के मूल में जो विश्वास और आस्था का मूल या भगत सिंह ने उस पर वैचारिक चिंतन और मनन का नया आधार जोड़ा। मार्क्सवादी चिंतनधारा को अपनाने के कारण भगत सिंह को एक सुस्पष्ट वैज्ञानिक आधार मिला जो भारतीय चिंतनधारा में इस रूप में नहीं था। इसी वैज्ञानिक आधार के कारण भगत सिंह को इस देश में साम्यवाद की आवश्यकता अनुभव हुई, आस्था के स्थान पर अध्ययन, मनन और चिंतन का सूत्र आवश्यक लगा और तर्क की कसौटी पर प्रत्येक विचार, प्रत्येक आस्था को परखने व जांचने की आवश्यकता को महत्त्व दिया। सम्भवतः इसीलिए भगत सिंह ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, "पिस्तौल और बम कभी इंकलाब नहीं लाते वरन् इंकलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है।"

भगत सिंह ने अपने छोटे से जीवन काल में जिस मार्क्सवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विचारधारा को अपनाया, वह उनसे पहले भारतीय परम्परा में दिखाई नहीं पड़ती। मानव स्वभाव का तर्कसंगत विश्लेषण और युवाओं को सही दिशा निर्देश देने की जैसी क्षमता भगत सिंह के पास थी, वह भारतीय परम्परा का समर्थन करने वाले उस समय के किसी भी नेता के पास नहीं थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि भगत सिंह की यही तर्कशीलता उन्हें धर्म का विरोध, परम्परा के प्रति अंधी श्रद्धा के विरुद्ध स्पष्ट आवाज़ उठाने के लिए जोश व जुनून पैदा करती है। भारतीय परम्परा में भगत सिंह ने ये जो क्रांति के नए तत्त्व और आधार जोड़े हैं, यही उनकी महत्त्वपूर्ण देन है और इसी से उनकी विरासत का जन्म होता है।

भगत सिंह की विरासत पर दो दृष्टियों से विचार करना आवश्यक होगा। पहली तो यह कि परम्परा में जोड़े हुए नए दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने वाले लोगों द्वारा इसे विकसित व पल्लवित करने के रूप में देखा जा सकता है और दूसरा इस विरासत को समाप्त करने के लिए भांति-भांति के षड्यंत्र रचे जाने के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। यहां मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि भगत सिंह की विरासत को आगे ले जाने वाले ये लोग गिनती में बहुत थोड़े हैं, अगर भगत सिंह को सामने रखें तो गिनती का कोई महत्त्व रह ही नहीं जाता। ये लोग अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहे हैं कि युवाओं में उस दृष्टिकोण का, विचारधारा

लघु कथा

आदमी और सांप

● नरेन्द्र देवांगन



जाने कैसे उस युवती का पैर सांप पर पड़ गया। सैंडिल से कुचल जाने पर क्रोधित सांप युवती की ओर उछला। युवती दौड़ पड़ी। घायल सांप ने उसका पीछा किया। होशो-हवाश खोई युवती इस भाग-दौड़ में एक निर्जन स्थान पर पहुंच गई, जहां एक व्यक्ति तीरंदाजी का अभ्यास कर रहा था।

तीरंदाज एकटक उस युवती को देखने लगा। उसकी आंखों में हवस का रंग उतर आया था। युवती वापस पलटकर सांप की ओर चल पड़ी।

तीरंदाज ने युवती से ऊंचे स्वर में कहा, "उधर बढ़ोगी तो सांप काट लेगा और तड़पकर मर जाओगी। वापस लौट आओ। मैं तुम्हें बचा लूंगा।"

युवती ने भागते हुए दृढ़ता के साथ कहा, "अपनी तीरंदाजी का प्रयोग सांप पर करते, तो मैं अवश्य अपने भावी जीवनदाता की शरण में आती। मगर इस नाजुक स्थिति में भी तुम्हारी आंखों में दया की जगह हया उभर आई है। सांप के कांटने से तो एक ही बार तड़पना होगा, मगर आदमी के काटने से तो जीवन भर तड़पना पड़ेगा।"

नरेन्द्र फोटोकॉपी, पोस्ट खरोरा, जिला रायपुर, छत्तीसगढ़-493 225

का प्रस्फुटन हो जिसे भगत सिंह ने अनिवार्य माना है। मुझे यह कहने में भी संकोच नहीं है कि ऐसे कुछ लोगों के रास्ते में आज अधिक बाधाएं उपस्थित हैं। विडम्बना यह है कि इन लोगों के मार्ग में ये बाधाएं ग़ैरों ने नहीं, अपनों ने खड़ी की हैं। इन्हीं बाधाओं के कारण भगत सिंह की विचारधारा को विरासत के रूप में अपनाने-आगे बढ़ाने वाले ये लोग हमें दिखाई नहीं पड़ते और ज्यों ही यह दिखाई देने लगते हैं, त्यों ही साम्राज्यवादी शक्तियां और प्रतिक्रियावादी लोग इसे समाप्त करने के किसी नए षड्यंत्र को कार्य रूप देने में निमग्न हो जाते हैं, ऐसे षड्यंत्रों में भगत सिंह को एक साम्प्रदायिक रूप देना, उसके हाथ में पिस्तौल दिखाकर उसे आतंकवादी कहकर पुकारना शामिल है। भगत सिंह की छवि के साथ वे कोई भी साम्प्रदायिक रूप जोड़ने को तैयार नहीं हैं, जिसके लिए कुछ लोग दिन-रात प्रयत्न में लगते रहते हैं और थोड़े समय के बाद फिर इसे हवा देने लगते हैं।

इसी षड्यंत्र का एक नया रूप भी देखने में आया है, वास्तव में यह षड्यंत्र नहीं लगता है, मगर है। बॉलीवुड में एक साथ पांच-पांच फिल्में भगत सिंह पर बनाई गई। यह सब भगत सिंह के सपने को पूरा करने के लिए नहीं था, वरन् फिल्म निर्माताओं को लगा कि आज की युवा पीढ़ी के बीच कुछ मसाला लगातार भगत सिंह की छवि को भी बेचा जा सकता है। बाज़ार सब कुछ बेच सकता है बशर्ते उसे मुनाफा मिले। यह भगत सिंह के साथ बड़ा धोखा है। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यह बाज़ारवाद इन्हीं साम्प्रदायिक शक्तियों द्वारा समर्थित और चालित है।

ऊपर से देखने पर यह कहा जा सकता है कि आज के युवा वर्ग को साम्प्रदायिक ताकतों द्वारा फैलाए गए जाल के कारण बाज़ारवादी संस्कृति ने पूरी तरह जकड़ लिया है और उन्हें भगत सिंह की विरासत से कोई सरोकार नहीं है। वे सुविधाभोगी जीवनदृष्टि के कायल होते जा रहे हैं, लेकिन इस ऊपरी चकाचौंध के बावजूद भारतीय युवावर्ग कहीं आज भी भगत सिंह से चेतन-अवचेतन रूप से अपने आपको जुड़ा हुआ पाता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि युवाओं में भगत सिंह की तस्वीर/छवि को जानने-समझने की उत्सुकता आज भी बन गई है।

भगत सिंह के नाम पर विचार मंचों की स्थापना और उनकी रचनाओं का आज भी युवाओं के द्वारा पढ़े जाना तथा उनके विरुद्ध रचे गए षड्यंत्रों का समर्थन करने के स्थान पर एक उपेक्षा भाव दिखाना, कुछ ऐसी बातें हैं जो भले ही कुछ लोगों को नगण्य लगें, लेकिन मेरी दृष्टि में ये वो चिंगारियां हैं जो किसी भी समय एकत्रित होकर एक प्रज्वलित मशाल का रूप धारण कर सकती हैं।

भगत सिंह की विरासत पर बात करते हुए यह कहना कि उनकी कोई विरासत नहीं है, उनकी विचारधारा उन्हीं के साथ समाप्त हो गई है, उचित नहीं होगा। यह विरासत सरस्वती नदी की भांति दिखाई भले न दे, लेकिन आज भी विद्यमान है और कार्यरत है तथा विरासत को अपनाकर चलने वाले युवाओं की भी कोई कमी नहीं है।

प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, सतीश चंद्र धवन, राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना, पंजाब-141001

पर्यावरण संरक्षण

पर्यावरण का आशय है – हमारे चारों तरफ का घेरा! इसमें जमीन से लेकर आसमान तक दृश्य-अदृश्य और चेतन-अचेतन घटकों की भरी-पूरी दुनिया आबाद है। यह दो तरह के हैं – प्राकृतिक घटक और सामाजिक घटक! प्राकृतिक घटक में पृथ्वी, पानी, वायु, नदी, घाटी, पर्वत, समुद्र, जंगल, जीव-जन्तु, क्रिमियाँ, कवक आदि आते हैं। पर्यावरण के सामाजिक घटक मूलतः मानव के उत्पाद हैं। भोजन, वस्त्र, आवास, उद्योग-धंधे, संचार, परिवहन, जीवन-पद्धति, संस्कृति, कला, साहित्य वगैरह से जुड़े लाखों उपक्रम इस घटक के अंतर्गत समाहित हैं।

उम्मीदों भरी नई सुबह

● **चित्रेश**

पर्यावरण का आशय है हमारे चारों तरफ का घेरा! इसमें जमीन से लेकर आसमान तक दृश्य-अदृश्य और चेतन-अचेतन घटकोंकी भरी-पूरी दुनिया आबाद है। यह दो तरह के हैं प्राकृतिक घटक और सामाजिक घटक! प्राकृतिक घटक में पृथ्वी, पानी, वायु, नदी, घाटी, पर्वत, समुद्र, जंगल, जीव-जन्तु, क्रिमियाँ, कवक आदि आते हैं। पर्यावरण के सामाजिक घटक मूलतः मानव के उत्पाद हैं। भोजन, वस्त्र, आवास, उद्योग-धंधे, संचार, परिवहन, जीवन-पद्धति, संस्कृति, कला, साहित्य वगैरह से जुड़े लाखों उपक्रम इस घटक के अंतर्गत समाहित हैं।

मानव अपने आपमें पर्यावरण से इतर कोई अलग इकाई नहीं है। वह पर्यावरण के प्राकृतिक घटक का एक अंग है और उसका अस्तित्व प्रकृति पर ही टिका हुआ है। हमारे प्राचीन मनीषी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि जड़ जगत यानी भूमि, जल, पहाड़, वायु, वनस्पतियों, वन्यजीव, नदी-नाले एवं चेतन जगत यानी मनुष्य के पारस्परिक समानुपातिक सामंजस्य से ही पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन कायम रहता है। पारिस्थितिकी तंत्र के किसी घटक के नष्ट होने से उसका दुष्परिणाम सम्पूर्ण पर्यावरण को भोगना पड़ता है।

ऋग्वेद, उपनिषद और जातक कथाओं से लेकर पुराणों तक भारतीय संस्कृति की प्रकृति संरक्षण सम्बंधी चिंतन धारा विद्यमान है। भारतीय मनीषियों ने प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना है। सूर्य, चंद्रमा, वायु, अग्नि वगैरह देव हैं और नदियाँ पवित्र देवियाँ! पृथ्वी माँ है। वृक्ष देवों के वास-स्थल हैं। कुएँ, तालाब और बावड़ियों के धार्मिक-सांस्कृतिक महत्त्व हैं। पशु-पक्षियों को देवताओं का वाहन बनाकर इन्हें श्रेष्ठता प्रदान की गयी है। गाय-बैल भारतीय लोकजीवन में कितने समादृत हैं- इससे शायद ही कोई अनजान हो।

मगर समय का चक्र बहुत कुछ बदल देता है। उन्नीसवीं सदी में हुई औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् मानव की लालसा को पंख लग गए। उपभोक्तावादी जीवन-मूल्यों का विकास होने लगा। भारतीय भी इस जीवन-पद्धति के प्रवाह से अपने को बचा नहीं सके। फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का बेलगाम सिलसिला शुरू हो गया। इस संदर्भ में जो भी पारम्परिक अनुशासन और मर्यादायें थीं, सब ताक पर रख दी गईं। परिणामतः आज समस्त विश्व पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकी असंतुलन की भयावह समस्या से आक्रांत है। अभी न हमारी नदियों का जल शुद्ध रह गया है और न वायुमण्डल। भूगर्भीय जल भी अर्सेनिक और फ्लूराइड जैसे तत्त्वों से जहरीला होने लगा है। यहाँ तक कि अंतरिक्ष में भी प्रदूषण के कदम पड़ चुके हैं और यह सब हो रहा है विकास के नाम पर। आज की तारीख में मनुष्य ने निरन्तर प्रकृति के चक्र में घुसपैठ करते हुए पर्यावरण को सोचनीय स्तर पर ला छोड़ा है।

पुराने समय में पर्यावरण को लेकर कैसी सोच थी, इसे समझने में 'मत्स्यपुराण' का यह कथन दृष्टव्य है

''दशकूप समावापी, दशवापी समोहृदः।

दश हृद समः पुत्रे, दश पुत्र समोवृक्षः ।।''

इसमें बताया गया है कि दस कुओं के समतुल्य एक बावड़ी है। दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है। दस तालाबों के सदृश एक पुत्र है और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष होता है। कभी इतना समादृत था लोकजीवन में वृक्ष! जरूरत होने पर भी लोग हरे वृक्ष को नहीं काटते थे। यह जनश्रुति मिलती है कि राजस्थान में खेजड़ी के पेड़ों की रक्षा में माहेश्वरी समुदाय के लोगों ने प्राण तक न्योछावर कर दिए थे। मगर बीसवीं सदी के आठवें दशक तक आते-आते पैसे की लिप्सा ऐसी बलवती हुई कि आम, महुआ, जामुन जैसे फलदार वृक्ष बेचे-काटे जाने लगे। सघन छांव वाले गांव निचाट होते गए।

ऊर्जा, ईंधन और इमारती लकड़ी के लिए गत सौ साल से जंगलों के अंधाधुंध कटान का सिलसिला जारी है। एक समय तो ऐसा आ गया था, जब लगने लगा था कि अब पहाड़ सदैव के लिए नंगे-बूचे हो जायेंगे। किंतु सुंदरलाल बहुगुणा के 'चिपको आंदोलन' से इस दिशा में सकारात्मक परिणाम आया। इससे पर्वतीय क्षेत्रों में अनियंत्रित कटान पर तो रोक लगी ही, वृक्षारोपण को प्राणवायु भी मिल गई। वृक्ष सिर्फ कार्बन डाई आक्साइड का अवशोषण करके ऑक्सीजन का उत्सर्जन ही नहीं करते, बल्कि मृदा संरक्षण और परिवर्द्धन का गुरुतर दायित्व भी निभाते हैं।

जहाँ जंगल कटते हैं, उस क्षेत्र में अपक्षयन की क्रिया आरम्भ हो जाती है। बरसात के समय वहाँ की मृदा को प्राकृतिक संरक्षण नहीं मिल पाता। फलस्वरूप भूक्षरण में वृद्धि होने लगती है। कुछ वर्षों में उस क्षेत्र की मृदा का पूर्णतया सफाया हो जाता है और अंदरूनी सिल्ट सतह पर आ टिकती है। ऐसी स्थिति में वह इलाका बंजर में परिवर्तित होने लगता है। मृदा के अभाव में वर्षा का पानी पृथ्वी में अवशोषित होने के बजाय सीधे स्थानीय नदी-नाले में मात्र कुछ घंटों में समा जाता है। इसके तीव्र बहाव में आस-पास की कृषि भूमि की मृदा भी कटने लगती है। पृथ्वी के दो-तीन इंच के ऊपरी भाग में ऐंथ्रोपोड्स, प्रोटोजोआ, कवक, गोलक्रिमियाँ आदि रहती हैं। मृदा व ह्यूमस के निर्माण तथा मिट्‌टी की उर्वरकता की संरक्षा में इनका अहम स्थान है। कटान के साथ यह पूरा सूक्ष्म तंत्र भी अपक्षयन की भेंट चढ़ जाता है। भूमि की उर्वराशक्ति की कमी से कृषि घाटे का सौदा बन जाती है। लिहाजा कृषि से जुड़े व्यक्ति रोजी की तलाश में शहरों की तरफ भागते हैं। इससे शहरों में स्वच्छता, शुद्ध पेय जलापूर्ति और मलिन बस्तियों में वृद्धि की समस्या पैदा होती है जो अंततः शहरों की प्रदूषणकारी स्थितियों को और जटिल बनाती है।

पहले जहाँ जंगल थे, वहाँ की नदियाँ और नाले वर्ष भर प्रवाहित रहते थे। मगर कटान के बाद स्थिति बदल गयी है। अब बरसात के बाद नदियों में भले ही पतली-सी धारा दिखे, पर नाले प्रायः सूखे ही रहते हैं। वन्य विनाश वाले क्षेत्रें में गर्मी और सर्दी का भी जबरदस्त प्रकोप झेलना पड़ता है। इससे भी अपक्षयन की क्रिया को बल मिलता है। पृथ्वी की सतह की सिल्ट पानी के साथ बहकर नदी-नालों के पेंदे में पहुँच जाती है। मृदा और बालू से नदियों-नालों के प्रवाह क्षेत्र की चौड़ाई और गहराई संकुचित हो जाती है। फलतः उनके प्रवाह क्षेत्र के लोगों को बाढ़-बूड़ा का प्रकोप झेलना पड़ता है। घाघरा, राप्ती, कोसी, बूढ़ी गंडक, दमोदर, यमुना आदि नदियों में प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ के पीछे इनके प्रवाह क्षेत्र के आसपास के वनों का विनाश ही मूल कारण है।

वृक्षों कों धरा का भूषण कहा गया है। लेबनान के दार्शनिक लेखक खलील जिब्रान ने कहा है- 'वृक्ष वह कवितायें हैं, जिनको पृथ्वी ने आकाश के ऊपर लिखा है।' वैश्विक आबादी की भोजन, वस्त्र और मकान की जरूरतें पूरी करने के लिए इन जीवंत कविताओं का सफाया जारी है। वनों पर मानव अतिक्रमण का परिणाम है - वन्य जीवों का गाँवों के आस-पास विचरण! हाथी, हिरन, बाघ, तेंदुआ, लकड़बग्घा जैसे जंगली जानवर कृषि और रहाइशी क्षेत्र में आकर जान-माल के लिए खतरा बनते हैं। कई ऐसे भी वन्य जीव हो सकते हैं, जो अपने प्राकृतिक वास के छिनने के बाद संसार से लुप्त हो सकते हैं। गिद्ध, कठफोड़वा जैसे जाने-पहचाने पक्षी ऐसी ही संकटग्रस्त स्थिति से गुजर रहे हैं। अति दोहन के फलस्वरूप कई औषधीय महत्त्व की वनस्पतियाँ जो पहले खूब दिखती थीं, अब खोजने पर भी नहीं मिलतीं। यह पारिस्थितिकी तंत्र के असंतुलन का मामला है, जिसके प्रदूषण सम्बंधी दूरगामी दुष्परिणाम सामने आते हैं।

सन् 2011 की 'भारतीय वन आख्या' के अनुसार, देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 23.81 प्रतिशत हिस्सा वन क्षेत्र है। जबकि पचास साल पहले देश का 40 प्रतिशत भूभाग वनों से आच्छादित था। 'हरित भारत मिशन' अगले दस साल के अन्दर देश के वन्य क्षेत्र को 33 प्रतिशत तक विस्तारित करने में लगा है। इस मिशन की सफलता से वायुमण्डल में बढ़ते कार्बन और ग्रीन हाउस गैसों का अवशोषण स्तर संतोषजनक हो जायेगा।

तालाब, कुएँ, बावड़ियों का धार्मिक-सांस्कृतिक महत्त्व उनकी पर्यावरणीय उपादेयता के कारण था। भू-जल स्तर को सामान्य बनाये रखने में यह बेजोड़ है। किंतु अब कुओं, बावड़ियों का अस्तित्व मिटता जा रहा है। लोक विधान के अनुसार, स्नान से पूर्व तालाब से पाँच पिण्डी मिट्‌टी के निकाले जाते थे। अब यही तालाब बाहुबलियों और भूमाफियों के अतिक्रमण के शिकार हो रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट के आदेश को धता बताते हुए तालाब निरंतर पाटे जा रहे हैं। जल भण्डारण के इन पारम्परिक संसाधनों के नष्ट होने का नतीजा है कि भूगर्भीय जल स्तर निरन्तर नीचे भाग रहा है। साथ ही इसमें प्रदूषकों की मात्रा भी बढ़ रही है।

वायु जो हमारे जीवन का आधार है, उत्तरोत्तर विषैली होती जा रही है। बढ़ते औद्योगीकरण और स्वचालित वाहनों से निकलने

वाला धुँआ वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण है। धुँए में मुख्य तौर पर कार्बन डाई आक्साइड, वैजोपाइरीन, कार्बन मोनोआक्साइड, सल्फर ट्राई आक्साइड, अधजले पेट्रोल का वाष्प आदि प्रदूषक होते हैं। औद्योगिक इकाइयों से तेल तथा कोयला जलने से उत्पन्न होने वाली गैसें जैसे गंधक के आक्साइड, अधजले हाइड्रोकार्बन, नाइट्रोजन के विभिन्न आक्साइड, राख आदि वायु प्रदूषण को गहराने में अग्रणी हैं। कई औद्योगिक इकाइयों से निःसृत विषैले कचरे से वायुमंडल में पारा, सीसा, ऐस्बेस्टस, अमोनिया, कोबाल्ट, रेडियोधर्मी पदार्थ वगैरह पहुँच रहे हैं। यह मानव स्वास्थ्य से लेकर ओजोन छतरी को भी क्षतिग्रस्त कर रहे हैं।

सोचनीय तथ्य यह है कि यह घातक वायु प्रदूषण मात्र कुछेक बड़े औद्योगिक नगरों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सैकड़ों किलोमीटर की दूरियाँ तय करके सुदूर क्षेत्रों तक पहुँच रहा है। मौसम विज्ञानियों के अनुसार, वायुमण्डल में घुले और तैरते प्रदूषक पृथ्वी के मौसम चक्र और गर्मी-सर्दी को प्रभावित कर रहे हैं। एक अध्ययन का निष्कर्ष है कि वायु के अंदर धुएँ का सघन प्रदूषण, पी. एम.-10 नाम के काले जहर के रूप में परिणत हो रहा है। यह सांस के जरिये फेफड़े में जाता है और हृदयाघात व कैंसर जैसी बीमारियों का कारण बनने लगा है। वायु में पी.एम.-10 की मात्र 20 माइक्रोग्राम तक होना सामान्य है। मगर यह सामान्य से बहुत अधिक हो चुका है।

देश की नदियों का हाल और भी खराब है। नदियाँ अपने तटवर्ती नगरों का मलिन जल तो ढोती ही हैं, यहाँ स्थित चमड़ा, रसायन, कागज, चीनी, इस्पात संयंत्र, उर्वरक, खाद्य प्रसंस्करण, रंगाई-छपाई आदि उद्योगों का अपशिष्ट जल भी इसमें गिराया जाता है। योजना आयोग की स्वीकृति है कि 'उत्तर की डल झील' से लेकर दक्षिण की पेरियार और चालियार नदियों तक, पूरब में दामोदर तथा हुगली से लेकर पश्चिम की ढाणा नदी तक जल प्रदूषण की स्थिति भयावह है।' नदी जल का तापमान, क्षारीयता, कठोरता, क्लोराइड की मात्र, पी.एच.मान, बी.ओ.डी. आदि में लगातार असंतुलन पैदा हो रहा है। अब यह न्यूनतम स्तर से बहुत अधिक और जटिल हो चुका है। हुगली, दमोदर, चम्बल, तुंगभद्रा, वरुणा, सोन, कावेरी, हिंडन, गोमती, सई, तमसा जैसी कई नदियों में मत्स्य प्रजातियाँ, जलीय जीव और शैवाल सदैव के लिए समाप्त होते जा रहे हैं। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार, इनमें कई नदियाँ मौत की दिशा में अग्रसर हैं।

देश की सर्वाधिक पवित्र समझी जाने वाली गंगा नदी में नवें दशक के आस-पास प्रदूषण खतरनाक स्तर तक पहुँच गया था, तब सामाजिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों और स्वयंसेवी संगठनों ने 'गंगा बचाओ' की जोरदार गोहार की थी। परिणामतः जून, 1985 में पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 'गंगा कार्य योजना' के अंतर्गत 'गंगा सफाई प्राधिकरण' का गठन किया गया। 14 जून, 1988 को तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने वाराणसी के राजेंद्र प्रसाद घाट से 260 करोड़ रुपये वाली गंगा कार्य योजना का क्रियान्वयन किया। इसके अंतर्गत गंगा के तटवर्ती क्षेत्रों में मलोपचार संयंत्रों की स्थापना, टेनरियों आदि के अपशिष्ट जल के उपचार, शवदाह गृहों का निर्माण, आबादी के पास ढलानों पर सामुदायिक शौचालयों का निर्माण, समय-समय पर नदी जल व जल-जीवों का पर्यवेक्षण एवं गुणवत्ता का प्रयास जैसी कई परियोजनाएँ संचालित हैं।

इसके अलावा भी नदियों के जल प्रदूषण को कम करने के लिए अनेक कार्यक्रमों का संचालन हो रहा है। इसी के तहत केंद्र सरकार द्वारा 3 जुलाई, 1995 को देश की 18 नदियों के सफाई के एक व्यापक 'राष्ट्रीय नदी कार्यक्रम' की शुरुआत की गई है। नदियों में प्रदूषण निवारण हेतु 'जल प्रदूषण निरोधन एवं नियंत्रण अधिनियम-1974' एवं 'जलकर (प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम-1979' जैसे कानून देश में थे, मगर इनके सशक्त क्रियान्वयन का सदैव अभाव रहा है। बाद में 'पर्यावरण (रक्षण) अधिनियम 1986' आया जो परवर्ती कानूनों से व्यापक और कठोर है। इसके जरिए औद्योगिक इकाइयों के प्रदूषणकारी बहिर्स्रावों को नदियों में प्रवाहित करने पर रोक लगा दी गई है।

गत ढाई दशक के बीच पर्यावरण की सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र की संरक्षा की चेतना काफी हद तक जागृत हो चुकी है। देश में पर्यावरण मंत्रालय ने प्रदूषण नियंत्रण के लिए राष्ट्रीय नीति की घोषणा की है। इसके अनुसार औद्योगिक प्रतिष्ठानों को अनिवार्य रूप से वार्षिक पर्यावरण परीक्षण कराना होगा। साथ ही वायुमंडल में प्रसारित होने वाले प्रदूषकों को इनके स्रोत पर ही रोक देने वाली तकनीक, यथा इलेक्ट्रोस्टैटिक प्रेसिपिटेटर युक्त चिमनी वगैरह पर वित्तीय प्रोत्साहन का प्रावधान है।

सन् 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में स्टाकहोम में पर्यावरण पर प्रथम सम्मेलन आयोजित हुआ था। इसे बौद्धिक वर्ग में भी खास तवज्जो नहीं मिली थी। यह मात्र आभिजात्य वर्ग की बैठकों की चर्चा का विषय बनकर रह गया था। किंतु बीस साल बाद सन् 1992 में रियो-डि-जानिरो में सम्पन्न 'पृथ्वी शिखर सम्मेलन' मे पर्यावरण के संरक्षण, संवर्द्धन और संपोषण के मुद्दे को जन सामान्य के बीच जिस प्रकार की चर्चा और स्वीकृति मिली थी, यह शुभ लक्षण है। वास्तव में पर्यावरण संरक्षण के कितने भी कानून बनाए जाएं, कैसी भी कल्याणकारी योजनाओं की उद्घोषणा हो, जन सामान्य की प्रतिबद्धता के अभाव में यह अर्थहीन ही रहेगी। किंतु आज की तारीख में नई विश्व व्यवस्था के निर्माण और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पर्यावरण के सवाल को जैसा महत्व मिल रहा है, वह आने वाली उम्मीदों भरी नई सुबह का आगाज है।

पोस्ट आफिस-जासापारा, गोसाईंगंज-228119
सुलतानपुर (उ.प्र.), मोबाइल-09450143544

फीचर

बागबानी का सरताज बनता हिमाचल

● महेश पठानिया

हिमाचल प्रदेश की आर्थिकी में बागबानी क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। देशभर में सेब राज्य की ख्याति अर्जित करने के बाद हिमाचल प्रदेश तेजी से देश का फल राज्य बनने की ओर अग्रसर है। प्रदेश सरकार बागबानी क्षेत्र को विशेष प्राथमिकता प्रदान कर रही है जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र राज्य के फल उत्पादकों के लिए आय का मुख्य स्रोत बनकर उभरा है।

प्रदेश में 2.18 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को फल उत्पादन के तहत लाया गया है। बागबानी क्षेत्र में विविधता लाने के लिए वर्ष 2013-14 के दौरान 45.08 लाख विभिन्न किस्मों के फल पौधों का वितरण कर 3729 हेक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र को बागबानी के तहत लाया गया। इसके अतिरिक्त, गुणात्मक पौध सामग्री के उत्पादन के लिए 39 नई नर्सरियां पंजीकृत की गईं और सरकारी नर्सरियों में 10.39 लाख फल पौधों का उत्पादन किया गया। बागीचों की उत्पादक क्षमता को बढ़ाने एवं इनके उत्पादन स्तर को उन्नत बनाने के लिए 60 बागीचों में अधोसंरचना सुविधाओं और नर्सरियों को सुदृढ़ किया गया है।

फल पौधों की उत्पादकता में सुधार लाने के लिए अनार, गुठलीदार फल एवं अखरोट जैसे पारम्परिक फलों की सुधरी किस्मों एवं रूट स्टॉक को विकसित देशों से आयात किया जा रहा है। इनके बेहतर रखरखाव एवं उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किसानों और बागबानों को प्रशिक्षित किया जा रहा है और उन्हें तकनीकी जानकारी उपलब्ध करवाई जा रही है। प्रशिक्षण शिविरों में 74768 बागबानों को प्रशिक्षित किया गया और 460 किसानों को प्रशिक्षण के लिए बाहर भेजा गया।

प्रदेश में बागबानी के एकीकृत विकास के लिए प्रदेश सरकार ने कारगर पग उठाए हैं। वर्ष 2013-14 के दौरान बागवानी मिशन के तहत 42.89 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

प्रदेश में सरंक्षित खेती को बढ़ावा देने के लिए ग्रीन हाउस निर्माण के लिए अनुदान को 85 प्रतिशत किया गया है। ओलावृष्टि से फसलों को बचाने के लिए एंटी हेलनेट पर दिए जाने वाले अनुदान को बढ़ाकर 80 प्रतिशत किया गया है। वर्ष 2013-14 के दौरान 2.55 लाख वर्गमीटर क्षेत्र को ग्रीनहाउस के अन्तर्गत लाया गया, जबकि 23.5 लाख वर्गमीटर क्षेत्र को एंटी हेलनेट के तहत लाया गया है।

प्रदेश में सेब उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सेब नवीनीकरण परियोजना के दिशा-निर्देशों को सरल किया गया है और 560 हेक्टेयर क्षेत्र को इस परियोजना के अधीन लाया जा रहा है। वर्ष 2013-14 के दौरान उत्पादन स्तर के 8.49 लाख मीट्रिक टन के लक्ष्य को पूरा किया गया है। इसी अवधि के दौरान मण्डी मध्यस्थता के अन्तर्गत 22.55 करोड़ रुपये मूल्य के 'सी' ग्रेड के 34229 मीट्रिक टन सेब का प्रापण किया गया ताकि फल उत्पादकों को सेब के बेहतर मूल्य सुनिश्चित हो सके।

प्रदेश सरकार द्वारा बागबानों को सिंचाई सुविधा उपलब्ध करवाने के लिए छोटी सिंचाई योजनाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है। छोटी सिंचाई योजनाओं के लिए राष्ट्रीय मिशन के अन्तर्गत 3.00 करोड़ रुपये व्यय किए जा रहे हैं। छोटे तथा मंझोले किसानों को दिए जाने वाले अनुदान को बढ़ाकर 80 प्रतिशत किया है, जिसमें से 30 प्रतिशत राज्य द्वारा वहन किया जा रहा है।

बागबानी फसल की कीटों तथा अन्य बीमारियों से रोकथाम के लिए 110.00 हेक्टेयर क्षेत्र को बायो नियंत्रण के अन्तर्गत लाया गया। कीटों तथा बीमारियों से फलों की फसल के बचाव के लिए 21.38 करोड़ रुपये की लागत की 496.0 मीट्रिक टन कीटनाशक दवाएं वितरित कर किसानों व बागबानों को 6.85 करोड़ रुपये का अनुदान दिया गया।

राज्य योजना के तहत वर्ष 2013-14 के दौरान प्रदेश में बागबानी विकास के लिए 84.97 करोड़ रुपये के मुकाबले 124. 64 करोड़ रुपये का बजट रखा गया है। वर्ष 2014-15 के लिए योजना परिव्यय को बढ़ाकर 101.72 करोड़ रुपये किया गया है, जो वर्ष 2013-14 के योजना परिव्यय से 19.7 प्रतिशत अधिक है।

'हिमाचली सिल्क' ब्रांड
नूरपुर का रेशम

वर्तमान सरकार ने कांगड़ा जिले की नूरपुर तहसील के बोध स्थित प्रदेश की एक मात्र रेशम उद्योग इकाई के पुनरुद्धार और विकास की दिशा में ठोस पहल की है। इस धरोहर रेशम इकाई ने अपने अस्तित्व के 50 वर्ष के सफर में अनेक उतार-चढ़ाव देखे।

हिमाचल प्रदेश सामान्य उद्योग निगम इस वर्ष को 'रेशम वर्ष' के रूप में मना रहा है जिसके अंतर्गत प्रदेश और पड़ोसी राज्यों में भी रेशम की विभिन्न किस्में पेश करने के साथ-साथ विशेष छूट व उन्नत योजनाएं आरम्भ करना शामिल होगा। प्रदेश सरकार इस इकाई को लाभ पर इकाई बनाने और क्षेत्र के लोगों को रेशम उत्पादन का प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है ताकि उनकी आर्थिकी स्थिति में सुधार आ सके।

पिछले लगभग डेढ़ वर्षों की अवधि में प्रदे ा सरकार ने इस रेशम इकाई की बहाली के लिए विशेष प्रयास किए। हिमाचल प्रदेश उद्योग निगम ने इस इकाई की बहाली के लिए विशेष अभियान चलाया है और प्रयास किए जा रहे हैं कि इसकी पहुंच अधिक से अधिक लोगों तक हो सके।

वर्ष 1963 में पंजाब सरकार ने नूरपुर में इस रेशम इकाई की स्थापना की थी। इस समूचे उत्तरी क्षेत्र में रेशम केन्द्र के रूप में विकसित करने के प्रयास किए गए। उस समय मिल का कार्य उपायुक्त रेशम कोशकीट पालन की निगरानी में आरम्भ हुआ। जून, 1964 में इस मिल में धागे का उत्पादन आरम्भ हुआ। नवम्बर, 1969 में इस मिल को हिमाचल प्रदेश खनिज एवं औद्योगिक विकास निगम के अधीन लाया गया।

हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्यत्व का दर्जा प्राप्त होने के उपरांत कालीन उत्पादन इकाई को भी इसमें समाहित किया गया और वर्ष 1976 में इस मिल में रेशम के कपड़े का उत्पादन भी आरम्भ हो गया। यहां तैयार किए गए चिनौन तथा शिफान को उत्तरी भारत में खूब पसंद किया गया। वर्ष 1988 में हिमाचल प्रदेश सामान्य उद्योग निगम ने इस इकाई को अपने नियंत्रण में ले लिया और इसको विकसित करने व विपणन के नए विकल्प ढूंढने के प्रयास आरम्भ किए।

रेशम इकाई के महत्व को देखते हुए वर्तमान सरकार ने 10 महीनों के दौरान डिजाइनर साड़ियां, सूट, शॉल, स्टॉल, जैकेट, स्कार्फ और विभिन्न डिजाइनों के कपड़ों के अतिरिक्त पारम्परिक रेशमी साड़ी व सूट का उत्पादन करने पर बल दिया। यह मिल आज अपने उपभोक्ताओं को बनारसी साड़ी, डूपोन, चादरें, तकिये, तौलिये तथा अन्य उत्पाद उपलब्ध करवा रही है। मिल ने पहली बार शुद्ध ऊन के साथ रेशम का उत्पादन भी आरम्भ किया है। आज यहां महिलाओं के लिए रेशमी कपड़ों के साथ-साथ पुरुषों के कुर्ते, पायजामे, कमीज व शॉल भी तैयार की जा रही है।

प्रदेश सरकार के विशेष प्रोत्साहन तथा मिल की बहाली पर विशेष ध्यान दिए जाने के कारण अब गत वर्षों की तुलना में उत्पादन में काफी वृद्धि दर्ज हुई है। पिछले आठ माह के दौरान नूरपुर रेशम मिल ने न केवल हिमाचल प्रदेश बल्कि पड़ोसी राज्यों को भी गुणात्मक रेशमी कपड़े व डिजाइनर उत्पाद प्रस्तुत कर 'हिमाचली सिल्क' ब्रांड के तौर पर अपनी खास पहचान बनाई है।

अधिक से अधिक लोगों तक अपनी पहुंच सुनि चत बनाने के लिए नुरपुर रे ाम इकाई की ओर से प्रदेश के प्रसिद्ध मेलों जैसे कुल्लू दशहरा, रामपुर बुशहर की लवी, विंटर कार्निवाल मनाली, मण्डी शित्ररात्रि तथा शिमला ग्रीष्मोत्सव के दौरान अपने उत्पादों की प्रदर्शनियां लगाई जाती हैं। हि. प्र. सामान्य उद्योग विकास निगम अपने डिजाइनर उत्पादों को चंबा जिला के डलहौजी, धर्मशाला के मैकलोड़गंज तथा आर्मी केंट योल में भी उपलब्ध करवाया जा रहा है। महिलाओं, पुरुषों व बच्चों के विभिन्न वस्त्र उत्पादों की तकनीकी डिजाइनिंग के लिए निगम राष्ट्रीय फैशन प्रौद्योगिकी संस्थान, कांगड़ा से सहायता प्राप्त कर रहा है।

रेशमी कपड़ों की पहुंच ज्यादा लोगों तक बढ़ाने के लिए हिमाचल प्रदेश पर्यटन विकास निगम के ि ामला, मनाली तथा धर्मशाला स्थित होटलों में भी इन उत्पादों को प्रदर्शित किया जा रहा है ताकि प्रदेश के लोगों के साथ-साथ पर्यटक भी हिमाचली रेशम के बारे में जान सकें।

प्रदेश की वर्तमान सरकार के सार्थक प्रयासों के परिणामस्वरूप यह इकाई आज आदर्श रेशम इकाई के रूप में उभर रही है। इन प्रयासों से न केवल नूरपुर की रेशम इकाई पुनः जीवंत हुई है बल्कि हिमाचल के रेशम को भी विशेष पहचान मिली है और साथ ही इस व्यवसाय से जुड़े लोगों की आर्थिक स्थिति में भी आशातीत सुधार हुआ है। (सूजसवि)

♦♦♦

स्कूली बच्चों को प्रेरित करने में मददगार मध्याह्न भोजन योजना

● जयंत शर्मा

हिमाचल प्रदेश के स्कूली विद्यार्थियों के लिए आरंभ की गई भारत सरकार की मध्याह्न भोजन योजना को प्रदेशभर में सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा रहा है। विश्व की अपनी तरह की इस सबसे बड़ी भोजन योजना के अंतर्गत विद्यार्थियों के पौषणिक स्तर में सुधार के साथ-साथ उनके नामांकन में वृद्धि, ठहराव और उपस्थिति के अपने मूल उद्देश्यों को पूरा करने में हिमाचल प्रदेश सफल रहा है।

हिमाचल प्रदेश के सभी प्राथमिक विद्यालयों और सरकार से सहायता प्राप्त विद्यालयों में 1 सितम्बर, 2000 से आरंभ इस योजना को छठी से आठवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के लिए 1 जुलाई, 2008 से लागू किया गया। पिछले वित्त वर्ष के दौरान इस योजना के अंतर्गत राज्य के 15197 विद्यालयों के 6,25,494 विद्यार्थी लाभान्वित हुए।

योजना के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए प्रारम्भिक शिक्षा विभाग द्वारा सभी विद्यालयों में स्कूल प्रबंधन समितियों का गठन किया गया है। विद्यार्थियों को निर्धारित मापदंडों के अनुरूप उच्च कैलरी युक्त पौष्टिक भोजन उपलब्ध करवाया जा रहा है, जिसे विद्यालयों में बने पृथक रसोईघर में तैयार किया जाता है। प्रदेश में इस उद्देश्य के लिए 14959 रसोई घर एवं स्टोर स्वीकृत किए गए हैं, जिनमें से 13638 पर कार्य पूरा हो चुका है, जबकि शेष 1321 पर कार्य प्रगति पर है।

भारत सरकार द्वारा रसोई घरों एवं भंडार गृहों के चरणबद्ध निर्माण के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की है, जो अधिकतम 1,20,000 रुपये प्रति इकाई है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यालय को बर्तनों व अन्य आवश्यक सामग्री की खरीद के लिए 5,000 रुपये प्रदान किए जा रहे है। विद्यालयों को भोजन पकाने के बर्तनों, खाद्यान्न भण्डारण के लिए डिब्बों और अन्य सामग्री खरीदने के लिए अधिकृत किया गया है। इस उद्देश्य के लिए इस वित्त वर्ष के दौरान 371.15 लाख रुपये स्वीकृत किए गए है।

स्कूल प्रबंधन समितियों के माध्यम से 23,793 बावर्ची एवं उनके सहायक नियुक्त किए गए हैं, और इस कार्य में समाज के कमज़ोर वर्गों के लोगों को प्राथमिकता दी गई है। इन्हें सीधा बैंकों के माध्यम से मानदेय प्रदान किया जा रहा है।

विद्यार्थियों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध करवाने के लिए 10445 बावर्चियों एवं सहायकों को प्रशिक्षण दिया गया है जिनका वर्ष में दो बार स्वास्थ्य परीक्षण भी करवाया जाता है। बावर्ची एवं सहायकों में 80 प्रतिशत संख्या महिलाओं की है। प्रारम्भिक शिक्षा निदेशालय में एक टोल-फ्री टेलीफोन नम्बर-18001808007 की सुविधा भी उपलब्ध करवाई गई है, ताकि कोई भी व्यक्ति शिकायत कर सके। किसी भी प्रकार की शिकायत प्राप्त होने पर विभाग द्वारा कड़ा संज्ञान लिया जाता है।

भारतीय खाद्य निगम के माध्यम से विद्यालयों को नियमित तौर पर पर्याप्त खाद्यान्न की आपूर्ति सुनिश्चित बनाई जा रही है। विद्यालयों को एक महीने का अग्रिम खाद्यान्न खरीदने के लिए अधिकृत किया गया है ताकि खाद्यान्नों की कमी न हो।

भोजन पकाने की सामग्री, खाद्यान्न, दालों, सब्जियों, खाद्य तेल आदि खरीदने का कार्य स्कूल प्रबंधन समितियों के माध्यम से किया जा रहा है, ताकि अध्यापक पूरी तरह विद्यार्थियों को पढ़ाने पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें।

खाना पकाने के कार्य में पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए धुआंरहित चूल्हों का इस्तेमाल किया जा रहा है और वर्तमान में 84 स्कूलों में एलपीजी कनैक्शन की सुविधा उपलब्ध है। विद्यालय स्तर पर भी सुझाव पट्टिकाएं स्थापित की गई हैं, जहां कोई भी व्यक्ति अपनी शिकायत अथवा सुझाव दे सकता है। इसके अलावा विभिन्न संगठनों, बैंकों और गैर-सरकारी संस्थाओं आदि के माध्यम से स्कूलों में चरणबद्ध तरीके से जल शोधक (वाटर प्योरीफायर) उपलब्ध करवाए जा रहे हैं।

इस योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के सहयोग से विद्यार्थियों का नियमित स्वास्थ्य परीक्षण, आवश्यक पोषक तत्त्व, पेट के कीड़े मारने की दवाएं, विटामिन ए, आयरन व फोलिक एसिड उपलब्ध करवाई जा रही हैं। विद्यार्थियों की आंखों की जांच भी नियमित तौर पर की जाती है और पिछले वित्त वर्ष के दौरान 2064 विद्यार्थियों को नज़र के चश्में प्रदान किए गए।

योजना पर इस वित्त वर्ष में खर्च होंगे 100 करोड़ रुपये

प्रारम्भिक शिक्षा विभाग के निदेशक के अनुसार इस योजना के अंतर्गत इस वित्त वर्ष के दौरान लगभग 100 करोड़ रुपये खर्च किए जाएंगे, जिसमें से 80 प्रतिशत धनराशि भारत सरकार उपलब्ध करवाएगी। धन आबंटन में अनावश्यक विलम्ब दूर करने और पूर्ण पारदर्शिता बनाए रखने के उद्देश्य से धनराशि ई-ट्रांसफर के माध्यम से उपलब्ध करवाई जा रही है।

गुजराती कहानी

चकित : व्यथित : भयभीत

मूल लेखक : **सरोज पाठक** अनु. : **जेठमल ह. मारू**

दसवीं क्लास में उसको प्रमोट किया गया है। इसको पहले से ही पता था कि 'सम्स' बहुत कठिन हैं। मम्मी की पहचान के मास्टर के घर उसकी ट्यूशन भी रखी की गई थी। यह मास्टर 'सम्स' सिखाते-सिखाते उसके स्कर्ट के बारे में, कमीज के बारे में, मम्मी की लिपस्टिक के विषय में, अपनी पत्नी के विषय में, सत्तरह से सैंतीस नम्बर किस तरह कर दिए उस विषय में, कौन-सी फिल्में किसलिए अच्छी कही जाती हैं, उस विषय में इतनी सारी बातें करना कि इतने बाकी कम बचे समय में बैठकर अपने 'सम्स' बहुत सही होने की आशा ही उसे न थी। 'ए' श्रेणी वाली फिल्म अब बंसी यदि साड़ी पहने तो चकमा देकर देख सकती है, ऐसा उसका फिगर है, यह भी मास्टर ने उससे कहा था। शारदा के वहां उसकी मम्मी हमेशा हाजिर रहती, कुछ न कुछ काम करती रहती मास्टर की उपस्थिति में। पर बंसी तो खुद मास्टर के वहां पढ़ने जाए ऐसी मम्मी ने ही व्यवस्था की थी। छोटी गुड्डो को बड़ी बहन के रूप में संभालने के बहाने कई बार वह उसको ले जाती। पर पांच-छह वर्ष की गुड्डो अब भी चाहे जब मुंह फाड़ कर लंबे स्वर में जोर से रोने लगे ऐसी नादान ही थी। उसको संभालने के लिए एक पंद्रह वर्ष का पहाड़ी नौकर पहले रखा था। नई मम्मी के आने से पहले बंसी और गुड्डो यों तो अंबाला में ताउजी के वहीं पर ही रहती थीं। बंसी नौ वर्ष की थी तब सगी मां के साथ में ताउजी के यहां वह रहती थी। गुड्डो तो तब बिलकुल छोटी। मां की आंखें बार-बार दुखनी आतीं तब रोई हुई हों ऐसी, सूजी हुई और लाल लगतीं। डैडी गुस्सा करते तब भी मां आंखें दुखती हैं ऐसा ही ताउजी को कहती। ताउजी बचपन से इस तरह ही बंसी को समझाते कि डैडी तो अच्छे ही होते हैं। उसकी मां मुंह मचकोड़ती। डैडी बंसी-गुड्डो को "मेरे बच्चे मुझे सौंप दो" ऐसा कहकर दिल्ली ले जाने का ऊंचे स्वर में ताउजी को कह देते, तब मां की आंखें अधिक दुखने लगतीं, ऐसी बंसी की समझ में आता था।

मां बहुत बीमार पड़ गई फिर तो, उसकी आंखें दुखती थीं उसी तरह ही वह रोती थी और कहती, "मेरे बच्चे बेचारे!" ताउजी बंसी के सिर पर हाथ रखते और मां को आश्वासन देते, "यह लड़की बहुत सयानी होने वाली है।" और मां की ऐसी चिंता के बाद बंसी अकेली-अकेली खूब समझदार बनने का निश्चय किया करती। मां को हिस्टीरिया का दौरा आ जाता तो अब वह घबराती नहीं थी। गुड्डो को अकेली को डैडी ले गए तब भी उसको मां की बीमारी में अंबाला में ही रहना है, ऐसा ताउजी ने उसको समझाया था। उसने मन में बड़े आदमी की तरह विचारा कि उसकी मां बहुत जिद्दी थी। डैडी के पास से गुड्डो को वापस बुलवाने के लिए वह खूब रोती और छटपटाती थी। डैडी बहुत अच्छे होने चाहिए। मां की बीमारी जानकर वे गुड्डो को वापस छोड़ गए थे। गुड्डो वापस आई तब वह बहुत सूख गई थी।

बड़ी बहन की हृदयपूर्वक संभाल से बंसी ने गुड्डो को मल-मल कर नहलाया, खाना खिलाकर अपनी ऊष्मा में सुलाया और डैडी के घर की सारी बातें पूछीं। गुड्डो ने आंखें चौड़ी कर करके डैडी के घर की बहुत सारी शिकायतें की थीं। अंडे और सोडे की बोतल दे जाता होटल का केशव बहुत गंदा था। डैडी गुड्डो को ऐसे गंदे छोकरे के साथ साइकिल पर घूमने भेज देते। दोपहर में बाल मंदिर की 'टीचर' स्कूल ले जाती और छोड़ जाती। शाम को वह वापस एक बार आ डैडी के साथ में बैठकर हंसकर कॉफी पीती-शर्बत पीती। टीचर तरह-तरह के चित्रों वाली किताबें लाकर उसको बरामदे में बैठा देती और कभी अपने घर ले जाती और वहां उसको अकेली अनजाने पड़ोसी के घर छोड़ आती। उस समय बहुत सारी चॉकलेटें और बिस्कुट्स टीचर देती, चुम्मी लेती तो भी गुड्डो रोया करती।

गुड्डो रात को डैडी के पास सोने की जिद्द करती। डैडी के शर्बत और सोडे की गिलास को वह टगर-टगर देखती, इस कारण डैडी रात को उसे अपने कमरे में आने देते नहीं, दरवाजा बंद करके शर्बत पी जाते वह सुनती। ऑफिस से जल्दी घर आ जाते तब,



कभी-कभी उस पहाड़ी छोकरे के साथ में गुड्डो को बाग में घूमने भेज देते।

गुड्डो रोज-रोज इस तरह बातें करती। बंसी खूब समझदार होकर ये शिकायतें मां न सुने, इसकी सावधानी रखती। ऐसा मां सुने तो डैडी पर गुस्सा करे, रोए और फिर ठीक कब हो? मां स्वस्थ हो जाएगी तब उसे अंबाला में अधिक समय नहीं रहने का और दिल्ली में डैडी के पास जाने का, डैडी के साथ लड़ाई-झगड़ा नहीं करने का, ताउजी की तरह ही वह भी मां को समझाएगी।

उसे लगता कि वह बहुत बड़ी हो गई थी। मां की तरह वह भी ताउजी के यहां रहकर सिलाई की पैरों की मशीन पर बैठकर साफ बखिया लगा सकती थी। पतली सलाई पर स्वेटर गूंथ सकती थी। चुन्नियों पर सितारे टांक सकती थी। सलवारों के पोंहचों पर बारीक कढ़ाई-काम भी वह सफाई से कर सकती थी। ताउजी बंसी के सिर पर हाथ रखकर 'खूब सयानी' हो गई है तभी तो कहते। शादी वाले घरों में टप्पे गाए जाते सुनकर वह भी हर्षित हो, अकेली-अकेली काम करते हुए जी चाहे वह गीत गुनगुनाती, तब उसको न समझ में आए वैसा आनंद हो आता :

'साडे चन दा विछोवा पाया,
सारा जग बैर पेय गया...'

आनंद बहुत समय रहता नहीं। ताउजी 'रबदी माया' विश्वास के साथ बोले थे। मां अधिक दवा खा गई थी। डॉक्टरों ने यही कहा था। डैडी दिल्ली वाले घर ही थे। फिर तो पुलिस आई थी। ताउजी ने डैडी का पक्ष लिया था, गुस्सा नहीं किया। कुछ दिन सारे ही ताउजी के पास में अंबाला में रहे। डैडी की छुट्टियां पूरी हो गईं। बंसी बड़ी हो गई थी, डैडी अकेले रहें, उतने दिन के लिए ही बंसी को दिल्ली डैडी की संभाल रखने के लिए जाना था। फिर गुड्डो को अकेली को ताउजी के पास में कैसे रखे? उसको कौन संभाले? गुड्डो दिल्ली जाने से नाराज थी। वहां उसको लड़कों का डर लगता था। और तो और बाल मंदिर की टीचर उसको चाहे वैसी अनजानी पड़ोसिन के वहां तीन-चार घंटे के लिए छोड़ आती। रोती गुड्डो अपनी फरियाद चार अंगुलियों के निशान वाले गाल डैडी की छाती पर घिसते हुए करती। डैडी उसे मिठाई देते, उसको अच्छे लगते 'पेड़े' ला देते। खिलौने देते, पर अपने पास में सुलाते नहीं। दिल्ली डैडी के पास न जाने के लिए गुड्डो की ये सारी फरियादें थीं। पर बंसी साथ में हो तो फिर कोई अड़चन ही कहां आ सकती? उस समय बंसी गुड्डो को फुसलाकर हां भरवा सकती।

अब कुछ बुरा होने का न था। सब कुछ ही अच्छा हो जाने का है। बंसी बड़ी हो गई थी। सब कहते इससे वह बहुत समझदार बनती जाती थी। डैडी बहुत अच्छे थे इस तरह वह मन ही मन कहा करती थी क्योंकि उसकी मां और ताउजी दोनों में से एक की बात सच्ची मानने की थी। ताउजी की बात उसने पसंद की। मां तो मर गई थी, अब!

गुड्डो दिल्ली आकर तरह-तरह के प्रश्न पूछती :

'मां कहां है?'

'मां परदेश गई है', ऐसा कहने का विचार बंसी ने बमुश्किल टाला। उसको ऐसा समझ में आ गया था कि बेचारे बच्चों को झूठ या गलत कहें तो वे घबरा जाते हैं।

'गुड्डो, हमारी मां मर गई है।'

'मर गई यानी?'

'यानी हमारी तरह हिलती चलती बोलती नहीं। मोतीराम चाचा को लकड़ियों पर बांधकर सारे नदी के किनारे पर ले गए थे और उस तरह मर जाए तब सारे वहां ले जाकर जला डालते हैं।' गुड्डो कई देर कुछ बोली नहीं। बंसी से लिपट गई। बंसी ने उसके सिर पर हाथ फेरा, और हंसकर आश्वासन दिया :

'पर हमारे घर तो नई मां आने वाली है।'

गुड्डो तालियां बजाने लगी :

'कब आएगी? नई मां कहां से आती है?'

बंसी की अंगुलियां कांपी गईं। उसने कहा :

'तुम्हारे बाल मंदिर की टीचर जैसी नई मां आए तो?'

गुड्डो निराश हो गई। बंसी ने उसको समझाया :

'वह टीचर रहती है तब तक पढ़ाएगी, स्कूल में जाएगी, अपने घर में रहेगी, अलग पड़ोस में छोड़कर आएगी, पर बाद में हमारी मम्मी हो जाएगी फिर तो हमारे घर में ही रहेगी, यहीं पर ही खाना खाएगी और यहीं पर ही सो जाएगी। डैडी के साथ में हम सबकी कनॉट सर्कस में खरीदने-घूमने जाएंगे, राजेंद्र नगर वाली कैलास आंटी के वहां ताश खेलने जाएंगे, जंतर मंतर रोड की सीढ़ियां चढ़ेंगे, बिरला मंदिर के गार्डन में, इंडिया गेट, ओखला...सब...'

'टीचर किस तरह मम्मी हो जाती है?'

गुड्डो के प्रश्न का उत्तर, मम्मी होकर घूमती-फिरती इस स्त्री को बताकर रोज बंसी उसको समझाने का प्रयास करती। दिल्ली की

स्कूल के अनजाने वातावरण में किसी को पता न था। अंबाला की तरह, कि बंसी की सगी मां त्यक्ता थी और फिर मर गई। यहां कोई कान में फुसफुस गुप्त बात करके बंसी की ओर अंगुली उठाता नहीं कि उसकी मां ने आत्महत्या की थी।

सौतेली मां कोई बुरी हो ही ऐसा कुछ नहीं, उसने सोचा। अंबाला में नौवीं क्लास की सहेलियां कैसी बातें करतीं? यहां बंसी के अब मां नहीं, मम्मी थी। मम्मी अच्छे तरीके से साड़ी पनती। स्कूल में कभी-कभार आती तब गणित शिक्षक और प्रिंसीपल के साथ में हंसकर बातें करती। उस समय गुड्डो और बंसी की 'प्रोग्रेस' के बारे में बातें करके उनको लाड लड़ाती। प्रिंसीपल गुड्डो के शरीर पर हाथ फेरते वह बंसी देखती, उसकी हथेली मसलते वह भी देखती और एकदम किसी बहाने से बंसी गुड्डो के पास सरक जा 'नमस्ते' कहकर, मम्मी को वहां अकेली छोड़, गुड्डो का हाथ हाथ में रक्षक की-सी सावधानी से पकड़ लेती।

मम्मी बहुत सुंदर थी। बंसी उसको देखती रहती। मम्मी को बाहर बहुत काम रहता। डैडी को ऑफिस की तरफ से एक जीप मिली हुई थी। जीप खराब होती तो डैडी कार भी लाते। मम्मी बहुत होशियार थी। उसने ड्राइविंग भी सीखना शुरू किया था। मलिक अंकल रोज आते। मथुरा रोड पर, कुतुब रोड पर मम्मी ड्राइविंग सीखने जाती। डैडी ऑफिस से घर आते तब बंसी की ओर बेधड़क नजर से देखकर मम्मी कहती :

'आज बंसी को ड्राइविंग सीखने जाते समय ले गई थी।' कई बार अकेली गुड्डो को ही मम्मी ले जाती। कभी दोनों बहनों को साथ में ले जाया जाता। थर्मस, नाश्ता, नेपकिन, सोडे की बोतल, आईसक्रीम पिकनिक की तरह भी कई बार मम्मी ड्राइविंग सीखने जाती। डैडी कभी बंसी को अकेली होती तब पूछते :

'तू गई थी आज मम्मी के साथ?'

बंसी घबरा जाती। वह ठिठक जाती। उसके मुंह से कुछ के बदले कुछ निकल जाएगा तो घर में कुछ हो जाएगी ऐसा उसकी समझ में आ गया था। सगी मां मर जाने के बाद फिर वापस... यानी बंसी को क्या बोलना चाहिए यह समझ में आता न था। उसको बोलना पड़ता :

'स्कूल में...' चाहे सो वह कुछ-कोई बहाना : गुड्डो के पेट में दर्द होने का, ट्यूशन में कुछ देर हो गई या ऐसा कुछ। संक्षेप में बंसी मम्मी के साथ ड्राइविंग में नहीं जा सकती इसमें मम्मी का नहीं, पर उसका खुद का कसूर था ऐसा कुछ डैडी को कहने-समझाने में बंसी लग जाती। लगता कि सब कुछ ही संभालने की जिम्मेदारी उस अकेली के ऊपर है। स्कूल में भी...

'रश्मि पांचवे पीरियड में उपस्थित नहीं थी न?' क्लास टीचर चिल्लाकर दो-तीन लड़कियों में एक बंसी को भी पूछते। कोई लड़की 'पता नहीं।' कोई 'हां' कहती कोई 'नहीं' कहती। बंसी नीचे देखने लगती। कोई व्यंग्य में कहती, 'इस बेचारी को पांचवें पीरियड ही का पता ही नहीं हो...' सब हंस पड़तीं। बंसी भी फीका हंसती। सभी की तरह इसको भी पता तो है ही कि रश्मि किसी कारण से अजमल खां बाग में से भरी दुपहरी गुजरती है। आईसफ्रूट लेने, शहतूत लेने, गोलगप्पे या चाट खाने उस समय वह अकेली नहीं होती। छप्पर वाले कुएं के बस-स्टैंड या देवनगर के बस-स्टैण्ड पर से उसको संग-साथ मिलता या अलगाव होता। पर बंसी सबकी तरह आगे सोचती ही नहीं...

अब सब कुछ एकदम ठीक हो गया था इस तरह गुड्डो को समझाती। उसकी नई मां से कितने सारे लोग मिलने आते हैं? घर में कोई रोता नहीं। डैडी सबके साथ हंसकर बातें करते हैं। मम्मी के साथ घूमने जाते हैं। मम्मी को जो-जो कुछ चाहिए वह डैडी तुरंत ला देते हैं। मम्मी हमेशा हंसती रहती थी। डैडी गुड्डो-बंसी को साथ ले जाने,न ले जाने के लिए भी मम्मी का ही कहा मानते। मम्मी बाहर से देर से आती तो भी डैडी गुस्सा होकर लड़ते-झगड़ते नहीं, केवल बंसी को पूछ लेते। गुड्डो को कोई पीटता नहीं। बंसी को कोई दुःख सताता नहीं। बंसी को बहुत सुंदर कपड़े मम्मी पहनाती। सब उसको 'स्वीट' कहते। मम्मी के जाली वाले दरवाजे के पास से नीचे देखती बंसी गुजर जाती। कभी ओरेंज सक्वेश के गिलास ट्रे में सजाए जाते तब मम्मी उसको भी मेहमानों के समक्ष बुलाती। सब उसको प्यार करते। शरीर और बालों पर हाथ फेरकर 'अच्छा फिगर है', यों भी कहते। 'होनहार लक्की है- उसके हाथ, पीठ, कमर भी थपथपाए जाते।

बंसी अपने व्यवहार के विषय में बहुत विचार करती। यह अकारण ही मम्मी को नाराज कर बैठती ऐसा इसको लगता। वह ट्यूशन पर पढ़ने न गई हो इस तरह मम्मी घर आने पर देखती, तो तुरंत नाराज होती। चार से पांच उसको जाना ही पड़ता। ट्यूशन के मास्टर का उसको बहुत ही डर लगता। इसी कारण एक बार किसी बहाने से वह घर जल्दी आ गई थी। घर के ताला न था। दरवाजे पर झीना परदा लटकता था। दरवाजा बंद था। बंसी को न जाने मन में कैसा हो गया। दरवाजा थपथपाए बगैर वह एकदम वापस मुड़ गई। बंसी का फिगर स्मार्ट होता जा रहा है इस तरह सभी लोग कहते। बंसी घबराती। कमीज कमर-छाती पर तंग होता जाता था। स्कूल में भी लड़कियां विचित्र नजर से उसको देखती हों,ऐसा उसको लगता।

एक बार उसको कुछ हो गया। वह बहुत घबरा गई थी। बर्तन मांजने आने वाली बाई ने उसको कपड़ा लगाना सिखाया। वह तीनों ही दिन खूब रोई थी। पेट या सिर दुखता है डैडी ऐसा समझे थे। मम्मी ने जाना तब मुस्कुरा कर होठों में हंसी थी। लक्खी, कहती, इसमें रोने जैसा कुछ नहीं, यह बड़ी हो गई ऐसा कहा जाता है। गुड्डो भी रोने का कारण पूछती उसको पर वह क्या कहे?

फिर तो ऐसी दशा में जल्दी घर आ जाती और घर के बंद दरवाजे पर ताला होता तो चाबी लेने इंद्रजीत अंकल के वहां जाना

ताऊजी को वह चिट्ठी लिखती उसे मम्मी पढ़ती और खुद ही डाक में डालती थी। बंसी बहुत अच्छी लड़की थी। उसकी स्कूल की पुष्पावती पैसे चुराकर इनलैंड लैटर चालू क्लास में ही लिखती और गुरुद्वारा रोड पोस्ट ऑफिस में घर जाते-जाते डाल देती। बंसी और गुड्डो तो स्कूल की बस में ही घर आते। बंसी किस तरह चोरी कर कागज लिख करके पोस्ट करे? गुड्डो को ताउजी के पास जाना न था। बंसी ने याद दिलाया तो उसने भी मनाही की। उसे स्कूल में आनंद आ गया था।

पड़ता। इंद्रजीत बहुत मायालु। ताश की बाजी बंसी को रमवाते, उसको जिता देते। 'तेरी आंटी सब्जी लेने गई है, बैठ न अभी आ जाएगी।' बंसी गुड्डो के बाल मंदिर से आने का समय हो गया है, बता कर भाग जाती। इंद्र अंकल को गाल पर चिकोटी भरने की और गोद में बैठा कर छोटे बच्चे की तरह गुदगुदी करने की आदत थी। बंसी को यह न जाने क्यों अच्छा लगता नहीं वह कोई गुड्डो जैसी नादान न थी कि ऐसा खेल उसको अच्छा लगे। वह बड़ी हो गई है। कई बार लक्खी काम पर नहीं आती तो घर में छिलके वाली मूंग की दाल, सब्जी-चावल, परोंठा सब कुछ ही बना देती। ऊपर वाली आलमारी पर से नींबू का अचार भी बड़े बर्तन में से निकाल देती है। मम्मी शुरुआत में तो बंसी की रसोई के बखान करती। पर बाद में तो ध्यान दिए बगैर, लक्खी आई या नहीं आई, मम्मी रात को देर से आकर खाना खा लेती। डैडी लक्खी पर गुस्सा होते। लक्खी बंसी पर गुस्सा होती। बंसी पर नई जिम्मेदारी आ पड़ी   लक्खी का बचाव करने की।

लक्खी बहुत बार रसोई का दरवाजा बंद रखती। वह अंगीठी पर हवा लगे तो, अथवा पत्थर के कोयले का धुआं ड्राइंग रूम में जाएगा   ऐसे बहाने बनाती। इंद्रजीत अंकल खुद लक्खी के साथ बातों के तड़ाके मारते। पास की कोठीवाला खानसामा हरीमिर्च या धनिया लेने के लिए लक्खी के पास आता और बस-फिर देर हो जाती। लक्खी का बचाव बंसी करती। गुड्डो को पानी पीना हो तो भी वह दरवाजे पर टकोरा लगाने की हिम्मत पर सकती न थी। गली के नल का पानी खेल खिलाते पिला देती।

डैडी खर्च के लिए खूब पैसे देते। तो भी बंसी को दो सवालों का जवाब देते हुए ठिठक जाना पड़ता। 'लक्खी कहां है?' 'मम्मी कब गई-आई?'

बंसी मम्मी से डरती, लक्खी से भी भयभीत रहती, अंडा-ब्रेड दे जाते होटल के छोकरे केशव से भी डरती, ट्यूशन वाले मास्टर से, इंद्रजीत अंकल से और मम्मी के सभी पुरुष मेहमानों से डरती। मम्मी किसी से भी डरती नहीं। मम्मी बहुत होशियार थी। वह मिस्टर मलिक के धौल लगा देती। मेहमानों के साथ में   देर से आती, जाती। डैडी से डरती नहीं।

बंसी को स्कूल में 'सम्स' आते नहीं और वे सहेलियां उसको ठोठा गिनतीं इसकी उसको बहुत शर्म महसूस होती। मम्मी अच्छे कपड़े पहनाकर मेहमानों के पास में 'स्मार्ट बेबी' या 'अच्छे फिगर' के तौर पर हाजिर करती, तब उसका ताउजी के पास में दौड़ जाने का मन होता।

डैडी बहुत अच्छे हैं, मम्मी भी अच्छी है। कुछ बुरा होने का न था। गुड्डो की कोई फरियाद न थी। वह मुंह फाड़ कर चिल्लाती न थी। बेचैनी फकत बंसी को थी। उसे किसको क्या कहना इसकी समझ पड़ती नहीं। उसकी स्कूल की सहेलियों ने उसको बोडिस वह पहनती है या नहीं ऐसा पूछा तब उसको रोमांच हो आया था। लक्खी ने उसको आघात लगे ऐसा कुछ अन्य भी समझाया था। गर्मियों में बारह बजे स्कूल की छुट्टी हो जाती। होटल का लड़का सुबह देर हो जाने से भरी दोपहर ही सोडे की बोतल देने के लिए चक्कर लगाता। बंसी जाली वाला दरवाजा भीतर से बंद होत हुए भी कांपती बैठी रहती।

ताउजी को वह चिट्ठी लिखती उसे मम्मी पढ़ती और खुद ही डाक में डालती थी। बंसी बहुत अच्छी लड़की थी। उसकी स्कूल की पुष्पावती पैसे चुराकर इनलैंड लैटर चालू क्लास में ही लिखती और गुरुद्वारा रोड पोस्ट ऑफिस में घर जाते-जाते डाल देती। बंसी और गुड्डो तो स्कूल की बस में ही घर आते। बंसी किस तरह चोरी कर कागज लिख करके पोस्ट करे? गुड्डो को ताउजी के पास जाना न था। बंसी ने याद दिलाया तो उसने भी मनाही की। उसे स्कूल में आनंद आ गया था।

दूध में बोर्नवीटा डालकर बंसी उसको पिलाती, शाम को बाग में लेकर बंसी की जाती। गुड्डो को अब कोई शिकायत न थी। मम्मी डांटती नहीं, डैडी के बदले बंसी की छाती से लिपटकर उसको सोने को मिलता। अच्छे कपड़े, मुंहमांगी चीज-वस्तु। डैडी-मम्मी का और बंसी का प्यार, मेहमानों के पास से नए खिलौने, मोटर जीप में घूमने का   बस गुड्डो को दिल्ली में अच्छा लगने लगा था। उसका ताउजी के पास जाने का मन होता न था।

बंसी कभी रास्ता पार करती तो एक लड़का साइकिल पर चक्कर लगाता सीटी मारता, गाने गाता। बंसी गुड्डो की अंगुली दांत भींचती पकड़ कर घर आती। 'जल्दी कैसे आई?' डैडी या मम्मी, या लक्खी उसको धमकाते। इस कारण इंद्रजीत अंकल के वहां जाना पड़ता। गली के नल में से गुड्डो को पानी पिलाना पड़ता। बाहर के औसारे पर से सीढ़ियां कुदाने का खेल कराना पड़ता। उस समय उसका पुष्पावती के पास से इनलैंड लैटर लेने

का मन हो आता, पर उसकी हिम्मत साथ देती नहीं। ताउजी को वह पत्र लिखे तो ताउजी खुद आकर ले जाएं। डैडी के पास मम्मी आ गई है और ताउजी अब अकेले हैं इसलिए उसको अब ताउजी के पास रहना चाहिए। खुद को दिल्ली में अच्छा लगता न था, गुड्डो को अच्छा लगता है। यही सीधी सादी बात ही लिखनी है। इसमें गुप्त क्या है? मम्मी जान जाए तो नाराज हो। डैडी? कौन जाने! बंसी ने कॉपी के सादे पन्ने भरे उनमें मम्मी की बात, लड़के की बात, मेहमानों की बात लिखी... ताउजी कुछ नहीं समझते। खुद भी कहां कुछ समझ सकी थी? लिखे हुए पत्र उसने फाड़ डाले। ताउजी बहुत बुड्ढे हो गए।

ताउजी की चिट्ठी आई थी। डैडी तुरंत आठ दिन के लिए वहां गए। बंसी को मन में क्या-क्या हो गया। ऐसा ही हुआ था अंबाला में। और दिल्ली में... डैडी न थे। मम्मी के कमरे में देर रात तक लाइट जलती-बुझती रहती। गुड्डो को छाती से चिपकाकर बंसी कांपती जागती लेटी रहती। डैडी को कागज लिखने का न था, मुंह से कहने का था। पर डैडी ऐसा कुछ नहीं पूछते...ताउजी मर गए थे। अब? अब किसको कहने का?

गुड्डो के बड़ी होने का अब इंतजार करना था। कारण कि... गुड्डो को अब ट्यूशन वाले मास्टर के पास में पढ़ने के लिए भेजना था। फिर? उसकी फ्रॉक तंग होगी। उसको वह कपड़ा लगाना सिखाएगी। उसके भी तीन दिन रोने के होंगे... वह उसको समझाएगी। उसको भी इंद्रजीत अंकल की हरकतें नहीं अच्छी लगीं। अंडा-ब्रेड और सोडे की बोतल दे जाते लड़के के भय की समझ पड़ेगी, शरीर पर हाथ फेर लेते मेहमान अच्छे नहीं लगे।

डैडी को बंसी यह सब कुछ समझाएगी। मम्मी की डैडी के पास से छिपाने जैसी बातें, लक्खी की रसोई के बंद दरवाजे की बातें, डैडी के 'शर्बत' की सच्ची बात, बाल मंदिर की टीचर नई मां कैसे बन जाती है, सगी मां क्यों मर गई, यह सब कुछ वह गुड्डो से कहेगी।

गुड्डो मां और ताउजी की तरह मर न जाए। बस थोड़ी उसके बड़ी होने का ही इंतजार करना है। कुछ बुरा होने का न था। डैडी-मम्मी की तरह गुड्डो उसको छोड़कर अकेली घूमने न जाए, स्कूल की सहेलियों की तरह उसका मजाक नहीं उड़ाए। अभी तो वह छोटी है। इसीलिए मम्मी के कमरे में से लिपस्टिक चुरा लेती है, सेंट वाला रूमाल बस्ते में छिपा देती है, मम्मी के मेहमान की गोद में चढ़कर उनकी मांग के अनुसार उनके गाल पर पप्पी करती है। एक केडबरी के बदले में बहुत सहजता से वह मम्मी का कहा मान जाती है। बाल मंदिर की अंग्रेजी कविता कड़कड़ा कर बोल बताती, मयूरनाच करती, कमर लचकाकर 'ट्विस्ट' के लटके करती, मुंह में डैडी की सिगरेट रख कर अदा करती है बंसी को रोना आता है। पर गुड्डो छोटी है। वह केवल खेल करती है ऐसा ही उसको लगता है। बड़ी होने के बाद उसको भी यह सब कुछ अच्छा नहीं लगे...

गुड्डो बड़ी होगी तब...

गुड्डो बड़ी होगी तब...

बंसी आंखें फाड़कर रात में विचार करती है। गुड्डो बड़ी हो जाए तो अच्छा या न हो तो अच्छा? बंसी को इसकी समझ जो समझने देती है वह उससे सहन होता नहीं। गुड्डो बड़ी होगी तब बंसी इससे भी बड़ी हो गई होगी और तब आज से अधिक सयानी अधिक और अधिक सयानी होते जाना होगा। सयानी होने का अर्थ अब बदलता जाता था और बंसी की कंपकंपी बढ़ जाती थी। गुड्डो को छाती से भींचकर वह बड़बड़ाती 'कुछ बुरा होने का नहीं' और उसकी आंखों में पानी छलक आता। अभी तो जैसे आंखों में पानी की आर्द्रता का यह तो पहला-पहला परिचय ही था... कौन जाने बाद में तो...

अनुवादक का पता :
जेठमल ह. मारू, 2-ए-2 पवनपुरी, बीकानेर, राजस्थान-334003, मो. 0 94608 93974

मूल लेखक का सूचना संपर्क स्थल
श्री रमण पाठक
ए-4 नटराज एपार्टमेंट, पाटीदार जीन, काम्पलेक्स, सरदारबाग
बारडोली, सूरत-394602, मो. 0 9925862606

हिमप्रस्थ में शिमला जिला विशेषांक

'हिमप्रस्थ' मासिक पत्रिका में शीघ्र ही शिमला जिला विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। अंक में विशेष रूप से शिमला जिला का इतिहास, सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक महत्त्व, देव संस्कृति, मेले व त्योहार, लोक साहित्य एवं संस्कृति, पर्यटन, ऐतिहासिक एवं पौराणिक धार्मिक स्थल, विकास तथा शिमला शहर के गौरवशाली 150 वर्ष इत्यादि पर सामग्री प्रकाशित की जाएगी। इस अंक के लिए आपका सहयोग अपेक्षित है। विस्तृत जानकारी के लिए गिरिराज/हिमप्रस्थ कार्यालय में सम्पर्क करें।

- वरिष्ठ सम्पादक

कहानी

कुआं

● डॉ. रामप्रसाद 'अटल'

लक्ष्मी प्रसन्न ट्रवनकोर के प्रसिद्ध खाद्यान्न व्यवसायी रह चुके हैं। यदि उन्हें सत्यनारायण का प्रतीक कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। अब कुछ सीधा, सच्चा और यथार्थ। उन्होंने खाद्यान्न का व्यवसाय इसलिए अपनाया कि और वस्तुएं इतनी आवश्यक नहीं, जितना खाद्यान्न। यदि महंगाई आकाश को छू ले, तब भी मानव एक रोटी तो खाएगा। प्रतिदिन की बिक्री। भंडार नहीं बनाना सड़ने व गलने के लिए। आज भी जो व्यवसायी हैं, उनकी पूरे दिन उठक- बैठक लगी रहती। जो भी बिकता उसमें कुछ अंश लाभ होता ही है और लाभ के लिए ही तो व्यवसाय किया जाता है और प्रत्येक को नौकरी भी कहां मिलती है?

उनके अनुसार लाभ में दो तत्त्व होते हैं, एक तो मनुष्य दिन भर उठक, बैठक करता, वह सेवा का मूल्य है, दूसरा वह धन लगाता है उसका प्रतिफल। यह दोनों मिलाकर लाभ का जन्म होता है। उनकी धर्म की कमाई इतनी हुई कि कभी छल/कपट/अनुचित लाभ का विचार ही नहीं आया। वृद्धावस्था प्राप्त होते-होते एक दिन पुत्र को बुलाकर कहा कि तुम अपनी नोट-बुक ले आओ। पुत्र श्याम नोट बुक ले आया, बैठा और प्रतीक्षा की कि पिता का क्या आदेश है। ग्राहकों से निवृत्त हो लक्ष्मी प्रसन्न ने कहा, देखो मैं बूढ़ा हो गया हूं, अब यह दुकान तुम्हें चलानी होगी। तो मैं तुम्हें जीवन के व्यवसाय के कुछ सिद्धांत लिखाता हूं

"ग्राहक को देवता समझना, क्योंकि उससे तुम्हें भोजन मिलेगा।

यदि वह एक रुपये का सामान लेता है तब उसे 80 या 90 पैसे का माल अवश्य मिले। शेष रहे 20 या 10 पैसे, वह तुम्हारा लाभ है।

कभी कम मत तौलना, धोखा न देना, त्रुटिपूर्ण सामग्री नहीं देना।

संसार में पुण्य की जड़ पाताल में है। कपट से पैदा धन चला जाता है।

कभी कभी हानि भी उठा लेना, परन्तु ग्राहक को अप्रसन्न नहीं करना। यदि तुम इन सिद्धांतों पर चलोगे तब लक्ष्मी तुम्हें कभी छोड़कर नहीं जाएगी। जब खाली बैठना, तब इस नोट बुक को बार-बार पढ़ा करना।"

कल से मैं एक नए कार्य में व्यस्त रहूंगा। मैंने सोचा कि एक कुआं खुदवाना है बीच गांव में। गांव वाले दीन-हीन और बड़े सरल हैं, वे आवश्यकता का जल उतनी दूर नदी से लाते, फिर उसमें फिटकरी, क्लोरीन डाल उसे स्वच्छ एवं शुद्ध करते हैं। इसमें उनका अमूल्य समय नष्ट हो जाता है और कुछ लाभ नहीं कर पाते। कल पंडित राधारमण आ रहे हैं, वे मुहूर्त निकाल पूजन करेंगे और कल ही से काम चालू हो जाएगा।

दूसरे दिन पंडित आए और उन्होंने मुहूर्त निकाल पूजन किया और कुएं की खुदाई चालू हो गई। लक्ष्मी प्रसन्न संध्याकाल तक दुकान देखते और पुत्र को ज्ञान देते और प्रत्येक संध्याकाल बाद कुएं की प्रगति आकर देखते।

एक माह तक यही क्रम रहा और तीस फुट तक गहराई हो गई। पानी भी सोतों से छन-छन निकलने लगा। ग्रामवासी अति सुखी, लक्ष्मी प्रसन्न उससे अधिक प्रसन्न। कुएं से निकली मिट्टी को बड़े गौर से देखते और पता नहीं बाद में क्या चिंतन करने लगते। धीरे-धीरे उनके चेहरे की चमक समाप्त हो गई और विषाद की रेखाएं खिंचने लगी। पुत्र देखता तब बड़ा चिंतित होता। एक दिन उसने पूछ ही लिया कि पिता जी! कुछ दिनों से आपके चेहरे पर विषाद की रेखाएं खिंच गई हैं। क्या ऐसा तो नहीं कि कुएं में कुछ अधिक खर्च हो गया है और धन हानि के कारण आप व्यग्र रहने लगे हैं?

"नहीं बेटे! यह बात नहीं।"

"फिर क्या बात है?" पुत्र ने पूछा।

मैं धन हानि के लिए व्यग्र नहीं हूं। धन हमारा है ही कहां? धन तो सारा जनता का है। हमने आवश्यकता भर खाया, पिया, भोगा कोई कमी नहीं रखी जीवन के साधनों की, फिर भी ढेर का ढेर जमा है। मैंने कुएं की मिट्टी को देखा और मुझे वैराग्य पैदा हो गया। जितना कुआं गहरा हुआ, उसकी मिट्टी निकल कर पर्वत की ऊंचाई सी हो गई। यही हाल मेरी सम्पत्ति का भी है। मेरे पास



ढेर है और जहां से वह आई, वहां खालीपन अवश्य होगा। जब से मैंने यह चिंतन किया, तब से मुझे क्षोभ है कि क्या इतना धन एक अकेले के पास उचित है? शेष चने खा पानी पिएं?

पिता जी! अपनी तो धर्म की कमाई है। न रिश्वत ली,न कर अपवंचन किया, न कोई लूट खसोट की, न किसी से हड़पा। व्यवसाय में अपने को इतना धन मिला है और यह स्वच्छ कमाई है।

श्याम! तुम्हारा कहना एवं सत्य दोनों एक से हैं, परंतु हमारे पास धन दूसरों की अपेक्षा अधिक क्यों है? संसार में यही तो लड़ाई है। एक संपन्न और हज़ार विपन्न। किसी को घी घना, किसी को मुट्ठी भर चना और किसी को वे भी मना। बैंक क्यों लूटे जाते, मंदिरों पर आक्रमण क्यों होते, देवी-देवताओं के आभूषण क्यों चुराए जाते, धनियों के धन पर अभावग्रस्तों की कु-दृष्टि क्यों? उनके अंदर सह-अस्तित्व की भावना नहीं। देश में जनगणना हर दस वर्ष बाद होती है। कभी ऐसा भी सर्वेक्षण हुआ कि कितनों को शाम को भोजन न मिला। सरकारी योजनाओं का लाभ गरीबों को कहां मिलता? तभी तो राष्ट्र के संरक्षण में 90 प्रतिशत लोग पीछे रहते हैं। आर्थिक असमानता सबसे बड़ा विष है, जो देश को विषाक्त बना रहा है। मैंने सोचा है कि अपनी संपत्ति को जनता में बांट दिया जाए। कल गांव में डुग्गी पिटवाओ कि लक्ष्मी प्रसन्न सेठ जनता को संबोधित करना चाहते हैं।

वैसा ही हुआ, श्याम ने आदेश का पालन किया। डुग्गी फिरी गांव में। संध्याकाल ग्रामीण एकत्र हुए। लक्ष्मी प्रसन्न ने एक ऊंचे स्थान पर खड़े हो बोलना आरंभ किया

"मेरे प्यारे ग्राम बंधुओ! मैंने आप सबके कल्याण हेतु कुएं का निर्माण कराया। उसने मुझे वैराग्य का पथ दिखाया। मन में एक लहर आई कि जिस प्रकार कुएं के बाहर मिट्टी का ढेर लग गया और जहां से वह मिट्टी निकली वहां एक बहुत बड़ा गड्ढा हो गया है। यही हाल मेरी संपत्ति का है, जो मेरे पास जमा है, आप सबके पास खालीपन है। अतः मैं कुछ धन आप सबको लौटाना चाहता हूं। क्योंकि वह आप सबके पास से आया है।"

"महानुभाव! मैं ग्राम प्रमुख धीमान बोलता हूं।"

"हम सब कुछ भी आपसे लेना नहीं चाहते। आपने एक संत की भांति व्यवसाय किया है। दाल में नमक की मात्रा के तुल्य ही लाभ कमाया। कई बार बाज़ार ने आकाश को छुआ, परंतु आपने हमसे पुराना भाव लेकर ही वस्तुएं बेची हैं। हां, यदि जो धन हमको लौटाना चाहते हैं, उससे कोई औषधालय या विद्यालय या अनाथालाय बनवा दें तो जन कल्याण से बढ़कर कोई पुण्य या धर्म नहीं है।"

धीमान। हम आपके सुझाव से सहमत हैं और तीनों आलय हम बनवाएंगे। हमें आप सबको सहयोग चाहिए। समय-समय पर हमारे पास आएं, निर्माण कार्य देखें और समय-समय पर सुझाव दें।

"महानुभव! हम सब ऐसा ही करेंगे।" धीमान ने विश्वास दिलाया।

फिर पंडित को बुलाया गया भूमि पूजन की व्यवस्था के लिए। पूजन हुआ और तीनों आलयों का निर्माण आरंभ हो गया। दुकान का सारा भार पुत्र श्याम पर छोड़ दिया गया और स्वयं प्रातः पूजा-पाठ बाद में तीनों निर्माण की गति एवं प्रगति प्रतिदिन देखना आरंभ कर दिया।

किसने उनका नाम लक्ष्मी प्रसन्न रखा। लोग तो वर्षो लक्ष्मी के अनुष्ठान करते, परंतु लक्ष्मी झांकती तक नहीं, उनके यहां और लक्ष्मी प्रसन्न के यहां सदैव लक्ष्मी प्रसन्न रहती है। लोगों ने बड़ा ही चिंतन मनन किया कि ऐसा क्यों है? निष्कर्ष निकला कि सदाशयता, सहअस्तित्व में विश्वास, धर्म परायणता एवं जन कल्याण की हृदय में उत्कृट इच्छा। यह संपन्नता लाते हैं। लूट खसोट, बेइमानी से विपन्नता ही बढ़ती है। भारतीय शास्त्र भी इसी की अनुशंसा करते हैं। हमारे सभी शास्त्रों में सहअस्तित्व का उपदेश है जैसे नियत समय पर तीनों निर्माण संपूर्ण हो गए। प्रश्न हुआ कि तीनों का नामकरण क्या हो? जनमानस ने यही कहा कि तीनों का नाम लक्ष्मी प्रसन्न औषधालय, लक्ष्मी प्रसन्न विद्यालय तथा लक्ष्मी प्रसन्न अनाथालय रखा जाए और यही हुआ सर्वसम्मति से।

ग्राम का मूल्य बढ़ गया। सरकार ने पक्के पहुंच मार्ग बना दिए। प्रकाश की समुचित व्यवस्था हो गई। अब लक्ष्मी प्रसन्न का मन व्यवसास में न लगता। सोचा अब हम तीर्थ यात्रा पर जाएंगे पुत्र श्याम एवं बहू गृहलक्ष्मी रहेगी।

स्वयं व पत्नी नीलिमा दोनों तीर्थ यात्रा को निकल पड़े। प्रथम निकट के रामेश्वरम फिर जगन्नाथपुरी, बद्रीनाथ, केदारनाथ और अंत में द्वारिकानाथ। थोड़े दिन तक पत्र आते रहे। फिर बंद हो गए। कुएं ने तो लक्ष्मी प्रसन्न की काया पलट कर दी और वैराग्य की ओर मुंह मोड़ दिया। जो काम गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी न कर पाए वहीं एक जड़ कुएं ने कर दिया।

हर्षालय पुरानी बस्ती रांझी, जबलपुर, मध्य प्रदेश-482 005

कहानी

अनुत्तरित प्रश्न

● आशा शैली

''अरे अरे, यह क्या हो रहा है?'' कहते हुए रंजना ने झपट कर गैस का स्विच ऑफ किया तो पास ही बैठी तृष्णा ने उसे एक नज़र देखा और हाथ से अपने पास बैठने का संकेत करके तखत पर एक ओर को सरक गई।

तृष्णा ने बहुत सारे मकान बदलने के बाद इस मकान में स्वयं को स्थिर किया था। यह मकान उसे उसी समय पसंद आ गया था जब यह बन रहा था। इसकी खास वजह यही बड़ा सा रसोईघर था जहाँ वह एक तखत डालकर आराम से बैठकर रसोई के सारे काम निपटा सकती थी और कोई मेहमान आ जाए तो उसे कमरे में सुलाकर तृष्णा को खुद को सोने के लिए तखत पर आराम से जगह मिल सकती थी। इस से बड़े मकान का किराया देना उसके बस में जो नहीं था।

इस समय वह रसोई में पड़े इसी तखत पर खुली खिड़की के सामने बैठी न जाने किन खयालों में खोई हुई थी कि गैस पर रखा पानी उबल-उबल कर सूख चुका था, बस थोड़ा सा पानी तली में बच गया था। अगर रंजना समय पर आकर गैस बंद नहीं करती तो शायद भगौना भी जल जाता।

''क्या हो रहा है तृष्णा जी, बहुत परेशान लग रही हो?'' रंजना उसके पास बैठते हुए बोली।

''नहीं, परेशान तो नहीं हूँ।''

''तो फिर?''

''रंजना, समझ में नहीं आ रहा क्या कहूँ। सच पूछो तो मैं परेशान तो नहीं हूँ, पर एक प्रश्न तो है ही, जिसका उत्तर नहीं मिल रहा।'' तृष्णा ने बिसूरते हुए कहा।

''क्या हो गया तृष्णा? ऐसा कौन सा भयंकर प्रश्न है जो तुम्हें इतना विचलित कर गया कि पास ही रखे गैस पर उबलता पानी भी तुम्हें दिखाई नहीं दिया?''

''कुछ तो है ही परन्तु तुम्हें तो तब बताऊँ जब मैं स्वयं स्पष्ट हो सकूँ कि आखिर मैं कहाँ उलझी हूँ?''

''चलो, जब समझ में आए तो बता देना।''

''हूँ! खैर, कहो इस समय कैसे आना हुआ?''

''अरे, मैं तो इधर से काम से जा रही थी तो सोचा अपनी प्रिय मित्र श्रीमती तृष्णा खन्ना से मिलती जाऊँ। बहुत दिन हो गए थे तुम्हें देखे हुए सो चली आई। बस्स।''

''अच्छा किया, चलो चाय बनाती हूँ।''

''हाँ बनाओ, कम से कम इस समय तो मैं उसे जलने से बचा ही लूँगी।'' और दोनों सहेलियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

चाय पीते समय रंजना ने फिर उसे छेड़ दिया, ''तिशि, तुम कभी बदलोगी नहीं न? जैसे थी, वैसे ही हो, ज़रा बराबर भी फर्क नहीं आया उम्र के साथ।''

''इस असीरी में क्या ख़ाक मुसलमां होंगे?'' तृष्णा ने टुकड़ा लगाया तो दोनों फिर से हँस पड़ीं। उसी समय पोस्टमैन कुछ डाक ले आया और इन का बातों का सिलसिला टूट गया।

''अच्छा भई अब तुम डाक देखो, फिर मिलते हैं।'' कह कर रंजना बाहर निकल गई और तृष्णा डाक देखने लगी। डाक में एक पत्र सरिता का भी था। हाँ! वह सरिता ही थी जिसे लेकर तृष्णा कई दिनों से उलझी हुई थी, क्यों उलझ जाती थी वह सरिता को लेकर? जबकि उसे पता था कि सरिता उसे बेहद चाहती थी और लगभग हर दस-पंद्रह दिनों में एक पत्र तो उसका ज़रूर ही आ जाता था। वह सरिता को उत्तर भी उसी त्वरा के साथ देती रही है, जबकि वह जानती है कि यह मात्र औपचारिकता का निर्वाह कर रही है। आज का यह पत्र भी उसी सिलसिले की एक कड़ी था, सरिता ने लिखा था, ''माँ, कभी इधर भी आ जाओ भूले भटके।''

सरिता को लेकर उसकी परेशानी का कारण एक जमे-मंजे लेखक कन्हैया जी थे, जो अपने हँसमुख स्वभाव के कारण लेखकवर्ग में जितने लोकप्रिय थे उतने ही उनके किस्से-कहानियाँ भी थीं। सरिता से तृष्णा का परिचय भी मात्र एक संयोग ही था। जिस दिन उन दोनों की पहली भेंट हुई, उस दिन आकाशवाणी में एक नाटक



का पूर्वाभ्यास चल रहा था।

सरिता शिमला से दूर एक छोटे से गाँव से आई थी। चन्दन शर्मा, इस नाटक के लेखक राकेश वर्मा के मित्र थे। सरिता अपने मामा चन्दन के साथ पूर्वाभ्यास देखने आई हुई थी। यहीं पर चन्दन शर्मा ने तृष्णा का परिचय अपने मित्र राकेश और उसकी भान्जी सरिता से करवाया था। नाटक में तृष्णा की भूमिका तो सौतेली माँ की थी, लेकिन एक सहृदय सौतेली माँ की भूमिका! जिसे पति के पहले बच्चे बहुत परेशान करते थे। सरिता बड़े ध्यान से इस पूरे पूर्वाभ्यास में खोई रही। पूर्वाभ्यास के बाद जब परस्पर परिचय का दौर शुरू हुआ तो सरिता तुरन्त बोल उठी, ''मेरी माँ तो ऐसी ही होनी चाहिए, लेकिन है ही तो नहीं। आप को माँ बोलूँ क्या मैं?''

तृष्णा ने हँसते हुए उसकी पीठ थपथपा दी और बात समाप्त हो गई। सरिता जब तक शिमला रही लगातार पूर्वाभ्यास में आती रही। वापस जाने से पहले उसने तृष्णा का पता भी ले लिया और बराबर पत्र व्यवहार करती रही। सरिता जानती थी कि तृष्णा के कोई संतान नहीं है। शायद वह उसी खाई को भरना भी चाहती थी, किन्तु जब भी सरिता का पत्र आता न जाने क्यों वह और अधिक उलझ जाती। सरिता ने अपने पत्रों में तृष्णा को बताया था कि वह लेखन के क्षेत्र में पाँव जमाना चाहती थी। उसके लिए तृष्णा ने अक्सर उसे बहुत से गुर भी बताए और उसका मार्ग दर्शन भी किया। सरिता का लेखन साधारण ही था फिर भी आज वह अपने क्षेत्र की सफल लेखिका हो गई थी। अक्सर ही कहीं न कहीं उसके लेख-कहानियाँ अथवा कविताएँ प्रकाशित होती रहतीं।

सरिता का दमकता गौरवर्ण और बड़ी-बड़ी मोहक आँखें किसी को भी आकर्षित कर सकती थीं। वह बहुत जल्दी ही दूसरों से घुल-मिल जाती। उसका परिचय क्षेत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। अक्सर ही वह तृष्णा को अपने परिचय के लोगों के बारे में विस्तार से बताती।

लेखन और कला का तो चोली-दामन का साथ होता है। कला के क्षेत्र में होने के कारण तृष्णा शिमला और आस-पास के लेखकों में से बहुत से लोगों को जानती थी और जानती थी कि सरिता के इर्द-गिर्द जो लोग मण्डरा रहे हैं उनमें से अधिकतर भंवरे ही हैं, फिर भी वह उसे यह बता नहीं सकती थी। बस एक-दो बार ही उसने कुछ कहने की कोशिश की थी लेकिन सरिता ने उसकी बात को सुना-अनसुना कर दिया। उसे लगा हो सकता है कि सरिता भी उसी सुगम मार्ग की तलाश में हो जिस पर चलकर शीघ्र ही शिखर छुआ जा सके, किन्तु यह मार्ग कितना घातक होता है, यह तृष्णा अपने अनुभव से जान चुकी थी। वयस की परिपक्वता ने उसे इतना तो सिखा ही दिया था।

फिर एक दिन सरिता ने कन्हैया जी का सम्मानपूर्वक नाम लिया और उनसे अपनी घनिष्ठता की बात कही, तृष्णा कन्हैया को अच्छी तरह जानती थी और वह इस बात को भी जानती थी कि कन्हैया से टक्कर लेने का मतलब है बदनामी मोल लेना। यही कारण था कि उससे एक निश्चित दूरी के उसके स्वयं के सम्पर्क भी थे। वह जानती थी कि ऐसे लोगों से न दोस्ती अच्छी, न दुश्मनी। इसीलिए वह नहीं चाहती थी कि सरिता कन्हैया से सम्पर्क बढ़ाए, पर वह उसे कुछ कह भी नहीं पाई।

उसे डर था कि यदि सरिता के कन्हैया से सम्पर्क घनिष्ठ हुए, या लेखन-जगत में उसकी सफल घुसपैठ के पीछे कन्हैया का हाथ हो और कन्हैया को पता चल जाए कि तृष्णा ही सरिता को उससे दूर रहने के लिए कहती है, तो यह बात स्वयं तृष्णा के लिए घातक हो सकती है। यही सोचकर वह चुप लगा गई, फिर भी सरिता के लिए उसके मन में एक भय तो था ही। सरिता का अपना परिवार था, बच्चे थे, पति और सास-ससुर भी थे। तृष्णा नहीं चाहती थी कि कन्हैया के कारण सरिता की गृहस्थी चौपट हो जाए, सम्भवतया यही उसकी उलझन का कारण था। पर वह आखिर ऐसा क्यों चाहती थी? क्या लेना-देना था उसका सरिता से? वह लगती क्या थी उसकी? क्या माँ कह देने से ही कोई स्त्री किसी की माँ हो जाती है?

और फिर एक दिन वही हुआ, जिसका उसे डर था। उस दिन सरिता अचानक ही उसे मिलने शिमला आ गई, ''प्रणाम माँ।'' सरिता ने उसके पाँव छुए तो वह आशीर्वाद देते हुए बोल उठी, ''तुम! अचानक?''

''हाँ माँ! वह दरअसल कन्हैया जी ने मुझे आकाशवाणी में कार्यक्रम दिलवा दिया है। कल मेरी रिकार्डिंग है।''

''चलो, ठीक है पर तुम्हारा सामान कहाँ है?'' स्वाभाविक था कि वह तृष्णा के पास ही रुकेगी, क्योंकि उसके मामा चन्दन का तो स्थानान्तरण हमीरपुर के लिए हो चुका था।

''वह तो लेखक आवास में है, रात को रिहर्सल भी तो करनी है न। पहला प्रोग्राम है, इसलिए।''

''और शायद रिहर्सल कन्हैया जी कराएँगे?''

दूसरे दिन सरिता उससे मिलने तो नहीं आई, परन्तु उसने आकाशवाणी भवन से ही उसे फोन किया, वह बहुत प्रसन्न लग रही थी। कहीं उसके स्वर में म्लानता नहीं थी। जब तृष्णा ने उससे पूछा कि वह मिलने क्यों नहीं आई तो पीछे से उसने कन्हैया को कहते सुना, ''बाप रे, कहीं चली मत जाना। वह सब समझ जाएगी। पक्की घाघ है।'' और सरिता वहीं से वापस चली गई वही अनुत्तरित प्रश्न छोड़कर, आखिर क्या चाहती है तृष्णा? तृष्णा ने सिर को झटका दिया, 'सरिता जिस भी सीढ़ी का प्रयोग करे, उसे क्या? वह कौन होती है उसे कुछ कहने वाली या उसका भला-बुरा सोचने वाली?'

''हाँ, माँ। वह बहुत अच्छे हैं।''

''हूँ! जिसका डर था वही हुआ...'' वह बुदबुदाई।

''क्या माँ?''

''नहीं, कुछ नहीं, पर तुम घर जाकर यह मत कहना कि तुम लेखक आवास में रुकी थीं। यह तुम्हारे हित में नहीं होगा। हाँ! घर वापस जाने से पहले मुझसे मिल जरूर लेना।''

दूसरे दिन सरिता उससे मिलने तो नहीं आई, परन्तु उसने आकाशवाणी भवन से ही उसे फोन किया, वह बहुत प्रसन्न लग रही थी। कहीं उसके स्वर में म्लानता नहीं थी। जब तृष्णा ने उससे पूछा कि वह मिलने क्यों नहीं आई तो पीछे से उसने कन्हैया को कहते सुना, ''बाप रे, कहीं चली मत जाना। वह सब समझ जाएगी। पक्की घाघ है।'' और सरिता वहीं से वापस चली गई वही अनुत्तरित प्रश्न छोड़कर, आखिर क्या चाहती है तृष्णा? तृष्णा ने सिर को झटका दिया, 'सरिता जिस भी सीढ़ी का प्रयोग करे, उसे क्या? वह कौन होती है उसे कुछ कहने वाली या उसका भला-बुरा सोचने वाली?'

अचानक ही तृष्णा को लगा, कहीं उसे ईर्ष्या तो नहीं हो रही? वह झटके से उठकर खड़ी हो गई। घर को ताला लगाया और चल पड़ी रंजना के घर की ओर। उसे यूँ अचानक अपने सामने देखकर रंजना ने प्रश्नवाचक निगाहों से उसे देखा,

''इस तरह अचानक? क्या हुआ?''

''रंजना, मैंने तुमसे सरिता के बारे में बात की थी न?''

''हाँ! क्यों क्या हुआ, सरिता को?''

''नहीं, हुआ तो कुछ नहीं। पर मुझे लगता है, मुझे मेरी परेशानी का कारण समझ में आ गया है।''

''तो बता दीजिए न तृष्णा मैडम। हम भी तो सुने कि आप को आखिर क्या परेशानी है और इस परेशानी में सरिता कहाँ से आ गई?''

''रंजना, क्या मैं सरिता से जलन रखती हूँ?''

''ये कैसा सवाल है?''

''बताओ न?''

''पर आखिर हुआ क्या है? यह भी तो पता चले, तभी निर्णय लिया जा सकेगा।''

''हुआ यह कि सरिता कन्हैया के चंगुल में फंस गई है।''

''हाँ..., क्या कह रही हो तुम?''

''हाँ पर मुझे क्यों बुरा लग रहा है, इस बात से? वह मेरी कौन लगती है? आखिर मैं क्यों परेशान हूँ इस बात से? कहीं ऐसा तो नहीं कि यदि मैंने भी ऐसे किसी सहारे को तलाशा होता तो आज मेरी स्थिति कुछ और ही होती?'' तृष्णा बोलती ही जा रही थी।

''बस बस बस! शान्त हो जाओ तृशि, शान्त! लो पानी पियो पहले।'' रंजना ने पास ही रखे गिलास को उठाकर तृष्णा की तरफ बढ़ा दिया, ''हूँ! तो तुम्हारी परेशानी का कारण तुम्हें समझ में आ गया, ठीक! पर अब मेरे एक सवाल का जवाब पूरी ईमानदारी से देना। क्या तुम अपनी प्रगति, आई मीन प्रोग्रेस से असन्तुष्ट हो?''

''नहीं, बिलकुल नहीं। एक रत्ती भर भी नहीं।''

''फिर तुम क्यों जलोगी सरिता की प्रगति से?''

''फिर यह बेचैनी, घबराहट...?''

''तृशि! तुम्हारी सरलता ही तुम्हारे लिए परेशानी का कारण है। तुम समझती हो कि तुमने सरिता को वह स्थान नहीं दिया जो देना चाहिए था या वह तुम्हें दे रही है, जबकि वास्तविकता यह है कि उसने तुम्हें भी इस्तेमाल किया है और कन्हैया को भी। यानी कन्हैया को उसने अपनी सीढ़ी बनाया है। इस खेल में न तो कन्हैया को मलाल होगा और न ही सरिता को, क्योंकि दोनों का स्वार्थ हल हो गया। जो कन्हैया चाहता था, वह उसे मिल गया और जो सरिता चाहती थी वह उसे मिल गया। तुम क्यों परेशान हो रही हो? आजकल अधिकतर लेखक बनाए जा रहे हैं। तो बनाने दो न। हम तुम अपनी ही चाल चलने वालों में से हैं। सबसे बड़ी बात जो है वह है आत्मतोष। भूल जाओ सरिता को और अपने काम पर ध्यान दो। कल गेयटी थियेटर में तुम्हारा नया नाटक होने जा रहा है न? उस की तैयारी करो। मैं भी समय पर आ जाऊँगी नाटक देखने।''

''तुम सच कह रही हो रंजना?''

''बिलकुल सच। अब अच्छे बच्चों की तरह मुझे काम करने दो। जरूरी नहीं कि तुम्हारी कोई बेटी भी होती। भूल जाओ उसे।''

कार रोड, पो. लालकुआँ
जिला नैनीताल (उत्तराखण्ड) 262402, मो. 94567 17150

कहानी

नेकी करो और...

● रमेश यादव

"हॅलो, जनाब कहां चले गए ब्रांच छोड़कर ! गए तो गए मगर हमें आफत में डालकर गए ! " मेरे फोन पर यह अजनबी आवाज आई। बात करते हुए मैं आवाज को पहचानने की कोशिश कर रहा था।

"कौन ! शायद मदन जी बोल रहे हैं ! कहां हो भाई ! कितने दिनों बाद याद किया ! और ये तुम्हारा नाम क्यों नहीं आया मेरे मोबाइल पर ! नंबर बदल गया है क्या ! सुनाओ क्या हो रहा है आजकल, कहां हो अभी ? "

"अजी, जनाब, आपकी पुरानी ब्रांच में बैठे हैं। मुसीबतें झेल रहे हैं। दरअसल तीन साल बाद आया था पैसे निकालने , मगर ये लोग कह रहे हैं कि बैंक रेकॉर्ड में आपका डॉक्यूमेंटस नहीं है, मैं पैसे नहीं निकाल सकता ! जबकि मेरे पास पासबुक और चेकबुक दोनों हैं । आप जब यहां थे तो मैंने कितनी बार चेक से पैसे निकाले थे, तब तो कोई दिक्कत नहीं आई ! अब ये नई आफत क्या है भाई ! एक लाख रुपये जमा हैं खाते में। सामने कार्यक्रम सिर पर है, हॉल बुक कराना है और कई तरह की तैयारियां भी करनी है, पैसों के बगैर कैसे काम चलेगा ? चेक डिपॉजिट किया था, वो तो जमा हो गया, मगर मैं पैसे निकालने आया हूँ तो कहते हैं कि आप पैसे नहीं निकाल सकते ! ' के.वाय.सी.' नॉर्म्स पूरे करने होंगे। क्या ये कोई नया वायरस आया है बॅकिंग इंड्स्ट्री में ? यार, बेमतलब ये लोग परेशान कर रहें हैं ! कहते हैं कि रिजर्व बैंक का नया निर्देश आया है, ट्रस्ट और सामाजिक संस्थाओं के अकाउंट को लेकर। आपने ही तो मेरे फाउंडेशन का खाता खुलवाया था ना, तो ये कैसे हो गया कि आपकी बदली के बाद मेरे अकाउंट के पेपर ही गायब हो गए ! सब कुछ तो दिया था मैंने।

"हां - हां याद आया, वही खाता ना, जिसको खुलवाने में काफी मशक्कत करनी पड़ी थी. कई डॉक्यूमेंटस बनवाने के लिए हमने दौड़ -धूप की थी. शहर में तब आप नए-नए आए थे फिल्म इंडस्ट्री में किस्मत आजमाने ! हारकर फाउंडेशन के बैनर तले कार्यक्रमों का आयोजन करने लगे. कैसे भूल सकता हूं यार ! इसी बहाने तो हम मित्र बने थे ना ! आपको याद है ना, हमारे सीनीयर मैनेजर ने उस समय क्या कहा था "मि. यादव, आपका पहचानवाला का खाता खोलना मुश्किल होना जी ! किसी के पास भी प्रॉपर डॉक्यूमेंटस नहीं होना ऽऽऽ, प्राबलेम आना ! ऑडिट में पूछना तो हम्म क्या जवाब देना जी ? रामा शिवा, गोंविंदाऽऽऽ ! "

इसके बाद हम दोनों फोन पर खिल-खिलाकर हँसने लगे।

"याद है ना मदन, मैंने साहब को क्या जवाब दिया था ! यही कि, हमारे लोग एम.पी, यू.पी., बिहार से फिल्म इंडस्ट्री में किस्मत आजमाने आते हैं और जरूरत के अनुसार हर कोई अपना खाता भी यहां खुलवाना चाहता है। पूछते-पाछते लोग-बाग मेरे पास आ जाते हैं, तो मैं मदद कर देता हूँ, आखिर खाता खुलवाना कोई गलत काम तो नहीं है ना ! ये सभी ईमानदार लोग होते हैं, इसीलिए पूरे पेपर नहीं होते इनके पास ! " ..."हां -हां याद है यार, कैसे भूल सकता हूं मैं। मेरी जानकारी में ही आपने पचासों लोगों की मदद की है, पॅन कार्ड, पहचान पत्र बनवाने और बैंक खाता खुलवाने में। जहां तक मुझे याद है सामने की युनिवर्सिटी के पचासों प्रोफेसरों और कर्मचारियों को टीचर्स लोन भी दिलवाया है आपने। आप जब तक इस शाखा में थे, हमें कभी कोई परेशानी नहीं आई।"

"तो मदन भाई अब आप ही बताएं क्या मैं आपके खाते के पेपर लेकर भाग आउंगा ? मुझे क्या मिलेगा इससे ? दरअसल बैंकों की शाखाओं को कम्प्यूटर नेटवर्क से जोड़ने (सी.बी.एस.) के लिए बाहरी लोगों से (आउट सोर्सिंग) काम करवाया गया। उसी का यह नतीजा है। इसमें गलती किसी की नहीं है। आपका सारा डाटा फीड नहीं किया गया होगा। वैसे भी आप ग्राहकों के खातों की सुरक्षा की खातिर ही रिजर्व बैंक ने ' के.वाय.सी.' नॉर्म्स की मुहिम छेड़ी है। उसके तहत पहचान पत्र से संबंधित पेपर्स ग्राहकों से फिर से लिए जा रहे हैं। साथ ही जिन लोगों ने पॅन कार्ड नहीं जमा कराया था, उन सभी लोगों से पॅन कार्ड की कॉपी भी ली जा रही है। इसमें



परेशान होने की कोई बात नहीं। अब जो बात आप मुझसे कह रहे हो, वही मैनेजर साहब से कहो और अपना हक मांगो. मैं कितने दिनों तक आप लोगों का हक दिलाता रहूंगा ! "... "यार आप तो नाराज हो गए, मैं तो बस आपको छेड़ रहा था. मगर आपने बताया तो हमारी समझ में आ गया, वरना यहां के अधिकारी तो कह रहे थे कि मेरा खाता ब्लॉक हो गया मैं ऑपरेट नहीं कर सकता। इस बात से मैं सख्ते में आ गया। एक तो बड़ी मुश्किल से बीसों बैंको में घूमने के बाद उस समय मेरा खाता खुला था, फिर मैं भला उसे बंद क्यों करने लगा ! मगर यार ये आपके बैंक वाले इतनी रूढ़ तरीके से पेश आए तो मुझे लगा जैसे मैं कोई चोर उचक्का हूँ। यार फाउंडेशन चलाता हूँ आज इस शहर में मेरी भी अपनी एक इमेज है. बात करने का क्या ये कोई तरीका है ! आपने बताया तो कुछ तसल्ली हुई वरना मैं तो ये समझ बैठा कि मेरे सारे पैसे गायब हो गए, भला हो इस कंम्प्यूटर का !"... "कोई बात नहीं मदन जी सरकारी बैंक है ये। यहां देर जरूर है पर सब दुरुस्त है. डरने की कोई बात नहीं। आपका खाता महफूज है, जो प्रक्रिया है उसे शीघ्रता से पूरी कर लो और अब आगे से बैंक की सारी शिकायतें वहीं अपने तरीके से निपटा लिया करो, मैं भला कब तक मदद करूंगा ? नए लोग तो आते ही रहेंगे उनसे निपटना भी सीखो यार ! अब ये आपकी अपनी बैंक है।" इतना कहकर मैंने फोन रख दिया।

देखा तो सामने पांच ग्राहक डिंमांड ड्राफ्ट के लिए मुझे घूर रहे थे. "सर, अर्जेंट है, डी.डी. लेकर कस्टम में जाना है. " बिना कुछ बोले मैं काम निबटाने में लग गया. सोच रहा था कि एक तो लोगों की मदद करो उपर से ताने भी सुनो ! खैर बात जो भी हो पर उस दौर में मैंने ऐसे कई लोगों को खाता खुलवाने में मदद की थी। यह सच है कि बाहर से आने वालों के पास पूरे डॉक्यूमेंटस नहीं होते, पर यदि कोई आता है तो हैल्प करना अपना फर्ज बनता है। मगर मेरी यही सोच मुझे भारी पड़ती है। बाद में उनकी हर समस्या को लेकर मुझे ही जूझना भी पड़ता है।

ऐसे ही मेरे एक बड़े प्यारे अजीज और साहित्यकार मित्र गोपालगंज, बिहार से आए थे और खाता खुलवाने के लिए परेशान थे। मित्र तो बाद में बने खाता खुलने के बाद. किसी ने मेरा संदर्भ दिया और वे मेरे पास ऐसे ही अधूरे पेपर लेकर आए। खैर किसी तरह से खाता तो खुल गया और वे बड़े प्रसन्न हुए। फिल्म इंडस्ट्री में बतौर स्क्रिप्ट राइटर वे किस्मत आजमाने आए थे। किस्मत रंग लाई और दो वर्षों में ही उन्होंने दो फिल्में लिखी जो बड़े स्टार कास्ट के साथ रिलीज भी हुई। प्रीमियर शो पर मुझे और मेरे मैनेजर साहब को निमंत्रित भी किया। साहब को जब मैंने उनके खाता खुलवाने की जद्दोजहद के बारे में बताया तो साहब 'यू हॅव डन वंडरफूल जॉब' कहते हुए मुझसे बड़े खुश हुए। इंडस्ट्री में मित्र की एक अलग पहचान बन गई। मुझे अपने इस मित्र पर फक्र हो रहा था। तीसरी फिल्म की तैयारी में लगे थे कि अचानक बीमार पड़ गए। दो दिन बाद खबर आई कि उनका देहांत हो गया। बड़ा दुख हुआ सुनकर। मगर तकदीर को भला कौन जानता है ! एक नेकदिल इंसान को खोने के दर्द को मैं सीने में दबाए कसी तरह संभला ही था कि एक दिन उनकी पत्नी का फोन आया, "......जी उनके खाते में जो पैसे थे वो मैंने ए.टी.एम. से निकाल लिए, मगर दो हजार रुपये और निकाले गए हैं जो मैंने नहीं निकाले. आप तो उनका पासवर्ड जानते थे ना ! "

अब मैं तो हैरान हो गया. बैंकिंग और एटीएम के बारे में उन्हें बताया। यह भी बताया कि बिना कार्ड के कोई कुछ नहीं कर सकता। कार्ड तो आपके पास है। वैसे भी मैं पासवर्ड नहीं जानता. कुछ टेक्नीकल गलती हुई होगी तो आप हेल्पलाइन पर फोन करके या नजदीकी किसी शाखा प्रबंधक को बता दें, शायद पैसे आपको मिल जाएंगे। पढ़ी-लिखी महिला थीं, सब कुछ समझ सकती थीं। मगर जहां तक मेरा खयाल है वो समझना नहीं चाहती थीं और हम पर तोहमत लगाकर बोल-चाल ही बंद कर दिया. इसके बाद फिर कभी उनका फोन नहीं आया। बाद में किसी ने बताया कि वो शहर छोड़कर चली गईं।

इसके बाद मेरी बदली नैशनल स्टॉक एक्सचेंज की शाखा में हो गई जहां शेयर मार्केट से जुड़ा काम-काज डिबॉस पॅकेज में होता था। सोचा, चलो अच्छा हुआ अब खाता खुलवाने की जहमत से छूट गया। यहां कोई नहीं आएगा।

मगर मेरा यह भ्रम टूट गया। कुछ ही दिनों बाद मेरे एक साहित्यकार मित्र ढूंढते हुए पहुंच गए। उनको शेयर मार्केट में पैसा

कमाने का चस्का चढ़ा और मार्गदर्शन के लिए मेरे पास आए। मैंने बताया भाई ये जोखिम का काम है, यहां पैसा कमाना आसान नहीं है। काफी स्टडी की जरूरत होती है। मंदी का दौर है गंवाना भी पड़ सकता है। खैर वो नाराज हो गए. उन्हें लगा जैसे मैं टाल रहा हूँ. कुछ दिनो बाद फिर आए बोले, "ट्रेडिंग अकाउंट तो ब्रोकर के पास खोल लिया है। पचास हजार के शेअर भी खरीद लिए हैं। अब डिमॅट अकाउंट खुलवाना है जो मैं आपकी बैंक में खुलवाना चाहता हूँ, अब बहानेबाजी मत करना। मैंने उनका डिमॅट खाता खुलवा दिया। जनाब खुश हो गए। दो साल बाद जब पुनः मेरे पास आए तो चेहरा उतरा हुआ था बोले, "यार आप ठीक कह रहे थे। मार्केट में घाटा हो गया पचास हजार के शेयरों की कीमत दस हजार हो चुकी है, अब आगे का रास्ता बताओ ताकि मैं अपना घाटा कवर कर सकूं। " मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं था। उन्हें लगा मैं शेयर मार्केट की शाखा में काम करता हूँ और मार्केट के बारे में सब कुछ जानता हूँ, पर बताना नहीं चाहता ! मैंने समझाने की कोशिश की यदि ऐसा होता तो मैं भला सरकारी नौकरी क्यों करता ? वो क्या समझे ये तो मैं नहीं जानता पर जब भी मिलते हैं उखड़े हुए लगते हैं।

अब छह सालों बाद पुनः मेरा ट्रांसफर सीबीएस शाखा में हो गया है, और मैं पिछले तीन महीनों से नए सिस्टम से जूझ रहा हूँ। नए सिरे से बैंकिंग को समझने की मैं कोशिश कर रहा हूँ। दरअसल पिछले छह साल तक मैं नॅशनल स्टॉक एक्सचेंज की शाखा में शेयर मार्केट से जुड़ा काम-काज संभाल रहा था, अतः नॉर्मल बैंकिंग से पूरी तरह कट गया था. बैंकिंग थियरी तो जानता हूँ, पर प्रैक्टीकली कम्प्यूटर पर काम करते हुए कई परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। पिछले छह सालों में ही बैंकिंग इंडस्ट्री में सीबीएस का जाल फैलाया गया और देशभर की सभी शाखाओं को कोर बैंकिंग नेटवर्क से जोड़ा गया। मेरे लिए अब सब कुछ नया है।

खाता खुलवाने का सिलसिला अब फिर आरंभ हो गया है। तब बात मदद करने की थी अब बात टारगेट पूरा करने की है। अब हमें अपनी शाखा और बैंक के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए मार्केट में घूम-घूमकर जान पहचानवालों को रिटेल बैंकिंग से जोड़ना है. बड़े साहब ने सभी को आह्वान किया है कि हर कर्मचारी कम से कम पांच 'कासा अकाउंट ' खुलवाने में मदद करें। मेरे पुराने अनुभव मेरे इस काम में आड़े जरूर आ रहे हैं पर मैं अपने मिशन में लगा हूँ। कुछ लोगों की नासमझी की वजह से हम अपना काम तो नहीं छोड़ सकते ना....... कैलाश सेंगर का शेर है ' परिंदा पस्त हो चुका है, पर उड़ान भर लेगा, बस उसके पंख पर तुम आसमान लिख देना।' अब फिर से नेकी करो और ....

481/ 161 विनायक वासुदेव एन.एम.जोशी मार्ग,
चिंचपोकली (पश्चिम), मुंबई-400011,
फोन - 09820759088

कविता

नारी

● पुष्पा मेहरा

नारी तुम
अपने-पराए दुखों की
अनुभूतियों का संघनन व
संघटन करती हुई
बरफ़ बन जाती हो।

सहानुभूति व आश्वासन भरे स्वर,
कोमल स्पर्श, ऊष्मा भरे
द्रवित कर देते तुम्हारा मन
तुम अपना सम्पूर्ण
दूसरों के मनों में समाहित कर देती हो
संघनन, संघटन और
द्रवण के रूपों में जीती तुम
अपनी शक्ति खो देती हो।

आज नाना दायरों में आबद्ध
कसी मुट्ठियां खोलने का
समय आ गया है।

तुम युग-चेता हो
सारे बंधन खोल दो
बरफ़ सी शीतल तुम
ज्वाला बन धधको
उपेक्षाओं की पैनी खरपतवार
जला कर राख कर दो
उसकी खाद पा
कमल बन खिलो।

धधकती ज्वालाओं के प्रकाश में
अपना मार्ग स्वयं चुनो
अनुभूतियों को उजागर करती हुई
आगे बढ़ती जाओ।

नारी तुम! हिम-शिला हो
सरिता हो, सागर हो
व्यष्टि में समष्टि हो।

बी-201, सूरजमल विहार, दिल्ली-92,
दूरभाष : 011 22166598

कहानी

पत्थर का व्यापारी

● श्याम नारायण श्रीवास्तव

उस दिन हम लोगों ने समय से थोड़ा पहले स्टेशन पहुंचकर टिकट लिए और सीधा प्लेटफार्म पर आ गए। जाड़े का महीना होने के कारण सूर्य हमें प्लेटफार्म से ही विदा कर जल्दी वापस चला गया था। उसने ट्रेन के आने की प्रतीक्षा नहीं की। पक्षी भी दक्षिण से उत्तर की ओर अपने नीड़ में सुरक्षित पहुंचने के लिए झुंड के झुंड पंख लहराते हुए भागते जा रहे थे। अभी शाम के छह ही बजे थे। लेकिन अंधेरा अपना साम्राज्य स्थापित कर चुका था। हर कोई समय से घर पहुंचने के चक्कर में था और इसी क्रम में प्लेटफार्म यात्रियों से भर गया था।

तभी टन-टन-टन तीन बार घंटी की आवाज हुई। लाल कुर्ता पहने पास में ही बैठे चार कुली एक साथ उठ खड़े हुए। एक ने कहा, "चला सूरज का लाइन किलियर होई गा।" घंटी की आवाज सुनकर सभी यात्री अपना सामान सहेजने लगे। हम सब भी घर वापस जा रहे थे। मैं, मेरी पत्नी, जीजा, दीदी और बड़े भइया व भानजा।

दीदी को कैंसर है। दीपावली के कुछ ही दिन बाद डॉक्टर ने यह घोषित कर दिया था। उनका इलाज इलाहाबाद में कमला नेहरू अस्पताल के कैंसर विभाग में चल रहा था। वे एक सप्ताह से यहीं अस्पताल में भर्ती थीं। कुछ आराम था, इसलिए आज हम लोग वापस जा रहे थे। घंटी की आवाज सुनकर हमने भी सामान सहेज लिए।

थोड़ी ही देर में सरयू एक्सप्रेस प्लेटफार्म नम्बर एक की लाइन पर आकर खड़ी हो गई और सब उसकी गति से अपने नीड़ में पहुंचने के लिए यात्रियों के उस भीड़ में समा गए। डिब्बे में जाकर यह कुछ देर वाली भीड़ स्वतः व्यवस्थित हो गई। आज इस ट्रेन में भीड़ कम दिख रही थी। ठंडक के कारण सभी खिड़कियां बंद थीं। डिब्बे में प्रकाश की समुचित व्यवस्था थी। प्रत्येक बल्ब अपनी सामर्थ्य के अनुसार दायित्व निभाने का पूर्ण प्रयास कर रहा था।

अन्य यात्रियों से निवेदन करके एक पूरी बर्थ खाली करा दी गई और दीदी को लिटा दिया गया। उनके पैर के पास मेरी पत्नी बैठ गई। सामने की सीट पर जीजा जी आदि के साथ पांच लोग बैठे थे। मैं किनारे की सीट पर बैठा एक पत्रिका पढ़ने लगा था। ट्रेन ने अभी अधिक यात्रा नहीं की थी कि तभी एक व्यक्ति, जीजा जी से यों ही बातें करने लगा। कहां से आ रहे हैं? कहां जाएंगे? क्या परेशानी है इनको? कब से दवा करा रहे हैं? इस प्रकार के बहुत से छोटे-छोटे प्रश्न वह करता रहा और जीजा जी उसका उत्तर देते रहे।

मेरी आंखें पत्रिका के पृष्ठों पर थीं किंतु कान उस वार्तालाप की ओर आकर्षित थे। जीजा जी से वह अब तक नाम पता भी पूछ चुका था। मैंने उसे यों ही एक बार देख लिया था और फिर पत्रिका के पृष्ठों को पलटता हुआ उसकी बातों पर न जाने क्यों अधिक ध्यान दे रहा था।

उसने पूछा, "आप अपना नाम **य** से लिखते हैं कि **ज** से।"

"ज से जमुना प्रसाद।" जीजा जी ने उसे पूरा नाम बताया।

"तब तो मकर राशि है आपकी। आप एक काम करिए। अमेरिकन डायमंड मिल जाए तो पहनिए। बहुत लाभ मिलेगा। इतनी ही देर में उसने राशि के अनुसार कष्ट-कारण और निवारण सब कुछ बता दिया था।

"कहां मिलेगा अमेरिकन डायमंड", जीजा जी ने जिज्ञासा प्रकट की।

"किसी आभूषण वाले की दुकान पर चले जाइएगा। मिल जाएगा। विश्वासी दुकान होनी चाहिए। आजकल बाजार में नकली बहुत आता है।" थोड़ा रुककर वह फिर बोला, "मेरे पास दो हैं तो लेकिन एक साहब को देना है।"

"ठीक है दिखा ही दीजिए। कम से कम जानकारी तो हो जाएगी।"

जीजा जी के कहने पर उसने एक बैग से छोटा सा पर्स निकाला। फिर उसमें एक लाल कागज की पुड़िया। जिसमें कुछ

चमकीले पत्थर थे। पत्थरों को देखने की जिज्ञासा में पत्रिका से हटकर मैं भी अब उधर ही देखने लगा था।

इस कागज की पुड़िया में दो तरह के पत्थर थे। वैसे उसके बैग में और भी कई तरह के पत्थर थे। क्योंकि अमेरिकन डायमंड ढूंढने के लिए उसने पहले दो पुड़िया और खोली थी लेकिन उन्हें वापस बैग में रख दिया था। फिर तीसरी पुड़िया खोली जो लाल रंग के कागज में थी। सफेद चमकीले से पत्थर को हाथ में रखकर वह बोला।

"ये हैं अमेरिकन डायमंड।"

जीजा जी उसे गौर से देख रहे थे। शायद दिमाग में उसकी छवि उतार रहे थे जिससे बाहर खरीदते समय असली-नकली की सही पहचान हो सके। सच तो यह है कि जिसे वह अमेरिकन डायमंड बोल रहा था, उस पत्थर को सभी गौर से देख रहे थे।

कुछ ही देर बाद वह फिर बोला, "मेरे पास हैं तो कुल चार नग हैं लेकिन दो वापस करना है। ये खंडित हैं। यह देखिए इनका किनारा थोड़ा सा टूटा है। आसानी से दिखता नहीं है। लेकिन खंडित नग नहीं पहनना चाहिए। हम लोग भी किसी को खंडित नग नहीं देते। हमारे गुरु जी ने कहा है कि इसको पहनने वाले से अधिक पाप उसे लगता है, जो इसे किसी को देता है।

मुझे लगा वह आदमी वहां पर उपस्थित लोगों पर विश्वास जमाने के लिए और अपने को ईमानदार सिद्ध करने के लिए भी यह सब बता रहा था।

कुछ सोचते हुए उसने फिर कहा, "ऐसा करिए आप इसमें से एक रख लीजिए। आपको कष्ट ज्यादा है। मैं उनके लिए दूसरा ला दूंगा।"

उसके मात्र इतना कहने से ही जीजा जी का चेहरा देखने लायक था। वे बहुत प्रसन्न थे। उन्हें शायद ऐसा लगा, बस यही एक अमोघ शक्ति है जो उनके सारे कष्टों का हरण कर लेगी। वैसे अब तक दो बातें स्पष्ट हो गई थीं। पहला यह कि वह व्यक्ति जीजा जी पर अपना विश्वास जमा चुका था। दूसरा स्वयं जीजा जी में भी उसके प्रति आत्मीयता के भाव झलक रहे थे।

नग को हाथ में लेकर इधर-उधर पलटते हुए जीजा जी ने कहा, "देख लीजिए खंडित न हो।" उसने मुस्कराते हुए कहा, "खंडित आपको क्यों दूंगा। उसे तो मुझे वापस करना है।"

"कितने का होगा?" जीजा जी ने पूछा।

"बहुत महंगा नहीं है, मात्र डेढ़ सौ रुपये का पड़ेगा।" उसने बताया।

उधर सौदेबाजी शुरू हुई और इधर मेरे मन में पिता जी के विचार चक्कर काटने लगे। वे हमेशा कहते थे, "इन सब पर कभी विश्वास मत करना। ऐसे लोगों को ठग व लुटेरे की संज्ञा के अतिरिक्त और कोई नाम नहीं है। सबसे पहले तो यही सोचना चाहिए कि ऐसे आदमी जब इतना जानकार होते हैं, तो खुद क्यों फटीचर बने रहते हैं? पहल लें कोई अंगूठी और बन जाए करोड़पति। लेकिन नहीं यह कुछ नहीं कर सकते। ये सब नब्बे प्रतिशत ठग हैं।"

"और दस प्रतिशत?" यदि कोई बातचीत के दौरान पूछ बैठता तो पिता जी कहते थे। "दस प्रतिशत में मैं उन पत्थरों के जानकार को रखता हूं तो आयुर्वेद में दवाओं के साथ इनका प्रयोग करते हैं। लेकिन ये नब्बे प्रतिशत जो हैं, इन्हें कुछ भी पता नहीं है। ये हमारा मनोविज्ञान पढ़ते हैं। ये हमारी परिस्थितियों का आकलन करते हैं। लाभ उठाते हैं उसका।"

पिता जी की बातें मुझे भीतर से आंदोलित कर रही थीं। मैं ऊपर से तो शांत था। लेकिन भीतर आक्रोश से भरा हुआ था। मुझे एकदम पसंद नहीं था कि जीजा जी उस ठग से वह पत्थर खरीदें। किंतु विचित्र स्थिति है। रोकना भी चाहता हूं। रोक भी नहीं पा रहा हूं। ठीक भीष्म पितामह की तरह। उन्हें शकुनि की एक-एक चाल पता है। वे दुर्योधन की सारी कूटनीति से भली-भांति परिचित हैं। लेकिन वे पांडवों को शकुनि द्वारा ठगते हुए देखते रहे। सत्ता के साथ जुड़े रहने के लिए वे वचनबद्ध थे। हस्तिनापुर का जो भी राजा होगा, भीष्म को उसका साथ देना ही है। ये उनकी प्रतिज्ञा थी।

और यहां भी तो सभी भीष्म पितामह की तरह दृढ़ प्रतिज्ञ थे कि जैसे भी हो दीदी को रोग मुक्त कराया जाए। कौन नहीं चाहता जीजा जी पर आया यह ग्रह टल जाए। दीदी को कैंसर है। डॉक्टर बता चुके हैं। दवा हो रही है। ऐसे में बहुत लोग दवा के साथ दुआ ढूंढने लगते हैं। सोचते हैं कहीं से संजीवनी बूटी मिल जाए। मिल जाए एक कोई दिव्य मणि जिसके छूते ही सारा रोग उड़न छू हो जाए। परियों की कहानी की तरह।

हम अपनी रीति-रिवाज, परंपराओं का निर्वाह तो करते हैं। लेकिन उसके साथ अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता जैसे कूड़े-करकट का ढेर भी समेटे रहते हैं। बस ये ठग इसी का लाभ उठाते हैं और हम जैसे विरोधी हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। डरते हैं कहीं वे मुझसे नाराज न हो जाएं। जो जीवन के एक जटिल रास्ते पर हैं और उसके झांसे में आकर इन पत्थरों को संजीवनी बूटी मान बैठे हैं। हो सकता उन्हें कुछ लाभ होता हो। इस देश में इस तरह की विचित्र कहानियों की कमी नहीं है। पत्थरों के चमत्कार को लेकर बहुत रोचक कहानियां सुनने को मिल जाएंगी। उन्हें इन पत्थरों के प्रति विश्वास था। रहा होगा। सच भी हो सकती है यह कहानी। लेकिन मेरी समझ से परे हैं ये पत्थर।

इन सब मामलों में मैं पिता जी को आदर्श मानता हूं। यही कारण है मैं छींकना, बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, दिशाशूल आदि के नाटक से भी बहुत दूर रहता हूं। यह सब मानवीय प्रपंच एवं अंधविश्वास हैं। मेरे विचार से इनके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। खैर अपना-अपना विचार है।

फिर भी इधर उसने जितना मूल्य बताया। जीजा जी ने उसे



श्रद्धा से दे दिया। वह आदमी जहां बैठा था, उसके बायीं ओर जीजा जी बैठे थे और दायीं ओर एक दूसरा यात्री था। अवसर देखकर उस यात्री ने भी अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए पूछा, "हमें भी कुछ बताइए।"

"क्या बताऊं आपको?" उस आदमी के पूछने पर यात्री ने कहा, "मेरा बड़ा लड़का बहुत क्रोध करता है। घर में किसी से नहीं पटती। बात-बात पर लोगों को मार बैठता है। कभी बर्तन तोड़ देगा। कभी छोटे भाई की किताब फाड़ देगा। हमेशा तहलका मचाए रहता है।"

"उसकी शादी हो गई क्या?"

"नहीं, अभी तो वह पढ़ ही रहा है।"

"ठीक है, आप चांदी की अंगूठी में मोती का नग लगवा कर उसे दे दीजिए। कुछ दिन पहनेगा तो सारा क्रोध शांत हो जाएगा।" ऐसा कहते हुए उसने एक सफेद मोती बैग से निकलाकर उस यात्री को बिना मांगे ही दे दिया। वह यात्री भी खुश हो गया। जितने रुपये मांगे, उसने दे भी दिए। पता नहीं वह यात्री सही कह रहा था या उसका ही कोई दलाल था। जब दुकान खुल ही गई तो ग्राहक आएंगे ही। दीदी को भी उसने इसी तरह का कोई पत्थर चांदी की अंगूठी में पहनने को कहा था। इसी के साथ और भी कई लोगों ने उससे परामर्श लिया।

"मूंगफलीय....खस्ता गरम मूंगफलीय...औलाद वालों फूलो फलो चिनिया बादाम मूंगफलीय... भूखे गरीब की ये ही दुआ है औलादवालों फूलो फलो।" गाड़ी मात्र एक मिनट के लिए किसी स्टेशन पर रुकी थी। जिसकी यात्रा पूर्ण हो गई थी वे उतर गए और इसी के विपरीत क्रम में कुछ नए लोग उस बोगी में आ गए थे। अभी गाड़ी चली ही थी कि दो मिश्रिम आवाज आने लगी। एक भीख मांगने वाले की, दूसरी मूंगफली बेचने वाले की। एक ने इस गेट से प्रवेश किया था तो दूसरे ने उस गेट से।

हम लोग बीच में थे इसलिए मिश्रित आवाज का अच्छा तालमेल सुनने को मिल रहा था। दोनों की आवाजें तेज हो रही थीं क्योंकि वे हमारी ओर ही आ रहे थे। भिखारी हमारे पास जल्दी आ गया। जिसे लोक-परलोक सुधारने का भय था वे अपनी जेबें टटोलने लगे और भिखारी को दान देकर प्रसन्न हो गए। लेकिन जो भिक्षा-वृत्ति के विरोधी हैं। उन्होंने दुखी होकर मन की बात उगल दी। "पता नहीं ये हट्टे-कट्टे लोग काम-धंधा क्यों नहीं करते।" तभी एक ने समर्थन करते हुए कहा, "उनकी ज्यादा गलती नहीं है भाई साहब। हम ही लोग बढ़ावा दे रहे हैं। किसी को भी मुफ्त में खाने को मिलेगा तो वह काम क्यों करेगा?" लोगों की बहस जारी थी और भिखारी आगे बढ़ता गया।

जाड़े का मौसम था। मूंगफली की बिक्री अपने चरम पर थी। मूंगफली वाला अभी हमारे निकट पहुंचा ही था कि पीछे वाली सीट से आवाज आई, "छिलका फर्श पर मत फेंको बेटा... इस पेपर में रखो बाद में बाहर फेंक दिया जाएगा।"

"क्यों पापा?"

"फर्श गंदा हो जाएगा...और क्यों?"

"तो रेलवे वाले साफ करेंगे।"

"कब साफ करेंगे? यहां चलती गाड़ी में तो कोई झाड़ू लगाने आएगा नहीं। तुम गंदगी फैला कर दो स्टेशन बाद उतर जाओगे। फिर जो दूसरा यात्री आएगा। क्या सोचेगा तुम्हारे बारे में। यही न कि यहां पर बहुत गंदे लोग बैठे थे।"

"तो रेलवे वालों को हर स्टेशन पर आकर सफाई करनी चाहिए।"

"और तुमको कुछ नहीं करना चाहिए। तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं बनती न। घर में जब मम्मी झाड़ू लगाती है तो क्या तुम पीछे-पीछे कचरा फैलाते रहते हो?" उस व्यक्ति के इस बार थोड़ा तेज आवाज में बोलने पर वह लड़का चुप हो गया और मूंगफली के छिलके को एक पेपर में रखने लगा।

एक आदमी जो अभी दो-चार छिलके ही फर्श पर फेंका था। वार्तालाप को सुनकर उसने छिलके बाहर फेंकने के लिए खिड़की खोल दी। बाहर से ठंडी हवा का तेज झोंका आया तो एक बुजुर्ग ने कहा, "खिड़की बंद कर दो भइया।" उस व्यक्ति ने कहा कि मूंगफली खाने के बाद बंद कर दूंगा।"

अब तक मूंगफली वाला हमारे समीप आ चुका था। अद्‌भुत विरोधाभास देखने को मिल रहा था। एक्सप्रेस ट्रेन के बाद भी उस दिन उसकी गति कम थी। मूंगफली वाले की पत्थर के व्यापारी की विक्रय गति तेज थी। बाहर का मौसम बहुत ठंडा था। लेकिन भीतर का बाजार गर्म था।

इसी बीच जीजा जी ने एक बार मेरी पत्नी से कहा कि वह भी कुछ पूछ लें। उन्होंने मना कर दिया। वे मेरे स्वभाव से परिचित हैं। इसलिए शायद चुप रहना उचित समझा होगा। अब उन्होंने मुझसे कहा। मैंने भी साफ मना कर दिया।

जीजा जी ने फिर कहा, "जानकारी करने में क्या हर्ज है? मैंने भी सोचा चलो टाइम पास होगा। उस आदमी ने भी अपने निकट आने के लिए मुझे इशारा किया। मैं उसके नजदीक चला गया।

"चलिए आपके पास आ गया, बताइए कुछ।"

उसने कहा, "क्या पूछना है आपको? पहले कुछ पूछिए, तब तो बताएंगे।" इसी के साथ उसने मेरी दाहिनी हथेली को देखना शुरू कर दिया।

और एक बार फिर कहा, "कुछ पूछिए।" मेरे पास कोई प्रश्न न था। ऐसे ही एक प्रश्न कर दिया, "आप मेरी रेखाओं को देख रहे हैं। बताइए, मैं कुल कितने वर्ष तक जीवित रहूंगा?"

उसने मेरी हाथ की रेखाओं को देखते हुए कहा, "अस्सी-पचासी साल तक आपको जीवित रहना चाहिए।"

मैंने कहा, "बस इससे अधिक आपको गिनती नहीं आती क्या? महोदय मैं सौ वर्ष तक जीवित रहूंगा।" शायद वह इस तरह का उत्तर स्वीकारने को तैयार नहीं था।

"मैं जो कह रहा हूं, वही सच है।" उसका प्रत्युत्तर था।

मैंने कहा, "क्या बात करते हैं आप। आज तक कोई जन्म और मृत्यु के बारे जान पाया है।"

"फिर कैसे कह रहे हैं कि आप सौ साल जीने की बात।"

"जैसे आपने अस्सी-पचासी वर्ष कहा।"

"मैंने तो हाथ की रेखाएं देखकर बताया है।"

"मैं अपनी इच्छाशक्ति से बोल रहा हूं, और आपको बता दूं कि मेरे बड़े बाबा भी एक सौ चार वर्ष तक जीवित थे।" हम दोनों की वार्ता को लोग रोचकता से सुन रहे थे।

तभी उसने कहा, "मेरी आपकी शर्त लग जाए।"

मैं समझ गया यह कोई कच्चा खिलाड़ी नहीं है। फिर यहां इसकी इज्जत की भी बात है। इतने पत्थर बेच चुका है लोगों पर विश्वास भी बनाए रखना था। लेकिन पहले जब मैं छात्र था तब भी कई बार ऐसे लोगों से मेरी बहुत बहस हो चुकी है। मैं पहले से भी तैयार था। वैसे भी इस तरह के व्यक्तियों से मुझे कोई भय नहीं लगता।

मैंने कहा, "आपसे क्या शर्त लगाऊं। आप तो खुद ही चार-छह साल बाद नहीं रहोगे। वह मुझसे शर्त लगाए जो मेरी तरह सौ साल जीने की इच्छा शक्ति रखता हो।"

"इच्छा से ही सब कुछ नहीं होता।" उसका उत्तर था।

"फिर किससे होता है यह पत्थर की अंगूठी पहनने से।" मैं सीधे पत्थर पर आ गया।

तभी गाड़ी की रफ्तार कुछ धीमी हुई। उसने मुझे आग्नेय नेत्रों से देखते हुए कहा, "आज मेरे पास समय नहीं है। स्टेशन आ गया है। फिर मिलूंगा तो उत्तर दूंगा।" अब तक गाड़ी रुक चुकी थी। जिन लोगों ने पत्थर खरीदे थे, उनकी ओर नमस्कार की मुद्रा में हाथ उठाया, मुस्कराया और हाथ हिलाता हुआ विजय की मुद्रा में वह गाड़ी से उतरने के लिए आगे बढ़ गया। वह यात्री जो जीजा जी के पास बैठा था, वह भी उतर गया। मैं बहस करना चाहता था किंतु मुझे लगा वह आदमी बहस की मुद्रा में नहीं था। हो सकता है उससे कुछ ग्राहक बहक जाते या फिर उसे और किसी डिब्बे में पत्थर बेचने होंगे।

गाड़ी एक बार फिर चल पड़ी थी। उतरने वालों से चढ़ने वालों की संख्या थी। भिखारी जो भीख मांगने के बाद फर्श पर ही दुबक कर बैठ गया था, वह भी उतर गया। मूंगफली वाला नहीं उतरा। चढ़ने वालों में रेलवे का टी.टी. और एक पुलिस भी था। टिकट चेक करते हुए टी.टी. आगे बढ़ गया। इधर उस पुलिस ने मूंगफली वाले को देखते ही पूछा, "का बे नगेसरा घर नही जाना है आज?"

"जाना है साहब। आगे पसिन्जरवा का क्रासिंग है। वहीं से लौट जाएंगे।" जितनी देर में उसने उत्तर दिया। समय का सही उपयोग करते हुए उस पुलिसवाले ने अब तक उसकी टोकरी से एक मुट्ठी मूंगफली निकाल ली थी। मूंगफली वाले ने नमक की पुड़िया खुद ही पकड़ानी चाही तो पुलिसवाला बिना नमक लिए ही आगे बढ़ गया।

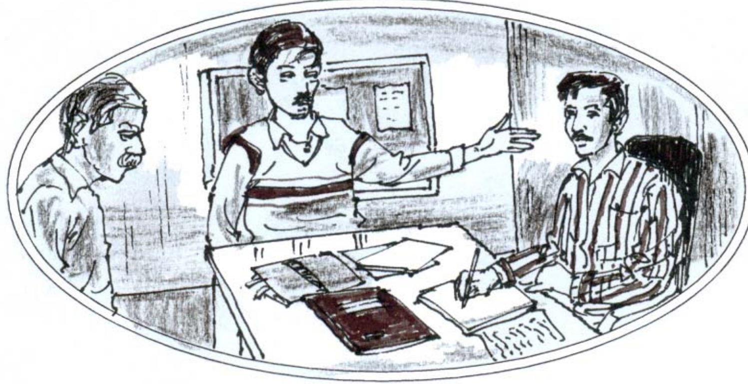
उस पत्थर के व्यापारी से भरपूर बहस न हो पाने के कारण मैं कुछ गंभीर था। तरह-तरह के विचार मन में उठ रहे थे। सोचता हूं कि इस रेल यात्रा और जीवन यात्रा में कितना सामंजस्य है। मात्र एक बोगी में ही संपूर्ण दुनिया का दर्शन समाया हुआ है। जन्म और मृत्यु अर्थात् बोगी के भीतर प्रवेश और एक निश्चित समय के बाद उतर जाना। बस यही बीच का समय ही तो हमारी आयु है, जिसमें सब भटक रहा है अपने-अपने कर्मों में।

मूंगफली वाला, भिखारी, पत्थर वाला, टी.टी. पुलिस, हम सब यात्री अपना-अपना किरदार निभा रहे हैं। एक रंगमंच के रंगकर्मी की तरह। गाड़ी रुकी समझो सांसे थम गईं। मृत्यु का क्षण निकट आया तो स्टेशन आया और उतर गए तो मतलब इस लोक से विदा हो गए। पूर्ण हुई यात्रा रेल की या फिर जीवन की। जैसे यशोदा माता को श्रीकृष्ण के मुख में संपूर्ण ब्रह्मांड दिखा था वैसे ही दिख रही है इस बोगी में समाई हुई सारी दुनिया। पाप-पुण्य, क्रय-विक्रय, भाग्य-कर्म, श्रद्धा-विश्वास, ठग-लुटेरे, परिवार-मायामोह सब कुछ साफ दिखता है एक रेल यात्रा में।

दीदी इस यात्रा के चार महीने बाद ही इन छोटी-छोटी यात्राओं से दूर शरीर के माया मोह से मुक्त होकर महायात्रा पर चली गई थीं। वे कैंसर से बच नहीं सकीं। आज कई वर्ष बीत गए। वह आदमी भी बाद में मुझे नहीं दिखा। लेकिन जब भी ऐसी घटनाओं को लेकर विचार करता हूं तो एक ही बात समझ में आती है कि जब तक मनुष्य इस तरह के अंधविश्वास की चादर ओढ़े रहेगा, ये पत्थर के व्यापारी भी जीवित ही रहेंगे।

बीएफ-1, जिंदल स्टील एण्ड पावर लि. रायगढ़,
छत्तीसगढ़-496001, मो. 0 98274 77442

एकांकी



फूल-पत्ते और कांटे

● सतीश श्रोत्रिय

पात्र

1.	साहब :	एक ऑफिस का अफसर
2.	बाबू :	ऑफिस का चपरासी
3.	मुकेश बाबू :	थिएटर के निर्देशक

(पर्दा उठता है)

(साहब अपने कमरे में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। चपरासी आकर साहब की टेबल पर से फाइल लेकर चला जाता है। क्षणिक मौन के पश्चात चपरासी आकर साहब को एक चिट देता है।)

साहब : (चिट लेकर पढ़कर) उन्हें अंदर भेज दो।

चपरासी : अच्छा साहब। (प्रस्थान) (मुकेश बाबू का प्रवेश)

साहब : (उठकर) आइए मुकेश बाबू, बैठिए। मैं बहुत खुश किस्मत हूं कि आज यहां पर शहर के बहुत बड़े नाट्य निर्देशक का आगमन हुआ है।

मुकेश : (कुर्सी पर बैठकर) अजी साहब आपने तो एक अदने से आदमी को चांद तक पहुंचा दिया है।

साहब : क्यों नहीं क्यों नहीं। आपने अपने कुशल निर्देशन द्वारा अदने से अदने नवीन कलाकारों को बहुत ऊंचाई पर पहुंचा दिया है।

मुकेश : बस-बस रहने भी दीजिए साहब। मैं आपके पास एक जरूरी काम से आया हूं।

साहब : काम और उसका संबंध मुझसे है, यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

मुकेश : जी हां, उसका संबंध आपसे है। उसे आप ही पूरा कर सकते हैं।

साहब : मैं ही कर सकता हूं। तो फिर बताइए, वह कौन-सा काम है।

मुकेश : थियेटर की ओर से एक नाटक विषमता खेला जाने वाला है जिसमें आपको एक अजीबोगरीब भूमिका अदा करनी है। (चपरासी एक तरफ छिपकर इन दोनों की बातें सुनता है।)

साहब : अजीबो-गरीब भूमिका, मैं समझा नहीं आपका मतलब?

मुकेश : आप हैं साहब, लेकिन आपको भूमिका अदा करनी है चपरासी की।

साहब : (आश्चर्य से) चपरासी की भूमिका मुझे अदा करनी है। यह आप क्या कह रहे हैं मुकेश बाबू?

मुकेश : सच्चा कलाकार वही है जो हर तरह की भूमिका कुशलता के साथ अभिनीत कर सके।

साहब : मैं इस भूमिका को करने से संकोच नहीं कर रहा हूं। मैं उस भूमिका को कैसे कर सकूंगा?

मुकेश : मुझे पूरा विश्वास है कि आप इस भूमिका को भलीभांति निभा पाएंगे।

साहब : लेकिन मैं इस काबिल कहां हूं।

मुकेश : (बीच में ही) देखिए, अब मैं आपकी एक न सुनूंगा। (बैग में से स्क्रिप्ट निकालकर देते हुए) यह है आपकी स्क्रिप्ट। इसे आपको तैयार करना है।

साहब : (स्क्रिप्ट लेकर पन्ने पलटते हुए) मुकेश जी आपने मुझे बड़ा टिपीकल पार्ट दिया है।

मुकेश : (उठकर) मुझे पूरा विश्वास है कि आप इस भूमिका को बड़ी कुशलता से कर पाएंगे। अच्छा, अब मैं चलता हूं। (प्रस्थान)

साहब : (खड़े होकर चहल कदमी करते हुए स्वागत) चपरासी का पार्ट करने के लिए क्या करना चाहिए? (सोचकर) अरे हां, यह ठीक रहेगा। (कुर्सी पर बैठकर काल बेल बजाता है। फिर भी चपरासी नहीं आता है। चिल्लाकर पुकारते हुए) अरे बाबू? न जाने कहां मर गया है? चपरासी आजकल हरामखोर हो गए हैं। कामधाम कुछ करते नहीं। स्टूल पर बैठे नींद निकालते रहते हैं। (जोर से) बाबूऽऽऽ, ओ बाबू?

बाबू : (आते हुए) आया साहब।

साहब : (क्रोध से) आया साहब का बच्चा।

बाबू : (जल्दी से) जी साहब।

साहब : (मुंह बनाकर) जी साहब। शेर की तरह बाहर बैठा साहब की बुराइयां करता रहता है और अंदर आते ही भीगी बिल्ली बन जाता है। सुनता नहीं क्या बहरा हो गया है?

बाबू : (भयभीत होकर) जी... मैं... वो...

साहब : (तेजी से) बोलता क्यों नहीं कहां चला गया था?

बाबू : (डरते हुए) जी...वो... शर्माजी ने चाय मंगवाई थी... इसीलिए...

साहब : (बीच में) होटल पर चला गया था।

बाबू : जी साहब।

साहब : (डांटकर) तू होटल का बैरा है या इस ऑफिस का चपरासी? चाय लाने की क्या जरूरत थी?

बाबू : जी, उन्होंने भेजा था। इसलिए जाना पड़ा।

साहब : तुम ऑफिस के नौकर हो या होटल के?

बाबू : ऑफिस का नौकर हूं, साहब।

साहब : फिर होटल क्यों गए?

बाबू : (डरकर) उनका काम न करूं तो वे समय पर पगार नहीं देते हैं।

साहब : नालायक चले जाओ यहां से। तुम-तुम गधे हो।

बाबू : जी साहब। (प्रस्थान)

साहब : (चहल कदमी करते हुए स्वगत्) चपरासी किस तरह बोला था डरते हुए उनका काम न करूं, साहब तो वे वेतन नहीं देते जी...जी... वो... शर्माजी ने चाय मंगवाई थी इसलिए उं हूं, अभी ठीक जमा नहीं। एक बार और आजमाता हूं। (कुर्सी पर बैठकर कालबेल बजाते हैं।) बाबू, सूअर कहीं का, फिर न जाने कहां चला गया? अरे बाबू?

बाबू : (प्रवेश करके) आया साहब।

साहब : (टेबल ठोककर) नालायक, उल्लू-सूअर मैं कब से चिल्ला रहा हूं और तेरे सिर में जूं तक न रेंगती है।

बाबू : (डरते हुए) जी... जी... मैं... वो...

साहब : (डांटकर) कहां गए थे?

बाबू : (चुप खड़ा रहता है)

साहब : (डपटकर) जब देखो तब ऑफिस से नदारद। यह ऑफिस है समझे। मैं पूछता हूं सुबह देर से क्यों आए थे?

बाबू : (डरकर) मैं हैड साहब के यहां पानी भरने चला गया था इसलिए देर हो गई थी।

साहब : (तेजी से) हैड साहब के घर पानी भरना ऑफिस का काम नहीं है। होटल से चाय लाना क्या ऑफिस का काम है? कल से हैड साहब की बीवी बीमार हुई तो

उनके कहने पर उनकी बीवी का लहंगा धोने लगोगे।

बाबू : (भरे गले से) यह काम भी मुझे करना पड़ता है। मैं मजबूर हूं साहब। नौकरी चली जाए तो बाल-बच्चों को कैसे पालूं?

साहब : (डांटकर) गलती भी करता है और फिर ऊपर से गिड़गिड़ाता भी है। हैड साहब के नौकर हो जाओ।

बाबू : हुजूर माई-बाप हैं। गरीब परवर मैं तो चौबीस घंटे की ड्यूटी बजाता हूं साब। मैं अनपढ़ आदमी इसी काबिल हूं। गर्मी के मौसम में हुजूर कूलर की हवा खाते हैं और मैं बाहर गर्मी में तपता हूं। यह भेदभाव क्यों होता है साहब?

साहब : बाबू, मुंह संभालकर बात करो।

बाबू : (गिड़गिड़ाकर) हुजूर... मैं... तो...

साहब : (डपटकर) निकल जाओ यहां से। गेट आउट। मैं तुम्हें नौकरी से निकालता हूं।

बाबू : (रोते हुए) हुजूर, मैं आपके हाथ जोड़ता हूं। मुझे नौकरी से मत निकालिए। मैं मर जाऊंगा। मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जाएंगे। मैं आपके पैर पड़ता हूं। (पैर पकड़ता है)

साहब : (ठोकर लगाकर) मेरे पैर छोड़ दो। कमरे से बाहर हो जाओ।

बाबू : (उठते हुए हाथ जोड़कर रोते हुए) हुजूर, मैं बेकसूर हूं। मुझे नौकरी से मत निकालिए।

साहबः (जोर से) गेट आउट। चले जाओ यहां से।

(बाबू का धीरे-धीरे प्रस्थान)

साहब : (मुस्कराकर स्वगत) बहुत सुंदर। इसे कहते हैं अभिनय। चपरासी ने लाजवाब एक्टिंग किया है। बस इसी एक्टिंग की मुझे नकल करना है। इस एक्टिंग को देखकर मुकेश बाबू तो...।

(तत्काल मुकेश का प्रवेश)

मुकेश : ओहो तो आप मुझे ही याद फरमा रहे थे।

साहब : जी हां

मुकेश : तो मेरी उम्र लाख बरस की हुई।

साहब : बिलकुल। अचानक फिर कैसे आना हुआ?

मुकेश : अरे साहब, आपकी भूमिका निपटी तो लेडिज पार्ट की समस्या आन फंसी।

साहब : तो फिर क्या सोचा आपने?

मुकेश : मैं सोचता हूं आपके ऑफिस की सीमा देवी ठीक रहेगी।

साहब : अच्छा, वो मेरी टाइपिस्ट?

मुकेश : हां, जिसने गत बार कटु सत्य नाटक में पार्ट किया था।

साहब : आप तो पार्ट देने के मामले में खूब माहिर हैं।

मुकेश : हां, तो आपकी भूमिका तो ठीक रही न?

साहब : आप यहां से गए और मैंने चपरासी को बुलाकर जो डांटना शुरू किया तो वह गिड़गिड़ाया रोया। बस, मैंने उसकी नकल सीख ली।

मुकेश : आपने तो बिना निर्देशन के ही निर्देशन पा लिया है।

साहब : अरे बेचारा दुखी हो रहा होगा। उसे बुलाता हूं। (काल बेल बजाता हूं)

(चपरासी का प्रवेश)

बाबू : जी साब?

साहब : मैंने अभी जो दुर्व्यवहार तुम्हारे साथ किया है उसे सच मत समझना। वह तो केवल नाटक था।

बाबू : (मुस्कुराकर) तो क्या आप मेरे गिड़गिड़ाने और रोने को सच समझ रहे थे?

साहब : हां, क्यों क्या बात है?

बाबू : साब, मैं तो आप ही की तरह नाटक कर रहा था।

साहब : (आश्चर्य) तुम भी नाटक कर रहे थे?

बाबू : हां साब, मैं भी नाटक ही कर रहा था।

दोनों : (खिलखिलाकर) यह भी खूब रही।

साहब : तुम ऐसा क्यों कर रहे थे?

बाबू : चपरासी संघ भी एक नाटक कर रहा है फूल-पत्ते और कांटे मुझे उसमें साहब की भूमिका करना है वह मैंने साब से सीख ली।

साहब : तो मतलब यह हुआ कि मैं भी ढोंग कर रहा था और तुम भी।

मुकेश : (खड़े होकर) अब मैं पूरी तरह से कह सकता हूं कि थियेटर और चपरासी संघ के दोनों नाटक सफलता के साथ मंचित होंगे।

साहब : यह भी खूब रही।

(तीनों ताली बजाकर खिलखिलाकर हंसते हैं)

(पर्दा गिरता है)

32/1, मुगलपुरा, जावरा, जिला रतलाम,
मध्य प्रदेश, मो. 94254 91443

तीन लघु कथाएं

● रत्न चंद निर्झर

अंतर

आसमान ने जमीन की ओर निहारते हुए पूछा, "जमीन बहन! आज तू इतनी उदास व गुमसुम क्यों हो? तुम्हारे आस-पास का वातावरण कितना खिला हुआ है।"

जमीन ने एक लंबा सांस भरते हुए शून्य की ओर ताकते हुए प्रत्युत्तर दिया, "आसमान भाई! मैं आज तक यह न समझ पाई कि हम दोनों में इतना अंतर क्यों है?"

आसमान ने हंसते हुए उत्तर दिया, "जमीन बहन! मैं तुम्हारी तरह कई टुकड़ों में नहीं बंटा हूं और न ही कोई अपने-अपने हिस्से के लिए लड़ता है।"

बीच का रास्ता

"राम खिलावन आज तू इतना परेशान सा क्यों है?"

पंत भाई ने घर के निर्माण कार्य में लगे मिस्त्री से पूछा।

"क्या बताऊं बाबू जी! पिछले कल से एक धर्म संकट में फंसा हुआ हूं। अगर सच्चाई का साथ देते हुए कोर्ट में मुजरिमों के खिलाफ बयान करता हूं तो परिवार की सुरक्षा का प्रश्न सामने आ खड़ा होता है। प्रवासी मजदूर ठहरा। अपराधी, जिन्होंने मेरे सामने बुजुर्ग की निर्ममता से पीटते हुए जान ली थी, वे सरेआम मुझे दनदनाते हुए धमकी दे रहे हैं कि तुमने अदालत में गवाही दी तो तेरे परिवार की खैर नहीं। दूसरी तरफ यदि मैं सच्चाई का साथ न देता हूं तो मृत वृद्ध की आत्मा मेरे सामने आ खड़ी होती है।"

पंत ने सारी कहानी सुनकर बीच का रास्ता सुझाया कि तुमने यही गवाही देनी कि मैंने अपराधी को पुलिस द्वारा ले जाते हुए देखा है। बाकी मैं कुछ नहीं जानता। यही तुम्हारे लिए बीच का रास्ता सही रहेगा।

इतना सुनते ही राम खिलावन ने कहा, "बाबू जी आपने मेरे सिर से भारी बोझ हल्का कर दिया।"

परिवर्तन

पहले वह एक साधारण पार्टी का कार्यकर्ता हुआ करता था। सभी से बड़े प्यार-प्यार गले मिलता। परिवार की कुशलता की खबर लेता। समय ने पलटा खाया। विधायक से यात्रा प्रारंभ हुई और मंत्री पद भी हासिल कर लिया। अब उसके मिलने का अंदाज भी बदल गया। दूर से दुआ सलाम करता है। कभी साथ रहे उसके संगी साथ गले मिलने को तरस कर रहे जाते हैं। राजनीति ने उसके मिलने के अंदाज को भी बदल कर रख दिया।

मुख्य प्रारूपकार, कार्यालय मुख्य अभियंता (रा. उ. मार्ग),
हि. प्र. लोक निर्माण विभाग, यू.एस. क्लब, शिमला-171001

बोध कथा

प्रकृति का अमूल्य उपहार– पानी

● **प्रो. जमनालाल बायती**

घटना बहुत पुरानी है, स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले की बात है। पूज्य बापू सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय आदि गुणों के लिए ही ख्यातनाम नहीं रहे हैं, वरन् वे संयम के क्षेत्र में भी अपने प्रयत्नों के लिए प्रसिद्ध हैं। भोजन, वाणी व्यवहार आदि सभी क्षेत्रों में वे संयम का सही अर्थों में पालन करते थे।

घटना उस समय की है जब श्री सुशीला नायर निजी सहायक के रूप में सहायता करती थी। एक बार वे गंगा के किनारे यात्रा के समय बापू के साथ थी। यात्रा के दौरान ही समय पर बापू दातुन-कुल्ला कर रहे थे, तभी उन्हें लगा कि पानी कम है। उन्होंने सुशीला नायर को आवाज लगाई तथा पानी लाने को कहा। सुशीला को यह पता नहीं था कि पानी क्यों मांगा है। वे एक बड़ी सी बाल्टी पानी भर कर ले आई। बापू ने हाथ-मुंह धो लिए। तभी सुशीला जी ने आव देखा न ताव और बचा हुआ पानी वहीं बिखेरदिया। इस पर बापू नाराज हुए पर बोले कुछ नहीं। पूज्य बापू और सुशीला के संबंध पिता-पुत्री के समान थे। वे कई बार बापू के साथ उपहास विनोद कर आनंद मनाती थी। उधर बापू बचा हुआ पानी बिखेर देने पर नाराज और इधर सुशीला जी गंगा जी से एक बाल्टी और भरकर लाई तथा उनके सामने ही उसे भी बिखेर दिया। अब तो बापू चुप न रह सके तथा बोले बेटी! तुम्हें पानी इस तरह नहीं बिखेरना चाहिए, किफायत से पानी काम में लो। सुशीला जी बोली , बा...पू, पास ही गंगा जी बह रही हैं, आप तो पग-पग पर कंजूसी बरतते हैं, ऐसा भी कहीं होता है? बापू बोले बेटी, पानी प्रकृति की ओर से मिला हुआ मानरव के लिए अमूल्य उपहार है, भेंट है, इसे व्यर्थ नहीं गंवाना है, सोच समझकर जरूरत के अनुसार ही काम में लें, संयम बरतें। जब भोजन, वाणी, व्यवहार आदि में संयम का महत्त्वपूर्ण स्थान है, संयम बरता जाता है तो पानी के उपयोग में भी संयम बरता जाना चाहिए। पानी तो मानव जीवन में अनिवार्य आवश्यक वस्तु (अर्थशास्त्र की शब्दावली में) है, इसके प्रयोग में संयम बरतना ही चाहिए।

कहते हैं, इसके बाद सुशीला जी ने पानी के दुरुपयोग संबंधी किसी शिकायत का मौका बापू को नहीं दिया। आज जब भी पानी की कमी की एवं पानी प्राप्ति में कठिनाई की आवाज चारों ओर गूंज रही है तो क्या इस उदाहरण या दृष्टांत से कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता है? धैर्य के साथ शीतल मस्तिष्क से विचार कीजिए कि इस क्षेत्र में आपका क्या योगदान हो सकता है?

बी-186, आर.के. कॉलोनी, भीलबाड़ा (राज.)-311001

कविता

अधूरा सच

● डॉ. प्यार चन्द ठाकुर

एक दिन अचानक
हवा की मुलाकात पेड़ से हुई
दोनों आपसी रिश्ते की
गरिमा समझते थे
फ़र्क सिर्फ़ इतना कि
पेड़ का बसेरा धरती था
और हवा जमीन पर
पांव तलक न रखती
नया अनुभव जानने की ग़रज़ से
हवा ने पेड़ से कहा
हे कल्पतरु! तुम बड़े महान, विद्वान हो
मैं ठहरी अबोध, नासमझ, आवारा
घूमती रहती अपनी मस्ती में निरुद्देश्य
न जान पाई दुनिया के बदलते रंग
क्या तुम मुझे आज के परिवेश से
परिचित करवाओगे?
पेड़ बोला
आज दुनिया का रूप बड़ा निराला है
समझाना इसे टेढ़ी खीर नहीं
विष का भरा प्याला है
जान पाया हूं पर जितना मैं
तुम्हें सुनाता हूं, सुनो
भ्रष्टाचार
ऐसा हथियार है
जिससे भेदा जाता
'किस्मत' का अभेद्य दुर्ग

किस्मत
वह रखैल है जो
बड़ी तिजोरियों में
करती निवास, बिना 'विचार'

विचार
एक अंगारा है जिसे
नहीं मिलती खुराक
सुलगने तक, 'ज्ञान' की

ज्ञान
वह दैत्य है जो
अहम् के सहारे
निगल जाता है 'इनसानियत'

इनसानियत
एक राह है भटकी हुई
मुसाफिर तक, 'करुणा' विहीन

करुणा
वह कायरता है
जो छिप जाती
उगने के भय से, 'प्रेम' शून्य

प्रेम
घोर षड्यंत्र है
'सच्चाई' के विरुद्ध

सच्चाई
निर्वस्त्र अबला है
जिसे नहीं मिल पाता
मुकम्मल 'घर'

घर
एक इमारत है
जिसमें ढह चुकी रिश्तों की दीवारें
निवास करती जहां निस्पंद आत्माएं
'संवेदना' रहित

संवेदना
गहरी पीड़ा है
जिसकी कोई औषधि नहीं
'गांव' और 'शहर' में

गांव
ज़रिया है
पहाड़ पर पहुंचने का

शहर
नज़रिया है
'फ़ैशन' बदलने का

फ़ैशन
जिसे कभी हासिल
नहीं किया जाता
वह 'मंज़िल' है

मंज़िल
महज़ भ्रम है
'मन' का

और मन
ऐसा शोध है जो
कभी समाप्ति तक
नहीं पहुंचता।

अब तक पेड़ दार्शनिक
बन चुका था
मौसम संतप्त था
हवा भी विषाक्त हो चली थी
उसने गति में ही खैर समझी
और तब
भाग निकली
नदियों-नालों, कंदराओं
जंगलों, पर्वतों के उस पार
फिर कभी दोबारा मुड़कर
पेड़ से मिलन न हुआ
ताकि जाना जा सके आज का
अधूरा सच।

गांव नवाणी, डा. त्रिफालघाट
तह. सरकाघाट, जिला मंडी,
हिमाचल प्रदेश-175 034
मो. : 98057 86097

स्मृति

संस्कृति साहित्य व कला को पल-पल जीया प्रो. नरेंद्र अरुण

● अनु कंवर प्रतिभा



समाज में कुछ ऐसी शख्सियतें होती हैं जो प्रचार से कोसों दूर रहकर अपने रचनात्मक काम से अनवरत समाज की दिशा व दशा को साकारात्मकता देने में जुटी रहती हैं। आलोचना व निराशा जैसे शब्द उन लोगों का रास्ता नहीं रोकते बल्कि उनमें सृजन की नई प्रेरणा भर देते हैं। उन्हीं रचनाकारों की फेहरिस्त में एक नाम था प्रो. नरेंद्र अरुण का। प्रो. अरुण का जन्म सोलन जिले के छोटी विलायत यानी कुनिहार में 26 जनवरी 1939 को हुआ। प्रो. अरुण कुनिहार रियासत के आखिरी राजा राणा हरदेव सिंह के सबसे छोटे बेटे थे। कुनिहार भले ही रियासत थी लेकिन अंदाजा लगा सकते हैं कि आजादी से पहले ब्रितानवी हुकूमत के दौरान विकास किस हद तक इस क्षेत्र को भी छू पाया होगा कि यहां मैट्रिक तक की पढ़ाई पूरी करने के लिए स्कूल जरूर था। प्रो. अरुण की मेट्रिक की पढ़ाई सुबाथू स्कूल से हुई। लेकिन जब भी कुनिहार होते तो अरुण आस पड़ोस के बच्चों के साथ खूब रंग जमाते। जिन प्रो. नरेंद्र अरुण से हमारा परिचय बाद में हुआ, कुनिहार में उनके साथ बालकाल में खेलने वाले बच्चों को प्रो. अरुण की प्रतिभा की झलक उसी बालकाल में मिल चुकी थी। उन दिनों में नजदीकी रहे भाषा अकादमी के पूर्व उपाध्यक्ष और साहित्यकार-पत्रकार जगदीश शर्मा को आज भी उन दिनों की यादें ताजा है।

जगदीश शर्मा से प्रो. अरुण थोड़ा बड़े थे लेकिन उस दौर में छोटा बड़ा की ज्यादा अहमियत नहीं थी। छुट्टियों में जब भी खेलने का मौका मिलता तो सब बच्चे मिलजुल कर कोई भी खेल खेलते। जगदीश शर्मा बताते हैं कि ये उन दिनों की बात है कि उस वक्त हम लोगों ने मैट्रिक नहीं की थी। लेकिन उन दिनों में भी प्रो. अरुण कई बार मुहल्ले में पर्दे लगाकर स्टेज तैयार कर लेते। हम सभी को नाटक का कोई पात्र बना देते और फिर उस लघु नाटक का मंचन होता। लेकिन उस नाटक की कहानी और स्क्रिप्ट पहले प्रो. अरुण ने खुद तैयार करके रखी होती थी। जगदीश शर्मा कहते हैं कि हमें उस दौर में पता नहीं था कि ये सिर्फ प्रो. अरुण का शौक नहीं बल्कि वो प्रतिभा है जो बाद में हम सबको इस तरह प्रो. अरुण की रचनात्मकता की हमेशा याद दिलाती रहेगी। लेकिन कला-संस्कृति के प्रति ये लगाव प्रो. अरुण को घर से ही मिला। जगदीश शर्मा बताते हैं कि प्रो. अरुण के पिता राणा हरदेव सिंह खुद संगीत की अच्छी समझ रखते थे। जब कभी राणा हरदेव सिंह का मूड हरमोनियम बजाने का होता तो प्रो. अरुण तबले पर संगत देते। लेकिन प्रो. अरुण को तबले पर मामूली सी गलती पर पिता राणा हरदेव सिंह से झाड़ भी सुननी पड़ती। तो कह सकते हैं कि प्रो. अरुण को बचपन में कला-संस्कृति के प्रति लगाव घर में ही मिला।

वक्त बीता तो प्रो. अरुण मैट्रिक करके शिमला चले आए। यहां आए तो प्रभाकर में दाखिला लिया। फिर एफए और बीए करने के बाद पंजाब यूनिवर्सिटी से हिंदी में एमए की पढ़ाई पूरी की। यहां प्रो. अरुण के व्यक्तित्व का एक और पहलू भी जगदीश शर्मा सामने लाते हैं। ये वो पहलू है जो प्रो. अरुण से परिचित लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं। जगदीश शर्मा बताते हैं कि प्रो. अरुण हमसे थोड़ा बड़े थे लेकिन हमेशा हम लोगों का मार्गदर्शन करते रहे। बात उन दिनों की है कि जब मैंने मैट्रिक पूरी की तो प्रो. अरुण ने ही मुझे प्रभाकर का फार्म ये कहकर भरवाया कि अगर प्रभाकर उत्तीर्ण नहीं की तो ग्रेजुएशन नहीं कर पाओगे। मुझ जैसे कई लोगों के प्रभाकर के फार्म भरवाकर हमें एडमिशन लेने के लिए प्रेरित किया। जगदीश शर्मा कहते हैं कि प्रो. अरुण हमेशा आसपास के लोगों को प्रोत्साहित करके आगे बढ़ाने का हुनर जानते थे।

एमए हिंदी पूरी करने के बाद प्रो. अरुण ने हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय से हिंदी में एमफिल पूरी कर ली। बचपन का लिखने-पढ़ने का शौक कायम था लेकिन रोजी-रोटी के लिए नौकरी जरूरी थी। तो प्रो. अरुण ने वर्ष 1957 में हिमाचल पुलिस में सीधे

एएसआई भर्ती होकर आजीविका शुरू की। लेकिन हिंदी भाषा से लगाव और साहित्य के प्रति रूची पुलिस की नौकरी के दौरान बरकरार रही। पुलिस की अनुशासित और कठोर कही जाने वाली नौकरी में जो भी समय मिलता तो लिखने बैठ जाते। नाटक और कविता के साथ बचपन से जुड़ाव इस नौकरी के साथ भी फलता फूलता रहा। पुलिस की नौकरी के दौरान ही प्रो. अरुण का पहला नाटक 'बरासा रे फूल' प्रकाशित हुआ। नाटकों के साथ कविताएं लिखने का शौक अब उन्हें लोगों के बीच भी मशहूर कर चुका था। ऐसे में पुलिस की नौकरी करने वाले प्रो. अरुण को जब भी किसी कवि सम्मेलन में मौका मिलता तो अपनी लिखी रचनाएं साझा करने लगे। पुलिस की नौकरी करने वाले प्रो. अरुण की कवि के तौर पर समाज व मानवीय संबंधों पर पैनी व मानवीय सोच की तारीफ अब हर कवि सम्मेलनों से बाहर भी होने लगी। ऐसे ही किसी कवि सम्मेलन में प्रो. लालचंद प्रार्थी भी प्रो. अरुण की कविता और साहित्य के प्रति लगाव से परिचित हुए। प्रो. लालचंद प्रार्थी ने प्रो. अरुण को भाषा अकादमी में अनुसंधान सहायक यानी रिसर्च एसिस्टेंट के पद पर दो साल के डेपुटेशन पर बुला लिया।

प्रो. अरुण पुलिस महकमे से दो साल के डेपुटेशन पर भाषा अकादमी आ गए। अब यहां अपने शौक को पूरा करने के लिए प्रो. अरुण को पूरा समय मिला। शायद प्रो. अरुण को ऐसे ही अवसर की तलाश थी। जगदीश शर्मा बताते हैं कि ये वो दौर था जब प्रो. अरुण ने अनुसंधान के साथ अपने हुनर को पूरा समय दिया। नतीजा ये हुआ कि प्रो. अरुण की पहचान अब बहुविधा से संपन्न व्यक्तित्व के तौर पर हो चुकी थी। लेकिन अब वापस पुलिस महकमे में जाने की बजाय उन्होंने शिक्षा विभाग में बतौर कॉलेज लेक्चरर नियुक्ति ली। अब प्रो. अरुण साहित्य को ही अपना पूरा समय देना चाहते थे। यहां आकर लेखन के लिए मिले समय प्रो. अरुण कविता और नाटक तक सीमित नहीं रहे बल्कि कहानी, उपन्यास और रूपक भी लिखे। उन दिनों प्रदेश विश्वविद्यालय के युवा उत्सवों में उनके नाटकों का मंचन होता। कॉलेज में अपने नाटकों का निर्देशन प्रो. अरुण खुद करते। अपने छात्रों को भी नाटकों और साहित्य से जुड़ाव के लिए प्रेरित करते रहे।

फिर 1993 में शिक्षा विभाग से भी पूरा समय कला, संस्कृति, साहित्य व समाज की सेवा के लिए प्रो. अरुण ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली। अब प्रो. अरुण ने पूरा समय अपने शौक को पूरा करने के लिए समर्पित कर दिया। प्रो. अरुण ने अब डॉक्यूमेंटेशन में भी काम शुरू किया। वो हर विधा पर मजबूती और गहराई से काम करते। यही वजह थी कि साहित्य अकादमी से मिले पुरस्कारों में प्रो. अरुण उन लोगों में शामिल थे जिन्हें सबसे पहले ये सम्मान मिला। प्रो अरुण प्रदेश के ऐसे साहित्यकार व कवि थे जिन्होंने न केवल हिंदी व पहाड़ी साहित्य की रचना की बल्कि पहाड़ी भाषा को संवैधानिक दर्जा दिलाने के लिए भी वह हर पल प्रयासरत रहे। जगदीश शर्मा बताते हैं कि डॉ. वाई.एस. परमार और लालचंद प्रार्थी की अगली पीढ़ी में प्रो. अरुण जैसे लोग ही पहाड़ी भाषा के लिए संघर्ष करते रहे। इनके काव्य संग्रह रंग बिरंगे फूल को हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका था।

साहित्य विधा में अपने रचना कर्म में कई दशकों से जुड़े इस रचनाकार ने हिमाचली साहित्य एवं अन्यत्र जो प्रमुख रचनाएं दीं, उनमें प्रमुख हैं लदाख कनारे, बलिदान, कचनार, वापसी, एक थी बेटी, इतिहास वृक्ष, खेल खेल में, लालसा, से कवि बणया व युगमंथन। 160 लोकगीतों का संकलन मांडव्य भी प्रो. अरुण ने तैयार किया। नोबल पुरस्कार विजेता कवि रविंद्रनाथ टेगोर की कृति गीतांजलि का हिमाचली पहाड़ी अनुवाद का श्रेय भी प्रो. अरुण को जाता है। यही नहीं राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के महाकाव्य रश्मि-रथि का पुन्य-रथि के नाम से हिमाचली पहाड़ी में अनुवाद भी इन्होंने ही किया। इंदिरा गांधी मानव संग्रहालय भोपाल व भाषा अकादमी दिल्ली के लिए भी समय-समय पर वृतचित्र और लेख देते रहे।

दूरदर्शन शिमला के लिए भी इन्होंने लोक नाट्य, लोकगाथाओं पर अपने अनुभव और शोध के आधार पर कई वृतचित्र दिए। प्रदेश में होने वाले काव्य सम्मेलनों में उनकी मौजूदगी हमेशा रहती थी। हिमाचल कला, संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा आयोजित कार्यशालाओं, व्याख्यानों के अलावा सांस्कृतिक आयोजनों में प्रो. अरुण की हमेशा भागीदारी रही। जगदीश शर्मा बताते हैं कि प्रो. अरुण बहुत कठिन परिश्रमी और सच्ची लगन से काम करने वाले लोगों में से थे। वो खुद जमीन से जुड़े सहज-सरल इन्सान थे और उन्हें आगे ऐसे ही लोगों को आगे बढ़ाना अच्छा लगता था। उन्हें मलाल था तो बस इतना कि साहित्यकारों को अपने रचनात्मक कार्यों के लिए न ही सम्मान मिलता है और न ही सरकारी संस्थाओं से सहयोग। 12 कहानियों का संग्रह डोलमा अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

प्रजामंडल के जनक बाबू कांशीराम पर लिखी किताब भी लिखी। 14 जून की शाम कुनिहार में उनके पैतृक गांव थावना में हृदय गति रुकने से उनका देहांत हो गया। प्रो. अरुण की कविता की ये पंक्तियां न सिर्फ उनके जीवन को कैनवस पर उकेरने के लिए काफी है बल्कि उन्हें जानने-चाहने वालों को भी प्रेरणा देती रहेंगी।

...कुछ महाकाल की ज्वाला में मधुमास मनाया करते हैं
कुछ मिट्टी को सोना करके नवपुष्प उगाया करते हैं
नव निर्माण के कल्पित सपने भरते हैं कुछ नयनों में
कुछ रक्त कणों को संचित कर इतिहास बनाया करते हैं।

द्वारा सांख्यान भवन, लोअर टूटू, शिमला-171011

शास्त्री दीनानाथ गौतम की कविताएं

कौन राह दिखाने आया है

जीवन के इस संतप्त मरुथल में
जबकि प्यास हृदय की बढ़ चुकी है
और आस भी जल की मिट चुकी है
मिटने बढ़ने के इस क्रम में
प्यास बुझाने की उत्सुकता में
दुःख और सुख के संघर्ष में
मृत्यु जीवन के संधिस्थल में
दुःखी जीवन के मरुस्थल में
कौन जल सिंचने आया है?

जो चिरकाल से पथ भूल चुका
जो पथिकों की नज़रों से गिर चुका
दिशाएं जिसको शून्य मिलीं
हवाएं जिसको शुष्क मिलीं
विषम अगम्य घाटियां मिलीं
सुनसान भयंकर पहाड़ियां मिलीं
उस पथ-चर मनुज बेचारे को
आज कौन राह दिखाने आया?

जो वर्षों से मूर्ति शून्य पड़ा है
जो उपासकों को अमान्य हुआ
जिस पर आज तृणपुंज भरे हैं
जिस पर पहले जड़े हीरे थे
नितध्वनित होती थी शंखध्वनि
आज जहां शेष खंडहर ही है
उस विस्मृत पुराने मंदिर में
आज कौन दीप जलाने आ गया?

जहां पहले गुलाब खिले थे
जहां आनंदित होता था जन-मन
जहां कोकिला करती थी कू-कू
जहां भ्रमरों का था मधुगुंजन
आज वहां केवल सूनापन है
आवागमन नहीं जहां जन का
उस उजड़े से उपवन वीरान में
आज कौन कुसुम खिलाने आया है?

यह कौन है जो मेरी दुर्दशाओं पर
दोनों हाथ कानों पर धर कर हंस रहा है
यह कौन है जो वेष बदल करके
मुझको गर्त में डालकर दबाने आया है।

मुझे नहीं किसी से वैर और विरोध है
मैं अभी जिंदा हूं अपने आपको मरने नहीं दूंगा
न तो शिकवा शिकायत किसी से है
चूंकि शव परीक्षा अभी बाकी ही है
फिर भी भला गला घोंट कर ही
तब तक मुर्दे कफन उठा कर ही
कौन मुझको मरवाने को आया है
उसमें फिर जिंदा जान डाल दूंगा
आज कौन मुझे जलाने आया है?

मक्कार आगे बढ़ता रहा

मक्कार आगे बढ़ता रहा
मूल्य इनसान का घटता रहा।

गांव लूटता रहा, शहर सजता रहा
कोठियां बनती रहीं, कारें बढ़ती रहीं
ज़मीन ज़र ज़ोरों का जोड़ होता रहा
गरीब तो गरीब ही होता चला गया।

सब्ज-बाग के भ्रमजाल में खोता रहा हूं
हर बार चुनाव में दिशा भ्रमित होता रहा हूं
वह बेचारा किस्मत का मारा-मारा!
शराब की प्याली में बेहोश होता गया।

केवल एक रात दिवाली मनाकर ही
उमर भर बदकिस्मत रोता रहा है
यहां हर चीज बड़ी ही अजीब है
हर दाम बढ़े हैं गरीब-गरीब ही है।

आज यदि मूल्य घटा है दुनिया में
तो सिर्फ मनुष्यता का घटा है
मगर गद्दार आगे चढ़ता गया
और मक्कार आगे बढ़ता गया।

पूर्व विधायक, द्रंग-30, गौतम विहार, टांडू, डा. टांडू, तह. सदर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश-175 001, दूरभाष : 01905 266722

विद्या निर्गुड़कर की कविताएं

आंखें

तुम कुछ कहो या न कहो, आंखें सब बयां करती हैं
होठों से हंसी कितनी भी दिखे, मन में उदासी रहती है।
जुबां कुछ भी कहे लेकिन दिल का हाल छुपाती है
आंखें ना यूं झुकाओ घबराकर वरना बात अधूरी रह जाएगी।
जो बात है मन में तुम्हारे आंखों से बयां हो जाने दो।
आंखें पढ़ लेंगी, हाले दिल को, सुकून इस दिल को मिलने दो।
मत कहो जुबां से कुछ भी। आंखों को तुम कहने दो।
आंखें गर नम हो गईं तो, बात ना दिल की कह पाएगी
एहसान करो तुम मुझ पर इतना, दिल की बात बयां होने दो।
सुकूल दो दिलों को मिल जाए, ऐसा तुम कुछ हो जाने दो
दिल की बात दिल में न रखो, उसे मुझ तक आ जाने दो।
हम हमसफर हैं इक मंज़िल के, दूरियां इन्हें मिटाने दो।
होठों से हंसी कितनी ही दिखे, मन में उदासी रहती है।
तुम कुछ कहो या न कहो। आंखें सब बयां करती हैं।

मां का स्वप्न

मैं प्रतिबिम्ब देखती अपना, पोखर के इस गहरे पानी में
जीवन ठहरा सा दिख पड़ता, चूल्हा चौका और गोधन में।
अपना प्रतिरूप देखती तुझमें, जब देखती तुझे जाती कॉलेज में।
मैं ना पढ़ सकी दसवीं के ऊपर, तुझे चाहती मैं बनाना कलेक्टर।
तू बढ़े आगे सीढ़ी दर सीढ़ी, तभी अभिलाषा मेरी, होगी पूरी।
कष्ट कोई भी सह सकती हूं, दुःख कोई भी झूल सकती हूं।
तुझे मैं सहेजूं, जूही की कली सी, आंधी, तूफां कुछ भी आए
तुझपे आंच कोई न आने पाए। सपने मेरे तुम पूरे करना
बस आगे आगे ही बढ़ना, नारी जाती का मान बढ़ाना।
कोई न समझे तुझको अबला, तू जनम से ही है सबला।
निर्झर हो नदी सी बहना, सफल उद्देश्य जीवन में करना।
अपना प्रतिरूप देखती तुझमें, स्वप्न मेरा तू पूरा करना।

**निकट आईसीआईसीआई बैंक, काला पाठा रोड,
बैतूल, मध्य प्रदेश-460001**

कविता

पहाड़

● **निर्मला चंदेल 'नीरू'**

हरी भरी धरा के
विशाल सीने पर
सुसज्जित उभरे तीखे
नुकीले वक्ष से पहाड़।
झर-झर झरता रहता
दूधिया अमृत
शीतल मधुर
झरनों का 'नीर'
कल-कल करता
बहता रहता, बहता रहता
कितना प्यार लगता है
देखना, उनका पल-पल
बदलता स्वरूप
सुबह-शाम की
सुनहरी सोने सी
धूप में चमकते पहाड़
रात में चंदा की
चांदी जैसी शीतल
चांदनी में दमकते पहाड़
गगन के गालों को
छूते, चूमते
बादलों के आंचल को
सहलाते पहाड़
बर्फ की ठंडी आग में
जल कर रख हुए
कुशा की हरीतिमा को
तरसते काले-काले
नंगे पहाड़।

**रिपन, अस्पताल, शिमला, जिला शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171001**

समीक्षा

सामाजिक सरोकारों का दर्पण कहानी संग्रह : चिड़ियों का चोगा

● त्रिलोक मेहरा

'कहानी चाकलेट का टुकड़ा तो नहीं होती । वरिष्ठ कथाकार, साहित्येतिहास लेखक डॉ. सुशील कुमार फुल्ल सहज कहानी को परिभाषित करते हैं। वह रचना में कलात्मक सहजता एवं संश्लिष्टता के पक्षधर हैं। उन की कहानियों में एब्सट्रेक्ट आर्ट प्रत्यक्ष झलकता है, वे रेशमी तन्तु की झिलमिल हैं, जो पढ़ते समय उभरते हैं और ओझल होते हैं। कथा के तन्तु जोड़ने के लिए एक दबाव, एक एकाग्रता की जरूरत पड़ती है। एक भी वाक्य अनपढ़े नहीं छूटता। हर वाक्य का अपना अस्तित्व है। कतिपय कहानियों में हाइकू जैसी स्थिति भी प्रकट होती है। किसी पात्र की परतों को खोलते हुए समाज का एक संश्लिष्ट चित्रण प्रस्तुत करना समाज को आईना दिखाने का पर्याय है।

आलोच्य कहानी संग्रह 'चिड़ियों का चोगा ' डॉ. सुशील कुमार फुल्ल का रचना क्रम में तेरहवां कहानी संग्रह है, जिस में पच्चीस कहानियां संकलित हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इस का फलक बहुत विस्तृत है लेकिन इस में मूलतः समकालीन जीवन की जटिलताओं का सजीव चित्रण हुआ है। कहानियों के पात्र इतने सशक्त एवं बोल्ड हैं कि वे हाड़-मांस के पुतले लगते हैं, जो पाठकों से सीधा संवाद करने को व्याकुल लगते हैं। जोक कहानी लेखक एवं प्रकाश के खट्टे मीठे सम्बन्धे की यथार्थपरक, तीखी कहानी है। प्रकाशक के शब्द 'परसों नरसों' कुशलता से लेखक को लटकाए रखते हैं ।

आलोच्य कहानी संग्रह 'चिड़ियों का चोगा ' डॉ. सुशील कुमार फुल्ल का रचना क्रम में तेरहवां कहानी संग्रह है, जिस में पच्चीस कहानियां संकलित हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इस का फलक बहुत विस्तृत है लेकिन इस में मूलतः समकालीन जीवन की जटिलताओं का सजीव चित्रण हुआ है। कहानियों के पात्र इतने सशक्त एवं बोल्ड हैं कि वे हाड़-मांस के पुतले लगते हैं, जो पाठकों से सीधा संवाद करने को व्याकुल लगते हैं।

'टुच्चे लोग' कहानी में भौतिकतावादी भागम भाग में किसी को रिश्तों की क्या परवाह? बाहर वालों के साथ दिल्ली वालों का रिश्ता दिल्ली बार्डर तक ही होता है। सुतीक्ष्णा से सब तंग हैं । उस के शीघ्र अंत के लिए उस की डॉ. बहू तृष्णा चुपके से सास की श्वास नली ही खींच डालती है। बेटे के लिए बड़े पैकेज को तड़पती नरदेव पुत्र की नजर में विदेश में प्रसूता बहू के लिए नर्स से बढ़ कर कुछ भी नहीं। पालतू ' का नायक अपने ढंग से अपने विद्रोह को अभिव्यक्त करता है। वह आई ए एस अफसर की बेटी को फांस कर अपना प्रतिकार लेता है। अफसरों या राजनेताओं के सेवक कुत्ते आम आदमी बनने का सपना क्यों नहीं ले सकते? क्यों वे सदा पालतू ही बने रहें? 'देउता' कहानी में यह प्रतिपादित किया गया है कि आज के युग में देवता समझे जाने वाले डाक्टर राक्षस हो गए हैं। फिंटू के गुर्दो का खराब होना और पिता की चिन्ता परन्तु वह एक बेटे को बचाने के लिए जमीन जायदाद बेचने को तैयार नहीं होता। उस के दूसरे बेटे भी उस की हां में हां नहीं मिलाते। मंथरी राम के जब स्वयं काला मोतिया उतरता है, तभी उसे अपने मृत बेटे फिण्टू का मृत्यु पूर्व का आर्तनाद कचोटता है। एक बहुत ही मार्मिक कहानी, जो रुला देती है।

लेखक ने गद्दियों के जनजीवन पर भी कई चर्चित कहानियां लिखी हैं। 'बढ़ता हुआ पानी' एक ऐसी ही कहानी है। राशन डिपुओं का राशन पता नहीं कहां गायब हो जाता है । दूलो गद्दी भरी बरसात में न्यूगल खड्ड के किनारे बैठा पानी उतरने की प्रतीक्षा कर रहा है ताकि वह नदी के पार जा कर अपने भूखे बच्चों को खाना खिला सके। 'मेमना' लेखक की एक बहुचर्चित, राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कृत कहानी है, जिस में अतृप्त प्रेम की शाश्वत अनुभूति की अभिव्यक्ति है। नायिका फुलमां अल्हड़ गद्दी युवती है और छान्नू गुज्जर युवक है। वह पूरा वर्ष उस का इन्तजार करती है, उससे मिलने के लिए लालायित रहती है। जब उस का रेवड़ पहाड़ की तलहटी से गुज़रता है और छन्नू की भैंसे हरे घास के लिए आती हैं। वह उसे मिले बिना जाने के लिए अपने पिता घासी राम से प्रतिवाद करती है। गद्दियों में टोने टोटके अधिक प्रचलित रहे हैं। उन्हीं अन्ध विश्वासों पर आधारित कहानी है -फन्दा। चेले का लालच रिड़कू की प्राण

लीला ही समाप्त कर गया। कहानी का अन्त खून से लथपथ है। ठूंठ कहानी साधु-साध्वियों परम्परा पर कटाक्ष है। सम्पत्ति के लालच में गद्दी समाज अच्छी भली लड़की को साध्वी बना देता है अर्थात ठूंठ बना देता है, जो कभी फलता-फूलता नहीं। हाड़ मांस के शरीर में प्रेम राग का गुंजन बन्द नहीं हो जाता। अंबा आत्महत्या कर लेती है। बसन्ती और नाथ भटकते रहे आजीवन। पीएच. डी. की डिग्री लेने के लिए निदेशक की सेवा ही सर्वोपरि है। निदेशक के तिकड़म झेलने पड़ते हैं। 'यू सिंह लापता है' में बदनसीब पिता अपने लापता सैनिक बेटे की खोज खबर के लिए पिछले पच्चीस वर्षों से चिट्ठियां लिख रहा है।

अधिकारिओं और नेताओं से मिल रहा है। वह टूट गया है निराशा में। अन्त में मुख्यमंत्री से भी नहीं मिल पाता। अपंग फौजियों की समस्याओं पर आधारित कहानी है यह।

संग्रह में अलग अलग तेवर की कहानियां पुस्तक को बहुआयामी बना देती है।

खोपड़िया विदेश में विदेशी छात्रों के विरोध एवं उन के प्रति घृणा की कहानी है। डॉ. हड़कम्प शर्मा अपने तिकड़म के बल पर, मेधा के बल पर नहीं, विदेश जाने में सफल हुआ। माटी के खिलौने तो एक न एक दिन टूटते ही हैं लेकिन चमचमाते अस्पतालों में धनवानों की ही पूछ होती है। अस्पतालों में संवेदनहीनता एवं लापरवाही कर साम्राज्य है।' चिड़ियों का चोगा' में वृद्धावस्था की विवशताओं एवं मां बाप के प्रति सन्तान के उपेक्षा भाव पर गहरा कटाक्ष है। पुत्र वधु से आतंकित ससुर अपने भोजन में से चिड़ियों के लिए चुपके से चोगा निकाल कर अपनी दरी के नीचे छिपा कर रखता है। बहू इसे अनाज का दुरुपयोग समझती है। भावनाओं एवं परम्परा के अनुपालन की कथा है, जो संकेतों के माध्यम से बहुत कुछ कह जाती है। एक अन्य कहानी रिज पर फौजी में डेढ़ टांग चाला फौजी मारा मारा फिरता है। कहीं कोई सुनवाई नहीं।

'मीछव' ऐसी कहानी है, जो जनजातीय क्षेत्र के एक गांव क्बिड़ में घटती है। इस में दूसरा पति होने का दर्द चित्रित है। बहुपति प्रथा को लेकर लिखी यह कहानी संश्लिष्टता एवं प्रतीकों की सघनता के कारण दुरुह होते हुए भी बहु चर्चित रही है।

एक अलग ही दुनिया का परिवेश साकार हो उठता है। इस में रहस्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। वहां की प्रचलित मान्यताओं में अवगुंठित रहस्यमय वातावरण में बड़े भाई लाबजंग की मृत्यु पर छोटा भई तण्डुप नूर्ण पति कहलाने के लिए मीछव में प्रवेश कर पत्नी टुरी पर अधिकार पा कर ही सन्तुष्ट होता है। आधे अधूरे पति की मानसिकता को व्यक्त करती सुन्दर कहानी है।

कोहरा में विभाजन की विभिषिका का चित्रण है। इलाही के मन में अपने मित्र रत्न की बेटी एवं पत्नी को हथियाने का उन्माद है। साम्प्रदायिक द्वेष में उलझे हिन्दू मुस्लमान एक दूसरे को उजाड़ने पर तुले हैं। अविश्वास और अनिश्चय का कोहरा सब कुछ धुंधला देता है। फिरौती में संगणक केन्द्र में व्याप्त भ्रष्ट्याचार पर तीखा व्यंग्य है। शोधार्थियों की समस्याओं का यथार्थपाक रेखांकन हुआ है। कोई भिखारी जब तक जिन्दा है, बीमार है, उसे कोई नहीं पूछता पर ज्यों ही वह शव में परिवर्तित हो जाता है, उस की कीमत बढ़ जाती है और अस्पतालों को शव बेचने वाले लोग उसे गायब कर देते है। श्राद्‌ध पितरों को पिंडतर्पण नहीं बल्कि अपने गत जीवन का वृद्‌धावस्था में पुनरीक्षण करना ही श्राद्‌ध पढ़ना है। सरदारी लाल और फिर कुमार घुटन में हैं। डैड वुड। काश खुद ही अपनी चिता सुलगा पाते। जरते जर शव हो जाना.. आह जिन्दगी भी क्या नाटक है ? श्राद्ध के मन्त्र हैं। बेसीकली कहानी में निजी स्कूलों में अध्यापकों के शोषण की कहानी है। होरी की वापसी' किसानों के शोषण, पुलिस की रिश्वतखोरी और प्रशासन की अकर्मण्यता की रचना है। कि यह कहानी केरल विश्वविद्यालय के पाठयक्रम में भी प्रवेश कर गई है। ज़लजला कहानी कारगिल युद्ध की विभिषिका को मार्मिकता से रेखांकित करती है। पुत्र वीर गति को प्राप्त होता है तो मां बाप की मनःस्थिति कैसी हो सकती है, इस का चित्रण त्रासद पात्रों के अवतारना के साथ हुआ है। बार बार पढ़ने वाली कहानी है जलजला। जूठन, दसौंध और मुक्ति सामन्त शाही प्रवृत्ति के लोगों एवं निर्धन वर्ग के लोगों की जीवन शैली में विरोधाभास को रेखांकित करती है।

आलोच्य कहानी संग्रह भावनाओं के बवंडर को समेटता हुआ अन्ततः पाठक को वैचारिक स्तर पर झकझोरता है। डॉ. फुल्ल का रचना संसार बहुत विस्तृत एवं व्यापक है। लेखक मानव मन की अन्तर धाराओं को पकड़ने में दक्ष है और उन्हें कलात्मकता से प्रस्तुत करने में अद्‌भुत कुशलता का परिचय देता है। संग्रह में विषयगत विविधता है तथा परिपक्व अनुभूतियों की कुशल अभिव्यक्ति है। भाषागत सौष्ठव प्रभविष्णुता को द्विगुणित करता है।

पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

चर्चित पुस्तक :	चिड़ियों का चोगा
लेखक :	डॉ. सुशील कुमार फुल्ल
प्रकाशक :	विजया बुक्स 1-10753, सुभाष पार्क, गली नंबर 3, नवीन शाहदरा, दिल्ली
मूल्यः	350 रुपये,
प्रथम संस्करण	2013

भवारना, जिला कांगड़ा- 176083,
हिमाचल प्रदेश

पुस्तक समीक्षा

रोमांचकारी यात्राओं का संस्मरण 'पर्वतों के अंग-संग'

● डॉ. मनोज प्रीत

बहुमुखी सृजन प्रतिभा के सशक्त हस्ताक्षर धर्मपाल साहिल ने उपन्यास, कथा, कविता, बाल-साहित्य के साथ-साथ यात्रा-संस्मरण के क्षेत्र में भी उल्लेखीनय सृजनात्मक कार्य किया है। इसी संदर्भ में धर्मपाल साहिल का नव प्रकाशित यात्रा-संस्मरण 'पर्वतों के अंग-संग' में हिमाचल का जनजातीय क्षेत्र किन्नौर, लेह, लद्दाख एवं कश्मीर के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों की रोमांचकारी यात्राओं का रोचक एवं ज्ञान भरपूर वर्णन है। पुस्तक के पहले भाग में किन्नौर, लाहौल-स्पीति घाटियों की यात्रा को शिमला, कुफरी, चायल, रामपुर बुशहर, सराहन, सांगला, किन्नौर, रिकांगपिओ, काजा लोसर, कुंजुम दर्रा, रोहतांग, मनाली और कुल्लू तक की अत्यंत लोमहर्षक तथा विलक्षण अनुभवों से युक्त यात्रा को कलमबद्ध किया गया है। इसी प्रकार पुस्तक का दूसरा भाग कारगिल के पहाड़ों जहां टाइगर हिल को दुश्मनों के शिकंजे से मुक्त कराने हेतु अनगिनत भारतीय जवानों ने प्राणों की आहुति दी थी, को एक तरह से श्रद्धापूर्ण नमन है। पांगी घाटी लेह, द्रास, जोजीला पास जैसे अत्यंत दुर्गम पहाड़ी इलाकों में जान को हथेली पर रखते हुए, इस यात्रा का सूक्ष्म एवं यथार्थमय चित्रण किया है। धर्मपाल साहिल की लेखनी का कमाल यह है कि पाठक स्वयं को उन सभी क्षेत्रों में घूमता हुआ महसूस करता है जहां-जहां से होकर लेखक ने पर्वतीय यात्रा की है। यह यात्रा दौरान छोटे-छोटे अनुभवों तथा प्राकृतिक वातावरण को न सिर्फ आत्मसात करता है, बल्कि स्वयं को उनके अंग-संग ही महसूस करने लगता है। वहां का सारा परिदृश्य उसकी आंखों के समक्ष हू-ब-हू आ जाता है। पाठक का मन बार-बार उन्हीं घाटियों, हरी-भरी वादियों, टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों, ऊंची-नीची पगडंडियों पर घूमने को करने लगता है। पाठक उन स्थानों पर बिना शारीरिक रूप से पहुंचे न सिर्फ वहां की यात्रा का सुख प्राप्त कर लेता है बल्कि उसे वहां की भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जानकारी भी मिल जाती है।

पुस्तक इस प्रथम भाग में कुल अठारह अध्याय संग्रहित हैं, जो इस पहाड़ी प्रदेश के ख्याति प्राप्त पर्यटक स्थलों के साथ-साथ धार्मिक, साहसिक और ऐतिहासिक महत्त्व के स्थलों के यात्रा संस्मरणों एवं रोचक अनुभवों पर केन्द्रित है। यात्रा वृतांतों की विशेषता है कि इनमें वर्णित स्थलों के इतिहास और धार्मिक महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। उदाहरण के तौर पर पुस्तक में 'पर्वतों का राजा है शिमला' अध्याय में पहाड़ों की रानी एवं प्रदेश की राजधानी शिमला तथा इसके आस-पास के स्थलों के बारे में न केवल विस्तार से बताया गया है, बल्कि इन स्थलों से जुड़ी ऐतिहासिक घटनाओं और धार्मिक महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार अन्य अध्यायों में भी यात्रा वृतांत में उल्लेखित अधिकतर जगहों की वहां की संस्कृति, सभ्याचार, रहन-सहन के तौर-तरीकों व सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बारे में भी जानकारी जुटाई गई है। इससे प्रदेश के बाहर के पाठकों को पुस्तक के माध्यम से रू-ब-रू होने में काफी मदद मिलेगी।

इस यात्रा संस्मरण में लेखक ने कुछ क्षेत्रों की लोक संस्कृति के अनेक अनछुए पहलू स्पष्ट किए हैं, जिनसे यह यात्रा-संस्मरण और भी दिलचस्प एवं मूल्यवान बन पड़ा है। इस यात्रा संस्मरण में लेखक ने उन क्षेत्रों की लोक संस्कृति के अनेक अनछुए पहलू स्पष्ट किए हैं, जिनसे यह यात्रा संस्मरण और भी दिलचस्प एवं मूल्यवान बन पड़ा है। पुस्तक का मुख पृष्ठ बहुत ही सुंदर, आकर्षक और सार्थक है। हालांकि पुस्तक में यात्राओं से सम्बंधित कई रंगीन चित्र पुस्तक को और भी आकर्षण प्रदान करते हैं। लेकिन इन चित्रों को यदि सम्बंधित लेख के साथ दिया होता तो इनकी प्रासंगिकता और भी उत्कृष्ट होती।

पर्वतों के अंग-संग पुस्तक के लेखक का यह सराहनीय प्रयास है लेकिन कुछ जगह पर छोटी-छोटी कमियां भी हैं। भौगोलिक दृष्टि से विपरीत दिशाओं में स्थित कुछ स्थलों को एक ही मार्ग पर दर्शाया गया है जिससे पाठकों को भ्रम हो सकता है। (पृष्ठ-4 पर लेखक की पहली व दूसरी लाइन)।

पुस्तक में हिमाचल के किसी बाहरी लेखक द्वारा प्रदेश की सुंदरता व संस्कृति का चित्रण जिस तरीके से किया है, वह निस्संदेह काबिलेतारीफ है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि हिमालय की गोद में स्थित यह प्रदेश सदियों से यायावरों व ऋषि-मुनियों के आकर्षण का केंद्र रहा है। साहिल की कलम से निकले शब्द यहां की प्राकृतिक सुंदरता को बयान करते हैं।

5611, गली नं. 9, अर्जुन नगर,
निकट समराला चौक, लुधियाना, पंजाब

समीक्षा

एक मनोरम प्रस्तुति : नदी कहती है

● मनु स्वामी

कोई भी समर्थ कवि अपने लेखन में जहां ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है जो उसके भाव को व्यक्त करने में सक्षम होती हैं दूसरी ओर इन वस्तुओं के अनुरूप भावों को शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उपर्युक्त पहली स्थिति को विभाव पक्ष तथा दूसरी स्थिति को भाव पक्ष कहा है। इसमें यह महत्त्वपूर्ण है कि काव्य में जहां एक ही पक्ष का वर्णन रहता है, वहां भी दूसरा पक्ष अव्यक्त रूप में रहता है। इस प्रकार काव्य में विभाव पक्ष ही मुख्य है। भावों के प्रकृत आधार या विषय का कल्पना द्वारा पूर्व और यथातथ्य प्रत्यक्षीकरण कवि का पहला और आवश्यक काम है। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. पुष्पलता के समीक्ष्य कविता संग्रह 'नदी कहती है' की कविताओं से गुजरते हुए यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि वह काव्य के उपर्युक्त मानकों का निर्वहन करने में सफल रही हैं। संग्रह की कविता 'रात' का यह अंश देखें

'दो पर थी⁄ घड़ी की सूई
मुंह छिपाकर गायब था चांद।

कहीं तुम⁄ रो तो नहीं रहे थे
मेरी पीड़ा पर।' (पृ. 22)

इस संग्रह की कविताओं के केंद्र में 'प्रेम' है जो विभिन्न स्तरों-संबंधों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। यह 'प्रेम' अपने चरम पर दिखाई देता है। जब उसमें अध्यात्म का पुट भी शामिल हो जाता है। ऐसी कविताओं में कवयित्री की विलक्षणता अपने उत्कर्ष पर दिखती है। इस कड़ी में 'रहस्य' कविता देखें

'जी भरकर⁄ देखना, जानना
छूना, जीना⁄ पाना चाहती हूं तुम्हें
शर्त यही है तुम्हारी⁄ पहले वरण करना होगा
मृत्यु का⁄ इसीलिए आज तक
अदृश्य अविज्ञ⁄ अस्पर्शनीय, अवरणीय
और अप्राप्य रहे हो तुम। (पृ. 91)

डॉ. पुष्पलता की कतिपय कविताओं में उनके सहज, सरल, संवेदना से भरपूर मानस से परिचय होता है। ऐसी कविताओं में कविता 'अकसर' में जहां कवयित्री घर में ठुमकते, खेलते नन्हे चांद की कल्पना करती है, वहीं बालकनी पर उनसे चांद बतियाता भी है जिसे आगोश में लेने को वह आतुर हो उठती हैं। उनका कोमल कवि मन जब किसी सड़क को वाहनों-पथिकों द्वारा रौंदते हुए पाता है तो उठते धूल के बवंडर को देखकर उन्हें याद आ जाती है मां जो कभी खांसती, कभी शांत तो कभी निश्चेष्ट पड़ी है।

समाज में घट रहे विद्रूप भी डॉ. पुष्पलता की दृष्टि में आकर काव्य का रूप ले लेते हैं। 'दरिद्र नारायण' कविता में उनकी सात्विक फटकार समाज को झकझोरने में सक्षम है। इस ज्वलंत कविता में कवयित्री का आह्वान देखते ही बनता है

'वंदना करो उसकी⁄ सरेआम नहीं
तो मन ही मन⁄ आज तक किए उसके प्रति
अपने अपराधों⁄ दुर्व्यवहारों पर
शर्मिंदा होकर।⁄ जानते हो वह कौन है?
वह दुत्कारा हुआ⁄ दरिद्र नारायण है।' (पृ. 37)

भ्रूण-हत्या जैसे आपराधिक-अक्षम्य मुद्दों पर डॉ. पुष्पलता पूर्व में भी मुखर रही हैं। 'अधखिली कली' कविता पाठक को द्रवित करने में सक्षम है। इसे एक आंदोलन का रूप भी दिया जाना चाहिए। आखिर कल बहू कहां से आएगी जब हम आज बेटी को ही सुरक्षित नहीं रखेंगे।

संग्रह की अधिकांश कविताओं में प्रकृति का मनभावन चित्रण पाठक को अभिभूत करने में सक्षम है। इन कविताओं में डॉ. पुष्पलता की कलम का जादू देखते ही बनता है। यहां 'सूरज' कविता देखें

'शीतल हवाएं⁄ डूबता अंधेरा
फूटती किरणें⁄ चमकता उजाला

समीक्ष्य कृति :	'नदी कहती है' कविता संग्रह
लेखिका :	डॉ. पुष्पलता
प्रकाशक :	कुसुम प्रकाशन, 186 इंजीनियर्स कॉलोनी क्वार्सी बाईपास रोड, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश-202001
संस्करण :	2012 (प्रथम)
मूल्य :	200 रुपये
पृष्ठ :	95

उड़ते परिंदे/ सफर पर
निकल पड़ा है/ मन का सूरज।' (पृ. 30)

कवयित्री ने प्रकृति और मानव-मन की पीड़ा को कविताओं में सहज रूप से उकेरा है। इन कविताओं में उनका शब्द-संयोजन- कौशल पाठक को अभिभूत करने में सक्षम है। इस संदर्भ में 'अनंत' कविता का अंश देखें

'देह से/ मुक्त होकर तैरने लगती हूं
आकाश में/ पीड़ा के किनारों को तोड़कर
विहार करने लगती हूं/ आनंद के महासागर में।' (पृ. 4)

किसी भी कवि के लिए शब्दों पर नियंत्रण-संयम रखना परम आवश्यक है। संग्रह में कतिपय छोटी कविताएं भी हैं, जिनमें डॉ. पुष्पलता के शब्द-संयम की अद्‌भुत बानगी देखी जा सकती है। ऐसी ही कविता है 'तुम'

'उतर आया/ चांद तल में
उभर गया/ अक्स जल में
मुसकरा उठी/ झील पल में।
शायद/ दिल के झरोखे से
झांककर गए हो/ तुम।' (पृ. 20)

डॉ. पुष्पलता कथा साहित्य में भी अधिकारपूर्वक लेखन करती हैं। स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानियां प्रकाशित होती रहती हैं। हाल ही में प्रकाशित उनका व्यंग्य उपन्यास 'पृथ्वी पर नारायण' चर्चाओं में बना हुआ है। अकसर उनकी कहानियों में आंचलित शब्दावली का सार्थक उपयोग देखने को मिलता है। कुछ कहानियां तो विशुद्ध 'कौरवी' में ही लिखी गई हैं। उन्हें कविताओं में भी आंचलिकता का समावेश करना चाहिए। हमारी आंचलिक शब्दावली बेहद समृद्ध है। आशा है, डॉ. पुष्पलता की आगामी कविताओं में आंचलिक भाषा-शब्दावली का सौंदर्य भी देखने को मिलेगा। यूं भी समकालीन लेखन में आंचलिकता का प्रयोग महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यहां यह भी इंगित किया जाना समीचीन होगा कि डॉ. पुष्पलता अपने पूर्व कविता संग्रहों यथा ' मन का चांद', 'अरे बाबुल काहे को मारे' और खंड काव्य 'एक और अहल्या' से श्रेष्ठ कवयित्री का प्रमाण पत्र पा चुकी हैं। समीक्ष्य कविता संग्रह 'नदी कहती है' उन्हें समकालीन साहित्य जगत में शीर्ष-स्थापित कवयित्री के रूप में आलोचकों की स्वीकृति देगा निस्संदेह। संग्रह का सुधी पाठकों में भरपूर स्वागत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

46, अहाता औलिया, मुजफ्फरनगर,
उत्तर प्रदेश-251002

पाठकों से

प्रतिक्रियाएं ....

'हिमप्रस्थ' का बहुप्रतीक्षित मंडी जिला विशेषांक प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम आपको यह विशेषांक निकालने के लिए बधाई। कुल मिलाकरयह विशेषांक एक सद् और ईमानदार प्रयास कहा जा सकता है। अपनी सीमाओं में रहते हुए हिमप्रस्थ ने मंडी के इतिहास के कई अनजाने और अनछुए पहलुओं को स्पर्श किया है। फिर भी कुछ कमियां रहना स्वाभाविक है। इस विशेषांक में भी रह गई लगती हैं। पर यह मेरा अपना व्यक्तिगत आकलन है। आपने गागर में सागर भरने का पूरा प्रयास किया है। मंडी के कई नामी-गिरामी कलम मित्रों के लेख न पढ़कर हैरानी-सी हुई। इस अंक में जंजैहली घाटी के बारे में लिखने वाले दोनों लेखक घुमक्कड़ की दृष्टि से वहां गए हैं। सुझाव रहेगा कि भविष्य के किसी विशेषांक में एक लेखक की दो से अधिक रचनाएं संकलित न हों और दूरदराज के लेखकों को भी स्थान मिले।

हंसराज भारती, सरकाघाट, मंडी, हि. प्र.

'हिमप्रस्थ' का मंडी जिला विशेषांक मिला जिसे पढ़कर मंडी जिले की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर संबंधी संपूर्ण जानकारी मिली, जिसने इस अंक को संग्रहणीय बना दिया है। किसी शोधपत्र की भांति साहित्यिक पुस्तक रूपी यह अंक बहुत ही रोचक व ज्ञानवर्धक है। संपादकीय मंडल के सभी सदस्यों को साधुवाद।

प्रोमिला भारद्वाज, प्रबंधक, जिला उद्योग केंद्र, मंडी, हि. प्र.

हिमप्रस्थ फरवरी, 2014 का अंक मिला। बहुत पसंद आया। 25 जनवरी के अवसर पर 'मजबूत इरादों से खुशहाली की राह पर हिमाचल प्रदेश' विकासात्मक लेख रुचिकर व ज्ञानवर्धक रहा। डॉ. व्यथित द्वारा प्रस्तुत चंबा, लाहौल के पहाड़ी लोकगीतों की परंपरा और व्याख्या सुंदर रही। लेख, अमृता प्रीतम का रचना संसार, नरेश मेहता के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, स्वातंत्र्योत्तर काल के हिंदी नाटक बहुत अच्छे लगे। संवेदना और अजन्मी की पुकार कविताएं अच्छी रहीं। लघु कथाएं और तीनों कहानियां पसंद आई। यह अंक रोचक लगा। पत्रिका की सफलता के लिए शुभ कामनाएं।

केवल सिंह 'डलहौजी', डलहौजी, चम्बा, हि. प्र.

फरवरी, 2014 का अंक मिला। देखकर अच्छा लगा। कवर पेज सुंदर है। पत्रिका की साज-सज्जा ही सुंदर नहीं, इसमें दी गई सामग्री भी खूब रोचक, उपयोगी और साहित्यिक है।

साधु राम 'दशर्क' 169 संदेश विहार, दिल्ली-110034

हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 अगस्त, 2014 अंक : 5



प्रधान सम्पादक
राकेश शर्मा

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

आवरण एवं रेखांकन
सर्वजीत सिंह

कम्पोजिंग एवं प ष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्कः 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

भूल करना मनुष्य का स्वभाव है, लेकिन भूल को स्वीकार करना एवं वैसी भूल फिर न करने का प्रयास करना वीर होने का प्रतीक है।

– महात्मा गांधी

इस अंक में

लेख

फीचर

हमारे रचनाकार

कहानी

लघुकथा/प्रेरक प्रसंग

कविता/ग़ज़ल

समीक्षा

अपनी बात

पन्द्रह अगस्त का दिन हर भारतवासी की अन्तःचेतना से गहन रूप से जुड़ा है। यह ऐतिहासिक दिन महज एक तारीख न होकर, सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रीय पर्व है। वर्ष 1947 को इसी एतिहासिक दिन स्वतन्त्र भारत का उदय हुआ। देश के असंख्य स्वतन्त्रता सेनानियों और देश प्रेमियों के लम्बे संघर्ष व अनगिनत कुर्बानियों के पश्चात इसी दिन से हमें खुली हवा में आजादी के साथ जीने का हक मिला। विगत लगभग सात दशकों से हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और देश की विकास यात्रा अबाध गति से बह रही है। वैश्वीकरण, आर्थिक उदारीकरण और सांस्कृतिक परिवर्तन के जिस दौर से हम गुजर रहे हैं, उसमें हम स्वतन्त्रता के अधिकार को निजी स्वार्थ के रूप में इस्तेमाल करने लगे हैं। परिणामस्वरूप हमारी पारम्परिक सामाजिक मान्यताएं एवं वर्जनाएं न केवल ध्वस्त होती नज़र आ रही हैं बल्कि चिरस्थायी शाश्वत मूल्यों का भी पतन हो रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देश के विकास और आजादी के स्वरूप पर आत्मचिंतन और समीक्षा की नितांत आवश्यकता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ सामाजिक जीवन में स्वतन्त्रता व मुक्ति के निहितार्थ को समझने और जरूरत पड़ने पर इसे फिर से परिभाषित करने की जरूरत है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में हो रही निरन्तर प्रगति ने मानव जीवन को आसान बना दिया है और गैर-जरूरी मशक्कत से हमें छुटकारा दिलाकर हमारे दैनिक जीवन विशेषकर रहन-सहन को सुविधाजनक बना दिया है। कुछ हद तक हमारी रूढ़िवादी विचारध ाारा और संकीर्ण सोच में भी परिवर्तन आया है। इसका सुखद परिणाम यह हुआ है कि हमारी महिला शक्ति घर की चार-दिवारी से बाहर निकल कर जीवन के हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा रही है और विकास की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। इसका दूसरा पहलू यह भी है कि रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति ने संयुक्त परिवारों को एकल परिवारों में बदल दिया है, जिससे हमारा परम्परागत पारिवारिक ढांचा बिखर रहा है, परस्पर रिश्ते-नातों के बन्धनों से मुक्ति की छटपटाहट भी बढ़ रही है। यदि वैश्वीकरण से बाजार समृद्ध हुए हैं और युवाओं को भौगोलिक सीमाएं लांघकर अपना भविष्य संवारने के लिए व्यापक फलक मिला है तो इससे नौजवान पीढ़ी में सामाजिक वर्जनाओं से मुक्ति पाने की लालसा भी बढ़ी है। लोकतन्त्र द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति की आजादी का तो हम भरपूर फायदा उठा रहे हैं। लेकिन साथ ही हम अपने मौलिक दायित्वों से बचने या उनसे दूर भागने का भी अवांछित प्रयास कर रहे हैं। सोचने वाली बात यह है कि इस अभिव्यक्ति को हम किस तरह से अमल में लाते हैं। किसी भी सरकार, संस्था अथवा किसी घटना विशेष का विरोध करना हमारा लोकतांत्रिक अधिकार है। इससे सरकारी तंत्र के दुरुपयोग अथवा सरकारी अकर्मण्यता से आम जनता को होने वाली परेशानी और असुविधा को दूर करने में सहायता मिलती है। लेकिन इस अधिकार का प्रयोग यदि विवेकपूर्ण तरीके से न किया जाए तो यह अधिकार ही अभिशाप बन जाता है। आजादी के नाम पर आक्रोश दिखाने के लिए आवेश में आकर सरकारी सम्पत्ति, वाहन, व्यापारिक संस्थानों-परिसर व दुकानों और कभी-कभी तो बहुमूल्य जीवन को ही दाव पर लगा देते हैं। ऐसे में भीड़ या जाम में फंसकर आम लोग, राहगीर, दुर्घटनाओं में गंभीर रूप से घायल व मरीज न केवल परेशान होते हैं बल्कि भीड़ तन्त्र के ऐसे तानाशाही रवैये के कारण कई बार तो वे दम तक तोड़ देते हैं। ऐसी कोई भी आजादी जो आपको जिम्मेवारी या जवाबदेही से ही मुक्त कर दे, वास्तव में वह आजादी नहीं, निरंकुशता है। जवाबदेही घर के प्रति हो, अपने कार्यक्षेत्र के प्रति या देश के प्रति उससे किसी भी सूरत में मुक्ति की आजादी संभव नहीं है। 1857 की क्रांति ने भारतीय समाज में आजादी के जो बीज बोए थे, वे नब्बे साल बाद वर्ष 1947 में स्वाधीनता संग्राम के विजयोपरान्त अंकुरित हुए और आज वही आजादी रूपी पौधा फल-फूल रहा है जिसकी रक्षा और सुरक्षा करना हर भारतवासी का परम कर्तव्य है। आजादी के इस राष्ट्रीय पर्व पर हमें राष्ट्र के प्रति समर्पित भाव से कार्य करने की प्रेरणा लेकर कार्य करना होगा तभी भारत को एक सशक्त राष्ट्र बनाने का सपना साकार होगा।

–सम्पादक

68वां स्वतंत्रता दिवस

आत्मनिर्भरता व समृद्धि की राह पर हिमाचल

वीरभद्र सिंह
मुख्य मंत्री हिमाचल प्रदेश

आज हम अपनी स्वाधीनता की 67वीं वर्षगांठ मना रहे हैं। राष्ट्रीय उत्सव के इस पावन अवसर पर मैं समस्त देशवासियों, विशेष रूप से हिमाचल प्रदेश के लोगों को हार्दिक बधाई देता हूं। इस अवसर पर हम अपने राष्ट्रीय ध्वज को नमन करते हुए गौरवान्वित अनुभव करते हैं। हम इस पुनीत अवसर पर उन महान स्वतंत्रता सेनानियों के सर्वोच्च बलिदान का भी श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं, जिनके देश प्रेम और संघर्षों के कारण हमें स्वाधीनता मिली। आज हम उन सभी बहादुर जवानों तथा नागरिकों को भी नमन करते हैं, जिन्होंने राष्ट्र की एकता व अखंडता के लिए अपने प्राणों की आहूति दी। हम उन वीर सैनिकों, अर्द्ध सैन्य बलों के जवानों तथा पुलिस कर्मियों को भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, जिन्होंने आतंकवाद व विघटनकारी ताकतों से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहूति दी, ताकि हमारा राष्ट्रीय ध्वज ऊंचा लहराता रहे।

स्वतंत्रता सेनानियों, शहीदों तथा महान नेताओं की प्रेरणा और दृष्टि से मार्गदर्शन ग्रहण करते हुए भारत के लोगों ने 67 वर्ष पूर्व एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अपनी विकास यात्रा का शुभारम्भ किया था। हिमाचल प्रदेश के लोगों ने भी स्वाधीनता संग्राम तथा उसके उपरांत देश की एकता व अखंडता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 'प्रजामंडल आंदोलन', 'धामी गोलीकांड', 'पझौता आंदोलन' तथा 'सुकेत सत्याग्रह' जैसे संघर्षों ने प्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन को नई गति दी। प्रदेश के अनेक वीर देश को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने के लिए आज़ाद हिन्द फौज में शामिल हुए। अनेक राष्ट्रीय नेता समय-समय पर स्वाधीनता का संदेश देने हिमाचल आए और प्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन के लिए रणनीति बनाई।

स्वाधीनता प्राप्ति के ठीक आठ महीने बाद, हिमाचल प्रदेश 30 पहाड़ी रियासतों के विलय के साथ अस्तित्व में आया। उस समय हिमाचल प्रदेश गरीबी, पिछड़ेपन व निरक्षरता की तस्वीर थी, परन्तु प्रदेश के मेहनतकश एवं ईमानदार लोगों ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से इन बाधाओं को पार किया और देशवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हम विकास पथ पर आगे बढ़े। प्रदेश में विकास धीरे-धीरे परन्तु निरंतरता से गति पकड़ने लगा। तब से प्रदेश ने विकास पथ पर एक लंबी व गौरवपूर्ण यात्रा तय की है। कांग्रेस के नेतृत्व वाली केन्द्र सरकारों के सतत् सहयोग और मार्गदर्शन से प्रदेश को उचित आकार और दर्जा प्राप्त हुआ।



प्रदेश की वर्तमान कांग्रेस सरकार ने 25 दिसम्बर, 2012 को कार्यभार सम्भाला और जिसके साथ हिमाचल प्रदेश में आर्थिक स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता के नये युग का सूत्रपात हुआ। सत्ता सम्भालने के उपरान्त प्रदेश सरकार के सम्मुख सबसे बड़ा कार्य प्रदेश की बिगड़ी आर्थिकी को पटरी पर लाना था। हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक नागरिक को स्वच्छ, पारदर्शी, नागरिक मित्र व दक्ष प्रशासन प्रदान करने को प्रदेश सरकार ने प्राथमिकता दी तथा भ्रष्टाचारमुक्त प्रशासन देने की प्रतिबद्धता दिखाई।

समाज के सभी वर्गों का कल्याण तथा प्रदेश के सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास हमारी सरकार का मुख्य उद्देश्य है। लगभग डेढ़

वर्ष के वर्तमान कार्यकाल में, हमने समाज के प्रत्येक वर्ग को लाभ पहुंचाने के प्रयास किए तथा आम आदमी सरकार की नीति व नियोजन का केन्द्र बिन्दु रहा है। हमारा प्रयास समाज के कमज़ोर वर्गों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान को सुनिश्चित बनाना है।

सभी को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना हमारी सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता है। प्रदेश में वृद्धों, विधवाओं तथा विकलांगों को दी जाने वाली सामाजिक सुरक्षा पेंशन को 450 रुपये से बढ़ाकर 550 रुपये प्रतिमाह किया गया है। 80 वर्ष से अधिक आयु के वृद्धजनों को 1000 रुपये की सामाजिक सुरक्षा पेंशन दी जा रही है। कल्याण योजनाओं के तहत लाभ प्राप्त करने की वार्षिक आय सीमा को सरकार ने 20 हज़ार रुपये से बढ़ाकर 35 हज़ार रुपये किया है, ताकि अधिक से अधिक लोग इन योजनाओं का लाभ उठा सकें। प्रदेश में सभी आवासहीन निर्धन व्यक्तियों को घर प्रदान करने के लिए प्रदेश सरकार द्वारा पात्र व्यक्तियों को शहरी क्षेत्रों में दो बिस्वा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में तीन बिस्वा ज़मीन मुफ्त उपलब्ध करवाई जा रही है। इंदिरा आवास योजना तथा राजीव आवास योजना के अंतर्गत आवास निर्माण के लिए दी जाने वाली वित्तीय सहायता को 48,500 रुपये से बढ़ाकर 75,000 रुपये किया गया है। अन्य पिछड़ा वर्ग की क्रीमी-लेयर की वार्षिक आय सीमा को 4.50 लाख रुपये से बढ़ाकर 6 लाख रुपये किया गया है।

समाज में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए प्रदेश सरकार आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में नीति निर्धारण में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित बना रही है। प्रदेश में महिलाओं के सम्बन्ध में नीतियों एवं मामलों की समीक्षा के लिए एक उच्च-स्तरीय महिला कल्याण बोर्ड का गठन किया गया है। लोगों को महिलाओं के नाम पर सम्पत्ति हस्तांतरित करने के लिए प्रोत्साहित करने व उनके सशक्तीकरण के लिए महिलाओं के नाम पर भू-हस्तांतरण पर केवल 4 प्रतिशत स्टाम्प शुल्क लिया जा रहा है, जबकि पुरुषों से 6 प्रतिशत स्टाम्प शुल्क लिया जाता है। प्रदेश सरकार द्वारा मुख्यमंत्री कन्यादान योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली सहायता राशि को 21,000 से बढ़ाकर 25,000 रुपये किया गया है। इसी प्रकार, अंतर्जातीय विवाह के लिए वित्तीय सहायता को 25,000 से बढ़ाकर 50,000 रुपये किया गया है।

हिमाचल प्रदेश देश के उन कुछेक अग्रणी राज्यों में है, जहां सभी को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए राजीव गांधी अन्न योजना लागू की गई है। योजना के तहत लगभग 37 लाख लोगों को हर महीने 3 किलो गेहूं 2 रुपये प्रति किलो और 2 किलो चावल 3 रुपये प्रति किलो प्रति व्यक्ति की दर से उपलब्ध करवाया जा रहा है। प्रदेश के सभी बी.पी.एल. परिवारों को पहले की तरह प्रतिमाह प्रति परिवार 35 किलो राशन उपलब्ध करवाया जा रहा है। कांग्रेस सरकार द्वारा अपने विगत कार्यकाल में राज्य खाद्यान्न उपदान योजना आरम्भ की गई थी, जिसके तहत सभी उपभोक्ताओं को तीन दालें, दो खाद्य तेल व नमक उपदानयुक्त दरों पर उपलब्ध करवाना शुरू किया था। प्रदेश सरकार ने इस योजना के अन्तर्गत चालू वित्तीय वर्ष के दौरान 220 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है।

प्रदेश में पढ़े-लिखे बेरोज़गार युवाओं के कौशल विकास के लिए सरकार द्वारा कौशल विकास भत्ता योजना-2013 आरम्भ की गई है। योजना के अंतर्गत उनके कौशल विकास के लिए एक हज़ार रुपये का मासिक भत्ता दिया जा रहा है तथा शारीरिक रूप से अक्षम युवाओं को 1500 रुपये प्रति माह का भत्ता दिया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत आयु की पात्रता सीमा 16 से 35 वर्ष के बीच रखी गई है, जबकि इसके लिए शैक्षणिक योग्यता आठवीं पास निर्धारित की गई है। प्रदेश सरकार ने मिस्त्री, बढ़ईगिरी, प्लम्बर आदि व्यवसायों में कौशल विकास भत्ता प्राप्त करने के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता में छूट दी है, ताकि अधिक से अधिक युवा इस योजना का लाभ उठा सकें।

हिमाचल प्रदेश मूलतः एक ग्रामीण प्रदेश है, जहां लगभग 90 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। इसलिए प्रदेश सरकार की नीतियां एवं कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की ओर लक्षित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोज़गार के अवसर उपलब्ध करवाने के लिए 100 करोड़ रुपये की डॉ. वाई. एस. परमार किसान स्वरोज़गार योजना आरम्भ की गई है। इस योजना के अंतर्गत 8.30 लाख वर्गमीटर क्षेत्र में 4700 पॉलीहाउस लगाए जा रहे हैं। प्रदेश सरकार द्वारा गत वर्ष मुख्यमंत्री आदर्श कृषि गांव योजना आरम्भ की गई थी, जिसके अंतर्गत इस वर्ष प्रत्येक विधान सभा क्षेत्र की एक-एक अतिरिक्त पंचायत को शामिल किया गया है। इन पंचायतों में कृषि क्षेत्र में ढांचागत विकास के लिए 10-10 लाख रुपये प्रदान किए जा रहे हैं।

हिमाचल प्रदेश की एक बड़ी जनसंख्या के सामाजिक-आर्थिक विकास में बागबानी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रदेश सरकार का प्रयास है कि राज्य में बागबानी उत्पादन को वैश्विक स्तर पर लाया जाए। बागबानी फसलों को ओलों से बचाने के लिए 80 प्रतिशत उपदान पर एंटी-हेलनेट उपलब्ध करवाए जा रहे हैं। प्रदेश सरकार ने इस वर्ष 'स्टैंडर्ड यूनिवर्सल कार्टन' आरम्भ करने का निर्णय लिया है, ताकि मंडियों में बागबानों को सेब के उचित दाम मिल सकें और उन्हें बिचौलियों से बचाया जा सके। प्रदेश सरकार द्वारा सेब, आम, किन्नू, माल्टा तथा गलगल के समर्थन मूल्य में 50 पैसे प्रति किलो की वृद्धि की गई है।

राज्य सरकार प्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ करने के प्रति वचनबद्ध है। राजीव गांधी पंचायत सशक्तीकरण अभियान के अन्तर्गत 55 करोड़ रुपये की राशि स्वीकृत की गई है। इस योजना के अन्तर्गत पंचायतों के बेहतर कार्यान्वयन के लिए उन्हें

1333 लैपटॉप उपलब्ध करवाए जाएंगे। राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों के मानदेय में भी सम्मानजनक वृद्धि की गई है। सरकार ने पंचायत सहायकों के 245 पद भरने का निर्णय लिया है। पंचायत सहायकों के मानदेय को 5910 रुपये से बढ़ाकर 7000 रुपये प्रतिमाह किया गया है। पंचायतों में कम्प्यूटर ऑपरेटरों के 75 पद भरे जा चुके हैं, जबकि ई-पंचायत मिशन मोड प्रोजेक्ट के कारगर कार्यान्वयन के लिए कम्प्यूटर ऑपरेटरों के 3243 पद स्वीकृत किए जा रहे हैं।

शिक्षा किसी भी समाज को सशक्त व जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए सरकार ने इस क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए शिक्षा क्षेत्र के लिए 4282 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं। सरकार का प्रयास है कि हिमाचल प्रदेश को देश के 'ज्ञान राज्य' के रूप में विकसित किया जाए। प्रदेश के सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों को राज्य पथ परिवहन निगम की बसों में घर से स्कूल तक आने-जाने की निःशुल्क यात्रा सुविधा प्रदान की जा रही है। सरकार के वर्तमान कार्यकाल के दौरान प्रदेश में 693 से अधिक स्कूल खोले गए या उनका दर्ज़ा बढ़ाया गया है। युवाओं को उच्च शिक्षा सुलभ बनाने के लिए प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर 14 नए डिग्री कॉलेज खोले गए हैं।

आई.आई.टी तथा एम्ज़ जैसे प्रतिष्ठित राष्ट्रीय संस्थानों में स्नातक पाठ्यक्रमों तथा आई.आई.एम. के स्नातकोत्तर/डिप्लोमा पाठ्यक्रमों में दाखिला पाने वाले प्रदेश के विद्यार्थियों को सरकार द्वारा 75,000 रुपये की एकमुश्त प्रोत्साहन राशि दी जा रही है। राजीव गांधी डिजिटल विद्यार्थी योजना के अंतर्गत इस वर्ष 10वीं तथा 12वीं कक्षाओं के 7,500 होनहार विद्यार्थियों को निःशुल्क नेटबुक्स दी जा रही हैं।

प्रदेश सरकार लोगों को घर-द्वार पर विश्वसनीय एवं बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए वचनबद्ध है। प्रदेश में विभिन्न स्थानों पर 49 नए स्वास्थ्य संस्थान खोले गए हैं, ताकि लोगों को उनके घर के समीप बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हो सकें। इस अवधि के दौरान डॉक्टरों व अन्य पैरा मेडिकल स्टाफ के 638 पद भरे गए हैं तथा 719 पदों को भरने की प्रक्रिया जारी है। सरकार द्वारा चम्बा, हमीरपुर तथा नाहन में मेडिकल कॉलेज खोलने का निर्णय लिया गया है। मंडी ज़िले के नेरचौक में ई.एस.आई. मेडिकल कॉलेज व अस्पताल खोला गया है। प्रदेश में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत सफाई कर्मचारियों, कूड़ा बीनने वालों तथा रिक्शा व टैक्सी चालकों को भी शामिल किया गया है।

प्रदूषण-मुक्त पर्यावरण, प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, निर्बाधित विद्युत आपूर्ति, बेहतर अधोसंरचना, आकर्षक प्रोत्साहन तथा उत्तरदायी प्रशासन कुछ ऐसे आकर्षण हैं, जो हिमाचल प्रदेश को औद्योगिक निवेशकों के लिए एक पसंदीदा निवेश स्थल बनाते हैं। 'निमंत्रण से निवेश' प्रदेश सरकार का निवेश आकर्षित करने का मूल मंत्र है। प्रदेश के उद्योग विभाग में 'निवेश प्रोत्साहन प्रकोष्ठ' स्थापित किया गया है। राज्य में राज्य स्तरीय एकल खिड़की स्वीकृति एवं अनुश्रवण प्राधिकरण का गठन किया गया है, जिसके द्वारा नए उद्योगों की स्वीकृतियां एक ही आवेदन पर 90 दिनों के भीतर दी जा रही हैं। प्रदेश सरकार के वर्तमान कार्यकाल के दौरान 93 नई औद्योगिक इकाइयों को स्वीकृति दी गई है, जिनमें लगभग 6690 करोड़ रुपये का निवेश होगा और 8325 से अधिक युवाओं को रोज़गार उपलब्ध होगा। विशेष प्रोत्साहन के रूप में 300 से अधिक हिमाचलियों को रोज़गार देने वाले उद्योगों से पांच वर्षों तक केवल 2 प्रतिशत विद्युत शुल्क लिया जाएगा। इसके अतिरिक्त, प्रदेश में नये उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए स्टाम्प शुल्क तथा भूमि प्रयोग हस्तांतरण शुल्क की वर्तमान दर में 50 प्रतिशत कटौती की गई है। प्रदेश में ऊना, कांगड़ा तथा सोलन जिलों में अत्याधुनिक औद्योगिक क्षेत्र विकसित किए जा रहे हैं। सोलन ज़िले के बद्दी में 147 करोड़ रुपये की लागत से एक टूल रूम की स्थापना की जा रही है। इसके अलावा, ऊना जिले में 200 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से निजी क्षेत्र में एक फूड पार्क की स्थापना की जा रही है।

हिमाचल प्रदेश में लगभग 23000 मेगावाट की जलविद्युत क्षमता उपलब्ध है। अभी तक इसमें से केवल 8432 मेगावाट क्षमता का ही दोहन हो पाया है। प्रदेश सरकार का प्रयास है कि इस क्षमता का पूर्ण दोहन सुनिश्चित बनाया जाए, ताकि प्रदेश को इसके समुचित लाभ मिल सकें। वर्तमान वित्त वर्ष के दौरान प्रदेश सरकार द्वारा 2000 मेगावाट अतिरिक्त बिजली के दोहन का लक्ष्य रखा है। घरेलू उपभोक्ताओं को सस्ती दरों पर बिजली उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सरकार द्वारा विद्युत दरों में कमी की गई है तथा घरेलू उपभोक्ताओं को उपदानयुक्त दरों पर बिजली प्रदान करने के लिए 330 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं।

पर्यटन, निवेश व रोज़गार सृजन के माध्यम से आर्थिक रूपांतरण लाने का एक महत्वपूर्ण घटक है। प्रदेश सरकार राज्य की पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना सतत् पर्यटन विकास को प्राथमिकता दे रही है। इसके लिए, प्रदेश सरकार द्वारा सतत् पर्यटन नीति-2013 तैयार की गई है। धर्मशाला (कांगड़ा घाटी) के लिए एक अलग पर्यटन कार्ययोजना तैयार की गई है। इसी प्रकार किन्नौर तथा लाहौल स्पीति के लिए भी शीघ्र ही सतत् पर्यटन कार्ययोजना तैयार की जाएगी। प्रदेश सरकार राज्य में चिन्हित स्थानों पर रज्जु मार्ग परियोजनाओं पर भी बल दे रही है। कांगड़ा ज़िले के हिमानी-चामुंडा तथा शिमला के मालरोड में टूटीकंडी से लिफ्ट तक रज्जु मार्ग स्थापित करने के लिए तकनीकी आर्थिक व्यवहार्यता अध्ययन किया जा रहा है।

प्रदेश में सभी जनगणना गांवों को स्वच्छ पेयजल सुविधा

प्रदान की गई है। प्रदेश सरकार का प्रयास है कि राज्य की सभी बस्तियों को चरणबद्ध रूप से प्रति व्यक्ति 70 लिटर पानी प्रतिदिन उपलब्ध करवाया जाए। इसके अन्तर्गत, वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान 2500 बस्तियों को शामिल किया गया है। शिमला में 'वाटर एटीएम' की स्थापना की गई है। प्रदेश के अन्य महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थलों पर भी 'वाटर एटीएम' लगाए जाएंगे। प्रदेश के सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप ऊना ज़िले के लिए 922 करोड़ रुपये की स्वां नदी तटीकरण परियोजना तथा कांगड़ा जिले की इंदौरा तहसील में 180 करोड़ रुपये की छौंछ खड्ड तटीकरण परियोजना स्वीकृत की गई है।

हमारी सरकार ने राज्य में नई सड़कों के निर्माण तथा मौजूदा सड़कों के रख-रखाव को विशेष प्राथमिकता दी है। प्रदेश में कुल 33,325 किलोमीटर सड़कों का सुदृढ़ नेटवर्क उपलब्ध है। प्रदेश की कुल 3243 पंचायतों में से 3027 पंचायतों को सड़कों से जोड़ा जा चुका है, जबकि शेष 216 पंचायतों को सड़कों से जोड़ने का कार्य प्रगति पर है। प्रदेश सरकार ने 1157 किलोमीटर लम्बाई की 9 प्रमुख सड़कों को राष्ट्रीय उच्च मार्ग घोषित करने का मामला केन्द्र सरकार से पुरज़ोर तरीके से उठाया है। कीरतपुर-नैरचौक को फोर-लेन करने का कार्य प्रगति पर है, जबकि वन एवं भू-अधिग्रहण सम्बन्धी मामलों के पूरा होते ही परवाणु-शिमला मार्ग पर फोर-लेन का कार्य आरम्भ कर दिया जाएगा।

प्रदेश सरकार ने राज्य में सड़क परिवहन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। राज्य सरकार लोगों को प्रदेश के सुदूर कोने तक बेहतर परिवहन सेवाएं प्रदान कर रही है। राज्य पथ परिवहन निगम के बेड़े में 500 नई बसें शामिल की गई हैं। इसके अतिरिक्त, जवाहरलाल नेहरू शहरी नवीकरण मिशन के अन्तर्गत प्रदेश के लिए 800 नई बसें स्वीकृत की गई हैं। राज्य पथ परिवहन निगम द्वारा प्रदेश के जलाशयों में वैकल्पिक परिवहन व्यवस्था आरम्भ करने की संभावनाओं का पता लगाया जा रहा है। आरम्भ में महाराणा प्रताप बांध, गोविंद सागर जलाशय तथा चमेरा जलाशय में नौकाएं चलाई जाएंगी।

प्रदेश सरकार राज्य की बहुमूल्य वन-संपदा के संरक्षण तथा इसे और बढ़ाने के लिए प्रयासरत है। प्रदेश सरकार के इन प्रयासों के सार्थक परिणाम आए हैं और प्रदेश के वन क्षेत्र में आशातीत वृद्धि हुई है। यूनेस्को द्वारा हिमाचल प्रदेश के ग्रेट हिमालयन नैशनल पार्क को विश्व धरोहर स्थल घोषित किया गया है। वन्य प्राणी शरण्य स्थलों की परिधि में रहने वाले लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए वन्य प्राणी शरण्य स्थलों का युक्तिकरण किया गया है तथा प्रदेश के 775 गावों को वन्य प्राणी संरक्षित क्षेत्रों से बाहर किया गया है, जिससे लगभग 1.14 लाख लोग लाभान्वित हुए हैं।

भवन निर्माण, घरों की मरम्मत तथा गौशाला के निर्माण के लिए ईमारती लकड़ी प्राप्त करने में लोगों को आ रही समस्या के दृष्टिगत राज्य सरकार ने टी.डी. के अधिकार बहाल किए हैं। अब नए मकान बनाने के लिए 15 वर्षों में तथा पुराने मकान की मरम्मत के लिए 5 वर्ष में एक बार टी.डी. देने का निर्णय लिया गया है, जबकि पहले भवन निर्माण के लिए 30 वर्ष में तथा मुरम्मत के लिए 15 वर्षों में एक बार टी.डी. लकड़ी दी जाती थी। प्रदेश सरकार ने जंगली जानवरों द्वारा क्षति के मुआवजे की राशि में भी वृद्धि की है। जंगली जानवरों द्वारा मृत्यु की स्थिति में प्रभावित व्यक्ति के परिवार को एक लाख के स्थान पर डेढ़ लाख रुपये का मुआवजा दिया जाएगा। किसानों की फसलों को बंदरों तथा अन्य जंगली जानवरों से बचाने के लिए बंदरों की नसबंदी की जा रही है।

प्रदेश सरकार कर्मचारियों के कल्याण के प्रति वचनबद्ध है। सरकार के कर्मचारियों के साथ हमेशा सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रहे हैं। सरकार ने अपने कर्मचारियों को एक साल का सेवा विस्तार देने का निर्णय लिया है। दिहाड़ीदारों की दिहाड़ी को 150 रुपये से बढ़ाकर 170 रुपये किया गया है। 31 मार्च 2014 को 6 वर्ष का कार्यकाल पूरा करने वाले सभी अनुबंध कर्मचारियों तथा 7 वर्ष का सेवाकाल पूरा करने वाले सभी दिहाड़ीदारों की सेवाओं को नियमित किया जा रहा है। पेंशनधारकों को 65 से 70 वर्ष, 70 से 75 वर्ष तथा 75 से 80 वर्ष आयु प्राप्त करने पर क्रमशः 5 प्रतिशत, 10 प्रतिशत तथा 15 प्रतिशत पेंशन भत्ता दिया जा रहा है।

हम अपने स्वतंत्रता सेनानियों, सैनिकों तथा भूतपूर्वक सैनिकों द्वारा देश की खातिर दिए गए बलिदानों के लिए उनके कृतज्ञ हैं। स्वतंत्रता सेनानी तथा उनके आश्रित समाज में सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकें, इसके लिए उनके सम्मानस्वरूप हमारी सरकार ने स्वतंत्रता सेनानियों की सम्मान राशि को 7500 से बढ़ाकर 10,000 रुपये किया है तथा उनकी पत्नियों एवं पुत्रियों की सम्मान राशि को 3500 से बढ़ाकर 5000 हज़ार रुपये किया है।

प्रदेश सरकार भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण के प्रति भी वचनबद्ध है तथा उनके कल्याण के लिए अनेक योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। सरकार द्वारा वीरता पुरस्कार विजेताओं की वार्षिकी को 3000 रुपये से बढ़ाकर 4000 रुपये किया गया है।

हमारी सरकार ने आगामी तीन वर्षों में एक स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर एवं समृद्ध हिमाचल की परिकल्पना की है। इसके लिए प्रदेश के प्रत्येक नागरिक का सक्रिय योगदान अपेक्षित है। स्वतंत्रता दिवस के इस पावन अवसर पर हम शपथ लें कि अपने महान स्वतंत्रता सेनानियों के सपनों व आदर्शों को पूरा करने के लिए हम एक बार पुनः समर्पित होंगे।

स्वतंत्रता आंदोलन

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में हिमाचल भूमि के राज्यों में उथल-पुथल का दौर चल रहा था। मुगल यहां से निकल गए तो कुछ पहाड़ी शासकों ने अपने क्षेत्र-विस्तार की मुहिम चलाई। रियासतों के इस आपसी वैर-विरोध का लाभ उठाते हुए, गोरखा सेनापति अमरसिंह थापा ने हज़ारों सैनिकों के साथ हिमाचल भूमि पर हमला किया और यहां की ज़्यादातर रियासतों को अपने अधीन कर लिया था।

हिमाचल की धरा पर आज़ादी का संघर्ष

● डॉ. तुलसी रमण

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में हिमाचल भूमि के राज्यों में उथल-पुथल का दौर चल रहा था। मुगल यहां से निकल गए तो कुछ पहाड़ी शासकों ने अपने क्षेत्र-विस्तार की मुहिम चलाई। रियासतों के इस आपसी वैर-विरोध का लाभ उठाते हुए, गोरखा सेनापति अमरसिंह थापा ने हज़ारों सैनिकों के साथ हिमाचल भूमि पर हमला किया और यहां की ज़्यादातर रियासतों को अपने अधीन कर लिया था।

गोरखा हमलावरों से लोग यहां परेशान थे और अमरसिंह थापा ने अंग्रेज़ों से भी विरोध ले लिया था। सन् 1814 में अंग्रेज़ों ने गोरखों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। आखिर थापा को हार मानकर नेपाल लौटना पड़ा; लेकिन उसी की वजह से हिमाचल भूमि पर कंपनी-शासन का विस्तार हो गया। अंग्रेज़ों ने समझौते की सनदें देकर अधिकांश रियासतों को अपने संरक्षण में ले लिया और इन पहाड़ों में कई जगह अपने व्यापार-केन्द्र और सेना शिविर बसा लिए थे।

सन् 1830 में क्योंठल के राणा से 13 गांव का क्षेत्र प्राप्त करके अंग्रेज़ों ने शिमला शहर का निर्माण व विकास शुरू किया। ब्रिटिश राज के उच्च अधिकारी गर्मियों में यहां आया करते थे। जबकि आगे चलकर सन् 1864 में शिमला ब्रिटिश राज की ग्रीष्मकालीन राजधानी घोषित हो गई थी।

महाराजा रणजीत सिंह के निधन के बाद 1845-46 में सिखों से हुए युद्ध में भी अंग्रेज़ों ने जीत हासिल कर ली थी, जिससे कांगड़ा क्षेत्र की रियासतें भी उनके अधीन आ गईं। मगर नूरपुर के बहादुर वज़ीर रामसिंह पठानिया ने 1849 में अंग्रेज़ों को ललकारा और उनसे युद्ध लड़ा। इसमें भले ही पठानिया की पराजय हुई, लेकिन यह भी सच्चाई है कि 1857 के महाविद्रोह से 8 साल पहले ही रामसिंह पठानिया ने हिमाचल भूमि पर स्वाधीनता की लड़ाई शुरू कर दी थी। स्वतंत्रता के उस महारथी ने सिंगापुर जेल में वीरगति प्राप्त की।

सन् 1849 तक सारी हिमाचल-भूमि कंपनी सरकार के अधीन हो गई थी। कांगड़ा, नूरपुर, जतोग, डगशाई, कसौली, सपाटू और नाहन में ब्रिटिश सैनिक-छावनियां स्थापित कर ली गई थीं।

29 मार्च, 1857 को बैरकपुर-कलकत्ता में मंगल पांडे के नेतृत्व में सैनिकों ने विद्रोह किया। गाय और सूअर की चर्बी वाले कारतूसों के विरोध में मंगल पांडे ने अपने अंग्रेज़ अफसरों पर विद्रोह की पहली गोली चला दी थी। इससे पहले ही आदिवासी, किसान लोग जंगलों और वन-सम्पदा के प्रति ईस्ट इंडिया कंपनी के रवैये का विरोध करते आ रहे थे। सैनिक विद्रोह ने आग में घी का काम किया। मंगल पांडे को फांसी दी गई और झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, नाना साहेब, तांत्या टोपे से लेकर झलकारी देवी व बिरसा मुंडा तक अनेक राष्ट्रीय महानायक क्रांति की ज्वाला में शामिल हो गए।

हिमाचल-भूमि पर इस विद्रोह की पहली चिंगारी कसौली की सैनिक छावनी में भड़क उठी थी। 20 अप्रैल, 1857 को अंबाला राईफल डिपो के छह सैनिकों ने कसौली में पुलिस चौकी को आग लगा दी थी। इस घटना के बाद इन पहाड़ी क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष और विरोध खुलेआम व्यक्त होने लगा था।



मेरठ में 10 मई, 1857 को भयानक विद्रोह हुआ। उसकी सूचना 11 मई को शिमला पहुंची तो यहां रह रहे अंग्रेज़ों में आतंक छा गया। करीब 800 यूरोपीय स्त्री, पुरुष, बच्चे पहले चर्च के पास और फिर शिमला बैंक, यानी आज के ग्रेंड होटल के अहाते में एकत्र हुए। इसी दौरान एक गोरखा सैनिक ने बीच बाज़ार में एक ब्रिटिश अफसर का सिर खुखरी से उड़ा दिया था। ब्रिटिश सेना के मुख्य कमांडर ने पहाड़ी छावनियों के सैनिकों को अंबाला की ओर कूच करने के आदेश दिए। मगर देशी सेना ने आदेशों का पालन नहीं किया; बल्कि अंग्रेज़ अफसरों को धमकाया।

सूबेदार भीमसिंह के नेतृत्व में जतोग-छावनी के खजाने पर कब्ज़ा कर लिया गया और कसौली में केवल 45 देशी सैनिकों ने 200 से अधिक ब्रिटिश सैनिकों पर धावा बोलकर सरकारी खज़ाना हथिया लिया। 20 मई, 1857 को शिमला एक मुर्दा शहर लग रहा था। चारों तरफ भय और सन्नाटा था। शिमला हिल्ज़ की रियासतों में अंग्रेज़ों का खुला विरोध होने लगा था। बुशहर के राजा शमशेहर सिंह ने अंग्रेज़ सरकार को तय नज़राना देना बंदर करने की पहल की थी।

हिमाचल में 1857 की क्रांति की योजना अब मैदानों की राष्ट्रीय धारा के साथ चल रही थी। 10 जून 1857 को जालंधर के करीब 600 क्रांतिकारी सैनिक नालागढ़ पहुंचे और स्थानीय क्रांतिकारियों के साथ मिलकर विद्रोह किया।

क्रांति संचालन के लिए तब गुप्त संगठन भी बना था। इधर के पहाड़ों के लिए इस संगठन के मुख्य नेता राम प्रसाद वैरागी थे। वे सपाटू के परेड मैदान के पास एक मंदिर में पुजारी थे। भेद खुलने पर जनक्रांति संचालक रामप्रसाद वैरागी पकड़े गए और उन्हें अंबाला जेल में फांसी दी गई। विद्रोह का सिलसिला जारी था। 16 मई, 1857 को नालागढ़ के मलौण किले से सैनिक गार्द का दस्ता बारूद लेकर बाहर निकला तो क्रांतिकारियों ने नालागढ़ का कोषागार लूटा और रियासत के ब्रिटिश एजेंट का आवास नष्ट कर दिया।

कांगड़ा क्षेत्र में भी अराजकता फैल गई थी। डिप्टी कमीश्नर मेजर टेलर को पुलिस बटालियन की सुरक्षा में कांगड़ा किला में शरण लेनी पड़ी थी। उधर, सुजानपुर टिहरा में राजा प्रताप चंद क्रांति की गुप्त तैयारी कर रहे थे। अंग्रेज़ शासकों को भनक लगी तो उन्हें महल में ही नज़रबंद कर दिया गया। क्रांतिकारियों की गतिविधियों को देखते हुए 12 जून, 1857 को कांगड़ा क्षेत्र में नदियों के घाट बंद करके नौकाएं नष्ट कर दी गईं। 28 जून, 1857 को हथियारबंद लोगों से उनके हथियार छीन लिए गए। फिर भी क्रांतिकारियों ने कांगड़ा, नूरपुर, धर्मशाला और हरिपुर में अंग्रेज़ी सेना से कड़ा संघर्ष किया। क्रांतिकारी कमांडर ब्रिगेडियर रमजान पकड़े गए और उन्हें नूरपुर में फांसी दी गई। हवलदार जुगादीन और पांच अन्य क्रांतिकारी सैनिकों को भी पकड़ा गया और नूरपुर में ही फांसी के तख्त पर चढ़ाया गया। इसी दौरान कांगड़ा कस्बे में 5 और धर्मशाला में 6 क्रांतिकारियों को फांसी दी गई।

व्यापक विद्रोह की सूचनाओं के बीच कुल्लू में भी युवकों ने जन-क्रांति शुरू की, जिसका नेतृत्व कंवर प्रताप सिंह ने किया। सिराज क्षेत्र में विद्रोह का डंका बजा। बैजनाथ निवासी मियां वीरसिंह ने भी इसमें सहयोग दिया। अंततः प्रताप सिंह और वीर सिंह कई साथियों सहित पकड़े गए और इन 12 क्रांतिकारियों को धर्मशाला की भागसू जेल में डाला गया। 3 अगस्त, 1857 को उसी जेल में प्रताप सिंह और वीर सिंह को फांसी दी गई। अंग्रेज़ों ने क्रांति दबाने के लिए भय पैदा करने की नीति अपनाई। 14 अगस्त, 1857 तक हिमाचल में चार महीनों के निरंतर विद्रोह में पहाड़ों के 50 देशभक्त फांसी के फंदे पर चढ़ चुके थे। लगभग 500 क्रांतिकारी जेलों में बंद थे और 30 आंदोलनकारियों को देश-निकाला दिया गया था।

अंग्रेज़ों और रियासती शासकों की दोहरी दासता में भी इन पहाड़ों पर अनेक आंदोलन होते रहे। बेगार प्रथा और लगान और बंदोबस्त के विरुद्ध जनता अपने तरीके से आवाज़ उठाती रही। महात्मा गांधी ने अफ्रीका में 'सत्याग्रह आंदोलन' 1907 में शुरू

किया, मगर हिमाचल-भूमि पर कई ऐसे आंदोलन पहले ही हो चुके थे जो 'सत्याग्रह' के विशिष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। 1859 में बुशहर का 'दूम्ह' आंदोलन, फिर सुकेत जन-आंदोलन, नालागढ़ का जन-संघर्ष और बिलासपुर का 'झुग्गा सत्याग्रह' इनमें प्रमुख कहे जा सकते हैं।

शिमला में रहते हुए कुछ विदेशी सज्जनों ने भी भारतीय जन-जागृति में योग दिया। ए.ओ. ह्यूम, ऐनी बेसेंट आदि भारतीय जनता के प्रमुख शुभचिंतक थे। सरकारी सेवा छोड़कर ए.ओ. ह्यूम 1882 में शिमला आकर जाखू स्थित रॉथली कैसल में रहने लगे थे। यहां रहते हुए उन्होंने भारत के लिए राष्ट्रीय राजनीतिक संगठन की योजना पर विचार किया, जिसके फलस्वरूप 28 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई। राष्ट्रीय धारा के साथ हिमाचल में कांग्रेस की गतिविधियां बढ़ गईं। मगर स्थानिक विद्रोह भी चलते रहे।

इस दौर में ऊना के बाबा लछमन दास आर्य, उनकी धर्मपत्नी दुर्गाबाई आर्य, ऋषिकेश लठ और महाशय तीर्थराम ओयल; मंडी की रानी खैरगढ़ी, हरदेवराम, शोभा राम व सिद्ध खराड़ा; नाहन के चौधरी शेरजंग, पं. राजेन्द्र दत्त, कांगड़ा हिल्ज़ के बाबा कांशीराम, लाला जयलाल नागल, बाशी राम, ठाकुर हज़ारा सिंह और युवा क्रांतिकारी यशपाल, इन्द्रपाल; फिर शिमला हिल्ज़ के सत्यानंद स्टोक्स, भागमल सौहटा, मियां खड़क सिंह और पं. पद्मदेव आदि अनेक क्रांतिकारी स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े थे।

23 मई, 1921 को महात्मा गांधी पहली बार शिमला पधारे। अनेक बड़े राष्ट्रीय नेता उनके साथ थे। हर क्षेत्र के पहाड़ी नेता गांधी जी के आह्वान पर सक्रिय हुए। असहयोग आंदोलन, साईमन कमीशन के विरोध, नमक सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आंदोलन तक आज़ादी की लड़ाई में पूरा साथ दिया। फरवरी, 1938 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में निर्णय लिया गया कि छोटी रियासतों को जोड़ने वाले प्रजामंडल स्थापित किए जाएं। अनेक सभा-समितियों के साथ पहले मंडी व सिरमौर में प्रजामंडल की स्थापना हुई, फिर शिमला में 'हिमालय रियासती प्रजामंडल' का गठन हुआ। पं. पद्मदेव इसके प्रधान बने और भागमल सौहटा महामंत्री। फिर गांव-परगनों तक प्रजामंडल फैल गए। आंदोलन के साथ समाज सुधार का काम भी प्रजामंडल के कार्यकर्ता करते रहे। पहाड़ की सभी रियासतों के प्रतिनिधि इसके सदस्य बने। रियासती शासकों का विरोध बढ़े हुए लगान व बेगार के कारण सबसे ज़्यादा हुआ। बिलासपुर बगावत, धामी गोलीकांडी और पझौता किसान आंदोलन तथा सुकेत-विद्रोह जैसी विद्रोह की ऐतिहासिक घटनाएं हुईं।

इस दौर में हिमाचल के करीब 4000 जवानों ने आज़ाद हिन्द फौज की सशस्त्र क्रांति में भी भाग लिया। जून, 1945 में शिमला के वायसरीगल लॉज में ऐतिहासिक 'शिमला कान्फ्रेंस' हुई। मार्च 1946 में यहीं पर अंग्रेज़ शासक, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सत्ता हस्तांतरण को लेकर त्रिपक्षीय वार्ता हुई। लेकिन कांग्रेस व मुस्लिम लीग एकमत न हो सके। इसलिए भारत विभाजन का मनहूस मसौदा भी यहीं तैयार हुआ।

प्रजामंडल आंदोलन के माध्यम से ही हिमाचल के विभिन्न रियासती क्षेत्रों से जुझारू नेता निकल आए थे जो निस्वार्थ भाव से आज़ादी के बाद भी प्रदेश की राजनीति व विकास में सक्रिय हुए। सिरमौर रियासत से निर्वासन पर पहले लाहौर के निकट 'मियां मीर' छावनी में तथा उसके बाद दिल्ली में रहे डॉ. यशवंत सिंह परमार को फरवरी, 1947 में प्रजामंडल के नेता शिमला ले आए थे। प्रांतीय आंदोलन तथा राष्ट्रीय नेतृत्व से संवाद बनाए रखने की गरज से एक उच्च शिक्षित नेता की दरकार थी।

15 अगस्त, 1947 को भारत आज़ाद हुआ। पहाड़ी रियासतों के शासक ब्रिटिश गुलामी से मुक्त हो गए। मगर प्रजा की आज़ादी की लड़ाई चलती रही।

प्रजामंडल आंदोलन के माध्यम से ही हिमाचल के विभिन्न रियासती क्षेत्रों से जुझारू नेता निकल आए थे। जो निस्वार्थ भाव से आज़ादी के बाद भी प्रदेश की राजनीति व विकास में सक्रिय हुए। सिरमौर रियासत से निर्वासन पर पहले लाहौर के निकट 'मियां मीर' छावनी में तथा उसके बाद दिल्ली में रहे डॉ. यशवंत सिंह परमार को फरवरी, 1947 में प्रजामंडल के नेता शिमला ले आए थे। प्रांतीय आंदोलन तथा राष्ट्रीय नेतृत्व से संवाद बनाए रखने की गरज से एक उच्च शिक्षित नेता की दरकार थी। इसी के साथ डॉ. परमार ने शिमला से संचालित पहाड़ की सक्रिय राजनीति में पदार्पण किया। मार्च, 1947 में वे 'हिमालयन हिल स्टेटस सब रिजनल कौंसिल' के प्रधान चुने गए। हिमाचल के अनेक बड़े जन नेताओं डॉ. यशवंत सिंह परमार के नेतृत्व में 'सुकेत सत्याग्रह' के माध्यम से ऐसा दबाव बनाया कि करीब 30 पहाड़ी रियासतों के शासकों ने भारत संघ में विलय कर लिया। कांग्रेस के राष्ट्रीय नेतृत्व से संवाद और परमार्श का ऐसा माहौल बनाया कि 15 अप्रैल, 1948 को एक केंद्र प्रशासित राज्य के रूप में हिमाचल प्रदेश भारत के मानचित्र पर आ गया। इसी के साथ इन पहाड़ों की जनता को सामंती और ब्रिटिश साम्राज्यवादी दोहरी दासता से मुक्ति मिल गई और जनतंत्र में प्रवेश हो गया।

दयार-दुर्गा कॉलोनी, ढली, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 009, मो. 9418086986

परमार जयन्ती पर विशेष

संस्कृति संरक्षक व हिमाचल निर्माता डॉ यशवंत सिंह परमार

● डॉ. कमल के. प्यासा

हिमाचल प्रदेश के प्रथम मुख्यमन्त्री स्वतन्त्रता सेनानी डॉ. यशवंत सिंह परमार की जीवन यात्रा आम नेताओं व राजनीतिज्ञों से कुछ हटकर ही प्रतीत होती है। उनकी सादगी, खुली विचारधारा, अपने को पहाड़ी होने का गर्व अनुभव करने तथा प्रदेश की कला-संस्कृति के प्रति हमेशा जागरूक रहना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य रहा। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण ही तो उन्होंने रियासत कालीन सेवा(जज पद) को ठुकरा कर अपना संपूर्ण जीवन जन-सेवा में लगा दिया था। डॉ. परमार न केवल एक अच्छे वक्ता थे अपितु साथ-साथ हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू के अतिरिक्त पहाड़ी बोली में भी अच्छी महारत रखते थे।



डॉ. परमार का जन्म 4 अगस्त 1906 में जिला सिरमौर की तहसील पच्छाद के गांव चन्हलग में श्री शिवानन्द सिंह के घर हुआ। शिक्षा सिरमौर के अतिरिक्त लाहौर व लखनऊ में सम्पन्न हुई। 1922 में मैट्रिक के पश्चात्, बी.ए. ऑनर्ज़ 1926 में की। उच्च शिक्षा के लिए लखनऊ चले गए, जहां से उन्होंने एम.ए. व एल.एल.बी. की परीक्षाएं केनिग कॉलेज से पास की। अपनी शिक्षा को आगे जारी रखते हुए उन्होंने 1944 में पी-एच.डी. की उपाधि भी लखनऊ से प्राप्त की। बाद में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला से डॉक्टर ऑफ लॉ की उपाधि प्राप्त की।

डॉ. परमार ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ कई अन्य संस्थाओं से जुड़कर सामाजिक व अन्य गतिविधियों में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1929-30 में वह देहरादून में थियोसोफिकल सोसायटी के सदस्य के रूप में अपनी अमूल्य सेवाएं देते रहे। 1930 में सिरमौर की रियासत में जज के पद पर नियुक्त हो गए और 1937 तक काम करते रहे। इसके पश्चात् यहीं पर डिस्ट्रिक्ट एंड सेशन जज बन गए और 1941 तक इस पद पर अपनी सेवाएं प्रदान की। लेकिन जब इनके पास प्रजामण्डल (क्रान्तिकारियों) के झूठे आरोपों वाले मुकदमें आने लगे तो डॉ. परमार ने उन झूठे आरोपों को नकारते हुए उनके (क्रान्तिकारियों) हक में फैसला सुना कर उन्हें बरी कर दिया जोकि शासकों को ठीक नहीं लगा। इस पर डॉ. परमार ने झूठ से बचने के लिए अपने पद से ही त्याग पत्र दे दिया। प्रजामण्डल के जिन क्रान्तिकारियों पर झूठे आरोप लगाए गए थे उनमें सर्वश्री देवेन्द्र सिंह, हरीशचन्द्र, नाहर सिंह, नागेन्द्र सिंह व हरीश चन्द आदि शामिल थे। इन सभी पर रियासत के राजा को मारने का झूठा मुकदमा चलाया गया था, जिसे डॉ. परमार ने झूठा करार देकर सभी को बरी करके दोष मुक्त कर दिया था। इसके पश्चात् डॉ. परमार पूर्ण रूप से जन सेवा में लग गए तथा पहाड़ी शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध स्वधीनता आन्दोलन में कूद पड़े। इस प्रकार सन् 1943 से 1946 तक सिरमौर एसोसिएशन के सचिव बन कर लोगों की सेवा करते रहे। 1946 से 1947 तक हिमाचल हिल स्टेटस रीजनल कौंसिल के प्रधान के रूप में काम करते रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब प्रजामण्डल के सदस्यों द्वारा ठियोग रियासत पर अधिकार स्थापित हो गया तो वहां स्वतन्त्र सरकार का गठन किया गया, जिसमें श्री सूरज राम प्रकाश को रियासत का मुख्य मन्त्री तथा डॉ. परमार को परामर्शदाता नियुक्त किया गया। क्योंकि उस समय देश की स्वतन्त्र रियासतों के शासक भारत में शामिल होने में आनाकानी कर रहे थे। इसीलिए ठियोग को स्वतन्त्र भारत के हिमाचल में शामिल करना

डॉ. परमार को पहाड़ी मौखिक साहित्य की लोक गाथाओं में विशेष रुचि थी और जब भी प्रदेश के भिन्न-भिन्न भागों में जाते तो वहां की लोक गाथाओं/कथाओं को विशेष रूप से सुनते थे। वह नारी की पीड़ा व दुःख-दर्द से भी भली भान्ति परिचित थे। ... डॉ. वाई. एस. परमार जिन्हें हिमाचल निर्माता के नाम से जाना जाता है वास्तव में ही वह प्रदेश के निर्माता के साथ-साथ संस्कृति, साहित्य और कला के भी संरक्षक थे। डॉ. साहिब के बीमार पड़ने पर लोगों द्वारा उनके स्वस्थ्य लाभ के लिए घर-घर प्रार्थनाएं की गई। इतना ही नहीं प्रधान मन्त्री इन्दिरा गान्धी भी उन्हें देखने शिमला आई थी।

एक उल्लेखनीय घटना थी। इसी कारण 5-6 महीने बाद ठियोग के राणा (शासक) ने धावा बोल कर वहां का सारा रिकार्ड व खजाना लूट लिया। इस पर डॉ. परमार ने सरदार बल्लभ भाई पटेल से दिल्ली में सम्पर्क करके ठियोग में पुलिस बुला ली और राणा को पकड़कर उसे रियासत से जलावतन (बाहर) कर दिया गया। इसी तरह की एक अन्य घटना हुई जिसमें शिमला हिल्ज़ स्टेट के सभी शासकों द्वारा एक बैठक बघाट रियासत के नरेश राजा दुर्गा सिंह की अध्यक्षता बुलाई गई जिसमें प्रजामण्डल के कुछ सदस्यों को भी बुलाया गया। बुलाए गए सदस्यों में सर्वश्री देवी दास मुसाफिर, सूरतराम प्रकाश, देवी राम केवला, एस.डी. वर्मा, भास्करानन्द, हीरा सिंह पाल, भागमल सौहटा, पं. पदम देव, स्वरूपानन्द, ठाकुरसेन नेगी, तथा सत्य देव बुशहरी शामिल थे। इस बैठक का आयोजन इस लिए किया जा रहा था ताकि शासक वर्ग अपने पक्ष में ऐसा विधान पारित कर सके जिससे उनकी प्रभुसत्ता स्वतन्त्र भारत में भी वैसी ही बनी रहे। इस आयोजन के प्रबन्धक, महावीर सिंह द्वारा जब डॉ. परमार को बैठक में जाने से रोका गया तथा भीतर बैठे प्रजामण्डल के सदस्यों से दुर्व्यवहार किया तो डॉ. परमार व पं. पदम देव ने दिल्ली के राष्ट्रीय नेताओं से इस सम्बन्ध में बातचीत की। जिस पर बैठक के सभी शासकों को दिल्ली बुला कर विलीनीकरण के लिए उनसे हस्ताक्षर करवा लिए गए। 1947-48 में डॉ. परमार ग्रुपिंग एण्ड अगलगेमेशन कमेटी, आल इण्डिया-स्टेट पिपुल्ज़ कांफ्रेन्स के सदस्य तथा सिरमौर प्रजामण्डल के प्रधान के रूप में सेवाएं देते रहे।

1924 में सुकेत रियासत के शासक द्वारा लोगों पर लगान लगाने व बगार लेने के फलस्वरूप वहां विद्रोह की स्थिति पैदा हो गई जिससे डरकर सुकेत का राजा देहरादून भाग गया। वैसे तो मण्डी की तरह सुकेत में भी 1914 के आसपास 'गदर पार्टी' की गतिविधियां शुरू हो गई थीं तथा जनता में काफी जागृति आ गई थी। इसी के फलस्वरूप 1945 में यहां भी प्रजामण्डल का गठन हो गया और आन्दोलन भी होने लगे। राजा ने आन्दोलन रोकने के प्रयास किए तथा आन्दोलनकारियों को राज्य सभा के गठन से जीतना चाहा लेकिन सुकेत प्रजा मण्डल के सदस्यों ने चुनाव में भाग ही नहीं लिया।

फरवरी 1948 में हिमाचल हिल्ज़ स्टेट रीज़नल कौंसिल ने अंतरिम सरकार का गठन किया, जिसके नेता फरवरी मास में ही सुन्नी व भज्जी में एकत्रित हुए तथा प्रजातन्त्र के अधीन प्रान्त के गठन के लिए अगली रणनीति तैयार की गई और इसके लिए सुकेत को पहला लक्ष्य बनाया गया। इस के लिए पं. पदम देव के नेतृत्व में फरवरी 1948 में आन्दोलनकारियों ने सुकेत पर अहिंसात्मक धावा बोल दिया। इस धावे के समय डॉ. परमार तथा पं. पदम देव दोनों को सुकेत की सीमा वाले बैरियर पर ही रोक लिया गया और इन्हें वापिस जाना पड़ा। इसके पश्चात् 16 फरवरी 1948 को पं. पदम देव सत्याग्रहियों के साथ पिछली ओर से सुकेत पहुंच गए। वहां जलसे हो रहे थे और राजा का ध्यान भी उधर ही था। इसी मध्य राजा तक यह अफवाह भी पहुंच गई कि पं. पदम देव के साथ हज़ारों व्यक्ति रियासत पर हमला करने वाले हैं। इसी डर के फलस्वरूप रियासत की फ़ौज व पुलिस ने सत्याग्रहियों का कोई भी विरोध नहीं किया। 18 फरवरी 1948 को 'फेरनू' की चौकी पर अधिकार हो गया। इसी तरह से करसोग व पांगणा भी सत्याग्रहियों के अधिकार में आ गए और यह सभी जीत के समाचार डॉ. परमार के पास शिमला पंहुचते रहे। इधर सत्याग्रहियों की संख्या बढ़ते- बढ़ते अढ़ाई हज़ार तक पहुंच गई थी। राजा लक्ष्मण सेन घबरा गया और उसने विद्रोह को रोकने की लिए केन्द्र सरकार से सहायता मांग ली। केन्द्र सरकार ने रियासत को केन्द्र में मिलाने के आदेश दे दिए। इस प्रकार 15 अप्रैल 1948 को सुकेत रियासत भी हिमाचल में मिल गई।

वर्ष 1948-52 तक डॉ. परमार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य तथा हिमाचल चीफ कमीशनरज एडवाइजरी कौंसिल के सदस्य रूप में सेवाएं देते रहे। इसके पश्चात् 3 मार्च 1952 से 31 अक्टूबर 1956 तक मुख्य मन्त्री के रूप में कार्य करने के पश्चात् प्रथम नवम्बर 1956 में जब हिमाचल यूनियन टेरीटोरियल बनी तो डॉ. परमार 1956-63 तक संसद सदस्य रहे। इसके पश्चात् प्रथम जुलाई 1963 से फिर मुख्य मन्त्री बने तथा प्रथम नवम्बर 1966 को पंजाब के कुछ पर्वतीय क्षेत्रों (शिमला, कांगड़ा, कुल्लू, तथा लाहौल स्पिति) को हिमाचल में शामिल करवाकर प्रदेश को विशाल हिमाचल का रूप प्रदान करने में अपनी

अहम भूमिका निभाई । हालांकि पंजाब के कुछ नेता हिमाचल को पंजाब में मिलाना चाहते थे, लेकिन डॉ. परमार ने ऐसा नहीं होने दिया और इस पहाड़ी प्रदेश का अस्तित्व बनाए रखा।

इतना ही नहीं 25 जनवरी 1971 को वृहत ज़िला कांगड़ा के कांगड़ा, हमीरपुर तथा ऊना तीन ज़िले बनाए गए जिससे प्रदेश के कुल ज़िलों की संख्या 12 हो गई। 24 जनवरी 1977 को मुख्य मन्त्री के पद से त्याग देने के पश्चात् डॉ. परमार 1980 में बीमार पड़ गए और स्नोडन हॉस्पिटल में दाखिल हो गए। डॉ. परमार के प्रयत्नों से ही आज प्रदेश उन्नति के पथ पर अग्रसर है। प्रदेश में सड़कों का जाल बिछ गया है, अनेकों विद्युत परियोजनाएं कार्यरत हैं, नए-नए उद्योग धन्धे पनप रहे हैं, कृषि, बागबानी, पशुपालन व वनों की सुरक्षा के साथ ही साथ डॉ. परमार के प्रयत्नों के फलस्वरूप कला और संस्कृति को भी संरक्षण मिला है। उन्हें अपनी संस्कृति से इतना लगाव था कि वह अपने आपको पहाड़ी कहलाने में गर्व महसूस करते थे। तभी तो वह अपनी पहाड़ी पहचान के लिए लोईआ अक्सर पहना करते थे। लोक नाटी, लोक गीतों (झूरी व लामण) में विशेष रुचि रखते थे। और कभी-कभी तो अपने मित्रों के साथ झूरी व लामण की पंक्तियों को गुनगुनाते भी सुने जाते थे। पकवानों में असकली, पटांडे, लुशके व थरोटी आदि उनके पसन्दीदा पकवान थे। इन्हीं पकवानों की पहचान बनाने के लिए वे इनका चलन शिमला, दिल्ली व मुम्बई में आयोजित होने वाले हिमाचली समारोहों में विशेष स्टाल लगवा कर करवाते थे ताकि प्रदेश की संस्कृति की महक दूर-दूर तक पहुंच सके और प्रदेश के पर्यटन को बढ़ावा मिले।

डॉ. परमार को पहाड़ी मौखिक साहित्य की लोक गाथाओं में विशेष रुचि थी और जब भी प्रदेश के भिन्न-भिन्न भागों में जाते तो वहां की लोक गाथाओं/कथाओं को विशेष रूप से सुनते थे। वह नारी की पीड़ा व दुःख-दर्द से भी भली भान्ति परिचित थे। पोलीएण्ड्री इन हिमालयाज में उन्होंने पहाड़ी क्षेत्रों की बहुपत्नी प्रथा पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए नारी की सामाजिक स्थिति का विस्तारपूर्वक चित्रण किया है।

डॉ. वाई. एस. परमार को हिमाचल निर्माता के नाम से जाना जाता है, वास्तव में ही वह प्रदेश के निर्माता के साथ-साथ संस्कृति, साहित्य और कला के भी संरक्षक थे। जीवन के आखिरी पड़ाव में जब वह बीमार थे, तो उस समय देश की प्रधान मन्त्री इन्दिरा गान्धी भी उन्हें देखने शिमला आई थीं। 2 मई 1981 को 74 वर्ष की आयु में प्रदेशवासियों को छोड़कर वह सदा के लिए इस संसार को अलविदा कह गए। उस महान् और पवित्र आत्मा को शत्-शत् प्रणाम्!!

पृथी 34/7 अप्पर समखेतर, मण्डी (हि. प्र.)
मो.– 9882176248

राजीव कुमार त्रिगर्ती की कविताएं

एक घटिया पारखी

मेरा दंभ टूट चुका है
कि मैं पहचान लेता हूं
आदमी को एक नजर में
अब जब सोचता हूं
अपने दंभ के बारे में
तो मेरी नज़रें झुक जाती हैं
मैं पहचान नहीं पाया
अपनी नज़रों को भी।

जहर की सच्चाई

जहर पीना और जीना
सोचने में मुश्किल है
जीने में नहीं
हर कोई जहर पी रहा है
और जी रहा है
जुबान सीनी पड़ती है
इसलिए सी रहा है।

कुछ विचित्र चोरियां

सिर्फ दो आंखों में
देखने थे कुछ सपने
अपनी दोनों आंखों को
उन आंखों में डालकर
पर वे आंखें भी
आंखें चुराने लगीं
जैसे चुरा लिया गया हो
उन आंखों को ही
मेरे सपनों के साथ।

गांव लंघू डाकघर गांधीग्राम
वाया बैजनाथ जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176 125

पंद्रह अगस्त पर विशेष

वह अस्सी वर्ष का युवक

● डॉ. बी. एल. कपूर

हमारे चिर परिचित प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के योद्धाओं में दो नाम ऐसे हैं, जिन्हें वृद्ध संज्ञा देने में कोई दो राय नहीं। भले ही दर्जनों नाम ऐसे हैं, जिन्हें भुलाए भी नहीं भुलाया जा सकता है और वे सक्रिय भागीदारी से विभूषित हैं। नाना धुन्धूपंत, तांत्या टोपे, अज्जीमुल्ला, मौलवी अहमद शाह तथा वीरांगना लक्ष्मी बाई का बलिदान हमारी अमूल्य धरोहर है, परंतु बिहार के ठाकुर कुंवर सिंह और दिल्ली के बहादुर शाह जफर अस्सी के पार उन कठिन क्षणों में भी अपनी पहचान बनाने में समर्थ हैं। भले ही जफर अनमने मन से इस संग्राम के घटक बने परंतु पूर्ण रूप से फिरंगियों को भारत भूमि से बाहर करने के विचार को समर्पित बाबू कुंवर सिंह एक निराली और अनोखी विभूति बनकर इस संग्राम में कूदे थे।

बिहार के शाहबाद जिले में जगदीशपुर एक बहुत छोटी-सी परंतु पुरानी रियासत थी। यहां के स्वामी को मुगलों ने राजा मान लिया था। फिरंगियों की ईस्ट इंडिया कंपनी जब अपने यौवन में थी, उस कालखंड में यह रियासत डलहौजी की अपहरण नीति की शिकार बन गई परंतु यहां का तत्कालीन राजा कुंवर सिंह जगदीशपुर और आसपास के क्षेत्रों में अत्यंत लोकप्रिय था। 25 जुलाई, 1857 में दानापुर की देशी पलटनों ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी और जगदीश की ओर कदम बढ़ाए और उनके वहां पहुंचने पर कुंवर सिंह ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र उठा लिए और राजमहल को छोड़ अस्सियों वर्ष में सेना का नेतृत्व उठा लिया। 29 जुलाई, 1857 को वीर कुंअर सिंह के क्रांति सैनिकों ने दानापुर छावनी पर हमला किया। इसके बाद कुंवर सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्धों का सिलसिला आरम्भ हो गया और उनके देहांत तक जारी रहा। सर्वप्रथम आरा, दानापुर और शाहबाद पर वीर सेनानी कुंवर सिंह का अधिपत्य हो गया। केवल बिहार में ही उनकी विजय यात्रा नहीं रुकी। उन्होंने मध्य प्रदेश के रीवा तथा उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद के दक्षिण में स्वराजपुर तक में अपना झंडा फहराया। बांदा के नवाब अली बहादुर से भी उनका संपर्क बढ़ा और अक्तूबर 1857 को अंग्रेजों के कब्जे वाले निमनीपुर किले को भी मटियामेट कर दिया। उनका ग्वालियर प्रवेश भी कम रोमांचक नहीं था। इस समाचार ने फिरंगियों की पुरविया फौज के सिपाही अपने बाबू के लिए मर मिटने को कालपी जा पहुंचे जहां कुंवर सिंह का मिलन नाना साहिब पेशवा और तांत्या तोपे से हुआ। इसी के परिणामस्वरूप कुंवर सिंह ने अंग्रेजी सेना को निमाई और कानपुर से मार भगाया था। उनका अगला अभियान लखनऊ प्रवेश था। अवध के नवाब ने यहां आजमगढ़ का क्षेत्र कुंवर सिंह को भेंट में दे दिया था। इस प्रकार अस्सी का यह बूढ़ा शेर सर्वत्र वाहवाही लूट रहा था परंतु कहां उसका सीमित बल और संसाधन और कहां आधुनिक हथियारों और तोपखानों से लैस सिपाहियों के बल का भरपूर मुकाबला करता रहा और अनेक बार अंग्रेजों को पराजित किया। उसके अद्‌भुत पराक्रम से वे हतप्रभ थे। कुंवर सिंह का आत्मबल और रणनीति हमेशा उन्हें भयभीत करती रही। कुंवर का बल उनकी लोकप्रियता और कर्तव्यनिष्ठा थी। इसी के बलबूते वे महीनों अंग्रेजों के छक्के छुड़ाते रहे।

भले ही अनेक स्थान इस सैनिक प्रमुख से जुड़े हैं, परंतु उनकी युद्ध प्रणाली का परिचय उनकी बुद्धिमत्ता और रण कौशलता इस तथ्य से विदित हो जाती है कि उन्हें अपनी शक्ति सीमाओं की पहचान थी। आमने-सामने युद्ध के स्थान पर गुरिल्ला प्रणाली को अपनाना उनकी सूझबूझ का परिणाम था। पश्चिम की शक्ति तोपों और गोला-बारूद से सुसज्जित थी और अपने यहां पारंपरिक हथियार तथा आत्मबल ही शेष था। वह कथानक पाठकों को अवश्य याद होगा जब अपने सैनिकों को उन्होंने एक बड़े बाग के पेड़ों पर रात तक रोके रखा। जैसे ही अंग्रेजी सेना वहां आराम करने पहुंची, नीति निपुण कुंवर सिंह के सैनिक उन पर हावी हो गए और गुरिल्ला युद्ध शैली अपनाकर इस सैनिक नेता ने पराजय को जय में बदल दिया। कुंवर सिंह की सेना यहां विदेशियों से वीरता और साहस से लड़ रही थी तभी यह वृद्ध योद्धा अपनी सेना के साथ-साथ पीछे हटने लगा। अंग्रेजों ने सोचा कि हमारा शत्रु पराजित हो भाग रहा है। तभी फिरंगियों ने पुनः एक बाग जो आमों के लिए प्रसिद्ध था, वहां भोजन करने की ठानी। बुढ़ापे में भी हमारा कुंवर अत्यंत फुर्तीला था और वहां के भूगोल को पग-पग जानता था। जैसे

अंग्रेजी हुकूमत ताउम्र कुंवर सिंह के अजेय पराक्रम एवं रण कौशल को परास्त न कर सकी। 29 जुलाई, 1857 को वीर कुंवर सिंह के क्रांति सैनिकों ने दानापुर छावनी पर हमला किया। इसके बाद कुंवर सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्धों का सिलसिला आरम्भ हो गया और उनके देहांत तक जारी रहा।

ही वे भोजन करने लगे, अचानक कुंवर सिंह की बिखरी सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया और हारी हुई लड़ाई भी पूर्ण रूप से विजय में परिवर्तित हो गई। अंग्रेजों के अधिकतर फौजी मारे गए। जो भागे, कुंवर ने उनका पीछा किया। उस अंग्रेजी सेना का प्रमुख मिलमैन नामक व्यक्ति था। उसको भी भागना पड़ा और उसके सभी नौकर-चाकर उसका साथ छोड़ भाग गए। लिखा है कि वे कंपनी की सेना के बैलों और गाड़ियों समेत इधर-उधर भाग गए और उनका सामान और तोपें कुंवर सिंह के हाथ लगीं। मिलमैन ने जैसे-कैसे आजमगढ़ में जान जान बचाई।

कुंवर सिंह के पराक्रम और नीति निपणुता के बीसों दृष्टांत उपलब्ध हैं। जब वह वीर जगदीशपुर पहुंचकर अपनी पैतृक रियासत पुनः प्राप्त करने का विचार कर रहा था, उस समय की घटना भी स्थायी प्रभावशाली है। लागार्ड के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना तानू नदी के पुल से आजमगढ़ आ रही थी। उस समय कुंवर सिंह ने अपना एक दल पुल पर भेज दिया और शेष सेना के साथ वे गाज़ीपुर की ओर बढ़े। पुल पर पहला दल अंग्रेजी टुकड़ी से लड़ता रहा। जब कुंवर सिंह को ज्ञात हुआ कि मुख्य सेना बहुत दूर निकल गई है, तब वह धीरे-धीरे उस सेना में आ मिला। अंग्रेज कुंवर सिंह की इस चाल को नहीं समझ पाए। अंग्रेजों ने भी उनकी इस रणनीति और पुल पर सैनिकों की बहादुरी की भरपूर प्रशंसा की है। फिर भी अंग्रेजी सेना लगभग बीस मील तक कुंवर सिंह का पीछा करती रही परंतु वह वृद्ध वीर उनकी पहुंच से बाहर ही रहा। तत्पश्चात उन्होंने पुनः लागार्ड की सेना पर आक्रमण किया जिसमें कई अंग्रेज और उनके सैनिक मार डाले गए। अंततः फिरंगी सेना परास्त हो पीछे हट गई और अस्सी वर्ष का राजा एक युवक जैसी स्फूर्ति से गंगा की ओर बढ़ा। अबकी बार अन्य सैनिक बल उनका मुकाबला करने डगलस नामक अंग्रेज के नेतृत्व में आ पहुंचा। और उस नए सेनापति को हारना पड़ा। डगलस की बड़ी सेना का मुकाबला करने के लिए कुंवर सिंह ने अपनी सेना को तीन भागों में बांट दिया। एक भाग तो डगलस से उलझ गया और दो दल उसके साथ आगे बढ़े। अंत में जैसे ही अंग्रेज सैनिक थक गए, उसी समय कुंवर सिंह के शेष दोनों दलों ने भी अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया। हार खाकर डगलस को भागना पड़ा। तत्पश्चात बूढ़ा शेर गंगा तट पर पहुंच गया और पुनः अंग्रेजों को चक्कर में डाला।

गंगा तट पर यह सूचना फैला दी कि कुंवर सिंह वलिया के स्थान पर हाथियों का पुल पार करेंगे परंतु वास्तव में वे शिवपुर घाट से गंगा पार करने की योनजा बना बैठे थे, जहां से वे नाव पर अपनी सैनिक टुकड़ियों को भेजने में तत्पर थे। जब अंतिम नाव भेजने को थी तो वे भी उसी में सवार हो गंगा को पार करने लगे। अंग्रेजों का दल अब तक यहां भी पहुंच गया था। उन्होंने बंदूकों से गोलियां चलाना आरंभ कर दिया। एक गोली कुंवर सिंह के दाहिने हाथ में आ लगी। कुंवर सिंह ने उस हाथ को बेकार समझ तथा इस भय से कि इसका विष शरीर में न फैल जाए, अपनी तलवार से बाएं हाथ से वार किया और अपने आहत हाथ को गंगा में डाल दिया। घाव पर कपड़ा बांध गंगा पार की और इस ओर अंग्रेज उसका पीछा न कर पाए। पास ही उनकी राजधानी जगदीशपुर थी, जहां वे आठ महीनों के पश्चात प्रवेश पा सके थे। इस बीच अंग्रेज यहां अधिकार जमा बैठे थे। लोगों के सहयोग और अपने छोटे भाई अमर सिंह की मदद से वे पुनः जगदीशपुर पर अधिकार जमाने में सफल हुए। वे 22 अप्रैल 1858 को जगदीशपुर पहुंचे थे। उनके साथ एक हजार पैदल सैनिक और कुछ एक घुड़सवार थे। अभी वे घर लौटे ही थे और घाव की पट्टियां खोली ही थीं कि आरा से लेफ्टिनेंट ग्रांट भी कुंवर सिंह को जैसे-कैसे धराशायी करने आ धमके और उन्हें युद्ध के लिए बाध्य कर दिया। अब पुनः कुंवर सिंह विजयी हुए और ग्रांट और उसके साथी पराजय को प्राप्त हुए। वे कुंवर सिंह को मारने या पकड़ने के निश्चय से आए थे परंतु कुंवर सिंह के आवास तक भी नहीं पहुंच सके।

26 अप्रैल, 1858 को वे स्वर्ग सिधारे और जीवन भर स्वतंत्र रहे। फिरंगी उन्हें जीवित या मृत्यु अवस्था में पकड़ना चाहते थे। ऐसा नहीं हुआ और जब इस संसार से गए तो पूर्णतः स्वतंत्र थे।

27 मार्च 1857 को वीरवर ने आजमगढ़ में विजय यात्रा निकाली थी। आरा, दानापुर, शाहबाद उनके अधिपत्य में आ गए थे। पुणे से लेकर ग्वालियर, कानपुर और झांसी तक उनके अनुयायी फैले हुए थे। इलाहाबाद और स्वराजपुर भी उनके अधिकार क्षेत्र में आ गए थे। मध्य प्रदेश के रीवा तक इस वीर सैनिक की धाक थी। बांदा का नवाब अली बहादुर भी इनका कायल था। कालपी में नाना साहिब पेशवा, तात्या टोपे और नवाब अली बहादुर से सामूहिक नीति के अंतर्गत कानपुर पर आक्रमण की नीति बनाई थी और वहां से अंग्रेजों को खदेड़ कर लखनऊ की राह ली थी। इस प्रकार अपने विजय अभियान को मात्र अपने गृह

स्थान बिहार तक ही न रखकर, अखिल भारतीय मंच से अंग्रेजों को खदेड़ने का स्वप्न इस वीर ने देखा था और अपने सीमित साधनों में रहकर भी अपने अभियान में सफलता के सोपानों पर अधिकार प्राप्त किया था। उनकी सफलता पर इतिहास लेखक होम्स का मत है कि वह बूढ़े राजपूत जो ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इतनी वीरता से लड़ा, इतनी आन के साथ लड़ा, सचमुच में अपने समय में युद्ध कौशल में सर्वश्रेष्ठ था। एक अन्य अंग्रेज अधिकारी जो एक युद्ध में स्वयं मौजूद था, ने निम्न विचारों से कुंवर सिंह को याद किया है "लड़ाई का मैदान छोड़कर हम जंगलों की ओर भागे। पीछे से शत्रु बराबर हमें पीटता रहा। हमारे सैनिक प्यासे मर रहे थे। एक निकृष्ट गंदे छोटे से पोखर को देख, वे व्याकुलता से उस ओर दौड़े। इतने में कुंवर सिंह के सवारों ने हमें पीछे से आकर दबा लिया। इसके बाद हमारे अपमान की कोई सीमा न रही और न कोई लज्जा रही। जिसे जहां कुशलता दिखाई दी, वह उसी ओर को भागा। अफसरी की आज्ञाओं की किसी को परवाह नहीं थी। व्यवस्था और अनुशासन का अंत हो गया। चारों ओर आहों, श्रापों और रोने का आलम था। मार्ग में अंग्रेजों के दल गर्मी के मारे मर मिटे। किसी को दवा मिलना भी संभव नहीं था क्योंकि अस्पताल पर कुंवर सिंह का अधिकार था।"

इस प्रकार निरंतर 1857 का यह सिंह दासता के विरुद्ध सतत् संघर्षशील रहा।

89/1, प्रभा निकेतन, मंडी, हिमाचल प्रदेश-175001

कविता

चिंतन की खेती

● अनन्त आलोक



चिंतन
कविता की आत्मा
शब्द शरीर और
भाव उसकी रगों में दौड़ता रुधिर
कविता की उम्र और चिंतन
समानुपाती हैं।

चिंतन की खेती
खेत में होती है
हल के फाले की तीखी नोक से
धरती का सीना चीरते हुए
उसके चेतन अवचेतन मन से
चिंतन धरातल पर आ जाता है
ज्यों कोई हल्दी की गांठ छूट गई हो
पिछली बार।

आलीशान आलय के घुप काले
कलेजे के कृत्रिम आलोक में
कंप्यूटर की उंगलियों से उंगलियां भिड़ाते हुए
चिंता प्रसवित होती है
चिंतन नहीं।

कवि दलीप वसिष्ठ
जानते हैं ये रहस्य
विक्रम की पीठ से चिपके
बेताल से
उनकी पीठ पर ठुमकते किल्टे के
गले तक भरे गोबर के बीच
कितनी कविताएं सांस ले रही हैं
किल्टे की बुनती के बीच से झांकती
शिल्पकार की खुरदरी मटमैली उंगलियां
क्या कहती हैं।

ये हर कोई नहीं समझ सकता
किल्टे के शरीर पर आलिंगनबद्ध छरपटें
कितने जख्म खाकर यहां पहुंची है और
चाकू की तीखी धार ने उन्हें सिधाते हुए
उनकी निर्मम आलोचना की तो वे रोई तो बहुत
लेकिन...
ये एक कवि मन ही समझ सकता है

कुल्हाड़ी की तीखी जीभ
लश्लशाते हुए जब लकड़ी को तालू से
पांव तक चीरती है तो उसका रुदन
क्रंदन एक लकड़हारा कैसे सुनेगा
उसके दिमाग में

बजती ठन ठन
की घंटी, भूख से बिलबिलाते बच्चे
उसके कान से

मोबाइल की लीड के मानिंद
करुण गान करते रहते हैं
फिर भला वह सुने भी तो कैसे।

• किल्टा : बांस की छरपाटों से बुना गया गोबर ढोने का पात्र, जिसे पीठ पर उठाया जाता है।
• (किसानी प्रिय कवि दलीप वसिष्ठ को भेंट एक कविता)

साहित्यालोक, बायरी, डा. ददाहू, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश-173 022
मो. 94187 40772

स्वतंत्रता दिवस पर विशेष

देशभक्ति गीत जिन्होंने बदल दी धारा

● नरेन्द्र देवांगन

आजादी की लड़ाई में भारत की स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने की प्रेरणा देने वाले जोशीले गीतों ने भी बड़ा कमाल दिखाया। एक साथ हजारों-लाखों कंठों से ये गीत फूट निकलते थे, तो आसमान गूंज उठता था। लगता था, मानो भारत माता ने अपने वीर सपूतों से आगे बढ़कर गुलामी की जंजीरों को तोड़ फेंकने की गुहार की है। इन गीतों से प्रेरित होने वालों में बच्चे, बूढ़े, जवान सभी थे। अंग्रेज सरकार कुछ भौचक्की सी थी कि आजादी के गीत गाते हुए निहत्थे आगे बढ़ते इन देशभक्त रणबांकुरों को कैसे रोका जाए? अंग्रेज सरकार लाठी-गोलियां चलाती, पर आजादी के गीत गाते देशभक्तों के काफिले झुकने का नाम न लेते। आजादी के ये जोशीले गीत ही मानो इन दीवानों के सबसे बड़े हथियार बन चुके थे।

आजादी की लड़ाई में भारत की स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने की प्रेरणा देने वाले जोशीले गीतों ने भी बड़ा कमाल दिखाया। एक साथ हजारों-लाखों कंठों से ये गीत फूट निकलते थे, तो आसमान गूंज उठता था। लगता था, मानो भारत माता ने अपने वीर सपूतों से आगे बढ़कर गुलामी की जंजीरों को तोड़ फेंकने की गुहार की है। इन गीतों से प्रेरित होने वालों में बच्चे, बूढ़े, जवान सभी थे। अंग्रेज सरकार कुछ भौचक्की सी थी कि आजादी के गीत गाते हुए निहत्थे आगे बढ़ते इन देशभक्त रणबांकुरों को कैसे रोका जाए? अंग्रेज सरकार लाठी-गोलियां चलाती, पर आजादी के गीत गाते देशभक्तों के काफिले झुकने का नाम न लेते। आजादी के ये जोशीले गीत ही मानो इन दीवानों के सबसे बड़े हथियार बन चुके थे।

वंदेमातरम् : सबसे अधिक असर था 'वंदेमातरम्' गीत का। आजादी के परवाने चाहे, वे बच्चे हों या बूढ़े, स्त्रियां हों या पुरुष, जब वे 'वंदेमातरम्' गाते हुए निकलते, तो उनके मन में अजब जोश होता था। इस राष्ट्रीय गीत में वह ललकार थी, जो सोए दिलों को भी जगा दे।

वंदेमातरम् गीत की रचना बांग्ला के महान साहित्यकार बंकिमचंद्र चटर्जी ने की थी। उनके 1882 में लिखे अत्यंत प्रसिद्ध उपन्यास 'आनंदमठ' में यह पहली बार सामने आया। यह मातृभूमि की वंदना का बड़ा ही सुंदर और सुमधुर गीत है, जिसमें भारत देश के गौरव का अद्भुत वर्णन है। एक हरे-भरे, सुंदर वनस्पतियों और प्रकृति की मनोहर आभा से युक्त भारत का यह चित्र मानो हर भारतवासी के मन को मोह लेता है- सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम् शस्यश्यामलां मातरम्।

इस गीत को पहली बार रवींद्रनाथ ठाकुर ने 1896 के कांग्रेस अधिवेशन में गाया था। वंदेमातरम् गीत की एक बड़ी खासियत यह भी है कि यह बहुत मधुर और अच्छा लगने वाला गीत है। यही वजह है कि आजादी के आंदोलनों में होने वाली बड़ी-बड़ी सभाओं और जलसों में देशवंदना के इस गीत को गाया जाता, तो समा बंध जाता।

सच तो यह है कि वंदेमातरम् गीत मानो देश पर अर्पित होने और आजादी की लड़ाई का एक क्रांति-मंत्र ही बन गया था। इसीलिए क्रांतिकारियों ने भी इसे अपनाया और वंदेमातरम् का जयघोष करते हुए वे हंसते-हंसते फांसी के तखते पर झूल गए।

इस गीत को अनेक लोगों ने स्वरबद्ध किया। बीबीसी ने वर्ष 2002 में दुनिया भर में सबसे प्रसिद्ध 10 गीतों का चुनाव किया, तो ए. आर. रहमान द्वारा रचे संगीत से सजे वंदेमातरम् गीत को दूसरा स्थान मिला।

झंडा ऊंचा रहे हमारा : वंदेमातरम् की तरह ही शामलाल पार्षद का लिखा हुआ झंडा गीत भी उन दिनों बहुत मशहूर हुआ था। कानपुर के रहने वाले शामलाल ने 1924 में इस गीत को लिखा था। तब इसके प्रकाशक खन्ना प्रेस ने इसकी पांच हजार प्रतियां छापी थीं। यह गीत इतना असरदार था कि इसे 1925 के कांग्रेस अधिवेशन में झंडा गीत के रूप में मान्यता दी गई और इसे वहां गाया गया।

शामलाल पार्षद की लिखी अधिक रचनाएं नहीं मिलतीं, पर

उनका लिखा यह झंडा गीत बड़ा अनोखा और जोशभरा है, जो उन दिनों बच्चे-बड़े सभी की जुबान पर था। स्कूली छात्र भी झंडा हाथ में लिए इसे गाते हुए निकल पड़ते थे, तो अंग्रेजी सरकार की नींद हराम हो जाती। वर्ष 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में तो हालत यह थी कि मानो हर हाथ में झंडा था और हर होंठ पर शामलाल पार्षद का लिखा यह विलक्षण झंडा गीत, जिसमें देश के लिए बलि-बलि जाने की पुकार थी। इसी पुकार पर कितने ही किशोरों और युवकों ने पढ़ाई छोड़ी और आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। संकल्प किया कि वे अंग्रेज सरकार की नौकरी नहीं करेंगे। इस राष्ट्रीय गीत में देश की स्वतंत्रता के लिए आगे बढ़ने की जोशीली पुकार है

चाहे जान भले ही जाए,
विश्व विजय करके दिखलाएं
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा।
झंडा ऊंचा रहे हमारा,
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।

सरफरोशी की तमन्ना : काकोरी कांड में शामिल और महान क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल का लिखा यह क्रांति गीत भी उन दिनों हजारों कंठों से एक साथ गूंजता था। तब हवाओं में जोश और उत्साह की लहर सी फैल जाती थी। खासकर देश के लिए जान हथेली पर लेकर लड़ने वाले क्रांतिकारियों का तो यह प्रिय गीत था

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

इस राष्ट्रीय गीत में बिस्मिल के महान बलिदान की महक है, जो अनगिनत तकलीफें झेलकर चुपचाप क्रांति अभियान में लगे हर क्रांतिकारी का वह सपना भी, जो लाखों लोगों के दिलों में कुछ कर गुजरने का तूफान पैदा कर देता है

वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है।

रामप्रसाद बिस्मिल भारत में अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ उठ खड़े हुए क्रांतिकारी आंदोलन के अगुआ और वीर नायक भी थे। उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों और वीरतापूर्ण कारनामों ने अंग्रेजी सत्ता को हिला दिया।

खूब लड़ी मर्दानी : सुभद्राकुमारी चौहान का लिखा गीत- 'खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी थी।' उन दिनों खूब मशहूर हुआ था। बच्चा हो या बड़ा, हर किसी की जुबान पर यह गीत था। इस गीत में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का बड़ा ही अपूर्व वर्णन है, जिससे अंग्रेज सरकार दहल गई थी। पूरे देश में अंग्रेजों के खिलाफ गुस्से और जागृति की लहर छा गई थी। देश के लिए जान की बाजी लगा देने वाली इस महान वीरांगना के बलिदान को याद करके कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने बड़े ही ओजपूर्ण शब्दों में लिखा था

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी थी।

सुभद्रा जी के इस जोशीले गीत ने भी पूरे देश में आजादी का अलख जगाया। इस गीत में वर्ष सत्तावन के स्वाधीनता संघर्ष की जो जोशीली स्मृतियां हैं, वे मन पर गहरा असर डालती हैं। इस गीत को सुनकर अनेक देशभक्त युवक-युवतियां सत्तावन के क्रांतिवीरों को अपना आदर्श मानकर आगे बढ़े। इससे स्वाधीनता संग्राम में एक नया जोश पैदा हुआ।

सारे जहां से अच्छा : पराधीनता के दौर में हवा में गूंजते राष्ट्रीय गीतों में इकबाल का लिखा अमर गीत 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा...' भी था, जो देखते ही देखते लाखों लोगों के कंठ पर मचलने वाला राष्ट्रीय गीत बन गया। इस गीत में देश के लिए गहरा प्यार और भावना है 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा, हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलिस्तां हमारा।' इसे गाते हुए भारत की मनमोहिनी सुंदरता का यह चित्र भी मानो आंखों में बस जाता है और भुलाए नहीं भूलता

परवत वह सबसे ऊंचा हमसाया आसमां का,
वह संतरी हमारा, वह पासवां हमारा।
गोदी में खेलती हैं जिसकी हजारों नदियां,
गुलशन है जिसके दम से रश्केजिना हमारा।

इस सुंदर और भावपूर्ण गीत की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसमें भारत के उस उदार रूप की झांकी है, जिसमें सभी धर्म और मजहबों के लोग आपस में प्यार से रहते हैं। यही भारत की सबसे बड़ी ताकत भी है, जिसके कारण आज भी उसकी अलग हस्ती है और वह सारे संसार को प्यार का संदेश दे रहा है

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्तां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा।

इकबाल के लिखे इस अद्‌भुत गीत का असर इतना अधिक था कि देखते ही देखते यह पूरे भारत में देशप्रेम और स्वाधीनता का मंत्र बनकर छा गया। इस गीत ने लाखों स्वाधीनता सेनानियों को प्रेरित किया और आज भी इसे सुनते हुए मन देशभक्ति के राग में निमग्न हो जाता है।

नरेन्द्र फोटो कॉपी, पोस्ट खरोरा, जिला रायपुर,
छत्तीसगढ़-493 225

आलेख

जनजीवन को एक सूत्र में पिरोती सिरमौरी उपभाषा

● डॉ. मनोज शर्मा

सिरमौर के अधिकांश निवासी सिरमौरी (पहाड़ी) भाषा बोलते हैं । सर-जॉर्ज ग्रियर्सन प्रभृति भाषा के विद्वानों ने उत्तरी भारत की समस्त पहाड़ी भाषाओं को तीन भागों में बाँटा है । ये क्रमशः पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी पहाड़ी कहलाती हैं। सुदूर पूर्व की पहाड़ी नेपाली या तस-कुरा अथवा गोरखाली कहलाती है। मध्य की कुमाऊंनी तथा गढ़वाली कहलाती है। पश्चिमी पहाड़ी जौनसार बाबर से लेकर भद्रवाह (काश्मीर) तक बोली जाती है। सिरमौरी, बघाटी, क्योंथली, कुल्लुई, मण्डयाली, कांगड़ी, चम्बयाली तथा भद्रवाही इसी पश्चिमी पहाड़ी के रूप हैं । पश्चिमी पहाड़ी को अब हिमाचली पहाड़ी भी कहा जाने लगा है ।

उपर्युक्त पश्चिमी अथवा हिमाचली पहाड़ी उप भाषाओं की अनेक बोलियां हैं। यद्यपि इन का उद्‌गम एक ही है । परन्तु चिरकाल तक भिन्न-भिन्न राजनैतिक इकाइयों, भिन्नताओं के घेरे में बंधे रहने के कारण इनके शब्द समूह में व्याकरण तथा उच्चारण में भिन्नता प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में ये एक ही हैं। इस क्षेत्र के दुर्गम वनों, पर्वतों, नदी, नालों से आच्छादित होना तथा आवागमन के साधनों की कमी इस भिन्नता के पनपते रहने का एक और करण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा इस क्षेत्र के एकीकरण के पश्चात् ये भिन्नताएं धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं ।

सिरमौरी उप भाषा की बाशऊ, घारठी तथा खौलटू बोलियां हैं। जौनसारी भी इसी की एक बोली है। ये बोलियां सिरमौर मण्डल जौनसार बाबर, शिमला जिले की जुब्बल तथा चौपाल तहसील और ज़िला अम्बाला के मोरनी (कोटाहा) परगने में बोली जाती हैं । किसी समय ये सब क्षेत्र प्राचीन सिरमौर रियासत में सम्मिलित थे। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विशेषतः गोरखा युद्ध के पश्चात् तथा अंग्रेजों के इस भू-भाग पर अधिकार कर लेने पर यह इससे अलग कर दिये गये। इन क्षेत्रों में जौनसार बाबर अब उत्तर प्रदेश का भाग है तथा मोरनी कोटाहा हरियाणा प्रदेश में सम्मिलित है।

सिरमौरी उप भाषा के पूर्व में पश्चिमी हिन्दी, दक्षिण में खड़ी बोली तथा हरियाणवी, पश्चिम में बघाटी तथा उत्तर में क्योंथली और बुशहरी (कुल्लुवी) भाषाएं बोली जाती हैं। अतः इन सब की छाप से यह अछूती नहीं हैं। डा. ग्रियर्सन के अनुसार यह सम्पूर्ण सिरमौर, संलग्न अम्बाला जिला के पर्वतीय भाग तथा ज़िला शिमला के जुब्बल और चौपाल क्षेत्रों में बोली जाती है। यह मध्य पहाड़ी तथा पश्चिमी पहाड़ी के बीच सेतु का काम करने वाली भाषा है। गिरी नदी सिरमौर के मध्य में स्थित है। यह नदी इस ज़िले को दो भागों में गिरीवार अथवा बाशऊ तथा गिरिपार अथवा धारठी में बाँट देती है। इसी नदी के कारण बाशऊ पर पश्चिमी पहाड़ी (क्योंथली बघाटी तथा बुशहरी कुल्लुवी) का अधिक प्रभाव और धारटी पर पश्चिमी हिन्दी तथा खड़ी बोली का प्रभाव रहा है। क्योंकि पहले इस नदी के बीच में होने के कारण इसके वार तथा पार बसने वालों का आपस में कम सम्पर्क रहता रहा। बाशऊ की पुनः शुद्ध बाशऊ और हाटी दो बोलियां हैं। इसी प्रकार धारठी की सेयण्टू तथा धारटू दो बोलियां हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थानीय बोलियां भी सिरमौर में बोली जाती हैं जैसे पांवटा दून की बाहतियों की बोली, ज़िला अम्बाला के मैदानी भाग के साथ लगने वाले क्षेत्र त्रिलोकपुर तथा नाहन की त्रिलोकपुरी अथवा नानूहटू बोलियां तथा घिन्नी घाट की घाडू बोली। ये सब खोलटू बोलियां कहलाती हैं। वास्तव में इन सब बोलियों के बोलने वाले बाहर से आकर सिरमौर में बसे हुए हैं तथा इन की संख्या बहुत कम है। कुछ लोग खोलटू की देशवाली बोली भी कहते हैं जो कि सिरमौरी ही है ।

फलतः सिरमौरी के गिरी पारी (बाशऊ तथा हाटी) और गिरीवारी (धारटू तथा सेयण्टू) दो मुख्य रूप हैं : इन में से गिरि पारी ठेठ सिरमौरी तथा गिरीवारी साधारण सिरमौरी कही जा सकती हैं । ये दोनों क्रमशः पश्चिमी पहाड़ी और पश्चिमी हिन्दी से प्रभावित हैं। परन्तु इनके इस प्रकार प्रभावित होने तथा कहलाने पर भी मूलतः ये हिन्दी की दुहिता 'पश्चिमी पहाड़ी' की देन है। यहां के निवासी खौलटू बोलियों को यद्यपि मैदानी भागों अथवा बाहर से आये हुये

सिरमौरी वर्तमान काल में ढाई लाख के लगभग लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। डॉ. ग्रियर्सन ने लगभग सन् 1911 की जन-संख्या के आधार पर अपनी पुस्तक लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया की नवीं जिल्द के चौथे भाग के पृष्ठ 456 पर सिरमौरी का सोदाहरण विस्तृत वर्णन किया है परन्तु इस के पश्चात् इस क्षेत्र की जन-संख्या तथा इसके बोलने वालों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। उनके वर्णनानुसार सिरमौर निवासियों की भाषा स्वयं सिरमौरी कहलाती है।

लोगों (जिन्हें सिरमौरी में देशवाली कहा जाता है) की बोलियां मानते हैं परन्तु ये सब अब वाक्य-विन्यास तथा उच्चारण के लिहाज से पूर्णतया सिरमौरी बन गई हैं तथा इन पर सिरमौरी धारटी का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। यह प्रभाव ठीक ऐसे ही है जैसे गिरीपार में हाटी बोली पर बाशऊ का प्रभाव है। बाशऊ यथार्थ में जुब्बल क्षेत्र और उस से संलग्न सिरमौरी क्षेत्र में बोली जाती है जिसके दूसरी ओर बराड़ी बोली जाती है। बराड़ी सिरमौरी की अपेक्षा क्योंथली से अधिक प्रभावित प्रतीत होती है।

सिरमौरी वर्तमान काल में ढाई लाख के लगभग लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। डॉ. ग्रियर्सन ने लगभग सन् 1911 की जन-संख्या के आधार पर अपनी पुस्तक लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया की नवीं जिल्द के चौथे भाग के पृष्ठ 456 पर सिरमौरी का सोदाहरण विस्तृत वर्णन किया है परन्तु इस के पश्चात् इस क्षेत्र की जन-संख्या तथा इसके बोलने वालों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। उनके वर्णनानुसार सिरमौर निवासियों की भाषा स्वयं सिरमौरी कहलाती है। यह भाषा सिरमौर तक ही निहित नहीं है बल्कि ज़िला अम्बाला के कुछ पहाड़ी भू-भाग जो सिरमौर के साथ लगते हैं तथा जुब्बल के अधिकांश भाग में भी यह बोली जाती है। इन्होंने इस बोली के कुछ उदाहरण, इसकी लिपि तथा वाक्य विन्यास आदि भी उपस्थित किए हैं।

डा. ग्रियर्सन के मतानुसार पहाड़ी भाषा का आधार खश भाषा है। परन्तु राजस्थानी से भी इस का सम्पर्क रहा है जिसका कारण यहां गुर्जर प्रभाव का होना है। ऐसा प्रतीत होता है कि जो स्पाद लक्षीय गुर्जर यहां के खशियों से रल-मिल गये उन्हीं की सन्तानें उत्तरी भारत तथा राजस्थान में फैली और समय के बीत जाने पर वे ही पुनः इन पहाड़ों में आकर राज करने लगीं। इसी कारण लगभग सभी पहाड़ी राजा अपने आप को भारत के मैदानी भागों से आये हुए राजपूत बताते थे। सिरमौर का अन्तिम राजवंश उन में से एक था। इस वंश के राजा अपने आप को जैसलमेर के राजवंश का वंशज बताते थे। जुब्बल, बलसन तथा थरोच के शासक भी इसी वंश से थे।

स्पाद लक्षीय गुर्जर कौन सी बोली बोलते थे? क्या यह इण्डो-आर्यन (भारोपीय) भाषा समूह का ही एक अंग थी ? ये सभी बातें अभी शोध का विषय है । ये लोग स्वात से राजस्थान की ओर बढ़े, अतः इन की भाषा स्वाती गुर्जरी की बजाय मेवाती या राजस्थानी कहलाने लगी। यहां से पुनः पहाड़ों की ओर लौट जाने के कारण इसी मेवाती राजस्थानी भाषा का प्रभाव सिरमौरी पर पड़ा जो सिरमौरी के उच्चारण तत्वों से स्पष्ट होता है । इसके अतिरिक्त आर्यावर्त से संलग्न तथा उसके सिरे पर स्थित होने के कारण संस्कृत भाषा का प्रभाव भी सिरमौरी पर है। इसमें जो फारसी, अरबी के शब्द घुल-मिल गये हैं। इसका कारण बाद में यहां के राजवंश का पठान तथा मुगल बादशाहों के सम्पर्क में आना कहा जा सकता है। फारसी, अरबी के बहुत से शब्द अब भी यहां के निवासी बोलते रहते हैं जैसे : दालत (अदालत), कचहरी, ज़िला, फौज, इज्जत, बाग, अक्लबोन्द (अकलमंद), तरीक (तारीख), मुन्   ी, तनखा, कताब, मजाल, तागत (ताकत) तथा तमीज आदि । परन्तु ऐसे शब्दों की अपेक्षा संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का ये लोग अधिक संख्या में प्रयोग करते हैं जैसे कुक्कर, गांव, आग, डौण्ड, आदर, दुष्ट, बाण, गोयण, (गयण), गौण (गण), पिरथूवी (पृथ्वी), चौर, द्वार तथा दाण (दान) आदि ।

उच्चारण-विशेषता :

सिरमौरी में उच्चारण तथा उच्चरित ध्वनियों के अनुसार स्वरों में 'अ' का उच्चारण 'आ' तथा 'औ' हो जाता है जैसे 'कापड़ा' तथा 'घौर', 'कपड़ा' तथा 'घर' के स्थान पर । 'इ' का उच्चारण 'ए' के रूप में किया जाता है जैसे-'तिस' के स्थान पर 'तेस' उस के अर्थ में। 'ई' तथा 'ए' का उच्चारण दोनों रूपों में होता है जैसे 'वह' के अर्थ में 'सी' अथवा 'से' । 'अ' और 'औ' भी स्थान के अनुसार रूप बदल लेते हैं : जैसे-सुनना के अर्थ में 'शुणणा' और 'शुणणौ' तथा सुच्चा के अर्थ में 'शुच्चा' तथा 'शुच्चौ' तथा 'मैं' के अर्थ में 'आंह' तथा 'औंह' अथवा 'हौं' आदि ।

व्यंजनों में 'ह' (महाप्राण अघोष) का उच्चारण विशेष रूप से किया जाता है । जिसे गिरा कर 'अ' की सहायता से ध्वनित किया जाता है । जैसे 'हाथ' और 'होना' को 'अहाथ' और 'अहोणों' तथा बहिन को 'बोयण' इस आधार पर वर्ण माला का हर चौथा महाप्राण घोष अक्षर 'ह' की ध्वनि गिरा कर तीसरे अक्षर के मेल से बोला जाता है। जैसे 'घर' को 'गहौर'। पश्चिमी पहाड़ी की यह विशेषता लगभग सभी स्थानों पर पाई जाती हैं । मेवाती (राजस्थानी) में भी यह मिलती है। परन्तु काश्मीरी तथा पंजाबी में वर्णमाला के हर चौथे अक्षर का ध्वनि-सम्बन्धी अलगाव इस से कहीं विलक्षण है तथा अपना जुदा ही स्थान रखता है। इनमें हर वर्ग का चौथा अक्षर पहले अक्षर के मेल से बोला जाता है जैसे कहर (घर), चहगड़ा (झगड़ा) आदि।

सिरमौरी में कठोर व्यंजनों को कोमल ध्वनियों में परिवर्तित करने की विधा भी मिलती है। जैसे दांत का 'दांद' और 'पांच' को

'पांज' उच्चारण किया जाता है। इसमें वर्ग के अन्त के हर दूसरे अक्षर को उसी वर्ग के पहले अक्षर में बदल दिया जाता है जैसे 'ठाठ' को 'ठाट' कहा जाता है। इसी प्रकार चवर्ग के वर्णों से आरम्भ होने वाले शब्दों को दन्त्य बना कर बोला जाता है जैसे 'चार' को 'त्चार' 'जान' को 'त्जान'। अन्त में 'स' को 'श' बोला जाता है : जैसे 'दश' 'बीश' तथा 'शौ' आदि। अन्त्य 'न' को भी 'ण' में बदल दिया जाता है जैसे 'पोण', 'पाणी' आदि। ऐसे ही मूर्धन्य 'श' को 'श', 'ख' अथवा 'छ' में बदला जाता है जैसे 'माणश', 'बौरखा' और 'मांछ' आदि। कभी-कभी 'ल' को 'ल' में जैसे मेला 'त्र' को 'च' जैसे 'पात्र' को 'पाच' और 'क्षेत्र' को 'खेच'। इसी प्रकार 'क्ष' को 'ख' जैसे 'पक्ष' को 'पाख' कहा जाता है। 'य' तथा 'व' प्रायः 'आ' में परिवर्तित हो जाते हैं जैसे 'याद' का 'आद' और 'वास्ते' का 'आस्ते'।

इस भाषा में वे सभी तत्व हैं जो उच्चारण के लिए आवश्यक हैं। ये इस ने भिन्न-भिन्न सामयिक प्रभावों और मिश्रणों से ग्रहण किए हैं। इसमें खशिया तथा गुर्जरी आदि सभी प्रभाव सुरक्षित हैं। इसके अपने विशेष उच्चारण, ध्वनियां, प्रयत्न और गमके हैं जो इसे साथ लगने वाली दूसरी भाषाओं से अलग रखती हैं।

संज्ञा : संज्ञा के मूल तथा विकारी दोनों रूप होते हैं। ये सबल और निर्बल दो अन्य भागों में भी बाँटी जा सकती हैं। सबल के अन्त में 'अ' अथवा 'आ' लगा रहता है जैसे नृण अथवा लूण, घोड़ा तथा कागद आदि। परन्तु निर्बल संज्ञाएं व्यंजनान्त होती हैं जैसे गहौड़, दाच् अथवा पाच् आदि।

लिंग : इस में स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग दो ही लिंग होते हैं। प्राणियों के द्योतक पुल्लिंगों को स्त्रीलिंग में परिवर्तित करने के लिये संज्ञाओं में अण प्रत्यय लग जाता है जैसे-नाई से नायण, बाढ़ी से बाढण आदि। अकारान्त अथवा उकारान्त संज्ञाओं में 'ई' प्रत्यय लग जाता है जैसे छोटू-छोटी, लाड़ा-लाड़ी आदि। कुछ संज्ञाएं स्त्रीलिंग में दूसरा ही रूप ग्रहण कर लेती हैं जैसे शोरा-शाशु, बेटा- बोहू, भाई-बैहण, बाबा-अम्मा आदि।

वचन : सिरमौरी में हिन्दी की तरह दो ही वचन होते हैं। एक वचन तथा बहुवचन। कभी-कभी दोनों वचनों के रूप एक ही प्रकार के होते हैं। जैसे बाह्मण शब्द बहुवचन में भी बाह्मण ही बोला जाता है परन्तु बेयर का बहुवचन बेयरों बन जायेगा।

कारक : कारक भी हिन्दी के समान ही होते हैं। कर्ता में एक वचन में विकार हो जाता है और बहुवचन में भी। यह एक जैसा ही होता है। जैसे-बाह्मण, बाह्मणें तथा हाम, हामें आदि।

लगभग सभी तद्भव संज्ञाओं के रूप हिन्दी के समान होते हैं, जिस में 'ने' के स्थान पर 'वाले' लग जाता है जैसे गांव वाले 'गांव वालों ने' के स्थान पर निर्बल तद्भव पुल्लिंग संज्ञाओं के कारक रूप सिरमौरी की विशेषता है। कर्ता के रूप में कोई रूप जोड़ दिया जाता है, जैसे 'गहौरे' अथवा 'घौरे' एक वचन में भी 'गहौरे' होगा और बहुवचन में भी गहौरे अथवा घौरे रहेगा। निर्बल तद्भव स्त्रीलिंग संज्ञाओं का विकारी रूप भी स्वर की वृद्धि से बन जाता है जैसे 'बेहण' का एक वचन 'बेहणे' बहुवचन में भी बेहणे होंगी। ऐसे कर्ता के अतिरिक्त करण तथा अधिकरण एकवचन तथा बहुवचनों में 'ए' जोड़ने से बन जाता है जैसे-बाबा से बाबे (बाप द्वारा) 'धी' से 'धीर' (पुत्री द्वारा)।

विभक्तियों के अन्य रूप प्रत्ययों के प्रयोग द्वारा बनते हैं जैसे 'को' के लिए 'खे' अथवा 'आगे' या 'गे', 'से' के लिए 'दा', 'दे', 'दी' का, के, की के लिए रा, रे, री में के लिए 'दा', 'दी', मांझ, पांदे, आदि।

विभक्ति रूप :

सिरमौरी के विकार तथा कारक

सिरमौरी के विकार तथा कारक विभक्तियां हिन्दी के ही समान होने से लगभग सभी वर्तमान और संज्ञा शब्दों में एक ही सी विभक्तियां लगती हैं जैसे 'छेडुए' लेरो दी' (बच्चों ने चीखें मारीं) अथवा 'तौय रोटी खाई' (तूनें रोटी खाई), इसी प्रकार सप्रत्यय कर्ता कारक का विभक्ति रूप या प्रत्यय 'ए' है जो प्रत्येक संज्ञा के अन्त में दोनों लिंगों में जोड़ा जाता है। उपरोक्त सर्वनामों की भांति ही अप्रत्यय में सर्वनाम और संज्ञा के रूप अपरिवर्तित रहते हैं जबकि सप्रत्यय में मूल रूप में भी विकार आ जाता है और वे शब्द अपने परिवर्तित रूपों के साथ विभक्तियां जोड़ते हैं। कर्म कारक में सर्वनाम शब्द अपने अन्तिम रूप में बदलते हैं और अन्त तक उसके उसी रूप में विभक्तियां जुड़ती जाती हैं। इस प्रकार सर्वनाम शब्द कर्म कारक में अप्रत्ययी रहते हैं। प्रायः सिरमौरी में संज्ञा शब्दों में इस कारक में विभक्ति नहीं लगती। जैसे 'छेडू दूध दे' (बच्चे को दूध दो) या 'छोटी घौरे खे भेज' (लड़की को घर भेजो) यहां 'छेडू' और 'छोटी' मूल रूप में ही रहे हैं। परन्तु कभी-कभी इस नियम की अपेक्षा भी मिलती है। विशेषकर अकारान्त संज्ञा शब्दों में यह विकार दिखाई देता है, जैसे-'कुक्करो खे रोटी पा' (कुते को रोटी दो)' 'माष्ट्रो खे अथवा 'माष्ट्रो बीठणी खे बोल अर्थात् (मास्टर को बैठणे को कह)। इस प्रकार कुक्कर तथा मास्टर संज्ञा शब्द अकारान्त होने से कर्म कारक के अधीन आकारन्त हो गए हैं। कर्ण कारक में 'लोई' या 'लोए' दोनों में से कोई भी विभक्ति के लिए के स्थान पर बोली जाती है। सम्बन्ध कारक में 'का' 'के' 'की' के स्थान पर 'रे' 'री' विभक्तियां होती हैं। केवल निज वाचक शब्द 'आप' (स्वयं) के साथ सम्बन्ध कारक में हिन्दी के ना 'नैनी' के स्थान पर ण, णै, णी, लगती है। अधिकरण में 'में' और 'पर' सिरमौरी में 'दो' भेंज और 'पांदे' पाया जाता है। लिंग भेद के अनुसार कारक विभक्तियों का रूप सम्बन्ध कारक के अतिरिक्त कभी नहीं बदलता। कर्म कारक में और कभी-कभी सम्प्रदान कारक में विभक्ति 'ख' या 'खे' का प्रयोग भी होता है, जैसे 'तेई ख चेंई' (तुझ को चाहिए) या 'ते-ई चेंई (तुझे चाहिए)।

1.2 कुछ संज्ञाओं के विभक्ति रूप

आकारान्त पुल्लिग, गहोड़ा (घोड़ा)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	गहोड़े	गहोड़े
कर्म	गहोड़े ख	गहोड़े ख
करण	गहोड़े दा, गहोड़े लोई	
सम्प्रदान	गहोड़े खे, गहोड़े री खातरी	बहुवचन में भी
अपादान	गहोड़े गैदा	एक जैसे रूप होंगे
सम्बन्ध	गहोड़े रा, रे, री, रो	
अधिकरण	गहोड़े पांदे, गहोड़े दा,	
सम्बोधन	हे गहोड़े ! हे गोड़िया !	

ईकारान्त हाथी (हाथी)

कर्ता	हाथी-हाथिए	हाथी हाथिए
कर्म	हाथी, हाथी ख	हाथी, हाथी ख
करण	हाथी लोई, हाथी लोय	एक वचन की तरह
सम्प्रदान	हाथी खे	एक वचन की तरह
अपादान	हाथी गैदा, हाथी दा	एक वचन की तरह
सम्बन्ध	हाथी, रा, रे, री, रो	एक वचन की तरह
अधिकरण	हाथी पांदे, हाथी दा	एक वचन की तरह
सम्बोधन	हे हाथी !	हे हाथियो !

ऊकारान्त संज्ञाओं जैसे-छेड़ू, छोटू तथा विच्छू आदि के रूप भी इसी प्रकार बनते हैं ।

ईकारान्त स्त्रीलिंग 'छोटी' (लड़की अथवा पुत्री)

कर्ता	छोटी, छोटिए	छोटी, छोटिए
कर्म	छोटी, छोटीख	छोटी, छोटीख
करण	छोटी लोई, छोटी लोय	एक वचन की तरह
अपादान	छोटी दा, छोटी गैदा,	एक वचन की तरह
सम्बन्ध	छोटी रा, रे, री, रो	एक वचन की तरह
अधिकरण	छोटी पंद, छोटी पांदे	एक वचन की तरह
सम्बोधन	हे छोटी !	हे छोटियो !

व्यंजनान्त पुल्लिग 'घौर' (घर)

कर्ता	घौरे, घौरे	घौरे, घौरे
कर्म	घौरो, घौरोख	घौरो, घौरोख
करण	घौरो लोई, घौरे लोय	एक वचन की तरह
सम्प्रदान	घौरो खे	एक वचन के ही समान
अपादान	घौरो वा, घौरो गैदा	एक वचन की तरह
सम्बन्ध	घौरो रा, घौरो रा, री, रे	एक वचन की तरह
अधिकरण	घौरो पंदा घौरो दा,	घौरे मेंझ एक वचन की तरह
सम्बोधन	हे घोर ।	हे घोर ।

व्यंजनान्त स्त्रीलिंग 'बैहण' (बहिन)

कर्ता	बैहण, बैहणे	बैहणे, बैहणिए
कर्म	बैहणी, बैहणी ख	बैहणो, बैहणोख
करण	बैहणी लोई, लोय	बैहणी लोई, लोय

सम्प्रदान	बैहणी ख, खे	बैहणी ख, खे
अपादान	बैहणी दा, गैदा	बैहणी दा, गैदा
सम्बन्ध	बैहणी रा, रो, री, रे	बैहणी रा, रो, री, रे
अधिकरण	बैहणी पां दे वा	बैहणो पांद दा
सम्बोधन	हे बैहणिए ।	हे बैहणियो ।

इसी प्रकार गाओ अथवा गाए (गौ) के रूप बनते हैं ।

1.2.1 सर्वनाम

सिरमौरी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एक वचन में अहां, आहों, भिख, भाख, भीखे, बहुवचन में हाम, हामोख, मध्यम पुरुष में तू, तौंय, ताख, ताईखे तथा बहु वचन में 'तुम' रूप होता है। अन्य पुरुष में 'सा' रूप दोनों रूपों में होता है। आदर सूचक 'आप' शब्द के स्थान पर सदैव 'तुम' का प्रयोग किया जाता है। कुछ सर्वनामों की विभक्तियों के रूप इस प्रकार हैं।

पुरुष वाचक उत्तम पुरुष 'अहां' (मैं)

कारक	एक वचन	बहु वचन
कर्ता	हां, अहों, आंहऊ,	न्यं, मौयं हांम, हांमे
कर्म	मी	हांमो
करण	मी लोय, लोई	हांमो लोई, हामो लोय
सम्प्रदान	मींख मींखे, माख	हांमो खे
अपादान	मी गैंदा, मूं गैंदा	हांमो गैदा
सम्बन्ध	मेरा, मेरो, मेरी, मेरे	म्हारा, म्हारो, म्हारी, म्हारे
अधिकरण	मींदा, मूंदा, मीपांदे, हामों पांदे	बहामौदा, हामोपांद

पुरुष वाचक मध्य पुरुष 'तू' (तू)

कर्ता	तू, तौयं	तुम, तुमें, तुएं,
कर्म	ताई, तैई	तमो, तुऔं
करण	तांईदा, तांई लोई लोय	हामोदा, हामो लोई, लोय
सम्प्रदान	तांई खे, तौई खे	तुमों खे, तुऔ खे
अपादान	तांई गैदा, तेंई गैंदा	तुमो खे, तुऔ खे
सम्बन्ध	तेरा, तेरी, तेरो, तेरी	त्हारा, त्हारो, त्हारी, त्हारे
अधिकरण	तांईदा, तेईदा, ताईपांद, तुमौदा तेंईपांद,	तुमो पांद, तुऔ पांद, तुऔंदा

अन्य पुरुष तथा निश्चय वाचक 'ई' (यह शब्द)

	पुंल्लिग	स्त्रीलिंग
कर्ता	ई, ऐणिए, ई, इन्हें	ई, ईए, ई, इन्हें
कर्म	ऐसी, इन्हों	ईयों, इन्हों
करण	ऐसी लोई/लोय	इन्हीं लोई/लोय, ईयों लोई/लोय
सम्प्रदान	ऐसी ख/खे	इन्हों ख/खे, इंयोख/खे
अपादान	ऐसी गैदा	इनूहों गैदा, ईयों गैदा
सम्बन्ध	एसरा, रो, री, रे	इनो रा, रो, री, रे, ईयों रा, री, रे, री
अधिकरण	ऐसदा, एसपांद, इन्हौदा, इनौदा, इनौपांद,	ईयोंदा इन्हौपांद इयोंपांद

अन्य पुरुष वाचक निश्चय वाचक सी (वह) शब्द

	पुंल्लिग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सी, से तेणिए,	सी, से, तिन्हें	सी, से, तिएं	सी, से, तिन्हें
कर्म	तैसी	तिन्हों	ती औ	तिन्हों

करण	तेसी लोई, लोय	तिन्हों लोइ लोय	तिओं लोई, लोय	पु. बहुवचन की तरह
सम्प्रदान	तेसीख, खे	तिन्होख, खे	तीओं ख खे	वही
अपादान	तेसी गैदा	तिन्हों गैदा	तीओं गैदा	वही
सम्बन्ध	तेसरा, रो, री, रे रो, री, रे	तिन्हों रा, री, रे	तीओ, रा, रो,	वही
अधिकरण	तेसीदा, तेसी पांद तिन्होंपांद	तिन्हों दा,	तीओं दा, पांद	वही

अनिश्चय वाचक शब्द कुई अथवा कुएं (कोई)

सिरमौर में कोई के अर्थ में कुई या कुएं शबूद प्रयोग किए जाते हैं । जिन का कारक रूप कौन के अर्थ में कण् का ही प्रयोग होता है । वाक्यों में कुई अथवा कुएं शबूद का प्रयोग कम ही होता है । जैसे, प्रश्न सूचक के लिए :- 'कुंए डोआ पांडा ?' (कोई पार भी गया था ?) अथवा 'म्हारी बातो नि बाणदा कुएं ना ।' अर्थात् हमारी बातों को कोई नहीं जानता । इसी प्रकार अनिश्चय वाचक 'कुछ' शबूद का प्रयोग भी इसी मूल रूप में सीमित है । सम्बन्ध वाचक जू (जो) शबूद

	पुंलिंग		स्त्रीलिंग	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	
कर्ता	जू, जेणिए	जू,जिन्हे	जू, जियें	पुंलिंग बहुवचन की तरह
कर्म	जैसी	जिन्हों	ज्यों	पुंलिंग बहुवचन की तरह
कर्ण	जैसी लोई, लोय	जिन्हों लोई लोय	ज्यों लोई, लोय	पुंलिंग बहुवचन की तरह
सम्प्रदान	जैसी ख, जैसी खे	जिन्होख, खे	जियो ख, खे	पुंलिंग बहुवचन की तरह
अपादान	जैसी गेदा	जिन्हों गैदा	जियों गैदा	पुंलिंग बहुवचन की तरह
सम्बन्ध	जेसरा, रो, रे, री रो, री, री,	जिन्होंरा,	ज्यों रा, रो, री, रे	वही
अधिकरण	जैसी दा, जैसी- पांद	जिन्होंदा, पांद	जियोंदा, पांद	वही

प्रश्नवाचक कूण (कौन) शबूद

कर्ता	कूण, कूणिए	कूण, किन्हें
कर्म	कौसी	किन्हों
करण	कौसी लोई, लोय	किन्हों लोई, लोय
सम्प्रदान	कौसी ख, खे	किन्हों ख, खे
अपादान	कौसी गैदा	किन्हों गैदा
सम्बन्ध	कौसी, रा, रो, री, रे	किन्हों रा, रो, री, रे
अधिकरण	कौसी दा, कौसीपांद	किन्होंदा, किन्होंपांद

निजवाचक आप (स्वयं) शबूद

कर्ता	आप	आपी, आप
कर्म	आपी में, भी	आपी या आपूं मूं
करण	आपी लोई, लोय	आपी लोय
सम्प्रदान	आपी, ख, खे	आपू ख, खे
अपादान	आपी गैदा	आपू गैदा
सम्बन्ध	आपणा, आपणो	आपणे, आपणी
अधिकरण	आपीदा	आपीपांद

(शेष रूप सब वचनों और पुरुषों में समान होते हैं ।)

ऊपर लिखे उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सिरमौरी में मैं, तू, और प्रश्न वाचक 'कौन' शबूदों के अतिरिक्त सभी सर्वनाम शबूदों

का स्त्रीलिंग में रूप में बदल जाता है। जबकि हिन्दी में सर्वनाम शब्दों में लिंग विकार नहीं होता। यद्यपि हिन्दी की भांति सिरमौरी में भी सर्वनाम शब्दों का सम्बोधन नहीं होता किन्तु अपवाद में कभी-कभी ऐसा होता रहता है । जैसे 'ऐलो तू', ओला, तू, 'ऐरी तू', और रेतू,' के अर्थों में घोतक अव्यय की सहायता से पुरुष वाचक मध्यम पुरुष में लिंग भेद करके सम्बोधन का रूप प्राप्त किया जाता है । वह विशेषता केवल 'तू' शबूद में ही मिलती है। इसका कारण सिरमौरी में पति पत्नी का परस्पर नाम से सम्बोधन नहीं होता है। जो कुछ दूरी पर स्थित संज्ञा के लिये किया जाता है। जैसे ओ माईटू, हे रामनाथ?' सिरमौरी में 'ऐला, ओला' तथा 'ऐली', ओली', शबूद 'तू' शबूद के साथ जोड़ का साधारणतया पति पत्नी के परस्पर सम्बोधन के लिए प्रयुक्त होता है। इस उपभाषा में कर्ता कारक के अधीन दो रूप हैं । जैसे अहां, मौयं, तू, तौंय, ई, ऐणिए, सी, तेणिए, कूण, कुणिए इत्यादि। पहला रूप वर्तमान और भविष्यकाल में और दूसरा भूतकाल में प्रयोग होता है। जैसे अहां खाऊं (मैं खाता हूँ), अहां खाऊएं (मैं खाऊंगा) तथा मौयं खाया (मैंने खाया) ।

1.2.2 विशेषण

सिरमौरी के विशेषण लगभग हिन्दी के विशेषणों के समान ही होते हैं । उन में कोई भिन्नता नहीं होती । जैसे काला अथवा कालो, सोहणा अथवा सोहणो, बुरा अथवा बुरो, निऊंड़ा अथवा नीउंआ (नीचा), उचड़ा अथवा उच्चा (ऊंचा)। उन विशेषणों की जो, संज्ञा के रूप में बरते जाते हैं संज्ञा के समान ही विभक्तियां बनती हैं । किन्तु विषय के साथ आने वाले विशेषणों में जो ओकारान्त अथवा औकारान्त हैं, उनके साथ विभक्ति चिन्ह नहीं लगते ।

तुलना के लिए 'एसदा' अथवा कभी-कभी 'डा' और सौभीदा' प्रयुक्त किए जाते हैं । जैसे अच्छा, एसदा, आच्छा, अथवा आच्छड़ा और सौभी दा आच्छा । कुछ विशेषण इस प्रकार हैं : - ऐहरा अथवा ईशा (इस प्रकार), तेहरा, तेहरो या तिशा (उस प्रकार) केहरो, केहरा या किशा अथवा किशो (किस प्रकार) जेहरा, जेहरो, जिशा अथवा तेतणो अथवा तेतड़ा (उतना) केता केतड़ा, केतणा या केतगो (कितना) बैण, जेतड़ा जेतणा या जेतणो (जितना) ।

1.2.3 क्रिया

'औसो' वर्तमान काल की क्रिया का रूप है । ओसो (हैं) औसदिया या औसदिए, 'ओ' सहायक क्रिया 'रवा' (रहा) अथवा एथीं (केवल नकारात्मक के लिए) तथा था, थे, थिए, थोय, भूतकाल में और ला, गे, ए, उंए जैसे-खाऊंए /णा, जाणा या णो, आदि भविष्यत् के रूप होते हैं जैसे ओजो क्रिया से तीनों कालों के रूप ऐसे होंगे

वर्तमान	रामो गे कताब औसो	(राम के पास पुस्तक है) ।
भूत	रामो गे कताब थी	(राम के पास पुस्तक थी) ।
भविष्यत्	रामो गे किताब होली	(राम के पास पुस्तक होगी)।
तथा नकारात्मक में 'रामो गे कताब नि एथीं' ।		(राम के पास पुस्तक नहीं है)

1.2.4 अव्यय शब्द

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह सिरमौरी में भी संज्ञा सर्वनाम तथा विशेषण शबूदों से ही अव्यय शबूद बनते हैं । इनका आधार भी संस्कृत तथा प्राकृत आदि भाषाएं हैं ।

1.3 क्रिया विशेषण

सिरमौरी के कुछ विशेषण इस प्रकार हैं :-

1.3.0 स्थान वाचक :

घौरे (समीप), नीड़े (निकट), हूरी जगह (और स्थान पर) । ऊबा या हुवा (ऊपर), भीतर या भीतरो (अन्दर), बाईण्डा (बाहर), हीता अथवा ऐथ (यहां), तेथ (वहां), जैथ (जहां), कौथ (कहां), हुंदा (नीचे), हेठे (नीचे), मूले (नीचे), पांदे (ऊपर), तुली (नीचे से), गाशी (ऊपर से), इनका (इधर), तिन्हका (उधर), किन्हका या केहर का (किधर), इन्दा (इसमें) तिन्दा (उसमें), ओरा, उण्डा या ओरहका (इधर), पोरा, पुण्डा या पोरह का (परे या उस ओर, आगे या आगवै (आगे), पीछे या पाछवे (पीछे), सौये (सीधे या दाईं और), डेरे (बाई ओर), अरका, आरवे या आण्डा (और), पारका, पारवा या पाण्डा (पार) । कई ऐसे विशेषण भी हैं जो क्रिया विशेषण के रूप में भी प्रयोग होते हैं । जैसे हेठा, ढीठा इत्यादि ।

1.3.1 कालवाचक :

आबे (अब), तौबे, (तब), कौबे (कब), हैबी (अभी), गिरी, तेईने (फिर), आजे (आज), कहूल (कल), पोरशो (परसों), हिजो (पहला कल), फरेजो (पिछला परसों), ओरके या अबके (इस वर्ष), पोरके (पिछले वर्ष) परारके, (पिछले से पिछले वर्ष), नरार के (पिछले से पिछले से पिछले वर्ष अर्थात् चार वर्ष पहले), भीशो या भोलकी (सवेरे), सांझे या बूयाले़ (शाम को), आन्धरे या म्यानसरी (प्रातःकाल) दोती (आने वाले कल)।

1.3.2 परिमाण वाचक क्रिया विशेषण :

भौता (बहुत), थोड़ा (थोड़ा), दाणाख (जरा सा), उरशी (बहुत कम), मुक्ता (काफी), अहोलका (हलका), भारी या गौरका (भारी), ऐतणा या ऐता (इतना), तैतणा या तैता (उतना) कैतणा या कैता (कितना), जेतणा या जेता (जितना) ।

1.3.3 रीति वाचक क्रिया विशेषण :

ईशा या ऐरा (ऐसा या इस प्रकार) तिशा या तेहरा (उस प्रकार या वैश), बिशा या जेहरा (जिस प्रकार) जाणियो (मानों), सूलै (धीरे-धीरे), बिस्ते (अहिस्ते या देर से), शीघै (तेज, जल्दी), सताबी (तेज़ी से), चाणक (अचानक), छौलियो (हैरानी से या अचानक), एकीबेरी (एक ही बार), झेट, शट्‌ट (झट से) आपी (स्वयं) ।

निश्चय वाचक :

जरूर (अवश्य), साची (सचमुच), ठिक्का या ठिक्को (ज्यों ही या सही), भौला (बेशक) ।

अनिश्चय वाचक : का जाणि (कदाचित्) ।

स्वीकारात्मक : आहो, हाम्बै (हां), साची (सच है) । होर (हां, सच) ।

निषेधात्मक : ना, भाज या माजारो (मत) ना, नी, (नहीं) ।

सम्बन्ध बोधक : तेईऐ, तोंई (वास्ते), साए, साई (जैसा, सदृश्य), तूड़ी (तक), सुधे (समेत), गौयली (साथ) खातरी (के लिए, खातिर), बिना (बगैर) ।

3.3.4 योजक

होर, हो (और), 'बी' (भी, और), जे (यदि), के (क्योंकि), तौ, तौबे (तब, इसीलिए), के (या), कौणिख, कौदिख (किस लिए), पर (किन्तु), तौबे बी (तो भी), नी तो (नहीं तो) । और के अर्थ में सिरमौरी में दो शब्द हैं पहला 'होर' अथवा 'रौ' और दूसरा 'बी' । दो या अधिक शब्दों को योजित करने के लिए एक शबूद के रूप में रौ, 'होरे' प्रयुक्त होगा । और प्रत्येक शबूद के साथ अलग-अलग कर सबका जोड़ने वाले अव्यय के रूप में भी प्रयुक्त होगा । जैसे, निहालू, दयालू रौ माठिया डो गोए (निहालू, दयालू और माठिया चले गये) तथा निहालू बी, माठिया बी दूहने डो गोए (निहालू, और माठिया दोनों चले गये) । यहां 'बी' शब्द 'भी' अर्थ अधिक देता है।

1.3.5 द्योतक अव्यय

अहिल्ला (आहा) बौआ भाई बोआ (वाह भई वाह),

शोक : ओहिल्ला (हा आ), देऊवा (हादेव), राम राम (हरे राम), हो ओ, इत्यादि ।

तिरस्कार : छी; छु; फटकार ।

स्वीकार : तो (अच्छा ठीक है), हाम्बे (हां यह ठीक है), आहो (हां) ।

आश्चर्य : आच्छा ! ओहला ! गज्जब ! ओह तेरा या ओह तेरी ।

विस्मयादि भाव द्योतक पदों में पूर्ण तथा अभिव्यक्त नहीं हो पाते । अतः सिरमौरी में इस क्षेत्र में अधिक शबूद नहीं हैं । केवल व्यक्ति की भाव भंगिमा ही पूर्ण अर्थ का द्योतक होती है जो बिना किसी ध्वनि के 'ह' जैसे अक्षर के साथ प्रकट होती है । इसमें अक्षर विशेष के स्थान, प्रयत्न और प्रवास पर ही जोर दिया जाता है ।

सिरमौरी भाषा का वैयाकरणिक रूप सैद्धान्तिक दृष्टि ये हिन्दी जैसा ही है । यद्यपि इस भाषा में अभी तक व्याकरण की शुद्धता और परिमार्जन नहीं हुआ । इस भाषा की विशेषता इस के वाक्य-निर्माण विधि में निहित है, व्याकरण में नहीं जैसे कि अन्य लोक भाषाओं की। 'ऐसी लोक भाषाएं पड़ोसी निर्माण शैली से प्रभावित होती हैं । सिरमौरी पश्चिमी पहाड़ी की उपभाषाओं तथा पश्चिमी हिन्दी से प्रभावित है।

गांव पुजारली, डा. बाग-पशोग, तह. पच्छाद, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश, मो. 0 93188 42464

प्रेरक प्रसंग

सफलता का मंत्र

● कल्पना गांगटा

वर्तमान समय में विज्ञान और तकनीक ने हमारे जीवन को समृद्ध बना दिया है, किंतु आज हम मेहनत करने से कतराते हैं। हमारी आदतें ऐसी हो गई हैं कि सब कुछ अपने समक्ष चाहिए और मेहनत करना शर्म मानते हैं। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि परिश्रम से ही बड़े-बड़े कार्य सफल हो जाते हैं। परिश्रम करने से ही एक सामान्य परिवार का लड़का अमेरिका जैसे राष्ट्र का राष्ट्रपति बनने में सफल हुआ है। और आज भी अब्राहिम लिंकन का नाम शान के साथ लिया जाता है।

परिश्रम न करने वाला आलसी सब कुछ होते हुए भी कुछ हासिल नहीं कर पाता। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और महापुरुषों ने परिश्रम से ही जीवन में उपलब्धियां हासिल कीं। संकीर्ण मानसिकता वाले व्यक्ति ही परिश्रम नहीं करना चाहते और शानोशौकत से रहना चाहते हैं। परिश्रमी व्यक्ति कभी जीवन में स्वयं को अकेला नहीं पाते और न ही उनके लिए कोई कार्य असंभव होता है। वे परिश्रम से अपने हाथों की लकीरें बदल देते हैं, और जीवन में सफलता की ऊंचाइयों को छूकर दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाते हैं। हम सभी को अपने जीवन में सफलता का मंत्र अपनाना चाहिए अर्थात् हम सभी को सफल होने के लिए परिश्रम की आदत डाल लेनी चाहिए। सच्ची लगन और मेहनत से किया गया कार्य हमेशा सफलता दिलाता है।

गांगटा निवास, लम्बीधार, ढली, शिमला-171 012

आलेख

लोक संस्कृति का संगीतमय स्वरूप
जन्म संस्कार गीत

● रामलाल पाठक

प्रदेश के अन्य जिलों की भांति महर्षि व्यास की तपोभूमि बिलासपुर भी अपनी समृद्ध लोक संस्कृति की मौलिकता को समेटे हुए है। पर्वतीय अंचल और मैदानी भूभाग के मध्य में बसा होने के कारण यहां के लोक जीवन में दोनों ओर की संस्कृतियों का प्रभाव होना स्वाभाविक है। इस जिले में अनेक प्रकार के लोकगीतों का प्रचलन है।

हिमाच्छादित पर्वत शिखरों से झर-झर का निनाद करते उछलते-कूदते पानी के झरने नदियों की गहराइयों में समा जाते हैं। नदियां कल-कल की रागिनी बनकर पहाड़ों और घाटियों के बीच में अपना प्रभाव छोड़ती हुई अपनी दिशा की ओर अग्रसर होती हैं। नदियों के तटों से लगते ढलानदार सदाबहार जंगल पर्वतों की चोटी तक अपनी ओढ़नी-सी बिछा देते हैं। इन जंगलों के एक ओर बसी होती हैं हिमाचल के लोकमानस की बस्तियां, जहां से प्रकृति के साक्षात् दर्शन होते हैं। पवन के हल्के-हल्के झोंकों से हिलोरे मारते देवदार और चीड़ के पेड़ों की पत्तियों से सांय-सांय की स्वर लहरियां झर-झर और कल-कल के स्वरों में मिश्रित होकर आर-पार पर्वतों से टकराती हैं तो प्रकृति के मधुर स्वरों का प्रारम्भ होता है।

प्रकृति के ऐसे वातावरण में रहने वाला लोकमानस, प्रकृति की इन स्वर लहरिहयों के स्वर-से-स्वर मिलाने की प्रक्रिया को दोहराता हुआ गुनगुनाने लगता है। यह गुनगुनाना ही स्पष्ट रूप में आने से लोक साहित्य का अभिन्न अंग बन जाता है जिसका पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रचार एवं प्रसार होता है। कालान्तर में यह समाज की अभिव्यक्ति बन जाती है। आने वाली पीढ़ियों को यही सांस्कृतिक धरोहर विरासत में मिल जाती है। लोक साहित्य में लोकगीत को विकसित रूप माना गया है। लोक जीवन में सुखद-दुखद घटनाओं का वर्णन अवसर और अवस्था अनुसार मिलता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के अंतराल में गाए जाने वाले गीतों को संस्कार गीत के नाम से जाना जाता है जिनका मानव जीवन से गहन सम्बंध जुड़ा होता है।

प्रदेश के अन्य जिलों की भांति महर्षि व्यास की तपोभूमि बिलासपुर भी अपनी समृद्ध लोक संस्कृति की मौलिकता को समेटे हुए है। पर्वतीय अंचल और मैदानी भूभाग के मध्य में बसा होने के कारण यहां के लोक जीवन में दोनों ओर की संस्कृतियों का प्रभाव होना स्वाभाविक है। इस जिले में अनेक प्रकार के लोकगीतों का प्रचलन है। मोहणा लोकगीत के अनुसार भाई-भाई के प्यार को अनुभव किया जा सकता है। 'गम्भरी गीत' से खाना-पीना और आनंद से जीवन-यापन का संदेश मिलता है। चन्दो ब्राह्मणी अच्छरी और गंगी गीतों का भी प्रचलन है। उसी तरह जन्म संस्कार गीत, मुंडन संस्कार गीत तथा विवाह गीतों को समयानुरूप गाया जाता है।

जन्म संस्कार गीतों को स्थानीय बोली में 'प्याईयां' या वधावा गीत कहा जाता है। प्रसूता जब शिशु को जन्म देती है तो पास-पड़ोस की महिलाएं एकत्रित होकर प्याईयां-गीत गाती हैं। गांव या आस-पास के गांव की एक वृद्धा दाई का काम करती है। वह गर्भ की पूर्ण जानकारी रखती है। स्थानीय बोली में एक कहावत प्रचलित है "दाईयां-माईयां ते पेट बुझे नी हुन्दे।" जब महिला पांच-छह माह की गर्भवती होती है तो वह दाई से सलाह लेती रहती है। दाई उसका ढंग से उपचार करती है।

प्रसूता को जब प्रसव वेदना होने लगती है तो उससे सम्बंधित यह गीत भी गाया जाता है। इस गीत में प्रसव के समय किन-किन बातों का ध्यान रखना होता है, उस पर प्रकाश डाला है

पहलड़ी पीड़े सुती ससुआ जगाओ
ससु जी तुसे जागी जाओ
महले दीपक जगाओ
सूहन संगेला कराओ
मेरी जान जान्दी पीड़ा दे नाल।

प्रकृति के ऐसे वातावरण में रहने वाला लोकमानस, प्रकृति की इन स्वर लहरिहयों के स्वर-से-स्वर मिलाने की प्रक्रिया को दोहराता हुआ गुनगुनाने लगता है। यह गुनगुनाना ही स्पष्ट रूप में आने से लोक साहित्य का अभिन्न अंग बन जाता है जिसका पीढ़ी- दर-पीढ़ी प्रचार एवं प्रसार होता है। कालान्तर में समाज की अभिव्यक्ति बन जाती है। आने वाली पीढ़ियों को यही सांस्कृतिक धरोहर विरासत में मिल जाती है। लोक साहित्य में लोकगीत को विकसित रूप माना गया है।

जब गर्भवती महिला को प्रसव की पहली वेदना होती है तो प्रसूता कहती है कि सर्वप्रथम मेरी सोई हुई सास को जगाओ। सास जी उठ गई तो वह कहती है कि रात का समय है घर में अंधेरा छाया हुआ है इसे दूर किया जाए दीपक जलाकर। फिर घर में झाड़ू-पोंचा किया जाए। मैं अब कुछ नहीं कर सकती क्योंकि प्रसव वेदना से मेरे प्राण निकलने को हो रहे हैं। फिर, उसे प्रसव की दूसरी पीड़ा आती है तो वह कहती है

दूजिए पीड़े सुते कन्ता जो जगाओ
कन्त जी तुसे जागी जाओ
शहरे बजारे जाओ
दाईया माईया लयाओ
मेरी जान जान्दी पीड़ा दे नाल।

प्रसव की दूसरी वेदना होती है तो प्रसूता अपने पति को जगाने के लिए कहती है। उनसे कहती है कि शीघ्र उठो और शहर की ओर चल पड़ो वहां से 'दाई' को लेकर आओ क्योंकि प्रसव के समय 'दाई' का होना आवश्यक है। इस सम्बंध में 'दाई' को पूरा अनुभव होता है। आपात स्थिति में प्राथमिक सहायता प्रदान करती है। प्रसव जल्दी होने के उपाय भी जानती है।

जब प्रसूता को तीसरी वेदना आती है तो वह कहती है कि अब तो प्राण निकल ही जाएंगे। परंतु मेरे ससुर को जगा दो

तीजिए पीड़े सुते सौरे जो जगाओ
सौरा जी तुसे जागी जाओ
सुते बणिया जगाओ
सूड पंजीरिया ल्याओ
मेरी जान जान्दी पीड़ा दे नाल।

ससुर जी उठकर शहर जाएंगे और वहां से सौंठ-पंजीरी आदि लेकर आएं। ये चीज़ें प्रसव के लिए सहायक होती है। जब बच्चा पैदा हो जाता है वह भी लड़का हो तो प्रसूता कहती है कि अब मेरी मां को बुलाया जाए। वह बच्चा पैदा होने का समाचार शीघ्र ही अपने मायके में भेजना चाहती है ताकि अपनी प्रसन्नता में वह अपने माता-पिता या भाई-भाभी को भी शामिल कर सके। काला काग ही उठकर चला जाता और यह संदेश दे आता। अपनी प्रसन्नता तथा माता-पिता की उपस्थिति इस गीत से व्यक्त होती है

कालेया कागड़ुआ मेरे प्योके जाई आयां
मेरी अम्मा जो कहीं आयां
बेटिए ओलरू जाया
झगू-टोपू लई आयां
साड़ी सूट लई आयां।

अर्थात् वह काले कौवे से कहती है तू उड़कर सीधा मेरे मायके चला जा। यह शुभ समाचार देकर आना कि आपकी बेटी ने बेटे को जन्म दिया है। मां को कहना कि बच्चे के लिए 'झगु-टोपू (बच्चों के कपड़े) तथा मेरे लिए बढ़िया-सी साड़ी या सूट लेकर आना।

जन्म संस्कार गीतों में नवजात शिशु के जन्म की माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी की प्रसन्नता का वर्णन मिलता है, वहां धार्मिक दृष्टि में भी ये गीत अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। इन गीतों में भगवान राम तथा श्रीकृष्ण के जन्म का भी वर्णन मिलता है। गीत की नायिका अपनी सखी-सहेलियों से कहती है कि अयोध्या नगरी में राजा दशरथ के घर में लड़के का जन्म हुआ है। गीत की पंक्तियां इस प्रकार से हैं

जुध्या जे नगरी सुनो मेरी बहनो
दशरथा रे घरे लाल जमेया
लाल जमेया नानकिए सुणेया
तां पर कुहरे नगारे
तां पर बण्डियां वधाईयां

गीत में कहा गया है कि अयोध्या नगरी में राजा दशरथ के घर में लाल पैदा हुआ है। पुत्र को अमूल्य कहा गया है जिसके पैदा होने पर सबको प्रसन्नता होती है। यह शुभ समाचार जब ननिहाल में सुना तो वहां भी नगारों की मंगल ध्वनि गूंज रही है। बधाइयां दी जा रही हैं। मिठाइयां बांटी जा रही हैं। चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण बना हुआ है। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन भी अनेक संस्कार गीतों में आता है। एक गीत के अनुसार तो श्रीकृष्ण के जन्म का महीना और दिन का भी परिचय मिलता है। गीत इस प्रकार है

केहड़ा मीहणा ओह केहड़ा वार
कृष्णा ने जन्म लया
भादों मीहणा ओह बुधवार
कृष्णा ने जन्म लया।

भादो महीने की अष्टमी तिथि तथा बुधवार को श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। इनका जन्म कारावास में ही हुआ माना जाता है।

परन्तु एक लोकगीत के अनुसार श्रीकृष्ण का जन्म श्री वासुदेव के घर में ही दर्शाया गया है

बासुए दे क्हरे कृष्ण जमेया
लोई होईयां चऊं कुण्ठे जी
कुहटदे नगारे नौपत होइया
चलो मेरी सईयो मथुरा पुरी में।

उपर्युक्त गीत का सम्बंध भगवान श्रीकृष्ण जी के जन्म से नहीं रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है। लेकिन बच्चे की तुलना भगवान श्रीकृष्ण से की होगी। बच्चा पैदा होने पर चारों ओर प्रसन्नता होती है। चारों ओर प्रकाश प्रज्वलित होता है। नगारों की मंगल ध्वनि गूंजती है। इस प्रकार ये गीत परिवार की प्रसन्नता प्रकट करते हैं। वहां धार्मिक भावना से भी जुड़े होते हैं।

प्रसव के पश्चात् घर में सूतक माना जाता है। पंडित लोग इस दौरान उस घर में खाना नहीं खाते हैं। दस-बारह दिनों के उपरांत गृह शुद्धि के लिए हवन किया जाता है। जिसे स्थानीय बोली में 'हूम' कहा जाता है, बच्चे का नामकरण संस्कार भी होता है। इस दिन पंडित तथा कन्याओं को भोजन करवाया जाता है। 'हूम' से पूर्व घर में पूजा-पाठ तक भी नहीं होता। जिस घर में प्रसव हुआ होता है, उस घर के सदस्यों को अपवित्र माना जाता है। केवल उस घर की लड़कियां ही पूजा-पाठ कर सकती हैं। क्योंकि लड़की को पराया धन माना जाता है। उन्हें उस परिवार से नहीं जोड़ा जाता। पूर्णरूप से उनका सम्बंध पति के घर से जुड़ा होता है।

घर में जब बच्चे का जन्म होता है, तो सारे परिवार में प्रसन्नता छा जाती है। बच्चे की बुआ सबसे ज्यादा प्रसन्नता जताती है। वह भी शिशु के लिए चांदी के घुंगरू वाले कंगण लाती है। बच्चे के लिए कपड़े जिसे स्थानीय बोली में 'झगु टोपू' देना तो सभी रिश्तेदारों में रिवाज है। बच्चा सबके लिए खिलौना-सा बनकर रह जाता है। सब उसे प्यार करते हैं। प्यार से यहां तक भी कह देते हैं कि तू किसका बच्चा है। यह बात भी लोक गीतों से छुपी नहीं है

ओह रुण झुणुआं किसदे बेड़े आया
ओह रूण झुणुआं बापुए दे बेड़े आया।

हे छोटे से खिलौने की तरह बच्चे तुम किस के घर में आए हो। प्रत्युत्तर में महिलाएं गाती हैं कि बच्चा खुशियां लेकर बापू (पिता) के घर बेड़े में आया है। इसी तरह परिवार के वरिष्ठ सदस्यों का नाम लेकर यह गीत गाया जाता है। बालक किस-किस को प्यारा है और उसके पैदा होने से किस-किस के दुख दूर हुए। इस गीत में यह बताया गया है

क्हिघा जमेया किसदे मन गमेया
किस दे दुख दूर हो गए
क्हिघा जमेया अम्मा दे मन गमेगया
बापू दे दुख होई गए दूर ओह।

मां को बच्चा सबसे प्यारा होता है। वह मां की ममता को और अधिक उजागर कर देता है। उसे अपना बच्चा सबसे प्यारा होता है। मां की इच्छा का फल बच्चा होता है। उसका पिता जो गृहस्थी की गाड़ी खींचता-खींचता दुख उठाता है। जब वह बच्चे का बाप बनता है तो उसे प्रसन्नता होती है और उसके दुख दूर हो जाते हैं। इसी तरह बच्चा दादी का भी आंखों का तारा होता है। दादा के भी दुख दूर हो जाते हैं।

नवजात शिशु के पिता प्रसव के दूसरे तीसरे दिन बधाई लेकर अपने ससुराल जाता है। वहां भी गांव की महिलाएं एकत्रित हो जाती हैं और प्याईयां गाती हैं। बच्चे का पिता लड्डू बताशे या शक्कर अपने साथ ले जाता है और वहां सबको बांटता है। ससुराल की ओर से भी अपने जवाईं (दामाद) को कपड़े दिए जाते हैं। माथे पर कुम-कुम का टीका लगाकर मौली (डोरी लाल) में बांध कर देते हैं। उसके बाद वह 'हूम' (नामकरण) की तिथि भी बताता है। 'हूम' वाले दिन नवजात शिशु के ननिहाल से बहुत से रिश्तेदार आते हैं। बच्चे के लिए छोटी-सी चारपाई उसके अनुसार तलाई, रजाई, बच्चे को कपड़े, बच्चे के माता-पिता को कपड़े देते हैं। इस उत्सव को स्थानीय बोली में 'छावी' कहा जाता है। यानी जो छोटा सामान होता है उसे 'छाबी' (परात की तरह वगड़ घास और खजूर की बनी रोटियां रखने की टोकरी) कहा जाता है। इसी उद्देश्य से इस उत्सव का नाम 'छाबी' पड़ा होगा। इस दिन बच्चे के घर वालों की ओर से तथा ननिहाल वालों की ओर से 'दाई' को श्रद्धानुसार कपड़े का सूट या कोई अन्य उपहार दिया जाता है। इसके अतिरिक्त नवजात शिशु की बुआ (पिता की बहन) भी अपनी ओर से 'छाबी' लाती है। इस उत्सव को छठियों के नाम से भी जाना जाता है।

इस दिन ही अधिकतर बच्चों के पिता अपने बच्चे का मुंह देखते हैं। श्रद्धानुसार उसके सिर के ऊपर से कुछ राशि चारों ओर घुमाता है और 'दाई' को देता है। इस प्रक्रिया को स्थानीय बोली में 'वारण्डा' कहा जाता है। 'वारण्डा' करने से ग्रह ठीक हो जाते हैं। बच्चे की अधिकतर देखभाल 'दाई' ही करती है। कई लोग तो अपने बच्चे को स्तनपान भी दाई का ही करवाते हैं। कहा जाता है कि 'दाई' का दूध पिलाने से बच्चा निडर होता है।

प्रसूता के लिए हल्का भोजन खाने को दिया जाता है। पीने के लिए साधारण पानी नहीं दिया जाता। एक पतीली में पानी उबाला जाता है तो उसमें छोटी इलायची और जीरा भी डाला जाता है। इसे स्थानीय बोली में 'सफ्वाणी' कहा जाता है। दो-तीन दिन के लिए एक ही बार बना लिया जाता है। फिर भी प्रसूता जिसे 'नसोगी' या 'बालथी' स्थानीय बोली में कहा जाता है, कमजोरी के कारण उसका मुंह-सा सूखने लग जाता है। सास उसे इलायची या जीरा चबाने के लिए देती है। इससे सम्बन्धित यह गीत प्रचलित है

जीरा लै सुहागिन इलायची लै
तिखने हुन्दे जीरे रे पात

सदा मैनूं बूरा लगेया।

प्रसूता कहती है कि मुझे जीरा या इलायची बुरी लगती है। खाते-खाते मेरे बुरे हाल हो गए हैं। जीरे के तीखे दाने मुंह में चुभते हैं और रोज-रोज मुझे बुरा भी लगता है। परंतु बालक को देखकर वह प्रसन्न होती है। उसे बालक भगवान श्रीकृष्ण का रूप दिखाई देता है। इस गीत के माध्यम से वह कहती है

काले कुण्डल जी मेरे ओलर दे
अम्मां बी जीवे बापू बी जीवे
सारा जीवे परिवार ओलर दा।

गीत के माध्यम से वह कामना करती है कि मेरा बच्चा भी खुश रहे और हम दोनों पति-पत्नी भी खुशी से जीवन व्यतीत करें। इसके साथ ही परिवार में खुशहाली बनी रहे। इसी तरह गीत की अगली पंक्तियों में भी सास-ससुर तथा देवर-ज्येष्ठ आदि सब रिश्तेदारों की प्रसन्नता की कामना करती है।

परंतु बालक को अपनी मां का अनुभव नहीं हो रहा है क्योंकि उसे दाई ही गोदी पकड़ती है और वही नहलाती भी है। इस गीत के माध्यम से वह 'दाई' से पूछता है

क्हिघा जे पूछदा दाईया माईया
कौन मेरी माई जी
हत्थे लैन्दी मदानी क्हरा दी रानी
वही तेरी माई जी
क्हिघा जे पूछदा दाई माईया
कौन मेरा बापू जी
हत्थे लैंदा बाजा महला दा राजा
वही तेरा बापू जी।

अर्थात् जब बच्चा जन्म लेता है तो वह अपनों को भी नहीं पहचानता। दाई उसे बताती है कि जो दही बिलोर रही है जिसके हाथ में मधानी है यानी जो दूध और पूत वाली है। घर की मालकिन है वही तेरी माता है। फिर बच्चा अपने पिता के बारे में पूछता है। दाई उसे बताती है कि हाथ में बाजा यानी मेहनत से खुशी उत्पन्न करने वाला तुम्हारा पिता है।

बच्चा जन्म लेता है हर विवाहिता को मां बनने की लालसा होती है जब वे किसी के घर में बच्चे के जन्म का शुभ समाचार सुनती है तो उसे भी पुत्र मोह जकड़ लेता है। इस गीत के माध्यम से वह अपनी सखी से कहती है

उठ सखी चल सखी पता ये लियाईए
मन्दला ये किस क्हरे बजेया
बडिया जठाणिया रे जमेया सपूत
मन्दला उस क्हरे बजेया
उठ पिया चल पिया टका लै पचास
ओलर मूल्ये मंगवाईए
मूल्ये नी मांगे ओलर नी मिलदे
राम दिया सो मिल जाए

एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि चलो सखी यह पता लगाकर आते हैं कि बधाई का नगारा किस घर में बज रहा है। फिर उसे ज्ञात होता है कि बड़ी जेठानी के पुत्र जन्मा है। वहीं से नगारे की मंगल ध्वनि आ रही है। वापिस आने पर वह अपने पति से कहती है कि उठो-चलो और पैसे लेकर चलते हैं। कहीं से बच्चा मोल लेकर आते हैं परन्तु प्रत्युत्तर में वह कहता है कि दूध-पूत खरीद कर नहीं होते। यदि भगवान दे तो ही होते हैं। साथ में वह पुण्य कमाने की ओर भी संकेत करता है तो वह कहती है

उठ पिया चल पिया टका लै पंजाह
खुआ बौडी दवाईए
आवे मुसाफर पिवे ठण्डा नीर
नाम तुम्हारा लीजिए

चलो फिर चलते हैं तथा धन (रुपये) भी ले रखते हैं। कुआं खुदवाएंगे तथा बौड़ी बनवाएंगे। आते-जाते मुसाफिर जब वहां पानी पीएंगे तो प्रसन्न होकर तुम्हारा नाम लेंगे और तुम्हें आशीष देंगे।

जिस दिन बच्चे का नामकरण संस्कार होता है तो नवजात शिशु की नानी आती है। उसकी नानी क्या-क्या लाती है

ओलर दी नानी आई
क्या-क्या लई आई
गले जो जंजीर लियाई
हत्थे जो छणकागणू
ओलर बेटा दुड़वुड़ खेलेगा।

नानी शिशु के लिए क्या-क्या लाई है। हाथों के लिए चांदी के छोर (घुंगरू) वाले कंगन भी लाई है। इसके अतिरिक्त बहुत से खिलौने भी लाई है जिनसे बच्चा मस्त होकर खेलेगा।

गांव चिड़की डा. ब्रह्मपुखर, तह. सदर जिला बिलासपुर,
हिमाचल प्रदेश, मो. 94181 91973



हमारे रचनाकार

नौतोड़ ज़मीन पर ग़ज़ल की काश्त

● जीतेंद्र अवस्थी

सिगरेट की खाली डिब्बी भी बड़े काम की चीज़ है, बशर्ते डॉक्टर प्रेम भारद्वाज के हाथ लग जाए। उठते-बैठते, चलते- फिरते, जब भी कविता-ग़ज़ल की कोई पंक्ति जेहन में आती, कागज़ न मिलने पर प्रेम सिगरेट की डिब्बी निकालते, उस पर चेप देते। बाद में यही शब्द उनकी अच्छी कविता या ग़ज़ल की शक्ल अख्तियार कर लेते।


प्रेम भारद्वाज

असल में प्रेम भारद्वाज का व्यक्तित्व ऐसा था कि वह खामखाह की फूं-फां अथवा निहायत ग़ैर-ज़रूरी अभिजात्य ललक से कोसों दूर रहते। उनके लिए उकेरे हुए शब्द का महत्त्व है, इसके कैनवास का नहीं। वैसे भी मन में जो आया, उसे लिखने के लिए कागज़ का इंतजाम करने से पेशतर डिब्बी पर उतारने में झिझक कैसी बाद में 'फेयर' होता रहेगा। बैजनाथ के कृष्णनगर स्कूल में विज्ञान शिक्षक थे, तभी अपनी ही धुन के धनी इस शख्स को ग़ज़ल लिखने का चस्का क्या लगा, उसे आदत में शुमार कर अपनी राइटिंग- मशीन से ग़ज़ल, कविता, शोध-लेख निकालते चले गए । अपनी मां-बोली पहाड़ी (कांगड़ी) से इतना लगाव कि इसमें ऐसी- ऐसी ग़ज़ल कहते कि सुनने वाला दांतों तले उंगली ही दबा लेता।

वरिष्ठ कवि-लेखक शेष अवस्थी की मार्फत ये पंक्तियां घसीटने वाले के साथ प्रेम भारद्वाज का औपचारिक परिचय क्या हुआ, कब घनिष्ठता बढ़ी पता ही नहीं चला। यह पिछली सदी के 70 के दशक की शुरुआत थी। मैं उस समय पढ़ाई कर रहा था; ज़ाहिर है प्रेम को बड़े आदर की दृष्टि से देखता; पेश आता। अलबत्ता वह बैजनाथ बाज़ार में कभी घूमते-घामते निकलते तो बराबरी के साथी की तरह हाथ पकड़कर चाय की किसी दुकान पर ले जाते और मुझसे कुछ सुनाने का आग्रह करते-करते खुद शुरू हो जाते। ग़ज़ल लिखने के लिए कांगड़ी के शब्द पता नहीं कहां से बड़े श्रम से जब ले आते तो शब्द रूपी मोतियों से पिरोई माला यानी उनकी ग़ज़ल सुनते ही बनती। बार-बार सुनने को मन करता। 'बज्झे नी मन इक्की खुंडे' बल़द कोई मुंडरतोक्ति जियां' ग़ज़ल उसी दौर की पैदाइश है। इस ग़ज़ल में 'न्योलु', 'खंदोलु', 'पतनोलु' जैसे शब्दों का प्रयोग देखते ही बनता है। मैं क्या, कोई भी उनका मुंह ही ताकता रह जाता। इतनी छोटी-सी उम्र में ही अपनी रचनाओं में जान फूंकने वाला यह व्यक्ति आगे चलकर लेखनी से 'क्या कहर ढा सकता है', यह उसी समय लगने लगता था। समर्थ लिक्खाड़ तो प्रेम बने ही लेकिन लेखन के सफ़र के दौरान ही उच्च शिक्षा ग्रहण और प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण कर सफल प्रशासनिक अधिकारी व अवकाश-ग्रहण करने के बाद महिला शिक्षा महाविद्यालय, घुरकुड़ी (कांगड़ा) के प्राचार्य भी हो जाएंगे यह गुमां नहीं था। मां सरस्वती के इस सपूत के पांव पालने में ही पहचानने में मुझसे वाकई खामी रह गई।

नगरोटा बगवां में स्वर्गीय श्रीमती इच्छा देवी और पंडित बृजलाल भारद्वाज के घर 25 दिसंबर, 1946 को पैदा हुए प्रेम पहले स्कूल में विज्ञान शिक्षक बने। उसी दौर में लेखन से रू-ब-रू क्या हुए, इसे उन्होंने 'जफ्फा' ही डाल लिया। साथ ही अगली पढ़ाई जारी रखते हुए एम.ए., एम.एड., पी-एच. डी. व हिमाचल प्रशासनिक सेवा में सफलता हासिल की। डाक्टरेट के लिए भी उन्होंने 'हिमाचली लोक कथा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' विषय ही चुना। इस तरह अपने ही प्रदेश-प्रांतर के जनजीवन के और भी करीब होते गए इसके प्रति आसक्ति ही उन्हें इस ओर खींच लाई। नौकरी के दौरान ही इन्हें लोक जीवन से वाकिफ होने का खूब मौका मिला। वह कबायली इलाकों में भी रहे। हिमाचली जनजीवन

को विचित्र दृष्टियों से देखा, समझा, उनका विश्लेषण⁄ मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया। एक धारणा विकसित हुई और निगाह हासिल की। पर्यावरण को लेकर चेतना बढ़ी। संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से दो-चार हुए। चलते-चलते राह बदल लेते। विज्ञान शिक्षक से उच्च शिक्षा, प्रशासनिक सेवा और फिर शिक्षा महाविद्यालय में प्राचार्यविद्   जो भी मिला, गले लगा लिया। अलबत्ता कॅरिअर के घुमावदार मोड़ों से होते हुए भी प्रेम भारद्वाज ने लेखन नहीं छोड़ा। ज़िंदगी के अलग-अलग पड़ावों से गुज़रते जो भी लिखना चाहा, लिखा   अभिव्यक्ति के लिए इन्हें किसी एक विधा का मोहताज नहीं होना पड़ा। ग़ज़ल, गीत, कविता, रूबाई, मुक्तक, दोहे, प्रबंध-काव्य, कहानी, निबंध, शोध   सबमें साधिकार कलम चलाई और सिक्का जमाया। संप्रेषण के लिए भी भाषा की बंदिश नहीं लगी   हिंदी, उर्दू या अंग्रेज़ी व पहाड़ी   कोई भी थी चलाई।

लोककथा मानस (गद्य लोक साहित्य), अपनी ज़मीन से, कई रूप रंग, मौसम खराब है, मौसम मौसम (सभी ग़ज़ल संग्रह) के अलावा उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखा। एक राष्ट्रीय पत्रिका में पहाड़ी (हिमाचली) लेखक के प्रतिनिधि के तौर पर शामिल किए गए। महापंजाब सम्मान, कांगड़ाश्री, हिमाचल केसरी, राज्य स्तरीय पहाड़ी साहित्य सम्मान, हिमाचल अकादमी पुरस्कार, साहित्य रत्न और हिमाचल सरकार के पहाड़ी गांधी सम्मान प्राप्त प्रेम भारद्वाज अपनी रचना को तभी सफल मानते थे, जब वह पाठक का मन उद्वेलित कर दे।

प्रेम भारद्वाज ने ज़िंदगी में जो देखा, भोगा, पाया; जो विसंगतियां, जटिलताएं परेशान करती रहीं, उन्हें संप्रेषित, अभिव्यक्त करने के लिए वह विधा विशेष पर आश्रित नहीं रहे। मगर ग़ज़ल में, विशेषकर पहाड़ी (कांगड़ा) में लिखने के लिए उन्होंने जो-जो शब्द चुने, मुहावरे लिए, लोकवाणी का तड़का लगाया, उसमें उन्हें संभवतया कुछ खास ही आनंद आता था। सरोकारों, संवेदनाओं से मेल खाते शब्दों के प्रयोग में उन्होंने कमाल दिखाया है। ग़ज़ल में उन्होंने मान्य सिद्धांत ही नहीं पकड़े, बल्कि नए प्रयोग भी किए। शिल्प के शिल्पी बने, नई बुनियाद की तलाश की, इशारों-ही- इशारों में नई बात कह दी। ठीक ही कहा गया है कि वैश्विक 'प्रेम' की अभिव्यक्ति इनकी प्रत्येक ग़ज़ल के मक़ते में आई है। इश्के-मजाज़ी से हीके-हकीकी तक' के विस्तृत इनकी ग़ज़लों का कैनवस अपनी ज़मीन की सच्चाइयों का मुंहबोला दस्तावेज़ होकर नई संभावनाओं की तलाश को अभिव्यक्ति देता है।

प्रेम के अशआर के ऊपरी अर्थ व खूबसूरती बरबस ही पाठक को खींच लेते हैं पर जब इनका निहितार्थ दरवेश होता है तो इनका सौंदर्य और महत्त्व और भी बढ़ जाते हैं। लोक जीवन, संस्कृति, जनमानस के अलावा समकालीन विषय उन्हें बहुत भाते थे। इनकी पहाड़ी ग़ज़लों में हिंदी व अंग्रेज़ी रूपांतर भी सामने आए; साथ ही इनके ऑडियो कैसेट भी मकबूल हुए। उन्होंने नौतोड़ ज़मीन पर शोध की काश्त की।

उनकी शायरी पर्वत से फूटता हुआ वह झरना है जो किसी पहाड़ी मुसाफिर के लिए कई अर्थ लिए बह रहा है। बलदेव मोहन खोसला ने प्रेम भारद्वाज के बारे में यह भी लिखा है कि शब्दों के संगम से बनी ये रचनाएं उन्हीं के जीवन में घटी किसी घटना को बयां कर रही हैं। शायरी के जज़्बात में शिवालिक, धौलाधार की विशालता है। दुःख, दर्द, विरह, वेदना, प्रेम, घृणा, राजनीतिक स्थितियों, समाज के मौजूदा स्वरूप लिए ये ग़ज़लें जीवन के कटु सत्य का चिंतन करती हैं। सच की बयानी वाली उनकी पंक्तियां देखिए   'भव सागर के बड़े मच्छों ने⁄ छोटी जान डकारी मछली।' 'करने लगेगा बात वह भी सोचकर⁄ रोटियां उसको मिली तो पेट भर।' 'प्रेम' घड़ी भर ही काफ़ी⁄ दुनिया तो है आनी-जानी।' 'सिर्फ़ काफ़ी ही नहीं दौड़ना⁄ कौन-सा पकड़ा है रस्ता देखिए।'

उनकी लेखनी को तराशने में उनके साथी लेखकों का बड़ा योगदान रहा। प्रेम कहा करते थे समन्विति के आधार में संवादिता रहती है। सामान्यतया उनके लेखन में बहुत से कारकों की भूमिका उन्होंने तसलीम की है। सागर पालमपुरी, शेष अवस्थी, ओम प्रकाश प्रेमी व देसराज डोगरा के साथ उस्तादी परंपरा के समरूप कार्यशालाओं या चर्चा में ग़ज़ल की समझ बढ़ाने में उनका योगदान भी प्रेम ने स्वीकार किया है। वरिष्ठ लेखक डॉक्टर गौतम व्यथित को तो उन्होंने मूल अभिप्रेरक माना है। व्यथित ने भी उनके लहज़े, कोशिश और इस्लाह से प्रेम की ग़ज़लगोई में ग़ज़ल की विरासती नज़ाकत, तहज़ीब और समझदारी का आईना रेखांकित किया है। उनके मुताबिक मौजूदा यथार्थ के साथ व्यंग्य भरा आदर्श भी बढ़ा है जो हिंदी ग़ज़ल की न केवल मौसमी बल्कि विरासती खूबसूरती है; हकीकत है। बानगी देखिए   'क्या हुआ है हाल इस तालीम से⁄ बालकों का भारी बस्ता देखिए।' या फिर 'राम से अल्ला भिड़ा रस्ता दिखा⁄ कटघरे में है खुदा रस्ता सिवा।'

पवनेंद्र पवन व द्विजेंद्र द्विज जैसे कुशल ग़ज़लगो का प्रेम के साथ करीबी संपर्क रहा। डॉक्टर रामस्वरूप चांद के मुताबिक इन दोनों शायरों ने तकतीह व इस्लाह के अपने कौशल से ग़ज़ल के पक्ष में खड़े रहकर इसे जीवित व जीवंत रखने में योगदान दिया है। इसी संदर्भ में उन्होंने प्रेम के ग़ज़ल लिखने को पहाड़ की ओर से हिंदी साहित्य के द्वार पर दी जा रही दस्तक को सार्थक प्रयास कहा है।

प्रेम ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू की नफ़ासत, हिंदी के तेवर और पहाड़ी भाषा की सादगी को पूरी तवज्जो दी। उन्होंने इन भाषाओं की त्रिवेणी में ग़ज़ल कही लेकिन पहाड़ी (कांगड़ी) में उनके भावों का झरना स्वाभाविक रवानी से बहा दिखता है। इसमें उन्होंने ऐसी उपमाएं दी हैं कि इसे पहाड़ी के समर्थ भाषा के तौर पर स्थापित करने की दिशा में सार्थक कदम बढ़ाना कहा जा सकता है। लोकोक्तियों को उनके सही स्थान पर रखा है। फिर कुत्ता, उल्लू, तोता, भेडू, खरगोश, मछली, बकरू, मिरग, घोड़ा, बगला, बल़द

आदि जीवंत, सार्थक व सशक्त प्रतीकों के तौर पर इन ग़ज़लों की अर्थवत्ता का स्पष्टता, सुघड़ता व महत्त्व देते सामने आते हैं।

वरिष्ठ लेखकों परमानंद शर्मा, ओम प्रकाश सारस्वत, पीयूष गुलेरी, शबाब ललित, शमी शर्मा व कुलभूषण कायस्थ का प्रेम को काफी सान्निध्य मिला। प्रेम इन्हें गुरुजन कहकर इनके द्वारा कान खींचे जाने का रह-रहकर ज़िक्र करते थे। सुखदेव शर्मा व सुदर्शन शर्मा की प्रेरणा व आग्रह को भी प्रेम ने माना है। नवनीत शर्मा, चंद्र रेखा, सरोज परमार, संसार प्रभाकर, प्रत्यूष गुलेरी, वेद शांडिल्य, जयदेव किरण व प्रकाश बादल जैसे हमसफ़रों की हौसला-अफजाई को प्रेम भूले नहीं

परमानंद शर्मा ने अर्थपूर्ण वैविध्य ही को प्रेम की ग़ज़ल की आत्मा माना है। उनके मुताबिक प्रेम भारद्वाज अशआर में गागर में सागर भरने जैसा काम करते थे। ओम प्रकाश सारस्वत भी प्रेम की ग़ज़लों में वृहत्तर परिवेश की बात करते हुए लिखते हैं कि ये मानव मन की गहराइयों, उससे जुड़ी संवेदनाओं के व्यापक क्षेत्रों के दुखसुख, आशाओं, आदर्शों व उत्पीड़न की द्योतक हैं। असल में प्रेम की ग़ज़ल में दोनों पक्ष खारिज़ी व दाखिली हैं। पर्यावरण का सरोकार कहता उनका एक शे'र देखिए 'जितणी कि छांअ बागे कितियो है छांगियां⁄ लगदी नी ओंग इबमें सै पंछी परोकणा।'

जोगिंद्रनगर में उपमंडल मजिस्ट्रेट थे तो दैनिक ट्रिब्यून के लिए चुनाव कवरेज की असाइनमेंट के सिलसिले में मैं वहां पहुंचा। काफ़ी रात हो चुकी थी। फोन किया तो बोले 'घर ही आ जाओ।' चुनाव संबंधी समस्त जानकारी देने के बाद उन्हें मुझमें उनकी रचनाएं सुनने वाला बैजनाथ के पुराने श्रोता का चेहरा नज़र आ गया। थोड़े 'मूड' में भी थे, पूरी बेतकल्लुफी के अंदाज़ में उन्होंने अपनी ग़ज़ल सुनाई 'मिरगें अग्गें पेस नी चलदी⁄ ओइयां खूब सतान है कुत्ता', 'कुतखेलां दिक्खी जगे रियां⁄ कुत्तयां पर हैरान है कुत्ता', 'प्रेम, पलोपा, हडकू सीखां⁄ टकरैं तां कुरबान है कुत्ता।' रात काफ़ी हो चुकी थी अन्यथा कुछ और बढ़िया चीज़ें सुन पाता। यह उनसे आखिरी मुलाकात थी।

तेरह मई, 2009 को निधन से पहले प्रेम भारद्वाज चंडीगढ़ आए लेकिन मैं घर पर नहीं मिला। काश, उन्हें मिलता तो बैजनाथ वाले श्रोता का रूप अख्तियार कर उनसे 'पचनोलू', 'कुत्ता' या फिर कोई नई ग़ज़ल सुनाने को कहता। मैं दफ्तर था और टेलीफोन पर ही बात हो पाई। वह जल्दबाजी में थे और ऐसी बात की कि बाद में हमेशा के लिए खामोश हो गए। ऐसा न होना था न हुआ कि प्रेम भारद्वाज कुछ और सुना जाते और मैं सुन लेता।

1094, सेक्टर 44 बी, चंडीगढ़-160047,
मो. 098140 02184

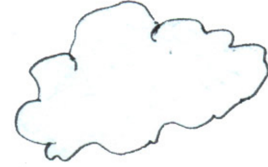
कविताएं

● अरुण कुमार शर्मा

सुनहरे स्वप्न बादलों में खो गये

भटकता रहा
विस्मृतियों के आंगन में,
अमृत बूंदों की प्रतीक्षा में
मन की बगिया में
उमड़ते रहे बादल
होती रही कभी
रिमझिम बरसात
बरसने लगे
होली के रंग
स्मृति के कोटर में
बिखरता रहा
यादों का मौसम
चमकता रहा
बरसाती झरने में
सूर्य का सतरंगी प्रकाश
जीता रहा
बदलते वक्त की
खामोशी में
सुनहरे स्वप्न
क्षितिज के पार
बादलों में खो गये।







समय की पीठ

समय की पीठ पर
सवार होकर
हम चले जाते
कहाँ से कहाँ
विचारों में खो कर
कभी बरसात
का मौसम
कभी तेज धूप
और अब
धूल से भरी सड़कें
ठण्ड से सिकुड़ता
हुआ बदन
वर्ष चला
समाप्ति की ओर
नव वर्ष झांक रहा
खिड़की से
समय की पीठ पर
सवार होने का
उतावलापन।

निदेशक, भाषा, कला व संस्कृति विभाग
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171009 (हि. प्र.)

प्रेम भारद्वाज की पहाड़ी ग़ज़लों में लोक तत्त्व की गहन अनुभूतियां

● रमेश चन्द्र 'मस्ताना'

हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री प्रेम भारद्वाज का हिन्दी और पहाड़ी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य जगत में उनके इसी योगदान को ध्यान में रखते हुए सुधी पाठकों के लिए उनके रचना संसार पर अलग से लेख दिया जा रहा है ताकि साहित्य-प्रेमियों को उनकी रचनाधर्मिता से रू-ब-रू करवाया जा सके। –**सम्पादक**

फारसी से उर्दू में अवतरित होकर हिंदी तथा अन्य उप- बोलियों में एक सुंदर व लोकप्रिय विधा के रूप में ग़ज़ल आज साहित्यिक लेखन व मंच की शोभा बनती हुई अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन गई है। सदियों पुरानी ग़ज़ल विधा जो कि किसी ज़माने में परदे के अंदर माशूका से प्रेम भरा वार्तालाप कहलाती थी, वर्तमान में नाज़-नख़रों व गिले-शिकवों से निकल कर समसामयिक परिस्थितियों और मानवीय मूल्यों से जुड़ती हुई लोक के परिवेश को गहनता के साथ स्पर्श भी कर रही है और अभिव्यक्ति की कसौटी पर भी खरी उतर रही है। ग़ज़ल के विषय में पवनेन्द्र 'पवन' का कहना है "ग़ज़ल मानव मन की पीड़ा को वाणी देने वाली गेय काव्य की एक लोकप्रिय विधा है, जिसमें थोड़े से शब्दों के माध्यम से किसी बात को अत्यन्त प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता होती है।" ग़ज़ल कुछ शे'रों का समूह होता है और एक शे'र दो पंक्तियों के समूह से बनता है। जिस प्रकार दोहा अथवा सोरठा छंद अपने दो पंक्तियों के लघु स्वरूप अर्थात् चौबीस मात्राओं के मध्य 'देखन में छोटे लगै, घाव करें गंभीर' की स्थिति उत्पन्न कर प्रभावोत्पादकता की चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं, उसी प्रकार ग़ज़ल के शे'र भी बह्र के कारण अपनी लोकप्रियता को सिद्ध करते मानव मन की गहराइयों तक उतर जाते हैं। काव्य की अन्य विधाओं की तरह ग़ज़ल के भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष या बाह्य अथवा आंतरिक स्वरूप की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। ग़ज़ल में बाह्य अथवा प्रत्यक्ष स्वरूप को 'ख़ारिजी' और आंतरिक स्वरूप को 'दाख़िली' कहा जाता है। ग़ज़ल के बाह्य स्वरूप में शब्दों का चयन, अलंकारों का समावेश, छंद अथवा बह्र के रूप में बंदिश, रदीफ़ एवं काफ़िया (तुक) आदि के साथ-साथ भाषा एवं शैली का विशेष ध्यान रखा जाता है जबकि आंतरिक पक्ष में इसमें निहित संदेशों व विचारों के साथ-साथ पाठक अथवा श्रोता के मन को लुभाने एवं रस के सागर में गोते लगाकर प्रभावोत्पादकता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। भाषा की सहजता एवं माधुर्य गुण सम्पन्नता और श्रोता को भाव विभोर करना ही ग़ज़ल की सफलता की कसौटी है।

ग़ज़ल के शे'र की पहली पंक्ति को 'तरह-मिसरा' और दूसरी पंक्ति को 'मिसरा-सानी' कहा जाता है। ग़ज़ल के पहले शे'र को 'मतला' कहा जाता है और इसकी दोनों पंक्तियों में 'काफ़िया' अर्थात् तुक मिलनी आवश्यक होती है। ग़ज़ल के बाकी शे'रों में केवल दूसरी पंक्ति अर्थात् मिसरा-सानी में ही काफ़िया मिलता है। कई बार काफ़िया के साथ ही शे'र का समापन होता है तो कई बार ग़ज़ल-गो 'रदीफ़' के साथ शे'र का समापन करता है। रदीफ़ एक शब्द का भी हो सकता है और दो-तीन-चार शब्दों का भी। काफ़िए के उपरांत एक ही शब्द या शब्द समूह को बिना किसी परिवर्तन के अंत में जोड़ा तथा दोहराया जाता है। रदीफ़ का यह दोहराव केवल शे'र के मतले में ही नहीं अपितु ग़ज़ल के अन्य शे'रों में भी रहता है। ग़ज़ल का अंतिम शे'र जिसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ग़ज़ल-गो का नाम अथवा उपनाम अवश्य रहता है 'मक्ता' कहलाता है। यह शे'र भी मक्ता तभी कहलाता है जब उसमें ग़ज़लकार का नाम अथवा उपनाम रहता है और यदि ऐसा न हो तो यह शे'र ही कहलाता है। उर्दू में छंद के बंधन को बह्र कहा जाता है और ग़ज़ल के अंतर्गत छंद के मापक-समूह को 'वज़न-ए-बह्र' कहा जाता है। ग़ज़ल की यह वज़न-ए-बह्र ही उसका मूल आधार व प्राण होती है। ग़ज़ल में छोटी बह्र अथवा बड़ी बह्र दोनों का ही प्रयोग होता है। ग़ज़ल के शे'र की एक पंक्ति में एक विराम अर्थात् यति का विधान हो और मात्राएं बारह-चौदह से अठारह-बीस तक ही हों तो वह बह्र 'छोटी-बहर' होती है जबकि यदि एक पंक्ति में दो यति का विधान या मात्राएं अधिक हो तो वह लम्बी बह्र के अंतर्गत आता है। इसी प्रकार ग़ज़ल के शे'रों की संख्या के संबंध में यद्यपि कोई निश्चित बंधन या विधान नहीं है फिर भी सामान्य रूप से मतला और मक्ता के मध्य कम से कम पांच शे'र अवश्य होने चाहिए। शे'र अधिक भी हो सकते हैं परंतु इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि ग़ज़ल की सार्थकता, उसका गुण एवं

उसकी प्रभावोत्पादकता उसकी लघुता में ही होती है। ग़ज़ल का मीटर जब तक पाठक या श्रोता को संक्षिप्तता के दायरे में बांधे रखता है तभी वह ग़ज़ल सार्थक बन पाती है। यूं भी बहुत लंबा व्याख्यान अथवा काव्य-ग़ज़ल रूप यदि प्रभावशीलता के दायरे से बाहर हो जाता है और पाठक या श्रोता अपने आपमें उबाऊपन अथवा बोरियत महसूस करने लगता है तो उसे रचना की सार्थकता ही समाप्त हो जाती है। इसलिए ग़ज़ल का मीटर अथवा उसके शे'र भी उतने ही होने चाहिए, जितने में कथ्य और शिल्प का सौंदर्य भी बना रहे और पाठक या श्रोता भी रसास्वादन करते हुए अभिभूत होता रहे।

फ़ारसी से उर्दू और उर्दू से हिंदी के नित नए प्राण-प्रवेग से बहती ग़ज़ल की धारा आज समय व परिस्थितियों के परितर्वन के साथ बहुआयामी बनकर आगे बढ़ रही है। हिंदी ग़ज़ल में दुष्यन्त जी का नाम अविस्मरणीय एवं स्तुत्य रहा है और हमेशा रहेगा। आज ग़ज़ल मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को अपने में आत्मसात् करती हुई लोकप्रियता की चरम सीमा पर अपनी आवाज बुलंद करती हुई दिखाई दे रही है। हिंदी के साथ-साथ उसकी सहयोगी उप-भाषाओं और आंचलिक बोलियों में भी ग़ज़ल के बहुआयामीय प्रयोग रचनाकारों के द्वारा किए जा रहे हैं और उनका लोक के पक्ष को छूता अभिव्यंजना पक्ष नई-नई संभावनाओं और आशाओं को तलाशता नज़र आ रहा है। इसी क्रम में हिमाचली-पहाड़ी भाषा और कांगड़ी बोली में डॉ. प्रेम भारद्वाज 'प्रेम' का साहित्यिक अवदान और पहाड़ी ग़ज़ल के रंगरूप लोक साहित्य में मील के पत्थर प्रमाणित हो रहे हैं। विज्ञान की पृष्ठभूमि से उभरकर एक अध्यापक के रूप में अपनी उर्वरा-शक्ति का परिचय देते हुए प्रेम भारद्वाज ने न केवल प्रशासनिक सेवा में ही अपना मुकाम प्रतिष्ठित किया अपितु वह एक उच्चकोटि के साहित्यकार के रूप में भी अपनी पहचान बना गए हैं। विज्ञान पर अपनी पकड़ के साथ-साथ हिंदी, अंग्रेज़ी, उर्दू तथा डोगरी व हिमाचली-पहाड़ी में अपनी महारत रखते हुए न केवल प्रशासकीय जिम्मेदारियों को ही बखूबी निभाया अपितु विभिन्न विधाओं में साहित्य सृजन कर नए-नए आयामों की भी स्थापना की। एक कुशल कवि-लेखक, सामीक्षक, सम्पादक व प्रशासक के साथ-साथ प्रेम भारद्वाज एक बहुत बड़े लोक तत्त्व के गहन चिंतक के रूप में हमारे सामने आते रहे हैं। इनकी चर्चित काव्य कृतियों में 'मौसम खराब है', 'कई रंग-रूप', 'मौसम-मौसम' और शोध प्रबन्ध 'हिमाचली लोक कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' इनकी रचनाधर्मिता की पहचान कराते हैं तो नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हिमाचली-पहाड़ी कविताओं की पुस्तक 'सीरां' का सफल सम्पादन साहित्य जगत में एक मील-पत्थर की तरह स्थापित हुआ है। जन लोकप्रियता की दृष्टि से इनकी पहाड़ी ग़ज़लों के हिंदी-अंग्रेज़ी अनुवाद और उनके ऑडियो कैसेट अति महत्त्वपूर्ण हैं।

डॉ. प्रेम भारद्वाज को जहां अपनी मां बोली कांगड़ी में बतियाना अच्छा लगता था वहां इन्होंने हिमाचली-पहाड़ी में ग़ज़ल को नए आयाम प्रदान करते हुए उसमें प्रेम-प्यार, आशिक-मिज़ाज़, टीस-वेदना, सच्चाई-वास्तविकता, दुःख-दर्द, उत्साह-उमंग, नसीहत-सुझावों आदि-आदि को लोक तत्त्व की गहन अनुभूतियों के साथ बिना किसी लाग लपेट के निराले व मनमोहक अंदाज में प्रस्तुत किया है। परमानंद शर्मा का 'प्रेम' के विषय में यह कहना "प्रेम ने पहाड़ी ग़ज़ल को एक नया रंग दिया है, नई दिशा दी है" अक्षरशः सत्य एवं बिलकुल सार्थक लगता है। ग़ज़ल को बनाने-संवारने तथा उसे प्यारा व प्रभावपूर्ण बनाने के लिए प्रेम भारद्वाज कहते हैं

"विचारी संगारी यरा ग़ज़ल करिए,
करारी पिआरी यरा ग़ज़ल करिए।
न घड़ने कसीदे न नखरे बजाणे,
छडी भाटचारी यरा ग़ज़ल करिए।"

डॉ. प्रेम भारद्वाज ने छोटी से छोटी बह्र तथा लम्बी बह्र में भी ग़ज़ल के शे'र कहकर न केवल अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है अपितु कई नए आयामों को स्थापित कर विभिन्न प्राकृतिक उपकरणों से संवाद करते हुए लोक-पक्ष की गहन अनुभूतियों को भी ग़ज़ल के माध्यम से वाणी दी है। प्रेम भारद्वाज की ग़ज़लों में न केवल प्रकृति, प्राकृतिक उपकरण, पेड़-पौधे, नदी-नाले, पहाड़-पहाड़ियां और जीव-जन्तु सीधे संवाद करते, बतियाते दिखाई देते हैं अपितु समस्त मानवीय संबंध पूरे ताने-बाने के साथ सहज रूप में अभिव्यक्ति पाते दिखाई देते हैं। प्रेम भारद्वाज ने विभिन्न भाव-बोधों और बिम्बों-प्रतीकों के द्वारा भोलपने के अंदाज़ में जहां भेडू-तितर, मछियों, बकरू, कुत्ते आदि को चुना है तो चरगटे-चालाक, दोगलेपन व पाखण्ड आदि को दर्शाने के लिए उल्लू, बगले, बांदर, फरडू, तोते, मिरग आदि को माध्यम बनाया है। तितर का भोलेपन में बोलना कितना सटीक व सार्थक बन पड़ा है

"कोई पतियान्दा नी,
जे अप्पूं गल्ल लान्दा नी।
तिजो कुण मारे था तितरा
जे तू मौआ कलान्दा नी।"

तो भेडू की विवशता प्रेम की ग़ज़ल में पूरी यथार्थवादी स्थिति के साथ स्पष्ट होती दिखाई देती है

"लगेया लेरा पाणां भेडू
कुनकी खाई जाणा भेडू
बणया कोट जराबां पट्टू
अप्पूं था पतराणा भेडू।"

कुत्ते की स्वामी भक्ति उसकी शैतानी व भोलेपन के साथ किस तरह से चतुर-चालाक मिरग के आगे हार जाती है, इसकी एक बानगी देखिए

"बणदा तां दरबान है कुत्ता
ठगणा अपर असान है कुत्ता
मिरगे अग्गैं पेस नी चलदी
उयां खूब सतान है कुत्ता।"

मछियों की बात तो प्रेम भारद्वाज ने अपने निराले अंदाज़ में इस प्रकार की है कि उनका बलिदान एक उदाहरण बन गया है

"मतियां न्हठियां जलियां मछियां
हफ्फियां तां बस गलियां मछियां
'प्रेम' पाणियां कदी नी चिन्दयां,
दिदियां आइयां बलियां मछियां।"

प्रभाव एवं चमत्कार के साथ-साथ भावों और विचारों में नित नवीनता तथा मौलिकता लाते हुए निराले अंदाज़ में प्रस्तुत करना भी ग़ज़ल-गो का कर्तव्य भी होता है और इन्हीं से ग़ज़ल के शे'रों में खूबसूरती भी आती है। ग़ज़ल के शे'रों की यही प्रभावशीलता प्रेम भारद्वाज की ग़ज़लों में देखी जा सकती है। इन्होंने अपने निराले अंदाज़ में अपनी मां-बोली और पहाड़ों में रचे-बसे शाब्दिक प्रतीकों को रूढ़ अर्थ की अभिव्यक्ति के साथ-साथ नवीन व अप्रत्यक्ष भाव बोध की जो सटीक परिकल्पनाएं की हैं, वह पाठक या श्रोता को विचार करने के लिए विवश कर देती हैं। हिमाचली-पहाड़ी-कांगड़ी लोकोक्तियों अथवा कहावतों को मूल रूप में ठेठ अंदाज़ के साथ प्रेम भारद्वाज ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि सारे कथ्य सार्थक व सुंदर बनते हुए शाश्वत हो गए हैं। दुनिया के तेज-तर्रार, पाखण्डी व स्वार्थी अपना काम निकलवाने तथा अपना उल्लू सीधा करने में मुखौटे लगाकर कैसे सामने आते हैं, उनके कुछ रूप देखिए

"दिन भर फेरी मालां उल्लू
निकली पै तरकालां उल्लू
माल कुसी दा मौज कुसी दी
मारी जा दे छालां उल्लू।"

चातुर्य-चालाकी का एक उदाहरण तोतों के माध्यम से

"जादा कजो रटाणे तोते
थोड़े ही समझाणे तोते
न्हीठे नी उड़दे नी बैंहदे
बिल्लियां क्या जरकाणे तोते।"

बंदरों की आधुनिक 'नीत' का एक वर्णन देखिए

"घट घट मिलदे धारां बांदर
दिन भर फिरब बजारां बांदर
गौर करा मिली जाणे बांदर
झांजां मोटर कारां बांदर।"

कबूतर-बिल्ली का खेल एक नए अर्थ में कितना सटीक बन पड़ा है

"जांची कोठी सैहन कबूतर
खास घरां विच रैहन कबूतर
बिल्ली फंहगां जो तड़पा दी
उच्चियां कातीं बैहन कबूतर।

प्रत्येक साहित्यिक व्यक्ति चाहे वह कवि हो, कलाकार हो या ग़ज़लकार हो, अपनी प्रत्येक पंक्ति में समाज को कोई न कोई ठोस सुझाव अथवा सुधार की बात दर्शाने का काम अवश्य करता है। कवि-ग़ज़लगो की यही आदर्शवादी प्रवृत्ति उसे ब्रह्मा के निकट पहुंचा देती है। प्रेम भारद्वाज ने छोटी बहर के अंतर्गत कम से कम शब्दों में ऐसी-ऐसी व्यापक व गूढ़ अर्थ दर्शाने वाली व लोगों को एक सार्थक संदेश देने वाली बातें अपने निराले अंदाज़ में प्रस्तुत की है कि आमजन रसास्वादन भी करते हैं और सोचने को विवश भी हो जाते हैं। संसार को प्यार का संदेश :

"जल़ब करी ने प्यार नी चलदा
मौज करी घर बार नी चलदा।
जे जीणां तां चन्दरे बणिए
भोल़पणे संसार नी चलदा।"

नई नौ दिन, पुरानी सौ दिन की दोस्ती का रस देखिए

"पौणी पंची मुंह लटकांणा
पहलै जे नी ठीक गलांणा
नौयां बल क्या गिद्दड़सिंगी
कैह जो छडणा साथ परांणा।"

'ना कन्न भनाणे' ना गुड़ खाणा' कहावत का गूढ़ अर्थ देखिए

"भरयो पेडू पूरे दाणे
कैह न जल्लड़ होन सयाणे
भुल्ली ने तित गुड़ मत खांदा
मितरा जे नी कन्न भनाणे।"

सच्ची बात-कोरी बात कितनी कड़वी लगती है

"न्हेरियां नीतां भलाखां गोरियां
दादिए मुनुएं नी लगणा लोरियां
तू चली जांणा गलाणे बोलणे
'प्रेम' गल्लां घट कराकर कोरियां।"

'मौसम' के माध्यम से कांणी-बंड का संकेतार्थ देखिए

"तरसयां जो तरसांदे मौसम
रजयां होर रजांदे मौसम
देह्न प्रीहा मुंहे जाची
जायज नी बरतांदे मौसम।"

एक अंतिम संदेश पूरी दुनिया को प्रेम भारद्वाज का, एक छोटी बहर में और एक बड़ी बहर में

"नी संगदा उगाल़दा कोई
है खुन्दकां नकाल़दा कोई
ढेरू दुनिया अखीर धूड़ी दा
जे दमागे भियालदा कोई।"

तथा

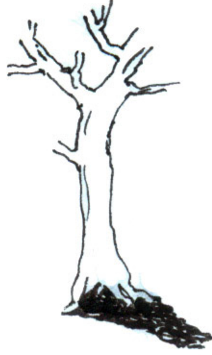
कविता

वृक्ष

● मदन हिमाचली

सूखा पेड़/
दोहराता है अनुभूति
सर्वस्व लुटाने पर भी
झेल रहा है मानव तिरस्कार।

बनाया था
आशियाना तने से चोटी तक
मुंह फेरते हैं वे पक्षी आज
अनेक पतझड़ झेलने के बाद।



तिरस्कृत/
वृक्ष आज भी खड़ा है अडिग
ले जाए कोई काटकर
जलाने के बहाने
शहीद हो जाऊंगा
समर्पण के बहाने राख भी
दे दूंगा मानव को
समा जाऊंगा
धरती मां की गोद
जिसने किया था, पुष्पित पल्लवित
दी थी पहचान वृक्ष होने की।

गांव अणु, डा. ओच्छघाट, जिला सोलन,
हिमाचल प्रदेश-173223, मो. 98160 02522

ढोलरूआं दी कुल्ह होए, या माता सूही दा मन्दर
बलि़यां नूहां दीआं लगियां, होया राजे जो जां भी सनंदर
मार कुटाई धोखा धड़ियां, धीड़ घसीटां कैह जो मितरा
किहयां खाली जान्दे दिक्खा, दुनियां छड्डी सेर सिकंदर।"

प्रेम भारद्वाज की हिमाचली-पहाड़ी ग़ज़लें जहां समय-समय पर मंच की शोभा बनती रहीं, वहां प्रदेश व राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर उनकी लगन व समर्पण की भावना को स्पष्ट करती रही है। इन्होंने अपनी ग़ज़लों में छंद व बह्र की पाबंदी पर विशेष ध्यान दिया है। मतला, मक्ता व काफ़िया आदि के साथ-साथ रदीफ़ का भी निर्वाह इनकी ग़ज़लों में बखूबी हुआ है। मक्ते में यद्यपि अपने नाम या उपनाम का प्रयोग अधिकांशतः ग़ज़लगो नाम के रूप में ही करते हैं परंतु प्रेम भारद्वाज ने मक्ते में 'प्रेम' का प्रयोग नाम के साथ-साथ भाव-विशेष अथवा प्रणय-प्यार-स्नेह तक भी किया है और इनका यह 'प्रेम' लौकिक व अलौकिक (इश्क हकीकी व इश्क मिज़ाज़ी) भी बन पड़ा है जो कि सम्पूर्ण व सर्वव्यापकता तक पहुंचता दिखाई देता है।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. प्रेम भारद्वाज 'प्रेम' एक अनुभवी प्रशासक थे, कुशल वक्ता थे, नवोदित प्रतिभाओं के तराशक थे और सबसे बड़ी बात वह मंच व श्रोताओं को बांधने की अपार क्षमता रखते थे। अपनी मां-बोली और लोक संस्कृति से इनको अपार स्नेह था और सभी शुभ-चिंतकों को यह हृदय की गहराइयों से 'प्रेम' बांटते थे।

जहां भी इन्होंने प्रशासकीय जिम्मेदारियों का निर्वहन किया वहां ही इन्होंने मुशायरों-महफिलों और कार्यशालाओं आदि के माध्यम से साहित्यिक परिवेश भी तैयार किया और नवोदित प्रतिभाओं को भी तराशकर लिखने व आगे बढ़ने की प्रेरणा व प्रोत्साहन भी दिया। मात्र बासठ वर्ष की वय में ही 13 मई 2009 को इनका अकस्मात् परलोक गमन साहित्य जगत् व नवोदित प्रतिभाओं के लिए वज्रपात से कम नहीं था। सभी इनके व्यक्तित्व व कृतित्व से असीम आशाएं लगाए हुए थे। पवनेंद्र 'पवन' जहां इनमें 'नई ज़मीन तोड़ने की सृजनात्मक सामर्थ्य' देखते वहां परमानंद शर्मा उनकी ग़ज़लों में 'परिवेश के घुटन के निराकरण हेतु नई खिड़कियों को खोलने की चेष्टा' बतलाते हुए उसमें नैसर्गिक सौंदर्य को संजोता हुए देखते हैं। शबाब ललित जी ने 'प्रेम' की ग़ज़लों को 'जीवन की सच्चाइयां तथा यथार्थ के बिलकुल करीब' माना है और इन्हें ग़ज़ल का रसिक व जां-निसार कहा है। वर्तमान में लोक की पहचान व उनकी गहन अनुभूतियों से साक्षात्कार करने वालों में निरंतर कमी से लोक लेखन में शिथिलता व कमी भी आ रही है और सरकारी व गैर सरकारी प्रेरणा-प्रोत्साहन के अभाव में लोक पक्ष गौण भी होता जा रहा है जो कि निश्चित रूप से एक चिंता का विषय है। लोक तत्त्व के एक महान प्रणेता के रूप में डॉ. प्रेम भारद्वाज का अवदान निश्चित तौर पर एक श्लाघ्य व भगीरथ प्रयास रहा है और मृत्यु से संघर्ष करते हुए उनका असमय इस प्रकार चले जाना प्रबुद्ध समाज व साहित्य-जगत् के लिए एक शून्य पैदा कर गया है और उसकी भरपाई के लिए हमें 'लोक' से जुड़ना पड़ेगा, 'लोक' की अनुभूतियों को गहरे में आत्मसात् कर लोक के मध्य लोकवाणी में सहजता के साथ परोसना होगा तभी हम अपने कृतित्व को सार्थक बना पाएंगे और प्रेम भारद्वाज जैसे 'लोक-तत्त्व-चिंतक' को सच्ची श्रद्धांजलि दे पाएंगे।

मस्त कुटीर, नेरटी (रैत), तहसील शाहपुर, जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-176 208, मो. 94181 58914

आलेख

धुआं उठ रहा है चिराग़ से तेरे मंदिर का दीपक हूं जल रहा हूं

● रमेश चन्द्र शर्मा

मैं कुछ समय पहले अपनी एक कविता को पढ़ रहा था। उसमें निम्न पंक्तियां हैं :-

''लावारिस नहीं रहा मेरा वजूद/जीने के लिए ज़रूरी है/ मुहब्बत, मिलन का दस्तूर।''

यह मैंने वास्तव में अपने बारे में लिखा है। मगर बात ऐसी है जो मैंने तो कही, मगर पाठक को भी पसन्द आई होगी। क्योंकि हक़ीक़त से कोई मुंह नहीं फेर सकता है। ''शमां हर रंग में जलती है/सहर होने तक'' गालिब का यह शेर भी मेरे जीवन की सच्चाई है। यह लेख लिखते समय स्वर्गवासी श्री लाल चन्द प्रार्थी जी के इन शब्दों की याद भी आई है। (वे हिमाचल प्रदेश सरकार में मंत्री भी रहे थे।)

''अगर शामिल न हो किस्सा हमारा
तुम्हारी दास्तां कुछ भी नहीं है।''

कहा जाता है कि तुलसी दास जी ने रघुनाथ गाथा अपने लिए लिखी थी। भक्त थे। अपने आनन्द के लिए राम जी की स्तुति की। पर वे आत्म केन्द्रित न थे। इस कारण ऐसा लिखा गया जो पाठकों और श्रोताओं को अच्छा लगा। वे पाठकों के लिए भी राम चरित मानस प्रस्तुत कर गए। यह सब कुछ लिखने का मतलब यह है कि इस लेख को पढ़ने के बाद जो मैंने अभी तक कहा है वह स्पष्ट हो जाएगा।

लेखक, कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार सभी जो उन्हें खुद को पसन्द है वह लिखते हैं। तब औरों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते हैं। यह सिलसिला जारी रहता है। परन्तु मेरा अनुभव है कि हर साहित्यकार को पहले-पहले प्रारूप के समय भी श्रोताओं की जरूरत रहती है। ताकि जो छपे उसमें कोई त्रुटि न रहे।

पचास वर्ष पूर्व मैंने एक गीत लिखा था।

''जिन्दगी के हाशिए मिटने लगे/जो कभी थे गैर अब मिलने लगे।''

यह गीत आकाशवाणी शिमला से प्रसारित हुआ था। सरकारी नौकरी में ज्यों-ज्यों मेरा रुतबा बढ़ता गया, मिलने वालों का और श्रोताओं का दायरा सीमित लगने लगा।

साहित्य खुद के लिए ही नहीं है। इसका मूल धर्म है पाठकों के लिए अच्छे और सही विचार व्यक्त करना। इसे ही साहित्य की सेवा कहते हैं।

मैंने 1946 में, विद्यार्थी के तौर पर अपनाया हुआ साहित्य सेवा का क्रम जारी रखा है। भावनात्मक, सार्थक या काव्यात्मक स्थिति अनुसार कविताएं, कहानियां, नाटक और उपन्यास लिखता रहा। काफी कुछ छपता भी रहा। कमी थी तो केवल श्रोताओं की, प्रारूप सुनाने के लिए किसी न किसी मनीषी या विदुषी की। पढ़कर सही आलोचना, करने के लिए किसी न किसी व्यक्ति की। ताकि कृति के छपने से पूर्व उसमें सुधार हो सके। यदि कृति का पहले उचित मूल्यांकन न हो तो साहित्यकार मन ही मन में आशंका से घिरा रहता। मेरा धर्म रहा है

''लब पे दुआ रखना/रस्ते पे निगाह रखना/
शायद कोई आ जाए/दरवाज़ा खुला रखना।''

मुझे सौभाग्य से तीसरे उपन्यास के लिए एक ऐसा टाईपिस्ट मिला जिसे साहित्य प्रेमी भी कहा जा सकता था। परिणाम अच्छा रहा। तीसरे उपन्यास 'स्वर्ग आरोही' पर एक छात्रा ने एम.फिल. की। चौथे उपन्यास में आधुनिक सभ्यता की ओर मौजूदा परिवेश के सामाजिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य का प्रमाणिक दस्तावेज सा तैयार कर रहा हूं। यह इच्छा है इसकी पूर्ति के लिए प्रयत्नशील भी रहूं। नाटक भी लिख रहा हूं युगीन संदर्भ में। बुढ़ापा इसका 'थीम' है। हाल में कहानियां भी लिखीं। उनमें इक्कीसवीं सदी के साहसी प्रवेश द्वार से अन्दर झांकने के यर्थात् भाव बोध स्पष्ट हैं। जो लिखा उसका मूल्यांकन साथ-साथ कराता रहा हूँ। टाईप करने वाले भी विदुषी, मनीषी होते हैं। उनकी सलाह सिर आंखों पर। पत्नी की जुदाई खलती है। वह सलाहकार और आलोचक जो थी। मेरी पत्नी 25 मई 2011 तक जीवित थी। उसका योगदान जग ज़ाहिर है। डॉ. कान्ता शर्मा जी की कविता का एक अंश याद आया

''मेरे बाद जब अकेले तुम किसी सफर पर जाओगे तो तुम्हें
याद आयेगा कभी मैं तुम्हारी हम सफर हुआ करती थी''

कान्ता जी ने मेरे नाटकों पर एम.फिल. की थी। बाद में पी.

एच.डी. भी की। कह सकता हूं कि इन दोनों विदुषियों ने मेरी सोच को संवारा है। जो मैंने लिखा उसकी परख हुई।

सबसे पहला हि. प्र. कला भाषा अकादमी द्वारा स्थापित प्रथम साहित्यकार पुरस्कार, मेरे 1974 में छपे उपन्यास 'बर्फ की राख' पर मुझे ही 1983 में श्री वीरभद्र सिंह जी मुख्यमंत्री महोदय के कर कमलों से मिला था। बाद में मुझे मेरे 1986 में छपे उपन्यास ''पान्चाली'' के लिए सर्वोच्च चन्द्रधर शर्मा गुलेरी राज्य सम्मान 1997 में मिला।

मेरे दो कहानी संग्रह 1968 और 1988 में आ चुके हैं, और दो काव्य संग्रह भी 1987 और 1999 में आए थे। 1974 और 1984 में छपने के पश्चात् मेरे दो उपन्यासों 'बर्फ की राख' और 'पांचाली' को सर्व प्रथम साहित्यकार पुरस्कार मिला और सर्वोच्च राज्य सम्मान चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 1997 में प्राप्त हुआ। मेरा उपन्यास 'स्वर्ग आरोही' 2003 में छपकर आ चुका था, और इसकी हिमाचल प्रदेश भाषा संस्कृति अकादमी ने थोक खरीद भी की थी।

सितम्बर 2000 में मुझे सहस्राब्दी विश्व हिन्दी सम्मेलन में राष्ट्रीय हिन्दी सेवा सहस्राब्दी सम्मान भी दिल्ली में मिला था। मेरी कहानियां 'दैनिक ट्रिब्यून', केन्द्र सरकार की पत्रिका 'भाषा'और 'साप्ताहिक हिन्दूस्तान' में छप चुकी हैं। दैनिक ट्रिब्यून में मेरी कई कविताएं भी छपी। भाषा विभाग हिमाचल प्रदेश की दो कहानी प्रतियोगिताओं में मुझे निर्णायक भी बनाया गया था। एक बार डॉ. सुशील कुमार फुल्ल जी मेरे साथ निर्णायक थे, दूसरी बार श्रीमती रेखा जी और श्री बद्री सिंह भाटिया भी मेरे साथ-साथ निर्णायक थे।

मैंने 1 जुलाई 2012 को जनसत्ता में छपे एक लेख को पढ़ा था। उसके लेखक डा. कृपा शंकर सिंह जी ने लिखा था ''कवियों और लेखकों में रमेश चन्द्र शर्मा, ओम प्रकाश सारस्वत, सुदर्शन वशिष्ठ, कुमार कृष्ण, के आर भारती, अरुण कुमार शर्मा, केशव, एस. आर हरनोट, श्रीनिवास श्रीकान्त, तुलसी रमण, तेज राम शर्मा, बद्री सिंह भाटिया, राजेन्द्र राजन, रेखा, शबाब ललित बगैरह हैं। यह संख्या इतनी है कि महीने पन्द्रह दिन में एक साथ बैठकर साहित्यक गतिविधियों पर चर्चा कर सकते हैं। लेकिन इसमें किसी की रुचि नहीं है।'' सलाह सराहनीय है। हमने पहले भी कोशिश की थी। श्री एम.के. कॉव (रिटायर्ड आई.ए.एस.) की कोशिशों से एक गोष्ठी हर महीने हुआ करती थी। उसमें श्री कॉव के अलावा श्री श्रीनिवास जोशी, श्री एस.एन. वर्मा और श्री केशव, डॉ. तुलसी रमण तथा श्रीमती रेखा जी एवम् आमन्त्रित लेखक भाग लिया करते थे, मैं तो हमेशा ही इसमें होता था। बारी-बारी किसी न किसी के घर में यह गोष्ठी होती थी। लगभग हर विधा की रचना पढ़ी जाती थी। उसमें शोध करवाया जाता था। इन्हीं गोष्ठियों में मुझे श्रीमती चित्रा मुदगिल जी, श्रीमती राजी सेठ जी और श्री निर्मल वर्मा जी से भी मिलने का मौका मिला था। पर क्या करूं कॉव साहब दिल्ली चले गए और गोष्ठियां बन्द हो गईं।

भाषा विभाग ने भी गत वर्ष ऐसी गोष्ठियां शुरू की थी। हर महीने के अन्तिम वीरवार को होती थी।

नाटक कविता, कहानी और निबंध के लिए लेखक का क्या दायित्व है? कम से कम मैं अपनी ज़िम्मेवारी निभाता रहा हूँ। लगभग 50 वर्ष पूर्व वाली कविताएं कहानियां आज भी पढ़ने, सुनने योग्य है। सही कृति वही है जो समय के साथ न मरे। इसी वर्ष मेरा तीसरा काव्य संग्रह 'इव' छप कर आया है। इसमें मैंने नई पुरानी सभी प्रकार की कविताएं छपवाई हैं। आम पाठक उनमें अन्तर नहीं कर पाएगा। हालांकि मेरी पहली कविता जो 1946 में छपी भी, उसमें है और 1950 की कविता भी है। इसकी पाण्डुलिपि मैंने बहुत पहले भेजी थी। साहित्य चाहे राम चरित मानस हो या कबीर के दोहे समाज के लिए साहित्य की देन है। रामायण बनी रहेगी। कबीर कायम रहेंगे। गालिब जिन्दा रहेंगे। वे पढ़े जाते हैं, सुने जाते हैं। मधुशाला को भी कोई नहीं भूलेगा। हर विधा में कथ्य, शिल्प और शैली के स्वरों को संवारने उभारने के लिए औरों का योगदान इतना जरूरी है जितना बच्चे के पैदा होते ही घुट्टी देने वाले का।

मेरे तीन नाटक संग्रह प्रकाशित हुए। नाटक में सिद्धान्त का होना अनिवार्य होना चाहिए। सन्दर्भ के अनुसार भिन्न-भिन्न पात्रों, किरदारों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति नाटक का प्राण होती है। अपनी अनुभूति, यानी 'फीलिंग' को संवादों द्वारा ज़ाहिर किया जाता है। नाटकों का मंचन भी होता है। इसलिए नाटककार के ज़हन में दर्शक हर समय मौजूद रहता है। संवाद लिखते समय भी। नाटक रचना में शिल्प की दृष्टि से चरित्र रचना का स्वरूप, चरित्र की शारीरिक दशा, वेशभूषा, उम्र आदि पक्षों से की जाती है, जिनके आधार से दर्शक या पाठक चरित्र से सीधे ही परिचित हो जाता है। नाटकों में संवाद की आत्मा और चरित्र की पहचान को ध्यान में रखकर लिखा जाता है। यह मेरा अनुभव है और मैंने इसे परखा है। क्योंकि मैंने नाटक 'स्वर्ग की झलक', उपेन्द्र नाथ अश्क के नाटक में हीरो का किरदार निभाया था। जहां तक याद है यह बात 10 दिसम्बर 1950 की है। नाटक का मंचन कालीबाड़ी हॉल में हुआ था और मैं इसका ऐसीस्टैंट डारैक्टर भी था। नाटक का मंचन एस.डी. कॉलेज शिमला द्वारा करवाया गया था। जिस कारण मेरी 'ओरिएन्टेशन' भी हुई और मेरे अनुभव में निखार आता गया। ऑल इंडिया आरटिस्ट एसोसिएशन ने जिसे सराहा और मुझे 'क्रिएटिव प्ले राइटर 1997 का बलराज साहनी नेशनल अवॉर्ड' मिला। इसके अतिरिक्त मैं कविताएं लिखता रहा, उपन्यास लिखे, कहानियां और निबंध भी लिखे।

लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साहित्यकार को अपनी कलम से निकले शब्दों को जोड़ने के लिए, उन्हें उजागर करने के वास्ते, आलोचक/श्रोता का होना, पहली पांडुलिपि यानि शुरू-शुरू में ठीक रहता है। मेरा तर्क है कि कोई तो हो जो साहित्यकार को सुने, परखे

कविता

मां : एक कदावर मानवी

● कविता भवानी

मां की गोद से ही शुरू हुआ था
ज़िन्दगी का सफर
हमेशा महसूस किया
सिर पर सुरक्षा का
विश्वस्त हाथ।

वैसा सुख न पाया
कहीं भी
उसने सिखाया
हिम्मत से जीना
और चलते रहना निरन्तर
तान कर सीना
वह थी हमारे लिए अलबत्ता
एक वज्र कठोर ढाल
उसके होते ही हम कर सके
हर मुसीबत का सामना
वह कहती 'बच्चो!
बुरे समय बाद आएगा
अच्छा भी
यकीनन
उसने कठिन संघर्ष किया था
उम्रभर
स्वयं कड़ी धूप में रही
मुझे दी/अपनी ममता की
शीतल छांव
वह थी एक कदावर मानवी
दिया उसने सन्तान के लिए
आयु भर बलिदान
वह थी सचमुच अनन्य
ईश्वर की रहस्यमय दुनिया में
जो जी रही है अब भी
पूरे आत्मगौरव के साथ
दुनिया का सबसे बड़ा सुख है मां
सभी रिश्तों से समुज्ज्वल।

भवानी निवास, सन्दल चक्कर,
शिमला-171005

और उसे सलाह भी दे। हर लेखक के पास विचार होते हैं, उसमें रचनात्मक गुणों की सम्भावनाएं होती हैं। चारों ओर आकर्षक स्थितियां है, कलात्मक वातावरण की कमी नहीं है। कभी-कभी कोई लेख इश्तहार की भाषा बन कर रह जाता है। चन्द लोगों की तारीफ का जरीया बन जाता है। कई बार लेखक को जीवन मूल्यों की त्रासदी से भी जूझना पड़ जाता है। इसलिए भी लेखक को अपनी कृति का पुनर्वालोकन, पुनरीक्षण करना चाहिए। किसी विद्वान मनीषी या विदुषी की सहायता हमेशा अनिवार्य रहती है। तब रचना छपने योग्य बनती है।

हर एक साहित्य प्रेमी लेखक का अनुभव उसकी अपनी जीवन की भावनाएं, संवेदनाएं उसका रचना संसार होता है। मैं मानवतावादी हूं, विरोधी हरगिज़ नहीं हूँ। उम्र का तकाज़ा है कि जितना हो सके उतना मार्ग दर्शक बनूं। मैं इसे फर्ज़ समझ रहा हूं। यहां यह कहना भी तर्कसंगत होगा कि हमारे रिसर्च स्कॉलर जो पढ़ें उसमें सच्चाई होनी चाहिए। यहां विश्वविद्यालय है। हमारे हिमाचल के विद्वानों के लेख हिमाचल से बाहर भी पढ़े जाते हैं। यदि मैं खुद भी साहित्यकार के तौर पर लिखे लेख में कुछ छिपा लूं, तो मैं साहित्य सृजन की मर्यादा का उल्लंघन करूंगा। बल्कि किसी व्यक्ति विशेष की तारीफ करते हुए यदि समकालीन अन्य लोगों, साहित्यकारों की अनदेखी करूंगा तो अवसरवादी कहलाऊंगा। इस उम्र में मित्रों द्वारा की गई भूल-चूक कई बार असहनीय लगती है। 'धुआं उठ रहा है चिराग से'। फिर भी सरस्वती मां से कहता हूं 'तेरे मंदिर का दीपक जल हूं रहा हूं।'

आशा है कोई अच्छा विद्वान हिमाचल की कहानियों पर कोई रिसर्च पेपर छपवाएगा। उसमें निष्पक्षतः होनी चाहिए, और परदर्शिता भी हो। इस बदले हुए जमाने में, जब टी.वी., इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने अपना डंका बजा रखा है, पाठक भी होशियार और समझदार हो गया है। वह समय काटने के लिए ही नहीं पढ़ता। जो पढ़ता है उसे समझना भी चाहता है। उसका विश्लेषण करता है। साहित्यकार को इस ओर ध्यान देने की भी जरूरत है। पिछले वर्ष आदरणीय प्रोफैसर डॉ. परेश का पत्र मिला। सुखकर आश्चर्य हुआ। वे बड़े विद्वान, मनीषी और जाने माने साहित्यकार है। कभी उन्होंने मेरी 1968 में छपी पुस्तक कहानी संग्रह 'पगध्वनियां' की ऑल इंडिया रेडियो शिमला से समीक्षा की थी। उन्होंने मेरे हाल में 'परिवर्तन' पत्रिका में छपे लेख के बारे में इतनी तारीफ की है कि मैं इसे प्रमाण पत्र से कम नहीं समझता। परेश जी ने मेरी पत्नी के देहान्त पर मुझे सान्तवना भी दी है। उनका आभारी हूं। उनका धन्यवाद कहने के लिए मेरे पास शब्दों की कमी है। उस लेख को मैंने कई बार लिखा था फिर पढ़ा था। औरों से बात की थी और उनकी बातें सुनी थी। तब छपने के लिए भेजा था। मुझे वे सब शुभचिन्तक, बन्धु और मित्र अपने लगते हैं जो मेरी इस क्षति को मेरा दुःख भी समझते हैं। मुझे अपने वे विचार भी प्रस्तुत करना ठीक लगता हैं जो पत्नी के जाने के इन दो वर्ष बाद मैंने लिखे

''सच, तुम्हारे बिना सूर्य उदय भी लगता नहीं रोशन सवेरा/ सांझ सी लगती है/ रात बाकी है अभी।''

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले दिल
हम वो नहीं कि जिनको ज़माना बना गया।
(जिगर मुरादाबादी)

सेवानिवृत्त आई.ए.एस., टकसाल हाउस, छोटा शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 002, दूरभाष : 0177 2621199

विकासात्मक लेख

कमज़ोर एवं पिछड़े वर्गों का संबल कल्याणकारी योजनाएं

● नरेन्द्र शर्मा

समाज के कमजोर वर्गों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान प्रदेश सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता है ताकि इन वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाकर उन्हें समाज के अन्य वर्गों के समकक्ष लाया जा सके। प्रदेश सरकार की हर योजना तथा कार्यक्रम आम आदमी विशेष रूप से समाज के उपेक्षित व कमज़ोर वर्गों के उत्थान के प्रति लक्षित है, जिससे वह समाज में सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सके। कमज़ोर वर्गों का कल्याण व इनका आर्थिक उत्थान सरकार की नीति व नियोजन का मुख्य केन्द्र बिन्दु रहा है जिसके लिए सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम तथा योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं।

सरकार द्वारा पात्र वृद्धों, विधवाओं तथा अपंगों को सामाजिक सुरक्षा पेंशन प्रदान की जा रही है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक पात्र लाभार्थी को 550 रुपये प्रतिमाह की दर से सामाजिक सुरक्षा पेंशन उपलब्ध करवाई जा रही है। वर्तमान में 2,92,921 पात्र व्यक्तियों को यह पेंशन प्रदान की जा रही है। वर्ष 2014-15 में इस योजना के अन्तर्गत 21543.21 लाख रुपये की राशि का प्रावधान किया गया है तथा कुल 3,04,921 पात्र व्यक्तियों को योजना के अन्तर्गत लाने का लक्ष्य रखा गया है।

प्रदेश सरकार द्वारा 1 अप्रैल, 2013 से 80 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के सामाजिक सुरक्षा पेंशन धारकों को 1000 रुपये प्रति माह पेंशन प्रदान की जा रही है ताकि इन लोगों की विशेष सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। प्रदेश सरकार ने 80 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के सभी व्यक्तियों, उन व्यक्तियों को छोड़कर जो अन्य कोई भी पेंशन प्राप्त कर रहे हैं, किसी भी आय सीमा के बगैर प्रतिमाह 1000 रुपये सामाजिक सुरक्षा पेंशन प्रदान करने का निर्णय लिया है। वर्तमान में इस आयु वर्ग में प्रदेश में एक लाख व्यक्ति हैं। 70 प्रतिशत या उससे अधिक अपंगता वाले व्यक्तियों को 750 रुपये प्रतिमाह सामाजिक सुरक्षा पेंशन के रूप में दिये जा रहे हैं।

प्रदेश सरकार द्वारा इन अतिरिक्त उपायों के साथ वर्ष 2014-15 में सामाजिक सुरक्षा पेंशन के रूप में 110 करोड़ रुपये के अतिरिक्त लाभ उपलब्ध करवाये जायेंगे।

प्रदेश सरकार ने इस वित्त वर्ष के दौरान अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक मामले विभाग के लिए 1325 करोड़ रुपये के कुल बजट का प्रावधान किया गया है, जबकि जनजातीय क्षेत्रों के लिए 924 करोड़ रुपये का बजट रखा गया है।

प्रदेश सरकार द्वारा इन अतिरिक्त उपायों के साथ वर्ष 2014-15 में सामाजिक सुरक्षा पेंशन के रूप में 110 करोड़ रुपये के अतिरिक्त लाभ उपलब्ध करवाये जायेंगे। ... अन्तरजातीय विवाह को प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान राशि को 25 हजार से बढ़ाकर 50 हजार रुपये किया गया है।

अन्तरजातीय विवाह को प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान राशि को 25 हजार से बढ़ाकर 50 हजार रुपये किया गया है।

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्गों के ऐसे युवाओं जिन्होंने औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान या किसी अन्य प्रशिक्षण केन्द्र से प्रशिक्षण प्राप्त किया है, को स्वावलम्बी बनाने के लिए सिलाई मशीनें, औजार व अन्य उपकरण खरीदने के लिए 1500 रुपये का अनुदान प्रदान किया जा रहा है। इसके लिए वर्ष 2014-15 में 106.11 लाख रुपये की राशि का बजट प्रावधान किया गया है।

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के व्यक्तियों को भवन निर्माण के लिए प्रदेश सरकार ने अनुदान राशि में बढ़ोतरी की है। अब लाभार्थियों को 48,500 रुपये की बजाय 75 हजार रुपये जबकि भवन की मरम्मत के लिए 25 हजार रुपये का अनुदान दिया जा रहा है। वर्ष 2014-15 में इस योजना के तहत 1840.54 लाख रुपये की राशि से 2452 पात्र

व्यक्तियों को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है।

सरकार द्वारा अनुसूचित जाति के बी.पी.एल. परिवारों से सम्बन्धित अभ्यार्थियों को सम्बल बनाने के उद्देश्य से कम्प्यूटर कोर्स का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। योजना के अन्तर्गत 1200 रुपये प्रतिमाह प्रशिक्षण फीस तथा प्रशिक्षण के दौरान एक हजार रुपये प्रतिमाह प्रति प्रशिक्षणार्थी छात्रवृत्ति प्रदान की जा रही है। योजना के तहत इस वित्त वर्ष के दौरान 366 लाख रुपये की राशि का प्रावधान किया गया है।

प्रदेश सरकार द्वारा विकलांग बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से उन्हें प्रथम कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर शिक्षा ग्रहण करने तक छात्रवृत्ति प्रदान की जा रही है। इसके लिए वर्ष 2014-15 में 96.71 लाख रुपये की राशि का बजट प्रावधान किया गया है। इसके अलावा उन्हें स्वरोजगार आरम्भ करने के लिए भी 10 हजार रुपये या परियोजना लागत का 20 प्रतिशत उपदान के रूप में प्रदान किया जा रहा है। सरकार द्वारा चयनित औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के माध्यम से विकलांगजनों को चयनित व्यवसायों में निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जा रहा है तथा प्रति प्रशिक्षणार्थी 1000 रुपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति भी दी जा रही है। प्रदेश सरकार के यह प्रयास अवश्य ही समाज के इन लक्षित समूहों को विकास की मुख्य धारा में लाने में सहायक सिद्ध होंगे।

राज्य पथ परिवहन निगम

यात्रियों को सुलभ हुई सुरक्षित एवं आरामदेह यातायात सुविधा

● हेमन्त वत्स

हिमाचल प्रदेश सरकार राज्य में दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों के बावजूद विकास प्रक्रिया के लाभ दूरदराज में स्थित गांवों तक सुलभ करवाने के लिए निरंतर प्रयासरत है। जन कल्याणकारी योजनाओं और कार्यक्रमों के लाभ प्रदेश के सभी क्षेत्रों में पहुंचाने के साथ-साथ आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित बनाने में यातायात के साधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रदेश में सड़कें ही यातायात का एकमात्र साधन हैं और हिमाचल प्रदेश पथ परिवहन निगम अपने समर्पित कर्मचारियों और बसों के बेड़े के माध्यम से लोगों को बेहतर सेवाएं उपलब्ध करवाने की दिशा में बेहतरीन कार्य कर रहा है।

राज्य पथ परिवहन निगम अपने लगभग 2200 बसों के बेड़े के माध्यम से प्रदेश के भीतर तथा बाहर यात्रियों को दिन-रात यातायात सेवाएं प्रदान कर रहा है। अपने सामाजिक दायित्व और जिम्मेदारी के निर्वहन के लिये तथा लोगों को बेहतर सेवाएं उपलब्ध करवाने के दृष्टिगत, निगम ने बसों के बेड़े के सुदृढ़ीकरण के लिए 500 नई बसों की खरीद की है। जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय नवीकरण मिशन के अन्तर्गत प्रदेश के लिए 800 और बसें स्वीकृत की गई हैं और इसके लिए 91 करोड़ रुपये राज्य को प्राप्त हो गये हैं।

अपने नियमित यात्रियों के लिए निगम ने अनेक नवीन योजनाएं आरम्भ की हैं। नई बसें प्राप्त होने के साथ ही निगम ने शिमला-सोलन, कुल्लू-मण्डी, कुल्लू-मनाली, जोगिन्द्रनगर-मण्डी, नालागढ़-बद्दी-बरोटीवाला, धर्मशाला, ऊना और सुन्दरनगर क्षेत्र में कम किराए वाली बस सेवा आरम्भ की है। निगम द्वारा अपनी लग्जरी बस सेवाओं को नया रूप दिया जा रहा है और विभिन्न स्थानों के लिए नई लग्जरी बस सेवाएं आरम्भ की जा रही हैं। निगम ने पहली बार शिमला-धर्मशाला और शिमला-मनाली के मध्य नई वॉल्वो बस सेवा आरम्भ की है। प्रदेश के विभिन्न भागों से दिल्ली के लिए पहले ही वॉल्वो बस सेवा का परिचालन किया जा रहा है। शीघ्र ही मैकलोडगंज से चंडीगढ़ के मध्य नई वॉल्वो बस सेवा भी आरम्भ की जाएगी। मौजूदा समय में निगम के पास 27 वॉल्वो, 4 इसूजू, 31 सुपर लग्जरी, 32 वातानूकूलित डीलक्स और 40 डीलक्स बसें हैं। यात्रियों को बेहतर सेवाएं उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से शीघ्र ही निगम अपने बेड़े में 13 नई वॉल्वो बसें शामिल करेगा।

निगम अपनी 27 कार्यशालाओं को स्तरोन्नत भी कर रहा है। निगम की कार्यशालाओं में नवीनतम मशीनरी और उपकरण स्थापित किये जा रहे हैं ताकि निगम की बसों को श्रेष्ठ परिचालन स्थिति में रखा जा सके। इन कार्यशालाओं के आधुनिकीकरण पर 70 करोड़ रुपये व्यय किए जा रहे हैं। आधुनिकीकरण के साथ-साथ उचित एवं वास्तविक कल-पुर्जों की समुचित आपूर्ति की दिशा में भी सतत प्रयास किए गए हैं। कल-पुर्जों की पूरी खरीद वास्तविक उपकरण निर्माताओं (ऑरिजिनल इक्विपमैंट मैनुफैक्चरर) से ही की जा रही है ताकि इनकी सर्वोत्तम गुणवत्ता सुनिश्चित बनाई जा सके। निगम में कल-पुर्जों की कोई कमी नहीं है।

गत डेढ़ वर्ष की अवधि में निगम द्वारा चालकों के 375 पद

और परिचालकों के 200 पद भरे जा चुके हैं। परिचालकों के 600, चालकों के 300 और तकनीकी कर्मचारियों के 150 पद भरने की प्रक्रिया आरम्भ की जा चुकी है।

सामाजिक दायित्व के निर्वहन के साथ-साथ निगम ने अपने कर्मचारियों के साथ भी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम किये हैं। इस अवधि में निगम द्वारा अपने कर्मचारियों को बकाये के रूप में पहले ही 100 करोड़ रुपये की राशि उपलब्ध करवाई जा चुकी है। निगम अपने कर्मचारियों की सभी जायज़ मांगों को पूरा करने के लिये प्रतिबद्ध है। कर्मचारियों की कार्य स्थिति में सुधार के लिये सभी बस अड्डों पर विश्राम कक्षों की मुरम्मत की जा रही है और उनका स्तरोन्यन एवं जीर्णोद्धार किया जा रहा है। चालकों और परिचालकों को आठ घंटे के सेवाकाल से अधिक कार्य करने पर ओवर टाईम उपलब्ध करवाने का निर्णय निगम द्वारा पहले ही लिया चुका है।

राज्य पथ परिवहन निगम अपने लगभग 2200 बसों के बेड़े के माध्यम से प्रदेश के भीतर तथा बाहर यात्रियों को दिन-रात सेवाएं प्रदान कर रहा है। अपने सामाजिक दायित्व और जिम्मेदारी के निर्वहन के लिये तथा लोगों को बेहतर सेवाएं उपलब्ध करवाने के दृष्टिगत, निगम ने बसों के बेड़े के सुदृढ़ीकरण के लिए 500 नई बसों की खरीद की है।

बसों, ट्रक और अन्य चालकों के लिए सार्वजनिक-निजी सहभागिता के अन्तर्गत विभिन्न स्थलों पर चालक विश्राम कक्ष बनाने का निर्णय लिया गया है। आरम्भ में मनाली राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर मण्डी और मनाली के मध्य उपयुक्त स्थल पर, कांगड़ा जिला में उचित स्थान पर और शिमला-चंडीगढ़ राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर उपयुक्त स्थल पर इन चालक विश्राम कक्षों का निर्माण किया जायेगा।

निगम के प्रयासों से अप्रैल, 2014 से जून, 2014 के मध्य इसके लाभ में 2860.85 लाख रुपये की वृद्धि हुई है।

हिमाचल प्रदेश पथ परिवहन निगम ने प्रदेश के जलाशयों में समुचित यातायात व्यवस्था उपलब्ध करवाने का निर्णय लिया है। निगम द्वारा शीघ्र ही महाराणा प्रताप सागर बांध, गोबिन्द सागर जलाशय और चमेरा जलाशय इत्यादि में जल यातायात सेवा आरम्भ की जाएगी। निगम विभिन्न जलाशयों में 'रूट' चिन्हित कर रहा है और इनके लिए लाईसेंस भी निगम द्वारा प्रदान किए जाएंगे। इस दिशा में शीघ्र ही गुणात्मक जल यातायात परियोजना स्वीकृति के लिए केन्द्र सरकार को प्रेषित की जाएगी।

प्रदेश सरकार दूरदराज और दुर्गम क्षेत्रों में भी लोगों को राज्य पथ परिवहन निगम की बसों और अन्य सेवाओं के लाभ समयबद्ध सीमा में सुनिश्चित करवाने के लिए प्रतिबद्ध है ताकि प्रदेशवासी बेहतर यातायात सुविधा का लाभ उठा सकें।

बागबानी

बागीचों में खुशहाली की पौध 3200 करोड़ तक पहुंचा सेब कारोबार

● जयन्त शर्मा

प्रदेश की आर्थिकी में सेब के महत्त्वपूर्ण योगदान को ध्यान में रखते हुए वर्तमान प्रदेश सरकार सेब उत्पादन को बढ़ावा देने के लिये प्रतिबद्ध है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बागबानों को सेब की उच्च उत्पादन क्षमता वाली किस्में उपलब्ध करवाई जा रही हैं तथा बागबानों की सक्रिय भागीदारी से विपणन नेटवर्क को सुदृढ़ किया जा रहा है। प्रदेश की समद्धि में सेब उत्पादन का महत्त्वपूर्ण योगदान है और राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में सेब 3200 करोड़ रुपये का योगदान दे रहा है। हिमाचल को देश के सेब राज्य के रूप में जाना जाता है। राज्य में फल उत्पादन के अंतर्गत कुल क्षेत्र में से 49 प्रतिशत पर सेब का उत्पादन किया जाता है तथा राज्य के कुल फल उत्पादन में 87 प्रतिशत हिस्सा सेब उत्पादन का है। वर्ष 1950-51 में सेब के अधीन कुल क्षेत्र 400 हेक्टेयर था, जो वर्ष 1960-61 में बढ़ कर 3025 हेक्टेयर तथा वर्ष 2012-13 में बढ़कर 1,06,440 हेक्टेयर हो गया। हिमाचल में सेब का व्यावसायिक उत्पादन लगभग 80-90 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ, जब संयुक्त राज्य अमेरिका के फिलाडेल्फिया के श्री सत्या नंद स्टोक्स ने वर्ष 1918 में शिमला जिले के कोटगढ़ में सेब की लोकप्रिय 'डिलीशियस' किस्मों से क्षेत्रवासियों को अवगत करवाया। सेब किसानों विशेषकर छोटे एवं सीमान्त किसानों की आजीविका का मुख्य साधन बनकर उभरा है। शिमला, कुल्लू, किन्नौर, चम्बा, मण्डी और सिरमौर प्रदेश के मुख्य सेब उत्पादक जिले हैं। गत कुछ वर्षों में प्रदेश के उंचाई वाले क्षेत्रों के साथ-साथ निचले क्षेत्रों में भी

सेब उत्पादन की दिशा में रुचि उत्पन्न हुई है। यह राज्य के बागबानी वैज्ञानिकों द्वारा किये जा रहे सघन अनुंसधान और निचले क्षेत्रों के प्रगतिशील बागबानों द्वारा सेब उत्पादन क्षेत्र में किये गये सफल प्रयोगों से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ने के प्रोत्साहन से ही सम्भव हुआ है।

प्रदेश सरकार भी किसानों को आधुनिक तकनीक अपनाकर फसल विविधीकरण एवं सेब तथा अन्य फलों की उच्च क्षमता युक्त किस्मों के उत्पादन के लिये प्रोत्साहित कर रही है ताकि उनकी आर्थिकी को मज़बूत बनाया जा सके।

वर्ष 2003-04 में जहां सेब के अधीन क्षेत्र 84112 हेक्टेयर था, वहीं वर्ष 2004-05 में यह बढ़कर 86202 हेक्टेयर, वर्ष 2005-06 में बढ़कर 88507 हेक्टेयर, वर्ष 2006-07 में 91804 हेक्टेयर, वर्ष 2007-08 में 94726 हेक्टेयर, वर्ष 2008-09 में 97438 हेक्टेयर, वर्ष 2009-10 में 99564 हेक्टेयर, वर्ष 2010-11 में 103644 हेक्टेयर और वर्ष 2011-12 में बढ़ कर 103644 हेक्टेयर हो गया। प्रदेश में सेब उत्पादन जहां वर्ष 2003-04 में 459492 मीट्रिक टन था, वहीं वर्ष 2004-05 में यह बढ़कर 527601 मीट्रिक टन, वर्ष 2005-06 में 540356 मीट्रिक टन, वर्ष 2006-07 में 268402 मीट्रिक टन, वर्ष 2007-08 में 592576 मीट्रिक टन, वर्ष 2008-09 में 510161 मीट्रिक टन, वर्ष 2009-10 में 280105 मीट्रिक टन, वर्ष 2010-11 में 892112 मीट्रिक टन तथा वर्ष 2011-12 में 275036 मीट्रिक टन रहा। गुणवत्ता युक्त सेब का उत्पादन उन क्षेत्रों में संभव है जो समुद्र तल से 1800 से 2700 मीटर की उंचाई पर स्थित हों, जहां सर्दी के मौसम में 1000 से 1600 तक 'चिलिंग आवर्स' प्राप्त हों और जहां सेब सीज़न में तापमान 21 से 24 डिग्री सैल्सियस तक रहता हो।

प्रदेश में सेब उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 'एप्पल रिजुविनेशन परियोजना' के दिशा-निर्देशों का सरलीकरण किया गया है ताकि अधिक से अधिक बागबान इससे लाभान्वित हो सकें। यह परियोजना राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत सेब के पुराने पौधों के स्थान पर नई, उन्नत स्पर किस्में लगाई जा रही हैं। वर्ष 2014-15 में नवीन 'एप्पल रिजुविनेशन परियोजना' के अधीन 1500 हेक्टेयर क्षेत्र लाया जा रहा है। योजना के अन्तर्गत लाये गये बागीचों में आवश्यक रूप से 30 प्रतिशत पॉलीनाईज़र तथा सूक्ष्म सिंचाई सुविधाएं सुनिश्चित बनाईं जायेंगी। वर्ष 2014-15 में सूक्ष्म सिंचाई के अधीन 1000 हेक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र लाया जा रहा है।

प्रदेश में सेब उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 'एप्पल रिजुविनेशन परियोजना' के दिशा-निर्देशों का सरलीकरण किया गया है ताकि अधिक से अधिक बागबान इससे लाभान्वित हो सकें। यह परियोजना राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत सेब के पुराने पौधों के स्थान पर नई, उन्नत स्पर किस्में लगाई जा रही हैं।

फल, विशेषकर सेब की फसल को ओलों से बचाने के लिये प्रदेश सरकार ने एंटी हेल नेट पर उपदान को 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 80 प्रतिशत कर दिया है। इसमें से 30 प्रतिशत प्रदेश सरकार द्वारा वहन किया जा रहा है। वर्ष 2013 से मई 2014 तक 23.5 लाख वर्ग मीटर क्षेत्र को एंटी हेल नेट के अधीन लाया गया। वर्ष 2014-15 में 15 लाख वर्ग मीटर अतिरिक्त क्षेत्र को एंटी हेल नेट के अधीन लाया जा रहा है, ताकि बागवानों को उत्तम गुणवत्ता के एंटी हेल नेट उपलब्ध करवाकर उनकी फसल को सुरक्षित रखा जा सके।

बगवानों को सेब की फसल के समुचित दाम सुनिश्चित बनाने के लिये वर्ष 2013-14 में मण्डी मध्यस्थता योजना के तहत 34229 मीट्रिक टन 'सी' ग्रेड के सेब का प्रापण किया गया। गत वर्ष की तुलना में मण्डी मध्यस्थता योजना के तहत सेब के प्रापण मूल्य में 50 पैसे प्रति किलो की वृद्धि की गई।



कहानी

वो सुबह

● पद्‌म गुप्त अमिताभ

आज सुबह से पूरा दिन मैंने यही तो चाहा है कि ये दोनों पुलिस वाले एक बार मेरे सामने आ जाएं तो इनके ऊपर अपने मन की भड़ास निकालूं। और अब ये दोनों मेरे सामने खड़े हैं तो इनकी उपस्थिति मुझे खल रही है।

दोनों मेरे सामने खड़े हैं, अपनी पांच फुट दस इंच से एकाध इंच ऊपर पुलिसिया देह को, किंचित एक ओर झुकाए आंखें किसी विशेष दिशा में न देखती सी। कालेज के अपने एन.सी.सी. के दिनों को याद करूं तो स्टैंड एट ईज़ (stand at ease) की मुद्रा में। आज की भाषा में कहूं तो 'विश्राम'। अर्थात आराम की ऐसी स्थिति, जिसमें 'अटेंशन' (attention) की कठोर मुद्रा से पूरी छूट है।

'अटेंशन' मात्र सीधा खड़ा रहना भर तो नहीं है। 'अटेंशन' यानी 'सावधान'। इस 'सावधान' होने में कितनी जिम्मेवारी है, यह तो वही जान सकता है जो साल दो साल अनुशासन की इस कठोर प्रक्रिया से गुज़रा हो। अर्थात् किसी भी आसन्न परिस्थिति, आदेश अथवा कार्य के प्रति एकाग्र तत्परता।

यहां ऐसा कुछ नहीं है। वे पुलिस के आदमी हैं। राष्ट्रीय अथवा प्रदेश स्तर के उत्सवों में यह कुछ लोगों की विवशता हो सकती है। सभी जानते हैं, उनका तारतम्य किसी अनुशासित परेड का न होकर कनखजूरे की अनगिनत बेतरतीब टांगों जैसा होता है। उसमें उनका क्या दोष? ट्रेनिंग के बाद परेड करने का अवसर ही नहीं मिलता। कुछ अपवाद छोड़कर अधिकांश की तो तोंद निकल आती है।

यहां तो वे एक मामूली-सी कॉलोनी के साधारण से घर के आंगन में खड़े हैं। यह न तो किसी बड़े राज्य स्तरीय अधिकारी के समक्ष खड़े होने जैसा है और जो इससे भी कठिन होता, किसी पुलिस अधिकारी के सामने तो बिलकुल भी नहीं, जहां दोनों एड़ियां बजाकर सैल्यूट ठोकने के बाद सावधान की ऐंठी हुई मुद्रा में खड़े रहकर 'जी जनाब, जी जनाब' कहते-कहते ज़बान तालु से चिपकी रहती है कि जाने साहब का अगला आदेश क्या हो?

मैं तो भला किस खेत की मूली हूं? अदना-सा एक आदमी, बस यही न? मैं और मेरे कुछ चाहने वालों के सोचने समझने से क्या होता है? मैं स्वयं को बुद्धिजीवी समझता फिरूं तो यह मेरी बुद्धि का दोष है। इनके निकट तो उसका प्रयोग वर्जित है और फिर सोचने, समझने की फुरसत किसे है जब इनके हाथ में 'डण्डा' थमा दिया गया हो।

ये सत्ता और प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग हैं और समाज को अपराधमुक्त रखना इनका दायित्व। न्याय और व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए ही चाहिए डण्डा व्यवस्था। अंतर केवल इतना है कि दण्ड व्यवस्था एक उलझी हुई प्रक्रिया है, डण्डा व्यवस्था में ऐसा कोई विधान नहीं है। यह अप्रिय कार्य इन पुलिस वालों को सौंपा गया है। आम आदमी, सामान्यतः भला आदमी होता है किन्तु, डण्डा व्यवस्था में ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। दण्ड विधान और डण्डा विधान में यही सूक्ष्म-सा अंतर है। दण्ड विधान में आप तब तक दोषी नहीं होते जब तक सिद्ध न हो जाए। डण्डा विधान में तो आपका रक्षक बस डण्डा ही है।

इस बात को, देश के कोने-कोने में, चौबीसों घंटे चलने वाले, हमारे ट्रक ड्राइवर भाई अच्छी तरह जानते हैं। यही अनुभव उन्हें दिलजले शायर बना देता है, बस उनके 'काफ़िए' और 'रदीफ़' पर मत जाएं। ट्रकों के पीछे, आपको ऐसे शेर लिखे, प्रायः मिल जाएंगे जो पढ़ने वालों को अपनी भावनाओं की बौछार में सराबोर करते हुए निकल जाएंगे मेरे खुदा बचाना, मुझे दो बलाओं से, पुलिस की दुआओं से और हसीनों की अदाओं से।

अब कोई पुलिस वाला किसी को दुआ क्यों देगा? लिखने वाले का निहितार्थ भी सम्भवतः यही है, पढ़ने वाला भूल कर बैठे तो क्या करे कोई? हसीनों की अदाओं से, अलबत्ता, कौन बच सका है?

दूसरे गंभीर से दिखने वाले शेर का अर्थ उन्हें भला क्योंकर समझ आने वाला है जिन्हें यह सब हासिल है

ये हुकूमत, ये दहशत, ये नश्शा-ए-दौलत?
सब किरायेदार हैं, बस घर बदलते रहते हैं।

बात पुलिस वालों की हो अथवा झण्डे की, अद्वैतवादियों के 'वह मैं ही हूं' की तरह, दोनों एक ही हैं। एक में दूसरा समाया है। इसीलिए व्यक्ति से अधिक डण्डे की महिमा अपरम्पार है। किसी



बच्चे के हाथ में भी दे दीजिए, तुरन्त चलना शुरू हो जाएगा और कुछ ही क्षणों में उसका प्रभाव भी दीख जाता है।

पंजाबी में कहावत है 'डण्डा पीर ए बिगड़ेयां, तिगड़ेयां दा।' (डण्डा बिगड़े हुओं का पीर है)। हमारे पुलिस वाले भी डण्डे से सबको सुधार देते हैं, किसी का भी अंग भंग कर सकते हैं। निर्दोष से निर्दोष व्यक्ति भी हाथ जोड़कर जुर्म कुबूल कर लेता है।

शरीफ़ आदमी तो डण्डे और डण्डे वालों से दूरी बनाए रखने में ही भलाई समझता है। फिर भी वह किसी प्रक्षेपास्त्र की तरह आपके आंगन में आ गिरे तो कोई क्या करे? आज मेरे दिन का आगाज़ कुछ इसी तरह हुआ। इन दोनों पुलिस वालों का यहां होना उसी से जुड़ा है। यह छोटा-सा हादसा जो मेरे साथ हुआ, मुझ अकेले का अनुभव अथवा तिरस्कार नहीं है अपितु एक व्यापक सामाजिक मुद्दे पर बहस तो दूर, साधारण संवाद भी स्थापित नहीं किया जा सकता। मैंने पूरा दिन आज बहस ही तो की है और अपने मन की जो ग़र्द मुझे इनके ऊपर झाड़नी चाहिए थी, वह झाड़ी है मैंने बेचारे करमजीत पर।

करमजीत मेरा पड़ोसी है और पुलिस में है। हमारे गेट साथ-साथ है और बीच की दीवार भी ज़्यादा ऊंची नहीं। दोनों घरों के बीच वार्तालाप से लेकर आदान-प्रदान तक, सभी छोटे-मोटे कार्यों का निष्पादन इसके आरपार ही होता है। आज सुबह वह घर पर नहीं था, होता तो बात का यूं बतंगड़ थोड़े ही बनता और न इस घटनाक्रम में मेरी भूमिका तय होती। किंतु कुछ पटकथाएं तत्काल लिखी जाती हैं और उनकी भूमिकाएं और मंचन भी।

करमजीत का हैण्ड राइटिंग बड़ा सुंदर है, मोतियों जैसे अक्षर लिखता है। हिन्दी अच्छी आती है, अंग्रेज़ी भी ठीक ठाक है। उससे बड़ी बात है उसके स्वभाव की शालीनता। इसी कारण बड़े साहब अर्थात! एस.पी. साहब ने उसे अपने दफ्तर में लगा रखा है। वह भले ही नियमित रीडर न हो, लोग उसे साहब का रीडर ही कहते हैं।

पुलिस की तो छोड़िए, आम आदमी को सरकारी दफ्तरों में अपने छोटे-मोटे कार्यों के लिए प्रतिदिन अपमानित होना पड़ता है, ऐसे में करम जीत जैसे व्यक्ति तो सचमुच मरुस्थल में हरियाली और जल के समान हैं।

पांच साल पहले वह किराए का मकान ढूंढता हमारे घर आ पहुंचा था। दो कमरे खाली थे किन्तु मैं पुलिस महकमे का नाम सुनते ही बिदक गया था "भाई साहब! माफ़ करना पुलिसियों से तो हमें डर ही लगता है।' मैं पुलिस वाला कहता तो भी ग़नीमत थी। स्वभावतः मैं ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करता किन्तु अब पीछे लौट कर देखता हूं तो मैं लगभग अशिष्ट हो गया था। करमजीत को बुरा लगा होगा। करमजीत ज़रूरतमंद था और उसकी युवा पत्नी गर्भवती थी, यह हमें बाद में पता चला, अतः वह चुप रहा उसने कहा

"नहीं भाई साहब! ऐसा कुछ नहीं है। मैं मानता हूं कि हमारा महकमा बहुत बदनाम है पर सारे पुलिस वाले एक जैसे नहीं होते। आप चाहो तो मेरे पिछले मकान मालिक से पूछ लो, मैं आपको उनका टेलीफोन नम्बर देता हूं और आप अपनी तसल्ली कर लो।"

मैं उसके पिछले मकान मालिक से भला क्या बात करता? वह फिर बोला, "उनको दरअसल अपने लिए कमरे की ज़रूरत पड़ गई, इसीलिए मुझे शिफ्ट करना पड़ रहा है। मेरा छोटा-सा परिवार है, एक पत्नी और छोटा बेटा है। मैं विश्वास दिलाता हूं, आपको कोई परेशानी नहीं होगी। बल्कि जैसी हमारी ड्यूटी है, बच्चों को परिवार के साथ आराम रहेगा।"

बातचीत से मुझे वह भला आदमी लगा और मैंने हामी भर दी। दो दिन बाद वह शिफ्ट कर गया।

कुछ ही सप्ताह में अपने व्यवहार से उसने साबित कर दिया कि वह पुलिस वालों के बारे में व्याप्त नकारात्मक धारणा से हटकर था। अपने जीवन में, मैं, यद्यपि अनेक सज्जन और शिष्ट पुलिस अधिकारियों से मिल चुका हूं किन्तु दैनिक व्यावहारिक जीवन में पुलिस के अधिकांश कनिष्ठ अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा अभद्र व्यवहार और असहयोग की इतनी अधिक घटनाएं देखने-सुनने में आती हैं कि पुलिस वालों की बदनाम छवि ही उभर कर आती है। करमजीत से मिलकर सचमुच विश्वास हुआ कि चलो, काली भेड़ों का जमावड़ा तो समूचे तंत्र में है, पुलिस में भी भले लोग हैं। अंग्रेज़ी कविता अबु बिन आदम (Abu Ben Adam) की तर्ज़ पर इतना ही कह सकता हूं कि ऐसे भले लोगों का कुनबा बढ़े।

करमजीत की पत्नी भी भली लड़की थी, दुबली-पतली, मितभाषी किन्तु मिलनसार। हमारे किशोर बेटे और बेटी से हिल-मिल गई। उसने बतलाया कि पुराने घर में, करमजीत, कभी कभार, पीकर उसके ऊपर हाथ उठा देता था किन्तु हमारे यहां आने के बाद उसका पीना लगभग बंद हो गया था और हाथ उठाना भी। संभवतः ऐसा मेरे प्रारम्भिक कठोर व्यवहार के कारण रहा होगा किन्तु उसके भीतर नैसर्गिक साधुता अवश्य रही होगी, मैं व्यर्थ ही उसका श्रेय क्यों लूं?

पांच-छह मास बाद करमजीत की पत्नी के दूसरा बेटा हुआ।

सर्दियों के दिन थे, वह अपने नन्हे शिशु को नहला-धुलाकर आंगन में लिटा देती। हमारा कुत्ता जो अपने खूंखार स्वभाव के लिए पूरी कॉलोनी में कुख्यात था, चारपाई के नीचे उस बच्चे का रक्षक बनकर चुपचाप ऊंघता रहता। मानो शिशु की भीनी गंध से ही समझ गया कि यह कोई अपना है और उसकी रक्षा का दायित्व उसी पर है।

बच्चा बड़ा हुआ तो हमारे ही घर रहता, उसकी मां पुकारती ही रह जाती। तीन बरस बीत गए। उन्हें हमारे घर पर कोई असुविधा नहीं थी। करमजीत अपने परिवार की ओर से निश्चिन्त था और वहीं बसने की सोचने लगा। संयोग से हमारा साथ वाला प्लाट खाली था। हमने भी आग्रह किया। उन दिनों ज़मीनों के भाव अभी ज़मीन पर ही थे और निर्माण सामग्री को भी आग नहीं लगी थी। करमजीत ने प्लाट का सौदा कर लिया और चार-पांच मास में बिना किसी तामझाम के रहने लायक घर बना लिया।

अब दोनों घरों के बीच दीवार अवश्य थी पर सम्बंध बदस्तूर जारी रहा।

आंगन में खड़े इन दो पुलिस वालों से यह मेरी दूसरी मुलाकात है। आज सुबह दातुन करते हुए मैं बाहर निकलता तो देखा, गेट के बाहर कोई गाड़ी खड़ी है। गेट खोलकर देखा तो पुलिस की जीप थी और उसमें दो तीन पुलिस वाले थे। इसमें कुछ भी अजीब नहीं था क्योंकि साथ वाला घर करमजीत का था। ये लोग उसी से मिलने आए होंगे। रही हमारे घर के आगे खड़े होने की, तो गाड़ी आगे पीछे कहीं भी खड़ी हो सकती है।

मैंने गेट को खुला रहने दिया और भीतर आ गया क्योंकि बेटी कॉलेज जाने के लिए आफत पचा रही थी, मैं उसके छोटे-मोटे कार्यों में सहयोग कर रहा था। थोड़ी देर बाद मैं फिर बाहर निकला तो देखा, जीप वहीं खड़ी थी। संभवतः करमजीत घर पर न हो, पत्नी कहीं व्यस्त होगी और भीतर से कोई बोला न हो। करमजीत के पड़ोसी और एक नागरिक होने के नाते इतना दायित्व तो मेरा बनता था कि मैं पता करूं, क्या बात है?

पहले मैंने उन पुलिस वालों से पूछ लेना ही उचित समझाा। "क्यों भाई साहब? आप यहां इतनी देर से खड़े हैं, क्या आप करमजीत से मिलने आए हैं? मैं भीतर जाकर पता करूं वह कहां है?"

जीप में से कोई कुछ नहीं बोला तो मैंने फिर पूछा, "या कालोनी में किसी और से मिलना है तो मैं आपकी मदद करूं?"

इसके बाद जो हुआ वह अप्रत्याशित था। मेरे दोबारा पूछते ही जैसे कोई विस्फोट हो गया। जीप के भीतर से एक पुलिस वाला बोला, "रै घणी तकलीफ सै क्या? तेरे ते चुप नीं रया जाता? चुपचाप अपणा काम कर, नई तै गड्डी मां गेर ल्यांगे।"

रास्ते में बंदर द्वारा वहां से गुज़रने वाले किसी व्यक्ति पर दांत निपोर कर, 'सों सों, खी-खीं' करके झपटने की बात तो समझ आती है किन्तु सचमुच का बन्दर ही होता तो मैं सड़क से पत्थर उठाकर अथवा उठाने का नाटक करते हुए उसे डराने अथवा भगाने का उपक्रम करता अथवा छिटक कर वहां से भाग लेता किन्तु मुझ पर तो आदमी ही झपट पड़ा था। और आदमी भी अपनी ड्यूटी पर तैनात एक जिम्मेवार पुलिस वाला। उसने मेरी अस्मिता पर कालिख पोत दी थी। उसकी यह हरकत तो बन्दर से भी गई गुज़री थी। यह क्रोध और अपमान का ऐसा Aqua Regia (स्वर्ण को घोलने का दो तेज़ाबों का मिश्रण) था जो मुझे दग्ध करता हुआ मेरे भीतर तक उतर गया। ठण्डी सुबह में भी मेरे माथे पर पसीने की बूंदें उभर आई।

त्वरित प्रतिक्रिया के रूप में सबसे पहले तो मैंने चीखते हुए बेटी को आवाज़ दी, "बेटी गुड़िया, बाहर आना, ज़रा जल्दी से।"

मेरे स्वर की तीव्रता के कारण वह हड़बड़ाकर में बाहर आई।

"पापा, क्या बात है? और ये पुलिस की गाड़ी हमारे घर के आगे क्यों खड़ी है?"

"तुम सबसे पहले तो इस जीप का नम्बर नोट करो, तुरन्त और अच्छी तरह से, ग़लती न करना, फिर मैं तुम्हें सारी बात बताता हूं।"

इधर मेरी आंखों में कुछ धुंधलापन उतर आया है और मैं कोई भी ग़लती नहीं चाहता था।

वह समझ गई कि कोई गम्भीर बात है। उसने सामने जाकर जीप का नम्बर पड़ा और दोबार बोलकर, उसे कंठस्थ कर लिया।

"मैं अभी अन्दर जाकर डायरी में नोट करती हूं।"

उत्तेजित होने के बावजूद मैंने स्वयं को यथासंभव संयमित करते हुए पुलिस वालों से पूछा, "क्यों भाई साहब, मैंने ऐसा क्या ग़ज़ब कर दिया कि तुम मुझे गाड़ी में डालने को कहते हो? पुलिस वालों की मदद करना कोई गुनाह है क्या?" मैंने इतना और जोड़ दिया, "चलो कोई बात नहीं, तुम्हारी जीप का नम्बर तो लिख ही लिया है, तुम चलो, तुम्हारे साहब और डी.सी. साहब से अभी बात करता हूं और अखबार वालों को भी तुम्हारी करतूत बताता हूं।" इससे पहले कि मैं कुछ और कहता, उन्होंने जीप स्टार्ट की और वहां से रफूचक्कर हो लिए।

मुझे प्रकृतिस्थ होने में कुछ समय लगा। पत्नी और बेटी सारी बात सुनकर बहुत परेशान हो गई। बेटी तो भड़क ही उठी, "पापा! आप करमजीत अंकल से तो बात करो ही, एस.पी. को भी फोन करो। अखबार वालों से भी बात करो। ऐसे बदतमीज़ लोगों को सबक सिखाना ज़रूरी है।" बेटी को तो मैंने शांत किया और समझा-बूझाकर कॉलेज भेजा।

किन्तु मैं स्वयं, इस घटनाक्रम से उबर नहीं पा रहा हूं। एब्सर्ड के बारे में, जो, जितना पढ़ा है, उसे अब ऐसे प्रहसन के रूप में घटित होते देख रहा हूं, जिसमें मैं स्वयं को एक अनिच्छुक पात्र के रूप में अभिनय करते हुए देख रहा हूं। विसंगति का अर्थ भी अब समझ

हम बर्बर युग से चलकर विकास के चरम पर पहुंच कर भी उसी युग में क्यों बने रहना चाहते हैं? ये पुलिस वाले इसका उदाहरण हैं। पुरानी रियासतों अथवा औपनिवेशिक शासकों की बात जाने दें तो स्वाधीनता की आधी सदी से अधिक समय की अवधि के बाद भी इनका व्यवहार पशुवत क्यों है? प्रारम्भिक वर्षों में लगता था कि गिरते-पड़ते हम संभल ही जाएंगे। आदर्श स्थिति का वह सपना क्या टूटा, पूरा ताना-बाना इतना उलझ गया कि उसे उधेड़ कर फिर से बुनना पड़ेगा।

आ रहा है। किन्तु यह दार्शनिकीकरण मुझे आश्वस्त नहीं कर पा रहा। कुछ अपवाद छोड़ दें तो पशु पक्षी भी प्रेम की भाषा और संकेत समझते हैं, मनुष्य क्या इतना गया-गुज़रा है, मानवीय व्यवहार से नितांत शून्य? क्या यह ज्ञान पुस्तकों तक सीमित है, मात्र लिखाने, पढ़ाने के लिए? ग़ालिब ने सही समझा था, "आदमी को ही मयस्सर नहीं इन्सां होना।"

नहा-धोकर नाश्ता तो कर लिया किन्तु मन उद्विग्न था। मैं अनेक विकल्पों पर विचार कर रहा था किन्तु एक बार करमजीत से बात कर लेना चाहता था। पत्नी उसके घर जाकर बोल भी आई कि वह जब भी लौटे अथवा जहां भी हो, अवश्य बात कर ले। कोई घंटे भर बाद करमजीत का फोन आया।

"क्या बात है भाई साहब? मुझे ढूंढ रहे थे।"

मैंने जीप का नम्बर देकर अभी बात शुरू ही की थी कि वह बोला, "अच्छा आप उस जीप की बात कर रहे हो जो सवेरे आई थी।" इसका अर्थ यह हुआ कि वे लोग करमजीत से मिल चुके थे। उन्होंने अपने ढंग से बात की होगी। मैंने उसे सारा घटनाक्रम समझाया। मेरे स्वर में आक्रोश था।

"जी भाई साहब! मुझे भी अभी पता चला। वो सी.आई.ए. स्टाफ का ए.एस.आई. है बलविन्दर। मेरा दोस्त है, सवेरे वो ही मेरे को मिलने आया था, ये जो जीप नम्बर आप दे रहे हो ना, उन्हीं की जीप का है।"

"पर करमजीत" मैं उसे टोकना चाहता था कि वह बोला, "बात ऐसी है भाई साहब, बलविन्दर के साथ जो ड्राइवर आया था, उसने कोई नाम बताया जो मुझे याद नहीं", वो नया नया रंगरूट है, साहिब की कोठी पर काम करता है। आप जानते ही हैं कि वहां ड्यूटी किस किस्म की होती है? इनका ड्राइवर छुट्टी पर गया हुआ था, तो साहब ने उसको लगा दिया। थोड़ी बोहत ड्राइवरी कर लेता है। बस दमाग़ इसका मोटा है, झाड़ पता नी कहां खा के आया और बदतमीज़ी कर बैठा आपके साथ।"

करमजीत की बात ठीक होगी पर ऐसा भी क्या मोटा दिमाग़ कि शरीफ़ आदमियों से भिड़ता फिरे? मेरे निकट तो यह बेवकूफ सहयोगी को बचाने की कवायद थी। करमजीत फिर बोला, "सौहरा बेवकूफ है, आपने जब गुड़िया से जीप का नम्बर नोट करवाया तो घबरा भी गया। बलविन्दर ने भी रास्ते में उसको बहुत समझाया। दोनों मेरे पास आए थे, मैंने भी उसको समझाया है कि बेवकूफ तेरी अक्ल बिलकुल ही मारी गई कि तूने सवेरे सवेरे पंगा भी लिया तो मेरे पड़ोस में और वो भी मेरे बड़े भाई साहब के साथ। अब तो वो बोहत पछता रहा है और माफ़ी भी मांग रा था। तो भाई साहब! मेरी तो आपसे यही रिक्वेस्ट है कि आप बात को दिल से न लगाओ और मामले को रफ़ा दफ़ा करो। बलविन्दर खुद उसको लेकर किसी टैम आपके पास आएगा। आप तो समझदार हो, एस.पी. साहब या और किसी से बात करने की ज़रूरत नहीं है, बेवकूफ समझ के उसको माफ़ कर दो।"

करमजीत के इस लम्बे व्याख्यान के बाद मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या कहूं? करमजीत फिर बोला, "बदतमीज़ी तो उसने बोहत की है, चलो उसकी तरफ़ से मैं आपसे माफ़ी मांगता हूं।"

"अरे नहीं करमजीत! आप क्यों माफ़ी मांगते हो?" अपने भीतर के आक्रोश के बावजूद मुझे बुरा लगा कि एक अशिष्ट आदमी की मूर्खता के कारण करमजीत जैसे भले आदमी को क्षमा मांगनी पड़ रही है। क्या यह महज़ एक आदमी की बेवकूफ़ी का सवाल है?

हम बर्बर युग से चलकर विकास के चरम पर पहुंच कर भी उसी युग में क्यों बने रहना चाहते हैं? ये पुलिस वाले इसका उदाहरण हैं। पुरानी रियासतों अथवा औपनिवेशिक शासकों की बात जाने दें तो स्वाधीनता की आधी सदी से अधिक समय की अवधि के बाद भी इनका व्यवहार पशुवत क्यों है? प्रारम्भिक वर्षों में लगता था कि गिरते-पड़ते हम संभल ही जाएंगे। आदर्श स्थिति का वह सपना क्या टूटा, पूरा ताना-बाना इतना उलझ गया कि उसे उधेड़ कर फिर से बुनना पड़ेगा।

सत्ता, अपराध और काले धन के काकटैल का नशा बहुत गहरा है। एक प्रायोजित उत्सव है जिसमें जनतंत्र के अलाव के गिर्द सभी नाच रहे हैं। उस अलाव का ईंधन है आम आदमी और इनके मशालची हैं नौकरशाह और पुलिस। सत्ताधारियों के भीतर कितना ही कुहासा हो किंतु गांधी बाबा का नाम निरंतर रटते रहते हैं जैसे हर पापी, पूजा और अनुष्ठान में आवश्यकता से अधिक आडम्बर करता है। गांधी जी सर्वहारा का आधार थे, पैदल चलते थे अथवा थर्ड क्लास में। इन्हें चाहिए, सपरिवार, वातानुकूलित अथवा उच्च श्रेणी की हवाई यात्रा, लालबत्ती गाड़ियों का काफ़िला और काली वर्दी वालों का क.ख.ग. श्रेणी का सुरक्षा कवच। अर्थात् विशिष्ट होने के सभी उपादान। इन्हें भला कौन मारेगा? इनके होने में किसका भला

हो रहा है? उलटे इनकी उपस्थिति से सामान्य जन का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। आठवें दशक में पुलिस अधिकारी, रुस्तमजी के नेतृत्व में तैयार रपट में पुलिस में व्यापक सुधारों की सिफ़ारिश की बात थी। उसके कुछ अंश अखबारों में भी छपे थे। उस पर संसद में बहस तो क्या होनी थी, उसे किसी गोपनीय और संवेदनशील दस्तावेज़ की तरह दबा दिया गया।

इसमें मुख्य बात यही है कि सत्ता के केन्द्र में जिन व्यक्तियों को ऐसी रिपोर्ट की सिफ़ारिशों से अपनी अति विशिष्टता का प्रभामण्डल धूमिल होता लगे वे उसे क्यों लागू करना चाहेंगे? इस दुष्चक्र में सुरक्षा कर्मी और पुलिसवालों की स्थिति सबसे दयनीय है। राजनैतिक स्वार्थ और प्रशासनिक पंगुता के कारण वे हर समय तनाव में रहते हैं और उनकी निराशा और अवसाद के प्रेशर कुकर का वाल्व हमेशा आम जनता की ओर ही खुलता है। लोगों के साथ अशिष्ट व्यवहार को लेकर इनके मन में अपराध बोध नहीं होता, इसे तो वे अपनी ड्यूटी का हिस्सा मानते हैं। इसके लिए सज़ा तो दूर, इन्हें मामूली फटकार भी नहीं मिलती। गंभीर से गंभीर मामले में भी बस लाइन हाज़िर कर देते हैं। यह तो एक प्रकार की सुरक्षा ही है, मामले के रफ़ा दफ़ा होने तक व्यक्ति को आंख से ओझल कर देना।

इन दोनों के चेहरों पर आत्मग्लानि और पश्चाताप का कोई भाव होगा, ऐसा तो सोचना भी बेमानी है। इनसे कोई बात करना भी व्यर्थ है। और कुछ क्षणों की मुलाक़ात में इन्हें क्या समझाया जा सकता है? किसी बड़े साहब से बात करके अथवा अखबार में लिख लिखा कर भी कुछ होने वाला नहीं। दरअसल जिनके पास इसकी चाबी है वे उसे रखकर भूल गए हैं। उन्हें सब बखूबी रास आ रहा है तो वे चिंता क्यों करें? जिस देश के आधे लोग एक जून पेट भरने के लिए भी संघर्षरत हैं, उन्हें तो सर उठाकर आकाश की ओर देखने की फ़ुर्सत भी नहीं। जिन्हें परिश्रम और जुगाड़ू से दो वक्त की रोटी हासिल है, वे उपलब्ध सुविधाओं को त्याग न पाने के मोह में इस दुष्चक्र से निकलना ही नहीं चाहते। पूंजी और बाज़ारवाद की चकाचौंध में सपनों का महल खड़ा करने की जुगत भिड़ाते रहते हैं। इन स्थितियों में परिवर्तन कैसे होगा?

बात बलविन्दर ने ही शुरू की। वो हट्टा कट्टा सा युवा ड्राइवर तो निर्विकार और भावशून्य खड़ा रहा। "वो, सर, दरअसल बात ऐसी है कि आज सुबह हम लोग करमजीत को ही मिलने आए थे। ये लड़का नया है और थोड़ा बेवकूफ़" मैं सोच रहा था कि क्या इसकी अशिष्टता को थोड़ी सी बेवकूफ़ी कहकर टाला जा सकता है? यह इसका सुरक्षा कवच नहीं हो सकता।

"और इसने ग़लती तो बड़ी भारी की है।" बलविन्दर आगे बोला।

"इसको समझ ही नहीं है पब्लिक के आदमी से कैसे बात करते हैं।"

यह तो सभी जानते हैं पुलिस वाले शरीफ़ आदमी से कैसे बात करते हैं? किसी पुलिस चौकी या थाने में कुर्सी तो दूर किसी बेंच या स्टूल पर भी बैठने को नहीं कहा जाता।

इनकी यहां उपस्थिति और स्पष्टीकरण से कुछ भी अंतर नहीं पड़ने वाला है। इनके हाव भाव में खेद जैसा कुछ भी नहीं है। इस प्रकरण का मुख्य अपराधी तो जाने कहां देख रहा है? आगे, पीछे, इधर उधर। बिगड़े हुए जिंद्दी बच्चे की तरह उसे तो शायद झूठमूठ को भी 'सॉरी' कहने में शर्म आती है अपनी हरकत पर शर्मिन्दा होना तो दूर की बात है।

"हमारी तो जनाब से यही अर्ज है कि आप हमारे साहब से बात न करना और न ही किसी अखबार वाले से जिक्र करना। इस बेवकूफ़ (मैं हैरान हूं कि बार बार बेवकूफ़ सुनकर भी यह कितना तटस्थ है?) को तो कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, मुझे ज़रूर लाईन हाज़िर कर देंगे।"

मैं बहुत कुछ कहना चाहता हूं किन्तु इनके लिए मेरे शब्द उतने ही व्यर्थ होंगे जितना मेरे लिए इनका यहां होना। बलविन्दर द्वारा कहे गए शब्दों का भी कोई अर्थ नहीं है। इनकी उपस्थिति मुझे असहज बना रही है। जो प्रश्न आज सुबह से मेरे भीतर घुमड़ रहा है उनका उत्तर इनके पास नहीं है। यह सब मानसिक रूप से बहुत थकाने वाला है और इनसे बात करना मुझे मगज़ खपाने जैसा ही लगता है।

नहीं, मेरे द्वन्द्व का समाधान उनके पास नहीं है।

"चलो, ठीक है बलविन्दर जी, पर... 'इस पर' में तो पूरा बहस-पुराण है जिसे मैं सुबह से अनेक बार दोहरा चुका हूं। ये दोनों सोच रहे होंगे कि बन्दा कुछ तो अपने मन की भड़ास ज़रूर निकालेगा और छोटा मोटा भाषण देगा।

मेरी बात करने की अनिच्छा उनके लिए थोड़ी अजीब हो, किन्तु यह एक प्रकार का संकेत है कि वे अब जा सकते हैं। वे चैन की सांस लेते हैं और अभिवादन की मुद्रा में किंचित सा हाथ उठा कर इस अग्निपरीक्षा से मुक्त हो जाते हैं। बलविन्दर कहता है, "शुक्रिया जनाब, बड़ी मेहरबानी आपकी, अच्छा, जै हिन्द जनाब! और दोनों गेट से बाहर निकल जाते हैं।

मुझे मोटरसाइकल स्टार्ट होकर दूर जाने की आवाज़ आती है किन्तु मेरा ध्यान कहीं और है। मेरे ज़ेहन में उभरता है "जिस सुबह का अमृत पीने को, हम ज़हर के प्याले पीते हैं" शायर के सपनों की वह सुबह क्या सचमुच कभी आएगी अथवा लोगों के जीवन की सुबह ऐसे ही प्रारम्भ होती रहेगी जैसा मेरे साथ आज सुबह हुआ था?

20-आसा सिंह बाग़, नारायणगढ़ रोड, अम्बाला शहर,
हरियाणा, मो. 0 94163 78090

कहानी

बेशर्म

● सैली बलजीत

वह दिनभर अपनी रेहड़ी के सामने बैठा रहता है।

सारा दिन बीड़ियां फूंकने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता वह। उसकी रेहड़ी पर दो-तीन पतीलों में सारा दिन भांप निकलती रहती है। पतीलों में मीट की गंध के भभके छूटते रहते हैं। बहुत घटिया किस्म का सस्ता मीट होता है इनमें। उसकी दुकानदारी अकसर शाम को ही शुरू होती है। शहर भर के नशेड़ी किस्म के लोग अपने-अपने पाजामों में खुंसे हुए अद्धे निकाल लेते हैं वहां जाकर। वह भी उन सभी को देख खिल जाता है। पैसे कमाने का लालच उसे कम होता है, शराब देखते ही उसके मुंह से लार टपक जाना स्वाभाविक होता है। वह शराब देखते ही चटखारे लेने लगता है। उसकी रेहड़ी शहर के बाहर बने हुए अस्पताल के ठीक बगल में खड़ी रहती है, फुटपाथ पर। अस्पताल की दीवार पर उसने अपना घरेलू सामान बेतरतीब से टिकाया हुआ है। बड़े-बड़े ट्रंकों के ऊपर पूरा दिनभर बिस्तर पड़े रहते हैं। दूसरी चारपाई पर वह बैठा रहता है, बीड़ी फूंकते हुए। शाम को सभी नशेड़ी ग्राहक इसी चारपाई पर गंदी गालियां बकते हुए शराब गले में उंडेलते हुए पसरे रहते हैं। शाम घिरते ही आए हुए ग्राहकों को मीट की कटोरियां परोसते हुए, वह भी अच्छा-खासा शराबी हो जाता है।

उसकी पहाड़िन-सी दिखने वाली बीवी भी सारा दिन आसपास बैठी रहती है। चारपाई के पास ही वह दिनभर बर्तन मांजने के अतिरिक्त अपने घर को संभाले रहती है। यही फुटपाथ उसका घर है। रात को एक चारपाई पर वह और उसकी लड़की सो जाते हैं, दूसरी पर उसका खाविंद और उसका लड़का पसर जाते हैं। लेकिन अकसर सोने के लिए उसे इंतज़ार करना पड़ता है कब नशियाते हुए शराबी उठें और वे लोग इत्मीनान से सो सकें। लेकिन नशेड़ी लोग उठने का नाम ही नहीं ले रहे। वह कसकसाती है। हाथ मलती है। उसकी आंखों में नींद है। रात के ग्यारह बजने को हैं, स्ट्रीट लाइट की रोशनी सीधी वहां पड़ रही है।

“उठते नहीं तेरे गिराहक, कब तक बैठाए रखेगा इन्हें?” वह गुस्से में है।

“तू क्यों मरे जा रही है कमबख्त, बस उठ रहे हैं अब्बी?” वह नशिया गया है।

“सोना है मुझे...दिनभर तेरी टर्र-टर्र सुनती हूं। उठाओ इन्हें।”

“क्या बक-बक लगा रखी है, कमज़ात...देखा नहीं गिराहक निपटा रहा हूं।” वह अक्खड़ लहजे में बोल उठा है।

“भाड़ में जाएं तेरे गिराहक...भाड़ में जाए तू ...उठता कि नहीं?”

“उठ ही तो रहे थे ये लोग... तू क्यों आसमान उठा रही है सिर पर... बोल?”

“कब उठेंगे? बोल? दो घंटे हो गए, चपर-चपर सुनते तेरी. .. कुछ शर्म कर। जवान लड़की की तो कुछ शर्म कर।”

“मैं क्या कहता हूं री! जा, सो मर जाकर, दूसरी चारपाई पर।”

“तेरा ये स्यापा खत्म हो तो सोएं ना? बोल, उठता कि नहीं!” वह गुस्से में आग बबूला हुई गालियां बकने लगती है।

वे लोग लड़खड़ाते हुए उठ जाते हैं। यह सब रोज चलता है।

वह ऊंघते हुए लड़की को लिए चारपाई पर पसर जाती है। उसके पास ही वह भी पसर जाता है। शराब की तेज गंध हवा में फैल आती है। रेहड़ी से सारा मीट खत्म हो गया है। रेहड़ी खाली है। ट्रंकों में खाली मुसड़े-से कपड़ों के सिवाय कुछ नहीं। लेकिन उसकी आंखों में नींद के साथ डर भी है। उसको रातभर कभी-कभार तो जागते हुए काटनी पड़ती है, उसके साथ सोई उसकी लड़की अब बच्ची नहीं रही। उस पर चौदहवां साल चल रहा है। क्या पता उन कलमुंहे शराबियों का... कभी भी आ सकते हैं रात को... कुछ भी कर सकते हैं। वह कांप जाती है डर से। कब तक इस फुटपाथी जिंदगी को भोगना लिखा है। कितनी बार वह अपने खाविंद से इसके बारे में बतिया चुकी है पर... उसे क्या पड़ी है। उसे तो अपने शाम वाले ग्राहकों की इंतज़ार की पड़ी रहती है। वह मन-ही-मन सोचती है, सवेरे ही वह इस नरक वाली जिंदगी से छुटकारा पाने के

लिए, अपने खाविंद से बात करेगी। बीच-बीच में वह अपने साथ सटकर सोई हुई अपनी लड़की को टटोलते हुए, सुख की सांस लेती है।

सवेरे ही उठ जाती है वह। उठते ही रातभर का कूड़ा बीनती है जिसमें मीट की सूखी बोटियां, हड्डियां, प्याज के टुकड़े, गदलाई हुई कटोरियां, शराब से गंधाते हुए कांच के गिलास, तश्तरियां, प्लास्टिक के गंदलाए चीकट हुए जग, मग, लोटे होते हैं। वह उन्हें खूब रगड़-रगड़कर मांजते हुए बुदबुदाती है उसकी आंखों में आक्रोश है।

"बोल, अब यहीं रखेगा हमें, इस फुटपाथ पर?" वह गरजी थी।

"तो चाहती क्या है तू... दो टुक खाती जा आराम से, समझी। चपर-चपर करेगी तो उठाकर बाहर फेंक दूंगा?"

"कहां फेंकेगा रे, फुटपाथ पर तो हूं...जा, डूबकर मर जाकर. .. इसे घर कैता है, इसे? इस फुटपाथ पर? जहां लोग पेशाब करते हैं?"

"अब तेरे लिए महल तो बनवाने से रहा, कुतिया! अपनी हैसियत देखी है कब्बी?"

"कौन कैता है महलों के लिए... मरजाने एक झोंपड़ी तो बनवा नहीं सका तू... जा, डूब मर कहीं जाकर... लड़की तेरी जवान हो रही है, उसकी ही शर्म कर कुछ... यहां रखेगा उसे, इस फुटपाथ पर?"

"देख, तू सवेरे ही चपर-चपर करने लगी, हरामजादी चार दिन यहां फुटपाथ पर रह लेगी तो क्या हो जाएगा। बोल, मकान नहीं ढूंढा मैंने?"

"तेरा सिर होगा... तुझे कौन देगा मकान किराए पर... भुक्खे-नंगे को। तेरी औकात है मकान लेने की? जा... बे... तुमसे तो भिखारी लोग अच्छे-भले हैं, उनके सिर ढकने को छप्पर तो होता है।"

"तू क्या समझती है खुद को... तुझे यहीं रखूंगा, यहीं।"

"मेरा क्या जाएगा, लोग थूकेंगे तुझ पर। कल को लड़की ने कोई चन्न चढ़ा दिया तो फिर ना देखना मुंह बाए... लड़की है... कहां तक उसकी चौकसी करती रहूंगी... रात को आंख तो लगानी ही है ना? कुछ सोच मुए ठंडे दिमाग से।"

तब तक लड़की भी उठ गई थी। सुबह सैर करने वालों के अतिरिक्त चाय की दूकान वाले छोकरे भी आ गए थे अपने खोखों में। लड़की ने उठकर इधर-उधर ताका था। खूब सवेरा हो आया था, वरना अंधेरा होता तो वह अस्पताल की दीवार की दूसरी तरफ चली जाती। फिलहाल उसने उसे अस्पताल की संडास की तरफ जाने का इशारा किया था।

उसने बहुत बार सोचा है कि ऐसे खाविंद को छोड़कर कहीं बहुत दूर चली जाए। लेकिन जाने क्यों हर बार उसका हौसला पस्त हो जाता रहा है। कहां जाएगी आखिर... लगता है, जब तक जिंदगी है, इसी खूंटी पर बंधे हुए दो टुक खाने हैं। उसके दिमाग में सबसे बड़ी बात जो आती है कि जवान हो रही बेटी को किसी भी सूरत में दुनिया की गंदी नज़रों से बचाए रखना है। उसने देखा कि लड़की अस्पताल में संडास से वापस आ गई है। पिछले हफ्ते रात को खूब तेज बारिश आ गई थी। वे लोग लगभग भीग गए थे बारिश थमने के इंतज़ार में... आखिर अपनी चारपाइयां उठाए हुए, अस्पताल के बरामदे में जाकर रात गुजारनी पड़ी थी। टप्परवासी ज़िंदगी से वह मन से खुश नहीं है। नहाने से लेकर कपड़े तबदील करने के लिए उसे अस्पताल के बाथरूमों तक दौड़ना पड़ता है। कभी-कभार तो बाथरूम खाली होने के इंतज़ार में घंटों लग जाते हैं। उसे याद आता है, पिछले दिनों कपड़े तबदील करने के लिए, उसने चारपाई को खड़ी करके पर्दा-सा बना लिया था, लेकिन आते-जाते लोग जाने क्यों घूर-घूरकर उधर ही देखने लगे थे। वह कुछ भी तो अपनी मर्जी के अनुसार नहीं कर सकती। कितनी बार अपने खाविंद से इसी बात को लेकर भिड़ चुकी है वह। जाने वह कमबख्त किस मिट्‌टी का बना है, उसके सिर पर जूं तक नहीं रेंगती कभी।

उसका छोटू तो अभी से बिगड़ने लगा है। सारा दिन आवारागर्दी तो करता ही है, बीच-बीच में रेहड़ी पर पड़े गल्ले से पैसे भी निकाल लेता है। अभी स्कूल जाने का नाम नहीं लेता। वह सोचती है, भाड़ में जाए। पढ़-लिखकर कौन-सा लफटैन बनाना है उसे। लड़की शुरू-शुरू में स्कूल जाती रही है, अब वह भी स्कूल नहीं जाती। कितनी बार तो उसका नाम कटा है, कटे भी क्यों न, फीस कभी सही वक्त पर जमा नहीं हो पाती। उसका स्कूल जाने का टंटा ही खत्म कर दिया है। उसने भी बहुत सपने देखे थे अपनी औलाद के। लेकिन औलाद का क्या कसूर... औलाद तो अपने मां-बाप पर ही जाएगी।

"कहां गई है सवेरे-सवेरे तेरी लाडली... बर्तन किसने साफ करने हैं!" वह आंखें मलते हुए कहता है। उसकी शक्ल नशेड़ी जैसी दिखती है।

"जाना कहां है उसने, हाथ-मुंह भी न धोए उठकर?" वह फर्राटे से बोलती है।

"क्यों, किसी ब्याह में जाना है उसने... उसे कहना कि सारा दिन शीशे के सामने बैठी क्या करती है?"

"क्या तेरी तरह मुंह से मक्खियां उड़ाती रहे सारा दिन! हाथ-मुंह धो लेना क्या जुर्म हो गया?"

"तुम दोनों के पर निकल आए लगते हैं, कुतरता हूं तुम्हारे पर..."

"फिर क्या हो जाएगा... कलमुंहे?"

"इसी खूंटे पर बांधकर रखूंगा तुम्हें।"

"खूंटी पर तो बंधी हुई हूं ही... और कहां बांधेगा?"

"चल, उठ... अंगीठी में कोयले डाल... कुछ खाना नहीं क्या?"

"क्या खिलाऊं? मेरा सिर है पकाने को!"

"हुआ क्या है कुतिया... कुछ बता भी।"

"आटा खत्म है, रात को बोला था न? बोल?"

"बोला था? कब?"

"दारू में इतना भी भूल गए?"

"लाता हूं। उठ जा बस फटाफट... शाबाश।" वह उठ जाता है, थैला लेकर।

पिछले दिनों से वह देख रही है कि उसकी लड़की अब काम-काज में हाथ कम बंटा रही है। अब दिनभर गेंद-गिट्टयां भी नहीं खेलती। फुटपाथ पर ईंटों को खड़ा करके छोटा-सा मंदिर बना रखा है उसने, उसमें भी अब बहुत कम रुचि रखती है। अस्पताल में हर आने-जाने वाला, क्षणभर के लिए तो अवश्य ही रुककर अंदर जाता है, जैसे तमाशा हो रहा हो सड़क पर। वह मन-ही-मन सोचती है, तमाशा ही तो हैं वे लोग दूसरे लोगों के लिए। जब रात के आखिरी पहर से लेकर शाम होने तक वे सारा दिन बच्चों की तरह हाथ उछाल-उछालकर लड़ते रहते हैं, तो भी तमाशाई होते हैं वे। शुरू-शुरू में उसे इस फुटपाथी टप्परवासी ज़िंदगी से छुटकारा पाने की खूब ललक रहने लगी थी। लोगों की भीड़ की घूरती आंखों को झेलना अब आम बात हो गई है। सबसे बढ़कर रात को शराबी ग्राहकों की बकी हई गंदी गालियों को झेलना भी आम बात हो गई है।

पिछले दिनों उसने महसूस किया था कि उसकी लड़की के पीछे दो-तीन गुंडा किस्म के लोग लगे हुए हैं। अकसर वे किसी-न-किसी बहाने रेहड़ी पर जा जमते हैं। वहां खड़े होते वक्त, वे कभी टिककर नहीं बैठते। जाने क्या ढूंढते हैं वे यहां आकर। वह इस बात को लेकर बहुत चिंतित हैं। सबसे अहम बात हो गई है लड़की की सुरक्षा।

शाम घिर आई है। उसकी रेहड़ी पर शराबी लोग मंडराने लगे हैं।

वह चुपचाप ईंटों से बनाए गए चूल्हे पर रोटियां सेंकती है।

"उस दिन कहा था न मैंने कि शराबियों को ज्यादा नहीं बैठाना है यहां?" वह अपने खाविंद को घूरते हुए बोली थीं।

"धंधा क्यों चौपट करने पर तुली है तू?" वह कड़कता है।

"धंधे की ही पड़ी है न?"

"बोल, न कुछ करूं तो मरना सब्बी भूखे!"

"धंधे के अलावा भी कब्बी कुछ सोचा?"

"क्या सोचूं?"

"मैं कहे देती हूं कि शराबियों को बैठाकर गंद-मंद सुनना अब हमारे वश में नहीं... लड़की तेरी जवान हो रही है, कुछ है चिंता?"

"वे लोग पैसे खूब थमा जाते हैं... धंधा है..."

"अगर कल को कुछ गलत हो गया न, फिर न कहना मुझे...।

"लड़की का खयाल रखना तेरा फर्ज़ नहीं?"

"है, पर इन शराबियों की बारात को अब नहीं फटकने दूंगी इधर।"

"क्यों?"

"देख नहीं किस तरह घूरते हैं, जैसे खा ही जाना चाहते हो!"

"कुछ नहीं होगा... किसकी हिम्मत है... हट, पगली... जा, आराम से बैठ, धंधे के वक्त तो चुप बैठ जाया कर..."

"तुमसे कौन तकरार करे... चल उठ री मुई... तू ही ऐसे में उठ जाया कर... तेरे बाप ने तो शर्म घोंटकर पी ली है।" उसने ईंटों वाले मंदिर में दीया जलाते हुई अपनी बेटी को ऊंचे स्वर में चिल्लाते हुए कहा था।

वह उठ खड़ी हुई थी। हाथ में दीया टिमटिाते हुए बुझ गया था।

उसने मां का आदेश सुनते ही लोहे की बाल्टी उठा ली थी। बाल्टी पकड़े हुए वह अस्पताल के भीतर चली गई थी, पानी भरने। वहां पहले ही कई लोग हाथों में बाल्टियां लिए टोंटी के सामने खड़े थे।

वह मन-ही-मन में सोचती है, अच्छा है, उसकी लड़की देर से आए पानी भरकर। कम-से-कम बाप के नशेड़ी ग्राहकों की गंदी गालियों के शोर से तो दूर रहेगी। लेकिन वह बहुत जल्दी वापस लौट आती है, पानी लेकर। उसे याद है, इन सालों का हिसाब करे तो कितने ही दिन, कितनी ही रातें इस फुटपाथ पर बिताई हैं। उसका आदमी जिसे घर कहता है, ऐसा होता है घर भला! वह जल-भुन जाती है। ट्रंकों पर धूल की बेतरतीब परतें चढ़ गई हैं, साथ में जंग भी लग गई है। गत्ते वाली अटैची टूट गई है। टूट जाए, वह क्या करे? कल छोटू ने बाप के गल्ले से पांच का नोट उठाते वक्त खूब मार खाई थी। कल को कुछ और उठा ले जाएगा। चार बर्तन हैं, उन्हीं पर ही न हाथ साफ कर जाए। एक दिन तो उसे अस्पताल वाली दीवार की परली ओर बीड़ी के टोंटे उठाए हुए मुंह से सुट्टे भरते हुए पकड़ा था। डरनेवाली बात उसमें है ही नहीं! उसकी समीरा बेटी खूब लंबी-ऊंची होती जा रही है। वह सोचती है, इस बार तो हर हालत में अपने आदमी को घर तलाशने की बात फिर से कहेगी। इस फुटपाथ पर रहते हुए कब तक उसकी जिम्मेदारी ढोती फिरेगी। वह फूट-फूटकर बिफर उठी थी।

"बोल, कब तक यहां पड़ा मरा रहेगा, इस फुटपाथ पर। मैं अब एक पल के लिए भी यहां नहीं रहूंगी।"

"इत्ती तेज जुबान चलाएगी अब बोल, कहां से ले लूं मकान, पांच सौ महीना मांगते हैं... फिर हमें मकान देता कौन है?"

"अपनी करतूतें सामने आ रही हैं, मैं तो कैती हूं, यहां पड़ा रहेगा तो तेरी इस बेटी से कोई भी रिश्ता नहीं जोड़ेगा... बोल, सोचा

है कभी?"

"कोई चिंता नहीं... तू क्यों मरी जा रही है चिंता से?"

"तू तो मर-खप गया, मैं भी चिंता न करूं तो बोल...? वो कौन-सा मनहूस दिन था, जिस दिन तेरे संग भाग आई थी... लानत है तुझ पर!"

"तब सोचना था न हरामजादी, तब तो कैती थी मेरे साथ ही मरना है...।"

"अब तेरे साथ रहती है मेरी 'जुत्ती। जा, दे दे तलाक... जहां दिल करता है, मगर!" वह गुस्से में आग उगलने लगी है।

"चपर-चपर करने से बाज नहीं आएगी?"

"नहीं आऊंगी... जा, दफा हो परे... सवेरे ही समीरा को ले जाऊंगी, इस गंद से दूर... दिल में तो आता है पुलिसवालों को रपट लिखवा दूं तेरी।"

"मैं डरता हूं किसी से? पुलिस में जाएगी? थाने जाकर रही-सही इज्जत-आबरू गंवा देना चाहती है हरामखोर?"

"इस गंद से तो बेहतर ही होगा। तेरे को चार जूते पड़ें तो ही तेरा दिमाग ठिकाने आएगा।"

"जूते तो तेरे अब्बी मारता हूं... ठहर अब... रुक तो।" उसने इसके साथ ही पांव से टूटा-सा जूता उतारते हुए, तीन-चार उसके सिर पर जड़ दिए हैं।

वह दुहत्थड़े मारते हुए रोने लगी है। राह चलते हुए कितने स्कूटर, रिक्शा, साइकिलों वाले लोग खड़े होकर यह सब देखने लगे हैं। तमाशा ही तो हैं वे लोग। लोग ठठाते हुए, चटखारे लेते हुए, किलकारियां मारते हुए, आगे बढ़ जाते हैं।

वह बहुत देर तक गुमसुम-सी पड़ी सिसकियां लेती रहती है। समीरा उसके पास बैठी हुई है। वह भी इस विद्रोह का एक हिस्सा हो जाना चाहती है। हाथ मलते हुए, बाप को भला-बुरा कहती है। गालियां निकालती है। मुंह फुलाती है। मुंह चिढ़ाती है बाप को। बाप ढीठ किस्म का आदमी है। उसके दिमाग पर कोई असर नहीं है। वह बीड़ियों का बंडल जेब से निकालता है। माचिस की तीली भड़ाक से जल उठती है। लेकिन... वह नहीं जलता। वह मुसकराता रहता है। उस पर कोई असर नहीं।

वह कई बार सोचती है कि ऐसी बातें न ही हों। लोग तो राह चलते हुए तमाशा देखते हैं। किसी का कुछ नहीं जाता। सब तमाशबीन लोग हैं। दिन को सहानुभूति दिखाने वाले लोग, शाम होते ही लार टपकाते हुए मंडराते हैं इधर। उसके दिमाग पर तो एक ही बात बैठ गई है कि समीरा को इस गंदगी में नहीं रखेगी। लेकिन, इसके लिए क्या कर पाएगी? कहां से आएगा इत्ता पैसा? जाने कहां जाता है इतना पैसा, जो रात भर नशेड़ी ग्राहकों से वसूलता है वह? इतने पैसों से भला मकान थोड़े आता है। गहने-लत्ते भी कितने हैं? एक महीना किराया देकर फिर कहां जाएगी? वह तरकीबें भिड़ाती है। बगल में समीरा बैठी है। वह उठती है। ईंटोंवाले चूल्हें के सामने बैठ जाती है। चूल्हे में राख है। चूल्हा ठंडा है। वह सामने रेहड़ी के आगे खड़ा है, बीड़ियों के सुट्टे भरते हुए।

नशेड़ी लोग आते हैं। दारू पीते हैं। महफिल जमाते हैं। गालियों का शोर हवा में फैलाते हैं। सिगरेट के धुएं के छल्ले हवा में उछालते हैं। मीट खाते हैं। मौज-मस्ती करते हैं। वह रोज की तरह कसमसाती है। मुट्ठियां भींचती है। कुछ कर नहीं सकती। बस उन ग्राहकों के जाने का इंतज़ार करती है कब वे लोग उठें और वे लोग चारपाइयां बिछाएं और सो जाएं। रात के दस-ग्यारह बज जाना आम बात हो गई है। बहुत थकी हुई है वह। जाने कब उसकी आंखों में नींद उतर आती है। उसने दूसरी चारपाई बिछा ली है। उसके पायताने समीरा पसरी है खर्राटे भरती हुई। उसके पास ही बगल में छोटू पड़ा है। वह भी सो गया है। रात घिर आने की ही तो चिंता रहती है।

दूसरी चारपाई पर वह लगभग पूरी तरह शराबी हुआ-सा पसर जाता है। पूरा सामान ज्यों-का-त्यों पड़ा है। कुछ भी समेटा नहीं है। किसी को सुधि नहीं, सभी सो गए हैं।

फिर दूसरी सुबह। रोज की तरह। लोग उठ गए हैं। उनका सामान ज्यों-का-त्यों है। अपनी-अपनी जगह। सब कुछ सही है। वह भी उठ गई है। पायताने देखती है। वहां समीरा नहीं है। सिर्फ रात को ओढ़ी हुई चादर ही है। वह कहीं नहीं दीखती।

वह हड़बड़ा उठती है। इधर-उधर भागती है। खाविंद को उठाती है। अस्पताल की टट्टियों की तरफ भागती है। वहां भी नहीं मिलती समीरा। उसका माथा ठनकता है। उसकी सारी आशंकाएं सही हो गई है। वह दुहत्थड़ मारती है।

"कम्बख्त तुझे कैती थी? जवान बेटी का खयाल कर कुछ। कैती थी न कोई और धंधा कर ले... तेरी शराबी जुंडली से डरती थी.. बोल... कैती थी न?"

"आ जाएगी.. यहीं कहीं होगी... जा इत्मीनान से बैठ।" उस पर कोई असर नहीं। वह आराम से उठता है।

"तेरा सिर आएगी मुए... जाने कहां गई? जा, उठ, ढूंढ उसे... ले गया उसे कोई... तू मरा पड़ा रहा। मैं मरी पड़ी रही। सब मर गए थे रात को.. ले गया उसे कोई।" वह रोने लगी है।

लोग टुकुर-टुकुर ताकते हुए, गई समीरा की वापसी के अंदाजे लगाते लगते हैं। खूब जमा हैं। लोग खुसर-पुसर करते हुए आ रहे हैं, जा रहे हैं। कौन सहानुभूति जतलाता है। सब्बी तमाशबीन हैं।

लगभग दोपहर तक इतना भर ही पता चला है कि रात के दो बजे एक पुराने मॉडल की एम्बेसडर कार ठीक रेहड़ी के सामने खड़ी थी।

वह उठती है... पांव से चप्पल उतारते हुए अपने खाविंद की तरफ लपकती है। वह रोते हुए गालियां निकालने लगती है।

1288, लेन-4, श्रीरामशरणम् कॉलोनी, डलहौजी रोड, पठानकोट, पंजाब-145 001

कहानी

जो बोये सो काटे

● एल. आर. शर्मा

जब महाराजाधिराज सूर्यप्रताप सिंह की आत्मा को लेकर यमराज के दूत चित्रगुप्त के पास पहुँचे, तो उनके पीछे-पीछे एक और आत्मा को लेकर अन्य दूत खड़े हो गए। महाराजाधिराज ने पीछे मुड़कर देखा तो आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सके।

"अरे, महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद तुम भी?"

"हाँ महाराज, मैं भी।" त्रिवेणी प्रसाद ने पीछे से उत्तर दिया।

"ये तो एक विचित्र संयोग है कि हमारी मृत्यु साथ-साथ ही हुई।"

इस पर चित्रगुप्त ने व्यवधान डाला। बोले - "यहां लाये गए प्राणी आपस में वार्तालाप नहीं कर सकते। जो शंका हो, हमसे पूछिये। सूर्यप्रताप, तुम तो तीन मनुष्येतर जन्म भोगकर यहां पहुंचे हो। यह जो प्राणी त्रिवेणी प्रसाद है, यह पृथ्वीलोक में तुमसे बाद में मरा था, यह भी दो मनुष्येतर जन्म भुगत कर आया है। अगले जन्म में तुम दोनों को इकट्ठा रखना है, अतः विधाता ने तुम दोनों को यहां अब इकट्ठा बुलाया है।

सूर्यप्रताप (प्रसन्न होकर) - "श्रीमान्, मैं अनुगृहीत हूँ। अब हमें कौन सा राज्य दे रहे हैं?"

चित्रगुप्त (मुस्कराकर) "अब भारतवर्ष में राज्यों और राजाओं का काल समाप्त हो गया है। सांसारिक गणना के अनुसार तुम्हें मृत्युलोक को छोड़े हुए दो सौ साल हो चुके हैं। अब भारत देश स्वतंत्र है। सारे राज्यों को एक राष्ट्र बनाकर जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा स्वयं राज-काज चला रही है।"

सूर्यप्रताप - (थोड़ा चिंतित होकर) - "तो श्रीमान्, अब मुझे किस रूप में भेज रहे हैं? क्या मैं मनुष्य ही रहूँगा या कोई पशु-पक्षी बनूँगा?"

चित्रगुप्त - "तुम मनुष्य ही बनोगे। तुमने व्यक्तिगत रूप में जो पाप किए थे, उसका फल तुम भोग चुके हो। अब राजा के रूप में तुमने जो एक पाप बार-बार किया है, उसका फल भोगने के लिए तुम्हें सरकार के एक अधिकारी के रूप में काम करना होगा।"

सूर्यप्रताप - "वो कौन सा पाप था, जिसका फल मुझे अब भोगना पड़ेगा भगवन्?"

चित्रगुप्त - "तुम अपने महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद के अतिरिक्त अन्य किसी मन्त्री की सलाह नहीं सुनते थे। तुम्हारा कर्त्तव्य था कि पूरे मंत्रिमण्डल की सलाह से राज्य चलाते। पर तुमने ऐसा नहीं किया। राजा के रूप में यही तुम्हारा पापकर्म था। यह त्रिवेणी प्रसाद अपना दबदबा बनाए रखने के लिए राज्य के प्रत्येक विभाग में अपनी मनमानी करता रहता था। यह प्रत्येक मन्त्री की उचित- अनुचित चुगली करता रहता था। तुम्हारे अन्य नौ मंत्रियों में तीन मंत्री अति कुशल, सच्चरित्र, वीर और धर्मानुरागी थे। पर इस त्रिवेणी प्रसाद ने उनकी भी चलने नहीं दी। शिक्षा मन्त्री पण्डित सोमभद्र, विदेश मन्त्री देवदत और कृषि मन्त्री तीर्थदेव कभी-भी अपने मंतव्यों की आपसे चर्चा नहीं कर सके। केवल सेनापति विराटसेन ही सीधे आपसे बात कर सकता था। अतः चुगली सुनने के पाप में विधाता तुम्हें एक चुगली करने वाले अधिकारी के रूप में भेज कर दण्ड दे रहे हैं।

"आह, यह कैसी विडम्बना है। और भगवन् महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद का क्या होगा?"

चित्रगुप्त बोले - "उसका अपराध गम्भीर है। उसने अपने सहयोगियों की चुगली करके अपने महत्त्वपूर्ण दायित्व वाले पद को कलुषित किया है। विधाता ने उसे संसार में एक नाई के रूप में भेजने का निर्णय लिया है। वह उसी नगर में नाई का काम करेगा जिसमें तुम एक अधिकारी के रूप में नियुक्त होंगे।"

सूर्यप्रताप सिंह (आश्चर्य से) - " एक महामन्त्री एक नाई के रूप में, महाराज?"

चित्रगुप्त- " विधाता के विधान में महांमन्त्री और नाई सब बराबर हैं।"

महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद ने प्रार्थना की - "महाराज मेरा अपराध क्षमा हो, मैंने वह सब राज्य और राजा के लिए किया था।"

चित्रगुप्त - "इस विधान में हम कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। त्रिवेणी प्रसाद, राज्य और राजा के लिए पूरा मंत्रिमण्डल उत्तरदायी होता है। शेष मंत्रियों का दायित्त्व तुम ही ढोते रहे। ऐसे क्यों किया?। उनका फिर क्या काम रह गया? तुम्हे अपनी बात मंत्रिमण्डल के सामने रखनी चाहिए थी और उन सब का सहयोग लेना चाहिए था। जो तुमने किया, वह अनुचित था।"

यह सुनकर दोनो प्राणी चुप हो गये।

चित्रगुप्त ने फिर कहा- "तुम दोनों और सुनो। दस साल की

आयु के बाद तुम्हें अपने पहले के मनुष्य जन्म की याद आ जाएगी। ऐसा तभी होगा, जब तुम दोनों इकट्ठा होगें। तुम दोनों राजा और महामंत्री की तरह बात करोगे पर पूर्व जन्म की बात किसी अन्य को बता नहीं पाओगे। तुम्हें अपने अन्य बन्धु-बांधव भी मिल सकते हैं। अगर वे अचानक आपके सामने आ जाएंगे, तो उन्हें भी पूर्वजन्म का स्मरण हो जाएगा। त्रिवेणी प्रसाद को अपने पूर्वजन्म की अधिक याद रहेगी। इसने कुछ ऐसे शुभ कर्म भी किये हैं, जिनके प्रताप से इसे भविष्य का ज्ञान भी रहेगा। नाई होने पर भी इसका खूब यश होगा।"

000

अमरकोट प्रांत की राजधानी प्रतापनगर में राजा सूर्यप्रताप सिंह अब सरकार के विशेष सचिव नियुक्त हैं। अब उनका नाम स्वरूप कुमार पंत है। उनका बड़ा दब-दबा है। उनकी सलाह के बिना प्रदेश के मुखिया कोई काम नहीं करते हैं। कहते हैं पंत से सभी अधिकारी सहमे रहते हैं। वह प्रत्येक अधिकारी के बारे में लगभग प्रतिदिन सरकार को रिपोर्ट करते हैं। कौन अधिकारी किस नेता से मिला, किसने किस फाईल को रोका, किस फाईल को निपटाने में आवश्यकता से अधिक शीघ्रता दिखाई इत्यादि का विवरण वह नियमित रूप से सरकार को देते हैं। सचिवालय में चल रही चर्चा के अनुसार स्वरूप कुमार पंत अब चुगली करते हैं। वैसे वे अपना कर्त्तव्य निभाते हैं।

यह उनके पिछले जन्म के व्यक्तित्व से विपरीत था। पहले जन्म में वह राजा थे और अपने महामन्त्री से चुगली सुनते थे। अब स्वयं सरकार से अन्य अधिकारियों की चुगली करते हैं। अधिकारियों के एक वर्ग में वे एक चुगलखोर के रूप में मशहूर हो रहे थे। उनके प्रति रोष पनपने लगा था। इसका एहसास पंत को भी था। पर वह ऐसे भंवर में फंस चुका था, जिससे निकलना अब कठिन था। विधाता को यही मंजूर था। ऊपर वाले ने उसके लिए यही दण्ड तय कर रखा था।

प्रतिदिन की तरह सरकार के मुखिया का बुलावा आ गया। पंत उठा और कुछ फाईलें लेकर कार्यालय में घुस गया। मानो वहां उसी का इंतज़ार हो रहा था और सरकार के मुखिया अकेले बैठे थे।

"पंत साहब, मुझे दुष्यंत कुमार दास के बारे में पूरी रिपोर्ट चाहिए"

पंत - "मैंने पहले ही दुश्यन्त कुमार दास की फाईल तैयार कर रखी है, सर। दास अपने विभाग में अच्छा काम कर रहा है। इसके काम की तारीफ केन्द्रीय सरकार ने भी की है। पर प्रतिपक्ष के नेता मोहन लाल ठाकुर से इसके घनिष्ठ सम्बन्ध लगते हैं। क्योंकि अपने ग्रामीण विकास विभाग में आये केन्द्रीय आर्थिक अनुदान से इन्होंने ठाकुर जी के चुनाव क्षेत्र की पंचायतों को आवश्यकता से अधिक धन आबंटित किया है। इससे आपकी पार्टी की लोकप्रियता को आने वाले चुनावों में क्षति पहुँच सकती है। अब चुनाव भी तो निकट ही हैं।"

"हूँ। और बत्रा के बारे में सतर्कता विभाग से क्या आया है?"

पंत "वहां से अभी कुछ नहीं आया। मैंने संकोच के मारे सतर्कता विभाग के निर्देशक को दुबारा याद भी नहीं दिलाई। पर अन्य स्रोतों से पता लगा है कि बत्रा जी ने अग्रवाल एण्ड अग्रवाल के माध्यम से ईमानपुर मैट्रो में एक कोठी दो करोड़ में ले ली है।"

मुखिया - "ऐसा लगता है कि बत्रा की ओर से अग्रवाल एण्ड अग्रवाल को हरी झण्डी मिल गई हैं। मैं देखता हूँ ये फर्म पचास एकड़ अधिक भूमि पर कब्जा कैसे करती है। अभी उद्योग सचिव श्रीवास्तव से बात करता हूं। यह आदमी ठीक है। और विनोद ठाकरिया के बारे में क्या खबर है?"

पंत - "सर, अभी सतर्कता विभाग से कुछ नहीं आया। व्यक्तिगत रूप से मैंने प्रयास नहीं किया। मुझे अपराध-बोध सा हो जाता है, जैसे मैं अपने ही सहयोगियों की चुगली कर रहा हूँ।"

मुखिया (गम्भीर होकर) -"पंत, आपको ये कैसा अपराध बोध सालता रहता है। ये सब बातें जानना मेरे अधिकार क्षेत्र में है और आपके कर्त्तव्य क्षेत्र में। आप कोई झूठी रिपोर्ट तो नहीं देते। यह सब जानना जनता के हित में है। मेरी जगह कोई दूसरा होगा, वह भी ऐसा ही करेगा। अगर कोई भ्रष्ट तरीके से सम्पत्ति जोड़ता है तो वह जनता से बेईमानी कर रहा है। ऐसी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना सरकार का कर्त्तव्य है। है कि नहीं?"

पंत- " जी हां, आप ठीक कहते हैं।"

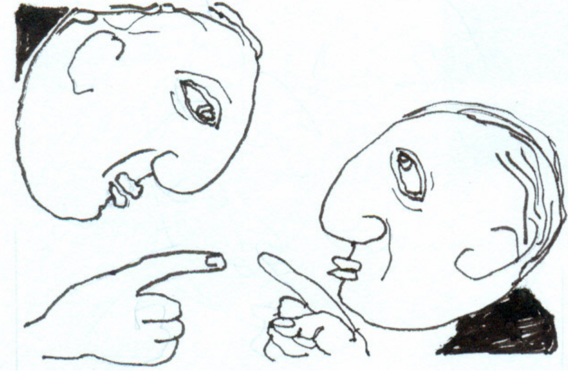
फिर मुस्कराकर बोले-" पर आप में जो अपराध बोध है, ऐसा लगता है जैसे किसी पूर्व जन्म में किये कार्य की वजह से है। मेरे पिता जी एक माने हुए ज्योतिषी हैं। किसी दिन घर आइये, मैं उनसे से आपके ग्रह दिखवाऊँगा।"

"मुख्य सचिव से कहिये दुश्यंत कुमार दास को चुनाव आयुक्त के स्थान पर बदल दें और आजकल के चुनाव आयुक्त सुदीप गोस्वामी को ग्रामीण विकास विभाग का सचिव नियुक्त कर दें। आज ही इसके आदेश कर दें। और पंत साहब, बाकी रिपोर्ट मुझे परसों सुबह इसी समय मिल जानी चाहिए।"

पूर्व जन्म के महाराजा सूर्यप्रताप सिंह इस जन्म में स्वरूप कुमार पंत के रूप में अपने पापों का दण्ड भोग रहा था। ऊपर वाले के विधान को कोई नहीं टाल सकता।

000

प्रदेश की राजधानी प्रतापनगर में एक नौका बाजार है। इसका नाम नौका बाजार कैसे पड़ा, यह तो पता नहीं, पर इतना जरूर है कि यह बाजार काफी चहल-पहल वाला है। इसमें कपड़ों के बड़े-बड़े शोरूम हैं। आभूषणों की अच्छी-अच्छी दुकानें हैं। पाँच बैंक एक ही कतार में हैं। बाजार काफी खुला है। होटल और रेस्तरां भी हैं। यहां एक इंडियन कॉफी हाऊस तो सदैव खचाखच भरा रहता है। कॉफी हाऊस से आगे वाली दुकान के साईन बोर्ड पर



लिखा है - "विराट केश सज्जा"। नीचे अंग्रेजी में लिखा है, "विराट हेयर ड्रेसिंग सैलून" - मालिक बिशन परामर्शी। यही बिशन परामर्शी पूर्वजन्म में महामंत्री त्रिवेणी प्रसाद था। कहते हैं यह दुकान सौ साल से भी पुरानी है। आजकल के मालिक बिशन परामर्शी के बुजुर्गों का भी यही पेशा था। बिशन का कहना है कि बहुत समय पहले उसके परदादा के पूर्वज उज्जैन के महाराजा के परामर्शदाता थे। उन्हीं दिनों राजा के एक शक्तिशाली सामन्त की राजद्रोही गतिविधियों की भनक बिशन के पूर्वजों ने राजा को दे दी। पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उस सामंत ने, जिसका नाम रणवीर सिंह था, राजा से गद्‌दी छीन ली और स्वयं राजा बन गया। बाद में उसने राजा की हत्या कर दी। अब वह राजा के स्वामीभक्त कर्मचारियों को ढूंढ-ढूंढकर मौत के घाट उतार रहा था। बिशन के पूर्वजों को जान बचाकर वहां से भागना पड़ा व नकली वेश में प्रताप नगर में पहुंचे और अपने को गुप्त रखने के लिए उन्होंने नाई का व्यवसाय अपना लिया। उनका विश्वास था कि नाई जैसे छोटे और नगण्य व्यवसाय वालों पर किसी को भी शक नहीं होगा। और यह ठीक भी था। अगर पहचाने जाते, तो उन्हें राजा दूसरे राज्य का अपराधी मान कर अपने राज्य से बाहर भी निकाल सकता था। पर पूर्वजों ने अपना 'परामर्शी' उपनाम अपने सुखद अतीत की याद में कंजूस के धन की तरह सम्भाल कर रखा, जो अभी तक जैसा का तैसा ही चल रहा है। जमाने की हवा के साथ दुकान का बोर्ड बदलता रहता था, दुकान की साज-सज्जा बदलती रहती थी, पर मालिक ने नाम के साथ उपनाम वही रहता था - 'परामर्शी'। उसका स्वभाव अपने बाप के स्वभाव से काफी भिन्न था। बाप सोहनलाल परामर्शी दो साल पहले ही भगवान को प्यारा हुआ था। वह चिड़-चिड़े स्वभाव का था, छोटी-छोटी बात पर लड़ने को उतारु हो जाता था। पर बिशन ठीक उसके विपरीत था। उसके चेहरे पर एक विचित्र उदासी छायी रहती थी। वह बहुत कम बोलता था। उसे कभी किसी ने मुस्कुराते हुए नहीं देखा था। जब बोलता था तो उसके शब्द नपे-तुले और गम्भीरता लिए हुए होते थे। बात करते-करते वह बहुधा विचारों में खो जाता था। जैसे सामने वाले की बात को अनसुना कर रहा हो। पर ऐसा नहीं होता था। बातचीत का प्रत्येक शब्द उसे याद रहता। कई बार झंझोड़ कर उसे याद दिलाना पड़ता था "अरे बिशन कहां खो गये?" इस पर वह अपना हाथ आकाश की ओर उठाकर प्रायः यह वाक्य कहता - "विधाता के रंग न्यारे।"

उसने अपना सैलून आधुनिक रूप में सजाया हुआ था, पूरे का पूरा वातानुकूलित था। उसके सैलून में चार युवा नाई का काम करते थे, जिनको वह कलाकार कहता था। क्योंकि वह बाल बनाने को एक कला मानता था। उसका अपना केबिन सबसे बड़ा और आधुनिक औजारों से लैस था। दीवार की एक ब्रैकेट पर टेलीफोन भी रखा था। बाल बनवाने वालों को पहले से आरक्षण करवाना पड़ता था। बिशन परामर्शी से जो बाल बनवाता, उसे दुगुने दाम देने पड़ते थे पर फिर भी उसके पास आने वालों की भीड़ लगी रहती थी। लोग कहते थे कि वह बाल बनाते-बनाते कभी ऐसी भविष्यवाणियां भी कर डालता था, जो सच निकलती थी। इन्हीं भविष्यवाणियों को सुनने के लिए लोग उसके पास ज्यादा दाम देकर भी आना चाहते। मन्त्री, अधिकारी, व्यापारी इत्यादि बिशन परामर्शी से ही बाल बनवाना पसंद करते। पूर्व जन्म के अपने सहयोगी सेनापति विराटसेन को वह इस जन्म में भी क्षमा नहीं कर सका था। तभी तो अपनी दुकान का नाम विराट हेयर ड्रेसिंग सैलून रखा था। मानो दिल ही दिल में कह रहा हो, सेनापति अगर मैं नाई बना हूँ, तो तेरा नाम भी नाई की इस दुकान से जोड़ रहा हूँ।

सुबह आठ बजे ही दुष्यन्त कुमार दास, ग्रामीण विकास विभाग के सचिव, बिशन परामर्शी के वातानुकूलित सैलून के विशेष कैबिन में बाल कटवाने के लिए बैठे हुए थे। बाजार अभी खुला नहीं था। दुश्यन्त कुमार की यह मुलाकात पहले से निश्चित थी। विराट हेयर ड्रैसिंग सैलून में भी बिशन के अतिरिक्त कोई नहीं था। वैसे प्रायः दु यन्त कुमार दास जैसे बड़े अधिकारी बिशन परामर्शी को घर पर ही बुलाकर बाल बनवा लेते थे। पर दुश्यन्त कुमार दास अपने ही ढंग का व्यक्ति था। उसे बाजार में बिना गाड़ी और चपरासी के एक झोला लटकाये हुए स्वयं साग-सब्जी खरीदते हुए देखा जाता था। उसके सहयोगी उसे 'गरीब रथ' कहकर उसकी सादगी की खिल्ली उड़ाते थे।

"परामर्शी, जरा जल्दी करना, मुझे आज बहुत काम है।" - दास साहब बोले। परामर्शी बड़े मन से बाल बना रहा था। बोला - "साहब अगर आपको जल्दी है, तो जरुर आपको सरकार ने बुलाया होगा तो ऐसा लगता है कि आपको आपकी जगह से हटाया जा सकता हैं।"

"क्या पंत ऐसा कहता था?"

"पंत जी से मुझे मिले हुए तीन सप्ताह होने वाले हैं। उन्होंने परसों मुझे घर बुलाया है। फिर वे एक नाई जैसे छोटे कलाकार से क्यों ऐसी बातें कहेंगे?"

दास को परामर्शी की भविष्यवाणियों की आदत का भी पता

था। वह ऐसा समझता था कि कई अधिकारी बाल बनाते-बनाते बातें भी करते रहते हैं। उन बातों में से कुछ काम की सूचनाएं परामर्शी अपने दिमाग में भर लेता है और सही समय पर अपनी रचनात्मक कल्पना का मिश्रण करके सम्बन्धित व्यक्ति को परोस देता है। अगर यह नाई अधिक पढ़ा-लिखा होता, तो अवश्य एक उच्च अधिकारी होता। वैसे भी नाई अपनी वाक्पटुता और कुशाग्र बुद्धि के लिए जाने जाते हैं।

दास से निपटने में परामर्शी को करीब आधा घण्टा लग गया। इतने में उसके सैलून के बाकी कर्मचारी भी आ गए और अपने-अपने केबिन को सजाने में लग गए। तभी एक सज्जन अपने 10-11 साल के बेटे को लकर सैलून में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सैलून के एक कर्मचारी से कहा - "परामर्शी से कहो कि बत्रा साहब बेटे की कटिंग के लिए आए हैं।" कर्मचारी बत्रा जी को परामर्शी के केबिन में ले गए। परामर्शी ने बत्रा जी का स्वागत करके बच्चे को कुर्सी पर बैठा दिया। फिर बच्चे से पूछा -

- "कौन सा कट?"
- बच्चा बोला-"मशरूम कट"
- "बाल छोटे या बड़े?"
- "थोड़े छोटे।"

परामर्शी अपने काम में लग गया। बत्रा साहब बीच-बीच में कुछ बातें करते रहे। परामर्शी अपनी आदत के अनुसार चुप रहा, केवल "हाँ जी", "जी साहब" कहकर बत्रा जी की बातों में सहयोग देता रहा। कटिंग पूरी हो गई। परामर्शी ने ध्यान से बच्चे के सिर को सब ओर से देखा। फिर एक अजीब उदासी उसके चेहरे पर छा गई, और उसके मुंह से निकला- "विधाता के रंग न्यारे।" बत्रा साहब ने पूछा - "क्या देख रहे हो, परामर्शी?" परामर्शी ने छत की ओर देखते हुए कहा - "साहब, बच्चे को आज अस्पताल दिखा लेना।"

बत्रा (आश्चर्य और रोष के साथ) - "क्यों?"

परामर्शी - "मुझे इसके सिर के दायें भाग में रोग के लक्षण दिखाई दे रहे हैं।" बत्रा साहब यह सुनकर आपे से बाहर हो गये। फुंफकारते हुए बोले - "ऐ नाई, तू अपना इलाज करा। मुझे लगता है, तू शीघ्र ही पागल होने वाला है। अगर ऐसे ही बकवास करता रहा तो तेरे सैलून में कौन आएगा?" यह कहकर वह बिना पैसे दिए ही बाहर हो गये।

परामर्शी शून्य की ओर देखकर बड़बड़ाया - "विधाता के रंग न्यारे।" इतने में उसके टेलीफोन की घंटी बजी। परामर्शी ने फोन उठाया तो दूसरी ओर से आवाज़ आई - "महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद, मैं सूर्यप्रताप बोल रहा हूँ। शाम को सात बजे नदी तट पर परशुराम मन्दिर में पहुँच जाना।"

000

परसा नदी प्रतापनगर से चार किलोमीटर की दूरी पर बहती है। कहते हैं, भगवान परशुराम ने इस नदी के किनारे तप किया था। वहीं उनका एक छोटा सा मन्दिर भी था। उसी मन्दिर के आंगन में स्वरूप कुमार पंत और बिशन परामर्शी बैठे बातें कर रहे हैं।

"महाराज, आप इतनी अधिक चुगली न किया करें। सारे अधिकारी आपसे बैर खाये बैठे हैं। कहीं आप की जान को खतरा न बन जाए।"

"त्रिवेणी, मैं सब जानता हूँ। पर मेरे वश में कुछ नहीं होता। मैं न भी चाहूँ, तब भी सरकार मुझसे ऐसी रिपोटें मांगती हैं। जिन्हें लोग चुगली कहते हैं। मैं तो एक प्रकार से सरकारी आदेशों आज्ञा का पालन करके अपना कर्त्तव्य निभा रहा हूं। शायद विधाता मेरे पाप के दण्ड को शीघ्रता से पूरा करना चाहता हैं।"

"विधाता के रंग न्यारे" - बिशन परामर्शी शून्य की ओर ताकता हुआ बोला।

"पर महामन्त्री, आपने भी तो दुश्यन्त कुमार दास को उसकी बदली की भविष्यवाणीं कर दी। वह सुबह ही मेरे पास आ पहुँचा था।"

"महाराज, मुझे तो जैसे सामने वाले का भविष्य सफेद कागज पर लिखा हुआ कोई दिखाता हो। मैं भी रुक नहीं सकता। आज एक और घटना हुई। बत्रा साहब अपने बेटे के बाल बनवाने आये हुये थे। मैंने उन्हें बताया..."

"कि उसके बेटे के सिर में ट्यूमर है।"

"हाँ महाराज।"

"तो उसके ट्यूमर ही निकला। उसके बेटे के सिर में दर्द रहता था। कभी-कभी वह स्कूल भी नहीं जा पाता था। वे उसकी आँखें चैक कराते रहते थे। आज अस्पताल में सारा दिन चैक कराने के बाद तुम्हारी बात ही ठीक निकली। शायद वह कल तुम्हारे पास क्षमा मांगने आए।"

"महाराज, इस समय वह मेरे सैलून में मेरे कर्मचारियों से मेरे बारे में ही पूछ रहा है।"

"तुम्हारा काम कैसा चल रहा है?"

"नाई नहीं महाराज, कलाकार कहिए।"

"ओह अच्छा, कलाकार ही सही"- सूर्यप्रताप सिंह ने हंसकर कहां।

"कमाई के लिहाज से बहुत अच्छा है। इतने पैसे तो मैंने महामन्त्री के रूप में भी न कमाए होंगे।" महाराज सूर्यप्रताप सिंह फिर मुस्करा दिये। "अच्छा अब चलते हैं" - उन्होंने कहा। महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद ने कहा - "महाराज, सात महीने के पश्चात् इस प्रदेश में चुनाव हैं। यह सरकार बदल जाएगी। फिर आपके कष्टों में वृद्धि हो जाएगी।"

"जानता हूँ, महामन्त्री। मैं पूर्वजन्म के पापों के प्रायश्चित के लिए तैयार हूँ।"

देर रात तक दोनों का वार्तालाप उस सुनसान मन्दिर के

आंगन में चलता रहा।

फिर दोनों ने अपनी-अपनी राह ली।

000

मुख्य सचिव देवेन्द्र प्रसाद के कमरे में दुश्यन्त कुमार दास ने प्रवेश किया। अभी दस ही बजे थे। दुश्यन्त कुमार को पता था कि दस बजे के बाद मुख्य सचिव को मिलना कठिन होता है। मुख्य सचिव ने दुश्यन्त कुमार की ओर देखकर कह - "मिस्टर दास, कोई आवश्यक काम?"

"मैं बड़े साहब से मिलना चाहता हूँ, आपकी इज़ाजत के लिए आया हूँ।"

"किसलिए? अपनी बदली के लिए ही न?"

"जी हाँ।"

"मिल सकते हो, पर कोई लाभ? हम सब जानते हैं ऐसी आंतरिक उठा-पटक सरकार का विशेषाधिकार है। इसमें कोई नियम-कायदा नहीं तोड़ा गया है।"

"पर सर, ऐसी अकारण उठा-पटक से प्रभावित व्यक्ति का मनोबल तो गिरता है। साथ ही उसकी प्रतिष्ठा पर भी सवाल उठते हैं।"

"यह हमारी नौकरी का एक हिस्सा है, मिस्टर दास। आपको ऐसे परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होना चाहिए। आपको मनोबल बढ़ाने की सूचना देता हूँ। आप प्रतिनियुक्ति पर केन्द्र सरकार में जा रहे हैं। आपकी जगह वहां से जगमीत सिंह आ रहा है।"

"मैं तो पंत की शिकायत भी सरकार से करना चाहता हूँ।"

प्रसाद ने कटुता भरे स्वर में कहा-"पंत को पता नहीं क्यों आप लोग बदनाम करते हैं। वह अपनी डयूटी ही तो करता है। पर क्या केवल पंत ही गलती करता है आपने भी तो एक विशेष क्षेत्र की पंचायतों को केन्द्र से आये आर्थिक अनुदान से अधिक धन नहीं आबंटित किया क्या?"

दास-"ओह, मोहनलाल के क्षेत्र की पंचायतों को न? पर वहां की पंचायतें केन्द्रीय आर्थिक अनुदान की सारी शर्तें पूरी करती थी, इसलिए उन्हे धन देना पड़ा।"

प्रसाद-" पर क्या यह विभाग के मंत्री को नहीं बताया जाना चाहिए था?"

दास-" पर सर, यह तो मेरे अधिकार क्षेत्र में है।"

प्रसाद-" फिर जो पंत कर रहा है वो क्या उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है? मिस्टर दास हम कितने भी ईमानदार बने, कहीं न कहीं हमारी भी कमजोरी रहती है। खैर, छः-सात महिने में चुनाव होने जा रहें हैं, चुनाव के बाद पंत इस पद पर नहीं रहेगा।"

दास "आपका मतलब चुनाव के बाद ये सरकार नहीं रहेंगी?"

प्रसाद "ऐसा तो मैंने नहीं कहा। प्रत्येक चुनाव के बाद जब कोई नई सरकार बनती है, तो विभागाध्यक्ष प्रायः बदले जाते है। पंत को तो मैं ही बदल दूंगा। कहो तो आपका नाम निजी सचिव के लिए तय कर दूं?"

इस पर दुष्यन्त कुमार चुप रहा। उसको भी पता था कि निजी सचिव का काम एक टेढी खीर है। अब महसूस हो रहा था कि किसी के काम की आलोचन करना कितना सरल है, पर उस काम को करना कितना कठिन है।

प्रसाद उठते हुए बोले- " खैर, अब मैं सम्मेलन कक्ष में जा रहा हूं। साहब कुछ निजी कंम्पनियों से प्रदेश में नये उद्योग लगाने की चर्चा करेगें। फिर मिलते हैं।"

000

स्वरूप कुमार पंत के विरुद्ध सचिवालय में रोष बढ़ता जा रहा था। वास्तव में इसकी शुरुआत की एक खास वजह थी। एक बार एक क्लर्क एक जरूरी फाईल को लेकर बड़े साहब के पास तब गया जब पंत किसी अधिकारी के बारे में बड़े साहब को कोई विशेष जानकारी दे रहे थे। क्लर्क के कानों में कुछ शब्द जो सुनाई दिये, तो फाईल निपटा कर वह सीधा उस अधिकारी के पास पहुँचा और उसने पंत की बात को कुछ नमक-मिर्च लगाकर ऐसा प्रस्तुत किया कि वह अधिकारी आपे से बाहर हो गया। फिर तो पंत के बारे में रोष सचिवालय की सीमा से बाहर भी चर्चा का विषय बन गया। जिनकी दाढ़ी में तिनका था, वे निजी निवासों में, पार्टियों में, कॉफी हाऊसों में बस पंत के बारे में ही चर्चा करते थे। चर्चा करने वाले अधिकतर सचिवालय के ही अधिकारी थे। इनमें कई पंत से सीनियर भी थे। इन्ही लोगों ने प्रतिपक्ष के नेता मोहन लाल ठाकुर के पास भी मुखिया और पंत की जुगलबंदी की बात बढ़ा-चढ़ा कर पहुंचा दी। मोहनलाल ठाकुर इसको विधानसभा में उठाना चाहते थे, पर फिर सोचा इस बात में कोई दम नहीं है। अतः इसको मीडिया में उछाला जाए तो ज्यादा राजनैतिक लाभ होगा और उन्होंने ऐसा ही किया। मीडिया वालों ने एक बार इस विषय पर सरकार से भी सवाल कर डाला। बड़े साहब ने बड़ा सपाट स्पष्टीकरण दिया - "देखिये, पंत मेरा निजी सचिव है। वह अपना कर्त्तव्य निभा रहा है। वह केवल तथ्य मेरे सामने रखता है, वह भी तब, जब मैं मांग करता हूँ। अगर मुख्य सचिव पंत की जगह मुझे कोई अन्य अधिकारी देने का प्रस्ताव करते हैं, तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। पर पंत को मुझे उसकी वरीयता के आधार पर किसी अन्य विभाग में नियुक्त करना पड़ेगा।"

पर मीडिया के साथ इस बात के पश्चात् भी मुख्य सचिव की ओर से पंत को हटाने का कोई प्रस्ताव नहीं आया।

अमरकोट प्रदेश में चुनाव सम्पन्न हो गए। चुनाव के परिणाम इस बार मोहनलाल ठाकुर की पार्टी के पक्ष में रहे, अतः उनकी सरकार बन गयी। पहली सरकार के मुखिया अब प्रतिपक्ष के नेता हो गये। नई सरकार के बनते ही सचिवालय में अधिकारियों को इधर- उधर करने की प्रक्रिया जारी थी। स्वरूप कुमार पंत को

स्वरूप कुमार पंत ने लोकायुक्त कार्यालय में अपना काम प्रारम्भ कर दिया। इसके ठीक एक महीने बाद सचिव स्तर के सात अधिकारियों के बारे में जांच के आदेश हो गये। मीडिया को तो मनचाही खबरें मिल गई। समाचार पत्रों में जब ये सब कुछ छपा, तो सचिवालय में अफवाहों का बाजार गर्म हो गया। बाबू लोग लंच टाईम में आपस में चटखारे ले लेकर खुसफुसाहट करने लगे।

भी लोकायुक्त कार्यालय में भेज दिया गया। कई वरिष्ठ अधिकारियों का विचार था कि सरकार ने पंत को लोकायुक्त कार्यालय में भेजकर भारी भूल की। उसके पास उन सभी अधिकारियों के विवरण थे, जो किसी न किसी घोटाले में लिप्त थे। यह स्वाभाविक ही था कि वह उन सभी फाईलों को अपने साथ ले गया होगा। स्वयं उसके विरुद्ध तो कुछ था नहीं, क्योंकि तथाकथित चुगली के अतिरिक्त उसने कोई अनुचित कार्य किया ही नहीं था। उसकी चुगलियां, जिन्हें यहां व्यक्तिगत विवरण कहना ही उचित रहेगा, भी केवल उन्हीं अधिकारियों के बारे में थे, जो घोटालों में लिप्त और चर्चित थे।

स्वरूप कुमार पंत ने लोकायुक्त कार्यालय में अपना काम प्रारम्भ कर दिया। इसके ठीक एक महीने बाद सचिव स्तर के सात अधिकारियों के बारे में जांच के आदेश हो गये। मीडिया को तो मनचाही खबरें मिल गई। समाचार पत्रों में जब ये सब कुछ छपा, तो सचिवालय में अफवाहों का बाजार गर्म हो गया। बाबू लोग लंच टाईम में आपस में चटखारे ले लेकर खुसफुसाहट करने लगे। अमुक अधिकारी निलम्बित हो रहा है, अमुक के विरुद्ध न्यायालय में गिरफ्तारी का चालान दर्ज हो रहा है, आदि-आदि। आरोपित अधिकारियों का संदेह स्वरूप कुमार पंत पर ही गया, जो स्वाभाविक ही था। पर पंत तटस्थ रहते हुए अपना कार्य करते थे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। फाईलों को निपटाकर उन्होंने फोन का रिसिवर उठाया, कोई नम्बर डायल किया, और बोले-"महामन्त्री, मैं सूर्यप्रताप सिंह बोल रहा हूँ। आज रात आठ बजे उसी मन्दिर में पहुँच रहा हूँ। तुम्हारी प्रतिक्षा करूँगा।" यह कहकर चोंगा रख दिया।

000

प्रतापनगर के नौका बाजार में बिशन परामर्शी का 'विराट हेयर ड्रैसिंग सैलून एक मुख्य आकर्षण बन गया है। सैलून के बाहर सदैव भीड़ जमा रहती है। उसके मालिक की ख्याति भविष्यवक्ता के रूप में अधिक हो रही थी। वह पूर्व बुकिंग के आधार पर ही अपने ग्राहकों के बाल बनाता था, चाहे कोई कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो। इस कठोर नियम से कई बड़े आदमी उससे नाराज भी हुए, पर फिर भी बुकिंग कराते रहते थे। अब लोगों का मुख्य उद्देश्य बाल कटवाना नहीं होता, पर बिशन परामर्शी से मुलाकात का लाभ उठाना होता था। पर परामर्शी की भविष्यवाणी किसी-किसी के भाग्य में होती थी। कई बार मीडिया वालों ने इस सैलून और रहस्यमय मालिक के बारे में कई सनसनीखेज़ लेख लिखे। टीवी चैनल वाले भी कहां पीछे रहने वाले थे। इन्होंने भी इस सैलून और इसके मालिक पर अपनी-अपनी हाँकने के प्रयास किए। क्योंकि सैलून का मालिक और कर्मचारी मीडिया के सामने अपने मुंह बन्द रखते थे। इस चुप्पी से लोगों में सैलून के बारे में उत्सुकता दिनों-दिन बढ़ रही थी। इससे बिशन परामर्शी की मुश्किलें भी बढ़ रही थी। एक दिन एक सेठ अपने बाल कटवाने बैठा तो बिशन ने अचानक उससे कह डाला-"सेठ जी, आपके बेटे को आजकल कुछ गुण्डे बहुत तंग कर रहे हैं। उसे जरा सावधान रहने को कह दें।" कुछ दिन बाद सेठ के बेटे का शव परसा नदी के किनारे पाया गया। सेठ ने पुलिस में रिपोट दर्ज करवा दी कि विराट हेयर ड्रैसिंग सैलून के मालिक कि गुण्डों से गुप्त सांठ-गांठ है। पुलिस की जांच अब शुरू हो चुकी थी।

बिशन परामर्शी की भविष्यवाणियों को सुनने का सौभग्य सबको नहीं मिलता था। कोई-कोई ही इस वरदान को पाता था। ऐसी भविष्यवाणियों से कइयों को लाभ हुआ और कइयों को हानि भी। उसके घर पर भी लोग जाने के इच्छुक रहते पर कोई भी उसके घर का पता नहीं जानता था। वह शहर के बाहर किसी गांव में रहता था। उसके कर्मचारी भी ऐसे ही कहीं रहते थे। उसकी ख्याति नई सरकार के पास भी पहुंची तो बड़े साहब ने भी उसको अपना संदेशवाहक भेज कर अगले शुक्रवार को अपने निवास पर बुला भेजा। पर यह निमंत्रण पाकर भी परामर्शी को कोई प्रसन्नता नहीं हुई। उसका चेहरा वैसे ही निर्लिप्त, वैसा ही उदास दिखाई दे रहा था। अपनी आदत के अनुसार उसने आकाश की ओर निहारा, फिर गहरा सांस लेकर कहा-"विधाता के रंग न्यारे।"

000

परसा नदी के किनारे उस सुनसान परशुराम मन्दिर में जब बिशन परामर्शी अर्थात् महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद पहुँचे, तो महाराज सूर्यप्रताप सिंह पहले से ही एक बैंच पर बैठे रात के अंधकार में नदी के शोर को सुन रहे थे।

"महामन्त्री, आ गये?" - सूर्यप्रताप ने बिना देखे पूछा

"हाँ महाराज", -

"महामन्त्री, सुना है नई सरकार के मुखिया ने अपने निवास पर बुलाया है? तुम्हारी ख्याति इस नदी की बाढ़ की तरह फैल रही है।"

"हाँ महाराज, मेरी ख्याति भी इस नदी की बाढ़ की तरह है। यह ख्याति मुझे बड़ा कष्ट दे रही है। सुनते हैं बाढ़ ने बारह गाँवों

में तबाही मचा रखी है, सरकार क्या कर रही है?"

"महामन्त्री, मैं आजकल लोकायुक्त में हूँ। मुझे पता नहीं सरकार बाढ़ के बारे में क्या कर रही है। केवल समाचार पत्रों में जो छपा होता है, उतना ही पता होता है।"

"पर महाराज, चर्चा है कि आपने आधी अफसरशाही पर जांच शुरू करा दी है?"

"जिसने बोया है, सो तो काटेगा ही।"

"पर महाराज, आप पर तो जानलेवा आक्रमण की तैयारी हो रही है। आज रात आप अपने निवास पर न जाईये, मेरे यहाँ चलिये।"

सूर्यप्रताप एक लम्बा साँस लेकर बोले - "नहीं महामन्त्री, मेरा आज सरकारी सेवा का अंतिम दिन था। मैं अपना त्यागपत्र लिखकर दे आया हूँ। आज मैं तुमसे भी विदा ले रहा हूँ। महामन्त्री, कुछ बातें करो, आज इन अंतिम क्षणों में तुमसे बातें करने को बहुत मन कर रहा है।"

महामन्त्री - "मुझे पता है महाराज। एक व्यक्ति कई महिनों से आपको सुबह नौ बजे मिलता है और एक फूल भेंट करता है।"

सूर्यप्रताप- " हाँ, उसका क्या? हमारी कालोनी के बाग का माली है शायद। मैं उसका दिया हुआ फूल रख लेता हूं। कभी बात नहीं की।"

महामन्त्री- " महाराज, वह आपका पूर्वजन्म का भाई है, बेचारा इस जन्म में अपने पूर्वजन्म के किए हुए षड्यन्त्रों का प्रायश्चित कर रहा है। पर उसे यह पता नहीं है।"

सूर्यप्रताप- "काश, आपने यह पहले बताया होता महामन्त्री, तो मैं उससे बात कर लेता। आज तो मैं यहीं से विदा हो जाऊँगा।"

महामन्त्री- "आप अकेले ही एक झोला लेकर फल-सब्जी लेने बाजार जाते है महाराज, न आपके साथ कोई नौकर होते है न गाड़ी। आपको आपके सहयोगी 'गरीब रथ' कहते है।"

-" अच्छा, गरीब रथ?(हंसकर) तो कहने दो। मुझे ऐसे ही अच्छा लगता है।"

-" और आप एक ही दुकान से फल-सब्जी लेते हैं।"

-" हाँ त्रिवेणी प्रसाद, उस फल बेजने वाली का चेहरा मुझे न जाने क्यों जाना पहचाना सा लगता है। उसका एक लड़का है, यही होगा दस-बारह साल का। उस लड़के को देखना त्रिवेणी कितनी बड़ी-बड़ी आंखे हैं उसकी, जैसे किसी बड़े घर का हो। पर बेचारे फल-सब्जी बेच कर पेट पालते हैं।"

-" पता है वह औरत पूर्व जन्म में कौन थी? महाराज वह आपकी पत्नी थी।"

सूर्यप्रताप सिंह यह सुनकर चुप हो गए। उनके चेहरे पर क्या भाव उमड़ रहे थे, कोई पता नही लग सका। बोले-"बस महामन्त्री, अब और नहीं सुन सकूंगा। कहीं मुझे अपना निर्णय बदलना न पड़े।"

महामन्त्री-" नहीं बदल सकोगे महाराज। अब में अपने बारे में भी कुछ सुनाता हूं। आज्ञा हो तो सुनाऊँ?"

-"सुना दीजिए महामन्त्री, आज जाती बार आप अपने बारे में भी सुना दो।"

-"एक दिन मेरे सैलून में स्वर्णकांता एक लड़के की कटिंग कराने आई थी।"

-" कौन स्वर्णकांता, तुम्हारी पूर्वजन्म की पत्नी?"

-" हाँ महाराज।"

-"फिर?"

- "वह किसी आलोक श्रीवास्तव की पत्नी है। उनके बेटे की कटिंग का समय आज निश्चित था।"

- "आलोक श्रीवास्तव एक सज्जन व्यक्ति हैं। आपकी पूर्व जन्म की पत्नी को अच्छा पति मिला है।"

- "सुनिये महाराज, जैसे ही वह अपने बेटे को लेकर मेरे केबिन में प्रविष्ट हुई, उसकी नजरें संयोग से मेरी नजरों से मिल गई। मेरी स्मृति जाग उठी। मैंने कहा स्वर्णकांता, तुम यहाँ?" वह बेहोश हो रही थी, गिर गयी होती, अगर मैंने न सम्भाला होता। पानी मंगाकर उसके मुँह पर छिड़का। उसका बेटा भी घबरा गया। जब होश आया, तो उसने मेरे पैर छूने का प्रयास किया। उसकी आँखों से आँसू अविरल बह रहे थे। मैंने उसे अपने पैर छूने से रोका, मैंने जोर से कहा - मैडम, आप नाई की दुकान में आई हैं। आप बाहर बैठिये। मैंने उसके बेटे की कटिंग की और उसे बाहर भेज दिया। मैंने उससे पैसे नहीं लिए। वह धीरे-धीरे मेरे सैलून से बाहर निकली और सड़क पर खड़ी होकर बड़ी देर तक मेरी दुकान के साईन बोर्ड को देखती रही। विधाता के रंग न्यारे।"

सूर्यप्रताप - "महामन्त्री, तुम तो अभी यहीं हो। अपनी पत्नी से मिल क्यों नहीं लेते? मेरा तो विदा होने का समय आ गया है। इच्छा हो रही है, अगले जन्म में भी तुमसे मिलूँ।"

त्रिवेणी - "महाराज, जहां आप आज रात जा रहे हैं, वहां नहीं पहुँच पाओगे।"

- "महामन्त्री, वहां नहीं पहुँचा तो यह परसा नदी तो है। यह भी गंगा में ही मिलती है।"

- यह सब विधाता की माया है, मेरा कार्य भी अब पूरा होने वाला है। कल शायद मैं जेल में हूँगा।

- "महामन्त्री अब विदा" - यह कह सूर्यप्रताप उठा और अंधेरे में विलीन हो गया।

महामन्त्री त्रिवेणी प्रसाद अर्थात् बिशन परामर्शी बड़ी देर तक अंधेरे आकाश की ओर देखता रहा। उस स्थिति में उस रात वह नदी के किनारे कब तक बैठा रहा, कोई पता नहीं।

42/5, हरिपुर, सुन्दरनगर
जिला मण्डी, हिमाचल प्रदेश- 175018, मो.94181-00983

कहानी

फूलां

● डॉ. रजनीकान्त

सत्य कहूँ उसने मुझे कुहनी से पकड़ लिया था। आपने मेरा रांझू तो नहीं देखा? परदेसी बाबू , आपने जरूर देखा होगा उसे? किसी अजनबी का स्पर्श मुझे कंपा गया था। मैं क्या कोई भी घबरा जाता। मैंने ऊपर नजर उठाकर देखा। एक युवती गंदमी रंग, अस्त व्यस्त बाल लिये जमाने से बेपरवाह दौड़ रही है। युवती किसी अच्छे खाते-पीते घर की लग रही है। मैंने अंदाजा लगाया। दस पंद्रह बच्चे, छोटे-बड़े, सभी उसके पीछे भाग रहे हैं। वे मुझे देखकर रुक जाते हैं। वह युवती शायद नंगे पाँव है। उसके बांये पैर के अंगूठे पर रक्त की एक हल्की -सी धार देखता हूँ। मैं यात्रा की थकान भूल चुका हूँ। जैसे कोई स्वप्नलोक में विचरण कर रहा हूं। मेरी स्थिति कुछ ऐसी ही थी।

बाबू जी बुरा मत मानना! पगली है बेचारी। वक्त की मारी है। एक सयाने वृद्ध ने मेरी बांह छुड़ाते कहा। मैं कभी उस वृद्ध को , कभी उस नवयुवती को देख रहा हूँ । मेरी कुछ समझ नहीं आ रहा। यह क्या पहेली है?

पगली होगी तेरी माँ तेरी भैण। तेरा सारा वंश। जरा मुंह संभाल कर बात किया कर। बोलना न आये तो जुबान बंद रखा करो। पता नहीं कहाँ -कहाँ से आ जाते हैं! अब बारी उस युवती की थी।

बुरा मत मानना बेटा। मेरा आपको बताना फर्ज़ था। यह मेरे गाँव के सम्मान का प्रश्न है। वृद्ध महाशय अपनी राह हो लेते हैं।

ओ मेरा रांझू आई गिया। ओ दिक्खा। मोयो, कोई बबरू बनाओ। कोई मट्ठियाँ तलो। खूहे ते कोई ताजा पानी लाओ। कोई पूजा की थाली सजाओ। फूलों का हार बनाओ कोई। ओ आया मेरा रांझू। वह युवती कहती एक ओर भाग गई।

सामने मेरी भाभी का मायका है। समीप ही गाँव का कुआं है। कवाली से उतरते ही मेरी दृष्टि भाभी पर पड़ जाती है। भाभी घड़ा लेकर इधर कुएं की ओर ही आ रही थी। माँ का निर्देश है कि भाभी को लेकर ही आना हमारे रिश्तेदारी में एक शादी में सभी को शामिल होना था। भाभी समीप आ गई थी।

भाभी जी। प्रणाम। भाभी भी चौंक जाती है।

भैया सरप्राइज़ विजिट। मान गये अपने देवर को। वही चिर-परिचित अंदाज़।

आपने तो हैरान कर दिया। और मुझे बहुत अच्छा लगा। भाभी का स्वर है

भाभी। कमाल है आपके भी। आप बड़े भुलक्कड़ हो। आपने ही तो कहा था कि आप मेरे लिए अपने गाँव से चाँद का टुकड़ा लाओगे। भूल गये क्या? मैं आज उसे पसंद करने ही आया हूँ। मैं हंसते हुए कहता हूँ। भाभी मुस्करा भर देती है।

तुम एक बार हाँ तो करो देवर जी। मैं कुड़ियों की लंबी लाइन लगा दूं। भाभी कुएं की मुंडेर पर चढ़ गई थी। भाभी की फुर्ती दर्शनीय है। सभी औरतों के घड़े भाभी ने भर दिए हैं। मैंने घड़े को एक ओर से हाथ लगाया और घड़ा भाभी के सर पर पहुंच जाता है। अब सुंदर ढंग से रंग-बिरंगे पत्थरों से सुसज्जित कवाली की चढ़ाई शुरू हो गई है। भाभी सभी की कुशल क्षेम पूछ रही हैं !

अमलताश और कचनार के वृक्ष कवाली के दोनों ओर आच्छादित हैं । अब गोहरनें शुरू हो गई हैं। पशु बाहर बंधे हुए हैं। रंभा रहे हैं। हमें देखते हैं। इसके उपरांत कच्चे मकानों की श्रृंखला शुरू हो गई है ! कहीं-कहीं बीच में खपरैल अथवा सरफड़ के छाये घर भी हैं। मैं भाभी के पीछे यंत्रवत चल रहा हूँ। दूर कहीं स्वर गूँज रहा है अथवा मेरे कान बज रहे हैं

ओ आया मेरा रांझू ,ओ देखो। बच्चों का समवेत स्वर गूँज रहा है।

अब पक्के लेंटर वाले मकान दीखने लगे हैं। एक बड़ी सी हवेली दृष्टिगोचर होती है। लाल रंग से पुती सुंदर विशालकाय हवेली। भाभी का मायका आ गया है। मैं उनके माता - पिता को प्रणाम करके कुर्सी पर बैठ जाता हूँ। भाभी की फुर्ती देखने योग्य है। झट घड़ा किचन में छोड़ कर बाहर आकर मेरे पास कुर्सी पर विराजमान हो जाती हैं। भाभी का हंसता -खेलता माथा। प्रसन्न वदना भाभी। सामने वाले की थकान वैसे ही दूर हो जाये। थोड़ी देर मेरे पास बैठकर किचन में घुस जाती हैं। चाय का गिलास मुझे पकड़ा जाती हैं भाभी। मेज पर एक प्लेट में बिस्किट ,नमकीन रख दी गई है। मेरे मन में उस युवती को लेकर अभी तक अंतर-द्वंद्व



छिड़ा है। मन की जिज्ञासा जब तक शांत न होगी, यह मन ऐसे ही उठा पटक करता रहेगा। मन तो वैसे ही जिज्ञासु होने का नाटक ही तो करता रहता है सारा दिन। एक बात है या खूबी लीजिये। हमारी भाभी किसी का मन पढ़ने में सिद्धस्त है। मेरी उत्सुकता को भांपकर, समीप की कुर्सी पर आकर बैठ जाती है।

भैया कैसा लगा मेरा मायका? मेरे मायके के लोग।

जब आप अच्छे हैं तो वे तो बहुत ही अच्छे हैं। दिल के साफ। भोले भाले। बहुत ही भले।

और कोई अलंकार रह गया हो तो वह भी प्रयोग कर लो भैया। भाभी मुस्कराकर कहती हैं।

अपनी भाभी के लिए सैकड़ों उपमा, उपमेय एवं प्रतिमान कुर्बान न कर दूं ? पर

यह पर कहाँ से आ गया ? भाभी मेरे मन की उठापटक को पहचान गई हैं शायद।

भाभी जी मेरी एक समस्या का समाधान करो! यह फूलां रांझू का क्या चक्कर है ? मैं बड़ी कशमकश में हूँ। मैं प्रश्न दागता कहता हूँ

तो इसका मतलब आपको फूलां रास्ते में मिल गई है। बड़ों बड़ों को उससे वास्ता पड़ा है। तुम्हें भी फूलां ने जरूर पकड़ा होगा। मैं सच कह रही हूँ न।

हाँ भाभी जी, सौ प्रतिशत ठीक। पर मेरे मन में कई प्रश्न है। आप ही उनका समाधान कर सकती हैं! मुझे पूरी कहानी बताओ भाभी। मेरा जिज्ञासु कथाकार मन कूद-फांद रहा है।

मेरे लेखक देवर मुझे पता था कि तुम्हारा जिज्ञासु मन अवश्य उद्वेलित हो रहा होगा। हर कोई यही प्रश्न ढूंढने का प्रयास करता है। आपकी जिज्ञासा का अवश्य समाधान किया जायेगा। यह हमारे गाँव की अल्हड़ युवती फूलवती है। सुंदर मुटयार। इसका बापू अमृतसर में किसी बड़ी फर्म में कर्मचारी है। रांझू साथ लगते गाँव का युवक है! उसने बी.ए. पास ढूलयारा से ताज़ी-ताज़ी की थी। वह भी नौकरी की तलाश में था। घर के हालात भी इतने अच्छे न थे। गांव में बेचारा क्या करता? किसी से फूलां के पिता का पता पूछकर वह भी अमृतसर चला गया। पूछता-पुछाता वह फूलां के पिता के पास उसकी फर्म में जा पहुंचा। चलो किसी फर्म में कोई छोटी मोटी नौकरी तो मिल ही जायेगी। आशा पर ही जीवन टिका है। फूलां के पिता ने रांझू का स्वागत किया। क्योंकि मामला पास-पड़ोस के गांव का था। सो खूब आवभगत हुई!

उसका पिता रांझू को अपने घर ले आया। जब तक कोई प्रबंध न हो जाये , उसे अपने पास घर में ही जगह दे दी। आश्वासन भी दिया कि मैं भी अपनी फर्म के मैनेजर से बात करूंगा। अब रांझू नौकरी की तलाश में जुट गया। शाम को आ जाता। खाना वहीं खा लेता। फूलां तब जमा दो में पड़ रही थी। दोनों के बीच कोई पांच वर्ष का अंतर रहा होगा। फूलां की माँ कई बार घर चली जाती। फूलां के पिता ने रांझू को उसे पढ़ाने के लिए भी कह रखा था। हमें समय नहीं मिलता। और हमारे जमाने की पढाई और अब की पढ़ाई में जमीन आसमान का अंतर है। रांझू भी उसे गाहे बगाहे पढ़ा देता। दोनों जन घर में अकेले। रांझू भी युवा पट्ठा। आखें कब चार हो गईं पता भी न चला। दोनों कई बार इकट्ठे मूवी देखने चले जाते, घूमने निकल जाते। फूलां उसका विशेष खयाल रखती। प्रेम का छोटा सा पौधा कब वृक्ष बन गया दोनों को पता भी न चला। भाभीश्री की कथा जारी है। चाय का गिलास खाली हो चुका था। कहानी वास्तव में सुरुचिपूर्ण थी।

फूलां का बापू सत्तो काम पर चला जाता। देर रात गये घर लौटता। माँ निपट अनपढ़। गंवई वातावरण में पली बढ़ी हुई। सर नीचा किये काम में लगी रहती। इसी बीच इन दोनों का प्रेम परवान चढ़ चुका था। प्रेम का पौधा वृक्ष बन चुका था।

मैं तो आपको अपना पति-परमेश्वर मान चुकी हूँ। रांझू फूलां को हतप्रभ देखता रहा था।

मतलब भी जानती हो इसका ?

क्यों मैं अनजान हूँ क्या? सब समझती हूँ। जानती हूँ।

अभी मेरी नौकरी नई-नई लगी है। और तुम तो जानती हो फर्म कि नौकरी लाला की नौकरी होती है। न जाने कब जवाब दे दें। मुझे खुद भी नहीं पता। यह खयाली पुलाव रहने दे फूलां। अभी तुम बच्ची हो। नासमझ हो। दीन दुनिया का तुम्हें क ख नहीं पता।

मुझे सब पता है। मैं कोई बच्ची नहीं रही। बस आप मुझे छोड़कर मत जाना। नहीं तो अच्छा नहीं होगा। आपके लिए भी और मेरे माँ बाप के लिए भी। मैं बड़ी जिद्दी हूँ। जब अड़ जाती हूँ तो अपनी बात मनवा कर ही छोड़ती हूँ। आप भी समझ लेना। रांझू उसका चेहरा देखता रहा था। उसका दृढ़ निश्चय उसके चेहरे से साफ झलक रहा था।

तेरा बाप हमें छोड़ेगा नहीं। मेरे अम्मा बापू क्या कहेंगे ? जिनका अकेलों का मैं एकमात्र सहारा हूँ। जिन्होंने कमाने के लिए परदेस में बड़ी आस से भेजा है। उनकी आशाएं और अपेक्षाएं मुझसे जुड़ी हैं । क्या समझी ? तू सुन रही है! मैं क्या कह रहा हूँ।

फूलां ओ दिख आया तेरा रांझू। फूलां गाँव के चक्कर लगाती रहती है। दिन भर। माँ बाप अपने भाग्य को कोसते हैं। जवान जहान लड़की को देखकर कलेजा मुंह को आता है। न जाने कौन से कर्मों का फल भोग रही है। लोग उसे देखकर अक्सर यही कहते हैं ठाकर। तेरे रंग न्यारे।

मुझे कुछ नहीं सुनना। मुझे कुछ नहीं पता। मुझे इतना पता है कि तुम मेरे हो बस। मुझे दुनिया से कोई काम नहीं। मेरा पहला प्रेम और आखरी भी। रांझू किंकर्तव्यविमूढ़ सोचों में पड़ गया था। वह इतने बड़े धर्म संकट में जीवन में पहली बार पड़ा था।

वह पूरी रात सोचता रहा। कहाँ आकर फंस गया ? फूलां का चेहरा उसे पूरी रात परेशान करता रहा। उसे रात भर नींद नहीं आई। इतनी निर्भय लड़की उसने पहली बार देखी थी। उसे ऐसी लड़की से पहली बार वास्ता पड़ा था। ऐसी स्थिति जीवन में कभी नहीं आई थी। वह डूबता उतरता रहा , सोचों के भंवर में।

मेरे रांझणा। मैं आपके लिए पूरे समाज से भिड़ जाऊंगी । मुझे अपने जीवन से प्रेम नहीं। यह जीवन तो मैंने आपको दे दिया है। देखो यह दिल कांच से नाजुक होता है। एक बात रखना। मेरा दिल कभी मत तोड़ना। मैं कोई हंसी मजाक नहीं कर रही। याद रखना मेरी शादी होगी तो आपसे, अन्यथा मैं जीवन भर क्वांरी रहूंगी। और आपने यदि शादी कर ली तो मेरे घर से मेरी लाश ही निकलेगी ! यह मेरी दृढ़ शपथ है। एक जिद्दी लड़की की शपथ। कोई लल्लू-पंजू लक्की की नहीं जो थूक कर चाट ले। सुना आपने? यह पत्थर पर लकीर समझना। समझ गये न आप। या मैं खून से लिख दूं ? मैं यह भी कर सकती हूँ। यह कोई कच्चे दिल वाली लड़की नहीं बोल रही। यह एक सच्ची सुच्ची लड़की की प्रीत बोल रही है। रांझू सचमुच भयभीत हो गया था।

कहाँ उपन्यासों में यह सब बकवास पढ़ती रहती है तू। इस ख्याली दुनिया से बाहर निकल। अपनी पढ़ाई में ध्यान लगा। चार अखर पढ़ ले। यही तेरे काम आएंगे।

क्या पढ़ना और क्या पढ़ाना? जब किताब खोलती हूँ आपका चेहरा उसमें मुस्कराता है। क्या करूँ? क्या खाक पढूं? बहुत हो चुकी पढ़ाई ?

फूलां तू कैसी बातें करती फिरती है। कैसी कैसी अनोखी बातें करती है। मत किया कर। अगर ऐसी ही बातें करनी हैं तो मुझसे मत बोला कर। रांझू उसे झिड़की दे देता। योगी-मुनि तो था नहीं रांझू। फिर एक दिन वही हो गया जिसका डर था! दोनों जवानी के नशे में बहक गये।

किसी मुहल्ले कि वृद्ध औरत ने फूलां की माँ जो गांव से अभी-अभी आई थी, को बुलाकर समझाया ओ फूलां की माँ! तुझे कुछ पता भी है। मूर्ख जनानी। तेरी लड़की जवानी की दहलीज पर कदम रख रही है। और घर में एक जवान लड़का है। तुझे कुछ दीन दुनिया की खबर भी है। क्या खुसर पुसर करते फिरते हैं। तुझे इसका भान भी है ? अपनी लड़की को संभाल। नहीं तो वह गई तेरे हाथ से मुई । तब जाकर भोली-भाली माँ के कानों में जूं रेंगी। रांझू को सत्तो ने जवाब दे दिया। वह बेचारा तो घर से बेघर हो गया। खींच खांच कर फूलां ने दस जमा दो की परीक्षा पास कर ली थी। सत्तो अब उसकी जल्दी से जल्दी शादी कर देना चाहता था। बात चला दी। फूलां को इसके बारे भनक न लगने दी गई। चुपके से फूलां को गाँव ले जाया गया। चट मंगनी पट शादी कर दी गई। बेचारी खूब रोई , चिल्लाई। खुद को जलाने की कोशिश भी की। कोठे पर से दो बार छलांग लगाने का प्रयत्न भी किया। पर असफल रही। बाईं टांग भी तुड़वा बैठी । उसे हस्पताल में दाखिल करवा दिया गया। वह चारों पहर बुदबुदाती रहती।

अब फूलां पगला गई थी। ओ आया मेरा रांझू की टेर पकड़ ली थी उसने। टांग ठीक हुई तो उसे मेंटल अस्पताल में दाखिल करवाया गया। पांच सात बिजली के झटके भी लगवाये गये। पर कोई प्रभाव न पड़ा। हालत बद से बदतर होती चली गई। फूलां एकदम पागल हो गई थी। उसकी हालत क्षत-विक्षत की थी। रांझू ने अमृतसर शहर छोड़ दिया था। अब वह किसी नये शहर में नयी फर्म में लग गया था ! उसकी तनख्वाह भी अच्छी थी। इधर फूलां पागलों की तरह दौड़ती है। बच्चे उसके पीछे भागते हैं। बच्चे उसका दिन भर मजाक उड़ाते हैं

फूलां ओ दिख आया तेरा रांझू। फूलां गाँव के चक्कर लगाती रहती है। दिन भर। माँ बाप अपने भाग्य को कोसते हैं। जवान जहान लड़की को देखकर कलेजा मुंह को आता हैं। न जाने कौन से कर्मों का फल भोग रही है। लोग उसे देखकर अक्सर यही कहते हैं ठाकर। तेरे रंग न्यारे। भाभी की कहानी समाप्त हो चुकी है। भाभी की आँखें गीली हैं। मैं भावुक हो उठता हूँ। दूसरे दिन भाभी मेरे साथ बस में बैठ चुकी है। मुझे यूँ लगता है कि कोई मेरी कुहनी पकड़ रहा है। कोई मुझसे कह रहा है। रुंधे गले से।

परदेसी बाबू। आपने कहीं मेरा रांझू देखा है क्या? अगर कहीं बेवफा मिले तो कहना तुम्हारी फूलां तुम्हें बहुत याद करती है। तुम्हारे बिना बहुत उदास है। कभी तो उसको फुरसत में आकर देख जाओ। परिचालक सीटी बजा देता है। बस हल्के हिचकोले से चल पडती है। सामने कहीं शोर उभरा है। कहाँ है मेरा रांझू ?अरे कोई बताओ? कहाँ है? वह है तेरा रांझू ! कोई जोर से कह रहा है। फूलां उसी ओर भाग चलती है। भाभी मेरे काँधे पर हाथ धर देती हैं। मैं सामान्य होने का भरसक प्रयत्न करता हूँ।

राजविला, लोअर कैथू, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 003
मो. 0 94183 44159

नूर संतोखपुरी की कविताएं

कितने दर्द?

मैंने कुछ अनुमान लगाए थे
कुछ विश्वास भी पाले थे
मगर वे सही साबित न हुए
एक-एक सब मुए, सब मुए।
लोग पूछते हैं कि क्या हुआ?
क्यों तू जवानी में ही बूढ़ा हो गया?
न जाने क्यों पता नहीं चलता
कि इस दिल में इतने दर्द क्यों हैं?
क्यों सारे अनुमान गलत हो जाते हैं?
क्यों सारे विश्वास भी टूट जाते हैं?
सोचता हूं कि यह ज़िंदगी क्या है?
एक पिंजर में क़ैद कुछ ख्वाहिशों का नाम
शायद एक ज़िदंगी है
चंद सपनों के लिए
कुर्बान हो जाने का नाम ज़िंदगी है
सारी उम्र सुकून तलाशते रहने का नाम
शायद एक ज़िंदगी है।
क्यों वक्त कभी फुर्सत नहीं देता
अपने बारे में कुछ सोचने की?
आसपास रिश्तों की खूब भीड़ है
मगर कोई कोशिश नहीं करता
चंद कदम साथ चलने की।
न जाने क्यों पता नहीं चलता
कि इस दिल में इतने दर्द क्यों हैं
और आंखों में इतने आंसू क्यों हैं??





अपनी मातमपुर्सी

हर रास्ते पर हुआ हादसों से सामना
हर मोड़ पर हुई पीड़ा से मुलाकात
दूर-दूर तक सहारे नज़र न आए
अपनी दास्तां किसी को क्या सुनाएं?
किन-किन हालात से हम गुज़र गए
बर्बादियों की धूल आंखों के सामने उड़ती है
सभी यादें कांटों की तरह सीने में चुभती हैं
गमों का बोझ पहाड़ हो रहा है
उनके बोझ से कलेजा तार-तार हो रहा है
जीने के लिए समतल ज़मीन हासिल नहीं हुई
ज़िंदगी ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चलती रही
दुःखों के गहरे गड्ढों में लुढ़कती रही
हमने रिश्तों को कबूल किया
बंधनों में बंधना मंजूर किया
दिल को लहूलुहान करना मंजूर किया
दिन के उजाले में सपने देखते रहे
और रातों की नींद कुर्बान करना कबूल किया
पता ही नहीं चला कि वजूद अपना
समझौतों की ज़मीन तले कब दफ़न हो गया
और मन के आंगन में मातम कब छा गया
पता ही नहीं चला...?

बी.एक्स. 925, मोहल्ला संतोखपुरा, विनय नगर कॉलोनी, जालंधर-4, पंजाब

हाइकू

● इन्द्रा रानी

1.
लौ चुराता है
दीये से कोई सगा
बुझता गया।

2.
कंटीला प्यार
चुनरी तार तार
लाज रखना।

3.
बैरी यौवन
ईंधन सा जलता
सावन आया।

4.
बातों में रस
तुमसे था घुलता
उदास छोड़ा

5.
खामोश तन
सुबका चुपचाप
खो गया जिया

6.
धूप में बैठूं
चटकती हैं यादें
जाड़ों के दिन

7.
अंधी गलियां
होती गई खयालों की
दीप थे तुम

8.
सखी पूछो न
अभी दिल का हाल
खत आया है

9.
कोयल मोर
कर रहे हैं शोर
सावन आया

10.
बिन पायल
बजते हैं घुंघरू
मन हरषा

11.
उनकी हंसी
बहुत ही निराली
खींचे आंचल

12.
चांद सूरत
चांदनी सी सीरत
चाहने लगे

13.
भटका राही
प्रेम का मरुस्थल
न सता उसे

14.
पराए होके
अपनों से भी प्यारे
कसम ले लो

15.
कड़ा पहरा
कोई दिल ले गया
ठग था बड़ा

16.
बेटी दीये सी
सौगात दामाद की
स्वयं सौंप दे

17.
रिश्ते हमारे
उनके लिए नोट
सहेजा भर

18.
छाता समझा
आते ही बरसात
हमें पकड़ा

19.
दर से कोई
गया जख्म लेकर
पत्थरबाजी

20.
जख्मी औरत
आबरू की दुहाई
मीडिया खुश

524, मयूर विहार-1, पॉकेट-5, दिल्ली-110 091

प्रोमिला भारद्वाज की कविताएं

भेदभाव

कितना जल दिया
बादलों को
प्रकाश सूर्य को।
कितनी सुगन्ध दी
पुष्पों को
चांदनी अथाह चांद को।
कितनी गति बहने की
दी पवन को
शक्ति नदियों को।
सदियां गई बीत
न हुए समाप्त
इनके अनन्त स्रोत।
सब कुछ दिया हमें
दीं सांसें क्यूं कम
हम प्राणियों से ही
भेदभाव क्यूं?
क्या कमी है सांसों की
या अधिक हमारी लालसा
दिए सबको बेअन्त भण्डार
समुद्र में जल जैसे
क्यूं थम गए हाथ
सांसें देते, हमारी बार
गिन-गिन के दीं सांसें
हैं अमूल्य उपहार,
मानें तुम्हारा उपकार
करवाओ ऐसे कार्य
एक भी न जाए बेकार।
बहुत प्रिय हैं
तुम्हें
बादल, सूर्य, पुष्प
चांद, पवन, नदी
चलो, उनसे सीख लें
ये सब केवल
देते ही रहते
प्रसन्नता से
हम सब लेते ही रहते
रहते अतृप्त
देख-देख इन्हें
सीखें परोपकार
बनाना उदार
उनकी तरह
देखें, उन जैसे बनके
जो-जो करते हैं वो करके
और सांसें, मिलें न मिलें
हैं जो, हों हितकर
खुश हों, ये सोचकर
रहें मिलजुल कर
भेदभाव भूलकर।

ओ! ओजस्वी प्रकाश पुंज

हो तुम कहां
कहां छुपाया है
अनन्त ऊर्जा का
विशाल स्रोत
और उसका
कभी न
समाप्त होने वाला
स्रोत
होने से जिसके
सूर्योदय की वेला
सूरज निकले, न निकले
तब भी
छुप बैठे, रुष्ट हो
बादलों की ओट में
नटखट भास्कर
या ले लो
किसी दिन अवकाश
हठी बच्चे की तरह
तब भी
कम या अधिक
वोल्टेज जितना प्रकाश
व्याप्त हो दिग्मंडल में
दिनभर
दिखे न दिखे
दिनकर
आंखें खोलें
चाहे मूंदें
मुर्गा बां दे, न दे
रुके न तुम्हारी घड़ी
न ही थमे
प्रभा मंडल का विस्तार
कहां है वो
अलौकिक पावर हाउस?
जोड़ दो उससे
सकल लौकिक पावर हाउस
और तार
हमारे हृदय के
मिटाने को तमस
मन का,
जगत का,
जगमगाओ निरन्तर
बताओ न बताओ,
अपना पता
पर जगमगाओ
ओ! ओजस्वी प्रकाश पुंज
सदैव प्रकाशित करो
संसार और
हृदय कुंज।

सब हैं खरे

न तुम बुरे, न हम बुरे
हम सब हैं खरे।
अच्छे कौन बुरे
जो-जो कहा मानें
निज इच्छानुसार चलें
जो करें वो-वो
जो-जो हम कहें
हैं भले, शेष सब बुरे
बुरा न मानो।
बोल हैं ये खरे
न ये बुरे न वो खरे
स्वार्थ से रहें गर (बस) परे।
निज स्वार्थ बना मापदण्ड
अच्छाई व बुराई का
उचित-अनुचित
अनुकूल प्रतिकूल का
निर्धारक सुख-दुःख का
सर्वहित की हो तुला।
हो तब, सबका भला
आकलन हों खरे
न ये बुरे न वो बुरे
संकीर्ण दृष्टिकोण हैं बुरे।
सर्वश्रेष्ठ तुम न हम
आचरण करें तय करें कर्म
स्वार्थ का आवरण हटे
समझे सत्य मर्म
बुरा है हमारा अहम्
हममें न कोई बुराई
बुरा है ये वहम
अगर ये दूर हो
तो, न तुम बुरे न हम बुरे।
नहीं कोई सर्वगुण संपन्न
स्वीकारें ये तथ्य हम
गुण अवगुण का है मिश्रण
करें सदैव ये प्रयत्न
अवगुण हों न्यूनतम
गुण बढ़ें दिन प्रतिदिन
बढ़ती जाए प्रवृत्ति
गुण अवगुण सहित
सबको स्वीकारने की
सच को न नकारने की
अच्छे लगें स्वतः सब खरे।

प्रबंधक, जिला उद्योग केंद्र, जिला मण्डी,
हिमाचल प्रदेश-175 001,
मो. 94180 04032

समीक्षा

मानवीय संदर्भों की समुज्ज्वल कविताओं का गुलस्ता 'बस यूं ही'

● श्रीनिवास श्रीकान्त

कविता शब्द संयोजन की एक श्रेण्य कला है। ऐसे शब्द जो चिंतनशील कवि के भाव एवं विचार संसार को रसमय और अर्थपरक ढंग से प्रस्तुत कर सके। आधुनिक समय में यद्यपि 'रसात्मकम् काव्यम्' अब नहीं रहा फिर भी वह रुचिमय ढंग से ही अपनी बात कह रहा है। उसका फलक भी आदिकाल, मध्य काल और रीतिकाल से ज्यादा विस्तृत हो गया है। आज के काव्य में सब तरह के अनुभव और अनुभूतियां समाहित हैं जिसे समकालीन पाठक की आत्मरंजक मनोवृत्ति स्वीकार करती है।

कविता में आशु प्रतिभा का समावेश हो तो वह तत्काल ही लक्षित गुणग्राहक को आकर्षित कर लेती है। वह उसमें अपने समान सोच, अनुभव एवं भावनाओं का अवलोकन करती है। कविता लेखन में कवि अपने अंतरंग अनुभवों को पूरी आत्मिक स्वतंत्रता के साथ शब्दों और उपमानों के जरिए श्रोता/पाठक तक सहजता के साथ पहुंच सकता है। वह अपनी मानसिक भाववाची क्षमता को पंक्तियों में पिरोकर कविता की माला तैयार करता है। उसमें पिरोए होते हैं उसके सुखदुख, उसकी मानवीय सोच के माणिक्य, उसके उद्वेग, उसकी विडम्बनाएं सभी।

'बस यूं ही' कविता संकलन की कविताओं को पढ़कर मुझे कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ। यह विदूषी डॉ. कल्पना सेन राणा की एक सौ एक सुंदर कविताओं का एक सुवासित और बहुरंगी गुलदस्ता है। महिला कवि का शिल्प, उसकी कथन शैली, पद विन्यास तथा उपमान और उपमेय स्वयं अपना है। हर कविता में उन्होंने अपनी और मनुष्य एवं मनुष्य के बीच के व्यवहार, उससे जुड़े प्रश्नों और प्रवंचनाओं का संदर्भ देते हुए बात की है। कवि को अकसर आसपास के लोग एक मस्त और अपनी दुनिया में खोया हुआ आदमी तसव्वुर करते हैं। मगर वह ऐसा नहीं है वह वास्तविकता अथवा यथार्थ को भौतिक दृष्टि से नहीं बारीक अधिभौतिक और एक तत्त्व चिन्तक की दृष्टि से देखता है। उसकी बात में अद्भुतता और विचित्र लाक्षणिकता होती है जिसे वह रचना के रूप में निर्मित करता चलता है। संवेदनशील पर्यवेक्षक को चाहिए कि वह उसके कृति संसार का बारीकी से अध्ययन और मनन करे और बे-सिर पैर का मूल्य-न्याय (वैल्यू जजमैंट) न दे।

जहां तक श्रीमती सेन-राणा की बात है उनका अंतरंग कवि कभी दुनिया की सचाई का परिंदे की नज़र से अध्ययन करता है तो कभी ज़िंदगी से जुड़े मुद्दों पर वह प्रश्नाकुल भी नज़र आता है और ऐसी मनस्थिति में उसकी जिरह सीधी और सरल होते हुए भी सचाई का एक नया आयाम हमारे सामने खोलती हुई दिखाई देती है।

एक मरीचिका है जो उम्रभर आदमी की जीवन यात्रा के साथ-साथ चली रहती है। इस मृगजल का कहीं कोई अंत नहीं। कल्पना के रचनाकार ने इसे मंज़िल और राह के मायावी कल्पनालोक (फेण्टेज़्मेगोरिया) के एकांग रूपक द्वारा प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित किया है। यथा

दिल का क्या कसूर/उसने तो तसव्वुर कर लिया
कि मंज़िल आ गई है/ उसके सफ़र की
उसे सच्चाई तो तब मालूम हुई जब
मंज़िल ही निकली राह।

कवि यहां मानसिकता के सघन अंधेरे में अपनी नियति से जूझता नज़र आता है। क्योंकि कुछ भी पूर्वतः सुनिश्चित नहीं है और न कभी होगा ही। यथा

अभी तो न मालूम कि सफर
किन किन दौरों से गुज़रेगा
कितने कारवां बनेंगे/ कितने
चलेंगे साथ। (मंज़िल है दूर)

कवि स्वयं को लगातार सफर में पाता है। एक असमापनीय यात्रा है जीवन और 'मरना भी जब मंज़िल नहीं, तो क्या है जीवन का चरम लक्ष्य। कवि के अनुसार

कब होगा खत्म (यह) सफ़र
मरना भी तो न हुई मंज़िल
(और)
जीना भी तो न हुई कोई मंज़िल
फिर हम क्या कर रहे हैं?
क्यों चल रहे हैं? (नहीं मालूम)

इस कविता में कृतिकार अपने अहम प्रश्नाकुल वक्तव्य को पिनपिनाहट के साथ नहीं किंकर्तव्यविमूढ़ धमाके के साथ उसका अंत करता है। ऐसे सभी प्रश्न जो संकलन की अनेक कविताओं में रेखांकित किए गए हैं, अपना एक तात्त्विक (मैटाफिज़िकल) अर्थ स्वयं ही ग्रहण कर लेते हैं।

चर्चित कवि अपनी कविता में टुकड़ा-टुकड़ा कविता की रचना करते पद विन्यास के ज़रिए आबोहवा और मौसम के भयावह शब्दचित्र बनाने में भी अपनी कार्यक्षम (कॉम्पीटेंट) काव्य मेधा का परिचय देता दिखाई देता है। जैसे कि कविता 'तरंगें दीवानी सी' में। उसकी एक बानगी देना उपयोगी होगा

आंधी, तूफ़ान, बरखा, बादल, काली घटाएं
धुंध, ठण्डी सर्द हवाएं, हिलते-झूमते-गिरते से पेड़
शोर मचाते हुए पंछी-पखेरू
खड़खड़ाते हुए खिड़की दरवाज़े
बरखा सहती हुई छतें
छातों में छुपती-बचती हुई, हिलती हुई आकृतियां
सब एक अजीब-सी सनसनाहट पैदा करते हुए
एक प्यारी-सी धुन में रंगी हुई
प्रेम कहानी की तरह/ दिल में समा-से जाते हैं।

यद्यपि उपर्युक्त कविता में विवरण-पदांशों के ज़रिए संयोजन अति कठिन है फिर भी रचयिता ने यहा पूरा ध्यान दिया है कि वह कविता के विशिष्ट टाइम-स्पेस में, अपनी उत्पादित बिम्ब योजना को एक भव्य अर्थ-गरिमा दे सके। 'ठण्डी-सर्द' और 'पंछी-पखेरू' जैसे समानार्थ अर्थ भी यहां पुनरावृत्ति दोष से भरी ध्वनि देते महसूस नहीं होते। 'बरखा सहती हुई छतें' का बिम्ब संयोजन उसके स्त्रीकरण से गुंथा नज़र आता है। घटाटोप शब्द घड़ने की यह सलाहियत, जिसे अंग्रेज़ी में र्हेटोरिक (Rhetoric) भी कह सकते हैं, किसी तरह भी शब्दाडम्बर नज़र नहीं आता। यद्यपि रचयिता को यह भी याद रखना चाहिए कि पद विन्यास का संतुलन कहीं भी न बिगड़े। उसे ऐसी अभिव्यंजनात्मक स्थितियों में फिर भी भाषा द्वारा पद-निर्मितियों की प्रांजलता का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

गुजराती के एक लोकगीत में कुटुम्ब के नवजात वंशज को माता द्वार 'देवाधिदेव' कहा गया है जो उसे नव मास तक अपने मंदिर के गर्भगृह में स्थापित करती है। कविता 'अंश' उसी मां की दुखमय स्थिति को रेखांकित करती है। कल्पना जी के कवि ने उद्धरित कविता में कम शब्दों में भी मां की एक खूबसूरत शाब्दिक छवि का निर्माण किया है। यथा

उस मां के अंश अब विकसित हो चुके हैं
लेकिन उन अंशों ने/ अपने स्रोत को
भुला सा दिया है...
देखिए उस मां का दिल
उन अंशों को इतना याद करती है
कि वे शायद कभी-कभार ही...

कविता यहीं समाप्त नहीं हो जाती। कवि उसे मां की चरम विडम्बनात्मक स्थिति तक पहुंचा कर ही अपने कथन की सिद्धि प्राप्त करता है। यथा

मां ने सोचा था कि ये अंश
पूर्णांश बनेंगे
लेकिन ये अंश/ मात्र अपने
अपने लिए पूर्ण बनें।

'केवल-मात्र' शब्दों का सही भाषा प्रयोग नहीं है। यहां 'मात्र' से ही काम चलाया जाना चाहिए था।

'बस यूं ही' की समग्र कविताओं का पाठ हृदयंगम करने के बाद यह महसूस हुआ कि ये कविताएं पूरे समकालीन हिंदी काव्य में अपनी एक पहचान रखती हैं। कुछ कविताएं, जिनमें से कुछ एक का, प्रस्तुत समीक्षा में संदर्भ भी आया है, रचना की विषयवस्तु की दृष्टि से बेजोड़ है। इसके अतिरिक्त उक्त कवि-रचनाकार को भाषा (डिक्शन) की दृष्टि से भी और परिष्कार लाना उपयोगी होगा क्योंकि अनेक स्थलों पर शाब्दिक प्रयोग की त्रुटियां भी रह गई हैं उदाहरणार्थ कविता का शीर्षक 'दिल की अदावट' यह शब्द अदावट नहीं 'अदावत' है। कविता को विषयानुसार और साफ-सुथरे रूपाकार (फॉर्म) में लाने के लिए सुयोग्य और अनुभवी किसी और वरिष्ठ साहित्यकार से परामर्श भी लिया जाना चाहिए ताकि भाषिक संरचना में यथायोग्य दोषों का परिहार हो सके। हिंदी काव्य के क्षेत्र में भी यह परम्परा मौजूद है अतः संकोच की कोई बात नहीं।

पुस्तक का नाम :	'बस यूं ही' (कविता संग्रह)
रचयिता :	कल्पना सेन राणा
प्रकाशक :	भाषा श्रीयमूने एपार्टमेंट, अनन्तपुर, रांची
पृष्ठ :	173
मूल्य :	700 रुपये

9-ए, पूजा अपार्टमेंट्स,
संदल, चक्कर, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 005
दूरभाष : 0177 2633272

राज्य स्तरीय पुस्तक मेला

मानवीय घटनाओं व अनुभवों का आईना
नवोदित कथाकारों की कहानियां

गत दिनों शिमला में राज्य स्तरीय पुस्तक मेले के अवसर पर स्थानीय गेयटी थियेटर में सप्ताह भर रचनात्मक साहित्य की संगोष्ठियां भी आयोजित हुईं। हिमाचल अकादमी के तत्त्वावधान में तीसरे दिन तीन नवोदित कथाकारों की कहानियों का वाचन हुआ। साहित्यिक समीक्षक के रूप में मैं भी वहां उपस्थित था। उल्लेख्य संगोष्ठी में सुरेश शांडिल्य, राकेश पत्थरिया और पवन चौहान ने क्रमशः ज़काउल्ला उर्फ शंकर, देवता का सेवादार और चोर शीर्षक कहानियों के पाठ प्रस्तुत किए। ये कहानियां वास्तविक जीवन के साक्षात्कार एवं मानवीय जीवन की घटनाओं व अनुभवों पर बुनी गई प्रतीत हो रही थीं।

'चोर' कहानी में कहानीकार ने सार्वजनिक स्थल पर घटित एक घटना का दृश्यांकन किया है जिसमें तीन अनपहचाने सामान्य लोगों को चोर तसव्वुर कर लिया जाता है और परिणामस्वरूप जमा लोगों में से कुछेक हिंस्र तत्त्व भी बिना कोई सफाई मांगे पिटाई कर देते हैं। कहानी में समायोजित भीड़ तंत्र का दृश्यांकन व्यंग्यात्मक आशु प्रसंगों से भरा है। लेखक ने भीड़ वृत्ति को बहुधा स्थिर करने का भी सहज प्रयास किया है फिर भी पूरी कहानी में कथा तत्त्व की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रधान और उनमें से एक तथाकथित चोर-प्रेमी के प्रेम सम्बंधों के कुछेक आवश्यक विवरण भी कहानी में समानुकूल दिए जाते तो यह कहानी महज़ एक इकहरी घटना भर बनकर न रह जाती। कथा के गल्प और औचित्य का प्रतिपादन न होने से यह कहानी महज घटना का एक कद्रतन चित्रात्मक रिपोर्ताज अवश्य नज़र आती है। लेखक ने भीड़ की चुनिंदा भंगिमाओं और चोरों की अकारण धुलाई के अमूर्त रेखांकन के ज़रिए अलबत्ता एक यथार्थपरक प्रभाव छोड़ा है। हम अकसर ऐसी घटनाएं आम जीवन में यदा-कदा घटित होते देखते हैं जिनमें विवाद बेशक अलग-अलग ढंग के हो सकते हैं।

चोर कहानी का पूरा पाठ हृदयंगम करने पर यह भी यकीनन अनुभव हुआ कि भाषा शिल्प और मनुष्य वृत्ति के अंकन की कहानी में सहज कलात्मकता के साथ निर्मिति हुई है फिर भी रुचिकर कथा प्रसंगों के माध्यम से इस कहानी को और बेहतर और प्रभावशाली बनाया जा सकता था।

देवता का सेवादार ग्राम्य दुनिया की घटना पर आधारित आम लोक रुचि की एक प्रतिवेदक कहानी है। कहानी यह तो दर्शाती है कि किस प्रकार आज के जागृत युग में भी गांव का लोक संसार अपनी देव परम्परा और स्थानीय धर्माचारिता में अंधआस्था रखते हुए अपने पारम्परिक धर्माचार का अनुसरण कर रहा है। नेपाली चौकीदार जिसकी इस चोरी में हत्या हुई, उसकी मृत्यु इसके सामने कोई ज़्यादा महत्त्व नहीं रखती। औपचारिक सहानुभूति के बावजूद यह घटना बड़ी सहजता से पार्श्वत में चली जाती है जबकि गांव वालों में ही कोई ऐसा चरित्र होता जो मोहरों और देवता की सामग्री के बरक्स चौकीदार के परदेस में आए परिवार की भी बात करता और समय में पीछे की ओर जाते हुए कुछेक सम्वेद्य जीवन प्रसंग कहानी में ला पाता। कहानी में महज़ वारदात की पड़ताल और चीज़ों की बरामदगी का ही टुकड़ा-टुकड़ा ज़िक्र मौजूद है। लेखक के अनुसार, "सब लोग देवता की बात कर रहे थे चौकीदार की बात कोई नहीं छेड़ रहा था। ...उनके ज़हन में देवता की बजाय शायद चौकीदार की यादें बसी थीं।"

ऐसे अस्थायी और सरसरी किस्म के वक्तव्यों से लेखक अपनी नैतिक ज़िम्मेदारियों से नहीं बच सकता। उसे परोक्षतः सही ऐसे हालात कहानी के अंदर ही बनाने होते हैं अथवा उन प्रसंगों की भावपरक जानकारी कहानी की संरचना में संजोने का उपक्रम करने की ज़िम्मेदारी भी येन-केन-प्रकारेण उसी पर है। यद्यपि इस कहानी की भाषिक संरचना उपयुक्त है फिर भी रूपांकन के साथ-साथ कथा में भाव पक्ष की सहज उद्भूत निर्मिति की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए था।

भीड़ की मनोवृत्ति का दिग्दर्शन इस कहानी में भी प्रचुर है किंतु अधिकांश पाठ महज़ देवता की सम्पत्ति के सम्प्राप्य की पूरी प्रक्रिया में ही अपने आपको निकासित कर देता है। कहानी में चौकीदार और उसके परिवार के संदर्भ यदि प्रस्तुत संरचना में

उपयुक्त ढंग से संशोधित कर समायोजित किए जाएं तो यह कहानी और ज्यादा प्रभावोत्पादक बन सकती है। अलबत्ता, कहानी में प्रस्तुत रचनाकार की तथ्यपरक और रुचिकर तफसीलें देने की क्षमता एक अलग स्तर पर अधोरेखांकित की जा सकती हैं। संदर्भित तफसीलों को और सजीव और संवेदनापरक बनाने के लिए चौकीदार के परिवार के सोगवार संदर्भों का चर्चित कहानी में समावेश फलप्रद होगा।

'ज़कीउल्ला उर्फ शंकर' कहानी के बीच से गुज़रते हुए पहली बार यह लगा कि इस युरोपियन फॉर्म का समकालीन रचनाकार विशेषकर एक युवा कहानी की संरचनात्मक यथास्थिति से मुक्त होकर समानान्तर अपनी एक नई ज़मीन खोजना चाहता है और वह तथाकथित समकालीनता से आगे बढ़कर इस फॉर्म के ज़रिए अपने समय के प्रश्नों को उकेरने के लिए एक नई समाहार क्षमता को लेकर आगे आना चाहता है। चाहे इसके लिए भाषा में एक शताब्दी से प्रमाणित और परिभाषित रौप्य संरचना को तोड़ना भी क्यों न पड़े।

सुरेश शांडिल्य की उपर्युक्त चर्चित कहानी ने ज़कीउल्ला की चरित्र प्रधान कहानी में एक ऐसा भाववाचक और अमूर्त कथानक संजोने का प्रयास किया है जो एक साथ हमारे समय के नस्लवादी मुद्दे को पूरी ताकत के साथ उठाता है। कहानी का यह मुख्य चरित्र मुसलमान है फिर भी पौराणिक हिन्दू मिथक और देवताओं के सगुण आख्यानों में डूबा रहता है। यद्यपि स्पष्ट रूप से कहीं भी कहानीकार ने यह दावा नहीं किया कि उसका यह व्यक्ति धर्म परिवर्तन का कायल है फिर भी उसमें यह महामनस्कता अवश्य नज़र आती है कि किसी तरह दोनों धाराएं अपना गंगाजमनी रूप ग्रहण कर इनसानियत को राह दिखा सके। सुझावी स्तर पर पात्र का समग्र निर्वाह कहीं-न-कहीं इसी आवश्यकता पर ज़ोर देता है। समन्वय और सर्वधर्म समभाव की इस वृत्ति को समझने के लिए हम कुछेक अंशों में इसकी तुलना यदि 'कवि रसखान' से करें तो बेजा न होगा। ब्रज भाषा के इस कवि ने ब्रजभूमि और कृष्ण के अवतारी रूप से प्रभावित होकर अपने भावों को अपने काव्य के माध्यम से अति भावपरक ढंग से व्यक्त किया है। ज़कीउल्ला, रसखान न सही फिर भी एक ऐसा माध्यमिक व्यक्ति है जो अवचेतना के स्तर पर एक व्यापक और जातीय भावना से रहित सामाजिक व्यवस्था का तलबगार अवश्य है।

कहानीकार के अनुसार ज़कीउल्ला उसके संपर्क में एक जीवंत व्यक्ति रहा है जिसे उसने एक दिलचस्प कथा में बांधा है। मुख्य पात्र यदि समय की विचारधारा से हटकर अनन्य चरित्र रखता हो तो वह कहानी देशकाल की सीमाओं को पार करती हुई हमारी और एक नई दुनिया की रचना की और इशारा करती है। पर चर्चित कहानी का संदर्भ इतना सहज और सरल भी नहीं। अतः वह ज़कीउल्ला के संपूर्ण और द्वंद्वात्मक चरित्रांकन के बाद भी यथार्थपरक बना रहता और इस बारे में कोई स्वप्नलोक भी घड़ता नज़र नहीं आता। अतः परिन्दा जैसे दिनभर के परिश्रम और चर्या के बाद शाम को अपने नीड़ में लौट आता है। नए आलोचक और टिप्पणीकार को यह कहानी अपने रूपाकार में असहज और मूललस्य का खंडन करने वाली लग सकती है लेकिन मैं यह कहूंगा कि यह उस संगोष्ठी पाठक की एक बेहतरीन कहानी थी यानी दो जातीय तत्त्वों का समुपयुक्त मिश्रण (अ प्रोपोर्शनेट कॉकटेल ऑफ टू डिफरेंट ऑपोज़िट एलिमेंट्स) अर्थात् एक मुखर रूप में जबकि दूसरा पात्र के अवचेतना स्तर पर। प्रमुख नायक के मानसिक और अंगभंगी चित्र भी कुछेक अच्छे रेखांकनों से भरपूर हैं। कहीं-कहीं जहां वह कचरे और गंदगी के ढेर पर बेसुध लेटा है वहां वह एक अतियथार्थवादी रूपांकन की तरह नज़र आता है।

● श्रीनिवास श्रीकान्त

हिमप्रस्थ में शिमला जिला विशेषांक

'हिमप्रस्थ' मासिक पत्रिका में शीघ्र ही शिमला जिला विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। अंक में विशेष रूप से शिमला जिला का इतिहास, सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक महत्त्व, देव संस्कृति, मेले व त्योहार, लोक साहित्य एवं संस्कृति, पर्यटन, ऐतिहासिक एवं पौराणिक धार्मिक स्थल, विकास तथा शिमला शहर के गौरवशाली 150 वर्ष इत्यादि पर सामग्री प्रकाशित की जाएगी। इस अंक के लिए आपका सहयोग अपेक्षित है। विस्तृत जानकारी के लिए गिरिराज/हिमप्रस्थ कार्यालय में सम्पर्क करें।

- वरिष्ठ सम्पादक

समीक्षा

मौजूदा व्यवस्था की दास्तां
गलियारे

● बद्री सिंह भाटिया

बहुविध लेखक रूप सिंह चन्देल का सातवाँ उपन्यास गलियारे वर्ष 2014 के आरम्भ में विश्व पुस्तक मेले के समय प्रकाशित हुआ है। गलियारे अभिजात्य कर्मचारी वर्ग यानि प्रशासनिक अधिकारियों(आई ए एस) के जीवन के कुछ अन्तरंग पहलुओं को पाठक के सामने लाने में बाखुबी सफल रहा है। चूंकि यह वर्ग आम कर्मचारियों से भिन्न और शीर्ष पर होता है इसलिए इनका जीवन भी अलग तरह का होता है जिसे बहुत कम लोग जान पाते हैं। किसी भी औपन्यासिक कृति को पढ़ने के लिए जिस धैर्य की आवश्यकता होती है उसी धैर्य से लेखक ने उन स्थितियों का चित्रण भी किया है जो कई बार मन को उद्वेलित करती रहीं कि यहाँ अमुक पात्र को यह कहना चाहिए था या वह करना चाहिए था। यह भी कि उसने ऐसा क्यों नहीं किया। यह कथा कहन की ताकत रही कि पाठक आगे क्या होता है, के कौतुहल के साथ पूरी कृति शीघ्र पढ़ गया। लेखक ने कथा और घटना विस्तार को इस प्रकार ब्यान किया है कि पाठक सोचता ही रह जाता है। जबकि कई बार ऐसा होता है कि अब यह होगा। और इस समझ के अन्तर्गत वह कृति को पढ़ने से छोड़ देता है।

कर्मचारी वर्ग में अभिजात्य वर्ग यानी प्रशासनिक अधिकारियों की जीवनचर्या पर कमोबेश ही लिखा मिलता है। रूप सिंह चन्देल जी का यह उपन्यास 'गुलाम बादशाह' की अगली कड़ी भी कहा जा सकता है। प्रशासनिक अधिकारी कैसे बनते हैं और वे जिन कार्यालयों में तैनात होते हैं उनकी वहाँ क्या परिस्थितियाँ बनती हैं तथा उनकी पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत जीवन जिसमें अधिकाँश वैवाहिक जीवन होता है, का निरूपण 'गलियारे' उपन्यास में खुलकर किया गया है।

अनेक उपन्यास अपनी कथा शैली में कई बार पठनीयता की सीमा से बाहर जाकर कथ्य को विशेष मोड़ पर ले जाते हैं जहाँ ये वृहद ग्रंथ छोड़ने पड़तें हैं या छूट जाते हैं। अफसोस यह होता है कि जीवन में ऐसा जटिल क्या था जो सरलता से नहीं कहा जा सकता। परन्तु गलियारे में भाषा की सरलता और कथ्य की क्रमबद्धता के साथ कौतुहलता इतनी है कि उपन्यास छोड़े नहीं बनता।

उपन्यास एक बड़ी कथा होता है। बड़ा जीवन परिदृश्य। गलियारे की कथा 'सुधांशु' नामक एक गरीब परिवार के युवा की कथा है जो उद्देश्यहीन सा दिल्ली जा रहा था। मन में पढ़ने की भी इच्छा थी मगर पैसे के अभाव में पहले वह कुछ कमा लेना चाहता था। रेल में उसे से एक युवा मिलता है जो एक पत्रिका पढ़ रहा होता है। युवक के पत्रिका से बोर हो जाने के बाद सुधांशु उससे पत्रिका मांग लेता है। यहीं से उनमें संवाद की प्रक्रिया आरम्भ होती है और बड़ी देर की नकार के बाद स्थापित ही नहीं बल्कि वह युवा उसे अपने घर ले जाता है। वह युवा उसके मन में 'आई ए एस' बनने का स्वप्न भरता है। सुधांशु ट्यूशन करता है और कालेज में पढ़ने जाता है। वहीं उसे मिलती है एक युवती प्रीति। जैसा कि होता है प्रति उससे प्यार करने लगती है। वह एक सेवा निवृत्ति के करीब पहुँचे आई.ए.एस. की सुपुत्री है। वह भी कभी किसी गरीब परिवार से आया था। सुधांशु के बारे में सुन उसे वह अपनी पुत्री के लिए एक उपयुक्त वर लगा और इसी क्रम में उनका विवाह हो जाता है। रिश्तों की पायदान पर यह विवाह लगभग एक तरफा ही हुआ। सुधांशु के पिता इस बात को मान गए कि चलो यदि बेटा प्रसन्न है तो फिर उनकी प्रसन्नता का क्या जबकि वे चाहते थे कि बेटे का विवाह बिरादरी के बीच हो।

सुधांशु प्रतिरक्षा विभाग में तैनात था। विवाह के बाद उसने भी प्रीति को आई ए एस बनाने की सोची और उसे आगे बढ़ने के लिए कहा। वह बनी भी और भाग्य से प्रतिरक्षा विभाग में ही तैनात हो गई। अन्तर इतना रहा कि उसे दिल्ली मुख्यालय मिला और सुधांशु को पटना निदेशालय। यहां से एक दूसरे से मिलने के तरीके और सरकारी गाड़ियों का प्रयोग कैसे और किस कार्य के नाम से किया जा सकता है उन्हे ज्ञान मिलता है। इस ज्ञान में प्रीति को गुरु मिलते है मुख्यालय में एक वरिष्ठ 'आई ए एस' मीणा। और मीणा के सिखाए तरीके जहाँ प्रीति आत्मसात कर लेती है वहाँ

सुधांशु इन्हे उचित नहीं मानता और अपना विरोध प्रकट करता है जिसे प्रीति और मीणा उसकी ना समझी करार देते हैं। मीणा के प्रयत्न से एक दिन सुधांशु दिल्ली स्थानान्तरित हो जाता है।

सुधांशु को क्रय खण्ड में बिलों को भुगतान हेतु परित करने का कार्य दिया जाता है और हिदायत यह कि किसी भी ठेकेदार का बिल न रुके। उसके अधीनस्थ कर्मी उसे विभिन्न नुक्ते बताते हैं कि बिल कैसे पास होते है मगर वह उन्हे न मान कर अपने तरीके से बिल पास करता है। वह अनेक बिलों में कमियाँ पाता है और वे बड़ी देर तक रुक जाते हैं। उसकी शिकायत होती है और उसे समझाया जाता है।

सुधांशु देखता है कि नीचे से लेकर उपर तक पूरा व्यवस्थाक्रम ठेकेदारों के चंगुल में है। खरीदे गए सामानों की दरें और गुणवत्ता वह नहीं जो होनी चाहिए और ठेकेदार चाहते हैं कि उनकी राशि का भुगतान शीघ्र हो ताकि अगली आपूर्ति की जा सके। उसके आक्षेपों को एक स्वस्थ दृष्टि की बजाय तनी हुई भृकुटी से देखा जाने लगा। कार्यालय में तनाव का वातावरण बन गया और उसकी शिकायतें उच्चाधिकारियों तक जाने लगी। उसके एक उच्चाधिकारी मीणा ने उसे समझाया भी। उसने प्रीति को भी बुलाया था और घर पर समझाने की बात की थी मगर नहीं कुछ नहीं बना। और एक दिन परिणाम यह हुआ कि एक और उच्चाधिकारी के एक सवाल के हल्के से प्रत्युत्तर में आगे से जवाव देने के जुर्म में उसे एक ऐसे प्रभाग में स्थानान्तरित कर दिया जाता है जो उसके किसी कनिष्ठ के योग्य ही था। उसे जो कमरा दिया जाता है वह सीलन और उमस से भरा है। उसे कोई सुविधा नहीं। न पी.ए. न चपरासी। उसी प्रभाग के कर्मियों से ही काम लेना होगा। वह समझता है कि उसे सबक सिखाने की विभाग प्रमुख की एक चाल है। यहाँ यह कहना होगा कि रूप सिंह चन्देल जी ने उपन्यास में 'आई ए एस' लोगों के बीच जो सुबोर्डिनेशन की अवस्थिति है उसका बाखूबी वर्णन किया है। वे कैसे दांव पेच लगाते है पाठक दंग रह जाता है।

उपन्यास में प्रीति और मीणा का जिक्र भी अच्छे ढंग से वर्णित है। प्रीति पति सुधांशु के स्वभाव के विपरीत है। उसने विभाग के उन सभी ऊसूलों को आत्मसात कर लिया है जो वहाँ विद्यमान हैं। परन्तु वह इससे सुधांशु से दूर हो गई। उनमें कई बार अबोला की स्थिति उभर जाती। ऐसी स्थितियों को मीणा जैसा अधिकारी जल्दी भांप जाता था। वह यूँ भी कार्यालय की सभी छोटी-बड़ी महिला कर्मियों पर नज़र रखता था और मौका मिलते ही उन्हे अपने घर या फिर कहीं और बुला लेता था। मजबूर वे कभी स्थानान्तरण, पारिवारिक और कभी कार्यालय सम्बन्धी कारणों से उसके आगे झुक जाने को मजबूर हो जाती थीं। प्रीति पर भी उसकी नज़र गई और एक दिन सुधांशु की गैर हाजिरी में वह चाय पीने के बहाने उसके आवास पर पहुंच जाता है। सुधांशु वापसी पर जब अपने आवास को देखता है और किसी तीसरे की उपस्थिति की अनुभूति पाता है तो प्रीति से उसका विवाद हो जाता है, वह उसे उसकी गरीबी और औकात बताती है। उस आवास को अपने नाम अलॉट हुआ बताती है तो सुधांशु को अपनी स्थिति का भास होता है। वह घर छोड़ कर चला जाता है।

सुधांशु एक प्रशासनिक अधिकारी होने के साथ एक संवेदनशील लेखक भी था। उसके लेख, कविताएं प्रायः पत्रिकाओं में स्थान पा जाती थीं। वह इस सिलसिले में राजधानी के कतिपय रचनाकारों से भी मिलता है जिनमें कुछ प्रशासनिक अधिकारी भी थे जो रिश्वत में मिले पैसे के बल पर अपने आवास या अन्यत्र गोष्ठियों का आयोजन करते रहते थे। यहां सुधांशु रिश्वतखोरों की एक और जमात और प्रकाशन जगत की विभिन्न स्थितियों से भी दो-चार होता है। यहीं उसकी गोष्ठियों में जाने कि प्रक्रिया का पता उसके उच्चाधिकारियों को लगता है और वे उसे इस बात पर प्रताड़ित करते हैं कि लेखन के लिए उसे सरकारी नियमों के अनुसार आज्ञा लेनी चाहिए थी।

सुधांशु एक उच्चाधिकारी ही नहीं था वह एक गरीब मां-बाप का बेटा भी था। उसके उनके प्रति दायित्व भी थे। इनके निर्वहन में वह गाँव जाता है। माँ बीमार है। पर हाय री सुबोर्डिनेशन! पहले तो उसे अवकाश ही नहीं दिया जाता। जब अवकाश मिलता ही है तो उसे उसकी तीमारदारी से वापस बुला लिया जाता है और जब वह अवकाश बढ़ाता है तो कई बहाने लगा कर उसे फिर दण्डित किया जाता है।

इधर प्रीति गाँव नहीं जाना चाहती। वह कोई न कोई बहाना बना देती है। और इसी बीच उसका नैक्टय मीणा से और ज्यादा बढ़ जाता है। एक दिन वापसी पर जब सुधांशु आता है तो भीतर दो जनों के होने का आभास पाता है। वह भीतर के संवाद सुनता है और फिर दस्तक देने के बाद भी अपने मन में प्रीति के प्रति आई नाराजगी के कारण वहाँ से चला जाता है।

ऐसी अनेक अवस्थियाँ उपन्यास में वर्णित हैं जो पाठक को सरकार के बहुत ही संवेदनशील विभाग के भीतर की खुलकर जानकारी देती हैं। वे उन गलियारों की ओर ले जाती है जो बहुत से पाठकों ने न देखी और समझी होती है। इन गलियारों में एक तरह का नहीं बल्कि कई प्रकार का भ्रष्टाचार व्याप्त है। सुधांशु जैसे ईमानदार लोग इन गलियारों के लिए नहीं बने होते। मानसिक रूप से प्रताड़ित और दिल से कमजोर वे फिर समाज की एक ऐसी दवा की शरण में चले जाते हैं जहां से वापसी का कोई साधन नहीं होता।

पुस्तक : गलियारे (उपन्यास),
लेखक : रूप सिंह चन्देल,
प्रकाशक : भावना प्रकाशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110091
मूल्यः 500.00 रुपये

सधांशु का स्थानान्तरण दूर मद्रास(तामिलनाडु) हो जाता है जहाँ वह बीमार पड़ जाता है और दिवंगत भी। एक प्रश्न यहाँ उपन्यासकार छोड़ जाता है कि ऐसे अधिकारी अपने बुद्धिबल का प्रयोग क्यों नहीं करते? उन स्थितियों को क्यों नहीं तोड़ने की कोशिश करते जो उन्हे तोड़ती रहती है। बस उसमें पीसते चले जाते हैं।

उपन्यास पढ़ते कई बार ऐसा भी लगा कि एक विचारवान युवा अधिकारी अपनी मर्यादा को क्यों नहीं लांघ रहा। जब उसका उच्चाधिकारी उसे खामख्वाह डान्ट रहा था और मानसिक रूप से प्रताड़ित कर रहा था तो वह चुपचाप सहन कर रहा था। ऐसी स्थितियों को प्रायः एक दो जगह देखा गया है कि अधीनस्थ की जब सहन करने की सीमा पार हुई तो उसने माकूल प्रत्युत्तर दिया है। बल से भी और अन्य तरीक्कों से भी।

उपन्यास जिस धीमी गति और प्रभावात्मक कथा के साथ आगे बढ़ा उसी तीव्र गति से उपसंहार हो गया। ऐसे लगा अब भ्रष्टाचार के बाद कुछ नहीं रह गया। सुधांशु के माता-पिता का देहान्त हो गया और कुछ समय बाद स्वयं उसका भी। प्रीति और मीणा जैसे लोग अपने खेल में मग्न रह गए। वे उपन्यास के बाहर भी वैसे ही होगें। सरकारी विभागों की कार्यप्रणाली के प्रति एक दुःख उभरता है कि कर्मठ और ईमानदार लोग तो प्रताड़ना और मृत्यु जैसे इनामों को प्राप्त होते हैं और निकम्मे और भ्रष्टाचारियों को पदोन्नति मिलती है। किसी ने कहा था कि भगवान अपने गधों को हलवा खिलाता है।

यह उपन्यास सरकारी क्षेत्र के एक खण्ड के भीतर की स्थिति को ही अवगत नहीं कराता बल्कि अन्य विभागों की ओर भी इंगित करता है कि भ्रष्टाचार यहीं नहीं अन्यत्र भी है जिसे मिटाने की जरूरत है। एक प्रश्न उभरता है कि क्या इस भ्रष्टाचार को किसी बिल के बिना नहीं समाप्त किया जा सकता जबकि नियम मौजूद हैं। गलियारे स्थितियों के निरूपण के साथ कई अन्तः सवालों का भी उपन्यास है।

2-हरबंस काटेज संजौली,
शिमला-171006

कविता

ऐ ! वतन

● ठाकुर शेरसिंह 'शेर' जोगिन्दर नगर'

ऐ! मुकद्दर लिखने वाले
मेरी ऐसी तकदीर लिखना
हर बार वतन की सरहद पर शहीद होऊं
मेरे हाथों में ऐसी लकीर खींचना।
ऐ! वतन तेरी सरहद पर हम
कफ़न सर पर बांध आएंगे
गम न करना गर शहीद हो गए हम
जब भी पुकारोगे, कब्र से भी उठाकर आ जाएंगे।
हजार बार जन्म लें, हजार बार मरें
वतन की हिफ़ाजत को हर बार मरें
ऐ! खुदा जब भी जन्म लें
वतन की सरहद ही अपनी कर्मभूमि हो।
देश अपना हीर-रांझे का ही नहीं
यह शहीदों का भी वतन है
जहां कहीं भी रहें हम
दुश्मन की हर खबर रखते हैं।
मर कर मोक्ष चाहिए न स्वर्ग चाहिए
पुनः जन्म लेने को वतन भारत चाहिए
न हीरे मोतियों के ढेर हों न धन कुबेर हों
'शेर' सरहद पर सर कटे, बस यही हर बार हो।
जब चाहे मांग लेना ऐ! हसीना
अपना सब कुछ मुहब्बते-चमन के लिए है
सिर्फ दिले जां नहीं मांगना
'शेर' ये दिलो जां तो वतन के लिए है।



ग्राम व पत्रालय चलहार्ग, जिला मंडी,
हिमाचल प्रदेश-175 015, मो. 96258 15040

हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 सितम्बर 2014 अंक : 6



प्रधान सम्पादक
राकेश शर्मा

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

आवरण एवं रेखांकन
सर्वजीत सिंह

कम्पोजिंग एवं प ष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्कः 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

एक उद्देश्य जो शताब्दियों पहले अच्छा था, यह आवश्यक नहीं कि विश्व की बदलती परिस्थितियों के साथ, देश की बदलती हुई दशाओं के साथ वह आज भी अच्छा ही हो।

–डॉ. राधाकृष्णन

इस अंक में

लेख

विकास

कहानी

लघुकथा

कविता/ग़ज़ल

समीक्षा

रपट

अपनी बात

भारतीयता हमारी असली पहचान है, जो हमें राष्ट्रीयता का बोध करवाती है। हर भारतीय को इस पर गर्व होना लाजिमी है। हमारा राष्ट्र सदियों से ही समृद्ध सांस्कृतिक एवं भाषिक वैविध्य के लिए जाना जाता है और अनेकता में एकता हमारी विशेषता है। भारतीय सभ्यता की इसी विविधता का परिणाम है कि विदेशी संस्कृतियों के सम्पर्क एवं बाहरी आक्रांताओं के दमनकारी चक्रव्यूह के बावजूद हमने अपने मौलिक स्वरूप को सदैव अक्षुण्ण रखा। भारतीय संस्कृति की शायद इसी विशेषता के कारण भारतवर्ष को प्राचीनकाल में विश्व गुरु का दर्ज़ा हासिल था। कुछ वर्षों से देशभर में चल रहे घटनाक्रम का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि हम अपनी चिरस्थापित भारतीय संस्कृति के विपरीत अपने आपको राज्य विशेष के निवासी कहलाने पर फक्र करने लगे हैं और यह प्रवृत्ति हमारी राष्ट्रीयता की भावना से मेल नहीं खाती। यह सत्य है कि हमारी संस्कृति की जड़ें मूल रूप से स्थान विशेष से जुड़ी होती हैं जो हमारी संस्कृति का मूलाधार हैं। लेकिन राष्ट्रीयता अथवा देशप्रेम की भावना को दरकिनार कर किसी सूबे विशेष पर गर्व करना कोई स्वस्थ परम्परा नहीं है क्योंकि इससे राष्ट्रीय चरित्र गौण हो जाता है। यही कारण है कि आज हम सूबों की श्रेष्ठता की जय-जयकार करने के मोहपाश में राष्ट्रीयता को इस कदर पीछे छोड़ते चले जा रहे हैं कि अब हमें भारतीयता की भावना को ढूंढना पड़ रहा है। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को उचित मान-सम्मान दिलाकर इसे यथासम्भव प्रोत्साहित किया जाए। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसमें समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रखने की क्षमता है। करोड़ों देशवासियों की मातृभाषा हिन्दी भारतीय संस्कृति का पर्याय है। यह महज एक भाषा नहीं वरन् हमारे देश की अस्मिता, गरिमा और राष्ट्रीयता की आत्मा है। 'निज भाषा उन्नति अहें, सब उन्नति को मूल'। अर्थात मातृभाषा को समृद्ध करने से ही देश को समृद्ध और खुशहाल किया जा सकता है। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी का हिन्दी के प्रति अप्रितम लगाव था। उनका मत था कि जिस देश के पास अपनी भाषा न हो, वह देश तरक्की नहीं कर सकता। अपनी भाषा के बगैर तो स्वतंत्रता भी अधूरी है। यह सुखद है कि जैसे-जैसे हमारा देश तरक्की कर रहा है, वैसे-वैसे हिन्दी भी अब दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय हो रही है। आज के वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी ने देश की सरहदों को पार करते हुए इन्टरनेट जगत में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन देने के उद्‌देश्य से 14 सितम्बर को हर वर्ष हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। हिन्दी भाषा पर चिंतन के लिए हमें किसी रस्मी आयोजन तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि इसे व्यावहारिक तौर पर जीवन में व्यापक रूप से प्रोत्साहित करने की दिशा में कारगर पग उठाने होंगे। इसी महीने देश के महान शिक्षाविद् व भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के जन्म दिवस 5 सितम्बर को देशभर में शिक्षक दिवस व 8 सितम्बर को अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा दिवस के रूप में मनाया जाता है। इन दिनों की शिक्षा क्षेत्र के लिए एक गौरवमय पहचान बन गई है। डॉ. राधाकृष्णन मूलतः शिक्षक थे और वे जीवन पर्यन्त शिक्षक बने रहे। ऐसे महापुरुष के उच्च आदर्शों एवं शिक्षाओं के अनुसरण से ही एक सुसंस्कारित, सभ्य और शांतिप्रिय समाज की स्थापना की जा सकती है, और शायद यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है। भारत को पुनः विश्व-गुरु का दर्जा दिलाने के लिए हर भारतीय को धर्म, क्षेत्र, रंग-भेद और जाति की संकीर्ण विचारधारा से ऊपर उठकर कार्य करना होगा।

–सम्पादक

आलेख

जल-जंगल और जमीन-जीवन
साहित्यकार का आत्मभाव

● डॉ. दादूराम शर्मा

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः– धरती मेरी मां है और मैं उसका पुत्र हूं" 'अथर्ववेद' के 'पृथिवी सूक्त' में ऋषि का यह अमर उद्‌घोष मानवीय चिंतन की चरम परिणति है। धरा पुत्र होने की यह अनुभूति और प्रतीति मनुष्य को धरती पर जन्मे और आश्रय लेने वाले समस्त चराचर, दृश्य-अदृश्य प्राणियों के साथ सहोदर भाव के पारिवारिक अनुराग के सूत्र में बांध देती है। तब नदी-निर्झर, लता-वृक्ष, जंगल-पहाड़, पालित पशु-पक्षी, इतर जलचर-थलचर- नभचर जीवन उसके आत्मीय बन जाते हैं, उनसे उसका आत्मभाव स्वयमेव स्थापित हो जाता है। वह सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियों में देखने लगता है

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्मेवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततोन विचिकित्सति। (यजुर्वेद 1/1)

अचर या स्थावर जीवों पेड़-पौधों, तृण-लताओं की जननी तो धरती ही है और चर या जंगम प्राणी भी जननी की कुक्षि से जन्म लेकर धरती की गोद में आंखें खोलते हैं। वही सबकी आश्रयस्थली है, सभी उसके परिवेश में व्याप्त वायु में सांसें लेते हैं, उसमें अवस्थित जल पीते हैं और उसी से प्राप्त भोजन से जीवन धारण करते हैं। वह रत्नप्रसवा है, वसुधानी है, सोना-चांदी, हीरे-मोती सभी तो उससे प्राप्त होते हैं। फसलें उस पर लहलहाती रहती हैं, अतः उसे शस्य-श्यामला या हिरण्यवक्षा कहा जाता है, उसके वक्ष पर अजस्र प्रवहमान नदी-निर्झर और आभ्यंतर जलधाराएं जीवन का जयनाद करती हैं। इसीलिए ऋषि की वाणी वसुंधरा के स्तवन में मुखरित हो उठी है

"विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यगर्भा जगतो निवेशती।

वैश्वानरं विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणां नो दधातु। (अथर्ववेद 12/1/6

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।" वही, 12/1/9

जल चराचर प्राणियों का जीवन है क्योंकि वह उनका पोषण, संरक्षण और संवर्धन करता है इसीलिए उसे 'अमृत', 'कीलाल' (रक्त) और 'जीवन' (जिंदगी, प्राणवत्ता) कहा गया है। वनों का पोषक, रक्षक और संवर्धक होने के कारण उसी को 'वन' की संज्ञा दी गई है। जल है तो जहान है इसीलिए उसे 'भुवन' कहकर भी पुकारा गया है

पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्। अमरकोश।

वाष्प और मेघ रूप में अंतरिक्ष में विद्यमान, जमीन पर नदी-निर्झरों में प्रवहमान और कूप, तड़ाग, समुद्रादि में संचित जल सबका पोषण करता है, सबको प्रक्षालित करके शीतल और पवित्र करता है। बिना जल के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती इसीलिए 'देवता' कहकर उसकी स्तुति की गई है या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति, खनितिृमा उत वा याः स्वयंजाः।

समुद्रार्थाः याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।। 'ऋग्वेद' 7/49/2

जल द्वारा विविध रोगों का निदान होता है। वेदों में जल भैषज्य वर्णित है

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम। य. वे. 1/23/21

जिस तरह मानवरोपित उद्यान ग्रामों और नगरों के शृंगार हैं, उसी तरह प्रकृति पोषित जंगल जमीन के शृंगार हैं। जंगल असंख्य जंगली जीवों के आश्रय स्थल हैं, वर्षा के कारक हैं, प्राणवायु के उत्सर्जक हैं, सूर्य की दाहकता के अवशोषक और शमक हैं इसलिए वातावरण के प्रशीतक और संतुलक हैं, हमारी विभिन्न जरूरतों के प्रतिपूरक हैं, स्वास्थ्यवर्धक-रोगनिवारक औषधियों के आपूरक हैं। ये जमीन के संरक्षक हैं क्योंकि ये वर्षा जल के कटाव से धरती को बचाते हैं, उसकी उर्वरा शक्ति को सुरक्षित रखते हैं।

जल और जंगल अन्योन्याश्रित हैं। वर्षा का जल जंगलों का पोषण करता है तो सूर्य द्वारा सतत् वाष्पीभूत होकर अवशोषित होने वाले भू-जल को वर्षा ऋतु में जंगल ही मेघों को रोककर उन्हें अपने संस्पर्श से जलबिंदुओं में परिणत करके वर्षा द्वारा जमीन को लौटा देते हैं। प्रकृति के इस सनातन जलचक्र की विश्लेषक



संस्कृत भाषा में इसीलिए 'वन' के दो अर्थ जल और जंगल "वने सलिल कानने, जंगल हैं तो जल है और जल-जंगल हैं तो जमीन है, जमीन पर जीवन है। जंगल नहीं रहेंगे तो जल भी नहीं रहेगा, प्राणवायु नहीं होगी और तब जमीन पर जीवन भी नहीं रहेगा तभी तो जंगल को और जीवन को जल का पर्यायवाची माना गया है। जमीन, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंच तत्त्वों या पंच महाभूतों से पर्यावरण भी बनता है और प्राणियों के भौतिक पिंड की संरचना भी होती है।

वन भारतीय संस्कृति के आदिम उत्स रहे हैं। वह यहीं जन्मी, फैली-फूली और फलित हुई। यहीं पर शिक्षा के केंद्र ऋषियों के तपोवन थे, जहां नगर के कोलाहल से दूर गुरुकुलों के शांत, स्नेहिल और पवित्र वातावरण में राजा से लेकर रंक तक के ब्रह्मचारी बालकों (वटुओं) को बिना भेदभाव के शास्त्रों-शस्त्रों और जीविकोपार्जन की शिक्षा दी जाती थी। यहां से शिक्षा प्राप्त स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। वहां अपने पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों का सम्यक् निर्वहन करके वे पुनः सपत्नीक वानप्रस्थ जीवन ग्रहण करके तपोवनों में आश्रय लेते थे और 'ऋषि' कहलाते थे। ये ही गुरुकुलों के आचार्य (शिक्षक) होते थे। प्रधान आचार्य को 'कुलपति' कहा जाता था। ये तपस्वी ऋषि ही हमारी आचार-संहिता के रचयिता थे, विधायक थे, राजनीति के नीति-नियामक सूत्रधार थे। नगरों में राजा और उनकी मंत्रिपरिषद् के पास और ग्रामों में पंचायतों के पास कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्ति अवश्य थी किंतु जटिल विवादों और उलझनों को तपोवनों के महर्षियों के निर्देशन में ही सुलझाया जाता था।

तपस्वी ऋषियों ने आचारसंहिता, वेदों, आरण्यकों, सूत्र-समृतियों, महाकाव्यों और पुराणों की रचना की है। काव्य का जन्म करुणा की कुक्षि से हुआ है। पर दुःख से द्रवित होना करुणा है। ब्रह्म की 'एकोऽहं बहु स्याम प्रजोयम्!' की सिसृक्षा को सृष्टि-विस्तार के संकल्प को पूर्ण करने में लगे क्रौंच-मिथुन में से नर क्रौंच को अपने बाणों से बिद्ध करके प्रकृति के विरुद्ध आचरण करने वाले व्याध के लिए अभिशप्त वाक्य में आदिकवि वाल्मीकि के कंठ से प्रथम श्लोक फूटा था

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं गमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम।" क्योंकि उसने परमात्मा की 'प्रजनश्चास्मि कंदर्पः और 'धर्मविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि' रूप सृजन की इच्छा के विरुद्ध आचरण करके सृष्टि-चक्र के संचालन में व्याघात उत्पन्न किया था। काव्य मृत्यु और विनाश का वारण करता है और जीवन और सृजन का वरण करता है, जीवन का जयगान करता है। जगमंगल विधायक काव्य का निस्सरण तपोवनों में तपोधनों की कालजयी लेखनी से हुआ है।

वन हमारी संस्कृति के केंद्र थे और ग्राम एवं नगर सभ्यता के /तपोवन अभयारण्य होते थे जहां तपोधन ऋषियों के संसर्ग से हिंसक जंतु भी अपनी हिंसावृत्ति छोड़कर अन्य जीवों के साथ हिल-मिलकर रहते थे। उनमें वन्य जीवों का आखेट भी वर्जित था। नगर सभ्यता से लांछित-तिरस्कृत राजमहिर्षी गर्भिणी सीता ने महर्षि वाल्मीकि के तपोवन के विशाल अंक में आश्रय और संरक्षण पाया था। उनके अकारण परित्यागजन्य संताप का प्रशामन करते हुए महर्षि ने उन्हें आश्वस्त किया था "पुत्रि! शोक मत करो, समझो कि तुम अपने पिता के घर ही आ गई हो। तपस्वियों के संसर्ग से अपनी सहज हिंसावृत्ति को त्यागकर विनम्र और स्नेहिल बने इन जीवों के बीच तुम निर्भय होकर रहो। इसी पावन वातावरण में तुम्हारी संतान को भी निर्भयता, निर्वैरता, मैत्रीभाव और राग-द्वेष रहित विशाल हृदयता के संस्कार मिलेंगे तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम्। रघु. 14/72

तपस्थिसंसर्ग विनती सत्तवे तपोवने बीतभया वास्मिन्।

इतो भविष्यत्यन घप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते।

वही 14/75

अपने बल के अनुरूप घड़ों से आश्रम के पौधों को सींचकर पोषित करती हुई तुम पुत्रोत्पत्ति के पूर्व ही मातृत्व का प्रशिक्षण प्राप्त कर लोगी पयोघटैराश्रमबालवृक्षान् संवर्धयन्ती स्वबालानुरूपैः।

असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः स्तनधय प्रीतिमवाप्स्यसि त्वम् ।। 14/78

भारतीय संस्कृति देवोपासक है। 'देव' का लक्षण है "देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा देने वाता, द्योतित या प्रकाशित होने और प्रकाशित करने वाला 'देव' है। इसीलिए जल देव है, जल के रूप में जीवन देने वाला जलद देव है। पिता है (पर्जन्पः पिता स उ नः पिपर्तु (अथर्व. 12/1/12), छाया, काष्ठा, पत्र, पुष्प, फल, औषधियां और जीवों द्वारा उत्सर्जित कार्बन-डाइ-आक्साइड को ग्रहण करके प्राणवायु का उत्सर्जन करने वाले पेड़ देव हैं, वन देव

हैं, पहाड़ देव हैं, प्रकाशित होने और प्रकाशित करने वाला ऊष्मा और ऊर्जा का अक्षय स्रोत सूर्य तो देव है ही, अग्नि देव है, चंद्र देव है, तारे देवता हैं, धरती और नदियां तो देवी ही नहीं, माता भी हैं, गोमाता है, वासु देव हैं। इन देवताओं की स्तुति, आराधना और उपासना भारतीय संस्कृति की कृतज्ञता की भावना को रेखांकित करती हैं। हमारे ऋषियों और महाकवियों ने धरा से लेकर गगन तक के समस्त प्राकृतिक उपादानों का मानवीकरण करके उनसे मानव के अनुरागमय पारिवारिक संबध जोड़ दिए हैं।

सर्वलोकवंदित सर्वेश्वर शिव किसी अज्ञात लोक में नहीं, इसी धरा पर अवस्थित पर्वतराज हिमालय के उत्तुंग शिखर कैलास में सतत् निवास करते हैं। भवगती पार्वती तो पर्वत राज कन्या है ही और सीता भी भूमिजा हैं, धरापुत्री हैं। मानवता के संरक्षक, संस्थापक और प्रेरक राम का रामत्व, सीता का वंदनीय-वरणीय नारीत्व, मुरलीधर गोपालकृष्ण का कृष्णत्व, बलराम का हलधरत्व, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि का कवित्व, सिद्धार्थ का बुद्धत्व, वर्धमान का अपरिग्रही महावीरत्व सभी तो वनों की गोद में पले, बढ़े और विकसित हुए हैं।

फिर आया बीसवीं सदी की आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता का युग, भूमंडलीकरण का युग, जिसमें दुनिया सिमटकर छोटी हो गई, दूरियां घट गईं। विज्ञान नए-नए आविष्कारों से मानव की प्रकृति पर निर्भरता को जैसे मिटाने लगा। प्रकृति देवी से दासी बन गई, उसकी स्वार्थसिद्धि का साधन मात्र रह गई। मानव के सुख-साधन जुटाने वाला विज्ञान विनाशक आणविक अस्त्रों का आविष्कार कर-करके युद्ध द्वारा सर्वसंहार की त्रासदी और विभीषिका उत्पन्न करने लगा। ग्लोबल वार्मिंग से हिमशैल (ग्लेशियर) पिघलने लगे और समुद्र का जल स्तर बढ़ने से आवासीय भूमि सिमटने लगी। शहरीकरणोन्माद समस्त वन संपदा का निर्ममतापूर्वक दोहन करने लगा और जंगलों को अनावश्यक और जंगलीपन का कारक और परिचायक मानकर मिटाने लगा।

साहित्य मानवीय संवेदन को जाग्रत और विकसित करता है, चिंतन को सही दिशा देता है, आचरण और व्यवहार का संस्कार करता है और समाज में सौहार्द, सहिष्णुता, समन्वयशीलता, सहयोग, सहभाव और परस्पर समर्पण की भावना जगाता है। और यह साहित्य प्रकृति की गोद में जन्म लेता है, प्रकृति द्वारा प्रेरित और विकसित होता है। प्रकृति पोषित साहित्यकार सृष्टि का, समाज का सचेतक प्रहरी है। पर्यावरण असंतुलन और प्रदूषण उत्तर आधुनिक युग की विकराल समस्या है।

जब तक मानव प्रकृति का उपासक, सहचर और सेवक रहा, पंचमहाभूतों में समन्वय और संतुलन बना रहा, ऋतुचक्र यथावत् चलता रहा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, सूखा और अकाल का संकट नगण्य रहा।

आज अपने को और समग्र जीव जगत् को सर्वनाश से बचाने और प्रकृति चक्र को पूर्ववत् संतुलित करने का एकमात्र उपाय है प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन, प्रकृति के साथ अपने पहले जैसे रागात्मक संबधों की पुनःस्थापना, जिसकी दिव्य और भव्य झांकी हम अपने आदिराष्ट्र कवि किंवा विश्वकवि कालिदास के काव्य में देखते हैं।

अतीत में तपोवन अभयारण्य होते थे, जिनमें वन्य जीवों का आखेट वर्जित था। राजा को भी इस नियम का कठोरता से पालन करना पड़ता था। अतः 'अभिज्ञान शांकुतल' का नायक राजा दुष्यंत जब भूल से आश्रम परिसर में प्रवेश करके हरिण को अपने बाण का निशाना बनाना चाहता है तो आश्रम का एक वटु "राजन् आश्रम-मृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः" कहकर न केवल उसे रोक देता है अपितु उसे राजधर्म का स्मरण कराने से भी नहीं चूकता "आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि राजन्! आपका शस्त्र तो पीड़ितों की, दीन-दुखियों और दुष्टों से सताए गए प्राणियों की रक्षा के लिए है, निरपराध वन्य-जीवों को मारने के लिए नहीं।"

शकुन्तला का शिशु भरत तपोवन में सिंह शावक के साथ खेलता है, उसके दांत गिनता है और उसकी मां सिंहनी के आ जाने पर भी उससे जरा भी भयभीत नहीं होता।

मनुष्य की मनुष्यता औरों का जीवन लेने में नहीं, उनका जीवन बचाने और उन्हें जीवनदान देने में है। महाराज दिलीप जब भूखे सिंह के पंजों में छटपटाती, कातर नेत्रों से निहारती नंदिनी गो को शस्त्रबल से नहीं बचा पाते तो यह कहते हुए "भाई सिंह! कृपा करके मेरा यह शरीर ले लो और इसे खाकर अपनी भूख मिटा लो। सद्यःजात बछड़े की माता इस नंदिनी को छोड़ दो स त्वं मदीयने शरीवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीदः।

दिनावसानोत्सुक बालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः।" अपना शरीर मांस के लोथड़े की तरह भूखे सिंह के आगे डाल देते हैं स न्यस्त शस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत् पिण्डमिवामिषस्य।

परप्राणरक्षा के लिए आत्मबलिदान की, दयावीरत्व की कैसी दिव्य झांकी है।

महर्षि कण्व के आश्रम के वृक्षों को घड़ों से पानी देती शकुंतला और उसकी सखियों का यह मनोहर वार्तालाप सुनिए, जिसमें महाकवि ने वृक्ष-लताओं से उनके पारिवारिक स्नेह का हृदयावर्जक दृश्य उपस्थित कर दिया है अनूसया-हला शकुन्तले! त्वत्तोऽपि तालकण्वस्य आश्रमवृक्षाः प्रियतराः इति तर्कयामि येन नवमालिका-कुसुम-परिपेलवापि त्वमेतेषामालबालपरिपूरणे नियुक्ता! (सखि, शकुंतले! लगता है, तात कण्व को आश्रमवृक्ष तुमसे भी अधिक प्रिय हैं तभी तो नवमालिका के फूलों से भी कोमल तुमको इन्हें घड़े से पानी देने के कठिन श्रमसाध्य कार्य में लगा रखा है। शकुंतला हला अनसूये! न केवलं तातकण्वस्य नियोगः ममापि एतेषु सहोदर स्नेहः। (सखि अनसूये तात कण्व के

आदेश से ही मैं इन्हें नहीं सींच रही हूं अपितु मेरा भी इनपर सगे भाइयों जैसा प्रगाढ़ स्नेह है।) सीता भी महर्षि वाल्मीकि के तपोवन के वृक्षों को सींच-सींचकर मातृत्व का पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं।

महर्षि पतिगृह जाती हुई अपनी पुत्री शकुंतला के लिए लता-वृक्षों के परिवार से कैसे मार्मिक शब्दों में विदा मांग रहे हैं "हे तपोवन के स्नेही पादपो! अरी अनुराग-रंजित लताओ! जो तुम्हें बिना सींचे स्वयं कभी जल पीने का भी विचार नहीं करती थी, जिसे यद्यपि पुष्पों और पल्लवों के आभूषण अत्यंत प्रिय थे किंतु तुम्हें कष्ट न हो इसलिए जिसने कभी तुम्हारे पल्लव तक नहीं तोड़े और तुम्हारा पुष्पित होना ही जिसके लिए महान उत्सव होता था, वही तुम्हारी स्नेहशीला शकुंतला आज पतिगृह जा रही है, आप सभी कृपया उसे जाने की अनुमति प्रदान करें।

प्रकृति के प्रतिनिधि वसंत के अग्रदूत कोकिल ने कूक द्वारा मधुर स्वर में उसे विदाई दी। शकुंतला अपनी बहन माधवी लता से लिपटकर कैसे करुणा विगलित स्वर में विदा मांग रही है "लता बहन! अपनी शाखारूपी भुजाओं से मेरा प्रत्यालिंगन करो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊंगी। पिताश्री, आप मेरी तरह मेरी इस प्यारी बहन की भी देखभाल कीजिएगा लता भगिनि! प्रत्यालिंग मां शाखामयैबहिभिः। अद्यप्रभृति दूरवर्तिनी खलु ते भविष्यामि। तात! अहमिव इयं त्वया चिन्तनीया।" फिर आसन्न प्रसवा मृगी पर उसकी दृष्टि पड़ती है और वह पिता से अनुरोध करती है कि जब उसकी संतानोत्पत्ति हो तो वह शुभ समाचार उसे अवश्य पहुंचाया जाए तात! एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भभार मंथरा मृगवधूर्यदा सुखप्रसवा भविष्यति तदा मे कमपि प्रियनिवेदकं विसर्जयिष्यसि। मा विस्मयरिष्यसि।"

जिस मातृविहीन मृगशावक का उसने पुत्रवत् पालन किया था, उसे वह किसी तरह पिताजी को सौंपकर जाने का प्रयास करती है। विदा होती शकुंतला के लिए समग्र प्रकृति आज जीवंत हो उठी है। किसी वृक्ष ने उसे पहनने के लिए रेशमी वस्त्र दिए हैं, किसी ने चरण रंगने को महावर दिया है तो अन्य पादपों ने वन-देवता के हाथों से उसके अलंकरण के लिए दिव्य आभूषणों के उपहार दिए हैं। (शाकुं. 47) शकुंलता को आश्रम से सदा के लिए विदा होते देखकर हरिणियों ने कुशाओं के ग्रास उगल दिए, मोरों ने नाचना बंद कर दिया और लताएं पीले पत्तों के रूप में आंसू बरसाने लगीं।

उस युग में पशु-पक्षियों से भी मानव के दृढ़ मैत्री संबंध थे। गिद्ध जटायु की महाराज दशरथ से मित्रता थी। रावण द्वारा हरी जाती हुई उनकी पुत्रवधू सीता को छुड़ाने में अपने प्राणों का पण (बाजी) लगाकर उसने मैत्रीधर्म का हृदयावर्जक उदाहरण प्रस्तुत किया था।

जीवनदायक सर्वसंतापहारी जलद और उसके वक्ष पर कौंधती उसकी प्रियतमा तड़ित को भी महाकवि ने अनुराग तरलित जीवन से संपृक्त कर दिया है। पक्व-पीताभ फलों से लदे आम्रवनों वाले आम्रकूट पर जब श्याम घन आश्रय लेता है तो वह धरती माता के बीच में काले और चारों ओर से गोरे पयोधर की कांति को धारण कर लेता है

महाकवि की सजल जलधर के लिए मां वसुंधरा के दुग्धस्रावी स्तनमुख की परिकल्पना कितनी सटीक है। मां स्तनपान कराकर अपने शिशु का पोषण करती है तो धरती माता का स्तन जलद जलवृष्टि करके वनस्पतियों को नवजीवन देता है, प्राणियों के लिए घास आदि और मनुष्यों के लिए अन्न उत्पन्न करता है।

महर्षि वाल्मीकि ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरोयसी' कहकर माता और मातृभूमि की सर्वोपरिता और महत्ता पर मुहर लगा दी है, कालिदास उसे 'देवभूमि' कहते हैं और 'विष्णु पुराण' में तो देवताओं ने भी पुरुषार्थ की स्थली तथा स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) की हेतुभूत भारतभूमि की महिमा गाई है गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु मे भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पद हेतुभूते भवन्ति भूपः पुरुषाः सुरत्वात्।

'रामचरितमानस' में लंका विजय करके लौटते राम अपने विजयाभियान के सहयोगी सुग्रीव आदि मित्रों को अपनी जन्मभूमि अयोध्या को बैकुंठ से भी श्रेष्ठ बतला रहे हैं

"जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेदपुरान विदित सब जाना।
अवधपुरी सम प्रिय नहीं सोऊ।"

रामराज्य में धरती पर बारहों महीने फसलें लहलहाती थीं, वन, वन संपदा से समृद्ध थे, वृक्ष सदैव फूलते-फलते थे, वन्य जीवन परस्पर वैरभाव को भूलकर निर्भय विचरण करते थे, सरिताओं का जल, प्रदूषणमुक्त होने से निर्मल, सुस्वादु और स्वास्थ्यवर्धक था। समुद्र मर्यादा में रहते थे, मेघ यथेष्ट वर्षा करते थे, सूर्य आवश्यकतानुसार तपता था। (रामचरितमानस, 7/23)

'आनन्दमठ' में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय से सुजला, सुफला, मलयजशीतला, शस्य-श्यामला, फुल्ल-कुसुमित-दुमदल शोभिनी सुखदा, वरदा भारत माता की वन्दना की है।

अपने अमर गीत 'भारति, जय-विजय-करे' में महाप्राण निराला ने भारत माता का बड़ा ही भव्य और दिव्य चित्र अंकित किया है। वह लंका के शतदल कमल पर अवस्थित है, समुद्र स्तवन करता हुआ उसके चरण धो रहा है। तरु-तृण-वन-लता-निर्मित पुष्प सज्जित हरित दुकूल, गंगा के धवलहार और हिमगिरि के रजत किरीट से सुसज्जित है। पवित्र ओंकार की ध्वनि से मुखर है। ऐश्वर्य और समृद्धि के प्रतीक 'कनक', खाद्यान्न की प्रचुरता के प्रतीक 'शस्य' और शांत-मैत्री-सद्भाव के प्रतीक 'कमल' को धारण करती है।

राष्ट्रकवि दिनकर नगपति हिमालय को 'साकार दिव्य गौरव विराट पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल' कहकर पुकारते हैं।

अत्याधुनिक मानव भौतिक सुख-सुविधाओं के संसाधन

बटोरने में इतना व्यस्त है अथवा उनके विषमय और त्रासद उपभोग में इतना मग्न हो गया है कि इस अमृतमय प्रकृति की उसने पूर्णतः उपेक्षा कर दी है "मेरी कविता में गौरेया, वसंत की धूप/ वहीं रह गए/ और मैं चल दिया!

इनकी स्मृतियां रह गईं वहीं मेरे घर!" (रघुवीर सहाय)

जबकि 'सतपुड़ा के घने जंगल' (भवानी प्रसाद मिश्र) में प्रकृति की गोद में पलने वाले, अभावग्रस्त जीवन जीने वाले वनवासी सहज संतोष और स्वास्थ्य से संपन्न होने के कारण अकिंचन होते हुए भी धनी हैं और सर्वसुविधा संपन्न होने पर भी सदैव असंतुष्ट और विविध व्याधियों से जूझते रहने वाले शहरी कितने निःस्व हैं, कितने गरीब हैं क्योंकि उनके जीवन में ऐसा सहज उल्लास और आमोद-प्रमोद कहां है?

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के ललित निबंधों में 'वृक्ष' सर्वत्र मानव की उद्दाम जिजीविषा के पोषक और अभिनंदनीय-अनुकरणीय उदात्त मानवता के प्रेरक हैं। 'कुटज' कठोर पाषाण को भेदकर, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर अपना प्राप्य वसूल लेता है, आकाश को चूमकर अवकाश की लजरी में झूमकर उल्लास खींच लेता है। ('कुटज' पृ. 12)। शिरीष प्रचंड ग्रीष्म में जब धरती और आसमान जलते रहते हैं तब भी न जाने कहां से अपना रस खींचते रहता है। भयं-कर लू के समय कोमल तंतुजाल और सुकुमार केसर उगा सकता है। ('कल्प लता' पृ. 25), देवदारू को द्विवेदीजी ने ऊर्ध्वमुखी चेतना से अनुप्राणित देखा है। वह गुरुत्वाकर्षण के जड़ वेग को एवं धरती के आकर्षण को अभिभूत करके लगातार ऊपर बढ़ते जाता है। कालजयी महापुरुष भी साधारण आदमियों की तरह जमीन से ही नहीं, चिपटे रहते, भौतिक आकर्षण में ही नहीं बंधे रहते अपितु जमीन से जुड़े रहकर भी निरंतर ऊपर उठते जाते हैं। धरती से उन्हें लगाव तो होता है किंतु उस लगाव में निरपेक्ष प्रेम और करुणा का भाव होता है, मोह का नहीं। वे देना ही जानते हैं, लेना नहीं। शिव धरती की जड़ता पर जागतिक माया-मोह को उच्छिन्न करके आत्मानंद में भरकर तांडव करते हैं तो देवदारू भी धरती से बहुत ऊपर उठकर अपनी गगनचुंबी झूमती शाखाओं से तांडव नृत्य करता है। ('कुटज' 76-78)।

मारणास्त्रों का विकास और विस्तार मनुष्य की आदिम बर्बरता और पशुता के अवांछनीय विकास को सूचित कर रहा है। आत्मघाती मानव बम बनकर निरपराध जनसमूह को मौत के घाट उतारने में लगे आतंकितयों के ओले जैसे "जिमि हिम उपल कृषी दलि मरहीं" कृत्य ने तो विश्व को दुश्चिंता में डाल दिया है। जगत् को सर्वनाश से बचाने के लिए नाखूनों की तरह उन्हें काटकर नियंत्रण और मर्यादा में रखना आज की अनिवार्यता है। मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। मनुष्य अपने इन नाखूनों को और नहीं बढ़ने देगा। ('कल्पलता' पृ. 11)

मारणास्त्रों का विकास और विस्तार मनुष्य की आदिम बर्बरता और पशुता के अवांछनीय विकास को सूचित कर रहा है। आत्मघाती मानव बम बनकर निरपराध जनसमूह को मौत के घाट उतारने में लगे आतंकितयों के ओले जैसे "जिमि हिम उपल कृषी दलि मरहीं कृत्य" ने तो विश्व को दुश्चिंता में डाल दिया है। जगत् को सर्वनाश से बचाने के लिए नाखूनों की तरह उन्हें काटकर नियंत्रण और मर्यादा में रखना आज की अनिवार्यता है। मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। मनुष्य अपने इन नाखूनों को और नहीं बढ़ने देगा। ('कल्पलता' पृ. 11)

महीयसी महादेवी का नारीत्व विराट मातृत्व में परिणत होकर अपने असीम वात्सल्या प्लावित अंक में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के घेर में रोपित पेड़-पौधों, स्वतंत्र और पालित पशु-पक्षियों, दलित-शोषित, लांछित, अनादृत, उपेक्षित और अभावग्रस्त समस्त नर-नारियों को सस्नेह समेटकर अपने 'महादेवी' नाम को जैसे चरितार्थ कर देता है।

मनुष्य की क्रूर और रक्त पिपासु आखेट-प्रियता की भर्त्सना कैसे मार्मिक शब्दों में उन्होंने की है "जिन्होंने हरीतिमा में लहराते हुए, मैदान पर छलांग भरते हुए हिरनों के झुंड को देखा होगा वे ही उस अद्‌भुत गतिशील सौंदर्य की कल्पना कर सकते हैं। मानो सरल मरकत के समुद्र में सुनहले फेन वाली लहरों का उद्वेलन हो। परंतु जीवन के इन चल सौंदर्य के प्रति शिकारी का आकर्षण नहीं रहता। मनुष्य जीवन की ऐसी सुंदर ऊर्जा को निष्क्रिय और जड़ बनाने के कार्य को मनोरंजन कैसे कहता है? मनुष्य मृत्यु को असुंदर ही नहीं, अपवित्र भी मानता है। उसके प्रियतम आत्मीय जन का शव भी उसके निकट अपवित्र, अस्पृश्य तथा भयजनक हो उठता है! जब मृत्यु इतनी अपवित्र है तब उसे बांटते घूमना क्यों अपवित्र और असुंदर कार्य नहीं है?

आकाश में रंग-बिरंगे फूलों की धाराओं के समान उड़ते हुए और वीणा, वंशी, मुरज, जलतरंग आदि वृंदवादन बजाते हुए पक्षी कितने सुंदर जान पड़ते हैं। मनुष्य ने बंदूक उठाई, निशाना साधा और कई गाते-उड़ते पक्षी धरती पर ढेले के समान आ गिरे! किसी की लाल-पीली चोंच वाली गरदन टूट गई, किसी के पीले सुंदर पंजे टेढ़े हो गए और किसी के इंद्रधनुषी पंख बिखर गए। क्षत-विक्षत

रक्त-स्नात उन मृत-अर्धमृत लघुगातों में न अब संगीत है, न सौंदर्य परंतु मारने वाला अपनी सफलता पर नाच उठता है।"

मनुष्य की ऐसी क्रूर मनोरंजनप्रियता को ऐसे ही मर्मस्पर्शी शब्दों द्वारा उसके हृदय को मथकर उसमें तीव्र संवेदना उत्पन्न करके संस्कारित या समाप्त किया जा सकता है और परमात्मा द्वारा प्रकृति को दिए गए पशु-पक्षियों के इन अमूल्य उपहारों को बचाकर पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सकता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पृथ्वी माता अपने ऊपर विनाश का तांडव करने वाले बेटे मानव से कह रही है

"तुझको बड़े से बड़ा देखना चाहती हूं मैं
मेरे जात! सारे जंतुओं में मुख्य तू ही है
तो व्यक्तित्व अपना समष्टि में मिला दे तू
देश, कुल, जाति, किंवा वर्ग-भेद भूलकर
भीति नहीं प्रीति यथा रीति तेरी नीति हो
उठ बढ़ ऊंचा चढ़ संग लिए सबको
सबके लिए तू और तेरे लिए सब हों
नाश में लगी जो बुद्धि विलसे विकास में।" (पृथिवी पुत्र', पृ. 64)

तो राष्ट्रकवि दिनकर चिंतकों, कलाकारों और साहित्य सृष्टाओं से कह रहे हैं

विज्ञान काम कर चुका हाथ उसका रोको
आगे आने दो गुणी! कला कल्याणी को! 'धूप और धुआं'

और साहित्यकार कामायनीकार के शब्दों में पुनर्नवसृजन के लिए मानव की समवेतशक्ति का आह्वान करने लगे हैं

शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त विकल बिखरे हों, हो निरुपाय,
समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

पर्यावरण-असंतुलन और प्रदूषण से होने वाले सर्वनाश की विभीषिका ने अब हमारी आंखें खोल दी हैं और संसार के सभी देश पर्यावरण को संरक्षित और प्रदूषण मुक्त करने के भगीरथ प्रयास में जुट गए हैं। सर्वत्र प्रचुर मात्रा में पेड़ लगाए जा रहे हैं। वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगा दी गई है। वनों को अभयारण्य बनाकर वन्य जीवों के शिकार पर पूरे विश्व में पाबंदी लगा दी गई है। नदियों के जल को प्रदूषण मुक्त करने की परियोजनाएं चलाई जा रही हैं। रासायनिक खादों के स्थान पर जैविक खादों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। हर्बल खेती की जा रही है। परमाणु-अस्त्रों के विस्तार पर रोक लगाई जा रही है। प्रतिवर्ष पांच जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाया जा रहा है, जो अन्य विश्व दिवसों की तरह मात्र दिखावा या औपचारिकता नहीं है। उसमें गंभीरता से विचार किए जा रहे हैं। अभी तक किए गए कार्यों की समीक्षा और योजनाओं की उपलब्धियों का आकलन करके भविष्य के लिए और भी त्वरित और कारगर योजनाएं बनाई जा रही हैं।

दिसंबर 2009 में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में 'अंतर्राष्ट्रीय जलवायु सम्मेलन' आयोजित हुआ। इसमें 'ग्रीन हाउस गैसों' के उत्सर्जनकर्ता देशों को अपने कार्बन-उत्सर्जन-कटौती के लक्ष्यों की लिखित घोषणा 10 जून 2010 तक करने और उसे शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने को कहा गया है।

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम कृति है। सृजन और संरक्षण उसकी सहजात प्रकृति है, स्वभाव है। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व उसका ध्येय है और इसलिए हम आशान्वित हैं कि विनाश से विरत होकर सृजन और संरक्षण में लग जाएगा। हमें विनाश के दारुण और हृदयविदारक दृश्य नहीं देखने पड़ेंगे, अकारण मारे गए लोगों के परिजनों के करुण आर्तनाद नहीं सुनने पड़ेंगे और हमारे वैदिक ऋषि की यह मंगल कामना मूर्त हो जाएगी

माभ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसार मुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।
भद्रं कर्णेभिः श्रृणुमाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

सेवानिवृत्त अध्यापक, महाराज बाग, भैरवगंज सिवनी, मध्य प्रदेश-480 661, मो. 76922 22792



आलेख

राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन में स्वामी दयानन्द का योगदान

● डॉ. करम सिंह आर्य

उन्नीसवीं शताब्दी की दिव्य विभूतियों में राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री केशवचन्द्र सेन, परमहंस रामकृष्ण आदि के नाम स्वर्णिम अक्षरों में उत्कीर्ण हैं। इनमें भारतीय पुनर्जागरण के आंदोलन को सही दिशा और गति प्रदान करने में महर्षि दयानन्द का नाम अग्रगण्य है। वे एक समाज-सुधारक, राजनीति-निष्णात, प्रखर दार्शनिक, समालोचक, साहित्यकार, शास्त्रार्थ महारथी, स्वतंत्रता के मंत्रदाता, नारी जाति के उद्धारक, सामाजिक कुरीतियों के निवारक, वैदिक साहित्य को पुनः प्राचीन आधार प्रदान करने वाले, आर्ष साहित्य के प्रचारक, वेद-भाष्यकार और हिन्दी (आर्यभाषा) के उन्नायक थे। उन्होंने वैदिक सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी को अपनाया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी और वे संस्कृत के प्रकांड पंडित थे तथा वेदप्रचार के प्रारंभिक वर्षों में प्रवचन, शास्त्रार्थ व वार्तालाप संस्कृत भाषा में ही करते थे। अपने बंगाल- प्रवास के समय ब्रह्मसमाज के केशवचन्द्र सेन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के आग्रह पर उन्होंने तत्कालीन लोकभाषा के रूप में प्रचलित हिन्दी को सन् 1873 के बाद अपना माध्यम बनाकर सन् 1883 तक अर्थात् कुल नौ वर्ष के अत्यल्प काल में हिन्दी में लगभग तीस ग्रंथों की रचना की। उन्होंने हिन्दी को 'आर्यभाषा' का नाम दिया। महर्षि दयानन्द बाल्यकाल से ही बच्चों को हिन्दी भाषा का ज्ञान कराने की अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं

"जब पांच-पांच वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास कराएं, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।"

इससे स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानन्द अंग्रेजी, जर्मन आदि विदेशी भाषाओं को पढ़ने-पढ़ाने के भी हिमायती थे परन्तु वे हिन्दी को अधिमान देते थे और संस्कृत का ज्ञान समस्त देशवासियों के लिए अनिवार्य मानते थे। उनकी उदात्त नीतियों के फलस्वरूप ही श्यामजी कृष्ण वर्मा और श्रीगोपालराव हरिदेशमुख जैसे भारतीय मनीषियों के अतिरिक्त कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लेवट्स्की भी न केवल हिन्दी के अध्ययन में प्रवृत्त हुए बल्कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भी भरपूर सहयोग दिया। महर्षि दयानन्द ने मैडम ब्लेवट्स्की को इस सन्दर्भ में लिखा था

"भारत की आर्यजनता मेरे वेदभाष्य के अंग्रेजी अनुवाद के प्रकाशित होने पर संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन त्याग देगी। मेरे वेदभाष्य समझने के लिए संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन आवश्यक है अन्यथा जो मेरा मुख्य उद्देश्य है, नष्ट हो जाएगा।"

महर्षि दयानन्द हिन्दी पत्रकारिता के प्रेरणास्रोत थे। सन् 1870 में 'आर्यदर्पण' मासिक पत्र मुंशी बख्तावरसिंह के संपादकत्व में शाहजहांपुर से निकाला। 'आर्यभूषण' सं. 1876 में शाहजहांपुर से मुंशी बख्तावरसिंह के सम्पादन में प्रारम्भ हुआ। 'भारत दुर्दशा प्रवर्तक' 1879 से 1912 तक मासिक पत्र के रूप में और फिर साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होता रहा। प्रारम्भ में इसका नाम 'भारत सुदशा समर्थक' था लेकिन स्वामी जी ने इसका नाम बदलकर 'भारत सुदशा प्रवर्तक' कर दिया और उन्होंने स्वयं कुछ दिन तक इसका संपादन भी किया।

महर्षि दयानन्द जन-जन तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए निरंतर सहज, सरल और प्रसादयुक्त भाषा को अपने ग्रंथों, प्रवचनों और शास्त्रों में प्रयोग करते थे। उनकी भाषा पर श्री विनायक दामोदर सावरकर अत्यंत मुग्ध थे। तभी तो उन्होंने लिखा था "ऐसी सरल हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा बने, जिसमें ऋषि महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश का निर्माण किया।" इन संदर्भों से यह स्पष्ट है कि महर्षि सरस्वती की सत्प्रेरणा से कई विद्वानों ने हिन्दी को अपनाया, संवर्धित किया और आर्यसमाज के अथक प्रयासों से 'आर्यभाषा' हिन्दी ने 'राष्ट्रभाषा' की पदवी को प्राप्त किया।

महर्षि दयानन्द हिन्दी को 'आर्यभाषा' के नाम से अभिहित करते थे और इसे सीखना व पढ़ना सभी के लिए अनिवार्य मानते

थे। किसी सज्जन ने हरिद्वार में जब उन्हें यह सुझाया कि वे अपने ग्रंथों का फारसी में अनुवाद कराएं तो उन्होंने कहा "ज्ञानवर्धन के लिए कोई भी भाषा सीखी जा सकती है। उसी प्रकार किसी भी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है। किंतु अनुवाद विदेशी लोगों के लिए होने चाहिए अपने देशवासियों के लिए, स्वयं अपनी राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से साहित्य-सृजन होगा तो एकता एवं संगठन भी इसके सम्पर्क से निश्चय ही आएगा।"

महर्षि दयानन्द ने अपने व्याख्यानों में भी यह इच्छा व्यक्त की थी "मैं तो वह दिन देखना चाहता हूं जब हिमालय से लेकर सागर तक एवं सारे ब्रह्मावर्त में देवनागरी लिपि में ही सभी आर्यभाषा हिन्दी को अपनाएं।"

महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित आत्मकथा हिन्दी गद्य-साहित्य की सर्वप्रथम आत्मकथा है। इस आत्मकथा में कवि, कथाकार और इतिहासकार के एकत्र दर्शन होते हैं। आत्मकथा से यह भी स्पष्टतया लक्षित होता है कि वे बहुत ही भाव-प्रवण कवि थे, प्रकृति व नैसर्गिक सौंदर्य के कुशल चितेरे थे और समस्त साहित्यिक विधाओं के निष्पक्ष समालोचक भी। उनका संस्कृत और हिन्दी पर समान अधिकार था। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए थियोसोफिस्ट सोसायटी के अध्यक्ष कर्नल हेनरी स्टील ऑल्काट ने लिखा था

"समस्त भारत में स्वामी दयानन्द से बढ़कर हिन्दी और संस्कृत का कोई प्रखर वक्ता हमारे देखने में नहीं आया।"

हिन्दी-साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर विष्णु प्रभाकर के शब्दों में "केवल नौ वर्ष के अल्पकाल में उन्होंने हिन्दी लिखने और बोलने का अभ्यास किया, वेदभाष्य सहित अनेक ग्रंथों की रचना की और देशभर में घूम-घूमकर व्याख्यान दिए, शास्त्रार्थ किए। अनेक बाधाओं से जूझते हुए उस काल में जब हिन्दी गद्य का निर्माण हो रहा था, उन्होंने वह कार्य कर दिखाया, जिसका मूल्य उस युग के किसी साहित्यकार से कम नहीं है।"

"चिन्तक होने के नाते उनकी रचनाओं में जहां एक ओर गम्भीर चिन्तन और विचारशीलता का परिचय मिलता है, वहीं उनमें शिष्ट हास्य और तिलमिला देने वाला व्यंग्य भी छलछलाता है। इस प्रकार अनायास ही वे एक ऐसे लचीले गद्य के रचनाकार बन जाते हैं जो जन-मानस को सीधे और गहरे प्रभावित करता है। तत्सम और तद्भव शब्दों, मुहावरों का प्रयोग करके उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि जनता की भाषा में गम्भीर-से-गम्भीर साहित्य का सरल एवं सहज भाषा में सृजन किया जा सकता है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र और मुंशी प्रेमचन्द इसी पथ के पथिक थे।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती की साहित्य सर्जना के सम्बन्ध में विष्णु प्रभाकर द्वारा उपरोक्त शब्दों में की गई समालोचना उनकी हिन्दी-सेवा के परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त तटस्थ, सामयिक व महत्त्वपूर्ण है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के पश्चात्वर्ती साहित्यकार किसी-न-किसी रूप में उनसे अवश्य प्रभावित रहे हैं। सामाजिक चेतना, राष्ट्रभक्ति, गौसंवर्धन, नारी-सम्मान, धर्म और संस्कृति, हिन्दी आंदोलन, सामाजिक असमानताओं का प्रतिरोध आदि विषयों में उनकी क्रांतदर्शी विचारधारा का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मुंशी प्रेमचन्द, क्षेम चन्द्र सुमन, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मैथिलीशरण गुप्त आदि हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों, लेखकों व समालोचकों की कृतियों में महर्षि दयानन्द की विचारधारा व साहित्य-सृजन की शैली तथा भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष है।

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी हिन्दी, अंग्रेजी, पाली, प्राकृत, संस्कृत के अनन्य विद्वान और प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने व्याकरण, भाषाविज्ञान, पुरातत्त्व, इतिहास, समालोचना, हिन्दी पत्रकारिता आदि के विषय में जो भी लिखा, वह आज भी मानक है। उनके अपने समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'मर्यादा' भाग-3 (पृ. 152-151 में) 1911 में पं. सत्यव्रत सामश्रमी के निधन विषयक एक लेख में महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में लिखा, निम्न अंश विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है

"जब सरकार ने संस्कृत विद्या के प्रचार के लिए क्वींस कॉलेज खोला, तब पादरियों ने शोर मचाया कि कृस्तान सरकार इन अधर्मी हिन्दुओं के धर्म का प्रचार न करे। इसी कारण से क्वींस कॉलेज में व्याकरण न्याय आदि के पाठ की व्यवस्था होने पर भी 'वेद' और 'मीमांसा' की गद्दियां स्थापित न की जा सकीं। काशी का अभाग्य और भारतवर्ष गवर्नमेंट का अभाग्य, नहीं तो कोई बाल शास्त्री या कोई बोपदेव वेदों का भी निकल आता और जो खोजें जर्मनी में हुईं वे काशी में होतीं और न ही वह समय आता जब एक वेदपाठी गुजराती संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती काशी के पंडितों को 'ख' सूची बनाकर छोड़ जाता।"

इस प्रसंग में महर्षि दयानन्द सरस्वती के बहुप्रसिद्ध काशी शास्त्रार्थ का प्रकरण उल्लिखित हुआ है जिसमें वेदों में वर्णित उपासना पद्धति से सम्बन्धित विषय पर काशी के पण्डितों को हराकर महर्षि दयानन्द विजयी हुए थे और पौराणिक समुदाय की पराजय हुई थी जिसमें पं. बालशास्त्री प्रमुख थे। काशी शास्त्रार्थ का विवरण देते हुए गुलेरी जी 1911 ई. में लिखते हैं

"इन्हीं दिनों स्वामी दयानन्द धूमकेतु की तरह काशी में आ पहुंचे और अक्षोभ्य समुद्र की सतह उनके आने से पेंदे तक हिल गई। लोग विस्मय से आंख फाड़े रह गए कि स्वामीजी का मंत्रपाठ जहां कंठस्थ करने वाले वैदिकों से मिलता है, वहां उन्हें अपने भाष्यव्यापी व्याकरण के ऊपर स्थित अर्थज्ञान से गूंगा कर देता है। और जहां नव्यव्याकरण मिलते हैं वहां वह 'घटो-घट' का तुषकण्डन छोड़कर उन्हें सीधा व्याकरण की चकाबू में गोते खिलाता है।"

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजी के उक्त लेख से यह स्पष्ट होता

है कि वे महर्षि दयानन्द की वेद विषयक मान्यताओं व विद्वता से प्रभावित थे। गुलेरी की यह विशेषता रही है कि उन्होंने हिन्दी के उन्नायक महापुरुषों के गुणकथन में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। उन्होंने 'समालोचक' (जनवरी-अप्रैल, 1905) में लिखा था

"आर्यसमाज के प्रचारक एक बड़े दूरदर्शी पुरुष थे। जिन्होंने अपने शिष्यों की वृद्धि और गौरव के लिए हिन्दी का आश्रय लिया। इस बात को कट्टर से कट्टर आर्यसमाजी भी मानेगा कि यदि स्वामी दयानन्द हिन्दी को अपनी धर्मभाषा न मानते, तो उनका यह जलवा नहीं होता।"

उक्त लेख से यह स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द ने हिन्दी की प्रतिष्ठा व उन्नयन के लिए जो सक्रिय कार्य किए उनसे गुलेरी व समस्त परवर्ती साहित्यकार भी प्रभावित रहे। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने कहा था

"जब तक समस्त देशवासी एक ही धर्म के अनुयायी, एक ही भाषा बोलने वाले तथा एक ही प्रकार के आचार-विचार एवं व्यवहार को धारण कर एक ही लक्ष्य की पूर्ति हेतु सर्वात्मना कृतनिश्चय नहीं हो जाते तब तक स्वदेश की एकता तथा उसकी सर्वांगीण समृद्धि स्वप्नमात्र रहेगी।"

"ज्ञानवर्धन के लिए कोई भी भाषा सीखी जा सकती है। उसी प्रकार किसी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है। किंतु अनुवाद विदेशी भाषा के लिए होना चाहिए। अपने देशवासियों के लिए नहीं। यदि अपनी राष्ट्रभाषा के माध्यम से साहित्य सृजन होगा तो एकता एवं संगठन भी इसके संपर्क से निश्चित ही आएगा।"

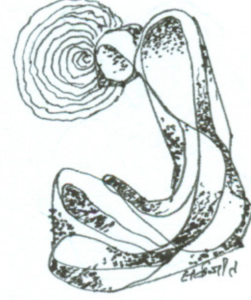
स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द हिन्दी के उन्नायक थे और उनसे उनके समकालीन तथा पश्चात्वर्ती समस्त साहित्यकार प्रभावित रहे हैं।

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171001, मो. 94184 70345

कविता

एक दिव्य अनुभूति

• श्रीनिवास श्रीकान्त



हम थे अपने अपने आकाश के
कल्पनाशील परिन्दे
थे पंखहीन फिर भी उड़ान भरते
दूर दूर तक
नापते सत्य की ऊंचाइयां
करते अपने संसार का मिलान
उम्रभर हमने किया
इन्सानी धरती का
अपने अपने आसमानों में
विहंगावलोकन

जब लौटते भूमि पर
पारगामी उड़ानों के बाद
तो हमें हमारी दुनिया लगती
एक ठहरा हुआ दिवास्वप्न
हम उससे मुक्त होने की सोचते
पर फिर जग जाते बार बार
उसी रहस्यमय अपने
दिवास्वप्निल लोक में

हम सोचते कोई होगा
इस दुनिया का मालिक
जो अनुपस्थित रहते हुए भी
दिखा रहा अपनी जादूगरी
हमने बड़ी कोशिश की
फिर भी
न दिखाई दिया वह कहीं
कभी हमें
दुनिया के बेलौस अंधेरों में
हमें लगता
उसके सिपाही ताक रहे हैं हमें
दरवाज़ों के दरीचों से
हम हुए हतप्रभ
अपनी आस्थाओं में

पर वह
न मिला कहीं

वह नहीं था मंदिर में
न मस्जिद के अहाते में
अजान को सुनता
गिरजाघर में भी
नहीं था कहीं
कोरल ध्वनियों के बीच

तब हमें एक दिन
दिखाई दिया वह
एक गरीब कृशकाय
वृद्धा की आंखों में
अंधे की लाठी में
एक घुमक्कड़ फकीर के गायन में
वह था हर ओर नुमाया...
...अगर हो कोई
देखने वाली आंख।

9/ए, पूजा हाउस बिल्डिंग सोसायटी, सन्दल हिल्ज, कामनानगर, (लोअर चक्कर), शिमला-171 005,
दूरभाष : 2633272

आलेख

हिन्दी पर उठते प्रश्न

● गोपाल जी गुप्त

ईश्वर ने मनुष्य को वरदान स्वरूप भाषा की महत्त्वपूर्ण साधन-सामग्री प्रदान की और इसी से मनुष्य ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। मनुष्य का समाज के साथ अटूट रिश्ता है। समाज में रहते हुए वह अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए भाषा रूपी साधन का प्रयोग करता है। इस दृष्टि से भाषा समाज-सापेक्ष है। किसी भाषा का उद्‌गम, विकास एवं परिवर्तन संस्कृति, जाति, राष्ट्र एवं काल के परिप्रेक्ष्य में होता है। अतः भाषा में किसी निश्चित स्तर तक के विकास के मूल्यांकन का प्रश्न भी समाज के विकास के साथ जुड़ा रहता है।

स्वतंत्रता बाद के अपने देश के विकास का विश्लेषण करने पर इस कटु सत्य से सामना होता है कि भारत के पास गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा की विशाल पूंजी होने के बावजूद हम देश के विकास का कृत्रिम प्रारूप ही निर्मित कर पाए हैं क्योंकि विकास कार्यक्रमों को अपनाते समय हम पाश्चात्य को श्रद्धा-भाव से निरखते हुए इतने प्रेरित हुए कि हमने मात्र अर्जन को ही अपना मूल ध्येय मान लिया। परिणामतः आज राजनीति से लेकर समाज के छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी भाषा के प्रश्न को अर्थोपार्जन एवं सत्ता से जोड़कर देखने लगा। हिंदी को राजभाषा के स्वर्णिम सिंहासन पर आसीन करने के बावजूद शासकीय तंत्र उसे वह दर्जा देने के प्रति उदासीन है। इसका मूल कारण भाषा के साथ सत्ता एवं अर्थ से जुड़े मुद्दे हैं। वस्तुतः अंग्रेजी के माध्यम से देश का अभिजात्य वर्ग सत्ता एवं अर्थोपार्जन पर अपना वर्चस्व बनाए रख सकता है। इसी से वह हिंदी को प्रोत्साहित तथा अंग्रेजी को त्यागना नहीं चाहता।

उल्लेख्य है कि गत शताब्दी के अंतिम दशक में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्च शिक्षा को अंग्रेजी में देने की वकालत करते हुए कहा कि उच्च शिक्षा की तकनीकी पुस्तकों का हिंदी में अभाव है और वे सभी अंग्रेजी में हैं। मैसूर विश्वविद्यालय के सी.एस. नरसिंहम ने भी इसकी पुष्टि की। इसपर शिक्षा-शास्त्री जयदेव सेठी ने कहा, "भारत में दो धाराएं चल रही हैं एक में इलीट है, अंग्रेजी है, आकर्षक नौकरियां हैं, उच्च स्तरीय अंतर्राष्ट्रीय बाजार है जबकि दूसरों में आम आदमी, उसकी दुविधाएं, भाषायी दिक्कतें तथा नौकरी की किल्लतें हैं। प्रायः उसे मज़बूरी में बीच में ही शिक्षा छोड़नी पड़ती है। इसी से अभिजात्य वर्ग अंग्रेजी मोह से उबर नहीं पाता तथा उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखने की वकालत करता है जो एक सोची-समझी नीति है, साजिश है ताकि इलीट-इलीट रहे, अमीर-अमीर गरीब-गरीब, शासक-शासक तथा शासित-शासित रहे। लोकतंत्र में भला इससे बड़ा मजाक हो भी क्या सकता है?

कन्नड़ के प्रख्यात लेखक, साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष तथा महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, कोट्टायम के पूर्व कुलपति यू.आर. अनंतमूर्ति भारतीय भाषाओं को अत्यंत समृद्ध मानते हुए कहते हैं कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उच्च एवं उच्चतम शिक्षा तक सब कुछ पढ़ाया जा सकता है क्योंकि यह कहना कि उच्च शिक्षा की तकनीकी पुस्तकें मात्र अंग्रेजी में ही हैं, निरी मूर्खता है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक हरिद्वार के स्वामी श्रद्धानंद ने सन् 1908 में ही भौतिक, रसायन, वनस्पति विज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान, नृतत्त्व शास्त्र, समाज शास्त्र आदि की पुस्तकों को अपने विश्वविद्यालय में हिंदी में प्रकाशित करा ली थीं तथा वह बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से ही वहां सभी विषयों की उच्च शिक्षा हिंदी में देने का श्रीगणेश कर दिया था।

कन्नड़ के प्रख्यात लेखक, साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष तथा महात्मा गांधी विश्वविद्यालय, कोट्टायम के पूर्व कुलपति यू.आर. अनंतमूर्ति भारतीय भाषाओं को अत्यंत समृद्ध मानते हुए कहते हैं कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उच्च एवं उच्चतम शिक्षा तक सब कुछ पढ़ाया जा सकता है क्योंकि यह कहना कि

लघु कथा

इज्जत

● प्रदीप गुप्ता

गाड़ी अनाथ आश्रम के आगे रुकी। राजेश तेज कदमों से चलता हुआ आश्रम के स्वागत कक्ष में पहुंचा। उसने स्वागत कक्ष के कर्मचारी को अपना परिचय देते हुए कहा, "आई एम राजेश सिन्हा, जनरल मैनेजर ऑफ इंडस्ट्री।"

"सर! कहिए आपको क्या काम है?" कर्मचारी ने पूछा।

"आई वांट टू मीट विद रूपा सिन्हा।" राजेश ने कहा।

"सर! आप रुपा जी से मिलना चाहते हैं।"

"यस, आई वांट टू सी हर।"

"ठीक है, मैं अभी रूपा जी को लेकर आता हूं।" कर्मचारी ने राजेश से कहा।

अपनी मां को सामने देखकर राजेश का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुंच गया था। वह कहने लगा, "तुम्हें तो मां कहते हुए भी शर्म आती है। पहले तो अनाथ आश्रम में शरण लेकर घर की इज्जत नीलाम कर दी। अब अखबार में अपना इंटरव्यू देकर पूरे समाज में मेरा बेड़ा गर्क कर दिया है। पूरे ऑफिस में मुझे सब शंकित नजरों से देख रहे हैं।

"बेटा! मैंने तो सच्चाई व्यक्त की थी। इसमें परेशान होने की क्या बात है? तुमने तो अपने बाप के मरने के बाद सारी संपत्ति पर अपना हक जमा लिया था। तुम्हारी पत्नी जिसे मैंने एक सुशील बहू समझा था, घर में मुझसे झाड़ू-पोचा, लगवाकर व बर्तन मंजवाती थी। फिर कपड़ों के ढेर रखकर उन्हें धुलवाती थी। तुम्हारी आंखों पर तो पर्दा पड़ा था, सो तुम्हें सिर्फ अपनी पत्नी ही दिखाई देती थी। मां किस हालत में जी रही है, उससे तुम्हें कोई सरोकार नहीं था। ऐसी बदतर जिंदगी जीने से अच्छा था कि वह आश्रम में आ गई थी। तब तुम लोगों ने पूरे मुहल्ले में यही बात कही थी कि मां तीर्थ- यात्रा पर गई है। और अब अखबार में मेरा इंटरव्यू छपा है तो अपनी मान-मर्यादा का खयाल आ गया।" रूपा अपनी ही रौ में बोले जा रही थी।

"मिस्टर राजेश सिन्हा आईंदा मुझसे मिलने इस अनाथ आश्रम में मत आना। कहीं ऐसा न हो कि 'इज्जत' बचाने के चक्कर में तुम स्वयं डूब जाओ।" रूपा दहाड़ते हुए बोली थी।

मां की कड़वी बातें सुनकर वह भारी मन से वहां से चला आया था। उसने मां की कोख को दागदार कर दिया था।

म. नं. 193/1, सुशीला स्मृति, निवास डियारा सेक्टर, बिलासपुर, हि. प्र.-174 001, मो. 94183 39078

उच्च शिक्षा की तकनीकी पुस्तकें मात्र अंग्रेजी में ही हैं, निरी मूर्खता है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक हरिद्वार के स्वामी श्रद्धानंद ने सन् 1908 में ही भौतिक, रसायन, वनस्पति विज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान, नृतत्त्व शास्त्र, समाज शास्त्र आदि की पुस्तकों को अपने विश्वविद्यालय में हिंदी में प्रकाशित करा ली थीं तथा वह बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से ही वहां सभी विषयों की उच्च शिक्षा हिंदी में देने का श्रीगणेश कर दिया था। इस दृष्टि से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा नरसिंहम आदि के वक्तव्य एवं हिंदी में तकनीकी पुस्तकों का अभाव बतलाना पूर्णतया तथ्यहीन, भ्रामक तथा अविवेकपूर्ण है।

वास्तविकता यह है कि राजनीतिक स्तर पर ही हिंदी को प्रोत्साहित करने, उसे उचित सम्मान देने की दृढ़ता का पालन करने का अभाव है। सच तो यह है कि हिंदी के विकास की गति तो तभी अवरुद्ध हो गई, जब उसे राजभाषा घोषित किया गया। राजभाषा को लेकर लाभ-हानि के अनेक तत्त्व उससे जुड़ते गए जो आज तक उसके विकास मार्ग के लिए विघटनकारी हैं। हिंदी के विकास को यदि सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में सुनियोजित किया जाता तो आज उसकी स्थिति कुछ और होती। आज स्थिति यह है कि हिंदी अनुवाद की भाषा बनकर रह गई है। चिंतन तथा वैचारिक स्तर के आधार पर उसकी विवेचना, रूपरेखा आदि के मामले में यह अंग्रेजी पर आधारित दिखती है। हिंदी के अध्ययेता सभा-सम्मेलनों में अपने विचार-भाव हिंदी के बजाय अंग्रेजी में प्रस्तुत कर अपनी विद्वता की अनुभूति करते हैं। इसलिए हिंदी भारत के जिस सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की अभिव्यक्ति करती है, वही उससे छूटती जा रही है क्योंकि वह पूर्व-नियोजित साजिश की शिकार बन गई है। काश! इसे राजनैतिक दांव-पेच में उलझाया न गया होता तो यह अंतर्विरोधों में न तो घुटन महसूस करती न प्रतिवर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाने की रस्म मात्र अदा की जाती।

यह सुखद है कि पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है जहां उसे प्रोत्साहन मिल रहा है, भले ही इसके साथ उनका भावनात्मक लगाव नहीं है जबकि इसके पीछे उनकी आर्थिक भावना ही प्रमुख है। अपने उत्पादों के विपणन हेतु पूरे विश्व का रुझान भारत के बाजार की ओर है जहां उनके उत्पाद के प्रचार के लिए हिंदी ही महत्त्वपूर्ण माध्यम है। अतः इसके भविष्य के लिए इसी तरह आशा की एक किरण दिख रही है। हो सकता है इसी के चलते यह अपना सम्मान पा सके।

'प्रेमांगन' एम.आई.जी. 292, कैलासविहार, आवास विकास योजना-1, कल्याणपुर, कानपुर, उ. प्र.-208017, मो. 5122 571795

आलेख (हिन्दी दिवस)

हिन्दी हैं हम...

● डॉ. देवेंद्र गुप्ता

महात्मा गांधी का हिन्दी के प्रति झुकाव और लगाव अनन्य था क्योंकि उनका यह दृढ़ मत था कि जिस देश के पास अपनी भाषा न हो वह देश गूंगा होता है। अपनी भाषा के बिना स्वतन्त्रता अधूरी होती है। उनके लिए भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। आजाद भारत की विडम्बना रही है कि जब तमिलनाडू सरीखे दक्षिण प्रान्त में हिन्दी का विरोध हुआ और जगह-जगह 'हिन्दी डाउन' के पोस्टर लगे थे तो लंदन के अखबार 'टाइम्स' ने सम्पादकीय में आश्चर्य व्यक्त किया था कि किसी देश के युवक एक विदेशी भाषा यानी अंग्रेजी को कायम रखने के लिए गोलियां खा रहे हैं। आजादी के इतने साल बीत जाने के बाद भी क्यों हम हिन्दी को सही अर्थों में न राष्ट्र भाषा बना पाए और न राजभाषा? हिन्दी का अपने ही मुल्क में विरोध का एक बदनसीब कारण यह भी रहा है कि आजादी के बाद भाषाओं का साम्प्रदायीकरण और राजनीतिकरण किया गया।

हंस पत्रिका के संपादक और कथाकार स्वर्गीय राजेंद्र यादव को यह कतई गवारा नहीं हुआ कि हिन्दी के नाम पर राजभाषा का बोर्ड तो लगा दें परन्तु दूसरी भाषाओं के प्रति रोष पनपने दें। प्रांतीय भाषाओं व बोलियों को लगता है कि सरकारी तौर पर उनके साथ भेदभाव किया जा रहा है। सरकारी तन्त्र की कार्यप्रणाली से नाखुश राजेंद्र यादव को यह लगा कि राजभाषा विभाग के लोग हिन्दी के लिए कुछ नहीं करते हैं और सरकार पैसे का अनाप शनाप खर्च करती है। लेकिन जब तक हिन्दी नौकरी यानी रोजगार की भाषा नहीं बनती तब तक वह 'हैसियत' की भाषा भी नहीं बनेगी। साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष गोपीचंद नारंग का विचार है कि अंग्रेजी को केंद्र के स्तर पर एसोसिएट भाषा बनाना और अब तक जारी रहना वह भी केवल इसलिए कि जब तक देश के सभी प्रांत तबदीली के लिए तैयार नहीं होते? लेकिन सभी प्रांत तबदीली के लिए कैसे तैयार होंगे, इसके बारे में नहीं सोचा गया। लेकिन जो किया गया है वह भी हमारे सामने है। आजादी के बाद हिन्दी को शासन की भाषा बनाने की कोशिश शुरू हुई जिसके लिए इसका मानकीकरण किया जाने लगा। करीबन 60 साल से भाषा बनाने की कोशिश से एक मानक भाषा तो बनी लेकिन वह न तो आम लोगों के इस्तेमाल की रही और न राजकाज की भाषा। सरकारी काम काज में अभी भी अंग्रेजी का वर्चस्व है, हिन्दी ड्राफ्ट को अहमियत नहीं दी जाती वहां भी पुष्टि के लिए अंग्रेजी ड्राफ्ट से मिलान किया जाता है। हिन्दी अनुवाद के मानक ऐसे हैं कि विचारों की सम्प्रेषणीयता ही गड़बड़ा जाये तो फिर अंग्रेजी की मूलप्रति निकाल कर ही संतोष करना पड़ता है। सिविल सेवा में हिन्दी विषय आजकल एक ताजातरीन उदाहरण है। मृणाल पांडे ने इसे सिविल सेवा की भाषा ग्रंथी कह कर विवेचना की है।

लेकिन दफ्तर के बाहर हिन्दी की स्थिति भिन्न है। आम भारतीय उत्तर भारत से पश्चिम भारत तक अपनी बीसीयों बोलियों से सिंचित हिन्दी बोल रहा है। चौपाल से चैनल तक हिन्दी छायी हुई देखने को मिलती है। पिछले 20 वर्षों से टी0 वी0, रेडियो, फिल्में तथा अखबार, विज्ञापन उद्योग, मल्टीनेशनल कंपनियों के ब्रांड बाजार ने इसे ग्रामीण स्तर तक सीधे संवाद की भाषा बना दिया है। शुद्धतावादी अथवा खतरावादी इस क्रमवार बदलाव को नहीं पहचान पा रहे या पहचानना चाहते। ग्रामीण कम पढ़े - लिखे ही सही लेकिन यही हिन्दी बोलने वाले इस विश्वयापी बदलाव को समझ रहे हैं। इसलिए बदलाव के चलते हिन्दी में अंगेजी के शब्द भी आने लगे हैं। हमें यह पहचानना होगा कि यह सब जीवन की रोजमर्रा की व्यावहारिकता में हो रहा है। हिन्दी भाषा और बाजार दोनों में विस्तार के चलते अंगेजी के शब्द हिन्दी में होने लगे हैं। हमें लगने लगता है कि हिन्दी खराब हो रही है और अंग्रेजी उस पर हावी हो रही है। इस मनोदशा को हिन्दी भाषाविद सुधीश पचौरी ने सिरे से नकार दिया है। उनका दृष्टिकोण है कि हिन्दी को इससे अंग्रेजी शब्दों से किस तरह खतरा हो सकता है। वकौल सुधीश पचौरी खतरावादियों का संप्रदाय पहले उर्दू को ठिकाने लगाता था और हिन्दी को सौ फीसदी संस्कृत के खूंटे से बांधना चाहता था। अब वैसा नहीं हो पा रहा है। कहना चाहिए कि वह खूंटा ही इस भूमण्डलीकरण में उखड़ गया है जिससे हिन्दी अब तक बंधी पागुर करती रहती थी। सुधीश पचौरी ने खूब कहा है कि भूमण्डलीकरण और मुक्त बाजार ने भाषाओं को एक महामिक्सी में डाल दिया है। हिन्दी को बंटी और बबली की भाषा बनाना चाहिए। अभी तक तो हिन्दी की लड़ाई अंग्रेजी को अपदस्थ करने की रही है। लेकिन इधर एक नया खतरा विभिन्न भारतीय भाषाओं व बोलियों द्वारा 8वीं सूची में स्थान पाने को लेकर उभर रहा है। दूसरा, केंद्रीय साहित्य अकादमी से मान्यता को लेकर है। लेकिन हमने महसूस किया है कि मान्यता, पुरस्कार, वित्तीय बजट

व अकादमी गठन की छोटी- छोटी सुविधाओं के चलते उस बोली अथवा भाषा का कितना सुधार-विस्तार हो पाया है? आमजन तो उन बोलियों को प्रयोग में ला रहे हैं। लेकिन यदि भारत के बोली-क्षेत्र और जनसंख्या ही मुख्य हिन्दी भाषी क्षेत्र से निकल जाएंगे तो हिन्दी कहां की रहेगी? इसका राष्ट्रीय स्वरूप ही नहीं बचेगा तो विशाल क्षेत्र और विशाल जनसंख्या के अभाव में हम हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने का स्वप्न फिर कैसे देख सकेगें?

14 सिंतबर, 1948 को संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा घोषित किया था। इसीलिए 14 सिंतबर का दिन हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। कुछ सरकारी संस्थाए इस दिन के बहाने 'हिन्दी सप्ताह' और 'हिन्दी पखवाड़े' का आयोजन भी करती है। पर चूंकि 'हिन्दी दिवस' एक सरकारी कार्यक्रम है और यह महज एक कर्मकाण्ड बनकर इसलिए रह गया है कि यह सीधे-सीधे लोगों से नहीं जुड़ पाया है जैसे वैलन्टाइन डे, फैंडशिप डे, मदर - फादर डे इत्यादि को आमआदमी उत्साहपूर्वक सफल बनाते हैं। इसका कारण यह है कि लोग इस बहाने दिवस विशेष के मकसद से खुद को जोड़ लेते हैं। इसलिए शिकवे शिकायतें अगर हैं भी तो वह सरकारी तंत्र के दिखावे से रहती हैं। हमारे यहां हिमाचल में पंजाब, हरियाणा की अपेक्षा स्थिति बेहतर नजर आती है। प्रदेश के पहले मुख्यमंत्री डॉ0 परमार हिन्दी के विद्वान थे और शोधार्थी रहे। यहां के अनेक राजनेता भी हिन्दी लेखन व शोध में रुचि लेते थे। यथा लालचंद प्रार्थी, शान्ता कुमार आदि। यह अंत्यत सुखद है कि हिमाचल सरकार में मंत्रिमण्डल के मसौदे हिन्दी में तैयार होते हैं और उनके निर्णय भी हिन्दी में आ रहे हैं। लेकिन और भी राजनीतिक संकल्पशीलता दिखाने की जरूरत है और यह भी साफ हो जाना चाहिए कि आम भारतीय की हिन्दी और सरकारी प्रयोग में लाई जा रही हिन्दी में बहुत फर्क न हो। लगे कि शासन हमारी ही भाषा का प्रयोग कर रहा है न कि अनुवाद की। आज जब प्रशासनिक सुधारों के अंतगर्त जवाबदेही, पारदर्शिता एवं संवेदनशील प्रशासन आदि की बात प्राथमिकता के तौर पर हो रही है तो उसमें हिन्दी भाषा की सहजता और सुगमता को भी जोड़ कर देखा जाना चाहिए।

'संपादक -सेतु', आश्रय खलीणी,
शिमला - 171002, मो. - 94184-76375

हरिकृष्ण मुरारी की कविताएं

विनाशकारी बादल

आओ ! पूजा करें जल की⁄ यही तो जीवन है
पूजा वायु की भी कर लेते हैं⁄ इसी से तो जीवन चल रहा है
फूक निकली सब समाप्त
पूजा तो आग की भी करनी चाहिए⁄ जिसने संतुलित रखा है सभी का जीवन
पूजा.....आकाश की भी होनी चाहिए
जो समस्त जीवों में जीवन बरसाता है
धरती हमारी मां है⁄ इसे... बिन पूजा के नहीं छोड़ सकते
जो प्रत्येक जीव में जीवन अंकुरित करती है।
पूजा मृत्यु की भी करो⁄ यही अमर सत्य है
बाकी सब हो चुका है झूठ में परिवर्तित
फंसे हैं मोह के बन्धनों में हम सभी
अंहकार के पाश ने जकड़ रखे हैं⁄ क्रोध के मद में वशीभूत होकर
लोभ की ज्वाला में भड़क रहे हैं⁄ कामातुर विनाशकारी बादल।

अहसास-विश्वास और स्वास

अहसास विश्वास और स्वास में
सदा तुम्हें ही पाया है,
यादों की छांव में फूलों का आभूषण पहनाया है।
कोशिश की दर्द को नहीं तुम्हें कभी बताया है
तुम सब जानते हो तुम्हीं ने सदा मुझे सहलया है।
धीरज-धर्म के सदा बने रहे रक्षक मालिक !
सभी धर्मों का सम्मान करना भी तो
आपने ही मुझे सिखाया है।
अहसास विश्वास और स्वास में तुम्हें पाया है।

आपको पता है--- मैंने क्या खोया क्या पाया है
सदा दी मुस्कुराहट दुःखों में भी
धीरज से लवालब रखा नहीं कभी रुलाया है।
भूल हुई जब भी मुझसे मेरे मालिक !
आपने ही तो उसे भी मुझको सदा जताया है
और बरसने लगे मेघ यातनाओं के जिन्दगी में
बनकर आंधी गगन में बिचरने लगी
काले मेघों को उस हवा से हटाया है।
बचाया है - बचाया है - बचाया है ,
अहसास विश्वास और स्वास में
सदा तुम्हें ही पाया है,

चिन्तन कुटीर गांव व डा. रैत तह. शाहपुर,
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176208, मो0: 98165-16978

आलेख

देश में उच्च शिक्षा का मात्रात्मक गुणात्मक विकास एवं निजीकरण

● राजेश कुमार जसवाल

उच्च शिक्षा किसी भी देश के सामाजिक-आर्थिक विकास तथा सभ्य समाज की स्थापना का आधारभूत बिंदु होती है। कोई भी राष्ट्र जो विश्व में अपनी अलग पहचान बनाना चाहते हैं व अन्य देशों के विकास के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहते हैं, उनके पास शिक्षा पर निवेश करने के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प नहीं है। भारत वर्ष में भी लम्बे समय से शिक्षा एक सामाजिक तथा लोकहितकारी सेवा के रूप में जानी जाती रही है। यहां उच्च शिक्षा के जो प्रारम्भिक प्रयास हुए उनमें धनी व सम्पन्न लोगों ने भूमि, भवन तथा धन के द्वारा अपना भरपूर सहयोग दिया। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय इसका ज्वलंत उदाहरण है। भारत देश की उच्च शिक्षा की गौरवशाली परम्परा में तक्षशिला, नालन्दा तथा विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों का नाम जुड़ा हुआ है, जहां पूरे विश्व के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आया करते थे।

पिछली सदी में जहां उच्च शिक्षा का केन्द्र समाज के भौतिक संसाधनों की वृद्धि रहा तो वहीं इस सदी में बदलते परिवेश में उच्च .शिक्षा का केन्द्र बिन्दु ज्ञान और सूचना पर आधारित समाज हो गया है। पूरे विश्व में आर्थिक विकास में ज्ञान के संसाधनों की प्रभुसत्ता भौतिक संसाधनों की तुलना में बढ़ती जा रही है। ऐसे में उच्च शिक्षा और उच्च शिक्षण संस्थानों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। आज तेजी से बदलती दुनिया के साथ चलने में एक निश्चित स्तर की क्षमता चाहिए। बाजार और समाज, परिवर्तन की अभिव्यक्ति के अच्छे सूचक हैं। इनसे संकेतों को ग्रहण कर विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों को अपने पाठयक्रमों व्याख्याताओं को पढ़ने-पढ़ाने के तरीकों और परीक्षा पद्धतियों में ऐसा बदलाव लाना होगा, जो परिवर्तन को हमारी आवश्यकतानुसार आत्मसात करने की क्षमता रखता हो। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विदेशी विश्वविद्यालयों, औद्योगिक घरानों व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की वर्तमान जरुरतों के अनुसार न तो हम शिक्षा का ढांचा खड़ा कर पाएंगें न ही हमारी उच्च शिक्षा भारतीय परिवेश तथा यहां की परम्परा व संस्कृति के अनुकूल ही रह पाएगी। दुनिया की इन बदलती जरूरतों को हमारी उच्च शिक्षा को समझना होगा अन्यथा हमारा समाज पिछड़कर रह जाएगा।

देश में उच्च शिक्षा का मात्रात्मक आयाम कितना है, यह जानने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जारी कुछेक आंकड़ों का उल्लेख सामयिक है। 1947 में भारत में लगभग 20 विश्वविद्यालय और 500 महाविद्यालय कार्यरत थे। 50 वर्ष बाद 1996-97 में विश्वविद्यालयों की यह संख्या बढ़कर 232 और महाविद्यालयों की संख्या 9703 हो गई। जबकि वर्तमान में उच्च शिक्षा का यह आंकड़ा लगभग 620 विश्वविद्यालय (जिसमें 298 राज्य विश्वविद्यालय, 130 डीम्ड विश्वविद्यालय, 44 केन्द्रीय विश्वविद्यालय व 148 निजी विश्वविद्यालय शामिल हैं) व 33000 महाविद्यालय तक पहुंच गया है। इसी तरह 1972-73 में उच्च शिक्षण संस्थाओं में 21.60 लाख विद्यार्थियों का नामांकन था, जो 1996-97 में बढ़कर 67.50 लाख तथा वर्तमान में लगभग 250 लाख से भी अधिक हो गया है। जबकि 1996-97 में उच्च शिक्षण संस्थानों में लगभग 3 लाख शिक्षक तथा वर्तमान में यह आंकड़ा लगभग 10 लाख शिक्षक हो गया है।

उच्च शिक्षा में संलग्न युवा शक्ति के आकलन के लिए 18-24 वर्ष का आयुवर्ग लिया जाता है। इस आयुवर्ग वाले युवाओं का मात्र 10-12 फीसदी ही उच्च शिक्षा का लाभ प्राप्त कर पा रहे हैं। जबकि यही उच्च शिक्षा जर्मनी में 25 फीसदी, फ्रांस में लगभग 50 प्रतिशत, अमेरिका में 80 प्रतिशत तथा कनाडा में लगभग 90 फीसदी विद्यार्थियों की पहुंच में है। भारत जैसे विशाल व विश्व की दूसरी शैक्षिक व्यवस्था होने के वाबजूद महज 12 फीसदी का आंकड़ा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षणिक गरीबी की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करता है। एक तरफ जहां देश में 18-24 आयुवर्ग के कुल 10-12 फीसदी छात्र ही उच्च शिक्षा में आ पा रहे हैं। तो दूसरी तरफ देश में लगभग 25-30 फीसदी आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है। देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त इस समस्या को लेकर दो प्रमुख कारण बताए जा रहे हैं।

जिसमें पहला कारण उच्च शिक्षा के क्षेत्र में घटता सरकारी व्यय तथा दूसरा देश में मूलभूत सुविधाओं मसलन रोजी रोटी की तलाश में भटकती हमारी आधी आबादी है। इन परिस्थितियों में देश के अन्दर उच्च शिक्षा को एक ऐसी दिशा दिए जाने की आवश्यकता है कि एक तरफ जहां देश की लगभग एक तिहाई आबादी को सम्मानजनक आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर खड़ा किया जा सके तो दूसरी तरफ भारत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाकर उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों का नामांकन अन्य देशों के समान स्तर पर लाना होगा और वह भी गुणवत्ता तथा स्तर में समझौता किए बगैर।

इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष 2020 तक छात्रों के नामांकन दर को 30 फीसदी तक हासिल करने के लिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के सुझाव पर अमल करने के लिए जहां देश में लगभग 1500 विश्वविद्यालय व 45000 महाविद्यालय स्थापित करने होगें तो वहीं विश्वस्तरीय शिक्षण संस्थानों में अपनी पहचान बनाने का भी जबरदस्त दवाव होगा। इसी दिशा में प्रयास करते हुए भारत सरकार जहां विदेशी विश्वद्यिालय को देश में लाने का विचार कर रही है तो वहीं पब्लिक प्राईवेट पार्टनरशिप के आधार पर देश में उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने पर बल दिया जा रहा है ताकि देश में उच्च शिक्षा की पहुंच जहां समाज के हरेक वर्ग तक हो सके तो वहीं उच्च शिक्षा का स्तर भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का हो।

हमारे देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में घटते शैक्षणिक दिवस तथा जरूरतों के हिसाब से शोध न होने की बातें हमेशा उठती रही है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि इस दिशा में हमने कोई प्रयास ही नहीं किए हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार लाने हेतु समय-समय पर अनेक समितियां व आयोग गठित होते रहे हैं। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए यूजीसी द्वारा गठित प्रो. जे. के.ए. तरीन की अगुवाई वाली समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा कि स्थायी प्राध्यापकों को विश्वविद्यालय में हफ्ते में कम से कम 40 घण्टे और पूरे साल में 180 शैक्षिक दिन उपलब्ध रहना चाहिए। समिति ने अपनी सिफारिशों में यह भी कहा कि विश्वविद्यालय व कॉलेजों में एक समान शिक्षक छात्र अनुपात तय करना कठिन है क्योंकि शिक्षण के विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग तरह के पाठ्यक्रम होते हैं। इसलिए तरीन कमेटी ने अपनी सिफारिशों में केन्द्रीय विश्वविद्यालय और डीम्ड विश्वविद्यालय में पीजी स्तर पर विज्ञान संकाय में यह अनुपात 1:10, मानविकी व सामाजिक संकाय में 1:15, वाणिज्य व प्रबंधन संकाय में 1:15 और मीडिया एवं पत्रकारिता में 1:10 होना चाहिए। जबकि स्नातक स्तर पर सामाजिक विज्ञान संकाय में 1:30, विज्ञान में 1:25, मीडिया एवं पत्रकारिता में 1:15 तथा बी.एड. में इसे एन.सी.टी.ई. के मापदण्डों के अनुसार बनाने की सिफारिश की है। ऐसे में गुणवत्ता लाने हेतु प्रो. तरीन कमेटी की यह सिफारिशें काफी अहम साबित हो सकती हैं। परन्तु दूसरी तरफ यदि विश्वविद्यालयों में अध्यापकों की उपलब्धता पर नजर दौड़ाई जाए तो स्थिति एकदम विपरीत नजर आ रही है। इस दिशा में प्राप्त आंकड़ों की बात करें तो देश के अधिकांश केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में लगभग 30-40 फीसदी पद रिक्त चल रहे हैं। जबकि राज्य सरकारों द्वारा संचालित विश्वविद्यालयों में भी लगभग 40-45 फीसदी पद रिक्त चल रहे हैं। इसके अलावा पिछले कुछ वर्षों में देश के अन्दर खुले निजी व डीम्ड विश्वविद्यालयों की हालत इससे भी कहीं बदतर कही जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में प्रो. तरीन कमेटी की सिफारिशें कैसे लागू होगी इस पर देश में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विरोधाभाषी स्वर उठते रहे हैं।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के सर्वेक्षण के आधार पर देश की 60 प्रतिशत आबादी 25 वर्ष से कम उम्र की है, जिसमें से महज 12 फीसदी ही उच्च शिक्षा में आ पाते हैं। साथ ही हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 2.64 लाख छात्र उच्च शिक्षा हेतु विदेशों की ओर रुख करते हैं तथा प्रतिवर्ष लगभग 27,000 करोड़ रुपया खर्च करते हैं। ऐसे में देश के अन्दर ही उच्च शिक्षा में गुणवता लाने, छात्रों के नामांकन दर को बढ़ाने तथा छात्रों का विदेशों में हो रहे पलायन को रोकने के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। देश में नामी विदेशी विश्वविद्यालय के यहां आने से उच्च शिक्षा का गुणात्मक स्तर बढ़ेगा तो वहीं देशी व विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रतिस्पर्धा की भावना भी बढ़ेगी। साथ ही हमारे युवाओं को विदेशी स्तर की उच्च शिक्षा यहीं पर उपलब्ध हो जाएगी। लेकिन देश के अन्दर इस कदम को लेकर शिक्षाविदों, राजनीतिक दलों व छात्र संगठनों में परस्पर विरोधाभासी स्वर देखने को मिल रहे हैं। जहां शिक्षाविदों व छात्रों का कहना है कि देश के उच्च शिक्षण संस्थान जहां शिक्षकों, मूलभूत ढांचे, विश्व स्तरीय सुविधाओं तथा आधुनिक तकनीकों के अभाव में विदेशी विश्वविद्यालय से पिछड़ जाएंगे जिसके कारण बेहतर सुविधाएं जुटाने की आड़ में न केवल स्ववित्त पोषित पाठ्यक्रमों को बढावा मिलेगा बल्कि उच्च शिक्षा का निजीकरण व व्यापारीकरण भी बढ़ेगा। जबकि विभिन्न राजनीतिक दलों व सामाजिक संगठनों का मानना है कि देश के करोडों गरीब, आदिवासी व पिछड़े क्षेत्रों से संबंध रखने वाले छात्र उच्च शिक्षा से वंचित हो जाएंगे। इस संदर्भ में इनका यही कहना है कि एक तरफ जहां हमारी सरकार उच्च शिक्षा में घटते निवेश को बढ़ाए तो वहीं उच्च शिक्षा समाज के हरेक तबके की पहुंच में हो सके। इस संदर्भ में विभिन्न राजनीतिक दलों, छात्र संगठनों व अन्य समाजसेवी संस्थाओं का कहना है कि जहां हमारे देश में उच्च शिक्षा पर प्रति छात्र खर्चा 400 डॉलर है तो वहीं यही खर्चा चीन में 2,728, रूस में 1,024 तथा ब्राजील में 3,986 यूएस डॉलर है। ऐसे में अब यही प्रश्न खड़ा हो रहा है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र

पिछली सदी में जहां उच्च शिक्षा का केन्द्र समाज के भौतिक संसाधनों की वृद्धि रहा तो वहीं इस सदी में बदलते परिवेश में उच्च शिक्षा का केन्द्र बिन्दु ज्ञान और सूचना पर आधारित समाज हो गया है। पूरे विश्व में आर्थिक विकास में ज्ञान के संसाधनों की प्रभुसत्ता भौतिक संसाधनों की तुलना में बढ़ती जा रही है। ऐसे में उच्च शिक्षा और उच्च शिक्षण संस्थानों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। आज तेजी से बदलती दुनिया के साथ चलने में एक निश्चित स्तर की क्षमता चाहिए। बाजार और समाज, परिवर्तन की अभिव्यक्ति के अच्छे सूचक हैं।

में 2020 तक 30 फीसदी छात्रों के नामांकन के लक्ष्य को गुणवता व निजीकरण से समझौता किये बगैर क्या हम हासिल कर पाएंगे?

ऐसे में देश की उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी पर इस तथ्य के साथ विचार किया है कि हमारी उच्च शिक्षा मैकाले की पद्धति के कारण जहां गुणवत्तायुक्त शिक्षा दे पाने में विफल साबित हो रही है बल्कि आज के बदलते दौर को देखते हुए उच्च शिक्षण संस्थान अपने लक्ष्य को हासिल नहीं कर पा रहे हैं। नतीजा जहां देश में उच्च शिक्षित बेरोजगारों की फौज लगातार बढ़ रही है तो वहीं उद्योगों को विश्व स्तरीय मानकों के अनुसार दक्ष लोगों की सप्लाई करने में हमारे उच्च शिक्षण संस्थान लगातार न केवल विफल होते जा रहे हैं बल्कि उद्योगों को वर्तमान जरूरतों के आधार पर शोध भी नहीं करवा पा रहे हैं। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए देश में निजी शिक्षण संस्थानों की भागीदारी को बढ़ावा देने पर बल दिया। एक तरफ जहां देश को ऐसे स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, व्यावसायिक व तकनीकि प्रशिक्षण संस्थान उपलब्ध हो सकेगें जिनकी आज देश को नितांत आवश्यकता है तो वहीं शिक्षा की लागत को कम कर सरकार के बोझ को भी कम करने में सरकार की सहायता करेंगें। लेकिन इस संदर्भ में भी देश के शिक्षाविदों, विभिन्न राजनीतिक दलों व आम छात्रों का कहना है कि सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में कॉरपोरेट जगत से जो सहयोग की अपेक्षा की थी उसमें समाज-हित कम तथा व्यापारिक हित ही सर्वोपरि रहा है। इस संदर्भ में देश के आम लोगों का यह भी कहना है कि सरकार से हर तरह की सहूलियत मसलन बिजली, पानी, जमीन इत्यादि लेने वाले निजी शिक्षण संस्थान समाज के प्रति अपेक्षित जिम्मेदारी का ईमानदारी से निर्वहन नहीं करते हैं। नतीजा आज देश का गरीब, पिछड़ा व आदिवासी क्षेत्रों से ताल्लुक रखने वाला आम छात्र बेहतर शिक्षा से वंचित हो रहा है तो वहीं वर्तमान औद्योगिक जरूरतों के हिसाब से न तो शोध कार्य हो पा रहे हैं न ही दक्ष लोगों की आपूर्ति हो पा रही है। ऐसी परिस्थिति में हमारे उच्च शिक्षण संस्थान विश्व स्तरीय मानकों पर कैसे खरा उतर सकें तथा देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक व मात्रात्मक सुधार कैसे हो इसके लिए निम्नलिखित सुझाव अहम हो सकते हैं

प्रो. यशपाल समिति (Renovation & Rejuvenation of Higher Education) की सिफारिशों के आधार पर विभिन्न नियामक संस्थाओं को समाप्त कर एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जानी चाहिए ताकि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार की गुंजाइश कम हो सके। जैसा कि पिछले कुछ वर्षों से विभिन्न नियामक संस्थाओं में देखने को मिला है।

देश में विश्व स्तरीय गुणवत्ता की कसौटी पर अधिक से अधिक तकनीकी संस्थान जैसे आई.टी.आई., पॉलीटैक्नीक व इंजीनियरिंग कॉलेज खोले जाएं ताकि युवाओं को आज के संदर्भ में विश्व स्तरीय रोजगारोन्मुखी शिक्षा मिल सके।

देश में चल रहे सभी केन्द्रीय व राज्य विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के तहत शिक्षकों के रिक्त पदों को प्राथमिकता के आधार पर भरा जाना चाहिए ताकि किताबी ज्ञान के साथ-साथ शोध में भी हम आगे बढ़ सकें।

निजी उच्च शिक्षण संस्थानों (निजी व डीम्ड विश्वविद्यालयों) में भी यू.जी.सी. के तय मापदण्डों के तहत ही प्रशासनिक अधिकारियों (कुलपति, रजिस्ट्रार इत्यादि) व शिक्षकों की नियुक्तियां होनी चाहिए ताकि उच्च शिक्षा का स्तर समान बना रहे। विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक व शोध गतिविधियों को बढ़ावा देने हेतु प्रो. तरीन कमेटी की सिफारिशों को यथावत लागू करने पर गंभीरतापूर्वक विचार होना चाहिए।

निजी विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों व अन्य तकनीकी तथा व्यावसायिक संस्थानों में कम से कम 25 फीसदी सीटें आर्थिक व सामाजिक तौर पर कमजोर विद्यार्थीयों के लिए सरकारी संस्थानों के बराबर आरक्षित करने का प्रावधान होना चाहिए ताकि उच्च शिक्षा के समान अवसर देश के सभी वर्गों को मिल सकें।

देश के बेहतरीन विश्वविद्यालयों व तकनीकी संस्थानों में विश्व स्तरीय आधारभूत ढांचा विकसित कर विदेशी छात्रों को आकृष्ट कर संस्थानों की आय में वृद्धि की जानी चाहिए।

प्रत्येक विश्वविद्यालय व अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों में 'संस्थान विकास कोश' गठित किए जाने चाहिए ताकि जहां समर्थ व इच्छुक व्यक्ति स्वेच्छा से धन दे सके तो वहीं गरीब मेधावी छात्रों का खर्चा उठाया जा सके।

देश में उच्च शिक्षा की बढ़ती मांग को देखते हुए विश्वविद्यालय दूरवर्ती शिक्षा के माध्यम से तकनीकी व अन्य व्यावसायिक पाठयक्रमों का संचालन गुणवत्ता से समझौता किए बगैर होना चाहिए ताकि इच्छुक व्यक्ति व्यवसाय के साथ-साथ

उच्च शिक्षा हासिल कर अपने ज्ञान व कौशल में विकास कर सके।

देश में केवल उन्ही विदेशी विश्वविद्यालयों को आने की इजाजत मिलनी चाहिए जो अपने यहां कम से कम पहले पांच स्थानों पर शुमार हो। साथ ही ऐसे पाठयक्रम चलाने की अनुमति दी जानी चाहिए जो वर्तमान समाजिक व वैश्विक जरूरतों को पूरा करते हों।

आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार देखने को मिल रहा है, जिसमें उच्च शिक्षित लोगों की भागीदारी चिन्तनीय है। ऐसे में भारतीय समाज व यहां की संस्कृति तथा परम्पराओं का विभिन्न व्यावसायिक व तकनीकी पाठयक्रमों के साथ आवश्यक तौर पर समावेश करना चाहिए ताकि हमारी नौजवान पीढ़ी वैश्विक ज्ञान के साथ-साथ अपने समाज, संस्कृति, इतिहास, नैतिकता, मूल्यों तथा यहां की लोकपरम्पराओं को भी जाने व उनको अपने सार्वजनिक व निजी जीवन में उपयोग में लाएं।

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी,
पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, (हि.प्र.)-173025।
मोबाईल : 094181-59078

संदर्भ सूची

1 जे. पी. सिंह(इक्सवींसदी का भारत और शिक्षा संकट एक अवलोकन, कुरुक्षेत्र पत्रिका, सितंबर, 2003, पृष्ठ 7-10
2 कल्पलता पाण्डेय, भारत में उच्च शिक्षा : निजी क्षेत्र की भूमिका भारतीय आधुनिक शिक्षा (एनसीईआरटी), जुलाई, 2002, पृष्ठ 41-47
3 शैलजा सिंह(उच्च शिक्षा का वाणिज्यीकरण भारतीय आधुनिक शिक्षा (एनसीईआरटी), अक्तूबर, 2001, पृष्ठ 31-34
4 सुनील कुमार सिंह, भारतीय उच्च शिक्षा : संसाधनों की कमी और वाणिज्यीकरण, भारतीय आधुनिक शिक्षा (एनसीईआरटी), अप्रैल, 2001,पृष्ठ 42-45
5 शैक्षणिक सुधार (राष्ट्रीय संगोष्ठी की रिपोर्ट) राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, 14-15 मार्च, 2001
6 Arvind Panagariya; Pursuing Excellence and Equity;The Times of India, New Dehli/Chandigarh, April 10, 2010
7 Ashok Kumar Yadav; Foreign Universities will Benefit India; The Tribune, Chandigarh, Feb.07, 2010
8 B.S.Ghuman; Corruption in Education;The Tribune, Chandigarh, March.07, 2010
9 Recomendations of Prof. Yashpal Committee report (Renovation & Rejuvenation of Higher Education; first intrim report published on 1st march, 2009 & final report published on 25thJune, 2009)
10 R.S.Grewal; Making Higher Education Industry Relevant;The Tribune, Chandigarh, June 18, 2013
11 Recommendations of Prof. J.K.A.Taren; UGC constituted committee on Higher Education.
12 Towards a Knowledge Society; National Knowledge Commission Report, 2008.

क्षणिकाएं

● मीना गुप्ता

1
झूठे अभिमान
की गठरी
उठाए सिर पर
फिरते हैं
बहुत नादां हैं ये
इन्हें जीना नहीं आया।



2.
मेरा मैं
फन फैलाए खड़ा है
उसको और दुलार रहा हूं
मैं।

3.
दफन कर दो
इस मैं को तो
जीना आ जाएगा।

4.
न मैं होगा
न तुम होगे
सभी में वह
बस वह नज़र आएगा।

5.
है पतझड़
तो बहारे हैं
बस जरा
इंतजार कर लो।

6.

मिट भी जाऊं तो
मिटने का गम नहीं मुझे
क्योंकि
कल फिर नई उम्मीद
लेकर जन्मूंगा।

7.
नहीं बुझता है
तूफानों में
जो हरदम
दिल में जलता है
वह मेरी
उम्मीद का दीया है।

8.
वक्त के हाथों में
खुद को सौंपकर
वक्त के संग
खेलता जा यूं
जैसे वक्त
तेरा सारथी हो।

9.
मैं पतझड़ में
बहारें ढूंढता हूं
है खोया मैंने बहुत कुछ
मगर उम्मीद बाकी है।

द्वारा रामनाथ धाकड़,
मु. पो. लटूरी हनुमान मंदिर,
त. सांगोद, जिला कोटा,
राजस्थान-325207
मो. 70238 09663

आलेख

'मैं नीर भरी दुःख की बदली...'

● शशिभूषण शलभ

हिन्दी साहित्य में लोकप्रिय कवयित्री महादेवी वर्मा का नाम स्मरण आते ही आंखों के सामने ऐसी कवयित्री का चित्र उभर आता है, मानो चित्रकार ने उसे दुःख भरे रंगों की तूलिका से बनाया हो।



महादेवी वर्मा हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री बनी और छायावाद से पाठकों को मुग्ध करती हैं लेकिन किशोरावस्था में उन्हें हिन्दी की छत्रछाया से भी दूर रहना पड़ा। महादेव का जन्म सन् 1907 में होली के दिन हुआ था। महादेवी का जन्म उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद नगर में हुआ था।

महादेवी के पिता का नाम गोविंद प्रसाद और माता का नाम हेमा रानी था। महादेवी के दादा का विश्वास था कि इस लड़की का जन्म कुलदेवी दुर्गा की अनुकम्पा से हुआ है इसीलिए उन्होंने लड़की का नाम महादेवी रख दिया। महादेवी अपने बहन-भाइयों में सबसे बड़ी थीं।

बचपन में महादेवी को हिन्दी का वातावरण बिलकुल नहीं मिला। दादाजी अरबी-फारसी के विद्वान होने के कारण हाफिज रूमी आदि सूफी कवियों को पढ़ा करते थे। उर्दू में उन्हें मिर्ज़ा गालिब की शायरी ही पढ़ने योग्य लगती थी। महादेवी के पिताजी ने प्रयाग विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. किया था। पिता जी भी मिल्टन, शेक्सपीयर आदि को ही पढ़ते थे। पिताजी ने महादेवी की मां को पत्र लिखने के लिए हिन्दी सीखी थी।

घर में हिन्दी के लिए थोड़ा-सा भी वातावरण नहीं था। महादेवी की मां जबलपुर की थीं। उनके पिता जी हिन्दी, संस्कृत के विद्वान होने के साथ-साथ हिन्दी व संस्कृत में कुछ रचनाएं भी लिख लेते थे। महादेवी जी की माता जी हिन्दी संस्कृत में रामचरित मानस और गीता पढ़ लेती थीं। बस, इसी से महादेवी को हिन्दी का थोड़ा-सा वातावरण उपलब्ध हुआ।

उस समय हिन्दी साहित्य में देवकी नन्दन खत्री के चंद्रकांता, भूतनाथ व चंद्रकांता सन्तति का अधिक बोलबाला था। थोड़ा-बहुत पंचतंत्र पढ़ा जाता था। पंचतंत्र से प्रेरणा लेकर महादेवी ने बचपन में पशु-पक्षियों की कथा कहने में आनंद अनुभव किया। यहीं से महादेवी की कल्पना में साहित्य के बीज अंकुरित होने लगे थे।

महादेवी जी अपने दादाजी के सूफियों के विचारों से प्रभावित तो हुईं लेकिन उनमें महादेवी को ईश्वर का अस्तित्व तो मिला लेकिन कर्मकाण्ड के दर्शन नहीं हुए। उस समय महादेवी को अपने दादा के पिताजी के अंग्रेजों से संघर्ष में मृत्यु होने की घटना ने बहुत प्रभावित किया था। महादेवी के पिता जी ने लखनऊ में अंग्रेज़ों के खिलाफ खूब संघर्ष किया था। उस संघर्ष ने भी महादेवी को स्वतन्त्रता के लिए खूब प्रेरित किया था।

महादेवी ने देश में गुलामी का वातावरण भी देखा था और स्वतन्त्रता के बाद का वातावरण भी। उन्हें इस बात पर बहुत आश्चर्य होता था कि स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करते समय हिन्दू व मुस्लिम कंधे से कंधा लगाकर संघर्ष करते थे और स्वन्त्रता मिलने पर हिन्दू-मुस्लिम के बीच साम्प्रदायिकता कहां से आ गई।

महादेवी को माताजी और पिताजी के सामंजस्य से बहुत प्रेरणा मिली। महादेवी अपने पिताजी से अकसर प्रश्न किया करती थीं, "पिता जी! आप तो इस कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं करते हैं, फिर मां के कर्मकाण्ड में क्यों भाग लेते हैं?" इस प्रश्न पर पिता जी उत्तर देते थे, "बेटी! मैं कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं करता पर तुम्हारी मां में तो विश्वास करता हूं।" अर्थात् मां के कारण कर्मकाण्ड मानता हूं।" उनके संतोष के लिए पिताजी कर्मकाण्ड को मानते थे।

पिताजी के इस सामंजस्य के विचारों ने महादेवी को जीवन दृष्टि दी। जीवन के प्रति महादेवी के विचार कुछ अलग दिखाई देते हैं। आस्थाओं के बीच में विभाजक रेखाएं दिखाई देती हैं, उन्हें

मनुष्य के अहंकार ने बनाया है। महादेवी के विचार से ये रेखाएं कल्पित हैं। इन रेखाओं को नष्ट करके ही सुख प्राप्त किया जा सकता है।

महादेवी के विचार उनकी माता जी के जीवन से बहुत प्रभावित हुए। माताजी रामचरितमानस का पाठ सस्वर किया करती थीं। विनय पत्रिका, मीरा, सूरदास के पद्य गाया करती थीं। बस उनके सस्वर पाठ से महादेवी काव्य के प्रति आकर्षित हुईं। माता के स्वर का सहज माधुर्य और भावभीनी तन्मयता उनके मस्तिष्क में गहराई तक उतर जाती थी और उन्हें काव्य रचना के लिए प्रेरित करती थी। मीरा के भजन 'शयन कीजिए कृपाल भीग रही रैन...' और 'जागिए कृपानिधान पंखी बन बोले'... जैसी प्रभाती ने महादेवी को बहुत प्रेरित किया।

महादेवी अपनी माताजी के सस्वर पाठ से प्रभावित होकर किशोरावस्था में तुकबंदी करने लगी थीं। उन्होंने पहले-पहले लिखा था "आओ प्यारे तारे आओ, तुम्हें झूलाऊंगी झूले में, तुम्हें सुलाऊंगी फूलों में। मेरे आंगन को चमकाओ।"

महादेवी की माताजी सर्दियों में ठाकुर जी को शीतल जल से स्नान कराती थीं तो उनका हृदय सहानुभूति से भर जाता था। उस अनुभूति को महादेवी ने इस तरह तुकबंदी की थी, "मां के ठाकुर जी भोले हैं, ठण्डे पानी में नहलातीं, ठण्डा चंदन उन्हें लगातीं, इनका भोग हमें दे जातीं, फिर भी कभी नहीं बोले हैं।"

जब महोदवी किशोरावस्था में ऐसी तुकबंदी करती थीं तो माता-पिता ने कविता के प्रति उनका अनुराग देखकर उनके लिए एक कवि गुरु का प्रबन्ध कर दिया। कवि गुरु उन्हें ब्रजभाषा का ज्ञान देकर समस्या पूर्ति सिखाने लगे। कवि गुरु उन्हें कठिन समस्याएं दे जाते थे जिन्हें काव्य रूप में परिवर्तित करने के लिए महादेवी को दिनभर व्यस्त रहना पड़ता था।

काव्य रचना के चक्कर में महादेवी खेलना-कूदना भूलकर रचना करने में व्यस्त रहती थीं। इस काव्य रचना ने महादेवी को मात्रा, गण, अलंकार आदि का विशेष ज्ञान कराया। काव्य के प्रति महादेवी के अनुराग ने शिक्षा के दूसरे विषयों के प्रति अधिक उदास कर दिया। धीरे-धीरे महादेवी की अभिरुचि चित्र बनाने के प्रति भी विकसित होने लगी।

काव्य रचना के साथ चित्र बनाने का कार्य भी प्रारम्भ हो गया। उन दिनों इंदौर में कोई अच्छा स्कूल नहीं था इसलिए महादेवी को क्रस्थिवेंट गर्ल्स कॉलेज के छात्रावास में प्रयाग भेज दिया गया और यहां पहुंचने पर उनकी तुकबंदी का प्रथम अध्याय समाप्त हो गया।

छात्रावास में महादेवी को सुभद्रा कुमारी चौहान का साथ मिला। यहां पर विधिवत दूसरे विषयों का भी अध्ययन शुरू किया गया। काव्य रचना के लिए भी प्रयाग में विस्तृत क्षेत्र मिला था। स्वतन्त्रता संघर्ष के लिए भी अच्छी पृष्ठभूमि मिल रही थी। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के बिना स्वतन्त्रता संघर्ष के सफल होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

कवि सम्मेलनों का आयोजन इसी उद्देश्य से किया जाने लगा था और कवि सम्मेलनों के आयोजन छात्रावास में ही किए जाते थे। नवोदित कवि छात्र-वर्ग से उभरते थे। अधिकांश कवि सम्मेलनों में प्रख्यात साहित्यकार श्रीधर पाठक, कभी हरिऔध और कभी रत्नाकर अध्यक्ष बनते थे।

शृंगार और प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के बीच में राष्ट्रीय भावनाओं की कविताएं भी सुनाई जाती थीं। राष्ट्रीय भावनाओं की कविताएं नवयुवकों में विद्युत का काम करती थीं। उस समय महादेवी ने राष्ट्रीय भावनाओं से सम्बन्धित कविताएं लिखी थीं लेकिन उस समय उन कविताओं ने अधिक रंग नहीं जमाया था। उनकी एक कविता के कुछ अंश प्रस्तुत हैं :

'मुक्त सदा आकाश हमारा

मुक्त मां धरती है।' इस कविता को राष्ट्रीय चेतना के जुलूसों में भी बहुत गाया जाता था। लेकिन लिखने वाले का नाम किसी को पता नहीं चला था।

छात्रावास में रहते हुए महादेवी ने छोटी बालिकाओं के नाटकों के लिए कुछ बाल गीत भी लिखे। वे बाल गीत पाठ्य पुस्तकों में अब भी मिल जाते हैं। उनके एक गीत के अंश देखिए 'फूल हैं हम सरस कोमल...' दूसरा गीत : 'मैं ऋतुओं का प्यारा बसन्त...'

उस खड़ी बोली की काव्य रचनाओं की परीक्षा नए निर्दिष्ट विषय पर कविता लिखने पर होती थी। महादेवी ने गांधी जी के दर्शन के उपरांत 'वाणी' पत्रिका में एक कविता लिखी। उस कविता का एक अंश देखिए :

'धरती ने पुत्र निज बनाया है कण-कण से माटी को गूंथ-गूंथ ममता के पानी से। करुणा दी सागर की नभ का आलोक दिया अंग-अंग में अशेष दीप्ति दी निशानी में। अपनी ही रचना में अपने को देखती हूं। अपने ही दोनों में अपने वरदानी को। आंखों में गंगा यमुना लहराती है। बोलता हिमालय भी आज इसी वाणी में।'

इस कविता को बहुत पसंद किया गया। और पत्रिका की ओर से आयोजकों ने प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत किया। पुरस्कार में एक खूबसूरत चांदी का पात्र दिया। महादेवी के लिए यह बहुत बड़ा पुरस्कार था। जिस कविता से महादेवी को कवियों में प्रतिष्ठित किया, वह कविता इस प्रकार थी :

'बिखरेंगी न पंखुड़ियां म्लान भी न होंगे कभी
मेरे ये सपने नहीं हैं फूल, माला के।
चुनेगा न शूल, न ही ओंस बूंद फटेगा
इनके दलों पर समान किसी छाल के।
देवता का मस्तक संभाल नहीं पाएगा

बचपन से ही महादेवी की अभिरुचि प्रकृति के सौंदर्य में रही थी इसलिए उनकी कविता में प्रकृति वर्णन बहुतायत से मिलता है। पांच वर्ष की आयु में महादेवी को भोपाल और इंदौर की यात्रा का अवसर मिला। बचपन की उस स्मृति को महादेवी अंत तक नहीं भुला सकीं और उन्होंने 'रामा' नामक संस्मरण-रेखाचित्र में वर्णन किया जो 'अतीत के चलचित्र' नामक रेखाचित्रों के संकलन में उपलब्ध होते हैं।

गुथेंगे न कुंतल में किसी निशा बाला के
आंसू से खींची है सपनों की रेखाएं
मैंने फिर रंग भरे प्राणों की ज्वाला के।

महादेवी की इस रचना ने उन्हें आकाश की ऊंचाइयों तक प्रसिद्ध कर दिया। उस समय महादेवी 'निहार' की रचनाओं का भी लेखन करती रहीं। महादेवी के शब्दों में, 'कवि की रचनाओं में कुछ रचनाएं ऐसी होती हैं, जिनमें उसकी अंतरंग पहचान होती है, शेष मानो उस तक पहुंचने का प्रयास होता है। इस दृष्टि से निहार से मेरे काव्य का वो तीसरा आयाम प्रारम्भ हुआ, उसी को मैंने महत्त्व दिया है।

बचपन से ही महादेवी की अभिरुचि प्रकृति के सौंदर्य में रही थी इसलिए उनकी कविता में प्रकृति वर्णन बहुतायत से मिलता है। पांच वर्ष की आयु में महादेवी को भोपाल और इंदौर की यात्रा का अवसर मिला। बचपन की उस स्मृति को महादेवी अंत तक नहीं भुला सकीं और उन्होंने 'रामा' नामक संस्मरण-रेखाचित्र में वर्णन किया जो 'अतीत के चलचित्र' नामक रेखाचित्रों के संकलन में उपलब्ध होते हैं।

प्रकृति के प्रति अभिरुचि के कारण उन्होंने खिलौने और गुड़िया पर नहीं लिखकर तितली, फूलों पर अधिक लिखा। अपने को व्यक्त करने के लिए महादेवी को चाहिए था एक नया कैनवास। इसलिए दीवारों और फर्श पर कोयलों और सिंदूर से रेखाएं खींचने लगीं। उनके लिए माता-पिता ने किशोरावस्था में घर पर ही हिन्दी, उर्दू और संगीत का प्रबंध कर दिया था। इन सबका उनके भविष्य पर गहरा प्रभाव पड़ा।

फूलों और लताओं के साथ हिरण, कुत्ते और कबूतर भी उनकी लेखनी से अछूते नहीं रहे। उनके किशोरावस्था की एक घटना है। फर्रुखाबाद में सर्दियों के सन्नाटे की एक रात को कुत्ते का एक छोटा बच्चा कू-कू कर रहा था। उसे देखकर महोदवी का हृदय भर गया। रो-रोकर उन्होंने सारे घर को जगा दिया और उस बच्चे को घर में लाकर ही पीछा छोड़ा। घर में लाकर उस बच्चे को कपड़ों से ढककर सुलाया गया।

आठवीं कक्षा की परीक्षा महादेवी ने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यही नहीं, परीक्षा में पूरे प्रदेश में प्रथम रहीं। उसी समय महादेवी ने 100 छंदों का एक करुण खण्डकाव्य भी लिखा। महादेवी ने अपने काव्य के शैशवकाल में अनेक ग्रंथों की रचना की और लोकप्रिय हुईं। उनकी प्राथमिक रचनाओं में 'नीहार' की अधिकांश रचनाएं हैं। नीहार से ही महादेवी के रहस्यवाद को रेखांकित किया।

सन् 1928 में इंटर तक महादेवी अपने काव्य से काफी लोकप्रिय हो चुकी थीं। इन्हीं दिनों सुभद्रा कुमारी चौहान से उनकी मित्रता हुई और पहले पहल उन्होंने प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत के दर्शन किए। सन् 1930 में जब उनके गौने की बात चली तो उन्होंने बचपन के उस विवाह से इनकार कर दिया और बालिका विवाह के विरुद्ध बिगुल बजा दिया।

प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् 1933 में संस्कृत में एम.ए. के बाद पहले प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य और फिर कुलपति बनीं। 1930 के दशक में महादेवी 'चांद' पत्रिका का निःशुल्क सम्पादन करने लगी थीं। उस समय उनकी दूसरी काव्य कृति 'रश्मि' प्रकाशित हो चुकी थी। 'रश्मि' काव्यकृति ने उनकी नीहार काव्यकृति के धुंधलेपन को मिटाकर महादेवी को भावुकता और दार्शनिकता में परिवर्तित कर दिया था। कविता के साथ-साथ गद्य को भी महादेवी ने प्रारम्भ से ही साधा है।

परदा प्रथा पर निबन्ध प्रतियोगिता में महादेवी को उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग की ओर से पुरस्कृत किया गया। इसके साथ महादेवी ने अनेक संस्मरण पुस्तकें भी लिखीं। 'चांद' पत्रिका में सम्पादकीय के रूप में लिखे गद्य से उनकी लेखकीय शक्ति को एक नया आयाम मिला। महादेवी वर्मा ने स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों की आलोचना की।

स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का विश्लेषण किया। उनके ऐसे निबन्ध 'शृंखला की कड़ियां' पुस्तक में संकलित हैं। सन् 1933 के आसपास ही महादेवी वर्मा की तीसरी काव्यकृति 'नीरजा' प्रकाशित हुई। गीतों की दृष्टि से 'नीरजा' को हिन्दी की श्रेष्ठतम कृति माना जाता है। सुप्रसिद्ध आलोचक पंडित रामचंद्र शुक्ल ने भी 'नीरजा' के गीतों की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है।

सन् 1934 में प्रयाग में विश्वप्रसिद्ध रवीन्द्रनाथ ठाकुर से महादेवी की मुलाकात हुई। महादेवी रवीन्द्रनाथ से बहुत प्रभावित हुईं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निधन पर महादेवी ने एक लम्बी कविता लिखी।

सन् 1939 में महादेवी की चौथी काव्यकृति 'सान्ध्य गीत' का प्रकाशन हुआ। 'नीरजा' काव्यकृति के भाव-विस्तार के साथ इस काव्यकृति में एक मोहित करने वाली तन्मयता है। इस कृति में विरह अभिशाप नहीं वरदान बनकर सामने आता है। इस कृति

में महादेवी की चित्रकला की क्षमता भी उभरकर सामने आती है।

इस काव्यकृति में महादेवी ने 'सन्ध्या', 'वर्षा', 'अरुणा', 'निशाचिनी' और 'मृदु महान' भावपूर्ण चित्रों का भी समावेश मिलता है। इसके अतिरिक्त गीतों की मधुरता, गेयता से उनकी संगीत क्षमता का पता चलता है। सन् 1939 में 'यामा' पुस्तक के प्रकाशन के साथ महादेवी वर्मा पूरी तरह स्थापित हो चुकी थीं। रीति काव्य में उनकी इस पुस्तक को अतुल्य स्थान प्राप्त हुआ था।

सन् 1942 में महादेवी की ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित 'दीपशिखा' पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इस कृति को काव्य, संगीत और चित्र के समान सान्ध्य गीत की अगली कृति माना जाता है। इस कृति में अध्यात्म की चरम परिणति काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि है और निष्काम कर्मयोग की साधना के लिए आत्मविश्वास भी महादेवी के पास दिखाई देता है। इसी क्षमता के साथ उनका काव्य करुणा से ओत-प्रोत हो जाता है। उनकी यात्रा वेदना से शुरू होकर करुणा तक पहुंच जाती है।

सन् 1941 में महादेवी वर्मा की पुस्तकें 'अतीत के चलचित्र', सन् 1942 में 'शृंखला की कड़ियां' और सन् 1943 में 'स्मृति की रेखाएं' प्रकाशित हुईं। उनकी पुस्तकों में निबन्ध, कहानी और संस्मरण का समावेश मिलता है। महादेवी के विवेचनात्मक और ललित निबन्ध 'क्षजदा' में संकलित हैं।

सन् 1955 में 'साहित्यकार संसद' के मुख पत्र का प्रकाशन और स्व. इलाचंद्र जोशी के साथ सम्पादन भी किया। सन् 1956 में महादेवी वर्मा को 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1960 में उन्हें प्रयाग महिला विद्यापीठ की कुलपति बनाया गया। सन् 1963 में राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने उनका अभिनन्दन किया। उसी रात को एक काव्य गोष्ठी में प्रधान मन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू डेढ़ घण्टे तक उनका काव्य पाठ सुनते रहे।

सन् 1964 में कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने उनके सम्मान में अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया था। महादेवी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'भारतेन्दु' पुरस्कार भी दिया गया था। सन् 1982 में ब्रिटेन की प्रधानमन्त्री मारगेट थैचर ने एक भव्य समारोह में उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार दिया। सन् 1983 में उत्तर प्रदेश का 'भारत भारती' पुरस्कार प्रदान किया गया। सन् 1984 में महादेवी को वाराणासी विश्वविद्यालय द्वारा 'डॉक्टर ऑफ लिटरेचर' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

महादेवी वर्मा को छायावाद का अंतिम आलोक स्तम्भ कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की तरह महादेवी वर्मा छायावाद की दीपशिखा बनी रहीं।

भारतीय चिकित्सा भवन, ए-3/4 एमआईजी फ्लैट, चंद्रप्रिया अपार्टमेंट, सेक्टर-8, रोहिणी, दिल्ली-110085

कविता

मौसम का बांकपन कहीं खो गया है

● **डॉ. सुशील कुमार फुल्ल**

जीवन में आंधी और तूफान तो आते ही रहते हैं
और फिर
कलियुग में तो झंझावातों का नाम ही जीवन है
आज कोई सहज सपाट जीवन की इच्छा करे भी क्यों
भागम-भाग, अधीरता, अविश्वास और अहंकार
हमें कुछ करने नहीं देते
और हमें लगता है कि हमसे बड़ा कोई है ही नहीं
और न ही कोई बड़ा हो सकता है
मौसम में अजीब सी घुटन है
न यह मीसने आदमी की तरह खुला है
और न ही ज़हर खाए मरणासन्न आदमी की तरह
दमघुटा पड़ा है
मौसम आम आदमी की तरह रंग बदलने लगा है
और परम्पराओं को खण्डित करने पर तुला है
शायद राजनीति से प्रभावित
शायद अपने अहं से उद्वेलित
उछलता, फुदकता अपने आपमें मदमस्त
नए सपने संजोने में आत्म-मुग्ध है
या फिर सत्ता के नशे में चूर
पहचान की क्षमता खो बैठा है
जो भी हो यह सहज हरगिज़ नहीं लगता
मुड़-मुड़ अपनों को ही ठगता
दूसरों को लॉलीपाप देते न थकता
उसमें भी उसे केवल परोपकार ही लगता
मौसम का बांकपन
अब आदमी में कहां
आदमी तो अब अपना ही दीवाना हो गया है
बस स्वार्थ का दीवाना हो गया है
मौसम का बांकपन कहीं खो गया है।

पुष्पांजलि, राजपुर-पालमपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176061

आलेख

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारी-विमर्श

● डॉ. मंजू लता

मृदुला गर्ग हिन्दी साहित्य की एक विख्यात लेखिका हैं। इनकी गणना उन कथाकारों में की जाती है जिन्होंने आधुनिक जीवन की स्थिति को अनुभूति के स्तर पर पहचाना और अभिव्यक्त किया। इनके कथा-साहित्य में मनुष्य जीवन के हर पहलू का चित्रण मिलता है। इन्होंने समाज में घटित हो रहे यथार्थ को अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है और यही कारण है कि इनके कथा-साहित्य को पढ़ने वाला पाठक वर्ग अपने में एक चेतना का अनुभव करता है। इनके साहित्य के मूल में नारी प्रमुख रही है। इन्होंने नारी से जुड़ी अनेक समस्याओं का चित्रण किया है और उनका समाधान साहित्य के माध्यम से सुझाया है। इनके साहित्य की नारी स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व की स्थापना के लिए विद्रोह कर उठती है। इनके साहित्य के सभी नारी पात्र उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। आज की नारी को प्राचीन संस्कारों से जुड़े रहना या आदर्श से चिपके रहना सभंव नहीं है। वह पुरानी मान्यताओं को स्वीकार नहीं कर पाती। अत्याचारों के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है। उन्हें पुरुष समाज का अत्याचार सहन नहीं है। मृदुला गर्ग का सारा कथा-साहित्य नारी को उसके सहज मानवीय रूप में चित्रित करता है। नारी पात्रों के साथ-साथ इनके कथा-साहित्य में पुरुष पात्रों का भी वर्णन मिलता हैं। इनके पुरुष पात्र दोहरी मानसिकता लिए हुए अन्तर्द्वन्द्व से घिरे रहते हैं।

मृदुला गर्ग बचपन से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति की रही हैं। बचपन से लेकर यौवन तक इन्हें जो संस्कार मिले उनमें से वे व्यक्तिगत धरातल पर अनुभव किए बिना किसी विचारधारा अथवा निर्णय के प्रति न तो अपनी स्वीकृति देती थीं, और न ही उनके प्रति कोई रागात्मकता स्थापित कर पाती थी। आठवें दशक के कथाकारों में मृदुला गर्ग का नाम बहुचर्चित रहा है। एक लेखिका तथा एक नारी के रूप में अपने को स्थापित करने के लिए इन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा तथा अनेक उतार-चढ़ाव भरी स्थितियों से गुजरते हुए इन्होंने अपनी मंजिल पाने की कोशिश की है। मृदुला गर्ग के लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण में इनके परिवार की भूमिका तथा परिवेशगत संस्कार प्रमुख रहे हैं। उमा केवलराम के शब्दों में "कोई भी व्यक्ति जन्म से बड़ा नहीं बनता। बड़ा बनने में सबसे बड़ा योगदान संस्कारों का होता है, उसके बाद परिवेश का।"[1] मृदुला गर्ग को लेखन-संस्कार पैतृकदाय के रूप में ही प्राप्त हुए हैं। पिता की बौद्धिकता और विचारों के प्रभाव-स्वरूप ही मृदुला गर्ग में आत्मावलोकन की प्रवृत्ति का निर्माण हुआ है। इनके पिता कुशाग्रबुद्धि सम्पन्न थे। जिनका साहित्य प्रेम गज़ब का था। दस बारह साल की उम्र में ही इन्होंने अपने बच्चों को जैनेन्द्र, शेक्सपियर, दोस्तोवस्की एवं तुर्गनेव पढ़वा दिए थे। इनकी माता जी प्रायः बीमार रहा करती थी, जिस कारण उनका स्वभाव चिड़चिड़ा रहता था। मृदुला गर्ग का बचपन माँ के संरक्षण तथा लाड़-प्यार के अभाव से पीड़ित तो रहा, लेकिन पिता ने उन्हें माँ के वात्सल्य और ममता से पालित-पोषित किया। अपनी माँ के अन्दर वात्सल्य की कमी को देखकर इनको बहुत दुःख होता था।

देश के अलग-अलग क्षेत्रों की ज़िन्दगी और समस्याओं को समझने का अवसर मृदुला गर्ग को मिला। विवाह के पश्चात् इन्होंने नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोड़ने का प्रमुख कारण था, इन्होंने हमेशा अपने पारिवारिक जीवन को प्राथमिकता दी। इन्होंने 1970 के आस पास लिखना शुरू किया और आज तक लिख रही हैं। तारा अग्रवाल के अनुसार - "मृदुला गर्ग अपने आपको एक भारतीय औरत लेखिका मानती हैं। अपने को उन औरतों में से मानती हैं, जिसने शादी के बाद हाथ में कलम पकड़ी जब आम पढ़ी लिखी औरत, कलम साधना छोड़ पति साधना शुरू कर देती हैं।"[2] पति साधना इन्होंने भी की, परन्तु शादी से पहले वाला, 'अकेले कोने की तलाश' वाला प्रश्न शादी के बाद भी बना रहा। मृदुला गर्ग का घर छोटा होने के कारण इनको लिखने के लिए एकान्त नहीं मिल पाता था, जो शादी के बाद भी बना रहा । फिर भी इनका साहित्य सृजन लगातार जारी रहा। परिवार की हर समस्या तथा साहित्य सृजन में आने वाली रुकावट का बहादुरी से सामना करती गयी। समस्याओं से भागना या पलायन करना

इनकी प्रवृत्ति नहीं। मुदुला गर्ग बोल्ड हैं, इनका लेखन भी बोल्ड है। सहानुभूति न तो चाहती हैं और न ही बाँटती हैं। जीवन में दुराव-छिपाव वे जानती नहीं, अपने लेखन को भी इन्होंने उसी रूप में ढाला है।

पुराने जमाने में जीवन की समग्रता का चित्रण महाकाव्य में हो पाता था, महाकाव्य से भी बढ़कर जीवन की समग्रता को जिस गद्य विधा ने सर्वाधिक गहराई , विस्तार और व्यापकता के साथ चित्रित किया है, वह है -उपन्यास। आज उपन्यास सभी भाषाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। उपन्यास जीवन के हर पक्ष को उद्घाटित करता है। विधात्मक रूप में आज उपन्यास से अभिप्राय वृहत् आकार के उस गद्य आख्यान या वृतान्त से है जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जाता है।

मृदुला गर्ग ने छः उपन्यासों की रचना की है। 'उसके हिस्से की धूप' मृदुला गर्ग का प्रथम उपन्यास है। वैसे मृदुला गर्ग ने सबसे पहले 'वंशज' नामक उपन्यास लिखा था, परन्तु वह प्रकाशित बाद में हुआ। यह उपन्यास एक त्रिकोणात्मक प्रेम कथा है। इस उपन्यास में कुल तीन पात्र हैं मनीषा, जितेन और मधुकर। सारा उपन्यास इन तीन पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है। मनीषा इस उपन्यास की नायिका है। वह पहले जितेन के सहचर्य में फिर मधुकर के सम्पर्क में और अन्ततः अपने अकेलेपन को बाँटने की अकुलाहट में पति और प्रेमी बदलती है। मृदुला गर्ग ने इसमें नारी के अन्तर्द्वन्द्व और अबूझ निर्णयों को इस उपन्यास में चित्रित किया है। मनीषा और जितेन पति-पत्नी हैं। जितेन अपनी ज़िंदगी में व्यस्त रहता है। उसके पास मनीषा के लिये समय नहीं है। मनीषा एक स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। जो स्वतन्त्रता पुरुष के लिये अहम मुद्दा है। वही स्त्री के लिए पैरों की जंजीर तो नहीं। इस मूल्यवान अर्थ को टटोलती हुई उपन्यास की कथा जितेन, मनीषा और मधुकर के आस-पास घूमती है। उपन्यास की नायिका शुरू से ही प्रेम विवाह करने के पक्ष में थी। परन्तु उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो पाती, क्योंकि उसका विवाह प्रबन्धित होता है। और इस प्रकार उसका प्रेम-विवाह वाला सपना अधूरा रह जाता है। इसी कारण वह शादी के बाद भी मधुकर की ओर आकर्षित होती है, और उससे प्रेम करने लगती है, परन्तु मधुकर से भी उसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होती देख वह पुनः जितेन के पास वापस लौट आती है। विवाहोपरान्त प्रेम-सम्बन्ध होना स्वाभाविक बन गया है। स्त्री और पुरुष दोनों इस स्थिति का सामना कर रहे हैं। ऐसी स्थिति ने उनके बीच रिक्तता पैदा कर दी है। मनीषा को लगता है उसका पति जितेन जानबूझ कर अपने कार्यों में व्यस्त रहता है। उनकी शादी को हुए दो साल हो गए हैं, परन्तु अभी तक वे दोनों एक-दूसरे को नहीं समझ पा रहे हैं। तभी तो मनीषा कहती है -'' इस उदासीन व्यक्ति के साथ रहते दो वर्ष हो गए पर अब तक उसकी उदासीनता के प्रति पूरी तरह उदासीन नहीं हो पाई हूँ।''[3] पति-पत्नी के बीच अजनबीपन की यह स्थिति उनमें उब पैदा कर रही है। मनीषा मधुकर से घृणा नहीं कर सकती, उसे अपनी ऊब मिटाने के लिए जितेन भी चाहिए। मनीषा को वैचारिक, मानसिक, दैहिक तीनों स्तरों पर तृप्ति चाहिए। जो एक पुरुष से सम्भव नहीं है। पति जितेन और प्रेमी मधुकर दोनों से असंतुष्ट मनीषा के जीवन की भटकन को प्रस्तुत करना इस उपन्यास का मुख्य लक्ष्य है। आज पति-पत्नी सम्बन्धों में किसी तीसरे व्यक्ति के कारण दरारें आयी हैं। पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण जहाँ पति-पत्नी संबंधों को तोड़ने में कामयाब रहा है, वहीं तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति से भी यह नाजुक रिश्ता टूट रहा है।

'वंशज' उपन्यास में मृदुला गर्ग ने एक नई दिशा की खोज की और दो पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष को चित्रित किया है। यह उपन्यास दो पीढ़ियों की टकराहट, द्वन्द्व तथा अंतराल को अभिव्यक्ति देता है। आज़ादी के बाद जिस नौकरशाही को अंग्रेज अपनी विरासत के तौर पर छोड़ गए थे उसके प्रति विद्रोह करती नई पीढ़ी के प्रतिनिधि सुधीर तथा पाश्चात्य आचार-विचार तथा अनुशासन के कायल जज शुक्ला साहब के वैचारिक संघर्ष की यह कहानी है। दो पीढ़ियों में मूल्यों और आचार-विचारों का सीधा संघर्ष है। सम्बन्धों के भरे-पूरे होने के बावजूद उनके रिसते रहने की व्यथा इसमें घनीभूत है। 'वंशज' त्रिकोणात्मक संघर्ष-कथा है। मि. शुक्ला और सुधीर चाहकर भी एक दूसरे को समझ नहीं पाते। संघर्ष का तीसरा कोण है, सुधीर की बहन रेवा, जिस पर परिवार में सुधीर उसके सामने है।

सुधीर के पिता का यह विश्वास था, ''पुत्र को जीवन में कुछ बनना होता है, जबकि पुत्री को पराये घर का धन समझकर पाल-पोसकर सुपात्र के हवाले कर देना होता है, बस!''[4] शुक्ला साहब सुधीर को कुछ बनाने की अकांक्षा से उसे हर बार प्रताड़ित करते रहते हैं। सुधीर अपने पिता की हर बात का विरोध करने लगता है। पिता के सौतेले व्यवहार के कारण सुधीर का द्वन्द्व बढ़ता जाता है। अपने इस व्यवहार का जो ज़हर शुक्ला साहब अपने बेटे के लिये घोल रहे हैं, उसी के कारण वह बेटी के लिए तो 'पिता' व बेटे के लिए 'साहब' बन कर रह जाते हैं। कुछ समय पश्चात सुधीर की शादी हो जाती है। उसकी एक बेटी होती है। सुधीर की पत्नी सविता एक आदर्श बहू की तरह घर-परिवार की जिम्मेदारी सम्भाल लेती है। धीरे-धीरे सुधीर को यह लगने लगता है कि उसकी पत्नी, उसकी बेटी, उसके घर पर उस के पिता ही अधिक छाए हुए हैं। वह स्वंय को निरर्थक समझने लगता है। अपनी पत्नी को लेकर सुधीर अनुभव करता है कि उन सीमांओं, मर्यादाओं में अकुंश लगाने वालों की संख्या में एक और व्यक्ति जुड़ गया है। कानपुर की नौकरी छोड़कर सुधीर धनबाद

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए लड़े जाने वाले अहिंसात्मक आन्दोलन और आतंकवादी कहलाने वाले क्रान्तिकारी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर इस उपन्यास की रचना हुई है। मृदुला गर्ग ने 'अनित्य' उपन्यास की सृष्टि करके अपनी राजनीतिक चेतना का परिचय दिया है। इसमें इन्होंने गाँधी जी की अहिंसा नीति की तुलना में भगतसिंह की क्रान्तिकारिता का समर्थन किया है। नर-नारी सम्बन्धों से अलग हटकर भिन्न कैनवास पर राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीतिक विसंगतियों का सशक्त चित्रण इस उपन्यास में है। यह उपन्यास अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन पर लिखा गया है।

की खदानों में चला जाता है। वहाँ काम करते वक्त एक मज़दूर से झगड़ा होने पर वह पुनः अपने पुराने कर्मक्षेत्र की ओर लौटता है। शुक्ला साहब की मृत्यु हो जाती है। अन्ततः अपने पुत्र के प्रति ज़िन्दगी भर उपेक्षा बरतने वाला पिता मरते समय अपने पुत्र के नाम सारी सम्पति कर देता है। सम्पत्ति का आधा हिस्सा सुधीर अपनी बहन को देना चाहता है और कुछ हिस्सा गरीबों में बांटना चाहता है। सुधीर की पत्नी इस तरह से सम्पति लुटाता देखकर सुधीर को अपने भाई के साथ मिलकर पागल घोषित कर देती है। ऐसे बुरे समय में जहां एक पत्नी को अपने पति का साथ देना चाहिए था, वहीं पर वह उसका बुरा सोचती है। सविता को इस उपन्यास में लेखिका ने एक स्वार्थी व लालची औरत के रूप में चित्रित किया है। वह सिर्फ अपना भला सोचती है। धीरे-धीरे सुधीर को लगने लगता है कि कोई खूनी शक्ति उस का अंत करने को बेचैन है। वह उत्तेजित होने लगता है। भय के कारण चीखने-चिल्लाने लगता है। सुधीर अपना दिमागी सन्तुलन खो देता है। आज स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में वह रागात्मकता नहीं रह गई, जो पुराने जमाने में वह एक-दूसरे को समर्पित रहा करते थे। इनमें अब एक खोखलापन घर कर गया है। जिसकी वज़ह से इन्होंने अब अपनी-अपनी दिशा ढूँढ ली है। जिस पर चलने से ये ज़रा भी हिचकिचाते नहीं।

मृदुला गर्ग का 'चितकोबरा' उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की अगली कड़ी है। यह उपन्यास विवादास्पद किन्तु बेहद लोकप्रिय उपन्यास है। कुछ लोगों का कहना है कि 'चितकोबरा' अमेरिका वैस्ट पैलेस में मिलने वाले सक्रिय सैक्स चित्रों के अनुरूप और उनकी परम्परा में गढ़ा गया उपन्यास है। मृदुला गर्ग के अन्य उपन्यासों की ही तरह इस उपन्यास में भी वैवाहिक प्रेम से पैदा हुई ऊब के कारण विवाहिता मनु अपने पति महेश को छोड़कर स्कॉट पादरी रिचर्ड की ओर आकर्षित होती बताई गई है। प्रेम विवाह और सैक्स के कथ्य को लेकर उपन्यास की रचना हुई है। उपन्यास की मनु भी अपने अस्तित्व की तलाश में निकल पड़ती है, जब उसे पता चलता है कि उस का पति महेश उसे प्यार नहीं करता, वह रिचर्ड नाम के व्यक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है। परन्तु मनु, महेश को भी नहीं छोड़ सकती। रिचर्ड और महेश दोनों के बीच द्वन्द्वग्रस्त स्थिति में अपने को पाते हुए मनु यह तय नहीं कर पाती कि वह क्या करे? रिचर्ड से शादी कर ले या महेश को तलाक दिए बिना उसके साथ रहे। पर-पुरुष की ओर झुकाव की इन परिस्थितियों के अधीन कैशोर्य भावुकता के बावजूद यौन के नये ढंग और प्रेम के अलग-अलग आलिंगनों की जो चाहत मनु और रिचर्ड के बीच दिखाई गई है, उसे नकारा नहीं जा सकता। मनु जब महेश के पास होती है, तो रिचर्ड के बारे में सोचती है, और जब रिचर्ड के पास होती है, तो महेश के बारे में सोचती है। इन समस्त उधेड़बुनों में मनु की वैचारिकता और नर-नारी सम्बन्धों के प्रति, उसके माध्यम से मृदुला गर्ग की दृष्टि मनुष्य की उस तलाश और आन्तरिक संघर्ष को उभारती है, जो अपनी स्वतन्त्र अस्मिता को अर्थवान बनाने के लिए निरन्तर जारी है। अन्त में मनु साहित्य सृजन द्वारा अपने मन की अभिव्यक्ति करके आत्मसार्थकता का अनुभव करती है। आज नारी को अपने बारे में अनुभव हो गया है, कि समाज में उसकी क्या पहचान है। मनु न तो पति को चुनती है और न ही प्रेमी को। सृजनात्मक लेखन से प्राप्त खुशी से वह अपने आप को गौरव से परिपूर्ण समझती है। वह अपनी अस्मिता की तलाश में रत् दिखाई देती है। उसके वार्तालाप से पता चलता है कि "कमरे में कोई नहीं है। मैं जानती हूँ, मैंने ख्वाब देखा था। हर रात देखती हूँ। या दिनभर ख्वाब में जीती हूँ और रात को उससे बाहर निकलने का रास्ता तलाश करती हूँ। जानती हूँ, तलाश रास्ते की नहीं, मंजिल की होती है। मुझे मंजिल न सही, रास्ता ही मिल जाए। सिर्फ यह पता चल जाए, मैं किस रास्ते की तलाश करूँ। ज़िन्दगी की आखिरी सांस तक मैं उसे ढूँढती रहूँगी...सांस लूगी क्योंकि अभी ढूंढना बाकी होगा। तलाश के बिना ज़िन्दगी के माने ही क्या हैं?"[5] अपने इस उपन्यास में मृदुला गर्ग ने सैक्स का खुला और बेबाक वर्णन करके अपनी जिस साहसिकता का परिचय दिया है उसके कारण वे आलोचकों की प्रशंसा और निन्दा की पात्र बनी हैं। दाम्पत्य सम्बन्ध तथा दाम्पत्येतर सम्बन्धों को लेकर नायिका मनु का भावनात्मक द्वन्द्व, उपन्यास में मुखर है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए लड़े जाने वाले अहिंसात्मक आन्दोलन और आतंकवादी कहलाने वाले क्रान्तिकारी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर इस उपन्यास की रचना हुई है। मृदुला गर्ग ने

'अनित्य' उपन्यास की सृष्टि करके अपनी राजनीतिक चेतना का परिचय दिया है। इसमें इन्होंने गाँधी जी की अहिंसा नीति की तुलना में भगतसिंह की क्रान्तिकारिता का समर्थन किया है। नर-नारी सम्बन्धों से अलग हटकर भिन्न कैनवास पर राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीतिक विसंगतियों का सशक्त चित्रण इस उपन्यास में है। यह उपन्यास अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन पर लिखा गया है। जिसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद व्यक्ति और समाज के बीच उत्पन्न पार्श्व भूमि में सातवें दशक का दिल्ली शहर है। महिला लेखिकाओं ने प्रायः राजनीति को लेकर कम ही उपन्यास लिखे हैं। जिनमें मृदुला गर्ग भी एक हैं। इन्होंने आज़ादी के संग्राम में लगे हुए क्रान्तिकारियों और आतंकवादियों का समर्थन करते हुए, गाँधी जी की अहिंसा नीति तथा समझौता नीति की कड़ी आलोचना की है। परन्तु मृदुला जी यह भी मानती है कि, "उपन्यास अनित्य में मेरा उद्देश्य गाँधीवाद पर प्रहार करने का नहीं है, बल्कि गाँधीवादी और क्रान्तिकारी दोनों आन्दोलनों को पूरे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखकर समझने का है। विशेष रूप से मैं यह अध्ययन करना चाहती थी कि समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मानस पर दीर्घकालीन रूप से क्या प्रभाव पड़ता है और स्वतंत्रता आने के बाद ही हमारे यहाँ की अवसरवादी मानसिकता को गढ़ने में उनकी कितनी और क्या भूमिका रही है।"[6] 'अनित्य' उपन्यास की काजल बैनर्जी और अनित्य, भगत सिंह की क्रान्तिकारिता में और अविजित महात्मा गाँधी की अहिंसात्मकता में विश्वास करते हैं। गाँधीवादी सिद्धान्तों पर व्यंग्य करते हुए उपन्यास का अनित्य कहता है, "गरीबी झेलना और गरीबी से सहानुभूति रखना दो अलग चीज़ें है। जान बूझकर तीसरे दर्जे में सफर करना और लंगोट पहनना एक बात है और न चाहते हुए ऐसा करने पर मजबूर होना दूसरी बात है।"[7] अविजित भी अनुभव करता है "अगर भगतसिंह कुछ दिन और ज़िन्दा रहे होते और युवा वर्ग का नेतृत्व कर पाते तो शायद 1932 से 1942 तक के वे साल समझौतों की नज़र न होते और देश के युवक अपने को बुरी तरह दुविधाग्रस्त न पाते। तब शायद आज़ादी कुछ ठोस अर्थ लिए होती।"[8] 'अनित्य' उपन्यास में देश विरोधी विचारधाराओं का चित्रण है। एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व अनित्य करता है, तो दूसरी का उसका भाई अविजित। अविजित अपनी बीमार पत्नी की वज़ह से तथा घर की परेशानियों से हमेशा द्वन्द्व से घिरा रहता है। अविजित वर्तमान में रहते हुए हमेशा अपने भूतकाल में खोया रहता है। अविजित का मर्यादाहीन आचरण उसकी पत्नी श्यामा को कुंठित कर देता है। वह हिस्टीरिया की रोगी हो जाती है। प्रभा, शुभा, खोखी व सुधांशु ऐसी सन्तानें हैं जो श्यामा और अविजित के दाम्पत्य अलगाव के कारण विभाजित एवं अल्प विकसित होकर रह जाती हैं। अविजित जब भी अपने पुराने मित्रों से मिलता है तो उसके भीतर उसका अतीत उद्वेलित हो उठता है। पुरानी मित्र काजल के साथ बिताए प्रेमासिक्त क्षण उसे याद आ जाते हैं। तब वह अतीत और वर्तमान के अन्तर्द्वन्द्व में झूलता रहता है। अनवरत अन्तर्द्वन्द्व, तनावों, कुंठाओं, अपराध-बोध में दबे रहने के कारण अन्ततः अविजित मानसिक सन्तुलन खो बैठता है, इससे परिवार बिखर कर तिनका-तिनका हो जाता है।

'मैं और मैं' उपन्यास अहं की तुष्टि में संतोष पाने वाली एक लेखिका का चित्रण करता है। किस प्रकार एक लेखिका आर्थिक और नैतिक शोषण का शिकार होती है, इसका बखूबी चित्रण मृदुला गर्ग ने इस उपन्यास के माध्यम से चित्रित किया है। एक निम्नवर्गीय लेखक अपने अधिकार बोध के कारण झूठ बोल कर उसका शोषण करता है। इस प्रकार एक उच्चवर्गीय लेखिका का अपराध-बोध और निम्नवर्गीय लेखक का अधिकार-बोध इन दोनों के टकराव की कहानी का चित्रण करना ही मृदुला गर्ग का उद्देश्य रहा है। आर्थिक अभावों के कारण व्यक्ति कितना गिर जाता है, उसका पतन हो जाता है। इस उपन्यास की नायिका माधवी एक लेखिका है। एक लेखिका होने के कारण वह शुद्धि और तर्क के आधार पर मानवीय विभेदों को, वर्ग-वैषम्य को, ऊँच-नीच की भावना को स्वीकार नहीं करना चाहती। इस उपन्यास के दूसरे अहम पात्र लेखक कौशल कुमार हैं। जो इस उपन्यास में दो रूपों में हमारे सामने आते हैं। प्रथम उसका लेखक रूप है जो बौद्धिक, तार्किक और प्रतिभा ज्ञान से युक्त है। परन्तु वह प्रकाशकों का कृपाभाजन नहीं है। दूसरी ओर वह एक अभावग्रस्त, निम्नवर्ग से गलीज परिवेश की उपज के रूप में हमारे सामने आता है। वह लेखिका माधवी की सहानुभूति का पात्र बनता है। माधवी, कौशल की प्रशंसा पाकर उसके प्रति संवेदनशील हो उठती है। कौशल कुमार माधवी की सहानुभूति, बौद्धिक आवेग और उसके धन का दुरूपयोग करता है। वह माधवी को इतना तंग करता है कि माधवी के मुँह से निकले ये शब्द उसकी विवशता तथा उसकी कमज़ोरी को प्रकट करते हैं - "हूँ। कमज़ोर हूँ । माधवी ने कहना चाहा। मुझे संभाल लो। जाने दो रुपया। सख्ती से उससे कहो मुझसे सम्पर्क न करें। मुझे इस दलदल से बाहर निकालो, राकेश।"[9] माधवी किसी भी कीमत पर कौशल कुमार से पीछा छुड़ाना चाहती है। वह उसके बार-बार फोन करने से, उसकी सभी हरकतों से तंग आकर हालात के आगे घुटने टेक देती है, जो उसकी दयनीय स्थिति को दर्शाते हैं। कौशल के मकड़जाल में फंसी माधवी के हाथ में कौशल की असलियत के सूत्र आते ही स्थिति पलट जाती है। अन्ततः उसके मन में यह पश्चाताप बार-बार कौंधता है कि क्यों निकले वह अपने सुरक्षित कोटर से। मृदुला गर्ग के उपन्यासों में मूल रूप से नर-नारी सम्बन्धों को जिस रूप में चित्रित किया है, वह मूलतः प्रणय और परिणय की सीमा

में आने वाला प्रेम सम्बन्ध है।

'कठगुलाब' उपन्यास मृदुला गर्ग का स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर आधारित है। यह उपन्यास मृदुला गर्ग के अब तक के उपन्यासों में सबसे श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें मृदुला गर्ग ने नारी के दमन, शोषण और संघर्ष की गाथा को प्रस्तुत किया है। चाहे वह नारी भारत की हो या विदेश की, कभी उसका आर्थिक और शारीरिक शोषण होता है, तो कभी बौद्धिक और मानसिक। नारी सदियों से इस शोषण को मूकभाव से सहती आई है। आज की नारी भी इस दमन और शोषण के चक्र में पिसती जा रही है। इसलिए आज कुछ नारी संगठन आगे बढ़कर नारी को शक्ति प्रदान कर, उसे संगठित और एकजुट करके पुरुष की दमनशाही वृत्ति के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं। स्त्रियां अपना अबलापन भूल कर नारी कल्याण और संगठनों की छाया में सबला बना रही हैं और अपनी अस्मिता को खोजने का प्रयत्न कर रही हैं। इस उपन्यास की नीरजा, स्मिता, असीमा, नमिता, नर्मदा और मारियान ऐसी ही नारियाँ हैं, जो अपनी अस्मिता की तलाश में रत् दिखाई देती हैं। ये नारियाँ पुरुष समाज से टक्कर लेती हुई अपनी एक अलग पहचान बनाती हैं। पहले तो पुरुष इनका शारीरिक और मानसिक शोषण करता है। परन्तु हालात से लड़ते-लड़ते इनके अन्दर एक नई चेतना का निर्माण होता है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का अकंन भी हुआ है, परन्तु पुरुष द्वारा स्त्री का तिरस्कार, शोषण ही प्रमुख रूप से हुआ है। इस शोषण के परिणामस्वरूप स्त्री-पुरुष से अलग होकर संघर्ष की राह पर चल पड़ती है। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए। भले ही वह इस संघर्ष में खरी न उतरे। वह पुरुष की सहगामिनी बनकर नहीं प्रतिस्पर्धी बनकर रणक्षेत्र में उतरती है। स्त्री पुरुष के जुल्मों को सहन करती आई, क्योंकि वह सोचती है, कि कोई तो ऐसा दिन आयेगा जब पुरुष उसकी अहमियत को समझेगा। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। तभी तो औरत ने रौद्र रूप धारण किया। इस उपन्यास की 'असीमा' एक ऐसी ही सुशिक्षित, कराटे में माहिर एक निर्भीक नारी है। वह अपनी सहेली 'स्मिता' की सहायता करती है। उसे पैसे देकर बाहर अमरीका पढ़ने के लिए भेजती है। स्मिता उसके बारे में कहती है "बिलकुल कंगाल थी मैं। चश्मा बनाने वाले से काफी हील-हुज़्ज़त करके मैंने शीशों की कीमत में कुछ कटौती करवाई थी। उन पैसों से असीमा के घर जाने तक के लिए स्कूटर तय किया था। बिना चश्में, मैं बस में सफर करने के लायक न थी। असीमा मेरी एकमात्र सहेली थी। स्कूल में मेरे साथ पढ़ती थी मेरी माँ नहीं थी, उसके पिता नहीं थे। मेरी एक बहन थी। उसका एक भाई। जब तक हम स्कूल से बारहवीं करके निकले, उसका भाई और मेरी बहन घर छोड़ कर जा चुके थे। मैंने भी बी. एस.सी. (होम साईंस) में दाखिला ले लिया। असीमा नौकरी करने लगी थी। पत्राचार से बी.ए. की पढ़ाई की। फिर मेरे पिता जी गुज़र गए। बेघर होकर भी मैं घरेलू विज्ञान पढ़ती रही। असीमा कहती थी, "बेवकूफ है, मुझे देख, मैंने अपनी नौकरी के पहले चार महीनों की तनख्वाह कराटे सीखने में खर्च की है। मर्दों की दुनिया में रहने के लिए होम साईंस की नहीं कराटे की जरूरत है। पता नहीं, सच था या मज़ाक। पर असीमा थी एक आत्मनिर्भर, धाकड़ लड़की। वह मेरे लिए भी बन्दोबस्त कर सकती थी।"[10] इस प्रकार नारी आज हर क्षेत्र में सिद्धहस्त हो गई है। वह नौकरी करने लगी है तथा पढ़-लिख कर औरों की भी सहायता करने लगी है। ताकि दूसरी औरतें भी उसके जैसी बने।

अपने कथ्य को प्रतिपादित करने में मृदुला गर्ग को अभूतपूर्व सफलता मिली है। विभिन्न नारी-पात्रों के माध्यम से लेखिका नारी के कर्म, धर्म और मर्म का निरूपण करती हुई पुरुष सत्ता से समानान्तर स्त्री सत्ता निर्मित करने के लिए स्त्री पात्रों को संघर्ष और जद्दोजहद करती हुई दिखाती हैं। कभी स्त्री स्वतन्त्रता की पक्षधर बनकर 'सार्वभौमिक भगिनीवाद' के आदर्श से प्रभावित होकर गोधड़ परियोजना जैसी संकल्पनाएं सामने लाती हैं। परिणाम चाहे कुछ भी निकले 'कठगुलाब' के नारी पात्र प्रतिशोध और विद्रोह की मुद्रा लिए हुए है। इन नारी पात्रों ने रणचण्डी का रूप धारण किया है। इस उपन्यास को स्त्रियों की संवेदना और संघर्ष की दास्तान भी कहा जा सकता है। मृदुला गर्ग इसके सम्बन्ध में लिखती हैं, "कठगुलाब उपन्यास ऐसे ही अनेक औरतों की ज़िदगी का जायज़ा लेता हुआ अनायास ही तर्कों, तथ्यों और तारीखों में छिपे जीवन के वे तमाम संगत-असंगत तत्त्व खोज लेता है, जो कभी व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़कर और कभी तोड़कर एक सतत् गतिशील समाज को जन्म देते हैं। पाठक स्त्री की प्रज्ञा, संवेदना और सौन्दर्यानुभूति से गहराई के साथ एकात्म होने पर पाएँगे कि पुरुष और समाज अपने-आप सहज ही उसके हिस्से बन गए हैं।"[11]

आधुनिकता बोध ने नारी जीवन एवं उसकी सोच को नई दिशा दी है। प्राचीन व्यवस्था के प्रति उसका मोह भंग हो चुका है। विवाह-संस्था से जुड़ी जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धों की कल्पना का अब उसके लिए कोई मूल्य नहीं है। विवाह-संस्था के सड़े-गले चरमराते ढांचे को आधुनिक युवक एवं युवतियां दैवीय भाव से अब स्वीकार नहीं करते। आधुनिकता ने स्त्री की स्थिति, उसकी मान्यताओं, उसके संस्कारों को बहुत प्रभावित किया है। मृदुला गर्ग ने समाज में जिस अशिष्टता, उद्दण्डता, मूल्य-हीनता को देखा उसे उसी रूप में पूर्ण ईमानदारी के साथ अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया है। बदलते परिवेश ने नारी को अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व के प्रति सचेत किया है। वह समाज, परिवार आदि के बन्धन को एक झटके से तोड़ने के लिए तैयार है। वह वैयक्तिक जीवन जीने की आकांक्षी है। वह समस्त सम्बन्धों से अलग मुक्त आकाश में श्वास लेना चाहती है।

कविता

मां के बाद

● सतीश 'रत्न'

बंधन स्नेह का टूट गया मां के बाद
घर मेरा बंट गया मेरी मां के बाद।

उसके आंचल में थे सितारे व नक्षत्र
कद मेरा घट गया मेरी मां के बाद।

लड़ रहा था जिसके सहारे मैं भंवर से
हाथ वह कट गया मेरी मां के बाद।

एक बरगद की छांव थी सदा मेरे सर पर
वह साया छंट गया मेरी मां के बाद।

मुझे राह दिखाने वाला तारा भी नहीं रहा
मैं रास्ता भटक गया हूं मेरी मां के बाद।

पुलिस अधीक्षक, पुलिस मुख्यालय, शिमला-171002
मो. 94180 80101

मृदुला गर्ग की प्रत्येक रचना उनके अनुभवों के आधार पर संचित निधि का ही अभिव्यक्तिकरण है। इनके कथा-साहित्य में आधुनिक समस्याओं का साक्षात्कार होता है। नारी जीवन की समस्याओं व वैयक्तिक भावनाओं को जिस आधुनिक बोध व सशक्तता से मृदुला गर्ग ने उकेरा है, कोई अन्य इसका सानी नहीं है। पाश्चात्य प्रभावों से युक्त होकर मृदुला गर्ग ने स्त्री के तन और मन दोनों की स्वतन्त्रता को आवश्यक माना है। नैतिकता और परम्परा दोनों से हटकर उनके स्त्री पात्र अपनी स्वच्छन्द विचार धारा के कारण अपने देहधर्म की ईमानदार स्वीकृति देते हुए अपनी दैहिक, जैविक आवश्कताओं को प्रधानता देते हैं। प्रकाश मनु लिखते हैं कि, "वे स्त्री के दुःखों को न तो बढ़ा-चढ़ाकर 'आंसू-बहाऊ' भावुकता में बदलती हैं और न उन का किसी भी तरह का रोमानीकरण करती हैं। इनके बजाय स्त्री के दुःखों के कुछ चेहरे हमारे आगे रख देती हैं - हर वर्ग और परिवेश की स्त्री के चेहरे और वे चेहरे इतने असली और प्रामाणिक हैं कि बगैर कुछ ज़्यादा कहे भी हमें स्तब्ध करते हैं।"[12] मृदुला गर्ग को देह की स्वतन्त्रता में कुछ भी पश्चिमी नहीं लगता है। देह की आज़ादी के साथ ही औरत का मन, भाव, चेतना भी होती है। यदि वह नहीं है तो पुरुष के साथ उसके संसर्ग में सुख नहीं है।

कुल मिलाकर मृदुला गर्ग का साहित्य स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर आधारित है। इसके साथ ही इन्होंने भारतीय स्त्री की स्थिति, महिला आरक्षण, देश की वर्तमान राजनीति और आज की युवा पीढ़ी के भटकाव के ऊपर भी अपनी दृष्टि डाली है। इनके लेखन में पुरानी वर्जनाओं व सम्भावनाओं का संघर्ष है। इसलिए परम्परागत नैतिकता के प्रति खुला-विद्रोह, कुंठा, क्षोभ भरा आक्रोश इनके साहित्य का मूल स्वर है। पारिवारिक प्रेम व दाम्पत्य जीवन की सच्चाई को इन्होंने बड़े साहस व निर्भीकता के साथ अंकित किया है। इनका जीवन, सृजन और चिन्तन इन तीनों से गुजरते हुए यही परिलक्षित करता है, कि बचपन से ही साहित्य के प्रति रुचि रखने वाली मृदुला गर्ग को अपने पिता के कारण साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ। इन्होंने पारिवारिक दायित्वों को निभाते हुए भी साहित्य सृजन किया। इन्होंने बदलते जीवन मूल्यों की सार्थक अभिव्यक्ति के साथ ही आधुनिक सन्दर्भों में सामाजिक, नैतिक मूल्यों को उभारा है। इनकी नारियां नव-चिन्तन, नयी जीवन पद्धति आदि के सामयिक सन्दर्भ में से निखरती हुई भावी भारतीय नारी का स्वरूप स्पष्ट करती हैं। इनकी नारियां देवी व दानवों के बीच टकराती पहेली नहीं, हाड़-मांस की मानवी है। मृदुला गर्ग लिखते समय कथ्य पर बल देती हैं। मृदुला गर्ग के साहित्य की लोकप्रियता का प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि उनकी अनेक कहानियां व उपन्यासों का अन्य भाषाओं अंग्रेजी, जर्मन, चेक, रूसी आदि में भी अनुवाद हुआ है। इस प्रकार से मृदुला गर्ग का साहित्य एक बोल्ड महिला का साहित्य लेखन है। जो अपने आप में अप्रतिम है।

पुत्री श्री बालक राम, गाँव व डाकघर महादेव, तहसील सुन्दरनगर जिला मण्डी, हिमाचल प्रदेश-175018

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1. उमा केवलराम मन्नू भण्डारी की कहानियों में आधुनिकता बोध
2. तारा अग्रवाल मृदुला गर्ग का कथा-साहित्य
3. मृदुला गर्ग उसके हिस्से की धूप
4. मृदुला गर्ग वंशज
5. मृदुला गर्ग चितकोबरा
6. मृदुला गर्ग अनित्य, अनलिखा इतिहास जानने की ललक से
7. मृदुला गर्ग मैं और मैं
8. मृदुला गर्ग कठगुलाब
9. प्रकाश मनु बीसवीं शताब्दी के अंत में उपन्यास (एक पाठ्क के नोट्स)

आलेख

साहित्यकार के रूप में श्रीराम वर्मा से अमरकान्त तक

● विनोद कुमारी

किसी भी साहित्यकार की लेखकीय ऊर्जा और मानसिकता के निर्माण में उसके पारिवारिक परिवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। उनका प्रारम्भिक जीवन ही उनकी प्रारम्भिक प्रतिभा का निर्माण करता है। उनकी रचनाओं में व्यापक जीवन-दर्शन विचारधारा, सामाजिक चेतना या यूं कहें कि उनकी सम्पूर्ण रचनाधर्मिता उनके अपने परिवेश से ही परिचालित होती है। किसी भी लेखक का संवेदनशील मन अपने समय के साथ टकराता है और धीरे-धीरे उनके अन्दर एक लेखक का विकास होता रहता है। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही वह छोटी-छोटी अपरिपक्व रचना करने में संलग्न होने लगता है और धीरे-धीरे उसका लेखन विकास की ओर अग्रसर होता है और प्रौढ़ता के बिन्दु पर पहुँच जाता है। अमरकान्त भी जीवन में अनेक संघर्ष करते हुए नई कहानी आन्दोलन के प्रमुख कर्णधारों में से एक बने। अमरकान्त हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं में भी रचनाएं रची है तथापि उनकी ख्याति कथाकार के रूप में अधिक है।

उत्तर प्रदेश में बलिया ज़िले के छोटे से गाँव भगमलपुर है जो तीन टोलों में बंटा है, एक तरफ यादवों (अहीरों) का टोला है तो दूसरी तरफ (चमर टोली) है और इन दोनों टोलो के बीच में तीन कायस्थों के परिवार थे। इन्हीं कायस्थ परिवारों में से एक परिवार था सीताराम वर्मा व अनन्ती देवी का। इन्ही के पुत्र के रूप में 1 जुलाई, 1925 को अमरकान्त का जन्म हुआ। अमरकान्त का नाम श्रीराम रखा गया। इनके खानदान में लोग अपने नाम के साथ 'लाल' लगाते थे। अतः अमरकान्त का नाम भी श्रीराम लाल' हो गया। बचपन में ही किसी साधु महात्मा द्वारा अमरकान्त का एक और नाम रखा गया था। वह नाम था 'अमरनाथ'। यह नाम अधिक प्रचलित तो न हो सका, किन्तु स्वयं श्रीराम लाल को इस नाम के प्रति आसक्ति हो गयी। इसलिए उन्होंने कुछ परिवर्तन करके अपना नाम 'अमरकान्त' रख लिया। इनकी साहित्यिक कृतियाँ इसी नाम से प्रसिद्ध हुई। अपने नामकरण की चर्चा करते हुए स्वयं अमरकान्त ने लिखा है कि, ''मेरे खानदान के लोग अपने नाम के साथ 'लाल' लगाते थे। मेरा नाम श्रीराम लाल ही था। लेकिन जब हम लोग बलिया शहर में रहने लगे तो चार-पाँच वर्ष बाद वहां अनेक कायस्थ परिवारों में 'लाल' के स्थान पर 'वर्मा' जोड़ दिया गया और मेरा नाम भी श्रीराम वर्मा हो गया। ऐसा क्यों किया गया, इसे उद्‌घाटित करने के लिए भारत के बहुत से जातिवादी कचरे को उलटना-पुलटना पड़ेगा। बस इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब मैंने लेखन का निश्चय कर लिया तो 'लाल' या 'वर्मा' अथवा किसी जाति सूचक 'सरनेम' से मुक्ति पाने के लिए अपना नाम 'अमरकान्त' रख लिया। यहां यह भी ज्ञातव्य है कि मेरे दो नाम रखे गए थे, जिनमें एक अमरनाथ भी था, जिसे एक साधु ने दिया था। यह नाम प्रचलित तो नहीं था, लेकिन मैंने इसमें हल्का संशोधन करके साहित्यिक नाम के रूप में इसे मान्यता दिला दी।''[1]

अमरकान्त की प्रारम्भिक शिक्षा नगरा के प्राथमिक विद्यालय से ही आरम्भ हुई। शीघ्र ही रहने के लिए पिता सीताराम वर्मा के पास बलिया शहर में परिवार के कुछ लोगों के साथ आ गये। पिताजी मुख्तार थे। पिता ने पहले अमरकान्त का नाम तहसील मिडिल स्कूल, फिर गवर्नमेंट हाई स्कूल में लिखा दिया। बचपन में वे काफी शरारती थे। हॉकी- फुटबॉल, गुल्ली-डंडा, कबड्डी आदि खेलों का उन्हें शौक था। अमरकान्त बचपन से ही बड़े संवेदनशील रहे। अपनी बड़ी बहन गायत्री की अर्थी को नम आंखों से चुपचाप मन मारकर, देखते रहे थे। अमरकान्त ने बचपन में निम्न वर्ग के लोगों को नज़दीक से देखा था। जिसके सम्बन्ध में वह अपने आत्मकथ्य में लिखते हैं, ''दरवाजे पर रोज दुखिया, दरिद्र, अपाहिज, बेसहारा लोग आते थे, मुँह खोल गिड़गिड़ाते थे और लोगों की डांट-डपट खाते रहते थे। किसी दावत समारोह के बाद मेहतर लोग कूड़े पर फेंकी गई झूठी पत्तलों के लिए आपस में लड़ते थे। ऐसे दृश्यों को देखकर वह उदास हो जाता।''[2] ये सारी घटनाएँ उनके दिमाग में बैठ गई थी।

अमरकान्त के पिता का सामाजिक सरोकार विस्तृत था। वे सामाजिक कार्यो में प्रायः रुचि लेते थे। उन्हें हिन्दी का काम

चलाऊ ज्ञान प्राप्त था, पर उर्दू एवं फारसी का ज्ञान अच्छा था। साहित्य के प्रति उनकी कोई विशेष रुचि न थी। शरीर को मजबूत एवं बलिष्ठ बनाने के लिए वे व्यायाम के हिमायती थे। इसके अतिरिक्त उनका पढ़ाई-लिखाई के बारे में स्पष्ट दृष्टिकोण था कि हाई स्कूल पास होते-होते लोगों को नौकरी पर लग जाना चाहिए। इस तरह पारिवारिक वातावरण साहित्यिक दृष्टि से शून्य था। अमरकान्त जी को पढ़ाने घर पर एक पंडित जी आते थे जिन्होंने उनके पिताजी को 'चलता पुस्तकालय' का सदस्य बना दिया। जहाँ से दो पुस्तकें घर पर पहुँचा दी जाती थी। पिताजी समय के अभाव के कारण इन पुस्तकों को नहीं पढ़ते थे। अमरकान्त ही चुरा-चुरा कर उन पुस्तकों को पढ़ते थे। अमरकान्त आत्मकथ्य में लिखते हैं, ''निश्चय ही उनमें से कई पुस्तकें हल्की-फुल्की, रूमानी और जासूसी होती थी, लेकिन कई बहुत ही अच्छी पुस्तकें होती थी, जिनका उन पर अच्छा असर पड़ा। याद है, जब उसे 'महाभारत' तथा शरत्चन्द्र की 'चरित्रहीन' पढ़ने को मिली थी, तो वह खाना-पीना तक भूल गए थे।''[3] जब वे आठवीं कक्षा पास कर चुके थे, तब वे प्रेमचन्द का कोई उपन्यास पढ़ने में मग्न थे कि मुन्नू चाचा ने उन्हें पकड़ा। जिसके संबंध में अमरकान्त लिखते हैं, ''क्या पढ़ते हो जी?'' घूरता हुआ प्रश्न था।

उसने साफ-साफ बता दिया।

'नाभेल पढ़ते हो?' वह बेहद बिगड़ गए, ''मैं देखता हूँ तुम्हारी सोसाइटी ठीक नहीं। नाभेल तो लंठ-आवारा पढ़ते हैं। उसमें आशिक-माशूक की बातें होती हैं। समय को इस तरह बरबाद करते हो? भैया नाभेल चौपट कर देगा तुम्हें। आइंदा देख लिया तो ठीक न होगा। तुम चचा की बात नोट कर लेना कि नाभेल आवारा बना देता है।''[4] विद्यार्थी जीवन में उपन्यास आदि पढ़ना इनके परिवार की मानसिकता के विरुद्ध था। पिता से बहुत सी बातें उन्हें विरासत में मिली थी और बहुत सी बातें नहीं भी मिली थी।

अमरकान्त पर प्रेमचन्द का कोई खास प्रभाव नहीं था शरतचन्द्र ने अमरकान्त को इतना प्रभावित कर दिया था कि वे रोमानी कल्पनाओं की उड़ान भरने लगे और ऐसा ही कल्पनाओं में उन्होंने कई लम्बी-लम्बी और भावुकतापूर्ण कहानियाँ लिख डाली। इन कहानियों का आधार कोरी कल्पनाएं थी। इसी कारण ये कहानियां अस्वाभाविक और हास्यास्पद हो गयी। शरत्चन्द्र की रचनाएं उन्हें सहज उपलब्ध हो जाती थी इसलिए उन पर शरत्चन्द्र के साहित्य का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। शरत् मानवीय मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं के कथाकार थे। अमरकान्त का कोमल मन उन अनुभूतियों को अनुभव कर रहा था। इनके संवेदनशील हृदय पर शरत्चन्द्र के साहित्य का व्यापक प्रभाव पड़ा। इसी सन्दर्भ में अमरकान्त लिखते हैं, ''उसने शरत्चन्द्र की कोई सशक्त कहानी पढ़कर अभी-अभी समाप्त की थी। अंधेरा घिरने लगा था। पुस्तक समाप्त करते ही उसने अपने अन्दर एक अद्भूत परिवर्तन का अनुभव किया, जैसे बिजली दौड़ गई हो। वह बरामदे से बाहर निकल आया। मकान और सामने की सड़क के बीच मजे की खुली जगह थी। वह वहाँ टहलने लगा। सहसा उसके अन्दर से कोई आवाज़ उठी; मैं लिख सकता हूँ, ठीक वैसा ही, उसी तरह...। यह सोचकर उसे रोमांच हो आया। एक असंभव कल्पना थी। सब कुछ अविश्वसनीय।''[5]

अमरकान्त के लेखन की शुरुआत रोमांटिक ढंग से हुई। अमरकान्त लिखते हैं, ''उस दिन की घटना के बाद उसमें कुछ परिवर्तन होने लगा। वह बड़ा भी हो रहा था। वह अब अकसर सपनों की दुनिया में खोया रहता। कहानियां उसके अन्दर जन्म लेने लगीं, बहुत ही हल्के, लगभग अनजान और बचकाने ढंग से, कुछ शरत्चन्द्र की कहानियों की तरह, कुछ-कुछ अजीब ढंग की, पर उन पर कहानियों का नायक वह स्वयं होता था, जो किसी काल्पनिक प्रेमिका को प्यार करता था और दुःख तथा निराशा के दौर से गुजरता था। इन कल्पनाओं का ही वह होकर रह गया, पर इनसे उसकी धारणा पक्की हो गई कि वह शरत्चन्द्र की तरह ही उच्चकोटि की कहानियां लिख सकता है। वह हर जगह, हर क्षेत्र में अपनी नायक के रूप में कल्पना करने लगा।''[6] इस प्रकार शुरुआत हुई भावी लेखक के लेखन की। अमरकान्त प्रतिभा के धनी थे, भाव-प्रवण थे, आवश्यकता थी एक मार्गदर्शन की। यह काम किया शरत्चन्द्र के साहित्य ने।

अमरकान्त के स्कूल में चन्द्रिका नामक एक सहपाठी था। वह 'पहाड़ीजी' और 'नर्मदाप्रसाद खरे जी' की स्टाइल पर कहानियाँ लिखता था। अमरकान्त को लगता था कि वे चन्द्रिका से अच्छी कहानियाँ लिख सकते हैं। उनके हिन्दी के अध्यापक बाबू गणेश प्रसाद जी ने उन्हें डॉ. मुल्कराज आनंद की प्रसिद्ध कहानी 'लॉस्ट चाइल्ड' का कथानक सुनाया था। उन्होंने कहा था कि कहानी लिखने का ढंग बदल रहा है और कहानी लेखन का आधुनिक तरीका मुल्कराज आनंद के लेखन का ही तरीका है। यह सुन उन्हें लगा की वह इससे भी अच्छी कहानी लिख सकते हैं। जिसके सम्बन्ध में वह लिखते हैं ''इसमें है ही क्या? इससे अच्छी कहानी तो वही लिख सकता है। एक दिन जब उसकी कहानी प्रकाशित होगी तो सभी मित्र, यहां तक कि बाबू गणेश प्रसाद जी भी चकित रह जाएंगे आदि।''[7]

नवीं कक्षा में पढ़ते हुए अमरकान्त ने हस्तलिखित पत्रिका में संपादक के रूप में जब एक मित्र का नाम देखा तब उन्हें चुनौती-भरी ईर्ष्या का अनुभव हुआ की वह एक दिन उससे भी महान लेखक बनेगा। काफी आत्मविश्वास के साथ उन्होंने कहानी लिखी जो अपने दोस्त की बहन को प्यार करता था। उसने कभी अपनी भावनाएं प्रकट नहीं की और एक रात दोस्त की अनुपस्थिति में जब उसके घर डाकुओं का हमला होता है तो

वह नौजवान खबर पाकर वहां पहुंचता है और डाकुओं से लड़ते-लड़ते अपनी जान दे देता है। दूसरी कहानी में प्यार की असफलता में एक युवक साधु बन जाता है और उसे खोजते-खोजते पूरा परिवार ही साधु बन जाता है।

जब अमरकान्त दसवीं कक्षा में आये तब उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। उस समय का परिवेश राजनीतिक हलचलों से भरा हुआ था। यह समय ब्रिटिश हुकूमत का था। पराधीनता की बेड़ी को भारतवासी काट फेंकना चाहते थे। यह वह समय था जब बच्चे-बच्चे की जुबान पर गाँधी और नेहरू के चर्चे थे, लेकिन ब्रिटिश शासन काल में इन नेताओं का नाम लेने की किसी में हिम्मत नहीं होती थी। लोग दबी जुबान से स्वाधीनता की बातें किया करते थे, अर्थात् लोग भयाक्रांत थे। अमरकान्त की उम्र और बुद्धि कच्ची थी। इन नामों का सही अर्थ भी वे नहीं लगा पाये थे। घटना के रूप में उन्हें एक हिन्दु-मुस्लिम दंगे की याद आती है, ''महावीरी झंडे के एक बड़े जुलूस पर पुलिस ने गोली चलाई थी। उस जुलूस में उसके पिताजी आगे-आगे कोई धार्मिक गीत गा रहे थे। पिताजी के एक मुहर्रर उसे जुलूस दिखाने ले गए थे, पर स्टेशन के पास पहुंचते ही भगदड़ सी मच गई। गोली चलाना क्या होता है, यह वह ठीक से नहीं जानता था। उसके पिताजी किसी तरह बचकर निकल आए थे।''[8]

इस घटना के बाद अमरकान्त समझ गए थे कि देश गुलाम है। पराधीनता का अर्थ समझ मैं आ रहा था। ब्रिटिश हुकूमत की खिलाफत का भाव भी समझ में आने लगा था। क्रान्ति की भावना बालक श्रीराम के अन्दर पनपने लगी थी। उनकी मानसिकता में, विचारों में परिवर्तन आने लगा था। फिर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्रश्न था। अब वह इस महान राष्ट्रीय धारा में घुल-मिल गए। रोमांटिक बातें व काल्पनिक दुनिया को भूलकर वह देश की आजादी की बातें सोचने लगे। सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद और श्रद्धानंद के नाम अक्सर देशभक्ति के गीतों में सुने जाते थे। पूरे देश में गुलामी का विरोध करने की भावना बहुत जोर पकड़ चुकी थी। बालक श्रीराम विशेष रूप से मन्मथनाथ गुप्त की पुस्तक 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा' और यशपाल द्वारा संपादित 'विप्लव' की फाईलों से बहुत अधिक प्रभावित हुए। जीवन का एक नया अर्थ उनके सामने उभरने लगा। उत्सर्ग और त्याग की भावना मन में घर करने लगी। देश की आजादी के लिए फांसी पर चढ़ने को बालक श्रीराम तैयार थे।

उसी समय अमरकान्त को 'चाँद' तथा 'फाँसी' अंक पढ़ने को मिला था। ऐसी पुस्तकें स्थानीय क्रान्तिकारियों द्वारा छिपाकर लाई जाती। उस समय उन्हें लगा साहित्य लेखन आदि सब गौण हैं, देश की स्वतन्त्रता अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके मन में भारत माता की वह काल्पनिक मूर्ति थी जिसकी बेडियों को काटने के लिए अनेक भारतवासियों ने कुर्बानी दी थी। अमरकान्त भी ऐसी कुर्बानी के लिए तैयार थे। परिणाम यह हुआ कि अमरकान्त अपनी इन हरकतों के कारण चर्चा के विषय बन गए। पुलिस के हाथों उनके तीन मित्र गिरफ्तार हो गए, वह बच गए। वह इसलिए कि उनके मामा सिविल गार्ड्स के जिला कमाण्डर थे। एक दिन अपने एक साथी के साथ वह कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की एक क्लास में गए। पं. परशुराम चतुर्वेदी के छोटे भाई नर्मदेश्वर चतुर्वेदी जो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष एवं क्लास इंचार्ज भी थे उनसे अमरकान्त का परिचय हुआ और वे उनके व्याख्यानों से प्रभावित भी हुए। इन्हीं दिनों उन्होंने सोवियत रूस पर भी कई पुस्तकें पढ़ी। न जाने कितनी ही पुस्तकें पढ़ी होगी। अब न उनका नाम ही याद है और न संख्या ही, लेकिन इन पुस्तकों को पढ़ने का परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्रता का सही अर्थ इनकी समझ में आ गया। यही वह समय था जब अमरकान्त के मन में राजनीतिक विचारधाराएं पुख्ता हुई और वे समाजवाद, साम्यवाद तथा गांधीवाद में अन्तर समझने लगे।

महात्मा गांधी और नेहरू की आत्मकथाओं का अमरकान्त पर गहरा असर पड़ा। गाँधीजी के आदर्शों और नेहरू जी की प्रगतिशील विचारधाराओं की गहरी छाप उन पर पड़ी। देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता के अतिरिक्त देश की आर्थिक स्वतंत्रता भी उतनी ही आवश्यक है, यह बात उन्होंने नेहरू जी से सीखी। अमरकान्त को नेहरू जी की समाजवादी विचारधारा के बारे में जानकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ और साथ ही साथ खुशी भी। जिस समय अमरकान्त के लेखन की आधारशिला निर्मित हो रही थी और उनकी लेखकीय वैचारिकता ठोस आकार ले रही थी, उस समय देश में राजनीतिक उथल-पुथल मची हुई थी। ब्रिटिश शासन और सत्ता अपनी पूरी ताकत से भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को कुचलना चाहता था। इन परिस्थितियों का प्रभाव अमरकान्त के भाव प्रवण मन पर गहरा पड़ा। देश की लड़ाई, मात्र भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त करने भर के लिए ही नहीं थी, बल्कि अब करोड़ों भारतवासियों की आर्थिक स्वतन्त्रता की लड़ाई भी थी। इस समय स्वतन्त्रता की कल्पना उस भावी समाज की कल्पना थी जिसमें जाति, धर्म, भाषा, प्रान्त और सम्प्रदाय का कोई भेदभाव नहीं होगा। अमरकान्त जी को देश के प्रति लगाव था, भारतवासियों के प्रति सच्चा प्रेम था। उन्होंने उस युग में जन्म लिया जो भारतीय इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना का युग था। अमरकान्त राजनीतिक शिक्षा के प्रति अपना विचार प्रकट करते हुए कहते हैं, ''उसकी राजनीतिक शिक्षा कोई बहुत गंभीर नहीं थी, बल्कि आरम्भिक किस्म की थी, पर इसी से वह अपने को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समझने लगा था। उस समय उस पर गाँधीजी, नेहरू, जयप्रकाश नारायण और अन्य क्रान्तिकारियों की सच्चाई तथा त्याग-बलिदान का एक अजीब मिला-जुला प्रभाव था। सोशलिस्ट पार्टी में कम्यूनिस्ट-विरोध का वातावरण होते हुए

महात्मा गांधी और नेहरू की आत्मकथाओं का अमरकान्त पर गहरा असर पड़ा। गाँधीजी के आदर्शों और नेहरू जी की प्रगतिशील विचारधाराओं की गहरी छाप उन पर पड़ी। देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता के अतिरिक्त देश की आर्थिक स्वतंत्रता भी उतनी ही आवश्यक है, यह बात उन्होंने नेहरू जी से सीखी। अमरकान्त को नेहरू जी की समाजवादी विचारधारा के बारे में जानकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ और साथ ही साथ खुशी भी।

भी उसे यह सोचकर खुशी होती थी कि दुनिया में मजदूरों का एक राज्य है और इस देश में भी एक दिन मजदूरों का राज्य होना चाहिए। गाँधीजी की कई बातें उसकी समझ में नहीं आती थी और कुछ अव्यावहारिक भी लगती थी, पर उनकी बहुत सी बातें हृदय की गहराइयों में प्रवेश कर जाती थी। यह सही है कि गांधी ने जनता को जो सपने दिखाए थे, वे आधुनिक युग की आर्थिक आजादी के सपने नहीं थे, लेकिन वे राष्ट्रीय आजादी, राष्ट्रीय एकता, समानता, धर्म-निरपेक्षता एवं नैतिक उत्थान के सपने अवश्य थे।''[9] अमरकान्त नेहरू जी के व्यक्तित्व से सर्वाधिक प्रभावित रहे। यह सत्य है कि गाँधी जी ने नेहरू जैसे जननायकों को पैदा किया, किन्तु नेहरू के व्यक्तित्व की एक विशेषता थी कि जहां वे गांधीजी के विचारों तथा उनकी भावनाओं को सादर स्वीकार करते थे, वहीं वे कभी-कभी अपना मतभेद प्रकट करने का साहस भी रखते थे। उनमें अद्‌भुत स्वाभिमान, साहस, समझदारी और मानवीयता थी। सारे सुख वैभव को त्याग कर उन्होंने कष्ट का जीवन अपनाया था। यह बात अमरकान्त को सबसे अधिक आकर्षित करती थी।

अमरकान्त हाई स्कूल की परीक्षा के बाद सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर बन गये। उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन पर गाँधीजी का अत्यन्त व्यापक प्रभाव था। अमरकान्त का मानना था कि गांधीजी जिस हद तक सामान्य जनता से जुड़े थे, उतना कोई भी नहीं। गाँधीजी ने जिस भाषा, मुहावरे तथा टेकनीक का इस्तेमाल किया, उसने मामूली से मामूली आदमी को हिला दिया था। जिन्होंने अपना समस्त सुख-वैभव छोड़कर देश की आजादी के लिए कष्ट का जीवन अपनाया था। पंडित नेहरू कई अर्थों में गाँधीजी के पूरक थे। अमरकान्त ने कभी किसी विद्यालय में अथवा किसी और जरिए से राजनीति की शिक्षा नहीं पायी थी, बल्कि उन्हें राजनीति की शिक्षा अपने आस-पास के सामाजिक राजनीतिक माहौल से मिल रही थी। यह समय अमरकान्त के लिए उनकी मानसिक संक्रान्ति का काल था। उस समय अमरकान्त एक मिली-जुली मानसिकता में जी रहे थे। उनके जीवन के सपने निहायत व्यक्तिगत और रोमांटिक थे जो उनकी महत्त्वाकांक्षा पर हावी हो जाते थे। जिस सम्बन्ध में अपने आत्मकथ्य में लिखते हैं, ''हर कार्य में वह सबसे आगे रहना चाहता था। सपने भारत के उत्थान के ही होते थे, और उसी के लिए कभी वह महान क्रान्तिकारी, कभी महान संगीतकार, कभी महान खिलाड़ी, कभी महान जननायक बन जाता था और इन कल्पनाओं में अनिवार्य रूप से एक खूबसूरत लड़की उपस्थित हो जाती थी।''[10] इस तरह एक ओर राष्ट्रीय स्वातंत्र्य का प्रश्न ज्वलंत था, दूसरी ओर उनके भीतर का लेखक अपनी काल्पनिक उड़ाने भर रहा था। इण्टरमीडिएट कक्षा में प्रवेश लेने के बाद अमरकान्त लिखने लगे थे। उनकी रचनाएं शरत्‌चन्द्र की शैली में प्रेम और करुणा से सराबोर रचनाएं थी, लेकिन राजनीतिक तूफानों के बीच उन्हें इससे बहुत राहत मिलती थी। कभी-कभी ये कल्पनाएं राष्ट्रीय आन्दोलन के सामने फीकी लगती थी। इन दिनों अमरकान्त की मानसिक स्थिति स्पष्ट नहीं थी, कारण यह था कि वे समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर उन्हें क्या करना है? मन कभी निराशा से भर जाता। उनके सामने क्या करना है या क्या नहीं करना इसकी कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी। कभी वे शरत्‌चन्द्र की तरह लेखक बनकर हिन्दी की सेवा करेंगें, तो कभी राष्ट्रीय आन्दोलन उन पर हावी हो जाता। गुलामी के प्रति घृणा और आक्रोश प्रबल हो उठता था। ऐसे समय वे वीरान जगह में था अपनी छत पर अकेले बैठे रहते कई बार आंखें लबालब भर आती तो कभी गा उठते। ईश्वर की सत्ता को चुनौती देते या नई-नई पुस्तकें पढ़ते। इन्टर में ही उनका एक ऐसे मित्र से परिचय हो गया जो कम्युनिस्ट विचारधारा का था। वामपक्षीय विचारधारा की कई पुस्तकें उन्होंने पढ़ी। उनके मानसिक क्षितिज का विस्तार हुआ। वे लोग ऐसे थे कि बिगाड़ने के बजाय उन्हें प्यार से समझा देते।

सन् 1942 में गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ दिया। भारत की जनता पर गाँधीजी का प्रभाव था। गाँधीजी के लेखों ने सारे देश को क्रान्तिकारी स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया। गाँधीजी के 'करो या मरो' के एलान पर उन्होंने पढ़ाई छोड़ देने का निश्चय कर लिया। वे दो वर्ष तक भूमिगत रहे। कई जगह जनता भी कांग्रेसियों के खिलाफ थी। उन्होंने एक घटना का जिक्र किया, ''वह और उनके दो साथी एक छिपे हुए नेता से संपर्क कायम करने उसके गाँव पहुँचे थे, पर वहाँ की जनता, कुछ लोग लाठी लेकर उनके पीछे दौड़े। वह और उनके दो साथियों ने मैराथन दौड़ में शामिल होने की अपनी योग्यता का उस दिन अच्छा परिचय दिया। ईख, अरहर के खेत, पगडंडियाँ खूंटियां, पीछे दौड़ता हुआ हल्ला। कोसों दौड़ने के बाद एक बाज़ार में उन लोगों ने एक

आगरा में लेखन की शुरुआत से कुछ समय पहले से ही शरत्‌चन्द्र के रोमांटिसिज्म से वह मानसिक रूप से मुक्त होने की कोशिश कर रहे थे। आजादी के बाद की घटनाओं के कारण उनके अन्दर प्रतिक्रियाएं चल रही थी, उन सबने शरत्‌चन्द्र के कई प्रभावों से उन्हें अलग कर दिया। इसके बाद प्रेमचन्द की दृष्टि-सम्पन्नता एवं प्रगतिशीलता उन्हें अधिक आकर्षित करने लगी। सदियों से शोषित और अन्याय से पीड़ित लोगों का चित्रण प्रेमचंद जी ने साहित्य में किया था। जो अमरकान्त के लिए अद्‌भुत घटना थी। वे इस प्रगतिशील विद्रोह की ओर झुके।

दुकान पर पीतल की थालियों में सतू खाया था।''[11] उनके कई साथी गिरफ्तार हो गए थे। कुछ फरार हो गए थे। बहुत से साथी आगे की कक्षाओं में बनारस और इलाहाबाद में पढ़ रहे थे, पर अमरकान्त अब भी आगे पढ़ने को तैयार नहीं थे, क्योंकि गुलाम व्यवस्था में वह शिक्षा को अब भी निष्प्रयोजन समझते थे। किन्तु जब उनके सामने उपदेश देने वाले नेताओं का रहस्य खुलता था तो उन्हें अपार कष्ट का अनुभव होता था। अमरकान्त ने इस कष्ट के सम्बन्ध में अपने आत्मकथ्य में लिखा है, ''वह घोर निराशा से गुजरने लगा।

उन दिनों गांधीजी का उस पर जबरदस्त प्रभाव था। गांधीजी के लेखों को पढ़कर ही उसने पढ़ाई फिर नहीं शुरू की थी, पर उसे यह जानकर आश्चर्य होता था कि बहुत से नेतागण अपने लड़कों को देश-विदेश में पढ़ा रहे थे। पढ़ाई छोड़ने से उसका क्या लाभ हुआ और क्या नुकसान, यह बताना उसके लिए आसान नहीं है। गांधीजी के कारण ही वह पाप-पुण्य के फेर में भी पड़ गया था। वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से अपने को पूर्ण पवित्र रखना चाहता था, पर बार-बार उसे भावनाएं दबोच लेती थी। वह जितना ही महानता की ऊँचाइयों पर जाना चाहता था, उतना ही वह अपने को नीचे जाता हुआ महसूस करता था। वह सेक्स और प्रेम की भावनाओं से लगातार लड़ रहा था। उसने अपने अन्दर से हर प्रकार की महत्त्वाकांक्षा निकालने की कोशिश की और उसके लिए उसने प्राकृतिक चिकित्सा, गाँधीवादी प्रयोगों तथा हठयोग आदि का भी सहारा लिया। कभी-कभी उसकी स्थिति उस निर्मल जल की तरह हो जाती, जिसका गंदलापन नीचे बैठ गया हो और कभी-कभी वह हींड़े-फेंटे हुए पानी की तरह गंदला हो जाता। शारीरिक एवं मानसिक रूप से इसका भयंकर असर हुआ और वह आत्महत्या का ख्वाब देखने लगा।''[12] अमरकान्त का यह आत्मकथ्य जिन सामाजिक मूल्यों की ओर संकेत करता है, वे तत्कालीन सामाजिक दोगलेपन को दिखाते है। इन निराशा के दिनों में ही अमरकान्त ने डायरी लिखना शुरू किया। यह डायरी बड़ी विचित्र होती थी। जिसमें 'पाप' और अपनी कमजोरियों का जिक्र होता था। सवेरे से शाम तक जिन-जिन लोगों से उनका सम्पर्क होता था, वे उसे रात में लिखा करते थे। छोटी से छोटी बात, लोगों के इशारे, उनकी हास्यास्पद बातें, डींगे, लोगों के मुहावरे लिखा करते थे। घर के लोगों की उन्होंने उपेक्षा करना शुरू कर दिया और अपनी डायरी में सीमित हो गए थे। बाद में तो वे बेहद जर्जर हो गए और रोगी की तरह दिखाई देने लगे। उन्हीं दिनों उन्होंने अपने समाज और इतिहास का एक अत्यन्त वीभत्स रूप देखा। ऐसे ही समय 'जिन्दगी और जोंक' का रजुआ उन्हें दिखाई दिया। जिसके सम्बन्ध में वह लिखते हैं, ''युद्ध के दिनों में जब नौकर-चाकर फौज में भर्ती हो गए थे, रजुआ पता नहीं किस बिल-सुराख से निकलकर आया था। काला, भुजंग, नाटा, गंदा, बदबूदार, डरपोक, हास्यास्पद, हर स्थिति में जीने वाला, आत्मसमर्पण वाली होशियारी से हर स्थिति को स्वीकार करने वाला-एक प्रतिशत इन्सान। आधा फीसदी नंबर तो मनुष्य शरीर मिलने से ही मिल जाता है और शेष आधा फीसदी में आत्म अधिकार, चेतना, भावनाएं आदि हैं। सदियों से उसे इतिहास ने इतना ही दिया है और उसी पूंजी को कलेजे से चिपकाए वह जीवित रहने का ढंग सीख गया है।''[13] वे उसे रोज देखते। उसकी हरकतें नोट करते। घंटो उसके बारे में सोचते कि यह क्यों जिन्दा रहना चाहता है।

सन् 1946 में जब यह तय हो गया कि भारत को आजादी मिल जाएगी, तो उन्होंने फिर से पढ़ाई शुरू कर दी। इंटर किया और विवाह के लिए भी स्वीकृति दे दी। आजादी की खुशियां वे भोग न सके। एक देश आजाद होकर दो खूनी टुकड़ों में बंट गया। एक कलाकार होने के नाते उन्हें दिन-रात उन बेगुनाह स्त्रियों और बच्चों की पुकारें सुनायी देने लगी। उस समय जो भयंकर रक्तपात हुआ, अमानवीयता का जो तांडव देखने को मिला, वह मानव इतिहास का बहुत बड़ा कलंक है। आजादी मिलने के बाद अमरकान्त ने एक तीसरे तरह की प्रक्रिया को देखा। बहुत से लोग चोला बदलने में लगे थे। उनमें से कई तो ऐसे थे, जिनका वे आदर करते थे। अमरकान्त ने एक स्थान पर लिखा है, ''एक ओर शरणार्थियों की फौज, सारे वातावरण को विषाक्त करने वाली घटनाएं और किस्से, साम्प्रदायिक दंगो का दावानल और दूसरी ओर सत्ता एवं सुविधाओं के लिए दौड़। चारों ओर जातिवाद, क्षेत्रवाद और साम्प्रदायवाद का नृत्य दिखाई देने लगा। कालाबाजार, भ्रष्टाचार, गुटबाजी, परमिटपरस्ती, धक्कमधुक्की। बहुत से प्रतिक्रियावादी, सामंतवादी, संप्रदायवादी तत्त्व भी राष्ट्रीय संगठन कांग्रेस में चोला बदलकर घुस आए।''[14] ये अच्छा था कि

देश की बागडोर नेहरू जैसे प्रगतिशील व्यक्ति के हाथ में थी, अन्यथा देश साम्प्रदायिकता की अग्नि में स्वाहा हो गया होता। शरणार्थियों की लाखों की संख्या ने मध्यवर्ग की सोच में कई मोड़ लाये। घटनाएँ इतनी तेजी से घटती गयी कि कहानियां लिखने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता था। उनकी आंखों के सामने से रोमांटिसिज्म के रंगीन पर्दे हटने लगे। उन्होंने यह जान लिया कि राजनीति उनका क्षेत्र नहीं बन सकता। कारण चोला बदलने वाली प्रवृत्ति उनमें नहीं है, वह हिन्दी और हिन्दी साहित्य को ही अपना कार्यक्षेत्र बना सकते हैं।

अमरकान्त ने भारतीय लेखकों को ही नहीं अपितु विदेशी लेखकों को भी पढ़ा। प्रेमचन्द, शरत्चन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, गोर्की मोपासां, रोमा रोलां, जैनेन्द्र अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, रांगेय राघव आदि लेखकों को भी पढ़ डाला था। गोर्की का उपन्यास 'माँ' तथा दायस्तायवस्की का उपन्यास 'क्राईम एण्ड पनिशमेंट' को वे भूल नहीं सके। उन पर टॉलस्टाय और चेखव ने भी प्रभाव डाला। उनका कहना था कि टॉलस्टाय की रचनाओं को पढ़कर मनुष्य जाति की, उसकी उपलब्धियों और उसकी महानता पर गर्व होता है और उसकी क्षमताओं के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न होती है।

प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. करने के बाद उन्हें सरकारी नौकरी आसानी से मिल सकती थी। परन्तु उन्होंने लेखक बनने के लिए पत्रकारिता का पेशा अपना लिया। आगरा से निकलने वाले 'सैनिक' पत्र में संपादकीय विभाग में वे कार्य करते रहे। राजेन्द्र यादव ने इसका जिक्र करते हुए लिखा है, ''प्रगतिशील लेखक संघ की मिटिंग में दो लड़के आए थे श्रीराम वर्मा (अमरकान्त) और विश्वनाथ भटेले। 'सैनिक' में काम करते थे। भटेले बहुत बोलता था, लड़ने-मरने को तैयार रहता और रोज एक कहानी लिख डालता था। वर्मा चुप रहता, मुस्कराता और कभी कोई कटखना फिकरा उछाल देता''।[15] गले में मफलर की फांसी लगाए वह काफी आत्मतुष्ट दिखाई देते थे। राजेन्द्र यादव का कहना था कि वर्मा ग़ज़ल बहुत अच्छी गाता था, ''मुझसे न पूछ मेरा हाल, सुन मेरा हाल कुछ नहीं, मेरे लिए जहान में मांजी औ हाल कुछ नहीं।''[16] हम लोगों को बहुत प्रिय थी। आगरा के किसी भी हिस्से में और श्रीराम वर्मा और विश्वनाथ भटेले की यह सुंद-उपसंदी जोड़ी कहीं भी मिल जाती। बाद में यह जोड़ी बिखर गई। कुछ वर्षों के बाद राजेन्द्र यादव को एक पत्र मिला, ''मैं अमरकान्त हो गया हूँ''[17] मैंने सोचा बदमाश गम्भीर होने की कोशिश कर रहा है। मेरी कहानियों की प्रशंसा वह प्रायः इस प्रकार की पंक्तियों में करता, ''बहुत सोचने पर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूँ कि 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' को सोचने में तेरी नाक जरूर हाथी की सूंड जैसी हो गई होगी।''[18]

प्रगतिशील लेखक संघ में उन्होंने इन्टरव्यू, गले की ज़ंजीर संत तुलसीदास और सोलहवां साल, कम्युनिस्ट, नौकर आदि कहानियां सुनाई और प्रोत्साहन पाकर वे इस क्षेत्र में चले आए। लेकिन इलाहाबाद का जीवन उनके लिए बहुत सुखमय नहीं था। उन पर कई प्रकार के दबाव थे। पत्रकार बनकर हिन्दी की सेवा करने का जो नशा था, वह हिरन हो गया। हिन्दी पत्रकारों की हालात अत्यन्त दयनीय थी। यद्यपि हिन्दी गद्य के निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मामूली सी तनख्वाह पर वह दिन-रात परिश्रम करते फिर भी उन्हें हर तरह से अपमानित किया जाता था। 'मानवता सेवा' 'साहित्य सेवा' 'राष्ट्रीय सेवा' आदि का उन्हें सदा उपदेश दिया जाता था। आर्थिक स्थिति के कारण उनकी साहित्यिक रचनाएं बन्द हो गई थी और जो कुछ उन्होंने लिखा था उससे उन्हें संतोष भी नहीं था।

आगरा में लेखन की शुरुआत से कुछ समय पहले से ही शरत्चन्द्र के रोमांटिसिज्म से वह मानसिक रूप से मुक्त होने की कोशिश कर रहे थे। आजादी के बाद की घटनाओं के कारण उनके अन्दर प्रतिक्रियाएं चल रही थी, उन सबने शरत्चन्द्र के कई प्रभावों से उन्हें अलग कर दिया। इसके बाद प्रेमचन्द की दृष्टि-सम्पन्नता एवं प्रगतिशीलता उन्हें अधिक आकर्षित करने लगी। सदियों से शोषित और अन्याय से पीड़ित लोगों का चित्रण प्रेमचंद जी ने साहित्य में किया था। जो अमरकान्त के लिए अद्भुत घटना थी। वे इस प्रगतिशील विद्रोह की ओर झुके।

सन् 1954 में अमरकान्त हृदय रोग का शिकार हो गए। वे नौकरी छोड़कर लखनऊ चले आए। उनकी बीमारी बढ़ती गई, उन्हें जीने की आशा नहीं थी। उन्हें अफसोस इस बात का था कि वे जो लिखना चाहते थे वह लिख नहीं सके। उन्होंने मौत से संघर्ष किया। उनकी जिजीविषा ने उनको नया जीवन दान दिया। अब उन्होंने जाना कि जीवन कितना महत्त्वपूर्ण है उसे सहेज कर रखना होगा। कारण लिखने के लिए जिन्दगी जरूरी है। भावनाओं और अनियंत्रित उत्साह पर उन्होंने नियंत्रण रखना आरम्भ किया। वे अधिक से अधिक एकाध घंटा बैठकर लिख सकते थे। क्योंकि वह पूरी तरह स्वस्थ नहीं थे। जब वे आज़मगढ़ में अपने छोटे भाई के पास थे, उन्होंने कहानी प्रतियोगिता के लिए (दोपहर का भोजन) नामक कहानी भेजी। फिर वे बलिया आ गए। यहीं उन्होंने 'जिन्दगी और जोंक' तथा 'डिप्टी कलेक्टरी' लिखी और प्रतियोगिता में भेजने की सोची। उक्त कहानियों पर पुरस्कार मिलने पर उनका मनोबल बढ़ा और वे लगातार कहानियाँ लिखते गए। उन्हें अपने देश के लोगों से प्यार था। उनका (लोगों का) साहस, उनकी जीवन शक्ति, उनका त्याग और बलिदान, उनकी उदारता और विनम्रता उनका आलस्य हार को जीत में बदलने की आदत उनका साहस उन्हें बल दे गया और वे एक महान साहित्यकार बन गये।

अमरकान्त के अब तक प्रकाशित कहानी संग्रह हैं- 'जिन्दगी और जोंक', 'देश के लोग', 'मौत का नगर', 'मित्र

मिलन और अन्य कहानियां', 'कुहासा', 'तूफान', 'कलाप्रेमी', 'प्रतिनिधि कहानियां', 'दस प्रतिनिधि कहानियां', 'एक धनी व्यक्ति का बयान', 'सुख और दुःख का साथ', 'जांच और बच्चे', 'अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियां' (दो खण्डों में) तथा 'औरत का क्रोध' शामिल हैं। उनके प्रकाशित उपन्यासों की संख्या 11 हैं। 'सूखा पत्ता', 'काले उजले दिन', 'कंटीली राह के फूल', 'ग्राम-सेविका', 'पराई डाल का पक्षी' बाद में 'सुखजीवी' नाम से प्रकाशित 'बीच की दीवार', 'सुन्नर पांडेय की पतोह', 'आकाश पक्षी', 'इन्हीं हथियारों से' 'विदा की रात', 'लहरें'। उन्होंने 'कुछ यादें, कुछ बातें' और 'दोस्ती' नामक दो संस्मरणों की भी रचना की। इनके अलावा बाल साहित्य के क्षेत्र में भी उनका योगदान अविस्मरणीय है। 'नेऊर भाई', 'वानर सेना', 'खूँटे में दाल है' और 'मँगरी'। उन्होंने प्रौढ़ साहित्य भी लिखा है- 'सुग्गी चाची का गाँव', 'झगरू लाल का फैसला', 'एक स्त्री का सफर', 'बाबू का फैसला', 'दो हिम्मती बच्चे' आदि सम्मिलित हैं।

अमरकान्त को अपनी रचनाओं पर प्रमुख पुरस्कार एवम् सम्मान भी मिले हैं, वे इस प्रकार है- सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, यशपाल पुरस्कार, जन-संस्कृति सम्मान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का सम्मान, साहित्य अकादमी सम्मान, व्यास सम्मान एवं ज्ञानपीठ पुरस्कार। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अमरकान्त ने वह ऊंचाई बना ली जहाँ पुरस्कार एवं सम्मान अमरकान्त की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाते, अपितु अमरकान्त से जुड़कर स्वयं सम्मानित हुए है। अपने अन्तिम दिनों में वे पत्रकार जीवन पर आधारित एक उपन्यास 'खबर का सूरज आकाश में' के लेखन में व्यस्त थे। उनका निधन 17 फरवरी 2014 को इलाहाबाद में हुआ। अमरकान्त के जाने के साथ प्रेमचन्द की कथा परम्परा की वह धारा अवरुद्ध हो गई, जिसने बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश को उसकी यथार्थता में पकड़ने और अभिव्यक्त करने का सार्थक प्रयत्न किया। उनका अवसान प्रगतिशील कथाधारा की एक मजबूत कड़ी का टूट जाना है।

द्वारा अजय निवास, नजदीक हाटेश्वरी मंदिर, सैट नं. 1, न्यू शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 009, मो. 94597 97003

सन्दर्भ सूची

1. मेरा बचपन कब समाप्त हुआ : अमरकान्त, अन्यथा पत्रिका, नवम्बर 2005, अंक 5, पृ. 94.
2. देश के लोग और वह : आत्मकथ्य/अमरकान्त (अमरकान्त एक मूल्यांकन) संपादक रवीन्द्र कालिया, पृ. 10-11.
3. वहीं, पृ. 12, 13, 14, 15, 16, 21, 24, 26, 27, 28, 29
15. अमरकान्त एक अस्तित्वादी कथाकार : राजेन्द्र यादव सं. (अमरकान्त एक मूल्यांकन) , पृ. 189, ..., 190, ...

जितेन्द्र शंकर बजाड़ की ग़ज़लें

चेहरे

उस दिन शहर में आए थे कुछ खास चेहरे
बस! उसके बाद मिले सब उदास चेहरे।
बैठे हैं अब बुझ-बुझे अंधेरा ओढ़कर
जो बांटते थे कल तलक उजास चेहरे।
वो शख़्स कामयाब है हर वक्त हर जगह
हैं जितने ज्यादा यहां जिसके पास चेहरे।
नकल शकल की छोड़कर लो काम अकल से
बन जाएंगे तुम्हारे भी कई दास चेहरे।
भूल जाओ छोड़ दो हरदम संवारना
आते नहीं सभी को यहां रास चेहरे।
गैरों के लिए बहाते घी-दूध की नदियां
जिन्दा हैं यहां खा के खुद वो घास चेहरे।
कोशिश करो बन जाओगे खुशियां बिखेरते
खिलते हुए गुलों से बारह मास चेहरे।

नेकदिल

झूठ के इस दौर में जिस रोज जिन्दा होगा सच
हाल अपना देख के बेहद शर्मिन्दा होगा सच।
पूजते हैं लोग जिसको मानकर भगवान सुन
वो कोई बगुला-भगत या फिर दरिन्दा होगा सच।
करते हैं तारीफ अच्छाई की अकसर लोग सब
पर तजुर्बा आपका सुनने का निन्दा होगा सच।
नाम आजादी का रटता हो गया पागल जो शख़्स
वह कोई पिछले जनम बन्दी परिन्दा होगा सच।
हुक्म सुन घुटनों के बल जो झुक गया था कल यहां
आदमी वह अक्ल से भोला चरिन्दा होगा सच।
हैं नहीं दमदार मेरे शे'र या अशआर सब
गीत मेरा भी मगर कोई चुनिन्दा होगा सच।
ढूंढ 'शंकर' ढूंढ तुझको भीड़ में मिल जाएगा
नेक दिल इन्सान कोई अल्लाह का बन्दा होगा सच।

पोस्ट ऑफिस भीचोर, जिला चितौड़गढ़, राजस्थान-312 022

आलेख

गुरु और शिष्य का रिश्ता

• विनोद कुमार

यह युग-युगांतरों से चला आ रहा रिश्ता है लेकिन आज 21वीं शताब्दी में, 2014 में इस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षा पर विचार रखते हुए डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था, "एक उद्देश्य जो शताब्दियों पहले अच्छा था यह आवश्यक नहीं कि विश्व की बदलती परिस्थितियों के साथ, देश की बदलती हुई दशाओं के साथ वह आज भी अच्छा ही हो।"

यूं तो अल्फ्रेड टेनीसन भी कहता है, 'Change is the law of universe' किंतु हमें सर्वेक्षण यह करना है कि अध्यापक और छात्रों के रिश्तों में किस प्रकार का परिवर्तन आया है और भारतीय जीवन में आया यह परिवर्तन कितना नकारात्मक और कितना सकारात्मक है और जब हम गुरु-शिष्य के रिश्तों पर दृष्टि डालना चाहेंगे तो शिक्षा और शिक्षालय, विद्या और विद्यालय पर स्वाभाविक रूप से चर्चा करनी ही होगी।

याद कीजिए ग्रीक देश के ऐथेन्स राज्य में रहने वाले सुकरात को जिसने कहा था, "आपका दिमाग आपके आचरण के लिए अधिक जिम्मेदार है, देवी-देवताओं की तुलना में" या उसने कहा था, "और भी उच्चतर और श्रेष्ठतर उद्देश्य है अपेक्षाकृत इसके कि आप ग्रीक के देवी-देवताओं के लिए बलिदान करें।"

यह युग-युगांतरों से चला आ रहा रिश्ता है लेकिन आज 21वीं शताब्दी में, 2014 में इस पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षा पर विचार रखते हुए डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था, "एक उद्देश्य जो शताब्दियों पहले अच्छा था–यह आवश्यक नहीं कि विश्व की बदलती परिस्थितियों के साथ, देश की बदलती हुई दशाओं के साथ वह आज भी अच्छा ही हो।"

याद कीजिए प्लेटो शिष्य था सुकरात का और उस समय तक सुकरात की बातें लिखता रहा था जब तक सुकरात जहर का प्याला पी रहा था और आपको यह भी याद करना चाहिए कि प्लेटो ने 'रिपब्लिक' नामक ग्रंथ लिखा था जिसको आज भी एक मानक माना जाता है, प्लेटो ने तमाम स्कूल भी चलाए थे। अरस्तू को दुनिया जानती है कि वह प्लेटो का शिष्य था, यह भी सच है कि अरस्तू का नाम ज्ञान-विज्ञान की सभी पुस्तकों में मिलता है।

सिकंदर महान विश्व-विजेता कहलाता है और सिकंदर के साथ अरस्तू भी तो भारत आया था। सिकंदर महान का मुकाबला हुआ था चंद्रगुप्त से और चंद्रगुप्त का गुरु था चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त या जिन्हें कौटिल्य भी कहा जाता है। इस टकराव का ऐतिहासिक पहलू बताता है कि सिकंदर महान वापस लौट गया था और उसने संपूर्ण भारत पर विजय करने का विचार त्याग दिया था। यह है गुरु-शिष्य के बीच की एक अच्छी शृंखला।

स्वामी परमहंस रामकृष्ण और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद जिनका शून्य पर विश्व धर्म संसद शिकागो में दिया गया भाषण ऐतिहासिक रूप से अमर है।

रामतीर्थ एक कॉलेज में गणित के प्रोफेसर थे उस कॉलेज में स्वामी विवेकानंद ने एक भाषण दिया। भाषण सुनकर रामतीर्थ इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी सोने की चेन वाली घड़ी स्वामी विवेकानंद को पहना दी। भाषण समाप्त हुआ और स्वामी विवेकानंद कॉलेज से चलने लगे तो उन्होंने वह घड़ी रामतीर्थ की जेब में डाल दी। रामतीर्थ ने पूछा, "आपने ऐसा क्यों किया?" विवेकानंद ने उत्तर दिया मुस्कुराकर, "जो मेरा है वह तेरा है और जो तेरा है वह मेरा है।"

ऐसे महान गुरु-शिष्यों की शृंखला थोड़ा और आगे बढ़ती है क्योंकि रामतीर्थ ने प्रोफेसर की नौकरी छोड़ दी और एक नहीं

कई-कई देशों में भ्रमण करते हुए मानवता का सच्चा पाठ पढ़ाते हुए घूम रहे थे उन्हीं दिनों भारत से सरदार पूर्ण सिंह रसायन विज्ञान में डाक्टरेट की डिग्री लेने जापान पहुंचे। पूर्ण सिंह ने रामतीर्थ का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया और शोध कार्य छोड़ दिया। सरदार पूर्ण सिंह के पांच निबंध विश्व साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

आज इन गुरु-शिष्यों की महान परंपरा को तथाकथित ज्ञानी- विज्ञानी बड़बोले गुरु जी और फैशनेबल विद्यार्थी जानना भी नहीं चाहते क्योंकि शिक्षा अब एक हॉट बिजनेस कहा जाता है। शिक्षा की बड़ी-बड़ी दुकानें, ऊंची-ऊंची इमारतें, बढ़ता हुआ प्रतिशत, पेपर आउट करना, ब्लैकबोर्ड पर परीक्षा में गुरु जी पेपर हल करवाते हैं। डिग्रियां महंगी हो चुकी हैं। शिक्षा अब मिशन नहीं प्रोफेशन हो गई है। सरकारी स्कूलों को नष्ट कर रहे हैं तथाकथित भारत के शिक्षाविद्। शिक्षा के निजीकरण पर खान अब्दुल खान गफ्फार (सीमांत गांधी) को याद करते हुए लिखूंगा क्योंकि भारत पाकिस्तान के बंटवारे के समय सीमांत गांधी का क्षेत्र पाकिस्तान को दे दिया गया था। खान अब्दुल खान गफ्फार ने कहा था, “आपने हमें भेड़ियों के सामने छोड़ दिया है।” मैं कहता हूं कि स्वतंत्र भारत में निजीकरण करके शिक्षा-जगत को भेड़ियों के हवाले कर दिया गया है। हमारे पवित्र शिक्षालय अब शिक्षा नहीं देते, बल्कि डिग्रियां और सर्टिफिकेट बेचते हैं। भावी पीढ़ी को प्रायः भ्रष्ट बनाते हैं, ऐसे में गुरु और शिष्य के संबंध दम तोड़ रहे हैं। अगर कुछ अच्छे अध्यापक और शिष्य बचे भी हैं, यदि कुछ शिक्षालय इन प्रवृत्तियों से बचे भी हैं तो शिक्षा का धनाढ्य समाज उन्हें हीन दृष्टि से देखता है। उनका जीना कठिन होता जा रहा है।

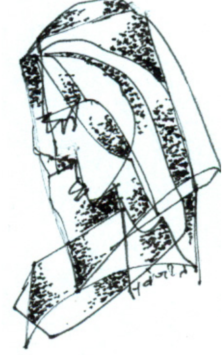
फिलहाल डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के जन्मदिन पर यह लिखना और आप तक प्रेषित करना मुझको उचित लगा। अब आप क्या सोचते हैं, यह अलग बात है।

उपाध्यक्ष, निराला साहित्य परिषद्, कटरा बाजार, महमूदाबाद (अवध), जिला सीतापुर, उत्तर प्रदेश, मो. 9450803518

अशोक भारती देहलवी की कविताएं

आंच पुरानी पीर नई

दिल में अब भी आंच पुरानी पीर नई
वही पुरानी मय्यानों में शमशीर नई।
बहने दो जो जमा रुधिर शिराओं में
लिख दे अपने हाथों से तहरीर नई।
मंथन कर दे बहती हुई धाराओं के
पुरातन प्राचीरों पर लिख नज़ीर नई।
गल कर और ढल कर ही इस्पात हुए
लिख दे तकदीरों पर कोई तदबीर नई।
अजन्मी ही रही कोख में सौगातें
रह गई अनिर्मित ही तस्वीर नई
सौ यत्नों और प्रयत्नों में मूक हुए
लगी पुरानी शक्लों पर अबीर नई।
हो जाएंगे नतमस्तक आकाश धरा।
दसों दिशाओं में कर दे तासीर नई।



गुलफाम के

नक्शे कदम रह गए गुजरे हुए तूफान के
शायद पट खुल गए हैं फिर से रोशनदान के।
ख्वाइशों की अर्जियां कह गईं कसीदे शान के।
मुफलिसी गिरवी हुई फिर किसी धनवान के।
निकल गया इक हवा का झोंका जो अपनी गली
मुकद्दर बदले हो जैसे सूखे हुए गुलदान के
भर गया था दिल मेरा इस वहशीपन के दौर से।
रोकते थे फिर से मुझको मुर्दे कब्रिस्तान के।
पत्तलों के नवाले भी फजीहतों में बंट गए।
क्या-क्या तेवर हो गए इस दौर में इनसान के।
वो वफादारी की ख्वाइश गरद बन करके उड़ी।
हमसे तो बेहतर है देखो मुर्दे तक श्मशान के।
छोड़ जाते हैं तेरी यादों के साए हर पहर।
याद ज्यूं आते हैं किस्से गए हुए मेहमान के।
वो सजी हुई महफिलें-मुशायरों के सिलसिले।
फिजाओं में गूंजते हैं नग में किसी दीवान के।
साकिया जब भी करी थी जाम पीने की तलब
क्या-क्या जिक्र छोड़ गए थे देहलवी गुलफान के।

562, पॉकेट-II, सेक्टर-IV, तिमारपुर, नई दिल्ली, मो. 92681 56130

विकास

औद्योगिक गतिविधियों से गतिमान हिमाचल प्रदेश

● राजेश शर्मा

हिमाचल प्रदेश में मौजूद प्रदूषणमुक्त एवं शांतिप्रिय वातावरण, प्रचुर प्राकृतिक संसाधन, निर्बाधित विद्युत आपूर्ति, सशक्त अधोसरंचना, आकर्षक प्रोत्साहन एवं जवाबदेह प्रशासन कुछ ऐसे प्रोत्साहन हैं, जिनके परिणामस्वरूप हिमाचल प्रदेश निवेशकों का पसंदीदा स्थल बनकर उभरा है। सरकार राज्य में स्थानीय कच्चे माल पर आधारित तथा रोजगार सृजन की अधिक क्षमता वाले प्रदूषण-मुक्त उद्योगों को व्यापक प्रोत्साहन दे रही है। सरकार के इन प्रयासों से राज्य में बेरोजगारी की समस्या को काफी हद तक कम करने में सहायता मिली है। प्रदेश में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए ठोस कदम एवं प्रभावी योजना अपनाई जा रही हैं। प्रदेश में ऐसे और अधिक औद्योगिक क्षेत्र चिन्हित व विकसित किए जा रहे है, जहां अत्याधुनिक अधोसरंचना सुविधाएं उपलब्ध हों। 'आमंत्रण से निवेश' सरकार का प्रदेश में औद्योगिक निवेश को आकर्षित करने का मूलमंत्र है। इस दिशा में सरकार 'इन्वेस्टर मीट' आयोजित कर विशेष प्रयास कर रही हैं। इसके अतिरिक्त, उद्योग विभाग में 'निवेश प्रोत्साहन प्रकोष्ठ' भी स्थापित किया गया है, जिससे नए निवेश आकर्षित किए जा सके। प्रदेश में औद्योगिक विकास को नई दिशा प्रदान करने के लिए मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक 'निवेश सलाहकार परिषद' स्थापित की गई है, जिसमें उद्योग जगत के प्रतिनिधियों को भी शामिल किया गया है। इससे प्रदेश में औद्योगिक विकास के लिए नीति निर्धारण के लिए एक उचित मंच उपलब्ध होगा। प्रदेश में राज्य स्तरीय एकल खिड़की स्वीकृति एवं अनुश्रवण प्राधिकरण का गठन किया गया है। इसके माध्यम से निवेशकों को एक ही आवेदन पत्र पर नए उद्योगों की स्वीकृतियां 90 दिन के भीतर दी जा रही हैं। वर्तमान प्रदेश सरकार ने जुलाई 2014 तक 93 नई परियोजनाओं, जिनमें 31 नई तथा बड़ी एवं मध्यम औद्योगिक इकाइयों के विस्तार के 68 प्रस्तावों को स्वीकृति दी है। इनमें लगभग 6690 करोड़ रुपये का निवेश होगा और 8325 से अधिक युवाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे। इसके अलावा, खाद्य प्रसंस्करण की 109 परियोजनाएं भी स्वीकृत की गई हैं, जिसके लिए राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मिशन के अन्तर्गत 6.89 करोड़ रुपये का अनुदान स्वीकृत किया गया है। एकल खिड़की स्वीकृति एवं अनुश्रवण प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत औद्योगिक परियोजनाओं को हिमाचल प्रदेश मुजारा एवं भू-सुधार अधिनियम के अनुच्छेद 118 के अन्तर्गत एक निर्धारित सीमा तक भूमि खरीदने के लिए स्वीकृति दी जा रही है। इससे उद्यमियों को अपने उद्योग के लिए भूमि खरीदने के लिए जटिल प्रक्रिया से नहीं गुजरना पड़ेगा। प्रदेश सरकार ने उच्च क्षमता श्रेणी उपभोक्ता उद्योगों को देय विद्युत शुल्क 17 प्रतिशत से घटाकर 15 प्रतिशत किया है। वर्तमान मध्यम तथा बड़े उद्योगों को इसे 15-17 प्रतिशत से घटाकर 13 प्रतिशत, नए मध्यम तथा बड़े उद्योगों के लिए प्रथम पांच वर्ष के लिए विद्युत शुल्क की दर 5 प्रतिशत निर्धारित की गई है। इसी प्रकार, प्रदेश सरकार ने मौजूदा लघु औद्योगिक इकाइयों के लिए विद्युत शुल्क की दर को 9 प्रतिशत से घटाकर 7 प्रतिशत किया है, जबकि नए लघु औद्योगिक इकाइयों के लिए इसकी दर प्रथम पांच वर्षों के लिए 5 प्रतिशत निर्धारित की गई है। यही नहीं, प्रदेश के युवाओं को रोजगार के अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से ऐसे उद्योगों से प्रथम पांच वर्ष में केवल 2 प्रतिशत ऊर्जा शुल्क वसूला जाएगा, जो 300 मूल हिमाचली युवाओं को रोजगार के अवसर प्रदान करेंगे। प्रदेश में ऊना, कांगड़ा तथा सोलन जिलों में अत्याधुनिक औद्योगिक क्षेत्र विकसित किए जाएंगे। इन औद्योगिक क्षेत्रों में निवेशकों की सुविधा के लिए विश्व स्तरीय सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाएंगी। कांगड़ा जिले के कंदरौरी में औद्योगिक क्षेत्र विकास के लिए 106 करोड़ रुपये व्यय कर 72-82-74 हेक्टेयर भूमि हस्तांतरित की गई है, जबकि ऊना जिले के पंडोगा में 112 करोड़ रुपये की लागत से 60-29-20 हेक्टेयर भूमि पर अत्याधुनिक औद्योगिक क्षेत्र विकसित किया जाएगा। शिमला जिले के रामपुर बुशैहर के निकट दत्तनगर में भी एक नया औद्योगिक क्षेत्र विकसित किया जा रहा है। सोलन जिला के बद्दी में 147 करोड़ रुपये की लागत से एक टूल रूम की स्थापना की जा रही है। इसके लिए भटोली-कलां गांव में 100 बीघा भूमि उपलब्ध करवाई गई है। इससे न केवल माइक्रो, लघु तथा मध्यम औद्योगिक इकाइयों को तकनीकी सहायता मिलेगी, अपितु बेरोजगार युवाओं के कौशल विकास एवं उन्नयन

में भी सहायता मिलेगी। उद्यमियों की सुविधा के लिए प्रदेश सरकार ने राज्य में स्थापित होने वाले नए उद्योगों के लिए सेल डीड अथवा लीज डीड पर स्टाम्प शुल्क में 50 प्रतिशत कटौती की है। इसी प्रकार नए उद्योगों के लिए भू-उपयोग हस्तांतरण शुल्क को भी वर्तमान दर से घटाकर 50 प्रतिशत किया गया है। ऊना जिले में निजी क्षेत्र में 200 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से एक 'फूड पार्क' स्थापित किया जा रहा है। हमीरपुर जिले में 17 करोड़ रुपये की लागत से एक स्पाइस पार्क की स्थापना की जा रही है तथा इसके लिए भारतीय स्पाइस बोर्ड को भूमि हस्तांतरित की गई है। ऊना जिले में 10.08 करोड़ रुपये की लागत से एक सार्वजनिक सुविधा केन्द्र तथा 1.55 करोड़ रुपये की लागत से दक्षता विकास केन्द्र की स्थापना की जा रही है। प्रदेश से निर्यात को बढ़ावा देने के लिए बद्दी में 2.75 करोड़ रुपये की लागत से एक इंलैंड कन्टेनर डिपो तथा 10.81 करोड़ रुपये की लागत से बद्दी ट्रेड सेंटर की स्थापना की जा रही है। इससे क्षेत्र में औद्योगिक विकास को व्यापक बढ़ावा मिलेगा। प्रदेश सरकार केन्द्र सरकार के साथ बेहतर सम्बन्ध व समन्वय बनाए हुए हैं, ताकि प्रदेश के औद्योगिक विकास के लिए अधिक से अधिक केन्द्रीय सहायता प्राप्त की जा सके। प्रदेश सरकार के सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार बड़े उद्योगों के लिए संयंत्र एवं मशीनरी के लिए अधिकतम 30 लाख रुपये तक तथा सूक्ष्म, छोटे एवं मध्यम उद्योगों के लिए तथा मौजूदा उद्योगों के विस्तार के लिए अधिकतम 50 लाख रुपये तक 15 प्रतिशत पूंजी निवेश उपदान को मार्च, 2017 तक जारी रखने को सहमत हो गई है। इसी प्रकार कच्चे माल को प्रदेश के बाहर से प्रदेश तक तथा तैयार माल को फैक्टरी से निकटतम ब्रॉडगेज रेल लाईन तक पहुंचाने के लिए 75 प्रतिशत की दर से भाड़ा उपदान की अवधि को मार्च, 2017 तक बढ़ाने में भी केन्द्र सरकार सहमत हो गई है। प्रदेश सरकार के सतत् प्रयासों से हिमाचल प्रदेश तेजी से निवेशकों का एक पसंदीदा स्थल बनकर उभरा है। इससे न केवल प्रदेश में आर्थिक गतिविधियों का संचार होगा, बल्कि प्रदेश के युवाओं को अधिक से अधिक रोजगार उपलब्ध होंगे।

सहायक सम्पादक,
निदेशालय, सूचना एवं जन सम्पर्क, शिमला

लोगों को घर-द्वार के समीप बेहतर एवं गुणात्मक स्वास्थ्य सेवाएं

● **सचिन सेंगर**

प्रदेश सरकार राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ कर दूर-दराज क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को उनके घर-द्वार पर बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए प्रयासरत है। राज्य में स्वास्थ्य अधोसंरचना विकास के साथ-साथ गुणात्मक स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। स्वास्थ्य क्षेत्र पर वर्तमान वित्त वर्ष में 1050 करोड़ रुपये व्यय किये जा रहे हैं। गत 18 माह की अवधि के दौरान प्रदेश में स्वास्थ्य क्षेत्र में आधुनिक सुविधाएं, बेहतर अधोसंरचना, अनुसंधान सुविधाएं एवं पर्याप्त स्टाफ की उपलब्धता को सुनिश्चित बनाने की दिशा में कदम उठाए गए हैं।

स्वास्थ्य संस्थानों को स्तरोन्न्त करने के साथ-साथ नये संस्थान भी खोले जा रहे हैं। शिमला के कमला नेहरू मातृ एवं शिशु अस्पताल में 16.50 करोड़ रुपये की लागत से 100 बिस्तरों के नए भवन का निर्माण किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय अस्पताल, मंडी में पांच करोड़ की लागत से 100 बिस्तरों की क्षमता के मातृ तथा शिशु अस्पताल निर्मित किया जा रहा है। प्रदेश सरकार शीघ्र ही गर्भवती महिलाओं तथा एक वर्ष तक के बच्चों की सुविधा के लिए ड्राप बैक एंबुलेंस 102 सेवा आरम्भ करेगी। इस तरह के 125 वाहन प्रदेश भर के स्वास्थ्य संस्थानों में तैनात करने की योजना है। प्रदेश में चिकित्सा शिक्षा को नया आयाम देने के लिए केन्द्र के सहयोग से 567 करोड़ रुपये की लागत से तीन नये चिकित्सा महाविद्यालय स्थापित किए जा रहे हैं। ये महाविद्यालय चंबा, हमीरपुर तथा नाहन में स्थापित किए जाएंगे। इसके अलावा, आईजीएमसी शिमला के नर्सिंग स्कूल को स्तरोन्नत कर नर्सिंग कॉलेज बनाने के लिए भी केन्द्र सरकार से स्वीकृति प्राप्त हो गई है। इस कार्य के लिए स्वीकृत 520.50 लाख रुपये की कुल धनराशि में से केन्द्र द्वारा 440.00 लाख रुपये जारी किए जा चुके हैं। प्रदेश के लोगों को घर-द्वार के समीप बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाने के लिए वर्ष 2013-14 में 43 बहु विशेषज्ञ शल्य चिकित्सा शिविर लगाए गए, जिनमें कुल 3651 लोगों के निःशुल्क ऑपरेशन किए गए। इसके अतिरिक्त, प्रदेश में लगभग 50 नए स्वास्थ्य संस्थान खोले गए हैं। इन संस्थानों में चिकित्सकों तथा पैरामेडिकल स्टाफ की पर्याप्त संख्या सुनिश्चित बनाने के लिए 48 विशेषज्ञ चिकित्सक, 412 चिकित्सक, 7

रेडियोग्राफर, 19 ओटीए के अलावा विभिन्न श्रेणियों के 150 पद भरे गए हैं।

हिमाचल प्रदेश में पहली बार ब्रेन स्ट्रोक उपचार के लिए पॉयलट परियोजना के आधार पर टेलीस्ट्रोक प्रबन्धन कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। यह कार्यक्रम अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), दिल्ली के सहयोग से आरम्भ किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लक्षण देखकर मस्तिष्क आघात (ब्रेन स्ट्रोक) का पता लगाना तथा तुरंत इलाज की सुविधा उपलब्ध करवाने के लिए एम्स प्रदेश भर में उन 18 अस्पतालों में प्राथमिक स्ट्रोक केन्द्र स्थापित करेगा जहां सीटी स्कैन की सुविधा उपलब्ध है। इसके लिए मस्तिष्क आघात का समय पर उपचार सुनिश्चित बनाने के लिए प्रदेश के 120 चिकित्सकों को प्रशिक्षित किया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 6 मरीजों का सफल इलाज भी किया जा चुका है। कार्यक्रम की सफलता भविष्य में मस्तिष्क आघात के संपूर्ण उपचार की दिशा में मार्ग प्रशस्त करेगी। प्रदेश के दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से 10 जिलों में सचल चिकित्सा इकाइयां स्थापित की जा रही हैं। इन इकाइयों में विशेषज्ञ चिकित्सकों के साथ-साथ अल्ट्रा साऊंड की सुविधा तथा सभी जीवन रक्षक दवाइयां उपलब्ध करवाई जाएंगी। ये इकाइयां ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धारित समय पर शिविर आयोजित करेंगी।

प्रदेश सरकार टेलिमेडिसन सुविधाएं विकसित करने के लिए भी प्रयासरत है। लोगों को सस्ती दरों पर दवाइयां उपलब्ध करवाने के लिए 29.59 करोड़ रुपये स्वीकृत किए गए हैं। इंदिरा गांधी आयुर्विज्ञान चिकित्सा महाविद्यालय, शिमला में केन्द्रीकृत आक्सीजन संयत्र स्थापित किया जा रहा है। सरकार सार्वजनिक निजी सहभागिता के अन्तर्गत प्रदेश के चिहिन्त संस्थानों में एमआरआई सुविधा उपलब्ध करवाने के लिए प्रयासरत है।

पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण हमारे राज्य में दुर्घटनाओं तथा अन्य कारणों से आए दिन हादसे होते हैं। इन परिस्थितियों में तुरंत उपचार के लिए आईजीएमसी में आधुनिक ट्रामा केन्द्र स्थापित करने के साथ-साथ नूरपुर, रामपुर तथा कुल्लू में भी ट्रामा केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं। स्वास्थ्य क्षेत्र को सुदृढ़ बनाने की दिशा में सरकार प्रयासरत है ताकि राज्य के कठिन एवं दूर-दराज क्षेत्रों तक लोगों को विशेषज्ञ स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ मिल सके।

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी,
निदेशालय, सूचना एवं जन सम्पर्क, शिमला

राहत लेकर आई नई 'इमारती लकड़ी आवंटन नीति'

● **रवि सहगल**

प्रदेश के लोगों को राहत देने के लिए राज्य सरकार ने इमारती लकड़ी आवंटन (टी.डी) नीति में संशोधन कर इसे जन आंकाक्षाओं के अनुरूप सरल और व्यावहारिक बनाया है। टी.डी. नीति के जो नियम पहले निर्धारित थे, वे जटिल और समय बर्बाद करने वाले थे जिसकी वजह से आम जनता को असुविधा हो रही थी और अधिकार धारकों को इमारती लकड़ी का सही वितरण नहीं हो रहा था। इसके मद्देनजर राज्य सरकार ने आम जनता के हित में नए नियम बनाने का निर्णय लिया। लोगों की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के अनुरूप 26 दिसम्बर, 2013 को संशोधित हिमाचल प्रदेश वन (अधिकार धारकों को इमारती लकड़ी का वितरण) नियम, 2013 को अधिसूचित किया गया। नए नियमों में इमारती लकड़ी, उन अधिकार धारकों को मंजूर करने का प्रावधान किया गया है जिनके संबंधित वन बन्दोबस्त रिर्पोटों में अभिलिखित वास्तविक घरेलू उपयोग जैसे आवासीय मकान, गौशाला इत्यादि के निर्माण, रखरखाव अथवा मरम्मत के लिए इमारती लकड़ी वितरण के अधिकार हैं। यदि अधिकार धारक ने अपनी निजी भूमि से वृक्षों का विक्रय किया है तो उसे दस वर्ष के लिए टी.डी. का वितरण मंजूर नहीं किया जाएगा। यदि अधिकार धारक के पास एक से अधिक जगह ऐसी भूमि उपलब्ध हो जिससे वह एक से अधिक स्थान पर इमारती लकड़ी प्राप्त करने की योग्यता रखता हो, ऐसी स्थिति में उसे दोनों स्थानों पर इमारती लकड़ी मंजूर की जाएगी, लेकिन दूसरे स्थान पर वृक्षों का मूल्य दोगुना होगा। अधिकार धारक को भूमि का ब्योरा देना होगा और दूसरे स्थान पर इमारती लकड़ी के वितरण के लिए आवेदन करते समय प्रथम स्थान पर भूमि के बदले पहले ही प्राप्त की गई इमारती लकड़ी की भी जानकारी देनी होगी। जबकि पुराने नियमों में केवल एक स्थान पर ही टी.डी. अधिकार का प्रावधान था। ऐसे भू-स्वामियों, जिन्होंने हि. प्र. मुजारा और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 118 के अधीन सरकार से अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् भूमि खरीदी है, को उस आधार पर कोई इमारती लकड़ी का वितरण नहीं किया जाएगा। यह प्रावधान भूमि स्वामी द्वारा भूमि क्रय की तिथि को विचार में नहीं रखने पर किया गया है। अगर भूमि खरीद उपरोक्त नियमों के पूर्व की गई है, फिर भी टी.डी. का आबंटन नहीं किया जाएगा। इमारती लकड़ी का वितरण पंचायत रिकार्ड के अनुसार केवल परिवार के मुखिया को ही स्वीकृत होगा। इमारती लकड़ी

(शेष पृष्ठ 60 पर)

कहानी

समाधि

● सुरभि रैणा बाली

गुरु राममूर्ति के आश्रम में आए हुए अभी अवधेश कुमार को कुछ ही माह हुए थे। वह केवल पांच वर्ष का बालक था जब उसके माता-पिता ने उसे गुरुदेव के चरणों में समर्पित कर दिया था। उसके माता-पिता को विवाह होने के पांच वर्ष बाद तक जब कोई संतान नहीं हुई थी तो उसके माता-पिता ने इस प्रसिद्ध मंदिर में आकर गुरुदेव के पास भी माथा टेका तथा संतान होने पर वे एक पुत्र को गुरुदेव के चरणों में मंदिर की सेवा के लिए समर्पित कर देंगे, ऐसा उन पति-पत्नी ने संकल्प लिया था। इसके एक वर्ष बाद ही उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। कालांतर में उन्हें दो अन्य पुत्र तथा एक पुत्री की प्राप्ति हुई। पहले दो पुत्रों ने गुरु के आश्रम जाने से मना कर दिया। इस पर माता-पिता अवधेश कुमार के पैदा होने के बाद से ही जब वह बात करने योग्य हुआ तो उससे गुरुदेव के आश्रम जाने की बात किया करते। अभिप्राय यह कि अवधेश कुमार को शुरू से ही इस बात के लिए तैयार किया गया कि गुरुदेव व भगवान के चरणों में भेंट किया जाना ही उसकी नियति है। जब वह छह माह का हुआ तो उसे माता-पिता द्वारा गुरुदेव के चरणों में रख दिया गया परंतु गुरुदेव ने कहा, "उसे थोड़ा बड़ा होने दो, जब यह पांच वर्ष का हो जाएगा तो ही उसे आश्रम में आने की अनुमति दी जाएगी।" हर दूसरे व तीसरे महीने उसे आश्रम में लाया जाता।

इस प्रकार जब वह पूरे पांच वर्ष का हो गया तो उसे गुरुदेव के आश्रम में लाया गया। मां और पुत्र का विछोड़ बड़ा ही मार्मिक था। माता और पुत्र दोनों ही रो रहे थे।

"मां मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगा।" अवधेश कुमार ने बाल हठ किया।

"पुत्र मैं भी क्या करूं। हमने तुम्हें गुरुदेव के आश्रम में देने का संकल्प लिया है। अतः इसे तो पूरा करना ही पड़ेगा।"

मां ने बेटे को अपने सीने से लगा लिया। लेकिन अवधेश कुमार गला फाड़कर रो रहा है।

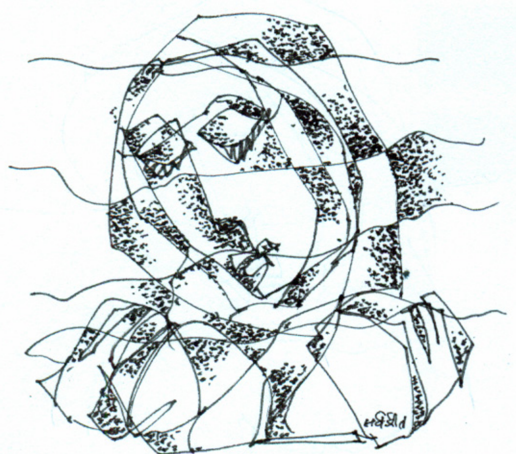
"बेटा हम बीच-बीच में तुम्हारे पास आते रहेंगे।" कहकर मां ने उसके आंसू पोंछे और उसे खुद से अलग किया। यह सब करते हुए उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा था परंतु परमात्मा से किया हुआ वचन तो निभाना ही पड़ेगा।

अवधेश कुमार ने मां का आंचल पकड़ लिया और बोला, "मां मुझे छोड़कर मत जाओ।" मां ने रोते-रोते ही अपना मन मजबूत करके उससे अपना आंचल छुड़ा लिया और आश्रम के मुख्य द्वार से बाहर चली गई।

अवधेश के पिता ने गुरुदेव के चरण स्पर्श करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदाई ली। हालांकि अवधेश कुमार का रोना अब भी जारी था।

कुछ दिन तो अवधेश का मन आश्रम में नहीं लगा। उसे रह-रहकर अपने घर की याद आ रही थी। परंतु कुछ ही दिनों में आश्रम में रहने वाले उसी आयुवर्ग के बच्चों के साथ खेलने में उसका मन लगने लगा। गुरुदेव सुबह और शाम उन बच्चों को मंत्रों का उच्चारण भी करवाया करते। बच्चे मंदिर की आरती में भी सम्मिलित होते थे। अब मंदिर की इस व्यवस्था में उसका मन रमने लगा था। बच्चों के साथ खेलना, मंत्रोच्चारण करना, भजन कीर्तन करना, आश्रम के छोटे-मोटे कार्य करना, साथ मिलकर भोजन करना उसकी दिनचर्या में शामिल था।

इसी प्रकार पांच वर्ष और बीत गए। गुरु का आदेश हुआ कि अपने घर जाकर भिक्षा लानी है। अवधेश को अपने घर की धुंधली-सी याद थी। मां ने उसे बड़े प्यार से भोजन कराया तथा उसे विदा करते हुए रोई भी। इसी प्रकार पांच वर्ष और बीत गए। पुनः गुरुदेव के आदेश पर उसे भिक्षा लेने भेजा गया। इसके पीछे उद्देश्य यही था कि जन्म देने वाले माता-पिता के मोहपाश से पूरी तरह छूट जाए और मन में विरक्ति का भाव आ जाए परंतु अब अवधेश पंद्रह वर्ष का किशोर हो गया था। उसने भगवा वस्त्र धारण किए हुए थे और माथे पर चंदन का तिलक शोभायमान था। हाथ में कमंडल था। वह अपनी मंडली के साथ घर गया। उस समय घर में उसकी मां, पिता व भाई भी थे। बड़े भाई का विवाह



हो गया था। उसकी पत्नी तथा उसकी नवजात संतान उसकी गोद में थी।

मां ने पुत्र को घर में बुलाया। प्यार से बिठाया और बड़े प्यार से अपने हाथों से भोजन कराया और उसे विदा करते हुए खूब रोई। उसे भी रोना आ रहा था परंतु भिक्षा लेने के बाद उसने अपने माता- पिता तथा भाई-बांधवों से विदा ली। घर से वापस आते समय अवधेश कुमार सोच रहा था कि घर के सभी लोग कितने आनंद में हैं।

घर से वापस आने के बाद अवधेश कुमार को साधुओं की मंडली के साथ तीर्थाटन के लिए भेजा गया। उसे देश के विभिन्न मंदिरों में जाना था। लोगों का मस्तक पढ़ने और भविष्य बताने की कला में वह पारंगत हो गया था। साधु मंडली के साथ लगभग छह माह तक उसने देश के विभिन्न मंदिरों का दौरा किया तथा उसके बाद वह वापस गुरुदेव के आश्रम आ गया।

अब आश्रम में आकर उसका ध्यान जड़ी-बूटियों और आयुर्वेद की ओर आकर्षित हो गया था। मंत्रोच्चारण तथा भजन कीर्तन के साथ-साथ वह जड़ी-बूटियों का काम अच्छे से देखने लगा तथा दो-तीन वर्ष के भीतर ही उसे जड़ी-बूटियों के बारे में अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया था।

अपनी साधु मंडली के साथ वह समय-समय पर देश में तीर्थाटन तथा विभिन्न शक्तिपीठों की पूजा किया करता तथा शक्ति को अर्जित किया करता था। फिर वापस आश्रम में आकर वह जड़ी-बूटियों का काम किया करता था। आश्रम के दवाखाने में आने वाले रोगियों को वह दवाइयां भी दिया करता था।

अब अवधेश कुमार की आयु इक्कीस वर्ष की हो चुकी थी। चूंकि वह साधु बन चुका था और आश्रम के नियमों के अनुसार उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना होता था। इस बार वह जब घर से भिक्षा मांगने के बाद, लौटा तो उसे अपने भाइयों से ईर्ष्या होने लगी थी क्योंकि उसके भाई ने गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर लिया और उसके घर के सभी सदस्य अपने घर परिवार के साथ आनंद से थे और उसे इस तरह आश्रम में रहना पड़ रहा है। इतना ही नहीं, ब्रह्मचर्य का पालन करना ही उसकी नियति है। जितना वह कोशिश करता कि उसे नारी जाति की ओर आकर्षित नहीं होना है, उतना ही उसका ध्यान नारी जाति की ओर आकर्षित हो रहा था।

इस बीच एक लड़की जिसकी आयु लगभग पंद्रह-सोलह वर्ष की होगी, उसका नाम देवयानी था, आश्रम के दवाखाने में आती थी। अवधेश कुमार न चाहते हुए भी उसकी ओर आकर्षित हो रहा था। देवयानी शुरू में आश्रम के दवाखाने में आती थी तो उसके शरीर पर जगह-जगह चोट के निशान होते थे। वह उसके लिए घावों पर लगाने वाला लेप तैयार करता था और उसे लगाने के लिए देता। उसे समझ नहीं आता था कि उसके शरीर पर यह चोट के निशन कैसे होते हैं।

यह तो उसे बाद में पता चला कि देवयानी की सौतेली मां है और वह उससे बहुत काम करवाती है। रसोई की चूल्हे-चौके की जिम्मेदारी के साथ-साथ पशु चराने से लेकर, कपड़े धोने की जिम्मेदारी के साथ-साथ छोटे भाई की देखरेख की जिम्मेदारी भी उसे ही उठानी पड़ती थी। जब उससे काम पूरा नहीं होता था या ठीक से नहीं होता था तो सौतेली मां उसकी बेरहमी से पिटाई किया करती थी। इसी कारण उसके शरीर पर चोटों के निशान हुआ करते थे। अवधेश कुमार का मन उसके प्रति दया, करुणा से भर आता था। हर चौथे दिन उसकी सौतेली मां उसकी पिटाई करती थी और उसे आश्रम जाकर दवाई लानी पड़ती थी।

परंतु समय के साथ-साथ देवयानी के प्रति दया व करुणा ने आकर्षण का स्थान ले लिया था। अवधेश कुमार देवयानी के आकर्षण में बंधने लगा था और उसे इंतज़ार रहता था कि कब देवयानी उसके आश्रम में आए और कब उसे वह अपने हाथों से तैयार किया लेप दे।

वह अपने मन को समझाता था कि तुम तो ब्रह्मचारी हो। तुम चाहकर भी उस गरीब लड़की के लिए कुछ नहीं कर सकते। अतः उसके प्रति आकर्षण को उसे रोकना ही होगा अन्यथा आश्रम की मान मर्यादा पर आघात हो सकता है और साधु समुदाय पर संकट के बादल छा सकते हैं तथा पूरा साधु समुदाय लोगों के कोप का शिकार बन सकता है। आश्रम के लिए जो धन-दान तथा चंदे के रूप में आ रहा है, उसे भी लोग देना बंद कर सकते हैं। नहीं, कैसे भी करके उसे देवयानी के प्रति इस आकर्षण को रोकना ही पड़ेगा। पर मन और उसपर बढ़ता हुआ यौवन उसका देवयानी के प्रति आकर्षण बढ़ता ही जा रहा था। कभी-कभी तो देवयानी अपना दुःख सुनाते हुए अवधेश कुमार के पास रो भी दिया करती थी और अवधेश कुमार की स्थिति ऐसी होती कि वो चाहते हुए भी उसके आंसू नहीं पोंछ पाता। हां, उससे

सहानुभूति के दो बोल बोल देता था।

इसी प्रकार दिन बीतते जा रहे थे। अब अवधेश कुमार का मन मंत्रोच्चारण में और पूजा-पाठ में कम ही लगता था। वह रह-रहकर देवयानी के बारे में सोचता कि कैसे उसे इस संकट की स्थिति से निकाल सकता है। देवयानी का मन भी अवधेश कुमार की सहानुभूतिपूर्ण बातों की ओर आकर्षित हो रहा था। वह सोचती कि ये साधु कितने अच्छे हैं, कितने प्यार से दवा बनाते हैं।

देवयानी ने एक दिन अवधेश कुमार से प्रश्न किया था, "बताइए तो सही मेरे भविष्य में क्या है? मेरा विवाह कब और किससे होगा?"

इसपर अवधेश कुमार चौंका। आजकल तो उसे अपने भविष्य के बारे में भी कुछ पता नहीं है, तो तुम्हें तुम्हारा भविष्य क्या बता सकता हूं। काश! मुझे गृहस्थ आश्रम में जाने की आज्ञा होती तो तुम्हें इतने दुःख सहन नहीं करने पड़ते।

अवधेश को इस प्रकार चुप देखकर देवयानी ने पुनः प्रश्न दोहराया, "बताइए न! मेरे भविष्य में क्या है?"

"अगले दो-तीन वर्ष में तुम्हारा विवाह एक अच्छी जगह हो जाएगा। फिर तुम्हारे दुखों का भी अंत हो जाएगा।"

"सच!" देवयानी ने चहकते हुए पूछा था।

"हां, सच।"

देवयानी खुश होकर चली गई और अपनी सारी पीड़ा भूल गई।

इस बीच खाने में अधिक नमक पड़ने के कारण और कपड़े साफ न धुलने के कारण उसकी विमाता ने चूल्हे की जलती हुई लकड़ी से इतना मारा कि उसके घावों से खून रिसने लगा। दवाखाने से लाया लेप समाप्त हो चुका था। अतः उसे दवाखाने जाना पड़ा। अवधेश कुमार भी उसके घावों और चोटों को देखकर परेशान हो गया। ब्रह्मचारी होने के कारण एक नारी को छूना निषेध था परंतु फिर भी इनसानियत के कारण उसे मरहम पट्टी के लिए देवयानी का स्पर्श करना ही पड़ा। उसे छूते ही दोनों के शरीर में रोमांच हो आया। दोनों के शरीर इस प्रथम स्पर्श से कांप उठे। उसने किसी तरह उसकी मरहम पट्टी की। मरहम पट्टी करते समय पीड़ा से देवयानी की सिसकियां आने लगीं और आंखों से आंसू बहने लगे। रोत-रोते उसने कहा, "उफ भगवान अब सहा नहीं जाता। कृपया मुझे इस नरक से निकालिए।"

"हिम्मत रखो देवयानी सब ठीक हो जाएगा।" कहकर अवधेश ने उसके आंसुओं को पोंछा। देवयानी ने देखा कि अवधेश की आंखें भी नम हैं। उसे वे आंखें प्रेम से अपनी ओर निहारती लगीं। आवेश में देवयानी उसके सीने से लग गई और सिसक-सिसककर राने लगी। ऐसे में दोनों के दिल की धड़कन एक हो गई। अवधेश ने उसे अपने सीने से अलग किया और उसे घर जाने के लिए कहा। गनीमत थी कि उन्हें इस स्थिति में किसी ने नहीं देखा अन्यथा कुछ भी अनिष्ट हो सकता था। देवयानी ने भी अपनी उठती-चढ़ती सांसों को संभाला और वहां से भाग गई।

अवधेश का मन उसे धिक्कारने लगा कि उसने तो भगवा वस्त्र धारण किए हैं। उससे यह पाप कैसे हो गया। नारी के इस प्रथम स्पर्श ने अवधेश को दीवाना बना दिया। उसे लगता कि वह किसी प्रकार देवयानी को अपना बना सकता है। अब वह ठहरा साधु। किस प्रकार गृहस्थ आश्रम में आ सकता है। अब उसके मन में यही उधेड़बुन रहती। हर पल उसकी आंखों के आगे देवयानी का मासूम चेहरा नाचने लगता। उसका मन उसके वश में नहीं रहा। उसका मन करता कि गुरुदेव से प्रश्न करे कि उन्हें इस प्रकार से ब्रह्मचारी बनाने का विधान क्यों बनाया गया है? यदि किसी को लगता है कि वह ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता तो उसे गृहस्थ आश्रम में आने की इज़ाज़त दी जानी चाहिए। अबकी बार उसने सोचा कि वह गुरुदेव से इस विषय में अवश्य प्रश्न करेगा।

उसका मन बहुत विचलित था। वह सोच रहा था कि उसके जन्मदाता माता-पिता ने ही उसके साथ कितना बड़ा अन्याय किया है। वह भी पांच वर्ष की आयु में। यह समझ नहीं पाया कि उसके साथ क्या हो रहा है? उसका मन कर रहा था कि अपनी इस नियति पर वह फूट-फूटकर रोए। अपने जन्मदाता माता-पिता के प्रति आक्रोश में वह फूट-फूटकर रोने लगा। उसका मन उन भगवा वस्त्रों को नोचने का हो रहा था जो उसने पहने हुए थे। उसे लग रहा था कि उसने भगवा वस्त्रों की गरिमा को कलंकित किया है। उस रात वह सो नहीं पाया।

इस बीच देवयानी अगले दिन पुनः मरहम पट्टी करवाने आश्रम के दवाखाने में आई। भावुकतावश दोनों ही एक-दूसरे से नज़र नहीं मिला पा रहे थे। इस बार उसके तन पर बहुत गहरे घाव थे। अवधेश ने बड़ी मुश्किल से देवयानी की मरहम पट्टी की। पट्टी उसके घावों से चिपक गई थी। उसे बड़ी मुश्किल से पट्टी को घावों से छुड़ाया। फिर उस पर लेप लगाया। देवयानी को पिछले कल की घटना से आभास हो गया था कि अवधेश कुमार के मन में उसके प्रेम का दीपक प्रदीप्त हो चुका है। अब देवयानी भी इसी आग में जलने लगी थी। प्रेम की डगर यूं भी बहुत कठिन है। फिर वह भी एक साधु से प्रेम! इससे उनकी मुश्किलें और भी बढ़ गई थीं।

अवधेश भी भलीभांति परिचित था कि उसके लिए यह राह आसान नहीं है। आश्रम से पांच किलोमीटर की दूरी पर बनी बाबा सत्यानंद और अरुणा की समाधि इस बात की गवाह थी कि एक साधु का गृहस्थ आश्रम में आना कितना कठिन है। आज के लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व बाबा सत्यानंद और अरुणा ने प्रेम की डगर पर चलते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी। बाबा सत्यानंद और अरुणा प्रेमपाश में इस तरह बंध चुके थे कि आश्रम की

वे चाहते तो उसे रोक भी सकते थे। परंतु उन्होंने अवधेश के प्रेम की दीवानगी को देखकर भय लगा। उन्हें लगा कि अवधेश किसी भी स्थिति में देवयानी को पाकर ही रहेगा। ऐसा जुनून उन्होंने सत्यानंद में भी देखा था। बीस वर्ष की आयु में उन्हें भी तो निर्मला से प्रेम हो गया था। परंतु उस समय आश्रम की व्यवस्था और समाज की व्यवस्था को बदल सकना उन्हें असंभव लग रहा था। अतः उन्होंने अपने प्रेम की समाधि अपने मन में ही बना ली थी जिसे याद करके वे कितना तड़पा और रोया करते थे।

तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार उन्हें गृहस्थ आश्रम में प्रवेश नहीं मिल पाया। प्रेम की इस डगर पर वे इतना आगे निकल चुके थे कि आश्रम की व्यवस्था को बचाने के लिए और उस युवा स्त्री को बदनामी से बचाने के लिए उन दोनों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर लिया था।

अब देवयानी और अवधेश अपने हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त करने के लिए बाबा सत्यानंद और अरुणा की समाधि के पास ही मिला करते थे। अब दोनों तरफ आग बराबर लगी हुई थी।

अवधेश ने तय कर लिया था, चाहे कुछ भी हो जाए, वह अपने इस प्रेम की मंज़िल तक अवश्य पहुंचाएगा। यदि आश्रम से उसे गृहस्थ आश्रम में जाने की अनुमति नहीं मिली तो वह देवयानी को लेकर कहीं भाग जाएगा। इतना बड़ा संसार है जहां पर कहीं भी रहकर जड़ी-बूटी की विद्या से वह अपना घर-संसार चला सकता है। परंतु इस स्थिति में साधु-समाज की मान-मर्यादा को खतरा था।

अतः इस गंभीर विषय पर वह गुरुदेव राममूर्ति से एकांत में विचार-विमर्श करना चाहता था। उसे एकांत में वार्तालाप के लिए समय नहीं मिल पा रहा था।

अभी अवधेश इस उधेड़बुन में था कि किस प्रकार समय निकालकर वह गुरुदेव से बात करे। इस बीच देवयानी ने अवधेश को यह सूचना दी कि उसकी सौतेली मां ने धन के लालच में उसका विवाह एक अधेड़ उम्र के दो बच्चों के पिता से तय कर दिया है। यह सुनकर वह भी परेशान हो गया था।

देवयानी ने भावुकतावश कहा था, "मैं मर जाऊंगी परंतु यह विवाह कदापि नहीं करूंगी।"

अवधेश भी समझता था कि यह सच है कि दोनों एक-दूसरे के प्रेम में हैं परंतु इस रिश्ते को कोई सामाजिक नाम दिया जाना अति आवश्यक है अन्यथा उनके इस व्यवहार को समाज कभी स्वीकृति नहीं देगा। तय था कि गृहस्थ आश्रम में आए बिना इन सब स्थितियों से नहीं निपटा जा सकेगा।

अवधेश ने उसे आश्वासन दिया था कि वह गुरुदेव से गृहस्थ आश्रम में आने के बारे में अवश्य अनुरोध करेगा।

"देखो देवयानी हममें से किसी को नहीं मरना है। हमें साथ-साथ जीना है बस। चाहे गुरुदेव मुझे गृहस्थ आश्रम में आने की अनुमति दें या न दें, अब तो मुझे गृहस्थ आश्रम में आना ही है।" देवयानी को अवधेश की बातों पर विश्वास था परंतु अब उसका घर से निकलना काफी कम हो गया था। दूसरा छुप-छुपकर मिलने से खतरा था। यदि कोई देख लेगा तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। अतः अवधेश ने देवयानी से कहा, "वह उसे तीन-चार दिन बाद मिले। इस बीच वह कोई-न-कोई विकल्प अवश्य निकालेगा।"

इस बीच अवधेश कुमार को एकांत में गुरुदेव राममूर्ति से बात करने का अवसर मिल ही गया। चरण वंदना तथा आश्रम की गतिविधियों के बारे में प्रश्न पूछने के बाद अवधेश कुमार ने सहज ही प्रश्न किया, "गुरुदेव गृहस्थ आश्रम के बारे में आपकी क्या राय है?"

"गृहस्थ आश्रम भी एक अच्छा आश्रम है परंतु इस आश्रम में रहकर हमें ब्रह्चर्य का पालन करना अति आवश्यक है।"

"क्या ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ही प्रभु के समीप आया जा सकता है। यदि ऐसा होता तो कबीर और सद्‌गुरु नानक परमपिता परमात्मा के इतने समीप न होते।"

"तुम कहना क्या चाहते हो? स्पष्ट कहो!"

"गुरुदेव यदि किसी को लगता है कि उससे ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया जा सकता और यदि वह गृहस्थ आश्रम में आना चाहता है तो क्या उसे गृहस्थ आश्रम में आने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।"

उसने अपना और देवयानी का सारा प्रेम-प्रसंग तथा उसकी विमाता द्वारा किए गए अत्याचार तथा अब उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह तय किया जाना, सबका विस्तार से वर्णन किया। तथा साथ ही प्रश्न किया, "इन परिस्थितियों में मैं क्या करूं गुरुदेव?"

यह सुनकर गुरुदेव मौन हो गए। गुरुदेव को इस प्रकार मौन देखकर अवधेश चिंतित हो गया। गुरुदेव उसे न जाने किस प्रकार का आदेश देने वाले हैं?

"मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी अवधेश! ब्रह्मचारी होते हुए भी मेरे मन में एक कामना रहती थी। यदि मेरा पुत्र होता तो वह तुम्हारी ही तरह होता। तुममें मैंने अपने पुत्र की छवि देखी है और तुमसे पुत्रवत् प्यार भी किया है। मैं बाहर से ही तुम्हारे प्रति कठोर था परंतु मेरे हृदय में तुम्हारे लिए...तुमने मुझे बहुत पीड़ा पहुंचाई है।"

अवधेश ने जब गुरुदेव के ये उद्‌गार सुने तो उसकी आंखों में पश्चाताप के आंसू आ गए।

"मैं मानता हूं गुरुदेव मुझे भावनाओं के ज्वार में नहीं बहना चाहिए था। ब्रह्मचारी होते हुए गृहस्थ में आने की कामना नहीं करनी चाहिए थी। मैंने स्वयं को कितना धिक्कारा और कोसा है, बता नहीं सकता। ये भगवा वस्त्र मुझे अब शूल की तरह लगता है।"

"मैं सारी स्थिति को समझता हूं अवधेश। आज से पच्चीस वर्ष पूर्व मैं सत्यानंद और अरुणा के लिए भी इस आश्रम की व्यवस्था से लड़ा था। परंतु सत्यानंद में आश्रम छोड़कर जाने का साहस नहीं था। आश्रम की बदनामी के दबाव से वह इतना थक-हार गया कि उसने अरुणा के साथ आत्महत्या कर ली। मैं तुम्हें उस स्थिति में नहीं देखना चाहता।"

"गुरुदेव मैं देवयानी को वचन दे चुका हूं। उसे इस नारकीय स्थिति में अकेला नहीं छोड़ सकता। अगर चाहता तो गुरुदेव आपसे विचार-विमर्श किए बिना ही आश्रम से भाग सकता था और कहीं पर भी अपनी गृहस्थी शुरू कर सकता था।"

"मैं मानता हूं अवधेश तुम सही कह रहे हो परंतु आश्रम की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। यह बात जैसी पच्चीस साल पहले थी, पच्चीस साल बाद भी यह बात उतनी ही सच है। इस सच को बदला नहीं जा सकता। तुम्हारे गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से आश्रम की सारी व्यवस्था चरमरा जाएगी। सारे साधु समाज की किरकिरी होगी सो अलग। यह सब इस व्यवस्था के लिए भूचाल जैसा होगा।"

"मैं भी दुविधा में हूं गुरुदेव! मन होता है कि कब इन भगवा वस्त्रों को शरीर से उतार फेंकू। मैं दोहरी जिंदगी नहीं जी सकता। मेरा यह मत है कि चोरी-छिपे अनाचार करने से बेहतर है, यदि ब्रह्मचर्य का पालन करना मुश्किल हो रहा हो, तो गृहस्थ आश्रम में आने की अनुमति अवश्य मिलनी चाहिए। अन्यथा मेरे पास यहां से भाग जाने का विकल्प तो है ही।"

"तुम्हारे इस कथन से मैं पूरी तरह सहमत हूं। तुम्हारे इस कदम का आश्रम पर प्रतिकूल असर भी पड़ सकता है। मैं अकेला आश्रम की इस व्यवस्था को नहीं बदल सकता। अब तुम्हें क्या बताऊं अवधेश। आज से पच्चीस वर्ष पहले सत्यानंद और अरुणा ने आत्महत्या नहीं की थी, बल्कि आश्रम की व्यवस्था को बचाने के लिए एक गुरु ने उनकी हत्या कर दी थी और बाद में उस हत्या को आत्महत्या का नाम दिया गया और आश्रम से दूर उनकी समाधि बना दी गई।

इस रहस्योद्‌घाटन से अवधेश स्तंभित रह गया।

गुरुदेव कह रहे थे, "कुछ नहीं बदला है अवधेश, न कुछ बदलेगा। मेरी तुम्हें यही राय है कि तुम यदि गृहस्थ आश्रम में आना चाहते हो तो तुम्हें यह आश्रम छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ेगा। तुम यथाशीघ्र यह आश्रम छोड़कर देवयानी के साथ चले जाओ और इस विषय पर मुझसे पुनः कोई बात मत करना।"

"गुरुदेव जैसी आपकी आज्ञा।" कहकर अवधेश ने गुरुदेव के चरण छुए और गुरुदेव के गले लगकर फूट-फूटकर रोने लगा। गुरुदेव ने उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरा और कहा, "मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम दोनों के साथ रहेगा। पुनः इस आश्रम में कभी नहीं आना। उन्होंने नम आंखों से उसे जाते हुए देखा।

अवधेश वहां से जा चुका था परंतु गुरु राममूर्ति सोच रहे थे कि अब वह मृत्युपर्यंत उसका चेहरा नहीं देख पाएंगे।

वे चाहते तो उसे रोक भी सकते थे। परंतु उन्हें अवधेश के प्रेम की दीवानगी को देखकर भय लगा। उन्हें लगा कि अवधेश किसी भी स्थिति में देवयानी को पाकर ही रहेगा। ऐसा जुनून उन्होंने सत्यानंद में भी देखा था। बीस वर्ष की आयु में उन्हें भी तो निर्मला से प्रेम हो गया था। परंतु उस समय आश्रम की व्यवस्था और समाज की व्यवस्था को बदल सकना उन्हें असंभव लग रहा था। अतः उन्होंने अपने प्रेम की समाधि अपने मन में ही बना ली थी जिसे याद करके वे कितना तड़पा और रोया करते थे।

प्रधानाचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला, तांदी,
तहसील आनी, जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश
मो. 94184 77118

हिमप्रस्थ में शिमला जिला विशेषांक

'हिमप्रस्थ' मासिक पत्रिका में शीघ्र ही शिमला जिला विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। अंक में विशेष रूप से शिमला जिला का इतिहास, सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक महत्त्व, देव संस्कृति, मेले व त्योहार, लोक साहित्य एवं संस्कृति, पर्यटन, ऐतिहासिक एवं पौराणिक धार्मिक स्थल, विकास तथा शिमला शहर के गौरवशाली 150 वर्ष इत्यादि पर सामग्री प्रकाशित की जाएगी। इस अंक के लिए आपका सहयोग अपेक्षित है। विस्तृत जानकारी के लिए गिरिराज/हिमप्रस्थ कार्यालय में सम्पर्क करें।

- वरिष्ठ सम्पादक

कहानी

पप्पू का सपना

● श्याम सिंह घुना

इस बार भी सूखा ही पड़ा था। विगत तीन वर्षों से ऐसा होता आ रहा था। मैदानों को छोड़कर गुज्जर लोग वैसाख के महीने में ही अपनी भैंसों के रेवड़ हांकते हुए पहाड़ों में आ गए थे। यह लालदीन गुज्जर का डेरा था। उसे लाली के नाम से भी जाना जाता है। लाली के चार लड़के हैं। हर लड़के का चार-चार, छह-छह, जनों का परिवार है। इतनी ही भैंसें भी होंगी। कुछ देसी व जर्सी गाय बैल और दो-चार लद्दू घोड़े भी रखे हुए हैं। इतनी भीषण गर्मी के बावजूद भी खुदा की मेहर से खुरिया की संक्रामक बीमारी से इस बार उसका पशुधन बच गया था। उसका डेरा अपने आखिरी पड़ाव से अंदाजन तीन किलोमीटर ही दूर रह गया था। पंद्रह दिनों से चल रहे उनके परेशानी भरे सफर का सिलसिला कल शाम समाप्त हो जाएगा, वह सोच रहा था। कल वह अपने डेरे में टीर पर पहुंच जाएंगे। मैदानों में रहने वाले यह गुज्जर-गुज्जरियां जन्म से ही हर साल इस रास्ते पहाड़ों में टीर तक पहुंचते हैं। यह डेरा पीढ़ियों से इस रास्ते आमद-जामद करता आ रहा है। इस डेरे को शायद यह मालूम न था कि अब सड़क के किनारे यहां सेब का बागीचा लग गया है।

लालदीन की एक बहू भैंसों के सबसे आगे वाले भाग के पीछे-पीछे चल रही थी। उसके आगे गुज्जरों के लड़के पचास-साठ बकरियों का रेवड़ हांक रहे थे। यह ख्वातुन कानों में चांदी का गोल, माथे पर चांद, कान में लौंग, गले में चांदी की सीरी जिसे हंसली भी कहते हैं, और छोटे-छोटे चांदी के मनकों से बुना हुआ लॉकेट पहने हुए थी। इन आकर्षक गहनों से सजी-संवरी हुई अपने उफनते हुए शबाब की खुशबू हवा में बिखेरती वह इस समय जन्नत की कोई हूर ही लग रही थी। अपने सिर के केश विन्यास को उसने अनेक वेणियों में बेलकर कस के प्यारा-सा स्टाइल बनाकर संवार रखा था। बालों के मध्य चीर से दोनों ओर लटाओं को बेलकर तीन-तीन चीर उसके सिर की दुधिया चमड़ी को दिखाते हुए एक दूसरे के विपरीत दिशा में सिर के किनारों पर उतर गए थे। सिर के पिछले भाग में भी लटाओं को यूं ही बेलों में गूंथा गया था। उसका बेल वाला कुर्ता, सूती कपड़े का चूड़ीदार पायजामा, बण्डी आदि परिधान इस ख्वातुन के श्रृंगार को भी चार चांद लगा रहे थे।

पीठ के बुचके को सिर में फंसाए हुए रेहोश की लाठी से भैंसों को हांकती हुई ढलती सांझ की खूबसूरत बेला में अपनी मादक स्वर-लहरियों को घोलती हुई वह 'माहिया' गा रही थी

'सुका पतेआं ने हरेया नी होणा
हरेया ने सोक जाणा
मुए बन्देआं ने जिन्दे नी होणा
जिन्देआं ने मर जाणा।'

वह गाना गाने में इतना मशगूल और तन्मय थी कि भैंसों के रेवड़ की रफ्तार में एकाएक रुकावट पड़ जाने को शीघ्र महसूस न कर पाई। वह तो बस गा रही थी और अपने डंडे से भैसों की पीठ पर गाने की तर्ज को तबले की थाप में बदलने की मानो कोशिश कर रही हो

'मुए बन्देआं ने जिन्दे नी होणा...'

तभी एक मेमने को अपनी गोद में उठाए हुए रेवड़ के आगे की ओर से दूसरे हाथ में कच्चे बिउल की सोठी थामे हुए एक सत्रह-अठारह वर्ष का लड़का उसके समीप आकर बोला

"तुम्हारी बकरियों ने हमारे बागीचे में सेब के पौधों को नुकसान पहुंचाया है। मैं यह बकरू ले जा रहा हूं। डेरे के मालिक को हमारे घर भेजन देना। आकर निपट ले।"

यह चेतावनी देकर लड़का तो वहां से उसी चाल में अपने घर का रास्ता उतर गया था लेकिन 'महरी' सकते में आ गई थी। उसके मधुर गायन की मादकता वातावरण से एकाएक लुप्त हो गई थी और सुहावनी संध्या का समूचा आसपास बोझिल-सा लगने लगा था। आठ-दस कदम पीछे की ओर मुड़कर चली हुई वह मोड़ के किनारे आई और बुचके को एक जगह सिर से छुड़ाकर पीछे की ढलान पर रख दिया, फिर वह खड़ी हुई और फुर्ती और आवेश से मोड़ के अगले सिर पर आकर ऊंची आवाज में पीछे आ रहे अपने खाबिन्द को सम्बोधित करती हुई बोली

"बकरी बागीचा बेच ओठ गई थी तो पाड़ियां गो मुण्डू बकरी गो छिल्लू ले गयो। पाड़ी ने तो बुलायो जो आके मेरे नाल फैसलो कर ले।"



वकील का छोटा लड़का दसवीं की कक्षा से फारिग होकर आजकल घर पर ही रह रहा था। उसके लिए दादी खाना बना दिया करती थी। वह सुबह से शाम तक यहां-वहां मटरगश्ती किया करता था। उसका अधिकांश समय तैरने व नदी में मछलियां पकड़ने में व्यतीत हुआ करता था। उससे तनिक बड़ी आयु का उनका नेपाली नौकर और पड़ोसियों का एक लड़का आजकल उसके पक्के साथी व अनुयायी बने हुए थे। धान की पनीरी बहुत पहले बीज दी गई थी। क्यार में बीजने का काम खत्म हो गया था। क्यार की रोपाई हेतु अभी काफी समय था। शरीफ की बिजाई के काम में भी अभी समय बचा हुआ था। यानी अन्य कोई विशेष काम था नहीं। काकू को यह मेमना मनोरंजन के एक नए साधन के रूप में हाथ लग गया था। उसने और शेर बहादुर ने बागीचे से मार-मार कर बकरियां भगा देने के बाद यह मेमना जब्त करके घर ले आया था। मेमने को देखते ही उसका तीन वर्षीय भतीजा हर्षातिरेक से गदगद हो उठा। झट से मेमने को गोद में लेकर उसे पुचकारने, सहलाने, नरम-नरम बकरालों में उंगलियां फेरने लगा। उसे तो मानो कुबेर का खजाना ही मिल गया था। मेमने को अपने से अलग ही न होने देता था। उसने एलान कर दिया था कि मेमने को आज अपने पास ही सुलाएगा। शायद उसने समझा होगा कि घर की बिल्ली की तरह ही मेमने को भी अपने साथ बिस्तर में सुलाया जा सकता है। जब उसे समझाया गया कि ऐसा नहीं हो सकता। मेमने को अपने साथ बिस्तर में नहीं सुलाया जा सकता। यह बिल्ली नहीं है। मेमना है। बिस्तर में मिंगनी कर देगा, मूत देगा, खुरों से तुम्हारे शरीर को घायल कर देगा। इस बीच मेमने ने सचमुच में ही वहीं रसोई घर में मींगनी कर दी। मूत भी दिया। तथापि पप्पू ने हठ पकड़ ली थी कि मेमना उसी के कमरे में सोएगा। जब तक कुत्ते की चेन लाकर बकरू को उसमें बांधकर बच्चे को आश्वस्त न कर दिया गया कि मेमना उसकी चारपाई से बांधकर उसी कमरे में रखा जाएगा, तब तक उसने मेमने को अपने पास ही रखने की हट न छोड़ी। यह मेमना उसके लिए एक अद्‌भुत खिलौना बन गया था।

काकू के अविवाहित अंकल कह रहे थे "डेरे में जाकर मेमना लौटा दो। बेशक गुज्जरों को थोड़ा- बहुत डरा-धमका दो ताकि आगे से होशियार रहे।"

काकू की दादी ने कहा

"सोचती तो मैं भी हूं कि लौटा दो। यह गुज्जर गरीब होते हैं। घुमन्तु किस्म के। सारा जीवन चलते-चलते बीतता है। लेकिन इस तरह छोड़ देने से भी यह लापरवाह हो जाएंगे। इसलिए अच्छा यही है, ठीक भी, कि हमेशा-हमेशा की चिल-पों से अच्छा उन्हें इस बार कुछ सजा दे ही दी जाए।"

दादी की बात सुनकर अंकल की ओर मुड़ते हुए वकील का लड़का काकू बोला "पहले आने तो दो उनको, फिर सोचेंगे। लेकिन उनको सबक तो सिखाना ही पड़ेगा। अपने राम का जेब खर्च भी निकलेगा। भागते चोर की लंगोटी ही सही। मेरे तो आजकल लंगोटी के भी लाले पड़े हुए हैं। पिताश्री ने इस ओर देखना ही बंद कर दिया है।"

"अब वो नहीं आएंगे। आएंगे भी क्यों? हफ्ते भर का मेमना है। हज़ारों रुपये के नुकसान के बदले छटांक भर वजन का मेमना छोड़ना भी पड़े तो क्या फर्क पड़ता है। यह कोई घाटे का सौदा थोड़े ही है। सोचते होंगे कि छोड़ो इस छटांक भर के मेमने को। मुझे पता है, यह गुज्जर बहुत बदमाश होते हैं। उनको तो उसी वक्त पकड़ना चाहिए था।" दादी ने गुज्जरों के प्रति अपनी जीवनभर के अनुभवों से उपजी हुई धारणा प्रकट की।

दादी को एक ओर गुज्जरों की गरीबी से जहां सहानुभूति थी, वहीं कुंठा भी कभी-कभी अपना फन फैलाकर एकाएक प्रकट हो जाती थी।

डेरे पर पहुंचने से कुछ दूर पहले ही लालदीन के माल का रेवड़ चलते-चलते कुछ-कुछ रुक-सा गया था। वह सबसे पीछे चला करता था। तथापि उसके काफिले के जर्रे-जर्रे की धड़कन उसकी नब्ज़ तक पहुंचकर उसे खबरदार कर देती थी। सूचित कर देती थी। उसका सारा जीवन ही इस काफिले में चलने-चलाने में बीता है। काफिले की ज़रा-सी हरकत से वह घटना या दुर्घटना का मज़मून पढ़ लिया करता था। उसने तत्काल महसूस किया कि काफिले के अगले भाग में कुछ गड़बड़ है। समझ गया कि ज़रूर कोई बकरी या मवेशी वकील के बागीचे या ज़मीन में घुस गया है। कोई-न-कोई मुश्किल ज़रूर पैदा हो गई है। खुदा ही रहम करे। पता नहीं कितना नुकसान कर दिया होगा। कहीं वकील के नौकरों या मज़दूरों ने उसके परिवार के किसी सदस्य की मार-कुटाई तो न कर दी होगी। लालदीन चिंतित हो उठा था

"लेकिन गलती तो मेरी ही है। मैं नूरे को आगाह करना ही भूल गया था कि आगे वकील ने पिछली बार बागीचा लगा रखा है।"

सामान खोलकर पड़ाव डाल दिया गया था। दूहने के उपरांत

भैंसों को नदी में हांक दिया गया। गुज्जरियां खाने की तैयारियां करने लगी थीं। गुज्जर लोग घास की तलाश में इधर-उधर निकले। कल सुबह ही डेरा यहां से निकल पड़ेगा। इस तरह होगा पंद्रह दिनों के उनके परेशानी भरे लम्बे सफर का अन्त। कल शाम वह अपने डेरा टीर पर पहुंच जाएंगे। किंतु मेमने को लेकर इस डेरे के आगे आकस्मिक रूप से यह गंभीर समस्या खड़ी हो गई थी। इसे निपटना ज़रूरी था। बहुत ज़रूरी। कोई आज ही तो इधर से निकला नहीं। हर साल आमद-जामद होती है। पहाड़ियों से बनाकर नहीं रखेंगे तो गुज़ारा कैसे चलेगा।

होते-होते दिन ढला। शाम भी हो गई। अंततः काकू ने पुनः विचार प्रकट किया, "अब वह नहीं आएंगे। मुझे पता है यह गुज्जर कितने बदमाश होते हैं।"

दादी तो यह चाह ही रही थी कि गुज्जर न ही आते तो अच्छा। उसने अपने उद्‌गार यूं निकाले "नहीं आते तो न आएं। पप्पू कहता है कि हमारे घर में ही एक छोटा-सा मेमना होता तो बड़ा मजा आता। रख लो इसे। बेचारे बच्चे का शौक पूरा हो जाएगा। अब गुज्जर नहीं आएंगे। सोच रहे होंगे कि दस-बीस रुपये की कीमत का मेमना जाता है तो जाए। बागीचे का हर्ज़ाना पता नहीं कितना लगेगा हज़ार, दो हज़ार? सौ-दो सौ तो लगेगा ही।"

काकू को दुःख इस बात का हो रहा था कि आजकल अपने घर में अकेला रह रहा है। मम्मी-पापा होते तो दादी के कहे को टाल सकते थे। अब दादी ने कह दिया है तो मेमना अंकल के लड़के को यानी पप्पू को देना ही पड़ेगा। अम्मा जी यहां होतीं तो वह कभी न देतीं। अपने लिए बेशक रख लेती। प्रत्यक्ष में वह बोला "ठीक है दादी, पप्पू के लिए रख लो। वह नहीं आएंगे। यदि उन्होंने आना होता तो उसी समय आ जाते। अब तो सोने का समय हो गया है। इतनी रात गए कौन आएगा?"

उसने वह मेमना तीन वर्षीय पप्पू यानी अपने चचेरे भाई को देने का निर्णय कर लिया था। उस ओर उसका बड़ा अंकल सोच रहा था कि काश यह मेमना उसके बेटे पप्पू को मिल जाए। पांच-छह महीने में ही यह मेमना पूरी बकरी बन सकता है। आजकल तो पांच सौ से कम बकरी नहीं मिलती। लेकिन नुकसान वकील का हुआ है। मुझे इस मेमने को लेने का अधिकार नहीं है। उसने यह विचार मां को बताया तो वह बोली

"अच्छा, तू चुप कर। वह बकरू तुझे नहीं दिया जा रहा है। तेरे नन्हे से बेटे को दिया जा रहा है।"

"बकरू दिया जा रहा है। लेकिन काकू कौन होता है मेरे बच्चे को दान देने वाला, इसके मम्मी-पापा देते तो भी बात बनती।"

काकू यह सुनकर झेंप गया। किंतु अपने को संभालते हुए बोला

"अंकल, मुझे अधिकार नहीं है तो दादी को तो है न। पप्पू को यह मेमना दादी दे रही है। मैं नहीं।"

दादी ने तुरंत हामी भर दी

"चलो दे दो पप्पू को। कितना प्यार करता है बेचारा पालतू पशुओं से। घासनी में औरों की बकरियां देख-देखकर तरसता रहता होगा बकरियों-भेड़ों को छूने भर के लिए। यूं भी सारी ज़मीन की देखभाल छोटा ही करता है। वकील के परिवार के लोग तो बस फुर्सत में ही आते हैं। वह भी दर्शन देने या वक्त गुज़ारने। आज वकील छोटे की मेहरबानी से ही है। सोहन बागीचे की देखभाल न करता और इसे आग व घुमन्तू पशुओं से न बचाता तो यह ज़मीन आज बंजर ही होती। झाड़-झंझाड़ में डूबी हुई।"

"बड़ी बहू का दिल तो इस मेमने में ज़रूर फंसा रहेगा किंतु मोहन को तो मैं समझा दूंगी। वह मान जाएगा। सालभर की चौकीदारी के बदले यह मेमना ही सही।"

फिर मां छोटे को सम्बोधित करती हुई बोली "छोटे, काकू कहां है? उसे बुलाकर इस बाकटू को चम्मच से दूध पिला देता। अभी कुछ दिन काकू के नींद आने तक उसके कमरे में बांधना पड़ेगा। फिर स्टोर में बंद कर देना। गुज्जर न आएं तो अच्छा ही है। अच्छे नस्ल की बकरी लगती है दो-दो बच्चे देने वाली।"

मेमने को पप्पू और उसके पापा ने चम्मच से दो बार शाम को दूध पिलाया। खाना खाने के बाद दिनभर का थका-मांदा पप्पू गहरी नींद में डूब गया तो मेमने को स्टोर में ले जाकर बंद कर दिया गया। काफी देर वह अपनी मां के लिए में-में मचाता रहा। किंतु फिर मेमना भी अपनी मां को भूलकर सपनों के असीम सागर में हिलकोरे लेने लगा। मेमने को अपना घोड़ा बनाने, उसे दूध-भात खिलाने के सपने देखता हुआ पप्पू नींद में संतुष्ट था कि वह मेमना उसका ही हो गया है। किंतु दूसरी सुबह ही तीन गुज्जर आ गए। शोर सुनकर उसकी नींद खुली और वह तुरंत बाहर आ गया। वह परेशान था कि उसका मेमना शाम वाली जगह में नहीं है। शायद गुज्जर उसे ले जा रहे हैं। उसका दिल मेमने के लिए आंसू बहाने लगा था। बाहर आकर उसने देखा कि सामने के आंगन में एक बेंच पर बैठे गुज्जर वहीं से हाथ जोड़कर दादी के आगे फरियाद कर रहे थे "चल, गलती हो गई मां। माफ कर दे अब। दे-दे हमारा छिल्लू।"

मोहन लाल और सोहन लाल की मां तैश में आकर कह रही थी "तू मेहर बेईमान होते हो। मैं तुम्हें पचास वर्ष से जानती हूं। वक्त पड़ने पर तुम, हाथ जोड़ते हो। शहद की तरह मीठे हो जाते हो, पांच पकड़ते हो। पर काम निकल जाने पर दूर से ही नमस्कार करते हो। मैंने तुम्हारे ऊपर कई बार रहम करके देखा है। इस बार बिलकुल नहीं बख्शूंगी। दस-पंद्रह पौधे तो बिलकुल ही बरबाद कर दिए हैं तुम्हारी बकरियों ने। एक मेहरी जो साथ थी, वह गीत गाने में मशगूल थी। इस बीच बकरियां बागीचे में पड़ गईं।"

मेमने का अपनी मां के पास लौटने का सपना तो साकार हो गया था, किंतु मेमने को दूध-भात खिलाने का, उसके साथ दिन भर खेलने का पप्पू का सपना टूटकर टुकड़े-टुकड़े बिखर गया था। इस अलगाव से बच्चे का हृदय-विदीर्ण होकर अविराम अश्रुधाराओं के रूप में उसके दोनों गालों पर बह चला था। गुज्जर चले गए थे। परिवार के सभी सदस्य उसके बाद गुज्जरों पर किए गए डण्ड की चर्चा करने मकान के अंतःपुर में चले गए थे। किंतु बरामदे में निस्पंद बैठा पप्पू अपने प्यारे दोस्त मेमने से हुए बिछोह का दुःख मना रहा था।

"अरे बहन पड़ गई सो पड़ गई। अब तो अपना नुकसान बता दे कितना हुआ है। यह मैंने तीसरा आदमी लाया है। एक तू भी बुला दे। जो लगेगा, मैं दे दूंगा। बस ज़रा फैसला जल्दी हो जाए। मेरा माल आगे खड़ा है। आज शाम डेरा टीर में नहीं पहुंचा तो भैंसें मर जाएंगी। पंद्रह दिन से तिनका भी घास नहीं खाया है।"

"अरे मां, हम गुज्जरों की तो जात ही ऐसी होती है। हम तो पैदा ही गालियां सुनने को हुए हैं। कोई जूते मारता है तो कोई डंडे। हमारे को कोई नहीं बख्शता। तू भी क्यों बख्शेगी। जो लगाना है, लगा दे।" दूसरा गुज्जर बोला "अरे तुम ज़िमीदार भी कौन से सबके सब ईमानदार होते हैं। एक ज़िम्मीदार की भैंस मरने लगी थी। उसने मेरे पास दे दी कि मरेगी तो उसकी। ठीक होगी तो इलाज का पैसा देगा। मैं भी ले गया भैंस। खूब इलाज किया उसका। पर भैंस मर गई। बाद में पता है कितना पैसा लिया जिम्मीदार ने मेरे से? पूरे तीन हज़ार। कहने लगा कि तीन हज़ार नहीं दिए तो पुलिस-केस कर दूंगा।"

इतने में काकू दोबारा आ गया था वहां। उसने गुज्जरों को सम्बोधित करते हुए कहा "कितना पैसा दे सकते हो तुम? मेरे पंद्रह पौधे सेब के खाए हैं। उसका नुकसान पंद्रह हज़ार रुपये बनता है। दे दोगे क्या तुम पंद्रह हज़ार रुपये नुकसान के?"

"इतना कौन दे सकता है भाई।"

फिर सोहन लाल की ओर मुखातिब होकर वह बोला

"भाई तू ही बता दे। पौधों का नुकसान तो कोई नहीं चाहता। ये हम भी जानते हैं। कि सेब का पौधा कीमती होता है पर डण्ड लगा दे तो भी लगता है। पचास रुपया दे देते हैं। चल माफ कर दे।"

यह कहते हुए गुज्जर ने पचास रुपया निकालकर सोहन लाल के आगे रख दिया।

"दादी ने जब देखा कि बात अब मर्दों के बीच होने लगी है तो वह वहां से जाकर अपने काम में लग गई। वह तो पप्पू के लिए मेमना चाहती थी। मेमना हाथ से निकल रहा था। अब इस विषय में उसे कोई रुचि न रह गई थी। पैसे तो जाते थे काकू की जेब में। वह शाम तक इन पैसों का हिसाब बराबर कर देगा।"

"सोहन लाल बोला "बागीचा इस लड़के का है। इसी से निपट लो। मैं इस बारे में अब कुछ नहीं कहना चाहता।"

काकू बोला, "मेरा बाप वकील है। पचास रुपये तो वह सिर्फ बात सुनने के लेता है। अगर कोई सुन लेगा कि वकील के लड़के ने पचास रुपये लिए हैं, गुज्जरों से नुकसान के तो हमारी इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी।"

बीस रुपये जेब से और निकालकर वह गुज्जर बोला

"चल बीस रुपये और ले ले हम किसी से नहीं कहेंगे।"

"कहना क्यों नहीं कहना तो चाहिए ही। ताकि आईन्दा सारे गुज्जर सावधान रहें। नहीं तो तुम लोग हर साल ऐसे ही नुकसान करते रहोगे। हमारे पौधे हर साल इसी तरह खिलाए जाते रहेंगे तो वह बढ़ेंगे कब? कब फलदार होंगे?"

काकू समझ गया था कि गुज्जर इसे अधिक और कुछ नहीं देने वाले। उसका चाचा सोहन लाल चाह रहा था कि काकू पैसे को हाथ न लगाए। मेमने को छोड़ने के लिए उन पर जोर डाले। मगर उसे यह भी लग रहा थ कि मेमने को छोड़ने पर गुज्जर तैयार न होंगे। वह मेमने की कीमत तो देना चाहते थे, लेकिन बागीचे के नुकसान की उनको परवाह ही न थी। इस बीच काकू ने 70 रुपये लपककर अपनी जेब के हवाले कर दिए और मेमने को तत्काल खोलकर गुज्जरों को सौंप दिया।

"भाई बड़ी मेहरबानी।"

"तैने तो बहौत थोड़ा लगाया और कोई होता तो पता नहीं कितना लगा देता।"

"अगर तुम न आए तोते तो हमें पुलिस में रिपोर्ट करनी पड़ती", मां फिर से यह कहने के लिए वहां आ गई थी।

"अरे मां आए क्यों न होते। नुकसान किया है तो देना भी पड़ता है। हमने अगली बार नहीं आना क्या इधर से?"

मेमने का अपनी मां के पास लौटने का सपना तो साकार हो गया था, किंतु मेमने को दूध-भात खिलाने का, उसके साथ दिन भर खेलने का पप्पू का सपना टूटकर टुकड़े-टुकड़े बिखर गया था। इस अलगाव से बच्चे का हृदय-विदीर्ण होकर अविराम अश्रुधाराओं के रूप में उसके दोनों गालों पर बह चला था। गुज्जर चले गए थे। परिवार के सभी सदस्य उसके बाद गुज्जरों पर किए गए डण्ड की चर्चा करने मकान के अंतःपुर में चले गए थे। किंतु बरामदे में निस्पंद बैठा पप्पू अपने प्यारे दोस्त मेमने से हुए बिछोह का दुःख मना रहा था।

ग्राम लिंगाह, डा. झिकनीपुल, तह. चौपाल,
जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 211

कहानी

खट्टी-मीठी गोलियां

● के.एल. दिवान

निशा की मां रजनी चिंतित है भी और नहीं भी। उसे सभी का हठीलापन परेशान कर देता है। ऐसा नहीं कि हठीलापन उसमें नहीं, उसमें भी है। वह इस सत्य को जानती है, पर इसके लिए अपने आपको दोषी नहीं मानती। इसके लिए वह अपने पति को दोषी मानती है। राज उसका पति है जो अपने आपको किसी राजा से कम नहीं मानता। तभी रजनी के मन में एक कहावत बिजली की तरह कौंध जाती है, यथा राजा तथा प्रजा। फिर सोचती है, अब राजा कहां है। अब तो जनता है और जनता के सेवक हैं। जिनको जनता अपना वोट देकर चुनती है। खाक चुनती है! सब अपनी ताकत द्वारा चुने जाते हैं। वह ताकत चाहे दल-बल की हो, पैसे की हो, या छल-कपट की हो। चारों ओर ताकत का बोलबाला है। बड़ी-बड़ी कुर्सियों पर बैठे सभी स्वार्थ भाव के गुलाम बन चुके हैं। राष्ट्रहित, दया, ममता, प्रेम किसी के मन में नहीं। यही हालत उन लोगों की है जो अपने आपको औरों से ऊंचा, धनवान और शक्तिशाली समझते हैं। राजा का परिवार जहां महानगर में बादशाह समझा जाता है, वह अपने आपको किंगमेकर कहलाना पसंद करता है। उसके परिवार में 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग होता है। सभी को लगता है इस 'हम' ने परिवार में सभी को एक ज़िद का गुलाम बना दिया है और इस ज़िद के सामने, छोटे-बड़े, खून और प्यार के रिश्तों का कोई महत्त्व नहीं रह गया। पलक झपकते ही रिश्ते-नाते टूट जाते हैं। देखते ही देखते अपने ही लोग अपनों को गोलियों से भून देते हैं। रजनी कहीं गहराई में अपने मन में 'हम' शब्द के साथ-साथ अपने आंगन में चलती गोलियों की आवाज की कल्पना से कांप उठती है।

तब निशा ने फोन को छुआ ही था कि पीछे मम्मी पहुंच गई और आदेश भरी आवाज में गरज उठी।

"आप फोन नहीं करेंगी।"

"हम करेंगे।" निशा के चेहरे से बगावत के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उसकी आवाज में मम्मी के आवाज से भी अधिक कठोरता थी।

"हमने कहा न, आप फोन नहीं करेंगी। हम आपके पापा से आपकी शिकायत करेंगे।"

"कर दीजिए। हम कोई चोरी नहीं कर रहे। खुलम-खुल्ला स्वीकार करते हैं। हम अपने मित्र को फोन कर रहे हैं और पापा को बता चुके हैं यह हमारा बॉय फ्रेंड है। इस बात के लिए न हम आपसे डरते हैं और न ही पापा से।"

"ठीक है करो। हम भी देखेंगे आप कौन से नम्बर पर फोन करेंगी।"

"हम आपको नहीं देखने देंगे। यह हमारा पर्सनल मामला है। हमारे पर्सनल मामलों की जानकारी लेना आपको शोभा नहीं देता।"

"तब हम भी आपको फोन नहीं करने देंगे।" इतना कहते ही मम्मी उसको खींचकर दूसरे कमरे में ले गई। कुछ देर दोनों चुपचाप पलंग पर बैठे रहे। फिर रजनी किचन में चली गई। साथ में ताकीद की, "याद रखना आपने फोन नहीं करना है।"

और उत्तर में निशा ने कहा, "हम करेंगे, करेंगे, करेंगे।"

यह कहते-कहते निशा फोन वाले कमरे में चली गई। अभी उसने फोन को हाथ भी नहीं लगाया था कि कमरे में उसके छोटे भाई ने प्रवेश किया और कड़कती आवाज़ में कहा "मम्मी ने आपसे कहा था न फोन मत करना।"

"और हमने भी कह दिया था, हम फोन करेंगे, करेंगे, करेंगे।"

"बड़ी बदतमीज़ हो गई हैं आप। मम्मी से ज़ुबान लड़ाती हैं। हम आपको सीधा कर देंगे।" छोटा भाई बड़ी बहन से बोला। इसके साथ ही उसने कसकर बहन की गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया। तब निशा ने व्यंग्य भरी मुस्कराहट के साथ अपने छोटे भाई की ओर देखा और कहा "चाहें तो हम भी इससे कसकर थप्पड़ आपको मार सकते हैं। पर हमने फैसला कर लिया है अब हम इस घर में ज़्यादा दिन नहीं रहेंगे। कभी, कहीं भी चले जाएंगे। इसीलिए किसी से कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं। गिला नहीं, शिकवा नहीं।



आपने हमें मारकर अच्छा ही किया। हमें पक्का यकीन हो गया है, इस घर में हमारा अपना कोई नहीं। हम अकेले हैं। बिलकुल अकेले हैं। पर हम आपको एक बात बता देना चाहते हैं। हमारे साथ हमारे विचार हैं। हमारा विश्वास है। अपने अधिकार की बात कहने की ताकत है। अपनी बात के लिए अपनी जान तक देने की ताकत है। हमें मालूम है आपने कहा है कि आप हमें गोली मार देंगे। हमारे बॉय फ्रेंड को गोली मार देंगे, पर हम आपको कातिल नहीं बनने देंगे। क्योंकि आप हमारे छोटे भाई हैं। हम अगर अपने बॉय फ्रेंड से प्यार करते हैं तो अपने छोटे भाई से भी प्यार करते हैं। वक्त आने पर हम दोनों कुछ खाकर अपनी जान दे देंगे, पर आपको कातिल नहीं बनने देंगे। मम्मी-पापा का गुस्सा, छोटे भाई का थप्पड़ हमसे हमारे विचार, हमारी ताकत नहीं छीन सकता।"

भाई-बहन की ऊंची-ऊंची आवाजें मम्मी के कानों में पड़ीं तो वह उनके पास चली आई। तब निशा ने मम्मी को देखते ही कहा, "आपको मालूम है, राजेश ने हमको गाल पर थप्पड़ मारा है। अब हम इस घर में नहीं रहेंगे। इस दुनिया में नहीं रहेंगे। छोटा भाई बड़ी बहन को थप्पड़ मारे, यह कहां की तहज़ीब है!"

"मम्मी भी तो आपसे बड़ी है। आप उनसे लड़ती हैं। यह कहां की तहज़ीब है।" राजेश ने कुछ शांत पड़ते हुए कहा था।

"हम मम्मी से लड़ते नहीं हैं। हम अपने हक और अधिकार की बात करते हैं। हम बालिग हैं। हम अपना अच्छा, बुरा सब समझते हैं। हमने आप लोगों को बताया था न हम फोन पर जिससे बात करते हैं, वह हमारा बॉय फ्रेंड है। और आज जो हमने अभी-अभी सोच लिया है, वह भी आपको बता देते हैं, हमने निश्चय किया है, कि मरने से पहले हम अपने बॉय फ्रेंड से शादी करेंगे। आपमें से कोई भी हमें नहीं रोक पाएगा।"

"याद रखें यदि आप मम्मी-पापा की मर्ज़ी के बिना किसी से शादी करेंगी तो हम उसे गोली मार देंगे।"

"हमारे छोटे भाई राजेश जी, उससे पहले हम दोनों अपने आपको गोली मार लेंगे।" तब निशा ने पापा की अल्मारी से पापा का रिवाल्वर निकाल लिया और मुस्करा-मुस्करा कर उसे ताकने लगी फिर बोली, "आप लोग तुरंत कमरे से बाहर चले जाएं। हमें फोन करना है अब आप बाधा बनेंगे तो हम इसी पल कुछ कर बैठेंगे।"

निशा के तेवर देखकर दोनों बाहर चले गए। तब उसने फोन नम्बर डायल किया और बोली, "हम शर्मिंदा हैं, आपको हमारे फोन का इंतज़ार करना पड़ा। हम मजबूर थे। इस बीच बहुत कुछ घट गया है। हम और आप दोनों जानते हैं। हमारे परिवार वाले हमारी फ्रेंडशिप को कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे। हमारी मैरिज स्वीकार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पर हमने अपनी मम्मी और भाई को बता दिया है, हम अपने बॉय फ्रेंड से शादी करने वाले हैं। आज हम आपसे फ्रेंडशिप तोड़ रहे हैं और शादी करने की बात कर रहे हैं। अब हमें आपका उत्तर चाहिए। वह भी अभी तुरंत, हां या नहीं, हमारा भाई कहता है, यदि हम मम्मी-पापा की मर्ज़ी के खिलाफ किसी से शादी करेंगे तो वह उसे गोली से उड़ा देगा। हमने भी फैसला सुना दिया है, तब हम भी अपने आपको गोली मार लेंगे।"

"अब हमें आपका उत्तर चाहिए   अभी इसी वक्त। ओह् थैंक गॉड।! हमें आप पर भरोसा था। आप हां ही करेंगे। सच मानो यदि आपने सोचने के लिए समय मांगा होता तो हमने यहीं खड़े-खड़े अपने आपको गोली मार ली होती। भरा हुआ रिवाल्वर अभी हमारे हाथ में ही है। क्या पूछा? शादी करेंगे? कल ही। आप जानते हैं कल हमारा बर्थडे है। बहुत बड़ा फंक्शन है यहां पर। आप उसमें आएंगे तो हम सबके सामने आपसे शादी का ऐलान करेंगे। हम आपको अपनी बांहों का हार पहनाएंगे और आप मुझे सीने से लगाकर किस करेंगे। नहीं आप कुछ नहीं लाएंगे। कल हम इन सांसारिक चीज़ों से बहुत दूर निकल जाएंगे। हम जानते हैं, शादी का ऐलान सुनते ही हमारा भाई आपको गोली मार देगा और हम अपने आपको। अरे! आप कुछ लाना ही चाहते हैं तो ऐसा करना दो खट्टी-मीठी गोलियां लेते आना। एक हम आपको खिलाएंगे एक आप हमको खिलाना। खट्टे-मीठे पलों में खट्टी-मीठी गोलियां।"

उधर निशा का भाई मां से कह रहा था, "हम सोचते हैं यूं ज़िद में आकर प्यार करने वालों की जान ले लेना ठीक नहीं होगा। दीदी को अपने मन के साथी के साथ विवाह रचा लेने दें।"

"पर आपके पापा?"

"हमारा मन कहता है, पापा हमसे सहमत हो जाएंगे। हमें पूरा यकीन है। पापा हमारी बात नहीं टालेंगे। मैं भी तो अपने मन की लड़की से शादी करने वाला हूं। कौन किस-किस को गोली मारेगा।"

रजनी बेटे को ताकती रह गई।

ज्ञानोदय अकादमी, 8, निर्मला छावनी, हरिद्वार, उत्तराखंड

बोध कथा

गडरिया और जल देवता

● डॉ. सूरत ठाकुर

पहाड़ी नदी के किनारे एक गांव बसा हुआ था। उस गांव में एक गडरिया रहता था। उसका नाम थेलू था। थेलू गांव वालों की भेड़-बकरियां चराता था। बकरियां चराने के बदले गांव वाले उसे अन्न और वस्त्र देते थे। वह सर्दियों में गांव के आस-पास ही भेड़ों को चराता तथा गर्मियों में जोत पर ले जाता।

गडरिये के पास एक बांसुरी थी। भेड़ें चराते हुए वह बांसुरी बजाता और मधुर गीतों की धुन छेड़ता। जो भी उसकी बांसुरी सुनता मंत्रमुग्ध हो जाता। गांव वाले तो उसकी बांसुरी के कायल थे।

एक बार की बात है। पहाड़ की चोटियों पर बर्फ पिघल चुकी थी। दोपहर का समय था। चरागाह में बकरियां चर रही थीं। गडरिया आंख मूंदकर बांसुरी बजाने में लीन था। तभी एक खूबसूरत युवती गडरिये के पास आई और बांसुरी सुनने में तल्लीन हो गई। गडरिया काफी समय तक बांसुरी बजाता रहा। जब उसने बांसुरी बजाना बंद करके आंख खोली तो सामने एक सुंदर युवती को बैठे पाया। उसके द्वारा बांसुरी बजाना बंद करते ही युवती बोली “कुछ देर और बजाओ न बांसुरी। कितनी मधुर धुन बज रही थी।”

युवती देखकर गडरिया सकपका गया। उसने कभी सोचा ही नहीं था कि पहाड़ में कोई युवती उसके सामने बैठेगी। कुछ क्षण बाद संभलते हुए बोला “तुम कौन हो? आज से पहले तो मैंने तुम्हें इस पहाड़ पर कभी नहीं देखा।”

“मैं पहाड़ के दूसरी तरफ के गांव में रहती हूं। घर से अपनी गायों के लिए घास इकट्ठा करने आई थी। जब तुम्हारी बांसुरी की तान सुनी तो मुझसे रहा नहीं गया और मैं बांसुरी सुनती हुई यहां पहुंच गई। शाम होने वाली है, अब मुझे चलना चाहिए।” यह कहकर युवती उठकर चल दी और देखते ही देखते गडरिये की नज़रों से ओझल हो गई।

दूसरे दिन भी वह आंख मूंद कर बांसुरी बजा रहा था। तभी वह युवती उसके पास आई और उसके सामने चुपचाप बैठकर बांसुरी सुनती रही। गडरिये ने बांसुरी बजाना बंद की तो देखा कल वाली वही युवती उसके सामने बैठी थी। यह क्रम पूरी गर्मी चलता रहा। दोनों को एक दूसरे से प्रेम हो गया। सर्दियां आने से पहले ही दोनों ने विवाह कर लिया। युवती गडरिये के साथ ही उसके गांव आ गई।

अगली गर्मी में गडरिया भेड़-बकरियां लेकर जोत पर आया और उसकी पत्नी खेती-बाड़ी करने के लिए घर में ही रह गई। इस गर्मी में गांव में सूखा पड़ा। फसलें सूख गईं। चश्में, बावड़ी, नदी-नाले सब सूखने लगे। बिना पानी के जोत पर भी घास सूखने लगी। भेड़-बकरियां भूख से मरने लगीं। झील का पानी भी सूखने लगा। झील के पानी को सूखता देख गडरिया चिंतित हो गया।

एक दिन वह झील के किनारे बैठकर उदासी में बांसुरी बजाने लगा। बांसुरी के सुरों में गमगीन धुन छेड़ दी। काफी देर तक बांसुरी बजाता रहा। वह बांसुरी बजा ही रहा था कि तभी झील में से चेहरे पर तेज़ आभा लिए एक आकृति प्रकट हुई। गडरिया उसे प्रणाम करते हुए बोला “आप कौन हैं?”

आकृति उसके नज़दीक आते हुए बोली “मैं जल देवता हूं। तुम्हारी बांसुरी के उदास स्वरों को सुनकर द्रवित होकर प्रकट हुआ हूं। कहो, इतने उदास क्यों हो?”

“हे देव! मेरे गांव में भयंकर सूखा पड़ा है। यहां भी कई महीनों से वर्षा नहीं हो रही है। घास सूख गई है। जिस कारण मेरी भेड़-बकरियां भी मरने लगी हैं। मुझे समझ नहीं आ रहा है कि भेड़ों को कैसे बचाया जाए। आप तो जल के स्वामी है, आपसे हाथ जोड़कर वर्षा करवाने की विनती करता हूं। अगर आप बारिश करवाएंगे तो मैं आपको सात बकरे भेंट करूंगा।” गडरिये ने विनती करते हुए कहा।

“तू चिंता मत कर। मैं जल का स्वामी हूं। वर्षा करवाकर तुम्हारा और तुम्हारे गांव का भला करवा दूंगा। परंतु जो तूने मुझे



सात बकरे भेंट करने का वादा किया है, उसे भूलना नहीं। इसके अतिरिक्त तुम्हें जो कुछ भी चाहिए तो मुझे बता दो।" जल देवता बोला।

"मुझे पत्नी की याद सता रही है। उसे भी मेरी याद आ रही होगी। मैं उस तक अपनी बांसुरी में बांधकर बेसर के फूल पहुंचाना चाहता हूं ताकि वह मेरी बांसुरी और केसर का फूल देखकर खुश हो जाए।" गडरिया बोला।

"तुम नदी में बांसुरी के फूल बांधकर डाल दो। बांसुरी तुम्हारी पत्नी को मिल जाएगी।" यह कहकर जल देवता झील में समा गया।

उसके झील में समाते ही बादलों ने पूरे क्षेत्र को ढक लिया और देखते-ही-देखते पानी बरसने लगा। इस तरह सूखे से पूरे गांव वालों को छुटकारा मिला। गांव वालों की फसलें लहलहाने लगी। जोत पर भी घास उग आई।

गडरिये ने बांसुरी में बेसर के फूल बांधकर उसे नदी में प्रवाहित कर दिया। बांसुरी जलधार में बहते हुए उसके गांव में पहुंच गई। एक सुबह गडरिए की पत्नी पानी भरने के लिए नदी के किनारे गई हुई थी। अपना घड़ा जल भरने के लिए नदी में डाला। जल से भरा हुआ घड़ा बाहर निकाला तो घड़े में बेसर के फूल से बंधी बांसुरी भी आ गई। उसने बांसुरी को देखा। अपने प्रियतम की बांसुरी तुरंत पहचान गई। बांसुरी देखकर प्रसन्न हो गई।

कुछ दिनों बाद थेलु गडरिया भी भेड़-बकरियां लेकर घर आ गया। उसे सकुशल लौटा देखकर उसकी पत्नी अति प्रसन्नता हुई। वे हंसी-खुशी प्यार से दिन बिताने लगे। गडरिये ने गांव वालों को जल देवता के मिलने की बात बताई। गांव वालों ने जल देवता का वर्षा करवाने के लिए धन्यवाद किया।

अगली गर्मियों में गडरिया भेड़-बकरियां लेकर फिर पहाड़ पर आ गया। जल देवता को सात बकरे भेंट करने की बात भूल गया। इस गर्मी में फिर से सूखा पड़ा। फसलें सूखने लगीं। पहाड़ पर घास भी सूखने लगी। भेड़-बकरियां भी एक-एक कर मरने लगीं। झील भी सूखने लगी। थेलू गडरिया फिर चिंतित हो गया।

एक दिन वह फिर से झील के किनारे बैठकर जल देवता को प्रसन्न करने के लिए बांसुरी बजाने लगा। कई घंटों तक लगातार बांसुरी बजाता रहा परंतु जल देवता प्रकट नहीं हुआ। जब बांसुरी बजाकर थक गया तो निराश होकर आंख मूंदकर झील में कूद गया। परंतु झील के पानी ने उसे उछालकर बाहर फेंक दिया। उसने आंख खोली तो जल देवता को अपने सामने पाया। गडरिये ने देवता से माफी मांगी और देवता को सात बकरे देने का वादा करते हुए बोला

"हे देव! मुझ से भूल हो गई। जो मैं वादे के अनुसार आपको सात बकरे नहीं भेंट कर सका। मैं भूल गया था। आज कृपा करके वर्षा करवा दो, मैं अभी आपको सात बकरे भेंट करता हूं।"

जल देवता ने गडरिये पर प्रसन्न होते हुए कहा, "बेटा! मैं तुम पर प्रसन्न हूं। अब मुझे सात बकरों की बलि नहीं चाहिए। मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है। परंतु...।"

"परंतु क्या देव!" गडरिया बोला।

"तुम्हें मुझे अपने गांव में स्थापित करके मेरा मंदिर बनवाना होगा।"

"आप मेरे साथ चलिए देव! हम गांव वाले आपका मंदिर अवश्य बनवाएंगे।"

"मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊंगा। मैं वहां अपने आप मूर्ति रूप में प्रकट हो जाऊंगा। तुम यह घास ले जाओ तुम्हारा भला होगा।" यह कहकर जल देवता ने घास से भरा हुआ एक किलटा उसे दिया और झील में समा गया।

जल देवता के झील में समाते ही बादल आए और वर्षा हो गई। सूखा टूट गया। घास उग आई। फसलें भी लहलहाने लगीं।

जब पतझड़ का मौसम आ गया तो जोत पर ठंड बढ़ने लगी। गडरिये ने अपनी भेड़ें गांव की ओर मोड़ लीं। साथ ही जल देवता द्वारा दिया हुआ घास का किलटा उठाया और भेड़ों के साथ गांव की ओर चलता रहा। किलटा भारी था। इसलिए थोड़ा नीचे उतरने पर गडिरये ने यह सोचकर किलटे के घास को गिरा दिया कि घास तो गावं में भी बहुत है। इसलिए खाली किलटा लेकर घर आ गया। घर आकर किलटे को नीचे रखा तो छन्न की आवाज़ आई। उसने आवाज की तरफ देखा, तो वहां पर एक सोने का सिक्का था। सिक्का देखकर वह बहुत पछताया और सिक्का ढूंढने वापस उस स्थान की ओर दौड़ा जहां उसने किलटा उलटाया था। वहां घास के स्थान पर पत्थर की एक मूर्ति पड़ी थी। उसने मूर्ति गांव लाई। गांव वालों ने मूर्ति को जल देवता मानकर उसकी स्थापना की और एक स्वच्छ सुंदर स्थान पर उसका मंदिर बनवा दिया। देवता के आशीर्वाद से समय पर वर्षा होने लगी और गांव वाले सुख से रहने लगे।

प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, कुल्लू, जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश। मो. 98163 99807

पंकज शर्मा की लघु कथाएं

सेवा पानी

लंच का समय होते ही चारो बाबुओं ने अपने-अपने टिफिन बॉक्स खोल लिए और मेज के चारों ओर बैठ गए। एक ने पानी का जग उठाते हुए कहा, "सोहन बाबू, जग तो खाली है। पानी के लिए किससे कहें। रामदीन तो आज छुट्टी पर है।" तभी वहां जगतार, जो टैक्नीशियन था, आ पहुंचा। उसने उन्हें रोटी खाते देखा और देखा कि जग खाली है तो चुपचाप जग उठाया और पानी लाकर वहां रख दिया।

फिर वह सोहन बाबू से मुखातिब होकर बोला, "और बाबू जी, कोई और सेवा हो तो बताओ?" सोहन बाबू ने मुस्कुराते हुए धन्यवादी नज़रों से कहा, "नहीं बस, जो थी, वह तो तुमने कर ही दी।" "अच्छा बाबू जी।" कहकर जगतार चला गया।

उसके जाते ही बाकी के तीनों बाबुओं ने बड़ी हैरानी से सोहन बाबू की तरफ प्रश्न सूचक दृष्टि से ताकते हुए कहा, "सोहन जी, यह जगतार तो बड़ा ही खाड़कू किस्म का कर्मचारी है। कोई काम कहो तो करता नहीं, उलटा खाने को दौड़ता है, फिर पानी लाना तो दूर की बात है। पर कमाल है, आपने तो कहा भी नहीं फिर भी बिना कहे पानी ले आया... बात कुछ हजम नहीं हुई?"

"अरे होगी भी नहीं", सोहन बाबू ने कहा, "यह जगतार दो-चार बार मेरे पास अपना कोई-न-कोई काम करवाने आया था और मैंने निःस्वार्थ कर दिया था। तबसे मेरी बड़ी इज्जत करता है यह। इसीलिए आज मौका देखकर उसने बिना कुछ कहे ही पानी ला दिया। तुम लोग जो कहते हो न कि बिना सेवा-पानी के कोई काम नहीं करना चाहिए और मैं इसे इत्तेफाक नहीं रखता, तो आज तुम लोगों को यह बात समझ आ गई होगी। यह पानी की सेवा जैसी सेवा ही मेरी सेवा-पानी है जो लोग मुझे इज्जत और खुशी से प्रदान करते हैं।"

...अब पता नहीं तीनों को बात समझ में आई या नहीं।



भलाई

"क्यों बे साले...चोरी करता है...हैं", कहते हुए हवलदार ने उसके दो तमाचे जड़ दिए। वह रोने लगा। "एक तो चोरी करता है, ऊपर से रोता भी है, क्यों बे, क्यों की चोरी तूने... बता, क्यों की?" कहते-कहते हवलदार ने दो लातें उसे और दाग दीं। वह दर्द से बिलबिला गया, "साब...बच्चा...मेरा बच्चा...तीन दिन से भूखा था साहब... इसलिए...।" "झूठ बोलता है साले....", अबकी बार हवलदार ने एक डंडा उसकी पसलियों में जड़ दिया, "बच्चे का बहाना बनाता है...।" "नहीं साब...सच बोलता हूं साब...", वह गिड़गिड़ाया। "खाता है अपने बच्चे की कसम...", हवलदार बोला। "अपने बच्चे की कसम साब... मैं सच कह रहा हूं।" वह रोते हुए बोला।

"इधर आ", हवलदार ने उसे इशारे से अपने पास आने के लिए कहा। वह डरता- सा हवलदार के पास आया। जानता था कि लात, घूंसा, थप्पड़ या डंडा, इनमें से कोई एक उसे खाने को अवश्य मिलेगा। "ये ले, रख ले", हवलदार ने पांच सौ रुपये का एक नोट निकालकर उसके आगे कर दिया, "तुझे पहली बार पकड़ा है, इसलिए तुझपे विश्वास करके छोड़ रहा हूं। यह नोट ले और अपने बाल-बच्चों का कुछ कर ले.... और फिर किसी काम-धंधे पर लग जाइयो... और देख दोबारा चोरी करने की हिम्मत मत करियो... वर्ना इससे भी कई गुणा ज्यादा मार पड़ेगी। अब जा फूट ले...", वह हतप्रभ था। उसे यकीन ही नहीं हो रहा था। हवलदार तो उसे जैसे साक्षात भगवान लग रहा था। "अब चल न...", हवलदार ने कहा, तो वह उसे ढेरों दुआएं देता हुआ वहां से चला गया।

...और अब वह हलवदार सोच रहा था, "...उस पर भरोसा करने में मुझे हर्ज ही क्या है? अगर वह सच्चा है तो समझो मैंने भला काम किया है और अगर नहीं तो वह मेरा ले ही क्या गया वह पांच सौ का नोट जो मुझे मेरे साथियों से आज की ऊपरी कमाई में से अपने हिस्से के तौर पर मिला है...।"

प्लाट नं. 19, सैनिक विहार, सामने विकास पब्लिक स्कूल, जण्डली, अम्बाला शहर (हरियाणा), मो. 94168 60445

साहित्यिक आयोजनों से गुलजार हुई 'पहाड़ों की रानी'

• गिरिजा शर्मा

वर्तमान में टेलीविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट और स्मार्टफोन के इस युग में हमारी युवा पीढ़ी पुस्तकों से विमुख होती जा रही है। पुस्तकों के प्रति कम होती रुचि चिंता का विषय है। देशभर में किताबों की दुकानों व पुस्तक खरीददारों की तादाद भी कम होती नजर आ रही है। लेकिन हाल ही में शिमला में आयोजित पुस्तक मेले में पुस्तक प्रेमियों की भारी भीड़ और इस अवसर पर साहित्यिक आयोजनों में रचनाकारों के उत्साह को देखकर यह सुखद अहसास हुआ कि किताबों के प्रति पाठकों का आकर्षण फिर लौट रहा है।

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा शिमला के गेयटी थिएटर में 30 जून से 6 जुलाई, 2014 तक पुस्तक मेले का आयोजन किया गया। इस मेले में राष्ट्रीय स्तर के 28 प्रकाशकों ने भाग लिया। मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह ने मेले का उद्घाटन किया।

मुख्यमंत्री ने इस अवसर पर कहा कि भारत वर्ष में सैंकड़ों वर्षों से पुस्तकों की परंपरा रही है। पुस्तकें हमारी धरोहर हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी ज्ञान द्वारा चलती रहती हैं। आज के इलैक्ट्रॉनिक युग में ई-बुक के माध्यम से किताबें पढ़ी जा रही हैं और हमें भी समय के अनुरूप स्वयं को ढालना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि प्रदेश के लेखकों, साहित्यकारों का सम्मान करते हुए सरकार ने लेखकों के लिए प्रदेश में कई लेखक गृह स्थापित किए हैं। उन्होंने शिक्षा विभाग को पुस्तक मेले से 10 लाख रुपये की पुस्तकें खरीदने के निर्देश भी दिए। इस अवसर पर मुख्यमंत्री ने हिमाचल अकादमी द्वारा मनाली के इतिहास और संस्कृति पर प्रकाशित मोनोग्राफ का तथा राजा भसीन व अनीता अग्रवाल की पुस्तकों का लोकार्पण भी किया। प्रख्यात लेखिका राजी सेठ, प्रसिद्ध साहित्यकार एवं पत्रकार ओम थानवी, निदेशक एन.बी.टी. एम. ए. सिकन्दर, निदेशक भाषा-संस्कृति एवं सचिव अकादमी अरुण शर्मा भी इस अवसर पर उपस्थित थे।

इससे पूर्व एन.बी.टी. के निदेशक एम.ए.सिकन्दर ने कहा कि एन.बी.टी. के लिए गेयटी जैसे ऐतिहासिक स्थल में पुस्तक मेले का आयोजन करना गौरव की बात है। निदेशक भाषा संस्कृति एवं सचिव अकादमी अरुण शर्मा ने कहा कि पुस्तक मेले का उद्देश्य पुस्तक पढ़ने के प्रति लोगों में रुचि पैदा करना है। प्रख्यात लेखिका राजी सेठ ने कहा कि हिमाचल प्रदेश से उनका गहरा लगाव रहा है। यहां के लेखक गृहों में उन्होंने सतत लेखन साधना की है। प्रसिद्ध साहित्यकार और पत्रकार ओम थानवी ने कहा कि आज के वैश्विक समाज में किताबों की अहमियत कम होती जा रही है। उन्होंने कहा कि पढ़ना सबका अधिकार है, उसके लिए साहित्यकार होना जरूरी नहीं है।

हिमाचल अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा 1 से लेकर 6 जुलाई तक गेयटी थिएटर के सेमीनार हॉल में विभिन्न साहित्यिक आयोजन किए गए, जिनमें स्थापित और नवोदित कहानीकारों, कवियों के रचना पाठ और उन पर परिचर्चा अहम कार्यक्रम रहे। इसके अलावा एक बहुभाषी कवि सम्मेलन भी आयोजित किया गया। एन.बी.टी. द्वारा भी बच्चों के लिए प्रतियोगिताएं और कहानी लेखन पठन आदि अनेक कार्यक्रम किए गए। एक जुलाई को हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा गेयटी थिएटर के सेमीनार हॉल में कविता पाठ का आयोजन किया गया। कविताओं पर परिचर्चा के लिए डॉ. ओम् प्रकाश सारस्वत, डॉ. सुशील कुमार फुल्ल और डॉ. डी. के. गुप्ता उपस्थित थे। कवियों में मोहन साहिल, आत्मा रंजन, सुरेश सेन निशान्त, अजेय और ओम भारद्वाज ने अपनी पांच-पांच कविताओं का पाठ किया।

परिचर्चा में भाग लेते हुए वरिष्ठ विद्वान डॉ. ओम् प्रकाश सारस्वत ने कहा कि कविता की बनावट, प्रस्तुति और शब्द की अभिव्यक्ति व्यवस्थित होनी चाहिए और आज पढ़ी गई कविताएं इस कसौटी पर खरी उतरती हैं। उन्होंने कहा कि गद्य या कविता में शब्द का बहुत महत्त्व है। शब्द ही कविता है। विचारों की सम्यक् अभिव्यक्ति शब्द से ही होती है। साहित्यकार एवं आलोचक डॉ. सुशील कुमार फुल्ल ने कहा कि कवि स्वयं अपनी कविता का आलोचक होता है। कविता वह विधा है जो श्रोता को बांधती है और आज पढ़ी गई कविताओं का स्वाद, रंग और

कल्पना भिन्न होते हुए भी श्रोता के साथ उनका सीधा संवाद हुआ है। कहानीकार एवं संपादक डॉ. डी. के. गुप्ता ने कविताओं पर टिप्पणी करते हुए कहा कि सभी प्रस्तुतकर्ता हिमाचल के सामर्थ्यवान कवि हैं। उन्होंने कहा कि पढी गई सभी कविताओं में सम्प्रेषणीयता का गुण था और इनमें से कुछ कविता कालजयी बनने का सामर्थ्य रखती हैं। आलोचना के बारे में उनका कहना था कि आलोचना भी साहित्य का अभिन्न अंग है बशर्ते वह तथ्यपरक हो। सभी कविताओं में संवेदनशीलता और बिम्ब का अच्छा प्रदर्शन रहा। इस मौके पर निदेशक भाषा - संस्कृति एवं सचिव अकादमी अरुण कुमार शर्मा ने भी अपनी कविताओं का पाठ किया। इसके अलावा सी.आर.बी. ललित और भूप रंजन ने भी कुछ कविताएं पढ़ी।

अगला दिन कहानी पाठ का था। इसमें प्रदेश के तीन युवा कहानीकारों ने अपनी कहानियों का पाठ किया। मण्डी से आए पवन चौहान ने चोर और कांगड़ा के राकेश पत्थरिया ने देवता का सेवादार नामक कहानी प्रस्तुत की, जबकि सुरेश शांडिल्य ने जकिउल्ला उर्फ शंकर नामक कहानी पढ़ी।

कहानियों पर परिचर्चा के लिए सर्वश्री श्रीनिवास जोशी, श्रीनिवास श्रीकांत और सुदर्शन वशिष्ठ उपस्थित थे। श्री सुदर्शन वशिष्ठ ने कहा कि जकिउल्ला उर्फ शंकर एक मनोवैज्ञानिक कहानी है और चोर और देवता का सेवादार दानों कहानियां ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हैं। सभी कहानियां प्रभावकारी वातावरण पैदा करती हैं। श्रीनिवास श्रीकांत ने कहा कि तीनों युवाओं में अच्छे कहानीकार बनने की संभावनाएं हैं। उन्होंने कहा कि तीनों कहानियों को तराश कर प्रभावशाली बनाया जा सकता है। निदेशक भाषा-संस्कृति एवं सचिव अकादमी अरुण शर्मा ने कहा कि कहानी में कथावस्तु, पात्रचित्रण, संवाद और समय का बहुत महत्त्व होता है।

साहित्यिक कार्यक्रमों की शृंखला में अगले दिन कविता और ग़ज़ल पाठ का कार्यक्रम किया गया। इसमें संगीताश्री, देवकन्या ठाकुर, भारती कुठियाला, राजीव त्रिगर्ती और सौरभ वशिष्ठ ने अपनी पांच-पांच कविताओं का पाठ किया जबकि द्विजेन्द्र द्विज और प्रवेश जस्सल 'बशर' ने ग़ज़लें सुनाईं। श्रोता के तौर पर उपस्थित निसार शिमलवी भी कविता और ग़ज़ल की इस महफिल में ग़ज़ल कहने से स्वयं को रोक नहीं पाए।

अकादमी के वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी श्री अशोक हंस ने कहा कि रचनाकार और समीक्षक के मध्य संवाद आवश्यक होता है। इस दृष्टि से इस तरह के आयोजन बहुत महत्त्व रखते हैं। कविताओं पर परिचर्चा करते हुए श्री के. के. वैद्य ने कहा कि अनुभव ही कविता है और हर व्यक्ति के भीतर अनुभव की शक्ति होती है। श्री इन्द्र सिंह ठाकुर ने कविता के माध्यम से अपनी टिप्पणी रखी। श्री राजकुमार राकेश का कहना था कि आज की कविताएं संवेदना से परिपूर्ण थीं।

चार जुलाई को उपन्यास और कहानी पाठ हुआ। कहानीकार और उपन्यासकार श्री राजकुमार राकेश ने धर्मक्षेत्र नामक अपने उपन्यास का एक अंश पढ़ा जबकि कहानीकार एस. आर. हरनोट ने लिटन ब्लॉक गिर रहा है, कहानी का पाठ किया। उपन्यास पर अपनी रचना प्रक्रिया को लेकर लेखक का कहना था कि 1999 में लिखी कहानी वसुंधरा का विस्तृत रूप उपन्यास है, जबकि हरनोट का कहना था कि वह एक किसान की तरह लेखन की कोशिश करते हैं और फिर उसे पाठक और समीक्षक पर छोड़ देते हैं।

पठित रचना पर टिप्पणी के लिए अध्यक्ष मण्डल में हिन्दी के समकालीन कवि, प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री राजेश जोशी, लेखक और समीक्षक डॉ. शिवानी चोपड़ा, डॉ. हेमराज कौशिक और डॉ. मीनाक्षी पॉल उपस्थित थे। डॉ. हेमराज कौशिक ने उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए कहा कि निरंकुश सत्ता और दमनकारी नीति का चित्रण उपन्यास में है। उन्होंने कहा कि लिटन ब्लॉक गिर रहा है कहानी उपेक्षित और वंचित वर्ग की कहानी है। कथन भंगिमाओं और संवेदना दर्शाने में लेखक की विशिष्टता है। डॉ. मीनाक्षी पॉल ने कहा कि पाठ के बाद पाठ को आत्मसात करना होता है तथापि पठित रचनाओं पर अपनी टिप्पणी देते हुए उन्होंने कहा कि उपन्यासकार ने बहुत से बिम्ब अपनी रचना में दर्शाए हैं।

अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में श्री राजेश जोशी ने कहा कि रचना समझने के कई बिंदु होते हैं और वही बिंदु रचना की उपलब्धि है। उन्होंने कहा कि नब्बे के बाद की कहानियों में ब्योरे, विवरण, निबन्धात्मकता, आख्यानात्मकता बढी है, जिन्होंने कहानी के शिल्प को तोड़ा है। आज की कहानी एक निबन्ध का रूप ले लेती है। उन्होंने कहा कि कहानी में संवाद कम हुए हैं, गति अवरोध बहुत बढ़ गया है। आज की कहानियां पाठक को बार-बार रोकती हैं, फिर चलती हैं।

अगले दिन दो साहित्यिक कार्यक्रम किए गए। प्रातःकालीन सत्र में प्रदेश के दो प्रसिद्ध कहानीकारों द्वारा कहानियों का पाठ किया गया। श्री बद्री सिंह भाटिया ने अपनी कहानी लक्कड़बग्घा उर्फ बाघिन का पाठ किया जबकि श्री अरुण भारती की कहानी का शीर्षक रीता तुम आ गई था।

कहानियों पर परिचर्चा के लिए प्रतिष्ठित कहानीकार, साहित्यकार, कवि, नाटककार श्री राजेश जोशी और साहित्यकार, आलोचक, कवि डॉ. तुलसी रमण उपस्थित थे। डॉ. रमण ने कहानियों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि पाठक के मन को उद्वेलित करना रचना की उपलब्धि है और दोनों ही कहानियों में यह विशिष्टता है। भाटिया की कहानी में प्रायोजित यथार्थ नहीं है, उनका देखा हुआ अनुभूत किया यथार्थ है। कहानी में दो पीढ़ियों का अन्तर्द्वन्द है। उन्होंने कहा कि यह कहानी विकास,

भाटिया की कहानी में प्रायोजित यथार्थ नहीं है, उनका देखा हुआ अनुभूत किया यथार्थ है। कहानी में दो पीढ़ियों का अन्तर्द्वन्द है। उन्होंने कहा कि यह कहानी विकास, विनाश, सत्ता, भ्रष्टाचार और अपनी जड़ों से जुड़े कई सवाल खड़े करती है। भारती की कहानी के बारे में उनकी टिप्पणी थी कि लेखक ने निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों की इस यथार्थ कहानी में कार्यालय की व्यवस्था, कार्यशैली, वहाँ काम करने वाले चरित्रों के सूक्ष्म से सूक्ष्म बिंदुओं को उजागर किया है।

विनाश, सत्ता, भ्रष्टाचार और अपनी जड़ों से जुड़े कई सवाल खड़े करती है। भारती की कहानी के बारे में उनकी टिप्पणी थी कि लेखक ने निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों की इस यथार्थ कहानी में कार्यालय की व्यवस्था, कार्यशैली, वहाँ काम करने वाले चरित्रों के सूक्ष्म से सूक्ष्म बिंदुओं को उजागर किया है। कहानियों पर अपना वक्तव्य देते हुए श्री राजेश जोशी ने कहा कि लक्कड़बग्घा उर्फ बाघिन में उठाई गई विस्थापन की समस्या आज की बहुत बडी समस्या है। उन्होंने कहा कि हमारा अधिकांश साहित्य विस्थापन से भरा है।

दोपहर बाद दूसरा सत्र जनजातीय संगोष्ठी पर केंद्रित रहा। इस सत्र में जनजातीय इतिहास, कला और संस्कृति विषयक तीन पत्रों का वाचन हुआ। श्री तोबदन ने चंद्र और भागा नदियां तथा लाहुल का भूगोल विषय पर उपयोगी जानकारी युक्त पत्र प्रस्तुत किया। डॉ. ओ.सी.हाण्डा का पत्र जनजातीय हस्तशिल्प पर केन्द्रित था। उन्होंने पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि प्रदेश में हेंडिक्राफ्ट खत्म हो रहे हैं। आज के दौर में लोग ज्यादातर रेडिमेड वस्तुओं की ओर आकर्षि हो रहे हैं। श्री सुदर्शन वशिष्ठ ने लोक वार्ता में जनजातीय संस्कृति विषयक पत्र से स्पष्ट किया कि हिमाचल की संस्कृति लोक साहित्य के माध्यम से प्रकट हुई है। यहां की संस्कृति में देवताओं की लोक कथाएं और देवताओं के गुणों की झलक देखने को मिलती है। संगोष्ठी के अध्यक्ष श्री छेरिंग दोरजे ने एक अनुष्ठान पर केन्द्रित व्याख्यान प्रस्तुत किया।

इस दौरान एन.बी.टी. द्वारा बच्चों के लिए भी कविता कहानी के आयोजन किए गए। हिमाचल अकादमी और एन.बी.टी. द्वारा करवाए गए बहुभाषी कवि सम्मेलन से इस सात दिवसीय पुस्तक मेले का समापन हुआ। नवोदित कवियों ग़ज़लकारों से लेकर वरिष्ठ और प्रतिष्ठित कवियों की मौजूदगी इस कवि सम्मेलन की विशेषता रही। वयोवृद्ध लेखक नरवीर लाम्बा के साथ-साथ अंशुमन कुठियाला तक के युवा कवियों ने कविताओं का पाठ किया। डॉ. अनिल राकेशी और सी.आर.बी. ललित की अध्यक्षता में सर्वश्री जगत प्रसाद शास्त्री, अश्विनी गर्ग, कुल राजीव पंत, के.के. वैद्य, हरि वर्मा, ध्यान सिंह भागटा, भूप रंजन, सतीश रत्न, निर्मल चन्देल, मधुकर भारती, सत्य नारायण स्नेही, वेद प्रकाश शर्मा, सुमित राज, वन्दना राणा, उमा ठाकुर आदि 30 कवियों ने कविता पाठ किया।

इससे पूर्व हिमाचल अकादमी और एन.बी.टी. द्वारा मंडी के पड्डल मैदान में पुस्तक मेला आयोजित किया गया। उपायुक्त मंडी श्री दिवेश कुमार ने इस अवसर पर कहा कि किताबों में हजारों साल का ज्ञान समाहित है।

इस अवसर पर हिमाचल अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें मंडी जिला के सर्वश्री कृष्ण कुमार नूतन, दीनू कश्यप, गंगा राम राजी, पी.सी. कौंडल, प्रकाश चन्द धीमान, सुरेश सेन निशांत, हंसराज भारती, कृष्ण चन्द्र महादेविया, रुपेश्वरी शर्मा, कांता शर्मा, प्रकाश पंत, किरण गुलेरिया, हरिप्रिया, मुरारी शर्मा, डॉ. जय इन्द्रपाल, कर्नल जे. कुमार, पवन चौहान, इन्दु वैद्य सहित लगभग 25 कवियों ने भाग लिया। इसके अलावा एन.बी.टी. द्वारा आमंत्रित प्रख्यात व्यंग्यकार तथा कवि डॉ. सुरेश ऋतुपर्णा, हरियाणा साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. श्याम सखा श्याम, निदेशक भाषा संस्कृति अरुण शर्मा और एन.बी.टी. के संपादक डॉ. ललित मंढोरा ने भी कविता पाठ किया। इस अवसर पर वरिष्ठ कहानीकार सुंदर लोहिया भी उपस्थित थे।

पुस्तक मेले के साथ आयोजित किए गए विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रमों में सुरेश सेन निशांत, अजेय और आत्मा रंजन ने अपनी कविताओं का पाठ किया, जिसकी अध्यक्षता वरिष्ठ विद्वान दीनू कश्यप और सत्यपाल सहगल ने की। प्रतिष्ठित कहानीकार राजकुमार राकेश, एस. आर. हरनोट और मुरारी शर्मा ने डॉ. सुन्दर लोहिया की अध्यक्षता में अपनी कहानियों का पाठ किया।

मंडी और शिमला में आयोजित पुस्तक मेले पुस्तक प्रेमियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहे। मेलों के दौरान आयोजित साहित्यिक कार्यक्रमों से स्थानीय लेखकों, साहित्यकारों और कवियों को साहित्यिक परिचर्चाओं में सम्मिलित होने का अवसर मिला।

अनुसंधान अधिकारी
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171001

पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम जयंती

सारगर्भित रहा रचनाकारों का साहित्यिक समागम

● रपट/ कुलदीप चंदेल

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने हिमाचल प्रदेश के स्वतंत्रता सेनानी श्री कांशी राम को पहाड़ी गांधी बाबा का नाम देकर न केवल उनका सम्मान बढ़ाया बल्कि उन्होंने हिमाचलवासियों को भी गौरवान्वित किया। कला, भाषा व संस्कृति अकादमी शिमला द्वारा बिलासपुर स्थित संस्कृति भवन में 11 जुलाई, 2014 को पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम जयंती पर साहित्यिक आयोजन किया गया। वे पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम के रूप में आज भी याद किए जाते हैं।

वास्तव में पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम की जयंती पर आयोजित साहित्यिक समारोह एक यादगार आयोजन साबित हुआ। इस समारोह के प्रथम सत्र में शिमला के पत्र-पत्रिकाओं की साहित्यिक यात्रा 'विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत करने का दायित्व निभाया श्रीनिवास जोशी ने। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे बिलासपुर के विधायक बंबर ठाकुर। जोशी जी ने अपना शोध-पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि उन्होंने तो शिमला के पत्र-पत्रिकाओं की यात्रा पर काम किया है।

श्री जोशी ने पत्र वाचन करते हुए बताया कि शिमला से सबसे पहले सन् 1848 में शिमला अखबार निकला जो कि साप्ताहिक था। इसके संपादक थे शेख अब्दुल्ला। उसके बाद 'दि माउंटेन मॉनिटर स्टेशन शिमला टाइम्ज़', पॉयनीयर बुलेटिन, 1920 में हजारा सिंह द्वारा 'रामगढ़िया' अखबार प्रकाशित हुआ। भारत आजाद होने पर लाहौर से छपने वाला अंग्रेजी का 'दि ट्रिब्यून' 1947 में शिमला से प्रकाशित होने लगा था। इसके बाद 1955-56 'हिन्दुस्तान टाइम्ज़' तथा इसी दौरान प्रदेश सरकार की 'हिमप्रस्थ' मासिक पत्रिका भी छपनी शुरू हुई। संस्कृत में दिव्य ज्योति प्रकाशित हुई। फिर भाषा विभाग की 'विपाशा', 'सोमसी', 'फिक्रोफन', 'हिमभारती' पत्रिकाएं पाठकों के सामने आईं। इनमें फिक्रोफन उर्दू में छपती है। पहाड़ी में हिमभारती भी भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित हो रही है। फिर पंचजगत, शिखर, इरावती, सेतु, जनपक्ष, हिमाचल दर्पण, गिरिराज, हिमप्रताप, हिमकेसरी आदि समाचार पत्र पाठकों के सामने आए।

श्री जोशी का शोध-पत्र हर दृष्टि से परिपूर्ण था। इस पर डॉ. हेमराज कौशिक, जयकुमार, रतन चंद निर्झर तथा शिवराज शर्मा के साथ राजेंद्र राजन ने प्रतिक्रिया व्यक्त की। श्री निर्झर ने कहा कि लोक सपंर्क विभाग द्वारा प्रकाशित की जाने वाली पत्र-पत्रिकाएं हिमप्रस्थ व गिरिराज के योगदान को कम नहीं आंका जा सकता है। प्रदेश के बहुत से साहित्यकारों की रचनाएं इनमें प्रकाशित होती हैं। इनमें छपने वाली साहित्यिक सामग्री स्तरीय रहती है।

भाषा व संस्कृति विभाग के निदेशक अरुण कुमार शर्मा ने कहा कि विभाग समय-समय पर इस तरह के आयोजन प्रदेश के विभिन्न भागों में करता है। पहाड़ी बाबा कांशीराम के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि वे महान स्वतंत्रता सेनानी थे। पहाड़ी भाषा के पक्षधर थे तथा अपने गीतों से समाज में स्वतंत्रता की लौ प्रज्वलित करते रहे।

विधायक बंबर ठाकुर ने कहा कि साहित्यकारों के साथ शिरकत कर उनके विचार सुनना एक सम्मान की बात है। एक अलग ही अनुभव है। साहित्यकार अपनी कलम से समाज में जागृति पैदा करते हैं।

दूसरे सत्र में कवि सम्मेलन आयोजित किया गया। इस राज्य स्तरीय कवि सम्मेलन की अध्यक्षता स्वतंत्रता सेनानी कन्हैया लाल दाबड़ा ने की। प्रदेश के विभिन्न स्थानों से आए लगभग साठ कवियों ने इस अवसर पर कविता पाठ करके खूब समां बांधा।

212/2, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश।

हिन्दी साहित्य निर्झर मंच द्वारा साहित्यिक संगोष्ठी

● रपट/ उषा कालिया

हिन्दी साहित्य निर्झर मंच (पंजीकृत) पालमपुर की ओर से 12 जुलाई 2014 को एक दिवसीय साहित्यिक समारोह का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम साहित्यकार नरेश कुमार 'उदास' की दो नवीनतम कृतियों का विमोचन साहित्यकार तथा पंजाब के सुजानपुर से पधारे डॉ. लेखराज ने किया। तत्पश्चात क्षणिका संग्रह 'मां आकाश कितना बड़ा है' का विमोचन किया गया।

डॉ. लेखराज ने नरेश कुमार उदास की पुरस्कृत कथाकृति 'मां गांव नहीं छोड़ना चाहती' पर सारगर्भित आलेख पढ़ा। उन्होंने 'उदास' की कहानियों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि नरेश एक सशक्त कहानीकार हैं। इनकी कहानियों के नारी पात्र, मात्र नारी विमर्श का ढिंढोरा नहीं पीटते, बल्कि नारी चेतना की सार्थक

भूमिका निभाते भी हैं।

कवयित्री कमलेश सूद ने क्षणिका संग्रह पर अपना पत्र वाचन करते हुए कहा , नरेश 'उदास' का यह क्षणिका संग्रह जीवन का बहुरंगी दस्तावेज बन गया है। इसमें जीवन के दुःख-सुख-संत्रास-पीड़ा तो हैं ही, साथ ही सुख की अनुभूतियों, कर्मठता, निष्ठा, आगे बढ़ने की प्रेरणा के भाव भरी क्षणिकाएं भी हैं।

नवोदित कवयित्री उषा कालिया की प्रथम काव्यकृति 'क्षितिज के उस पार' का विमोचन मंच अध्यक्ष नरेश कुमार 'उदास' तथा डॉ. बी.डी. कालिया ने किया। तत्पश्चात नरेश कुमार 'उदास' ने इस कथाकृति पर अपना वक्तव्य पढ़ते हुए कहा कि इस संग्रह की कविताएं किसी परिपक्व कवयित्री की लगती हैं। इन कविताओं में कवयित्री के जीवनानुभव का सार छुपा लगता है।

कवयित्री सुमन शेखर ने अपना आलेख 'नरेश कुमार उदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पढ़ा। अपने इस शोध लेखन में उन्होंने उल्लास एवं गर्व भरे भाव से कहा कि जब से इस मंच की स्थापना हुई है, तब से ही इस मंच के सदस्य साहित्यकारों की अनेक कृतियां छपकर आने लगी हैं तथा यह क्रम अभी भी जारी है। दूसरे सत्र में कवि गोष्ठी का सफल आयोजन हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता नरेश कुमार 'उदास' ने की। इस कवि गोष्ठी में डॉ. लेखराज, अर्जुन कन्नौजिया, नरेश कुमार 'उदास' तथा सुमन शेखर, कमलेश सूद, सुरेश लता अवस्थी, संगीता नाग, कृष्ण अवस्थी आदि कवि/कवयित्रियों ने भाग लिया। कवि गोष्ठी में चार वर्षीय नन्ही हेमिका ने दो बाल कविताएं कंठस्थ पढ़कर श्रोताओं को उल्लास से भर दिया।

अंत में अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में अध्यक्ष ने पढ़ी गई कविताओं/गीतों/ग़ज़लों पर अपने विचार प्रकट किए। उन्होंने लेखक को हर चुनौती का सामना करने के लिए सचेत रहने को कहा तथा अपने मानवीय मूल्यों के लिए साहित्य-साधना करते रहने का आह्वान भी किया।

पालमपुर में सार्थक-सफल संगोष्ठी होने पर कई उपस्थित श्रोताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

हिन्दी साहित्य निर्झर मंच, पालमपुर,
हिमाचल प्रदेश-176 061, मो. 94188 33589

राहत लेकर आई नई इमारती लकड़ी आवंटन

(पृष्ठ 39 से आगे)

केवल वास्तविक घरेलू प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले घर और गौशाला के निर्माण अथवा रख-रखाव के लिए मंजूर किया जाएगा। अधिकार धारकों का जिन वनों में इमारती लकड़ी वितरण अधिकार है अगर वहां वर्धकीय रूप में वन उपलब्ध न हों तो उन्हें इमारती लकड़ी मंजूर करने का प्रावधान नहीं किया गया है। हालांकि ऐसे मामले में अन्य वनों से वृक्षों के बाजार मूल्य की पचास प्रतिशत दर की वृद्धि पर दिए जा सकते हैं बशर्ते संबंधित वनों के अधिकार धारकों को कोई आपत्ति न हो। नई नीति के अनुसार, अधिकार धारकों द्वारा वन बन्दोबस्त रिपोर्ट में दर्शाए गए निर्माण, मुरम्मत या परिवर्तन के लिए इमारती लकड़ी के लिए अधिकारों का प्रयोग यथावत् जारी रहेगा। यह भी प्रावधान किया गया है कि अधिकार धारकों को टी.डी. अधिकार, वन संरक्षण में उनके सहयोग और सहभागिता के अनुरूप होगा। यदि कोई अधिकार धारक अपराधियों को पकड़ने, आग बुझाने के कार्य में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में असफल रहता है या कोई वन अपराध करता है, तो उसका इमारती लकड़ी वितरण का अधिकार सोलह वर्ष के लिए निलम्बित कर दिया जाएगा। इसके अलावा अगर उसे इमारती लकड़ी वितरण मंजूरी का दुरुपयोग करता हुआ पाया जाता है तो भी उसके टी.डी अधिकार को सोलह वर्ष तक के लिए निलम्बित कर दिया जाएगा। नई टी.डी. नीति में मंजूर इमारती लकड़ी की मात्रा निर्धारित की गई है। पुराने नियमों के अनुसार टी.डी. परिवर्तित रूप में डिपो से दी जाती थी लेकिन अब अपरिवर्तित रूप में खड़े वृक्षों से स्वीकृत की जा रही है। नए आवास के निर्माण के लिए 7 घनमीटर लकड़ी स्थायी मात्रा में (खड़े वृक्ष) प्रदान की जा रही है जबकि पहले यह मात्रा 3 घनमीटर परिवर्तित आकार में निर्धारित थी। रख-रखाव (मरम्मत) के लिए 3 घनमीटर, स्थायी मात्रा में (खड़े वृक्ष) टी.डी दी जा रही है जो पहले एक घनमीटर परिवर्तित आकार में निर्धारित थी। इमारती लकड़ी का वितरण गिरे हुए-सूखे खड़े वृक्षों से किया जा रहा है। यदि ऐसे वृक्ष उपलब्ध नहीं हों, तो केवल वर्घकीय रूप में (सिल्वीकल्चरली) उपलब्ध हरे वृक्षों से आवंटन किया जाएगा। अधिकार धारकों को नए भवन निर्माण के लिए 30 वर्षों के बजाय पन्द्रह वर्षों में एक बार और रख-रखाव अथवा मरम्मत के लिए 15 वर्षों के बजाय अब पांच वर्षों में एक बार इमारती लकड़ी दी जाएगी। प्राकृतिक आपदाओं और अग्नि पीड़ितों के लिए उप-मण्डल अधिकारी (नागरिक) की सिफारिश और संबंधित सहायक अरण्यपाल (वन मण्डल अधिकारी) द्वारा व्यक्तिगत सत्यापन के पश्चात् अधिकतम 7 घनमीटर से अधिक इमारती लकड़ी का वितरण नहीं किया जाएगा। प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त अधिकार धारकों को वृक्ष निःशुल्क दिए जाएंगे। नई नीति में देवदार के लिए 500 रुपये प्रति घनमीटर स्थायी मात्रा और अन्य प्रजातियों के लिए 250 रुपये प्रति घनमीटर स्थायी मात्रा की कीमत निर्धारित की गई है। मंजूर इमारती लकड़ी का उपयोग अधिकतम एक वर्ष के भीतर करना होगा लेकिन अगर वह ऐसा करने में असफल रहता है तो संबंधित वन मण्डलाधिकारी मामले की वास्तविकता के आधार पर समयावधि बढ़ा सकता है।

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी,
निदेशालय, सूचना एवं जन सम्पर्क, शिमला

समीक्षा

'प्रेमचन्द : सम्पूर्ण दलित कहानियां'

● कृष्ण वीर सिंह सिकरवार

सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली से अभी हाल ही में देश के प्रसिद्ध विचारक, चिंतक, प्रेमचंद मनीषी एवं प्रेमचंद साहित्य विशेषक डॉ. कमल किशोर गोयनका के कुशल संपादन में उनकी नई पुस्तक 'प्रेमचंद : संपूर्ण दलित कहानियां' प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक पूर्व में विभिन्न प्रकाशनों द्वारा प्रकाशित प्रेमचंद की दलित कहानियों के संदर्भ में अपना अलग महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं क्यों कि अभी तक प्रकाशित संकलनों में प्रेमचंद की आधी अधूरी कहानियां ही संकलित की गई थी जिस कारण प्रेमचंद का दलित दर्शन पाठकों के समक्ष पूर्णतः उपस्थित नहीं हो पाया था। इस संबंध मे डॉ. गोयनका पुस्तक की भूमिका में कहते है कि "प्रेमचंद की कहानियों के दलित जीवन की साहित्य में अधिक चर्चा हुई है, किंतु दलित कहानियों के जो भी संग्रह निकले है, उनमें आधी-अधूरी कहानियों का ही संकलन किया गया है और इसके कारण प्रेमचंद की समग्र दलित कहानियां कभी किसी एक संकलन मे नहीं आई। अधिकांशतः संकलनकर्ताओं ने उनकी प्रसिद्ध कहानियों को चुनकर संकलन तैयार कर दिया और इस कारण केवल 15-20 कहानियां ही पाठकों तक पहुंच पाई ।" (भूमिका, पृष्ठ : 20) इस प्रकार इस संकलन को तैयार करने के पीछे की मंशा के संबंध में डॉ. गोयनका के विचार पूर्णतः परिलक्षित होते है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचंद की हिन्दी-उर्दू में उपलब्ध 298 कहानियों में से 40 कहानियां संकलित की गई है जो पूर्णतः दलित जीवन से संबंधित है। इन दलित कहानियों में दलित पात्रों का जीवन व उनकी दशाओ के संबंध में प्रेमचंद ने महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाये है जिनकी चर्चा हमेशा विद्वानों द्वारा की जाती रही है। पुस्तक में शामिल 40 कहानियों की सूची इस प्रकार हैः 1) दोनों तरफ से : मार्च 1911 (2) सिर्फ एक आवाज : अगस्त-सितंबर 1913 (3) बांका जमींदार : अक्तूबर 1913 (4) अनाथ लडकी : जून 1914 (5) खून सफेद : जुलाई 1914 (6) अपनी करनी : सितंबर-अक्टूबर 1914 (7) महातीर्थ : सितंबर 1917 (8) पशु से मनुष्य : जनवरी 1920 (9) रूहे-हयात (जीवन की प्राण-शक्ति) : जनवरी 1921 (10) विध्वंस : 25 जुलाई 1921 (11) मूठ : जनवरी 1922 (12) लोकमत का सम्मान : अक्तूबर 1922 (13) सैलानी बंदर : फरवरी 1924 (14) सौभाग्य के कोड़े : जून 1924 (15) सवा सेर गेहूं : नवंबर 1924 (16) सभ्यता का रहस्य : फरवरी 1925 (17) शूद्रा : दिसंबर 1925 (18) मंत्र-1 : फरवरी 1926 (19) कजाकी : अप्रैल 1926 (20) लांछन : अगस्त 1926 (21) मंदिर : मई 1927 (22) मंत्र-2 : मार्च 1928 (23) खुदी : 1928 (24) प्रेम का उदय : अगस्त 1929 (25) घासवाली : दिसंबर 1929 (26) समर-यात्रा : अप्रैल 1930 (27) मैकू : जून 1930 (28) देवी-1 : 1930 (29) राष्ट्र का सेवक : 1930 (30) सद्गति : 1930 (31) खेल : अप्रैल 1931 (32) तावान : सितंबर 1931 (33) ठाकुर का कुआं : 24 अगस्त 1932 (34) रोशनी : नवंबर 1932 (35) गुल्ली डंडा : फरवरी 1933 (36) बालक : अप्रैल 1933 (37) दूध का दाम : जुलाई 1934 (38) देवी-2 : अप्रैल 1935 (39) कफन : दिसंबर 1935 (40) जुरमाना : 1936 आदि। इन चालीस कहानियों के संबंध मे डॉ. गोयनका सूचना देते हैं कि "प्रेमचंद की दलितोत्थान की चिंता उनकी राष्ट्रीय चिंताओ में से है, यही कारण है कि वे वर्ष 1911 से 1936 तक निरंतर दलित जीवन पर कहानियां लिखते रहे और इन 26 वर्षो मे (1911-1936) उन्होंने 20 वर्षों में 40 कहानियां लिखी और वे उर्दू एवं हिन्दी दोनों भाषाओं मे प्रकाशित हुईं।" (वही, पृष्ठ : 22)।

पुस्तक में शामिल 40 संपूर्ण दलित कहानियों के संबंध में यहां यह उल्लेखनीय है कि संपादक ने समस्त कहानियों के प्रथम पाठों को संकलित किया है जो पुस्तक के सम्मिलित प्रत्येक कहानी के

अंत में उस कहानी के प्रकाशित होने संबंधी सूचना के तहत दिया गया है। कहानियों के प्रथम पाठ संकलित करने के अलावा इन कहानियों को पुस्तक में कालक्रमानुसार शामिल किया गया है। जिसके कारण इन कहानियों का कालक्रम बिखरता नहीं है व पाठक को कालक्रमानुसार कहानियां शामिल होने से प्रेमचंद के विचार पढ़ने में आसानी होती है। यह इस पुस्तक का प्रमुख आकर्षण कहा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचंद की 40 दलित कहानियों के अलावा पुस्तक के संपादक डॉ. गोयनका जी की लगभग 35 पृष्ठों की लम्बी भूमिका दी गई है जो पुस्तक के संबंध में एवं प्रेमचंद की कहानियों के संबंध में कई दलित संबंधी विचार दृष्टिगत होते हैं। इस संबंध में पुस्तक की भूमिका से एक उदाहरण देना समीचीन होगा, यहां डॉ. गोयनका दलित संबंधी अवधारणा पर कहते हैं कि "गांधी ने 'हरिजन' नाम से अखबार शुरू किया था, लेकिन अब जाति विशेष के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग वर्जित है, लेकिन आज हम गांधी को इसके लिए अपराधी नहीं बना सकते। गांधी के समय मे 'हरिजन' शब्द आदरसूचक था, अर्थात् हरि का जन, ईश्वर का जन। आज 'दलित' शब्द पर कोई आपत्ति नहीं है, किंतु यह संभव है कि कल इसे आपत्तिजनक मान लिया जाए।'' (वही, पृष्ठ : 17) इसी तरह पुस्तक की भूमिका में डॉ. गोयनका ने विवेकानन्द, गांधी, प्रेमचंद आदि के दृष्टिकोणों को लेकर दलित-विमर्श की अवधारणा को बखूबी परिभाषित किया है।

प्रेमचंद के दलित संबंधी विचारों को परिभाषित करते हुये डॉ. गोयनका कहते है कि "प्रेमचंद का दलित-विमर्श व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। इसमें केवल अस्पृश्य जातियों का ही दर्द नहीं है, बल्कि वे सब निम्न जातियां है जो दलित समाज का अंग है। इस संबंध में स्वामी विवेकानंद की जो दृष्टि थी, वही प्रेमचंद की हैं। प्रेमचंद के दलित-विमर्श में चमार, भंगी, बंजारे, अनाथ, दाई, माली, गोंडिन, भुनगी, कहारिन, धोबी, मदारी-मदारिन, घसियारा, शूद्र, हरकारा, भगत, कंजड, गरीब, गुंडा, घसियारिन, नौकर आदि अनेक निम्न जातियों का समाज है और उनके पात्र एवं उनके घर परिवार तथा जीवन की कहानियां हैं। यह बड़ा व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण संसार है। इसमें तिरस्कृत, पीड़ित, शोषित, दमित सभी दलित जातियां है, वे चाहे अस्पृश्य है या अपृश्य, पर वे सभी दलित हैं।''

पुस्तक के संपादक ने पुस्तक में शामिल संपूर्ण दलित कहानियों का विश्लेषण अपने दृष्टिकोण से करने का प्रयास किया है जिनसे कई महत्त्वपूर्ण विचार सामने आते है। यहां स्थानाभाव के कारण संपूर्ण कहानियों के विश्लेषण की जानकारी देना संभव नहीं है, केवल प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' (दिसंबर, 1935) के संबंध मे चर्चा करना जरूरी है। इस कहानी के संबंध में डॉ. गोयनका कहते हैं कि "कफन कहानी की अनेक दृष्टि से व्याख्या हुई है, किंतु मेरी दृष्टि में यह मृत्यु पर जीवन की विजय की कहानी है। घीसू और माधव कफन के पैसों से अपने जीवन की सबसे बडी लालसा पूरी करते है। वे मयखाने में बैठकर शराब पीते है, खूब खाते है और आनंद की अनुभूति में आत्म-विस्मृत होकर नाचने-गाने लगते है और गिर पड़ते हैं। कहानी में उसकी घटनावली में कथा इसी रूप में विकसित होती है। अतः कफन को दलित-विरोधी कहानी कहाने का कोई औचित्य नहीं है, जबकि कहानी में मौत और कफन के परिवेश में उसके पात्र, चाहे कुछ क्षणों के लिए ही सही, अपनी चिर लालसा को तृप्त करते है और आनंद-विभोर होकर नाचने लगते हैं।'' (वही, पृष्ठ : 37)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जो पाठक प्रेमचंद की दलित कहानी में रुचि रखता हो उसके लिये यह पुस्तक किसी वरदान से कम नहीं है क्योंकि इस बार एक पुस्तक में संपूर्ण 40 दलित कहानियों को संकलित कर एक धरोहर का कार्य डॉ. गोयनका के द्वारा संपादित किया गया है। 480 पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य भी पाठक अनुरूप रखा गया है जो इसके प्रकाशन सस्ता साहित्य मण्डल के नाम अनुरूप ही है। पुस्तक की साज सज्जा व गेट-अप अति उत्तम है। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर छपा प्रेमचंद जी का फोटो इस पुस्तक को और भी आकर्षक बनता है। छपाई उम्दा व पैपर क्वालिटी भी बहुत बेहतरीन है। मुद्रण की अशुद्धियां न के बराबर है इस कारण पाठक को पुस्तक पढ़ने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है। ऐसी बेहतरीन पुस्तक का सभी जगह स्वागत होना चाहिये तथा प्रेमचंद साहित्य में जिज्ञासा रखने वाले समस्त पाठकों को एक बार यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

पुस्तक का नाम : प्रेमचंद : संपूर्ण दलित कहानियां
संपादक : डॉ. कमल किशोर गोयनका
प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, एन-77, प्रथम तल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001
मूल्य : 250/- रुपये
(पैपर बैक संस्करण) प्रथम संस्करण-2014,
पृष्ठ : 480

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट बायपास रोड, गांधी नगर,
भोपाल-462033 (म.प्र.), मो0 09826583363

समीक्षा

बीते लम्हों का यथार्थ
कविता संग्रह 'लम्हा लम्हा'

• डॉ. उषा बंदे

डॉ. अंजली दीवान का कविता संग्रह 'लम्हा लम्हा' समीक्षा के लिए उठाया तो सहज ही अनुभूति हुई कि कैसे लम्हा लम्हा करके जिंदगी गुज़र जाती है और बाकी रह जाते हैं कुछ लम्हे और यादों के उलझे-उलझे धागे जिन्हें सुलझाने में और समझने में बचे-खुचे लम्हे भी बीतने लगते हैं। यही शायद जीवन यथार्थ है जो कवयित्री पकड़ना चाहती है। जब पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर वह मनोगत व्यक्त करती है, "लम्हा लम्हा बस/ बीतता चला गया।" ऐसे ही बीते क्षणों की कविताएं हैं अंजली दीवान की। दुनिया की चाल-ढाल, इंतज़ार की घड़ियां, शून्य का अर्थ टटोलने का प्रयास, 'स्व' की खोज, जीवन के बिखराव को समेटने का संघर्ष और अंततः आध्यात्मिक शांति की ओर बढ़ते कदम। संक्षेप में, इसी क्षण को यथार्थ में ढालने के संघर्ष की हैं यह रचनाएं।

कविता संग्रह :	लम्हा लम्हा
लेखिका :	अंजली दीवान
प्रकाशकः	महाजन पब्लिशर्ज, शिमला
पृष्ठ :	90
मूल्य :	200 रुपये

यथार्थ को टटोलकर उसे मात्र अनुभव करना सरल हो सकता है परंतु उसे पकड़ पाना इतना आसान नहीं होता। यथार्थ-मूलक काव्य-अभिव्यक्ति में गहराई तभी आती है जब कवि सतह से नीचे उतरकर जीवन की पीड़ा, उसका सुख, सामाजिक विडम्बना को समाज, समय, राजनीति, जीवन-दर्शन, इन सबकी सही नब्ज पकड़नी पड़ती है। क्योंकि कविता सिर्फ यथार्थ का चित्रण मात्र नहीं होती, यह एक खोज होती है। ऐसी ही एक खोज है कविता 'क्यों' में। कवयित्री के मन में कई प्रश्न हैं, पर उत्तर नहीं मिल रहा है :

"अगर उत्तर मिल जाए/ इस क्यों का
तो बन न जाए/ दुनिया स्वर्ग की भांति
निरुत्तर होकर/ उत्तर ढूंढते क्यों हो? (पृ. 23)

अंजली दीवान की इन सभी कविताओं में तीन धाराएं विशेष रूप से सामने उभरकर आती हैं जिज्ञासा, जीवन की उलझनों के कारण निराशा और अनायास ही जीवन के प्रति आस्था जो सुंदर जीवन जीने के सपने जगाती है। जैसे 'ज्ञान की गंगा' में कवयित्री हताश है कि कहीं ज्ञान की नदी उसके सामने से गुज़र न जाए। वह उसमें समा जाना चाहती है ताकि उसका अस्तित्व ज्ञान-गंगा में समा जाए और वह स्वयं नए अस्तित्व के साथ उभर आए। यह कविता बड़े सकारात्मक ढंग से भविष्य की ओर देखती है

कोंपलें धीरे-धीरे/ लगे फूटने
रंग-बिरंगे फलों से/ हो जाएं सराबोर
रेतीली, पथरीली बगिया/ दूर क्षितिज के झरोखे
से दिखाई दे/ नीला, हंसता आसमां (पृ. 13)

इसी तरह का आशावाद है संग्रह की अंतिम कृति 'नया क्षितिज' में। अकेलेपन के सूनेपन के बावजूद भी कवि के 'परसोना' (Persona) में नए क्षितिज तक पहुंचने की धमक है। यहां ध्येय आत्मिक एवं आध्यात्मिक है। राह भले ही दुनियावी है पर अंतिम दृष्टि टिकी है अपने साथी में एकात्मकता पर, वह साथी जो "ऊंची पहाड़ी चोटी पर/ इन्द्रधनुष से घिरा" (पृ. 89) उसके इन्तज़ार में बैठा है।

'नया सवेरा' रचना में भी आशा झलकती है। कविता बहुत सुंदर ढंग से शुरू होती है "क्या यह जरूरी है/ कि हर बात या तो/ सही हो या गलत।" जिन्दगी में कई विभिन्न क्षण आते हैं काले सफेद, रंग-बिरंगे या धूमिल। फूलों में रंग है, खुशबू है और कांटे भी। जीवन में अंधेरा है तो उजाला भी तो है। एक क्षण ऐसा आता है कि "सूरज की लालिमा/ रात के अंधेरे को/ ढंक लेगी।/ नज़र आएगा चारों ओर/ एक उजाला, चमकीला-सा।" (पृ. 51)

यह कहना गलत होगा कि संग्रह की हर रचना नए सेवरे का सपना है। नहीं, अधिकांश रचनाओं में बिखराव के प्रति आक्रोश है, खो जाने का आभास है, अकेलेपन की कचोट है। ऐसे शून्य जीवन को समझने के लिए, उसके थपेड़ों को सहन करने के लिए जो साहस चाहिए वह भी नहीं है। खालीपन का अहसास बखूबी पेश किया है 'नज़दीकियां' में

"सोचा था ज़िन्दगी में/ बस जाएंगी अनगिनत खुशियां..."

पर अब... ज़िन्दगी में "इक खामोशी है। जो कुछ न कहते हुए/ बहुत कुछ कह रही है" (पृ. 39)

सूनेपन और खालीपन का एक सशक्त 'मोटिफ' है

(motif) घर   एक घर जो सजा-संवरा होते हुए भी सन्नाटा लिए है, और दूसरा घर जिसमें लगे जाले, धूल, अव्यवस्था अपनी अलग ही व्यथा बयान करते हैं। 'इक रिश्ता' (पृ. 55) में ऐसा घर है जिसकी टूटी खिड़की, धूल सनी मेज़, गिरती सफेदी और 'पुराने कैलेंडर से झांकती तारीखें' एक भूतहा सूनापन दर्शाते हैं जबकि 'रिश्ते-जो नहीं है' (पृ. 40-41) का वह सुंदर सजा घर अहसास दिलाता है

"कि यहां कोई नहीं रहता/ शायद कोई आता जाता भी नहीं" (पृ. 40)

कहना न होगा कि दोनों रचनाओं में नारी की घर-गृहस्थी सजाने की चाह साफ झलकती है। खालीपन की व्यथा है 'आधी भरी बोतल' शीर्षक कविता में। जैसे पानी की खाली बोतल को हम अलग-थलग रख देते हैं उसी प्रकार जब औरत यौवन खो देती है तो पुरुष भी उसे झिड़कार देता है। 'गुड़िया' में चुप रहने वाली हर उस स्त्री का प्रतिबिम्ब है जो मान-अपमान, चुपचाप निगल जाती है। "वे मेरी चुप्पी को/ समझते हैं कायरता" (पृ. 79)। कुल मिलाकर यहां नारी के विभिन्न पहलू दिखते हैं   मां बनने की चाह में एकाकी नारी, रिश्तों में गरिमा ढूंढती नारी, प्रश्न पूछती नारी और अपने पांव पर खड़े होने की कोशिश में जूझती नारी! और एक ऐसा चित्र भी है 'सशक्त' महिला का जो पुरुष के पीछे-पीछे नहीं चलना चाहती। (अस्तित्व की पहचान, पृ. 11-12)

कविताओं में पर्यावरण के प्रति चिन्ता, आज के जीवन के प्रति रोष, और नए युग का सूत्रपात करने का तर्क दिखाई देता है। सशक्त प्रतीक, अर्थपूर्ण उपमाएं एवं रूपक (similie and metaphor) कविताओं को भावपूर्ण बनाते हैं। कुछ रचनाएं विशेष सुंदर बन पड़ी हैं जैसे   'प्रकृति के अंग' (पृ. 89), 'गुड़िया' (79), 'क्यों' (पृ. 22-23)। 'दूसरों की खींची लकीरें' (पृ. 6-7)। छपाई अच्छी है, कवर आकर्षक है पर छपाई की गलतियां अखरती हैं जैसे अंतरात्मा/ अन्र्तात्मा, खौफ/खोफ (पृ. 48), गूंजती/गूंजली (पृ. 78) आदि।

खैर, कुल मिलाकर डॉ. अंजली दीवान का प्रयास सराहनीय है। सेंट बीड्स कॉलेज में कार्यरत (एसोसिएशट प्रोफेसर के पद पर) डॉ. दीवान लेखन के क्षेत्र में कई सम्मान पा चुकी हैं। यह एक और नया ताज है उनके सिर पर।

वैक्सलो, लोअर कैथू, शिमला-171 003

डॉ. योगेन्द्र बहल की कविताएं

पत्थर

आंखों को तो पौंछ भी लेंगे
दिल को कौन संभाले
जाने कैसे जीते हैं,
सीने पर पत्थर वाले।

ग़म का सागर इतना गहरा
किसको था एहसास यहां
किनारों पर चलते-चलते
कब डूबे आभास कहां।

सागर भी था कल अपना-सा
अपने से सभी किनारे थे
यह आसमान भी अपना था
अपने ही चांद सितारे थे।

अब गहराइयों के अंधेरों में
मुश्किल लगता जीना है
न सीने पर पत्थर मेरे
न पत्थर का सीना है।

बूंद

ढूंढे उम्र गुजारी सारी
इक बूंद प्यार की मिल जाए
न जाने कितनी बाट निहारी
मरुद्वीप यह खिल जाए।

आंधी झेली, पतझड़ झेला
झेली आग बरसती भी
कुछ न पाया रही सदा यह
प्यासी आस तरसती ही।

जिसको जितना चाहा हमने
उतना ही तिरस्कार मिला
एक बार की बात नहीं
न जाने कितनी बार मिला।



कैसी किस्मत लेकर आया
खुद पर हूं हैरान यहां
इक बूंद प्यार की चाहत में
क्यूं जीवन हुआ वीरान यहां।

उम्मीद

यहां कौन-सी दुनिया है मेरी
नहीं कोई ठिकाना लगता है
यहां किसको अपना समझें हम
हर शख़्स बेगाना लगता है।

रिश्तों का जिक्र करें गर तो
वो बेगानों से आगे है।
और गैरों से उम्मीद ही क्या
जो पहले नहीं अपने लागे हैं।

कई बार है खोला इस दिल को
कई बार ही हाथ बढ़ाए हैं
हर बार ही दिल फिर टूटा है
हर बार ही धोखे खाए हैं।

क्यूं अपनों की ही चाहत यह
कभी हमको रास न आई है
जिस पत्थर को पूजा हमने
उससे ही ठोकर खाई है।

स्कूल रोड, मनाली, जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश, मो. 98160 55005

हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 अक्तूबर 2014 अंक : 7

प्रधान सम्पादक
राकेश शर्मा

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

आवरण एवं रेखांकन
सर्वजीत सिंह

कम्पोजिंग एवं प ष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्कः 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

'विश्व के सभी धर्म, भले ही कई चीजों में अंतर रखते हों, लेकिन इस बात पर सभी एकमत हैं कि दुनिया में हमेशा सत्य ही जिंदा रहता है।'
– महात्मा गांधी

इस अंक में

अपनी बात

चौबीस सितम्बर, 2014, सुबह 7 बजकर 17 मिनट पर 'मार्स ऑर्बिटर' यानी मंगलयान को मंगल ग्रह की कक्षा में स्थापित कर भारत ने स्वर्णिम इतिहास रचा है। भारत ने अपने पहले ही प्रयास में कामयाबी का ध्वज फहरा कर हर देशवासी का सर गर्व से ऊंचा कर दिया। इन ऐतिहासिक व अविस्मरणीय क्षणों का प्रत्येक भारतीय साक्षी बना और इस उपलब्धि पर विश्वभर में भारत को ख्याति मिली। अपने राष्ट्र की इतनी बड़ी उपलब्धि पर मेरे जहन में विद्यार्थी काल में प्रातःकालीन सभा के शिक्षकों के वे शब्द ताजा हो उठे, कि भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था और इसे 'विश्व गुरु' का दर्जा प्राप्त था। शायद उस समय छोटी उम्र में इतने बड़े-बड़े सम्बोधनों का सही अर्थ मालूम नहीं था, लेकिन चौबीस सितम्बर के इन ऐतिहासिक लम्हों का गवाह बनते समय ये शब्द बाखूबी समझ आ रहे थे। गर्व महसूस हुआ कि हमारा महान देश 'विश्व गुरु' बनने की राह पर पुनः चल पड़ा है। भारत का विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही बहुमूल्य योगदान रहा है। दुनिया के अन्य भागों में घुमक्कड़ जातियां जिस समय अभी बस्तियां बनाना ही सीख रही थीं, तब भारतवर्ष में सिंधु घाटी के लोग सुनियोजित ढंग से नगर बसा कर आधुनिक भवनों में रहने लग गए थे। प्राचीन एवं मध्ययुगीन काल में गणित, ज्योतिष, रसायन, खगोल, चिकित्सा और धातु विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भारतीय वैज्ञानिकों ने पूरे विश्व में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। दुनिया को 'शून्य' भारत की देन है, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी-बड़ी गणनाओं से अंतरिक्ष में नई-नई खोजों के मार्ग प्रशस्त हुए। इस दौरान आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, बोधयन, चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, कणाद से लेकर सवाई जयसिंह तक वैज्ञानिकों की एक लम्बी परम्परा विकसित और पल्लवित हुई। यदि हम आधुनिक भारत की बात करें, तो हमारे वैज्ञानिकों ने असंख्य उपलब्धियां अर्जित कर दुनिया में देश का नाम रोशन किया है। जगदीश चन्द्र बोस, सी.वी. रमन, होमी जहांगीर भाभा, शांतिस्वरूप भटनागर, एस.एन. साहा, प्रफुल्लचन्द्र राय और हरगोबिन्द खुराना जैसे अनेकों वैज्ञानिकों से भला आज कौन परिचित नहीं है। वर्ष 2008 में चन्द्रमा पर सफलतापूर्वक भेजे गए चन्द्रयान से प्राप्त आंकड़ों ने चन्द्रमा की सतह पर कभी पानी होने का रहस्योद्घाटन भी हमारे वैज्ञानिकों की ही उपलब्धि है। वर्तमान समय के परिदृश्य पर गहन दृष्टिपात से स्पष्ट होता है कि आधुनिक विज्ञान की सबसे बड़ी सफलता, यांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी का विकास रही है। इसके विकास से विज्ञान में नए अनुसंधानों के द्वार खुले हैं- जैसे कम्प्यूटर के विकास से रसायन, भौतिकी, जीव विज्ञान सहित सभी क्षेत्रों में नए-नए प्रयोगों में काफी आसानी हुई है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में विज्ञान का स्वरूप काफी विकसित हो चुका है, और विकास की इसी रफ्तार को कायम रखने के लिए आवश्यक है कि हमें युवा पीढ़ी के लिए ऐसा माहौल उपलब्ध करवाना होगा जिसमें किशोरों और युवाओं में विज्ञान के प्रति अपेक्षित रुझान पैदा हो सके। यदि हम अपने राज्य हिमाचल प्रदेश की बात करें तो, यहां वर्तमान प्रदेश सरकार स्कूलों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दे रही है। मेधावी छात्रों को नेटबुक प्रदान की जा रही है तथा सरकारी स्कूलों में कम्प्यूट्रीकृत शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है। हिमाचल के लिए यह गर्व की बात है कि मंगलयान को सफल बनाने में धर्मशाला के युवा वैज्ञानिक रजत अवस्थी ने भी योगदान दिया। वे युवाओं के लिए प्रेरणा बने हैं। स्कूलों में विज्ञान की नियमित पढ़ाई के साथ-साथ विज्ञान मेलों का भी आयोजन किया जा रहा है। विद्यार्थियों को विज्ञान एवं सम्बद्ध विषयों को कारगर तरीके से समझाने के लिए शिमला में शोघी के निकट आनन्दपुर में 11 करोड़ रुपये की लागत से विज्ञान अध्ययन केन्द्र 'तारामण्डल' की स्थापना की जा रही है जिसमें विज्ञान संग्रहालय, जैव विविधता पार्क, आधुनिक प्रयोगशालाओं सहित राज्य की समृद्ध संस्कृति और परम्पराओं की जानकारी भी उपलब्ध होगी। देश में हर स्तर पर संजीदा प्रयासों से ही वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही निरंतर प्रगति से जाहिर होता है कि हमारा देश न केवल आर्थिक तौर पर सशक्त एवं मजबूत होकर उभरा है, बल्कि यह अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः हासिल कर शीघ्र ही समूचे विश्व की अगुवाई करने में सक्षम होगा।

–सम्पादक

आलेख

पहाड़ी कविता लेखन व विकास में हिमाचल की महिलाएं

● डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

हिमाचली पहाड़ी भाषा में साहित्य की शुरुआत कविता से होती है। लोकगीत किसी भी भाषा की कविता के प्रमुख आधार होते हैं। हिमाचली भाषा के बीज-स्रोत त्यों तो विद्वानों ने 11वीं तथा बारहवीं शताब्दी में खोज निकाले हैं। गुलेर रियासत की रानी श्रीमती विक्रम को पहली हिमाचली कवयित्री माना जा सकता है। अंतिम गुलेर नरेश बलदेव सिंह की हस्तलिपि में उक्त रानी की दो गीतियां सर्वप्रथम उपलब्ध होती हैं। गुलेर नरेश ने राजा विक्रम का शासन काल सन् 1662-75 ई. दिया है और इन गीतियों को श्रीमती रानी विक्रम नरेश की लिखी बताया है। अतः उपर्युक्त आधार पर श्रीमती रानी विक्रम का जन्म 1600 ई के पूर्व माना जा सकता है और निधन 1675 ई. के बाद।

पहली गीति में श्रीमती रानी विक्रम के कल्याण देवी के जन्में पुत्र की वीरता, सुन्दरता, दानशीलता का सरल और चित्ताकर्षक शब्दों में गुणगान किया है। उस समय की भाषा का रूप इस गीति में देखें :

जुग-जुग राज करे ज्यों चंदा!!
मान करैंदा राज-खिनू खलैंदा मान करैंदा राणिये
कल्याण देई दा जाया - जो चंद दिह्या तिज्जो वर जी मिल्लेया
तेज बड़ा तलवारी !!!
भले-भले तरकस भालेयां-तलवारी राणे मंझ सुणाया
तेरी पाखर भारी पाखर भारी - सिफत तुम्हारी
जो चंद दिह्या तिज्जो वर जी मिल्लेया - तेज बड़ा तलवारी।

(प्रत्यूष गुलेरी, प्रतिनिधि हिमाचली काव्य संकलन पृ. 26)

इस गीति में कुल 7 मुखड़े हैं। दूसरी गीति रानी दुर्गा देवी की प्रशंसा में लिखी गई है। इस गीति के कुल चार मुखड़े हैं। इस गीति में गंगा स्नान माहात्म्य, रानी दुर्गा देवी का गोविंद के साथ मन लगाने का वर्णन, तालाब, रास्तों का प्रजाहित पुण्य कार्यों का उल्लेख, पेड़-पौधों व उनकी शीतल घनी छाया और दीनहीनों को मनचाहा भोजन देने का मन-भावन चित्रण है। गीति का नाम है 'मेरे मनैं हरी दा नाम पिआरा।' गीति इस तरह से है

मेरे मनैं हरी दा नाम पिआरा
पूरब जाइये न्हौइये श्री गंगा किनारे राम।
पूरब जाइये गंगा न्हौइये-गंगा जमुना सरसुती
अठसठ तीरथ तुध नहौते जो नेम धरम दी प्राप्ती
धन धन राणिये दुर्गा देइये - तैं गोविंद सो चित्त लायेआ।।1।।
खरचे सहस करोड़ी सौ ताल दुबाया
सहस करोड़ी सौ ताल दुबाया
जो अच्छे बन्हें अटयालड़े
धन धन राणिये दुर्गा देइये
तैं गोविंद सो चित्त लायेआ।।2।।

(प्रत्यूष गुलेरी, प्रतिनिधि हिमाचली काव्य संकलन पृ. 28)

इसके बाद आजादी से पूर्व किसी भी महिला कवयित्री द्वारा रचित गीतियां, गीत अथवा कविताएं नहीं मिलती। आजादी के बाद अंगुलियों पर गिने चुने दो चार नाम ही हमारे सामने आते हैं। लोक गायिकाओं में गंभरी देवी, विमला राणा, जोगिन्द्रा शर्मा, कृष्णा शर्मा, विमला कुमारी, शांति विष्ट आदि ने लोक गायिकाओं के रूप में अपनी पहचान बनाई है। गंभरी देवी ने अधिकतर अपने लिखे गीतों को स्वर दिया है

"खाणा पीणा नंद लैणी ओ गंभरीये
खाणा पीणा नंद लौणी ओ।" गीत हर किसी के मुंह पर आज भी चढ़ा हुआ है। 1966 के बाद हमारे सामने कुछ कवयित्रियां अवश्यमेव सामने आती हैं जिनमें सुदर्शन डोगरा, कमला वर्मा कमल, स्वर्ण कान्ता शर्मा, रक्षा शर्मा, कुमारी अंबिका, आशा शैली हिमाचली, सुभाशना भारती, चंद्ररेखा डढवाल, ईशिता आर गिरीश, डॉ कान्ता शर्मा, हरि प्रिया, रश्मि मधुप, अर्पणा धीमान, डॉ अमिता शर्मा, रूपेश्वरी शर्मा, निर्मला चंदेल, सरोज अलाव, अदिति गुलेरी, संचिता, शैली किरण व प्रिया शर्मा, सोनिया पखरोलवी का जिक्र किया जा सकता है।

इनमें 1966 के बाद कुछ कवयित्रियों की कविताएँ हिम

सावन वर्णन कई कवयित्रियों ने किया है जिनमें कान्ता शर्मा, कमला वर्मा कमल, सुदर्शन डोगरा और शैली किरण शामिल है। इनमें कान्ता शर्मा और शैली किरण के चित्रण में नयापन, मौलिकता, बिंब विधान की सहजता प्रमुख है।

भारती, हिमधारा, पत्रिकाओं में छपी हैं तो कुछ की कविताएँ डॉ गौतम व्यथित द्वारा संपादित कविता संग्रह मिंजरां में। इनमें बहुत से नाम डॉ अमिता शर्मा, सरोज अलाव, कुमारी अंबिका, रक्षा शर्मा, रश्मि मधुप जैसी संभावना सम्पन्न कवयित्रियों के थे जो कुछ समय के बाद गुमनामी में खो गई हैं। हाँ, कमला वर्मा कमल, स्वर्ण कान्ता शर्मा, सुदर्शन डोगरा, हरिप्रिया, रूपेश्वरी शर्मा, अर्पणा धीमान, कान्ता शर्मा, शैली किरण, चन्द्ररेखा डढवाल, ईशिता आर गिरीश, आशा शैली हिमाचली व अदिति गुलेरी की कविताएँ भाषा अकादमी शिमला द्वारा संपादित व साहित्य अकादमी से प्रकाशित पुस्तक हिमाचली प्रतिनिधि काव्य संकलन, डॉ. प्रेम भारद्वाज द्वारा संपादित व नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया से प्रकाशित पुस्तक 'सीरां' में संकलित हैं। स्वतंत्र रूप से कविता की पुस्तक 2008 में प्रकाशित डॉ. प्रिया शर्मा की 'मास्टर ते जगतो' है।

सुविधानुसार अगर यह कहा जाए कि स्वतंत्रता से पूर्व व विशाल हिमाचल के गठन यानि प्रथम नवम्बर, 1966 तक सिवाय रानी श्रीमती विक्रम तक कोई भी महिला साहित्यकार हिमाचली में लिखती नहीं मिलती हैं। हां, शामनगर धर्मशाला से व प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ शमी शर्मा की बहन श्रीमती शारदा की हिमाचली पहाड़ी में भजनावली 'पखड़ू' मिलती है जिसमें उन्होंने कुछ भजन प्रकाशित किए हैं। भजनों की मौखिक परम्परा में गुलेर की दो बहनों लीलावती और कमला देवी के भजन हमने हिमाचली पहाड़ी में उनके ही रचे बचपन में जरूर सुने पर उन्हें अज्ञानवश लिपिबद्ध नहीं कर पाए।

हिमाचली पहाड़ी कविता के इस महिला - लेखन में श्रीमती कमला वर्मा कमल, सुदर्शन डोगरा, हरिप्रिया, रूपेश्वरी शर्मा, अर्पणा धीमान, डॉ. कान्ता शर्मा, प्रो रेखा डढवाल, आशा शैली हिमाचली, डॉ. अदिति गुलेरी, ईशिता आर. गिरीश, संचिता, शैली किरण, डॉ. प्रिया शर्मा व सोनिया पखरोलवी ही सन् 1966 से अब तक सक्रिय रही हैं।

श्रीमती कमला वर्मा कमल ने हिमाचली गद्दण के रूप सौंदर्य, हिमाचल के पुराने इतिहास का गौरव गान व बारहमासों के सुन्दर वर्णनों को अधिकतर अपनी कविताओं का प्रमुख विषय बनाया है। कहीं-कहीं विदेश गए प्रियतम की पीड़ा उनके गीतों में उजागर हुई है। गीत का एक मुखड़ा देखें :

कमल जे पियोकिए दिंदे पढ़ाई
ओ दिंदे पढ़ाई
लिखि लिखि दुःखा जाःनी चिट्ठी दिंदी पाई
जल़ी जल़ी जल़वा जो किन्ना की रोणा
ओ काह्लू घरें औणा। (काव्य धारा, पृ. 21)

हिमाचल के बांकपने का मनोहारी चित्रण इस काव्यांश में है :

ऋषियां री धरती, देवी देवतेयां रा बासा
सैलानी दिक्खण, हर इक पासा
मस्ती भरोया नचणा-गाणा
बांका खाणा-पीणा गाणा
लग्गे सुरगे रा कमल एह् झुटारा
मेरा हिमाचल ऐ बड़ा ई प्यारा।। (काव्य धारा पृ. 22)

कविता की नई शैली-वर्णन को श्रीमती सुदर्शन डोगरा ने अच्छा पकड़ा है। कविता में भी सुदर्शन ने नए विषय ग्रहण किए हैं। जिनमें एक्सटेन्शन और 'रूले दी पुकार' कविता इसके उदाहरण हैं। नौकरी के बाद अफसरों के घरों में नौकर चाकर नदारद हो जाते हैं। अकेलेपन की पीड़ा एक कविता में इस कद्र से अभिव्यक्त है

अगले म्हीने चढ़दे ही
किआं पासे पलटोंणे
एह् कार बंगला कनैं नौकर चाकर
सब पराए होणे
तू बी तां बह्डे साहबे दी
मैडम नीं रहणी।
न बर्थडे एनिवरसरी मनोणी
दियाल़िया दसहरौं नीं कोई
चीज गिफट औणी।

(प्रत्यूष गुलेरी - प्रतिनिधि हिमाचली काव्य संकलन पृ. 174)

रूपेश्वरी शर्मा की कुछ कविताएँ प्रेम भारद्वाज द्वारा संपादित पुस्तक 'सीरां' में महिला सशक्तीकरण, पहाड़ के दुःख दर्द को लेकर हैं। महिला को अपना मायका कितना प्रिय रहता है उसका चित्रण एक क्षणिका में हुआ है। अस्सी साल की हो जाने पर भी उसे मायके की याद भूलती कहां है। लच्छी बुआ का चित्रण करती कवयित्री लिखती है

अस्सी साला री लच्छी बूआ
खोल्ली बैठी रा पटारा प्योकेयां दी यादां रा
धुंधली आखियां

चमकी चमकी जाईं
गदयूऴी साईं।
जेवे ग्लाई
भाई भतीजूआं री गल्लां
जेवे की गई री नी
बीह् सालां ते
प्योकेयां री देऴी-परौऴी।

सावन वर्णन कई कवयित्रियों ने किया है जिनमें कान्ता शर्मा, कमला वर्मा कमल, सुदर्शन डोगरा और शैली किरण शामिल है। इनमें कान्ता शर्मा और शैली किरण के चित्रण में नयापन, मौलिकता, बिंब विधान की सहजता प्रमुख है। डॉ. कान्ता शर्मा सावन वर्णन करते हुए लिखती हैं

सौण आया बद्दऴ छाए
पींगा पाइयां गाणे गाए
ब्याह लग्गे डयूंड लाई
शिवजी पूज्या बाठियां पाई
जन्माष्टमी मनाई।
सौण आया बद्दऴ छाए
खीर बणाई पतरोड़ू बणाए
कयौरी बणाई भूजी भात बणाया
झीऴ रेह्ड़ू बणया अम्ब चूसे
मज्जा आया।

बर्फ पड़ने के चित्रण को भी कान्ता शर्मा ने बड़े सहज ढंग से उकेरा है हिमाचली कविता में :

हियूं पया पहाड़ ढक्खे
हाडके ठंड घाह मुक्केया
डांगरे बासे द्वार दित्ते
बालक हुड़े काम मुक्या
सड़का हांडदे फिसली गेए
जोरा के पेए हाडकू भज्जे
चिंगदे लग्गे। (प्रेम भारद्वाज, सीरां पृ0 58, 59)

सावन के चित्रण में शैली किरण ने भाषा और शिल्प के बड़े सादे तरीके का सहारा लेकर अलग ही भाव सौंदर्य का वर्णन किया है। उदाहरणतः

आई गेया सौण चली पेई पौण
नच्ची पेइयां खड्डां कुःढी पए नौःण
सैले होए पत्तर कणकां कनै छल्लियां
चुक्की लेई धौण।

इसी तरह शैली किरण ने नाशवान शरीर के चित्रण में भी शिल्प की उपर्युक्त सरलता से मृत्युबोध की सत्यता से रू-ब-रू कराया है। वे लिखती हैं

मरी मुक्की जाणा जानी कह्जो करना गरूर
रेही जाणे महल माढ़ियां एत्थी रेही जाणी कमाइयां
लकड़ुआ पर उतरी जाणे सारे फतूर
बुरी होंदी सरीकां दी नजर बुरी होंदी बड़ी झूठी खबर
सबना ते बुरी बो आखीं दी घूर।

आशा शैली ने 'पंखेरू पीड़ा रा' और 'मैं तां बाहे थे' कविता में हिमाचली पहाड़ी बिम्बों और सुन्दर प्रतीकों से अपने कथ्य को वाणी दी है

मैं तां बाहे थे गुलमोर, पिप्पऴ कनें बरास चंदण
तू खबरे कुस घड़िए मेरे मने री धरती सिंजी
खबरै कीह्यां करी जमी पेया
बबूले रा जंगल।

जीवन के उजाड़ और खालीपन का चित्रण अन्यत्र कविता में शैली किरण ने इस तरह से किया है

कजोमेया भोऴेया पखेरुआ
तू आई कन्नै
बेही गेया कंडे मेरे खेतरां रे
एत्थू तिह्जो नाजा रा तां
दाणा वी नीं लभणा।

(प्रतिनिधि हिमाचली काव्य संकलन, पृ. 226)

हिमाचली में कुछ अरसे से ही लिखने वाली हिंदी कवयित्री रेखा डढवाल ने कविता में गजब से अपने भावों को तीखी अभिव्यक्ति दी है। कुछ गजलें भी बहुत अच्छी लिखी हैं रेखा डढवाल ने। एक दो उदाहरण आपके सामने रख रहा हूं :

धृतराष्ट्र हन सबनीं दे अंदर
अपने सक्केयां दे सुखां उप्पर
कुंडली मारेयो सर्पे लेखां
भीष्म बाहर खुल्लमखुल्ला
सब जाणदे
कुछ वी नीं जाणने दा
ढोंग करदे।

'भीड़' की सच्चाई को तीन पंक्तियों में रेखा डढवाल ने इस तरह से वाणी दी है

भीड़ छुआऴदी पत्थर
कनैं खूनो खून वी
भीड़ ई होंदी।

कुल्लू से ईशिता आर. गिरीश ने भी अच्छी हिमाचली पहाड़ी कविताएं लिखी हैं और ये कविताएँ साहित्य अकादमी द्वारा संपादित हिमाचली प्रतिनिधि संकलन तथा नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया से छपी पुस्तकें सीरां में संकलित हैं। इनकी कविता में पहाड़ की बेटी का दुःख जिसका पति शराबी है और वह दिन रात पट्टू बुनती हुई उदास रहती है, एकदम से सजीव हो उठा है। काव्य पंक्तियों का रसास्वादन करें

सड़के रे किनारे खेलदा
तेसरा घौरा आला ताश
कोटै रे खिस्से न
कौड़ा सा शराबे री बोतल
पीणे रे परंत, जेबै केरी बैठा सा गाली माली
तैबे घौरा हांदे, उन्ना कोतदी
पौट्टू बुणिदी बैठी राती तीक उदास।

(प्रेम भारद्वाज, सीरां, पृ. 32)

2008 में दिल्ली से डॉ प्रिया शर्मा की पुस्तक 'मास्टर ते जगतो' कुल 63 कविताएं हैं। हिमाचली पहाड़ी में छपने वाली किसी कवयित्री की पहली कविता पुस्तक है। यह मूलतः सुजानपुर पठानकोट से हैं। इनका बचपन चम्बा के ननिहाल में बीता है। हिमाचली पहाड़ी के प्रति प्रेम इनकी रग-रग में है। इनकी कविताओं में सब रस मौजूद हैं। 'चम्बे री चम्यालण', 'प्रोफेसर ते धर्मराज' 'फरमान' मन को मुग्ध-मोहित करती कविताएं हैं। महानगर की पीड़ा, अय्याशी एवं शोषण आदि विषयों पर कवयित्री की पैनी दृष्टि है। सर्वत्र पहाड़ी मुहावरों का सुंदर प्रयोग कविता के कथ्य को प्रभावित करता है। संझ कविता का शब्द चित्र देखें :

डंगर आए घरा जो अपणे, संझ हुई
निहारा लग्गेया चक्कर कटणा, संझ हुई
सां-सां करदी ब्यार ग्लांदी कन्ना विच
चल कमलो घर अपणे, संझ हुई
अजकल मिंजो रोज शिकायत मिलदी मेरी
सेही कर अपणा आप, कमलो संझ हुई।

(डॉ प्रिया, मास्टर ते जगतो पृ. 63)

कवयित्री को चम्बा के स्कूल, नदी नालों, मंदिर पर्वतों व झीलों ने बेहद प्रभावित किया है। यही कारण है उसने जगह-जगह कविताओं में उनका जिक्र किया है। पहाड़ की पीड़ाएँ अधिक मुखर हैं। सामाजिक विद्रूपताओं से कवयित्री का कोमल हृदय आहत है। 'अनाड़ी' कविता में उक्त भाव इस तरह से अभिव्यक्त है

हऊं हैं बड़ी अनाड़ी अम्मा!
दिल्ली रे बजारा
हंडी हंडी
चाल अपणी
बगाड़ी अम्मां।
मणूंह मणीह रा
फरक नीं इत्ते
कुण कुसे री
लाड़ी अम्मा्
जमुना रा पाणी
होया गंदा
लिभदी नीं नेड़े
झाड़ी अम्मा! (प्रिया भारद्वाज, मास्टर ते जगतो, पृ. 19)

'फरमान' भी इनकी कविता संग्रह में एक अच्छी कविता है जो वक्त की नजाकत का चित्रण करती है। वक्त को धूप छाँव और पहलवान कहा गया है। भाषा और शिल्प की सरलता देखते बनती है

करदा है गुमान एह् वगत
कदेहा मेहरबान एह् वगत
बुजुर्गां री पगड़ी उछाल़दा
लगदा पहलवान एह् वगत
धुप-छां वफा नफरत
लिंदा इम्तहान एह् वगत
ईणा प्रिया इक रोज बणी
धर्मराजे रा फरमान एह वगत।

(प्रिया भारद्वाज, मास्टर ते जगतो, पृ. 35)

मंडी से युवा कवयित्री निर्मला चंदेल ने उत्सव परक और मानवीय संवेदनाओं से युक्त कविताओं में अपने कथ्य को बड़ी सहजता से मुखरित करने की महारत हासिल की है। वह 'जनाने जाति रा दुःख' कविता में अपनी भावनाओं को इस तरह व्यक्त करती हैं :

जे पिता पिशाच, भाई दानव
कने पति बणी जाए शैतान
तां बचारी कहली जनाने
किहयां केथी बचाणी जान
तांहे ता बोलहां हे पेहले
समाजा च फैली री बुरी नीतां
री दुर्गंध मटावा
प्यार सुरक्षा इज्जता रे आसना पर बठयाल़ा
जनानी जाति री इज्जत करी के देशा री बी इज्जत बढ़ावा।

(प्रेम भारद्वाज, सीरां, पृ. 115)

मंडी से ही अर्पणा धीमान बहुमुखी प्रतिभा की धनी हैं। कहानी के साथ कविता और निबंध लेखन में भी दखल रखती हैं। इनकी कविता में हिमाचल का गुणगान, त्योहार-उत्सव वर्णन, खान-पान, मंदिर-मस्जिद और गुरुद्वारों के चित्रण के साथ सामाजिक बुराइयों का भी पर्दाफाश हुआ है। एक पद्य द्रष्टव्य है :

गिद्दा नाटी, लुड्डी, लालड़ी इसदी पहचान
प्यारी लगदी सेहरा, घोड़ी सुहाग गेंगी दी तान
शिवरात्रि लवी, मिंजर, रेणुका दशहरा
मेले जातरां दी है नौखी ही शान
देऊ संस्कृति ही घरे घरे दी दुलारी
महकदी म्हाचले दी धरती सारी।

बरसात के चित्रण में तो इन्होंने पहाड़ की बरसात का हू-ब-हू

यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। कुछ नए भाव-बिम्ब और प्रतीकों का भी सहारा लेकर कवयित्री ने कविता का शृंगार किया है। उदाहरण देखें :

झुकी गई घटा धरतिया पर
कठरोई गै बदल़ नौएं पुराणे
बजे अंबरे ढोल नगाड़े
आई गे बरसाती दे ध्याड़े
रिमझिम बरखा बरसा दी
कविता हुण शब्दां जो तरसा दी
बरसात कदी सुख दींदी कदी पांदी पुआड़े
आई गे बरसाती दे ध्याड़े।

(प्रेम भारद्वाज, सीरां पृ. 15-17)

हिंदी में लिखने वाली युवा कवयित्री डॉ. अदिति गुलेरी ने हिमाचली में भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। इनकी हिमाचली कविता में नया कथ्य और नया शिल्प है जो पाठक को रेखा डढवाल और डॉ कान्ता शर्मा की कविताओं में देखने को मिलता है। यहां उनकी 'बियावान शहरे च' कविता का एक नमूना दे रहा हूँ :

पत्थर होई गेई आं
इस घरे च
भीड़ा च रैंहदी होई बी
नां जाणे कदेहे
रेगिस्तान च किह्ली होई गेई आं ?
मन्नदी आं-समझदी आं कि
जिन्दगी चलदी नीं कदी
अपणे चलाए फी बी
इस सुनसान शहरे च लोकां लेखा
जीणा होंगा मिंह्जो वी दोहरा जीऊण
गिरवी रखणी पौणी मिंह्जो
अपणी दुआरां अपणी सोच।

(प्रतिनिधि हिमाचली काव्य संकलन, पृ. 414)

उपर्युक्त हिमाचली (पहाड़ी) महिला लेखन कविता के संदर्भ में सरसरी दृष्टिपात से यह विश्वास दृढ़ होता है कि आने वाले समय में महिलाओं की भागीदारी हिमाचली कविता के विकास में नए आयाम स्थापित करेगी। हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग तथा हिमाचली अकादमी को भी महिला लेखन को लेकर साहित्यिक सम्मेलन और लेखन शिविर आयोजित कर अधिक से अधिक युवा कवयित्रियों और रचनाकारों को मंच सुलभ कराने की दिशा में क्रियाशील होना चाहिए।

कीर्ति कुसुम, सरस्वती नगर, पो. दाड़ी
धर्मशाला हि.प्र.-176057, मो. 94181 21253

लघु कथा

परीक्षा

किशन लाल शर्मा



कमल ट्रांसफर होकर शामगढ़ आया था। एक दिन वह अपने साथी मोहन के साथ प्लेटफार्म पर खड़ा था। देहरादून एक्सप्रेस आने का समय हो गया था। यात्रियों का प्लेटफार्म पर आने का क्रम जारी था। अचानक लम्बे कद, छरहरे बदन की सुंदर युवती पर नजर पड़ते ही कमल बोला, "क्या पर्सनैलिटी है। अप्सरा-सी लग रही है। कितना खुशनसीब होगा वह मर्द जिसकी यह पत्नी बनेगी।"

"परित्यक्ता है।" कमल की बात सुनकर मोहन बोला था।

"क्यों?" कमल आश्चर्य से बोला, "इसकी शादी हो गई?"

"हां!" मोहन बोला, "इसका नाम क्या है?"

"उसके पिता रेलवे में ही सर्विस करते हैं। इसकी इंदौर के एक इंजीनियर लड़के से शादी हुई थी। शादी के तीन साल बाद पति ने इसे तलाक दे दिया।"

"कैसा मूर्ख आदमी था। इतनी हसीन और सुंदर बीवी को त्याग दिया।" उसके बारे में जानकर कमल बोला था।

"हर मर्द चाहता है, उसकी पत्नी की देह सुंदर होने के साथ उपजाऊ भी हो।"

"क्या मतलब?" कमल ने पूछा था।

"हर मर्द चाहता है, उसकी पत्नी वंश की बेल आगे बढ़ाने के लिए संतान पैदा करके दे।"

मोहन बोला, "इला बांझ है इसलिए पति ने त्याग दिया।"

मोहन की बात सुनकर कमल सोचने लगा। औरत को पूरी जिंदगी कदम-कदम पर परीक्षा क्यों देनी पड़ती है?"

103, रामस्वरूप कलोनी, आगरा, यू. पी.-282010,
मो. 97606 17001

आलेख

मानवीय हितों का पोषक हो मीडिया

● उमा ठाकुर

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जन संचार के विविध माध्यमों का विकास भले ही धीमी गति से हुआ हो लेकिन पिछले पांच दशकों में न केवल इसका संख्यात्मक बल्कि गुणात्मक विकास अत्यंत तेज गति से हुआ। जहां पूर्वार्द्ध में पत्रकारिता राष्ट्र सेवा का कार्य मानी जाती थी, वहीं अब व्यवसाय के रूप में जानी जाती है।1

भारत जैसे बड़े लोकतन्त्र में जन संचार की अहमियत और भी बढ़ जाती है। किसी क्रांतिकारी विचार अथवा लाभपूर्ण योजना को सामान्य संचार द्वारा छोटे से क्षेत्र के कुछ लोगों तक ही पहुंचाया जा सकता है। परंतु जन संचार द्वारा संपूर्ण विश्व की जनता के समक्ष किसी विचार को रखा जा सकता है और पलभर में वह सभी तक पहुंच जाता है। समाचार पत्र यदि लिखित भाषा के माध्यम से संदेशों को ले जाता है तो रेडियो बोली गई भाषा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। सिनेमा और टेलीविजन न सिर्फ ध्वनियों को ले जाते हैं बल्कि वे दृश्यों को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। अगर माध्यमों की प्रकृति के अनुसार जन संचार माध्यमों का विभाजन किया जाए तो उन्हें हम तीन भागों में बांट सकते हैं   मुद्रित माध्यम, श्रव्य माध्यम और दृश्य माध्यम।[2]

'जर्नलिज्म' शब्द की उत्पत्ति जर्नल से हुई है जिसका अर्थ है दैनिक पंजिका अथवा डायरी   ऐसी पुस्तिका जिसमें प्रत्येक दिन का लेन-देन होता है, से है। जर्नल का अर्थ प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्र अथवा मैगज़ीन से भी होता है। इस प्रकार पत्रकारिता प्रतिदिन की घटनाओं के विवरण से जुड़ी है। संचार क्रांति के इस युग में पत्रकारिता का क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है। रेडियो और टी.वी. द्वारा समाचारों के प्रसारण को अपने कार्यक्रम में शामिल कर देने से इनकी भी पत्रकारिता के क्षेत्र में अहम भूमिका हो गई है। इसलिए ऐसा कहना भी उचित होगा   पत्रकारिता प्रतिदिन की घटनाओं के सम्बंध में सूचनाओं का लेखन, ध्वनि अथवा चित्रों के द्वारा संप्रेषण है।[3]

यद्यपि समाचार पत्र-पत्रिका आदि का सम्बंध साक्षर जनता से होता है तथापि प्रिंट मीडिया की शक्ति आरंभिक काल से रही है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने वर्णमाला की दीवार को तोड़ा है। ई.पू. पांचवीं शताब्दी के पहले रोम में संवाद लेखक हुआ करते थे, जो राजधानी से दूर के निवासियों तक समाचार लिखकर पहुंचाया करते थे। पंद्रहवी शताब्दी में यूरोप में छपाई मशीन का 1455 में जोहन गुटनबर्ग द्वारा आविष्कार किए जाने के बाद कागज़ पर छपाई अत्यंत सरल हो गई और और मुद्रित शब्द संसार का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया। भारत में यद्यपि आदिकाल से चारण एवं भाट द्वारा विचारों को जन सामान्य तक पहुंचाया जाता रहा है। 1550 ई. में पुर्तगाली जेसुइट मिशनरियों ने सर्वप्रथम छपाई के प्रेस का आयात किया। भारतीय भाषाओं में सबसे पहला पत्र बंगला में छपा जिसका नाम 'दिग्दर्शन' था। ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी जेम्स अगस्टन हिकी ने 1780 ई. में बंगाल गजट का प्रकाशन किया। 1816 में प्रथम भारतीय समाचार पत्र का प्रकाश्न 'बंगाल गजट' के नाम से गंगाधर भट्टाचार्जी के द्वारा आरंभ हुआ। राजाराम मोहन राय ने भी भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारत के स्वतंत्रता के संग्राम में पत्रकारिता ने अहम भूमिका अदा की। 1919 में मोहनदास कर्मचंद गांधी ने एक साप्ताहिकी 'यंग इंडिया' का प्रकाशन किया।

भारत में पत्रकारिता के क्षेत्र में जिन समाचार पत्रों का विशेष योगदान रहा, उनमें 1861 में प्रकाशित टाइम्स ऑफ इंडिया, 1868 में कलकत्ता से प्रकाशित 'आनंद बाज़ार पत्रिका', 1878 में मद्रास से प्रकाशित हिन्दु, भारत मित्र, भारत जीवन, विश्वमित्र आदि प्रमुख हैं। भारत में पत्रकारिता ने शुरुआत से ही चुनौतीपूर्वक कार्य किया चाहे वह सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का लक्ष्य रहा हो या सामाजिक चेतना का। हर दृष्टिकोण से पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम को बढ़ाने तथा जन जागृति उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।[4]

आधुनिक युग में समाचार पत्रों की मुद्रण तकनीक में भी

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही इलैक्ट्रॉनिक तकनीक ने भविष्य के लिए असीमित संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। इलैक्ट्रॉनिक टैक्नॉलोजी के इस युग में विचरण के साथ एक बात स्पष्ट हो गई है कि सूचना व समाचार केवल लिखित नहीं, दृश्य रूप भी ले सकते हैं।

क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं। रोटरी ऑफसेट प्रिंटिंग, फोटो कम्पोजीशन, इलैक्ट्रॉनिक, एनग्रेविंग प्लेट आदि ने न केवल कार्य को आसान किया है, बल्कि एक सेकंड में उनके कापी प्रिंट करने की भी सुविधा प्रदान की है।[6]

नई सूचना टेक्नॉलोजी के दौर में कम्प्यूटर से तालिकाएं, ग्राफ और चार्ट बनाना बहुत आसान हो गया है। इंटरनेट पर समाचार पत्रों का प्रारंभ 1995 में हुआ। समाचार पत्रों की आज शहरों में ही नहीं गांव में भी गहरी पैठ है। भारत में प्रकाशित समाचार पत्रों के इंटरनेट संस्करणों के पाठकों में प्रवासी भारतीयों की संख्या 70 से 80 प्रतिशत है। शेष 20 से 30 प्रतिशत इंटरनेट पाठक वे लोग हैं जो संबंधित समाचार पत्र का मुद्रित संस्करण नहीं देख पाते। आज कंप्यूटर क्रांति से समाचार पत्र का स्वरूप ही बदल रहा है। इलैक्ट्रॉनिक क्रांति के कारण पत्रों के मुद्रण की शैली बदल चुकी है। नई सूचना टैक्नॉलोजी ने दूरिया घटाने तथा सूचनाओं और समाचार माध्यमों की पहुंच के विस्तार की दिशा में महत्त्वपूर्ण सफलता पाई है। आधुनिक समाज में पत्रकारिता जन शिक्षा का माध्यम बन गया है। पत्रकारिता का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना यह संसार। पत्रकारिता सामाजिक कार्य का वह भाग है जो समाज के संबंध में समाचारों और विचारों के सम्प्रेषण से संबद्ध है। जेम्स रेस्टन ने उन्नीसवीं सदी को उपन्यासकारों का युग तथा बीसवीं सदी को पत्रकारों का युग बताया है। समाचार पत्रों की प्रभावशीलता को देखकर ही कहा जाता है कि समाचार पत्र वर्तमान सभ्यता के मापदण्ड है।[7]

रेडियो, टेलिविजन, सेटेलाइट टी.वी., केबल टी.वी. इत्यादि इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत आते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में संचार में तीन मुख्य बाधाएं आती हैं। वे हैं अशिक्षा, दुर्गम स्थान में पहुंचने में कठिनाई तथा गरीबी। एक अनपढ़ व्यक्ति भी इसके संदेश को भली प्रकार से समझ सकता है।[8]

रेडियो के अस्तित्व के परिणामस्वरूप ही लोग लंबी दूरी होते हुए विचारों का संप्रेषण कर पाने में समर्थ हुए हैं। रेडियो जन संचार का सरलतम तथा सुगम साधन है जिसके द्वारा लाखों श्रोताओं तक एक संदेश पलभर में पहुंचाया जाता है।[8] सुविधाजनक ट्रांजिस्टर सैटों के विपुल उत्पादन के कारण इस विशाल देश के गांव-गांव में आकाशवाणी का जो विस्तार हुआ है, उसे अनेक समाजशास्त्रियों ने 'ट्रांजिस्टर क्रांति' की संज्ञा दी है। भारत में डाक तार विभाग ने 1930 में इंडियन ब्राडकास्टिंग सर्विस आरंभ की थी। सन् 1936 में इसका नाम 'ऑल इंडिया रेडियो' रखा गया और 1959 में इसका नाम आकाशवाणी कर दिया गया।[9]

अमेरिकी विचारक एलगिन टॉफलर ने अपनी पुस्तक 'पावर शिफ्ट' में सूचना क्रांति नामक चक्रवात समूचे संचार-तंत्र पर छा गया है, का विवेचन किया है। इसके साथ समाज और संस्कृति में हुए परिवर्तन के बारे में उनका कहना है उपग्रह संचार, कंप्यूटर, टेलीफोन, फैक्स आदि वस्तुओं के कारण हमारे घर संचार घर बन गए हैं। सुबह उठकर लोग टीवी स्क्रीन पर अखबार पढ़ते हैं। बैंक से लेन-देन और बाज़ार से खरीददारी के सारे काम घर बैठे कंप्यूटर से किए जाते हैं।[10]

नई सूचना क्रांति के संदर्भ में बड़ी उपलब्धि टेलीफोन के आविष्कार के रूप में सामने आई। यद्यपि अमेरिका के अलेग्जेंडर ग्राहम बेल ने ध्वनि को विद्युत चुम्बकीय तरंगों के माध्यम से एक उपकरण द्वारा दूर बैठे व्यक्ति तक पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की।[11] लेकिन बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में इससे संबंधित दूसरे संचार माध्यम मोबाइल के आविष्कार होने से पत्रकारिता को एक नई तकनीक उपलब्ध हो गई।

हॉवर्ड ऐकन ने दुनिया के पहले डिजिटल कंप्यूटर का डिज़ाइन तैयार करने में सफलता प्राप्त की। इस डिज़ाइन के आधार पर हावर्ड विश्वविद्यालय ने इंटरनेशनल बिजनेस मशीन्स (आई.बी.एम.) के सहयोग से हावर्ड मार्क नाम का पहला कंप्यूटर 1947 में विकसित किया।[12]

अब कंप्यूटर संवाददाता या संपादक के साथ कंपोजिटर, प्रूफ रीडर, पेस्टअपमैन यहां तक कि प्रोसेसिंग का काफी काम भी समाचार लिखने या संपादित करने के साथ-साथ निभाता है।[13] पत्रकारिता में आज कंप्यूटर का प्रयोग प्रकाशन, चित्रण, मीडिया संचार के रूप में व्यापक रूप से हो रहा है।[14]

वर्तमान में इंटरनेट दुनिया की सर्वाधिक सक्षम सूचना प्रणाली है जिसके तहत लाखों कंप्यूटर परस्पर सूचनाओं का हस्तांतरण कर रहे होते हैं।[15] कंप्यूटर न होता तो इंटरनेट नामक महामार्ग भी प्रशस्त नहीं हो पाता। इंटरनेट का आविष्कार बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के अंतिम वर्षों में हुआ।[16] क्लीन रॉक को इंटरनेट का जनक माना जाता है। इंटरनेट की शुरुआत यही थी जिसे उस समय आरपानेट ARPANET के नाम से जाना गया था।[17] बाद में कंप्यूटर वैज्ञानिकों ने संदेशों के आदान-प्रदान का तरीका भी निकाल लिया। जिसे ई-मेल का नाम दिया गया।[18]

आजकल पत्रकार समुदाय के मध्य लैपटॉप लोकप्रिय हो रहा है। इस पर इंटरनेट संपर्क भी संभव है। आज यूरोपीय देशों में

भारत में पत्रकारिता के क्षेत्र में जिन समाचार पत्रों का विशेष योगदान रहा, उनमें 1861 में प्रकाशित टाइम्स ऑफ इंडिया, 1868 में कलकत्ता से प्रकाशित 'आनंद बाज़ार पत्रिका', 1878 में मद्रास से प्रकाशित हिन्दु, भारत मित्र, भारत जीवन, विश्वमित्र आदि प्रमुख हैं। भारत में पत्रकारिता ने शुरुआत से ही चुनौतीपूर्वक कार्य किया चाहे वह सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का लक्ष्य रहा हो या सामाजिक चेतना का। हर दृष्टिकोण से पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम को बढ़ाने तथा जन जागृति उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

लगभग 90 प्रतिशत पत्रकार लैपटाप का प्रयोग कर रहे हैं।[19]

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही इलैक्ट्रॉनिक तकनीक ने भविष्य के लिए असीमित संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। [20]

पाश्चात्य मीडिया के प्रख्यात विद्वान मार्शल मक्लूहन ने जन संचार की नई प्रौद्योगिकी में अविच्छिन्न विकास को केंद्र में रखकर ही संपूर्ण विश्व को Global village विश्वग्राम का सार्थक नामकरण दिया है।[21] हिन्दी पत्रकारिता के भीष्म पितामह बाबू विष्णुराव पराडकर ने 1925 में ही पत्रकारिता के संदर्भ में ऐसी भविष्यवाणी की थी "पत्र संवाग सुंदर होंगे। आकार बड़े होंगे, छपाई अच्छी होगी। कल्पकता होगी, गंभीर गवेषण की झलक होगी। यह सब होगा पर पत्र प्राणहीन होंगे।[22] आज संचार माध्यमों में इतनी सामर्थ्य है कि वे हर रहस्य को उजागर कर देते हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी में प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने बहुत उन्नति की है। समाज में हर प्रकार के पाठकों, दर्शकों, श्रोताओं, प्रेक्षकों पर मीडिया ने विभिन्न माध्यमों से विभिन्न प्रकार के, उनकी रुचि अनुसार विषयों में स्थान देकर अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की है।[23]

प्रिंट मीडिया में आज सुंदरता आकृष्टता के साथ-साथ स्पष्टता और निष्पक्षता भी देखने को मिलती है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। व्यक्ति आज संपूर्ण विश्व की जानकारी एक पल में प्राप्त करना चाहता है। लोकतंत्र की उदारता के साथ इलैक्ट्रॉनिक माध्यम से अभिव्यक्ति का भरपूर उपयोग कर सकते हैं।[24]

इलैक्ट्रॉनिक माध्यम को अपनी एक मर्यादा निर्मित करने की आवश्यकता है। नैतिकता, चरित्र और मानवता का प्रश्न जो बार-बार उठता है, उसे मानव कल्याण के लिए इलैक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा पोषित करने की आवश्यकता है। तभी इलैक्ट्रॉनिक मीडिया अत्यधिक प्रभावशाली और निष्ठावान सिद्ध होगा। प्रिंट मीडिया और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया को केवल भौतिकवाद को ही बढ़ावा नहीं देना चाहिए, बल्कि आध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि समझना चाहिए। तभी मीडिया मानवता का सच्चा पोषक बन सकता है।

राजधानी कोष, हि. प्र. सचिवालय, शिमला-171 002

संदर्भ सूची

1. पत्रकारिता एवं जन संचार विविध आयाम, सुरेश वर्मा, नक्श प्रकाशक थानेसर मेरठ
2. जन संचार एवं पत्रकारिता Entrance Exam Cosmos Book HIVE(P) Ltd भाग-V जन संचार
3. पत्रकारिता के मूल तत्त्व, प्रेम नाथ चतुर्वेदी
4. पत्रकारिता एवं जन संचार विविध आयाम, सुरेश वर्मा, नक्श प्रकाशक थानेसर मेरठ
5. पत्रकारिता के मूल तत्त्व : डॉ. ए.आर. डंगवाल प्रकाशक बुक डिपो, बरेली एवं हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम : डॉ. वेद प्रताप वैदिक प्रकाशक नेशनल पब्लिकेशन हाउस नई दिल्ली
6. पत्रकारिता एवं विविध आयाम : सुरेश वर्मा, प्रकाशक नक्श प्रकाशक थानेसर मेरठ
7. सूचना प्रौद्योगिकी एवं पत्रकारिता : अशोक मलिक, प्रकाशक हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला
8. पत्रकारिता एवं जन संचार विविध आयाम : सुरेश वर्मा प्रकाशक नक्श प्रकाशक थानेसर मेरठ
9. डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू : संचार क्रांति और बदलता सामाजिक सौंदर्यबोध

10. 11. 12. 13. 14. हर्षदेव : उत्तर आधुनिक मीडिया तकनीक

15. Media Revolution & Changing Social Aesthetics,

16. 17. 18. 19. 20. हर्षदेव : उत्तर आधुनिक मीडिया तकनीक

21. Introduction to Journalism & Mass Communication (Elements in Mass Media)
22. हर्षदेव : उत्तर आधुनिक मीडिया तकनीक
23. मास कम्युनिकेशन
24. इलैक्ट्रॉनिक मीडिया

गांधी जी के लिए सत्य अंतिम सच्चाई थी। लेकिन उनके सत्य के दो पहलू थे- सम्पूर्ण और सापेक्ष व्यक्ति जब तक हाड मांस में है तो वह सम्पूर्ण सत्य की केवल बदलती हुई छाया है। अपने रोजमर्रा के जीवन में उसे सापेक्ष सत्य का सामना करना पड़ता है। अपने दोनों सत्यों में अंतर को समझाने के लिए गांधी जी को नीति कथाओं या कहावतों का सहारा लेना पसंद था। वह कहा करते थे कि अपना दायां हाथ गर्म पानी से भरी कटोरी में डालो और फिर गुनगुने पानी से भरी कटोरी में डालो। आपको गुनगुना पानी ठंडा महसूस होगा, बावजूद इसके कि उसके तापमान में कोई तब्दीली नहीं आई है।

आलेख

विविध शैलियों-अन्तश्छवियों के रचनाकार
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

• डॉ. रमेश सोबती



नौ सितंबर 1850 को वाराणसी के एक विख्यात अग्रवाल परिवार में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ। अग्रवाल समुदाय अपने को महाराजा अग्रसेन का वंशज मानते हैं। इनके पिता गोपाल चन्द्र स्वयं बड़े प्रतिभावान व्यक्ति थे। उनके सम्बंध में कहा जाता है कि उन्होंने 13 वर्ष की आयु में ही रामायण का अनुवाद किया था। उन्होंने संस्कृत, उर्दू, हिन्दी तथा ब्रज भाषा में कविताएं लिखी हैं। उनको साहित्य से गहरा प्रेम था। 'साहित्य से प्रेम' का अर्थ यहां वल्लभाचार्य के वैष्णवमत या पुष्टिमार्ग का प्रचार या प्रसार है। 'गिरधरदास' के उपनाम से उन्होंने लगभग 40 ग्रंथ या रचनाएं लिखीं, उनमें प्रमुख रचनाएं हैं जरासंध वध महाकाव्य, भाषा व्याकरण, रस रतनाकर, ग्रीष्म वर्णन, भारती भूषण, मत्स्यकथामृत, एकादशी महात्म्य, प्रेम तरंग, ककारादि सहस्रनाम, कीर्तन के पद आदि। इससे स्पष्ट है वे खूब लिखा करते थे। उनकी मृत्यु मात्र 27 वर्ष की अल्पायु में हो गई थी। भारतेन्दु में जन्म से ही काव्य प्रतिभा थी। मात्र 12 वर्ष की आयु में उन्होंने स्वर्गवासी 'श्री अनवरत वर्णन अन्तलीपिका' की रचना की। भारतेन्दु को अल्पायु में ही इतना ज्ञान था कि उन्होंने नौ रसों के अतिरिक्त पांच नए रसों की भी व्याख्या की थी। पं. तारा चन्द तर्करत्न की रचना 'श्रृंगार-रत्नाकर' में श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, अद्भुत, वीभत्स, वीर, भयानक, शांत रसों के अलावा हरिश्चन्द्र द्वारा बताए भक्ति (दास्य) प्रेम (माधुर्य) सख्य वात्सल्य, प्रमोद का भी उल्लेख मिलता है। वे पूरी तरह भारतीय थे। वे भाषा, जाति या क्षेत्र के संकीर्ण दायरे से बाहर निकलकर विस्तृत एवं मानवीय दृष्टिकोण के हिमायती थे। भाषा के मामले में वे निरंतर भारतीय दृष्टिकोण रखते थे। जो लोग भाषा को साम्प्रदायिक नजरिए से देखते हैं उन्हें हरिश्चन्द्र से यह प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि भाषा उसकी होती है जो उसे जानता है। भाषा न किसी जाति की होती है न किसी धर्म की। वह जिसके पास है उसी की होती है। उन्होंने 'कुरान-शरीफ' का हिन्दी में अनुवाद किया था। वे 'टरना' उपनाम से शायरी किया करते थे। उनकी रचनाओं में उर्दू एवं फारसी के शब्दों का भरपूर प्रयोग था। उन रचनाओं का प्रेरणा स्रोत उनकी सामयिक चेतना है।

भारतेन्दु ने भारत के पुनर्निर्माण में मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किए। इस निर्माण का आधार भारतीय संस्कृति की परम्परा थी। वे राष्ट्रीय चेतना जगाने और लोगों को अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे। वे अंग्रेजों के समर्थक होते हुए भी उनके शोषक रूप की पहचान करते हुए उसका तीव्र विरोध करते थे। इसीलिए वे उनकी प्रशंसा और निंदा साथ-साथ करते थे

अंगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलिजात यहै अति खवारी।
ताहू पै महंगी रोग विस्तारी।
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई।
(भारतेन्दु समग्र, भारत-दुर्दश पृ. 461)

अंग्रेजों की इस शोषक प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने नए जमाने की मुकरी पृ. 256 में लिखा

भीतर-भीतर सब रस चूसै
हंसि-हंसि के तन-मन-धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि सजन नहि अंगरेज। (भारतेन्दु समग्र)

भारत की संपत्ति चूस लेने के कारण भारतेन्दु ने अंग्रेजों का

भारतेन्दु जिस काल में जन्में वह काल बड़ा संवेदनशील काल था। भारतवासियों के दिलों में अंग्रेज शासन के प्रति बगावत चरम सीमा पर थी। यहां के लोग फूटी आंखों से भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के वर्चस्व को नहीं देखना चाहते थे। इसी आग ने सन् 1857 में जब वे केवल सात वर्ष के थे, ब्रिटिश शासन के खिलाफ भीषण संग्राम का रूप धारण कर लिया। उस समय के जनमानस को राष्ट्रीय स्वाभिमान, नैतिकता, ईमानदारी और स्वदेशी मर्यादा का पाठ पढ़ाना भी समय की परमावश्यक मांग थी, तब भारतेन्दु ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इस कार्य को पूरा किया।

व्यंग्यात्मक नाम चूसा पैगम्बर दिया है   मेरा नाम चूसा है क्योंकि मैं सबका पाप रूपी पैसा चूस लेता हूं। (भारतेन्दु समग्र पांचवों (चूसा) पैगम्बर (पृ. 1001) हरिश्चन्द्र ने जीवन का प्रत्येक पल सार्थक करते हुए जिया था। इस सार्थकता का नवोज्ज्वल शिखाओं वाला अनुष्ठान हिन्दी भाषा की संरचना, हिन्दी में साहित्य सृजन और हिन्दी के प्रचार-प्रसार का था। शायद उन्होंने अपने जीवनकाल में सोचा भी न होगा कि एक दिन देश के स्वाधीन होने के बाद हिन्दी देश की राजभाषा और व्यवहार में सम्पर्क भाषा बनेगी। फिर भी उन्होंने अपनी प्रतिभा, श्रम और साधना से हिन्दी भाषा को अर्थ सम्पदा दी, साहित्य के भण्डार को अपूर्वकृति मणियों से समृद्ध किया, लेखकों-कवियों को अधिक से अधिक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया और अपने धन से उनकी कृतियों को प्रकाशित करवाया और पुरस्कार दिए। उनकी 'गंगावतरण' कविता की एक पंक्ति है   'दर्शन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत' उनका व्यक्तित्व और कृतित्व हिन्दी को वही महिमा प्रदान करता है जो इस पंक्ति से पवित्र-से-पवित्र गंगा के प्रति व्यक्त होता है। आज राजभाषा हिन्दी का जो भव्य भवन खड़ा है, बड़े मंत्रमय मन से उसकी आधारिक संरचना भारतेन्दु ने की थी। इन्हीं के प्रभाव से उनके अल्प जीवनकाल के बीच लेखकों का एक बहुत बड़ा मंडल तैयार हो गया था। जिसके भीतर पं. प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं. बालकृष्ण भट्ट मुख्य रूप से गिने जा सकते हैं। इन लेखकों की शैलियों में व्यक्तिगत विभिन्नता स्पष्ट लक्षित होती है। भारतेन्दु में ही हम दो प्रकार की शैलियों का व्यवहार पाते हैं। उनकी भाव वेश की शैली दूसरी है और तथ्यनिरूपण की दूसरी। भावावेश में कथनों में वाक्य प्रायः बहुत छोटे-छोटे होते हैं और पदावली सरल बोलचाल की होती है जिसमें बहुत प्रचलित अरबी-फारसी के शब्द भी कभी-कभी, पर बहुत कम आ जाते हैं। जहां किसी ऐसे प्रकृतिस्थ भाव की व्यंजना होती है, जो चिंतन का अवकाश भी बीच-बीच में छोड़ता है, वहां की भाषा कुछ अधिक साधु और गम्भीर होती है। वाक्य भी कुछ लम्बे होते हैं, पर उनका अन्वय जटिल नहीं होता। तथ्यनिरूपण या सिद्धांतकथन के भीतर संस्कृत शब्दों का कुछ अधिक मेल दिखाई पड़ता है। एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है। वस्तुवर्णन या दृश्यवर्णन में विषयानुकूल मधुर या कठोर वर्णन वाले संस्कृत शब्दों की योजनाओं की, जो प्रायः समस्त और अनुप्रास होती है, चाल-सी चली गई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में यह प्रवृत्ति सामान्यता नहीं पाते। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यही मान्यता है।

भारतेन्दु जिस काल में जन्में वह काल बड़ा संवेदनशील काल था। भारतवासियों के दिलों में अंग्रेज शासन के प्रति बगावत चरम सीमा पर थी। यहां के लोग फूटी आंखों से भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के वर्चस्व को नहीं देखना चाहते थे। इसी आग ने सन् 1857 में जब वे केवल सात वर्ष के थे, ब्रिटिश शासन के खिलाफ भीषण संग्राम का रूप धारण कर लिया। उस समय के जनमानस को राष्ट्रीय स्वाभिमान, नैतिकता, ईमानदारी और स्वदेशी मर्यादा का पाठ पढ़ाना भी समय की परमावश्यक मांग थी, तब भारतेन्दु ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इस कार्य को पूरा किया। उनका यह प्रयास सफल सिद्ध हुआ और मात्र दो दशकों की अत्यन्त अल्पावधि में देश के जनसामान्य में एक नवीन चेतना का संचार हुआ। धार्मिक कुरीतियों, रूढ़िवादिता और अंधविश्वासों पर भी उन्होंने सदैव प्रहार किया। उन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, हरिश्चन्द्र चंदिका, नवोदित हरिश्चन्द्र पत्रिका, बालाबोधिनी (महिलाओं की पत्रिका) प्रकाशित की। इन पत्रिकाओं ने न केवल उत्कृष्ट कोटि के विचारों और साहित्य को जनता-जनार्दन के समक्ष रखा अपितु अनेक नवभ्यासी रचनाकारों, लेखकों को प्रोत्साहन भी दिया। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' को भारतेन्दु युग का प्रमुखतम साहित्यिक मुख-पत्र कहा जा सकता है। इसमें ब्रज भाषा की कविताएं तथा संस्कृत की रचनाएं भी प्रकाशित होती थीं। निबन्ध, नाटक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिपरक लेख भी इस पत्रिका में स्थान पाया करते थे। इस पत्रिका में प्रकाशित व्यंग्यपरक टिप्पणियों के कारण ब्रिटिश सरकार के लिए 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' चिन्ता का विषय बनने लगी थी।

इस पत्रिका के अतिरिक्त 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' के माध्यम से अनेक साहित्यिक प्रतिस्पर्धाएं आयोजित की गईं तथा साहित्य को प्रकाश में लाया गया। हिन्दी की लगभग सभी विधाओं के विकास के लिए इस पत्रिका ने सराहनीय कार्य किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु युगीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की लम्बी सूची दी है। लगभग 27 पत्र-पत्रिकाएं भारत के अलग-अलग प्रातों से

प्रकाशित होती थीं। भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी गद्य-पद्य की सम्पूर्ण विधाओं एवं हिन्दी पत्रकारिता का प्रतिष्ठापरक युग था। आज साहित्य तथा पत्रकारिता के अन्तःसंबंध भले ही विवाद के विषय हैं लेकिन हरिश्चन्द्र युग में पत्रकारिता और साहित्य के अन्योन्याश्रित संबंध दिखााई पड़ते हैं। उस युग में पत्रकारिता साहित्य का पर्याय ही नहीं थी, बल्कि उसकी संरक्षक, संवर्धक तथा दिशा निर्धारक भी थी। यही कारण है कि भारतेन्दु युग के सभी साहित्यकार हिन्दी के शीर्ष पत्रकार भी थे। पंडित रुद्रदत्त शर्मा, दुर्गाप्रसाद मिश्र, मदनमोहन मालवीय, मेहता लज्जाराम शर्मा, अमृत चक्रवर्ती, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाल-मुकंद गुप्त, माधव प्रसाद मिश्र, स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकार अपने समय के यशस्वी पत्रकार भी थे। इसीलिए हिन्दी भाषा की तथा शिल्प की संरचना पर विचार करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि पत्रकारिता का तत्कालीन संदर्भ साहित्य के स्वरूप निर्धारण, भाषा और शिल्प की मौलिकता तथा अस्मिता से सीधे जुड़ा हुआ है।

आज हिन्दी भाषा साहित्य प्रतिष्ठा और अभिवृद्धि के जिस शिखर पर पहुंची है, उसकी चढ़ाई का सूत्रपात भारतेन्दु ने किया है। डॉ. रामनिवास शर्मा अपने आलेख में लिखते हैं, कि भारतेन्दु ने एक ओर जहां हिन्दी भाषा को राजनीतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा पद दिलाने की नींव डालने का साहसपूर्ण कार्य किया, वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य को काव्य की कुंज गली से बाहर निबंध, नाटक, उपन्यास और आलोचना आदि के विभिन्न क्षेत्रों में उतारने का श्रीगणेश भी उन्हीं से हुआ। उन्होंने श्रेष्ठ निबंधों के माध्यम से अपने समाज के साथ-साथ भाषा का भी संस्कार करके विशेषतः परवर्ती लेखकों का और सामान्यतः पूरी भारतीय जनता का मार्गदर्शन किया। वे ऐतिहासिक निबंधों में ब्रिटिश शासन के अत्याचारों और शोषण के विभिन्न हथकंडों पर कठोर नियंत्रण और पाबंदियों को देखते हुए भी उनकी परवाह नहीं करते थे। वे देशवासियों के मनों में भारत के स्वर्णिम अतीत के प्रति रुचि और सम्मान जगाने के प्रयोजन से उससे सम्बद्ध विषयों पर निबंध लिखना अपने समय की एक ज्वलंत मांग माना करते थे। उन्होंने जीवनीपरक निबंधों में महापुरुषों और विभूतियों पर अनेक जीवन चरित-प्रधान निबंधों की भी रचना की थी। यथा 'चरितावली, पंच पवित्रात्मका' आदि। उन्होंने कुछ ऐसे उपदेशपरक निबंध भी लिखे हैं, जिनका मुख्य प्रतिपाद्य भारतीयों को किसी-न-किसी बात की सदुपयोगी शिक्षा देना और उनके ज्ञान-कोष में विशेष अभिवृद्धि करना माना जाएगा। साहित्यिक निबंधों में विषयगत, वैविध्य के साथ हास्य और व्यंग्य की खट्टी-मिट्ठी चाशनी वाली भाषा का प्रयोग हुआ है। यात्रापरक निबंध, आत्मपरक निबंध, मनोवैज्ञानिक निबंध भी लिखे। यदि उन्हें हिन्दी साहित्य में निबंध नामक विद्या का जनक या प्रवर्तक कहा जाए तो कदाचित इसमें कोई भी

आज हिन्दी भाषा साहित्य प्रतिष्ठा और अभिवृद्धि के जिस शिखर पर पहुंची है, उसकी चढ़ाई का सूत्रपात भारतेन्दु ने किया है। डॉ. रामनिवास शर्मा अपने आलेख में लिखते हैं, कि भारतेन्दु ने एक ओर जहां हिन्दी भाषा को राजनीतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा पद दिलाने की नींव डालने का साहसपूर्ण कार्य किया, वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य को काव्य की कुंज गली से बाहर निबंध, नाटक, उपन्यास और आलोचना आदि के विभिन्न क्षेत्रों में उतारने का श्रीगणेश भी उन्हीं से हुआ।

अत्युक्ति नहीं होगी।

भारतेन्दु जी ने नाटकों की भी रचना की। सन् 1880 में उन्होंने 'भारत-दुर्दशा' नाटक लिखा। आज लगभग एक सौ तीस-बत्तीस वर्ष बीतने पर भी यह नाटक उतना ही नवीन और प्रेरणाप्रद लगता है। नाटक का उद्देश्य देश की दुर्दशा का चित्रण कर उससे त्राण पाने का है। 'हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई' नाटक का बीज वाक्य है। उन्होंने नाटकों की दिशा में हिन्दी रंगमंच को एक नया मोड़ दिया और उसे जनरुचि के अनुकूल आदर्शमय बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इसका सकारात्मक पक्ष यह भी था कि वे एक ओर जहां संस्कृत और बंगला की नाट्य कला से अभिज्ञ थे, वहीं रंगमंच की व्यावहारिक कठिनाइयों से भी पूर्णतः परिचित थे। इनके समय में चार प्रकार के रंगमंच हुआ करते थे पहला रामलीला, दूसरा रासलीला, तीसरा नौटंकी और चौथी पारसी कंपनियों का। जनता अपनी रुचि के अनुसार इन रंगमंचों को पसंद करती थी। अपने पिछले दिनों में वे उपन्यास लिखने की ओर प्रवृत्त हुए थे, पर चल बसे। वे सिद्धवाणी के अत्यंत सरसहृय कवि थे।

भारतेन्दु Hero As A Magician थे। उन्होंने कम समय में बहुत से कार्य कर दिखाए जो निश्चय ही आश्चर्यकर हैं, आह्लादक भी हैं, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भी। हिन्दी साहित्य के इतिहास के पथ पर ऐसी गहरी छाप छोड़ने वाला साहित्यकार भारतेन्दु को छोड़कर कोई दूसरा नहीं हुआ।

एन.आर.आई. एवेन्यू, सुखचैन रोड, फगवाड़ा, पंजाब-144 401, मो. 98153 85535

शोध आलेख

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की रस-दृष्टि

● आशा शर्मा

प्रत्येक व्यक्ति में अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने की व्यग्रता और बेचैनी इतनी प्रबल होती है कि बाह्य साधनों के अभाव में भी वह उन्हें किसी-न-किसी रूप में व्यक्त करता ही है। साहित्य मानव जीवन की उन्हीं गाथाओं को उन्हीं अनुभवों को अत्यन्त निकटता व सूक्ष्मता से व्यंजित करने का प्रमुख साधन है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी साहित्य और जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकारते हैं। उनके अनुसार साहित्य जीवन-सापेक्ष है, जीवन से बाहर उसकी कोई सत्ता नहीं है। व्यक्तिवादिता चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो-साहित्य में पनप नहीं पाती। साहित्य तो जीवन की सामान्य अनुभूतियों के अधिक समीप रहता है। आचार्यजी के अनुसार "साहित्य का स्रष्टा मनुष्य है, मनुष्य के लिए ही साहित्य की सृष्टि है। मानवजीवन ही साहित्य का उपादान और विषय वस्तु रहा है और रहेगा। मानव जीवन विकासशील वस्तु है, इसीलिए साहित्य भी विकासशील है। विकासशील मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण या मार्मिक अंशों की अभिव्यक्ति यही साहित्य की मोटी परिभाषा हो सकती है।"[1]



27 अगस्त 1906 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिला के मगरायर ग्राम में जन्में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जब एम.ए. हिन्दी के विद्यार्थी थे तभी उन्होंने लिखना-छापना आरम्भ कर दिया था, इससे उनकी निसर्गजात प्रतिभा का संकेत मिलता है। वे स्वयं 'कवि निराला' नामक अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि- "जब महात्मा गाँधी का सत्याग्रह आन्दोलन (1929-30) गाँव में जोर पकड़ चुका था, मुझे उनके राजनीतिक स्वरूप का परिचय मिला। हमारे गाँव में ही राजनीतिक सभाएँ हुआ करती थीं। उनमें सक्रिय कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के साथ निराला और मैं प्रायः उपस्थित रहते थे।"[2] आचार्यजी में बैसबाड़ा क्षेत्र का स्वाभिमानी स्वभाव था जो जीवन संघर्षों से जूझते आत्मविश्वासी व्यक्ति में होता है। वे स्वाभिमानी थे पर अहंकारी नहीं, वे बड़ों से टकराते थे, पर छोटों को अमित स्नेह देते थे। वे सबकी व्यथा-कला सुनते और यथा सम्भव सहायता भी करते। इस मामले में वे अतिशय उदार और परोपकारी व्यक्ति थे। उनके पिता पं. गोवर्धनलाल वाजपेयी के राष्ट्रवादी विचारों के कारण ही वाजपेयी बिहार छोड़कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में अध्ययन के लिए भेजे गए जहाँ आचार्यजी को एक जीवन्त मित्र-मण्डली मिली जिसमें डॉ. रामअवध द्विवेदी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है साथ ही महामना मालवीय के अतिरिक्त अपने गुरुजन डॉ. श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध के सम्पर्क में आए और उनसे बहुत कुछ सीखा भी। "उस समय काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी पाठ्यक्रम में परम्परागत अध्ययन कराया जाता था और आधुनिकता के लिए अधिक गुंजायश न थी। वर्षों तक जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के लिए विश्वविद्यालय के द्वार बन्द थे। आगे चलकर प्रसाद के लिए तो कुछ गुंजायश हुई थी, पर निराला बहुत अरसे तक प्रवेश न पा सके।"[3] नन्ददुलारे वाजपेयी का जयशंकर प्रसाद से उनके घर पर गोष्ठियों में मिलना हुआ जबकि निराला से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जहाँ निराला ने उन अध्यापकों को आड़े हाथों लिया था जो नयी रचना-शीलता का स्वागत नहीं करना चाहते थे। आचार्य वाजपेयी ने निराला का स्वागत-सत्कार किया जिससे कई पुरातनपंथी उनसे चिढ़ गए थे। निराला ने स्वयं इस विषय में चिन्ता व्यक्त की कि "कहीं वाजपेयी के कॅरिअर पर इसका बुरा प्रभाव न पड़े। 19-10-1929 के अपने एक पत्र में वाजपेयी ने निराला को लिखा : मुझे 14 नम्बरों से फर्स्ट क्लास नहीं मिला, इसमें कुछ रहस्य भी है।"[4] किन्तु वाजपेयीजी ने सदैव निर्भीकता का परिचय दिया। डॉ. श्यामसुन्दर दास के

प्रयत्नों से इन्होंने 'भारत' नामक साप्ताहिक हिन्दी पत्र का सम्पादन किया। अपनी सतेज प्रतिभा के बलबूत यहाँ भी वाजपेयी ने निर्भीक सम्पादकीय लिखे और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम को अपना भरपूर समर्थन दिया। राजनीति के साथ साहित्य को भी महत्त्व दिया और आधुनिक काव्य, विशेषतया छायावाद से सम्बद्ध निबन्ध लिखे। इसके लिए उन्हें पुरातनपंथियों के विरोध का सामना करना पड़ा और अन्त में 'भारत' से हटना पड़ा। आचार्य वाजपेयी ने 'सूरसागर' और 'रामचरित मानस' का सम्पादन भी किया। इनकी प्रकाश में आई पुस्तकों में "जयशंकर प्रसाद (1919-40), हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी (1942), आधुनिक साहित्य (1950), महाकवि सूरदास (1953), प्रेमचन्द : एक विवेचन (1954), नया साहित्य : नए प्रश्न (1955), राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएँ (1961), कवि निराला (1965), राष्ट्रीय साहित्य और अन्य निबन्ध (1965), प्रकीर्णिका (1965) हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास तथा आधुनिक काव्य : रचना और विचार ऐसी पुस्तकें हैं जिनकी सामग्री दूसरे रूप में पहले प्रकाशित हो चुकी है। 1967 में आचार्य वाजपेयी का निधन हुआ और उनके मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तकें हैं- नयी कविता (1976), रस- सिद्धान्त : नए सन्दर्भ (1977), आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा (1978), कवि सुमित्रानन्दन पन्त (1976), रीति और शैली (1979) आदि। इनमें कुछ अप्रकाशित सामग्री है और कुछ पूर्व प्रकाशित।"[1]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी एक छायावादी या स्वच्छन्दतावादी समीक्षक के रूप में जाने जाते हैं किन्तु इसके साथ उनका एक रूप रसवादी समीक्षक का भी है। उनकी ये रस विषयक मान्यताएँ उनके अनेकों निबन्धों में यत्र-तत्र मिल जाती है। जो उनके रसवादी रूप को स्पष्ट करती है। उनका मानना है कि "रस शब्द भारतीय साहित्यशास्त्र का बहुप्रचलित और सर्वविदित शब्द है। प्रायः ढाई हजार वर्षों से इस शब्द का अनेकानेक ग्रन्थों में प्रयोग होता आ रहा है। इस अत्यन्त दीर्घकालावधि में प्रयुक्त इस शब्द का महत्त्व अकेले इस बात से ही सिद्ध हो जाता है कि आज तक इसके प्रयोग में कमी नहीं आई बल्कि इसके स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों और मनीषियों के नित्य नवीन विचार उन्मीलित होते रहते हैं। वर्तमान समय में काव्य में रस की स्थिति के विषय को लेकर अनेक चिन्तय धारणाएँ व्यक्त की जा रही हैं जिसमें से प्रमुख यह है कि काव्य में रस की संस्थिति ही नहीं होती।"[6] शुक्ल जहाँ हृदय की मुक्तावस्था को रसदशा स्वीकारते हैं वहीं आचार्य वाजपेयी काव्य से उत्पन्न आनन्द को रस मानते हैं। उनके अनुसार "काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है, जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौन्दर्य-संवेदन उत्पन्न करता है। इसी सौन्दर्य-संवेदन को भारतीय पारिभाषिक शब्दावली में 'रस' कहते है।"[7] स्पष्ट है कि आचार्य वाजपेयी सौन्दर्य-संवेदन को रस मानते हैं और जिस प्रकृत मानव अनुभूति से सौन्दर्य की उत्पत्ति होती है उसे वे सार्वजनिक वस्तु स्वीकारते हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी का मानना है कि- "रस काव्यानुभूति का दूसरा नाम है, वह अनुभूति सुखात्मक दृश्यों पर अवलम्बित रह सकती है और दुःखात्मक दृश्यों पर भी।"[8] इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य रस का सम्बन्ध काव्यानुभूति और काव्य-कला से मानते हैं और जीवन के किसी भी पक्ष सत-असत, राम-रावण और सुख-दुःख को काव्य के लिए वर्जित या बहिष्कृत नहीं करना चाहते बल्कि इन सभी विषय को कल्पना और अनुभूति का विषय मानते हुए काव्यजगत् के लिए आस्वाद्य मानते हैं। प्राचीन भारतीय आचार्यों के समान ही वाजपेयी की रस धारणा भी सीमित व स्थूल न थी कि उसे मात्र सत पक्ष या नैतिकता पर ही आश्रित मानते बल्कि वे तो काव्य-मात्र में रस सत्ता स्वीकारते हैं। इनकी दृष्टि में रस अतिशय स्वतन्त्र, सार्वजनिक तथा अव्याहत काव्य तत्त्व है। उनके अनुसार "सम्पूर्ण काव्य किसी रस को अभिव्यक्त करता है। काव्य का वह रस किसी स्थायी भाव का आश्रित होता है और वह स्थायीभाव रचयिता की अनुभूति से उद्गम प्राप्त करता है।"[9] वाजपेयी अनुभूति में ही रस मानते हैं। रस की धारणा को व्यापक बनाते हैं और सभी प्रकार की अनुभूतियों व भावनाओं को उनमें सम्मिलित करना चाहते हैं। वे प्रत्येक काव्य में यदि वह वस्तुतः काव्य है तो उसमें मानव जीवन के लिए आह्लादकारिणी भावात्मक, नैतिक और बौद्धिक अनुभूतियों का संकलन मानते हैं। 'रस' शब्द का आशय काव्य की इसी मानवतावादी सत्ता से निकालते हैं और अनुभूति को रस से विलग करके नहीं देखते हैं। "वह वस्तु जो कल्पना के विविध अंगों और मानसछवियों का नियमन और एकान्वय करती है, अनुभूति कहलाती है। अतएव अनुभूति काव्य का निर्णायक और केन्द्रीय तत्त्व है जिसका क्षरण और विन्यास काव्यकल्पना तथा मानवता के ऐसे श्रेष्ठ उपादान होते हैं जिनसे काव्य में मूल्य और महत्त्व की प्रतिष्ठा होती है।"[10]

आचार्य वाजपेयी कोरी अलौकिकता को पाखण्ड मानते है। इस अलौकिकता के कारण कवियों पर कोई सामाजिक नियन्त्रण नहीं रह जाता और वे अलग जाति में शुमार किए जाने लगते हैं। रस को आचार्य काव्य की मूलभूत वस्तु मानते हैं किन्तु अलौकिकता को तभी स्वीकारते हैं जब वो लौकिकता पर आधारित हो उनके अनुसार- "रसास्वाद सर्वथा आनन्दमय है और वह किसी दृष्टि से लौकिक होते हुए भी अलौकिक है। लौकिक इसलिए कि लौकिक होते हुए व्यावहारिक रसास्वाद की प्रकृति और परिधि से भिन्न है। वाजपेयी काव्यानुभूति और व्यावहारिक लोकानुभूति मे अन्तर मानते हैं।"[11] रस की अलौकिकता के सम्बन्ध में आचार्य का कहना है कि "रसवादी काव्य की आत्मा रस को अलौकिक मानते हैं। यह अलौकिकता का पाखण्ड केवल यहीं तक रहता तो

एक बात थी। यह जिस असत्य आधार पर स्थिर हुआ उसने साहित्य का बड़ा अनिष्ट किया है। अलौकिकता के नाम पर बेधड़क लौकिकता ही बढ़ती गई और धीरे-धीरे उसने जो स्वरूप धारण किया, वह बड़ा ही हेय हुआ।"[12]

ध्वनि को आचार्य वाजपेयी रस-प्रतीति हेतु अनिवार्य मानते हैं। उनका मत है कि "जिस काव्य में ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं, सहृदय को रस की प्रतीति कराने का सामर्थ्य नहीं उसके काव्यत्व में ही कमी है।"[14] वे अलंकार, ध्वनि व वस्तुध्वनि सभी को रस की परिधि में मानते हैं। उनके अनुसार रसरहित वस्तुध्वनि और रस रहित अलंकार-ध्वनि की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि काव्य की आत्मा रस है। वाजपेयी की व्यावहारिक आलोचनाओं से भी उनके सिद्धान्तों की पुष्टि होती है। वे कामायनी को प्रथम कोटि की रचना प्रमाणित करते हुए उसे रसध्वनि प्रधान मानते हैं। इस काव्य में वस्तुध्वनि व अलंकार-ध्वनि की भी कमी नहीं। कामायनी में रसों का जो संगम और भावों की टकराहट है उसके वर्णन में आचार्य वाजपेयी की रस दृष्टि भी स्पष्ट होती है। वे कामायनी से क्रमशः अलंकार-ध्वनि और वस्तुध्वनि की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं, यथा

"इस चिर प्रवास श्यामल पथ में छायी पिक प्राणों की पुकार
बन नील प्रतिध्वनि नभ अपार।

'यहाँ चिर-प्रवास श्यामल-पथ में पिकप्राणों की प्रतिध्वनि के रूप में नील-नभ की कल्पना उत्प्रेक्षा अलंकार को ध्वनित करती है।'

यह नीड़ मनोहर कृतियों का यह विश्वकर्म रंगस्थल है
है परम्परा लग रही यहाँ ठहरा जिसमें जितना बल है।

इड़ा तथा श्रद्धा सर्ग की अन्य पंक्तियों के द्वारा प्रवृत्ति मार्ग को ग्रहण करने की वस्तु ध्वनित है।"[15] इस प्रकार आचार्य कामायनी में वस्तुध्वनि व अलंकार ध्वनि का वर्णन तो करते हैं परन्तु सभी के मूल में रस की सत्ता को स्वीकारते हैं। रस को काव्यानुभूति या रस संवेदन के पर्याय के रूप में व्यक्त करके आचार्य वाजपेयी ने रस को विस्तृत कर दिया है। काव्य-वैशिष्ट्य का विवेचन करते हुए आचार्यजी रस-विवेचन में बुद्धि-तत्त्व के लिए स्थान नहीं मानते, लेकिन निराला में यह तत्त्व प्रचुर मात्रा में मिलेगा। निराला की प्रसिद्ध रचना 'तुलसीदास' की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत हैं-

प्रथम विजय थी वह
भेदकर मायावरण
दुस्तर तिमिर घोर जड़ावर्त

इनके सम्बन्ध में आचार्य का कहना है कि इसमें रस व्यंग्य नहीं है, बल्कि वाच्य है। निराला की रचनाओं में वाच्यार्थ की प्रधानता है जबकि रस व्यंग्य होता है तो क्या निराला-काव्य को साहित्य से खारिज कर देना चाहिए या काव्य-शास्त्र का विस्तार करना होगा। वाजपेयी का मानना है कि "काव्य में बुद्धि-तत्त्व के लिए भी स्थान है, भावना और कल्पना के लिए भी। जिस कृति में ओजस्विता हो, प्रवाह हो, जिसका प्रभाव हम पर पड़े, उसमें काव्य की प्रतिष्ठा मानी ही जायेगी। यदि रस-सिद्धान्त के व्याख्याताओं में आज इतनी व्यापकता नहीं है तो उन्हें व्यापक बनाना होगा। आधुनिक युग प्रत्येक दिशा में नयी काव्य सामग्री का संग्रह करने को कटिबद्ध है।"[16]

आचार्य वाजपेयी का रसवाद प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त और एक उदात्त तथा व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित है। नए साहित्य के साथ पुराने सिद्धान्तों का विनियोग वे आवश्यक मानते हैं। निश्चय ही रस को पारिभाषित करने व उसके परम्परित स्वरूप को नव्यता देने का वाजपेयी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। रस को प्राचीन साहित्यशास्त्र के बन्धनों से छुड़ाया है दूसरी ओर नवीनशास्त्र के पाश से भी मुक्त रखा। रस को अनुभूति के समानधर्मी होने के कारण इसे शाश्वत एवं काल-निरपेक्ष बताया। रस को अतीत की वस्तु नहीं बल्कि वर्तमान से सम्बन्धित बताया। स्पष्ट है कि आचार्य वाजपेयी ने रस की परिधि को विस्तृत करने का सफल प्रयास किया जिसके कारण ये रसवादी आचार्य के रूप में जाने जाते हैं।

सुपुत्री श्री रामनारायण शर्मा, गांव कुयरू डाकघर देवनगर, तह. व जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश-171011, मो. 94183 53944

संदर्भ

1. नया साहित्य : नए प्रश्न : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 5
2. कवि निराला : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 3
3. नन्ददुलारे वाजपेयी : प्रेमशंकर, पृ.13
4. निराला की साहित्य साधना : रामविलास शर्मा, पृ. 192
5. नन्ददुलारे वाजपेयी : प्रेमशंकर, पृ. 28
6. रस सिद्धान्त : नए सन्दर्भ : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 28
7. आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 433
8. आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 436
9. आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 440
10. नया साहित्य : नये प्रश्न : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 170
11. नया साहित्य : नये सन्दर्भ : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 30
12. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 102
13. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 23
14. आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 400
15. आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 127
16. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 151

शोध आलेख

राजेन्द्र यादव : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

● आरती शर्मा



आधुनिक युग में व्यक्तित्व को एक मूल्य के रूप में जाना जाता है। अतः व्यक्तित्व की महत्ता विशेष रूप से बढ़ गई है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का एक व्यक्तित्व होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से समाज में एक गहरी छाप छोड़ता है। इसलिए व्यक्तित्व की जानकारी होना आवश्यक हो जाता है और एक साहित्यकार के व्यक्तित्व को जानना तो और भी ज्यादा प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि साहित्यकार के व्यक्तित्व को कृतित्व से अलग नहीं किया जा सकता। उसके भाव और विचार उसके जीवन की प्रतिछाया होते हैं।

हिन्दी कथा साहित्य के वरिष्ठ हस्ताक्षर राजेन्द्र यादव का जन्म 28 अगस्त, 1929 को आगरा नगर के राजा मंडी मुहल्ले के एक विशाल और संभ्रांत परिवार में हुआ। राजेन्द्र यादव के पिता व्यवसाय से डॉक्टर थे पर साहित्य के प्रति भी उनकी रुचि थी। यादव को बचपन में उर्दू पढ़ाई गई थी। इनके पिता ने चंद्रकांता पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। यादव ने भी उर्दू के बाद हिन्दी सीखी। प्रारंभिक शिक्षा पिता के साथ प्राप्त करने के बाद इन्होंने आगरा कॉलेज से बी.ए. और फिर 1951 में एम.ए. हिन्दी में प्रथम श्रेणी में पास किया। इन्होंने लिखना अपने विद्यार्थी जीवन से ही आरम्भ कर दिया था। इनकी सर्वप्रथम कहानी 'प्रतिहिंसा' सन् 1947 में कर्मयोगी में प्रकाशित हुई है।[1]

राजेन्द्र यादव का बचपन संयुक्त परिवार में बीता। एक इकाई के रूप में राजेन्द्र यादव के माता-पिता, छह बहनें और चार भाई थे। 1953 में इनके पिता का देहांत हो गया। राजेन्द्र यादव के अपने भाई-बहन से मधुर सम्बंध रहे हैं। इनकी पत्नी सफल लेखिका मन्नू भण्डारी पति-पत्नी ने एक दूसरे की भावनाओं का आदर करते हुए एक दूसरे की खूबियों की सराहना तथा कमियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। राजेन्द्र ने स्वतंत्र लेखन का कार्य किया, क्योंकि यह परिवार की आजीविका की चिन्ता से मुक्त रहे। इन्होंने कथा साहित्य के अतिरिक्त डायरी और पत्र भी लिखे। डायरी लेखन का रुझान इनके रचनात्मक साहित्य में देखा जा सकता है। राजेन्द्र यादव ने कुछ महीनों के लिए 'जियोलॉजिकल सर्वे' में हिन्दी अध्यापक का काम किया है। राजेन्द्र यादव सीधे-सादे, सरल वेशभूषा, सरल व्यवहार वाले व्यक्ति थे। इनका व्यवहार स्नेहमय कोमल और अहंकार इनके व्यक्तित्व को स्पर्श भी नहीं कर पाया।[2]

पठन के साथ-साथ राजेन्द्र यादव की रुचि लेखन में थी। साहित्यिक लेखन के अतिरिक्त डायरी और पत्र से पूरे मनोयोग से लिखते थे। डायरी लेखन का प्रस्ताव उनके रचनाकार साहित्य पर देखा जा सकता है। इतना ही नहीं, उन्होंने संपूर्ण साहित्य लेखन को ही आत्मीयता एवं ऊष्मा से पूर्व व्यक्ति के समान माना है। अपने कथा साहित्य में स्थान-स्थान पर पत्र लेखन का प्रभाव बड़े स्वस्थ ढंग से हुआ है। राजेन्द्र यादव ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कुछ महीनों के लिए 'जियोलॉजिकल सर्वे' में हिन्दी अध्यापक का काम किया है। 'प्रगति-प्रकाशन' में कुछ साल काम किया है। उन्होंने 'ज्ञानोदय' में भी नौकरी की है। उन्हें यह नौकरी भी अपने स्वभाव और लेखन के अनुकूल नहीं लगी।

अतः राजेन्द्र के सम्बन्ध में यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि राजेन्द्र यादव एक सीधे-सादे, सरल वेशभूषा तथा सरल व्यवहार वाले व्यक्ति थे, जिनके व्यक्ति का अंग-अंश करुणा, स्नेह सद्भाव और देश-प्रेम की भावना से सिक्त

राजेन्द्र यादव हिन्दी साहित्य जगत् के जाने-माने लेखक और प्रतिभाशली व प्रबुद्ध सर्जक थे। वे साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसा व्यक्तित्व लेकर आए, जिसमें एक ओर इतिहास का रंग है, तो दूसरी ओर आधुनिक चेतना का वह रंग भी जो हमें अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य की ओर ले जाता है।

था जैसाकि उनका साहित्य है। उनका स्वभाव अत्यंत कोमल है और व्यवहार अत्यंत स्नेहमय थे।[1]

राजेन्द्र यादव हिन्दी साहित्य जगत् के जाने-माने लेखक और प्रतिभाशली व प्रबुद्ध सर्जक थे। वे साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसा व्यक्तित्व लेकर आए हैं, जिसमें एक ओर इतिहास का रंग है, तो दूसरी ओर आधुनिक चेतना का वह रंग भी जो हमें अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य की ओर ले जाता है। यादव ऐसा इसलिए कर सके, क्योंकि वे एक साथ बहुत कुछ थे वे उपन्यासकार, कहानीकार, पत्रकार और साथ में अनुवादक भी थे। राजेन्द्र यादव में बड़ी तीव्र अनुभूति, कुशल कल्पना तथा संजीव चित्र विधायिनी प्रतिभा थी। वे हिन्दी के उन लेखकों में से हैं, जिन्होंने लेखक को स्वतंत्र पेशे के रूप में अपनाया। लोकरुचि के अनुसार लिखने के मोह से उन्होंने अपने आपको बरी रखा। रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त राजेन्द्र यादव ने आलोचनात्मक साहित्य भी लिखा। यह साहित्य विशेषतया कहानी और उपन्यास की आलोचना से सम्बन्धित है। यादव ने जिस किसी विधा पर अपनी लेखनी चलाई, उसे पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया। इसका कारण यह है कि इन्होंने वास्तविकता का चित्रण किया। इन्होंने अपने लेखकीय जीवन का आरंभ कहानी लेखन से किया। इनकी पहली कहानी 'प्रतिहिंसा' प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'कर्मयोगी' पत्रिका में 1947 ई. में मई में प्रकाशित हुई। कथा-कहानियों के संस्कार इनके मन पर बचपन से ही पड़े थे। इन्हीं संस्कारों के प्रभाव में देवगिरी को केन्द्र बनाकर एक उपन्यास भी लिख डाला था, जो कि मात्र अनगढ़ प्रयास था। इन्होंने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध को भोगे हुए, झेले हुए जीवन को, शहरी जीवन को, उसमें भी विशेषकर मध्यवर्ग को उसकी पूरी समस्याओं सहित प्रस्तुत किया।

राजेन्द्र यादव नई कहानी के एक प्रमुख प्रवक्ता थे। स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण तथा मानवीय क्षमताओं और भविष्य में अगाध विश्वास उनकी कहानियों में प्राण हैं। यद्यपि उनकी कहानियों में प्रमुखता कथ्य को ही मिलती है, तथापि उनकी कहानियों की रचना विभिन्न शिल्पगत प्रयोगों को लेकर हुई है। यादव ऐसे कहानीकार थे, जिनका सृजन कार्य जीवनपर्यंत चलता रहा। उनकी कहानियों के पात्र निम्न-मध्यवर्ग, मध्यवर्ग और उच्चवर्ग तीनों वर्गों से हैं। इन पात्रों की जातिगत विशेषताओं को उद्घाटित करने में राजेन्द्र यादव को सफलता प्राप्त हुई। उनके पात्र कृत्रिम मुखौटे नहीं लगाते। वे स्वाभाविक रूप में हमारे सामने आते हैं। राजेन्द्र यादव की कहानियों का क्षेत्र काफी लम्बा-चौड़ा है। यादव की सभी कहानियां आधुनिकता बोध को लेकर लिखी गई हैं।[2] उनके प्रकाशित कहानी संग्रह निम्नवत् हैं

'जहां लक्ष्मी कैद है' राजेन्द्र यादव की सत्रह कहानियों का संग्रह है। संग्रह की ही इस कहानी में यादव ने पूंजीवाद वर्ग और भीरू अंधविश्वास हास्यस्पद स्थिति को उभारा है। लक्ष्मी कैद इसलिए है कि उसके विवाह के बाद उसके पिता की लक्ष्मी ही चली जाएगी। उसका पिता उस पूंजीवादी वर्ग का प्रतीक है, जो रक्तपात शून्य, अनवरत-गला दबाने की निर्मम क्रिया में विश्वास करता है। आर्थिक वितरण की स्वातंत्र्योत्तर समस्या ने इस कहानी को रोमानी वातावरण से उठाकर सोद्देश्य सामाजिक कथा का आकार दे दिया है। 'किनारे से किनारे तक' व्यष्टि बोध की कहानी है। इसमें व्यक्ति मन की उस स्थिति को अंकित किया है जब मनुष्य आशंका और शक के किन्हीं आकारहीन घेरों में घिरकर एक मानसिक यातना को जीता है, यादव ने मानव जीवन की अन्य अनेक विडम्बनाओं, विवशताओं तथा विद्रूपताओं का अंकन 'भविष्यवक्ता', 'बिरादरी बाहर' आदि कहानियों में किया है।

'छोटे-छोटे ताजमहल' में वैवाहिक स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों के विविध आयामों को ताजमहल के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्ति दी गई है तथा आधुनिक जीवन में भावनात्मक सम्बन्धों की अनुपस्थिति की बात भी उठाई गई है। 'टूटना' में राजेन्द्र यादव की कहानिहयों का ही नहीं, हिन्दी कहानी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण संग्रह है। 'टूटना' का किशोर भी एक विभिन्न प्रकार के तनाव में ग्रस्त है। वह दो स्तरों पर जीता है। एक स्तर लीना के साथ उसकी सामान्य मध्यवर्गीय विवाहित जिन्दगी जीने में व्यस्त होता है तो दूसरा स्तर उस सामान्य मध्यवर्गीय विवाहिता जिन्दगी में लीना के आभिजात्य आग्रहों के कारण उसे जीना पड़ता है।

'अपने पार' संग्रह में यादव की दस कहानियां हैं। ये कहानियां सशक्त और गहरे अर्थों वाली हैं जिनके नाम हैं 'अपने पार', 'मेहमान', 'भविष्य के आस-पास मंडराता अतीत', 'दायरा', 'रिमाइंडर', 'फ्रेंच लैदर', 'अनुपस्थित संबोधन', 'आत्म साक्षात्कार', 'शहर की यह रात' और 'मेहमान है' कहानी का क्लर्क हीन भावना से ग्रस्त है। इस कहानी में मध्यवर्गीय परिवार का सुंदर खाका खींचा गया है। 'भविष्य के आस-पास मंडराता अतीत' उस पति के तनाव से पूर्ण कहानी है।

'राजेन्द्र यादव की श्रेष्ठ कहानियां' संग्रह में राजेन्द्र यादव

की चुनी हुई चर्चित और अविस्मरणीय कहानियां हैं, जो अपने प्रभाव के कारण ही लगातार अनुवादित और संकलित होती रही हैं। ये कहानियां हैं 'अपने पार', 'बिरादरी बाहर', 'एक कमज़ोर लड़की की कहानी', 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'तलवार पंचहजारी', 'प्रतीक्षा', 'पेट्रोल पम्प' में पति के निरंकुश एकाधिकार और रूढ़ नैतिकता के प्रति संध्या का गुस्सा अपनी स्थिति की असहायता का बोध भी है, कहा जा सकता है कि राजेन्द्र की ये कहानियां समष्टिगत- मूल्यों के साथ वैयक्तिक, नैतिकता, समानता और मानव स्वतंत्रता के मूल्यों को महत्त्व देती हैं।

'खेल-खिलौने' यह यादव का ग्यारह कहानियों का संग्रह है। 'खेल-खिलौने' में बुद्ध भगवान की मूर्ति (खिलौना) उसी समय फूटता है, जिस समय सुधीन्द्र भाई नलिनी की आत्महत्या की सूचना देते हैं। संकेत साफ है कि जैसे खेल-खेल में खिलौना टूट जाता है, वैसे ही नलिनी का असाधारण व्यक्तित्व तोड़ दिया जाता है।[3]

अतः राजेन्द्र यादव की हर कहानी सही कोण की तलाश का परिचय देती है। अगर 'छोटे-छोटे ताजमहल' को एक कोण से उठाया गया है तो 'प्रतीक्षा' को दूसरे कोण से। राजेन्द्र यादव की कहानियां स्वाधीनता बाद के विघटित हो रहे मानव मूल्यों, स्त्री-पुरुष सम्बंधों, बदलती हुई सामाजिक और नैतिक परिस्थितियां पैदा हो रही एक नई विचार दृष्टि को रेखांकित करती है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में रूपायित व्यक्ति चेतना सामाजिक चेतना से विरत या निरपेक्ष नहीं है, क्योंकि एक अनुभूत सामाजिक यथार्थ ही उनका यथार्थ है।[4]

उपन्यासकार के रूप में राजेन्द्र यादव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही आए हैं। राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में समष्टि रूप से, आधुनिक समाज के उस व्यापक रूप के जीवंत चित्र मिलते हैं, जिनमें रूढ़ परम्पराओं सड़ी-गली सामाजिक मान्यताओं, आर्थिक विषमताओं, भ्रष्ट और स्वार्थपरक राजनीति, शोषण और उसके कारण उत्पन्न भयंकर गरीबी, आदर्शवाद के सुनहले, वायदे और जन सामान्य की हताशा आदि के मार्मिक खंड चित्र देखने को मिलते हैं। यादव के उपन्यासों में वह नवीन मानवतावाद लक्षित होता है, जिसमें परम्परागत आदर्शों के साथ नवीन विकसित प्रवृत्तियों का समन्वय है। इस दृष्टि से उनके उपन्यास हिन्दी में विशिष्ट उपलब्धियों के रूप में स्वीकारे जाएंगे। यहां पर यादव के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

'प्रेत बोलते हैं' अथवा 'सारा आकाश' राजेन्द्र यादव का पहला उपन्यास भी है और तीसरा भी। सन् 1951 में 'प्रेत बोलते हैं' नाम से छपा है। इसका शीर्षक 'दिनकर' की निम्नलिखित पंक्तियों से पकड़ा गया है

सेनानी करो प्रयाग अभय, भावी इतिहास तुम्हारा है।
ये नखत अमा के बुझते हैं, सारा आकाश तुम्हारा है।।

सारांशतया 'प्रेम बोलते हैं' में यादव ने निम्न मध्यवर्गीय समाज की यथार्थ स्थिति का अंकन करते हुए नव युवावर्ग की उन महत्त्वाकांक्षाओं के सपने संजोए हैं, जो विषम परिस्थितियों से टकराकर चूर-चूर हो जाने को मजबूर थे। इसका नायक समर जो प्रगतिशील विचारों का होते हुए भी आशीर्वाद और रूढ़ियों के शिकंजे में जकड़ा रहता है, अंत में हारकर आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार इस उपन्यास का स्वर पलायनवादी ही अधिक रहा है।

'कुलटा' (1958) में राजेन्द्र यादव ने उस मध्यवर्गीय समाज का चित्रण किया है, जहां आदमियों को क्लब, कैबरे, रेस और ब्रिज से फुर्सत नहीं है। बातचीत के विषय प्रायः अफसरों के क्रियाकलाप या किसी के ट्रांसफर और प्रमोशन इत्यादि ही होते हैं। इसे यादव ने बड़ी यथार्थता से चित्रित किया है। मिसेज तेजपाल को अनेक विचारों का वर्ग कुलटा कहता है। समष्टि रूप से यह उपन्यास नारी मन के ऊहापोहों का सफल मनोवैज्ञानिक अंकन करने में समर्थ रहा है।

'शह और मात' 1959 राजेन्द्र यादव की नवीनतम कृति है। इसमें अंतर्मन के द्वंद्वों के चित्रण की प्रचुरता है। इसकी भी विषय वस्तु यादव के अन्य उपन्यासों की भांति व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है तथा सामाजिक सम्बन्धों का अंतर्भाव केवल परिवेश के रूप में किया गया है। इस उपन्यास को उन्होंने आत्म कथात्मक शैली में लिखा है, जिसपर यथार्थवाद की छाप नहीं, उनके लेखकीय व्यक्तित्व की छाप है। राजेन्द्र यादव का यह उपन्यास भी एक सफल कृति है।

'अनदेखे अनजान पुल' (1963) उपन्यास में राजेन्द्र यादव ने एक कुरूप युवती के मानस का विश्लेषण बड़े ही रोचक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया है, जिसकी नायिका 'निन्नी' है। 'निन्नी' स्वाभाविक रूप से हीनता की ग्रंथि से परेशान है। वह 'दर्शन' नामक युवक से प्रेम करने लगती है, पर कुछ दिनों में सुनती है कि 'दर्शन' का विवाह हो गया है। इससे 'निन्नी' टूट जाती है, उसकी आशाएं खंडित हो जाती हैं। उसने दर्शन को लेकर बड़े- बड़े सपने मन में बना लिए थे, जो अचानक ही ध्वस्त हो गए थे। यादव बौद्धिक और हार्दिक दोनों स्तरों पर नर-नारी के रिश्तों में आए बदलाव और खुलेपन को अपना समर्थन देते हैं। जीवन के अनेक अनदेखे अनजान पुल हैं, जिन पर व्यक्ति अकेले गुजरता है लेकिन यदि आत्मीयता या रागात्मकता का एक भी अंश हो तो यात्रा उतनी तकलीफदेह नहीं लगती, पीड़ामय नहीं होती।

'एक इंच मुस्कान' 1965 यह उपन्यास यादव ने अपनी पत्नी लेखिका 'मन्नू भण्डारी' के साथ लिखा है। प्रस्तुत उपन्यास में तीन मुख्य पात्र हैं अमर, अमला और रंजना। अमर के माध्यम से राजेन्द्र यादव ने लेखकीय व्यक्तित्व की समस्या को समझाने का प्रयत्न किया है। व्यक्ति और लेखक का द्वंद्व अमर के चरित्र का केंद्रीय तत्त्व है। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि राजेन्द्र यादव

के उपन्यास आज के ध्वंसोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन एवं समाज की गलनशीलता, सड़ांध एवं नारी-पुरुष के बनते-बिगड़ते सम्बंधों का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करते हैं।

'मन्त्र बिद्ध' (1967) उपन्यास में एक प्रेम-प्रसंग के माध्यम से आधुनिक महानगरीय परिवेश में सम्बंधों के बनने और बिगड़ने की हद तक पहुंच जाने के यथार्थ को उभारा है। 'मन्त्र बिद्ध' का कथानक अत्यंत संक्षिप्त-सा है। प्रस्तुत छोटे से उपन्यास में कुछ स्थानों पर प्रसंगगत शौर्य, प्यार, विवाद आदि पर अनुकूल प्रतिक्रियाओं के रूप में चिंतन हुआ है। कथा का अंत अप्रत्याशित, किंतु सहज है। समूचा रचनात्मक गठन लघु उपन्यास की कसावट की शर्तों को पूरा करता है।[5]

'सारा आकाश' (1960) राजेन्द्र यादव के पहले उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं' का ही संशोधित रूप है। 'प्रेत बोलते हैं' को राजेन्द्र यादव ने जब दस साल बाद नए रूप में लिखा तो इसका नाम भी नया हो गया। 'सारा आकाश' दो खंडों में बंटा हुआ उपन्यास है। 'प्रेत बोलते हैं' शीर्षक देते हुए मध्यवर्गीय परिवेश के रूढ़ संस्कारों को 'प्रेत' करार दिया गया था। जबकि 'सारा आकाश' युवा वर्ग की उन प्रेतों से मुक्ति का संकेत है। 'सारा आकाश' में राजेन्द्र यादव ने कुंठाग्रस्त, निरंतर संघर्षरत और सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में टूटन महसूस करते हुए मध्यवर्गीय जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

'उखड़े हुए लोग' (1956) के समर्पण में कहा गया है 'कोई तो आखिर होंगे, जो रूढ़ियों के मुर्दों की छाती पर पांव रोपकर जीवन का शंख फूकेंगे। और जिनके रथचक्रों की लीकों पर, युग की गंगा अपनी दिशाएं खोजेगी, ताकि जीवित लाशों की राखों में, प्राणों का स्पंदन और सपनों की चेतना जागे।'

राजेन्द्र यादव का प्रत्येक उपन्यास मृत रूढ़ियों को चुनौती देने वाले चरित्रों की संघर्ष कथा है।[6] 'उखड़े हुए लोग' राजेन्द्र यादव का प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास में यथार्थवाद का सफलता से चित्रांकन हुआ है। इसमें युद्धोत्तरकालीन स्त्री-पुरुष के बनते-बिगड़ते एवं बदलते सम्बंधों का यथार्थ चित्रण तो किया ही गया है, वर्तमान राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का भी यथार्थवादी चित्रण हुआ है।

राजेन्द्र यादव ने कथा साहित्य के अतिरिक्त अन्य साहित्य पर भी लेखनी चलाई है, जिसमें वे सफल भी हुए हैं। 'व्यक्ति चित्र : औरों के बहाने' पुस्तक में यादव ने अपने निजी अनुभवों को उभारा है, अपने निजी अनुभव पर राजेन्द्र यादव का अत्यंत बल है। यह अनुभव वैयक्तिक स्तर पर स्थूल रूप में ही अनुभूत हो, यह आवश्यक नहीं है। लेखकीय व्यक्तित्व के आधार पर सूक्ष्म रूप में तादात्म्य के बल पर भी यह अनुभव भोगे हुए यथार्थ की कोटि में आता है। उनका सारा ही लेखन इस दृष्टि से वैयक्तिकता से अनिवार्यतः जुड़ा है। 'औरों के बहाने' अपनी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न उनकी कहानियों में परिलक्षित होता है।

'आवाज़ तेरी है' यादव का ज्ञानपीठ से 1960 में प्रकाशित कविता संग्रह है। राजेन्द्र यादव ने सम्पादन कार्य भी किया है। जो इस प्रकार है नए कहानीकार पुस्तकमाला में कमलेश्वर, मोहन राकेश, फनीश्वरनाथ रेणु, मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव की चुनी हुई कहानियां। 'एक दुनिया-समानान्तर' नई कहानी का प्रतिनिधि संकलन 'कथायात्रा' तथा कथा मासिक हंस का सम्पादन किया। स्वतंत्र रूप से लेखन का कार्य करते हुए राजेन्द्र यादव ने अपनी रुचि के अनुकूल अनुवाद का कार्य भी किया है जो इस प्रकार है चेखव, तुर्गनेव, टॉलस्टाय, स्टाइनबैक और कामु की कुछ रचनाओं के अनुवाद।

अतः तीन दशकों के इस लंबे सफर में राजेन्द्र यादव ने जो कुछ लिखा है, वह मात्रा में शायद कम प्रतीत होता है। इसके दो कारण रहे हैं, पहला कारण उनकी रचना-प्रक्रिया से सम्बंधित है और दूसरा उनके व्यवसाय से। राजेन्द्र ने लिखने में कभी जल्दी नहीं की। वह एक विषय पर पहले खूब अच्छी तरह से सोचते थे, फिर लिखते थे। इन्होंने जितना लिखा है, वह इतना उच्चकोटि का है कि हिन्दी साहित्य उस पर गर्व करता रहेगा। हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग का ऐसा पुरोधा 28 अक्तूबर, 2014 को सदा-सदा के लिए इस संसार को अलविदा कह गया।

धर्मपत्नी श्री पारस द्विवेदी, मकान नं. बी-83, फेस-तीन, सेक्टर-तीन, न्यू शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 009,
मो. 92187 07029

संदर्भ :

1. चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे, कथाकार राजेन्द्र यादव (जयपुर : पंचशील प्रकाशन, 1982), पृ. 16
2. चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे, कथाकार राजेन्द्र यादव (जयपुर : पंचशील प्रकाशन, 1982), पृ. 19
3. चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे, कथाकार राजेन्द्र यादव (जयपुर : पंचशील प्रकाशन, 1982), पृ. 16, 18
4. चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे, कथाकार राजेन्द्र यादव (जयपुर : पंचशील प्रकाशन, 1982), पृ. 9, 10
5. वेद प्रकाश, अमिताभ, राजेन्द्र यादव : कथायात्रा (गुजरात प्रकाशन, 1982), पृ. 109
6. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास (दिल्ली : अशोक प्रकाशन, 1965), पृ. 8-10
7. वेद प्रकाश, अमिताभ, राजेन्द्र यादव : कथायात्रा (गुजरात प्रकाशन, 1982), पृ. 11, 12, 19
8. वेद प्रकाश, अमिताभ, राजेन्द्र यादव : कथायात्रा (गुजरात प्रकाशन, 1982), पृ. 61-62
9. वेद प्रकाश, अमिताभ, राजेन्द्र यादव : कथायात्रा (गुजरात प्रकाशन, 1982), पृ. 21

आस्था

काशी
नाम एक नगर अनेक

● हरिकृष्ण तैलंग

उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद (प्रयाग) से पूर्व दिशा में बसा नगर काशी विश्व के प्राचीन नगरों में से एक है। छठी शताब्दी में थानेश्वर के सम्राट हर्षवर्धन ने प्रयाग तीर्थ पर स्नान कर सारी संपत्ति दान कर दी थी और अपनी बहन राज्यश्री से वस्त्र लेकर पहना था। वे हर कुंभ मेले में सर्वस्वदान करते थे। महाकुंभ मेला हर बारह वर्ष के अंतराल से सैकड़ों वर्षो से भरता आ रहा है। मकर संक्रांति से लेकर शिवरात्रि तक दुनिया का विशाल मेला लगभग तीन माह तक भरा रहता है। यहां विशेष पर्वो पर करोड़ों श्रद्धालु स्नान करते हैं। सन् 2013 के महाकुंभ में मौनी अमावस्या को करीब तीन करोड़ लोगों ने पवित्र संगम पर स्नान किया था।

2013 के महाकुंभ में सरकारी खजाने से 1200 करोड़ रुपयों से अधिक धनराशि व्यय की गई और करीब 6 लाख लोगों को रोजगार भी मिला। लगभग 50.83 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कुंभ के लिए अस्थायी रूप से हजारों डेरे-तंबुओं और कनातों की विशाल बस्ती बसाई गई थी। आस्था के इस अद्‌भुत रंग को देखने दुनिया भर के 10 लाख से अधिक विदेशी पर्यटक भी पहुंचे थे। त्रिवेणी की धारा में डुबकी लगाते भक्तों की आस्था देखते ही बनती है। कहते हैं, जगतगुरु आदि शंकराचार्य ने कुंभ को नया स्वरूप प्रदान कर सनातन काल से चली आ रही इस वैदिक परंपरा को पुनर्जीवित किया था। मुगल और ब्रिटिश शासकों ने भी कुंभ के आयोजन में भरपूर सहयोग और सम्मान दिया था।

कुंभ प्रयाग यानी इलाहाबाद के अलावा हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में हर तीन साल के अंतराल से होता रहा है। प्रयाग और हरिद्वार में हर छह साल में अर्धकुंभ भी लगता है। इलाहाबाद में प्रति 12 वर्षों में आयोजित होने वाले कुंभ को पूर्ण कुंभ कहा जाता है। 144 वर्षों में एक बार इलाहाबाद में जो पूर्णकुंभ होता है उसे महाकुंभ मेला भी कहते हैं। 2013 का पूर्णकुंभ महाकुंभ मेला ही था।

काशी का ज्ञात इतिहास जहां गौरवशाली हजारों वर्षो की समृद्ध परंपरा की विस्तृत कथाएं बताता है वहीं यह नगर पुराणों में वर्णित पौराणिक पुरुषों की महानता का गवाह रहा है। ये कथाएं भारतीय जनता के मानस में रची-बसी हैं तथा उन्हें प्राचीन संस्कृति से समृद्ध करती हैं। महान नगर काशी को भगवान शिव के त्रिशूल पर बसा माना जाता है, धरती पर नहीं। इसीलिए जन-जन यह मानता है कि काशी में किसी भी जीव कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी आदि की मृत्यु होने पर वह सीधे शिवलोक यानी स्वर्ग जाता है। इस मान्यता के कारण देश-विदेश से सैकड़ों लोग काफी वृद्ध होने पर काशी आकर बस जाते हैं। वे इस पावन नगरी में मृत्यु की कामना करते हुए मृत्युपर्यंत रहते हैं।

अयोध्या के राजा हरिश्चंद्र की कथा हर भारतीय जानता है। राजा हरिश्चंद्र ने सपने में ऋषि विश्वामित्र को अपना संपूर्ण राज्य दान में दे दिया था। दूसरे दिन वे ऋषि आ गए तो राजा ने अपना राज्य उसे दे दिया। काशी आकर उन्होंने अपनी पत्नी रानी शैव्या को और अपने आपको भी बेच दिया। हरिश्चंद्र को खरीदा काशी श्मशान के डोम ने और पत्नी रानी शैव्या को खरीदा दासी के रूप में एक ब्राह्मण ने। बेटा रोहित बहुत छोटा था इसलिए अपनी मां रानी शैव्या के पास ही रहा।

काशी को बनारस या वाराणसी भी कहते हैं। काशी को गंगा नदी के किनारे बसा माना जाता है। शिवजी का विश्वनाथ मंदिर सारे भारत में प्रसिद्ध है। दरअसल काशी या वाराणसी वरुणा और असी नदियों के संगम पर बसा है इसलिए इसे वाराणसी या बनारस कहा जाता है। यह कोई आम शहर नहीं है। यह ब्रह्मंडीय नगर यानी भगवान शिव की अति प्राचीन नगरी है। संस्कृत के प्राचीन साहित्य में काशी को पृथ्वी के सभी नगरों से अलग माना जाता है। कला की साधना से लेकर मोक्ष पाने के लिए लोग यहां आते हैं, निवास करते हैं और ज्ञान व कला की साधना करते हैं।

संत कबीर ने अपना लंबा जीवन इसी पवित्र नगरी में बिताया लेकिन मृत्यु के पूर्व वृद्धावस्था में काशी के पास के कस्बे मगहर में चले गए। कबीर संत थे और बड़ा पवित्र जीवन जीते रहे

काशी अब प्राचीन धार्मिक नगर भर नहीं रहा। अब देश के दूसरे नगरों की तरह आधुनिकता की दौड़ में शामिल हो चुका है। यहां आधुनिक जीवन जीने की नई आधुनिक शैली पनप चुकी है। अब यह नगर केवल संस्कृत के विद्वानों, हिंदी के पंडितों, कवियों की नगरी और तीर्थ भर नहीं रहा है। बीसियों आधुनिक कॉलेज और कुछ विश्वविद्यालय यहां खुल चुके हैं। पंडित मदनमोहन मालवीय ने यहां कई दशकों पहले बनारस हिंदू विश्वविद्यालय स्थापित किया था। संस्कृत शिक्षा का सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय भी यहां है। किताबें, पत्र-पत्रिकाएं छपने का भी बनारस प्रमुख केंद्र बन चुका है। यह नगरी संत कबीर, संत तुलसीदास, भारतेन्दु हरिश्चंद, जयशंकर प्रसाद (आंसु/कामायिनी के रचयिता) आदि हिंदी के महान कवियों और लेखकों का नगर है।

थे। उनकी मान्यता थी कि काशी में मरने से तो हर एक जीव को स्वर्ग मिलता है, तब कबीर को स्वर्ग मिलेगा तो भगवान यानी राम की कौन-सी कृपा है। कबीर ने कहा "जो कबिरा काशी मरे, राम ई कौन निहोरा। इसलिए वे मगहर जाकर रहने लगे। मान्यता है कि मगहर में मरने पर निश्चित नरक मिलता है। तो काशी में मरने पर 'रामई कौन निहोरा' कहकर कबीर मगहर चले गए थे।

आशय यह है कि कबीर अपने जीवन की पवित्रता के बल पर ईश्वर को भी चुनौती देने से नहीं चूके। जब कोई पाप किया ही नहीं तो ईश्वर क्यों नरक देगा, चाहे काशी में मरो या मगहर में। कबीर ने यह भी कहा है कि "तू तू करता तू भया.../ मुझमें रहो न हूं..." अर्थात् ईश्वर का नाम जपते-जपते मैं रहा ही कहां? मैं तो खुद ईश्वरमय हो गया। कबीर ने यह भी कहा "जब मैं मरहौं तो हरि मरहै/ जब मैं न मरहौं तो हरि क्यों मरिहै यानी मेरे मरने पर तो भगवान भी मर जाएगा। अर्थ यह कि जब मैं मर जाऊंगा तो हृदय भी मर जाएगा, उसकी धड़कन बंद हो जाएगी। तब उस बंद हृदय में चेतन ईश्वर कैसे रहेगा?

काशी अब प्राचीन धार्मिक नगर भर नहीं रहा। अब देश के दूसरे नगरों की तरह आधुनिकता की दौड़ में शामिल हो चुका है। यहां आधुनिक जीवन जीने की नई आधुनिक शैली पनप चुकी है। अब यह नगर केवल संस्कृत के विद्वानों, हिंदी के पंडितों, कवियों की नगरी और तीर्थ भर नहीं रहा है। बीसियों आधुनिक कॉलेज और कुछ विश्वविद्यालय यहां खुल चुके हैं। पंडित मदनमोहन मालवीय ने यहां कई दशकों पहले बनारस हिंदू विश्वविद्यालय स्थापित किया था। संस्कृत शिक्षा का सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय भी यहां है। किताबें, पत्र-पत्रिकाएं छपने का भी बनारस प्रमुख केंद्र बन चुका है। यह नगरी संत कबीर, संत तुलसीदास, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद (आंसु/कामायिनी के रचयिता) आदि हिंदी के महान कवियों और लेखकों का नगर है। पंडित राज जगन्नाथ जो संस्कृत और हिंदी के महान कवि और प्रकांड पंडित थे, यहीं रहे और स्वर्गवासी हुए थे। उन्होंने 'गंगा लहरी' में गंगाजी की स्तुति गाई है।

काशी में प्राचीन काल से संस्कृत के सैकड़ों विद्वान, धर्म के पंडित आदि निवास करते रहे थे। इन विद्वानों में दक्षिण भारतीय संस्कृतज्ञों की अच्छी संख्या भी थी। पुष्टि मार्ग के आचार्य महाप्रभु वल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट यहां ही रहते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म छत्तीसगढ़ के चम्पारण्य में हुआ था। दुनिया भर में अपने गायन और वाद्य में निपुण दिग्गज कलाकारों की यह नगरी है। शहनाई वादक बिस्मिल्ला खां जीवन भर यहीं रहे। यहीं उन्होंने जन्नत पाई। कई मशहूर कलाकारों ने यहां रहकर साधना की और अपनी कला से भारत का नाम रोशन किया। अनेक साहित्यकारों ने यहां रहकर उत्कृष्ट कृतियां रची हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद इसी पवित्र नगरी के वासी थे। पास ही काशी से 13 किलोमीटर दूर लमही गांव है जहां प्रेमचंद रहते थे और 'हंस' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे। प्रेमचंद ने कोई तीन सौ कहानियां और 12-13 उपन्यास लिखे हैं।

काशी में गंगा नदी उत्तरवाहिनी अर्धचंद्राकार बहती है। यहां का विश्वनाथ मंदिर तो प्रसिद्ध है ही, गोपालजी के मंदिर को देखने भी असंख्य भक्तगण जाते हैं। विश्वनाथ महादेव का भव्य मंदिर महेश्वर (मध्यप्रदेश) की विख्यात मराठा रानी अहिल्या बाई होल्कर ने बनवाया था। मंदिर पर सोने का पत्तर पंजाब के राजा रणजीत सिंह ने चढ़वाया था। विश्वनाथ मंदिर के बगल में बादशाह औरंगजेब द्वारा बनवाई आलमगीरी मसजिद बनी हुई है। काशी में लगभग 50 शिव मंदिर हैं और अलग-अलग स्थानों पर देवी दुर्गा के मंदिर हैं। चौंसठ योगनियों के मंदिर भी यहां हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने काशी में एक अखाड़ा और हनुमान मंदिर भी स्थापित किया था। इसी नगर में रहकर तुलसीदास ने 'रामचरित मानस', 'विनय पत्रिका', 'हनुमान बाहुक', 'हनुमान चालीसा' आदि ग्रंथों की रचना की थी। यहीं उनका स्वर्गवास भी हुआ था। 'श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ शरीर' आदि ग्रंथों की रचना में रहकर तुलसीदास ने रामलीला का सूत्रपात किया था। आज भी काशी में हर वर्ष रामलीला होती है। काशी नरेश के वंशज जो काशी के रामनगर महल में रहते हैं, इस रामलीला के संरक्षक हैं। बहुत बड़े मैदान में रामलीला होती है। इस मैदान में एक ओर अयोध्या और दूसरी ओर लंका बनी है।

वर्तमान में काशी पर्यटन स्थल और महानगर है। पास ही बौद्ध तीर्थ सारनाथ है जहां भगवान बुद्ध ने पांच शिष्यों को पहला प्रवचन दिया था। एक हिरणी ने भी पास खड़े होकर उनका प्रवचन सुना था। बौद्ध धर्म बाद में दो शाखाओं में बंट गया हीनयान और महायान। सारनाथ में सम्राट अशोक ने बहुत बड़ा स्तूप बनवाया था। मृगदा का मंदिर भी यहां प्रसिद्ध है जो उस हिरणी की स्मृति में बना है जिसने बुद्ध का पहला प्रवचन सुना था। सारनाथ में प्रायः बौद्ध धर्म मानने वाले सभी देशों के मंदिर, मठ, साधनागृह बने हैं। यहां बहुत बड़ा म्यूजियम भी है। भारत के राष्ट्रीय ध्वज में जो चक्र बना है और तीन सिंहों वाला प्रतीक चिन्ह भारत सरकार ने अपनाया है, वह अशोक स्तंभ सारनाथ के म्यूजियम में देखा जा सकता है। हिंदी भाषा के लिपि अक्षर किस तरह विकसित हुए सारनाथ के म्यूजियम में उन्हें भी देखा जा सकता है।

काशी के पास ही है प्रेमचंद का गांव लमही है। लमही काशी से लगभग 13 किलोमीटर दूर है। प्रेमचंद रोजाना पैदल काशी से लमही आते-जाते थे। बनारस में प्रेमचंद ने 'सरस्वती' नामक प्रिंटिंग प्रेस जीविका के लिए खोल रखा था। 'हंस' नाम की साहित्यिक पत्रिका का भी वे प्रकाशन करते थे। प्रेमचंद के दो पुत्र थे श्रीपत राय और अमृत राय। श्रीपत राय अच्छे चित्रकार थे और और अमृत राय उपन्यास और कहानियां लिखते थे। प्रेमचंद की मृत्यु के बाद श्रीपत राय दिल्ली में रहने लगे और अमृत राय इलाहाबाद में। 'कलम का सिपाही प्रेमचंद' शीर्षक से अमृत राय ने प्रेमचंद की जीवनी लिखी है। साथ ही प्रेमचंद की कहानियां और उपन्यास भी आकर्षक रंग से 'हंस प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित किए थे। हालांकि प्रेमचंद की रचनाएं उनकी मृत्यु (सन् 1936) के पूर्व भी छप चुकी थीं। हिंदी पढ़ा-लिखा शायद ही कोई पाठक हो जिसने प्रेमचंद का लिखा अधिकांश साहित्य न पढ़ा हो।

काशी में बुढ़वा मंगल उत्सव

बनारस निवासी विख्यात संगीतज्ञ पंडित छन्नूलाल के अनुसार, "भगवान विश्वनाथ की नगरी बनारस (काशी) में वैसे तो रोज ही उत्सवनुमा माहौल रहता है, पर वसंत की बयार पंचमी से माहौल और खुशनुमा हो जाता है। होली में होली गाने, रंग-गुलाल खेलने, घर-घर मिलने-जुलने जाने और मिठाइयां खाने का चलन तो है ही, हम लोग होली से ही 'बुढ़वा मंगल' संगीत नृत्योत्सव का इंतजार करने लगते हैं। प्राचीन नगरी बनारस में होली के बाद जो सबसे पहला मंगलवार आता है, उसे ही 'बुढ़वा मंगल' कहा जाता है। इसी दिन यह संगीत नृत्य उत्सव गंगाजी के भव्य और विस्तृत तट पर आयोजित होता है। पहले तो दो-तीन बजरा (नाव) में कलाकार होते थे। हालांकि वे नावें आपस में बंधी होती थीं और गंगाजी की धार में हौले-हौले बहती रहती थीं। गंगा की धार, संगीत के स्वर और प्रकृति की सुषमा के बीच वह अद्भुत संगीत उत्सव मनाया जाता था। वाकई वो अद्भुत अनुभूति के पल होते थे। परंतु कुछ सालों से यह परंपरा लगभग समाप्त प्रायः सी हो गई है लेकिन सरकारी प्रयास से दशाश्वमेघ घाट और कुछ निजी प्रयास से अन्य घाटों पर भी 'बुढ़वा मंगल' संगीत नृत्य उत्सव मनाया जाने लगा है। इस उत्सव में चैती, दादरा, ठुमरी वगैरह गाने का चलन है।

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार और कवि तथा इतिहास में विख्यात जगत सेठ के वंशज भारतेन्दु हरिश्चंद्र भी 'बुढ़वा मंगल' का भव्य आयोजन कई नावों को बांधकर करते थे। तत्कालीन काशी के कई मशहूर कविगण तथा संगीतकार उन नावों के बेड़े में सवार होते थे। सुसज्जित बेड़ा गंगा की धार में धीमे-धीमे बहता रहता जिससे माहौल और भी अविस्मरणीय हो जाता था।

उत्तरकाशी (उत्तराखंड)

एक काशी उत्तराखंड राज्य में भी है जिसे उत्तर काशी कहा जाता है। पहले यह गढ़वाल जिले का अंग था, पर 24 फरवरी, 1960 से यह जिला मुख्यालय भी बना दिया गया। यहां पहुंचने के लिए सबसे नजदीकी रेलवे स्टेशन ऋषिकेश 145 किलोमीटर पड़ता है और एयरपोर्ट लगभग 162 किलोमीटर दूर जोली ग्रांट में। सड़क मार्ग से बस/टैक्सी द्वारा यहां दिल्ली, लुधियाना, अंबाला, सहारनपुर, देहरादून, ऋषिकेश, हरिद्वार तथा उत्तराखंड के लगभग सभी मुख्य नगरों से पहुंचा जा सकता है। दिल्ली से उत्तरकाशी लगभग 380 किलोमीटर पड़ता है। भगीरथी नदी किनारे बसा यह नगर प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है। यमुना नदी के उद्गम स्थल यमुनोत्री के रूप में यह नगर जाना जाता है। हिल स्टेशन के लिए मशहूर इस नगर में सैकड़ों की संख्या में प्राचीन मंदिर और आश्रम हैं। यहां सन् 788 से 832 के मध्य स्वयं आदिशंकराचार्य द्वारा स्थापित 'आदिशंकर ब्रह्म विद्यापीठ' नामक प्राचीन आश्रम बड़ा प्रसिद्ध है।

समुद्रतल से करीब 4436 फुट ऊपर स्थित उत्तरकाशी में ही पर्वतारोहण के लिए 14 नवम्बर 1965 को स्थापित विश्व भर में मशहूर 'नेहरू इन्स्टीट्यूट ऑफ माउंटनियरिंग' भी है। भारत की प्रथम महिला एवरेस्टर कहलाने वाली बाछेंद्री पाल ने यहीं से पर्वतारोहण का प्रशिक्षण प्राप्त कर दुनिया के सबसे ऊंचे पर्वत शिखर माउंट एवरेस्ट पर कदम रखे थे। इस रमणीय पर्वतीय क्षेत्र में एक वरुण नामक विशाल पर्वत है। यहां वरुणा और असी नामक नदियों का संगम भी है जहां श्रद्धालुगण स्नान करना पुण्य समझते हैं। मणिकर्णिका घाट और वहां स्थित शिव मंदिर भी श्रद्धालुओं की आस्था का बड़ा केंद्र है। यहां के प्रसिद्ध प्राचीन विश्वनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार सन् 1857 में राजा सुदर्शन शाह की पत्नी महारानी खनैती ने करवाया था। पास ही शक्ति यानी देवी दुर्गा के मंदिर में स्थापित करीब बीस फुट ऊंचा लोहे और तांबे से बना त्रिशूल आकर्षण का विशेष केंद्र होता है।

उत्तरकाशी में 14 जनवरी से प्रतिवर्ष लगने वाले माघ मेले में भी लाखों लोग पहुंचते हैं। उत्तरकाशी के रहवासी मुख्यतः गढ़वाली

हैं। उत्तरकाशी में कुमांयुनी और पंजाबी भाषियों की बहुतायत है। भोटिया जनजाति के लोग भी यहां बसते हैं। यहां विश्वनाथ मंदिर, कंदार देवता मंदिर, भगीरथी नदी के पार एक छोटी पहाड़ी पर स्थित कुटैती देवी मंदिर, आदि दर्शनीय हैं। कस्बे के उत्तर में उजैलि क्षेत्र है जहां साधु-संतों के अनेक पवित्र आश्रम हैं। पास के जोशियारा कसबे में भाली डैम और उत्तरकाशी से 13 किलोमीटर दूर स्थित मनैरी कस्बे का भगीरथी नदी पर बना विशाल डैम दर्शनीय है।

लगभग 29 किलोमीटर दूर चौरंगी खल में स्थित नचिकेता ताल और प्राचीन मंदिर भी पर्यटकों के आकर्षण का बड़ा केंद्र बनता है। उत्तरकाशी पर्वतारोहण, रोमांचकारी खेलों और जल क्रीड़ा का बड़ा केंद्र बनता जा रहा है। बर्फ से ढकी पर्वत चोटियों को देखने लाखों की संख्या में दूर-दूर के पर्यटक पहुंचते हैं। उत्तरकाशी से गंगोत्री जाने वाले मार्ग पर लगभग 28 किलोमीटर दूर भटवारी नामक कस्बा पड़ता है जहां उत्तराखंड से 32 किलोमीटर दूर स्थित पर्वतीय क्षेत्र दयारा बुग्याल और वहां की एक छोटी झील को देखने जरूर जाना चाहिए। उत्तरकाशी जाने वाले पर्यटक करीब 99 किलोमीटर दूर गंगोत्री जरूर जाते हैं। लगभग चार किलोमीटर दूर स्थित डोडी ताल भी पर्यटक देखते हैं।

उत्तरकाशी और उसके आसपास स्थित मंदिरों में हनुमान मंदिर, साक्षी गोपाल मंदिर, मार्कण्डेय ऋषि मंदिर, डुंडिराज मंदिर, गणेश मंदिर, गोपेश्वर महादेव मंदिर, गोपाल मंदिर, कोटेश्वर मंदिर, मां काली मंदिर, सीताराम मंदिर, केदारेश्वर महादेव मंदिर, जयपुर मंदिर, गंगा मंदिर, वर्णेश्वर महादेव मंदिर, ज्ञानवापिश्वर मंदिर, कालेश्वर महादेव मंदिर, गंगोत्री मंदिर, पुंडीर नाग मंदिर, भैरव मंदिर, अन्नपूर्ण मंदिर, दत्तात्रेय मंदिर, परशुराम मंदिर, मां महिषासुर मंदिर, ओंकारेश्वर मंदिर, देवी दुर्गा मंदिर, लक्षेश्वर मंदिर आदि भी भक्तों द्वारा जरूर देखे जाते हैं।

शिवकाशी (तमिलनाडु)

तमिलनाडु प्रांत में भी एक काशी है शिवकाशी। यह तमिलनाडु विधानसभा का क्षेत्र भी है और विरुधुनगर संसदीय क्षेत्र में आता है। यह शहर देशभर में पटाखों और माचिसों के निर्माण हेतु जाना जाता है। देश में बनने वाले पटाखे/ आतिशबाजी/ माचिसों में कुल सत्तर फीसदी यहीं बनते हैं। देश में उत्तर प्रदेश का औरैया व गुजरात के बलसाड में भी पटाखे बनते हैं। पर 'कैपिटल ऑफ फायरवर्क्स' कहलाने वाला शहर शिवकाशी तमिलनाडु के विरुधुनगर जिले में स्थित है। यहां आवागमन की बेहतर सुविधाएं उपलब्ध हैं। रेल एवं सड़क मार्ग से यह देश और प्रदेश के लगभग सभी प्रमुख नगरों से सम्बद्ध है। वायुमार्ग से आने वाले निकटतम एयरपोर्ट मदुरई में उतरते हैं।

शिवकाशी प्राचीन मंदिरों के लिए विख्यात नगर मदुरई से 70 किलोमीटर दूर पड़ता है। शिवकाशी प्रकाशन का भी व्यस्ततम केंद्र हैं। यहां मुख्यतः डायरियां/पोस्टर्स/स्टीकर्स/पैकेट कवर्स/ कैलेंडर आदि छापे जाते हैं। शिवकाशी शहर का इतिहास लगभग 600 वर्ष पुराना है। 1899 से यहां मद्रास प्रेसीडेंसी के अंतर्गत अंग्रेजों का शासन हो गया था। यह विजयनगर साम्राज्य का अंग भी रहा था। 1428 से 1460 के मध्य जब हरी केसरी पराक्रमा पांड्यन मदुरई के शासक थे तो उन्होंने यहां वाराणसी से लाकर काशी विश्वनाथ स्वामी नाम के सुंदर मंदिर का निर्माण कर उसमें एक भव्य शिवलिंग की स्थापना की और तभी से यह स्थान शिवकाशी कहलाने लगा। बाद में राजा तिरुमलई नैक्कर ने भी उस मंदिर को और भी सुंदर तथा भव्य बनाया।

इस शिवकाशी में दक्षिण भारत का सबसे बड़ा देवी काली का सात मंजिला मंदिर बद्रकालिम्मा भी है जिसमें सोने से बनी देवी काली की आकर्षक मूर्ति भक्तों की आस्था का बड़ा केंद्र है। इस मंदिर का शिखर भी काफी ऊंचा और अलंकरणों से भरा है। शिवकाशी के दूसरे प्रसिद्ध मंदिरों में अंडलकोविल, तिरुथंगल, थिरुचुली, सत्तूर, श्रीवेंकटचलापति, मरियम्मा कोयल मंदिरों में भी भक्तों का भारी जमघट लगा रहा है। 1923 में बना पाराशक्ति मरिम्मा का मंदिर भी श्रद्धालुओं का बड़ा केंद्र है। यहां प्रतिवर्ष होने वाले पांगुनी उत्तिरम फेस्टीवल में लाखों श्रद्धालु और पर्यटक शामिल होते हैं। बेडमिंटन खिलाड़ियों के प्रशिक्षण हेतु भी शिवकाशी का बड़ा नाम है। यहां का ए.जे. इन्डोर स्टेडियम में बेडमिंटन की विश्वस्तरीय प्रतियोगिताएं होती रहती हैं।

शिवकाशी को देखने न केवल देशभर के पटाखा, माचिस व्यापारी और प्रिंटिंग कार्य में संलग्न व्यवसायी आदि और धर्मालुगण जाते हैं, बल्कि प्रकृति प्रेमी भी बड़ा संख्या में पहुंचते हैं। यहां अनेक झरने, झील और बांध हैं जिनका सौंदर्य निराला लगा है। अय्यानर फाल्स्, मुथलियार ओथू, पिलावक्कल डैम, निमियेनी, कुल्लर संधना रिजर्वायर, वेम्बरकोट्टई आदि दर्शनीय हैं।

यूं तो शिवकाशी का मौसम पूरे साल गरम, शुष्क होता है पर अप्रैल से जून महीने के दिन वर्ष में सर्वाधिक गर्म होते हैं। पर्यटन की दृष्टि से अक्तूबर से मार्च तक का समय उपयुक्त होता है। यहां से लगभग 25 किलोमीटर दूर श्रीविल्लईपुत्तर है जिसे देखने भी पर्यटक जरूर जाते हैं। यहां वास्तु/स्थापत्य के लिए विख्यात एक मीनार है कोपुरम। इस मीनार को बतौर सील तमिलनाडु सरकार के राजचिह्न के रूप में उपयोग किया जाता है। पर्याप्त समय होने पर शिवकाशी पहुंचने वाले पर्यटक राजापालयम् नामक कस्बे में अय्यनार फॉल को भी देखने जाते हैं। पास ही विभिन्न प्रजातियों की गिलहरियों का केंद्र 'स्क्वारल सेंचुरी' भी है।

एल.आई.जी. 8, बीमा कुंज, कोलार रोड, भोपाल,
मध्य प्रदेश-462 042, मो. 98939 63401

आलेख

नवरात्र, शक्त्युपासना : उद्भव और विकास

● गोपाल जी गुप्त

नवरात्र भारतीय संस्कृति का उदात्त पक्ष है जिसे जीवन शक्ति, अपराजेय भक्ति, अप्रतिम अनुरक्ति हेतु निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति भाव से मनाते हैं तथा यह समृद्धि, आत्मोद्धार, संवर्द्धन, अन्याय-अनीति से विरोध की दृष्टि प्रदान करता है। देवी भागवत में चैत्र, आषाढ़, आश्विन, माघ माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक चार नवरात्रों का उल्लेख है जिन्हें क्रमशः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रतीक माना गया है परंतु मात्र चैत्र (वासंतिक) तथा आश्विन (शारदीय) नवरात्र ही प्रसिद्ध हैं जिनमें 6 माह का अंतराल है।

दुर्गा सप्तशती के अनुसार दुर्गा की नवधा शक्ति संयुक्त होकर जब महाशक्ति बनती है, उसे नवरात्र कहते हैं (नवः शक्तिभिः संयुक्तं नवरात्रं तदुच्यते)। नवरात्र भारतीय दर्शन, संस्कृति और अध्यात्म का उदात्त पक्ष है जिसे अनादिकाल से पूर्ण निष्ठा, गहन भक्ति, जीवनी शक्ति, अप्रतिम अनुरक्ति हेतु मनाया जाता है। मान्यता है कि शरद ऋतु के नवरात्र में साधक को अम्बे का कृपा प्रसाद मिलता है, समस्त विघ्न बाधाओं का नाश हो जाता है। वह धन-धान्य से समन्वित हो जाता है। (शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी। तस्यां ममैतन्माहत्म्यं श्रुत्वा भक्ति समन्वितः।। सर्ववाधाविनिर्मुक्तौ धनधान्यसुतान्वितः। मनुष्यो सत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः। मार्कण्डेयपुराण (देवी महात्म्य)।

संस्कृत में रात्र (रात्रि) शब्द विशिष्टार्थी है। यह उस समय का बोधक है जो प्राणी को मानसिक, भौतिक, पारलौकिक व्याधियां-बाधाओं से मुक्ति दिला मनसा, वाचा, कर्मणा शांति प्रदान कर जीवन में आत्मिक उन्नति करता है। ऐसी विलक्षणता पाने के लिए आधि दैविक, आधि-भौतिक, अध्यात्मिक तत्त्व नवरात्र में सहज उपलब्ध होते हैं। नवरात्र में नौ (नव) संख्या का विशिष्ट महत्त्व है। नव शब्द नूतन, नवीन का वाचक है। नवरात्र ऐसा विशिष्ट काल है जिसमें नौ की संख्या तथा काल का अदभुव सामंजस्य है (नवानां रात्रिणां समाक्षरः नवरात्रम्। समानवाहा पुंसि।। पाणिनीय शिक्षा 2/4/29)। इसे संख्या पूर्ण रात्र कह विशिष्ट काल कहा गया है। उल्लेख्य है कि भारतीय दर्शन में नौ की संख्या अखंड, अविनाशी, एकरस, परब्रह्म का रूप है। पूर्णांक होने से इसे उपनिषदों में ब्रह्म कहा गया है। 1 से 8 तक के अंक ब्रह्म के अष्टधा प्रकृति के द्योतक हैं। 1 सृष्टि का अंक है, समस्त मायिक सृष्टि का विस्तार 8 अंक तक है। अंक 9 शिव शक्ति सम्मिलन का द्योतक है।

नवरात्र भारतीय संस्कृति का उदात्त पक्ष है जिसे जीवन शक्ति, अपराजेय भक्ति, अप्रतिम अनुरक्ति हेतु निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति भाव से मनाते हैं तथा यह समृद्धि, आत्मोद्धार, संवर्द्धन, अन्याय-अनीति से विरोध की दृष्टि प्रदान करता है।

देवी भागवत में चैत्र, आषाढ़, आश्विन, माघ माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक चार नवरात्रों का उल्लेख है जिन्हें क्रमशः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रतीक माना गया है परंतु मात्र चैत्र (वासंतिक) तथा आश्विन (शारदीय) नवरात्र ही प्रसिद्ध हैं जिनमें 6 माह का अंतराल है। इन्हीं में क्रमशः आषाढ़ तथा माघ संयुक्त हो जाते हैं। वासंतिक नवरात्र का समापन रामजन्म से शारदीय का शक्तिरूपा दुर्गा (विजयदशमी) से होता है। शास्त्रों में जगत को 'अग्नि रोमात्मकं जगतः' कहा गया है। एक नवरात्र में अग्नि का प्रतीक गेहूं तथा दूसरे में सोम का प्रतीक धान का उपहार धरिणी प्रदान करती है जिससे तेज (प्रखरता) तथा माधुर्य का संगमन होता है। पौराणिक मान्यतानुसार वासंतिक नवरात्र में शक्ति (दुर्गा) की मूल उपासना होती है जब वह मधु की परम आद्यान सोमात्मक माधवी हैं, पर शारदीय नवरात्र श्रेष्ठ उपासना काल है जब वह शक्तिरूपा शारदा-दुर्गा हैं। शरद लौकिक दृष्टि से समृद्धि का प्रतीक है। इसमें शक्ति सावित्री की कला रूप में रहती है।

शक्त्युपासना के उद्भव तथा विकास को लेकर विद्वानों में मतांतर है। कुछ कहते हैं कि शक्त्युपासना अवैदिक है क्योंकि इसका उल्लेख वेदों में नहीं है, कुछ इसे आदिवासियों की देन मानते

कविता

सुकून का सागर

● केवल सिंह 'डलहौजी'

क्यों संदेश वहां से
आता नहीं
क्यों कोई खैर-खबर
मिलती नहीं
उस जहां की, जहां है
मेरी मां
मेरे पिता
और मेरे दोस्त
जिनके बिना मैं
जीने की कल्पना भी
नहीं करता था।

मेरे सारे सरोकार
उनसे ही थे
एकमात्र उनको ही
बताना चाहता था मैं
अपनी सफलता का स्तर
जिनसे संपर्क का
आज मेरे पास
कोई विकल्प नहीं।

एक भी बूंद सुकून भरी
अब मैं
क्यों नहीं जी पाता
तब जब
मां का आंचल था
सुकून का
सागर लहलहाता था।

डलहौजी, जिला चम्बा,
हिमाचल प्रदेश-176 304

लघु कथा

पाप

● हरिन्दर सिंह गोगना

वह देवी की पूजा में बैठी थी।

"मां यह कौन है...?" उसके पांच वर्षीय बेटे ने पास आकर पूछा। "यह देवी मां है...।" "हमारी भी मां...?"

"हम सबकी मां...।" कहते हुए उसने अपने बेटे से थाली में से उठाया लड्डू छीन लिया व बोली, "पहले देवी मां को भोग लगाते हैं फिर बचा हुआ खुद खाते हैं वरना पाप लगता है समझे. ..।"

"पाप...?" बच्चा थोड़ा गंभीर हो गया था। फिर बोला, "फिर तो तुम्हें भी पाप लगेगा...।"

"मुझे क्यों...?"

"तुम रोजाना पहले खुद खाती हो फिर बचा-खुदा दादी मां को खिलाती हो... वह भी तो हम सबकी मां है न...?" बच्चे ने कहा।

मां ने घूर कर उसकी तरफ देखा व वापस लिया लड्डू उसके हाथ पर रख दिया।

परीक्षा केंद्र, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब
मो. 98723 25960

हैं। कुछ विचारकों ने इसे द्रविड़ों द्वारा उपास्य बताते हुए कहा कि नौवीं शताब्दी में सनातन धर्मावलम्बियों ने इसे द्रविड़ों से ग्रहण किया। फर्क्यूहर ने अपनी पुस्तक आउटलाइन (पृ. 167) में इसका प्रसार छठी शताब्दी माना है जबकि डॉ. रमेश चन्द्र हाज़रा ने पौराणिक रिकार्ड्स (पृष्ठ 91) में इसे नौवीं शताब्दी माना है। फ्रांस के मैलेन आर्सेल ने एन्सियेण्ट इंडियन सिव्हिलाइजेशन (पृष्ठ 121) में कहा कि दक्षिणात्य डेकेन के मंदिरों में जिन वीभत्स राक्षसियों की पूजा होती है, उन्हीं के अनुकरण में काली और दुर्गा की पूजा अन्यत्र प्रारंभ हुई। पादरी अल्बर्ट स्वेट्ज़र ने इंडियन थाट्स ऐंड इट्स डेव्हेलेपमेंट (पृ. 173) में कृष्ण को द्रविड़ों द्वारा उपास्य बताते हुए कहा कि काली भी कृष्ण के साथ ही वहां पूजी जाती थी।

इसमें दो राय नहीं कि उपर्युक्त समस्त धारणाएं पूर्णतया भ्रांत, तथ्यहीन तथा कल्पनाप्रसूत हैं। वैदिक वाङ्मय के विभिन्न सूक्त, वाक् सूक्त, श्रीसूक्त, रात्रिसूक्त आदि प्रमाणित करते हैं कि उनमें शक्ति आराधना का उल्लेख है। पाणिनीय व्याकरण (4/1/49) में भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी आदि का नामोल्लेख है। (इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्र गृडहिमारण्ययव यवनमातुलाचार्याणामानुक्)। वस्तुतः मातृदेवता या शक्ति का उल्लेख एवं महत्त्व वैदिक संस्कृति में उतना ही गहन है, जितना कि आज। बीज यहां विद्यमान है, जो सृष्टि आधिदेवता वाक् है वह, वाकसूक्त के अनुसार, रुद्र के कर में धनुष सौंपती है, आकाश स्पर्श करती है, सृष्टि का सम्भरण करती है, एवं अपने अंदर सबको धारण करती है तो निश्चित रूप से उस कालखंड में ऐसी शक्ति की धारणा है जो सबकुछ संयोजित करती हैं। इस दृष्टि से सृष्टि की प्रायः एक आद्याशक्ति की अवधारणा प्राचीनतम वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। इस संबंध में पुरातात्त्विक उत्खनन भी शक्त्युपासना की प्राचीनता प्रमाणित करते हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जी.आर. शर्मा ने पुराश्मकालीन शक्ति पूजन का पुरातात्त्विक साक्ष्य मीरजापुर (उत्तर प्रदेश) के निकट बेलन घाटी तथा सोन नदी के अंचल में बसे बघोट से खोज निकाला है जहां मातृ देवियों की अनेक प्रतिमाएं मिलीं जिनकी रेडियो कार्बन विधि से विद्यमानता ईसा पूर्व 23840 ठहरती है, वहीं पर हड्डियों की मातृदेवियों की अनेक ऐसी प्रतिमाएं भी मिलीं जो ईसा पूर्व 30000 की प्रमाणित हुई हैं। अर्थात् यहां शक्त्युपासना 321 शताब्दी से भी पहले से ही प्रचलित है। भले ही इस दौरान अनेक परिवर्तन हुए होंगे, परंतु यह विद्वानों की काल्पनिक मान्यताओं को ध्वस्त करने में सक्षम तो हैं हीं।

'प्रेमांगन' एम.आई. जी. 292, कैलास विहार, आवास
विकास योजना-1, कल्याणपुर, कानपुर, उत्तर प्रदेश-208 017,
मो. 0512 257 1795

विकासात्मक आलेख

हिमाचल प्रदेश में बढ़ता हरित आवरण

● गंगा राम

हरे-भरे वृक्षों से चहुं ओर फैली हरियाली, स्वास्थ्यवर्धक जलवायु और प्रदूषणमुक्त एवं शांतिप्रिय वातावरण कुछ ऐसे आकर्षण हैं जिनके कारण हिमाचल प्रदेश को देश भर में महत्त्वपूर्ण पर्यटक स्थल के रूप में जाना जाता है। राज्य के हरित आवरण को बनाए रखने के लिए प्रदेश में अनेक पग उठाए गए हैं, जिन्हें कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों ने सराहा है। इसका श्रेय निश्चित तौर पर मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह की दूरदृष्टि को जाता है, जिनके प्रयासों से राज्य के पर्यावरण को सुरक्षित बनाने के लिए अनेक उपाय सुनिश्चित बनाए गए हैं ताकि हिमाचल प्रदेश की पहचान 'स्वच्छ एवं हरे-भरे' राज्य के रूप में कायम रहे। प्रदेश सरकार ने राज्य के अपार सौंदर्य को बनाए रखने के लिए अनेक नवीन पग उठाए हैं। इस विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रदेश में राज्य पर्यावरण सुरक्षा एवं प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को स्थापित किया गया है, जो न केवल उद्योगों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उपाय सुनिश्चित बनाता है बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संवर्द्धन के लिए भी आवश्यक कदम उठा रहा है। प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 2013-14 के दौरान प्रभावी रूप से राज्य के संवेदनशील पर्यावरण प्रबंध के लिए पर्यावरण मास्टर प्लान दस्तावेज को अंतिम रूप दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत वर्ष 2014-15 में दिशा निर्देशों को अपनाया तथा लागू किया जाएगा। राज्य का सतत विकास सुनिश्चित करने के लिए पर्यावरण नीति का पुनः विवेचन तथा पुनर्गठन किया गया। जलवायु परिवर्तन पर राज्य की नीति एवं कार्ययोजना को अनुकूल बनाने और शमन करने संबंधी रणनीति के रूप में अंतिम रूप दिया गया है। इस परियोजना के अंतर्गत विभिन्न नीतियों को कार्यान्वित किया जा रहा है। राज्य को 'हरित एवं सतत विकास' के लिए भारत सरकार के सहयोग से विश्व बैंक से 100 मिलियन डालर का विकास नीति ऋण प्राप्त हुआ है। स्थायी आर्थिक एवं हरित विकास के मॉडल की ओर रूपांतरणीय तबदीली के लिए सरकार प्रयासरत है। प्रदेश में राज्य पर्यावरण बदलाव केंद्र को और सुदृढ़ बनाया गया है ताकि धीरे-धीरे घटती ओजोन लेयर से पर्यावरण बदलाव पर होने वाले प्रभाव को कम करने के लिए आवश्यक योगदान दिया जा सके। प्रदेश की जनता के जीवन यापन से संबंधित व्यवसायों जैसे कृषि एवं बागवानी पर जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रभावों से संबंधित शोध राज्य जलवायु परिवर्तन केंद्र द्वारा किया जाएगा। हिमाचल प्रदेश राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, हर प्रकार के प्रदूषण को कम करने के की दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है। यह बोर्ड प्रदूषण की रोकथाम एवं नियंत्रण के साथ-साथ योजना एवं समन्वय के लिए नोडल एजेंसी के तौर पर कार्य कर रहा है। आर्थिक विकास और पर्यावरण सुरक्षा के मध्य उचित समरूपता को बनाए रखने के लिए बोर्ड हमेशा प्रयासरत है। पर्यावरण कानून के स्थापित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, बोर्ड द्वारा स्थायी विकास के सिद्धांतों का अनुसरण किया गया है। पर्यावरण से संबंधित मांगों, चुनौतियों एवं नये अधिनियमों को पूरा करने के लिए बोर्ड द्वारा अपनी गतिविधियों को विस्तार देने के लिए निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड वैब आधारित सम्मति व्यवस्था को अपनाने वाला उत्तर भारत में पहला बोर्ड है। इसकी उद्योग संगठनों और भारतीय उद्योग परिसंघ द्वारा भी सराहना की गई है। बोर्ड भारत का पहला बोर्ड है, जिसने सीमेंट, औषधीय, कपड़ा व खाद्य संसाधन उद्योगों के प्रदूषण के मानकों को सार्वजनिक ज्ञान क्षेत्र में अपलोड किया है। साथ ही, वास्तविक समय में वायु उत्सर्जन की ऑनलाईन निगरानी सभी सीमेंट सयंत्रों में शुरू की गई है। परिवेश वायु में आरएसपीएम की मात्रा को सप्ताह में तीन बार चौबीस घण्टे प्रदेश के 10 कस्बों व शहरों में 20 जगहों में मापा जा रहा है। बोर्ड द्वारा हर महीने सतलुज, ब्यास, रावी, यमुना, पार्वती, सिरसा, मारकण्डा, सुखना नदियों व सहायक नदियों के कुल 219 चयनित स्थानों में पानी के नमूने एकत्रित किए जाते हैं तथा उनका विश्लेषण किया जाता है। राज्य सरकार के लिए पन बिजली मुख्य विकासात्मक क्षेत्र है। हिमाचल प्रदेश, देश का पहला राज्य है, जिसने नदियों में पूरा साल भर कम से कम 15 प्रतिशत प्रवाह को बनाए रखने की नीति शुरू की है। 15 जल विद्युत परियोजनाएं अब तक वास्तविक निगरानी तंत्र स्थापित कर चुकी है। प्रमुख जल विद्युत

परियोजनाओं में कम से कम 15 प्रतिशत पानी प्रवाह की उपलब्धता के लिए पूरी तरह से वैब सक्षम आनलाईन निगरानी को अनिवार्य किया गया है। प्रदेश सरकार द्वारा राज्य में पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ संपूर्ण स्वच्छता के लक्ष्य को हासिल करने के लिए स्कूल स्तर पर तथा पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से लोगों को जागरूक करने के लिए अनेक जागरूकता अभियान आरम्भ किए गए हैं ताकि लोग पर्यावरण संरक्षण से होने वाले लाभ को समझ सके। प्रदेश सरकार के इन प्रयासों के वांछित परिणाम भी सामने आने लगे हैं।

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी,
निदेशालय, सूचना एवं जन सम्पर्क, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 002

मंडी मध्यस्थता योजना
सुनिश्चित हुए बागबानी उत्पाद के उचित दाम

● **जयन्त शर्मा**

प्रदेश सरकार द्वारा कार्यान्वित की जा रही मंडी मध्यस्थता योजना राज्य के फल उत्पादकों के लिए सहायक सिद्ध हुई है जिसके अंतर्गत उन्हें उनके बागबानी उत्पादों के उचित दाम मिल रहे हैं। राज्य में सेब, आम और नींबू प्रजाति के फलों के लिए यह योजना कार्यान्वित की जा रही है। एचपीएमसी को इस योजना के कार्यान्वयन का जिम्मा सौंपा गया है जो बाजार में न बिक पाने वाले फलों का प्रापण कर उनकी प्रोसेसिंग करता है। एचपीएमसी के सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप, मंडियों में फलों के दाम नियंत्रित करने में सहायता मिली है। मंडी मध्यस्थता योजना के अंतगर्त सेब, आम और नींबू प्रजाति के फलों की खरीद के साथ-साथ एचपीएमसी अन्य फलों जैसे- आड़ू, लिची, बादाम, स्ट्राबैरी, प्लम, नाशपाती व किवी आदि का प्रापण भी करता है। इसके अलावा, निगम फल उत्पादकों को उनके उत्पादों के बेहतर दाम दिलवाने के लिए उन्हें परामर्श एवं अन्य सहायता भी प्रदान करता है जिससे राज्य में फल विधायन उद्योग को बढ़ावा देने की दिशा में सहायता मिली है।

प्रदेश में फल उत्पादन को व्यापक स्तर पर बढ़ावा देने और फल उत्पादकों को उनके उत्पादों के बेहतर दाम सुनिश्चित बनाने के लिए प्रदेश सरकार ने मंडी मध्यस्थता योजना के अंतर्गत सेब और आम के प्रापण मूल्यों में बढ़ोतरी की है। सीडलिंग आम प्रजाति का समर्थन मूल्य 5.50 रुपये प्रति किलो और कलमी आम का मूल्य 6.50 रुपये प्रति किलो निर्धारित किया गया है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 50 पैसे अधिक है। राज्य सरकार ने इस वर्ष के लिए सेब का समर्थन मूल्य भी 6 रुपये से बढ़ाकर 6.50 रुपये प्रति किलो किया है। वर्ष 2013-14 के दौरान मंडी मध्यस्थता योजना के अंतर्गत आम, सेब और नींबू प्रजाति के फलों का प्रापण मूल्य 50 पैसे बढ़ाया गया था और लगभग 22 करोड़ मूल्य के 34,000 मीट्रिक टन 'सी' ग्रेड सेब का प्रापण किया गया। मंडी मध्यस्थता योजना के अंतर्गत इस वर्ष 15 अगस्त से सेब प्रापण का कार्य आरंभ किया गया है जो 31 अक्तूबर तक जारी रहेगा। इसके अंतर्गत 6.50 रुपये प्रति किलो की दर से 89,496 मीट्रिक टन सेब का प्रापण करने का लक्ष्य रखा गया है तथा सेब की पेटियों की चढ़ाई-उतराई के लिए 2.20 रुपये प्रति किलो की दर निर्धारित की गई है। प्रदेश सरकार ने इस योजना के तहत 'सी' ग्रेड के सेब की खरीद के लिए राज्य में 125 संग्रहण केंद्र खोले हैं जिनमें से 117 शिमला जिला, सात मंडी जिला और एक केंद्र चंबा जिला में खोला गया है। एचपीएमसी और हिमफैड इन संग्रहण केंद्रों का संचालन कर रहे हैं। अभी तक योजना के अंतर्गत 16 मीट्रिक टन सेब का प्रापण किया जा चुका है। मंडी मध्यस्थता योजना के अंतर्गत फल उत्पादों की मांग और एचपीएमसी एवं हिमफैड की आवश्यकता के अनुसार 147 प्रापण केंद्र खोले गए जिनमें से 81 केंद्र एचपीएमसी और 66 केंद्र हिमफैड द्वारा खोले गए। फलों का प्रापण 18 किलो अथवा 30 किलो के बैग या क्रैट में किया जाएगा। योजना के अंतर्गत 51 मिली मीटर अथवा इससे अधिक व्यास वाले सेब को खरीदा जाएगा। ओलों के कारण मामूली रूप से क्षतिग्रस्त और विस्तृत सेब को योजना के अंतर्गत खरीदा जाएगा।

मंडी मध्यस्थता योजना के अंतर्गत लिए जाने वाले सेब को 3 रुपये प्रति किलो की राष्ट्रीय दर से निजी फल प्रोसेसिंग इकाइयों को बेचने की भी अनुमति प्रदान की गई है। प्रदेश की आर्थिकी में बागवानी क्षेत्र के महत्व को देखेते हुए सरकार बागवानी गतिविधियों को बढ़ावा देने और बागवानों को बेहतर विपणन एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध करवाने के लिए सरकार विशेष रूप से कदम उठा रही है जिसके सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं।

वरदान सिद्ध हो रही है 'फल पौधरोपण परामर्श सेवा'

हिमाचल प्रदेश में कार्यान्वित की जा रही निःशुल्क फल पौध पोषण परामर्श सेवा बागवानों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध हो रही है। इस परामर्श सेवा के माध्यम से बागवानों को फल बागीचों में आवश्यक पोषक तत्वों की सही स्थिति जानने और उसके आधार पर उर्वरकों की उचित एवं संतुलित मात्रा निर्धारित करने में सहायता मिली है। निश्चित तौर पर इस सेवा का लाभ लेकर बागवान फल पौधों से अधिक एवं उत्तम गुणवत्ता की पैदावार प्राप्त कर रहे हैं। इस योजना के अन्तर्गत, प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में उगाए जाने वाले फल पौधों से पत्तियों के नमूने एकत्रित कर उनका रासायनिक विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण परिणामों के आधार पर बागवानों के फल बागीचों में पोषक तत्वों की स्थिति का अध्ययन कर बागीचों के लिए उर्वरकों की संतुलित मात्रा का निर्धारण किया जाता है। इसकी जानकारी संबंधित बागवानों को लिखित रूप में डाक द्वारा अथवा उद्यान विकास अधिकारी के माध्यम से भेजी जाती है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य उन क्षेत्रों में, जहां बागीचे अधिक सघन हैं, वहां पत्ती विश्लेषण विधि द्वारा फल पौधों में पोषक तत्वों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना है। इसके अलावा, पत्तियों के नमूनों के विश्लेषण के आधार पर बागीचों में फल पौधों के लिए उर्वरकों की उचित एवं स्थिर मात्रा का निर्धारण करना व इसकी जानकारी संबंधित बागवानों को देना है। इसके तहत, बागवानों के लिए ऐसी नई फल पौध पोषण प्रयोगशालाओं की स्थापना करना भी है, जिनमें बागवानों को पत्ती विश्लेषण की समस्त सुविधाएं उपलब्ध करवाई जा सकें। योजना के अन्तर्गत प्रदेश में इस समय पांच फल पौध पोषण प्रयोगशालाएं कार्य कर रही हैं। इनमें शिमला जिले के नवबहार स्थित उद्यान निदेशालय, कोटखाई एवं थानाधार, कांगड़ा जिले के धर्मशाला तथा कुल्लू जिले के बजौरा में स्थित हैं। इसके अतिरिक्त, प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में यह सुविधा उपलब्ध करवाने के लिए दो डाईंग ग्राईडिंग इकाइयां स्थापित की गई हैं, जो किन्नौर जिले के रिकांगपियो तथा चम्बा जिले के भरमौर में स्थित है। इन प्रयोगशालाओं की कुल क्षमता 25,000 पत्तियों के नमूनों के विश्लेषण करने की है। ऊना जिले के सलोह में नई प्रयोगशाला स्थापित की जा रही है। प्रयोगशाला में मुख्य पोषण तत्वों जैसे नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैगनीशियम के साथ-साथ सूक्ष्म तत्वों लोहा, मैगनीज, तांबा एवं जस्ता के विश्लेषण की सुविधा भी उपलब्ध करवाई जा रही है। संतुलित उर्वरक प्रयोग से बागवान उच्च गुणवत्तायुक्त अधिक पैदावार प्राप्त कर अपनी आर्थिकी को और सुदृढ़ कर सकेंगे। वर्ष 2013-14 के दौरान कुल 12000 पत्तियों के नमूने एकत्रित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस दौरान प्रदेश के विभिन्न जिलों से कुल 12,199 नमूने प्राप्त हुए तथा कुल 7756 बागवानों को इस सेवा का लाभ प्रदान किया गया। इस प्रकार, शिमला जिले में 2028, सोलन जिले में 964, सिरमौर जिले में 1330, किन्नौर जिले में 700, बिलासपुर जिले में 125, कांगड़ा जिले में 1438, हमीरपुर जिले में 705, ऊना जिले में 699, चम्बा जिले में 1010, मण्डी जिले में 603, कुल्लू जिले में 1636 तथा लाहुल-स्पीति में 138 पत्तियों के नमूनों का विश्लेषण किया गया। इस वर्ष के दौरान प्रदेश के विभिन्न जिलों से जून, 2014 तक विभिन्न प्रयोगशालाओं में कुल 3871 नमूने प्राप्त हुए, जिनमें से 2775 नमूनों का विधायन तथा 1117 नमूनों का विश्लेषण किया गया है। बागीचों के जिस स्थान से नमूने लिए जाएं वहां पौधों की स्थिति एक जैसी होनी चाहिए। सामान्य अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए नमूना लेने के लिए बागीचे को विभिन्न खण्डों में इस प्रकार बांटा जाना चाहिए जिससे प्रत्येक खण्ड से लिए हुए नमूने उस खण्ड की सामान्य स्थिति तथा समस्या का प्रतिनिधित्व कर सकें। एकत्रित पत्तियों को अधिक देर तक धूप में नहीं रखा जाना चाहिए। नमूना हरी व ताजी अवस्था में ही निकटतम प्रयोगशाला में पहुंचाया जाना चाहिए। पर्णपाती (डेसीडुअस) फल पौधे जैसे सेब, नाशपाती, चैरी, आड़ू, प्लम, खुमानी, बादाम इत्यादि से पत्तियां उसी मौसम में पैदा हुई टहनियों के मध्य भाग से प्रथम जुलाई से 15 अगस्त तक या फूल आने के 8 से 12 सप्ताह के बीच लिए जाने चाहिए। बागीचे की सामान्य अवस्था का प्रतिनिधित्व करने के लिए यह आवश्यक है कि पत्तियां टहनियों के फल लगने वाले भाग के निकट से न ली जाएं क्योंकि फल अपनी विकास अवस्था में निकट की पत्तियों से अधिकतम खुराक लेते हैं। इसलिए ऐसी टहनियों से प्राप्त पत्तियों से सही परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। बागबान इस योजना का लाभ उठाकर फल पौधों से अधिक एवं उत्तम गुणवत्ता की पैदावार प्राप्त कर सकते हैं, जो उनकी आर्थिकी को बढ़ावा देने में सहायक होगा।

सूचना अधिकारी, निदेशालय, सूचना एवं जन सम्पर्क, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 002

कहानी

आंखें

● बद्री सिंह भाटिया

अस्पताल से बाहर निकलने के बाद एस.आर. शर्मा यानी सुखराम शर्मा एक क्षण के लिए ठिठका। उसने बसन्ती का हाथ पकड़ा और मालरोड़ की ओर बढ़ा। वह बसन्ती के इलाज के लिए शहर के जाने-माने अस्पताल आया था। बसन्ती को काफी दिनों से पेट में दर्द हो रहा था। खाना खाने के कुछ देर बाद कई बार उल्टियाँ हो जातीं। कई बार खाना बाहर निकलता तो कई बार पीला लेसदार खट्टा सा पानी। कई बार सूखी या हल्की झागदार उल्टी होती। ऐसे में पहले घरेलू इलाज चलता रहा। उससे ठीक हो जाती थी, तो काम चल पड़ता था। दर्द के लिए अनेक प्रकार की दर्दनिवारक दवाओं और जी मितलाने के लिए भी ऐसी ही अनेक दवाओं का बदल-बदल कर उपयोग होता रहा था; परन्तु जब दर्द बढ़ा तो फिर कस्बे के अस्पताल में एक्स-रे और बाद में अल्ट्रासाउंड से पता चला कि उसकी पित्त की थैली में स्टोन जमा हो गए हैं। बहुत ज्यादा हैं और उसका इलाज गुर्दे की पत्थरी की तरह कोल्थ आदि पत्थर गलाने वाली चीजों के प्रयोग से नहीं बल्कि ऑपरेशन से ही होगा। बसन्ती इसके लिए मुकर गई। "नहीं, ऑपरेशन नहीं। वह जिन्दगी के एक झटके से तो बच गई मगर अब दूसरा नहीं।" एस.आर. शर्मा उसे काफी समझाता रहा मगर वह टस से मस नहीं हुई। जीवन चलता रहा। इस बीच वह सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त हो गाँव आ गया था। अब अस्पताल और भी ज्यादा दूर हो गया था। गाँव आकर बसन्ती के खान-पान में अन्तर आया और तकलीफ बढ़ने लगी। उसकी सौतन सुन्तली ने प्यार से समझाया कि वह ऑपरेशन करा ले। कुछ नहीं होता। यूँ दर्द सहना ठीक नहीं। उसने गाँव की दो-चार औरतों और मर्दों के नाम गिनाए-जिनके ऑपरेशन हुए हैं और कहा कि तू हिम्मत कर। मगर वह अपने दर्द लिए चेहरे के साथ उदास ही रहती।

बसन्ती असमंजस में। एक ओर तकलीफ दूसरी ओर डर। सौतन का सुझाव और पति का आग्रह। उसने अपनी एक और शंका सौतन को बताई-दीदी यहाँ तो चल जाता है-मगर वहाँ अस्पताल में। मेरा अन्धापन आड़े नहीं आएगा क्या? कैसे इतने बड़े अस्पताल में...सुना है बड़े-बड़े हॉल होते हैं-जिनमें बीसियों मरीज होते हैं। मुझे तो सदैव सहारे की जरूरत रहेगी। फिर लोग बार-बार पूछेंगे कि ये अन्धापन? मैं अब उस याद से नहीं गुजरना चाहती। इन्होंने (पति) और आपने मेरे लिए बहुत किया है, पर उस दिन को याद नहीं करना चाहती। और तू तो जानती है औरतें पूछने के बाद उन दिनों के बारे सुझाव देने लग जाती हैं जो बीत गए होते हैं। ऐसा करना था, वैसा करना था।

उसके आप्रेशन न कराने के डर का निदान एक दिन फौज से आए उसके बड़े बेटे ने कर दिया- कुछ नहीं होता माँ। तू चल मैं तेरे लिए स्पेशल वार्ड कर दूँगा। वहाँ कौन पूछेगा? उसको अपने बेटे पर पति से भी ज्यादा भरोसा था। और वह तैयार हो गई। स्पेशल वार्ड का ध्यान एस.आर. शर्मा को भी नहीं आया था। कारण, एक औसत आए वाला आदमी यदि बड़ा हो भी जाए तो-आप समझ सकते हैं। इसलिए तय हुआ कि अगले शुक्रवार को दिखाएँगे। उस दिन अस्पताल में ज्यादा भीड़ नहीं होती। उसी दिन स्पेशल वार्ड की भी बात कर लेंगे।

समय बलवान होता है। दो दिन बाद एक एस.एम.एस. आया और बसन्ती के फौजी बेटे को वापस अपनी नौकरी पर जाना पड़ा। उसकी कम्पनी की डियूटी कहीं सीमा पर लगी थी। बसन्ती काफी रोई मगर कुछ नहीं हुआ। लड़का चला गया। उसकी पीड़ा को कम करते सौतन सुन्तली ने अपने लड़के को फोन किया-पता चला वह दुर्घटनाग्रस्त हुए ट्रक को देखने दूर गया है। और फिर कई छोटी-बड़ी स्थितियों से गुजरते हुए आखिर में एस.आर. शर्मा स्वयं अस्पताल आ गया। आप्रेशन तो कराना ही था....

गेट पर से वे आगे बढ़े। बसन्ती ने अपना काला चश्मा ठीक किया और पूछा- "अब हम कहाँ जा रहे हैं?"

"अभी समय है, चलते हैं, एक चक्कर माल का लगाते हैं। उसके बाद सोचते हैं।"

"घर नहीं जाना?"

"नहीं! आज नहीं। डॉक्टर ने कहा है, स्पेशल वार्ड का कमरा



कल तक खाली होगा।"

"तब रात को?"

"हाँ! यहीं भट्टी या वर्मा के मकान में रुक जाएँगे। कल यदि कमरा मिल गया तो परसों ऑपरेशन हो जायेगा।"

"पर...।"

"पर वर कुछ नहीं। वहाँ सब ठीक है। कमरे अलग हैं और लेट-बाथ अटैच्ड हैं। फिर मैं साथ हूँ न। तुम घबराती ही बहुत हो। पहले तो...।"

"पहले भी घबराती थी, मगर तुमने जो साथ दिया उससे डर काफी कम हुआ था। अब नया डर है। फिर नई जगह से भी तो. ..।"

"अच्छा चलो अब।"

"चलो।"

वे आगे बढ़े। चलते-चलते एक मोड़ पर कुछ आभास सा पा बसन्ती बोली- "कहाँ जैसे आए हम?"

"लक्कड़ बाजार क्रास कर रहे हैं।"

"अरे ! यहाँ का तो रूप बदल गया होगा। पहले-पहल एक बार आए थे हम। तब छोटू को लकड़ी की रेल ली थी। लकड़ी का घोड़ा। और कितना खुश हुआ था वह।"

"हाँ! तू सम्भल कर चल। मेरे साथ सट कर। गाड़ियाँ बिना हॉर्न के भी चलती हैं-आगे से आने वाली से तो बच जाएँगे मगर पीछे वाली....कहीं रगड़ लग गई तो....ये साले हार्न भी बिल्कुल समीप आकर ही देतें हैं।"

"आज तू जो है साथ। बचा लेगा मुझे।" हँसी वह और उसकी बाजू जोर से पकड़ ली।

"अब तू वैसी पतली सी नहीं रही जैसी पहले थी।"

"मतलब मैं मोटी हो गई हूँ।"

"नहीं पर काया में फर्क तो है। भारी भी हो गई है।"

"लोग क्या कहेंगे कि देखो बूढ़ों को, इस उम्र में भी...।"

"मरने दे। तेरे को क्या। तू मेरे साथ है। पूछेंगे तो कह दूँगा। हम लवर हैं।" हल्के हँसा वह। वह जानता है कि इसके ऐसे सवालों से कतई भी नाराज नहीं होना है। गप्पबाजी में वे आगे बढ़ गए। आगे वे चुप हो गए थे। रिज के पास आते वह ही बोली। शायद उसे घोड़ों का आभास हुआ हो या कुछ और...रिज पर आ गये न हम?"

"हाँ!"

"एक-एक पूड़ी लो, यहीं किनारे बैठते हैं। घड़ी भर रिज का नजारा देखते हैं।"

"नजारा!" चौंका एस.आर. शर्मा। "अरे! यह क्या कह दिया? उसने तो शपथ ली थी कि वह कभी बसन्ती के अन्धेपन का एहसास नहीं कराएगा। पर...। यह बुरा मान जाएगी। दुःखी भी होगी। पर तीर कमान से निकल चुका था। वह आगे बढ़ा। पूड़ी ली और उसका हाथ पकड़ बैंच की ओर बढ़ गया। वह बोली- 'आप चुप क्यों हो गए। मैंने बुरा नहीं माना। जैसे पहले बताते थे...अब भी बताना। मैं तुम्हारी आँखों से देखूँगी। और वह विगत में खो गई।

....अस्पताल से छुट्टी हुई तो वह माँ के साथ बाहर निकली थी। आँखों पर बाहर की तेज रौशनी पड़ी। पर आँखों पर लगी हरी पट्टी ने चुंधियाने से बचाने में सहयोग दिया। फिर भी कई दिनों तक अन्दर ही अन्दर रहने से आँखें मिचमिचा गईं। कैसी धूप होगी? उसने आँखें झपकाईं और धूप से सामंजस्य बिठाया। गर्दन नीची किए आगे बढ़ने लगी। भीतर डर, कहीं टक्कर न हो जाए। माँ का हाथ जोर से पकड़ लिया था। उसने मान लिया था कि अब वह कुछ भी नहीं देख सकती थी। आँखों में पूर्व का देखा सब कुछ वैसा ही था। मगर उसके बाद क्या हुआ? कैसे प्रकृति बदली उसे नहीं मालूम। अब जीवन ऐसे ही गुजारना होगा पुरानी स्मृतियों में दूसरों के कहे-सुने और बदलते मौसम के मिजाज से। जब ज्यादा गर्मी लगेगी, जब पानी की फुहारें छुएँगी, और जब शीत लगेगी तो...तब वही सारे एहसास होते रहेंगे...आज ऐसा दिन है, आज....। मन ही मन सोचती, पिछले जन्म में उससे क्या गुनाह हुआ होगा जो जीवन का वह सुख छीन गया। वह मन ही मन उसे गाली देती रही जिसने उसे अन्धा बना दिया।

माँ के साथ आहिस्ता से आगे बढ़ी। डरी सी। बाहर की दुनिया की अभ्यस्त होने के लिए। इसी तरह की कुछ और कोशिशों के बाद वह गाँव आ गई थी। सभी पूछने आए। उसकी सहेलयाँ, बाद में रिश्तेदार। अनेक प्रश्न पूछते। सुझाव देते। वह अभी लोगों के प्रश्नों और सुझावों के बीच झूल ही रही थी कि उसके कर्नल चाचा ने एक दिन उसे बताया कि वह अब अन्धे-बहरों के आश्रम जाएगी। वहाँ कुछ काम सीखेगी... उसी दिन एस.आर. शर्मा उनके घर आया था। डरता-डरता। साथ में पंचायत प्रधान और एक दो गाँवी भी थे। उसने अपनी गलती के लिए अफसोस बताते हुए कहा था कि जो हो गया वह तो हो गया। वह उसका गुनहगार है। अपनी गलती की सजा में वह इस लड़की से शादी करना चाहता है और उसके बाकी जीवन की जिम्मेवारी भी लेता है। उसे किसी प्रकार का

इस बीच जानवर सी चीज का सिर दो-तीन बार ऊपर उठा। मगर वह घास से बाहर नहीं आ पा रहा था। और तभी प्रधान ने कहा- "करो फायर।" और धायं की आवाज के साथ एक पतली सी चीख भी उभरी और वातावरण में छा गई।

कष्ट नहीं होगा।

वह उसके प्रस्ताव पर बिफरी थी। बहुत बुरा भला कहा था और मुकर गई थी। उसके कर्नल चाचा ने भी इतना कहा था कि अभी तो इसका जीवन बनाना है ताकि यह आत्मनिर्भर बन कर रह सके। पराधीनता ठीक नहीं। दूसरे अभी यह अपने साथ हुई दुर्घटना के प्रभाव से उबर नहीं पा रही है। आपका प्रस्ताव हमारे पास है।

...एक दिन माँ ने बताया था कि शर्मा को बहुत अफसोस है। उसने अस्पताल में आकर इलाज का सारा खर्च दिया है। हमारे मना करने पर भी। उस दिन भी ट्रेनिंग का खर्चा दे गया था।

और वह आश्रम में आ गई थी। वहाँ भी यह कितनी बार आया था। बस एक ही बात-"बसन्ती जो होना था, हो गया। मैंने जानबूझ कर ऐसा नहीं किया। अब आगे की सोच।" कितनी बार अपनी गलती के लिए पश्चाताप करता।

तभी वह कहती- "क्या सोचूँ आगे की? तूने जो करना था, कर दिया। अब क्या? और अन्धेरा करूँ मैं।" तब वह अपनी बात दोहराता बसन्ती उसने यह जानबूझ कर नहीं किया। गलती से बन्दूक चल गई...मगर वह उसे दुतकारती। और वह लौट जाता।

बसन्ती सोचती जा रही थी। अपना विगत। उसके कानों में शर्मा की बात नहीं पड़ी थी। बस पूड़ी से दाने निकालती और मुँह में डालती जाती। एक प्रक्रिया सी। सामने लोग पहले की तरह आ-जा रहे थे। यह आभास कई बार होता...ऐसे ही पहले कभी भी आते-जाते होंगे। नवदम्पति, पर्यटक, फोटो खिंचवाते लोग। बॉल खेलते बच्चे। भीख माँगती एक लंगड़ी औरत, पीठ पर बोझ उठाए गंतव्य की ओर जाते कश्मीरी कुली और कभी-कभार आते-जाते विदेशी पर्यटक। इधर वक्त के साथ बच्चों के खिलौने, गुब्बारे बेचने वाले भी चल रहे थे। झण्डा सा बनाए। डण्डे में लटकाए। एक गुब्बारा बेचने वाला गुब्बारे में हवा भरता और आकाश की ओर उछालता-पींऽऽ की आवाज के साथ गुब्बारा पहले ऊपर जाता फिर नीचे आता। एस.आर. शर्मा ने पूछा-"ले चलें एक दो गुब्बारे, सोनू-मोनू को।" मगर उसकी बात का बसन्ती ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने देखा वह दूर एकटकी लगाए चबेना चबा रही है। एक प्रक्रिया मात्र। उसे अभी घड़ी भर पहले का कहा स्मरण हो आया-पछताया। "उससे कैसे निकल गया, उसके अन्धेपन का अहसास कराता शब्द?" वह ग्लानि महसूस करने लगा। वही, स्वयं वह, उसके अंधेपन का जिम्मेवार। विगत एक बारगी उसकी आँखों के आगे से सरकने लगा।

....उस दिन वह किसी घुरल, काकड़ की की तलाश में प्रधान के साथ गया हुआ था। अभी साँझ पूरी नहीं हुई थी। उसने सोचा कि इस समय ये जंगली जानवर उस जगह से पानी पीने गुजरते हैं। वह पहले भी यहाँ एक दो मार चुका है। उस दिन उसने दूसरी जगह न जा कर वहीं आना उचित समझा। यूँ उस दिन शिकार पर जाने का उसका मन नहीं था-मगर प्रधान ने कहा था-शर्मा जी, काफी दिन हो गए-डलकी(माँस) का इन्तजाम नहीं हुआ। मैं शहर गया था-कमाण्ड में एक दोस्त से अच्छी व्हिस्की लाया हूँ। बनाओ प्रोग्राम। उसने कुछ देर सोचा और बेमन से अपनी दुनाली उठा ली थी। मुर्गे और घुरल मारने वाले कार्टेज बैग में डाल लिए थे। वे निकल पड़े।

...ढलान वाले रास्ते के समीप। एक डाल के नीचे घास की डालियाँ हिलने का आभास हुआ। इसे पहले प्रधान ने देखा धीमें से बोला-"शर्मा जी, वहाँ घास के बीच...कुछ हिल रहा है।" वह भी ठिठका। आभास लिया। दूरी काफी थी। बरसात में यूँ भी ऊँची घनी हरी घास के बीच कुछ देखना आसान नहीं होता। इतने में घास के बीच ऊपर उठता सिर दिखा। फिर वहीं गायब। डालियाँ हिलती रहीं। वे ठिठके रहे। बन्दूक भी साध ली थी। 'यार! कोई घास-वास काटने वाली न हो?' उसे शंका हुई थी। कमर झुकाए आगे बढ़ते भी रहे। नजरें हिलती डालियों पर। कहीं शिकार भाग न जाए। एक जगह रुक गए। प्रधान ने फुसफुसाते कहा था, "यह घुरल है। ऐसी हरकत उसी की होती है। जोड़ा भी हो सकता है। काकड़ नहीं हो सकता। औरत होती तो कुछ गुनगुना रही होती। आप चलाओ गोली।"

इस बीच जानवर सी चीज का सिर दो-तीन बार ऊपर उठा। मगर वह घास से बाहर नहीं आ पा रहा था। और तभी प्रधान ने कहा- "करो फायर।" और धायं की आवाज के साथ एक पतली सी चीख भी उभरी और वातावरण में छा गई। एस.आर. शर्मा के मुख से एक दम निकला-"यार ये क्या करा दिया?" फिर हल्का सहज हो पीछे मुड़ा। मुड़ते कहा- "जा कर देख, कौन मर गया ये। मैं तो गया दूसरे गाँव। अब क्वाटर नहीं जाना। तूने मरवा दिया।" दूर गाँव से एक आवाज उभरी क्या हुआ रेऽ....वह बहुत डर गया था उस दिन।

...एस.आर. शर्मा को नौकरी में लगे अभी साल दो साल ही हुए थे। इस बीच उसने अपने जन सम्पर्क और लोगों के काम करके अच्छा नाम कमा लिया था। वह वहाँ से सामान्य रास्तों को छोड़ अन्य रास्तों से सीधा दूसरे गाँव के लम्बरदार के घर चला गया।

लम्बरदार के आँगन में आवाज दी तो लम्बरदारनी बाहर आई-उसे देख बोली- "आओ भाई! लम्बरदार तो अभी नहीं आया। पर क्या बात? बन्दूक और कोई झोला-वोला नहीं। आप तो...।"

"नहीं बस यूँ ही निकला था। नीचे तक आया तो मन किया चलो ऊपर हो आता हूँ। पर, चलता हूँ। कब तक आना उन्होंने?" उसने अपने मन की धुकधुकी छिपाते कहा।

"आते ही होंगे। आप बैठो। कुछ काम...।"

"हाँ। काम भी था। पर चलो...।"

"न, न। अब कहाँ चलो? रात होने को है। बरसात का मौसम है। रास्ते में तरह- तरह के जानवर मिलते हैं।"

वह अनमने से रुक गया। मगर भीतर दिल धड़क रहा था। उससे ऐसी गलती कैसे हो गई। वह लड़की की ही चीख थी। यदि कोई मर गई और प्रधान भी उस ओर हो गया तो बात बिगड़ जाएगी। नौकरी चली जाएगी। जाने कितनी जेल हो!

थोड़ी देर बाद लम्बरदार आया तो उसने उसे भीतर ले जा कर धड़कते दिल से सारा वृतान्त बताया। पिछवाड़े छिपाई बन्दूक और झोला उसके पास भीतर रखे और उसे अपने किए काण्ड की जाँच करने को कहा।

इधर गाँव में हल्ला पड़ गया। लोग चीख की ओर दौड़े। बसन्ती के पिता अपने प्लाट की ओर। प्रधान भी एक जगह छिपा था। इसलिए वह भी आगे बढ़ा। देखा-बसन्ती है। चेहरा खून से लथपथ। उसने नाक के पास हाथ किया-साँस चल रही थी। एक ने तब तक नाड़ी देख ली थी। वे उसे उठाने लगे। हल्ले के बीच एक फैसला-शीघ्र अस्पताल ले चलो। कोई आवाज-यहीं पास में डिस्पेंसरी है। चलो। चलो यार देर न करो। तब तक कुछ लोगों ने एक पालकी सी बना दी और वे चल पड़े। सड़क तक आए-किसी गाड़ी की प्रतीक्षा। मगर कुछ नहीं दिखा। दूर से आती एक सफेद गाड़ी दिखी। कुछ इन्तजार के बाद पास आई। रुकी। स्थिति समझी तो एक उत्तर-यह पुलिस केस है। मैं इस पचड़े में नहीं पड़ता। वह चला गया। फिर दूसरी की प्रतीक्षा। तभी एक ने बीच सड़क में खड़ा हो गाड़ी रुकवाई। भाग्य से खाली थी। उसने फटाफट बसन्ती को भीतर डाला-स्वयं बैठ बोला-किसी तरह तहसील अस्पताल आओ। फिर चालक से बोला-"भइया, ये मर जाएगी। मदद कर और अस्पताल पहुँचा दे। तेरा नाम नहीं लूँगा।" खैर! अपनी व्यस्तता के बावजूद वह चल पड़ा। आगे बढ़े तो उसने पूछा- "क्या हुआ?"

"गन शॉट।"

"क्याऽऽ?"

"हाँ, मुआ वो सेवक आया हुआ है। उसको शिकार की लपोड़ चढ़ी रहती है। परधान के साथ मिला हुआ है। बस उसी ने।"

"भइया, यह तो पुलिस का मामला है...मैं...।"

"आपको कुछ नहीं करना। तहसील अस्पताल पहुँचा दो। मैंने कहा ना, आपका नाम नहीं...चले जाना फिर हम स्वयं कर लेंगे। थाने में भी वहीं जाएँगे।"

दूसरे दिन लम्बरदार ने एस.आर. शर्मा को सारा वृतान्त बता दिया और गन अपने पास रख शाम को उसे गायब हो जाने को कहा। वह चला गया। मन में सन्तोष यह कि वह मरी नहीं। अब वह कुछ कर सकता है। जाने कितने विचार। कभी बदली करा कर दूर चले जाने का, कभी उसके इलाज का खर्चा वहन करने का। कभी कुछ, ऐसा ही जैसा कोई भी अपने को बचाने के लिए सोचता है। हर कोण से। एक सवाल भीतर उठता....मगर लोगों के रोष का कैसे सामना करेगा। यदि वह उनको मिल गया तो जान नहीं बचेगी।

...मामला ठण्डा पड़ा। उसने अपनी बदली दूसरी जगह करा दी थी। उसने प्रधान के जरिए इलाज का खर्चा भिजवाया। किसी के घर लड़की की माँ को बुला उसके पैर पड़ा। अपनी जिम्मेदारी मान नाक रगड़ी....

इधर मुकद्दमा चला। गवाहों की कमी के कारण वह सजा से बच गया। मगर एक अपराध बोध ने उसे जकड़ लिया। 'नहीं! वह उस लड़की का गुनहगार है।' वह परेशान रहने लगा। घर आता चुप रहता। जवान पत्नी पूछती-"तुम तो चहकते रहते थे। अब क्या हो गया। तुम अब शिकार को भी नहीं जाते। कितने दिन हो गए।" वह टाल जाता। उसके सवालों का जवाब नहीं दे पाता। कभी-कभी उठ कर कहीं चला जाता। परन्तु स्थिति रात को खराब होती-तब वह उसे झिड़क देता।

एक दिन उसने पूछ ही लिया-"कोई दूसरी है तो बताओ। यूँ क्यों?"

"नहीं कोई दूसरी नहीं है।"

"हर वक्त परेशान। घर के काम भी पहले की तरह नहीं करते। और ये तुम्हारी सेहत भी गिर गई है। कोई तो कारण है न।" पत्नी के सवालों का क्या उत्तर दे। सोचता वह। ऐसी जाने कितनी बातें हुईं। मगर एस.आर. शर्मा की बेचैनी दूर नहीं हुई। मन ही मन तड़पता रहता। किसे बताए अपना दुःख? कि उसकी गलती से एक युवा लड़की अन्धी हो गई। क्या होगा उसके जीवन का? उसकी इस स्थिति से पत्नी परेशान। क्या करे। इधर एक बच्चा भी हो गया था। वह भी बड़ा हो रहा है। पत्नी ने सत्याग्रह कर दिया। एस.आर. शर्मा ने पूछा मगर कोई उत्तर नहीं। और फिर वही आग्रह। उसने एस.आर. शर्मा के भीतर के सच को जानना चाहा। तब गहरी पीड़ा से बोला था- "सुन्तली, मेरी वजह से एक जिन्दगी तबाह हो गई। उसका क्या कसूर था। मेरे शिकार के शौक ने उसे अन्धा कर दिया।"

"पर, आपने तो उसके इलाज का खर्चा दे दिया था न। बाद में भी आप दे आए थे।"

"हाँ! मैं इससे उबर नहीं पा रहा। मैंने उसके चेहरे पर उदासी देखी है। इस बार गया तो ठीक से बोली नहीं। चुप स्वेटर बुनती



रही। उसने वहाँ दस्तकारी के वे सारे काम सीख लिए हैं जो अन्धों को सिखाए जाते हैं। उसकी शादी की उम्र निकलती जा रही है। उसके भी तो अरमान होंगे। उसने सोचा होगा कि शादी के बाद वह क्या-क्या करेगी? और अब। वहाँ की आया बता रही थी कि शाम के समय वह किनारे वाले बेंच पर बैठ चुप दूर आसमान निहारती रहती है। जब थक जाती है तो अपनी स्टिक के साथ नल तक जाती है। मुँह धोती रहती है, बड़ी देर तक। निराशा से घिरी...

"फिर आप क्या चाहते हैं?" पत्नी ने पूछा था।

"मैं सोचता हूँ...।" उसने मन की बात नहीं कही।

"बोलो न! यूँ जिज्ञासा क्यों बढ़ाते हो?"

"मैं चाहता हूँ उसे यहाँ ले आऊँ और उसकी सेवा करूँ। उसे वह सब कुछ दूँ जो उससे छीना गया है।"

"यानी...।"

"हाँ!"

"मेरी सौतन लाते आपको शर्म नहीं लगेगी। लोग क्या कहेंगे?" सुन्तली का दिल बहुत ज्यादा धड़कने लगा था।

"बस इसी उधेड़बुन में मैं मरता जा रहा हूँ। आजकल इन आश्रमों में जवान लड़कियों के साथ बहुत कुछ उलटा हो रहा है। यदि उसके साथ भी हुआ तो उसका दोषी वह मुझे मानेगी।"

"और यदि कुछ हो गया होगा तो...आपको क्या पता?"

"पता नहीं पर मैं स्वयं को उसका दोषी मानता हूँ। मेरे भीतर वह बस गई है...उसकी चीख कई बार सुनाई देती है। मुझे तब वह बरसात का मौसम, बन्दूक की धायं सुनाई देती है...मैं सो नहीं पाता।"

सुन्तली चुप रही। सोचती। एक ओर अपना जीवन। दूसरी ओर पति की चिन्ता। उसका बसन्ती के बारे में सोचते घुलते जाना। 'यदि इसे ही कुछ हो गया तो...सुना है चिन्ता में रहने वाला आदमी...।' इस 'तो' का उसे उत्तर नहीं मिलता-और इसी तरह एक दिन सुन्तली ने कह दिया-"आप कचहरी में कागज बनवाओ। मैं अपना राजीनामा लिख कर दे दूँगी। आप उसका जीवन बनाओ। बल्कि मैं भी अब उसके जीवन के बारे में सोचने लगी हूँ। तुम जो भी कहोगे मैं करूँगी। ले आओ उसे। उसका जीवन हमारी जिम्मेवारी है। मैं आपको घुलते नहीं देख सकती।" रूआँसी उसने कह तो दिया मगर फिर सोचने लगी, "क्या वह कर पाएगी?" एक दूसरी औरत के साथ बाँट पायेगी वह अपना पति?' उसे कितनी बार नहीं का उत्तर मिला। फिर सोचती-वे भी तो मर्द हैं जो बिना बताए ऐसा करते हैं-फिर? तब भीतर से आवाज बार-बार आई। और इसी ऊहा-पोह में एक निर्णय- "हाँ! हाँ!" करना पड़ता है। अपने लिए। और एक दिन वह बसन्ती के घर भी जाकर आई। कर्नल चाचा ने उनके प्रस्ताव को सहज स्वीकार कर लिया। बोले, 'तू जिम्मेवारी लेती है तो हम मान जाते हैं। पर...।'

वह बोली थी, 'आप चिन्ता न करो मैं जो हूँ। आपने देख लेना। ये समझ लो कि वह मेरी छोटी बहन है।' मन में विचार था, वह कहना चाहती थी कि वह अपने पति को बसन्ती की चिन्ता में घुलते नहीं देख सकती। पर नहीं कहा। वह मन की बात कहती भी कैसे? फिर चाचा ने बसन्ती के पिता को समझाया कि यही उसकी सजा है-हम बसन्ती का जीवन देखते रहेंगे। फिर कई शर्तों की पूर्ति। बसन्ती की न को हाँ में बदलने के प्रयोग हुए। होने वाली सौतन को भी मिलाया गया। वह उसके गले लग कर रोती रही। बोली-'तुम मेरी छोटी बहन बन कर रहोगी। ये वायदा रहा। ले प्रामिस।'....पत्नी की हाँ से एस. आर. शर्मा हैरान। उसने पूछा-सुन्तली, तूने ठीक से सोच भी लिया। तेरे मायके वाले, गाँव के लोग...मेरी चिन्ता तो और भी बढ़ गई है। हम समाज का सामना कैसे करेंगे?' उसकी चिन्ता का समाधान पत्नी ने कर दिया था-"होगा तो बहुत कुछ। सब कहेंगे। मगर एक चिन्ता से निकलने और घुट-घुट कर मरने से बचने के लिए कुछ तो करना ही होगा। देख लेंगे। आप आगे बढ़ो।"

एक दिन बसन्ती एस.आर. शर्मा के घर में थी। तब तक उसने अपनी बदली निदेशालय में करा ली थी। बसन्ती को सुन्तली एक बड़ी बहन के रूप में ही मिली। उसने उसे घर के काम सिखाने शुरू कर दिए।

वह एस. आर. शर्मा के घर आ तो गई मगर उसे पति स्वीकार नहीं कर सकी। सप्ताहान्त पर वह आता तो ठीक से बात नहीं करती। वह उसके समीप आता तो दूर भागती। स्वीकार नहीं करती। वह भी चुप रहता। उसका हर खयाल रखने को कहता। तभी पहली पत्नी सुन्तली ने कहा-"इसे अपने साथ शहर ले जाओ। साथ रहोगे तो प्यार बढ़ेगा। अभी तो यह कहती है कि उसे मात्र अपने सुख के लिए लाया गया है। सब्जबाग दिखा कर। यह विवाह मेरी लाचारी का फायदा उठाने के लिए किया है...यह अपने माँ-बाप को भी गाली देती है। वे उसका बोझ नहीं उठा सके।" पत्नी की बात से वह विचलित हो गया था। फिर निर्णय, साथ रखना ही उचित रहेगा। और वह उसे ले आया। शाम को दफ्तर से छुट्टी होते ही वह क्वाटर पहुँच जाता। उसे तैयार होने को कहता। मनाता।

चलो घूम आते हैं। वह मना करती। वह मिन्नत करता। बार-बार कहता-'नहीं! कोई फायदा नहीं उठाएगा। बस अपने अपराध बोध से उबरने के लिए तेरे साथ...तू समझ इसे। और कई बार की कोशिश के बाद एक दिन वह तैयार हो गई। "चलो! एक अन्धी को क्या दिखाना है?" उसने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। आगे बढ़ा तो ठण्डी सड़क पर आ गए। वहाँ से उसने उसका हाथ अपने साथ सटा कर पकड़ा। अपने साथ कदम मिलाने को कहा। उसे समझाया शहर है कैसे चलना है। वह जगह-जगह खड़ा हो जाता-उसे बताता- "बसन्ती वो देखो सामने तारा देवी की पहाड़ी है। एक किनारे पर माँ तारा का मन्दिर है। ये पहाड़ी लम्बी है। यहाँ से वहाँ तक। घने बान, देवदार के वृक्षों से अटी-पटी। बीच में से रेल की लाइन है। एक दिन वह ले चलेगा। वे रेल में भी सफर करेंगे। वह दूसरे पहाड़ दिखाता। उंगली से इंगित करता वो दूर पीछे की ओर फलाँ जगह से शुरू और फलां जगह खत्म। एक चित्र बनाता। कहता-बसन्ती तुम मेरी आँखों से देखो। पहाड़ तुमने देखे हैं-बस जैसे मैं बताता हूँ, देखती जाओ और दिल में उतारो। फिर किसी पुराने या नए बने भवन के सामने खड़ा हो उसे बताता-उसकी चित्रण करने की शैली बहुत रोचक थी। पहले वह सुनती। फिर मुस्कराती। आगे बढ़ती। वे माल पर चलते। वह बताता जाता। सामने से आ रहे लोगों से टक्कर न हो, उसे अपने से सटा कर बचाता। कॉफी हाउस में कॉफी पिलाता। बड़े, इडली खिलाता। कोई नहीं जान पाता कि वह अन्धी है। वैसे भी कॉफी हाऊस में किस को किस की फिक्र होती है। सब अपने में व्यस्त। यदि उसको कोई देखता भी तो उसके काले चश्मे से अन्दाज लगाता कि आँख की कुछ गड़बड़ है। शायद कम दिखता हो। कोई गहरी दृष्टि से देखता तो बुदबुदाता-साले ऐसे में क्यों आते हैं कॉफी हाऊस? मगर उसकी आवाज की ओर कौन ध्यान देता। वे उठ जाते। वह सहारा दे उसे बाहर ले आता। उसकी इस क्रिया से वह कई बार ऊब सी जाती। चिढ़ उठती। कहती कुछ नहीं। बस यह लगता वह सोच रही है। जितना यह बता रहा है, काश! वह वास्तव में देख पाती। मगर...तब कुछ दिनों बाद उसने इस स्थिति के साथ सामंजस्य बिठा दिया। वह उन कहानियों में रुचि लेने लगी।

बसन्ती यादों के झरोखे से अपने विगत के दिन स्मरण कर रही थी-इसी तरह बैठती थी वह यहाँ के बैंच पर। जाने कितनी बार। शर्मा तब पूड़ी ले आता था। वे मजे से खाते और घर लौट जाते थे।

वह सोचती है-शहर आकर शर्मा ने कहा था-बसन्ती मैं तेरी मजबूरी का लाभ उठाने के लिए नहीं लाया हूँ। मैं अब काफी हल्का महसूस करता हूँ कि तेरे लिए कुछ कर पा रहा हूँ। मैं प्रायश्चित कर रहा हूँ। तुम माफ करोगी तो शायद...मैंने...। इतनी सारी बातें। उसका अच्छा व्यवहार, उसे लगा वह उसी आँखें बन गया है। तब जाने कब उसके मन में एस.आर. शर्मा की ओर प्यार जाग गया। वह आदमी हत्यारा नहीं है... अब वह उसके दफ्तर से आने की प्रतीक्षा करने लगी। बतियाने लगी थी। घर के काम भी समझने लगी थी। कहती-चुप यूँ ही बैठ कर कितना समय काटा जा सकता है। टी.वी. भी कितना सुना जा सकता है? उसकी वाणी में अन्तर आ गया था। और इसी प्यार में वह एक दिन उसके बिस्तर में घुस गई थी। घुटकर प्यार किया था। "हाँ! आपसे गलती हुई थी। आपने जानवर समझ फायर किया था-हाँ! मैं मर जाती यदि घास का पुला बांधने थोड़ा नीचे न उतरती। हाँ! आपने मेरा चेहरा ठीक करा दिया वर्ना। ज्योति आप नहीं ला सकते थे।'

और परिणाम। वर्ष-वर्ष बाद दो बच्चे हुए। एक लड़का एक

कविता

कर्म और भाग्य



● आर. एल. पराशर

एक पहिए से रथ नहीं चलता,
कर्म किए बिन, भाग्य नहीं खुलता।
मत पूछो भाग्य की बात,
कर्म है मानव के निज-हाथ।

सीख राम को दी ऋषि वशिष्ठ ने
श्रीकृष्ण का अर्जुन को उपदेश
कर्म का त्याग कभी मत करना
हर मुश्किल हो आसान, कठिन परिश्रम करना।

भाग्य में है वही मिलेगा
कामचोर-कायर यूं ही घूमे
कर्मठ व्यक्ति के प्रयास से
यहां कदम सफलता चूमे।

भाग्य की नहीं कोई गारंटी
यह कब चमकेगा
कर्म का पलड़ा रहेगा भारी
करो लगातार प्रयास, फिर दमकेगा।

पूजा निवास, फागली, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 004

लड़की। सौतन के भी दो बच्चे थे। बच्चे बड़े होते रहे। ऐसे ही एक दिन गाँव में वह बच्चों के साथ बैठी थी। उसने बड़ी बेटी से पूछा- "मैं कैसे लगती हूँ?"

"छोटी माँ आप बहुत अच्छी हैं।"

"मेरा चेहरा!"

"बहुत ठीक। हाँ माथा जलने के कारण थोड़ा लाल है।"

"बुरा लगता है।"

"नहीं। यह तो घाट वाली शीतला वाली आन्टी से भी अच्छा है।"

"घाट वाली आन्टी।"

"वो रामकृष्ण की घर वाली। उसके भी तो दाग है। वह भी बचपन में चूल्हे में जा गिरी थी। उसका माथा जल गया था।"

"अरे!....और मेरी आँखें?"

"वो ठीक हैं। साफ डेले हैं, मगर...।"

"मगर..."

"आप देख नहीं पाती न।"

"नहीं, मैं देखती हूँ। देख सकती हूँ।"

"कैसे?"

"तुम्हारे पापा की आँखों से।

"अरे! वाह।"

चौंकी थी बेटी। यह क्या कहा छोटी माँ ने। वह उठ गई थी। उसने अपनी माँ को आवाज दी। मम्मी, छोटी माँ देख सकती हैं। उसकी आवाज से वह भी चौंकी थी। क्या कहा?

"क्या कहा?" उसने सवाल किया। एस.आर. शर्मा चौंका।

....एस.आर. शर्मा अपनी सोच से बाहर आया। "मैं कह रहा था कि इस रिज पर जाने कितने लोग आते हैं। हर मौसम में। कितने पाँव। कितने समय से यहाँ ऐसे ही पसरा पड़ा है । उस समय का गांधी जी का बुत ऊँचा हो गया है। घोड़े वाले बढ़ गए हैं। लक्कड़ बाजार की ओर जाने वाले खनूर के पेड़ के नीचे अब बूढ़े पूड़ी वाले का बेटा बैठने लग गया है। इधर पार्क में डॉ. परमार का बुत लग गया है। तुझे याद है हम यहाँ पहले धूप सेंका करते थे। इस पार्क के किनारे जहाँ कभी बैण्ड बजा करता था, आशियाना रेस्टोरेन्ट है। इसके नीचे भी ऐसा ही है-गुफा। उधर की ढलान को बचाने के लिए एक मार्किट बना दी गई है और ऊपर इंदिरा गांधी का बुत लगा दिया गया है। उधर गेयटी थियेटर का नवनिर्माण पुरानी शैली में कर दिया गया है। इधर माल के रास्ते पर एक कुल्फी इत्यादि की दुकान खुल गई है। यहाँ के एक किनारे बैठने वाला वह अधेड़ व्यक्ति पूड़ी बेचता बूढ़ा हो गया है। और ऊपर टका बैंच में एक ग्लो लाइट लग गई है। इसमें कई बार खबरें, तापमान दिखाया जाता है। पीछे सड़क पर चाट वाले वैसे ही हैं, पहले जैसे। हाँ आदमी बदल गए हैं। चलो। तुम्हें सोफ्टी खिलाता हूँ।"

"चलो। बहुत दिन हुए। मैंने सोफ्टी नहीं खाई।"

"हाँ! मैंने भी नहीं।

"पर ये बताओ, कहीं इससे मेरी पत्थरी पर तो नहीं असर पड़ेगा।"

"पता नहीं। तू यह क्यों सोचती है। आज का स्वाद जाने कल हो या न।"

और वे आगे बढ़ गए। स्कैण्डल प्वांइट पर पहुँचते ही जितने में वह कुछ कहता बसन्ती ने कहा, 'स्कैण्डल प्वांइट आ गया।' पति ने उसकी ओर देखा और हूँ की। बोली, मुड़ रहे हैं, कॉफी हाऊस नहीं जाना?'

'एक राऊँड लगा लेते हैं।'

'ठीक है, इस उम्र में क्या रह गया है राऊँड के लिए? बदल गया होगा सब कुछ।'

'हूँ, अब काफी बदल गया है, कितनी दुकानों में विदेशी माल बिकता है और बड़ी कम्पनियों ने शो-रूम ले लिए हैं। दुकानों के मालिक उनमें प्रबन्धक हो गए हैं।'

'मतलब?'

'बस बदलाव ही बदलाव। असल में बसन्ती जिन्दगी में एकसा क्या रहता है। समय के साथ बदलता जाता है। हम भी तो बूढ़े हो गए। मानो कल की बात हो।'

"हाँ, तुम तो वैसे ही हो, पहले जैसे।" हँसी वह।

'मैं माल की बात कर रहा हूँ और तू...।' हल्का हँसा वह भी।

'हाँ! यहीं हमने एक बार रेडियो भी खरीदा था।'

'हूँ! अब वह दुकान यहाँ नहीं है।'

'और घड़ी। क्या नाम कैमी...।'

'हाँ, वह दुकान अब भी है।'

वे आगे बढ़ रहे थे। बसन्ती ने एक जगह रुककर कहा- 'गेयटी थियेटर।'

'हाँ!'

'आगे चने वाली पोड़ियाँ है। कॉफी की छोड़ों छोले-भटूरे खाते हैं।

'ठीक है।' वे आगे बढ़े।'

एस.आर. शर्मा खुश लग रहा था। वह बसन्ती का चेहरा देखता चेहरे पर दर्द के भाव नहीं थे। जाने कहाँ चला गया दर्द। उस समय बसन्ती उसका चेहरा निहार रही थी। इस जिज्ञासा में कि वह कुछ कहेगा। बताएगा।

माल पर इसी तरह टहलते दो चक्कर लगाने के बाद वे चले गए। माल फिर दफ्तर के बाबुओं, सैलानियों और नव युवाओं से भरने लगा था।

2-हरबंस कॉटेज, संजौली, शिमला-171006
मो. 88946 81978

कहानी

मदर टेरेसा

● साधु राम 'दर्शक'

भागते-भागते दोनों का बुरा हाल था। उनके सफेद चोगे धूल-मिट्टी और पसीने से इतने गंदे हो गए थे कि काले ही लग रहे थे। बूट और हैट न जाने कब और कहां खुल कर गिर गए थे। टांगें इतनी थक चुकी थीं कि उन्हें उठाना तक मुश्किल हो रहा था। लेकिन वे फिर भी भागे जा रहे थे, बेतहाशा भागे जा रहे थे, क्योंकि खून के प्यासे जनूनी, हिंसक, हथियारबंद, लोगों की काफ़ी बड़ी भीड़ उनके पीछे लगी थी।

(पास के ही किसी मठ के गुरु महाराज की हत्या हो गई थी। शरारती लोगों ने उड़ा दिया कि किसी विशेष मज़हब को मानने वालों ने उसकी हत्या की है। बस फिर क्या था, धार्मिक भावनाएं भड़क उठीं और दंगे शुरू हो गए। उसी का शिकार हुए थे वे दोनों।)

अचानक उनमें जो आगे था, ठिठककर खड़ा हो गया। उसे देखकर दूसरा भी रुक गया। स्थिति का जायजा लेने के लिए उन्होंने चारों ओर देखा। वे एक गांव के पास थे। गांव के शुरू में, गांव से ज़रा हटकर सड़क के दूसरी ओर, एक मकान बना था। वे उसके बिलकुल सामने खड़े थे। ...पीछे लगी हिंसक भीड़ की दिल दहला देने वाली आवाज़ें ऊंची-से-ऊंची होती जा रही थीं, जिसका मतलब था कि वे नज़दीक पहुंचते जा रहे थे। डरे-सहमे-कांपते हुए कुछ पल तक वे वहां खड़े रहे, फिर उन्होंने इशारों ही इशारों में एक-दूसरे से कुछ बातें कीं, फिर तेज़ी से सामने वाले मकान की ओर भाग लिए।

सहन का दरवाजा खुला था। दोनों अंदर दाखिल हो गए। दोनों बेहद डरे और सहमे हुए थे। सहन में प्रवेश करने के बाद उन्होंने चारों ओर देखा। कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। हालांकि सहन काफी बड़ा था, पर था बिलकुल खाली और उजड़ा-उजड़ा हुआ-सा। हां, सहन के बीचोबीच बने चबूतरे पर लगा तुलसी का पौधा खूब हरा-भरा नज़र आ रहा था। और उसके आगे एक उपयोग में लाया हुआ दीया और एक अधजली अगरबत्ती धरी थी।

तुलसी के पौधे पर नज़र पड़ते ही दोनों की दशा और भी बिगड़ गई। वे जैसे अधमरे ही हो उठे थे। ...यह क्या हुआ! यह तो उसी मज़हब को मानने वालों का मकान लगता है, जिस मज़हब को मानने वालों के कट्टरपंथी लोग उनके पीछे लगे थे। ...क्या किया जाए अब?

डरे, सहमे, हैरान-परेशान, कुछ क्षणों तक वे वहां ठिठके खड़े रहे।

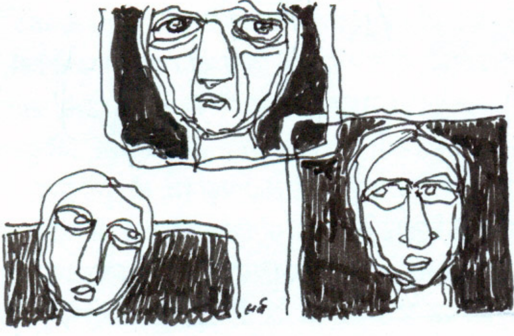
फिर दोनों में इशारों में कुछ बातें हुईं, फिर वे सहन से बाहर जाने के लिए तेज़ी से गेट की ओर झपटे। पर उन्होंने अभी चंद कदम ही उठाए थे कि एक ऊंची रौबदार आवाज़ गूंजी, "ठहरो!"

सहन के बाद बरामदा था, फिर दो कमरे। कमरों के बीच गलियारा था, जो मकान के पिछले हिस्से में खुलता था। लम्बी-तगड़ी, थोड़े सख्त चेहरे वाली एक वृद्धा उस गलियारे से निकलकर उनकी ओर चली आ रही थी। वह ऊंची रौबदार आवाज़ उसी की थी।

दोनों ठिठककर खड़े हो गए। वृद्धा तेज़ी से चलते हुए उनके पास जा पहुंची और पहले जैसी ऊंची रौबदार आवाज़ में बोली, "कहां चले?" ...उनमें से एक ने डरते-कांपते इशारे से बताया कि बाहर। ..."आए किसलिए थे?" रौबदार आवाज़ फिर गूंजी। ...तभी बाहर, थोड़ी दूर, फसादियों के हो-हल्ला मचाने और नारे लगाने की आवाज़ें हुईं। उनकी ओर संकेत करते हुए दूसरे ने बताया, "इसलिए..." "तो फिर अब बाहर क्यों जाना चाहते हो? मरना है क्या? तुम क्या समझते हो कि उस मज़हब के मानने वाले सभी लोग तुम्हारे खिलाफ हैं?" सख्त चेहरे ने डांट पिलाई।

"देखो, ऐसे करो...।" क्षण भर चुप रहकर सोचने के बाद सख्त चेहरे ने आगे कहा, "गलियारे से होकर मकान के पिछली तरफ चले जाओ और पिछला कमरा खोलकर अंदर से बंद करके बैठ जाओ। ...जल्दी करो। बहुत नज़दीक आ चुके हैं वे। ... चलो. ..। मैं कोई ऐसी तरकीब करती हूं जिससे वे घर के अंदर आएं ही नहीं। ...चलो।"

वे दोनों गलियारे में दाखिल हो गए तो वह तेज़ी से कमरे के अंदर गई, एक बड़ा-सा ताला उठाया और सहन से बाहर निकल



गई। बाहर आकर उसने बड़ी सतर्कता से इधर-उधर देखा। फसादियों के शोर-शराबे और नारों की आवाज़ें कहीं पास से ही आ रही थीं और लग रहा था कि वे इधर ही आ रहे हैं। उसने तेज़ी से गेट का दरवाज़ा बाहर से बंद करके ताला लगा दिया और इधर-उधर घूमती रही। फसादियों के चले जाने के बाद सड़क पर सन्नाटा छा गया। सब अपने-अपने घरों में बंद होकर बैठ गए। शाम घिरने लगी, तब वह वापस लौटी। लेकिन वह अगले गेट से घर में नहीं आई। अगले गेट पर बाहर ताला लगा ही रहने दिया गया, ताकि लगे कि घर में कोई है ही नहीं। वह पिछले दरवाज़े से अंदर गई। पिछले दरवाज़े को उसने पहले ही बाहर से बंद कर रखा था और ताले की चाबी अपने पास रख ली थी, ताकि ज़रूरत पड़ने पर दरवाज़ा खोला जा सके।

जैसे उन्हें कहा गया था, वे दोनों पिछले कमरे में अंदर से दरवाज़ा बंद करके बैठे थे... बेहद डरे-सहमे हुए। ...न जाने कहां गई है बुढ़िया? क्या करना चाहती है? कहीं अपने लोगों को बुला कर मरवा ही न डाले। है तो उसी धर्म को मानने वाली न।

दरवाज़े पर कई बार ठक-ठक की आवाज़ होने पर एक ने उठकर दरवाज़ा खोला। सख्त चेहरे वाली वृद्धा अंदर आ गई। वह काफी आराम से लग रही थी, हालांकि उसके चेहरे पर कड़ापन बदस्तूर कायम था। कुर्सी पर बैठते हुए अपनी स्वाभाविक कड़क आवाज में बोली, “कैसे हो फादर्स? ऐसे क्यों बैठे हैं डरे-सहमे हुए-से? खुश हो जाओ कि खतरा टल गया है। फसादी चले गए हैं और अब शायद इधर आएं भी नहीं, क्योंकि वे समझेंगे कि यहां कोई है ही नहीं। मैंने गेट पर बाहर से ताला जो लगा रखा है। और अगर वे आ भी जाते हैं, तो उन्हें पहले मुझसे निपटना होगा, जो उनके लिए आसान नहीं होगा। बाद में वे आप तक पहुंचेंगे। ... अच्छ, उठो अब। मुंह-हाथ धो लो। मैं खाने का कुछ प्रबंध करती हूं।”

दो दिन और तीन रातों तक सख्त चेहरे वाली वृद्धा ने दोनों की अपने यहां छिपाए रखा। पहले कुछ समय तक वे बेहद डरे-डरे, बेहद सहमे-सहमे रहे थे। पहली रात तो वे सो ही नहीं सके थे। फिर समय बीतने के साथ धीरे-धीरे उनकी दशा संभलने लगी। इसका कारण था सख्त चेहरे वाली वृद्धा का व्यवहार। ...ज़ुबान उसकी ज़रूर कुछ कड़वी थी और चेहरे पर प्रायः कठोरता के भाव छाए रहते थे। पर अंदर से बेहद नर्म थी वह। किसी को दुखी, किसी पर अन्याय-अत्याचार होते, वह नहीं देख सकती थी।

वह अकेली रहती थी। उसका पति कई साल पहले मर चुका था। बेटा-बेटी, जिन्हें उसने बड़ी मेहनत और लगन से पाला और पढ़ाया था, विदेश में जा बसे थे और उसकी विशेष चिंता नहीं करते थे। शायद इसीलिए ऐसी हो गई थी वह।

दोनों की हिफाज़त का अच्छा प्रबंध कर दिया था उसने। अगले गेट पर बाहर से ताला लगा दिया था और घर की सभी बत्तियां बुझा दी थीं, ताकि लगे कि अंदर कोई है ही नहीं। हालांकि इलाके में कर्फ्यू लगा था और दुकानें-बाज़ार बंद थे, पर फिर भी उनके खाने आदि का प्रबंध वह किसी-न-किसी तरह कर ही लेती थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद आकर वह पूछती भी रहती कि वे ठीक हैं और उन्हें कुछ चाहिए तो नहीं।

अगले दिन शाम की चाय के बाद उसने उन्हें एक पुस्तक लाकर दी, जिसे देखकर उन्होंने खुश तो भला क्या होना था ऐसे भयानक हिंसक माहौल में, हां, आश्चर्यचकित ज़रूर रह गए थे वे।

“हैरान क्यों हो गए फादर?” उसने अपनी स्वाभाविक सख्त आवाज़ में धीमे स्वर में कहा, “इसलिए न कि मेरे पास बाइबल कहां से आई। सो बात यह है कि मेरे पास रामायण, महाभारत के साथ-साथ बाइबल, कुरान शरीफ, गुरु ग्रंथ साहब सभी धार्मिक ग्रंथ हैं और मैं सभी का एक-सा आदर करती हूं और सभी का अध्ययन करती हूं। अच्छे विचार जहां से भी मिलें, इंसान को ले लेने चाहिए।”

“उसी तरह सभी धर्मो की भी मैं इज्जत करती हूं”, क्षण भर रुककर वह उसी लहजे में आगे बोली, “मेरा खयाल है कि सभी धर्म इंसान को सही मायनों में सच्चा, ईमानदार, मेहनती, दयावान, परोपकारी, सभी से प्यार करने वाला तथा अन्याय के लिए लड़ने वाला बनने की शिक्षा देते हैं। फिर भला हिंसा, लूटा-मार, बलात्कार, आगजनी आदि असामाजिक कार्यों का समर्थन कोई धर्म कैसे कर सकता है! लेकिन फिर भी दंगे होते हैं, वह भी मज़हब के नाम पर, जिनमें सैकड़ों जानें चली जाती हैं, हज़ारों लोग घर से बेघर हो जाते हैं और तरह-तरह के कष्ट उठाते हैं, करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। ...क्यों होते हैं ये दंगे? ...क्यों...?”

वह एक क्षण के लिए रुकी, कुछ सोचा, फिर उसी स्वर में बोली, “मेरे खयाल में मुख्य कारण है विभिन्न धर्मो को मानने वालों में आपसी विश्वास की कमी। दूसरा कारण है कि हम अपने को हिंदु, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि पहले मानते हैं, हिन्दोस्तानी बाद में। यही कारण है कि मामूली-सी बात पर बल्कि कई बार तो बिना किसी बात के केवल अफवाहों से ही दंगे भड़क उठते हैं। इससे भी खतरनाक बात एक और है। कोई स्वार्थी-शरारती व्यक्ति

लघु कथा

इशारा

● सारिका वोहरा

सभी मुहल्ले वालों ने मिलकर भागवत में केदारनाथ जाने का निश्चय किया। कुछ लोगों को छोड़कर सभी मुहल्ले वाले केदारनाथ के लिए चल पड़े। एक बच्चे ने राह में उनसे पूछा, "क्या आप सभी शादी में जा रहे हैं?" वे बोले, "नहीं, बेटा! हम तो मोक्ष प्राप्ति के लिए केदारनाथ जा रहे हैं।"

बच्चा बोला, "आप सभी क्यों?" क्या मोक्ष किसी भण्डारे को कहते हैं, जिसके लिए सभी जा रहे हो?"

मुहल्ले वालों में से एक ने कहा, "तू बच्चा है। तुझे क्या पता? हम तो दर्शन करना चाहते हैं एक बार शिव शंकर के केदारनाथ में।"

तब बच्चा चुप हो गया और खड़ा होकर सभी को देखता रहा। वे सभी केदारनाथ की तरफ चल पड़े। केदारनाथ पहुंचकर पंक्ति में वे खड़े रहकर दर्शनों के लिए प्रतीक्षा करने लगे। तभी एकदम एक धमाका हुआ। एक जोरदार आवाज मंदिर के ऊपर से आई। पॉवर प्लांट की गर्मी व ऊर्जा से पिघली बर्फ झील में इकट्ठी हो गई। कमजोर दीवार अधिक पानी का बोझ न सह सकी और झील की दीवार टूट गई। बड़ी मात्रा में पानी का भयानक सैलाब मंदिर की तरफ आने लगा। कुछ लोग इधर-उधर भागकर उसकी चपेट में आने से बच गए। उनमें से भी कई लूटपाट का शिकार हुए। कुछ भूख- प्यास से मर गए। लूटी-पिटी हालत में कई लोगों को बचाया गया। सेना ने सराहनीय काम किया। मीडिया का सहयोग सराहनीय रहा। प्रशासन अधसोई हालत में ही रहा जो पहले पूरी तरह सोया था। बात करते हैं उस मुहल्ले वालों की तो वह सिर पर मौत को देखकर उस पल को याद कर रहे थे, जब उस बालक ने उन्हें इशारा किया था रुकने का, जो वह न समझे। उसकी गहरी बात को न समझे। दो लोग उनमें से बच सके। दो कौवे बात कर रहे थे। केदारनाथ की हालत देखकर वे बोले, "इन लोगों की इस हालत का जिम्मेदार कौन है? क्या ये खुद हैं? क्या प्रशासन है? क्या औद्योगीकरण है? क्या आस्था का अपमान है?

"हमारी नज़र में पॉवर प्लांट और मौसम की सही समय पर जानकारी न देने वाला प्रशासन इसका कारण है।" वैज्ञानिकों का कहना था।

द्वारा श्री मोहनलाल वोहरा, म. नं. 212/13, पड्डल, मंडी सदर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश-175 001, मो. 98160 35616

अथवा व्यक्तियों का समूह अपने निजी लाभ या अपने दल के लाभ के लिए धार्मिक भावनाएं भड़काकर दंगे करवा देता है। यह काल्पनिक बात नहीं है, वास्तविक है, जो कई जांच-कमीशनों द्वारा सिद्ध हो चुकी है। बहुत भयावह स्थिति है यह, बहुत ही भयावह।"

"लेकिन स्थिति बिलकुल ही निराशाजनक भी नहीं है", कुछ देर रुककर वह आगे बोली, "बिना जाति-मज़हब का खयाल किए जिस तरह आम लोग साम्प्रदायिकता का विरोध करने तथा दंगा-पीड़ितों को सहायता देने और उन्हें न्याय दिलवाने के लिए अधिक-से-अधिक संख्या में संघर्ष में कूद रहे हैं उससे काफी आशा बंधती है कि हम एक दिन इस भयानक बीमारी पर ज़रूर काबू पा लेंगे। ...अच्छा, चलती हूं, बहुत काम पड़ा है।"

चौथा दिन... अभी उजाला होने में देर थी। वे दोनों जाग गए थे, पर अभी बिस्तर में ही लेटे थे। तभी बाहर दरवाज़े के खटखटाने की आवाज़ हुई। वे चौंक उठे और बेहद डर भी गए। ...कौन आ गया इतने सवेरे? कहीं लोगों को पता तो नहीं चल गया और वे मारने तो नहीं आ गए। उनके दिलों की धड़कनें तेज़-से-तेज़तर होती जा रही थीं। तभी सख्त चेहरे वाली वृद्धा ने आकर अपनी आवाज़ को ज़रा धीमी और नर्म बनाते हुए कहा, "डर तो नहीं गए फादर? पुलिस की जीप आई है। आपको राहत कैम्प में भेजने का प्रबंध किया है। मेरी जिम्मेदारी तभी पूरी होगी। आप जल्दी तैयार हो जाइए। तब तक मैं नाश्ता तैयार करती हूं। उजाला होने से पहले-पहले चल देना चाहिए।"

...और कोई बीस मिनट बाद वे दोनों गेट के बाहर खड़ी जीप पर सवार होने के लिए उसके पास खड़े थे और लम्बी-तगड़ी, थोड़े सख्त चेहरे वाली वृद्धा उन्हें विदाई दे रही थी। पर उस समय उसके चेहरे पर कठोरता के भाव नहीं, असीम वात्सल्य, बेहद करुणा और अपनी जिम्मेदारी को पूरा करने पर होने वाली अत्यंत शांति और प्रसन्नता, के भाव थे। ...उन दोनों के चेहरों पर भी अब भय और घबराहट के भाव नहीं थे, बल्कि कृतज्ञता के भाव थे। सीनों पर सलीब का चिन्ह बनाते हुए वे लगातार वृद्धा को धन्यवाद दे रहे थे।

उनके बैठ जाने के मिनट भर बाद ही जीप चल दी और कुछ ही देर में आंखों से ओझल हो गई। पर वह वहां खड़ी रही, बहुत देर तक खड़ी रही। उसे बहुत अच्छा लग रहा था, बहुत हल्का-हल्का।

अभी काफी अंधेरा था, इसलिए वे दोनों वहां खड़ी उसकी आकृति को ज्यादा देर तक नहीं देख सके, पर उनके मानसपटल पर वह आकृति जैसे नक्श होकर रह गई थी। बल्कि उसने भव्य छवि भी धारण कर ली थी...सफेद सादा साड़ी में लिपटी दुबली-पतली मदर टेरेसा की करुणामय पवित्र छवि।

169, सन्देश विहार, दिल्ली-110034

कहानी

अपनों के बीच पराई-सी

● स्नेह लता

मुम्बई महानगरी का नाम आते ही एक भागते हुए शहर की तस्वीर मन में उभर आती है, मुम्बई ऐसा शहर है जहाँ सब लोग चलते रहते है एक युनिफार्म स्पीड से। हर किसी का अपना लाइफ स्टाइल है और वह उसी में मगन है। आँखों में ऊँची उड़ान के सपने हैं और कदमों तले बमुश्किल जमीन हासिल होती है। हिन्दुस्तान के चाहे किसी भी शहर से कोई क्यों न आया हो जल्दी ही वह वहाँ के रंग में रंग जाता है। मैंने भी छह दिन मुम्बई में बिताए। काफी अच्छे बिताए। घूमने के लिहाज से आए थे और घूमे भी खूब। अच्छी लगी मुम्बई। अब वापस जा रहे हैं।

साढ़े आठ बजे सुबह ट्रेन छूटने का टाइम था। ट्रेन सही समय पर छूटी। पुष्पक एक्सप्रेस में चाहे जिस मौसम में जाओ भीड़ होती है। पता नहीं लोग कहाँ-कहाँ की सैर करते हैं। मैं भी जैसे-तैसे अपनी सीट पर पहुँची। सेकंड ए.सी. में केबिन की सीट थी। मेरी और मेरे पतिदेव की नीचे-ऊपर की बर्थ थी। सामने एक बुजुर्ग दम्पति बैठे हुए थे। पतिदेव की उम्र लगभग पैंसठ-सत्तर लेकिन वह काफी टिप-टाप लग रहे थे। अपने जमाने में जरूर हीरो टाइप रहे होगें। उनकी पत्नी ने गहरे हरे रंग की प्रिंटेड साड़ी पहनी हुई थी। नाक नक्षा काफी अच्छा था। बाल बिलकुल सन जैसे सफेद। मांग में भरा लाल सिंदूर, गले में मंगलसूत्र और एक मोटी सी सोने की चेन। हाथों में लाल रंग की कामदार चूड़ियों के बीच सोने की दो-दो पतली-पतली चूड़ियाँ। गोरा रंग बड़ी-बड़ी आँखें। आँखें कभी सुन्दर रही होंगी पर बुढापे या बीमारी के कारण कुछ अधिक उभरी लग रही थीं। चेहरे पर झुरियों के निशान। काफी थकी हुई लग रही थीं। पर उन्हें देख कर पता लगता था कि काफी पढ़ी लिखी अवश्य होंगी।

थोड़ी देर तक हम चारों यूँ ही बैठे रहे फिर वह चुपचाप तकिया लगाकर आँखें बंद करके लेट गई। उनके पतिदेव ने कहा चादर ओढ़ लो। बोलीं ऐसे ही ठीक है। मुझे उन्हें देखकर अच्छा लगा।

अकसर लोगों को नए जोड़े पसन्द होते हैं मगर मुझे पुराने जोड़े अच्छे लगते हैं। पुराने जोड़ों को देखकर एक सुखद अनुभूति होती है। पूरे जीवन की धूप-छांव को दोनों ने कैसे साथ-साथ जिया है। बरसों से एक बन्धन में बंधे आस और विश्वास का सम्बल लेकर एक इठलाती अल्हड़ नदी जैसी शुरू हुई जिन्दगी से लेकर रास्ते के झंझावातों विशाल तूफानी चट्टानों के बीच से रास्ता बनाती हुई शान्त क्लान्त नदी जैसे ठहराव की विस्तृतता दोनों के बीच में फैली रहती है। कैसी आत्मीयता दोनों की आँखों में समायी होती है। वास्तव में सच्चे प्यार की पहचान पुराने जोड़ों में ही होती है। नए का क्या उन्होंने तो अपनी जिन्दगी के बही खाते का अध्याय खोली ही नहीं। भारतीय रेल की एक विशेषता है कि वह स्थानों को ही नहीं जोड़ती बल्कि दिलों को भी जोड़ती है। मैं खिड़की से बाहर देखने लगी। लोकल ट्रेन में ठसाठस भरी भीड़ जिन्दगी की परवाह से बेखबर गेट पर लटके कड़े पकड़े लोगों को देख कर मैं अकसर सोचती हूँ कि क्या यही फास्ट लाइफ का सिम्बल है। न अपनी सुध न पराई फिक्र। एक-एक करके स्टेशन ओझल होने लगे,बम्बई पीछे छूटने लगी। कुछ-कुछ मालाबार हिल्स की ऊँची-नीची पहाड़ियाँ दिखाई देने लगीं। बीच-बीच में उचटती सी निगाह न चाहकर भी सामने वाली महिला पर पड़ जाती थी।

मेरे पति और सामने की सीट पर बैठे बुजुर्गवार एक कप चाय के साझीदार क्या हुए लग रहा था कि जैसे जन्म-जन्म के साथी हों। बातों-बातों में ही पता चला कि वह मित्र त्रिवेदी हैं और रेलवे के ही रिटायर्ड इंजीनियर हैं। साथ में उनकी पत्नी हैं और दोनों कानपुर अपने भतीजे की शादी में शामिल होने जा रहे हैं। मैं चुपचाप बैठी मित्र त्रिवेदी और अपने पतिदेव की बातचीत सुन रही थी कभी-कभी हूँ हां कर देती थी पर मेरी नजर बार बार मिसेज त्रिवेदी की ओर ही उठ जाती थीं। उन्हें देखकर मुझे अपनी मम्मी मौसी की याद आ रही थी। लगभग वैसी ही उम्र वैसा ही पहनावा। चेहरे पर सौम्यता और सम्भ्रान्त। शायद उन्हें नींद नहीं आ रही थी। परिचय की औपचरिकता के बाद बातें अब राजनीति और टी.वी. के प्रोग्राम की चल रही थी। वह भी शायद सुन रहीं थीं तभी उठ बैठीं बोलीं

अब क्या बताएं टी.वी. ने तो जैसे दुनिया ही बदल डाली है। कम्पयूटर से तो सारे जहान की खबर लग जाती है। हमको भले

पता न हो पर जरा-जरा से बच्चों को देखो उन्हें ऐसी कौन सी बात है जो पता न हो।

पहली बार वह बोलीं उनके उच्चारण से लगा कि उनका ज्ञान काफी अच्छा होगा। एक टिफिन खोलकर सेमी और शक्करपारे निकाले...

घर के बने हैं। ले लीजिए....खुद ही बनाए थे। मुझे बाजार की चीजें पसन्द नहीं। अब जाने कैसा फैशन आ गया है पीजा-बर्गर के सिवा लोगों को कुछ अच्छा ही नहीं लगता...

कहते-कहते आवाज में एक दर्द उभर आया।

मैंने कहा, क्या मुम्बई के रहने वाले हैं। नहीं..... हम कहाँ मुम्बई के हैं....इनकी नौकरी मुम्बई में लगी थी सो मुम्बई में रहने लगे....शुरू-शुरू में बहुत कोशिश की कि कानपुर ट्रान्सफर हो जाए.... पर नहीं हुआ....यहीं दोनों बच्चे हुए।

अपने दो बच्चे हैं।

हाँ एक बेटा और एक बेटी है... बेटी का ब्याह सन् 96 में ही कर दिया था। वह चेन्नई में रह रही है... उसके भी एक बेटी एक बेटा है... हमारे दामाद भी रेल में इंजीनियर हैं...।

फिर तो बहुत अच्छा है.... आप सब जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुकी हैं।

पर जिम्मेदारियाँ पीछा नहीं छोड़तीं। जब तक अपने बच्चे छोटे थे लगता था कि किसी तरह बड़े हो जाएं... बस सब कुछ छोड़कर गंगा नहाएंगे... पर अब लगता है पहले ज्यादा ठीक थे।

आपको नहीं लगता कि पहले से ज्यादा आप अब आराम से हैं।

हाँ आराम तो है... मगर पहले की बात और थी। पहले ऐसा क्या था?

अपनापन था... कमी तो थी... मगर दूरी नहीं थी... औरों की तो नहीं जानती पर अपना पता है... छोटा सा मकान था...तनख्वाह भी कम थी... बच्चों की परवरिश का बोझ... ही रहता था... मगर वह हमको भारी नहीं लगते थे... सभी तो अपने थे ... अपने मैके की तरफ या अपनी ससुराल की तरफ के .... हमें तो बराबर थे... अब तो कल्चर बदल गया है।

हाँ सभी कुछ बदल गया है... अब कहाँ की रिश्तेदारियाँ... अब आप ही बताइए एक-एक दो बच्चे होते हैं... कहीं बिटिया ही बिटिया हो गई या बेटे ही बेटे हो गए तो आधे त्योहार तो गए... अब भैया नहीं तो राखी किसके बांधे... बहन नहीं तो राखी कौन बांधे... बहन नहीं तो मौसी-मौसा मौसेरे जैसे सब रिश्ते गायब ...और कहीं इकलौते हुए फिर रिश्तों को पूरी श्रृंखला ही गायब। कुछ भी कहिए खून के रिश्तों की बात ही कुछ अलग होती है...

मुझे भी याद आया हम लोग पाँच-छह भाई बहन थे। मौसी या मामा के बच्चे जब गर्मी की छुट्टियों में आ जाते थे...पूरा घर खेल का मैदान बन जाता था। पूरी टीमें यूँ ही तैयार रहती थी। अब अपने



जगन के लिए सोचती हूँ बेचारा कितना अकेला है। पूरा घर खिलौनों से भरा पड़ा है मगर कोई साथी ही नहीं जिसके साथ खेले।

अचानक वह चुप हो गई। लगा जैसे कहीं खो गई। मैंने भी कुछ पूछना ठीक नहीं समझा। फिर खुद ही जैसे बातें करती हुई बोलीं...

क्या घर है... सब कुछ सजा-धजा है। बेटे को इंजीनियर बनाया था.... कितने सपने संजोए थे... वह कम्पनी के मैनेजर बन गए हैं... पता नहीं क्या कुछ अच्छा सा कम्पनी का अंग्रेजी नाम है.... बुलर एन्डरसन और जाने क्या... काम ही नहीं खत्म होता... जाने कैसा काम है... सुबह चले जाते हैं... दिन भर काम रात को भी देर से लौटते हैं.... आते ही कमरे में घुस गए... बस फिर लैपटाप निकालकर शुरू हो जाते है... दिन भर इन्तजार करो बिट्टू आएंगे... कुछ पूछो बस हूँ-हाँ.... काम ही नहीं खत्म होता... इनके पापा भी इंजीनियर थे.... रेल में जिम्मेदारी कोई कम नहीं होती ... पर सब हंसते बोलते थे...अब तो कुछ नहीं...सबके अपने-अपने कमरे हैं... सबमें ए.सी. लगा है... सब अपने-अपने कमरों में बन्द... अब भला बताओ यह भी कोई घर है... न किसी से बोलना चलना.... न कोई मतलब... हमारी तो समझ में नहीं आता ... जब कहो तो कहेंगे... पैसा कमाने के लिए तो मेहनत करनी पड़ेगी... अब बताओ ऐसे पैसे का क्या सुख....

फिर आँखों में कसैलापन तैर आया... शून्य में देखते हुए बोलीं... क्या सब सुख पैसे से ही है.... हमारे पास बहुत पैसा नहीं था तो क्या हमने जिंदगी नहीं जी... बच्चों को पढ़ाया लिखाया नहीं ... अब तो जब देखो बस पैसा-पैसा... क्या करोगे इतने पैसा कमाकर बैंक बैलेंस बनाकर... कहीं आने जाने की तुम्हें फुर्सत नहीं... खाने पहनने का तुम्हें होश नहीं... हमारी छोड़ो तुम्हें तो अपने बच्चो को पालने का भी वक्त नहीं है... किसके लिए कर रहे हो यह सब... क्यों भाग रहे हो... उसी दिन टी.वी. देख रही थी... अटल जी कह रहे थे मेरी समझ में नहीं आता कि एक इन्सान को जिंदगी

अब क्या है.... हमें तो करना है... जो कुछ हमारे पास है उसी में से कर देंगे... क्या अर्थ है ऐसे पैसे का ... उनकी आँखों में आँसू आ गए... बोलीं बहुत मन भर गया है... नहीं बनाना बड़ा आदमी... हम तो छोटे ही ठीक थे...

जीने के लिए आखिर कितना पैसा चाहिए... जिसे देखो वही पैसे के पीछे दौड़ रहा है। ज्यादा पूछो तो कहेंगे... अच्छा बताओं क्या बातें करूं...

समने वाली सीट वाले लोग भी यूँ ही फालतू की गप्पें मार रहे थे और हंस रहे थे, वे बोलीं

अब इन्हीं लोगों को देखो.... क्या टॉपिक सिलेक्ट करके बातें कर रहे हैं... मगर हंस तो रहे हैं... अब हम इतने बेवकूफ भी नहीं

बच्चे नहीं हैं क्या ?

हैं क्यों नहीं... दो बच्चे हैं... लड़का आठ साल का है... लड़की पाँच साल की है उन्हें भी हॉस्टल में भेज दिया...

हॉस्टल में क्यों भेज दिया ?

कह दिया यहाँ रहकर बिगड़ जाएंगे... आप लोग सिर चढ़ा लेगें... वहाँ रहकर सैल्फ डिपैन्डेंट बनेंगे... अब इनसे पूछो तुम्हें तो हमीं ने पाला ... क्या तुम्हारी परवरिश में कोई कमी थी...महीने में मुश्किल से एक दिन आते हैं... लोकल ही हॉस्टल है... जाने क्या जरूरत थी... शौर्य को पिछले साल से हॉस्टल में डाला है... जब भी घर आता है मुझी से चिपका रहता है... मेरा तो कलेजा मुँह को आ जाता है... जब उसे जबरदस्ती हॉस्टल भेजा जाता है... कैसे दादी-दादी करके रोता है... कुछ कहो तो कहेंगे आपको क्या पता... हाँ हमें क्या पता ... तो बस इतना ही पता है कि उसका बचपन छीन रहे हो... जब वह किसी के साथ रहेगा ही नहीं तो बड़े होकर किसी को पहचानेगा क्या... उसे भला किसी से क्या लगाव होगा... प्यार तो साथ रहने से ही होता है... केवल पैसा दे देने से प्यार थोड़े ही हो जाता है... इतना बड़ा घर बनाया है... सब कुछ है...पर सब खाली...

क्या करती हैं आप दिन भर?

क्या करती हूँ ... बस इधर-उधर घूम लेती हूँ... काम कुछ है नहीं ... जब बच्चे छोटे थे सारा समय किचेन में ही निकल जाता था... कभी इनकी फरमाइश पकौड़े बनाओ... पिताजी कहते दाल का फरा कितने दिनों से नहीं खाया... सब कुछ घर में ही बनता था.... अब क्या ?... सुबह उठो बहू कहती है.... मम्मी ब्रेड जैम दे दूँ... मुझे यह सब पीजा, बर्गर, मैगी, चाउमीन बिलकुल अच्छे नहीं लगते... आलू का पराठा खाए कितने दिन हो जाते हैं... मैं खुद भी बना लूँ... मगर वही बात... कोई और खाएगा नहीं... बहूरानी खाने से पहले ही नहीं ऑइली, नो फैटी और कैलोरी का हिसाब लगाने लगती है... मक्के की रोटी, सरसों का साग तो अपने ही देश में सपनों जैसे हो गए हैं... कोई मेहमान अगर आ जाए तो... चलो भाई आज रेस्टोरेंट में डिनर किया जाए।

मुझे लगा पता नहीं इस भागती हुई जिन्दगी ने लोगों को कैसे अपने ही देश में बेगाना बना दिया है। सही तो कह रही हैं बेचारी जो इन्हें पसन्द है वह ओल्ड अनकल्चर्ड फैशन है और जो उन्हें पसन्द है वह इन्हें रास नहीं आता। यह भी एक विडम्बना ही तो है।

घर में ही पड़े रहते हैं... जाएं भी तो कहाँ... पहले जब शरीर में दम था हम लोग भी घूमने जाते थे अब हिम्मत ही नहीं होती... सड़क पर गाड़ियों की ऐसी रेस लगी रहती है कि सड़क पर चलने में डर लगता है... अब इस बुढ़ापे में कहीं चोट लग गई तो और मुश्किल हो जाएगी... बस बालकॅनी से ही चलते-फिरते लोगों को देख लेती हूँ... मुम्बई में जो सूरज और चाँद भी ठीक से नहीं दिखते... बिल्डिगें दिन पर दिन और ऊँची होती जाती हैं... आसमान और छोटे... हम लोग तो हफ्तों तक सड़क पर कदम नही रख पाते... दसवें माले पर घर है... न जमीन अपनी न आसमान अपना... कितनी याद आती है... बस अपना गांव का आंगन... वह सरसों के खेत... वह आम का बाग वह खरबूजे के ढेर...

शादी में जा रही हैं कुछ दिन वहीं रहेंगी...

हाँ शादी में जा रहे हैं... महीने भर पहले से कार्ड आ गया था... बताया भी था मैंने बिट्टू को ... कहा भी जब तुम किसी के यहाँ नहीं जाओगे तुम्हारे यहाँ कौन आएगा... इतना सब कुछ है... मैंने पूछा क्या देना है... कोई जवाब नहीं दिया... बोले क्या करूँ पैसा तो बहुत है शेयर मार्केट में लगा दिया है... होगा पैसा... किसी को क्या करना है तुम्हारे बैलेंसे से... जब हमें कुछ पैसे देते

अब क्या है.... हमें तो करना है... जो कुछ हमारे पास है उसी में से कर देंगे... क्या अर्थ है ऐसे पैसे का ... उनकी आँखों में आँसू आ गए... बोलीं बहुत मन भर गया है... नहीं बनाना बड़ा आदमी... हम तो छोटे ही ठीक थे...

उन्हें देख कर मुझे अपनी लिखी एक कविता याद आ गई। मैंने उसे सुनाई।

निर्जीव सी जिन्दगी
निस्सार की जिन्दगी...
...छोटी सी जिन्दगी
बहुत लम्बी लगी।

तभी फोन की घंटी बजी। शायद फोन उनके बेटे का था पूछ रहा था वापसी का रिजर्वेशन कब का कर दूँ। वह बोलीं कोई जरूरत नहीं हैं। मैं अब गाँव में ही रहूँगी।

1/309, विकास नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
मो. 9450639976

कहानी

रसूख

● हरीश शर्मा

मोहन दास हर रोज की तरह अपने खेतों में काम कर रहा था। 'नीले' बैलों की जोड़ी लेकर उसने अभी खेत की जुताई शुरू की ही थी कि उसे उसकी छोटी बेटी 'पापा-पापा' करती, सामने सड़क पर दौड़ती अपनी ओर आती दिखाई दी। उसने बैलों को 'पुचकार' कर रोका और सड़क की ओर देखने लगा। 'पापा-पापा' पुकारने के बाद रीना के स्वरों में अब रोने की आवाज साफ सुनाई दे रही थी। हाँफते हुए रीना ने कहा, ''पापा... मम्मी।'' मोहनदास के पावों के नीचे से मानो जमीन खिसक गई। बदहवास सा बोला, ''बेटी, तेरी मम्मी को क्या हुआ।'' ''पापा, मम्मी सड़क के किनारे बेहोश पड़ी है,'' रीना ने रोते-रोते पापा से लिपट कर कहा। इतना सुनते ही मोहनदास सड़क की ओर भागा। पीछे-पीछे रीना भी दौड़ पड़ी।

सड़क पर पहुंचा तो देखा कि एक जगह कुछ लोग भीड़ लगाए खड़े हैं। धक्का-मुक्की कर वह भीड़ में घुसा तो उसने देखा कि उसकी पत्नी, रमा अचेत पड़ी है। साथ ही सफेदे के पेड़ की एक बड़ी टहनी भी पड़ी है। उसने रमा का सिर उठा कर अपनी गोद में रख लिया और रमा-रमा चिल्लाता हुआ उसे जोर-जोर से झकझोरने लगा, ''रमा, तुम्हें क्या हो गया। आँखें खोलो, रमा।'' भीड़ में से किसी ने मोहन को ढाढस बंधाते हुए कहा, ''मोहन, अचानक ऊपर से पेड़ की बड़ी टहनी गिर गई बिचारी पर। बेहोश है। जान बच गई बस। भगवान का शुक्र है।'' तभी कोई पानी का गिलास लेकर आया। कुछ पानी के छींटे रमा के मुंह पर डाले और बाकी पानी उसे पिलाने की कोशिश की। रमा को होश आ गया। होश में आते ही वह अपना दायाँ कन्धा पकड़ कर जोर-जोर से चिल्लाने लगी। मोहनदास ने कन्धे की ओर ध्यान दिया तो पाया कि उसका कन्धा उतर गया था। शायद हड्डी भी टूट गई थी। ''जल्दी से अस्पताल ले चलो,'' भीड़ में से आवाज आई, ''हाँ, जल्दी करो। कोई गाड़ी देखो।'' अफरातफरी मच गई। कोई अपने मोबाइल से जान-पहचान वाले किसी गाड़ी वाले को फोन करने लगा तो कोई सड़क पर गुजरने वाली गाड़ियों को रोकने की कोशिश करने लगा। मोहनदास ने जेब में हाथ डाला। कोई अढ़ाई सौ रुपये होंगे। मन ही मन सोचने लगा घर पर भी चार-पाँच सौ रुपये ही होंगे। अस्पताल का खर्च और गाड़ी का किराया.... कुल मिलाकर पता नहीं कितने पैसे लगेंगे। पास खड़े एक बुजुर्ग ने स्थिति को भांप लिया। बुजुर्ग ने जेब से पाँच सौ रुपये निकाले और मोहन के हाथ में रख दिए। मोहनदास को पैसे लेने में संकोच करते देख बुजुर्ग ने कहा, ''रख लो, काम आएंगे।'' रमा फिर से बेहोश हो गई थी। ''हड्डी का मामला है। तुरन्त शिमला ले जाना पड़ेगा,'' एक दूसरे बुजुर्ग ने सलाह देते हुए एक हजार रुपये मोहनदास की जेब में डाल दिए। मोहन की माली हालत किसी से छुपी न थी। खेती-बाड़ी से किसी तरह बीवी और दो बच्चों का पेट पाल रहा था, बस।

''गाड़ी आ रही है। इसे रोको'' किसी ने सामने से आती गाड़ी को देख आवाज लगाई। कुछ लोग गाड़ी रोकने को आगे बढ़े, मगर गाड़ी नहीं रुकी। ''कैसी बेरहम दुनिया है। ऐसे मौके पर भी मदद को तैयार नहीं'' किसी ने भड़ास निकाली। ''एक और कार आ रही है'' कोई चिल्लाया ''इसे मत जाने देना।'' चार-पाँच लोग सड़क के बीचों-बीच खड़े हो गए। कार रुकी। ड्राइवर ने शीशा नीचे उतारते हुए पूछा ''क्या बात है।'' ''भाई साहब! महिला को गहरी चोट लगी है। इसे अस्पताल पहुंचाना है'' लोगों ने ड्राइवर से गुजारिश की। ''नहीं-नहीं। मैं तो यहीं तक जा रहा हूँ'' कह कर ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ा ली। एक बार फिर सभी गाड़ी वाले को कोसने लगे। तभी सामने से एक सरकारी बस आती दिखाई दी। कुछ लोगों ने बस रुकवाने के लिए हाथ दिया, तो कुछ महिला को उठाकर ले आए। बस रुकी तो लोगों ने रमा को उठाकर बस में चढ़ा दिया। मोहन ने बेटी से कहा कि वह घर जाए और चाचा से कहे कि बैलों को घर ले जा कर बांध दे और उनके घास-पानी का खयाल रखे। हम जल्दी ही आ जाएंगे। भगवान का शुक्र रहा कि बस शिमला जा रही थी और बस अंदर चढ़ते ही सीट पर बैठे कुछ यात्रियों ने घायल महिला के लिए तुरंत सीट खाली कर दी।

शिमला पहुंचने से पहले ही जोरों की बारिश शुरु हो गई थी। शिमला बस स्टैण्ड पर पहुंचे तो मूसलाधार बारिश हो रही थी। पूरी



सड़क एक गंदा नाला बन चुकी थी। सड़क पर पाँव रखते ही जूते पूरी तरह गंदे पानी से भर गए। ऐसा प्रतीत होता था मानो बादल फट गया हो। 'हे भगवान! सारी मुसीबतें आज ही आनी थी' सोचता हुआ वह दोनों हाथों से पत्नी को सम्भाले तालाब बन चुकी सड़क को पार कर जिला अस्पताल की सीढ़ियाँ चढ़ गया।

अस्पताल पहुंचा तो समझ में आया, आज तो सण्डे है। कैजुअल्टी पहुँचा। डॉक्टर से बोला, ''डाक्टर साहब, मेरी वाइफ को गहरी चोट लगी है, शायद इसका कंधा भी खिसक गया है, कहीं हड्डी न टूट गई हो।'' डॉक्टर ने बिना मरीज को देखे जवाब दिया, ''यहाँ न तो कोई एक्स-रे करने वाला है और न ही ऑर्थो का कोई डॉक्टर। आप स्नोडन चले जाएं।'' निराश होकर मोहन अपनी पत्नी को साथ लेकर बाहर लौट आया ऊपर से भारी बारिश। गेट पर पहुँचा तो सामने एम्बुलेंस सर्विस का खोखा देखा। स्नोडन के लिए एम्बुलेंस बुक कराई और पत्नी को एम्बुलैंस में बिठाया। एम्बुलेंस स्नोडन की ओर चल दी।

स्नोडन की कैजुअल्टी में पहुंचे तो देखा सारे बैड्ड भरे हुए थे। कुछ पेशेंट स्ट्रैचरों पर थे तो कुछ फर्श पर बैठे या लेटे थे। मरीजों के साथ आए लोग जगह-जगह डॉक्टरों के आगे लाइन लगाए खड़े थे। अपने मरीज को फर्श पर बिठा वह एक लाइन में खड़ा हो गया। दस-पन्द्रह मिनट बाद बारी आई तो उसने डॉक्टर को अपने मरीज का हाल बताया। डॉक्टर ने झट से ''ऑर्थो के डॉक्टर के पास जाओ। वो वहाँ कोने में बैठे हैं'' जवाब दिया। मोहन ऑर्थो वाले डॉक्टर की लाईन में लग गया। बारी आई तो डॉक्टर ने मरीज को लाने को कहा। पर्ची बनाकर एक्स-रे फार्म भरते हुए डॉक्टर ने कहा, ''एक्स-रे कराओ''। मोहन मरीज को लेकर पूछता-पूछता एक्सरे रूम जा पहुंचा। एक्सरे कराने के बाद आधे घंटे रिपोर्ट का इंतजार किया। रिपोर्ट आने पर डॉक्टर को दिखाई तो डॉक्टर ने कहा, ''हड्डी डिस्लोकेट हो गई है। ऑपरेशन कराना होगा। मरीज को स्ट्रैचर पर लिटा दो।'' मोहन ने चारों ओर नजर दौड़ाई, कहीं कोई खाली स्ट्रैचर नहीं था। पास से गुजरती हुई एक नर्स को देख पूछा, ''सिस्टर, स्ट्रैचर कहाँ मिलेगा।'' ''बाहर गैलरी से ले आओ'' सिस्टर ने जवाब दिया। मोहन ने बाहर जाकर सौ रुपये जमा कराए और स्ट्रैचर धकेल कर ले आया। सिस्टर से कम्बल मांगा। सिस्टर ने इशारा किया, वहाँ से ले लो। दो कम्बल लाए। एक स्टैचर पर बिछाया और दूसरा रमा को स्टैचर पर बिठा कर ओढ़ा दिया। पीछे से एक दूसरी नर्स की आवाज आई, ''स्ट्रैचर वहाँ से हटाओ। साईड में करो।'' मोहनदास ने चारों तरफ देखा। कहीं स्ट्रैचर खड़ा करने लायक जगह न थी। कोई भी वहां से गुजरता तो स्ट्रैचर को कभी आगे खिसकाता तो कभी पीछे। थोड़ी देर बाद उसने देखा कि एक कोने से मरीज को कहीं शिफ्ट किया जा रहा है। उसने झट से अपना स्ट्रैचर धकेल कर वहां अड़ा दिया। मन ही मन सोचने लगा, शुक्र है, स्ट्रैचर खड़ा करने लायक जगह तो नसीब हुई। अब यहाँ कोई परेशान नहीं करेगा।

दोपहर से शाम हो गई थी। कैजुअल्टी में सैंकड़ों मरीज आए और चले गए, मगर रमा की किसी ने सुध नहीं ली। मोहन के कई रिश्तेदार भी हाल-चाल पूछने आ चुके थे। सभी यह जानना चाहते थे कि ऑपरेशन कब तक होगा। मोहन ने हिम्मत कर डॉक्टर से पूछा, ''डॉक्टर साहब। ऑपरेशन कब होगा।'' डॉ. ने फटाक से जवाब दिया, ''अरे भई। टाईम लगता है। तुम आज ही तो आए हो।'' ''लेकिन मरीज अभी तक स्टैचर पर...'' मोहन की बात पूरी होती इससे पहले ही डॉक्टर ने झल्ला कर कहा, ''शुक्र मानो स्टैचर तो मिला है। वहाँ देखो कैसे फर्श पर बैठे हैं मरीज। एक-एक बैड्ड पर तीन-तीन मरीज हैं। रात को और भी आ सकते हैं। हो सकता है स्टैचर भी खाली करना पड़े।'' ''लेकिन सर, उसे बहुत दर्द हो रहा है'' मोहन ने डरते-डरते कहा। एक पर्ची पर लिखते हुए डॉक्टर ने कहा ''दर्द का इंजेक्शन लिख रहा हूँ। इसे ला कर लगवा लो।'' मोहन की तो जुबान ही बन्द हो गई। भीगी बिल्ली बनकर चुपचाप इंजेक्शन लाने चला गया। इंजेक्शन लगवाया। रमा रात भर वहीं पड़ी दर्द से कराहती रही। मोहन रात भर स्टूल पर बेबस बैठा पत्नी को सांत्वना देता रहा, ''बस कल ऑपरेशन हो जाएगा। रात भर की ही बात है।''

सुबह शिफ्ट चेंज हुई। डॉक्टरों की नई टीम आ गई। दस बजे सीनियर डॉक्टर आए। मरीजों को देखा। आपस में अंग्रेजी में कुछ बात की और आगे निकल लिए। मोहन ने आगे बढ़कर पूछा, ''डॉक्टर साहब, ऑपरेशन आज हो जाएगा, ना।'' ''देखते हैं'' कह कर डॉक्टर अगले मरीज को देखने लगे। डॉक्टरों का राउण्ड खत्म होते ही एक जूनियर डॉक्टर मोहन के पास आया और उसे मरीज को ट्रॉमा वार्ड में शिफ्ट करने को कहा।

वार्ड में भी वही स्थिति थी। कोई बिस्तर खाली नहीं। कमरे में बिस्तरों के अलावा पाँच-छः स्टैचरों पर भी मरीज पड़े थे। मोहन ने सिस्टर से पूछा ''सिस्टर। मरीज को कौन से बैड्ड पर शिफ्ट करना है? ''बैड्ड खाली होगा तो मिल जाएगा।'' सिस्टर ने जवाब दिया। मोहन ने चारों ओर नजर दौड़ाई। वार्ड के एक सीलन भरे कोने में डस्ट बिन रखे थे। पूरे कमरे में बस वही कोना खाली था। मोहन ने

स्ट्रैचर को ठेल कर वहीं लगा दिया। सुबह से शाम हो गई। फिर सुबह हो गई। परन्तु रमा के ऑपरेशन को टाइम नहीं मिला। मोहन बार-बार डॉक्टर से, नर्स से ऑपरेशन तो कभी बैड्ड को लेकर पूछता और सभी से डांट खाता। बीसियों ऑपरेशन हो चुके थे। कई बैड्ड भी खाली हो गए थे। लेकिन उसके लिए अभी तक वही स्टैचर और सीलन भरा कोना था।

मोहन अभी अपनी किस्मत को ही कोस रहा था कि सिस्टर ने आवाज लगाई ''रमा कौन है।'' मोहन आगे बढ़ा। सिस्टर ने एक पर्ची पकड़ाते हुए कहा, ''आज ऑपरेशन होना है। पेशेंट को कुछ खिलाना-पिलाना नहीं। यह ऑपरेशन का सामान ले आओ।'' मोहन खुशी-खुशी सामान लाने चला गया। कैमिस्ट को पर्ची दी। कैमिस्ट ने हिसाब लगाया और कहा, ''तीस हजार रुपये दो।'' मोहन को लगा जैसे सुनने में कोई धोखा हो गया हो, बोला ''क्या कहा''। ''तीस हजार रुपये दो'' कैमिस्ट ने ऊंचे स्वर में कहा। मोहन ने पर्ची वापिस ली और अपने भाई व रिश्तेदारों को पैसों के इंतजाम के लिए फोन किए। शाम तक पैसों का इंतजाम हो गया। ऑप्रेशन का सारा सामान खरीद कर फिर से ऑपरेशन का इंतजार करने लगा। शाम के दस बज गए मगर ऑपरेशन की बारी नहीं आई। सिस्टर से पूछा तो जवाब मिला ''कल भी टाईम मिलना मुश्किल है। बहुत पेशेंट हैं।'' उधर रमा की पूरी बाजू में सोजिश आ चुकी थी, मगर इलाज के नाम पर केवल दर्द और सोजिश के लिए इंजेक्शन ही दिए जा रहे थे। दर्द से बेहाल एक-एक पल काटना मुश्किल हो रहा था।

अगले दिन फिर सुबह से शाम हो गई, लेकिन न बैड का कोई इंतजाम हुआ और न ही ऑपरेशन की बारी आई। शाम को करीब छः बजे सिस्टर ने मोहन से कहा ''ऑर्थो वार्ड में बैड्ड नम्बर दस पर शिफ्ट करो।'' चलो बैड्ड तो मिला, मोहन को तसल्ली हुई। मोहन ने सारा सामान समेट कर मरीज को ऑर्थो वार्ड में पहुंचाया। अभी बैड्ड पर पहुंचे ही थे कि एक जूनियर डॉक्टर ने आवाज लगाई ''चलो-चलो, जहाँ से आए हो वहीं वापिस चले जाओ।'' मोहन ने कहा ''सर। ऊपर से भेजा है।'' जूनियर डॉक्टर आग-बबूला हो गया ''तुझे समझ नहीं आता। मैं कहता हूँ वापिस जाओ।'' मोहन ने फिर हिम्मत की ''सर! मेरा मरीज तीन दिन से स्टैचर पर है।'' जूनियर डॉक्टर जो शायद अभी स्टूडेंट ही था, आपे से बाहर हो गया ''तुझे समझ नहीं आता, गंवार कहीं का। बाहर निकल। जल्दी बैड्ड खाली कर। जानता है जिसे बैड्ड दे रहा हूँ वह पंद्रह दिनों से स्ट्रैचर पर पड़ी है।'' मोहन अपना सा मुंह लेकर सामान समेटने लगा। उसका धैर्य अब टूट चुका था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे और क्या न करे। मन मसोस कर फिर उसी स्ट्रैचर पर मरीज को डाल ट्रॉमा वार्ड के कोने में पहुंच गया। वह देख रहा था कि जो मरीज कल आए थे उन्हें भी बैड्ड मिल चुके थे। अधिकांश के ऑपरेशन भी हो गए थे। कुछ ऑपरेशन तो उन मरीजों के भी हो

वार्ड में पहुंचा तो मोहन ने देखा दो-तीन नर्सें रमा के स्टैचर के पास खड़ी थीं। रमा को ऑपरेशन के लिए तैयार किया जा रहा था। एक बैड खाली कर दिया गया था और उसका सामान बैड के साथ रखा जा रहा था। अभी तक उससे बात-बात पर चिढ़ने वाले और तू-तड़ाक कर बात करने वाले डॉक्टर व नर्सें अचानक बड़ी तमीज से पेश आने लगे थे।

चुके थे जो आज ही आए थे। उसने हिम्मत कर एक जूनियर डॉक्टर से कहा, ''डॉक्टर साहब। रमा का ऑपरेशन कब होगा।'' डॉक्टर फिर झल्लाया ''हो जाएगा। बस, दिमाग मत खा।'' ''जी मैं सोच रहा था अगर ऑपरेशन की डेट मिल जाती तो पेंशेंट को घर ले जाता और ऑपरेशन वाले दिन ले आता, यहाँ तो बैड्ड नहीं है।'' ''वाह! ये तो मजे हो गए। जब दिल में आया आ गए और जब दिल में आया चले गए। यहाँ फाइल में लिख कर जा कि मैं पेशैंट को अपनी मर्जी से ले जा रहा हूँ, और ऑपरेशन भूल जा।'' मोहन डांट खाकर फिर लौट आया। वह पूरी तरह हताश हो चुका था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि इस बेगाने शहर में अपना दुख किससे कहे। उसका मन बाहर जाकर जोर-जोर से चिल्लाने को कर रहा था। कमरे से बाहर निकल कर गैलरी में पहुंचा। सोचा बाहर खुली हवा में जाऊं। गेट पर पहुंचा तो सामने से उसे एक रिश्तेदार आता दिखाई दिया। ''क्या हाल है रमा के। ऑपरेशन कब हुआ'' उसने कई सवाल एक साथ पूछ लिए। ''अभी ऑपरेशन नहीं हुआ'' रोनी सी सूरत बनाकर मोहन ने जवाब दिया। ''अरे! कमाल है। पहले क्यों नहीं बताया। मुझे फोन ही कर देते। एच.ओ.डी. मेरे जानने वाले हैं'' कहते हुए उसने फोन मिलाया और मोहन से वार्ड में चलने को कहा।

वार्ड में पहुंचा तो मोहन ने देखा दो-तीन नर्सें रमा के स्टैचर के पास खड़ी थीं। रमा को ऑपरेशन के लिए तैयार किया जा रहा था। एक बैड्ड खाली कर दिया गया था और उसका सामान बैड्ड के साथ रखा जा रहा था। अभी तक उससे बात-बात पर चिढ़ने वाले और तू-तड़ाक कर बात करने वाले डॉक्टर व नर्सें अचानक बड़ी तमीज से पेश आने लगे थे। ऑपरेशन का सामान उसे वापिस कर दिया गया था। पूरा सामान अस्पताल की तरफ से दिया जा रहा था। यह कायाकल्प देख कर वह हैरान था। उसे अहसास हो गया था कि रसूख के बिना इन्सान, इन्सान नहीं होता। उसकी कोई पूछ नहीं होती कोई इज्जत नहीं होती।

वशिष्ठ निवास, शिवनगर, टुटू, शिमला-171 011

कहानी

कामवाली बाई

● प्रियंका

ईश्वर की ये सत्ता बड़ी विचित्र है और जितनी विचित्र ये ईश्वर की सत्ता है, उससे ज्यादा विचित्र यहां के लोग। उन्हीं विचित्र लोगों में एक सज्जन हैं 'त्रिपाठी जी और उनकी श्रीमती जी'। मोहल्ले के हर व्यक्ति को कुछ न कुछ कहना। उनकी इस आदत से अक्सर उनको अपमान का सामना करना पड़ता लेकिन फिर भी वे अवसर की तलाश में रहते कि कहीं से कोई मसालेदार खबर मिल जाए और वे उस बात को अपनी चर्चा का विषय बनाकर व्यंग्य कर सके। एक दिन अचानक उनका व्यंग्य का विषय मोहल्ले के शर्माजी का परिवार था। उनके घर में पति, पत्नी व लड़का, बहु सभी नौकरी करते थे लिहाज़ा उनके घर का सारा काम काज उनकी नौकरानी करती थी, अब यहाँ पर भी नौकर का स्पेशिफिकेशन करने का मौका मिल ही गया त्रिपाठी जी को, कहने लगे, "अजीब है ये शर्मा और शर्माइन...। न जाने अपने को पण्डित बने फिरते हैं, पर कौन समझाए इनको...? अपना धर्म भ्रष्ट किए बैठे हैं, ये लोग।" तभी पास खड़े एक सज्जन ने चुटकी लेते हुए, पूछा "अरे! भाई क्या गुनाह किया इन लोगों ने जो बात धर्म पर आन पड़ी ?"

"अरे! भाई एक तो ये लोग धर्म से पण्डित, ऊपर से इनकी काम वाली बाई जात की धोबनिया, ये लोग खाना भी इसी के हाथ का बना खाते हैं...ऊपर से इनकी नौकरानी के तेवर...। किसी को कुछ नहीं समझती और न ही सीधे मुँह किसी से बात करती है, ऐसा लगता है कि ये नौकरानी नहीं, कहीं-किसी देश की महारानी



हो। तौबा-तौबा हम तो इस विषय पर बात करके अपना ही धर्म भ्रष्ट करते हैं, बस।

उनकी यह चर्चा पास में खड़े एक दूसरे सज्जन सुन रहे थे। उनके चेहरे के हाव-भाव ऐसे थे, मानों वह त्रिपाठी जी से कुछ कहना चाह रहे थे, लेकिन तभी उनके सुपुत्र ने उन्हें आवाज दी, "पापा आइए, माँ खाना बना चुकी हैं, आपका इन्तजार कर रहीं हैं", और वह सज्जन अपने घर चले गए और वह छोटी-सी मोहल्ला संगोष्ठी समाप्त हो गई।

वह सज्जन और कोई नहीं त्रिपाठी जी के पड़ोसी राय साहब थे। राय जी अपने घर पहुँचकर उसी बात के अन्तर्मनन में लगे थे। "कितनी निकृष्ट सोच है, त्रिपाठी जी की। आज भारत 21 वीं सदी का भारत कहलाता है, जहाँ महिलाओं को पुरुषों के बराबर स्थान मिला है, और ये त्रिपाठी जी आज भी जाति प्रथा में उलझे हुए हैं. ..क्या वो खाना खाने से पहले यह नहीं सोचते की ये जो अनाज मैं खा रहा हूँ इसको बोने वाला किसान, घर-घर सब्जी बेचने वाला आदमी, ऊँची जाति का था या नीची जाति का था... या फिर ये कपड़े जो मैंने पहन रखे हैं, इसको बनाने वाला कारीगर हिन्दू थे या मुस्लिम? वास्तविकता तो ये है कि हर इंसान एक दूसरे का पूरक है और एक दूसरे के बिना नहीं रह सकता। या यूँ कहा जाए कि, "उच्च वर्ग का आधार निम्न वर्ग है और निम्न वर्ग एक स्तम्भ की भांति है। राय साहब के इस मंथन को उनकी धर्म पत्नी की आवाज़, "खाना लगा दूँ या देर में खाएगें" ने विराम दिया।

राय साहब बेखयाली भंग करते हुए बोले। अरे, भाई लगा दीजिए, हम तो होम मिनिस्टर के हुक्म की तामील करते हुए बाहर से अन्दर खाना खाने ही आएं हैं

अभी इस वाकया को कुछ दिन ही बीते थे कि देखा त्रिपाठी जी और उनकी श्रीमती जी हर आने जाने वाले से कहते सुना, "कि कोई काम वाली मिले तो हमारे यहाँ भेज देना।'

राम...राम... त्रिपाठी जी, "सब खैरियत तो है घर में, आप काम वाली क्यों ढूंढ रहे हैं ? बहु की तबीयत ठीक नहीं हैं क्या?

तभी श्रीमती त्रिपाठी तुनकते हुए बोलीं, अरे, तबियत सब ठीक है... बस आजकल की लड़कियाँ हैं, जरा काम ज्यादा हो जाए तो बस आफत आ जाती है। और अगर ऐसे में चार मेहमान क्या आ जाए...बस तब तो आजकल की बहुएं ही सास बन जाती हैं।" राय साहब की समझ में माजरा नहीं आया तो कह बैठे, क्या पहेलियाँ ही बूझेगी या कुछ बताएगी भी कि क्या हुआ?

बड़े गुस्से से पण्डिताइन ने कहा... "अरे! होना क्या था, कल मेरे मायके से मेरे भाई का लड़का-बहु आ गए, हमने कहा खाना खाकर जाना... बस...उस समय तो देवी जी ने जैसे कैसे खाना बनाकर खिला दिया, पर उनके जाते ही बहु बोलीं... माँजी! चिंटू और चिंकी की कल से वार्षिक परीक्षा शुरू हो रही हैं, और आप दावत खिलाने में व्यस्त हैं...हुंह। आपका क्या जायेगा, आपको कौन उनके भविष्य की चिंता करनी है।' हमने भी कह दिया, "अभी तुम्हारे मायके वाले आ जाते तो दो दिन तक रोक लेती, मेरी छाती पर मूंग दलने के लिए. ..बस इतनी सी बात पर कहा-सुनी कुछ ज्यादा हो गई और मैंने उसको अपनी रसोई अलग करने को कह दिया...हम दो बूढ़ा-बुढ़िया खाते ही कितना हैं, और कभी कोई मेहमान आ जाए तो आराम से अपने तरीके से काम करवाऊँगी। न किसी की किच-किच, न कोई [illegible]

खैर राय साहब, छोड़िए ये सब बातें, बस आप हमें एक काम वाली बताइए...जो हम बूढ़ा-बुढ़िया का काम कर दे।

राय साहब ने चुटकी लेते हुए कहा, "शर्मा जी की काम वाली चलेगी, सारा काम जानती है कुछ सिखाना भी नहीं पड़ेगा।'

पण्डिताइन बोलीं, "कोई भी चलेगी, हमें तो अपने काम से मतलब है।"

पण्डिताइन का यह उत्तर पाकर राय साहब हैरान रह गए और सोचने लगे, कि क्या मनुष्य इतना स्वार्थी होता है कि वह अपने फायदे के लिए अपने ही बनाए कायदे-कानून और नियमों का उल्लघंन करता है। कहाँ कुछ दिन पहले ये जात पात और धर्म की बातें कर रहे थे और अब...? अब क्या हो गया...? अब कहाँ गई वो बातें...? क्या ऐसे ही व्यक्तियों को अवसरवादी नहीं कहा जाएगा...?

1/309 विकास नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश,
मो. 9455362764

प्रो. आदित्य प्रचण्डिया की कविताएं

दस्तक

दीपक बन
जगमगाएं
तिमिर को
हम मिटाएं
राष्ट्रहित में
निज मन लगाएं
गौरव देश का
सब बढ़ाएं
जन-जागरण के
गीत गाएं
जन-चेतना
हम जगाएं
दे रही दस्तक
इक्कीसवीं सदी।

सुर्खी

अहिंसा की दुहाई
देवता मौन
प्रखर तरुणाई
दानव कौन
अनय
बढ़ता जाता
सब जगह
असुरता का आतंक
बिगुल बजाता
संस्कृति पर हमला
नग्नता हुई कला
अश्लीलता, अधमता
अनगिन दृश्य
मनभरमाता
दुःशासन, कीचक
अट्हास करते
निज मां-बहनों की
लाज लूटते
डकैती, अपहरण
क्रूर घटनाएं
दहेज के कारण
अबला हत्याएं
छाई रहती अहर्निश
अखबारों की सुर्खी।

जनसेवक

तन के उजले
मन के काले
सांप, अजगर
हमने पाले
आधार
लोकतंत्र के
कर्णधार
बंगले, ए.सी. में
रहते ठाठ बाट से
नज़रें जन-धन पै
पाते सांठ-गांठ से
पर-दुःख के लिए
आहें भरते
मूर्ख बनाने में
नाटक रचते
जन-निंदा से
इन्हें न डर
कोर्ट, जेल से
कोई न भय
मुंह इनका काला
सब गड़बड़झाला
कहलाते हम
जनसेवक।

मंगलकलश, 394 सर्वोदयनगर
आगरा रोड, अलीगढ़, उ. प्र.-202001
दूरभाष : 0571 2410486

बाल एकांकी

शब्द निर्माण

● ओम प्रकाश शर्मा

(विद्यालय में सातवीं कक्षा का कक्ष, सामने बाईं ओर एक मेज और एक कुर्सी है, मेज पर उपस्थिति पंजिका रखी है। कक्षा में बैठे सभी विद्यार्थी अपनी-अपनी पुस्तकें खोलकर कुछ याद कर रहे हैं। कुर्सी के पीछे दिवार के मध्य पर श्यामपट टंगा है उसके नीचे बगल में तिपाई पर चॉक का डिब्बा रखा हुआ है। भाषा अध्यापक दाहिनी के दरवाजे से कमरे में प्रवेश करते हैं। तो सभी विद्यार्थी खड़े होकर उनका अभिवादन करते हैं तथा अध्यापक के संकेत पर सभी पुनः बैठ जाते है)

अध्यापक : (विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए) आज तो लग रहा है आपकी कक्षा में कोई भी अनुपस्थित नहीं है।

रमेश : गुरुजी इस सप्ताह हमारी कक्षा में उपस्थिति प्रतिदिन ही शत-प्रतिशत रही है।

अध्यापक : यह तो बहुत ही अच्छी बात है। इसके लिए तो आप बधाई के पात्र हैं। हाँ अब यह बताओ कि जो मैंने आपको गृहकार्य दिया था वह आप सभी ने पूरा कर लिया है या कुछ ऐसा भी है जो आप मुझसे समझना चाहते हो?

रमेश : शेष तो कर लिया गुरुजी, लेकिन पर्यायवाची शब्द यदि आप लिखवा दें तो हम उन्हें स्मरण कर लेंगे। इनमें कई तो एक से ही लगते हैं और उनमें कुछ अंतर समझ में नहीं आता जैसे- तोयज कमल और तोयद बादल।

अध्यापक : रमेश बेटा, लिखवाने को तो अभी लिखवा सकता हूँ लेकिन कुछ बातें ऐसी भी होती है जिन्हें एक बार भली-भांति समझ लिया जाए तो वे बिना स्मरण किए ही जीवन भर याद रह सकती हैं और जिस प्रकार की शंकाओं की बात तुमने की हैं उनका सदा के लिए समाधान भी मिल जाता है।

सोहन : बिना स्मरण किए सदा याद ! वह कैसे ?

अध्यापक : क्यों चौंक गए? मैं सत्य कह रहा हूँ और आज मैं आपको कुछ ऐसा ही कुछ सिखाने जा रहा हूँ, बोलो सीखना चाहोगे?

सभी विद्यार्थी मिलकर : हाँ जी, हाँ जी हम सीखेंगे।

भाषा अध्यापक : ठीक है सबसे पहले राधा तुम बताओ तुमने पानी के कितने पर्यायवाची कंठस्थ किए है?

राधा : (सोचते हुए) जल ,वारि , नीर ...... तीन ही याद हैं।

भाषा अध्यापक : चलो तुम इसे श्यामपट पर ऊपर से नीचे की ओर क्रम से लिख दो (राधा आकर श्यामपट पर लिखती है भाषा अध्यापक अन्यों को सम्बोधित करते हुए) और कोई ?

रमेश : अम्बु और तोय भी तो जल के ही पर्यायवाची हैं। भाषा अध्यापक : क्यों नहीं तुम भी इन्हें इसके नीचे लिख दो ।

(रमेश भी आकर नीर के नीचे अम्बु और उसके नीचे तोय लिख देता है।)

(अध्यापक अपनी बात जारी रखते हुए)

अब आपके सामने पानी के ये न पाँच पर्यायवाची शब्द है - जल, नीर ,अम्बु तोय और वारि। अब हम आज हम इन्ही पाँच शब्दों से अनेक शब्दों का निर्माण करने का कार्य करेंगे ।

राधा : गुरुजी, वह कैसे?

अध्यापक : गणित के ही नियम नही होते भाषा के भी नियम होते हैं, जिन्हें समझने की आवश्यकता होती है और जब समझ में आने लगते हैं तो भाषा तो इतनी आसान हो जाती है कि हम नए नए शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं।

रमेश : सत्य कह रहे हैं आप?

अध्यापक : मैं भला आपसे असत्य क्यों कहूँगा। अब जरा ध्यान से देखो , अब मैं इन पाँचो वर्णों के अंत में 'ज' वर्ण लगा देता हूँ।(सब शब्दों के आगे 'ज ' लगा देते हैं बच्चे साथ-साथ उन्हें अपनी अभ्यास पुस्तिका में उतारते रहते हैं) अब आप एक बात अपने दिमाग मे बैठा दो कि 'ज' जब बाद में लगाया जाता है तो वह में या से उत्पन्न या में या से जन्म लेने वाला अर्थ देता है। अब देखो मैंने पंक जिसका अर्थ होता है कीचड़ के साथ 'ज' लगा दिया (ब्लैक बोर्ड पर लिखते है पंक ज = पंकज)। अब इस पंकज शब्द का अर्थ हो गया कीचड़ में जन्म लेने वाला।

राधा : पंकज तो कमल को कहते हैं आपने ही तो बताया था।

अध्यापक : राधा बिटिया कमल कीचड़ में तो पैदा होता है इसीलिए तो उसे कमल कहते हैं।

रमेश : अब समझ में आया गुरुजी।

अध्यापक : जरा देखो मैंने जब इन पाँचों के साथ 'ज' जोड़ा (श्याम पट पर लिखते हुए) पाँच नए शब्द बन गए

जल + ज = जलज

वारि + ज = वारिज

नीर + ज = नीरज

तोय + ज =तोयज

अम्बु + ज =अम्बुज

मोहन : क्या जलज तो कमल को नहीं कहते हैं?

अध्यापक : मोहन कहते हैं, आप् बिलकुल ठीक कह रहे हो कमल जल में पैदा होता है तो जलज हुआ। वैसे तो जल में बहुत कुछ पैदा होता जैसे मोती, मछली आदि परन्तु यह शब्द कमल के लिए रूढ़ हो गया है। और जलज ही नहीं वारिज , नीरज, तोयज, अम्बुज ये सभी शब्द भी पानी के पर्यायवाची के आगे 'ज' जोड़ कर बने है इसलिए इन सबका अर्थ भी कमल ही है।

राधा : यह तो बिलकुल सुगम है पानी के पाँच पर्यायवाची याद किए और 'ज' जोड़ने से कमल के बन गए। यह तो सच में समझने की बात है इन्हें याद करने की तो जरूरत ही नहीं है।

रमेश : क्या इस प्रकार और शब्द भी बनाए जा सकते है?

अध्यापक : क्यों नहीं ,बहुत से।

सीता : गुरुजी, और बताओ न, यह तो बहुत ही आसान सा तरीका है।

अध्यापक : अरे , अभी यही बात कहाँ पूरी हुई है धीरज रखो। एक शब्द है 'अनु' और इसका अर्थ होता है बाद में और इसके बाद मैंने (श्यामपट पर लिखते हुए) यह देखो 'ज' जोड़ दिया यह बन गया अनुज। अब इसका अर्थ हो गया बाद में पैदा होने वाला। राधा बेटी तुम्हारे बाद कौन पैदा हुआ?

राधा : (खड़े होकर) मेरे बाद तो मेरा छोटा भाई रीतेश पैदा हुआ है।

अध्यापक : तो राधा के बाद उसका छोटा भाई पैदा हुआ इसलिए अनुज का अर्थ हो गया छोटा भाई।

रमेश : इसका अर्थ तो यह हुआ कि अग्र होता है पहले या आगे और यदि 'ज' जोड़ें तो बन गया अग्रज अर्थात पहले पैदा होने वाला और अर्थ हुआ बड़ा भाई।

अध्यापक : अरे बहुत खूब, रमेश तुम तो बिलकुल समझ गए। अब तुम इसी प्रकार स्वेदज, अंडज, आत्मज जैसे बहुत से शब्द बना सकते हो और अपने शब्द भण्डार में वृद्धि कर सकते हो।

राधा : भाई के लिए तो आपने बता दिए और बहन के लिए?

अध्यापक : हाँ राधा बेटी तुमने समय पर याद दिला दिया अन्यथा मैं बताना भूल ही जाता। यह बात भी जरा ध्यान से अपने मस्तिष्क में रख लो।

कुछ विद्यार्थी : कौन सी बात गुरुजी ?

अध्यापक : यदि इस 'ज ' में आ की मात्रा लगा दी जाए तो स्त्रीलिंग बन जाता है। जैसे अनुज का अर्थ था छोटा भाई तो अनुजा का अर्थ हो गया छोटी बहन।

राधा : वाह ! तब तो अग्रज बड़ा भाई , अग्रजा बड़ी बहन, आत्मज पुत्र तो आत्मजा पुत्री।

रमेश : वैसे ही तनुज और तनुजा।

अध्यापक : (उनको प्रोत्साहित करते हुए) कमाल है तुम तो लग गए एक शब्द से अनेक शब्दों का निर्माण करने।

रमेश : गुरुजी आज आपने सिखाया ही इस तरीके से जिससे शब्द बिना स्मरण किए ही दिमाग में इस प्रकार चिपक गए जैसे सिमेंट से ईंट जुड़ जाती है।

(अध्यापक और अन्य बच्चे हँसने लगते हैं)

राधा : (कुछ विचारते हुए) मैं रितेश की अग्रजा हुई न ? यदि मैं उसको पत्र लिखू तो क्या पत्र के नीचे 'तुम्हारी अग्रजा' लिख सकती हूँ?

अध्यापक : क्यों नहीं, तुम सम्बोधन में भी उसे प्रिय अनुज लिख सकती हो। अब बताओ सब कैसा लग रहा



है सीखना?

सभी : बहुत अच्छा ,बहुत अच्छा ।

सीता : गुरुजी इस प्रकार तो यदि पुस्तक में ये शब्द आते हैं तो हम 'ज' या 'जा' को अलग करके इन शब्दों के अर्थ भी सुगमता से सीख सकते हैं।

अध्यापक : इसमें तो कोई संदेह ही नहीं। जैसे आत्मजा शब्द कहीं पर आता है तो 'आत्म जा' जो अपने से उत्पन्न हुई हो अर्थात पुत्री अर्थ सुगमता से लिया जा सकता है यह सब कुछ तो मैं तुम्हें सन्धि और समास सिखलाते हुए भी करवाऊँगा। उस समय आप इसे और भी आसानी से सीख जाएँगे।

सोहन : इससे भी आसान तरीके से? हम तो इन शब्दों को रटते थे और आपने हमें इस प्रकार समझा दिए कि हम इन्हें कभी भूल ही नहीं सकते।

अध्यापक : यदि शब्दों के अर्थ अच्छी प्रकार समझ लिया जाए तो उन्हें बार-बार याद करने की आवश्यकता ही नहीं रहती है। अब देखो मैं हम इन पाँच शब्दों के बाद लगाए गए 'ज' को मिटा देता हूँ (मिटाते हैं) और इसके स्थान पर 'द' लिख देता हूँ।

मोहन : 'द' लगा देने से अब क्या हो जाएगा?

अध्यापक : इस 'द' का अर्थ होता है देने वाला। पहले सोहन तुम यह तो बताओ तुम्हें पानी कौन देता है?

सोहन : मैं तो खुद नल से पानी भर कर लाता हूँ।

अध्यापक : (अध्यापक मुस्कुराते हुए) और नल में कहाँ से आता है ?

सोहन : पानी के टैंक से। (सब हँसते हैं)

अध्यापक : और पानी के टैंक में कहाँ से आता है रमेश तुम बताओ ?

रमेश : जब मेघ बरसते हैं तो हमें जल मिलता है उसी का जल तालाबों, सरोवरों में एकत्रित होता है, नदियों में भी तो वर्षा का जल प्रवाहित होता है।

अध्यापक : शाबाश, हाँ हमें जल बादल ही प्रदान करते है

सोहन : मेरे घर के पास पानी तो जमीन के अन्दर से निकलता है।

अध्यापक : सोहन तुम भी ठीक कह रहे हो, जब मेघ बरसते हैं मिट्टी और पौधे उस जल को सोख लेते लेते हैं वही एकत्रित जल नाले बावड़ियों में आता रहता है लेकिन सबको जल देने वाले बादल ही होते हैं। अब समझ गए क्या?

सोहन : अब तो अच्छी प्रकार समझ गया तभी मैं सोचता था कि बरसात में जमीन से जगह जगह पानी क्यों निकलता है आज मेरी समझ में आ गया जब जमीन में वर्षा का ज्यादा जल चला जाता है तो वह बाहर निकालने लगता है।

अध्यापक : ठीक है। अब इन्ही पांच शब्दों के बाद में 'द' लगा देने ये पाँच शब्द बन गए (श्यामपट्ट लिखते हुए)

जल + द = जलद

वारि + द = वारिद

नीर + द = नीरद

तोय +द =तोयद

अम्बु + द =अम्बुद

राधा : अब इन सबका अर्थ भी बद्दल ही हो गया।

अध्यापक : (मुस्कुराते हुए)बद्दल तो हम अपनी बोली में बोलते हैं यहाँ तो बादल याद रखना पड़ेगा
(बाकी बच्चे मुस्कुराने लगते हैं)।

राधा : गुरुजी गलती हो गई आपने इतने सरल तरीके से समझाया कि उत्सुकतावश बादल को कब बद्दल बोल दिया ध्यान ही नहीं रहा।

अध्यापक : बच्चो, इसमें हँसने की क्या बात है। हम परिवार में अपनी-अपनी बोली के शब्दों का प्रयोग करते है जो गलत नहीं होते लेकिन शुद्ध भाषा सीखने के लिए हम उनका प्रयोग यहाँ नहीं करते हैं। हाँ तो इतना आप लोगों की समझ में आया?

सभी : हाँ जी ऽऽऽऽ।

सोहन : मुझे तीन ही याद नहीं हो रहे थे आपने तो पांच

याद करवा दिए।

अध्यापक : अभी तो तुम दस भी याद कर लोगे लेकिन पहले आप यह जान लो कि कि बाद में 'द' लगा कर और भी शब्द बनाए जा सकते हैं।

सोहन : और भी !

अध्यापक : हाँ, और भी कई शब्द बन सकते हैं जैसे सुख + द =सुखद सुख देने वाला , दुख + द =दुखद दुःख देने वाला

सीता : वर में द लगाकर वरद।

अध्यापक : बिलकुल ठीक , आप इसी प्रकार 'द ' जोड़कर और भी कई शब्दों का निर्माण कर सकते हो।

राधा : आपने बड़ी सुगमता से पाँच से पन्द्रह शब्द बना दिए और साथ ही साथ बहुत से और शब्दों को बनाना थोड़ी ही देर में समझा दिया। आज सीखने में बहुत आनंद आ रहा है।

अध्यापक : जब विषय को समझने का प्रयास करोगे तो ऐसा ही आनन्द आएगा। आपको यह तो पता ही है कि 'धर' का अर्थ होता है धारण करना प अब में 'द' को भी मिटा देता हूँ और उसके स्थान पर 'धर' लगा देता हूँ।

('द' को मिटाकर 'धर लगा देते हैं) अब रमेश आप बताओ कि जल को कौन धारण करता है।

रमेश : (कुछ सोचकर) गुरु जी मुझे पता नहीं।

सीता : (भाषा अध्यापक के संकेत पर) जब गर्मी पड़ती है तब बादल जल को वाष्प के रूप में धारण करते हैं और आकाश में ले जाते है।

अध्यापक : सीता ने बिलकुल सही बताया कि जल को धारण करने बाले बादल होते हैं।

रमेश : तब तो जलधर, वारिधर, अम्बुधर, तोयधर व नीरधर ये सब बादल के पर्यायवाची हो गए।

अध्यापक : हाँ ,ये सब बादल के ही पर्यायवाची हैं।

राधा : इस प्रकार तो बादल के दस पर्यायवाची बन गए और मेघ आदि अलग से। अब तो हिन्दी आसान लगने लगी है।

अध्यापक : हिन्दी है ही आसान। आप अब शब्द के अंत में 'धर' लगा कर कुछ शब्द बनाओ और उसके अर्थ बताओ।

मोहन : शिवजी भगवान के सिर पर गंगा है इसलिए उन्हें गंगाधर भी कहते हैं ?

अध्यापक : सही कहा तुमने , इसी प्रकार चक्र हाथ में धारण करने से विष्णु भगवान को 'चक्रधर', बलराम को हल धारण करने से 'हलधर' कहते है।

राधाः कृष्ण को 'मुरलीधर' और 'वंशीधर'। और सांप को 'फणधर'।

अध्यापक : अब तो आप खुद ही शब्द बनाने सीख गए हो। इसी प्रकार प्रयास करने पर आपके पास बहुत से शब्द बन जाएँगे। अब मैंने धर को भी मिटा दिया (मिटाते हुए) अब हम इसके स्थान पर निधि शब्द जोड़ देते हैं

(पाँचों शब्दों के साथ निधि लिखते हुए)

जल + निधि =जलनिधि
वारि + निधि = वारिनिधि
नर + निधि = नीरनिधि
अम्बु + निधि =अम्बुनिधि
तोय + निधि =तोयनिधि

(सीता की और इशारा करते हुए) अब तुम बताओ कि निधि किसे कहते हैं।

सीता : निधि का अर्थ भण्डार, कोश होता है।

अध्यापक : जल का का भंडार कहाँ होता है सोहन ?

सोहन : तालाब, कुँए , सरोवर में।

अध्यापक : रमेश जरा तुम सोचकर बताओ कि पानी का सबसे बड़ा भण्डार क्या हो सकता है।

रमेश : वर्षा का जल नदियों के माध्यम से समुद्र में चला जाता है। तो समुद्र ही जल का भण्डार हुआ।

अध्यापक : बिलकुल सही बताया आपने। वैसे जल के भण्डार कई है लेकिन अंत में सारे का सारा जल समुद्र में एकत्रित हो जाता है।

रमेश : अब ये पांचो बन गए समुद्र के पर्यायवाची। ठीक है न गुरुजी ?

अध्यापक : ठीक है। इसी प्रकार अंत में निधि लगाकर बनने वाले कुछ और शब्द बताओ?

मोहन : करुनानिधि, दयानिधि, पानिधि ।

अध्यापक : अब लग रहा है कि आप शब्दों को स्वयं बना सकते हो। कैसा लग रहा है आपको अब यह सब कुछ जानकर ?

सब : बहुत अच्छा।

अध्यापक : अब समय भी होने वाला है इसलिए अब अंत में निधि को भी मिटा देता हूँ (मिटाते हैं) और इसके स्थान पर 'धि ' लगा देता हूँ (जहाँ जहां निधि था वहा दि लगाते हैं) देखो अब शब्द बन गए

जल + धि =जलधि
वारि + धि =वारिधि
नीर + धि =नीरधि
तोय + धि =तोयधि

अम्बु + धि =अम्बुधि

मोहन : गुरुजी ऐसा ही कुछ और बताओ?

अध्यापक : बच्चो, भोजन उतना खाओ जितना हजम हो जाए और एक समय में पढ़ो उतना ही जितना समझ में आ जाए। पहले आप लोग यह बताओ कि आज हमने पांच शब्दों से कितने शब्द बनाए?

राधा : पूरे तीस और इसके साथ और भी तो बहुत से शब्द हमें आ गए हैं।

(घंटी बजती है)

अध्यापक : देखो समय भी समाप्त हो गया है, अब आपने इसको बाद में दोहराना है और कल मैं आगे सिखाने से पहले आपसे इनके बारे में पूछँगा।

रमेश : हमारी तो यह घंटी खाली है हम मिलकर इसे अभी करने की कोशिश करेंगे।

अध्यापक : हाँ जरूर करना।

(इसके साथ ही अध्यापक का प्रस्थान)

राधा : क्यों न हम कोई ऐसा तरीका निकाले जिससे यह कभी हमें भूले ही नहीं

रमेश : क्यों न हम इसकी कविता ही बना दें?

सीता : कोशिश तो की जा सकती है।

(कुछ सोचकर)

आओ रे मोहन सोहन सीता, मिलकर सारे नव खेल रचाएं
शब्दों में कुछ नव वर्ण जोड़
नव नव सार्थक शब्द बनाएं

रमेश :

तोय जल नीर अम्बु वारि में
'ज' वर्ण जोड़ दिया यदि जाए,
अर्थ तब तो जल से उत्पन्न
'कमल' उन सबका बन जाए

मोहन :

इन्हीं के आगे जब देखो मैंने,
'द' वर्ण को लाकर चिपकाया
उससे तो जल को देने वाला,
बादल अर्थ है निकल आया

राधा :

धर का अर्थ है धारण करना
जब कभी पीछे आ जाएगा,
बोलो तुम उसका मतलब भी,
'बादल' क्या न बन जाएगा?

रमेश :

निधि कहते सब भण्डार को
इसको भी इनके पीछे लाओ,
मेघ के पर्यायवाची पाँच तुम
उससे तत्काल स्वयं बनाओ

सीता :

'धि' को भी इनके पीछे
कभी कभार हम लगा देते
तब भी तो इनके अर्थ क्या
सागर समुद्र नहीं हो जाते।

रमेश :

ऐसे ही अब हम वर्ण जोड़ कर
हम विविध शब्द बना सकते हैं
अनुज अग्रज सुखद दुखद के
अर्थ शीघ्र हम बतला सकते हैं।

एक ओंकार निवास, छोटा शिमला,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171002,



प्रेरक प्रसंग

युवा पीढ़ी को संस्कारों की शिक्षा-दीक्षा

● अनुज कुमार आचार्य

भारत ही है जहां संस्कृति व संस्कारों को लेकर व्यापक मार्गदर्शन हमारे पास उपलब्ध है। वास्तव में संस्कृति का अर्थ, ''प्राचीन काल से चले आ रहे संस्कारों से है।'' मनुष्य द्वारा लौकिक व पारलौकिक विकास के लिए किया गया आचार-विचार ही संस्कृति है। संस्कृति से हमारा आध्यात्मिक जीवन प्रभावित होता है जबकि सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र में हुई प्रगति का पता चलता है। संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति का ज्ञान होता है। संस्कृति के अन्तर्गत धर्म, दर्शन, सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान व कलाएं-प्रथाएं, सामाजिक व राजनीतिक प्रगति का समावेश हो जाता है। संस्कृति व सभ्यता का निर्माण किसी एक व्यक्ति विशेष के प्रयत्नों का प्रतिफल नहीं होता अपितु असंख्य ज्ञात व अज्ञात व्यक्तियों के भगीरथ प्रयत्नों का सुपरिणाम होता है। जाहिर सी बात है कि किसी भी देश की संस्कृति का निर्माण होने में हजारों वर्ष लग जाते हैं और बाद में निरंतर प्रक्रिया के तहत परिमार्जित होती रहती है।

मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण में जैसा देखता और सुनता है वैसा ही उसका स्वभाव और चरित्र भी बनता है। जिस प्रकार अच्छे व सात्विक भोजन से शरीर व मन की शुद्धि होती है, उसी प्रकार अच्छी बातें सुनने, सुन्दर दृश्य व घटनाएं देखने, अच्छा साहित्य पढ़ने और सत्संग करने से हमारा उज्जवल चरित्र बनता है। अल्फ्रेड एडलर के अनुसार, ''बुद्धिमान व्यक्तियों की प्रशंसा की जाती है, बलशाली व्यक्तियों से डरा जाता है, लेकिन विश्वास केवल चरित्रवान व्यक्तियों पर ही किया जाता है।।'' जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो मेरी कक्षा के बगल वाली दीवार पर एक वाक्य अंकित था, ''यदि धन नष्ट हो गया तो समझो कुछ भी नष्ट नहीं हुआ। यदि स्वास्थ्य नष्ट हुआ तो समझो कुछ नुकसान हुआ है लेकिन यदि चरित्र ही नष्ट हो गया तो समझो सब कुछ नष्ट हो गया।'' इसी शिक्षा सूत्र को मैं आज भी नित्यप्रति स्मरण रखता हूं तथा अपने विद्यार्थियों को भी चरित्र की उज्ज्वलता की तरफ इशारा करता रहता हूं।

शिक्षक व्यक्तित्व निर्माण का सांचा होता है। जैसा सांचा होता है वैसा ही प्रतिरूप बनकर निकलता है। शिक्षक छात्र के लिए आदर्श है, वह उसी का अनुसरण करता है। शिक्षक होने के नाते मैं भी वर्तमान समय में किशोरवय एवं युवाओं में व्याप्त कई प्रकार की बुराईयों व विकृत्तियों से अनभिज्ञ नहीं हूं। हम सभी इस तथ्य से भली-भांति अवगत हैं कि ज्यादातर हमारा युवा वर्ग पतन की गर्त की ओर धंसा चला जा रहा है। नशीले पदार्थों का सेवन करना, अश्लील दृश्य-श्रव्य सामग्री को देखना-सुनना, अच्छा साहित्य व अपनी कक्षाओं से सम्बन्धित पठन-पाठन की पुस्तकों की तरफ नजर भी नहीं मारना, मां-बाप की गाढ़ी कमाई का दुरूपयोग करना। यहां तक कि माता-पिता के सामर्थ्य के बाहर जाकर मूल्यवान वस्तुओं यथा-घड़ियों, मोबाईल, कपड़ों और बाईक के पीछे भागना या लेने की जिद्द करना और न मिलने की सूरत में ''इमोशनल ब्लैकमेलिंग'' करना इत्यादि शामिल है।

ऐसा भी देखने में आ रहा है जहां पर मां-बाप द्वारा किशोरवय या जवान बच्चों को उचित मार्गदर्शन और सुसंस्कारित नहीं किया जा रहा है वहां पर एम.एम.एस. या अन्य घिनौने काण्ड सामने आ रहे हैं। यह सारी स्थितियां हमारी भारतीय सभ्यता व संस्कृति के कतई विपरीत हैं जिस पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन, मनन करने की नितान्त आवश्यकता है ताकि नित्यप्रति पथभ्रष्ट होती जा रही युवापीढ़ी को समय रहते संभाला जा सके। किसी ने क्या खूब लिखा है, ''बुराई ऐसी है जैसे पहाड़ से नीचे उतरना एक कदम उठाओ तो बाकि उठते चले जाते हैं। और अच्छाई ऐसी है जैसे पहाड़ पर चढ़ना-हर कदम मुश्किल होता है पर मंजिल हमेशा बुलन्दी पर होती है।''

मैंने यहां संस्कारों के अभाव में समाज में नित्यप्रति बढ़ती जा रही अराजकता हिंसा असहिष्णुता की जो तस्वीर खींची है, उससे भारतीय समाज के समस्त जागरूक व जिम्मेदार नागरिक अनभिज्ञ नहीं हैं। कहीं-कहीं छात्र शक्ति अपने यौवन के अहंकार व मित्रों की

टोली की मस्ती में ऐसी-ऐसी घटनाओं को अंजाम दे जाती है जिसका खामियाजा समाज सहित स्वयं उनके परिवारों को उनके जीवित न रहने की स्थिति के रूप में उठाना पड़ता है। रोजाना समाचार-पत्रों में बाईक सवारों की दुर्घटनाओं में दर्दनाक मौत की खबरें अब रूटीन का हिस्सा बन चुकी हैं।

भौतिकवाद के पीछे की दौड़ आज गले की फांस बन चुकी है। पहले मां-बाप के इतर अध्यापकों, चाचा, ताया, दादा-दादी, मामा या गांव के बड़े बुजुर्गों का रूआब भी किशोरवय या युवापीढ़ी पर डर का काम करता था। लेकिन अब यह चीजें फक्त बीते वक्त की बातें बनकर रह गई हैं। आज छोटे परिवारों के प्रचलन से रिश्तों की महक फीकी पड़ गई है। ऊपर से पढ़ने-पढ़ाने की धींगामुश्ती ने बुजुर्गों के प्रति आदर-सम्मान की बची खुची भावना को भी खत्म कर दिया है। वर्ना संस्कृत की पाठ्य पुस्तक में हमने पढ़ा था कि, ''अपने बुजुर्गों को आदर-सम्मान देने तथा नित्य उनकी सेवा करने वाले एवं शीलवान अपने से बड़ों को अभिवादन, नमस्कार करने वालों को आयु, विद्या, यश व बल की वृद्धि का आर्शीवाद प्राप्त होता है।''

हमारा समस्त संस्कृत साहित्य सद्विचारों, सद्कर्मों की कल्याणकारी शिक्षाओं से ओत-प्रोत है। आवश्यकता है इस अमृतरूपी ज्ञान को हमारी नई पौध तक पहुंचाने की ताकि आज जिन विकट समस्याओं का सामना हमारा समाज कर रहा है उसमें कुछ विराम लग सके, राहत मिल सके तथा पुनः एक नई शुरुआत को बल मिल सके। किसी शायर ने ठीक ही लिखा है :

''सोच को बदलो सितारे बदल जाएंगे,
नजर को बदलो नजारे बदल जाएंगे,
किश्तियां बदलने की जरूरत नहीं,
दिशाओं को बदलो, किनारे बदल जाएंगे।''

इसके लिए माता-पिता व गुरूजनों को विशेष प्रयास करने होंगे। प्रातःकालीन सभाओं में योग्य आचार्यों द्वारा संस्कारों को लेकर विशेष चर्चा होनी चाहिए, वहीं घरों पर प्रातः या सांयकाल को भजन, आरती में बच्चों को भी शामिल किया जाना चाहिए। तभी कुछ सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिल पायेगा। आज भारतीय समाज को पुनः अपनी भव्य व विराट, प्राचीन संस्कृति व संस्कार परम्परा की तरफ लौटने की आवश्यकता है तभी हमारे व्यावहारिक जीवन में स्वयमेव बदलाव आएगा, हमारी सोच बदलेगी तो निश्चित तौर पर हमारी युवा पीढ़ी सकारात्मक बदलाव के प्रति प्रेरित होगी और तभी भव्य व सुसंस्कृत भारत के निर्माण का रास्ता भी प्रशस्त होगा।

प्रशिक्षित कला स्नातक अध्यापक
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला
पपरोला, तह. बैजनाथ, जिला कांगड़ा (हि. प्र.) 176115
मो. 9736443070

रमेश शर्मा की कविताएं

धूप

इठलाती बलखाती आ गई धूप
लू के थपेड़ों से नहला गई धूप
नीरवता के गीतों से गूंजती है दुपहरी
बच्चों को हौले से सुला गई धूप!
दो वक्त की रोटी को लोग जो निकल पड़े
रास्तों में कांटे बिछा गई धूप!
है वास्ता उनका जिनके ऊपर छत नहीं
खून के आंसू उन्हें रुला गई धूप!
सूखे तालाबों में फड़फड़ाते हैं बगुले
प्यासों को मौत की नींद सुला गई धूप!
कुछ मिलता नहीं लोगों से इस जहां में।
बस बिन मांगे मुफ्त में मिल जाती है धूप!

जाड़ा

बरखा गई मेघों के संग आने लगा जाड़ा
खड़ी ओढ़े दुशाला फिर सबको भाने लगा जाड़ा
ओस की बूंदों पर नन्हे पांव जो थिरकने लगे
बचपन का गीत कोई गाने लगा जाड़ा
इतिहास के पन्नों पर हो गया फिर कोई अशोक महान्
बीती नरसंहार की कहानी फिर से सुनाने लगा जाड़ा

ठिठुरती रही रात में फुटपाथ पर बूढ़े की लाश
अभावों से घिरे लोगों पर कहर ढाने लगा जाड़ा
जब कभी भी याद आई मां की सुनाई लोरियां
आंख नम हो आए फिर से रुलाने लगा जाड़ा
दुखों ने जब भी रुलाया उम्मीदों पर जीते रहे
उठते रहे गिरगिर कर फिर तो हंसाने लगा जाड़ा
दोस्ती का हाथ हमने जब भी बढ़ाया उसकी तरफ
रूठकर हमसे हमेशा दूर जाने लगा जाड़ा।

गायत्री मंदिर के पीछे, बोईरयादर, रायगढ़,
छत्तीसगढ़-496 001

लघु कथा

दीप जल उठे

● नरेन्द्र देवांगन

पूरे मुहल्ले में दीपावली की धूम मची थी। बच्चों ने नए-नए कपड़े पहन रखे थे। उनके गुलगपाड़े और शोर-शराबे से पूरा मुहल्ला गूंज रहा था। हर घर दीपों की रोशनी से झिलमिला रहा था। कहीं-कहीं बिजली के बल्ब भी शान से टिमटिमा रहे थे। लेकिन इन सब रंगीनियों से बहुत दूर कमला चाची का मकान लगभग अंधेरे में डूबा हुआ था। यद्यपि उनके मकान पर भी दो दीपक जल रहे थे, लेकिन इस जगमगाहट में वे निस्तेज से लग रहे थे।

दूसरे, किसी को इसकी खबर हो या न हो, लेकिन नन्हे आदित्य को यह बहुत अजीब लग रहा था। वह सोच रहा था, 'आखिर कमला चाची दीवाली क्यों नहीं मनाती हैं?'

उसे अच्छी तरह याद था कि कमला चाची ने पिछले साल भी दीए नहीं जलाए थे और शायद उससे पिछले साल भी नहीं।

आदित्य को यह अच्छा नहीं लग रहा था कि आज के दिन कोई दुखी और उदास रहे। वह अच्छी तरह समझता था कि जब कोई दुखी व उदास होता है, तभी त्योहार नहीं मनाता है। लेकिन चाची को क्या दुख है, यह बात वह नहीं जानता था।

'आज मैं चाची का दुख जान कर ही रहूंगा।' यह निर्णय करके वह जा पहुंचा अपनी मम्मी के पास।

मम्मी उस समय रसोईघर में मिठाई तैयार कर रही थी। आदित्य को कुछ चिंतित देख कर व्यग्रता से पूछा, 'क्या सोच रहा है, बेटा?'

'मम्मी, कमला चाची हमारी तरह बहुत सारे दीपक क्यों नहीं जलाती हैं?' आदित्य ने पूछा।

'वह बहुत दुखी हैं, बेटा। उन्हें दिवाली का त्योहार अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि इस दिन उनका इकलौता बेटा पटाखे चलाते समय दुर्घटनाग्रस्त हो गया था और अब वह इस दुनिया में नहीं है। उनके पति भी नहीं है। बेचारी मेहनत-मजदूरी करके गुजारा करती हैं।' मम्मी ने समझाया।

'आप मुझे हमेशा कहती हो कि दीन-दुखी की सेवा करनी चाहिए। तब क्या मैं चाची का बेटा बन जाऊं?' आदित्य ने आज्ञा लेने की दृष्टि से पूछा।

'किसी अच्छे काम के लिए मैं भला क्यों मना करूंगी।' मम्मी ने मुस्कुराते हुए कहा।

मां की स्वीकृति मिलते ही आदित्य का चेहरा खिल उठा। वह सरपट कमला चाची के घर की ओर भागा, लेकिन मम्मी की आवाज सुन कर उसे वापस लौटना पड़ा।

'बेटा, यह मिठाई तो लेते जा।' कहते हुए जब मम्मी ने मिठाई का डिब्बा आदित्य के हाथों में थमाया तो उसे अपनी मम्मी पर गर्व हुआ।

मिठाई का डिब्बा ले कर वह चाची के घर की ओर दौड़ा। प्रसन्नता के मारे उसके कदम धरती पर नहीं पड़ रहे थे। आज वह किसी बेसहारा का सहारा जो बनने जा रहा था।

शीघ्र ही वह कमला चाची के घर पहुंच गया। चाची घर के एक कोने में बैठी रो रही थी। शायद उन्हें अपना बेटा याद आ गया था।

'चाची, आप रो रही हो?' आदित्य ने पूछा।

पर चाची चुपचाप बैठी रहीं, जैसे कुछ सुना ही न हो। आदित्य ने चाची को हाथ से झकझोर कर पूछा, 'बताइए, चाची, आपको क्या दुख है?'

लेकिन चाची ने आदित्य के प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। अपने आंसू पोंछते हुए उन्होंने आदित्य को बैठने के लिए कहा।

पर आदित्य तो जैसे घर से दृढ़ निश्चय करके आया था। बोला, 'मैं बैठने के लिए नहीं आया। मैं यह जानना चाहता हूं कि आप दीपावली के दिन बहुत सारे दीपक क्यों नहीं जलातीं और आप अभी रो क्यों रही थीं?'

आदित्य की जिद के आगे कमला चाची को झुकना पड़ा। उन्होंने भरे गले से इतना ही कहा, 'जरा अपने बेटे की याद आ गई थी। आज अगर जीवित होता तो वह भी तुम्हारे जितना ही होता।'

'चाची, अगर आपका बेटा नहीं रहा, तो क्या मैं आपका बेटा नहीं बन सकता? मुझे अपना बेटा बना लो चाची। आज से मैं तुम्हारा बेटा हूं।' आदित्य ने भोलेपन के साथ कहा।

कमला चाची ने 'बेटा' कह कर आदित्य को गले लगा लिया। आज वर्षों बाद कमला चाची के घर में भी दीपक झिलमिला उठे थे।

नरेन्द्र फोटो कॉपी, पोस्ट - खरोरा 493225

जिला-रायपुर (छ.ग.)

लघु कथा

इंतकाल

● विनोद भारद्वाज

खुशी बांटने से बढ़ती है। इस बात को मि. मेहता से ज्यादा भली भांति कौन जानता है? उन्होंने बीजमंत्र बनाकर इसे जीवन का आधार बना लिया है। वह छोटी-छोटी बातों में भी इस मंत्र का भरपूर इस्तेमाल करते हैं। हर छोटी-बड़ी खुशी को बांटने का प्रयास करने में जुटते रहते हैं। अपने आस-पड़ोस और कार्यालय को अपनी खुशी में शामिल करने में गर्व महसूस करते हैं।

पिछले दिन उनका कई दिनों से रुका हुआ एक काम बन गया। जनाब इसी खुशी में मिठाई का डिब्बा लेकर कार्यालय पहुंच गए।

कमरे में पहुंचते ही सेवादार को बुलाया, "क्या हाल है, रामस्वरूप?"

"ठीक हूं, सर।"

उसने पानी से भरा गिलास साहब के मेज पर रखा।

"आज तू कुछ और भी पिलाएगा, मैं वह भी गटक लूंगा।"

रामस्वरूप झेंप गया। बोला, "सर, आप कहें तो मैं वह भी ला दूंगा।"

"नहीं यार, मैं मजाक कर रहा हूं। मेरे पिछलों (पूर्वजों) ने नहीं पी। मैं कैसे पी सकता हूं? हमारे 'जीन' में यह आई ही नहीं। कम्बख्त हलक से नीचे उतरती ही नहीं। कड़वापन अखरता है।"

मि. मेहता ने अपने बैग से मिठाई का डिब्बा निकालकर रामस्वरूप के हवाले करते हुए कहा, "सभी को बांट दो।"

"सर, किस खुशी में।" रामस्वरूप ने उत्सुकतावश पूछ लिया।

"तू, बस, बांट आ। बाद में बताऊंगा। जा जल्दी जा।"

रामस्वरूप आदेश का पालन करने निकल पड़ा।

"किस खुशी में मिठाई बांटी जा रही है?" सोहन सिंह ने पूछा।

"पता नहीं, साहब ने कहा, बांट दो। मैं अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूं। लगता है 'कौन बनेगा महा करोड़पति' का जैकपॉट उनके हाथ लग गया है। बड़े खुश नजर आ रहे हैं आज साहब!"

"इस बात की इतनी खुशी!" राकेश वर्मा बोला।

"नहीं वर्मा, कोई डॉलरों की 'वेब लॉटरी' निकल आई होगी।" रवि ठाकुर ने उसकी बात में दम भरने के लिए कहा।

सभी अपने-अपने अनुमान लगाने लगे। स्वयं के गणित बिठाते रहे। हंसी के फुहारे उठते रहे।

"एक ही तो बेटी है साहब की। वह एमबीबीएस कर रही है। उसकी शादी अभी...। नहीं, कोई और ही खास बात है।" नीरजा ने अपनी अर्थपूर्ण राय व्यक्त की। "नहीं, अपनी दूसरी शादी...।" रवि वर्मा ने बड़ी सहजता से कहा।

हंसी का जोरदार ठहाका लगा। वातावरण चहक उठा।

"आप लोग भी कहां पहुंच जाते हो? साहब ऐसे नहीं हैं। उन्हें बख्श दो।" नीरजा ने भावुकतापूर्ण कहा।

"पता नहीं क्या बात है? यूं ही अटकलें लगाने का कोई फायदा नही। हवा में तीर चलाने जैसी बात है। चलकर साहब को बधाई दे आते हैं और वास्तविकता का पता भी चल जाएगा।" सोहन सिंह ने अपनी मंशा जाहिर की।

"यही ठीक रहेगा। नीरजा ने अपनी मधुर मुस्कान बिखेरी।

"उठो, चलते हैं।" रवि वर्मा ने कहा।

"नमस्कार सर, बधाई हो!" सभी ने समवेत स्वर में कहा।

मि. मेहता ने प्रत्युत्तर में मुस्कराकर नमस्कार कहते हुए कहा, "बैठो, बैठो। धन्यवाद।"

सभी के लिए तब तक चाय आ चुकी थी।

"दरअसल बात ऐसी है कि आज मेरा इंतकाल हो गया। मैं अब चैन की नींद सो सकूंगा।" मि. मेहता ने भावातिरेक में कहा।

अचानक कमरे के वातावरण में सन्नाटा पसर गया। सभी की सांसें एकाएक रुक गईं। वक्त की धड़कन मानो जैसे थम-सी गई। सभी एक दूसरे का मुंह ताकते रहे।

ज्यों ही मि. मेहता को अपने कहे हुए शब्दों का भान हुआ, तपाक से निस्तब्धता को तोड़ते हुए बोले, "मेरा कहने का मतलब है कि मेरी पुश्तैनी जमीन का इंतकाल हो गया है। बहुत समय लग गया। राजस्व विभाग के चक्कर लगा-लगाकर अब तो थक ही गया था। अब मैं बेफिक्र उस जमीन पर अपना आलीशान बंगला बना सकता हूं। खेती-बाड़ी कर सकता हूं।"

इस बात से सभी सहज हो गए। राहत की सांस ली। और मुस्कुराते हुए चाय की चुस्कियां लेने लगे।

वापिस अपने कमरे में पहुंचते ही सोहन सिंह ने कहा, "प्रिय बंधुओ! बंगले का नक्शा बनने से लेकर गृह-प्रवेश तक अब मिठाई-ही-मिठाई। आनंद लेते रहना।"

सभी खिलखिलाकर हंस दिए।

दयाल हाउस, जाखू रोड, संजौली, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 006, मो. 94181 58987

राजस्थानी कविता

ढहते पहाड़ों के बीच

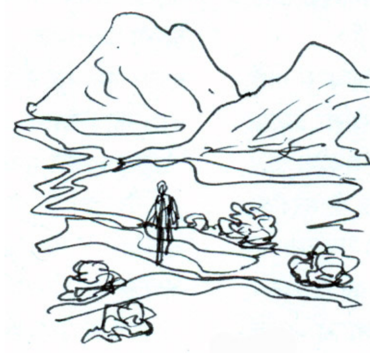
मूल लेखक : **आई दान सिंह भाटी**
अनुवादक : **जेठमल ह. मारू**

पाल रहा है वह आदमी
अपनी छाती में पहाड़।
जागतिक जीवन की
अनथक यात्रा में
जहां भी होता है वह आदमी
उसके अंतस में
उतर आते हैं
'कान्हा' के जैसे कुदकते पहाड़।

जब चलने लगती है छारदार करोतियां
कटने लगते हैं पेड़
उजड़ने लगता है जंगल का उजास।
प्रगति का लोभी प्रेत
निगलने लगता है जब
चिड़ियों के घौंसले
और हंसों का लहराता ताल।
उस समय पहाड़ों पर
खुद ढह जाता है वह आदमी।

करोतियां काटने लगती हैं तब उसकी देह
उतर आता है
उस समय
अनगिनत पहाड़ी इच्छाओं का आदिम रूप।
फिर अड़ जाता है वह हठी हमीर
पहाड़ की तरह
पैर रोप कर पाताल में।

रुक जाती है फिर
क्रेनों की छड़छड़ाहट
पोत खुलने लगते हैं
प्रगति के लोभी प्रेतों के।
वापस लौटने लगते हैं
पेड़ों की डालियों पर पंखेरू
चहचहाट झरने लगती है पेड़ों से
चिड़ियों के घोंसलों में
वापस लौटने लगते हैं प्राण।



उस समय उस आदमी की आंखों में
शतदल कमल-सा खिलने लगता है पहाड़।
उसकी आंखों के पानी में
तैरने लगती है
चंदन-वनों की छांव।
नाचने लगते हैं
कैलाशी शिवगंधी-बादल।
गीत गाने लगती हैं
गिद्धा-पगडंडियां।
दादी-नानी की गोदी-सा
गमक उठता है
उस समय पहाड़।

बालक बन दुबक जाता है
फिर वह आदमी
उसकी 'उष्मित गोद' में।
झरना बन झरने लगता है
'सहस्रधार'।

सुरीले बांस-वनों में
बजने लगता है उसका लाड-कोड।
सपनों में बन जाता झांझर।
मन रमता है उसका देवदार-जंगल के मार्ग।

कस्तूरी हिरनों की
सुगंध ज्यों
उसकी सांसों में खेलता है फिर पहाड़।

चींटी से लेकर काले नाग तक को
दुलारती है उसकी पीठ
आंसुओं की आंधियों के बीच
पूंजी की पोटलियों के बीच
पहाड़ों पर
लालटेन की तरह जगमगाता है वह
'पहाड़ी लाल'।

वह देखता, करुणा भरी आंखों से
कलदारों की खनकती खेती।
पनपते प्रगति के पत्ते
पश्चिमी विकास के औजार।
निर्मित होते पहाड़-से ऊंचे बांध।
उजड़ते भटकते आदमी।
कमतर होती जाती आदमी की साख।
इसलिए लाख यत्नों के साथ
प्राणों की तरह पालता-पोषता है वह पेड़ों को
और चींचड़ की तरह चिपक जाता है
पेड़ों से वह आदमी।

धरती से उड़ न जाए
पहाड़ी गीतों की सुवास
प्रीत की राग
इसीलिए पालता है वह आदमी
अपनी छाती में पहाड़।

2-ए-2, पनवपुरी, बीकानेर, राजस्थान-334003, मो. 94608 93974

मूल लेखक का पता : **8-बी/47, खेतेश्वर संस्थान के पास,**
तिरुपति नगर, नांदड़ी, बनाड़ रोड, जोधपुर, राजस्थान-342027, मो. 94143 25867

कविता

अधूरी है कविता

● आनन्द बंसल

उस शहर में
देवदारुओं की पंक्तिबद्ध साक्षी में
एक ही छाते के नीचे
कभी वर्षा
कभी स्पर्श से भीगते हुए
गुनगुनाई थी तुमने
एक बार
मेरी कविता की पंक्तियाँ
तुम्हे याद तो न होंगी

शायद कभी
शाम के धुंधलके में
हलके-हलके कदमों से
टहलते हुए छत के एकांत में
दोहराई होंगी तुमने
उस कविता की अधूरी पंक्तियाँ
कुछ अधबने चित्र उभर आये होंगे
कहीं से
एक टीस -सी उठी होगी
और फिर सब
डूब गया होगा पीड़ा के सैलाब में
तुम्हारे नेत्र बन गए होंगे सावन भादों
वह छत
प्यासी धरती में बदल गयी होगी
फिर सहसा
सीढ़ियों पर आहट से चौंक कर
अपने आँचल में समेट ली होगी तुमने
आँखों से धरती
मेरी वह कविता

यह मेरी
खामख्याली भी हो सकती है
ऐसा कुछ भी न हुआ हो
शायद वर्षों से
सड़क की भीड़ में
पार्क की बेंच पर
या अपने बगीचे में गुलमोहर के नीचे
या फिर
पुस्तकालय में
पुस्तकों की पंक्तियों के पीछे
तुम्हें दिखाई ही न पड़ी हो
मेरी कविता
न तुम्हारे सेल्फ पर सजी होगी
न तकिये के नीचे छिपी होगी
न कभी हुलसकर तुमने
डायरी के किसी पन्ने पर
टीप दिया होगा मेरा नाम

मैं जब भी
उस शहर में लौटता हूँ
देवदारु मुझसे
तुम्हारा पता पूछते हैं
जानना चाहते हैं
वह अधूरी कविता पूरी हो पायी
या नहीं
मैं उन्हें कैसे बताऊँ
जाने कब
बच्चे ने जेब से निकल ली थी कलम
शब्दों पर जमती रही
समय की अविरल बर्फ
पूरी होती तो कैसे
अधूरी पड़ी है
आज भी वह कविता

मकान नं.160/1, वार्ड नं. 4, तेजासिंह कॉलोनी, बद्रीपुर,
पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश-173 025,
मो. 941923517

कविता

याद अपनी : याद उनकी

डॉ. पीयूष गुलेरी

याद अपनी क्यों उन्हें आती नहीं।
याद उनकी क्यों भला जाती नहीं।

यार! अपने सोच की है इन्तहा,
सोचता रहता, उन्होंने क्या कहा?
हर घड़ी है घुन रही यारव, मुझे।
अब बताऊँ क्या किसे, कैसे सहा?
तार है बेतार-सी जो हिल रही,
टिक टिकी की डोर से, हूँ बँध गया।।
झनझनाती अजब-सी झंकार है,
शक्ल-सूरत, और की, भाती नहीं।।

सुन रहा मन हर घड़ी उनकी कथा,
कह नहीं वह पा रहा अपनी व्यथा।
बोलता हूँ कुछ नहीं मैं इसलिए
मान ले मेरी कहीं न अन्यथा।।
राह टेढ़ी खीर जैसी हो गई,
प्रेम के संदर्भ में था मन मथा।।
खग, कबूतर से यही मन पूछता,
ला रहा है क्यों कोई पाती नहीं।।

गजब की है, अजब, उनकी हर अदा,
जी रहा मन हर घड़ी, उसमें सदा।।
है सदा, यह हर दिशा से आ रही,
भाग्य में मेरे हे ईश्वर! क्या बदा ?
जी रहा हूँ स्मरण के संसर्ग में,
इस तरह वे संग मेरे सर्वदा
वेदना, संवेदना से दंग हूँ,
मन की कोकिल क्यों भला गाती नहीं ?

हृदय में है गुनगुनाहट चल रही,
मिलन, दिल में हाथ अपने मल रही।
विरह उनके नेह् में यों घुल गया,
चाँदनी, मंदाकिनी-सी, छल रही।।
पर्त-दर-पर्त ऐसी सिम्त है,
टिक-टिकी जो, एक पल न टल रही!



बोलती रस घोलती न प्रियंवदा,
क्यों भला आकाश पर छाती नहीं??

फिर भी, मन-मन, मन भला क्या तोलता,
अनमना, धन-तिमिर में कुछ घोलता।
फिर कभी व्यवहार में, उपचार कर,
आनन्द घन की हर लहर में डोलता।।
स्वयं के आनन्द में विस्मृत हुआ,
स्वगत, सुर में, स्वयं ही से बोलता।
सुरसरी आनन्द की जब बह रही,
जल रही फिर आज क्यों बाती नहीं ??

फिर भी, है विश्वास, कि वे आएँगे।
साधना की भावना मन भाएँगें।
मंद्र मेघों की सरीखी गर्जना,
चारों ओर, कुछ इस तरह से छाएँगे।।
लाएँगे वे संग सुंदर रागिनी,
आनन्द के घन घुमड़कर बरसाएँगे ।
झूम उठेंगी दिशाएँ झूमकर,
प्रेम है, 'पीयूष' की थाती नहीं।।

याद अपनी, क्यों उन्हें आती नहीं।
याद उनकी, क्यों भला जाती नहीं।।

अपर्णा-श्री, हाऊसिंग कॉलोनी, चीलगाड़ी, धर्मशाला,
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176215

डॉ. जय करण की कविताएं

उपहार प्रकृति के

वायु, जल, वनस्पति, जग जीवन दाता
फिर क्यों हे मानव तू इन्हें व्यर्थ गंवाता।

ये अजेय तत्त्व, अस्तित्व जिनका सदा सर्वदा
कब हटेगा हे मानव तेरी आंखों पर से ये पर्दा।

ताल, तलैया, नदियां, नाले, झरने-झीलें
सबको सृष्टि पर रूप इन्हीं से मिले।

जग में मानव के सौंदर्य बोध को स्पर्श यही कराता
खेतों में लहलहाती फसल देख किसान मंद-मंद मुस्काता।

बूंद-बूंद से भरती गागर और बन जाते हैं सागर
बूंद अगर बिखर जाए तो धरा पर न बूंद बचे न सागर।

त्राहि-त्राहि चारों ओर मचे यदि इंद्र देव न बरसे
वर्षा जल संरक्षण करे मानव तो जीवन भर न तरसे।

कल गांव से नगर की ओर बढ़ी थी जन की गति
वह दिन दूर नहीं जब नदी के तट पर बसेगी बस्ती।

अन्न ही जीवन

छोड़ कर गांव, बस गया है तू शहर में जाकर
पर क्या जी पाएगा एक दिन, अन्न न खाकर?

बूंद-बूंद खून पसीना बहा, अन्न उगाया जिस किसान ने
बेकदरी कर उस मेहनत की, थाली भर-भर छोड़ दी तेरे मेहमान ने।

कर्ज उठा तूने नाना पकवान बनवाए, फंस कर झूठी शान में
उम्र तेरी कट जाएगी, अब कर्ज के भुगतान में।

भूख मिटा सकता है अपाहिज, लाचार समाज में
जूठी थाली में बर्बाद हो रहे अनाज से।

छू रही कीमतें आसमां, लागत ज्यादा, कम पैदावार से
उत्पादन भी नहीं हो पा रहा भरपूर मौसम की मार से।

चींटी अन्न का दाना-दाना बचा, समझाती महत्त्व अनाज का
तू बर्बाद कर अन्न छीन रहा हक भूखे, वंचित समाज का।

गांव व डाकघर सलाना, तह. व जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश
मो. 94599 69717

ग़ज़ल

मेरा शहर

● **सुगन धीमान**

खूब चमचमाता था कभी मेरा शहर
दूर तक मशहूर था कभी मेरा शहर

देखने आते थे लोग इसकी चकाचौंध को
ताज में कोहेनूर-सा था कभी मेरा शहर

गीतों की टहनियों पर सुरों के फूल थे
मस्तियों के झूले पर झूलता था कभी मेरा शहर

लोग सुख-दुख के साझी पैसे की दौड़ से दूर
चैन की बंसी बजाता था कभी मेरा शहर

आज बदली हवा इस कदर ऐ दोस्त!
थका-थका पिटा-पिटा लगने लगा मेरा शहर

शोर बेचैनी का सबब, जिन्दगी परेशानी की तर्ज
भीड़ का हजूम बन कर रह गया मेरा शहर

बड़ा अफसोस होता है किसी से जब मैं कहता
छलछलाते जाम में डूब गया मेरा शहर

छीनता कोई बालियां कोई दुपट्टा ले उड़े
रोज ही बदनाम होने लगा अब मेरा शहर

उफ! ये गंदी हरकतें बेलगाम हो रहीं
दिन रात शर्मसार होने लगा मेरा शहर

रोब-दाब की पहल कदमी, इतनी बढ़ी
इक खुशी को तरसने लगा मेरा शहर

आगे-पीछे दाएं-बाएं राजनीति-राजनीति
विवाद की जड़ बन गया मेरा शहर

बहुत आए, वादा किया चलते बने
चरमराता, लड़खड़ाता रह गया मेरा शहर

बहुत मुद्दे हैं, उठता मगर कोई नहीं
भीख की तरह जवाब मांग रहा मेरा शहर

अपनी गरज के बंदे, मनमानी में लगे हैं सब
आज भीड़ में अकेला पड़ गया मेरा शहर।

नज़दीक हिमाचल ग्रामीण बैंक, डाकघर बरोटीवाला,
झाड़माजरी, बद्दी, जिला सोलन, हि. प्र.-174 103
मो. 98826 62943

समीक्षा

तीन पंक्तियों का काव्य हाइकु

● सुदर्शन वशिष्ठ

विश्व कविता यात्रा में हिन्दी की 'क्षणिका' से भिन्न 'हाइकु' का जन्म जापान में हुआ। हाइकु को हिन्दी में दोहा या चतुष्पद, उर्दू में शे'अर, अंग्रेजी में कप्लेट के करीब की विधा माना जा सकता है। वर्णिका छंद में तीन, पांच और सात पंक्तियों में यह कविता लिखी जाती रही। धीरे-धीरे घट कर यह तीन पंक्तियों का काव्य ही रह गया। इसमें प्रमुखतः प्रकृति चित्रण किया जाता रहा जिसके साथ अब अन्य सामाजिक सरोकारों को भी समाहित किया गया। एक तरह से एक शब्द चित्र, एक विचार, एक भाव, एक क्षण की उपस्थिति दर्ज करना इस विधा का अभीष्ट रहा।

इधर हाइकु लेखन का चलन बढ़ा है। कई पत्रिकाओं में हाइकु देखने को मिल रहे हैं। हिमाचल की बात करें तो डॉ. ओम्प्रकाश सारस्वत, टी.आर शर्मा, प्रत्यूष गुलेरी के हाइकु हाल ही में पत्रिकाओं में देखने को मिले। कुछ पत्रिकाओं ने हाइकु विशेषांक भी निकाले। इसी आहट में कुंवर दिनेश का हाइकु संग्रह ''आंगन में गौरेया'' हिमाचल से सम्भवतः प्रथम संग्रह है।

विश्व कविता यात्रा में हिन्दी की 'क्षणिका' से भिन्न 'हाइकु' का जन्म जापान में हुआ। हाइकु को हिन्दी में दोहा या चतुष्पद, उर्दू में शे'अर, अंग्रेजी में कप्लेट के करीब की विधा माना जा सकता है। वर्णिका छंद में तीन, पांच और सात पंक्तियों में यह कविता लिखी जाती रही। धीरे धीरे घट कर यह तीन पंक्तियों का काव्य ही रह गया। इसमें प्रमुखतः प्रकृति चित्रण किया जाता रहा जिसके साथ अब अन्य सामाजिक सरोकारों को भी समाहित किया गया। एक तरह से एक शब्द चित्र, एक विचार, एक भाव, एक क्षण की उपस्थिति दर्ज करना इस विधा का अभीष्ट रहा।

रवीन्द्रनाथ टेगोर ने कुछ हाइकु कविताओं को बंगला में अनुवाद किया। अज्ञेय ने हाइकु जैसा प्रयोग किया किंतु यह छन्दबद्ध नहीं था। सन् 1959 में प्रकाशित उनके संग्रह ''अरी ओ करुणप्रभामयी!'' में हाइकु के अनुवाद किए गए हैं। इसके बाद श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कैलाश वाजपेयी, कुंअर बेचैन आदि ने भी हाइकु का प्रयोग किया। प्रभाकर माचवे ने 1960 में प्रकाशित 'भारत और एशिया का साहित्य' में हाइकु अनुवाद सहित प्रकाशित किए। अंग्रेजी कविता में हाइकु और इसके अनुवाद की परंपरा अधिक रही। हिन्दी में क्षणिका के साथ हाइकु का अस्तित्व भी रहा है, मगर कम।

हाइकु का छंद में होना इसे क्षणिका से अलग करता है, यद्यपि इसका छंद्धबद्ध होना अनिवार्य भी नहीं माना जाता और कई लोग छंद के अनुशासन में लिखना पसंद नहीं करते। सामान्यतः हाइकु तीन पंक्तियों में छंदबद्ध या तुकबंदी में रचा माना जाता है। इतनी कम पंक्तियों में कविता का अर्थ तभी रह जाता है जब वह मारक असर करे। केवल तीन पंक्तियों में कुछ बिम्ब तो उभरे ही, यह अर्थवान् भी रहे। अपनी शब्द शक्ति से अचम्भित और स्तम्भित करे। वैसे भी शब्दों की मितव्ययता कविता का गुण रहा है बशर्ते यह गहरा अर्थ धारण किए हो या एक ही वाक्य के कई अर्थ निकलें। सम्भवतः यही हाइकु के जन्मदाताओं का अभीष्ट रहा होगा।

वर्ष 2002 में हिमाचल अकादमी से 'हाऊस अरेस्ट' अंग्रेजी काव्य संकलन के लिए सम्मानित कवि कुवंर दिनेश सिंह का प्रस्तुत हाइकु संकलन से पूर्व 1999 में अंग्रेजी में एक काव्य संकलन 'थिंकिंग एलाउड' प्रकाशित हुआ था जिसमें हाइकु की

तरह छंदमुक्त कविताएं थीं। इस तरह की कविताएं उनके संकलन 'ड्यूस' हाइकु पोइम्ज (2001)' तथा 'सिंटीलेशंज : हाइकु एण्ड एपीग्राम्ज (2002)' में भी देखी गईं। पुटभेद और उदयाचल काव्य संकलनों के बाद 'आंगन में गौरेया' इनका पांचवां संकलन है। जिस तरह पक्षियों में गौरेया अब लुप्त हो रही है वैसे ही हाइकु जैसी लुप्त हो रही विधा को सामने लाना गौरेया की सुखद वापसी के समान है।

जैसाकि हाइकु की परंपरा रही है, इस संकलन की अधिकांश कविताएं भी प्रकृति के माध्यम से ही बात कहती हैं। फूली हुई सरसों, कलियां, फूल, वसंत, सर्दी गर्मी, सूरज, चांद, धूप बारिश, पेड़ पौधे, नदी पर्वत के साथ गौरेया, चिड़िया जैसे पक्षी है जो प्रकृति के माध्यम से कविता बात करते हैं।

प्रकृति चित्रण इनकी कई कविताओं में सहजता से सामने आया है जो सहज भाव से ही एक मुहावरे में परिवर्तित होता दिखता है :

'सूर्य को ढांपे
एक मोटा बादल
खुद भी कांपे।'
या
'आसमां रोए
बादलों के गम को
धरती ढोए।'

इसी तरह के प्रकृति के रंग अन्य कविताओं में भी मिलते हैं :

''सूरज ढला
कितने ही रंगों को
समेट चला।''
या
'सूर्य चितेरा
नभ की वीथि पर
जादू उकेरा।'

प्रकृति के ही कुछ और चित्र :

'काले बादल
चांद निकला आज
ओढ़े कम्बल।'

प्रकृति चित्रण के माध्यम से कविता में कुछ धीर गम्भीर बात की भी अपेक्षा की जाती है। सीधा सीधा चित्रण भी कविता के उद्देश्य को पूरा नहीं करता। कवि से ऐसे चित्रों के माध्यम से कुछ न कुछ और अर्थ की कामना भी जाती है। ऐसा कुछ कविताओं में देखा जा सकता है जहां एक प्रकृति के मध्यम से एक दूसरा गहन अर्थ भी नजर आता है। यथा :

'घुन्ना मौसम
कहता नहीं कुछ
हो रहा भ्रम।'
'पिंक बुरांश
सदा सदा के लिए
ठहरे काश!'
''बर्फ के फाहे
आसमानी नेमत
मन सराहे।'

कुछ कविताएं एक गम्भीर अर्थ देने में भी सक्षम हुई हैं, जो इतनी लघु कविता से अपेक्षा की जाती है :

'अंधेरा बीता
रात को हरा कर
सूरज जीता।'
'धूप बारिश
आए हैं एकसाथ
होगी साजिश।'
'है कोई रोया
ओस नहीं आंसू हैं
भू को भिगोया।'
'नन्हा सोता
बीहड़ जंगल में
अकेला रोता।'

हाइकु का गर्भ सा अर्थवान् होना ही कविता का मानक कहा जा सकता है अन्यथा क्षणिका या दूसरी कविता में भी बहुतेरे ऐसे मर्म हैं जो अर्थ की दृष्टि से चमत्कारपूर्ण हैं। अज्ञेय ने जब दो पक्तियों में कहा --''मैं सभी ओर से खुला हूं वन सा/वन सा अपने में बंद हूं....'' या ''मैं देख रहा हूं/झरी फूल से पंखुरी/मैं देख रहा हूं अपने को ही झरते'' तो यह कविता की शक्ति से ही प्रभावोत्पादक बना। अतः हाइकु को ज्यादा दमदार और मारक होना होगा तभी उसका अस्तित्व बन पाएगा।

संकलन बढ़िया आर्ट पेपर में छपा है। हर कविता के साथ सर्वजीत सिंह का स्केच दिया गया है जो कविता के प्रभाव को और अर्थवान बनाता है। आवरण, साज सज्जा आकर्षक है।

चर्चित संकलन :	आंगन में गौरेया
कवि :	कुंवर दिनेश सिंह
प्रकाशक :	अभिनव प्रकाशन दिल्ली
मूल्य :	225.00 रुपये
संस्करण :	2013

'अभिनंदन' कृष्ण निवास लोअर पंथा घाटी
शिमला-171009

पुस्तक समीक्षा

खामोशी को बयां करती कविताएं

● अनन्त आलोक

घटनाएं बोलती नहीं हैं। पूछती भी नहीं, वे तो केवल घटित होती हैं और कर देती हैं अपना काम। अच्छा या फिर बुरा। हां इनके घटित होने से पूर्व एक खामोशी अवश्य होती है, जो अनजानी होती है। इस खामोशी को कोई वैज्ञानिक, कोई भविष्य द्रष्टा जान नहीं पाता, समझ नहीं पाता। इसका केवल आभास होता है। उसी आभास को शब्द दिए हैं लेखक एवं कवि श्रीकांत अकेला ने, अपने काव्य संग्रह 'अनजानी खामोशी' में। यहां समीक्षित पुस्तक श्रीकांत अकेला का दूसरा काव्य संग्रह है। शीर्षक कविता में कवि अनजानी खामोशी को मुखरित करवाते हुए कहलवाता है *फिर नष्ट होंगे घरोंदे/ आहत होगी संवेदना/ जंगल मिट्टी हरियाली भी/ और छा जाएगी एक अनजानी खामोशी।"* कवियों के बारे में एक कहावत आम प्रचलित है 'जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि'। कवि मन घोर निराशा में भी आशा की एक किरण खोज ही लेता है। पड़ोसी देश से हालांकि हमारे संबंध आरम्भ से ही अच्छे नहीं रहे हैं, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में तो कड़वाहट कम होने के बजाय और बढ़ी है। कवि हृदय ऐसे में भी संबंधों की मधुरता की आशा करता है। एक बानगी देखिए *"काश!/ सरहद पार से/ तुम लाते/ सद्भावना के फूल/ और हम निभाते/ अतिथि देवो भवः की/ अपनी मौलिक परंपरा।"* इस कविता में कवि अपनी संस्कृति और परंपराओं पर भी गर्व का अनुभव करता है। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है, ये प्रकृति का नियम है। लेकिन दुख उस समय होता है जब हम कोई मुकाम पा लेने के बाद खुशी में या सफलता के नशे में इतना मदहोश हो जाते हैं कि माता-पिता के किए उपकारों को ही भूल जाते हैं। आज यह बात आम हो गई है। संतान सफलता पाने के बाद अपने माता-पिता को भूलती जा रही है या दुत्कार रही है। यह भाग्य की विडंबना नहीं, हमारी संस्कृति का ह्रास है। इसी पर फटकार लगाते हुए कवि 'बेशम फूल' कविता में कहता है *"अकस्मात ही नहीं/ खिलता है कोई सुन्दर फूल/ पहले बीज या/ किसी टहनी को/ सड़ने का दर्द झेलना पड़ता है/ फिर गुंचे की गोद में खिलता है पुष्प/ सिसकता है गुंचा पर/ मुस्कुराता है बेशर्म फूल।"*

पुस्तक :	अनजानी खामोशी (काव्य संग्रह)
कवि :	श्रीकांत अकेला
प्रकाशक :	हिमालिनी प्रकाशन, झींवरहेड़ी भुड्डी चौक, शिमला रोड, देहरादून, उत्तराखंड
मूल्य :	150 रुपये

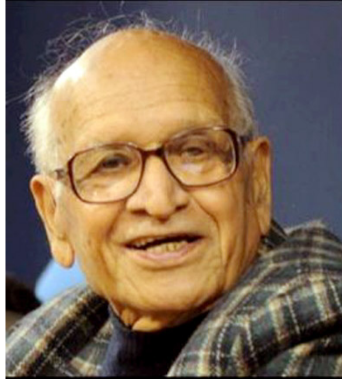
कवि श्रीकांत अकेला प्रत्येक विषय पर लेखनी चलाते हैं, विशेषकर समसामयिक विषयों पर इनकी दृष्टि और भी पैनी है। हिन्द में हिन्दी की दुर्दशा पर वे आह्वान करते हुए कहते हैं *"हिन्द की आवाज बनकर/ हिन्द को सम्मान दो/ हो सके ये पूण्य करके/ राष्ट्र को पहचान दो।"* राजनीतिक हलचल से कवि मन कैसे विलग रह सकता है। समकालीन स्थिति पर 'चाय पॉलिटिक्स' में कवि कहता है *"चाय की चुस्कियां बढ़ाती हैं नजदीकियां/ चाय पीना पिलाना यही परंपरा परंपरिक है/ सत्य भी।"* अन्ना के आंदोलन ने सबको एक बार फिर गांधी का स्मरण करवा दिया। इस घटना से शायद ही कोई प्रभावित हुए बिना रहा हो। 'मुक्ति बंधन' कविता में कवि कहता है *"देखो एक बार फिर/ संभाली है कमान/ एक फकीर ने/ जिससे जुड़ गई वो/ तमाम भावनाएं, विचार।"* गांव में शिक्षा की लौ से जहां कई घर रोशन हुए हैं, वहीं असंख्य घरों में आग भी लगी है। और इसकी जद में आए वहां के बुजुर्ग। गांव में रोशन हुई संतानें अपने हिस्से की रोशनी सहित शहरों को पलायन कर रही हैं और शेष रह जाते हैं, बूढ़े मां-बापं। इसे शिक्षा की सबसे बड़ी हानि कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। 'चिट्ठी' कविता में इस बात को कवि कुछ यूं बयां करता है *"आंखें भर जाती होंगी/ जिंदगी के आखिरी पड़ाव पर खड़े/ बूढ़े मां-बाप की जो सिर्फ राह तकते हैं/ चिट्ठी की क्योंकि/ उस गांव में है तो सिर्फ चन्द बुजुर्ग ही/ या यूं कहें बुजुर्गों का एक गांव।"* संग्रह की 81 कविताओं में अखबार, पीत पत्रकारिता, सिसकियां, सच्चा प्रेम, शब्द बाण एवं सिंहासन पर हों सिंह जैसी भी अच्छी कविताएं हैं। संग्रह में कवि कहीं-कहीं यति गति और लय की पाबंदी में छंदानुशासन का पालन करता हुआ प्रतीत होता है तो कहीं भाव प्रधान छंदमुक्त वातावरण में अबाध गति से बहता चला जाता है। कुछ कविताओं में दोहराव एवं विरोधाभास दोष के अतिरिक्त शब्दों के चयन में त्रुटि हुई है जो स्वाध्याय एवं स्वसंपादन से दूर होंगी। कुल मिलाकर पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय बन पड़ी है।

साहित्यालोक, बायरी, ददाहू, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश-173 0222,
मो. 94187 40772

आखिरी पन्ना

प्रो. बिपन चन्द्र
खुद इतिहास बन गए इतिहास लेखन के पुरोधा

● हृदय आर्य



प्रो. बिपन चन्द्र के इस संसार से सदा के लिए चले जाने से आधुनिक भारत के इतिहास का जैसे एक अध्याय ही समाप्त हो गया। 30 अगस्त 2014 को उनके निधन से हमने एक ऐसे जुझारू एवं निश्छल इतिहासकार को सदा के लिए खो दिया जिन्होंने आधुनिक भारत का इतिहास लिखकर इतिहास लेखन को एक नई दिशा प्रदान की। उपनिवेश के खिलाफ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का जैसा तार्किक और ऐतिहासिक विश्लेषण प्रो. चन्द्र ने किया, वह अपने आपमें एक मानक स्थापित हो गया। 27 मई 1928 को हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले के गरली गांव में श्री तोतू राम एडवोकेट के घर जन्मे बिपन की आरम्भिक शिक्षा गरली स्कूल में हुई और बाद में डी.ए.वी. स्कूल कांगड़ा से हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद इनका पूरा परिवार धर्मशाला स्थानांतरित हो गया। उन्होंने लाहौर के 'फोरमैन कॉलेज, अमेरिका के स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात उन्होंने अपना सारा जीवन आधुनिक भारत के इतिहास लेखन व इसकी खोज में समर्पित कर दिया।

अपने जीवन के शुरुआती दौर में उन्होंने पहले दिल्ली के हिन्दू कॉलेज में प्रवक्ता व रीडर के पद पर कार्य किया। दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के प्रोफेसर बने। विश्वविद्यालय की पत्रिका 'एनक्वारी' के प्रबन्धक मण्डल के संस्थापित सदस्य बने रहे। वर्ष 1985 में वे भारतीय इतिहास कांग्रेस के प्रधान बने। जवाहरलाल विश्वविद्यालय दिल्ली के इतिहास अध्ययन केन्द्र के चेयरमैन रहे। यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन के चेयरमैन (1993) और 2004 से 2014 तक नैशनल बुक ट्रस्ट के चेयरमैन रहे। भारत सरकार ने उनके योगदान के लिए 2010 में उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया। प्रो. चन्द्र को अपने जन्म स्थल से उन्हें विशेष लगाव था जिसकी एक झलक तब मिलती है जब वह नेशनल बुक्स ट्रस्ट के अध्यक्ष थे। उन्होंने हिमाचल के कुछ लेखकों का पहाड़ी व हिन्दी साहित्य ट्रस्ट से प्रकाशित करवाया और देशभर में पहाड़ी साहित्य को पहचान दिलवाई। इससे पहले भी ट्रस्ट ने हरिकृष्ण मिट्टू की पुस्तक 'हिमाचल प्रदेश' को प्रकाशित कर तत्कालीन इतिहास को देश के सामने लाने का प्रयास किया। देश के प्रसिद्ध इतिहासकार बनने तक प्रो. चन्द्र का जीवन भी संघर्षपूर्ण रहा। उनका मानना था कि इतिहास प्रगतिशील विचारों के प्रसार का सशक्त माध्यम हो सकता है। उन्होंने अपने इसी नजरिये से न केवल आधुनिक भारत का इतिहास लिखा बल्कि अनेक मतवादों के विरोध में इतिहासकारों का एक प्रखर समूह भी तैयार किया। जिस दौर में उन्होंने स्वतन्त्र भारत का इतिहास लिखना आरम्भ किया, उससे पहले का लगभग समस्त इतिहास लेखन औपनिवेशिक ढर्रे और मार्क्सवादी विचारों की स्थापित दो विचारधाराओं पर चल रहा था। उन्होंने इन दोनों धाराओं से हटकर अपना एक अलग रास्ता बनाया। वे प्रगतिशील मूल्यों के हिमायती रहे, शायद इसीलिए इतिहास लेखन में उनके इस अनूठे योगदान को समझने में लोगों को समय लगा। भारतीय इतिहास कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर रहे हुए उन्होंने देश के समस्त इतिहासकारों को प्रगतिशील विचारों के प्रसार के उद्देश्य से इतिहास लेखन की दिशा में प्रवृत्त किया। बिपन चन्द्र देश के जाने-माने इतिहासकार होने के साथ- साथ दूरदृष्टा और कुशल प्रशासक भी थे। नैशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष पद के दौरान उन्होंने समाज-विज्ञान और इतिहास की अनेक दुर्लभ और अहम पुस्तकों का अनुवाद और प्रकाशन करवाया। अध्यक्ष पद के तौर पर उन्होंने सबसे अधिक किताबें प्रकाशित कीं। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में शहीद भगत सिंह को सम्मानजनक स्थान दिलाने में प्रो. बिपन चन्द्र का सराहनीय योगदान रहा है। भारतीय इतिहास के लेखन में प्रो. चन्द्र के योगदान को सदैव याद रखा जाएगा। देश के विख्यात इतिहासकार को खो देना निश्चय ही एक बहुत बड़ी बौद्धिक क्षति है।

ज्ञान भण्डार, लोअर बाजार, शिमला–171 001,
मो. 98160 66833

हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 नवम्बर-दिसम्बर 2014 अंक : 8/9

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

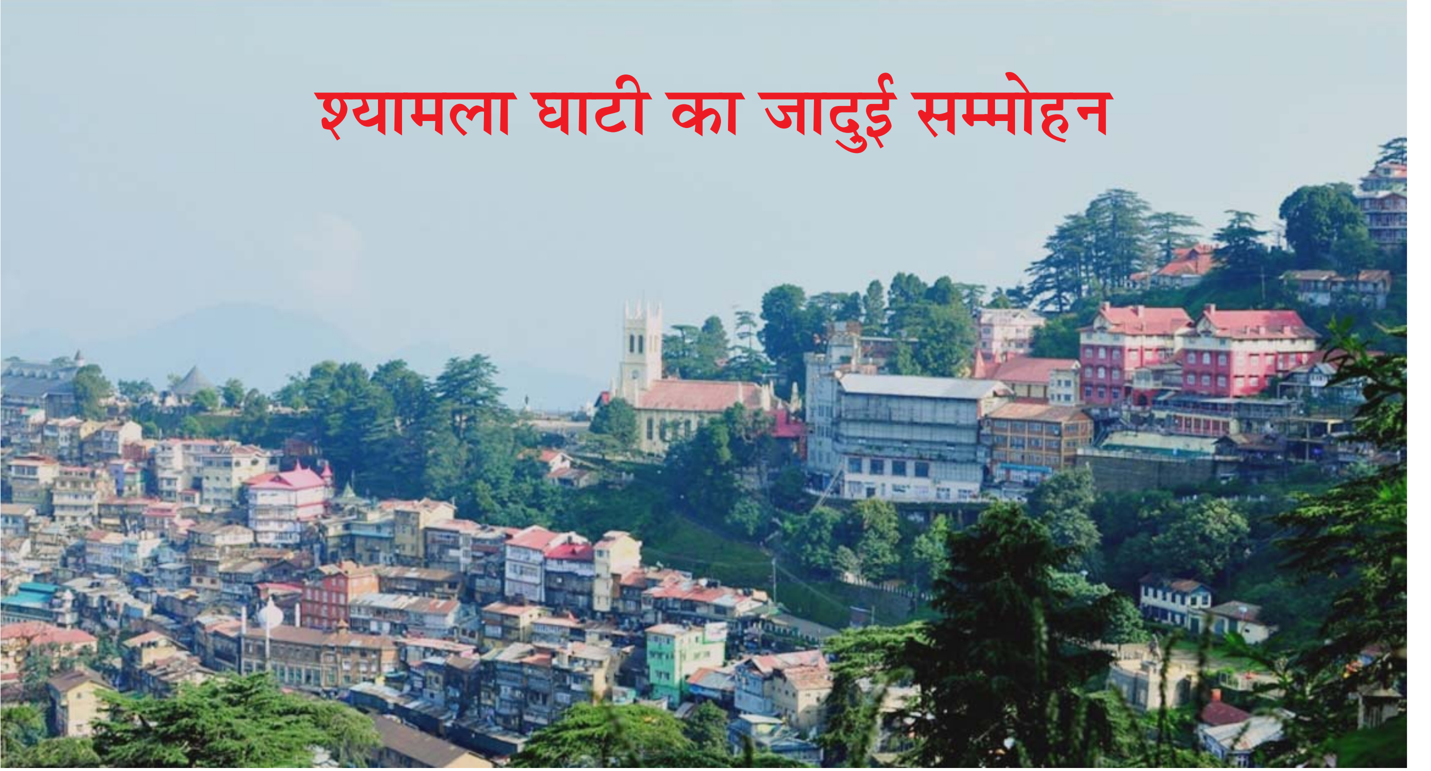
इस अंक में

अपनी बात

भारतीय उपमहाद्वीप में जितनी भी सभ्यताओं और संस्कृतियों का विकास हुआ है, हिमालय उन सबका उद्‌गम स्थल रहा है। विशाल हिमालय के पश्चिम में स्थित हिमाचल प्रदेश के भू-भाग पर यक्ष, गंधर्व, किन्नर और आर्जीक जनजातियों का वास रहा है। वैदिक और पौराणिक काल में यहां विकसित-पोषित विभिन्न सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परम्पराएं आज भी हमारी सभ्यता का मूलाधार है। प्रागैतिहासिक काल का शायद यह वही दौर था, जब इस क्षेत्र में जनतांत्रिक व्यवस्था का उदय हुआ जिसके बारे में परवर्ती संस्कृत और वैदिक साहित्य में वृहद उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि आर्यो के आगमन से पूर्व ही यहां सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। लेकिन कालान्तर में जब भारत वर्ष में राजतंत्रीय व्यवस्था विकसित हुई तो यहां भी सामन्तशाही सामाजिक व्यवस्था का प्रचलन बढ़ा जिसके प्रभाव में पारम्परिक जनतांत्रिक व्यवस्था गौण होती चली गई। भारत के मैदानी क्षेत्रों में जब भी कोई ऐतिहासिक घटना घटती तो हिमालय और शिवालिक पहाड़ियों के क्षेत्र भी इससे अछूते नहीं रहते। दुनिया का चाहे कोई भी देश हो, उसके हर भू-भाग, वहां के समाज, समुदाय या जाति का अपना एक अलग इतिहास और संस्कृति होती है। हिमाचल प्रदेश का इतिहास भी वास्तव में उन लोगों का ही इतिहास है जो प्राचीन काल से शिवालिक और हिमालय के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में आकर बसे। पाठकों को हिमाचल प्रदेश के गौरवमय इतिहास, समृद्ध संस्कृति, परम्पराओं और सामाजिक-आर्थिक स्थिति से रू-ब-रू करवाने के उद्‌देश्य से गत वर्ष से हिमप्रस्थ में जिला विशेषांक प्रकाशन शृंखला आरभ की है। इस कड़ी के तहत कुल्लू और मण्डी जिला विशेषांकों के बाद अब शिमला जिला विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। वर्ष 1948 से पूर्व पश्चिमी हिमालय में सतलुज और टौंस नदियों के मध्य स्थित क्षेत्र को 'शिमला हिल स्टेट' यानी शिमला की पहाड़ी रियासतों के नाम से जाना जाता था। प्राचीन काल में यह क्षेत्र 'कुलिन्द जनपद' के अंतर्गत पड़ता था। मौर्य, कुषाण और गुप्तकाल के स्वर्णकाल के दौरान इस क्षेत्र पर इन सम्राटों का किसी-न-किसी रूप में प्रभुत्व रहा हैं तदोपरांत 9वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक की अवधि में उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों के राजपूतों ने इस पर्वतीय भू-भाग पर अपने लिए छोटी-छोटी रियासतें स्थापित कीं। जनसंख्या और क्षेत्रफल के लिहाज से यह रियासतें इतनी छोटी थीं, कि इनके रजवाड़े शासकों को ठाकुर और राणा कहा जाता था। इस प्रकार सातवीं-आठवीं शताब्दी के पश्चात मैदानों से आए यही राजपूत हिमालय की पर्वतीय घाटियों में प्रवेश कर वहां के स्वामी बन गए। शिमला की ऊपरी पहाड़ियों में अठारह ठाकुरों का शासन होने के कारण यह क्षेत्र अठारह ठकुराई (अब शिमला) और निचले क्षेत्र में बारह ठाकुर होने के कारण निचला क्षेत्र बारह ठकुराई कहलाया। इस दौरान नेपाल से गोरखों का इस क्षेत्र में वर्चस्व बढ़ा तो, पहाड़ी रियासतों के राजाओं को उनसे निजात पाने के लिए अंग्रेजों की सहायता लेनी पड़ी। अंग्रेजों और गोरखों में युद्ध के बाद गोरखों की हार हुई जिससे शिमला जनपद में अंग्रेजी शासन का आगमन हुआ। अंग्रेजों को इस पहाड़ी क्षेत्र की प्राकृतिक सुंदरता और स्वास्थ्यवर्धक जलवायु इतनी रास आई, कि उन्होंने यहां शिमला नगर की स्थापना कर इसे देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाया और अपने विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य पर यहीं से शासन किया। वर्ष 1864 में पहाड़ों में विलायती संस्कृति के साथ अस्तित्व में आए इस छोटे से कस्बे का इतिहास 150 वर्ष पुराना हो चुका है और आज यह विश्व मानचित्र पर एक महत्त्वपूर्ण नगरीय जनपद के रूप में स्थापित हैं। प्रस्तुत अंक में शिमला जनपद के समृद्ध इतिहास, ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक महत्त्व, धर्म-संस्कृति, सामाजिक-आर्थिक स्थिति सहित जनमानस के जनजीवन से जुड़े पहलुओं को समाहित करने का प्रयास किया गया है। इस कार्य में हमें प्रदेश विशेषकर शिमला जनपद के प्रबुद्ध साहित्यकारों और लेखकों का भरपूर सहयोग मिला जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। आशा है भविष्य में भी सुधी लेखकों और पाठकों का सक्रिय सहयोग और बहुमूल्य योगदान हमें इसी प्रकार मिलता रहेगा।

– संपादक

आईना-ए-अक्स



श्यामला घाटी का जादुई सम्मोहन

• डॉ. ओम्प्रकाश सारस्वत

देवभूमि हिमाचल की इस राजधानी को शिमला कहो या श्यामला, नामान्तर से वस्तु का असल स्वरूप नहीं बदलता। नाम, न सब कुछ को उजागर करता है और न सब कुछ को तिरोहित। मूल, अश्वत्थ के बीज की तरह परम-अणु होता हुआ भी परम-शक्तिमान होता है। श्यामला घाटी की उपनिषद्, निसर्ग-उपासना में, एक ऐसा हृदयस्पर्शी अद्‌भुत अनुभव है जो अपने अर्थबोध में व्यापक परिणामों और अनन्त संकल्पनाओं के सगुण-निर्गुण /स्वस्तिक माण्डणों की तरह है। हार्दिक अनुभव खोजी साधकों के लिए, आत्मसाक्षात्कार की तरह है। चक्र-दर-चक्र मेधा का निरलस ऊर्ध्वारोहण है और यही शक्तितत्त्व का जागरण ही है। स्वभाव से सुवृत्त होने पर भी माण्डणे न तो सगुण की सत्ता का सम्पूर्ण रच सकते हैं और न ही अव्याकृत निर्गुण की अनादिता का शतांश किन्तु माण्डणे फिर भी, इतिहासों के सगुण-प्रमाण हैं और कल्पनाओं के सीमाहीन निर्गुण/विस्तार।

श्यामला घाटी की आदिगन्त फैली, सुजलता, सुफलता, इसकी श्यामता/हरीतिमा, इसकी वर्णवर्णी रम्यता, इसकी मनोहारिता, इसके आकर्षण, इसके आश्चर्य मिलकर एक महाकर्षण की चुम्बकीयता का आलम रचते हैं। यहां की वनराजि, यहां की ग्राम्य/नागरी सभ्यता, यहां के विनिर्माण, यहां की स्वच्छन्द प्रकृति, यहां की ईश्वरीयता और यहां की विविध भूमिमत्ता, यहां की स्रोतस्विनियां, यहां की तुषार-निष्कुलुषता, यहां की रंगीनी/रसमयता, यहां की नाटी, यहां की लोक मस्ती/लोकोत्सव सब इस घाटी के स्वतःसंभव माण्डणे हैं। आपमें से बहुत से, इसके साक्षी होंगे। आइए, आज, प्रकारान्तर से इसके अनुभवों/इसके अनुभावों, इसके रसों, इसके अलंकारों, इसकी रीतियों, इसकी धर्मिता, इसकी ध्वन्यात्मकता, इसकी सगुणता, इसकी निर्गुणता को साझा करें। अनुभव, पारस्परिक आदान/प्रदान से ही समृद्ध होते हैं। अन्तर्वर्ती हिमालय का यह रमणीक स्थल, जो कभी यक्षों, गन्धर्वों, सिद्धों, नागों, विद्याधरों, अप्सराओं, देवों, महादेव की क्रीड़ाभूमि/ नृत्यभूमि/ उल्लासभूमि/ पानभूमि, विहारभू, विलासभू तथा लोक लोकान्तरों

के कल्याण हेतु विचार चर्चा मंच और सर्वथा नीरोग निरापद सेमिनार-स्टेज की तरह रहा हो, उसका वर्तमान कैसा है, यह जानकर भी रुचिकर रहेगा।

एक अंग्रेज़ी कवि एच. डी. की कविता की पंक्तिया हैं -
मथो इस समुद्र को
झकझोरो ये नुकीले देवदार
(हरे समुद्र - हरे देवदार)
नहला दो ये हरे देवदार
हमारी इन शिलाओं पर
उडेलो ये सारी हरीतिमा, हम पर
हरे पत्तों के सरोवरों से ढक दो
हमारे तन को, हमारे मन को।

(अनुवाद : प्रो. कुबेरनाथ राय)

यहां देवदारुओं की हरीतिमा से आप्लावित कवि का मन, उसे पठार बनाती पुष्ट-शिलाओं के विवस्त्र शरीरों को ढक देना चाहता है। देवदारु-वनों के रूप में, हरियाली का एक उत्ताल समुद्र ठाठें मार रहा है। व्याकृत वानस्पतिक विविधताओं में अतिक्रांत देवदारु व्यक्तित्व जहां हों वह भूमि निसर्ग-सुन्दर ही नहीं अपितु ममतामयी माता-समान सवतोभद्र और वात्सल्यमयी मातामही के सदृश, पूरी पीढ़ी के लिए शुभाशंषाओं से भरी होती है। करुणापूरित मातृभूमि की देनदारियां जन्मजन्मान्तरों तक चुकाई नहीं जा सकतीं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने देवदारु की यथार्थता को उसकी महत्ता में आंका है। उनके अतिरिक्त अपनी बहु-आयामी कल्पनाओं के दिक्-कोणों में पहचान कर, उसकी उच्चता; उसकी शालीनता; उसकी ऊर्ध्वगामिता; उसकी अपराजेयता; उसकी जिजीविषा; उसकी वृहदाकारिता; उसकी मुक्ताकाशी स्वच्छन्दता



एवं उसकी सबुजस्याम हरीतिमा को इतनी भव्यता के साथ किसी ने चित्रित किया हो, मुझे नहीं ज्ञात। सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्र में दनदनाता यह महातरु, हिमाचल प्रदेश सहित प्रत्येक जीव-जात के लिए आश्चर्य और आकर्षण का केन्द्र है। देवदारु की इसी

सबुजस्याम धरती

गुणगरिमा के कारण, जगमहतारी पार्वती ने अपना क्षीरोद पिला-पिला कर लाडले 'गणु' और 'बड़के' कार्त्तिकेय की तरह, अपनी चाहों और चावों की पश्मीना शॉलों में लपेट-लपेट कर, हिमप्रदेश की रक्त जमा देने वाली ठंड के दिनों में भी अपनी छाती से सटा कर आत्मज की तरह बड़ा किया। देवों में महादेव की देवभार्या की ममता, शिक्षा-दीक्षा, संस्कार मिलने के कारण यह सामान्य 'दारु' (लकड़ी) होकर भी देवदारु, देवतरु कहलाया। हिमाचल को देवभूमि बनाने में देवप्रकृति के इन देवतरुओं का भी महत्तर योग है।

शिमला समेत प्रदेश की अरण्यानी में कैल, चीड़, कैंथ एवं देवदारुओं के मध्य बुरुंश के लकदक करते बड़े-बड़े लाल फूल प्रकृति के उत्सव में रस और राग की बारिश करते प्रतीत होते हैं। पहाड़ों में फूल पेड़ों पर भी खिलते हैं।

मानव का मन सतत् संकल्पशील और 'चरण, सदा संचरणशील रहे हैं। उसने अपनी हिम्मत के आगे कोई उंचाई, कोई निचाई तथा कोई सिधाई ऐसी नहीं छोड़ी जिसे चुनौती के रूप में नहीं लिया। कालिय नाग के फन पर कृष्ण के पांव की तरह शिखरों पर उसने अधिरोहण ही नहीं किया है। जब से मनुष्य चन्द्रदेव के उपवन में बांसुरी बजा के आया है और जब से मंगल महाराज के बंगले की 'बॅल' बजाने की तैयारी में है तब से यह विश्वास और

बस्ती में साम्राज्य की नींव

कैप्टन कैनेडी को क्या पता था कि उसके आगमन के साथ ही श्यामला नाम की यह छोटी-सी बस्ती अंग्रेज-साम्राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी के रूप में विकसित होने को उद्यत हो उठेगी। आदमी के कदम ही नहीं, उसके दक्ष हाथ, उर्वर-मस्तिष्क, सजरी कल्पनाएं, नवीन उद्‌भावनाएं सब, किसी भी मानवीय सभ्यता के विकास को अनिवार्य हेतु हैं। प्रयुक्तियों से संभावनाओं के द्वारों-के-द्वार और क्षितिजों-के-क्षितिज खुलते जाते हैं। सन् 1830 तक शिमला में कुल तीस घर थे, जो सन् 1841 में एक शतक की संख्या तक पहुंच गए। मार्च 1901 की गणनानुसार, शिमला और कुसुम्पटी में 1847 भवन हो गए थे। इन भवनों में, देसी, काठकुणी शैली और अंग्रेजी शिल्प के भवनों को आकार मिला था।



शहर का दिलकश नजारा

भी दृढ़ हुआ है कि इस पृथ्वी नाम के ग्रह का यह प्राणी, लोक-लोकान्तरों की सरज़मीं पर भारतीय फलों की ऐसी फसल उगा कर छोड़ेगा जिसकी मां लोक लोकान्तरों तक होगी।

कैप्टन कैनेडी को क्या पता था कि उसके आगमन के साथ ही श्यामला नाम की यह छोटी-सी बस्ती अंग्रेज़-साम्राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी के रूप में विकसित होगी। किसी भी स्थान पर व्यक्ति विशेष के आगमन से समय, उसके दक्ष हाथ, उर्वर-मस्तिष्क, सजरी कल्पनाएं, नवीन उद्भावनाएं सब, किसी श्रेष्ठ मानवीय सभ्यता के विकास के अनिवार्य हेतु बन कर उभरते हैं। प्रयुक्तियों से संभावनाओं के द्वार, और क्षितिजों-के-क्षितिज खुलते जाते हैं। अंग्रेज़ी राज द्वारा पहाड़ी रियासतों के लिए असिस्टेंट पॉलिटिकल एजेंट कैप्टन रास ने 1819 में शिमला में, लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों, मिट्टी-गारे से पहला आवास बनाया फिर सन् 1822 में कैप्टन कैनेडी ने वर्तमान विधान सभा के पास एक कॉटेज का निर्माण किया। किन्तु 1827 में जब गवर्नर जनरल एमर्स्ट शिमला आया तब यहां की आबोहवा, प्राकृतिक छटा एवं यहां की निरापदता को देखकर इसे भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी होने की सौगात प्राप्त हुई। निर्धन परन्तु भाग्य की धनी एक पहाड़ी लड़की गोद में मानो स्वर्गिक मोतियों-भरा आकाश उतर आया हो। कई सौभाग्यशाली योग जुट गए हों। तब प्रत्येक पहाड़ी बस्ती का महारानी-सा ठसका हो उठा। नगर डाह करने लगे। स्वर्ग ईर्ष्यायु हो उठे। 1830 तक शिमला में कुल तीस घर थे, जो सन् 1841 में एक शतक की संख्या तक पहुंच गए। मार्च 1901 की गणनानुसार, शिमला और कुसुम्पटी में 1847 भवन हो गए थे। इन भवनों में, देसी, काठकुणी शैली और अंग्रेज़ी शिल्प के भवनों को आकार मिला।

बस्ती में साम्राज्य की नींव

पाश्चात्यों की भवन निर्माण कला, तीन शैलियों में आयामित थी जो गॉथिक शैली, ब्रिटिश विक्टोरियन शैली और जियार्जियन शैली के नामों से चर्चित है। गॉथिक शैली; तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के मध्ययुगीन यूरोपीय देशों में प्रयुक्त होती थी। यह शैली 19वीं, 20वीं सदी के प्रारम्भ में शहरी आबादी से थोड़ा हटकर, बनाए जाने वाले गिरजाघरों के निर्माण में प्रयुक्त होती थी। बाद में इस शिल्प को नदी/ नदियों के किनारे बनाए जाने वाले 'कांस्लनुमा' भवनों में भी प्रयुक्त किया जाने लगा। फ्रांस और ब्रिटेन में ऐसे भवनों का चलन है। फ्रांस में शीन नदी के किनारे बना एक सुंदर कॉस्लनुमा महल है। ग्रेट ब्रिटेन में 'कन्ट्री साइड' अर्थात् ग्रामप्रांतर में बनीं ऐसी अनेक इमारतों को देखने लोग जाते हैं। 'गॉथिक शैली' आभिजात्य लोगों के आवासों में तथा चर्चों में प्रयुक्त होने वाली भव्य भवन निर्माण शैली थी।

शिल्प की कारीगरी

ब्रिटिश-विक्टोरियन शिल्प उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित हुआ। यह मध्ययुगीन परम्परित विक्टोरियन वास्तु का आधुनिक रूप था। वस्तुतः, मिट्टी और पत्थरों से बनी विशुद्ध ग्रामीण परिवेश में जीती हुई, दुमंज़िला ये इमारतें, स्थानीय शिल्प का एक प्रतिमान थीं।

तीसरी वास्तु शिल्प, जियार्जियन था। यह भवन निर्माण का साधारण-सादा शिल्प है। इसमें खुले गलियारों, हॉलनुमा प्रकोष्ठ, बाहर निकली गैलरियों पर बनीं ढालुआं छतों से झांकती चिमनियां होती हैं। इसके चारों ओर खिड़कियां रहती हैं। समरहिल में राजकुमारी अमृत कौर की कोठी इस शिल्प का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

आज शिमला में, किसी खास शैली का आधिपत्य नहीं है। सब ओर सब तरह के भवन बन रहे हैं। विविधता, मन की मांग है। विविधता में ही विभिन्नता और विभिन्नता में, अनेकविध रसों/ आनन्दों/खुशियों का निवेश होता है। आज शिमला में बेंटनी भवन, रेलवे बोर्ड बिल्डिंग, मुख्य डाकघर भवन, क्राइस्ट चर्च, कैथोलिक चर्च, ऑकलैंड हाउस; बिशप कॉटन स्कूल भवन, सेंट एडवर्ड स्कूल भवन, सेंट बीड्ज़, ताराहाल स्कूल भवन, वायसरीगल लॉज, सिसिल होटल बिल्डिंग, ओबराय क्लार्क्स, वाइल्ड फ्लावर हॉल, आदि अनेक भवन देखने योग्य हैं जो, मानवीय निर्माण कला के एक इतिहास खंड की पताका थामे खड़े हैं।

शिमला केवल, इन इतिहास बनाते भवनों और सत्ता का दम्भ भरती इमारतों का ही शहर नहीं है, अपितु इसके कोर-किनारों, इसके सीमान्तों, इसकी गर्भस्थलियों पर केन्द्रित हुई आध्यात्मिक चेतना का, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता, विनम्रता और समर्पण की भावनाओं की स्थली भी है। यहां श्रद्धा की बहुलता अपने-अपने संस्कारों के

समनुरूप, मंदिर, मस्जिद, गिरजाघरों एवं गुरुद्वारों की शक्ल में रूपायित हैं। अकूत शक्तियों से सम्पन्न देवताओं के आवास हैं यहां। तभी तो यह देवभूमि है। अपनी-अपनी आस्था के अनुसार लोग, अपने-अपने आराध्यों का ध्यान, भजन, जप, यज्ञ, करते हैं और मनोवृत्तियों को दुष्कर्मों से, मोक्ष पाने की प्रार्थनाएं करते हैं। भौतिकता का समतोल आध्यात्मिकता ही है। अहं के सींग, अन्दर के 'ऑपरेशन' से ही कटते हैं। अन्यथा, ये ता-उम्र, व्यक्ति को लहुलुहान करते रहते हैं। शिमला में सुकूं प्राप्ति हित, चिन्तन स्थलों में मुख्य देवस्थल हैं- कालीबाड़ी, कामनादेवी, जाखू मंदिर, तारादेवी (जो जुनगा के राज परिवार की कुल देवी है), हनुमान मंदिर संकट मोचन, ढींगू मंदिर संजौली, रामपुर का राममंदिर समूह और सराहन की भीमाकाली। इसी तरह, लोकल बस स्टैंड के पास का गुरुद्वारा, संजौली का गुरुद्वारा, लोअर बाजार की मसजिद, मिडल बाजार की मस्जिद, क्राइस्ट चर्च, कैथोलिक चर्च, युनियन चर्च, वायसरीगल लॉज के पास बनी सामान्य अंग्रेजों, ईसाई मत को मानने वालों तथा 'लॉज' के कर्मचारियों के लिए बनाई गई चर्च ये सब हिन्दू भाइयों,, सिख धर्मानुयायियों, मुस्लिम मतावलम्बियों तथा ईसाई जनों के उपासना-आस्था/श्रद्धा स्थल हैं। वैसे, ईश्वर, अल्लाह, वाहेगुरु या गॉड इन्हीं चिन्हित स्थानों पर है, अन्तिम सत्य नहीं। ये स्थान पूजा, अर्चना, अरदास, नमाज अता करने और प्रार्थना करने के लिए पवित्र स्थान होते हैं जहां व्यक्ति, स्वयं की सर्वात्मना शुद्धि के लिए ईश कृपा मांगते हैं। यूं परमेश कहां नहीं है? आचार्य शंकर कहते हैं, वह सर्वशक्तिमान् संसार के कण-कण में व्याप्त है- ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित् जगत्यां जगत्। यही, सब आध्यात्मिक जन, संत, महात्मा तथा आत्मा का अनुभव पाए सिद्ध लोग कहते हैं। मैंने आपको इतने सारे देवालयों/ सिद्धस्थलों के नाम बता दिए अब आप जहां चाहें माथा टेक लें। माथा टेकने से मति का भ्रम मिट जाता है। विनम्रता, व्यक्तित्व का अलंकार बनकर खिलती है। श्रद्धा हृदय का आयतन बढ़ाती है और आस्था परमसत्ता के प्रति विश्वास को दृढ़ करती है।

देवताओं के आवास

पहले रिज़ के ऊपर, दोनों तरफ भी एक बाज़ार था, जिसे मॉल का अपर बाज़ार कहा जाता था। स्कैंडल प्वाइंट से रिज़ की ओर चलते हुए इसका बायीं ओर का सिरा इस समय जहां घोड़े खड़े रहते हैं या जहां पर 'गेल्ले' का पेड़ है, के पास खत्म होता था और दूसरा सिरा है, दौलत सिंह पार्क के अन्तिम सिरे के पास मेन मॉल को उतरती सड़क (तब कच्ची) के प्रारम्भिक सिरे पर समाप्त होता था। 1875 में यहां आग लग जाने से बाज़ार पूरी तरह तबाह हो गया। इसमें हिन्दू-मुस्लिम और अंग्रेज- तीनों समुदायों की दुकानें थीं।

बर्फ़ के दिनों में शिमला का स्केटिंग रिंक, रंग-बिरंगी पोशाकों वाले, चंचल नटखट, चुस्त-दुरुस्त, नये-नवेले लड़के-लड़कियों, खेल के शौकीन अधेड़ लोगों से फुलबाड़ी की तरह खिल उठता है। मेरे एक दोस्त प्रो. मदन शर्मा अपनी आयु के बयासीवें वर्ष तक स्केटिंग करते रहे और अपनी और जवान लड़के-लड़कियों की रगों में उत्साह भरते रहे। वे बर्फ़ पर सिद्धपाद नर्तक की तरह नाचते थे और हर साल, खेल के समापन पर सारे सम्मान लूट के ले जाते थे।

यदि आप शिमला में रहते हैं या दो-चार बार शिमला आए हैं, तो 'अन्नाडेल' का नाम आपने जरूर सुना होगा। बहुत संभव है आप वहां गए भी हों। 'अन्नाडेल' एक थालीनुमा, गोल-आकार में ढला, करीब सवा किलोमीटर घेरे का वर्तुलाकार मैदान है जो सब ओर से घने देवदारु वृक्षों से घिरा है। पहले यहां गर्मियों में भी सूर्य का प्रवेश अगम था। गोल्फ खेलने, पार्टियां-पिकनिक मनाने तथा नृत्यायोजनों के लिए यह एक वांछित 'मंच' था। कितने ही प्रेमी-प्रेमिकाओं के जोड़े, प्रकृति के उपासक, एकान्तसेवी तथा सुबह-शाम घूमने के शौकीन वहां आज भी जाते हैं। मैंने भी अपनी आजीविका-यात्रा के 25 अप्रैल से 30 जून 1972 तक, अन्नाडेल से लगते गांव ठाकुर बाग में गुजारे थे। तब पैदल चलना मेरे वश का नहीं था। मुझे अन्नाडेल से चौड़ा मैदान तक आते-आते डेढ़ घंटा लग जाता था। पांवों की अंगुलियां थकान से फूल कर दर्द करने लगती थीं और रास्ते में कई विश्राम लेता था जबकि आज मैं इस दूरी को 20-25 मिनट में तय कर सकता हूं। शिमला में 42 साल के पैदल अभ्यास की यह उपलब्धि है। शिमला में 'मैदान' के नाम पर 'अन्नाडेल' ही एक ऐसी जगह है, जो इस अभिधान से भूषित होने योग्य है। शिमला में इसे आप 'प्रेम की लीलाभूमि' कह सकते हैं।

प्रेम की लीलाभूमि

जुलाई, 1934 में, ईस्ट इंडियन सर्विस जर्नल में प्रकाशित एक लेख में, बंगाल-सेना के पहले एडवोकेट जनरल विलियम डे फिलिप ने अन्नाडेल की खूबसूरती से प्रभावित होकर लिखा था कि 'ग्लेन के पास ही हरी घास से सुशोभित, धरती का एक टुकड़ा, जो लगभग एक मील का घेरा रखता है, जिसके पास ख्यितू नामक एक छोटा-सा गांव स्थित है, जिसमें लगभग तीस घर हैं, अन्नाडेल कहलाता है। यहां सितम्बर 1833 ई. में 'फैंसी फेयर' एक बहुत बड़ा मेला आयोजित किया गया था। तब सुबाथु के स्थान पर स्थानीय महिलाओं के लिए एक स्कूल खोलने का निश्चय लिया गया था। इस अवसर पर स्थानीय तथा विदेशी पर्यटक भी यहां आए थे। मेले में लगे स्टॉलों से लगभग 900 रुपये की कमाई हुई थी। इस मेले के सम्पन्न होने पर एक छोटा खाना दिया गया था', पृष्ठ-12, हमारी विरासत में डॉ. अशोक जेरथ द्वारा उद्धृत।

हिम बाला

प्रसिद्ध मूर्तिकार प्रो. एम.सी. सक्सेना द्वारा लोक शैली में निर्मित एक 'हिमाचली बाला' की भव्य मूर्ति भी डॉ. परमार के निकट स्थापित है जो प्रतिदिन असंख्य दर्शकों/पर्यटकों का ध्यान आकृष्ट करती है।

शहर में अभी भी बड़े आयोजनों के लिए, 'अन्नाडेल' ही उपयुक्त खुला स्थान है। 24 मई 1839 को इंग्लैंड की महारानी के जन्मदिन पर वायसराय की ओर से यहां एक सरस नृत्य का आयोजन भी किया गया था। आजकल यह, मैदान मिलिट्री के अधिकार में है। यहीं एक छोटा हैलिपैड है। सैर के शौकीन सुबह-शाम यहां चहलकदमी करते हैं। आस-पास के बच्चे, क्रिकेट/फुटबॉल भी खेलते हैं।

वस्तुतः शिमला का मुख्य मार्ग, जिसे मॉल रोड कहा जाता है, वर्तमान ए.जी. ऑफिस (पुराना नाम गार्टन कॉसूल) से शुरू होकर, आज के सचिवालय भवन (पुराना नाम एलर्जिली हाउस) तक माना जाता है। अपनी यात्रा में इस, मार्ग को जो मिला, उसका साथ लेता हुआ अपना काफिल बढ़ा ले गया और दुनिया के समृद्ध मॉलों में शुमार हो गया। ए.जी. से सचिवालय तक की दूरी करीब दो से अढ़ाई किलोमीटर है। अकाउटैंट जनरल (ए.जी.) के ऑफिस से माल की ओर चलने पर पहली बड़ी दर्शनीय इमारत जो दर्शकों/पर्यटकों का ध्यान अपनी ओर खींचती है वह है रेलवे बोर्ड बिल्डिंग। 1897 ई. में सारी सावधानियों के मद्देनज़र, बनकर तैयार हुई यह बिल्डिंग शिमला की तमाम बिल्डिंगों में नायाब है। उस समय इस पर चार लाख से ज्यादा खर्च आया था। यह हर तरह से लीकप्रूफ, फायरप्रूफ, भूकम्परोधी तकनीक को अपनाकर बनाया गया भवन है। इसमें अधिकाधिक लोहे का तथा कम-से-कम लकड़ी का प्रयोग हुआ है। आजकल इस भवन में कई केन्द्रीय सरकार के दफ्तर हैं।

इसके आगे बढ़ने पर दायी ंओर एक और आलिशान निर्माण, हमारा ध्यान खींचता है जिसके तहत कई भवन हैं। यहां, पहले तो पश्चिमी कमान का मुख्यालय था परन्तु आजकल आर्मी ट्रेनिंग सेंटर' है। मॉल की ओर चढ़ते हुए इसी क्रम में, बायीं ओर एक बड़ी भव्य इमारत है जो पहले बेंटिंग कॉस्ल' के नाम से जानी जाती थी परन्तु बाद में यह 'होटल' की तरह प्रयुक्त होने पर ग्रैंड होटल के नाम से ख्यात हुई। 1922 में इसके सेंट्रल हॉल में एक बार आग भी धधकी किन्तु इस सारी क्षति को 1930 में पुनः निर्मित कर पूरा कर लिया गया। ग्रैंड होटल का परिसर इतना बड़ा है कि इसकी कई इमारतों में एक समय में एक-सौ से ज्यादा परिवार रह सकते हैं। यह कालीबाड़ी के रास्ते में मॉल रोड की सबसे ऊंची सड़क पर स्थित है। आजकल इसका 'लिटिन ब्लॉक' जमीनदोज़ हुआ पड़ा है।

मिलिट्री ट्रेनिंग सेंटर से आगे जाकर आप शिमला के प्रधान डाकघर के नीचे पहुंच जाते हैं। यहां से तथाकथित स्कैंडल प्वाइंट की ओर बढ़ते हुए, आप देखते हैं कि मॉल की बायीं तरफ, एक आकर्षक भवन विराजमान है। आज यह अपनी आयु के 120 साल पार कर चुका है। डाकघर बनने से पहले यहां शिमला बैंक था जिसका मालिक पीटर्सन था। उसने 1883 ई. में इसे तत्कालीन अंग्रेज़ सरकार को बेच दिया था और सरकार ने 1884 में यहां पहला डाकघर खोला था। अम्बाला से, शिमला तक की डाक, कालका तक गाड़ी से तथा कालका से ऊपर घोड़ों-खच्चरों तथा तांगों आदि पर आती थी जिसे हरकारों, डाकियों की मदद से आगे वितरित किया जाता था। मॉल का मुख्य डाकघर 'गॉथिक' भवन निर्माण शैली का उत्तम नमूना है।

शिमला की धुरी

मॉल, शिमला नगर की धुरी है। घोड़े की पीठ की बनावट की तरह है, शिमला की बनावट/मॉल इसकी धुरी/ रीढ़ है और शेष, शिमला का विस्तार, इसके दोनों ओर दो मुख्य पार्श्वों की तरह है। एक हिस्सा मिडल, लोअर से होता हुआ कार्ट रोड और दूसरी ओर तिब्बती मार्किट रिवोली होता हुआ संजौली जाने वाली सड़क तक पसरा है।

'मॉल' की चर्चा में, एक जानकार श्री ए.एन. वालिया शिमलावासी इतिहासज्ञ, बताते हैं कि जहां आजकल अल्फा रेस्तरां है तथा जहां हिमाचल खादी की दुकान है, वे दोनों दुकानें पहले एक ही थीं। इनका मालिक एक मुस्लिम था, जो हिन्दू-पाक विभाजन के समय पाकिस्तान चला गया था। कहते हैं कि अब जहां म्युनिसिपल भवन है, वहां के 'टाउन हॉल' हिस्से के स्थान पर एक छोटी-सी मस्जिद थी जो बाद में वर्तमान सब्जी मण्डी में सदर थाना के पास स्थानान्तरित कर दी गई थी।

मॉल का अपर बाज़ार

पहले रिज़ के ऊपर, दोनों तरफ भी एक बाज़ार था, जिसे मॉल का अपर बाज़ार कह सकते हैं। स्कैंडल प्वाइंट से रिज़ की ओर चलते हुए इसका बायीं ओर का सिरा, इस समय जहां से घोड़े, रिज की सैर कराते हैं, या जहां पर 'गेल्ले' का पेड़ है, के पास खत्म होता था और दूसरा सिरा दौलत सिंह पार्क के अन्तिम सिरे के पास मेन मॉल को उतरती सड़क (तब कच्ची) के प्रारम्भिक सिरे पर समाप्त होता था। 1875 में यहां आग लग जाने से बाज़ार पूरी तरह तबाह हो गया। इसमें हिन्दू-मुस्लिम और अंग्रेज- तीनों समुदायों की दुकानें थीं। बाद में वहां पर, दोबारा बाज़ार खड़ा करने की कोशिश नहीं की गई। यह शायद ठीक ही हुआ। मानव की इच्छा ईश्वर की इच्छा से बड़ी नहीं है। कहते हैं- 'ईश्वरेच्छा बलीयसी'।

(शेष पृष्ठ 146 पर)

धरोहर

हिमालय की गोद में पहाड़ों की रानी

• आरती सूद गुप्ता

पश्चिमी हिमालय में सतलुज और टौंस नदियों के मध्य में फैले भू-भाग को वर्ष 1948 तक 'शिमला की पहाड़ी रियासतों के नाम से जाना जाता था। देश के मैदानी क्षेत्रों से आए राजपूतों ने हिमालय के इन पहाड़ी क्षेत्रों में अपने लिए छोटी-छोटी रियासतें स्थापित कीं। इस प्रकार मध्यकाल से लेकर लगभग 1815 ई. तक यह क्षेत्र अठारह ठकुराई और बारह ठकुराई के नाम से प्रसिद्ध रहा। रियासतकालीन इस भू-भाग को वर्तमान में शिमला और सोलन जिलों के नाम से जाना जाता है।

हिमालय के उत्तर पश्चिम में स्थित पहाड़ों की रानी शिमला हिमाचल प्रदेश की राजधानी है। चारों ओर हरियाली, चीड़, देवदार और माजू के घने जंगल और आबोहवा में रची-बसी पेड़ों की सौंधी-सौंधी महक किसी आध्यात्मिक सम्मोहन से कम नहीं। यहां के मौसम के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता- कब धूप चमचमाने लगे, कब छांव घिर आए और कब आंधी तूफान अपना रूप दिखा दे।

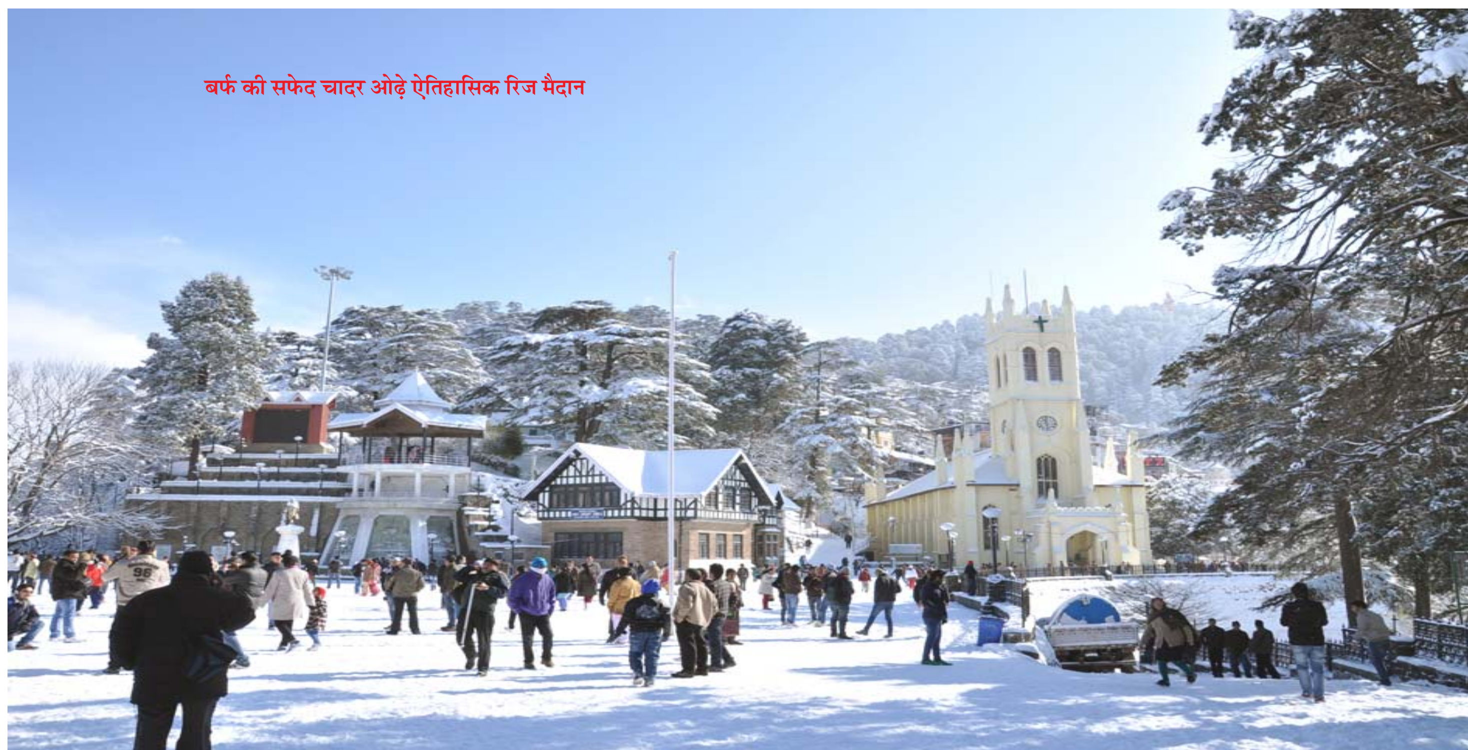
शिमला के नैसर्गिक सौन्दर्य को शब्दों में बयां करना कठिन है। यहां की खूबसूरती को बयां करते-करते शब्द जैसे चूक जाते हैं। चारों ओर शिमला शहर कभी-कभी धुन्ध में घिर जाता है। कभी यहां धरती से बतियाने बादल धरती पर ही उतर आते हैं। सर्दी के मौसम में पूरा शहर बर्फ की सफेद चादर ओढ़, शान्त-सा प्रतीत होता है, दूर-दूर से आए सैलानी यहां की निराली छटा देखने और उसे कैमरे में कैद करने के लिए हर समय लालायित रहते हैं।

वर्तमान में पश्चिमी शिमला के प्रौस्पेक्ट हिल पर बना है कामना देवी मन्दिर। समरहिल में स्थित है हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, आब्ज़रवेटरी हिल पर बना है भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, एन्वरम, जो माऊंट प्लेज़ेन्ट के रूप में भी विख्यात है, वहां स्थित है राज्य संग्रहालय। लार्ड विलियम बैंटिक के नाम पर रखे गए बैंटनी हिल पर ग्रैंड होटल बना है। शिमला के मध्य में जाखू की पहाड़ी पर स्थित है हनुमान का मन्दिर और 'द एलजियम र्स्प' पर बना है ऑकलैंड हाऊस स्कूल और लांग वुड।

कहा जाता है कि शिमला पहले 'श्यामला' गांव था, जो श्यामला देवी के नाम पर बसा था। समय के साथ श्यामला का नाम शिमला पड़ गया। 1864 में शिमला को अंग्रेजों की ग्रीष्मकालीन राजधानी का दर्जा मिला। शिमला के ऐतिहासिक भवनों में वायसरिगल लॉज, वार्नेस कोर्ट, पीटर हॉफ आदि शामिल हैं। इतिहास गवाह है कि 1822 में शिमला में पहले आवास का निर्माण हुआ था, जो कैनेडी हाऊस के नाम से जाना जाने लगा। 1881 की जनगणना के अनुसार तब शिमला की आबादी 13 हजार 258 थी। 1921 की जनगणना के अनुसार यहां की आबादी 43 हजार 333 थी।

एक समय भारत में ब्रिटिश शासन के आकर्षण का केन्द्र रहा वायसरिगल लॉज अब भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के रूप में जाना जाता है। शिमला को देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी घोषित करने के पीछे कोई एक वजह नहीं थी, बल्कि इसके परस्पर सम्बद्ध अनेक कारण थे। वायसराय जॉन लॉरैन्स अस्वस्थ रहते थे। डाक्टरों ने उन्हें कलकत्ता की गर्मी से बाहर निकलने की सलाह दी थी और तभी शिमला का चुनाव हुआ। आब्जरवेटरी हिल पर वाइसराय के आवास के निर्माण की योजना लार्ड लैटन ने बनाई और 1888 में लार्ड डफरिन के शासन काल में यह कार्य पूरा हुआ। इस भवन का डिजाईन वास्तुकार हेनरी इरविन ने तैयार किया था। वाइसरिगल लॉज की भव्य दीवार और खूबसूरत सीढ़ियां 1945 के शिमला सम्मेलन की गवाह रहीं हैं। रेल मार्ग से शिमला पहुंचने पर भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान पहला भवन नजर आता है। मोखेदार बुर्ज, गुम्बज, वात सूचक के साथ यह भवन नगर में अंग्रेजों के बनाए हर भवन से खूबसूरत दिखाई देता है।

वायसरिगल लॉज ने आजादी के बाद राष्ट्रपति निवास का रूप ग्रहण कर लिया। महामहिम राष्ट्रपति वर्ष भर में इसका उपयोग केवल चन्द दिनों के लिए ही किया करते थे। जब दार्शनिक,



बर्फ की सफेद चादर ओढ़े ऐतिहासिक रिज मैदान

राजनेता, प्रोफेसर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने राष्ट्रपति का गरिमामय पद सम्भाला, तब उनकी और पंडित नेहरू की परिकल्पना के अनुसार 6 अक्तूबर 1964 को रजिस्ट्रेशन ऑफ सोसायटीज़ एक्ट 1860 के तहत् भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान सोसाइटी का पंजीकरण हुआ। 20 अक्तूबर 1965 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने राष्ट्रपति निवास में इस संस्थान का विधिवत् उदघाटन किया। अप्रैल 1991 में भारतीय उच्च संस्थान ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से मानविकी और समाज विज्ञान के अन्तर्विश्वविद्यालय के रूप में काम करना आरम्भ किया। डॉ राधाकृष्णन के सम्मान में संस्थान द्वारा राधाकृष्णन स्मारक व्याख्यान शृंखला भी चलाई गई, जिसमें प्रतिवर्ष विश्वविख्यात विभूतियां शरीक होकर संस्थान और व्याख्यान माला की गरिमा बढ़ाती हैं।

यहीं से कुछ दूर स्थित है पीटरहाफ, जो राज्य अतिथि ग्रह का जामा पहन कर आगंतुकों के मस्तिष्क पर ताउम्र अमिट छाप छोड़ जाता है। अंग्रेजों के शासन काल में वायसराय के आवास के रूप मे विख्यात पीटरहॉफ को लगभग 26 वर्षों तक सात वायसराय और गवर्नर जनरल की आवास स्थली के रूप में आश्रय प्रदान करने का गौरव प्राप्त है।

एडवर्ड जे. बक ने अपनी पुस्तक 'शिमला पास्ट एंड प्रेजेंट' में जिक्र किया है कि ''पुराने दस्तावेज़ इशारा करते हैं कि जहां यह भवन स्थित था, वहां पहले-पहल शिमला की पहली समिट्री थी और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि वायसराय का ग्रीष्मकालीन आवास मूल रूप से कब्रगाह के बहुत करीब था।''

आजादी के पश्चात् यह भवन पंजाब उच्च न्यायालय के रूप में कार्य करने लगा। नत्थू राम गोडसे पर हत्या के मुकद्दमे की सुनवाई 1948-49 के दौरान पीटरहाफ के उस बन्द कमरे में हुई थी, जो एक समय वाइसराय का निवास था। नत्थू राम गोडसे को तब बालूगंज जेल में रखा गया था और पूरा ट्रायल कैमरे में कैद किया गया था।

हिमाचल को 1971 में पूर्ण राजत्व का दर्जा मिलने के बाद यह भवन राज भवन के रूप में जाना जाने लगा। दुर्भाग्यवश 1981 में यह भवन अग्नि की भेंट चढ़ गया। 1991 में भवन का पुनः निर्माण पहाड़ी वास्तुकला को ध्यान में रखते हुए किया गया। पीटरहाफ का लॉन लगभग 15000 वर्गफुट क्षेत्र में फैला है। अल्पावधि में ही पीटरहाफ अति महत्वपूर्ण सम्मेलनों और आयोजनों के लिए पसन्दीदा स्थल के रूप में उभरा है।

अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और समझौतों का गवाह रहा वार्नेस कोर्ट अब राज्यपाल के सरकारी आवास - राजभवन के रूप में जाना जाता है। 1832 में वार्नेस कोर्ट की आधारशिला रखी गई थी। सर्वप्रथम भारतीय सेना के ब्रिटिश कमाण्डर इन चीफ सर एडवर्ड वार्नेस यहां रहने लगे और उन्हीं के नाम पर इसका नाम वार्नेस कोर्ट रखा गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कई वर्षों तक वार्नेस कोर्ट पंजाब सरकार के पास रहा। वर्ष 1981 तक प्रदेश का राजभवन पीटरहाफ में स्थित था, जो अग्नि की भेंट चढ़ गया और वार्नेस कोर्ट को राज्यपाल के सरकारी आवास के रूप में परिवर्तित

राज्य संग्रहालय

शहर के चौड़ा मैदान स्थित पीटरहॉफ के पास ही राज्य संग्रहालय है। कलात्मक एवं पुरातात्त्विक महत्त्व की कलाकृतियों को संरक्षित करने और एक ही स्थल पर संजोने के उद्देश्य से 'हिमाचल राज्य संग्रहालय' वर्ष 1974 में स्थापित किया था। तभी से यह संग्रहालय समृद्धि पुरातात्त्विक धरोहर के बारे में जन-जन को शिक्षित कर रहा है। संग्रहालय में लगभग 9000 कलाकृतियां संग्रहित हैं।

हिमाचल पुरातत्व वीथी में राज्य के विविध भागों में पाई गई पत्थर की मूर्तियों का अदभुत भण्डार है। काष्ठ कला वीथी में राज्य के प्राचीन मंदिरों और घरों से प्राप्त लकडी की नक्काशी प्रदर्शित की गई है। संग्रहालय की छाया चित्र वीथी में हिमाचल प्रदेश के महत्त्वपूर्ण स्मारकों के छायाचित्र देखे जा सकते हैं। सिक्कों और अभिलेखों की वीथी में प्रदेश के विविध भागों में खुदाई के दौरान मिले सिक्के काल क्रम की दृष्टि से प्रदर्शित है। अस्त्र-शस्त्र वीथी में 18 वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक क्षेत्रीय एंव राजसी शासकों द्वारा प्रयोग हथियार प्रदर्शित किए गए हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी आजादी से पूर्व समय-समय पर शिमला आते रहे। उन्हीं की स्मृतियों को महात्मा गांधी वीथी में दर्शाया गया है। यह संग्रहालय युवाओं, बच्चों और भावी पीढ़ी के लिए अपनी जड़ों, मूल्यों और परम्पराओं से वाकिफ करवाने का जरिया बना है।

कर दिया गया। राजभवन स्थित शिखर हाल की ऐतिहासिक मेज पर भारत और पाकिस्तान के मध्य वर्ष 1972 में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी और पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो के मध्य शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे। राजभवन में ही भाखड़ा बांध का मॉडल भी देखा जा सकता है। इस पर पी एस कैरों का नाम अंकित है। इसे श्री चन्द्र लाल द्विवेदी, पी. डब्ल्यू. डी, इरिगेशन ब्रांच, भांखडा बांध द्वारा तत्कालीन राज्यपाल को भेंट किया गया था, जब 14 सितम्बर 1951 को भाखड़ा नंगल बांध का उद्घाटन हुआ था।

दरबार हाल में ही मुख्य आयोजन किए जाते हैं। यह हाल कीर्ति कक्ष के रूप से भी जाना जाता है। यहां लगे शैडिंलेयर भी अंग्रेजों के समय में ही लगाये गये थे। दरबार हाल में भव्य रस्मी सीढ़ियां हैं, जहां शिमला के ऐतिहासिक छायाचित्र लगाए गए हैं। राजभवन के पुस्तकालय में विविध विषयों की अमूल्य पुस्तकों का खजाना है। धरोहर भवन वार्नेस कोर्ट के हर कोने में प्राचीनतम, कलात्मकता और ऐतिहासिकता की सौंधी-सौंधी सुगंध भीतर ही भीतर महसूस की जा सकती है।

माल रोड में तो जैसे शिमला का दिल धड़कता है। यहां टहलने का अपना ही लुत्फ है। अंग्रेजों के समय में माल रोड की सड़कें खूब चमचमाती थीं। कहते हैं, तब मालरोड रोज धोया जाता था। अंग्रेजों के जमाने से चला आ रहा वाहन चालन प्रतिबन्ध आज भी मालरोड, रिज़ आदि पर बदस्तूर जारी है। शहरवासी भागदौड़ की तेज रफ्तार जिन्दगी से कुछ पल चुरा कर माल पर चहल-कदमी करना नहीं भूलते। दुनिया भर का फैशन सबसे पहले यहीं पहुंचता है।

प्रकृति के साज पर धड़कते शिमला शहर की धमनियों में दौड़ती ऊर्जा का दूसरा नाम है गेयटी थियेटर। अंग्रेजों के जमाने में लंदन थियेटर को शिमला लाना संभव नहीं था, इसी लिए 1887 में अंग्रेजों द्वारा गेयटी थियेटर का निर्माण करवाया गया था। गेयटी महज सीमेंट, पत्थरों और लकड़ी से बनी एक इमारत नहीं है, बल्कि इसकी दीवारों, खिड़कियों और रोशनदानों में एक सुनहरे अतीत की धड़कन रची बसी हुई है। गेयटी थियेटर रंग मंच कलाकारों के लिए किसी कला मन्दिर से कम नहीं है, वास्तु कला प्रेमियों के लिए यह एक जीवन कृति है, साहित्यकारों के लिए यह सृजन का नया आकाश है और सैलानियों के लिए गेयटी थियेटर जिज्ञासा और बोध का अदभुत संगम है।

इसी गेयटी थियेटर ने रंगमंच और अभिनय की दुनिया को कई बेहतरीन कलाकार दिए हैं, कई सपनों ने गेयटी की इस इमारत के भीतर आकार लिया है और इतिहास के कितने ही चर्चित नाटकों की गूंज इसी थियेटर के अतीत में सुनी जा सकती है।

गेयटी थियेटर के भवन का डिजाइन अंग्रेज वास्तुकार हेनरी इरविन ने तैयार किया था। मूल रूप से टाऊन हॉल भवन चार मंजिला था, जिसमें बेसमेन्ट यानी भूतल भी था और ये 30 मई 1887 को बनकर तैयार हुआ था। आरम्भ में इसकी अनुमानित लागत 1 लाख 80 हजार थी और ये 3 लाख 23 हजार रुपये की लागत से बनकर तैयार हुआ था। गेयटी थियेटर लन्दन के थियेटर का ही दूसरा प्रारूप था।

इतिहास गवाह है कि वर्ष 1912 में इस भवन को तकनीकी एवं अन्य कारणों से असुरक्षित घोषित किया गया था। एक वक्त ऐसा भी आया जब हिमाचल प्रदेश सरकार ने इस भवन को बहुउद्देशीय परिसर में बदलने का निर्णय लिया। इसी उद्देश्य से हिमाचल सांस्कृतिक परिसर सोसायटी गेयटी का गठन किया गया। मई 1986 में सोसाइटी ने नगर निगम शिमला से यह भवन 38 लाख 66 हजार 200 रुपये में खरीदा था। सोसाइटी ने 1996 में यह भवन भाषा, कला एवं संस्कृति विभाग को हस्तांतरित कर दिया। वर्ष 2003 में भवन का जीर्णोद्धार पुराने स्वरूप को बनाए रखते हुए किया गया।

नगर निगम शिमला के कार्यालय को मालरोड़ की शान कहना गलत न होगा। शिमला शहर की शान नगर निगम का जो

स्वरूप हम आज देख रहे हैं, लगभग 150 साल पहले इसका एक अलग ही रूप था। उस दौर में म्यूनिसिपल गवर्न्मेंट की बड़ी धाक हुआ करती थी, जो 1851 में अस्तित्व में आई थी। अपने गठन के 20 साल बाद 31 जुलाई 1871 को शिमला म्यूनिसिपैलिटी को ए श्रेणी का दर्जा दिया गया। 1871 में जब पहली बार पंजाब सरकार का लाहौल से शिमला आगमन हुआ तो यहां की म्यूनिसिपलिटी को भी 1874 में पंजाब म्यूनसिपल एक्ट के तहत् लाया गया। वर्ष 1876 में तत्कालीन पंजाब सरकार ने यहां पहली बार म्यूनिसिपल बोर्ड गठित किया, जिसके कुल 19 सदस्यों में सात सरकारी और 12 गैर सरकारी थे। 1882 में म्यूनिसिपैलिटी के संविधान को संशोधित करते हुए सदस्यों की संख्या चार कर दी गई, जिनमें दो सरकारी वेतन भोगी अधिकारी थे और दो शिमला के भवन मालिक। बाद में एक कमेटी गठित की गई, जिसने 13 सदस्यीय बोर्ड के गठन की सिफारिश की, जिसे लागू कर दिया गया। इस तरह बदलावों का दौर चलता रहा। शिमला म्यूनिसिपल कमेटी विभिन्न संवैधानिक अधिकारों से लैस थी। उस दौर में शिमला की सड़कें चमचमाया करती थीं। इनकी सफाई के लिए मश्की भिश्ती विशेष रूप से तैनात रहते थे। यह अलग बात है कि आईने की तरह चमचमाती सड़कों पर तब सिर्फ अंग्रेज ही बेधड़क घूम सकते थे। म्यूनिसिपैलिटी का स्वास्थ्य अधिकारी घोड़े पर बैठ कर प्रतिदिन सफाई व्यवस्था का मुआयना किया करता था। 26 अगस्त 1855 को शिमला म्यूनिसिपल कमेटी के पहले चुनाव हुए थे। वर्ष 1875 तक शिमला में कोई व्यवस्थित जल आपूर्ति की व्यवस्था नहीं थी। तब जरूरत की पूर्ति प्राकृतिक स्रोतों से हो पाती थी। अग्रेंजों ने 1875 में ढली कैचमैन्ट एरिया में जलापूर्ति और सीवरेज की व्यवस्था की थी। प्रदेश सरकार के आदेश के बाद 29 जून 1969 को शिमला म्यूनिसिपल कमेटी को नगर निगम में बदला

सिटी ऑफ सेवन हिल्ज़

वर्तमान शिमला शहर के स्थान पर पहले एक छोटा सा गांव हुआ करता था और साथ में श्यामला माता एक पूज्य स्थल था। इसी पूज्य स्थल के कारण यह गांव श्यामला कहलाता था।

ब्रिटिशकाल में जब श्यामला गांव शिमला नगर के रूप में विकसित हुआ, तो यह 'सिटी ऑफ सेवन हिल्ज' के रूप में जाना जाने लगा। इन सात पहाड़ियों :- जाखू हिल्स, एलीजियम हिल्स, बैंटनी हिल्स, इन्वरम हिल्स(मांऊट प्लेसेंट), आब्जर्वेटरी हिल्स, प्रॉस्पेक्ट हिल्स और समर हिल्स को शिमला नगर के सेवन वण्डरस के रूप में भी जाना जाता है। पूर्व से पश्चिम की ओर फैली इस पर्वत शृंखला में सातों पहाड़ियों को देखा जा सकता है। जाखू शिमला नगर की सबसे ऊंची पहाड़ी पर स्थित है जो समुद्रतल से लगभग 8200 फुट की ऊंचाई पर स्थित है और यहां से पूरे शिमला का नजारा देखा जा सकता है। इस पहाड़ी के शिखर पर स्थित हनुमान मंदिर शिमला की पहचान है।

एलीजियम हिल्स दूसरी ऊंची पहाड़ी है, जिस पर नगर का दूसरा सबसे पुराना भवन स्टर्लिंग कैसल स्थित है। इस भवन का निर्माण 1826 में किया गया था। इस क्षेत्र में अन्य ऐतिहासिक भवनों में से एक ऑकलैंड हॉउस है जो कभी लॉर्ड ऑकलैंड का निवास हुआ करता था और इस समय भवन में चैप्सली गर्ल्ज स्कूल है। प्रसिद्ध होटल लौंगवुड भी इसी क्षेत्र में स्थित है जिसके मालिक मि. जॉन फेलिटी हुआ करते थे और उस समय सिसिल होटल भी उन्ही का था। अब इस भवन के स्थान पर अपार्टमैंट बन गए हैं और इस आवासीय क्षेत्र को लांगवुड कहते हैं। नगर के मध्य में स्थित बैंटनी हिल्स में बैंटिक कैसल भवन हुआ करता था जिसे बाद में पेलिटी ग्रांड होटल और अब ग्रांड होटल के नाम से जाना जाता है। इस भवन का निर्माण लार्ड विलियम बैंटिक ने करवाया था। इस के साथ ही अन्य भवन बैंटनी भी स्थित है।

इसके बाद इन्वरम अथवा मांउट प्लेजेंट हिल्स ऊंची पहाड़ी है जिस पर इन्वरम हॉउस स्थित है। इसके शिखिर पर स्थित भवन में कुछ समय के लिए वायसराय का आवास हुआ करता था जब पीटहॉफ का मरम्मत कार्य चल रहा था। अब इसे संग्रहालय में परिवर्तित कर दिया गया है। इसी पहाड़ी की ढलान पर पीटरहॉफ होटल स्थित है अब राज्य अतिथि गृह है। आब्जर्वेटरी हिल्ज का नाम केप्टन जे.टी. बॉयलू ने दिया था जिस पर उन्होंने एक भवन निर्मित किया जिस का उपयोग ऑब्जर्वेटरी के लिए किया गया। इस पहाड़ी के शिखर पर लॉर्ड डफरिन द्वारा 1888 में नगर के सबसे बड़े भवन का निर्माण किया जो बॉरोनियल स्कॉटिश शैली में बना है। यह भवन अब भी वायसराय पैलेस के नाम से प्रसिद्ध है। प्रॉस्पेक्ट हिल्स को अंग्रेज विज्ञानिक मि. ओलधम ने एक भूगोलीय पहेली बताया था। इसके शिखिर पर एक हिन्दू मंदिर स्थित है और यह स्थल सूर्यास्त 'सनसेट प्वायंट' के लिए मशहूर है।

समर हिल्ज पहाड़ी बुरांस और देवदार के घने जंगलों के लिए प्रसिद्ध थी। इस पहाड़ी पर अब हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय स्थित है। इसके साथ ही मनोर विला है जहां महात्मा गांधी अपने शिमला आगमन पर ठहरा करते थे। इस क्षेत्र में रेलवे स्टेशन भी स्थित है।

साभार : 'Shimla-A British Himalayan Town' - by Sumit Raj Vashisht

गया था। वास्तव में रात को बिजली की रोशनी में जगमगाते नगर निगम के भव्य धरोहर भवन की छटा ही निराली है।

माल रोड पर अंग्रेजी प्रभाव लिए हुए दुकानें केवल एक ओर बनी हैं। माल रोड़ अपने खुलेपन की वजह से पहले ठण्डी सड़क यानी ब्रिज़ीलेन के नाम से भी जाना जाता था। अब माल रोड़ में किताबों, इलैक्ट्रॉनिक्स सामान, गर्म कपड़ों की दुकानें और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के शो रूम भी खुल गए हैं। माड़िया ब्रदर्ज में पुरानी पुस्तकों, नक्शों आदि का अमूल्य खजाना है और यही वजह है कि यह दुकान राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विख्यात है।

इंडियन कॉफी हाउस के बिना शिमला का जिक्र अधूरा है। यहां पत्रकार, कर्मचारी, विद्यार्थी, वकील, राजनीतिज्ञ और स्वयं भू नेता कभी भी गुफ्तगू करते देखे जा सकते हैं। राजनीति, खेल, मुकद्दमेबाजी, सेब उद्योग और अन्य सभी विषय इनकी चर्चा में रहते हैं। सच पूछें तो कॉफी हाऊस में हर रोज पहुंच कर कॉफी पीना, बतियाना और किनारे की कुर्सी पर बैठ कर सब पर नजर रखना, सबको देखना और आस-पास की गुफ्तगू को चुपके-चुपके सुनते रहना किसी लत से कम नहीं है। 1960 के दशक में शुरू हुए इंडियन कॉफी हाउस में अति विशिष्ट व्यक्तियों के आगमन की लम्बी सूची है, यहां पंडित जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गांधी और लाल कृष्ण आडवानी भी कॉफी का लुत्फ उठा चुके हैं।

रिज की पहचान क्राईस्ट चर्च की आधारशिला 9 सितम्बर 1844 को रखी गई थी और इसके निर्माण में कुल 13 वर्ष लगे थे। इसके निर्माण पर खर्च हुए थे लगभग 45 हजार रुपये। यह उतरी भारत का दूसरा सबसे पुराना और बड़ा चर्च है। जब देश में अंग्रेजों का शासन काल था, तब यह चर्च गवर्नर जनरल के अधीन था। चर्च में पहली पंक्ति में सीटों के आरक्षण के चिन्ह आज भी देखे जा सकते हैं। चर्च की मूल खिड़की का डिजाइन रुडयार्ड किपलिंग के पिता लॉकवुड किपलिंग ने तैयार किया था और भित्ति चित्रों का डिजाइन मायो स्कूल ऑफ आर्ट के विद्यार्थियों ने बनाया था।

इस चर्च में सौ वर्ष से अधिक पुराना एक पाइप ऑरगन है। इसका मूल्य तब 23 हजार रुपये था। जब शिमला में बिजली नहीं थी, तब चार व्यक्ति पाइप ऑरगन में हवा भरते थे। रिज मैदान पर स्थापित कुछ मूर्तियां इसे नया रूपाकार प्रदान करती हैं।

नगर निगम के रिकार्ड के अनुसार रिज पर स्थापित राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की कांसे की प्रतिमा 12 सितम्बर 1956 को 11,250 रुपये में खरीदी गई थी और उसी वर्ष 2 अक्तूबर को इसका अनावरण किया गया था। गुब्बारों से खेलते छोटे-छोटे बच्चे, घुड़सवारी करते बच्चे और सैलानी, तपती धूप में आईसक्रीम या कोल्ड ड्रिंक का लुत्फ उठाते लोग, पेटपूजा के लिए पुड़िया का आनन्द ....यही सब है ऐतिहासिक रिज का नजारा, जो राह चलते को भी अपने मोहपाश में बांध लेता है।

रिज पर ही राज्य पुस्तकालय की स्थापना 1844 में की गई थी। आरम्भ में यहां 16 हजार पुस्तकें थीं। 1948 में इसका अधिग्रहण तत्कालीन म्यूनिसिपल कमेटी द्वारा किया गया और पुस्तकों में भी इजाफा किया गया, जिनकी संख्या 19 हजार तक पहुंच गई। 1988 में पुस्तकालय का अधिग्रहण राज्य सरकार ने कर लिया। वर्तमान में इस पुस्तकालय में 65 हजार से अधिक दुर्लभ पुस्तकों का खजाना है और सदस्य संख्या 5 हजार है। वर्षों पूर्व रिज पर एक बैंड स्टेंड था, जो अब आशियाना होटल का रूप अख्तियार कर चुका है।

रिज का रेन शैल्टर यानी वर्षा शालिका केवल बारिश में ही राहगीरों को शरण उपलब्ध नहीं करवाता, बल्कि यहां टहलने वाले कभी तेज धूप से, कभी तेज हवा से तो कभी थकान से राहत पाने के लिए वर्षा शालिका का रुख करते हैं। रिज के एक कोने में वर्षों से सीना तानकर खड़ा चिनार का पेड़ रिज से जुड़ी प्रत्येक ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं का गवाह रहा है। अग्रेजों के शासन काल में ही रिज के नीचे बने पानी के टैंक से शिमला शहर की आबादी को पानी की आपूर्ति की जाती थी। अंग्रेजों द्वारा निर्मित यह भूमिगत टैंक 20 फुट गहरा है और 9 चैम्बर्ज में विभाजित है।

शिमला में पहाड़ की चोटियों पर बने मंदिर यहां के निवासियों की अटूट आस्था के प्रतीक हैं। बालूगंज के कामना देवी मंदिर की अपनी मान्यता है। तारा देवी मंदिर, ढींगू देवी मंदिर और जाखू मंदिर में वर्ष भर ही श्रद्धालु शीश नवाने पहुंचते हैं।

1845 में निर्मित शिमला के कालीबाड़ी मंदिर का अपना ही वैभव है। दशहरे के दौरान दुर्गा पूजा में न केवल स्थानीय निवासी शरीक होते हैं, बल्कि बंगाली समुदाय के असंख्य लोग यहां पहुंच कर दुर्गा पूजा में शामिल होकर, स्वयं को धन्य मानते हैं। कालीबाड़ी की आरती शहर की खास आयेजनों में शुमार है। शहर में ही स्थित मिडल बाजार के शिव मंदिर, गंज बाजार में गंज मंदिर, राम बाजार के राम मंदिर, मिडल बाजार के गुरुद्वारा और मिडल बाजार और लोअर बाजार की मस्जिद से भी जुड़ा है इतिहास।

कठिन भौगोलिक स्थलाकृति वाले शिमला में अनेक सुरंगें हैं, विक्ट्री टनल, लक्कड़ बाजार की सुरंग, लोअर बाजार की सुरंग और हाई कोर्ट के समीप की सुरंग और संजौली की सुरंग, जो एक क्षेत्र को दूसरे से जोड़ती हैं।

खूबसूरत सैरगाह शिमला के प्राकृतिक सौंदर्य को बरकरार रखना हम सभी शिमला वासियों, हिमाचलवासियों और पर्यटकों का दायित्व है, ताकि आगंतुकों की जुबां से यही निकले, ‘‘ शिमला का कोई सानी नहीं।’’

संयुक्त निदेशक, निदेशालय, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला-171 002, मो. 94184 84697

इतिहास

शिमला की पहाड़ी रियासतें

• सुदर्शन वशिष्ठ

देश के हर भू-भाग, वहां के समाज एवं समुदाय का अपना एक अलग इतिहास और संस्कृति है जिसका निर्माण वहां की शासन व्यवस्था, संस्कृति और निवासियों के सामूहिक आचार- व्यवहार की मान्य परम्पराओं की अनुपालना से होता है। हिमाचल के हर जनपद, हर क्षेत्र का भी अपना एक समृद्ध इतिहास और विशेष संस्कृति है। अंग्रेजी राज के समय हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र की एक राजनैतिक इकाई को 'शिमला हिल स्टेट्स' के नाम से जाना जाता था। शिमला क्षेत्र में जो रियासतें थीं, उन्हें शिमला हिल स्टेट्स कहा जाता और जो क्षेत्र पंजाब में जालन्धर डिविजन के अंतर्गत आते थे, उन्हें 'पंजाब हिल स्टेट्स' कहा जाता था। इधर सिरमौर, नालागढ़ और उस ओर मण्डी, बिलासपुर, कांगड़ा, चम्बा के पर्वतीय क्षेत्र होते हुए भी शिमला में शामिल रियासतों का अलग नाम और महत्व रहा। हिमाचल प्रदेश के गठन में शिमला हिल्ज की तीस रियासतों का विशेष योगदान रहा। शिमला के ऊपर अठारह ठकुराइयां थीं और शिमला से नीचे बारह।

सतलुज तथा तौंस नदियों के बीच स्थित इस इलाके में पन्द्रहवीं शताब्दी तक मैदानों से आए शासकों का अधिकार हो चुका था। इन शासकों को राणा या ठाकुर कहा जाता था। इनका अधिकार क्षेत्र विस्तृत न हो कर बहुत छोटा था। शिमला हिल्ज की सब से छोटी ठकुराई रतेश का क्षेत्रफल तीन वर्गमील था और वार्षिक आय मात्र दो सौ रुपये। बेजा ठकुराई मात्र चार वर्गमील में थी। मांगल ठकुराई की आय मात्र सात सौ रुपये वार्षिक थी।

अट्ठारह और बारह ठकुराइयों के नाम और संख्या यूरोपियन यात्रियों और यहां तैनात पॉलिटिकल एजेंटों, असिस्टेंट कमिशनरों ने अलग-अलग दी है।

जिला महासू जिन शिमला हिल्ज़ के एकीकरण से अस्तित्व में आया उन की संख्या इतिहासकारों ने अलग अलग दी है। यह सम्भव है कि छोटी रियासतों के बड़ी रियासतों के अधीन हो जाने पर यह संख्या घटती बढ़ती रही हो। मौटे तौर पर इन की संख्या अट्ठारह और बारह मानी जाती हैं जिसे कुल तीस ठकुराइयां बनती हैं।

जेम्स बेली फ्रेजर ने जिन अट्ठारह ठकुराइयों की सूची दी है, वह हैं : जुब्बल, बलसन, कुम्हारसेन, खनेटी, देलठ, रावीं, कुरांगलू, थरोच, मोरनी, बेजा, सांगरी, डोडरा क्वार, रतेश, कोठी मधान, घूंड, भड़ोली, सारी और सीली। कैप्टन रॉस ने यह संख्या चौदह ही बताई। उन की सूची में कुमारसेन, मोरनी, बेजा, रतेश के नाम नहीं हैं। इन दोनों द्वारा दिए गए बारह ठकुराइयों के नामों में भी अंतर है। कैप्टन रॉस ने डोडरा क्वार की जगह दरकोटीय, कोटी मधान की जगह कोटगढ़ और सीली की जगह ठियोग लिखा है। नाम में बदलाव तथा ठकुराइयों के एक दूसरे के अधीन होने के कारण यह परिवर्तन हुआ होगा।

जेम्स बेली फ्रेजर और कैप्टन रॉस द्वारा दी गई बारह ठकुराइयों की सूचियां एक सी है। ये हैं : क्योंथल, कुठाड़, भज्जी, बाघल, कुनिहार, धामी, महलोग, क्यारी, ठियोग, कोटी, कोटगुरु या कुम्हारसेन और बघाट। कैप्टन रॉस ने केवल दो रियासतों के नाम बदले है। उन्होंने ठियोग की जगह मांगलय, कोटगुरु की जगह कुम्हारसेन लिखा है।

इसी तरह कर्नल फ्रांसिस मैसी ने अट्ठारह ठकुराइयों की जगह संख्या तेईस तक पहुंचा दी। मैसी ने क्योंथल, कुनिहार, बाघल, बघाट कुठाड़ को भी यहीं गिना दिया जबकि ये रियासतें बारह ठकुराइयों में आती थीं। जुब्बल, कुम्हारसेन, बेजा जैसी रियासतों को इन्होंने बारह ठकुराइयों में भी दिया और अट्ठारह में भी। सम्भवतः उन्होंने सभी ठकुराइयों के नाम एक साथ ही दिए हैं।

छोटी रियासतें

समय समय के अनुसार एक दूसरे के अधीन हो जाने से इनका अस्तित्व बनता बिगड़ता रहा है। तभी इनके नामों में भी

अंतर आता रहा। उदाहरणतः कुरांगलू या करांगला एक बहुत ही छोटी ठकुराई थी जो बुशहर की करद रही। इसी तरह भड़ोली ठकुराई का उल्लेख जेम्ज बैली फ्रेज़र तथा कैप्टन रॉस ने किया है। यह कोटखाई और बलसन के बीच स्थित थी और कुम्हारसेन के अधीन रही। अंग्रेजों के समय में यहां कोई राणा नहीं था, केवल एक रानी थी। उत्तराधिकारी न होने के कारण अंग्रेजों ने इसे हिण्डूर के राजा रामसरन सिंह को दे दिया और रानी को गुजारे के लिए चार गांव दिए गए। रामसरन सिंह ने दूरी की वजह से इसे छोड़ दिया, अतः बाद में अंग्रेजों ने इसे 8500 रूपये में बलसन को बेच दिया।

कोटगुरू या कोटगढ़ नाम से क्षेत्र कोटखाई में पड़ता था। सम्भवतः इसी कारण सूचियों में कोटखाई का नाम नहीं आता। कोटगढ़ कुम्हारसेन के ठीक सामने था और यह बहुत समय तक कुल्लू के राजा के अधीन रहा। बुशहर तथा कुम्हारसेन के संयुक्त प्रयास से जब कुल्लू के राजा मानसिंह (1688-1719) मार दिया गया तो कोटगढ़ चालीस वर्षों तक बुशहर के अधीन रहा। सन् 1810 में कोटगढ़ और कोटखाई पर गोरखों का अधिकार हो गया और 1815 में यह अंग्रजों के अधीन हो गया।

अठारह ठकुराइयां

	(जेम्ज बेली फ्रेज़र) (18)	(कैप्टन रॉस) (14)	(वी.सी. कैनेडी) (18)	(कर्नल फ्रांसिस मैसी) (22)
1.	जुब्बल	जुब्बल	जुब्बल	जुब्बल
2.	बलसन	बलसन	कोटगढ़	कुम्हारसेन
3.	कुम्हारसेन	–	बलसन	बलसन
4.	खनेटी	खनेटू	रावीं	मांगल
5.	देलठ	देलठू	खनेटू	खनेटी
6.	रावीं	पुंदर	ठियोग	ठियोग
7.	कुरांगलू	कुरांगलू	देलठ	देलठी
8.	थरोच	थरोच	सारी	भज्जी
9.	मोरनी	–	करांगलू	कोटी
10.	बेजा	–	नाबर	धामी
11.	सांगरी	सांगरी	सांगरी	सांगरी
12.	डोडरा क्वार	दरकोटी	डोडरा क्वार	कुनिहार
13.	रतेश	–	घूंड	धान
14.	कोटी मधान	कोटगढ	पुंदर	कुनिहार
15.	घूंड	घूंड	भड़ोली	दरकोटी
16.	भड़ोली	भड़ोली	बेजा	बेजा
17.	सारी	सरानी	दरकोटी	दरकोटी
18.	सीली	ठियोग	थरोच	रतेश
				क्योंथल
				कुठाड
				कुनिहार
				बाघल
				बघाट

एक रियासत खनेटी की स्थापना कुम्हारसेन के संस्थापक कीरत सिंह के पुत्र उगम सिंह के दो छोटे पुत्रों सवीर चंद तथा जय सिंह ने की। पांच पीढ़ियों के बाद दो भाईयों में विवाद होने के फलस्वरूप दुनीचंद खनेटी का ठाकुर बना और अहीमल कोटखाई और कोटगढ़ का। नारकण्डा और कोटगुरू के बीच स्थित यह ठकुराई दूसरे ठाकुरों के अधीन रही। बाद में यह ठकुराई बुशहर के अधीन हो गई और बुशहर को नौ सौ रुपये कर देती रही।

तौंस और पब्बर नदियों के संगम पर स्थित ढाडी ठकुराई थरोच का एक भाग रही। बाद में यह बुशहर के अधीन रही। गोरखों के अधिकार के समय इसे रावीं में मिला दिया गया। सन् 1866 में रावीगढ़ तथा ढाडी के बीच विवाद होने पर लॉरेंस ने इसे बराबर बराबर बांट दिया। सन् 1873 में मैकनैब ने ढाढी को सीधा अंग्रेज सरकार के अधीन कर दिया। सन् 1896 में रावीगढ़ तथा दाढ़ी दोनों को जुब्बल के अधीन कर दिया गया। हिमाचल प्रदेश के गठन पर इस क्षेत्र को महासू की जुब्बल तहसील में मिलाया गया।

कुम्हारसेन और कोटगुरू के साथ स्थित शांगरी ठकुराई कुल्लू के अधीन थी। कुल्लू के राजा मानसिंह ने शांगरी पर अधिकार कर इसे अपने राज्य में मिला लिया। सन् 1815 में गोरखों के जाने के बाद इसे अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया और 16 दिसम्बर 1815 को कुल्लू के राजा विक्रमजीत सिंह को लौटा दिया। शांगरी का क्षेत्रफल सोलह वर्गमील था और आय एक हजार रुपये।

सबसे कम क्षेत्रफल रतेश और घूंड का था जो तीन-तीन वर्गमील था। इसके बाद बेजा और दरकोटी का चार-चार वर्गमील था। सबसे अधिक जनसंख्या मण्डी (1,50,000) और सबसे कम रतेश (437) की थी। सब से कम आय रतेश ठकुराई की थी जो दो

बारह ठकुराइयां

	फ्रेज़र	रॉस	कैनेडी
1.	क्योंथल	क्योंथल	क्योंथल
2.	कुठाड़	कुठाड़	कुठाड़
3.	भज्जी	भज्जी	भज्जी
4.	बाघल	बाघल	बाघल
5.	कुनिहार	कुनिहार	कुनिहार
6.	धामी	धामी	धामी
7.	महलोग	महलोग	महलोग
8.	क्यारी	क्यारी	क्यारी या मधाण
9.	ठियोग	मांगल	मांगल
10.	कोटी	कोटी	कोटी
11.	कोटगुरू	कुम्हारसेन	कुम्हारसेन
12.	बघाट	बघाट	बघाट

सौ रुपये सालाना आंकी गई थी। इससे ऊपर दरकोटी और देलठी की सालाना आय छः सौ रुपये थी। सबसे अधिक आय मण्डी और उसके बाद सिरमौर तथा चम्बा।

यह सही है कि ये अट्ठारह और बारह ठकुराइयां ही मानी जाती रही है। अट्ठारह में से कुछ जुब्बल के अधीन रहीं, कुछ क्योंथल के। इनमें डोडरा क्वार, सीली, सरानी, पुंदर, नावर के नाम भी आते हैं जो कभी स्वतन्त्र रही होंगी। प्रदेश के निचली ओर की बारह ठकुराइयां बिलासपुर के अधीन रहीं।

बुशहर इन सब से अलग राज्य रहा जिसकी सीमा तिब्बत से लगती थी। इन रियासतों में सबसे अधिक क्षेत्रफल बुशहर रियासत का था जो 3375 वर्गमील था। यद्यपि इस रियासत में तोपों की सलामी नहीं होती थी। बुशहर से दूसरे नम्बर पर चम्बा 3216 वर्गमील तथा तीसरे नम्बर पर मण्डी का 1200 वर्गमील था।

जुब्बल

अट्ठारह ठकुराइयों में जुब्बल सबसे बड़ी रियासत थी।

सिरमौर और बुशहर के बीच स्थित जुब्बल रियासत बारहवीं शताब्दी तक सिरमौर के अधीन थी जिसकी राजधानी सिरमौरी ताल थी। वर्तमान जुब्बल राजवंश जिसे वत्सय या राठौड़ माना जाता है, कब यहां आया, यह निश्चित नहीं है। जुब्बल परंपरा के अनुसार सिरमौर के शासक उग्रचंद हाटकोटी के पास सूनपुर महल में थे जहां से राजा तो सिरमौरी ताल लौट गए, रानी और तीन पुत्रों को वीरभाट नामक ब्राह्मण के संरक्षण में छोड़ा। इस बीच सिरमौर में नटणी के शाप से बाढ़ आई और पूरी नगरी बह गई। अतः उग्रचंद के पुत्रों ने हाटकोटी व इसके आसपास के क्षेत्र में अधिकार जमाए रखा। कनिंघम के अनुसार यहां कनैतों का राज्य था। बाहर से आए तीन राजपूत भाईयों ने कनैतों को मार दिया और आठाबीश व रावींगढ़ पर भी अधिकार कर लिया। इन तीन भाइयों में से तीसरे दुनीचंद ने रावीं, दूसरे मूलचंद ने सारी और पहले कर्णचंद ने जुब्बल की स्थापना की। वीरभाट को राजपुरोहित बना कर हाटकोटी में भूमि दी। जुब्बल का नाम जूब (दूब) से जूब्बड़ और फिर जुब्बल हुआ माना जाता है।

जुब्बल की वंशावलियों में नामों के भेद के साथ राणा कर्णचंद से राणा पद्मचंद तक सोलह शासक गिनाए जाते हैं। एक अन्य वंशावली (रानी सुधाकुमारी जुब्बल) के अनुसार सिरमौर के राजा विराटचंद (1028-1051) से राणा दिग्विजयचंद (1946-1966) तक इक्यावन शासक गिनाए हैं। इस में कर्णचंद का समय 1527-1558 दिया गया है। राणा दिग्विजय चंद के उत्तराधिकारी राणा योगेन्द्र चन्द्र का जन्म 20 जुलाई 1937 को हुआ। ये 1985 में कांग्रेस, 1993 में स्वतन्त्र उम्मीदवार तथा 1998 में कांग्रेस से विधायक रहे।

कुम्हारसेन

कुम्हारसेन का क्षेत्रफल लगभग नब्बे वर्गमील था, जनसंख्या दस हजार और वार्षिक आय भी दस हजार रुपये। कुम्हारसेन, कोटगढ़, खनेटी और देलठ की ठकुराइयों का संस्थापक एक ही राजवंश माना जाता है। परंपरा के अनुसार इस बारे भिन्न भिन्न मत हैं। एक मत के अनुसार ये चारों भाई गया से आए और गयाड़ या गौड़ ब्राह्मण थे। इन्होंने स्थानीय ठाकुर भम्भुराय को हराया। बड़े भाई कीरत सिंह ने करांगला अपने भाई करतार सिंह को दिया। कीरत सिंह के पुत्र उगम सिंह के तीन पुत्र हुए ससांरचंद, सवीरचंद और जयसिंह। संसारचंद को करांगला की ठकुराई मिली। सवीरचंद और जयसिंह को खनेटी, कोटखाई व कोटगढ़ मिले। इनकी छठी पीढ़ी में विवाद होने पर दूनीचंद को खनेटी तथा शिमलसिंह को कोटखाई व कोटगढ़ मिले। परंपरा में इन कथाओं के अलग अलग रूपांतर मिलते हैं किंतु एक व्यक्ति कीरतसिंह का नाम सब में है।

कुम्हारसेन की वंशावली में (रूलिंग चीफ्स के अनुसार) 54 शासकों के नाम हैं। कीरतसिंह से लेकर अंतिम शसक हीरा का नाम आता है जिसकी मृत्यु 1914 में हुई। बहारे कुम्हारसेन (दीवान भगवंत राय) में कीरतसिंह से पूरसिंह तक 47 राणाओं के नाम मिलते हैं।

एक किस्सा आता है कि कुम्हारसेन के आदमी नाहन भेंट ले कर गए जिसमें कस्तूरी भी थी। उन दिनों शहजादी जहांआरा सिरमौर आई हुई थी जिसे कस्तूरी को देख स्वंय कस्तूरी मृग के शिकार करने की इच्छा हुई। अतः शहजादी कुम्हारसेन आई और एक मास तक यहां ठहरी। विदाई के सयम शहजादी को राणा ने

सबसे कम क्षेत्रफल रतेश और घूंड का था जो तीन तीन वर्गमील था। इसके बाद बेजा और दरकोटी का चार-चार वर्गमील था। सबसे अधिक जनसंख्या मण्डी (1,50,000) और सबसे कम रतेश (437) की थी। सब से कम आय रतेश ठकुराई की थी जो दो सौ रुपये सालाना आंकी गई थी। इससे ऊपर दरकोटी और देलठी की सालाना आय छः सौ रुपये थी। सबसे अधिक आय मण्डी और उसके बाद सिरमौर तथा चम्बा।

एक तलवार और दस हजार रुपये भेंट किए। यद्यपि इस कथा के ऐतिहासिक होने में संदेह है।

कुम्हारसेन रियासत बुशहर के राजा केहरी सिंह (1639-69) के समय बुशहर के अधीन हो गई थी।

शांगरी

शांगरी रियासत की यह विशेषता रही कि यह सतलुज के इस ओर होते हुए भी कुल्लू के अधीन होने के कारण लाहौर दरबार में रही। कुल्लू के राजा मानसिंह ने शांगरी पर अपना अधिकार कर लिया और ठाकुर को जागीर दे कर रियासत को कुल्लू में मिला लिया। सन् 1815 में गोरखों के जाने के बाद यह अंग्रेजों के अधीन हो गई किंतु सरकार ने 16 दिसम्बर 1815 को ही इसे कुल्लू के शासक विक्रमजीतसिंह (1806-1816) को लौटा दिया।

सन् 1839 में जब जनरल वैंचूरा के नेतृत्व में सिखों ने कुल्लू पर कब्जा कर लिया तो कुल्लू का राजा अजीतसिंह भाग कर शांगरी आ गया जहां सन् 1841 में उसकी मृत्यु हो गई। अजीतसिंह के बाद उसका चाचा जगतसिंह उत्तराधिकारी बना। वह अल्पबुद्धि था अतः उसके पुत्र रणवीरसिंह को उत्तराधिकारी बनाया गया। रणवीरसिंह की लाहौर दरबार जाते समय मृत्यु हो गई। अब उधर सिखों ने ठाकुरसिंह को वजीरी रूपी दी तो इधर अंग्रेजों ने पुनः जगतसिंह को उत्तराधिकारी बना दिया। जगतसिंह की मृत्यु पर हीरासिंह उत्तराधिकारी हुआ और 1887 में अंग्रेजों ने उसे राय की उपाधि दी। सन् 1927 में हीरासिंह की मृत्यु के बाद रघुबीरसिंह उत्तराधिकारी बना जिसे 1930 में पूरे अधिकार दिए गए।

शांगरी का क्षेत्रफल सोलह वर्गमील था और आय कुल एक हजार रुपये। अतः इस ठकुराई से कोई कर नहीं लिया जाता था।

बारह ठकुराइयां

क्योंथल

क्योंथल, बारह ठकुराइयों मे सबसे बड़ी रियासत थी। इस रियासत का क्षेत्रफल सौ वर्गमील, जनसंख्या 30,000 से ज्यादा और आमदनी चालीस हजार रुपये थी। ठियोग, मधाण, कोटी, घूंड और रतेश आदि छोटी रियासतें क्योंथल के अधीन थीं।

मुस्लिम काल में क्योंथल द्वारा मुसलमानों को एक हजार रुपये वार्षिक कर दिया जाता था।

परंपरा के अनुसार क्योंथल की स्थापना सुकेत के संस्थापक वीरसेन के भाई गिरिसेन ने की। यह माना जाता है कि इस राज्य की स्थापना सुकेत के साथ ही 765 ई. में हुई। क्योंथल को पड़ोसी राज्यों सिरमौर, बुशहर, कहलूर, हिण्डूर से हमले का खतरा बराबर बना रहता था। यह भी कहा जाता है कि पहले राजधानी कोटीर थी जिसे सिरमौर की ओर हमलों के कारण जुण्गा बदला गया। क्योंथल के इतिहास का कुछ हारों या युद्ध गाथाओं से भी पता चलता है। ऐसी ही एक हार है 'देशू की हार'। इस हार में वर्णन है कि सिरमौर के राजा महीप्रकाश द्वारा क्योंथल के राजा अनूपसेन से उसकी पुत्री का हाथ मांगा गया जिसके लिए राजा ने मना कर दिया। फलतः महीप्रकाश ने हमला कर दिया किंतु वह हार गया। यह लड़ाई देशू की धार पर हुई। महीप्रकाश ने गुलेर की सहायता ले कर राजा को हरा दिया। ऐसे ही एक दूसरी हार 'मदना' में अनूपसेन की कहलूर के राजा से लड़ाई का वर्णन है। क्योंथल की ओर से मदना नाम का योद्धा भेजा गया था जो लड़ाई में मारा गया किंतु उसका चाचा बच कर क्योंथल लौट आया। इसी तरह क्योंथल के एक निर्वासित वजीर ने ही हिण्डूर से हमला करवा दिया। इस युद्ध में अंततः हिण्डूर की हार हुई। गिरिसेन से लेकर वंशावली में उग्रसेन तक 61 शासकों की सूची मिलती है।

पंजाब स्टेट गजेटियर के अनुसार क्योंथल के अधीन अट्ठारह ठकुराईयां थीं--कोटी, घूंड, ठियोग, मधाण, महलोग, कुठाड़, कुनिहार, धामी, थरोच, शांगरी, कुम्हारसेन, रजाणा, खनेटी, मैली, खलासी, बागड़ी, डीगयाली और घाट। यद्यपि यह सूची अधिक प्रतीत होती है। सन् 1809 में जब महाराणा रणजीतसिंह ने गोरखों को सतलुज के पार खदेड़ा तो गोरखों ने क्योंथल पर भी अधिकार कर लिया। राणा रघुनाथसेन को सुकेत जा कर शरण लेनी पड़ी जहां राणा की मृत्यु भी हो गई। सन् 1815 में अंग्रेजों द्वारा गोरखों की हार के बाद राणा संसारचंद सुंदरनगर से लौट आया और अंग्रेजों ने 6 सितम्बर 1815 को राज्य वापिस लौटा दिया। सरकार ने आठ परगने अपने पास रख लिए और बघाट के कुछ इलाके सहित राजा पटियाला को दो लाख अस्सी हजार में बेच दिए। 11 सितम्बर 1815 को एक सनद द्वारा ठियोग, घूंड, मधाण और कोटी की ठकुराइयां भी क्योंथल को दे दी गईं। 5 अप्रैल 1823 को पुंदर का परगना भी क्योंथल को दे दिया गया। सरकार ने क्योंथल पर कोई खिराज नहीं लगाया और राणा को प्रजा की भलाई करने के लिए कहा।

सन् 1857 की क्रान्ति के दौरान गोरखा रेजिमेंट में विद्रोह हो जाने पर अंग्रेजों ने क्योंथल के राणा के यहां शरण ली। अतः राणा को 24 जुलाई 1885 को राजा की उपाधि दी गई और एक हजार रुपये खिल्लत प्रदान की गई।

सन् 1862 में संसारचंद की मृत्यु के बाद महेन्द्रसेन उत्तराधिकारी हुआ। महेन्द्रसेन ने रियासत के ऋण समाप्त किए।

सन् 1882 में महेन्द्रसेन की मृत्यु के बाद बलवीरसेन ने गद्दी सम्भाली। बलवीरसेन के बाद विजयसेन को सन् 1911 में दिल्ली दरबार में बुलाया गया। विजयसेन के बाद हमेन्द्रसेन को 1926 में पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए। राजा ने कई सुधार कार्य किए जिनमें दास प्रथा, बेगार प्रथा का उन्मूलन, पुलिस का आधुनिकीकरण, स्वास्थ्य, शिक्षा सम्बन्धी कई कार्य सम्मिलित हैं। वनों में सुधार के साथ टेलिफोन व्यवस्था उपलब्ध करवाई गई। हमेन्द्र सेन के बाद हितेन्द्रसेन (1925-2002) प्रदेश विधान सभा के 1952 में स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में सदस्य रहे। क्योंथल रियासत हिमाचल प्रदेश के गठन पर महासू जिले में मिलाई गई।

बाघल

बाघल रियासत सतलुज की सहायक नदी गम्भर की घाटी में स्थित थी। इस की सीमाएं काला सेरी (बिलासपुर) से जतोग (शिमला) और कुनिहार से मांगल तक फैली हुई थीं। यह ठकुराई कहलूर, हिण्डूर या सिरमौर के अधीन रही। मुस्लिम काल के दौरान बाघल की ओर से एक हजार रुपये कर के रूप में तथा आवश्यकता पड़ने पर तीन सौ सैनिक और तीन सौ बगार दिए जाते थे।

परंपरा के अनुसार इस रियासत की स्थापना धारा नगरी के परमार वंशीय अजयदेव ने तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में की। माना जाता है कि अजयदेव अपने दो भाईयों विजयदेव और मदनदेव के साथ बद्रीनाथ और ज्वालामुखी यात्रा पर आया हुआ था। उस समय यह क्षेत्र छोटे छोटे सामंतों के अधीन था। अतः अजयदेव ने बाघल, विजयदेव ने बघाट पर अधिकार कर लिया। तीसरे भाई ने सिरमौर की ओर किसी गांव में कब्जा किया किंतु युद्ध में मारा गया। दूसरी कथा के अनुसार एक गूंगा राणा मुसलमानों के भय से इस ओर आया। उसने अपनी राजधानी धुंधन में बनाई और कई मंदिर और बाबड़ियों का निर्माण करवाया। यह गूंगा राणा अजयदेव ही था।

सतलुज तथा तौंस नदियों के बीच स्थित इस इलाके में पन्द्रहवीं शताब्दी तक मैदानों से आए शासकों का अधिकार हो चुका था। इन शासकों को राणा या ठाकुर कहा जाता था। इनका अधिकार क्षेत्र विस्तृत न हो कर बहुत छोटा था। शिमला हिल्ज की सब से छोटी ठकुराई रतेश का क्षेत्रफल तीन वर्गमील था और वार्षिक आय मात्र दो सौ रुपये। बेजा ठकुराई मात्र चार वर्गमील में थी। मांगल ठकुराई की आय मात्र सात सौ रुपये वार्षिक थी।

बाघल की वंशावलियों में अजयदेव से राजेन्द्रसिंह तक 36 शासक गिनाए गए हैं। भूपचंद (1743-1778) के बाद जगतसिंह (1778-1828) ने अपने नाम के साथ 'सिंह' लगाना आरम्भ किया। जगतसिंह के समय (1795) महाराजा संसारचंद ने कहलूर पर धावा बोला और इस लड़ाई में सिरमौर का राजा धर्मप्रकाश मारा गया। इसके बाद गोरखों के आक्रमण के समय जगतसिंह को बाघल छोड़ना पड़ा और मढ़गांव और बाद में राजा रामसरन सिंह के साथ नालागढ़ रहना पड़ा। गोरखों ने बाघल पर अधिकार कर लिया और अर्की राजधानी बनाई। गोरखों का सेनानायक अमरसिंह थापा भी यहीं रहता था। बाघल से गोरखे 23,247 रुपये कर वसूलते थे। अंग्रेजों द्वारा गोरखों की पराजय के बाद अंग्रेजों ने 3 सितम्बर 1815 को एक सनद देकर ठकुराई राणा को लौटा दी और बेगार की शर्त हटा कर 3500 रुपये कर लगाया।

शिवशरनसिंह(1828-1840) के समय रणजीत सिंह से त्रस्त हो कर कांगड़ा से संसारचंद के पुत्र अनिरुद्ध का आगमन बाघल में हुआ। पिता की मृत्यु के समय अंतिम शासक सुरेन्द्रसिंह अवयस्क था अतः जनवरी 1932 में इसे राज्य के अधिकार सौंपे गए।

बघाट

बघाट की स्थापना धारा नगरी के आए अजयदेव के छोटे भाई विजयदेव ने की किंतु इन शासकों ने 'देव' उपनाम न लगा कर 'पाल' उपनाम लगाया। इन में चालीसवें शासक अंकरपाल के बाद सोलह शासकों ने अपने नाम के साथ 'सेन' लगाया। इसके बाद पुनः 'पाल' लगाया गया। वंशावली में हरिचंद पाल से ले कर दलीपसिंह तक सत्तर नाम दिए गए हैं।

बघाट रियासत अश्विनी और गम्भर नदियों के बीच में स्थित थी। बारह घाट होने के कारण इसे बघाट कहते थे। सोलन से सुबाथू और कसौली तक इस का क्षेत्र था। रियासत का क्षेत्रफल 60 वर्गमील, जनसंख्या 8000 थी और वार्षिक आय लगभग दस हजार रुपये।

दलीपसिंह (1859-1911) के बाद सन् 1911 में दुर्गासिंह ग्यारह वर्ष की आयु में उत्तराधिकरी बना। सन् 1928 में इसे राजा की उपाधि दी गई। जनवरी 1948 में दुर्गासिंह तथा राजा मण्डी ने गान्धी जी से भेंट की। दुर्गासिंह ने 26 जनवरी 1948 को सोलन आ कर बैठक की और सभी रियासतों को 'हिमाचल प्रदेश' नाम देने का सुझाव भी दिया।

भज्जी

भज्जी और कोटी की ठकुराइयां कुटलैहड़ से आए दो भाईयों ने स्थापित कीं। कुटलैहड़ का संस्थापक जसपाल या रामपाल राजस्थान से आया। जसपाल का बड़ा पुत्र कुटलैहड़ का शासक बना। दूसरे भाइयों के नाम चीरू,चांद, शोगू और भोगू थे। अन्य मत के अनुसार जसपाल का दूसरा पुत्र गजेन्द्रपाल सतलुज के पार चला

शहर के लिए भूमि अधिग्रहण

1830 में हिल स्टेट्स के पहले पोलिटिकल एजेंट मेजर केनेडी ने राजा क्योंथल, राणा संसार सेन से 13 गांवों की एक पहाड़ी ली। यहां केनेडी हाउस का निर्माण हुआ, जो शिमला में बनने वाला पहला भवन था। इसी वर्ष पोलिटिकल एजेंट ने कोटी रियासत से भी कुछ भूमि ली।

गया और चीरू, चांद, शोगू और भोगू इसके पुत्र थे।

गजेन्द्रपाल के बाद चीरू को भज्जी, चांद को कोटी मिला। भोगू फागू चला गया और शोगू ने विवाह नहीं किया। अनुमान यह लगाया जाता है कि चीरू ने ही अपना नाम उदयपाल रखा जो भज्जी का प्रथम शासक हुआ। वंशावली में उदयपाल से लेकर रामचन्द्रपाल (1940) तक 47 नाम आते हैं।

भज्जी ठकुराई 94 वर्गमील थी। इसकी जनसंख्या 12,000 और वार्षिक आय 23,000 रुपये थी। यहां की खालिस अफीम बहुत मशहूर थी। प्रदेश के गठन पर इसे महासू जिले की सुन्नी तहसील बनाया गया।

कोटी

कोटी की स्थापना चांद ने की। चांद के बाद चौबीस ठाकुर हुए जिन्हें बाद में राणा कहा जाने लगा। बंदोबस्त रिपोर्ट के अनुसार बाईस ठाकुर हुए। गजेटियर तथा सन् 1923 की बंदोबस्त रिपोर्ट में यह भी उल्लेख है कि भज्जी के 31वें राणा चन्द्रपाल ने कोटी का क्षेत्र अपने भाई को दिया। कोटी का क्षेत्रफल 36 वर्गमील, आय 6000 रुपये थी जिसमें जंगलात की आय शामिल नहीं थी।

कोटी के बारे में एक बहुत दिलचस्प कथा मिलती है। कहा जाता है दसवें ठाकुर गोपीचंद ने क्योंथल को हराया। गोपीचंद के पास बहुत अच्छी गाएं थीं जिन्हें क्योंथल को न देने पर क्योंथल के राजा ने हमला कर दिया। मशोबरा तथा संजौली के बीच लड़ाई हुई जिसमें क्योंथल की हार हुई। इस पर कहलूर ने भी कोटी पर हमला किया किंतु सेना में बीमारी फैलने से नालदेहरा के पास हुई लड़ाई में कहलूर वाले भी हार गए। गोपीचंद ने भज्जी से भी कुछ इलाका छीन लिया था अतः भज्जी के ठाकुर ने हमला बोला जिसमें गोपीचंद मारा गया।

अंग्रेजों ने कोटी को क्योंथल के अधीन रखा। ठाकुर द्वारा क्योंथल को पांच सौ रुपये नजराना दिया जाता था। सन् 1830 में अंग्रेजों ने कोटी से कुछ भूमि ली क्योंकि शिमला ग्रीष्मकालीन राजधानी बनने जा रही थी। सन् 1857 की क्रान्ति में राणा न शिमला स्टेशन को नसीरी सेना से बचाने में अंग्रेजों की मदद की अतः उसे 'राणा' की उपाधि दी गई।

रघुबीरचंद (1891) के समय सरकार ने शिमला को पानी की सप्लाई के लिए कुछ क्षेत्र किराए पर लिया। इसके लिए जमींदारों को मुआवजा दिया गया। अर्ल एलगिन वायसराय (1894-1899) ने अपने रहने के लिए कोटी से जमीन पट्टे पर ली जिसकक किराया 2825 रुपये वार्षिक दिया जाता था। प्रदेश में शामिल होने पर यह क्षेत्र महासू जिले की कसुम्पटी तहसील में मिलाया गया।

धामी

परंपरा के अनुसार धामी के ठाकुर अपने को दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान के वंशज मानते हैं। पंजाब गजेटियर में उल्लेख है कि सन् 1192 में पृथ्वीराज चौहान की मुहम्मद गौरी के हाथों पराजय के बाद ये लोग दिल्ली से भाग कर रायपुर आ गए जहां से धामी आ बसे। इस राजवंश की स्थापना लगभग तेरहवीं शताब्दी में हुई होगी।

धामी का क्षेत्रफल 30 वर्गमील, जनसंख्या 3000 और आय लगभग 8000 रुपये थी। यह ठकुराई शिमला से लगभग पचीस किलोमीटर पश्चिम की ओर स्थित थी और कहलूर के अधीन रही। बाद में यह गोरखों के अधीन हो गई और गोरखा धामी से चार हजार रुपये कर लेने लगे। गोरखों की हार के बाद अंग्रेजों द्वारा 4 सितम्बर 1815 को एक सनद द्वारा राणा गोवर्धन सिंह को ठकुराई सौंपी गई और चालीस बेगारी देने की शर्त लगाई। फिर बेगार के बदले 720 रुपये कर लगाया गया। इस ठकुराई की वंशावली में 65 नाम हैं यद्यपि इसके बारे में विशेष जानकारी नहीं मिलती।

सन् 1920 में राणा दलीप अव्यस्क था अतः राजकाज के लिए काउंसिल बनाई गई। सन् 1930 में राणा को पूर्ण अधिकार दिए गए। राणा ने अपनी ठकुराई में पूर्ण नशाबंदी लागू की। आजादी की लड़ाई के दौरान धामी में 16 जुलाई 1939 को प्रसिद्ध 'धामी गोली काण्ड' हुआ।

कुठाड़

लगभग बारहवीं शताब्दी के अंत में किश्तवाड़ राजौरी से आया सूरत चंद कुठाड़ का संस्थापक राणा माना जाता हैं। मुस्लिम आक्रमण के समय सूरत चंद ने यहां के मावी लोगों को हरा कर ठकुराई स्थापित की। पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि जनश्रुति के अनुसार जब मुस्लिम आक्रमण के समय मैदानों से लोग पहाड़ों में आए तो उनमें से एक आदमी एक वृक्ष के नीचे बैठा मिला जिसने बताया कि वह राजपूत है और अपने मूल देश से भगाया हुआ है। वह एक मावी के पास रहने लगा। लोगों ने मावियों को हराने में उसकी सहायता की और वह राजा बनाया गया। उसने पांच परगने रीहणी, धर, शील, धरूथ और फेटा अपने अधीन कर लिए।

कुठाड़ सपाटू के पास कुठाड़ नदी की घाटी में एक छोटी रियासत थी जो कहलूर, हण्डूर या क्योंथल की करद रही। इसका क्षेत्रफल 19 वर्गमील, आय सात हजार रुपये थी जिसमें एक हजार खिराज देना पड़ता था। गोरखों ने यहां से तीन हजार रुपये कर के

तौर पर वसूला। वंशावली में कुठाड़ के 49 शासक दिखाए गए हैं।

गोरखा युद्ध के पश्चात राणा गोपालचंद की वापस आते हुए रास्ते में ही मृत्यु हो गई। अतः 3 सितम्बर 1815 को अंग्रेज सरकार ने उत्तराधिकार राणा के पुत्र भूपचंद को पुश्त-दर-पुश्त सौंपा। इसके बाद राणा जयचंद (जन्म : 1840) उत्तराधिकारी हुआ जो पढ़ा लिखा था और रियासत का कार्य अच्छे ढंग से चलाता रहा। जयचंद के बाद जगजीतचंद (1895 या 1896) उत्तराधिकारी बना। जगजीतचंद को सन् 1908 में राज्य के पूरे अधिकार दिए गए। अस्वस्थता के कारण जगजीतचंद ने गद्दी छोड़ दी और कृष्णचंद को उत्तराधिकारी बनाया। राणा कृष्णचंद (1930-1954) ने पिता की स्मृति में जगजीत नगर बसाया। राणा कृष्णचंद के एकमात्र पुत्र की मृत्यु युवावस्था में ही उनकी मृत्यु से छः मास पूर्व हो गई। इनकी सबसे बड़ी पुत्री शांतासेन, (जो राजा क्योंथल को ब्याही हुई थी) के छोटे पुत्र कंवर अरुणसेन को उत्तराधिकारी बनाया गया।

कुनिहार

पंजाब गजेटियर के अनुसार कुनिहार का संस्थापक अभोजदेव बारहवीं श्ताब्दी में अखनूर, जम्मू से आया। परंपरा कहती है कि अभोज देव कुछ साहसी व्यक्तियों के साथ इस ओर आया तो रास्ते में पता चला कि कहलूर में विद्रोह हुआ है। अतः वह कुनिहार आ पहुंचा। छोटी ठकुराई होने के कारण इस बाघल और क्योंथल का अधिकार रहा।

इस ठकुराई का क्षेत्रफल नौ वर्गमील था और जनसंख्या 2000 से भी कम। वार्षिक आय चार हजार रुपये थी और एक सौ अस्सी रुपये वार्षिक कर दिया जाता था।

मियां गोवर्धनसिंह द्वारा दी गई वंशावली के अनुसार अभोजदेव से लेकर हरदेव सिंह तक अट्ठाईस राणा हुए।

आन्नद देव (जन्मः 1715) ने कांगड़ा के विरुद्ध कहलूर की सहायता की। कहा जाता है राणा ने कांगड़ा के अफगान सरदार आगर खां को तलवार से मार दिया। सन् 1795 में हिण्डूर तथा बाघल ने कुनिहार पर हमला बोला किंतु राणा ने इसे विफल कर दिया। अस्सी वर्षीय राणा को समझौते के लिए ले जाते हुए धोखे से मार दिया गया।

मगन देव (1795-1816) गोरखों का आधिपत्य हो गया। अंग्रेजों का शासन आने पर 4 सितम्बर 1815 को सनद द्वारा ठकुराई लौटा दी गई। मगन देव के बाद पूर्ण देव, किशन सिंह और तेग सिंह उत्तराधिकारी हुए। कर्नल मैसी ने लिखा है कि ठाकुर साहब (तेग सिंह) को वे अख्तयारात नहीं है जो पहाड़ के और रईसों के हैं। इनका सदर मुकाम हाटकोट है।

तेग सिंह के बाद हरदेव सिंह उत्तराधिकारी बना जिसके अव्यस्क होने के कारण प्रशासन का काम काउंसिल चलाती रही।

सन् 1939 में कुनिहार प्रजामण्डल की स्थापना हुई। 9 जुलाई को ठाकुर हरदेव सिंह ने प्रजामण्डल के अध्यक्ष के रूप में भाग लिया।

महलोग

परंपरा के अनुसार महलोग ठकुराई के पूर्वज अयोध्या से आए। अयोध्या से वीरचंद मानसरोवर गया था हुआ था जो वापसी पर सहारनपुर रुक गया। मुहम्मद गौरी के समय सरीपाल नाम का शासक था जो गौरी के हाथों मारा गया। सरपाल के प्रपौत्र जगतचंद ने पुनः राज्य स्थापित किया। जगतचंद के पुत्र हरिचंद ने सन् 1203 में पिंजौर और कालका के बीच राजधानी बनाई। महलोग के इतिहास बारे ज्यादा जानकारी नहीं है यद्यपि वंशावली में 38 नाम आते हैं।

रियासतों के हक हकूक

गोरखों के शासन की समाप्ति के बाद अंग्रेज सरकार द्वारा सभी शासकों का उन के हक हकूक वापिस किए गए। रियासतें पुश्त-दर-पुश्त के लिए लौटाई गई और बेगार के बदले रियासत की वार्षिक आय आंकने के बाद तदनुसार खिराज या कर निर्धारित किया गया। शासकों को वयस्क होने पर ही गद्दीनशीन किया गया। सभी रिसासतों के राणाओं और ठाकुरों को अंग्रेजों द्वारा वार्षिक आय के अनुसार ''हिज हाइनेस'' लिखने, राजा या राणा लिखने, तोपों की सलामी लेने की सुविधा दी गई थी। इन में सबसे अधिक 13 तोपों की सलामी का अधिकार हिज हाइनेस शमशेर प्रकाश राजा सिरमौर को था। मण्डी, कहलूर, चम्बा, सुकेत को 11 तोपों की सलामी का हक था। इसी हक के अनुसार ये दरबार में तरतीबवार बैठते थे।

हिंद सरकार के विदेश विभाग की चिट्ठी नम्बरी 5731 तिथि 8 फरवरी, 1889 के अनुसार जिन्हें दस या इससे अधिक तोपों की सलामी दी जाती थी, उन्हें ''हिज हाइनेस'' लिखने का हक था। इस सूची में तीस रियासतों का तरतीबबार विवरण दिया गया है। सन् 1857 की क्रान्ति में जिन शासकों ने अंग्रेजों का साथ दिया उन्हें भी ठाकुर से राणा और राणा से राजा बनाया गया।

शिमला हिल स्टेट्स में किसी को भी तोपों की सलामी का हक नहीं दिया गया। इन्हें शिमला पहाड़ी रियासतों के सुपरिटेंडेंट की निगरानी में रखा गया। उक्त चिट्ठी के अनुसार इन शासकों में केवल क्योंथल और बाघल को 'राजा' लिखा गया है, शेष को 'राणा'। कुनिहार और सांगरी के शासकों को ठाकुर लिखा गया। रईस बाजगुजारों की सूची में खनेटी, देलठी, कोटी, ठियोग, मधाण, घूंड, रतेश के शासकों को 'ठाकुर' लिखा गया।

शिमला हिल स्टेट्स का विलय

शिमला हिल्ज की सत्ताईस रियासतों द्वारा 8 मार्च 1948 को विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए गये। ये रियासतें थीं : क्योंथल, जुब्बल, बुशहर, कोटी, ठियोग, मधाण, घूंड, खनेटी, देलठ, बाघल, बघाट, रावीं, ढाडी, कुम्हारसेन, भज्जी, महलोग, बलसन, धामी, कुठाड़, कुनिहार, अर्की, मांगल, बेजा, दरकोटी, शांगरी, थरोच और रतेश।

मण्डी के राजा जोगेन्द्र सेन द्वारा 14 मार्च को विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए गये। 23 मार्च 1948 को नाहन के चौगान में सिरमौर के महाराजा राजेन्द्र प्रकाश ने हस्ताक्षर किए। भारत सरकार द्वारा चम्बा में पुलिस भेजी गई और चम्बा के राजा ने भी हस्ताक्षर कर दिए। पंजाब हिल्ज स्टेट्स में मण्डी, सुकेत के अतिरिक्त कुल्लू, लाहौल स्पिति, बिलासपुर, चम्बा, भंगाल, कांगड़ा तथा इसकी शाखाएं-गुलेर, जसवां, सीब्बा, दतारपुर, नूरपुर, कुटलेहड़ आती हैं जिनका विलय हिमाचल प्रदेश में बाद में हुआ।

शिमला हिल्ज को जिला महासू नाम दिया गया। चम्बा, मण्डी तथा सिरमौर अलग इकाइयां रहीं। इस समय इस प्रोविंस का क्षेत्रफल 27,018 वर्ग किलोमीटर था। सन् 1952 तक यह चीफ कमिशनर प्रोविंस के रूप में ही कार्य करता रहा।

यह ठकुराई नालागढ़ और कुठाड़ के मध्य स्थित थी। महलोग का क्षेत्रफल लगभग पचास वर्गमील, जनसंख्या 9000 से अधिक और वार्षिक आय 10,000 रुपये थी।

गोरखा आक्रमण के समय संसारचंद (1783-1849) शासक था जिसे हिण्डूर के राजा रामसरन सिंह के पास शरण लेनी पड़ी। गोरखों ने महलोग से तीन हजार रुपये वार्षिक कर लिया। अंग्रेजों के आने पर 4 सितम्बर 1815 को एक सनद द्वारा संसारचंद को ठकुराई सौंपी गई।

संसारचंद की मृत्यु के बाद दलीपचंद (1849-1880) उत्तराधिकारी हुआ। राणा ने दण्ड कड़े किए और हिसाब किताब के लिए बहियां खोलीं। रघुनाथचंद (1880-1902) ने चुस्ती से प्रशासन किया अतः उसे सन् 1898 में राणा की उपाधि दी गई। उसने पट्टा में कई भवन और अस्पताल बनवाए।

दुर्गाचंद (1902-1934) पिता की मृत्यु के समय अव्यस्क था। अतः राजमाता ने प्रशासन के लिए लिए एक काउंसिल बनाई। 10 अप्रैल 1908 को सरकार द्वारा भवानीसिंह को मैनेजर नियुक्त किया गया जिसने रियासत में सुधार कार्य किए। सन् 1920 में व्यस्क होने पर दुर्गाचंद को अधिकार दिए गए।

नरेन्द्र चंद (1934) को 3 मई 1936 को गद्‌दी सौंपी गई। अवयस्क होने के कारण अधीनचंद को मैनेजर नियुक्त किया गया।

रतेश या घूंड की तरह अट्ठारह ठकुराईयों में बेजा ठकुराई का क्षेत्रफल चार वर्गमील था और वार्षिक आय एक हजार रुपये। एक हजार में सरकार द्वारा छावनी के लिए गए गांवों के बदले मुआवजे के अस्सी रुपये भी शामिल थे।

बेजा ठकुराई कुठाड़ के दक्षिण और महलोग के पश्चिम में थी। इस की स्थापना तनवार वंश के राजा ढोलपाल के वंशज गर्वचंद ने की। राजवंश की वंशावली में गर्वचंद से ले कर 28 राणाओं के नाम मिलते हैं। जयचंद (मृत्यु : 1773) के समय गोरखा आक्रमण हुआ। ठाकुर जयचंद अच्छा वैद्य भी था। इसने गोरखा नायकों का इलाज किया। अतः उन्होंने ठकुराई बख्श दी। अंग्रेजों ने भी 1815 में ही अधिकार अपने पास रखने के साथ ठकुराई बख्श दी। प्रतापचंद (1817-1841) के बाद उदयचंद (1841-1905) के समय सरकार ने कसौली छावनी के लिए नरी और चलहान गांव लिए जिसके बदले अस्सी रुपये वार्षिक दिए जाने लगे। पूर्णचंद (1905) को सन् 1921 में पूर्ण अधिकार दिए गए। बेजा को 15 अप्रैल 1948 को सोलन तहसील में मिलाया गया।

बेजा से भी छोटी मांगल ठकुराई कहलूर के अधीन थी। मारवाड़ के एक अत्री राजपूत ने कहलूर के राजा के पास सेना में सूबेदार की नौकरी की जिससे खुश हो कर राजा ने यह ठकुराई बख्शी। इस ठकुराई की वार्षिक आय मात्र सात सौ रुपये थी जिससे बहत्तर रुपये सरकार खिराज लेती थी।

गोरखों के आधिपत्य के बाद 20 दिसम्बर 1815 को अंग्रेजों ने यह ठकुराई लौटाई। यहां के ठाकुर पृथीसिंह, जोधसिंह (मृत्यु 1844), अजीतसिंह (1844-1892), तिलोकसिंह (1892-1920) हुए। यह ठकुराई बिलासपुर के उत्तर में सतलुज नदी के किनारे स्थित थी।

अट्ठारह ठकुराइयों में मोरनी, डोडरा क्वार, सीली, पुंदर, सरानी, नावर आदि के नाम गिनाए गए हैं जो कभी स्वतन्त्र रहीं होंगी और कालांतर में पड़ोसी ठकुराइयों में विलीन हो गईं। इसी तरह बारहवीं ठकुराई क्यारी या मधाण गिनाई गई है। एक सूची में इसका नाम कोटगुरू है। कई जगह कोटी-मधाण को इकट्ठा गिनाया गया है। रिकार्ड में कोटी का क्षेत्रफल दस वर्गमील और मधाण का रतेश के बराबर तीन वर्गमील मिलता है।

♦♦♦

पहाड़ी रियासतों में पुरातन राज्य

रामपुर बुशहर को पुराने समय में 'बुशहर किन्नौर' और रियासती राज के समय 'बुशहर' नाम से जाना जाता था। इस रियासत की गणना 'शिमला हिल स्टेट्स' या 'पंजाब हिल स्टेट्स' में नहीं की गई क्योंकि यह एक अलग अस्तित्व रखती थी। बुशहर का क्षेत्रफल सब पहाड़ी रियासतों से अधिक 3375 वर्गमील था। इससे कम चम्बा का क्षेत्रफल 3216 वर्गमील और शेष सभी रियासतें इनसे छोटी थीं। हिंद सरकार के विदेशी विभाग की चिट्ठी नम्बर 5731 तिथि 8 फरवरी 1889 के अनुसार जारी 'तरतीबवार दरबार में बैठने की पंजाब के स्वायत्त रईसों की फेहरिस्त' में बुशहर का स्थान चौथा था। इस सूची में चौथे नम्बर पर राजा का नाम 'राजा' के खिताब के साथ राजा शमशेर सिंह, जन्म तिथि 1839 और गद्दीनशीनी का वर्ष 1849 दिया गया है। उस समय राज्य की जनसंख्या 64345 थी और वार्षिक आय 50,000 रुपये।

रामपुर बुशहर एक पुरातन राज्य था, जिसके स्थापना काल के बारे में साक्ष्यों के अभाव में कह पाना कठिन है। बुशहर का प्रारम्भिक इतिहास ज्ञात नहीं है। रामपुर में राजधानी बनने से पूर्व इसे 'बुशहर किन्नौर' के नाम से जाना जाता था जिसकी राजधानी कामरू में थी। कामरू पर तिब्बत आक्रमण का उल्लेख परंपरा में बताया गया है। तिब्बत सेना ने चीनी के ठाकुर को अपनी ओर मिला कर हमला किया किंतु तिब्बती किले पर अधिकार नहीं कर पाए और बर्फ गिरने पर वापिस लौट गए। उनके जाने के बाद राजा ने चीनी के ठाकुर को जीत कर प्रति तीन वर्ष में कामरू आ कर देवी पूजा में उपस्थिति होने का दण्ड दिया। परंपरा के अनुसार बुशहर के राजाओं का राजतिलक कामरू में ही होता था।

राहुलजी ने इस राज्य के इतिहास को निम्न भागों में विभक्त किया है :

1. किन्नर (प्राग्-खश, प्राग्-आर्य) काल-ताम्र युग
2. आर्य खश (प्राग्-भोट) काल -सातवीं शताब्दी तक
3. भोट का - तेरहवीं शताब्दी तक
4. ठाकुरशाही - पन्द्रहवीं शताब्दी तक
5. कामरू (रामपुर) राजवंश- फरवरी 1948 तक

बुशहर राजवंश से पहले किन्नौर में सात 'खूंद' और अट्ठारह ठकरस या ठाकुर थे। सात खूंदों के अपने अपने देवता थे। राहुलजी ने निम्न सात खूंद गिनाए हैं :

नाम	स्थान	देवता
1.	दोशो खूंद	गौरा तथा नीचे बसारू
2.	पन्द्रहबीश खूंद	गान्मी (गाह्वीं) लाछी
3.	अट्ठारहबीश खूंद	सुङ्.रा मैसू (महासू)
4.	बड़्मो खूं भाबा मैसू	(महासू)
5.	पग्रामं (राजग्राम)	खूंद ठौलड (चगांव) मैसू (महासू)
6.	छुवड़् खूंद चिनी	(छुवड़्) चंडिका (कोठी)
7.	टुक्पा खूंद कामरू	(मोने) बद्रीनाथ

अट्ठारह ठाकुर किन्नौर से नीचे रामपुर व ऊपरी शिमला के क्षेत्र में थे जो अट्ठारह ठकुराइयां कहलाते थे।

बुशहर की स्थापना

बुशहर की स्थापना बारे इतिहास में न सही किंतु परंपरा में कई उल्लेख मिलते हैं। परंपरा के अनुसार बाणासुर पहले शोणितपुर (सराहन) और बाद में पूरे क्षेत्र का राजा बना जो द्वारिका के श्री कृष्ण का समकालीन था। पूरा क्षेत्र छोटे छोटे ठाकुरों के अधीन था जिनमें कामरू का राजा राजपूर्ण था। राजपूर्ण का सेनापति बाणासुर था। बाणासुर से मंत्रिगण द्वेष करते थे अतः वह दुखी हो मानसरोवर की यात्रा पर चला गया। तीर्थयात्रा से वापसी पर उसने कामरू न आ कर शोणितपुर(सराहन) में अपना राज्य स्थापित कर लिया। कामरू के राजा की कोई संतान नहीं थी अतः उसने मृत्यु से पूर्व बाणासुर को बुला कर अपना राज्य दे दिया। अतः शोणितपुर में नये राज्य का प्रादुर्भाव हुआ जिसके अधीन कामरू भी आ गया।

इस घटना के बाद उषा-अनिरुद्ध का प्रसिद्ध पौराणिक प्रसंग आता है। उषा द्वारा अनिरुद्ध का चित्र देखने पर श्रीकृष्ण के पौत्र को शोणितपुर लाया गया। अनिरुद्ध ने उषा से विवाह की इच्छा प्रकट की किंतु बाणासुर को यह स्वीकार न था। अनिरुद्ध को बंदी

बनाने पर श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्न शोणितपुर आए और बाणासुर को हरा कर अनिरुद्ध का उषा से विवाह हुआ। श्रीकृष्ण तो द्वारिका लौट गए। परंपरा कहती है कि प्रद्युम्न यहीं रहे।

राज्य की स्थापना के बारे में एक दूसरी कथा कामरू स्थित देवता बद्रीनारायण द्वारा कही जाती है। बद्रीनाथ बुशहर का कुल देवता है। देवता कहता है देवपूर्ण थोलिङ् के रास्ते बद्रीनाथ पहुंचा। कामरू के ठाकुर से देवपूर्ण का युद्ध हुआ जिसमें ठाकुर मारा गया। इसके बाद देवपूर्ण ने सांगला और चिनी के ठाकुरों को हराया। फिर शोणितपुर की ओर बढ़ कर बाणासुर को हराया। इस तरह पूरे क्षेत्र को जीत कर देवपूर्ण कांचीपुर गया जहां चन्द्रवंशी राजकुमार प्रद्युम्न को लाकर कामरू की गद्दी सौंपी।

एक तीसरी कथा के अनुसार दक्षिण में कांचीपुर या कंचनपुर से दो ब्राह्मण भीमाकाली के दर्शन को आए। उन दिनों वहां कोई राजा नहीं था। प्रद्युम्न वंश के शासक के निःसंतान होने पर प्रजा और दरबारियों ने निर्णय लिया कि जो व्यक्ति सर्वप्रथम भीमाकाली मंदिर में प्रवेश करेगा, उसे राजा बनाया जाएगा। संयोग से उस प्रातः छोटे भाई ने पहले मंदिर में प्रवेश किया अतः उसे राजा घोषित कर दिया गया। उसके बड़े भाई को राजगुरू बना कर रावीं में बसाया।

किन्नौर के निचार में उषा देवी का मंदिर है जो उस समय की पौराणिक परंपरा का प्रतीक है। परंपरा के अनुसार आज भी मंदिर में केवल अविवाहित पुजारी ही प्रवेश कर सकता है। लोकास्था है कि बाणासुर अभी भी यहां आता है।

उक्त तीनों कथाएं अलग अलग हैं किंतु तीनों में प्रद्युम्न के वंश का उल्लेख मिलता है। वंशावलियों में प्रद्युम्न के बाद अनिरुद्ध न हो कर 'छुम्बल', जयमल, जमल या जैन है। नाम से साथ 'सिंह' उपनाम है। यह उपनाम कभी बाद में लगा होगा।

पंजाब सरकार अभिलेख (1911) में इस वंश के संस्थापक का नाम राजकुमार दूंबर सिंह दिया है जिसने सं. 472 (315 ई.) में राज्य की नींव रखी।

किन्नौर बुशहर की एकाधिक वंशावलियां मिलती हैं जिनमें शासकों की संख्या व नामों में भिन्नता पाई जाती है। इन में कामरू तथा बुशहर की वंशावलियां अधिक प्रामाणिक मानी जाती हैं क्योंकि यही दो स्थान राज्य की मुख्य पीठ रहे।

कामरू वंशावली (राहुल सांकृत्यायान) में संस्थापक से ले कर राजा पदम सिंह (1914-1947) तक 122 शासक हैं जबकि रामपुर बुशहर वंशावली में 121 शासक। राहुल सांस्कृत्यायन ने रामपुर की एक और वंशावली में 130 शासक दिए है तो रुणियाराम की वंशावली में 122। रूलिंग चीफ्स में प्रकाशित वंशावली में राजा मोहिन्दर सिंह तक 119 शासक दिए हैं यानि कुल 121 हुए, सुंगरा महेश्वर की बही में 105। इस तरह यदि वंशावली में 130 शासक गिने जाते हैं और एक राजा का कार्यकाल बीस वर्ष माना जाए तो इस राज्य की स्थापना 2600 वर्ष पीछे जाती है। वंशावलियों में 'सिंह' उपनाम पहले नहीं मिलता, सम्भवतः यह बाद में जोड़ा गया।

बुशहर राजवंश का इतिहास राजा चतर सिंह या छत्र सिंह (1512-1574) से मिलता है। यह पहला शासक था जिसने किन्नौर में बुशहर का भाग भी मिलाया और आसपास की ठकुराइयों को जीत कर राज्य विस्तार किया। कामरू वंशावली के अनुसार यह एक सौ दसवां राजा हुआ। चतर सिंह के बाद भूप सिंह और फिर कल्याण शासक बना जिसे आज भी लोग देवता मान कर पूजते हैं। इस राजा का रथ बना हुआ है जो बद्रीनारायण के रथ के साथ रखा जाता है। कहा जाता है इसे जहर दे कर मार दिया गया। यह एक प्रतापी राजा था जिसने सराहन के दक्षिण में कल्याणपुर नगर बसाया।

केहरी सिंह (1639-1696)

केहरी सिंह बुशहर के राजाओं में सबसे प्रसिद्ध राजा हुआ जिसकी बहादुरी के किस्से आज भी सुनाए जाते हैं। कहा जाता है केहरी सिंह मुगल दरबार (शाहजहां या औरंगजेब) में उपस्थित हुआ। पंजाब गजेटियर में एक कथा में उल्लेख है कि जब केहरी सिंह दिल्ली गया तो गर्मी का मौसम था। राजा केहरी सिंह जहां भी जाता, सूर्य के सामने बादल छा जाता। बादशाह को इस बात का पता चला तो राजा को दीवानेखास में बुलाया गया। यहां भी सूर्य के आगे बादल छा गया। बादशाह के पूछने पर राजा ने बताया कि यह देवताओं की कृपा का फल है। बादशाह ने खुश हो कर कहा, ''राजा साहब! आपको खुदा के घर से छत्र मिला है, अतः आपको छत्रपति का खिताब दिया जाता है।''

नमग्या अभिलेख का हिन्दी रूपांतर

ओं स्वाति। श्रेष्ठ धर्मालम्बी, भोट (ल्हासा) की परम भट्टारक धर्मानुशासित सरकार के समक्ष इस प्रकार निदेदन है :

पहले, बहुत प्राचीन काल से, ऊपर और नीचे के दोनों राजा सबके अत्यधिक कल्याण के लिए सत्कार्य करते रहे। आरम्भ में जब नारिस प्रदेश के तीनों खंड गुगे शासन के अधीन थे, तो इस प्रदेश को लद्दाख के राजा ने जीता, फलस्वरूप वह बुशहर, लद्दाख, नारिस, मरयुल के नीचे आने जाने वाले सामान पर कर वसूल करता था। तब राजकीय अधिकारी ग्यालदन छवेंग को आकाश से (देवपुरी से) दैवी आदेश मिला कि यदि तुम सेना के अधिनायक बन कर नारिस की ओर प्रयाण करो तो नारिस और मरयुल तुम्हारे अधीन हो जाएंगे। तदनुसार राजकीय अधिकारी ग्यालदन छवेंग सैन्यबल लेकर नारिस की ओर चल पड़ा।

जब बुशहर (खुनू) में केहरी सिंह राजा थे, तो निचले प्रदेश (सीमांत प्रदेश) से 25 राजा और 18 सामंत युद्ध में भाग लेने के लिए बुलाए गए थे। लेकिन कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। राजा केहरी सिंह ने सोचा कि मुझे जाना चाहिए और मानसरोवर में पुण्य स्नान करना चाहिए। अतः वे गए। राजकीय अधिकारी ग्यालदन छवेंग और राजा केहरी सिंह गुगे प्रदेश के मध्य में उत्तर दिशा में,

नमग्या अभिलेख

केहरी सिंह के समय का नमग्या अभिलेख बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें बुशहर की तिब्बत के साथ सन्धि हुई।

लद्दाख में सेंगी नमग्याल (166-1645) तथा उसके पुत्र दें नमग्याल (1645-1675) ने स्पिति, गुगे, पुरंग और किन्नौर पर अपना अधिकार कर लिया। इसी समय में नगावाड्. लोबजड्. ग्यात्सो तिब्बत के दलाई लामा बने। अतः ग्येलुक्पा और डुक्पा संप्रदायों को सताए जाने का इल्जाम लगाते हुए लद्दाख और तिब्बत में संघर्ष हुआ। परिस्थितियां ऐसी बनीं कि सन् 1681 में युद्ध छिड़ गया। इन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए केहरी सिंह ने किन्नौर के एक क्षेत्र को जो सेंगी नमग्याल के अधीन था, वापिस लेने की योजना बनाई। राजा ने अट्ठारह ठकुराइयों से भी सहायता लेनी चाही किंतु किसी ने सहायता नहीं दी। अंततः केहरी सिंह अकेला ही किन्नौर सेना को ले कर पश्चिती तिब्बत की ओर गया। मानसरोवर के समीप राजा की भेंट तिब्बत के गेदन से हुई जो लद्दाख अभियान पर जा रहा था। दोनों का एक ही उद्देश्य था अतः दोनों ने सन्धि कर ली।

पुलिंग गेंग में मिले। उस समय दोनों, ऊपर और नीचे के राजाओं में एक अक्षुण्ण अनुबन्ध हुआ और गुरू महामुनि (बुद्ध) को साक्षी मान शुद्ध संकल्प और पवित्र मन से उद्घोषित कर उसको स्वीकार किया। इसके अनुसार-

''जब तक त्रिकालज्ञ देवताओं का वास स्थान और जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित कैलास का हिम नहीं पिघलता, जब तक मानसरोवर झील पानी से रिक्त नहीं हो जाती, जब तक श्याम वर्ण कौवा सफेद नहीं हो जाता और जब तक कल्प का अंत नहीं हो जाता, तब तक ऊपर और नीचे वाले दोनों राजा अपने मैत्री सम्बन्ध कायम रखेंगे और अपने राज्य की सीमाओं में सत्कार्य कर के, सब प्राणियों का कल्याण करेंगे। ऊपर और नीचे के दोनों राजाओं के संदेशवाहक, राजकर्मचारी और राजदूत स्वछन्द इलाके में आ-जा सकेंगे। यह आवश्यक होगा कि बुशहर राज्य के संदेशवाहक तीन वर्ष में आएं और नारिस के तीनों खण्डों की राजधानियों, सपरंग, रोथंग और जंगगर में वास करें। ऊपर और नीचे के राजाओं के संदेशवाहक को ऊपर और नीचे (अर्थात् तिब्बत और बुशहर में) आते-जाते बाल भर भी तंग न किया जाए और किसी प्रकार का कर न लिया जाए और न ही कोई कष्ट पहुंचाया जाए। ऊपर और नीचे के राजा सत्कार्य से ऐसी व्यवस्था बनाएं जिससे आने जाने वाले लोग निर्भय हो कर विष और घातक हथियारों के भय से सर्वदा मुक्त हो कर विचरण करें।''

इस सन्धि के अनुसार बुशहर के प्रतिनिधि तथा व्यापारी बिना किसी भय के तिब्बत जाने लगे। सन्धि में बुशहर ने तिब्बत के साथ लद्दाख के विरूद्ध सैनिक अभियान स्वीकार किया। अतः किन्नौर भी लद्दाख के चंगुल से छूट गया। तिब्बत ने लद्दाख को हरा दिया और लद्दाखी सेना बासगो किले में जा छिपी।

पंजाब स्टेट गजेटियर में उल्लेख है कि केहरी सिंह ने सिरमौर, मंडी तथा सुकेत से भी कर वसूल किया। राजा ने क्योंथल, कोटखाई, कुम्हारसेन, बलसन, ठियोग, दरकोटी ठकुराइयों को अपने आधिपत्य में ले लिया। केहरी सिंह की मुत्यु 1696 में हुई।

तिब्बत बुशहर सन्धि एक महत्त्वपूर्ण सन्धि थी जो सन् 1947 तक चलती रही। तिब्बत से ऊन, पश्म, नमक, सुहागा और पशु आने लगे। लवी मेला आरम्भ हुआ। मैदानों से भी व्यापारी आने लगे।

पूह से ग्यारह किलोमीटर दूर नमग्या आज भी तिब्बत के साथ व्यापार का केन्द्र हैं। शिपकी-ला से हो कर व्यापारी तिब्बत जाते हैं और वहां से घोड़ों पर पश्म, जूते, मक्खन आदि लाते हैं।

राजधानी का रामपुर स्थानांतरण

केहरी सिंह के बाद विजय सिंह ने राज्य विस्तार की नीति जारी रखी और सन् 1704 में कुम्हारसेन, कोटगढ़, सांगरी, और सारी को अपने राज्य में मिलाया। पब्बर नदी के बाएं किनारे रावींगढ़ और अन्य छोटी ठकुराइयों को भी अपने अधीन किया। बुशहरी सेनाओं ने कुल्लू के राजा मान सिंह को भी मार गिराया।

ऐसे समय में जब राज्य विस्तार निचले क्षेत्रों की ओर बढ़ा, कामरू से राज्यसंचालन कर पाना कठिन था। अतः राजधानी को निचले क्षेत्र में लाने की सोची गई होगी क्योंकि यहां से कुल्लू तथा महासू की आरे बढ़ना और आक्रमणों को रोकना सुगम था।

विजय सिंह के बाद यह सम्भवतः राम सिंह (1767-1799) का ही समय था जब राजधानी को सराहन से बदल कर रामपुर लाया गया। यह वह समय था जब कुल्लू द्वारा बहुत से क्षेत्र बुशहर से छीन लिए गए थे। अतः कुल्लू से निरंतर युद्ध के कारण भी रामपुर में राजधानी बनाना श्रेयकर था।

कांगड़ा के संसारचंद का प्रभाव बढ़ने पर बिलासपुर द्वारा गोरखा सेना के आमन्त्रण देने के कारण ससांरचंद की सन् 1806 में गोरखा सेना से हार हुई। फलतः गोरखा सेना ने उत्तर पूर्व की ओर बढ़ कर अमरसिंह थापा ने सन् 1810 में रामपुर पर आधिपत्य कर लिया। इसी समय, 1810 में ही राजा उग्र सिंह की मृत्यु हो गई। उस समय पुत्र महेन्द्र सिंह की आयु मात्र पांच वर्ष थी। अतः युवराज महेन्द्र सिंह को राजमाता चगांव ले गईं। गोरखों ने राजकुमार का पीछा भी किया किंतु दुर्गम मार्ग होने के कारण पहुंच नहीं पाए। इस बीच गोरखों ने यमुना और सतलुज नदियों के बीच का सारा क्षेत्र जीत लिया था।

प्रथम नवम्बर 1814 को अंग्रेजों ने गोरखों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। अंग्रेजों द्वारा चारों ओर से हमले की बात सुन गोरखे जुब्बल, हाटकोटी और नावर होते हुए नौगढ़ किले में एकत्रित

स्कॉच अधिकारियों ने की थी शिमला की खोज

स्कॉच अधिकारी 30 अगस्त, 1817 की अपनी डायरी में लिखते हैं : "...... शिमला एक मझोला-सा गांव, जहां राहगीरों को पानी पिलाने के लिए एक फकीर रहता है....... हम जाखू की ओर ठहरे और वहां से बहुत मनोरम और सुन्दर दृश्य देखा।" मि. ए. विलसन का मत है कि शिमला की खोज उन स्कॉच अधिकारियों ने की जो सतलुज घाटी के सर्वे के लिए आए थे। दूसरा मत यह भी है कि 1816 में गोरखा सेना को कोटगढ़ ले जाते समय एक अंग्रेज अफसर द्वारा यह गांव खोजा गया जो घने जंगल और जानवरों से भरा था। आज के शिमला को पुरानी श्यामला देवी के नाम से भी जोड़ा जाता हैं जो जाखू में रहने वाले एक साधु द्वारा पूजी जाती थी। 'बड़ी सरकार'' के लिए समर कैपिटल की खोज चाहे किसी ने भी की हो, उसके पहले यह एक छोटा सा पहाड़ी गांव था-वर्तमान रिपन अस्पताल से ऊपर और रोमन कैथलिक चर्च के नीचे।

1815 में इस गांव को जींदराणा से लेकर राजा पटियाला को नेपाल की लड़ाई में अंग्रेजों का साथ देने के लिए दिया गया। भावी शिमला कहलाने वाला भू-भाग राजा पटियाला और राजा क्योंथल के अधिकार में था।

सन् 1819 में पहाड़ी रियासतों के असिस्टेंट पॉलिटिकल एजेंट कैप्टन रॉस ने शिमला में पहला कॉटेज बनाया। सन् 1822 में उनके उत्तराधिकारी कैप्टन कैनेडी नें पहला मकान यहां बनाया। सन् 1824 में कुछ अंग्रेजों ने राणा क्योंथल से इजाजत ले कर कुछ मकान बनाए क्योंकि शिमला की जमीन क्योंथल की थी। राणा क्योंथल ने यह शर्त लगाई कि यहां पेड़ों को न काटा जाए और जंगली जानवरों को भी न मारा जाए। सन् 1827 में गर्वनर जनरल लॉर्ड एमरस्ट का आगमन हुआ और शिमला को ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाने का विचार आया। सन् 1830 में क्योंथल तथा पटियाला से जमीन लेकर शिमला स्टेशन आबाद किया गया। लॉर्ड एमरस्ट ने राजधानी के निर्माण बारे राणा क्योंथल से बातचीत की। क्योंथल से बारह गांव, जिनकी मालगुजारी 937 रुपये थी, लिए गए और इसके बदले परगना रावीं में शराचली और गठासू के इलाके दिए, जिनकी वार्षिक मालगुजारी 1289 रुपये थी, (जो अंग्रेजों ने अपने पास रखा हुआ था) दिया गया।

हो गए। बुशहर के वजीर टीकमदास और बदरीदास के नेतृत्व में नौगढ़ पर हमला बोला गया। कुल्लू के राजा ने भी सैनिक भेजे। खाद्य सामग्री समाप्त होने पर वे रावींगढ़ जाने लगे तो उन्हें आत्मसमर्पण करना पड़ा। जून 1815 में अमरसिंह थापा सहित सभी ने आत्मसमर्पण कर दिया और चौपाल की ओर चले गए।

8 नवम्बर 1815 को एक सनद द्वारा अंग्रेजों ने राजा महेन्द्र सिंह को बुशहर का राज्य वापिस किया। कोटगढ़, रावीं, अपने पास रखे। खनेटी, देलठ बुशहर के अधीन रहे, कुम्हारसेन को मुक्त किया गया। सर डेविड ऑक्टर लूनी के असिस्टेंट एजेंट लेफ्टिनेंट रॉस ने महेन्द्र सिंह को उग्र सिंह के समय की सीमाएं कुछ शर्तो पर लौटा दीं।

राजा महेन्द्र सिंह के समय रामपुर में कई यूरोपीय यात्रियों का रामपुर बुशहर व किन्नौर आगमन हुआ और उन्होंने यहां की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश डाला। इनमें जेम्ज बेली फ्रेजर, एलेक्जेंडर जेरार्ड, अंग्रेज सेनापति लॉर्ड केम्प्रियर थे। जे.डी. कनिंघम तो किन्नौर में एक वर्ष तक ठहरा और बुशहर राज्य के व्यापारिक आयात निर्यात सम्बन्धों पर एक रिपोर्ट दी। कनिंघम ने रामपुर बुशहर को एक व्यापारिक केन्द्र बताया जहां प्रतिवर्ष व्यापारिक मेले लगते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में जो कश्मीरी तथा अफगान सिखों के आतंक से मैदानों में बसे, वे इन मेलों में व्यापार के लिए आने लगे। उन्होंने परामर्श दिया कि तिब्बत से आने वाले माल पर राहदारी समाप्त की जाए। अतः सरकार ने बुशहर राज्य का वार्षिक खिराज 15,000 रुपये से घटा कर 3945 रुपये कर दिया।

राजा शमशेर सिंह को सन् 1849 में गद्दीनशीन किया गया। अंतिम स्वतन्त्र शासक राजा पद्म सिंह को नवंबर 1914 को परंपरा के अनुसार राजा बिलासपुर के हाथों राजतिलक हुआ।

प्रथम अक्तूबर 1936 को बुशहर राज्य पंजाब सरकार के बजाए सीधा भारत सरकार से सम्बद्ध किया गया।

'अभिनंदन' कृष्ण निवास लोअर पंथा घाटी
शिमला-171009, मो. 94180-85595

आलेख

15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने के बाद एक लम्बे संघर्ष के उपरांत 24 जनवरी, 1968 को हिमाचल विधान सभा ने पूर्ण राज्यत्व का प्रस्ताव पारित कर केन्द्र सरकार को भेजा। 31 जुलाई, 1970 को तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने संसद में हिमाचल को पूर्ण राज्यत्व का दर्जा देने की घोषणा की। 25 जनवरी, 1971 को श्रीमती गांधी ने शिमला आकर रिज मैदान में भारी बर्फबारी और उत्साह एवं जोश से ओतप्रोत हजारों लोगों के बीच हिमाचल का भारत के 18वें पूर्ण राज्यत्व के रूप में उद्घाटन किया।

स्वतंत्रता संग्राम में रियासतकालीन आंदोलन

● डॉ. कमल के. प्यासा

सतलुज और तौंस नदियों के मध्य फैला पश्चिमी हिमाचल का क्षेत्र 1948 से पूर्व शिमला की पहाड़ी रियासतों के नाम से जाना जाता रहा था। इस क्षेत्र में रजवाड़ों की अपनी-अपनी रियासतें हुआ करती थीं। ठाकुरों व राणाओं की इन्हीं रियासतों को ठकुराइयां या राहोण के नाम से जाना जाता था। उस समय ठाकुरों और राणाओं का इतना दबदबा रहता था कि उनके आगे कोई नहीं बोल पाता था। वे मनमानी करते थे, बगार करवाते और तरह-तरह के कर लगाने से भी नहीं डरते थे। लेकिन जब सहनशक्ति खत्म हो गई तो लोग विद्रोह और आंदोलनों पर उतर आए। स्वतंत्रता से पूर्व शिमला देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी हुआ करती थी। 1827 ई. में लार्ड एमरेस्ट जब शिमला आये तो वे यहां मेजर कैनेडी के घर पर ठहरे। क्योंकि मेजर कैनेडी (उस समय) शिमला जिला के बड़े अधिकारी थे और उनका भवन कैनेडी हाउस के नाम से प्रसिद्ध था। मैदानों की गरमी से बचने के लिए अंग्रेज अधिकारी इधर पहाड़ी क्षेत्रों में आते रहते थे। इसी क्रम में लार्ड ऑकलैंड व लार्ड डलहौजी भी यहां आए और उन्होंने भी अपने भवन बनवाए। लेकिन जब 1864 ई. में लार्ड लारैंस यहां पहुंचे तो उन्होंने शिमला को ग्रीष्मकालीन राजधानी का दर्जा दे दिया। इसके पश्चात अंग्रेज अधिकारियों के ठहरने के कई एक भवनों का निर्माण किया गया।

शिमला पहाड़ी रियासतों के इतिहास की इन्हीं कड़ियों में स्वाधीनता आंदोलन का भी इतिहास छिपा हुआ है, वह चाहे 1857 की क्रांति का हो या फिर स्थानीय रियासती आंदोलन जिनके बारे में आज भी जब कहीं पढ़ते-सुनते हैं तो वह ऐतिहासिक घटनाएं किसी न किसी रूप में हमें हिला कर रख देती हैं।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम का असर इधर पहाड़ी रियासतों में भी देखा गया। सबसे पहले कसौली की सैनिक छावनी से यह चिंगारी सुलगी और 20 अप्रैल 1857 को अंबाला राईफल के कुछ सैनिकों ने कसौली पुलिस चौकी को ही आग लगा दी। अंग्रेज इस घटना को देखकर घबरा गए। कुछ लोग छिपते-छिपाते भागकर जुनगा, कोटी और बलसन शासकों के यहां पहुंच गए तो कुछ सुबाथू, डगशाई सैनिक बैरकों में जा पहुंचे। कसौली के सैनिकों को जब अंबाला जाने के आदेश दिए गए तो उन गोरखा सैनिकों ने वहां जाने से इनकार कर दिया तथा 16 मई 1857 को विद्रोह की घोषणा कर दी। इसके पश्चात् सैनिकों ने खजाने पर अधिकार कर लिया और शिमला जतोग की ओर चल पड़े। इस सारे विद्रोह खेल को सूबेदार भीम सिंह ने अंजाम दिया था। जब इस विद्रोह की खबर शिमला में अंग्रेजों के पास पहुंची उन्हें पता चला कि जतोग में विद्रोह हो गया है तथा वे शिमला को भी लूटने वाले हैं, तो शिमला के डिप्टी कमिशनर विलियम हेग ने यथाशीघ्र विद्रोहियों को रोकने के लिए अपने विश्वास पात्र मियां रतन सिंह को भेज दिया। स्थिति को भांपते हुए कुछ निकट के शासकों ने अपने कुछ सैनिकों को भी विद्रोह को दबाने के लिए भेज दिया। इस तरह से स्थिति पर शीघ्र ही नियंत्रण पा लिया गया।

देखा जाये तो स्वतंत्रता संग्राम की इस लड़ाई में शिमला पहाड़ी रियासतों के सभी लोगों ने अंग्रेजों का डटकर विरोध किया, जिसमें जुब्बल, कोटगढ़, कोटखाई, रामपुर और किन्नौर आदि क्षेत्रों में तैनात सभी अग्रेंज अधिकारी व व्यापारी भागने के लिए मजबूर हो गए। इतना ही नहीं बुशहर के राजा शमशेर सिंह (1849-1914) ने तो अंग्रेजों द्वारा लगाया गया वार्षिक नजराना कर देना भी बंद कर दिया तथा अपनी रियासत को भी अंग्रेजों से मुक्त करवा कर खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। इस क्रांतिकारी योजना के पीछे सुबाथू के एक क्रांतिकारी राम प्रसाद बैरागी का मुख्य हाथ था। लेकिन 12 जून 1857 को जब अंबाला के कमिशनर बार्नस को बैरागी की इस योजना का पता चला तो बैरागी को अंबाला जेल में

बंद करके उसे वहीं फांसी पर भी लटका दिया गया।

जब रामप्रसाद बैरागी की क्रांति की यह खबर नालागढ़ पहुंची तो वहां भी पंजाब के कुछ क्रांतिकारी पहुंच गए और खजाना लूटने में सफल हो गए। इसके पश्चात् सैनिक पहाड़ों को छोड़कर मैदानों की तरफ हो लिए। नालागढ़ के विद्रोह को दबाने के लिए कैप्टन ब्रिगज तथा बाघल के मियां जयसिंह को डिप्टी कमिशनर विलियम हेग द्वारा वहां भेजा गया। इस तरह 20 जून तक नालागढ़ की स्थिति पर नियंत्रण पा लिया गया।

1859 में बुशहर रियासत में दूम्ह आंदोलन हुआ। इस आंदोलन का प्रमुख कारण भूमि की नाप नपाई था और लगान की वूसली में भी भारी फेरबदल कर दिया गया था। दूसरा कारण राज्य की कानून व्यवस्था थी जिससे लोग बहुत तंग थे। खानदानी बजीर व्यवस्था भी खत्म कर दी गई थी जिससे पुजारी वजीर-नई व्यवस्था को नहीं अपना रहे थे। इसी कारण पुजारी वजीर आंदोलन को तूल देने लगे थे। इस पर रियासत के किसानों ने आंदोलन को समाप्त करने के लिए अपनी कुछ शर्तें रख दी। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए सुपरिंटेंडेंट बार्नस को किसानों की शर्तें स्वीकार करनी पड़ी। इस तरह किसानों, राजा व अंग्रेज सरकार के साथ समझौता हो गया। इसी प्रकार का एक आंदोलन नालागढ़ रियासत में 1877 ई. में भी हुआ, जिसमें लगान कम करके राजा के वजीर को निकाल दिया गया व बंदी बनाए गए आंदोलनकारियों को छोड़ दिया गया। महात्मा गांधी द्वारा चलाए असहयोग आंदोलन की तरह ही यहां की पहाड़ी रियासतों में 1859 से लेकर 1930 तक दूम्ह नामक अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन किए गए जिनके आगे स्थानीय शासकों व अंग्रेजों को झुकना पड़ा। प्रदेश के स्वाधीनता संग्राम में धामी गोली कांड, चंबा, मंडी, बिलासपुर विद्रोह तथा सुकेत आंदोलन कुछ प्रमुख घटनाएं हैं। इन सभी घटनाओं को देखते हुए कुछ ऐसा प्रतीत होता हैं कि पहाड़ी क्षेत्रों में भी स्वतंत्रता के प्रति लोगों में जागरूकता आ गई थी। इसी के चलते धामी में प्रेम प्रचारिणी सभा का गठन किया गया जो बाद में 13 जुलाई 1939 को प्रजामंडल के रूप में बदल गई। प्रजामंडल के बन जाने से आंदोलन प्रत्यक्ष रूप से होने लगे थे। इसी कड़ी में धामी रियासत के लोगों ने राणा दलीप सिंह (धामी शासक) के आगे अपनी तीन मांगे अपने नेता सीता राम के नेतृत्व में रख दी। मांगों में बेगार प्रथा को बंद करना, लगान को कम करना तथा धामी प्रजामंडल को मान्यता देना था। लेकिन राणा ने आंदोलनकारियों की तीनों मांगे अस्वीकार कर दी। इस पर अपनी मांगों के समर्थन में भारी जन समूह धामी की ओर चलने लगा। जनसमूह का नेतृत्व जुब्बल रियासत प्रजामंडल का प्रतिनिधि भागमल सौहठा कर रहा था जिसे घणाहट्टी में राणा ने बंदी बना लिया। इतना ही नहीं आंदोलनकारियों पर बिना किसी चेतावनी के गोलियां भी चला दी, जिससे आंदोलनकारी उमादत्त व दुर्गा मारे गए तथा कुछ लोग घायल भी हो गए। इस गोलीकांड व भागमल की गिरफ्तारी के खिलाफ आंदोलनकारियों ने विशेष बैठकों का आयोजन करके सारी घटना की सूचना महात्मा गांधी व पंडित जवाहर लाल तक पहुंचा दी। इतना कुछ हो जाने पर भी राणा के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसके पश्चात सीता राम, भागमल सौहठा तथा भास्करानंद आदि सभी मिलकर राजकुमारी अमृत कौर के साथ महात्मा गांधी से मिलने दिल्ली पहुंच गए। महात्मा गांधी ने पत्र लिखकर इसकी विस्तार से निंदा करते हुये इलाहाबाद में पंडित जवाहरलाल को सूचित करके कार्यवाही करने को कह दिया। कार्यवाही को पूरा करने के लिए पंडित जवाहर लाल ने शांति स्वरूप धवन को मामले की जांच के लिए भेज दिया। जब मामले की जांच करके शांति स्वरूप चले गए तो अगले ही दिन सीता राम को राणा द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरह 1945 तक सीता राम को रियासत से बाहर रहना पड़ा। धामी की इसी घटना पर दुख व्यक्त करते हुए महात्मा गांधी ने हरिजन नामक पत्रिका में अपने एक लेख में लिखा था, “रियासती शासक अंग्रेजों के संरक्षण में जो कारगुजारी कर रहे हैं वह ठीक नहीं.........उन्हें मालूम होना चाहिए कि रियासती जनता के साथ हम भी हैं। धामी गोलीकांड के फलस्वरूप ही पहाड़ी क्षेत्र की अन्य रियासतों में भी राजनैतिक, सामाजिक तथा आत्म चेतना जागृत हो गई है।” शिमला के साथ लगती ठियोग तथा मधान रियासतों में भी 1926-1928 ई. के मध्य विद्रोह उठ खड़ा हुआ था जिसे रोकने के लिए बलोची व जेहलम से पुलिस बुलाई गई थी और लोगों में डर पैदा करने के लिए उन्हें घर-घर तलाशी लेने को भी भेजा गया। लेकिन इसके विरोध में ठियोग के मियां खड़क सिंह ने लोगों को इकट्ठा करके आंदोलन शुरू कर दिया। मियां खड़क सिंह की देखा देखी आंदोलन माधन रियासत के साथ ही साथ शिमला के साथ लगती अन्य छोटी-छोटी रियासतों में भी शुरू हो गए। आंदोलन में शामिल रियासतें थी : कुम्हार सेन, खनेरी व घूंड आदि। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब प्रजामंडल के सदस्यों द्वारा ठियोग रियासत पर अधिकार किया गया और स्वतंत्र सरकार का गठन कर दिया गया तो सूरत राम को रियासत का मुख्यमंत्री तथा डा. वाई.एस. परमार को परामर्शदाता नियुक्त किया गया। लेकिन ठियोग का राजा ऐसा नहीं चाहता था। इसी कारण 5-6 महीने के बाद राणा ने धावा बोलकर वहां का सारा रिकार्ड व

धामी की इसी घटना पर दुख व्यक्त करते हुए महात्मा गांधी ने हरिजन नामक पत्रिका में अपने एक लेख में लिखा था, “रियासती शासक अंग्रेजों के संरक्षण में जो कारगुजारी कर रहे हैं वह ठीक नहीं.........उन्हें मालूम होना चाहिए कि रियासती जनता के साथ हम भी हैं। धामी गोलीकांड के फलस्वरूप ही पहाड़ी क्षेत्र की अन्य रियासतों में भी राजनैतिक, सामाजिक तथा आत्म चेतना जागृत हो गई है।”

खजाना लूट लिया। इस पर डा. परमार द्वारा सरदार वल्लभ भाई पटेल से संपर्क करके ठियोग में पुलिस बुलाई और राणा को पकड़ कर रियासत से बाहर भेज दिया। जुब्बल रियासत में प्रजामंडल आंदोलन तो राजा भक्तचंद (ई.1910-1946) के समय से ही शुरू हो गया था लेकिन राजा दिग्विजय के समय आंदोलन ने जोर पकड़ लिया था और उस समय आंदोलनकारियों में शामिल थे प्रजामंडल के भागमल सौहठा, जयलाल-शाखरोली, मास्टर प्राण राम, रामसरन, मस्त राम व सीता राम आदि। स्वतंत्रता के पश्चात 15 अगस्त 1947 को जिस समय शिमला की पहाड़ी रियासतों का आंदोलन जोरों पर था, उसी समय जुब्बल प्रजामंडल के लोग प्रशासन में प्रतिनिधित्व की मांग करने लगे। राजा ने स्थिति को देखकर उन्हें आमंत्रित कर लिया। इस तरह से भागमल सौहठा अपने पांच सदस्यों का एक मंत्रिमंडल बना लिया जिसमें सौहठा मुख्यमंत्री, जयलाल शाखरोली गृहमंत्री तथा नेगी बशेर चंद व एक अन्य मंत्री बनाए गए। इसी मंत्रीमंडल में राजा की ओर से कुवंर रघुवीर सिंह तथा बाबूराम घेजटा को भी मंत्री बनाया गया।

शिमला पहाड़ी रियासतों के शासकों द्वारा एक बैठक का आयोजन बघाट रियासत के राजा दुर्गा सिंह की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें प्रजामंडल के कुछ सदस्यों को भी आमंत्रित किया गया। आमंत्रित सदस्यों में देवी दास मुसाफिर, सूरज राम प्रकाश, देवी राम केवल, एस.डी. वर्मा, भारस्करानंद, हीरा सिंह पाल, भागमल सौहठा, पंडित पदम देव, स्वरूपानंद, ठाकुर सेन नेगी तथा सत्य देव बुशहरी शामिल थे। बैठक में शासक लोग अपने पक्ष में विधान पारित करना चाहते थे ताकि उनकी प्रभुसत्ता स्वतंत्र भारत में भी पहले जैसी बनी रहे। लेकिन बैठक के प्रबंधक महावीर सिंह ने डा. परमार को अंदर नहीं जाने दिया और न ही प्रजामंडल के अन्य सदस्यों के साथ ठीक व्यवहार किया गया। इस पर डा. परमार व पंडित पदमदेव ने दिल्ली के राष्ट्रीय नेताओं से बातचीत की जिस पर बैठक के सभी शासकों को दिल्ली बुलाकर उनसे विलयकरण के लिए हस्ताक्षर करवा लिए गए।

इसी तरह से रियासत कुम्हारसेन के कोलियों तथा बेठुओं को प्रजामंडल के कुछ सदस्यों ने बेगार और बैठ न करने के लिए प्रेरित किया जिस पर अप्रैल 1939 को कुम्हारसेन के राणा ने जुब्बल के भागमल सौहठा की शिकायत अंग्रेजों से कर दी और कहा कि सौहठा आदि कोलियों और बेठुओं को बगार न करने के लिए उकसा रहे हैं। लेकिन राणा की शिकायत का प्रजामंडल पर कोई असर नहीं हुआ और 15 अप्रैल 1948 को कुम्हारसेन को हिमाचल में मिलाकर केन्द्रीय प्रशासनिक इकाई बना दिया गया।

एक अन्य घटना के अनुसार कुनिहार की ठकुराई जो कि शिमला के पश्चिम में स्थित थी। यहां भी ठाकुर हरदेव के विरुद्ध 1920 में उसके गलत व्यवहार के प्रति आवाज उठाई गई, जिस पर ठाकुर ने आवाज उठाने वालों को दंड देकर कैद कर लिया। 1928 को जब उन्हें मुक्त किया गया तो उन्होंने शिमला में फिर से ठाकुर के विरुद्ध गतिविधियां शुरू कर दी और 1939 में प्रजामंडल की स्थापना करके कुनिहार में ठाकुर के विरुद्ध कई प्रकार के आरोप लगाकर फिर आंदोलन शुरू कर दिया गया। लेकिन ठाकुर नहीं माना। जुलाई 1939 में एक बार फिर प्रजामंडल का प्रतिनिधि मंडल ठाकुर से मिला और फिर उसके समक्ष अपनी मांगे रखी गई। प्रजामंडल के दबदबे को देख अब की बार ठाकुर ने सारी मांगें मान ली और 9 जुलाई को प्रजामंडल के सम्मेलन में अध्यक्ष के रूप में शामिल भी हो गया। सम्मेलन में धामी, भज्जी, नालागढ़, महलोग तथा बाघल के लोग भी भारी तादाद में शामिल हुए। इस तरह कुनिहार के ठाकुर ने मांगे ही नहीं मानी : बल्कि कई एक प्रशासनिक सुधार भी किए। बाद में 15 अप्रैल 1948 को कुनिहार को अर्की तहसील बना दिया गया। इस प्रकार जहां पहाड़ी रियासतों के शासकों ने (अंग्रेजों की छत्र छाया में) अपनी जनता का हर तरह से दोहन करके शोषण किया, वहीं रियासती जनता में देश के प्रति जनचेतना जागृत होने से ही उन्होंने अंग्रेंजों को रियासतों और देश से बाहर खदेड़ने में सफलता प्राप्त की। इसके साथ ही हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने के बाद एक लम्बे संघर्ष के उपरांत 24 जनवरी, 1968 को हिमाचल विधान सभा ने पूर्ण राज्यत्व का प्रस्ताव पारित कर केन्द्र सरकार को भेजा। 31 जुलाई, 1970 को तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने संसद में हिमाचल को पूर्ण राज्यत्व का दर्जा देने की घोषणा की। 25 जनवरी, 1971 को श्रीमती गांधी ने शिमला आकर रिज मैदान में भारी बर्फबारी और उत्साह एवं जोश से ओतप्रोत हजारों लोगों के मध्य भारत के 18वें पूर्ण राज्यत्व के रूप में उद्घाटन किया।

संदर्भ

1 हिमाचल भाषा एवम् संस्कृति विभाग शिमलाः "हिमाचल के स्वतंत्रता सैनानी भाग-1."

2 हिमाचल भाषा एवम् संस्कृति विभाग शिमलाः स्मृतियां, शिमला, 1988

3 हिमाचल भाषा एवम् संस्कृति विभाग शिमलाः हिमाचल प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम का संक्षिप्त इतिहास, शिमला-1992

4 ललित, चेतराम भारद्वाज : "संघर्ष के वे दिनः हिमाचल प्रदेश के स्वतंत्रता सेनानियों के जीवन संस्मरण शिमला-1989

5 बिहारी लाल : तारीख रियासत नालागढ़ सरगोदा, 1929

6 Pubby, Vipin: 'Shimla Then and Now, Delhi 1998.

7 Punjab, Govt: ' Punjab Districts Gazetteer, Shimla, District, Lahore 1908.

8 Punjab, Govt: Punjab States Gazetteer, shimla hill state', Lahore 1911

9 Punjab, Govt: Punjab States Gazetteer of shimla hill state', Lahore 1935

10 Hutchinson, J.k. and Vogel, J.Ph.Ranas and Thakur of westeren hills, J.P.H.S., Vol-III'

11 मियां गोवर्धन सिंह, 'हिमाचल प्रदेश का इतिहास' दिल्ली।

पृथी 34/, अप्पर समखेतर

मंडी, (हि.प्र.)-175001, मो. 98821-76248

राजशाही की गुमनाम दास्तां

● नेम चन्द अजनबी

राजभवनों के अन्दर चलने वाले षड्यन्त्रों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना की मानव का। उत्तराधिकार की लड़ाई की परिणति के रूप में महाभारत जैसा भयानक युद्ध हुआ। परन्तु इस सबके बावजूद न तो आदमी के स्वभाव में कोई परिवर्तन आया और न ही इस प्रकार के षड्यंत्रों का रचा जाना रुका। षड्यंत्रों की इसी कड़ी के फलस्वरूप शिमला की पहाड़ी रियासतों में शामिल भज्जी रियासत भी अछूती नहीं रही।

94 वर्गमील के क्षेत्र में फैली भज्जी रियासत पर 1947 तक 47 शासकों ने राज किया जिसे शिमला की पहाड़ी रियासतों में पांचवां दर्जा प्राप्त था। इसकी जनसंख्या 12000 के करीब और सालाना आय 23000 रुपये थी। भज्जी उन्नत किस्म की अफीम के लिये प्रसिद्ध थी जिसे यहां से अन्य राज्यों को भेजा जाता था। इस छोटी सी रियासत ने समय-समय पर अपनी पड़ोसी रियासतों के साथ अनेक लड़ाइयां लड़ी। जय चन्द ने सुकेत के साथ, अमृत पाल ने कुल्लू, क्योंथल, धामी के साथ अनेक लड़ाइयां लड़ी। रुद्रपाल के समय गोरखों ने इसे अपने अधीन किया। अन्य पहाड़ी रियासतों की तरह इस पर भी 1809 से लेकर 1815 तक गोरखों का अधिकार रहा। उस समय इस रियासत पर राणा रुद्रपाल का शासन था। 4 सितम्बर 1815 को अंग्रेजों ने एक सनद के द्वारा राज्य का शासन राणा रुद्रपाल को सौंप दिया।

इस प्रकार भज्जी रियासत सीधे तौर पर ईस्ट इंण्डिया कम्पनी के अधिकार क्षेत्र में आ गई। रुद्रपाल सन 1841 में रियासत का कार्यभार अपने बेटे रण बहादुर को सौंप कर हरिद्वार चला गया। वहीं सन 1855 में रुद्रपाल की मृत्यु हो गई। इसके बाद सन 1855 से 1875 तक राणा रण बहादुर तथा सन 1875 से लेकर 1913 तक राणा दुर्गा सिंह रियासत के शासक रहें। राणा दुर्गा सिंह की मृत्यु के समय उनका पुत्र वीरपाल सिंह केवल सात वर्ष का था। अतः रियासत का कामकाज चलाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने एक कांउसिल का गठन किया। वीरपाल सिंह 1918 में गद्दी पर बैठा। सरकार ने उसकी उम्र को देखते हुए पंजाब से पंडित बसंत लाल को मैनेजर नियुक्त किया।

वीरपाल सिंह का जन्म 19 अप्रैल 1906 को हुआ। वह अपने पिता राणा दुर्गा सिंह का एक मात्र जीवित पुत्र था। वीरपाल सिंह ने अपनी पढ़ाई शिमला के विशप कॉटन स्कूल और फिर लाहौर स्थित ऐट्चिंसनज चीफज कॉलेज में अपने हमउम्र दूसरे राजकुमारों के साथ पूरी की। वह असाधारण रूप से एक तीक्ष्ण बुद्धि का छात्र था। 25 नवम्बर 1925 को उसकी शादी औल (उड़ीसा) रियासत की राजकुमारी सरत कुमारी से हुई। यद्यपि 19 मई 1913 को पिता राणा दुर्गा सिंह की मृत्यु के साथ ही वीरपाल सिंह गद्दी का उत्तराधिकारी बन गया था परन्तु सरकार ने उसकी बाल उम्र को देखते हुए 22 फरवरी 1918 को ही उसे सार्वजनिक रूप से गद्दी पर बैठाया। गद्दी पर आसीन करते हुए ब्रिटिश सरकार ने एक सनद के द्वारा वीरपाल सिंह को रियासत की स्वतंत्रता, सुरक्षा, शासकीय परिवार की गारन्टी और महारानी विक्टोरिया और ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार रहने को कहा गया था।

कहा जाता है कि उपरोक्त के अनुसार उसने अपने जीवन की शुरुआत एक बहुत ही वादेदार (वचन के पक्का इन्सान) व्यक्ति के रूप में की। वह एक अच्छा घुड़सवार, एक उत्कृष्ट पोलो खिलाड़ी, एक अच्छा राइफल निशानेबाज और उम्दा शिकारी था। महलों और रियासत के अन्दर तथा भ्रमण के समय वीरपाल सिंह शासकीय आदेशों से प्रायः विलासितापूर्ण और एक अतिविशिष्ट व्यक्ति वाली सामाजिक स्थिति वाले कपड़े पहनता था तथा अपने आसपास इसी प्रकार से साज सामान से घिरा रहता था। लेकिन धीरे धीरे वह विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा और फिर इसी माहौल में रहने का आदी हो गया तथा शराब और अन्य दूसरे नशों में डूबा रहने लगा।

अपनी इस प्रवृति के कारण वह रियासत के कामकाजों के प्रति लापरवाह होता गया और रियासत में असन्तोष फैल गया। लोगों के प्रति उसका व्यवहार इस कदर क्रूरतापूर्ण हो गया था कि स्थानीय जनता उसका नाम सुनते ही खौफ खाने लग जाती थी। लोग आज भी उसकी क्रूरता के किस्से बयां करते हैं।

इसी समय भज्जी के महलों के अन्दर सामान्य षड्यन्त्र रचे जाने लगे। जनता में फैले असन्तोष का कारण वीरपाल सिंह रियासत के मैनेजर पंडित बसंत लाल और महारानी को मानते थे।

गौबा लिखते हैं कि वीरपाल सिंह के अनुसार पंडित बसंत लाल और महारानी रियासत में असंतोष को इसलिये हवा दे रहे थे क्योंकि उसने (वीरपाल) महात्मा गांधी और कांग्रेस द्वारा चलाये जा रहे राष्ट्रीय आन्दोलनों में रुचि लेनी शुरू की थी। जब वीरपाल सिंह और उसके मैनेजर पंडित बसन्त लाल के बीच मतभेद चल रहा था ठीक उसी समय राणा और उसकी सबसे बड़ी रानी के सम्बन्ध भी तनावपूर्ण हो गये थे। इसका मुख्य कारण राणा वीरपाल के अनुसार ज्येष्ठ रानी, पंडित बसन्त लाल और बिहार की रियासत के राजा जो एक बड़े जागीरदार थे, उसे गद्दी से उतारना चाहते थे तथा इसके लिये षड्यन्त्र रचते रहते थे ताकि रानी अपने पुत्र राम चन्द्र पाल को भज्जी रियासत की गद्दी पर बैठा सके । बताया जाता है कि रानी और इस जागीरदार के आपस में काफी घनिष्ठ सम्बन्ध थे ।

अतः पृष्ठभूमि जो भी रही हो परन्तु यह मुख्य विस्मयकारी परिस्थितियों थी जब 8 सितम्बर 1940 को राणा वीरपाल सिंह ने अपने आप को रियासत से बेदखल और रिपन अस्पताल (शिमला) में भर्ती पाया । गौबा के अनुसार 'क्या 8 सितम्बर 1940 को भज्जी रियासत का शासक राणा वीरपाल सिंह पागल था ? और, जब छः महीने बाद गवर्नर जनरल के आदेश पर राणा को लाहौर के पागल अस्पताल में भर्ती /नजरबन्द किया गया तो क्या तत्कालीन लॉर्ड लिनलिथगो ने इस प्रश्न को हल करने के लिये अपनी बुद्धि का प्रयोग किया था या उसने अपने नाम का प्रयोग करने की अनुमति सहजभाव में प्रदान की थी जिस तरह प्रायः सरकारी आदेशों में की जाती थी? यह प्रश्न अनेक वर्षों तक न्यायालय को भ्रमित करते रहे, अनेक जटिल कानूनी कार्रवाइयों में जिनमें, राणा की मानसिक स्वस्थता और उसकी 1818 के बंगाल कानून-III के अन्तर्गत नजरबन्दी सम्बन्धी प्रश्न बार बार उठाये जाते रहे एवम् प्रश्नवाचक चिन्ह लगाते रहे ।

राजभवनों के अन्दर चलने वाले षड्यन्त्रों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना की मानव का। उत्तराधिकार की लड़ाई की परिणति के रूप में महाभारत जैसा भयानक युद्ध हुआ। परन्तु इस सबके बावजूद न तो आदमी के स्वभाव में कोई परिवर्तन आया और न ही इस प्रकार के षड्यंत्रों का रचा जाना रुका। षड्यंत्रों की इसी कड़ी के फलस्वरूप शिमला की पहाड़ी रियासतों में शामिल भज्जी रियासत भी अछूती नहीं रही।

गौबा लिखते हैं कि इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता कि 8 सितम्बर 1940 को भारत सरकार के अधीन पंजाब रियासतों के एसिसटेंट पोलिटिकल एजेंट ने सुन्नी के समीप डॉक बंगले में वायसराय के वार फंड की सदस्यता के लिये विचार करने के लिये बुलाया था। जहां उसे पंजाब रियासतों के एसिसटेंट पोलिटिकल एजेंट ने शराब पेश की जिसे वह ठुकरा न सका । राणा ने वहां एसिसटेंट पोलिटिकल एजेंट के साथ शराब पी और अपना होश खो दिया। इसके बाद उसे नालदेहरा लाया गया जहां से कार में डालकर शिमला लाया गया तथा कड़ी सुरक्षा के बीच रिपन अस्पताल में दाखिल किया गया। राणा को रिपन में 21 अप्रैल 1941 तक रखा गया। इस दौरान 10 और 26 सितम्बर को राणा द्वारा लाहौर उच्च न्यायालय में अपनी रिहाई के लिये हल्फनामा दायर किया गया। परन्तु इसी दौरान उसे पागल घोषित कर दिया गया। सबसे हैरान करने वाली बात यह है कि भारतीय स्वास्थ्य सेवा के डाक्टर कर्नल सर्गून फ्राई जो शिमला में नागरिक सर्जन के रूप में कार्यरत थे, को राणा का दिमागी मेडिकल चेक अप करने के लिये बुलाया गया जो उसके लिये अधिकृत नहीं थे। न ही उक्त डॉक्टर को यह बताया गया कि राणा ने शराब पी रखी है। न्यायालय में केस की जीरह के दौरान यह भी पता नहीं चल पाया कि डाक्टर को किसने बुलाया था। उधर आनन फानन में रामचन्द्रपाल सिंह को भज्जी रियासत का राणा घोषित कर दिया गया जबकि वह मात्र 12 वर्ष का था।

खैर क्योंकि राणा वीर पाल सिंह का मामला अब कानूनी पचड़े में पड़ गया था। अतः उसे अपने आप को निर्दोष साबित करने के लिये लगभग आठ वर्ष तक लड़ाई लड़नी पड़ी। 15 अगस्त 1947 को भारत आजाद हुआ। उसके बाद ही वीरपाल सिंह रिहा हो सका। गौबा लिखते हैं कि आठ साल बाद एक आजाद व्यक्ति की तरह राणा रिहा हुआ। राणा ने सरकार के विरुद्ध उसे अवैध रूप से हिरासत में रखने के लिये नोटिस दिया। परन्तु दुर्भाग्य ने राणा का पीछा नहीं छोड़ा और वह उसमें सफल नहीं हुआ। अन्ततः रिहाई के बाद राणा खुशी खुशी दिल्ली से वापस अपनी रियासत में आया जहां उसे रियासत के सैनिकों ने सीमा पर से ही वापस भेज दिया।

अन्त में वह शिमला में कैथू स्थित दुर्गावाड़ी नामक भवन में रहने लगा। जहां उसने एक गुमनाम जिंदगी जी । यह समय की ही चाल थी कि जिस बेटे को लेकर राणा वीरपाल सिंह और उसकी पत्नी / रानी के सम्बन्ध बिगड़ गये थे वीरपाल सिंह उसी से 400 रूपये मासिक पेन्शन लेकर गुजारा कर रहा था। ग्याणा निवासी हीरा सिंह भट्टी के अनुसार यहां वह अपनी पत्नी जो धामी से थी, के साथ रहता था जिससे उसके एक पुत्री पैदा हुई। अन्त में वह बहुत शक्की किस्म का हो गया था तथा अपने एकमात्र सेवादार श्याम सिंह के अलावा किसी पर भरोसा नहीं करता था। बेहद दयनीय दशा में राणा ने 17 नवम्बर 1961 को अपनी अन्तिम सांस ली।

मुख्यमंत्री कार्यालय -सी अनुभाग
हि. प्र. सचिवालय, एलर्जली बिल्डिंग, कमरा नं.-205
शिमला-171002, मो. 94180-33783

शिमला

विश्व मानचित्र पर पर्वतीय नगर

● श्रीनिवास श्रीकान्त

भारत के मानचित्र पर शिमला एक महत्त्वपूर्ण नगरीय जनपद है। इसका इतिहास करीब दो शताब्दी पुराना है जब हमारा देश एक उपनिवेश भर था। अंग्रेजों ने कलकत्ता और दिल्ली के बाद भीतरी हिमालय के इस सुलभ और प्रशासनिक दृष्टि से सामरिक बिंदु पर पहाड़ों के बीच इस शहर का निर्माण किया। वे एक ठंडे मुल्क के लोग थे और पश्चिमोत्तर में शिवालिक पर्वतीय शृंखला से कुछ ऊपर यहां की भौगोलिक स्थलीयता और जलवायुगत परिस्थितियां उन्हें समानुकूल नज़र आईं। वे भारतीय मैदानों की गर्मी से बौखला उठे थे। उन्हें यहां न सिर्फ सौम्य प्रकृति के दर्शन हुए बल्कि उस समय यह ऊंचाई हिमाचल के हिमपात की अंतिम रेखा भी थी।

वे कठिन पर्वतीय घाटियों को बामशक्कत और बानफ़री लांघते हुए श्यामला की इन सघन-सुंदर-वनीली पहाड़ियों तक पहुंचे थे। वे अपने अरबी-सैन्धव घोड़ों और बग्गियों में यहां आए थे और उनके साथ था पदातियों समेत एक साहसिक कारवां। उनके साथ लद्दू जानवर भी थे, उनके असबाव के लिए। वे सब यहां की रमणीय प्रकृति को पाकर प्रसन्न और आश्चर्यचकित थे। आरंभ में वे शिविरों में रहे। उनके साथ फौज भी थी। सीमावर्ती होने के कारण उन्हें यह बिंदु अवकाश और फौजी छावनी के लिए आदर्श नजर आया। यह एक आधार कैम्प था जहां से वे अपने उपनिवेशी साम्राज्य की सुरक्षा व देखरेख कर सकते थे। शिमला का निर्माण धीरे-धीरे और कारगर ढंग से हुआ। परिणामस्वरूप जो नगर वजूद में आया, उसे देखकर यह कहा जा सकता था कि यूरोपीय नगर का कोई स्थापत्य भूखंड ही तराशकर देवदारों के बीच धर दिया गया हो। अंग्रेज़ आक्रांता थे, शासक थे और उन्होंने मुगलबादशाही के दिल्ली में पतन के बाद अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। महज़ भारत में ही नहीं, पूरे एशिया महाद्वीप में उन्होंने विभिन्न देशों में अपना एकाधिकार जमाया था तथा कलकत्ता और दिल्ली के बाद शिमला उनकी एक वैकल्पिक ग्रीष्मकालीन राजधानी बना था। ईस्ट इंडिया कंपनी से सत्ता स्थापन तक शिमला भी इस सत्ताधर्मी कायांतरण का एक अंतरंग गवाह रहा है। अठारह सौ सत्तावन के गदर और गोरखा आक्रमण का प्रभाव तथा अंग्रेज़ों से उनकी भिड़ंत का विवरण इस समय के इतिवृत्तों में आपको सविस्तार मिलेगा।

> **यह एक बहुजातीय, बहुप्रांतीय और बहुसांस्कृतिक शहर है। यह एक ऐसा पर्वतीय नगर है जिसकी एकाधिक उपग्रही बस्तियां भी हैं। राज्य की सरकारों ने इसके वास्तविक परिष्कार (आर्किटेक्टोनिक्स) की ओर विशेष ध्यान दिया है और यह सभी बुनियादी आधुनिक सुविधाओं से पूरी तरह संपन्न है।**

यद्यपि साम्राज्यवादी इस ताकत ने हर स्तर पर देशवासियों का दमन किया है फिर भी उन्होंने अपनी प्रशासनिक सूझबूझ, शासन तंत्र के संचालन के ज़रिए हमें जो दिया, उससे हम आंखें नहीं फेर सकते। बेशक वह थी राजशी द्वारा समर्थित तथाकथित प्रजातांत्रिक व्यवस्था फिर भी एक नई और अत्याधुनिक यूरोपीय तहज़ीब के ज़रिए उन्होंने हर स्तर के कामकाजी देशिक वर्ग के लोगों को बेहतर ढंग से परिष्कृत भी किया। शिमला में अंग्रेज़ों के रहन-सहन और आचार-व्यवहार के भद्र किस्से आज तक गत पीढ़ियों द्वारा फख्र से बयान किए जाते हैं। कहना न होगा कि 'वन्स अपॉन टाइम' की यह तहजीबदारी अपने नकारात्मक प्रभावों के बावजूद, कुल

मिलाकर हमारे लिए सार रूप में फायदेमंद ही रही। हम इससे इनकार नहीं कर सकते।

यह दुर्भाग्य की बात है कि वे हमारे सामने अपने आपको ज्यादा कुलीन और तहज़ीबदार दिखाते रहे और उन्होंने हमारी भारतीय-पर्वतीय जीवन शैली को कमतर समझा और हमारे बीच वर्ग विभाजन भी किया। मगर उनके बुद्धिजीवियों, प्रौद्योगिकीविदों और प्रशासनज्ञों ने हमें बहुत कुछ सिखाया भी है। जहां तक शिमला नगर की बात है उन्होंने इस नगर को एक श्रेष्ठ यूरोपीय स्थापत्य, वास्तुविधान और कलात्मक वीथिकाओं और दीगर सांस्कृतिक गतिविधियों के संचालन के लिए खूबसूरत प्रेक्षागृह भी दिए। शिमला अंग्रेज़ों के समय से एक बहुजातीय और बहुवर्गीय शिष्ट शहर रहा है। यहां के शिष्टाचार के चर्चे न सिर्फ देशज श्रेष्ठ वर्ग में होते रहे हैं अपितु विश्वभर से आए गुणज्ञ और कलात्मक मेधा वाले वर्गीय लोगों में भी यह शहर अपना एक अलग मुकाम रखता है। आजादी के बाद के समय में इस शहर का नगरीय आयतन उत्तरोत्तर बढ़ा ही है। आबादी भी अब पहले से कहीं ज्यादा है। यह एक बहुजातीय, बहुप्रांतीय और बहुसांस्कृतिक शहर है। यह एक ऐसा पर्वतीय नगर है जिसकी एकाधिक उपग्रही बस्तियां भी हैं।

शिमला अंततः और विशेष रूप से अंतरिम घाटियों के प्रवासी वर्ग के लिए एक सुविधाजनक मार्गद्वार है जो अतीत में भी था और भविष्य में भी अपने नए आयामों में बहुधा सफल सिद्ध होगा।

राज्य की सरकारों ने इसके वास्तविक परिष्कार (आर्किटेक्टोनिक्स) की ओर विशेष ध्यान दिया है और यह सभी बुनियादी आधुनिक सुविधाओं से पूरी तरह संपन्न है। दुर्गम पर्वतीय स्थलीयता में जन- सुविधाओं से संपन्न शहर होना कोई आसान बात नहीं। प्रशासन द्वारा इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है कि नगर- बस्ती के वातावरण को ज्यादा-से-ज्यादा स्वच्छ, प्रदूषण रहित और अधिक-से- अधिक आरामदेह बनाया जा सके। पहले ज्यादातर सैलानियों की आमद गर्मी के मौसम में ही होती थी लेकिन अब यह शहर हर मौसम में पर्यटकों की गहमागहमी से भरपूर और आह्लादित नज़र आता है। प्रशासन ने यातायात के लिए पुख्ता इंतज़ाम किए हैं। नई अनेक संपर्क सड़कें भी बनी हैं जिनकी वजह से ट्रेफिक के बहाव को सहज और सुरक्षित बनाया जा सकता है।

उपनिवेशी दिनों में अंग्रेजों ने खासतौर पर अपनी जरूरत के मुताबिक शहर के उच्च पर्वतीय स्थलों पर अपने आमोद-प्रमोद और सैर-सपाटे के लिए प्रतिबंध और वर्जनाएं लागू की हुई थीं लेकिन अब सभी नागरिक अपनी-अपनी कमतर और बेहतर श्रेण्यता के बावजूद आराम से इन क्षेत्रों में घूम-फिर सकते हैं और बेहतरीन जन-सुविधाओं, प्रसाधनों आदि का उपयोग कर सकते हैं।

आजादी के बाद के दिनों में और विशेषकर, अवधि में माल रोड और उसके आस-पास पर्याप्त सुधार हुआ है। उच्च मार्गों का रखरखाव बेहतरीन है, हरगोशे में सफाई नज़र आती है। होटल, रेस्तरां और शो-रूम-दुकानें भी बेहतरीन क्वालिटी के सामान का विक्रय करती हैं। अंग्रेज़ों के समय के ऐतिहासिक गेयटी थिएटर का स्थानीय वास्तुकारों द्वारा भव्य स्तर पर सुधार और जीर्णोद्धार हुआ है। थिएटर की रंगशाला, कलादीर्घा, परिसंवाद स्थल, प्रदर्शनी के अहाते अब पहले से ज्यादा बेहतर और अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस नज़र आते हैं। यहां आप पूरे देश से आने वाले रंगमंचीय संगठनों, कलाकार प्रदर्शनियों और परिसंवादों को कार्यान्वित होते देख सकते हैं। शिमला में चित्र प्रदर्शनियों, संगीत गोष्ठियों व रंगमंचीय नाटकों के मंचन की परंपरा ब्रिटिश काल से रही है और यह परंपरा आज भी अपने व्यापक रूप में निरंतर क्रियान्वित है।

शिमला आज पुरानी ऐतिहासिक इमारतों और नए स्थापत्य के नमूनों का एक समन्वित नियोजन स्थल है। यद्यपि अंग्रेज़ों के समय की कुछेक महत्त्वपूर्ण भवन-कृतियां अब आकस्मिक आपदाओं के कारण वजूद में नहीं हैं फिर भी यहां अब भी बहुत कुछ ऐसा है जो बराबर अपनी यूरोपीय झलक देता रहता है। रवेदार पत्थर की टीनी लाल छतवाली दर्जन से भी ज्यादा इमारतें अर्थात् प्रशासनिक भवन, गिरजाघर और घड़ी मीनार आज भी अपनी पुरानी छवि साकार करते हुए दिखाई देते हैं। सुना है आने वाले समय में यातायात की बढ़ती हुई आमदोरफ्त की वजह से इस शहर के लिए केबल-सुविधा की एक वृहद् योजना भी प्रस्तावित है और साथ ही शहर की भीड़भाड़ और यातायात को सहज आवागमन योग्य बनाने के उद्देश्य से सुरंग पथों का निर्माण भी होगा।

शिमला, हिमाचल के समग्र विकास के शाना-ब-शाना अपने व्यापक विस्तार की ओर निरंतर अग्रसर है। भारतीय संघ के मानचित्र पर आने वाले समय में यह एक ऐसा पर्वतीय महानगर होगा जो आगंतुकों अर्थात् आनंद चाहने वाले श्रेण्य पर्यटकों, अन्वेषी प्रवासियों, प्राकृतिक जीवन के इतिहासकारों, कलाकारों के लिए विविध सुविधाओं व संभावनाओं से भरा एकमात्र हिमालय क्षेत्र का एकमात्र पर्वतीय महानगर होगा। 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' और यह कहावत शिमला पर भी हू-ब-हू सही बैठती है। जैसे-जैसे जरूरतें बढ़ेंगी सुविधाओं का भी सत्वर सृजन होगा। गत कालांतर के अनुभव यह बताते हैं कि सहज-सहज पकता रहेगा तो वह लजीज भी होगा। शिमला अंततः और विशेष रूप से अंतरिम घाटियों के प्रवासी वर्ग के लिए एक सुविधाजनक मार्गद्वार है जो अतीत में भी था और भविष्य में भी अपने नए आयामों में बहुधा सफल सिद्ध होगा।

पूजा अपार्टमेंटस, संदल हिल्ज, चक्कर,
शिमला-171 005, दूरभाष : 0177 2633272

भारतीय उपमहाद्वीप में

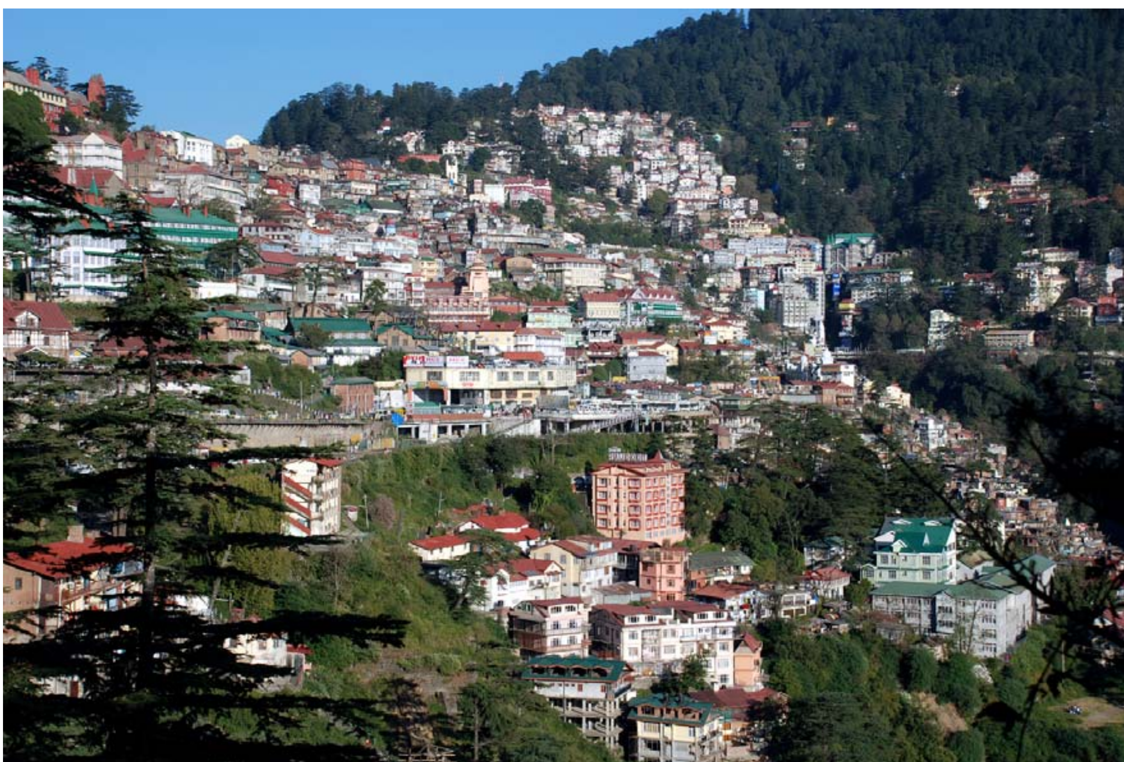
ऐतिहासिक शहर का उदय

● जया चौहान

कोई भी शहर अपने बहुआयामी इतिहास के कारण महत्त्वपूर्ण होता है। शिमला शहर का इतिहास भी 150 वर्ष पुराना हो चुका है। इस शहर के श्यामला से शिमला नामकरण के बारे अनेक अद्भुत कहानियां (जनश्रुतियां) हैं लेकिन तथ्यों के आधार पर इस शहर का वास्तविक इतिहास औपनिवेशिक शासकों के यहां पर आगमन से शुरू होता है। औपनिवेशिक शासकों से पूर्व यह क्षेत्र राणा क्योंथल और महाराजा पटियाला के अधिकार में था। 1814-16 के गोरखा युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने सैनिक टुकड़ियों के सुरक्षित जगह पर आराम के लिए अपनी सैनिक पोस्टों को इस क्षेत्र में स्थापित करने की योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेज अपने परिवारों सहित बिना कोई मूल्य चुकाए यहां की जमीन पर आकर रहने लगे। सबसे पहले 1819 में लै. रॉस को पहाड़ी राज्यों का पॉलिटिक एजेंट बनाया गया जिसने यहां एक आवासीय कुटीर बनाई। 1822 में मेजर कैनेडी यहां आए। उन्होंने 1824 में यहां एक स्थायी आवास का निर्माण करवाया जिसे कैनेडी हाउस के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में इस स्थल पर नवनिर्मित भवन में हिमाचल विधान सभा है। 1830 तक जब अंग्रेजों को यहां पर और अधिक आवासीय भवनों की आवश्यकता महसूस हुई तो उन्होंने अपने राजनीतिक सलाहकार को भूमि अधिग्रहण के लिए राणा क्योंथल और महाराजा पटियाला से वार्तालाप करने के आदेश दिए। बातचीत के बाद लॉर्ड बैंटिक द्वारा राजा क्योंथल से 13 गांव तथा महाराजा पटियाला से सात गांवों की लगभग चार हजार एकड़ भूमि का कानूनी तौर पर अधिग्रहण इस शहर को बसाने के लिए किया गया। उन्नीसवीं सदी के अंत तक शिमला की सात पहाड़ियों पर ट्यूडर, नव गौथिक, अंग्रेजी-रेनेसां आदि मिश्रित वास्तु शैलियों के भवनों के निर्माण की होड़-सी लग गई थी जो औपनिवेशिक काल के बेजोड़ स्मारक है। इसके साथ ही सड़कों का जाल भी बिछना शुरू हुआ। वायसराय जॉन लारेंस ने 1864 में शिमला को तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की ग्रीष्मकालीन राजधानी घोषित कर दिया। उस समय पूर्व में बर्मा (वर्तमान म्यांमार) से लेकर पश्चिम में अफगानिस्तान तक प्रशासन का नियंत्रण यहीं से होता था। एक ओर औपनिवेशिक शासक और अधिकारीगण यहां से अपने दक्षिण एशियाई उपनिवेशों का राज-काज चलाते रहे वहीं दूसरी ओर यह शहर अंग्रेजी ऐश्वर्य का प्रतीक भी बनता जा रहा था। अंग्रेजों ने सत्ता के साथ-साथ अपने लिए भी इस शहर में स्कीइंग, स्केटिंग, जिमखाना क्लब मनोरंजन के साधन जुटाए। एन्नाडेल (अनाडेल) जिमखाना क्लब में पोलो, घुड़सवारी और क्रिकेट के मैच होते थे। अर्थात् धीरे- धीरे इस छोटे से पहाड़ी क्षेत्र में साम्राज्यवाद का वैभव पसरने लगा। प्रारंभ में यह शहर बीमार अंग्रेज सैनिकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण सैनेटोरियम के तौर पर था। पर्वत शृंखलाओं के बीच सिमटे इस शहर पर प्राकृतिक मनोरम भू-दृश्य के कारण समूचे उपमहाद्वीप की शक्ति और सम्पदा समर्पित थी।

लगभग अस्सी वर्षों तक इस शहर का इतिहास ब्रिटिश हुकूमत और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ा रहा। यह शहर न केवल अपने औपनिवेशिक शासन तथा विलायती जीवन शैली और उस समय में निर्मित भवनों के लिए प्रसिद्ध है अपितु भारत की स्वतंत्रता से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण निर्णयों का साक्षी भी है। यूं तो 1857 से ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की गूंज इस शहर और यहां के पहाड़ों को गर्माने लगी थी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लगभग सभी मुख्य राष्ट्रीय नेता शिमला आते रहे। महात्मा गांधी राजनीतिक कारणों से कई बार शिमला आए। सर्वप्रथम 1921 में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड रीडिंग से मिलने ट्रेन द्वारा समरहिल स्टेशन पहुंचने पर भारी जनमूह ने उनका स्वागत किया। इसके बाद इंग्लैंड में प्रसिद्ध गोलमेज कांफ्रेंस में भाग लेने से पूर्व जवाहर लाल नेहरू सरदार वल्लभ भाई पटेल, खान अब्दुल गफ्फार खां के साथ शिमला आए। तत्पश्चात् 1945 तथा 1946 में महात्मा गांधी का शिमला आना हुआ। गांधी जी शिमला आने पर समरहिल में 'मनोर विला' जो कपूरथला (पंजाब) की राजकुमारी अमृत कौर की रिहाइश थी, में ठहरा करते थे।

कहने का तात्पर्य है कि स्वतंत्रता आंदोलन ने अंग्रेजों की



शिमला का एक नयनाभिराम दृश्य

इस ग्रीष्मकालीन राजधानी और मजबूत गढ़ को भी अपने असर से अछूता नहीं रखा। स्वतंत्रता पर देश के किसी भी कोने में उठने वाले मुद्‌दों पर विचार-विमर्श का केंद्र यही शहर बनता था। दिग्गज कांग्रेसी नेता जनता की राय लेकर अकसर यहां आते रहते थे। सन् 1945 की 'शिमला कांफ्रेंस' उस समय की महत्त्वपूर्ण घटना थी। कहा जाता है कि कैबिनेट मिशन ने भारत बंटवारे का मसौदा भी यहीं तैयार किया था।

1947 से लेकर 1967 तक केंद्र शासित प्रदेश (हिमाचल) का यह शहर शांत बना रहा। 1967 में इसे हिमाचल में शामिल किया गया। 1971 में जब हिमाचल को पूर्ण राज्यत्व का दर्जा मिला और शिमला राज्य की राजधानी बनी तो फिर से शहर में राजनीतिक और उन विकासात्मक गतिविधियों की शुरुआत हुई जो एक राज्य की राजधानी के लिए अपेक्षित थी।

3 जुलाई, 1972 को भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और पाकिस्तानी प्रधान मंत्री जुल्फिकार अली भुट्‌टो के मध्य हुए ऐतिहासिक 'शिमला समझौता' से एक बार पुनः यह शहर विश्वव्यापी चर्चा में आया।

शिमला न केवल अंग्रेजी हुकूमत, भवनों और राजनीतिक घटनाओं का साक्षी रहा है अपितु इस शहर ने सदा से अपनी आबोहवा, मनोरम दृश्यवलियों और प्राकृतिक सौंदर्य की अनुपम छटा से देश-विदेश की महान शख्सीयतों को आकर्षित किया है जिनमें प्रख्यात लेखक और नोबेल पुरस्कार विजेता रुडयार्ड किपलिंग जो 1883 में प्रथम बार लाहौर से छपने वाले अखबार 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' के युवा संवाददाता के रूप में शिमला आए। बाद में कई वर्षों तक परिवार के साथ गर्मियों में शिमला आते रहे। उन्होंने अपने लेखों में शिमला में इनसानों के साथ इस शहर के बंदरों तक का चरित्र-चित्रण करके लोगों के लिए शहर को रुचिकर स्थान का दर्जा दिलवाया। प्रसिद्ध पत्रकार रस्किन बांड, भारतीय आधुनिक चित्रकला में अपनी छाप छोड़ने वाली विश्व प्रसिद्ध कलाकार अमृता शेरगिल, शिमला 'पास्ट एंड प्रेजेंट' के लेखक इ. जे. बक, पाकिस्तान के भूतपूर्व राष्ट्रपति जनरल जिया-उल-हक, अफगानिस्तान के राष्ट्रपति हामिद करजई का इस शहर से नाता रहा है। देश के साहित्य कला तथा संस्कृति से जुड़े लोगों के लिए शिमला प्रारंभ से ही आकर्षण का केंद्र और साहित्य सृजन की कर्मस्थली रहा है। स्वतंत्रता पूर्व से ही अखिल भारतीय स्तर के सम्मेलनों में 1938 का शिमला का लेखक सम्मेलन एक ऐतिहासिक घटना है।

आज शिमला एक प्रसिद्ध पर्यटन स्थल के रूप में विश्व मानचित्र पर अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है। प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर यह पहाड़ी शहर अब पुरातात्त्विक महत्त्व का धरोहर नगर भी है।

द्वारा श्री साहिल चौहान, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, रोहड़ू, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 207, मो. 98160 06154

विलायती प्रतिछाया का प्रतीक

• डॉ. सत्यनारायण स्नेही

पहाड़ों की रानी शिमला वैदिक ऋचाओं के स्तवन और पुराणों की रचनास्थली, भारतीय मूल संस्कृति के उद्‌गम स्थल युग-युगीन से हिमालय के आंचल में बसे हिमाचल प्रदेश की राजधानी है। आज यह शहर हिमाचल की शान एवं पहचान है। शिमला एक नगर एवं राजधानी के रूप में अस्तित्व में आने से पूर्व इसकी स्थापना एवं विकास का एक लंबा एवं महत्त्वपूर्ण इतिहास है। इस नगर की स्थापना एवं विकास जिन अंग्रेज शासकों ने किया, वह स्वयं तो यहां से चले गए लेकिन उनकी विलायती प्रतिछाया से यह शहर न तो आज तक मुक्त हो पाया और भविष्य में मुक्त होने की संभावना भी नहीं है। शायद ही भारत के किसी अन्य शहर का इतना विलायतीकरण हुआ हो, जितना शिमला का हुआ है। बान और देवदार के घने जंगलों से लदी पहाड़ियों की सुंदरता के मोहपाश में बंधे अंग्रेज अधिकारी लै. रॉस ने सन् 1819 में इन पहाड़ियों में बसने का निश्चय किया और लकड़ी और घास-फूस की झोंपड़ी बनाई। रौस का स्थानापन्न मेजर कैनेडी ने किया जिन्होंने यहां आकर धज्जी- दीवारों वाली पहली इमारत बनाई। यह भवन कैनेडी हॉऊस नाम से बना। यद्यपि कुछ वर्षों बाद यह आग से ध्वस्त हो गया। परंतु बाद में बना कैनेडी हाउस आज भी इस नाम से जाना जाता है।

कैनेडी हाउस के निर्माण के साथ ही इस पौराणिक महत्त्व की पहाड़ी के विलायतीकरण की शुरुआत होती है। इसके बाद जो भी निर्माण हुआ, वह भी अंग्रेजी जो भी स्थान, सड़क अस्तित्व में आए, वह भी अंग्रेजी हो गए। श्यामला गांव के स्थान पर स्थित इस शहर का अंग्रेजीकरण 'सिमला' नाम से हो गया। शहर का ऊपरी भाग जो समतल था वह 'रिज' हो गया और साथ में मॉल रोड। इसी 'रिज' पर चर्च का निर्माण किया। ठीक इसी तर्ज पर जैसे पहाड़ी गांव एवं कस्बों के मध्य में मंदिर होता है। इसके साथ नगर का विकास हुआ, निचली तरफ लोअर बाजार तो बीच वाला मिडल बाजार बन गया। रिज और माल रोड पर भी 'स्कैंडल प्वाइंट' जैसे स्थान आज इस शहर की पहचान है। अंग्रेजों के दिए कुछ नाम इतने अप्रासंगिक हैं जिसका हिंदी रूपांतर नहीं किया जा सकता है। जैसे लौंगवुड, बालूगंज, स्प्रिंग फील्ड इत्यादि कई नाम है। अंग्रेजों के कब्रिस्तान को समीट्री कहा गया। आज यह स्थान समीट्री रोड नाम से प्रसिद्ध है। जबकि भारतीय संस्कृति में कब्रिस्तान में रहना या उसका संकेत करना अशुभ माना जाता है। परंतु समीट्री रोड आज शिमला नगर का महत्त्वपूर्ण आबाद स्थान है। शिमला नगर के साथ बहते नाले का नाम 'चैडविक फॉल' रख दिया तो एक पहाड़ी समरहिल हो गई। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सिर्फ यही समरहिल है बाकी विंटर हिल। सुरंग का निर्माण हुआ तो 'विक्टरी टनल' बन गई और सड़क बनी तो वह कार्ट रोड।

शिमला नगर के साथ बहते नाले का नाम 'चैडविक फॉल' रख दिया तो एक पहाड़ी समरहिल हो गई। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सिर्फ यही समरहिल है बाकी विंटर हिल। सुरंग का निर्माण हुआ तो 'विक्टरी टनल' बन गई और सड़क बनी तो वह कार्ट रोड।

शिमला में बने भवनों की बात करें तो अंग्रेजों के जमाने में बने भवनों का अंग्रेजी में होना स्वाभाविक है परंतु यह अंग्रेजी मोह आज भी बरकरार है। एक तरफ 'वायसरीगल लॉज' और 'पीटरहॉफ' जैसे भवन हैं। तो 'गेयटी थियेटर' रिट्रीट, आर्म्सडेल, एलर्जली जैसे नाम शिमला की पहचान हैं। शिमला के रेस्तरां और होटल या ढाबों को ही लें तो वह भी अंग्रेजी नामों को उधार लेकर उठाए हुए हैं। माल रोड पर बालज़ीस, अल्फा, सोलिटेयर, फैसीनेशन, कॉफी हाउस आदि रेस्तरां और सरकारी या गैर सरकारी होटल सभी अंग्रेजी नाम से हैं। वह ग्रांड होटल, होलिडे होम, सिसिल, कैपिटल, सनराईज, ड्रीमलैंड जैसे नाम प्रचलित हैं। यहां तक कि जो नए शापिंग मॉल एवं भवन बने हैं, वह भी अंग्रेजियत से अछूते नहीं हैं। शिमला के तीन बड़े अस्पताल स्नोडन, लेडिरीडिंग और रिपन तीनों का हालांकि नामांतरण किया गया है परंतु ये नाम आज भी प्रचलित हैं। शिमला के प्रतिष्ठित स्कूल एडवर्ड, हैनॉल्ट, चैप्सली, ऑकलैंड, लॉरेट और सेक्रेट हॉर्ट, बिशप कॉटन स्कूल, सैंट बीड्स कॉलेज इस विलायतीकरण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। शिमला के माल पर लोगों की चहलकदमी के बीच जब हम शिमला का अवलोकन करते हैं, तो यह कतई एहसास नहीं होता कि हम भारतीय संस्कृति के उद्‌गम स्थल हिमालय के किसी नगर में विचरण कर रहे हैं। शिमला के स्थान एवं भवनों का जहां विलायतीकरण हुआ, वहीं अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति भी यहां कम प्रचलित नहीं है। यहां का काम-काज, चाल-ढाल और बोल-चाल किसी अंग्रेजी शहर से काफी मेल खाती है। पाश्चात्य सभ्यता लगातार बढ़ रही है। हिमाचल की राजधानी बनने के उपरांत भी शिमला को विलायती तौर-तरीकों से विकसित करने का प्रयास किया गया है। चाहे वह विलायत जैसा नहीं हो पाया परंतु विलायत की प्रतिछाया का शहर शिमला संपूर्ण भारत में आज भी विलायतीकरण का एक बेमिसाल उदाहरण है।

सहायक प्रोफेसर हिंदी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रामपुर बुशहर, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश।

राजधानी का सफरनामा

• कर्नल जसवंत सिंह चंदेल

जिला शिमला का भू-भाग आदिकाल से ही ऋषि-मुनियों की तपोभूमि रहा है। इसके उत्तर में मराल डंडा पर्वत श्रेणी है। इस पहाड़ी के एक शिखर का नाम नारदी है। कहा जाता है कि नारद मुनि यहां से स्वर्ग को जाते थे और नारदी शिखर से ही वापस आते थे। रामपुर में परशुराम का मंदिर है। कहते हैं परशुराम के पिता ऋषि जमदग्नि ने रामपुर में तपस्या की थी। रामपुर से सात किलोमीटर दूर स्थित दत्तनगर का संबंध ऋषि दत्तात्रेय से माना जाता है। सैंज (ठ्योग) के समीप शाघड़ गांव में ऋषि शंखचूड़ का मैदान है। यह मैदान पांडवों ने बनाया था, ऐसा कहा जाता है। कुमारसेन में तुंगेश नामक पहाड़ पर ऋषि वशिष्ठ का मंदिर है।

शिमला जिला समुद्रतल से 900 मीटर से लेकर 4267 मीटर की ऊंचाई के मध्य बसा है। पर्वत श्रेणी महाशुधार और मराल की पश्चिमी ढलानों का जलप्रवाह सतलुज और पूर्वी ढलानों का जल टौंस नदी या यमुना नदी में मिल जाता है। 18वीं सदी तक यह भू-भाग क्योंथल रियासत का पहाड़ी भू- भाग था। यह स्थान लकड़ी के कोयले के लिए मशहूर था। वैसे इस जगह का उल्लेख सन् 1817 में स्काटलैंड के दो भाइयों जो सेना के अधिकारी थे, उनकी लिखी डायरी में मिलता है। इनके नाम थे ले. एलैग्जैंडर गेराड और पैट्रिक। सन् 1808-09 में अंग्रेजों और नेपाल से आए गोरखों में युद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद इस पहाड़ी इलाके का महत्त्व बढ़ा। गोरखों की हार के बाद अंग्रेजी सेना के अधिकारी अपने अवकाश के समय इंग्लैंड जाने के बजाय शिमला में आकर रहने में ज्यादा लुत्फ लेने लगे। लार्ड ऐम्हर्स्ट सन् 1823 से 1828 तक भारतवर्ष का गवर्नर जनरल था। उसके 1827 में शिमला का दौरा किया और कहते हैं कि दो महीनों तक वह कैनेडी हाउस में ही रहा था। शायद बहुत से कारणों में से गवर्नर जनरल का शिमला में दो माह तक रहना, शिमला भारतवर्ष की गर्मियों की राजधानी बनने का कारण बना। 1828 में लार्ड विलियम कैवेडिश बैंटिक भारत के गवर्नर जनरल बने। उनके लिए शिमला में एक नया बंगला बनाया गया था। सन् 1827 में ब्रिटिश सेना प्रमुख लार्ड कैम्बरमियर भी शिमला आए थे जिन्होंने जाखू पहाड़ी के चारों ओर पांच किलोमीटर सड़क बनवाई थी। इसके साथ-साथ शिमला के समीप बसे जतोग, सुबाथू, डगशाई, सनावर, सोलन और रवाड़ी-ढाढ़ी के गांव भी अंग्रेजों ने शिमला में मिला लिए। रिज़ के उत्तरी किनारे पर क्राईस्ट चर्च सबसे पहले सन् 1834-35 में घास-फूस से तैयार किया गया था। 9 सितंबर 1844 को यहां पर नए गिरजाघर की नींव रखी गई क्योंकि 1843 के भूकंप में पुराना गिरजाघर गिर चुका था। 10 जनवरी 1857 के दिन इस नए गिरजाघर में पहला प्रवचन हुआ था। शिमला नगर का जन्मदाता कैप्टन चार्ल्स प्रैट कैनेडी को माना जाता है। शिमला नगर का मास्टर-प्लान इसी कुशल इंजीनियर ने तैयार किया था। 1830 में 100 घर और 1881 में यहां पर लगभग 1140 घरों का निर्माण हो गया था। उस समय दो सगे भाई कर्नल जॉन बायलु और हैनरी बायलु इंजीनियर थे। उन्हीं के नाम पर बालूगंज बसा कर उसका नाम बालूगंज पड़ा। शिमला अंग्रेजों की सेना का मुख्यालय रहा। सन् 1845 में बैरेट एंड कंपनी ने शिमला बैंक की स्थापना की। आज का ग्रैंड होटल उस समय शिमला बैंक की बिल्डिंग थी। लार्ड डलहौजी 1849 में भारतवर्ष का गवर्नर जनरल बना। कालका-शिमला सड़क और संजौली में 560 फुट लंबी सुरंग 1860 में तैयार हुई। सन् 1847 से 1852 तक शिमला के उपायुक्त एडवर्ड थे जिन्होंने शिमला में सेंट्रल स्कूल की स्थापना की। **एडवर्ड ने ही 1851 में सात सदस्यों वाली शिमला नगर पालिका का गठन किया था।** सन् 1882 में रिपन अस्पताल का काम शुरू हुआ और 14 मई 1885 को वायसराय लार्ड डफरिन ने इस अस्पताल का उद्‍घाटन किया। 1863 में बिशप काटन स्कूल के भवन की नींव जतोग में रखी गई। 1866 में इसे वर्तमान स्थान पर लाया गया। सन् 1890 में सेना प्रमुख जनरल फ्रेडरिक ने अपना भवन बनवाया जिसका नाम स्नोडन रखा गया। बाद में इसी भवन में अस्पताल बना। आज इसे इंदिरा गांधी मेडिकल कॉलेज के नाम से जाना जाता है। सन् 1906 के दिसंबर माह में शिमला में ही सर आगा खां के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। 11 मई 1921 को महात्मा गांधी पहली बार शिमला आए और समरहिल में शांति कुटीर में ठहरे थे। सन् 1925 में कौंसिल चैंबर का निर्माण हुआ जो आज विधान सभा भवन है। 30 अप्रैल 1948 को हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने पर शिमला के फोरेन ऑफिस बिल्डिंग में राजधानी बनाई गई। 5 मई 1957 के दिन यह भवन जल गया। बाद में सचिवालय कैनेडी हाउस में बनाया गया।

एक सितंबर 1972 को महासू जिले को समाप्त करके शिमला और सोलन को जिले बनाए गए। 1952 में सत्यानंद स्टोक्स ने सबसे पहले उत्तम किस्म के सेब के पौधे इस क्षेत्र में लाए थे। आज शिमला का सेब जग प्रसिद्ध हो गया है। सेब के अलावा पलम, अखरोट, बादाम, च्यूली, अंगूर व नाशपाती फलों का भी यहां उत्पादन हो रहा है। आलू उत्पादन में शिमला जिले का पूरे हिमाचल में प्रथम स्थान है।

बॉडी गार्ड हाउस कलोल, डाकघर कलोल, जिला बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश-174035, मो. 94184 25568

ऐतिहासिक समझौतों का गवाह

● हंसराज भारती

उस समय अंग्रेज साम्राज्य अपने शिखर पर था। पूरी दुनिया में अंग्रेजों का डंका बजता था। यूं कहिए वे इसे अपने पक्ष में बजाना और बजवाना जानते थे। 1849 में अंतिम भारतीय रियासत पंजाब भी अंग्रेजी साम्राज्य का हिस्सा बन गई। उन दिनों भारत की सीमाएं अफगानिस्तान से लेकर बर्मा तक थीं। इस दृष्टि से शिमला की भौगोलिक स्थिति अति महत्त्वपूर्ण थी। मध्य एशिया, चीन, तिब्बत सब पर यहां से नजर रखी जा सकती थी। वर्ष 1864 में यह नगर ब्रिटिश शासकों की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनने से लेकर 1947 तक भारत की तकदीर को बदलने, बनाने के कई महत्त्वपूर्ण फैसलों का गवाह बना । 1947 के बाद भी कई ऐतिहासिक समझौते भी शिमला में ही संपन्न हुए। वर्तमान शिमला के स्थान पर पहले यहां श्यामला गांव का कुछ भाग क्योंथल के राणा और पटियाला (पंजाब) के राजा के अधिकार क्षेत्र में आता था। इस क्षेत्र को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में लेने के लिए स्थानीय राजाओं के साथ एक समझौता किया जिसके तहत वर्ष 1830 में अंग्रेजों की ओर से पॉलिटिकल एजेंट ने क्योंथल के राणा से 13 गांव और पटियाला के राजा से 7 गांव क्रमशः 987 रुपये तथा 245 रुपये की वार्षिक राशि के बदले प्राप्त किए। शिमला के साथ भारतीय इतिहास की कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएं जुड़ी हैं जिनके कारण शिमला का ऐतिहासिक महत्त्व बढ़ा है। इनमें प्रथम महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक समझौता 3 जुलाई, 1914 को शिमला में संपन्न हुआ जिसमें चीन, तिब्बत और ग्रेट ब्रिटेन के मध्य समझौता हुआ जिसे 'शिमला कनवेनशन' कहा जाता है। इस समझौते के तहत तिब्बत को प्रभुसत्ता संपन्न देश माना गया था। भारत और चीन के बीच सीमा निर्धारण करने वाली मैकमहन लाइन के विषय में भी शिमला में अप्रैल 1914 में समझौता हुआ था। दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना जून 1945 में भारत की आजादी की मांग के संदर्भ में थी। यह 'शिमला कांफ्रेंस' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें देश के 21 प्रतिनिधि मंडलों ने भाग लिया था। कांग्रेस और मुस्लिम लीग प्रमुख दल थे। जिन्नाह ने इस कांफ्रेंस में मुस्लिम लीग की ओर से भाग लिया था। तीसरा संदर्भ जो ऐतिहासिक होने के साथ-साथ भारतीय पक्ष की ओर से राजनैतिक तौर पर भी विशेष महत्त्व का है। इतिहास में 'शिमला समझौता' (शिमला एग्रीमेंट) के नाम से प्रसिद्ध यह समझौता भारत और पाकिस्तान के मध्य जुलाई 1972 में हुआ था। स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह विशेष है। यह समझौता दोनों देशों के आपसी मसलों को द्विपक्षीय बातचीत के माध्यम से हल करने पर जोर देता है। 1971 के भारत-पाक युद्ध के बाद भारत ने पाकिस्तान के 93 हजार फौजियों को कैदकर लिया था। इस समझौते के बाद भारत ने ये कैदी छोड़ दिए थे। भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और पाक राष्ट्रपति जुल्फिकार अली भुट्टों के मध्य संपन्न हुआ था।



राजभवन के शिखर सभागार में वह ऐतिहासिक मेज जहां भारत-पाकिस्तान के मध्य वर्ष 1972 में शिमला समझौता हुआ

बसंतपुर, तहसील सरकाघाट, जिला मण्डी, हि. प्र.-175 042, मो. 98163 17554

जन चेतना

पहाड़ों में स्वाधीनता का अलख
राष्ट्रपिता का शिमला आगमन

• प्रो. प्यार सिंह ठाकुर

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जब 1920 में असहयोग आंदोलन के माध्यम से स्वाधीनता की जंग छेड़ी थी तो भारत की तमाम जनता ने भांप लिया था कि उन्हें अब उनका नायक मिल गया है। यह नायक सत्य का पुजारी और अहिंसा की लड़ाई लड़ने वाला था। 1920 के बाद ब्रिटिश सरकार की जड़ें खोखली होती जा रही थीं। गांधी जी के नेतृत्व में हर दिन अंग्रेजी शासन तंत्र के खिलाफ आंदोलन हो रहे थे। शिमला में महात्मा गांधी के आने से पहाड़ों में स्वतंत्रता आंदोलन की गूंज और भी तीव्र हो गई थी। गांधी जी ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि वायसराय, अफसरों के साथ बातचीत व बैठकों के लिए शिमला आते थे। बैठकों व बातचीत का मुद्दा भारतीय स्वराज होता था जो 1947 में स्वतंत्र भारत के रूप में प्राप्त हुआ। उन दिनों जब गांधी जी शिमला में आते थे तो शिमला ब्रिटिश साम्राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी हुआ करती थी। शिमला से अंग्रेजों द्वारा भारत का राज-काज का तरीका महात्मा गांधी को बिलकुल भी पसंद नहीं था परंतु शिमला का मौसम बहुत पसंद था। उन्होंने कहा था, “प्रकृति ने शिमला को सबकुछ दिया है, वह तो पूरी तरह शिमला पर मेहरबान है।” महात्मा गांधी शिमला में पांच बार आए थे। यानी उन्होंने 1921, 1931, 1940, 1945 और 1946 में शिमला की यात्राएं की थीं। सन् 1921 में वे अपनी प्रथम यात्रा में 11 मई, 1921 को ट्रेन से शिमला पहुंचे और समरहिल रेलवे स्टेशन पर लोगों की भारी भीड़ ने गांधी जी का तहेदिल से स्वागत किया। महात्मा गांधी तत्कालीन वायसराय लॉर्ड रीडिंग से बातचीत करना चाहते थे। गान्धी के शिमला में प्रथम आगमन ने शिमला और आस-पास का सारा पहाड़ी क्षेत्र स्वतंत्रता के राष्ट्रव्यापी आंदोलन से जोड़ दिया था। गांधी जी जहां भी गए, लोग उनके दर्शनाभिलाषी होते गए। महात्मा गांधी ने ईदगाह मैदान में जब एक जनसभा को संबोधित किया तो हजारों की संख्या में लोग अपने प्रिय नेता को सुनने पहुंचे। उन्होंने महिलाओं की एक अलग महासभा को शिमला के आर्य समाज मंदिर में संबोधित किया। गांधी जी के नेतृत्व में शिमला में जन्मी कांग्रेस पार्टी पहाड़ी लोगों के लिए स्वतंत्रता आंदोलन का साझा मंच बन चुकी थी।

पहाड़ों की धमनियों में देशभक्ति का जज्बा दौड़ रहा था। गांधी जी ने शिमला से जाने के बाद लिखा, “मैंने शिमला के बारे में बहुत सुना था, पर देखा नहीं था। मैं हमेशा शिमला आना चाहता था, परंतु मेरे मन में संदेह था। मुझे लगता था कि मैं यहां शेष लोगों के बीच एक अलग आदमी की तरह लगूंगा।” उनकी सोच यह थी कि शिमला का नाम बड़ा है, यहां सभ्य लोग रहते हैं, अंग्रेज अफसर, लेखक-कवि, पढ़े-लिखे बुद्धिमान लोग रहते हैं। शायद, यहां के पहाड़ी लोग भी अंग्रेजीयत सीख गए होंगे। गांधी जी जैसा साधारण वेशभूषा वाला आदमी तो उन्हें पक्का देहाती लगेगा। परंतु महात्मा गांधी के लिए पहाड़ बेगाने नहीं थे और पहाड़ी लोगों के लिए गांधी जी अपने थे। स्थानीय लोगों ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया था। यहां के लोग गांधी जी के दीवाने थे। उन्होंने महात्मा गांधी की ‘जय’, ‘भारत का नायक’ के नारे लगाए। इन नारों की गूंज ब्रिटिश साम्राज्य के कानों तक पहुंच रही थी। सन् 1921 में महात्मा गांधी के साथ पं. मदन मोहन मालवीय और लाला लाजपत राय जैसे राष्ट्रवादी नेता भी शिमला पधारे थे। लाला लाजपतराय ने ‘तिलकराज स्वराज फंड’ के लिए चंदा एकत्रित करने के लिए शिमला के लोगों से अपील की थी। इस यात्रा के दौरान गांधी जी ने स्थानीय नेताओं को स्वतंत्रता आंदोलन व स्वराज के लिए काम करने का आग्रह किया और लोगों की समस्याएं सुनकर उनका हल करने का आश्वासन दिया। हिमाचल प्रदेश के सभी राष्ट्रवादी नेताओं से मुलाकात शिमला में की। दूसरी ओर वायसराय लॉर्ड रीडिंग के ए.डी.सी. तथा निजी सचिव ने महात्मा गांधी के लिए ‘शिमला कांफ्रेंस’ के पहले से ही इंतजाम किए हुए थे। वायसराय के सचिव ने लिखा था, “दूसरी चीज़ों के अलावा मुझे गांधी और नेहरू के लिए अलग- अलग आवास का इंतजाम करना है, वे दोनों एक में नहीं रहेंगे।” सचिव को पं. नेहरू के आने का भी अंदेशा था, पर वे नहीं आए थे। वायसराय के सचिव ने अपनी डायरी में आगे लिखा, “मैंने कल का पूरा दिन महात्मा गान्धी के साथ बिताया। मुझे उनका व्यक्तित्व आकर्षक लगा। वह उस आवास में नहीं ठहरे जहां मैंने बंदोबस्त किया था, वे रुके राजकुमारी अमृत कौर के घर (शांति कुटीर) में। और दूर-दूर से आए लोगों द्वारा अपने प्रिय नेता के सम्मान व स्वागत में लगाए गए नारे रात भर सुनाई देते रहते



शिमला आगमन के दौरान स्थानीय लोगों के बीच महात्मा गांधी

हैं।" महात्मा गांधी अंग्रेजी-कांफ्रेंस में भाग लेना नहीं चाहते थे, पर वे शिमला में ही रहे और कांग्रेसी नेताओं के लगातार संपर्क में रहे जिन्होंने इस कांफ्रेंस में हिस्सा लिया था। शिमला से भारत का राज-काज चलाने वाले अंग्रेजों के सख्त आलोचक थे महात्मा गांधी। शिमला में आने से पहले गांधी जी ने 1920 में कहा था कि ट्रेन में तीसरी श्रेणी के अतिरिक्त किसी अन्य श्रेणी से यात्रा नहीं करूंगा। उन्होंने कहा था कि मैं पहले दर्जे से यात्रा करके सामान्य जनता को उसी प्रकार अपना संदेश नहीं दे सकता, जिस प्रकार वायसराय शिमला की ऊंचाइयों से लाखों भारतीयों के दिल नहीं जीत सकता। गांधी जी शिमला से नहीं, बल्कि हसीनवादियों, स्वच्छ वातावरण में मस्ती कर रहे अंग्रेज हुक्मरानों की नीतियों, क्रूर कारनामों के सख्त आलोचक थे। फिर 1931 का दौरा आया। महात्मा गांधी 1931 की 'गोल मेज कांफ्रेंस' के लिए इंग्लैंड जाने से पहले वायसराय से बातचीत के लिए शिमला आए। इस दूसरी यात्रा के दौरान उनके साथ सरदार वल्लभभाई पटेल, खान अब्दुल गफ्फार खां और पं. जवाहरलाल नेहरू भी साथ थे, वायसराय से बैठक तो संतोषजनक रही लेकिन गोलमेज कांफ्रेंस में शामिल होकर निराशा ही हाथ लगी। इच्छित परिणाम सामने नहीं आया। ब्रिटेन की सरकार से झूठे आश्वासन और भारत को तोड़ने वाली जहरीली हवा आ रही थी। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हो गया था। इस युद्ध में ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों की अनुमति के बिना भारत को भी शामिल कर दिया था। ब्रिटिश सरकार को भारतीय लोगों व सेना की सख्त जरूरत थी। ब्रिटिश सरकार ने 1940 में 'अगस्त प्रस्ताव' की पेशकश की कि युद्ध समाप्ति के बाद भारतीयों को अपना संविधान, संसदीय शक्तियां, स्वराज आदि प्रदान कर दिया जाएगा। भारतीय नेताओं को ब्रिटिश सरकार की ये भविष्यवाणी वाली योजना स्वीकार न थी क्योंकि भारत को बिना अनुमति से विश्व युद्ध में धकेल दिया था। भारतीय युद्ध से पहले ये संवैधानिक, स्वराज चाहते थे जो अंग्रेजों को नामंजूर था। इस सिलसिले को लेकर वे फिर 1940 में विचार- विमर्श के लिए शिमला आए। दूसरी ओर मुस्लिम लीग ने जिन्नाह के नेतृत्व में सीधे तौर पर अलग पाकिस्तान की मांगकर दी थी। 1942 के नजदीक जापान की सेना भारत पर आक्रमण करने के लिए रंगून (बर्मा तक) तक पहुंच गई थी और ब्रिटिश भारत की हार निश्चित थी क्योंकि दूसरे ब्रिटिश कब्जे वाले उपनिवेशों में भी ब्रिटिश सेना बुरी तरह हार रही थी। अब गांधी जी के पास मौका था 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन और भारतीयों के लिए नारा था- 'करो या मरो'। ब्रिटिश सरकार पर भारी दबाव था। 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' (8 अगस्त, 1942) के नारे से प्रभावित होकर जापानी सेना ने भारत पर आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया। जापान की दुश्मनी ब्रिटेन से थी न कि भारतीय लोगों से।

गांधी जी को आशंका थी कि यदि जापान द्वारा भारत में अंग्रेजों के रहते आक्रमण किया गया तो अंग्रेजों के बाद दूसरी साम्राज्यवादी शक्ति के अधीन सदियों तक गुलाम रहना पड़ेगा तभी 'अंग्रेजों भारत छोड़ो', 'करो या मरो' का नारा देना पड़ा। इस समग्र आंदोलन से अब भारत को छोड़ने वाले थे अंग्रेज मगर भारत के टुकड़े-टुकड़े करके ताकि फिर से साम्राज्यवादी सत्ता का लाभ उठाया जा सके। गतिरोध चलते गए। फिर 14 जून, 1945 को लॉर्ड वेवेल ने अपनी योजना सार्वजनिक की थी और 25 जून, 1945 को 21 प्रतिभागी कांफ्रेंस के लिए वायसराय के निवास पर एकत्र हुए। 25 जून, 1945 को इस कांफ्रेंस में सर्वदलीय बैठक शिमला में लॉर्ड वेवेल की योजना के तहत बुलाई गई थी। लेकिन यह गतिरोधों के कारण असफल रही और 'मुस्लिम लीग' मुख्य कारण थी। ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने 1946 में भारतीय संविधान सभा की स्थापना के लिए देशी राज्य, ब्रिटिश भारत के प्रांतों का भारत संघ में विलय करना आदि समस्याओं का निदान करने के लिए एक 'कैबिनेट मिशन' भारत भेजा ताकि भारत संघ की सत्ता भारत को सौंपी जा सके लेकिन मुस्लिम लीग ने 'कैबिनेट मिशन' की योजना को ठुकरा दिया था और 16 अगस्त, 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' दिवस मनाया गया यानी खून-खराबा करना शुरू कर दिया जिसका अंत 1947 में भारत-विभाजन से हुआ। 1946 में महात्मा गांधी की यह शिमला की अंतिम यात्रा थी। 1931 में दूसरी बार गांधी जी शिमला आए तो उन्होंने पैदल चलना चाहा लेकिन पार्टी सदस्यों ने मना कर दिया कि वे भीड़ को नियंत्रित नहीं कर पाएंगे। इसलिए मोटरगाड़ी का प्रयोग किया गया।

सरकारी आवास, नजदीक मानसिक स्वास्थ्य अस्पताल, गांव बाग, डाकघर समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 005,
मो. 98175 51904

कला संसार

मानवीय संवेदनाओं की चित्रकार अमृता शेरगिल

• मधु

आधुनिक चित्रकला की कर्णधार प्रसिद्ध चित्रकार अमृता शेरगिल का शिमला के साथ गहरा संबंध रहा है। वह समरहिल में रहती थीं। यह माना जाता है कि उन्होंने अपने प्रसिद्ध चित्रों का निर्माण इसी आवास में किया। समरहिल में रेलवे स्टेशन से ऊपर इस भवन का नाम 'होम' (Holme) था। 'होम' का अर्थ है टापू। वास्तव में यह भवन एक स्वीडिश इंजीनियर ने अपने रहने के लिए बनाया था। कभी इस भवन के साथ स्वीमिंग पूल और सुंदर बागीचा हुआ करता था। कहा जाता है कि अमृता शेरगिल की मां के इस स्वीमिंग पूल में डूबने के बाद इसे बंद करवा दिया गया। वर्तमान में यह भवन हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के पास है।



वर्ष 1937 : शिमला स्थित अपने स्टूडियो में अमृता शेरगिल

यह सन् 1921 की बात है जब अमृता शेरगिल अपने माता पिता के पास रहने आई थी। अमृता के पिता उमराव सिंह शेरगिल एक सम्पन्न परिवार से सम्बन्ध रखते थे। इनके दादा ने अंग्रेज-सिख लड़ाई में सिखों का साथ दिया, अतः पैतृक गांव मजीठा में परिवार की सम्पत्ति जब्त कर ली गई। सन् 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों का साथ देने पर इनके पुत्र सूरत सिंह को जमीन वापिस दे दी गई। इनके छोटे पुत्र सुंदरसिंह मजीठिया ने चीनी की तीन मिलें लगा कर अपार सम्पत्ति अर्जित की किन्तु बड़े पुत्र उमराव सिंह शेरगिल अलग तरह के व्यक्ति थे। ये यूरोपीय तथा भारतीय पांच भाषाओं के जानकार थे। इन्हें हंगेरियन मेरी एटोनिटी से प्रेम हो गया जो सन् 1911 में महाराजा रणजीत सिंह की पौत्री के साथ पंजाब आई हुई थी। उमराव सिंह शेरगिल ने मेरी एटोनिटी से विवाह कर लिया और हंगरी चले गए।

अमृता का जन्म भी सन् 1913 में हंगरी में ही हुआ। इनकी एक दूसरी बहन का नाम इन्दिरा था जो इनसे दो साल छोटी थी। सन् 1921 में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान यह परिवार 1921 में शिमला के इस घर में आ गया। अमृता शेरगिल उस समय आठ वर्ष की रही होगी। उमराव सिंह शेरगिल ने अपने रहने के लिए समरहिल स्थित यह घर स्वीडिश इंजीनियर से खरीद लिया था। लकड़ी से निर्मित यह घर एक बहुत ही शांत वातावरण में अवस्थित था। अमृता पंजाबी पिता और हंगेरियन मां की संतान थी जिससे उसका आसपास के बच्चों से कोई संपर्क नहीं बन पाया। अतः वह घर में ही अकेली रहती थीं। मां उसे संगीत सिखाना चाहती थीं, अतः घर में ही पश्चिमी क्लासिक संगीत सिखाने की व्यवस्था की गई।

अमृता शेरगिल आरम्भ से ही स्वतन्त्र विचारों की स्वामिनी थी। अतः वह संगीत के स्थान पर ड्राईंग की ओर आकर्षित हुई। ड्राईंग के बाद वह वाटर कलर में काम करने लगी। उसे घर में पढ़ाने आने वाला अध्यापक भी चित्रकार था। अमृता को अपने आयाम खोजने में समय लगा और अंततः उन्होंने अपनी एक राह खोजी। और वह राह थी चित्रकार बनने की। अमृता की पेंटिग्ज में उदास और तनावपूर्ण चेहरों वाली ग्रामीण युवतियों के अक्स आने लगे।

अमृता को बारह वर्ष की आयु में कॉन्वेंट स्कूल में डाल दिया गया किंतु चर्च न जाने की स्थिति में उसे स्कूल से निकाल दिया



'हिल वूमेन' : अमृता शेरगिल की प्रसिद्ध पेंटिंग

गया। अब वह घर में संगीत, कविता तथा चित्रकला में व्यस्त रहने लगी। सन् 1924 के लगभग अमृता को फ्लोरेंस में एक स्कूल में डाला गया। इसके बाद पेरिस में आर्ट में प्रशिक्षण लेने से अमृता को रेखा और रंग में महारत हासिल हो गई। उसने मानवीय संवेदनाओं, भावनाओं का सहारा ले कर स्केच बनाने आरम्भ किए। उसे एक सिद्धहस्त कलाकार बनने की चाह थी।

1934 में अमृता पुनः भारत लौटी और 1938 तक शिमला में रहीं। कहा जाता है एक रात दोनों बहनों में झगड़ा हो गया। दोनों बहनें घर में अकेली थीं तो आपस में हुए झगड़े पर बहन इन्दिरा ने आधी रात को अमृता को घर से निकाल दिया। वह रात को कुछ मील चल कर अपनी मित्र हेलन के घर पहुंची। बचपन में, माता पिता के बीच मनमुटाव और मां का स्विमिंग पूल में डूब कर मरना, बहन से तकरार आदि कुछ घटनाएं थीं जिनका अमृता पर गहरा प्रभाव पड़ा होगा जो चित्रों में भी देखा जा सकता है।

शिमला के एकांत घर व आसपास के आकर्षक और शांत वातावरण ने अमृता के मन पर विशेष प्रभाव डाला। यहां की जलवायु, परिवेश और आकर्षक भू-दृश्य ने कलाकार पर अपना प्रभाव बनाया। वैसे भी शिमला उन दिनों समर केपिटल था, जहां देश और विदेशों से लोग आया करते थे।

कहा जाता है, शिमला में विदेशी माहौल होने के बावजूद अमृता बाहर जाने पर हमेशा साड़ी पहनती थीं। इनके चित्रों में भी साड़ी प्रायः देखने को मिलती है। अमृता की तूलिका से निकले चरित्र समाज के निम्न वर्ग से थे। यह चरित्र अपनी भावनाओं को छिपाने वाले, संवदेना से भरे हुए और तनावग्रस्त रहे हैं जो इनके चेहरों पर स्पष्ट झलकता है। शिमला में आवास के इन चार वर्षों में अमृता ने महत्वपूर्ण चित्रों का निर्माण किया। इनमें प्रमुख 'चाइल्ड लाइफ', 'हिल मेन', 'हिल वोमेन', 'ब्रह्मचारी', 'स्टोरी टेलर', 'अछूत', तथा 'फल बेचने वाली' आदि हैं। अमृता एक व्यवसायिक और मौलिक चित्रकार बनना चाहती थी, जो दूसरों से भिन्न हो और यह उसने करके दिखा दिया। वह मौलिक, वास्तविक और स्थायी अनुभवों और संवेदनाओं की चित्रकार बनना चाहती थी और यह उसके चित्रों से स्पष्ट झलकता है।

समाज में व्याप्त कुरीतियों, विवाह संस्था आदि के विरुद्ध जा कर अमृता ने एक अलग जीवन यापन किया और समाज की रूढ़ियों को तोड़ते हुए स्वच्छंदता की हद तक स्वतन्त्र जीवन जीया। एक रचनाशील और नये आयामों की तलाश में इन्होंने परंपरगत जीवन में त्याग अपने ढंग से अपनाया जिसे किसी हद तक उच्छृंखल भी कहा गया। इन्होंने प्रसिद्ध कला समीक्षक कार्ल खण्डालवाला को एक पत्र में लिख कर यह विचार प्रकट किए थे : "वास्तव में, मेरे विचार में, धार्मिक कला समेत सभी कलाएं यौन आनन्द के कारण अस्तित्व में आई हैं। ऐसा यौन आनन्द, जो मात्र शारीरिक हदों से ऊपर बहता है।"

अमृता शेरगिल भारतीय कला और मूर्तिकला से प्रभावित रहीं और भारत लौटने की चाह उनमें बराबर बनी रही। वे भारतीय कला की प्रशंसक रहीं। यद्यपि पिता उमराव शेरगिल नहीं चाहते थे कि वे भारत लौटें तथापि 1934 में भारत लौट आईं और शिमला में अपने माता पिता के साथ रहीं। उनका पं0 नेहरू के साथ भी पत्र व्यवहार रहा। नेहरू की ऑटोबायोग्राफी पर अमृता ने प्रशंसाभरा पत्र लिखा। उन्होंने लिखा कि वे सामान्यतः ऑटोबायोग्राफी को पसंद नहीं करतीं क्योंकि वे झूठी होती हैं। किन्तु नेहरू की ऑटोबायोग्राफी मुझे पसंद है क्योंकि उन्होंने यह लिखा है कि... .. जब मैंने समुद्र को पहली बार देखा....जबकि दूसरे कहेंगे कि जब समुद्र ने मुझे पहली बार देखा...।

अमृता शेरगिल, उन्नतीस वर्ष की अल्पायु में ही (1941) लाहौर में चल बसी जबकि उनसे कला जगत को और कलाकृतियों की अपेक्षा थी।

कृष्ण निवास लोअर पंथाघाटी शिमला-171009

ऐतिहासिक पल

नेहरू और शिमला



पं. जवाहर लाल नेहरू की पहचान एक संवेदनशील राजनेता की रही है। उनका खुद का जीवन ऐशोआराम में बीता लेकिन गरीबों के प्रति उनमें बेपनाह हमदर्दी थी। पहाड़ों के प्रति नेहरू में गजब का आकर्षण था। वह उन ब्रिटिश हुक्मरानों जैसे थे जिनका मन गर्मियों में पहाड़ों की तरफ भागता था। वह हिमाचल के कई पहाड़ी इलाकों में घूमें। अपने विदेशी दोस्तों को यहां के पहाड़ घुमाते। हिमाचल में मनाली उनकी पसंदीदा जगह थी। लेकिन कहते हैं शिमला उन्हें पसंद नहीं था। इसकी सबसे बड़ी वजह वे कुली थे जो रिक्शे पर सवारियों बैठाकर उन्हें अपने हाथों से खीचंते थे। 1945 में खान अब्दुल गफ्फार खां के साथ टहलते हुए उन्होंने देखा कि कैसे वही कुली ब्रिटिश राज में भी अपने रिक्शों पर तिरंगा लगाकर घूमते थे। पटेल की इन रिक्शों पर माल रोड घूमने की तस्वीरे हैं। लेकिन नेहरू खुद कभी इन रिक्शों पर नहीं बैठे। इस प्रथा को नेहरू मानवीय प्रतिष्ठा के लिए बेहद अपमानजनक मानते थे। शिमला को नापसंद करने का सिर्फ यही अकेला कारण नहीं था। उन्हें लगता कि यह शहर अंग्रेजों की नकल पर एक कस्बे की तरह बसा है। अपनी किताब लास्ट डेज ऑफ द ब्रिटिश राज में लियोनार्ड मोसले ने शिमला के प्रति नेहरू की वितृष्णा का जिक्र किया है। वायसराय ने तय किया था कि भारत पाकिस्तान के बीच बंटवारे की अंतिम बातचीत शिमला में होगी। वे 1947 की गर्मियों के दिन थे। वायसराय लेडी माउंटबेटन को लेकर कुछ दिन पहले शिमला आ गए थे। वह अपने साथ कोई 350 नौकर चाकर लाए थे। शिमला की ठंडी और ताजा हवा उनमें एक खास तरह की ऊर्जा भर देती थी। पंडित नेहरू भी अपने खास सलाहकार कृष्ण मेनन के साथ वायसराय के मेहमान बन गए। उन दिनों का जिक्र करते हुए लियोनार्ड ने लिखा- शिमला की शाम की तरह राजनैतिक संभावनाएं भी सुहानी लग रही थीं। पहाड़ की गोद में छिपे पगडंडी के रास्ते पर कैम्पबैल-जॉनसन के घर जाते हुए नेहरू ने वायसराय और उनकी पत्नी का साथ दिया। नेहरू का दिल खुला हुआ था। नेहरू ने साथ चलने वालों को बताया कि पहाड़ों पर चढ़ाई के वक्त किस तरह सांस और शक्ति में तालमेल बैठकर उसके अपव्यय को रोका जाता है। बच्चों के साथ वे कूदते रहे, बंदरों की तरह उछलकूद कर हंसते रहे। वायसराय भवन लौटते वक्त शिमला को देखकर उनके चेहरे पर सिर्फ एक वितृष्णा आई।

बेशक, ये आजादी के पहले का शिमला था। अंग्रेजों के जाने के साथ कई बुरी प्रथाएं उनके साथ चली गईं। कई अच्छी चीजें रह गईं जो अब तक बरकरार है। शिमला एक खूबसूरत शहर था और है। इसकी हवा में वैसी ही ठंडक और ताजगी अब तक आप महसूस कर सकते हैं। यही वजह है कि यह आज भी सबसे पसंदीदा हिल स्टेशन है। हम शिमला के गौरव को बरकरार रखें और यहां ऐसी कोई परम्परा शुरू न होने दें जिसे लेकर किसी के मन में वितृष्णा जन्म ले।

● दयाशंकर शुक्ल सागर

साभार : **अमर उजाला**, 14 नवंबर, 2014

कला साधकों की कर्मभूमि

• सुदर्शन

'बड़ी सरकार' की समर केपिटल शिमला देश-विदेश के अनेक नामचीन रंगकर्मियों, कलाकारों और चिंतकों की कर्मभूमि रही है। सन् 1887 में एतिहासिक गेयटी थियेटर के निर्माण के पश्चात 9 जून 1887 को प्रथम नाटक 'टाइम विल टेल' के खेले जाने के बाद यहां रंगकर्म की नींव पड़ गई। इस नाटक के किरदार थे कर्नल स्टीवर्ट, कर्नल हैंडर्सन, कैप्टन संडाल, डेविस, मिस कार्टर और मिस फ्लेचर। सन् 1888 में एमेच्योर ड्रामेटिक क्लब का गठन महत्वपूर्ण रहा। थियेटर के निर्माण और क्लब के गठन से यहां देश के नामी गिरामी रंगकर्मियों ने नाटक खेले। शिमला आरम्भ से ही कलाकारों का आश्रय स्थल बना रहा। किसी न किसी कारण से यहां प्रबुद्ध कलाकार बने रहे।

बहुत कम लोग जानते हैं कि हिन्दी सिनेमा में गायकी के सरताज कुंदन लाल सहगल(1904-1947) शिमला में रहे। वे यहां रेमिंगटन टाइप राइटर कंपनी में काम करते थे जिसका कार्यालय वर्तमान भागड़ा निवास, लिफ्ट के नजदीक था। सहगल शिमला के ए.डी.सी. के माध्यम से गेयटी थियेटर में अपने गीत सुनाते थे। इसी थियेटर में उन्होंने नाटकों में भी भाग लिया। शिमला वासी श्री ए.एन. वालिया के अनुसार गेयटी थियेटर में इनके अभिनय और गायन से प्रभावित हो कर झालावाड़ के महाराजा ने सहगल को माल रोड़ की फर्म 'रैंकन एण्ड कंपनी : ड्रेपर एण्ड टेलर्ज' से एक कीमती सूट सिलवा कर दिया। सहगल के साथ मास्टर मोहन, मास्टर अमरनाथ, मास्टर होमी भी शामिल होते थे। सहगल 1931 में कलकत्ता जाने से पहले तीन वर्ष शिमला में रहे। शिमला से जाने पर ही वे कलकत्ता में 'न्यू थियेटर्स' में भाग लेंगे जो उस समय सब से बड़ी फिल्म कंपनी थी। फिल्मों में आने के बाद भी सहगल शिमला आते रहे। सन् 1936 में काली बाड़ी हॉल में उन का एक शो हुआ जहां उन्होंने अपने गीत सुना कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया।

अभिनेता प्राण 1939 में माल रोड शिमला में 'देहली स्टूडियो' में सहायक कैमरा मेन के तौर पर काम करते थे। यहां से वे लाहौर गये और सन् 1941 में पंचोली फिल्मज की फिल्म 'खानदान' में नायक बने। नूरजहां इस में नायिका थी और मनोरमा खलनायिका। इसके बाद ये मुम्बई गये और खलनायक के तौर पर अपना मुकाम हासिल किया।

मात्र आठ वर्ष की वय में सागर निजामी की लिखी मात्र दो गजलों के गाने से लोगों का मन मोह लेने वाले मास्टर मदन (1927-1942) शिमला के लोअर बाजार में न्यू बुटेल बिल्डिंग में रहते थे। 28 दिसम्बर 1927 को जालंधर के खानखाना गांव सरदार अमरसिंह के घर जन्मे मास्टर मदन का अधिकांश समय शिमला में बीता। मास्टर मोहन उनके बड़े भाई थे। मास्टर मोहन ठुमरी और सबद के मंजे हुए गायक थे। आकाशवाणी दिल्ली से गायन के अतिरिक्त इनके 'गोरी गोरी बहियां', 'मोरी विनती मानो कान्हा रे', मन कही मन मा ही रही', 'चेतना है तो चेत लो', 'रावी दे परले', 'बागां बिच पींघा पइयां' छः रिकार्ड भी बने।

तीन वर्ष के होने पर ही मास्टर मदन में संगीत प्रतिभा नजर आने लगी थी। इन्होंने धर्मपुर सेनेटोरियम में अपने प्रथम कार्यक्रम में ध्रुपद शैली में गायन किया और 'हे शारदा नमन करूं' सुनाया तो कला पारखी दिल थाम कर बैठ गए। इसके बाद इन्होंने अपने बड़े भाई मास्टर मोहन के साथ कई तत्कालीन रियासतों में कार्यक्रम दिए। शिमला में सनातम धर्म स्कूल में पढ़ने के बाद इन्होंने दिल्ली से मैट्रिक और एफ.ए. किया। आकाशवाणी के प्रमुख कलाकार बनने के साथ इन्हें फिल्मों में भूमिका करने के न्यौते भी आए।

इनका अंतिम अखिल भारतीय स्तर का कार्यक्रम कलकत्ता में हुआ। राग बागेश्वरी में उद्‌भुत गायन के बाद उन्हें नौ स्वर्ण पदक देने की घोषणा की गई। कहा जाता है, इस सफल आयोजन के बाद

इन्हें किसी ने दूध में पारा खिला दिया जिससे ये बीमार रहने लगे। गर्मियों में इन्हें शिमला ले आए और 5 जून 1942 को इन की मृत्यु हो गई।

मास्टर मदन के बड़े भाई मास्टर मोहन गायन की दुनिया में एक मशहूर हस्ती थे जिनकी ख्याति चौदह वर्ष की उम्र में ही दूर दूर तक फैल गई। इनका जन्म भी जालंधर के खानखाना में प्रथम दिसम्बर 1914 को हुआ। इन्होंने पूरे भारत में अपनी गायकी की धाक जमाई और कई राजघरानों, महात्मा गान्धी, भारत के वायसराय, पंजाब के गवर्नर, सरकार की परिषद् के सदस्यों तक को अपनी गायकी का मुरीद बनाया।

मास्टर मोहन(1914-1975) तीस पैंतीस वर्ष तक शिमला में रहे। पिता सरदार अमर सिंह भारत सरकार में कार्यरत थे, अतः गर्मियों में छः महीने शिमला में रहा करते थे। शिमला के लोअर बाजार में बुटेल बिल्डिंग में अभी भी उनके बेटे रहते हैं। मास्टर मोहन ने गायकी दिल्ली के मोहन लाल देहलवी से सिखी। राणा कुनिहार ने अपने दरबारी गायक मास्टर गोपाल को अपने खर्चे पर मास्टर मोहन को सिखाने के लिए तैनात किया। मास्टर मोहन ने आठ वर्ष के होने पर हर बल्लभ संगीत में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। राजा जुनगा महेन्द्र सेन इन्हें गायन के लिए आमन्त्रित करते थे। इन्होंने मास्टर मोहन को कुसुम्पटी के समीप चौदह बीघे जमीन भेंट की। दस वर्ष की उम्र में ही 'द ग्रामोफोन कंपनी ऑफ इंडिया' ने इनके रिकार्ड बना लिए। मास्टर मोहन ने गेयटी थियेटर में भी अपने कार्यक्रम दिये। अपने छोटे भाई मास्टर मदन के देहावसान से दुखी हो इन्होंने बाहर कार्यक्रम देने बंद कर दिए और शिमला व आसपास ही रह कर तालीम देना शुरू किया।

फिल्म इंस्टीच्यूट पूना से अभिनय कोर्स किए राकेश पाण्डेय नाहन से है जिनके पिता भवानी दत्त पाण्डेय महाराज सिरमौर के गुरु थे। 9 अप्रैल 1946 को नाहन में जन्मे राकेश पाण्डेय को बचपन से ही नाटकों का शौक था। इन की पहली फिल्म 'आंसू बन गये फूल' थी जो सत्सेन बोस द्वारा निर्देशित थी।

मई 1912 को कुठाड़ में जन्मे मास्टर लच्छी राम (1912-1965) राणा कुठाड़ जगजीत चंद के यहां रहते थे। इनके पिता गणपत राम रियासत में कर्मचारी थे जिनका देहांत उस समय हो गया जब लच्छी राम मात्र छः सात वर्ष के थे। गढ़शंकर के उस्ताद बूटे खां कुठाड़ आते जाते रहते थे। राणा साहिब कुठाड़ ने इन्हें बूटे खां से तालीम दिलाई। बूटे खां के तीन शिष्यों कमला रानी तथा चौधरी अनंतराम में ये तीसरे थे। तालीम के बाद लच्छी राम ने गायन आरम्भ किया। उस समय की प्रसिद्ध कंपनी 'हिज मास्टर्ज वाइस' द्वारा इनके छः गाने रिकार्ड किए गए। इन गानों में दो गजलें, दो भजन और दो पहाड़ी गीत थे। इन्होंने एच. एम. वी. में लगभग नौ दस वर्ष काम किया।

मुबई में मास्टर लच्छी राम 'रणजीत मूवी टोन' में संगीत निर्देशक के तौर पर तैनात हुए और फिल्म मधुबाला के संगीत में सहयोजित रहे। इसके अतिरिक्त 'महारानी झांसी', 'अमीर', 'शहीदे आजम', 'भगत सिंह', 'दो शहजादे', 'रजिया सुलतान', 'मैं सुहागिन हूं' आदि फिल्मों में इन्होंने संगीत निर्देशन किया। 'मैं सुहागिन हूं' में संगीत देने के साथ वे संगीतकारों में पूर्णतया स्थापित हो गए किन्तु शीघ्र ही इनका मुम्बई में निधन हो गया।

मूक फिल्मों से अभिनय शुरू करने वालों में शिमला के पंडित विजय कुमार(1905-1977) का नाम उल्लेखनीय है। पंडित विजय कुमार का जन्म पंडित कांशी राम के घर शगीण में हुआ। इनका शिमला में घोड़ों का कारोबार था। शिमला में मैट्रिक करने के बाद महेन्द्रा कालेज से एफ. ए. और एस. डी. कॉलेज लाहौर से बी.ए. पास किया। स्कूल में आठवीं कक्षा में ही इन्होंने एक नाटक में अभिनय किया। शिमला के ए. डी. सी. तथा गेयटी थियेटर से भी इन्हें प्रेरणा मिली।

लाहौर में कॉलेज की पढ़ाई के दौरान ही इन्हें एक मूकचित्र 'दुख्तरे जमाना' में काम करने का अवसर मिल गया जिसके निर्देशक गोपाल कृष्ण मेहता थे। कॉलेज की पढ़ाई के बाद इन्होंने मुम्बई की ओर रूख किया और पहली फिल्म 'संजीव मूर्ति' की जो मूक नहीं थी। थियेटर से भी सम्बन्धित रहने के कारण इन्हें फिल्मों के कई प्रस्ताव आने लगे। इन की अगली फिल्म 'आजादी' आई जिसमें सहायक संगीत निर्देशक एस. डी. बातिश थे। इसके बाद 'अभागिन' में काम किया। इस फिल्म में नायिका कमलेश कुमारी थीं और इनके साथ पृथ्वीराज कपूर ने भी काम किया। एक अन्य फिल्म जिसमें ये नायक रहे 'शादी की रात' थी। इसके बाद 1936 में ये कलकत्ता चले गए और 'फिल्म कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया' के साथ 'सुनहरा सपना', 'हरि कीर्तन', 'मेरी आशा' फिल्में कीं। सुनहरा संसार फिल्म के लिए इन्होंने सत्रह गीत भी लिखे। इन्होंने मैगाफोन रिकार्ड कंपनी के लिए दो पहाड़ी गीत भी गाए। 'मेरी आशा' फिल्म के बाद पिता की बीमारी की खबर सुन ये कलकत्ता से घर वापस आ गए और पिता की लम्बी बीमारी के कारण वापिस नहीं जा सके। 1955 में आकाशवाणी शिमला की स्थापना के साथ वे इससे जुड़ गए।

रणधीर चौहान के पिता शिमला में 'साहिब सिंह एण्ड संज' में काम करते थे। यहीं से रणधीर चौहान स्कूली शिक्षा के दौरान भाग कर लाहौर चले गये। कुछ समय दिल्ली में आकाशवाणी मे भी काम किया। और अंततः मुबई जा पहुंचे जहां अभिनेता श्याम ने उन्हें फिल्मों में काम दिलवाया। उन्होंने 'किस्मत', 'चांदनी', 'पतंगा', 'हलचल', 'दाग' फिल्मों में चरित्र अभिनेता के रूप में काम किया। एक फिल्म 'गुनाहों का देवता' नाहन में भी फिल्माई गई। रणधीर

चौहान का जन्म भी नाहन में ही हुआ था। जन्म तिथि ज्ञात नहीं है। यह 1918 या 1919 हो सकता है। इन की मृत्यु 14 सितम्बर 1982 को हुई। फिल्म इंस्टीच्यूट पूना से अभिनय कोर्स किए राकेश पाण्डेय नाहन से है जिनके पिता भवानी दत्त पाण्डेय महाराज सिरमौर के गुरु थे। 9 अप्रैल 1946 को नाहन में जन्मे राकेश पाण्डेय को बचपन से ही नाटकों का शौक था। इन की पहली फिल्म 'आंसू बन गये फूल' थी जो सत्सेन बोस द्वारा निर्देशित थी। 'सारा आकाश' में भी ये हीरो रहे। इन्होंने कई भोजपुरी फिल्मों में भी काम किया ।

अभिनेता प्राण 1939 में माल रोड शिमला में 'देहली स्टूडियो' में सहायक कैमरा मेन के तौर पर काम करते थे। यहां से वे लाहौर गये और सन् 1941में पंचोली फिल्मज की फिल्म 'खानदान' में नायक बने। नूरजहां इस में नायिका थी और मनोरमा खलनायिका। इसके बाद ये मुम्बई गये और खलनायक के तौर पर अपना मुकाम हासिल किया। अभिनेता प्रेम चोपड़ा भी शिमला में रहे। उन की शिक्षा भागर्व कॉलेज में हुई। इससे पहले वह एस.डी. स्कूल में पढ़े। ये नाभा में रहते थे। इनके पिता स्थानीय नगरपालिका में थे। ये भी मुम्बई जा कर जाने माने खलनायक बने।

अमरीश पुरी भी शिमला के भार्गव कॉलेज में पढ़े। वे शिमला में नाटकों में भाग लेते थे। अमरीश पुरी, चमन पुरी और मदन पुरी तीनों शिमला में रहते थे। सतीश छाबड़ा, जो धर्मशाला जिला कांगड़ा के रहने वाले थे, ने लाहौर में फिल्म 'झुमके' में काम किया । इसके अतिरिक्त मुंबई में याकूब के निर्देशन में 'हर लास्ट डिजायर', जे. के. नंदा के निर्देशन में 'इशारा' और फिल्म 'नजारे' में काम किया। इन्होंने कई पंजाबी फिल्मों में नायक के तौर पर काम किया।

अमरीश पुरी भी शिमला के भार्गव कॉलेज में पढ़े। वे शिमला में नाटकों में भाग लेते थे। अमरीश पुरी, चमन पुरी और मदन पुरी तीनों शिमला में रहते थे। सतीश छाबड़ा, जो धर्मशाला जिला कांगड़ा के रहने वाले थे, ने लाहौर में फिल्म 'झुमके' में काम किया।

शिमला के बैज शर्मा, मैसी, अमरजीत और ऊना के बलवंत सिंह, नादौन के अर्जुन देव रश्क आदि ने भी फिल्मों में चरित्र अभिनेता के तौर पर कार्य किया। अमरजीत शिमला नगरपालिका में कार्यरत थे। सन् 1952 में इन्होंने देवानंद की 'नवकेतन फिल्म कंपनी' में शामिल हो कर 'जोरू का भाई', 'नौ दो ग्यारह', 'हम दोनों' और 'तीन देवियां' में संवाद और पटकथा लिखे।

जहां भरवाईं के बी. आर. इशारा, ठाकुरद्वारा पालमपुर के जुगल किशोर ने फिल्मों में पांव जमाए वहां, जयसिंहपुर जिला कांगड़ा के सुदर्शन नाग ने, जिनके पिता रत्नलाल नाग शिमला के होटल व्यवसायी रहे हैं, 1962 में सिनिमेटोग्राफी का कोर्स कर बी. आर इशारा के साथ फिल्मों में सिनिमेटोग्राफर का काम किया। इन्होंने 'असली नकली', 'इन्साफ कौन करेगा', 'शंकरा' आदि फिल्मों का निर्देशन किया। इन्हें बलराज साहनी एवार्ड भी मिला।

गीतकारों में राजेन्द्र कृष्ण (1919-1988) का नाम उल्लेखनीय है जो नगरपालिका शिमला में काम करते थे। पश्चिमी पंजाब के कस्बा जलालपुर जट्टा में जन्मे राजेन्द्र कृष्ण लगभग 1934 में शिमला आए जहां इनके बड़े भाई पहले से ही नगरपालिका में थे। लगभग आठ वर्ष यहां रहे।

'सुनो सुनो ए दुनिया वालो बापू की यह अमर कहानी' गीत को लिखने वाले राजेन्द्र कृष्ण 1942 में नगरपालिका की नौकरी छोड़ मुंबई चले गये। मुंबई में दो तीन सालों बाद ही उन्हें गीत लिखने का काम मिल गया। इन्होंने 1946 में बनी पहली फिल्म 'आज की रात' में गीत लिखे जिसे हुस्नलाल भगतराम की जोड़ी ने संगीत दिया और सुरैया ने गाने गाए जो बहुत प्रसिद्ध हुए। 'चुप चुप खड़े हो जरूर कोई बात है' गाना बहुत चला। किसी समय राजेन्द्र कृष्ण सबसे अधिक पारिश्रमिक लेने वाले गीतकार बन गये और संवाद भी लिखने लगे। इन्होंने सी. रामचन्द्र, हेमंत कुमार, एस. डी. बर्मन, सलिल चौधरी, मदन मोहन, अनिल विश्वास, ओ. पी. नैयर जैसों के लिए गीत लिखे। अनारकली से जहांआरा तक इनके लिखे गानों ने शौहरत की बुलंदियों का छुआ। 'जाग दर्दे इश्क जाग' और 'फिर वही शाम, वही गम वही तनहाई है' जैसे गीतों को लिखने वाले राजेन्द्र कृष्ण का देहावसान 23 सितम्बर 1988 को हुआ। शिमला से ही एक और गीतकार हुए हैं अरमान शहाबी जिन्होंने फिल्म 'अपने देश पराए लोग' तथा 'साहिबां' में गीत लिखे। इन्होंने कुछ सीरियलों में भी कहानी और संवाद लिखे हैं।

आकाशवाणी के माध्यम से लोक गीत, संगीत तथा लोक नाट्य को प्रोत्साहन देने तथा आगे लाने के लिए शिवशरणसिंह ठाकुर (1915-1996) एक महत्त्वपूर्ण शख्सीयत थी। 11 मई 1915 को जन्में शिवशरण सिंह कॉलेज की पढ़ाई के तुरंत बाद प्रसारण की दुनिया में आ गए और लगभग 1936 से अपनी आवाज रेडियो को दी। आकाशवाणी दिल्ली में ठाकुर ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। सन् 1955 में आकाशवाणी शिमला की स्थापना पर ये यहां प्रोड्यूसर तैनात किये गये। यहां इन्होंने 'हिमाचल कार्यक्रम' में 'नानकू' की भूमिका की, जो विशेष चर्चित रही। इन द्वारा आकाशवाणी में हिमाचली संगीत को विशेष महत्ता मिली।

हिमाचल के लोक नाट्य 'करियाला' को इन्होंने उस समय प्रदर्शित करवाया जब दूरदर्शन का बहुत महत्व था। इन्होंने करियाला पर एक पुस्तक 'करियाला : फोक ड्रामा ऑफ हिमाचल प्रदेश पुस्तक भी लिखी। एक पुस्तक 'हिमाचल लोक लहरी' का संपादन किया।

सन् 1987 में इन्हें हिमाचल सरकार की ओर से 'राज्य



सिने जगत की दमदार शख्सीयत मनोहर सिंह

शिमला के निकट क्वारा गांव में 12 अप्रैल 1942 को जन्मे मनोहर सिंह ने रंगकर्म और सिने जगत, दोनों में ही बराबर प्रसिद्धि हासिल की। इनके पिता बुद्धिसिंह भी एक कलाकार थे। मनोहर सिंह को भी नाटक खेलने का शौक स्कूल से ही था। ये हिमाचल प्रदेश के लोक सम्पर्क विभाग के नाटक प्रभाग में फरवरी 1960 से छह वर्षों तक कार्यरत रहे। इसी बीच इनके नाटकों में 'सुन्नी भुंकू' में जनजातीय गद्दी की भूमिका विशेष सराही गई। इन्होंने गद्दी की भूमिका को इतना सजीव बनाया कि लोग इन्हें गद्दी ही समझने लगे। लगभग 1958 से इन्होंने कई रेडियो नाटकों में भी अपनी आवाज दी। शिमला में मनोहर सिंह ने रमेश गौड़ के 'हिमाचल थिएटर्स' द्वारा प्रस्तुत 'मंगू', 'पेशावर', 'काबुली वाला', 'आराम राज्य' आदि में मुख्य भूमिका निभाई। सन् 1968 में ये राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में चयनित हो गए और 1971 में स्नातक हो कर निकले। इसके तुरंत बाद इन्हें तुगलक की भूमिका मिली जिसे इन्होंने बखूबी निभाया और कई बार यह भूमिका की। इस भूमिका से इन्हें बहुत ख्याति मिली और इसके बाद 'संध्या छाया', 'महाभोज' और 'लुक बैक इन एंगर' में भूमिकाएं की जो सफलता से निभाईं। मनोहर सिंह मूलतः रंगमंच के कलाकार थे और बहुत समय तक रंगमंच से जुड़े रहे। इन्होंने 'हत्या एक आकार की', 'गिन्नी पिग', 'चारपाई', 'पगला घोड़ा' जैसे कई नाटकों का निर्देशन भी किया। इनकी प्रमुख नाट्य प्रस्तुतियां थीं : महाभोज, ओथेला, छोटे सैयद बड़े सैयद, रस गन्धर्व, किंग लियर, ऐटिगनी, स्कंदगुप्त, जाग उठा है रायगढ, हिम्मत माई, नाग मंडल, आदि। 1982 में संगीत नाटक अकादेमी द्वारा इन्हें उत्कृष्ट अभिनय के लिए पुरस्कृत किया गया। 15 अप्रैल 1984 को हिमाचल सरकार द्वारा रोहड़ू में आयोजित समारोह में प्रथम राज्य सम्मान 1983 में नवाजा गया। फिल्मों में इन्होंने चरित्र अभिनेता का अभिनय बखूबी निभाया। किस्सा कुर्सी का, डैडी, पार्टी, दामुल, रूदाली, दीक्षा, मैं आजाद हूं, तिरंगा आदि फिल्मों में इनकी अभिनय प्रतिभा देखी जा सकती है। 'किस्सा कुर्सी का' आपात काल के दौरान बनी एक विवादास्पद फिल्म थी। टी.वी. सीरियलों में भी मनोहर सिंह ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। 'राग दरबारी' में इनकी भूमिका विशेष सराही गई। इसके अलावा अदालत, खजाना, महायज्ञ, मुल्ला नसीरूद्दीन, तमस और एक मुलाकात आदि सीरियल भी इन्होंने किए। इनका आकस्मिक निधन 14 नवम्बर 2002 को हुआ।

सम्मान', 1991 में संगीत नाटक अकादेमी की ओर से सम्मान तथा 1995 में हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी की ओर से शिखर सम्मान प्राप्त हुआ।

आकाशवाणी से ही जुड़े ऐसे दूसरे व्यक्तित्व हैं एस. शशि। इन्होंने आकाशवाणी से 'इस मास का गीत', 'पर्वत की गूंज', 'धारा रे गीत' जैसे कार्यक्रम आरम्भ किए जिससे पहाड़ी गीत तथा संगीत को एक मंच मिला। एस. शशि का जन्म अर्की (जिला सोलन) के पास बातल गांव में 22 मार्च 1936 को श्री नत्थूराम के घर हुआ। इनके पिता को गाने बजाने का शौक था और इनके यहां संगीत की महफिलें होती रहतीं थीं। इनके दादा भी गायक थे। इनके पिता के निधन के बाद घर की परिस्थितियां कुछ ऐसी रहीं कि ये घर से भाग गये और अमृतसर जा पहुंचे। वहां इन्होंने संस्कृत न पढ़कर गाना सीखा। वहां इन्हें संगीत की महफिलों में काम मिलने लगा। शिमला में जब आकाशवाणी केन्द्र खुला तो शिवशरणसिंह ठाकुर द्वारा इन्हें गाने का कांट्रेक्ट मिलने लगा। अंततः इन्हें आकाशवाणी जालन्धर में नौकरी मिल गई जहां इन्होंने 'इस मास का गीत' आरम्भ किया। क्योंकि हिमाचल का कांगड़ा आदि पंजाब में था अतः जालन्धर से 'पर्वत की गूंज' कार्यक्रम आरम्भ हुआ जिसमें हिमाचल के गीत बजते थे। इन्होंने पंजाब के लोक संगीत पर भी खूब काम किया। जालन्धर के बाद ये शिमला आकाशवाणी में आए और नये कार्यक्रमों की शुरुआत की। इन्होंने संगीत निर्देशन का कार्य किया और कई कलाकारों को मंच प्रदान किया। इन्होंने एच. एम.वी. के लिए भी गाया।

थियेटर के एक अन्य कलाकार विजय कश्यप भी शिमला से ही हैं जो दूरदर्शन से 'तेनाली राम', 'मुल्ला नसीरूद्दीन', 'मालगुड़ी डेज' आदि में काम कर चुके हैं। शिमला के सुधीर मट्टू ने भी दूरदर्शन में कुछ सीरियल किए हैं। विजय और रोहित गौड़ को सीरियलों में काम मिला। आजकल शिमला से रूबीना दिल्लैक भी जी. टी. वी. 'छोटी बहू' सीरियल में आ रही हैं।

बाल कलाकारों में श्रेया शर्मा ने नये कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इनके पिता अभय शर्मा ए. जी. ऑफिस शिमला में अधिकारी हैं। श्रेया हिमाचल से पहली ऐसी बाल कलाकार है जिसने हॉलीवुड में दस्तक दी है। इनकी 'ब्लू अम्बरेला' (नीली छतरी) चर्चित फिल्म रही जिसे राष्ट्रीय तथा वॉलीवुड से पुरस्कार मिले। दूसरी फिल्म

'महक' है। आजकल ये तीसरी फिल्म 'डीसेंट अरेंजमेंट' में काम कर रही हैं। कैलाश आहलूवालिया द्वारा 'करियाला' पर अंग्रेजी में एक पुस्तक भी लिखी गई है। अशोक हंस ने अभिनय के साथ कई नाटक भी निर्देशित किए और 'करियाला : ए फोक थियेट्रिएटिकल फॅर्म आफ हिमाचल प्रदेश' तथा 'बांठड़ा : एक ठेठ लोक नाट्य परंपरा' पर शोध कार्य के बाद पुस्तकें भी लिखीं।

जिस तरह पर्वतों से कल कल करते झरने बहे, उसी तरह यहां से अनेक राग रागनियों ने अंतरिक्ष में नाद भरा। यहां हर मनुष्य गाता है, हर मनुष्य नाचता है। पर्वतीय क्षेत्र में लोकनाच बचपन में ही घुट्टी के साथ पिलाया जाता है। इसी तरह पहाड़ी बालक या बालिका लोक गीत गुनगुनाने लगते हैं। आरम्भ में पिछड़ा प्रदेश होने के कारण लोक गायकी के स्वर पर्वतों से बाहर नहीं निकल पाए किन्तु पर्वतों द्वारा मार्ग खोलने के बाद गायकी या कलाकारी छिपी नहीं रह सकी और बहुत से कलाकारों ने पहाड़ों को लांघ दूर दूर तक नाम कमाया।

शिमला से सम्बन्धित गिरीश हरनोट 'सीआईडी' व 'दीया और बाती हम' धारावाहिकों में अपने अभिनय का लोहा मनवा चुके हैं।

रियासती समय में राणा कुठाड़, कोटी, धामी, जुणगा, ठियोग, बाघल, बघाट आदि ने भी लोकगायकी को प्रोत्साहन दिया। गायक अनंत राम चौधरी राणा कुठाड़ के पास उस्ताद बूटे खां से संगीत सीखते थे। राणा द्वारा पर्याप्त सहायता दी जाती थी। इन्होंने राणा ठियोग के पास संगीतकार के रूप में नौकरी भी की। राणा ने इन्हें सत्रह बीघे जमीन भेंट में दी। अनंत राम चौधरी (1925-1984) वैसे होशियारपुर के थे जो ज्यादातर हिमाचल में रहे। चार वर्ष की वय में चेचक के कारण इनकी आंखें जाती रहीं। आकाशवाणी में 1952 में शास्त्रीय गायन परीक्षा पास करने के बाद वे आकाशवाणी दिल्ली, जालंधर और शिमला से गाते रहे। इनका विवाह 1953 में अरुणा देवी से हुआ था जो उस समय महाविद्यालय सोलन में सितार वादन पढ़ाती थीं। आकाशवाणी शिमला के माध्यम से लोक गायकी में प्रसिद्ध हुए कृष्ण सिंह ठाकुर का गाया 'लागा ढोलो रा ढमाका, म्हारा हिमाचल बड़ा बांका' गाना बहुत प्रसिद्ध हुआ। यह गीत हिमाचल बनने के समय का है जब ऐसे गीतों की अपने प्रदेश के प्रति मोह जगाने के लिए बड़ी जरूरत थी। कृष्णसिंह ठाकुर(1919-1997) मूलतः जिला सिरमौर के कोटला बांगी गांव के थे।

नंदलाल गर्ग (मूलतः धामी, अब शिमला), मोहन राठौर (ठियोग), प्रेमप्रकाश निहालटा (शिमला), कृष्णलाल

अभिनय का 'सारांश' अनुपम खेर



शिमला से मनोहर सिंह की तरह बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार हैं अनुपम खेर। शिमला के डी.ए.वी. स्कूल से शिक्षा के बाद अनुपम खेर ने राजकीय महाविद्यालय संजोली से कॉलेज की शिक्षा ग्रहण की। 7 मार्च 1955 को जन्मे अनुपम खेर का बचपन भी प्रेम चोपड़ा की तरह नाभा में बीता। इनके पिता पुष्करनाथ वन विभाग में कार्यरत थे। 1974 में ये चण्डीगढ़ गये और उसके बाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में प्रवेश लिया। विद्यालय से वापसी पर खेर ने शिमला के कलाकारों को लेकर 'खामोश अदालत जारी है' का निर्देशन किया। यह नाटक गेयटी थियेटर में खेला गया। सन् 1981 में खेर फिल्म नगरी मुंबई में पहंच गये। बांद्रा के खेरवाड़ी क्षेत्र में बच्चों को पढ़ा कर गुजारा किया। वहीं से उनका संघर्ष रंग लाया और सफलता हासिल की। अनुपम खेर की प्रतिभा फिल्म 'सारांश' से सामने आई। सारांश की भूमिका से खेर ने फिल्म निर्माताओं और दर्शकों, दोनों का दिल जीत लिया। इस में इनकी भूमिका लाजबाब थी। इसके बाद खेर की अभिनय प्रतिभा का परिचय 'कर्मा' से मिलता है जिसमें डॉक्टर डैंग की भूमिका में दिलीप कुमार से लोहा लिया और गब्बर सिंह को चुनौती दी। इसके बाद इन्हें फिल्मों पर फिल्में मिलती गईं और एक समय ऐसा भी आया कि खेर के बिना कोई फिल्म नहीं जमती थी।

अनुपम खेर की दिली इच्छा अभिनय प्रशिक्षण स्कूल खोलने की थी और यह काम भी इन्होंने पूरा कर दिखाया। इन्हें अभिनय के लिए बालीवुड एवार्ड, दो स्क्रीन वीडियोकोन एवार्ड, फिल्म फेयर एवार्ड और राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए। अनुपम खेर ने हॉल में एक टी. वी. चैनल में ओमपुरी और नसीरूद्दीन शाह से यह रहस्योद्घाटन किया कि जब ओमपुरी गेयटी थियेटर में अपना नाटक खेलने आए तो उनका कोट कहीं खो गया जो नाटक में उनका ड्रेस था। उस समय अनुपम खेर ने अपने पिताजी का कोट ला कर उन्हें दिया।

अनुपम के भाई राजू खेर को इन्होंने अपना सेक्रेटरी बना कर रखा। आज राजू खेर भी टी.वी. के बड़े स्टार बने हुए हैं। लोग उन्हें जूनियर अनुपम कहते हैं। अनुपम खेर के पिता पुष्करनाथ(जो अब दिवंगत हैं) और मां दुलारी शिमला में रहा करते थे।

अभिनेत्रियों में आज फिल्म जगत में शिमला से प्रीति झींटा ने अपनी धाक जमाई हुई है। इन्होंने कई कई फिल्मों में सफल अभिनय कर वॉलीवुड में नाम कमाया।

चित्रकारों की स्थली शिमला

हिमाचल के अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य ने भारत ही नहीं, विदेशी कलाकारों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। बहुत से प्रसिद्ध कलाकारों ने इस धरती को अपना बसेरा बनाया और यहां रह कर तूलिका चलाई। शिमला, कसौली, पालमपुर, कुल्लू आदि स्थान कलाकारों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहे। वे बार बार इस ओर आए। कुछ ने तो अपना स्थायी बसेरा ही यहां बना डाला। प्रसिद्ध कलाकार जे. स्वामीनाथन का शिमला से सम्बन्ध रहा है। ये बराबर शिमला आते थे। स्थानीय वाई. डब्ल्यू. सी. ए. में इनकी मौसी रहा करती थीं। फागू में कभी इन्होंने बागीचा लिया था। विवानसुंदरम का तो कसौली में घर है और वहां आते जाते रहे। जाने माने कलाकार कृष्ण खन्ना का छोटा शिमला में आशियाना के नीचे घर है जहां इनके एक भाई अभी भी रहते हैं।

पहाड़ी कलम के गुरु कलाकार ओम सुजानपुरी अब शिमला में रहते हैं। शिमला तथा नाहन में आर्ट्स कॉलेज रहने के बाद यह बंद हो गया। इस संस्थान के कारण कुछ कलाकार, मूर्तिकार यहां रहे। इनमें हरिश्चन्द्रराय, सनतकुमार चटर्जी, के. के. किदवई (अब दिवंगत), एस.सी. सक्सेना, एच. के. भारद्वाज, बलवंत सिंह(स्व.) आदि हैं। हरिश्चन्द्रराय आजकल मुम्बई में है। सक्सेना मूर्तिकला व चित्रकला में अभी भी कार्य कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त रवीन्द्र कश्यप (स्व.), सुरजीत सिंह, जवाहर शर्मा, देवकुमार चोपड़ा, अनिल चौधरी, बीरेन्द्र सिंह मलहंस, सैमुअल मसीह, हंसराज, सुनीता वालिया, हिमकुमार चटर्जी, आदि कार्य कर रहे हैं। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में पेंटिंग कक्षाएं आरम्भ होने से हिमचटर्जी के निर्देशन में बहुत से नये कलाकार भी सामने आ रहे है।

सहगल (सिरमौर, अब शिमला), पं. ज्वालाप्रसाद (मूलतः बिलासपुर), इन्द्रपाल छावड़ा, अच्छर सिंह परमार (मूलतः मण्डी, अब शिमला), आदि के साथ कुछ नये गायक भी इस समय इस परम्परा को बनाए हुए हैं हालांकि बेशुमार कैसेट और सी.डी. के चलन और मंच की चकाचौंध से इन में प्रदूषण आया है। अधिकांश नये गायक लोक गीत के एक टप्पे के साथ पापुलर हिन्दी गाने को जोड़ने का काम करने लगे हैं।

पुरानी लोक गायिकाओं में कुब्जा देवी, कमला रानी, रोशनी देवी तथा वर्तमान में बसंती देवी (ठियोग) का नाम उल्लेखनीय हैं।

तहसील ठियोग के पराला गांव में जन्मी कुब्जा(1897-1977) को बचपन से ही संगीत नृत्य का शौक था। जुणगा के राजा विजय सिंह ने कुब्जा को अपने खर्चे पर गढ़शंकर के उस्ताद बूटे खां के पास प्रशिक्षण के लिए भेजा। बूटे खां के पहाड़ में तमाम शिष्यों में कुब्जा ने शीघ्र अपनी धाक जमा ली और पहाड़ी रियासतों में अपने फन का जादू बिखेरने लगी। इस पर ठियोग के राणा पद्मचंद ने उसे अपनी रियासत में बुला लिया। कुब्जा ने इन रियासतों के कई जाने माने समारोहों में भाग लिया और कई राग गाकर लोगों को मन्त्रमुग्ध किया। कुब्जा का विवाह ठियोग के ही मशहूर तूरी सिंधिया से हुआ जो उससे उम्र में छोटा किन्तु एक अच्छा बजंतरी था। हिमाचल के गठन पर डॉ. वाई. एस. परमार की अध्यक्षता में हुए समारोह में कुब्जा को नृत्य के लिए आमन्त्रित किया गया था। कमला रानी (1920-1989) भी उस्ताद बूटे खां की शिष्या रही हैं। वे भी रियासती समय में महाराजा पटियाला, महाराजा नेपाल, राणा कुठाड़, राणा बाघल आदि के यहां अपनी बुलंद आवाज और गायकी से अपनी कला कौशल दिखाती रहीं। सन् 1955 में आकाशवाणी शिमला की स्थापना पर कमला रानी ऐसी प्रथम गायिका थीं जिन्होंने यहां लोकगीत, भजन तथा गिद्धे गाकर अपनी धाक जमाई। उनका गाया 'लोका' गीत तथा 'बाह्मणा रेआ छोरूआ' अपने में बेजोड़ था। बसंती देवी का जन्म ठियोग(शिमला) के बलग गांव में लगभग 1947 में हुआ। बसंती के पिता सरिया राम करियाला करते थे और मां मैना देवी गायिका थी। इस विरासत से बसंती देवी बचपन से ही गायन नृत्य के प्रति आसक्त हुई। बसंती का विवाह देवठी मझगांव के कलाकार माठा राम से हुआ। इसी बीच बसंती की कला की धूम शिमला तथा सिरमौर तक फैल गई। कुछ समय बाद माठा राम से तलाक और घूंड के कलाकार गरीबू राम से विवाह हुआ। बसंती ने आकाशवाणी शिमला से लोग गीत गाने आरम्भ किए और कई आयोजनों में कार्यक्रम देने आरम्भ किए। इन्होंने इण्डिया टुडे के लिए गाया। 'चौंखी' गीत इनका सशक्त गीत है। 'हे रे दासिए', 'नेगिया लच्छीरामा' आदि इनके बेहतरीन गीत हैं। अन्य प्रसिद्ध व सिद्धहस्त गायिकाओं में, शान्ति बिष्ट, शान्ति हेटा आदि है।

पहाड़ी कलम के गुरु कलाकार ओम सुजानपुरी अब शिमला में रहते हैं। शिमला तथा नाहन में आर्ट्स कॉलेज रहने के बाद यह बंद हो गया। इस संस्थान के कारण कुछ कलाकार, मूर्तिकार यहां रहे। इन में हरिश्चन्द्रराय, सनतकुमार चटर्जी, के. के. किदवई (अब दिवंगत), एस.सी. सक्सेना, एच. के. भारद्वाज, बलवंत सिंह (स्व.) आदि हैं। हरिश्चन्द्रराय आजकल मुम्बई में है।

'अभिनंदन' कृष्ण निवास, लोअर पंथा घाटी
शिमला-171009, मो. 94180-85595

ऐतिहासिक इमारत

स्वतंत्रता आन्दोलन का साक्षी



● डॉ. भूपेन्द्र भारद्वाज

उन्नीसवीं सदी में शिमला अंग्रेज साम्राज्य के लिए एक मशहूर नाम था। वे इसे माउंट आलम्पस, वायसराय शूटिंग बॉक्स तथा भगवान के रहने के स्थल (Abode of God) के नाम से पुकारते थे। अंग्रेजों द्वारा 1822 में प्रथम विदेशी कैप्टन चालर्ज परैट कैनेडी को हिल स्टेट का सुपरिंटेंडैंट नियुक्त किया व उन्हें पहाड़ी राजाओं से नजराना हासिल कर उन पर अंग्रेजी राज के कानून लागू करने की हिदायत दी। इससे पूर्व यह पहाड़ी इलाका अंग्रेजों ने 1815-16 के मध्य गोरखों के साथ हुए युद्ध के समय देखा था। इसके उपरांत अंग्रेजों ने अनेक सर्वेक्षण अभियान इस इलाके में भेजे। परंतु कैप्टन कैनेडी ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें शिमला में स्थानीय लोगों की सहायता से यूरोपियन वास्तुकला के अनुरूप गृह बनाने का श्रेय हासिल हुआ। इसका विवरण वर्ष 1830 में फ्रांस के पर्यटक विक्टर जेक्यूमोंट (Victor Jacquemont) जो यहां प्रवास पर आए थे, के यात्रा वृतांत में मिलता है।

कैनेडी ने शिमला में गृह निर्माण का जो सिलसिला शुरू किया वे आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनने में सहायक सिद्ध हुआ। समय के साथ-साथ शिमला में अनेक भवनों का निर्माण अंग्रेजों ने अपनी सुविधानुसार करवाया। 1828 में लॉर्ड कॉम्बरमियर भारतीय सेना के कमांडर-इन-चीफ बने और शिमला आए। इस दौरान कॉम्बरमियर ने जाखू हिल के इर्दगिर्द तीन मील लंबी सड़का का निर्माण करवाया। कॉम्बरमियर व ऑकलैंड के कारण शिमला को हिल स्टेशन का रुतबा मिला। इसके बाद विलयम बैंटिक ने अपने लिए आवास का निर्माण करवाया जो बैंटिक कैसल के नाम से मशहूर हुआ। इसी दौरान दो बाजार माल रोड व लोअर बाजार का निर्माण हुआ। उस समय के मुख्य भवनों में वुडवायन कॉटेज, परिमरोज हिल, ओक फील्ड, हरमीटेज, सनी बैंक, बैनमोर, स्नोडन, ऑकलैंड हाउस थे। शिमला में अंग्रेजों ने अपने लिए प्रथम पूजा स्थल जिसे आज क्राईस्ट चर्च के नाम से जाना जाता है, की आधारशिला 1844 में गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंग के सामने रखी। 1851 में लॉर्ड डलहौजी ने शिमला के महत्त्व को समझते हुए इसे मैदानों व चीन की सीमा तक जोड़ने के लिए हिंदुस्तान तिब्बत सड़क का कार्य आरंभ करवाया। इन वर्षों में शिमला में अंग्रेजों ने अपनी सुख-सुविधाओं को जोड़ने के लिए अनाडैल, मनोरंजन पार्क, गेयटी थियेटर इत्यादि का निर्माण करवाया। 1850 में शिमला नगरपालिका का गठन किया गया। इसी दौरान शिमला में बिशप कॉटन स्कूल व लड़कियों के लिए दो स्कूल ऑकलैंड हाउस व लोरेटो कान्वेंट खोले गए।

1862 से 1888 तक के वायसराय (लॉर्ड इलगिन से लॉर्ड डेफरिन तक) पीटरहॉफ भवन में रहे। पीटरहॉफ हालांकि पहाड़ी पर स्थित था परंतु इसके अग्र व पिछले भाग में मैदान व बाग-बागीचे

के लिए जगह नहीं थी। लॉर्ड लिटन ने पीटरहॉफ को सुअरों का बाड़ा की संज्ञा दी थी। 1981 में भीषण अग्निकांड में यह भवन पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। आज यहां सरकार द्वारा पांच सितारा होटल निर्मित किया गया है। 1863 में लॉर्ड एलगिन पहले वायसराय थे जो शिमला ठहरे। 1876-80 तक लॉर्ड लिटनर वायसराय बने। उन्होंने शिमला में वायसराय का निवास स्थान जो पीटरहाफ बिल्डिंग में स्थित था, के बारे में अपने एक निजी पत्र में लिखा :- "मैं अपने इस भवन में अकेला नहीं रह सकता। अगर मैं अपने निजी कमरे में अकेला बैठा हूं और बाहर खिड़की से देखूं तो दो संतरियों को अपने ऊपर खड़े देखता हूं। अगर मैं अपने भवन की ऊपरी मंजिल में जाता हूं तो अपने ए.डी.सी. व तीन-चार व्यक्तियों के मध्य घिरा पाता हूं तथा अगर मैं मकान के पिछले दरवाजे से भागता हूं तो अपने पीछे 15 व्यक्तियों की फौज देखता हूं।"

पीटरहॉफ में वायसराय द्वारा दी जाने वाली पार्टियां स्थानाभाव के कारण भवन के अंदर नहीं हो सकती थी तथा इसके लिए बाहर शामियाना लगाना पड़ता था जिसपर अंग्रेज लोग अपने आपको मेहमानों के समक्ष छोटा महसूस करते थे। इसी को जहन में रखकर अंग्रेजों ने शिमला में वायसराय के लिए नए भवन की कल्पना की और स्थान ढूंढना शुरू किया। सर्वप्रथम पीटरहॉफ को ही गिराकर इस जगह बड़ा भवन बनाने की सोची गई, लेकिन इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया गया व इसके समीप स्थित आब्जरवेटरी हिल को वायसराय निवास के निर्माण के लिए चुना गया। इसका कार्य 1884 में आरंभ हुआ था तथा 1888 में यह इमारत बनकर तैयार हो गई। 7,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित यह इमारत आज तक के इतिहास की मूक गवाह है। लॉर्ड मिंटो ने इस भवन में टैरेस व बाग तथा दो मंजिला भवन 1929 में निर्मित करवाए जिसे पब्लिक इंटरी बिल्डिंग के नाम से जाना जाता है।

1880 के दशक में सौम्य, शांत शिमला में शहरीकरण की झलक नज़र आने लगी थी। 1884 में भारत में वायसराय लॉर्ड डेफरिन थे। इस समय शिमला प्रवास पर आने वाले विशिष्ट अधिकारियों की मूलभूत सुविधाओं की कमी अखरती थी। मैदानों की धधकती गर्मी से निजात पाने के लिए अंग्रेजों ने शिमला को साल के छह से आठ महीनों के लिए चुन ही लिया था। लॉर्ड डेफरिन तथा उनकी पत्नी लेडी डेफरिन को सभ्य दम्पति व प्रकृति प्रेमी के नाम से जाना जाता था। इससे पूर्व यह दम्पति मांट्रियाल व सैट पीटरज़वर्ग में रह चुके थे जो कि उस वक्त की सुंदरता के लिए विश्वविख्यात स्थल थे। लेडी डेफरिन के शब्दों में शिमला एक छोटा-सा शहर तथा झुंडनुमा बस्ती है। उस समय वायसराय का सरकारी निवास पीटरहॉफ था तथा उसके बारे में लेडी डेफरिन के अनुसार यह जगह परिवार के रहने के लिए तो उपयुक्त है लेकिन सरकारी लाइफ तथा वायसराय के अनुरूप नहीं है। इसके पिछले भाग में एक गज की खाली है जहां से आप लुढ़क सकते हैं तथा अग्र भाग में एक टैनिस कोर्ट के मात्र ही जगह है।

जब पीटरहॉफ में वायसराय के दो से अधिक अतिथि आ जाते थे तो उन्हें 'इविराम' जो लॉर्ड विलियम वरैसफोर्ड का गृह था, में ठहराना पड़ता, जहां पर घोड़ों के लिए अच्छा अस्तबल, लॉन टेनिस कोर्ट मौजूद था। यह हिंदुस्तान के वायसराय के लिए शर्म की बात थी कि उसके यहां आने वालों को स्थानाभाव के कारण कहीं और ठहराना पड़ता था। इसी कमी को देखते हुए लॉर्ड डेफरिन के शिमला आने पर यहां बड़े भवन व खूबसूरत वायसरीगल लॉज का निर्माण करवाया। लेडी डेफरिन ने अपने पत्र में लिखा, "मैं तथा लॉर्ड डेफरिन 1885 की वसंत में ऑब्जरवेटरी हिल को देखने के लिए गए जिसे लॉर्ड लिटन ने चुना था। कलकत्ता में यह निर्णय हो गया था कि पीटरहॉफ भवन को वायसराय की जरूरत के अनुसार बड़ा कर दिया जाए लेकिन जब से हमने नई जगह को देख लिया था, तब से हमने वायसराय का नए भवन ऑब्जरवेटरी हिल पर बनाने के लिए सोच ही लिया था।"

जहां आज उच्च अध्ययन संस्थान का भवन है, यहां वायसराय का भवन बनने से पूर्व 'ऑब्जरवेटरी हाउस' वेधशाला थी जिसे 1940 में कर्नल जे.टी. बायलू द्वारा बनाया गया था जिन्होंने इस भवन में ऑब्जरवेटरी की स्थापना की थी। वर्ष 1841 में पहली बार मौसम विज्ञान संबंधी आकलन दर्ज हुआ था। ये चुंबकीय उपकरण से पूर्ण रूप से लैस थी। बायलू दो भाई थे। नए वायसराय निवास के प्रारंभिक नक्शे रॉयल इंजीनियर्स के कैप्टन एच.एच. कोल ने तैयार किए थे। ये नक्शे वायसराय लॉर्ड लिटन को 1878 में प्रस्तुत किए थे। उन्हें नक्शे को देखने के उपरांत कहा था। यह मनोदृश्य इतना दूर का है कि इसे विश्वास की नज़र से देखा जा सकता है। ये दोनों भाई अपनी विलक्षण प्रतिभा के लिए मशहूर थे तथा इनकी आदतें विचित्र थीं। तभी वर्षों उपरांत इनकी याद में शिमला के पश्चिम में स्थित एक बस्ती का नाम बालूगंज रखा गया जो कि आज शिमला का एक बड़ा उपनगर है।

लॉर्ड डेफरिन ने इस भवन के निर्माण की पूर्ण देखरेख की तथा नए भवन के प्लान में अनेक फेरदबदल किए। इसी दौरान शिमला में 1887 में नया गियेटी थियेटर बनकर तैयार हो गया जिसका श्रेय भी इसी दम्पति को जाता है। दूसरा भाई रॉयल इंजीनियर्स में मेजर था, जो शिमला में रिज़ पर बने क्राइस्ट चर्च का वास्तुकार भी था। 15 जुलाई, 1887 को लेडी डेफरिन ने अपने वृतांत में लिखा है कि "वह व उसके पति वायसरीगल लॉज जो कि ऑब्जरवेटरी हिल पर बन रहा था, उसे देखने गए तथा इस कार्य की प्रगति पर हमने संतोष व्यक्त किया।

इस भवन के निर्माण में लगे मजदूरों विशेषकर, महिलाओं को देखकर बहुत अच्छा लग रहा था। नौजवान महिलाओं ने मालाएं, कानों में झुमके, तंग पाजामे पहने थे व पुरुषों ने सिरों पर पगड़ियां पहन रखी थीं तथा सिरों पर मिट्टी की भरी टोकरियां उठा रखी थीं।

वे धरातल मंजिल व ऊपरी मंजिल में बिना डरे काम में संलग्न थे।"

इस दौरान जब लॉर्ड डेफरिन शिमला प्रवास से जाने लगे तो उन्होंने इस भवन के निर्माण में जुटे हजारों व्यक्तियों के सम्मान में दावत का आयोजन किया। इस दौरान मजदूरों ने स्थानीय मनोरंजन (नाच-गाना) लॉर्ड डेफरिन के समक्ष पेश किया।

1888 के मई माह में जब लॉर्ड डेफरिन शिमला वापस आए तो भवन निर्माण कार्य धीमी गति से चल रहा था। दीवारों का काम अधूरा था तथा इस भवन के लिए लिया गया इलैक्ट्रिक जनरेटर आधे रास्ते में था तथा डेफरिन के आने से कार्य में गति आई और जुलाई के मध्य तक भवन कुछ नजर आने लगा। वायसरीगल लॉज 331 एकड़ क्षेत्र में फैला है। इसमें ऑब्जरवेटरी हिल, बैंटिक हिल और पीटर हॉफ हिल का कुछ हिस्सा शामिल है जहां पहले वायसराय का निवास होता था। इसके अधीन 56 कॉटेज तथा विभिन्न आकारों के आउट हाउस हैं। ऑब्जरवेटरी हिल पर स्थित यह इमारत ऐसी जगह पर है जिसके एक भाग का निकास जल सतलुज में बहकर प्रशांत महासागर में मिलता है और दूसरे भाग का पानी यमुना में बहकर अंत में बंगाल की खाड़ी में पहुंचता है।

वायसरीगल लॉज का डिजाइन, वास्तुकार हैनरी इरविन ने किया था और इस इमारत के निर्माण कार्य की देखरेख एफ.बी. हैवर्ट तथा एल.एम. सकलैन को सौंपी गई थी। इस इमारत के निर्माण पर उस वक्त साढ़े सोलह लाख रुपये का खर्च आया था। एडवर्ड बक के अनुसार इस भवन की वास्तुकला इंग्लैंड के रिनेसान्स काल (एलिजाबेथ) से मिलती है। इसकी दीवारों के निर्माण में हलके नीले रंग के चूने का मिश्रण उपयोग में लाया गया है। दीवारों की चिनाई में उपयुक्त पत्थर को यहां से पांच मील दूर से खच्चरों पर ढोकर लाया गया था तथा इस भवन में लगा बाहरी पत्थर (कट स्टोन) कालका के नदजीक से लाया गया है। (इसका संदर्भ राजेश वत्स द्वारा शिमला के वास्तुकला पर लिखे लेख में मिलता है।)। पुराने लोगों का कहना है कि यह पत्थर सोलन के नजदीक बड़ोग की पहाड़ियों से निकाला गया था तथा इसे बेगार प्रथा के तहत शिमला खच्चरों व पीठ पर ढोकर लाया गया था। जहां इस भवन के बाहर हरे-भरे बाग हैं, वहीं इसके अंदरूनी भाग में बर्मा से आयातित सागवान, अखरोट तथा देवदार की लकड़ी पर नक्काशी का बेहतरीन कार्य हुआ है। इस कार्य को देखकर ऐसा लगता है कि मानो इसकी नक्काशी बोलने को तैयार है। इस भवन की साज-सज्जा का कार्य मैसर्ज मैपल एंड कंपनी लंदन द्वारा किया गया। पीटर हॉफ में जहां 400 लोगों को पार्टियों के लिए आमंत्रित किया जा सकता था, वहीं इस नए भवन के बन जाने से 800 व्यक्तियों के दावत की जगह उपलब्ध हो गई। इस भवन की धरातल मंजिल में रसोई खाने, धोबी खाने तथा सामान रखने के लिए बहुतायत में जगह थी। वायसराय भवन में कार्य करने वालों के लिए पृथक से जगह थी।

ऑब्जरवेटरी हिल पर स्थित यह इमारत ऐसी जगह पर है जिसके एक भाग का निकास जल सतलुज में बहकर प्रशांत महासागर में मिलता है और दूसरे भाग का पानी यमुना में बहकर अंत में बंगाल की खाड़ी में पहुंचता है।

23 जुलाई, 1888 को यह भवन बनकर तैयार हो गया। लेकिन इस भवन के अहाते में भवन निर्माण सामग्री बिखरी पड़ी थी, फिर भी लॉर्ड डेफरिन ने इसमें गृह प्रवेश किया। सर्वप्रथम लेडी डेफरिन इस भवन में गई तथा उसने भवन में फर्नीचर को सजाया। लॉर्ड डेफरिन तथा उनकी पुत्रियां रात के भोजन के समय उसके साथ शामिल हुए। 15 दिनों उपरांत वायसराय दम्पति ने शिमला के प्रमुख व्यक्तियों के लिए भोज का आयोजन किया। इस भोजन के दौरान एक बड़े हॉल के किनारे में बैंड वादक धुनें बजाते रहे, इससे सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि अंग्रेजों को अपनी शान-शौकत का कितना फिक्र रहता था। वे भारत की जमीन पर अपने मनोरंजन व ऐशो-आराम के लिए आए थे। वायसरीगल लॉज के बन जाने पर इसकी खूबसूरती की प्रशंसा इसे देखने वाले हर आदमी ने की। लेकिन लॉर्ड डेफरिन का कार्यकाल गर्मियां बीतने के साथ ही समाप्त हो गया। इस दौरान भारतीय संपन्न लोगों में यह बात प्रचलित हुई कि 1886 में भारतीय आयकर शुल्क इसलिए शुरू हुआ कि इस भवन के निर्माण का खर्चा निकाला जा सके। अंग्रेजों के ऐशो-आराम का बोझ भारतीयों को सहना पड़ा।

लॉर्ड तथा लेडी लासडॉन ने सर्वप्रथम वायसरीगल लॉज के बागीचों को सजाने के लिए एक अंग्रेज़ माली की सहायता ली थी। एलफर्ड पारसन ने इस भवन में मैदान, बागों का निर्माण किया तथा यहां टेनिस कोर्ट, क्लर्कों के क्वाटर, चीफ इलैक्ट्रीशियत भवन तथा अन्य कामगारों के लिए भवनों का निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रजातियों के फूलों व फलों के पौधे रोपे। इस भवन की खासियत यह थी कि प्रत्येक दिन दोपहर को यहां तोप दागी जाती थी तथा यहां पर आने वाले खास मेहमानों को भी तोप की सलामी दी जाती थी। 1899 में लॉर्ड कर्जन प्रथम बार शिमला आए तथा उन्हें शिमला ज्यादा रास नहीं आया। उसने वायसरीगल भवन के बागों में विभिन्न प्रजातियों के पौधे लगवाए। कर्जन ने शिमला से सात मील दूर स्थित रिट्रीट (राष्ट्रपति निवास) तथा मशोबरा में रहना ज्यादा पसंद किया।

ब्रितानिया राज के इस भवन ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे। आजादी से पूर्व इसमें अनेक वार्ताओं का दौर चला। यहां राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू तथा मोहम्मद अली जिन्नाह तथा उस समय के शीर्ष नेताओं ने भारत को आजाद करवाने के लिए अंग्रेजों से अनेक मंत्रणाएं कीं। लाहौर से प्रकाशित 'सिविल एंड मिलिट्री गज़ट' के संपादक ट्रेवर पिंच ने लिखा था "इस राजसी

शिमला में दौड़ी थी पहली रिक्शा

भारत में पहली बार रिक्शा का प्रचलन तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला में वर्ष 1880 में हुआ था। कोलकाता (तब कलकत्ता) में 20 वर्ष उपरांत इसका प्रचलन आरंभ हुआ। शिमला रिक्श कैसे आई, इसका कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि मिशनरी जे. फोर्डयेस ने इसे आयात या निर्यात किया था। इसका उल्लेख महान लेखक रुडयार्ड किपलिंग की लघु कहानियां Phantom Rickshaw and Other Errie Tales में मिलता है। शिमला में आई रिक्शा जापानी रिक्शा से भिन्न था। यह लकड़ी के स्थान पर लोहे से बनी मजबूत रिक्शा थी। रिक्शा को चार व्यक्ति खींचते थे। दो आगे तथा दो पीछे। कभी-कभी एक व्यक्ति साथ दौड़ता था जो किसी एक के थक जाने पर उसे बदलता था। रिक्शा में अग्रभाग में घंटी लगी होती थी जो पैदल चलने वाले तथा घुड़सवारों को सदैव आगाह करती थी।

रिक्शा चालकों के किस्से शिमला तथा इसके आसपास के क्षेत्रों में लिखी पुस्तकों में मिलते हैं। पामेला कंवर की पुस्तक Emperial Shimla में उद्धृत है कि आर्मी कैंटीन बोर्ड के कंट्रोल मैनिल पेडल ने एक रिक्शा चालक पर अमानवीय ढंग से अत्याचार किया तथा बाद में उसकी मृत्यु हो गई। वर्ष 1932 में शिमला में 2700 रिक्शा चलाने वाले थे तथा उस समय शिमला में 500 के करीब रिक्शाएं थीं।

आजादी के उपरांत करीब तीन दशकों तक रिक्शा शिमला की शान रही। वर्ष 1968 में शिमला में रिक्शा के नए लाइसेंस देने बंद कर दिए गए। शिमला में पहली सड़क का निर्माण वर्ष 1928 में लॉर्ड कम्बरमीयर ने किया था। यह सड़क जाखू पहाड़ी के इर्दगिर्द एक संकरा मार्ग थी। माल रोड के एक छोर पर आज लिफ्ट के समीप नाले पर लकड़ी का पुल बनाया था जो इस मार्ग को जोड़ता था। सड़क इतनी चौड़ी थी, जिस पर एक समय में दो घोड़े गुजर सकते थे। वर्ष 1878 में लॉर्ड लिटन ने इस मार्ग को चौड़ा करवाया। इसके दो वर्ष उपरांत शिमला की सड़कों पर रिक्शा चलने का प्रचलन आरंभ हुआ। कालका से शिमला तक घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाली गाड़ी का प्रचलन वर्ष 1860 में आरंभ हुआ था। इससे पूर्व हरकारों तथा तांगा गाड़ी में डाक व सवारियां आती थीं। वर्ष 1935 में कालका-शिमला मार्ग पर एक दर्जन मोटर कारें चलना आंरभ हुई जो आठ घंटे में शिमला पहुंचती थीं। उस वक्त वर्तमान में कन्या महाविद्यालय लौंगवुड के समीप ग्रीन गेट भवन में रहने वाले चिकित्सा अधिकारी को शिमला की मुख्य सड़कों पर मोटर साइकिल चलाने की अनुमति थी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान शिमला में अंग्रेजों के साथ विभिन्न बैठकों में भाग लेने वाले देश के महान नेताओं द्वारा शिमला की सड़कों पर रिक्शा में सवारी के उदाहरण इतिहास में दर्ज हैं।

महात्मा गांधी का माल रोड शिमला, वायसरीगल मार्ग पर रिक्शा में यात्रा का चित्र आज भी उस वक्त की कहानी बयां करता है। शिमला के आसपास के निवासी रिक्शा चालक के कार्य में जुटे।

शिमला के माल रोड, छोटा शिमला में बकायदा रिक्शा शैड थे, जहां इसे चलाने वाले रहते थे। अब ये मात्र पुराने लोगों की याद्दाश्त या किताबों में सिमट कर रह गए हैं। गरीब रिक्शा चालक जो नंगे पैर शिमला की सड़कों पर अंग्रेजों, संभ्रांत लोगों को लेकर दौड़े, उनके जख्मों से सड़कें लाल हुई होंगी लेकिन पुराने चित्रों में उनके चमकते चेहरे आज भी देखे जा सकते हैं। शिमला जिले की तहसील सुन्नी के गांव नलावण के निवासी धनीराम भी शिमला में रिक्शा खींचा करते थे। उनके सुपुत्र स्व. श्री हुकम चंद ने इसी कमाई से पढ़ाई की। शिक्षा विभाग में अध्यापक पद ग्रहण किया। उनके पौत्र श्री कामेशवर शर्मा के शब्दों में अंग्रेजों का वह वक्त था, जिन्हें उन्होंने अपने बुजुर्गों से सुना है कि वे अपने मातहतों से अच्छा बर्ताव करते थे तथा अच्छा मेहनताना देते थे जिससे उनके परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक हुई।

भवन के चारों ओर की दृश्यावली इतनी सुंदर है कि देखने वाला इसे देखता ही रह जाता है।" अंतिम वायसराय लॉर्ड मांउटबेटन के प्रेस सलाहकार एलन केम्पबेल जॉनसन ने इसे 'गंभीर और शांत विचार-विमर्श के लिए एक आदर्श स्थान' कहा था।

1947 में भारत आजाद होने के उपरांत इसे राष्ट्रपति निवास में तबदील कर दिया गया तथा 20 अक्तूबर, 1965 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने इसे भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान में बदल कर भारतवासियों को एक तोहफा दिया।

आज इस भवन के दरवाजे शिक्षाविदों, पर्यटकों के लिए खुले हैं। न तो यहां अब दोपहर में तोप के गूंजने की आवाज आती है और न ही घोड़ों की टापों की टक-टक। बस अब यह शांत झील बन चुकी है जिसकी दीवारों ने सुनी है ब्रिटिश हुकूमती आवाजें। शान से खड़ी यह इमारत आज भी हर आगंतुक को आकर्षित करती है। यह इमारत भारत में स्वतंत्रता संग्राम की साक्षी है तथा यहां उच्च अध्ययन संस्थान ने इस वर्ष अपनी स्थापना के 50 वर्ष पूर्ण किए हैं।

कोजी कॉर्नर, आफिसर्ज़ कालोनी, राजगढ़ रोड, सोलन, हिमाचल प्रदेश, मो. 94181 58987

ऐतिहासिक अनाडेल मैदान

डूरंड कप की यहीं से हुई थी शुरुआत

• योगराज शर्मा

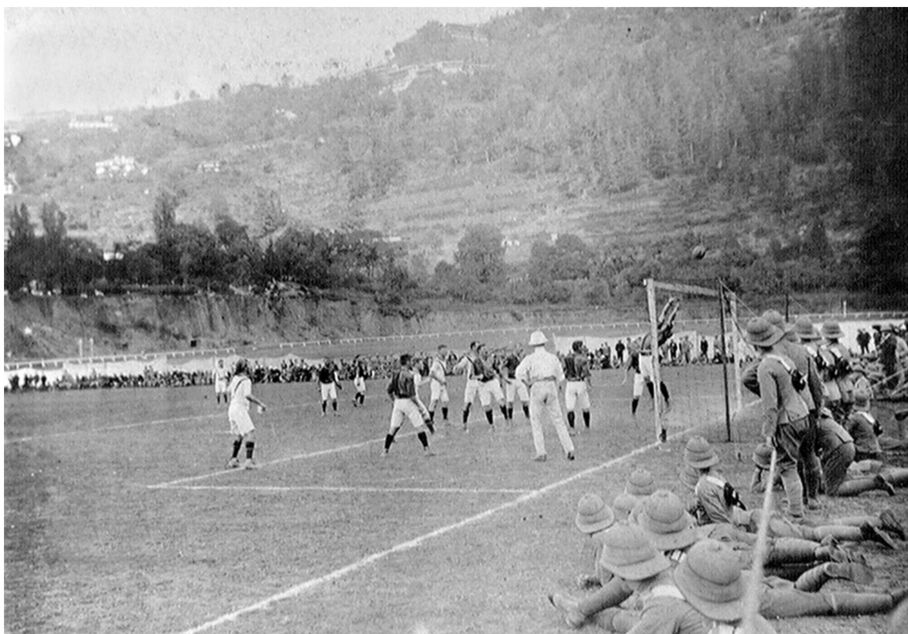
शिमला एक ऐसा शहर है जो अपनी प्राकृतिक सुन्दरता और स्वच्छ आबोहवा के साथ-साथ धार्मिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक गतिविधियों का भी केन्द्र रहा है। आधुनिकता और विकास का पर्याय बन चुका शिमला अपनी खूबसूरती के लिए आज भी उतना ही मशहूर है जितना कि आजादी से पूर्व हुआ करता था। यही कारण है कि शिमला आज दुनिया के मानचित्र पर अपनी एक अनोखी पहचान छोड़े हुए है और इसी वजह से शिमला आज पर्यटकों की पंसदीदा सैरगाहों में शुमार है।

यूं तो समूचा हिमाचल ही प्रकृति का नायाब तोहफा है। लेकिन हिल स्टेशन के रूप में अपनी पहचान रखने वाले शिमला की बात ही कुछ निराली है। शिमला शहर ही नहीं बल्कि इसके साथ लगते क्षेत्र भी बेहद सुंदर व आकर्षक हैं। इन स्थलों की अपनी एक अलग पृष्ठभूमि व इतिहास रहा है। प्राकृतिक छटा से भरपूर ऐसा ही एक स्थल है शिमला का अनाडेल मैदान। करीब 121 बीघा भूमि में फैले इस मैदान का इतिहास भी शिमला शहर जितना ही पुराना है। संपूर्ण शिमला जिले में शायद ही कोई और इतना बड़ा मैदान उपलब्ध हो। शिमला की मनोरम वादियों में यह एक ऐसा स्थल है जो अंग्रेजों को भी खूब भाया था और यह मैदान कई ऐतिहासिक घटनाओं का भी गवाह रहा है। देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी बनने के दौरान ही अंग्रेजों का ध्यान इस मैदान की ओर चला गया।

करीब 121 बीघा भूमि में फैले इस मैदान का इतिहास भी शिमला शहर जितना ही पुराना है। संपूर्ण शिमला जिले में शायद ही कोई और इतना बड़ा मैदान उपलब्ध हो। शिमला की मनोरम वादियों में यह एक ऐसा स्थल है जो अंग्रेजों को भी खूब भाया था और यह मैदान कई ऐतिहासिक घटनाओं का भी गवाह रहा है।

शिमला के बारे में एडवर्ड जे. बक द्वारा लिखित पुस्तक 'शिमला पास्ट एंड प्रेजेंट' के मुताबिक अनाडेल फैंसी फेयर, पिकनिक, फ्लावर शो, डॉग शो, रेस कोर्स, क्रिकेट, पोलो व जिमखाना जैसी गतिविधियों के लिए प्रयोग में लाया जाता था। खेल गतिविधियों का आयोजन तो यहां पर काफी समय बाद शुरु हुआ लेकिन फेट व फैंसी फेयर जैसी गतिविधियां वर्ष में कई बार आयोजित होती थी। 1834 में ईस्ट इंडियन सर्विस जर्नल में बंगाल आर्मी के तत्कालीन सहायक जज एडवोकेट जनरल विलियम डी. रे. फिलिप के प्रकाशित एक लेख में भी अनाडेल में ऐसी गतिविधियों को आयोजित किए जाने का उल्लेख किया गया है। इसमें लिखा गया है कि "ग्लैन से कुछ दूरी पर एक मील के चौथाई हिस्से की परीधि वाला भू-भाग है और इसके साथ कैथू नामक गांव है जहां करीब 30 घर हैं।" 1838 में लेफ्टिनेंट जी. ई. व्हाइट ने अनाडेल का उल्लेख करते हुए लिखा कि शिमला की प्रायः कंपनी व सेना के धनाढ्य लोग यात्रा करते थे।" लेडी बार्नस व ब्रायंट के कार्यकाल के दौरान अनाडेल में फैंसी फेयर आयोजित किया गया। इसमें चित्र, कलात्मक वस्तुओं व आभूषणों को बिक्री के लिए रखा गया और एकत्रित धनराशि को सुबाथू स्कूल को स्थापित करने के लिए खर्च किया गया।

इस पुस्तक में अनाडेल के नामकरण के बारे में भी रोचक तथ्य दिए गए हैं। इन तथ्यों में बताया गया है कि भारत में ब्रिटेन के पहले राजनीतिक एजेंट मेजर कैनेडी जिन्होंने हिमालय की इन पहाड़ियों को दुनिया के सामने लाया था, वे यहां की खूबसूरती के इस कदर कायल थे कि शिमला के इस मैदान का नाम अपने बचपन की दोस्त जिसका पहला नाम अन्ना था, के नाम पर अनाडेल रख दिया। शिमला के रिज मैदान से करीब चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह मैदान तीन ओर से देवदार के घने वृक्षों से घिरा हुआ है। वर्ष 1838-39 में अनाडेल के मैदान में आयोजित एक फैंसी फेयर में तत्कालीन वायसराय ने ब्रिटेन की महारानी के जन्मदिवस के अवसर पर यहां पर शानदार पार्टी आयोजित कर खूब डांस किया था। इसका



अनाडेल मैदान में सुधार का यह कदम बेहद सफल रहा और अन्य खेलों के साथ-साथ देश की तत्कालीन ग्रीष्म कालीन राजधानी शिमला में फुटबाल खेलने का रास्ता भी साफ हो गया। ब्रिटिश इंडिया में उस समय के विदेश सचिव सर मार्टिमर डूरंड ने 1888 में शिमला से डूरंड कप की शुरुआत की। हालांकि शुरुआत में डूरंड कप सेना की टीमों के बीच ही खेला जाता था। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस खेल को गैर सैन्य टीमों के खिलाड़ियों के लिए भी शुरू कर दिया। वर्ष 1940 में इस टूर्नामेंट का स्थान शिमला से दिल्ली तबदील कर दिया गया था।

उल्लेख भी पुस्तक में विस्तार से किया गया है। वर्ष 1845 के बाद यहां पर फेंसी फेयर के अलावा खेलों सहित अन्य आयोजन भी होने लगे। 1847 में सहारनपुर बॉटेनिकल गार्डन के डा. जेम्सन की देखरेख में म्यूनिसीपल गार्डन बनाया गया। इसी दौरान यहां पर क्रिकेट ग्राउंड भी विकसित किया गया और पहले बनाए गए रेस कोर्स में भी सुधार किया गया। रिज मैदान से अनाडेल की तरफ जाने वाली सड़क में बेहद उतराई होने कारण वर्ष 1877-78 में यहां के लिए नई सड़क बनवाई गई और वर्तमान में भी सार्वजनिक यातायात के लिए इसी सड़क का प्रयोग किया जा रहा है।

आठ मई 1886 को अवर वायसरिगल लाइफ इन इंडिया में लेडी डफरिन ने अनाडेल मैदान की खूबसूरती का विस्तृत उल्लेख किया था। लॉर्ड डफरिन के दौर में अंग्रेज अफसरों ने इस मैदान को विस्तार देने के लिए विस्तृत योजना तैयार की और पहाड़ी की तरफ खुदाई करवाई। इस विस्तार से मैदान रेस कोर्स व पोलो ग्राउंड के रूप में विकसित हो गया। इस कार्य को करने के लिए करीब 80 हजार रुपये की लागत आई। इस धनराशि का अधिकांश हिस्सा स्थानीय राजाओं द्वारा उपलब्ध करवाया गया जो गर्मियों के दिनों में अपने शिमला प्रवास के दौरान पोलो खेलने में दिलचस्पी रखते थे।

अनाडेल मैदान में सुधार का यह कदम बेहद सफल रहा और अन्य खेलों के साथ-साथ देश की तत्कालीन ग्रीष्म कालीन राजधानी शिमला में फुटबाल खेलने का रास्ता भी साफ हो गया। ब्रिटिश इंडिया में उस समय के विदेश सचिव सर मार्टिमर डूरंड ने 1888 में शिमला से डूरंड कप की शुरुआत की। हालांकि शुरुआत में डूरंड कप सेना की टीमों के बीच ही खेला जाता था। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस खेल को गैर सैन्य टीमों के खिलाड़ियों के लिए भी शुरू कर दिया। वर्ष 1940 में इस टूर्नामेंट का स्थान शिमला से दिल्ली तबदील कर दिया गया था।

मैदान के रखरखाव के लिए तत्कालीन अंग्रेज अफसरों ने पहले अनाडेल क्लब गठित किया। कुछ समय बाद अनाडेल जिमखाना क्लब नाम से अन्य संस्था गठित की गई। सभी गतिविधियां क्लब की देखरेख में होती थी। क्लब प्रबंधन द्वारा बाहरी खेल क्लबों व अन्य व्यक्तियों द्वारा मैदान को जिमखाना, पोलो, क्रिकेट, हार्स और डॉग शो जैसी गतिविधियों के लिए कुछ दिनों तक प्रयोग में लाने के लिए नाममात्र की फीस वसूल की जाती थी।

देश की आजादी के बाद इस खेल मैदान पर सरकार का अधिकार हो गया। इसके कुछ समय बाद अनाडेल खेल मैदान को सेना ने सरकार से लीज पर ले लिया और वर्तमान में भी यह सेना के पास ही है। सेना द्वारा ही इस मैदान की देखरेख की जा रही है। हालांकि आम जनता के लिए सेना की अनुमति से ही खुलता है। सेना ने यहां पर युद्ध संग्रहालय भी बनाया है। इस संग्रहालय में आजादी के बाद हुए भारत पाक युद्धों में प्रयोग किए गए कुछ हथियारों के अलावा कई महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ भी रखे गए हैं।

वर्तमान में अंग्रेजी शासन काल में आरंभ की गई अधिकांश गतिविधियां अब बंद हो गई हैं। लेकिन यहां की खूबसूरती आज भी उतनी ही कायम है जितनी ब्रिटिश शासन काल में हुआ करती थी। अब यहां पर गोल्फ कोर्स विकसित किया गया है। गोल्फ के अलावा अब यहां पर सेना के जवानों द्वारा 'मॉक ड्रिल' नियमित तौर पर आयोजित की जाती है।

गिरिराज कार्यालय, शिमला-171 005, मो. 94181 72686

जीवनदायिनी

समृद्धि की संवाहक सतलुज

● सौरभ

दुनिया भर में फलने-फूलने वाली सभ्यताएं नदियों के किनारे ही विकसित हुई हैं। हिमाचल प्रदेश में चन्द्रभागा, यमुना, रावी, व्यास और सतलुज यह पांच नदियां जीवन रेखाओं की भान्ति बहती हैं और एक लम्बे भूभाग को सींचती हुई मैदानों में प्रवेश करती हैं। पर्वत के मूल की संस्कृति अधिक कोमल, अधिक सुकुमार रही है। इसमें पत्ती दर पत्ती कोमलता के साथ सुगन्ध रची-बची रहती है और साथ ही बीज के भाव भी। पर्वत कंदराओं की संस्कृति होने के कारण यह रहस्य के रोमांच से पूर्ण भी रही है।

ऐसी ही एक पौराणिक नदी है शतद्रु या सतलुज जो तिब्बत से निकल कर कई पर्वतों को लांघती हुई मैदानों में प्रवेश करती है। हालांकि अब बिलासपुर में भाखड़ा बान्ध बनने से यह गोबिंद सागर के रूप में ठहर गई है। स्वाधीनता के बाद बिलासपुर के भाखड़ा नामक स्थान पर देश का गौरवशाली बान्ध बना।

हम शिमला से ऊपर की ओर चलते हैं। सतलुज के गर्म पानी को छूने के लिए हमें ढली से मशोबरा होते हुए तत्ता पाणी की ओर उतरना होगा। यहां बर्फीले पानी में गर्म पानी की धाराएं फूटती हैं जो आश्चर्यजनक है।

जीवनदायिनी नदियां सीमा-रेखाएं भी निर्धारित करती हैं। हिमाचल में रावी, सतलुज, व्यास ने सीमा-रेखा का काम किया है रियासती समय में। अब यह सीमाएं प्रदेश को जिलों में विभाजित करती हैं। अंग्रेजों के समय में अंग्रेज और सिख साम्राज्य की सीमा रेखा यही सतलुज नदी थी। सतलुज के इस ओर अंग्रेजी राज था तो उस ओर सिख शासन। आज भी सतलुज के एक ओर जिला शिमला है तो दूसरी ओर कुल्लू और मण्डी। सतलुज के बाएं किनारे बसा है सुन्नी जो ब्रिटिश काल में शिमला हिल्ज की अट्ठाईस रियासतों में से एक भज्जी रियासत का अंग था। इसे संयुक्त रूप में सुन्नी-भज्जी भी कहा जाता था। सतलुज का यह किनारा जिला शिमला में है, दूसरी ओर जिला मण्डी का भीतरी भाग। सतलुज के बाएं किनारे हनुमान मंदिर है तो दाएं किनारे मण्डी का तत्ता पाणी।

तत्ता पाणी (गर्म पानी) एक पुराना, जाना-माना और प्रतिष्ठित धार्मिक स्थल है। मणिकर्ण की भान्ति गर्म पानी के चश्मों के जिस आकर्षण को लेकर यात्री जाता है, वैसा यहां नहीं है। नदी के किनारे उबलता हुआ पानी और बर्फीला पानी एक साथ छूने पर जो रोमांच होता है, वैसा अनुभव यहां नहीं होता। यद्यपि विशेष शनिवारों तुलादान के बाद नहाने का यहां विशेष महत्त्व है और लोग दूर दूर से ऐसा स्नान करने के लिए यहां आते हैं। कुछ जगह यहां पाइप द्वारा दरिया से गर्म पानी खींच कर ऊपर लाया गया है क्योंकि दरिया नीचे है। ईंटों की अधूरी दीवारें बनाकर स्नानागार खड़े किए गए हैं। सड़क के किनारे लक्ष्मीनारायण का एक छोटा-सा मंदिर है। मंदिर के बाहर बाबा कैलाशनंद की प्रतिमा है जिन्हें यहां का संस्थापक माना जाता है। वैशाखी के दिन यहां मेला लगता है।

सड़क के ऊपर नरसिंह मंदिर है। इस मंदिर के नाम कुछ भूमि है। जो आधी देवता के नाम है और आधी पुजारी के नाम। यही पुजारी इस मंदिर की व्यवस्था देखते हैं। लोहड़ी और वैशाखी के त्यौहार यहां भी मनाये जाते हैं। हिमाचल पर्यटन विकास निगम ने यहां एक होटल तथा आधुनिक स्नानागृह भी बना रखे थे किंतु कुछ वर्ष पहले तिब्बत में पारछू झील के टूटने से सतलुज में जो भयंकर बाढ़ आई उस में वह सब बह गया। नहाने के सभी स्थान बह गए और मन्दिरों को भी क्षति पहुंची।

अब यहां बान्ध बन रहा है और शीघ्र ही यह स्थान जल समाधि ले लेगा।

मशोबरा न जाकर रामपुर की ओर सीधे सफर में नारकण्डा एक आकर्षक स्थल आता है जहां पहुंचते-पहुंचते अपने को हम एक दूसरे लोक में पाते हैं। जहां नगरों की भीड़ के स्थान पर लम्बे साधक देवदारुओं के बीच शान्त व स्निग्ध वातावरण है। मोटर कारों की चिल-पों की जगह यहां प्रकृति का धीमा-धीमा मधुर संगीत उभरता है। नारकंडा से आगे बस धीर-धीरे घुमावदार मोड़ों में सड़क जैसे फंसती-फंसती नीचे उतरती है। यहां समग्र रूप में सतलुज की उपत्यकाओं के दर्शन होते हैं। चारों ओर दिखता है पहाड़ों का



विस्तार-एक ओर सेबों का गढ़ कोटगढ़ तो दूसरी और कुमारसेन। उस पार कुल्लू का बाहरी सिराज और ऊपर, बहुत ऊपर किन्नर कैलाश ! चारों ओर ढलानदार हरे-भरे पहाड़ जिनकी उतराई सतलुज को छूती है। नारकंडा से सैंज तक पहुंचते-पहुंचते उतराई विश्राम लेती है। और बस सतलुज की धारा के विपरीत रामपुर की ओर चलती है। सैंज से ही लूहरी होकर आनी को सड़क जाती है। रामपुर एक पुरानी रियासत है जो सतलुज के बाएं किनारे पर बसा है। रामपुर के पार ही है निरमण्ड जो पौराणिक परशुराम से जुड़ा है। रामपुर के पीछे नग्गर या दत्तनगर से झूले द्वारा सतलुज पार कर भी पांच किलोमीटर पैदल चल निरमण्ड पहुंचा जा सकता है। दत्तनगर में दत्तात्रेयजी का प्राचीन मंदिर है। यहीं नीरथ नामक स्थान में हजार वर्ष पुराना सूर्य मंदिर है, जो देश के गिने-चुने सूर्य मंदिरों में से एक है। रामपुर, सतलुज के किनारे समुद्रतल से 924 मीटर की ऊंचाई पर बसा है जहां बुशहर रियासत के महल हैं। रामपुर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में (1824-1856) बुशहर की राजधानी बना। राजमहल के साथ ही मन्दिर और बौद्ध गोन्पा है। कुछ वर्ष पूर्व इस गोन्पा का जीर्णोद्धार हुआ था जब महापावन दलाई लामा यहां पधारे थे।

रामपुर के ठीक सामने परशुराम का एतिहासिक गांव निरमण्ड है। पहाड़ी पर बसा एक बड़ा गांव है।

निरमण्ड व्यास की उपत्यकाओं का अंतिम छोर है और सतलुज का पहला। व्यास सतलुज नदियों की संस्कृतियां का सम्मिश्रण होने के साथ-साथ यहां की संस्कृति का अपना वैशिष्ट्य है। यहां व्यास की सभ्यता पर सतलुज की सभ्यता हावी हो गई लगती है। यहां की संस्कृति ने रामपुर, कोटगढ़ की ओर देखा है। कुल्लू की संस्कृति जलोड़ी जोत से होकर आनी तक तो पहुंची है किन्तु यहां तक आते-आते मानसून की भांति शुष्क हो गई हैं।

रामपुर सें आगे ज्यूरी से ऊपर चढ़ने पर भीमाकाली का प्रसिद्ध मन्दिर आता है। शिमला से 184 किलोमीटर पर भीमाकाली सराहन वास्तुकला की दृष्टि से अद्‌भुत शिल्प का उदाहरण है। वास्तुशिल्प, काष्ठकला, धातुकला सभी के उत्कृष्ट नमूने यहां मिलते हैं। ए.एच.फ्रेंके ने इस स्मारक को पहाड़ी वास्तुकला का सर्वोत्तम नमूना माना है। यहां बताया गया कि सराहन के पुजारियों के पास एक पुरानी पोथी है जिसका नाम 'प्रौढ़' है। निरमण्ड में भुण्डा के अवसर पर इसे यहां से पढ़ने के लिए ले जाया जाता है। सराहन को शोणितपुर माने जाने की किंवदंति के अनुसार इसे बाणासुर से जोड़ा जाता है। बाणासुर की राजधानी कामरू भी मानी जाती है। बाणासुर के विषय में कई कथाएं प्रचलित हैं। सराहन से नीचे उतरने पर ज्यूरी से आगे किन्नौर का प्रथम गांव चौरा आता है। सड़क के नीचे ढलान पर बसे इस गांव तथा छोटे से किलानुमा मन्दिर में किन्नौर के वास्तुशिल्प के दर्शन होते हैं।

♦♦♦

लोक उत्सव

प्राचीन व्यापारिक सम्बन्धों का प्रतीक लवी



राजधानी होने के साथ रामपुर व्यापार मेला लवी के लिए प्रसिद्ध है। इस मेले का इतिहास बहुत पुराना है तथापि अभी भी इसमें परंपरा का पुराना स्वरूप देखा जा सकता है। यह पुरातन व्यापार के तरीके और संस्कृति का प्रतीक है। कहा यह जाता है कि राजधानी बनने से पहले ही राजा केहरी सिंह (1639-1696) के समय लवी मेले का शुभारम्भ हो गया था। बुशहर रियासत में राजा केहरी सिंह बहुत प्रतापी राजा हुआ जिसने अपने राज्य का विस्तार किया। इसने सिरमौर, मण्डी और सुकेत से कर वसूला। क्योंथल, कोटखाई, कुम्हारसेन आदि, ठकुराइयों को अपने अधीन कर लिया। कुल्लू के बाहरी सिराज के इलाके अपने राज्य में मिलाए। लद्दाख और तिब्बत के बीच संघर्ष चला हुआ था। सन् 1681 में युद्ध छिड़ गया। लद्दाख और तिब्बत के बीच युद्ध का लाभ उठाते हुए केहरी

यह मेला हर वर्ष 11 नवम्बर से 14 नवम्बर तक मनाया जाता है। वर्तमान में इस मेले को 'अंतर्राष्ट्रीय उत्सव' का दर्जा प्राप्त है। कुछ वर्ष पहले तक यह मेला रामपुर बाजार के साथ साथ लगता था। सड़क के साथ ऊपर की ओर महल है तो नीचे की ओर बाजार। यह बाजार वैसे भी आसपास के क्षेत्रों तथा किन्नौर के लिए एक बड़ी मण्डी है। मेले के दौरान बाजार तो अब भी सजता है, यहीं रात को सांस्कृतिक कार्यक्रम किए जाते हैं।

सिंह ने किन्नौर के क्षेत्र को, जो लद्दाख के अधीन था, छुड़ाने की योजना बनाई। इस अभियान में राजा को अट्ठारह ठाकुराइयों से कोई सहायता नहीं मिल पाई। फिर भी केहरी सिंह सेना ले कर पश्चिमी तिब्बत की ओर गया जहां मानसरोवर के पास उसकी भेंट तिब्बत के शासक गेदन से हुई जो लद्दाख की ओर युद्ध के लिए जा रहा था। दोनों राजाओं का उद्देश्य लद्दाख से लोहा लेना था अतः दोनों में सन्धि हो गई। यह सन्धि 'नमग्या अभिलेख' में है।

अभिलेख में उल्लेख है कि जब इस क्षेत्र को लद्दाख के राजा ने जीता तो वह बुशहर, लद्दाख, नारिस, मरयुल के नीचे आने जाने वाले सामान पर कर वसूल करने लगा। बुशहर के राजा ने निचले प्रदेश से 25 राजा और 18 सामंत युद्ध के लिए बुलाए लेकिन कोई नहीं आया। राजा केहरी सिंह ने सोचा मुझे अकेले ही जाना चाहिए अतः राजा मानसरोवर गया। यहां तिब्बत के राजकीय अधिकारी ग्यालदन छवेंग और राजा के बीच भेंट हुई और अनुबंध हुआ। गुरु महामुनि बुद्ध को साक्षी मान कर शुद्ध संकल्प और पवित्र मन से उद्घोषित कर उसको स्वीकार किया। यह सन्धि बहुत महत्वपूर्ण है और इससे भी महत्वपूर्ण है इस का टेक्सट। सन्धि में काव्यमयी भाषा में लिखा गया : "जब तक त्रिकालज्ञ देवताओं का वास स्थान और जम्बूद्वीप के मध्य स्थित कैलास का हिम नहीं पिघलता, जब तक मानसरोवर झील पानी से रिक्त नहीं हो जाती, जब तक श्याम वर्ण कौवा सफेद नहीं हो जाता, तब तक ऊपर और नीचे वाले दोनों राजा अपने मैत्री सम्बन्ध कायम रखेंगे और अपने राज्य की सीमाओं में सत्कार्य कर के, सब प्राणियों का कल्याण करेंगे। ऊपर और नीचे के दोनों राजाओं के संदेशवाहक, राजकर्मचारी और राजदूत स्वछन्द इलाके में आ-जा सकेंगे। यह आवश्यक होगा कि बुशहर

सिपुर मेला

देव आस्था के साथ जुड़ी संस्कृति में मेलों, उत्सवों व त्योहारों का स्वरूप यथावत् विद्यमान है और स्थानीय लोग इनमें बढ़-चढ़ कर भाग लेते हैं। अपनी प्राचीनता को संजोए एक ऐसा ही मेला शिमला से 11 किलोमीटर दूर सिपुर गांव में मनाया जाता है। समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक यह मेला भगवान शिव को समर्पित है।

समूचे प्रदेश की भांति शिमला जिले में भी देव संस्कृति की अपनी एक अलग पहचान है। शिमला भले ही प्रदेश की राजधानी व पर्यटन गतिविधियों के तौर पर विश्वभर में जाना जाता हो, लेकिन शिमला शहर के सटे कुछ क्षेत्रों में यहां की प्राचीन संस्कृति आज भी देखने को मिलती है। देव आस्था के साथ जुड़ी यह संस्कृति मेलों, उत्सवों व त्योहारों के रूप में यथावत् विद्यमान है और स्थानीय लोग इसमें बढ़-चढ़ कर भाग लेते हैं। अपनी प्राचीनता को संजोए एक ऐसा ही मेला शिमला से 11 किलोमीटर दूर सिपुर गांव में मनाया जाता है। समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक यह मेला भगवान शिव को समर्पित है। इस मेले को कोटी रियासत के राजवंश द्वारा आरंभ किया गया था। आजादी से पूर्व इस मेले को रियासत की देखरेख में ही मनाया जाता था लेकिन आजादी के बाद से जिला प्रशासन इस मेले को नियमित तौर पर आयोजित कर रहा है। सरकार ने इस मेले को जिला स्तरीय दर्जा प्रदान किया है। शिमला के पर्यटक स्थल मशोबरा से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित सिपुर गांव, जहां पर सिपुर मेला आयोजित किया जाता है, एक देवदार व बान के हरे पेड़ों से घिरा एक रमणीक स्थल है। पारंपरिक रूप से यह मेला मई माह में संक्रांति को कोटी रियासत के स्थानीय देवता सिपुर की विधिवत पूजा अर्चना के साथ शुरु होता है और दूसरे दिन समाप्त होता है। क्षेत्र के अराध्य देव सिपुर के मंदिर साथ ही यहां पर मां दुर्गा व हनुमान के मंदिर भी हैं जिनमें स्थानीय लोगों की प्रगाढ़ आस्था है। दो दिनों तक चलने वाले इस मेले में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अलावा खेलकूद प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया जाता है। साथ ही विभिन्न विभागों की विकासात्मक प्रदर्शर्नियां भी लगाई जाती हैं। मशोबरा में एक और मेला सायर संक्रांति को भी लगता है। यह मेला मशोबरा के तलाई में होता है। इस मेले में भैंसों की लघई करवाई जाती है।

राज्य के संदेशवाहक तीन वर्ष में आएं और नारिस के तीनों खण्डों की राजधानियों, सपरंग, रोथंग और जंगर में वास करें। ऊपर और नीचे के राजाओं के संदेशवाहक को ऊपर और नीचे (अर्थात् तिब्बत और बुशहर में) आते जाते बाल भर भी तंग न किया जाए और किसी प्रकार का कर न लिया जाए और न ही कोई कष्ट पहुंचाया जाए। ऊपर और नीचे के राजा अपने सत्कार्यों में ऐसी व्यवस्था बनाएं जिससे आने जाने वाले लोग निर्भय हो कर विष और घातक हत्यारों के भय से सर्वथा मुक्त हो कर विचरण करें।'' इस सन्धि के अनुसार तिब्बत और बुशहर के व्यापारी निर्भय हो कर आने जाने लगे। तिब्बत के व्यापारी ऊनी और पश्म बुशहर में बेचने के लिए ला सकते थे। इसी प्रकार बुशहर के व्यापारी तिब्बत जा कर ऊन, कपड़ा, अनाज तथा नमक बेच सकते थे। सन्धि के बाद लवी मेले को व्यापारिक रंग मिला। व्यापारी बेरोकटोक तिब्बत से बुशहर आने जाने लगे और मेले में पश्म, ऊन, पट्टू, दोह्डू, शालें, दुपट्टे, शिलाजीत, बादाम, चिलगोजे, सूखे मेवे, पहाड़ी चाय, काला जीरा, सेब आदि का क्रय विक्रय होने लगा। मेले में भेड़ बकरियों और घोड़ों का व्यापार भी होता था। पुराने समय में लोग मीलों सफर तय करते हुए गूंठ नस्ल के घोड़े तथा भेड़ बकरियां पर्याप्त मात्रा में लाते थे। घोड़े और भेड़ बकरियों का प्रयोग बोझा ढोने के लिए भी किया जाता। इन पशुओं की पीठ पर ही लोई, पट्टी, पश्म, ऊन, गुदमे, नमदे लाद कर बुशहर लाए जाते और बादाम, चिलगोजा, खुर्मानी, जीरा, शिलाजीत आदि यहां से ले जाए जाते। नमक और चीनी का भी बहुत महत्व था, अतः इनका लेन देन भी किया जाता। लवी के विधिवत् 'खुलने' की घोषणा राजा बुशहर द्वारा की जाती थी। राजा तथा रियासत के मोहतबर लोगों के परामर्श से ही क्रय विक्रय आरम्भ होता था। तिब्बत-बुशहर सन्धि सन् 1947 तक चलती रही। अब यह मेला हर वर्ष 11 नवम्बर से 14 नवम्बर तक मनाया जाता है। वर्तमान में इस मेले को 'अंतर्राष्ट्रीय उत्सव' का दर्जा प्राप्त है। कुछ वर्ष पहले तक यह मेला रामपुर बाजार के साथ साथ लगता था। सड़क के साथ ऊपर की ओर महल है तो नीचे की ओर बाजार। यह बाजार वैसे भी आसपास के क्षेत्रों तथ किन्नौर के लिए एक बड़ी मण्डी है। मेले के दौरान बाजार तो अब भी सजता है, यहीं रात को सांस्कृतिक कार्यक्रम किए जाते हैं, किंतु मेले के आयोजन के लिए बाजार से आगे मेला ग्राउण्ड बना दिया गया है जहां विभिन्न विभागों की विकास प्रदर्शनियों के साथ मेले के लिए अलग-अलग बाजार बनाए जाते हैं।

● सौरभ
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला-171001

पारम्परिक अनुष्ठान

शांति महायज्ञ
शांद

• डॉ. भवानी सिंह

हिमाचल प्रदेश प्रागैतिहासिक काल से ही प्राकृतिक सुविधाओं, स्वच्छ व शाँऽत्त वातावरण के कारण बड़े-बड़े महापुरुषों, ऋषि-मुनियों एवं देवी-देवताओं की तपोभूमि रही है। इसी वातावरण में इन महान् विभूतियों ने कठोर साधना करके कई प्रकार की शक्तियाँ तथा सिद्धियाँ अर्जित की हैं। मन की शान्ति, जीवन- यापन की सुख-समृद्धि तथा शक्ति को प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े महायज्ञों के आयोजन की परम्परा हिमालय की गोद से ही आरम्भ हुई है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार पश्चिमी हिमालय हिमाचल प्रदेश का जिला शिमला, कुल्लू तथा मण्डी के प्राकृतिक व रमणीय स्थल महर्षि परशुराम के तपस्वी स्थल रहे हैं। इन स्थानों में परशुराम ने कई वर्षों तक कठोर साधना की है।

हिमाचल प्रदेश के जिला शिमला का लोकतजीवन देव-संस्कृति से पूर्ण रूप से प्रभावित है। वर्तमान में अधिकतर महायज्ञों का आयोजन प्राचीनकाल से चला आ रहा है, जिनमें प्रमुख हैं - शाँऽत्त महायज्ञ, भूंडा, भोज महायज्ञ इत्यादि। शिमला क्षेत्र के अधिकतर भूभाग में दुर्गा, काली, शिव, महासू व नाग देवता के अतिरिक्त प्रत्येक गाँव के स्थानीय इष्ट देवता और कुल देवता के मन्दिर मौजूद हैं। इनके द्वारा प्रत्येक वर्ष किसी-न-किसी धार्मिक मेले, उत्सव व महायज्ञों का आयोजन किया जाता है, जिन पर यहाँ के स्थानीय लोगों की अटूट आस्था है। शिमला जिलों के अतिरिक्त शाँऽत्त महायज्ञ का आयोजन जिला सिरमौर एवं कुल्लू के कुछ-एक क्षेत्रों में भी बड़ी धूमधाम से किया जाता है।

शाँऽत्त महायज्ञ की एतिहासिक पृष्ठभूमि

एक प्राचीन किवदन्ती के अनुसार परशुराम के पिता ऋषि जमदग्नि अपनी पत्नी रेणुका जी के किसी अपराध को लेकर अति रुष्ट हुए। उन्होंने रेणुका को इस अपराध से छुटकारा दिलाने के लिए उसे प्राणदण्ड देना उचित समझा। इस कार्य के लिए उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र से लेकर क्रमशः सभी को आदेश दिया कि इस अपराध हेतु अपनी माँ का वध कर दें। परन्तु किसी पुत्र ने इसका पालन नहीं किया। अन्त में ऋषि जमदग्नि ने यह कार्य अपने कनिष्ठ पुत्र परशुराम को सौंपा। ऋषि जमदग्नि परशुराम के पिता होने के साथ-साथ उनके गुरु भी थे। अतः उन्होंने पिता एवं गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए 'गुरोराज्ञा गरीयसी' सर्वोपरि मानकर अपनी माँ का वध कर दिया, जिसके कारण परशुराम को मातृहत्या का पाप लगा। परशुराम अपने पिता की नजरों में एक आज्ञाकारी पुत्र के रूप में विश्वासित हो गए। तत्पश्चात् परशुराम ने अपने पिता से माँ रेणुका को जीवित करने का वर माँगा। पिता के तथास्तु बोलते ही माँ रेणुका जीवित हो गई। मातृहत्या की घटना से परशुराम का मन बहुत दुःखी हो गया था। वे हत्या की निवृत्ति, मन की शान्ति और अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति के लिए भगवान् शिव की अराधना करना चाहते थे। इसलिए वे तपोभूमि की खोज में हिमालय (हिमाद्रि) पर्वत में इधर-उधर घूमने लगे।

एवंसंचिन्तयानः हिमाद्रिवन गहरे।
विचचार चिरेरामः मुदा परमया युतः।।
आससाद वने तस्मिन् विपुले भृगुपुंगवः।
सरोवरं महाराज विपुलं विमलोदकम्।। (म. भा., उपो. पा. 3, अ. 22, श्लोक 61-62)

अन्त में हिमालय के हिमाद्रि वन गहूर में परशुराम जी को विमलोदक सरोवर मिला। उस सरोवर के निकट उन्होंने अपना आश्रम बनाया तथा वहाँ रहकर उनका मानसिक संतुलन भी ठीक हो गया। परशुराम जी के इस आश्रम में कई तपस्वी और ऋषि-मुनि भी सत्संग हेतु उनके पास आने लगे। यहाँ पर महाऋषि परशुराम ने 12 वर्ष तक शिवजी की कठोर तपस्या की, जिससे महाशिव अतिप्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले -

परीत्य पृथिवीं सर्वां सर्व तीर्थेषु चक्रमातः।
सनात्वा पवित्र देहस्त्वं सर्वाण्यस्त्राण्यवाप्स्यसि।। (म. भा., उपो. पा. 3, अ. 23, श्लोक 37)

अर्थात् हे परशुराम! तुझे मातृहत्या का पाप लगा हुआ है। तुझे



सभी तीर्थों में स्नान तथा सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करनी पड़ेगी। तभी तुम इससे उऋण हो पाओगे तथा पवित्र शरीर होकर सभी अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त कर सकोगे। परशुराम ने भी ऐसा ही किया। सब तीर्थ स्थानों में स्नान करके कई देवालयों में तर्पण-उपवास, जप-तप तथा यज्ञ आदि सम्पन्न करने के पश्चाात् परशुराम जी पुनः उस निर्मल जल वाले आश्रम श्री पटल (गाँव निरमण्ड, जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश) लौट आए।

श्री पटल जो कि वर्तमान गाँव निरमण्ड, जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश के नाम से जाना जाता है। पुनः यहाँ आकर परशुराम जी ने बारह वर्ष तक तपस्या की, जिससे उनकी मानसिक अशान्ति दूर होकर पूर्णरूपेण आत्मा प्रसन्न हो गई। तत्पश्चात् परशुराम जी ने यहाँ से इस आत्मसंतुष्टि की स्मृति में एक शान्ति नाम का यज्ञ रचाया, जो बाद में लोक बोली में शाँऽत्त व शाँऽद्द महायज्ञ की परम्परा के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ता चला गया। मानव के कल्याण व सुख-समृद्धि के लिए परशुराम जी ने पश्चिमी हिमालय के क्षेत्र में शाँऽत्त महायज्ञ के बाद भूण्डा महायज्ञ, वदपुर व भड़ोजी यज्ञ आदि की नींव भी डाली। कालान्तर से लेकर आज तक जहां-जहां परशुराम की स्थापना की गई है, वहां-वहां इन महायज्ञों एवं यज्ञों की परम्परा आज भी जीवन्त रूप में प्रस्तुत हो रही है, जिनमें जिला शिमला के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी शाँऽत्त महायज्ञ बहुत प्रसिद्ध है। लेकिन समय परिवर्तन के साथ-साथ इसकी कार्य प्रणाली में कुछ परिवर्तन तो देखने को मिल रहे हैं, लेकिन इसका स्वरूप व अस्तित्त्व आज भी प्राचीन सा ही लगता है। अतः प्राचीन काल से जिला शिमला में शाँऽत्त महायज्ञ का आयोजन सुख-शान्ति व समृद्धि के लिए होता रहा है जिसके आयोजन में स्थानीय देवता की मुख्य भूमिका रहती है।

शाँऽत्त महायज्ञ का उद्देश्य

महर्षि परशुराम ने तो शाँऽत्त महायज्ञ को आत्मसंतुष्टि के उद्देश्य से किया था जिसमें कई महात्माओं एवं ऋषि-मुनियों ने उनका साथ दिया था। वहीं से यह परम्परा मानव जीवन के साथ आगे बढ़ती गई। कालान्तर में इसके उद्देश्य में थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ है। जब भी किसी क्षेत्र में प्राकृतिक आपदा का प्रकोप होता है या किन्हीं अन्य कारणों, जैसे अकाल मृत्यु, असाध्य व संक्रमण रोग के कारण से लोगों में अशान्ति महसूस होती है तो सम्पूर्ण जनसमुदाय इसका कारण वहाँ के स्थानीय या ग्राम्य देवी-देवताओं से पूछता है। देवी-देवता अपने गूर (देवता का प्रवक्ता, जिसके शरीर में देवात्मा प्रवेश करती है) के माध्यम से जनसमुदाय को शाँऽत्त महायज्ञ के आयोजन हेतु आदेश देते हैं। इसके अतिरिक्त जब भी किसी गाँव में स्थानीय देवी-देवता के मन्दिर का निर्माण सम्पूर्ण होता है तो उसकी प्रतिष्ठा तथा सुख-समृद्धि के लिए भी शाँऽत्त महायज्ञ करवाया जाता है।

शाँऽत्त महायज्ञ का स्वरूप एवं प्रक्रिया

जिला शिमला की सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था सरल तथा धार्मिक रुढ़ियों से मुक्त है। भौगोलिक परिवेश की दुर्गमता के कारण सरकार का नियन्त्रण सहज न होने से यहाँ के जनसमुदाय में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व प्रशासन से अधिक देवी-देवताओं पर रहा है। यहाँ के समाज के समस्त क्रियाकलाप देवताओं की परिधि में घूमते हैं। कोई भी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ व महायज्ञों का आयोजन देवी-देवताओं की अनुमति के बिना सम्भव ही नहीं हो पाता है।

शाँऽत्त महायज्ञ का आयोजन भी स्थानीय देवी-देवताओं की अनुमति से आरम्भ होता है। प्राकृतिक आपदा से बचने, अपने क्षेत्र में सुख-शान्ति और समृद्धि के लिए जब शाँऽत्त महायज्ञ की प्रक्रिया का आरम्भ होता है तो सर्वप्रथम देवी-देवताओं के पुरोहितों द्वारा तीन माह पूर्व शुभ मुहूर्त निकाला जाता है। उसी दिन से इस महायज्ञ के सफल आयोजन हेतु साधन जुटाने शुरू कर दिए जाते हैं। लोग आपस में अपनी इच्छानुसार अनाज, तेल, घी एवं नगद राशि, जिसे स्थानीय बोली में 'फांट' कहा जाता है, एकत्रित करते हैं। इसके अतिरिक्त मेहमान-नवाजी के लिए अपने-अपने घरों में खाद्य सामग्री, बिस्तरे एवं खड्डू-बकरे का प्रबन्ध भी पहले ही कर लिया जाता है। स्थानीय देवताओं की समिति द्वारा शाँऽत्त महायज्ञ के आयोजन से लगभग तीन माह पूर्व आसपास के सभी देवताओं व देवलुओं तथा खूँदों (क्षत्रिय राजपूतों का समूह) को औपचारिक रूप से शाँऽत्त में भाग लेने के लिए निमन्त्रण भेजा जाता है। यज्ञ आरम्भ होने के सात दिन पूर्व फिर से आमन्त्रित देवी-देवताओं की यज्ञ में आने हेतु सहमति व असहमति ली जाती है। शुभ मुहूर्त के अनुसार शाँऽत्त महायज्ञ का एक सप्ताह पूर्व ही शान्ति पाठ का जाप एवं हवन विधि-विधान के साथ शुरू हो जाता है जो कि लगभग तीन भाग में पूरा होता है -

1. पहला भाग - सगेड़ा (सामाजिक मिलन)

शाँऽत्त महायज्ञ की प्रक्रिया का पहला भाग सगेड़ा कहलाता है, जिसमें शाँऽत्त के लिए आमन्त्रित किए गए अतिथि देवी-देवताओं तथा उनके साथ खूँद आदि का यज्ञ आयोजन स्थल



पर आगमन होता है। स्थानीय देवता तथा समिति द्वारा इन अतिथियों का साज-बाज के साथ स्वागत किया जाता है। स्थानीय देवता तथा अतिथि देवी-देवताओं का काफी समय तक आपस में मिलन होता है। खूँद राजपूत सैंकड़ों की संख्या में पारम्परिक वेशभूषा में सजधज कर, सिर पर पगड़ी उस पर कलगी, जंजीर, बहुमूल्य चोगा और हाथ में चाँदी की तलवार, खुखरी व बन्दूकों आदि को लिए हुए लोकवाद्यों के साथ नृत्य करते हैं। इस दृश्य को देखकर दर्शकों का मन भाव-विभोर हो जाता है। इनके रहने व खाने-पीने का उचित प्रबन्ध आयोजकों द्वारा किया जाता है। दूसरी ओर देव-पण्डितों द्वारा चावल के आटे में विभिन्न रंग मिलाकर खुले प्रांगण में मण्डप बनाया जाता है, जहाँ पर आमन्त्रित देवी-देवताओं का शक्ति-परीक्षण होता है। मण्डप के बीचो-बीच एक नारियल को रखा जाता है, जिसको अपने कब्ज़े में लाने के लिए देवी-देवताओं में प्रतियोगिता होती है। जो देवता इसमें जीत जाता है, उसके साथ आए हुए लोग हर्षोल्लास से झूम उठते हैं और आयोजक देवता की ओर से उसे एक विशेष भेंट दी जाती है।

2. द्वितीय भाग - शिखाफेर (मन्दिर के शिखर से चारों दिशाओं की चोटियों तथा गाँव की परिक्रमा का पूजन)

शाँऽत्त महायज्ञ की दूसरी प्रक्रिया शिखफेर की है। दूसरे दिन मेजबान देवता अपने गाँव की तथा आयोजन स्थल की चारों ओर से परिक्रमा करता है जिसे फेर कहा जाता है। इस फेर में पण्डितों द्वारा मन्त्रोच्चारण करके पूजा-पाठ किया जाता है। नाथ सम्प्रदाय के लोग भी शिंगी बजाकर अपनी हाजरी देते हैं। फेर प्रक्रिया में हजारों लोगों के साथ देवता के गूर अपने गालों में ताँबे व चाँदी की शलाखों को चुभोकर दैविक शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। परिक्रमा के दौरान विभिन्न स्थानों पर अनिष्ट की आशंका के दृष्टिगत दुष्ट आत्माओं के शमन हेतु भेड़, सुअर, मुर्गे तथा बकरों की बलि दी जाती है।

इसके अतिरिक्त कद्दू, अखरोट व आटे को चारों दिषाओं में फेंका जाता है। फेर में पीछे-पीछे से लोग हजारों की संख्या में हाथों में पारम्परिक अस्त्र-शस्त्र को पकड़े हुए नृत्य करके आगे बढ़ते रहते हैं। फेर पूजन के पश्चात् मन्दिर की छत पर शिखाफेर पूजन होता है जिसमें देवताओं के गूर व ब्राह्मणवर्ग देवता के नशाण सहित अन्य देवलु मन्त्रोच्चरण के साथ मन्दिर की छत की परिक्रमा करके पूजन करते हैं। शिखा पूजन में चारों दिशाओं के पहाड़ों में बसी कालियों का आवाहन किया जाता है। मन्दिर की शिखा पर बकरों की बलि का भी प्रचलन था। (हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के वर्ष 2014 के आदेशानुसार राज्य में बलि प्रथा पर पूर्ण प्रतिबंध) तत्पश्चात् चारों दिशाओं के नाम पर भी बलि दी जाती है। यह शिखा पूजन शाँत महायज्ञ का मुख्य पूजन होता है जिसमें क्षेत्र की शान्ति व सुख-समृद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है।

3. तृतीय भाग - उछड़-पाछड़ (समापन समारोह)

शाँऽत्त महायज्ञ का समापन तीसरे भाग उछड़-पाछड़ के साथ होता है। इस प्रक्रिया में भी तीसरे दिन फिर से मण्डल तैयार किया जाता है जिसमें देवताओं का शक्ति-परीक्षण होता है। मन्दिर के भीतर निरन्तर पूजा-अर्चना चली रहती है जहाँ पर आम लोगों के लिए प्रवेश वर्जित होता है। मन्दिर के गर्भ गृह में चल रहे हवनकुण्ड में पूर्ण आहूति डाली जाती है। तत्पश्चात् एक भेड़ व बकरे की बलि देते हुए अनिश्चित् समय के लिए विधि-विधान के अनुसार हवनकुण्ड को बन्द कर दिया जाता है। अब यह हवनकुण्ड तभी खुलेगा जब कभी भविष्य में इस जगह शाँऽत्त महायज्ञ का आयोजन होगा। इस प्रकार सभी कार्य-कलापों के पश्चात् सभी देवी-देवताओं के साथ आए हुए विभिन्न वर्गों के लोग आपस में मिलजुल कर ढोल-नगाड़ों, रणसिगों, करनालों, कन्थाल, भाणे व शहनाइयों की स्वर-ध्वनियों से झूमते हुए पारम्परिक नृत्य करते हुए सबसे विदाई लेते हुए अपने घरों को प्रस्थान करते हैं।

शाँऽत्त महायज्ञ वास्तव में महर्षि परशुराम ने घोर तपस्या करके 12 वर्ष के अन्तराल आरम्भ किया था। तत्पश्चात् यह परम्परा आगे बढ़ती चली गई। समय परिवर्तन के साथ-साथ इस महायज्ञ में भी परिवर्तन होता रहा है। हिमाचल प्रदेश के कई क्षेत्रों में इसकी परम्परा समाप्त होती रही है। लेकिन वर्तमान में जिला शिमला, सिरमौर और कुल्लू के निरमण्ड क्षेत्र में इस परम्परा के जीवन्त उदाहरण आज भी देखने को मिलते हैं। विरासत में मिली इस सांस्कृतिक धरोहर के अध्ययन से एक बात तो स्पष्ट देखने को मिलती है कि जनसमुदाय में सामाजिक एकता और भाईचारे को बढ़ावा देने के लिए इस प्रकार के महायज्ञ सशक्त माध्यम के रूप में उभरे हैं। सरकार व प्रशासन भी इस तरह के महायज्ञों में रुचि लेने लगे हैं। सरकार जनकल्याण से जुड़े इस तरह के क्रियाकलापों में मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करवाने के साथ-साथ कानून व यातायात व्यवस्था तथा विकासात्मक कार्यों के लिए भरसक प्रयास करती है।

देव संस्कृति का जीवन्त स्वरूप

भूंडा महायज्ञ

सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्राकृतिक शक्तियों के आगे मानव नतमस्तक होता रहा है। यहां की दिव्य भूमि पर वैदिक ऋषि-मुनियों से लेकर अनेक महात्मा विभिन्न स्थलों पर तपस्या में लीन रहे हैं और उनमें से अधिकांश कालान्तर में ग्राम-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठापित हुए जिनका प्रभाव आज भी यहां के जनजीवन पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ग्राम देवताओं के अस्तित्व के बगैर प्रदेश की संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वस्तुतः शिमला जिला में सैकड़ों देवी-देवताओं का वास है। इसलिए यहां के समाज में देवतन्त्र का विशेष महत्त्व है। यह जिला देव- भूमि होने के साथ-साथ आसुरी शक्तियों से भी अछूता नहीं रहा है। आसुरी शक्तियां आदिकाल से ही यहां के लोगों को भयभीत करती रही हैं, जिससे मुक्ति देवताओं द्वारा ही दिलाई जाती रही हैं। विभिन्न परगनों एवं गांवों में किसी भी प्रकार के संकट को लेकर भी यहां के लोग देवताओं से सहायता मांगते हैं। यहां के जन समुदाय का मानना है कि अपने-अपने क्षेत्र से प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक संकट को टाल देने तथा सुख-समृद्धि को प्राप्त करने हेतु स्थानीय देवता के दिशा-निर्देशों से पूजापाठ एवं महायज्ञ आदि का आयोजन करने की प्रथा प्रचलित है जिनमें भूंडा महायज्ञ का आयोजन बड़ी श्रद्धा एवं आस्था के साथ किया जाता है। इस यज्ञ में देवताओं को खड्डू बकरों तथा अन्य जानवरों की बलि चढ़ाने के बारे में लोगों का कहना है कि देवताओं को बलि नहीं चढ़ाई जाती, बल्कि देवता के साथ सैंकड़ों आसुरी शक्तियों एवं भूत-प्रेतों का होना माना जाता है और उन्हीं के नाम पर बलियां चढ़ाई जाती हैं। शिमला जिला के समाज में कई महायज्ञों का आयोजन किया जाता है। जैसे शांद, भड़ोजी प्रतिष्ठा, काली पूजन, भोज तथा भूण्डा महायज्ञ अधिक प्रमुख हैं। इन महायज्ञों में भूंडा महायज्ञ सबसे प्रसिद्ध है तथा यह इस जिला की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर है। भूंडा महायज्ञ को शिमला जिला के परगना समरकोट के गांव पुजारली, गांव बच्छून्छ, गांव कुई तथा छौआरा परगना के गांव नंडला तथा गांव कुलगांव में प्राचीन समय से ही मनाया जाता रहा है। वर्तमान में भूंडा महायज्ञ का आयोजन 23, 24, 25 और 26 दिसम्बर 2005 को देवता बौन्द्रा की अगुआई में रोहड़ू तहसील के गांव बच्छून्छ में किया गया। इस महायज्ञ में देवता बकरालू, देवता परशुराम, देवता बैन्द्रा, देवता महेश्वर ने भाग लिया। तत्पश्चात् शिमला जिला के ही रामपुर तहसील के देवठी गांव में देवता



महायज्ञ का एक दृश्य



भूंडा महायज्ञ में भाग लेने जाते देवता

है। जिस गांव में इस महायज्ञ का आयोजन होता है वहां पर इस व्यक्ति को तीन माह पूर्व देवता के वाद्य-यन्त्रों के साथ गांव में लाया जाता है। लोगों द्वारा किसी विशेष जगह (घासनी) से मूंज नामक घास को काटकर लाया जाता है जिसकी रस्सी बनाई जाती है, जिसका प्रयोग बेड़ा व्यक्ति के लिए किया जाता है। इस रस्सी को बनाने का कार्य बेड़ा व्यक्ति स्वयं तीन माह तक करता है, जिसकी लम्बाई लगभग तीन सौ मीटर होती है। बेड़ा तथा उसके परिवार का पालन-पोषण देवता द्वारा किया जाता है।

भूंडा महायज्ञ के पूजन का शुभारम्भ हवन कुंड से होता है, जहां पर बेड़ा व्यक्ति को प्रतीकात्मक मानव बलि के रूप में चढ़ाया जाता है। मंत्रोच्चारण के साथ बेड़ा व्यक्ति को रस्से पर फिसलने के लिए तैयार किया जाता है। बेड़े द्वारा जो रस्सी तैयार की जाती है, उसे किसी स्वच्छ नाले में भिगोने के लिए रखा जाता है। बेड़े को नीचे फिसलने के लिए ऊँची जगह को चुना जाता है। इस ऊँची चोटी पर एक खम्बा गाड़ दिया जाता है तथा 300 मीटर नीचे तिरछे ढलान में दूसरा खम्बा गाड़ दिया जाता है। तत्पश्चात् पानी में रखी गई रस्सी को शुभ मुहूर्त के साथ खूदों द्वारा (वीर राजपूत) ऊपर ऊंची चोटी पर लाया जाता है जहाँ लकड़ी के खम्बे में उसका एक सिरा तथा गहरे नाले को पार करते हुए दूसरा सिरा निचले खम्बे में बांध दिया जाता है। ऊपर वाले सिरे पर एक अखरोट की लकड़ी द्वारा बनाई गई काठी (सीट) विशेष रूप से रस्सी पर बांधी जाती है। बेड़े को रस्सी पर बांधी गई काठी पर बिठाया जाता है जिसके दोनों तरफ संतुलन को बनाए रखने के लिए रेत से भरी बोरियां बंधी होती हैं। बेड़े के दोनों हाथों में सफेद कपड़े के झण्डे पकड़ाए जाते हैं और उसको रस्सी पर नीचे छोड़ दिया जाता है। दूसरी तरफ नीचे देवते बेड़े का सुरक्षित रूप से इन्तजार करते हैं। हजारों लोग दम सादे हुए इस दृश्य को देखते हैं। बेड़े के नीचे पहुँचते ही लोग खुशी से चिल्ला पड़ते हैं। बेड़े के सुरक्षित पहुँचने पर उसे देवता की पालकी की बाजुओं पर बैठा कर लोग नृत्य करते हुए उसे मन्दिर में पहुँचाया जाता है, जहाँ पर सभी लोग उसे पैसे देते हैं।

ऐसे सामाजिक एवं धार्मिक महायज्ञ अनेकता में एकता को स्थापित करते हैं। वर्तमान में भूंडा महायज्ञ के आयोजन का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण जिला में सुख-शान्ति स्थापित करना तथा जिला को समृद्धशाली बनाना होता है। भाईचारे एवं नाते-रिश्ते के मधुर मिलन को ऐसे महायज्ञ से बढ़ावा मिलता है।

कालेश्वर की अगुवाई में इस महायज्ञ का आयोजन 1 जनवरी, 2007 से लेकर 4 जनवरी 2007 तक किया गया। इस महायज्ञ को देखने के लिए देश-प्रदेश से लाखों की तादाद में जन समूह उमड़ा।

भूंडा महायज्ञ की परम्परा कहां से शुरू हुई यह तथ्य बहुत ही रोचक है। यह महायज्ञ पौराणिक तथा वैदिक है। कहा जाता है कि भूंडा महायज्ञ की उत्पति भंडासुर से हुई है और इस महायज्ञ की परम्परा का आरम्भ काव नामक स्थान तहसील करसोग, जिला मण्डी से हुआ है। सबसे पहले भूंडा महायज्ञ यहीं मनाया गया था, जिसके अवशेष आज भी कामाक्षा माता मन्दिर काव में उपलब्ध हैं। काव के बाद ममेल, निरथ, दत्तनगर जो कि रामपुर तहसील के गांव हैं, में भूंडा महायज्ञ को मनाया गया था। इसके पश्चात् जिला कुल्लू के निरमंड में इस महायज्ञ को मनाया गया।

शिमला जिला में यह परम्परा कैसे पहुँची, यह भी एक रोचक तथ्य है। बुजुर्ग लोगों का कहना है कि जब निरमंड में महायज्ञ हुआ था तो उस समय वहां पर भूंडे में प्रयोग किए जाने वाला रस्सा टूट गया था जिसका टूटा हुआ टुकड़ा मुराल पर्वत को पार करते हुए शिमला जिला के गांव नंडला में बिजली की तरह गिरा। स्थानीय लोग इससे भयभीत हुए तथा उन्होंने अपने कुल देवता की आराधना की। नंडला के देवता ने लोगों को सलाह दी कि यह रस्सा उनके गुरु परशुराम द्वारा रचाया गया भूंडा महायज्ञ का है। इसकी आराधना करना अति आवश्यक है। तभी से शिमला जिला के कुछ गांव में भूंडा महायज्ञ को मनाए जाने की परम्परा आरम्भ हुई जो कि आज तक निभाई जा रही है।

भूंडा महायज्ञ की तैयारियां एक वर्ष पूर्व आरम्भ हो जाती हैं। इस महायज्ञ का सबसे महत्त्वपूर्ण अवशेष रस्सी, बेड़ा और हवन कुण्ड है। इसलिए वास्तविक रूप से इसके आयोजन की रूपरेखा तीन माह पूर्व से आरम्भ हो जाती है। बेड़ा, जिसकी इस महायज्ञ में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, यह एक विशेष जाति का व्यक्ति होता

अनुसन्धान अधिकारी, एकीकृत हिमालयन अध्ययन संस्थान
(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का उत्कृष्ट केन्द्र)
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-5
मोबाइल नं. 0 94180 88848

बिशू

महाभारत युद्ध का प्रतीक

खूंदों का पारम्परिक खेल ठोडा

• श्याम सिंह घुना

शिमला जिले में महाभारत के युद्ध का प्रतीक ठोडा खेल, बिशू (मेला) प्रतिवर्ष बड़े जोश-खरोश व धूमधाम से मनाया जाता है। कभी शाठी खूंद पांशी खूंद को मेला लगाकर ठोडा खेलने हेतु आमंत्रित करता है तो कभी पांशी खूंद शाठी को 'बाड़' कर लाता है। 'बाड़' कर आमंत्रित करने की यह विधि प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इसके अनुसार संध्या होते-होते या प्रातःकाल मुंह अंधेरे में बाड़ने वाला खूंद गांव को आने वाले रास्ते में भेखल या कशमल की झाड़ी बिछाकर अपने प्रतिद्वंद्वी को आमंत्रित करता है अथवा चुनौती देता है। इस चुनौती को 'बाड़ना' कहते हैं यानी झाड़ी का बाड़ लगाकर चुनौती दी जाती है। गांव को आने वाले रास्ते में झाड़ियां डालकर चुनौती देना

पोरा पौड़े मेरेया खूंदा शाठिया
पांशी री जुंबड़ी खै ठोडै खेलदा... आ...आ...

बिशू (मेला) लगाने वाला खूंद अपनी जगह/ठौड़ यानी अपनी काली माता की पूजा-अर्चना के तत्पश्चात ब्राह्मणों से उचित दिन खोजकर मेले में जाने का मुहूर्त खोजा जाता है। अपनी ठौड़/जगह यानी काली माता से स्वीकृति प्राप्त करता है व आशीर्वाद लेता है। ब्राह्मणों को अनुष्ठान में बिठाकर बिशू में जाने की अनुमति ली जाती है। प्रस्थान करने से पूर्व प्रत्येक खूंद अपनी जगह अथवा ठौड़ के मंदिर में जाकर 'ठौड़' माता के आगे नतमस्तक होकर माथा टेकता है और आशीर्वाद प्राप्त करता है। ठोडा खेल के नियमानुसार शाठी, शाठी के साथ प्रतियोगिता में नहीं उतरता न ही पांशी, पांशी के साथ मुकाबला करता। शाठी व पांशी एक दूसरे के विरुद्ध ही ठोडा प्रतियोगिता में उतरते हैं। एक जनश्रुति अनुसार माना जाता है-

पांशी शूरै, शाठी लाजे अर्थात् पांशी बलवान हैं और शाठी निर्बल। शूरै यानी शूरवीर।

पांशी खूंदों में झिनाणा खूंद इनका शिरोमणि माना गया है। अन्य पांशी खूंदों में पुजाइक, लोहराण, ननाहरू, बदलाउगी, खौग, सुनाइ, अंगराउ, लिहाटड़, दठाल, देवा, तुनाल, कुलहाउटी, परालु घूंणुया, शिला घूंडिया, बहंगाइयां, मांदलू, फगाणा, नगालडु, जिंगवालडु, कठाइ, खड़ाइ, सिंघटोउ, सराल, ड्राल, दबराल, बढ़ाली, गड़ैल, बतीउड़ी, गवाही, कशौरी आदि मुख्य हैं।

शाठी खूंदों में कुछ नाम इस प्रकार हैं- गवाउ, गांग, ठुंड्रू, चाड़, थुंदली, क्लासी, सरतेला, मत्यांल्डू, गजांल्डू, कुंथली, मझगांवी, हानणी, ठिंठाउ, चघाण, नौबली, मघाण, मदराण, चहड़ेउ, बरखोगी, चमारथु, खशधारू, कैंथलै, दमसेठ, बधराउ मुख्य माने गए हैं।

किन्नौर व रोहडू में भी कुछ माने हुए खूंद हैं। पांशी खूंदों में झिनाणो के अलावा फगाणे और खड़ाइ उच्चकोटि के खूंदों में गिने जाते हैं।

ढोल, नगाड़े, शहनाई, करनाल, हरणसिंगा के साथ वीर रस में धुन बजाई जाती है। संगीत की वीर रस से ओत-प्रोत इस धुन पर 'बाड़ा' गया खूंद बिशू नृत्य करते हुए 'बाड़ने' वाले खूंद के जुब्बड़ (बिशू मैदान) की ओर लाठियों व डांगरों को नचाता हुआ



ऐतिहासिक दुर्गाष्टमी मेला तारादेवी

शिमला से पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित तारादेवी शहर से पहाड़ी रास्ते से तीन किलोमीटर की ऊंचाई पर तारोदवी मंदिर अपने अन्दर प्राचीन इतिहास समेटे है। पहाड़ी की दक्षिणी दिशा पर स्थित मंदिर से शिमला शहर तथा दूर-दूर की पहाड़ियों के विहंगम दृश्य का आनन्द उठाया जा सकता है। तारा देवी मंदिर के परिसर में प्रत्येक वर्ष आश्विन मास के नवरात्रों में अष्टमी तिथि को महाशक्ति दुर्गा के सम्मान में धार्मिक उत्सव आयोजित होता है। तारा देवी नवदुर्गाओं में एक का प्रतिरूप मानी जाती है। दुर्गा माता को ही यहां तारा देवी के नाम से पुकारा जाता है। तारा देवी मंदिर की स्थापना के पीछे क्योंथल रियासत के प्रारंभिक राजाओं का सम्बन्ध जुड़ा है। महासू डिस्ट्रिक की 1963 की (सैन्सज रिपोर्ट) 'फेयर्स एण्ड फैस्टिवल ऑफ महासू डिस्ट्रिक्ट' रिपोर्ट में इसकी स्थापना का रोचक वर्णन मिलता है। नवरात्रों में यूं तो प्रत्येक दिन ही श्रद्धालुओं की भीड़ जमा होती है, परन्तु दुर्गाष्टमी को पूरा क्षेत्र देवी-दर्शनों के लिए उमड़ पड़ता है। आस-पास के क्षेत्रों से ही नहीं, पंजाब-हरियाणा तथा दूर-दूर से लोग तारादेवी मंदिर पहुंचते हैं। तारादेवी मंदिर पश्चिमी दिशा की ओर 'दूधाधारी' का मंदिर स्थित है और इसके सामने आगे कौशल्या मंदिर स्थित है। उत्तरी ढलान पर शिव मंदिर है जो मध्य काल के इतिहास को समेटे आज भी श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र है। लोगसाल पर संक्रांतियों को यहां मनौतियों के लिए आते रहते हैं। ऐतिहासिक महासू जनपद में शिव के लोक-स्वरूप महासू देव के मेले पर्व-त्योहारों पर आयोजित होते हैं। 'पत्थर का खेल हलोग' पुड़ग का 'बिशू मेला', 'लवी मेला' तथा सभी प्राचीन रियासतों की राजधानियों में देवोत्सव मनाने की समृद्ध परम्परा पाई जाती है।

● **अमरदेव आंगिरस** नजदीक उद्यान फार्म, दाड़लाघाट, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश-171 102, मो. 94181 65573

प्रवेश करता है। दो खूंदों का जुब्बड़ में मिलन का यह नजारा देखते ही बनता है। लगता है कि दोनों खूंदों के मध्य लाठी और डांगरों से लड़ाई छिड़ने ही वाली है। प्रस्थान के समय बिशू में भाग लेने जा रहे ठोडा दल वाले भी अपनी जगह से आज्ञा व आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। ब्राह्मणों द्वारा खोज-बेरा करके बेरा निकाली जाती है। दिन व समय निर्धारित किया जाता है। सुथण, बूट, तीर-कमान एक प्रकार की इस अवसर पर पहनी जाने वाली गोल व तालू पर से ऊपर को उठी हुई सफेद टोपी आदि से उचित श्रृंगार किया जाता है। मेले में जाने हेतु इस प्रकार की ललकारें लगाकर आगाज़ किया जाता है-

-तेरी धाऔ शुणियों आजा उ मेरेआ जोड़ीदारा सातौ टीरौ तो गेऔ (जोड़ीदार, तेरी आवाज सुनकर सात टीर पार से आया हूं खेलने)

-पांवटे-दुर्णा दुआया उ मेरे आ जोड़ीदारा नारकांडै ताईं ठोठै खेलदा (पांवटा दूण से आया हूं नारकंडा तक ठोडा खेलने मेरे जोड़ीदार)

बेगी पराउणी लागी औ मेरेआ जोड़ीदारा (बहुत जल्दी लगी है तुझे मेरे जोड़ीदार)

-तौवै मानु आ मेरे आ जोड़ीदारा झिश्का ठोडै खेउदा फिरका माऐखै (तब मानूआ तुझे सुबह मेरे साथ ठोडा खेल और शाम को कुश्ती)

इस अवसर पर धारण किया जाने वाला श्रृंगार का यह सामान होता है- धनुष-बाण, सुथण, बूट, चोगा, गात्रा (पटका), सिर में विशेष प्रकार की गोलाकार बीच से ऊपर को उठी हुई सफेद टोपी। बजंत्रियों के पास शहनाई, करनाल, हरणसिंगा, सितार, ढोलक, नगाड़ा आदि वाद्य यंत्र होते हैं। विपरीत दिशाओं से दोनों खूंद, शाठी और पांशी, एक दूसरे की ओर ललकारते हुए बढ़ते हैं। प्रत्येक के हाथ में डंडा या डांगरा होता है। नाचते और अपने हथियारों को नचाते हुए बिशू के मैदान में पहुंचते हैं। दोनों पक्ष अपनी-अपनी जगह/ठौड़ का नाम लेकर उसे ठोडा मैदान में पहुंचने और उनकी रक्षा करने की कामना करते हैं कि वह यहां पधारे और उन्हें अपना शुभाशीर्वाद दे-

सदा बारिऐ जागदे रौहै
पांशी री ऐ जागेया...आ...आ...

खशों की शाठी-पांशी संस्कृति हजारों वर्ष पुरानी है। महाभारत युद्ध में खशों के दो दल बने थे। एक दल पांडवों की ओर से लड़ा था तो दूसरा कौरवों की ओर से। कौरवों की ओर से लड़ने वाला खश, शाठी खूंद कहलाया और पांडवों की ओर सवे लड़ने वाला खश पांशी खूंद कहलाया। मेला मैदान में जब दोनों खूंद इकट्ठा मिलने के उपरांत ठोडा खेलने लगते हैं तो दोनों पक्ष के खिलाड़ी अलग-अलग जोड़ी बनाते हैं। यह जोड़ीदार मेले के अंत तक एक दूसरे की टांग की पिंडलियों पर बारी-बारी से तीर के निशाने साधते हैं। जब एक तीर का निशाना साधता है तो दूसरा बचाव के लिए अपनी टांगों का उछल-उछल कर बचाव करता है। मेले के अंत में दोनों खूंद अपनी-अपनी दिशा की ओर नाचते हुए विसर्जित होते हैं और ठोडा का खेल समाप्त होता है। आज इस खेल ने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाकर हमारी प्राचीन संस्कृति को जीवित रखा है।

गांव लिंगाह, डा. झिकनीपुल, तह. चौपाल, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 211



अनूठी परम्परा

'पत्थर मार खेल'

● अरुण भारती

अजीब है यह लोक और अजीब ही नहीं, अनेक रहस्यों, किस्सों-कहानियों से अटी पड़ी है, इस लोक की आस्थाएं, परंपराएं और देव परंपराए। कहीं काहिका, कहीं शांद, चेरशी, भूण्डा, जात्तरें, ठोडा और पत्थर मार या अग्नि प्रज्वलित कर एक दूसरे पर प्रहार करना आदि। शिमला से 26 किलोमीटर दूर धामी और मायली, जो दोनों ही जिला शिमला के क्षेत्र हैं, में दीपावली के दूसरे दिन, यानी कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन धामी रियासत (पूर्व) के गांव खेल का चौंरा और देव उठनी एकादशी (देओठन) के दिन पूर्व पटियाला शासित एवं वर्तमान ग्राम पंचायत कोहबाग के मायली नामक गांव में पत्थरमार खेल खेला जाता है। इन दोनों गांवों में यह खेल दो-तीन सदियों से भी पहले से खेला जा रहा है। ये दोनों ही गांव आज भले ही वर्तमान जिला शिमला के अंतर्गत आते हैं लेकिन स्वतंत्रता पूर्व गांव खेल काचौंरा पूर्व रियासत धामी का अंग था जबकि मायली नामक गांव पूर्व रियासत पटियाला के अधीन था। अलबत्ता पत्थर मार इस खेल की कहानी एक ही घटना से जुड़ी हैं, ऐसी किंवदंती है। लगभग तीन सदी पहले यहां (धामी) में चौहान वंश का राज था। यहां के राजवंश की राजकुमारी का रिश्ता साथ लगती भज्जी रियासत के राजकुमार से हुआ। इस दौरान राजनैतिक साजिश के चलते राजकुमार की हत्या कर दी गई है। इस घटना से राजकुमारी आहत हो जाती है औरा सती होने का निर्ण लिया। ये दोनों ही स्थान कभी मावियों और गोरखों के अधीन रहे हैं। इसलिए इन दोनों स्थानों पर बलि प्रथा थी। मावी लोग पशु बलि के साथ-साथ नर बलि भी देते थे। ये नर बलि अकसर कैदियों की दी जाती थी। चौहान वंश का राज होने के बावजूद नरबलि चलन में थी। सती होने से पहले राजकुमारी ने तत्कालीन शासक से वचन लिया कि अब से नरबलि और पशुबलि न दी जाए। बल्कि जिन खानदानों के लोग यहां बसे हैं, वे दो टोलियां बनाकर शारड़ा (जहां राजकुमारी ने अर्ध मार्ग पिंड दिया था) के दोनों तरफ से एक दूसरे पर पत्थर मारें। जिस व्यक्ति को पत्थर की चोट से खून लगे, उसके खून से देवी को तिलक किया जाए। यह भी शर्त रखी कि कोई भी व्यक्ति पत्थर मारते हुए शारड़े को पार न करे। इन टोलियों में सिंऊड़ू, जमोगी, तुनड़ू, धगोड़ू, कटेड़ू आदि वे सभी खानदान हैं जो यहां बसे हैं। ये दोनों टोलियों में विभाजित हैं, जिन्हें कटेड़ और जमोगी कहा जाता है। पत्थर लगने पर कटड़ेू खानदान की औरतें चुनरी लहराती शारड़े के पास आती हैं और पत्थर का यह 'भेड़' (भिड़ शब्द का अपभ्रंश) समाप्त हो जाता है। इसके बाद दोनों दल नाचते गाते, ढोल और शहनाई बजाते मेला स्थल पर पहुंच जाते हैं। उल्लेखनीय है कि पत्थर मार यह खेल राज परिवार में मातम होने पर भी होता है। फर्क इतना है कि मेला नहीं भरता।

इतिहास के अनुसार चौहान वंश का आगमन यहां 12वीं सदी में हुआ जब मुगलों ने उत्तर भारत का रुख किया। अम्बाला के साथ लगती तत्कालीन रियासत रायपुर रानी के राजा के शहीद होने के बाद गर्भिणी रानी अपने कुछ अनुचरों के साथ पहाड़ों की तरफ आई। धामी के रतनपुर नामक स्थान पर खड्ड के किनारे इन लोगों ने शरण ली। वहां के वासियों ने इन्हें अपना राजा मान लिया। कालांतर में इस वंश ने अपनी राजधानी रतनपुर से बदल ली। कांयती नामक गांव में हनुमान मंदिर के पास और फिर घाट नामक गांव के राजपुरा में इन्होंने अपनी राजधानी स्थापित की और आखिर में हलोग नामक स्थान में धामी की राजधानी रही। 12वीं शताब्दी के आसपास यहां मावियों और गोरखों का राज था। इस वंश ने उन लोगों से अनेक युद्ध किए। मावियों और गोरखों से लोग दुखी थे। स्थानीय जनता ने राजवंश का साथ दिया और मावियों और गोरखों से मुक्ति पाई। 1815 के आसपास ब्रिटिश राज्य के विस्तार के साथ-साथ यह रियासत और आसपास की सभी रियासतों से गोरखा प्रभाव समापत हो गया। उस समय यह रियासत बिलासपुर की करद रियासत थी। यहां के शासक को राणा का दर्जा प्राप्त था। मायली तब धामी से विलग होकर पटियाला के अधीन आ चुका था। इससे साबित होता है कि नरबलि देकर मावी और गोरखा यहां की जनता को भयभीत करते थे। लोक आस्था का रूप देकर देव भय उत्पन्न किया गया। लेकिन सती होने से पहले राजकुमारी ने इस परम्परा को बदल दिया। आज दोनों जगह राजकुमारी के मंदिर हैं जहां लोग इनकी माता रूप में पूजा करते हैं।

गांव व डाकघर हलोग (धामी), जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश-171103, मो. 94180 28540

आस्था

मां भीमाकाली मंदिर सराहन

इतिहास व स्तुति गान के भक्ति लोकगीत

● राजेश कुमार

हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होने वाली आदि शक्ति मां का एक रूप भगवती भीमाकाली के नाम से प्रसिद्ध है, जिनका सुविख्यात पावन धाम सराहन नामक स्थान पर स्थित है। हिमाचल प्रदेश के शिमला जिले की रामपुर तहसील के अन्तर्गत बशल कण्डा, थारलू धार एवं किंगणी धार आदि पर्वतीय ढलानों की तलहटी में स्थित अनुपम सांस्कृतिक वैभव और प्राकृतिक सौन्दर्य से सुसज्जित सराहन, प्रदेश का एक महत्त्वपूर्ण गांव है। यहां से 7-8 किलोमीटर की दूरी पर नीचे गहराई में बहती सतलुज नदी के दायीं ओर सराहन के ठीक सामने समुद्र तल से 18,500 फीट से भी अधिक ऊंचाई तक उठी श्रीखंड महादेव पर्वत-श्रृंखला का भव्य दर्शन भी इसके गौरव को अलौकिक छवि प्रदान करता है। "शिमला से 184 किलोमीटर दूर भीमाकाली सराहन वास्तुकला की दृष्टि से अदभुत शिल्प का उदाहरण है।" रामपुर से यह तीर्थ स्थल 44 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। हिन्दुस्तान-तिब्बत राष्ट्रीय उच्च मार्ग संख्या-22 पर ज्यूरी नामक स्थान से सराहन के लिए सम्पर्क सड़क जाती है जिसकी कुल लम्बाई 17 किलोमीटर है।

''रामपुर बुशहर जितनी पुरानी रियासत है उससे भी कहीं प्राचीन है इस रियासत का शैल, जो कि भूगर्भवेत्ताओं के मत में एक अरब 80 करोड़ वर्ष का है, जो कभी पृथ्वी के भीतर 20 किलोमीटर नीचे था।" यह राज्य पूरे किन्नर देश तक फैला था। कैलाश को किन्नर देश माना जाता है। "माना जाता है कि लगभग छः हजार वर्ष पूर्व शोणितपुर जिसे वर्तमान में सराहन कहा जाता है, बाणासुर की राजधानी हुआ करती थी।" बाणासुर, भक्त प्रह्लाद के पौत्र, राजा बली के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। ''बाणासुर ने हिरमा नामक राक्षसी से जबरदस्ती विवाह कर लिया था। सुंगरा गांव के पास एक गुफा है। विवाहोपरांत बाणासुर कई सालों तक हिरमा के साथ वहां रहा और उनके अठारह पुत्र-पुत्रियां हुए।'' किन्नौर के प्रमुख अठारह देवता बाणासुर और हिरमा की संतान माने जाते हैं।

सराहन एक प्रमुख शक्ति केन्द्र रहा है तथा 17वीं शताब्दी तक यह स्थान बुशहर रियासत की राजधानी रहा है। यहां का भीमाकाली मन्दिर पहाड़ी स्थापत्य शैली में बनी एक भव्य इमारत है जिसका निर्माण तत्कालीन राजा बुशहर द्वारा करवाया गया था ऐसा माना जाता है। सराहन में देवी की स्थापना कब की गई इस सम्बंध में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता है परन्तु विभिन्न घटनाओं को ध्यान में रखते हुए इस स्थान का सम्बंध लगभग 2500-3000 वर्ष पूर्व जोड़ा जा सकता है। ''भीमाकाली की वर्तमान में पूजित अष्ट धातु की मूर्ति मन्दिर परिसर में आज से लगभग 150-200 वर्ष पूर्व स्थापित की गई थी।'' सराहन से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित "गमसोट की गुफा'' में इस मूर्ति का निर्माण किया गया था। मूर्ति की ऊंचाई लगभग चार फुट है। भीमाकाली की मूर्ति के साथ ही दोनों तरफ अन्य कई छोटी मूर्तियां रखी गई हैं जिनमें वज्रेश्वरी, अन्नपूर्णा, गणेश, शिव-पार्वती तथा गौतम बुद्ध की मुर्तियां प्रमुख हैं। भीमाकाली के यहां पर दो मन्दिर बनाए गए हैं। प्राचीन मन्दिर कुछ टेढ़ा हो गया है। प्राचीन मन्दिर के साथ ही एक चार मंजिला मन्दिर

प्रसिद्ध शक्तिपीठ 'श्री भीमाकालीजी मन्दिर सराहन' में भी हिमाचल प्रदेश के अन्य शक्ति पीठों की ही तरह विभिन्न पर्वों को बड़ी श्रद्धा और धूमधाम से मनाया जाता है। प्राचीन काल में तारारात्रि, शिवरात्रि, कालरात्रि व महारात्रि पर्व विशेष रूप से और अनिवार्य रूप से तान्त्रिक विधि-विधान से मनाए जाते थे। इन सभी पर्वों में देवी की पूजा व स्तुति के लिए संगीत का विशेष महत्व रहता था।

का निर्माण किया गया है। इस मन्दिर का निर्माण भी पहाड़ी शैली में ही किया गया है तथा इसकी एक मंजिल भूमिगत भी है। नए मन्दिर में 1962 को देवी की स्थापना की गई है। स्थानीय लोगों के अनुसार देवी की मूल प्रतिमा अब भी पुराने मन्दिर में ही रखी गई है तथा विशेष अवसरों पर ही वहां राज परिवार के सदस्यों द्वारा देवी की पूजा-अर्चना होती है। आम लोग इस प्रतिमा के दर्शन नहीं कर सकते हैं।

श्री भीमाकालीजी की स्तुति में गाए जाने वाले कुछ भक्ति लोकगीत का विवेचन किया गया है।

हिमाचल प्रदेश के जनमानस के दैनिक जनजीवन में लोक-संगीत का बहुत अधिक महत्व है। यहां के लोकगीतों में देवी-देवताओं, वीरों की वीरता, राजाओं तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं के कार्य-कलापों तथा हर्ष वेदना का वर्णन मिलता हैं, विभिन्न धार्मिक व सामाजिक अवसरों पर उसी के अनुसार जन्म से लेकर मृत्यु तक लोकगीतों की रचना की गई हैं। इन लोकगीतों के साथ यहां के विभिन्न लोक वाद्यों का वादन किया जाता है। जैसे-शहनाई, ढोल, नगारा, करनाल, नरसिंगा इत्यादि। जब लोक भाषा तथा लोक तालों में निबद्ध रचना में किसी देवी या देवता की महिमा का गुणगान किया जाता है तो वह भक्ति लोकगीत कहलाती है।

प्रसिद्ध शक्तिपीठ 'श्री भीमाकालीजी मन्दिर सराहन' में भी हिमाचल प्रदेश के अन्य शक्ति पीठों की ही तरह विभिन्न पर्वों को बड़ी श्रद्धा और धूमधाम से मनाया जाता है। प्राचीन काल में ताराारात्रि, शिवरात्रि, कालरात्रि व महारात्रि पर्व विशेष रूप से और अनिवार्य रूप से तान्त्रिक विधि-विधान से मनाए जाते थे। इन सभी पर्वों में देवी की पूजा व स्तुति के लिए संगीत का विशेष महत्व रहता था। पूर्व कथित चार विशेष पर्वों के अतिरिक्त बूढ़ी दिवाली भी मनाई जाती है। बूढ़ी दिवाली प्रत्येक क्षेत्र में निर्धारित तिथि के दिन ही यहां मनाई जाती है। इसके अतिरिक्त सराहन में तीन दिन तक चलने वाला दशहरा समारोह भी कुल्लू दशहरे की तरह ही भव्य रूप से मनाया जाता है। इस अवसर पर दूर-दूर से देवता अपनी-अपनी पालकियों में देवकर्मियों के साथ-साथ आते हैं। रघुनाथ जी को रथ में बिठाकर शोभायात्रा भी निकाली जाती है। इस अवसर पर लगातार तीन दिनों तक मन्दिर परिसर में सांस्कृतिक तथा भक्तिमय माहौल बना रहता है। स्थानीय महिलायें तथा पुरुष पंडाल में एकत्रित होकर पूरी-पूरी रात देवी की आराधना भक्ति लोक रचनाओं तथा पारम्परिक वाद्य यन्त्रों पर बजनें वाली लोक धुनों पर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गोलाकार में नाच-गा कर करते है। इन भक्ति रचनाओं में देवी की महिमा का बखान किया जाता है।

''भीमाकाली सराहणीए''

भीमाकाली सराहणीए तेरी जय-जय, जै कारा,
बीच तेरा मन्दिर माईए ओरा-पोरा बजारा।
केसरा रा तिलक लान्दे, गोले फुलुए हारा,
दूरो-दूरो का यातरू आं, कोरो जै-जै कारा।
उशटे तेरे मन्दिरा माईए, लाल धजा झूला,
तेरे ऐऊ नांव जोपयो, पापिए पापा धुला।

प्रस्तुत लोक भक्ति रचना में सराहन की भीमाकाली मां की महिमा का गुणगान किया गया है। इसमें बताया गया है कि देवी का मन्दिर बाजार के मध्य में स्थित है। देवी की सुन्दरता का बखान करते हुए कहा गया है कि मैया ने माथे पर केसर का तिलक तथा गले मे फूलों का हार लगाया हुआ है। भक्त जन दूर-दूर से चढाइयां चढ़ कर माता के दर्शन के लिए आते हैं तथा मातारानी सभी के कष्टों को दूर कर देती है। यदि इस रचना को शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो इस रचना में ''साधप, सारेग, पग'' आदि स्वर समूहों से राग भूपाली की छाया दृष्टिगोचर होती है। यह रचना भक्ति रस से ओत-प्रोत है। इसे आठ मात्रा की नाटी ताल में निबद्ध किया गया है। नाटी ताल कहरवा ताल का ही एक प्रकार है किन्तु इस ताल को लोक वाद्यों पर बजाया जाता है जिसके कारण इसकी चाल तथा बोल भिन्न होते हैं। इस ताल को 'नगारा' नामक पारम्परिक वाद्य यन्त्र पर बजाया जाता है।

''भीमाकाली यातरू तेरे आये''

भीमाकाली यातरू तेरे आए-2
भीमाकाली तेरे मन्दिरे आए।
हाथ में घड़वी गंगाजल वाली-2
चरण धुलाने आए, मां चरण धुलाने।...
घिस-घिस चंदन भरी है कटौरी-2
तिलक लगाने आए।
चुन-चुन कलियां मैं हार पिरौवां-2
हार पहनाने आए।
हाथ में थाली भोगा वाली-2
भोग लगाने आए।
किन्ने-किन्ने मैया तेरा भवन बनाया-2
किन्ने चंवर झुलाया मां।
जुगे-जुगे जीवे मेरे सराहना रा राजा-2
जिने तेरा भवन बनाया मां।

प्रस्तुत रचना को किसी राग विशेष में रखना उचित नहीं होगा फिर भी, कल्याण वाचक स्वर समूहों के प्रयोग के कारण इसे कल्याण थाट के अन्तर्गत रखना ही उचित होगा। इस रचना में भीमादेवी मन्दिर का निर्माण करने वाले राजा की प्रशंसा कर उसके चिर-जीवन की कामना की गई है। इनके अतिरिक्त भक्तों द्वारा भिन्न-भिन्न विधियों जैसे- मैया के चरण धुलाकर, तिलक लगाकर, हार पहनाकर, भोग लगाकर, चंवर झुलाकर आदि माता को प्रसन्न करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस रचना को आठ मात्रा की नाटी ताल में निबद्ध किया गया है। यह रचना भी भक्ति रस का ही

आभास कराती है।

"जय माता जय माता"

जय माता जय माता,
जय माता जय माता।।
तोड़ा लागा घराटा का माईए, उबी खोड़ी चढ़ाई,
कोई आणौ पान सुपारी, कोई आणौ कढ़ाई।
किजुआ री मूरता माईए, किजुए घनैरो,
सुनयारी मूरतों माईए, चांदी ओ घनैरो।
औरू तेरो मन्दिरो, पौरू लांकडेरा कुंआ,
जुण कारो मानता माईए, आशा पूरी होंआ।
हुंदी तेरे सराहणा माईए, उबे हिआरे कांडे,
तेरे कोरो मानता माईए, कुल्लू शिमला माण्डे।
तेरे ओ मन्दिरा माईए, रघुनाथा स्थानो,
पूरे कोरे आशा माईए, तौले दुनियां मानो।



प्रस्तुत लोक भक्ति रचना में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, मन्दिर तक पहुंचने के लिए खड़ी चढाई लगती है जो कि इस भक्ति गीत की प्राचीनता का प्रमाण है क्योंकि वर्तमान में मन्दिर परिसर तक सड़क निर्मित है। देवी के दर्शन करने भक्त-जन दूर-दूर से आते हैं तथा देवी को पान-सुपारी, ध्वजा-नारियल आदि भेंट करते हैं। मन्दिर में देवी की सोने-चांदी की मूर्तियां स्थापित हैं जो इसकी भव्यता का प्रमाण है। मन्दिर परिसर में स्थापित लांकड़ावीर तथा भगवान रघुनाथ के मन्दिरों के बारे में भी इस रचना में वर्णन मिलता है। इस लोक भक्ति रचना में राग देस की छाया दृष्टिगोचर होती है। इसे आठ मात्रा की ढीली नाटी ताल में निबद्ध किया गया है। इस रचना में हमें नाटी ताल का एक अन्य प्रकार देखने को मिलता है। इसकी चाल, विभाग तथा बोल बिल्कुल भिन्न है। इस ताल को 'नरगा' वाद्य पर बजाया जाता है जो 'नागारा' वाद्य का ही छोटा रूप है। इसके दो नगारे की ही तरह दो भाग दांया तथा बांया होते हैं।

उपसंहार

प्रसिद्ध शक्तिपीठ "श्री भीमाकालीजी मन्दिर सराहन में गाए जाने वाले पारम्परिक भक्ति लोकगीतों का सांगीतिक दृष्टि से अ ध्ययन करने पर मैंने पाया कि, इन रचनाओं का निर्माण वर्षों पहले हुआ तथा इन रचनाओं का रचनाकार कोई संगीत शास्त्री नहीं रहा है। परन्तु उसके बावजूद भी ये रचनाएं अपने में शास्त्रीयता को समेटे हुए हैं। इन रचनाओं को बड़ी ही दक्षता के साथ छंद तथा लयबद्ध किया गया है। इन भक्ति लोकगीतों को जब पारम्परिक वाद्य यंत्रो के साथ लयबद्ध कर गाया-बजाया जाता है तो अनायास ही उपस्थित जन-मानस के पांव थिरकने लगते है। इस शोध के माध्यम से मालूम हुआ कि लोक तालें भी शास्त्रीय तालों का ही परिवर्तित रूप हैं। इन भक्ति लोकगीतों को किसी विशेष राग को आधार मान कर नहीं रचा गया है फिर भी इन गीतों पर किसी न किसी राग की छाया दृष्टिगोचर होती है। संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि, "श्री भीमाकालीजी मन्दिर सराहन" में गाए जाने वाले पारम्परिक भक्ति लोक गीतों में लोक तथा शास्त्रीयता दोनों का ही समावेश है। इस शोध कार्य से आदिशक्ति मां भीमाकालीजी के भक्त-जनों, संगीत जिज्ञासुओं तथा संगीत के क्षेत्र में कार्यरत अन्य शोधार्थियों को अवश्य लाभ होगा ऐसी आशा करता हूं।

संदर्भ :-

1. सुदर्शन वशिष्ठ, हिमालय गाथा, देव परम्परा, पृ. 310, सुहानी बुक्स, गणेशनगर, दिल्ली-2007
2. एस.के.बी.एस.नेगी, श्री भीमाकालीजी मन्दिर समूह,पृ 21, श्री भीमाकालीजी एवं अन्य मन्दिर समूह रामपुर बुशहर-2005
3. एस.आर.हरनोट, यात्रा, किन्नौर,स्पिति,लाहुल और मणिमहेश, पृ 37, मिनर्वा बुक हाऊस, शिमला-1994
4. एस.आर.हरनोट, हिमाचल के मन्दिर व उनसे जुड़ी लोक कथाएं, पृ 264, मिनर्वा बुक हाऊस, शिमला-171001
5. नागेन्द्र शर्मा, हिमालय का उतरांचल रामपुर बुशहर, पृ 57, बलीभद्र प्रकाशन रामपुर-1996
6. शशिबाला जी से साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त जानकारी।
7. लोक कलाकारों से साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त जानकारी।

पी-एच.डी. शोधार्थी
संगीत विभाग, हि.प्र., विश्वविद्यालय,
शिमला-171005, मो. 09418376502,

◆◆◆

स्थापत्य कला

पर्वतीय वास्तु कला के उत्कृष्ट उदाहरण

कोट शैली के देवालय

● ओ. सी. हांडा

देवभूमि के नाम से विख्यात हिमाचल प्रदेश का भू-भाग आदिकाल से ही ऋषि-मुनियों और देवी-देवताओं का वास रहा है। प्रदेश के हर गांव में देवता विराजमान हैं। राज्य में देवी-देवताओं के असंख्य मंदिर विद्यमान हैं जो पहाड़ी वास्तु कला एवं निर्माण शैली के विभिन्न रूपों को आज भी संजोए हैं। निर्माण कला की कोटशैली (टावर टाइप) में मंदिर प्रायः हिमालय के अंदरूनी क्षेत्रों में निर्मित हैं। हालांकि इनमें से अधिकतर मंदिर ऐसे हैं जिनके संरक्षण की नितांत आवश्यकता है। लेकिन यह सुखद बात है कि हिमालय की गोद में बसे हिमाचल प्रदेश के शिमला जनपद में स्थित अनेक मंदिर ऐसे हैं जो आकार में विशाल होने के बावजूद आज भी बेहतर स्थिति में हैं। शिमला जनपद के ऊपरी भागों में स्थापत्य की अद्भुत निर्माण कला कोट शैली में निर्मित इन देवालयों में भीमाकाली मंदिर सराहन (रामपुर), बीजट देवता मंदिर, कंढारन स्थित रैरमूल मंदिर (चौपाल), बछूंच (रोहड़) स्थित बॉयोन्दरा देवता मंदिर तथा समरकोट (रोहड़) स्थित जोगिनी मंदिर मुख्य रूप से शामिल हैं। प्रस्तुत लेख में ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक एवं वास्तुशिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कोटशैली स्थापत्य कला में निर्मित भव्य इमारतनुमा मंदिरों के बारे में जानकारी प्रस्तुत की है।

भीमाकाली मंदिर सराहन

एक समय में सराहन नगर तत्कालीन बुशहर रियासत की राजधानी हुआ करता था और यह स्थान पुराने हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग पर महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। सदियों से यह स्थान हिमालय क्षेत्र में उत्तर की ओर तथा दक्षिण में भारतीय मैदानी क्षेत्रों की ओर आवागमन करने वाले व्यापारियों, पथिकों, धार्मिक श्रद्धालुओं, अन्वेषकों और साहसिक दलों के काफिलों के लिए एक अहम पड़ाव रहा है। सराहन स्थित भीमाकाली मंदिर की भव्यता व वैभव और इस क्षेत्र की प्राकृतिक सुंदरता से वे लोग अवश्य ही प्रभावित हुए बगैर नहीं रहे होंगे। उस समय यहां पधारे अधिकतर आगंतुकों ने अपने अनुभवों को कलमबद्ध नहीं किया क्योंकि उस समय ऐसे धार्मिक व पवित्र स्थलों पर हर किसी विशेषकर, विदेशी नागरिकों का प्रवेश निषिद्ध था और भी बहुत सारी परंपराओं और वर्जनाओं का पालन किया किया जाता था। हालांकि वर्तमान में ऐसा कोई निषेध नहीं है, लेकिन इस पवित्र स्थान पर आज भी कोई व्यक्ति सिर ढके बगैर प्रवेश नहीं कर सकता और परिसर के भीतरी भागों में फोटोग्राफी तो कतई नहीं कर सकता। लेकिन इन सब बाधाओं के बावजूद कुछ लोगों ने इस स्थल और राजा के शाही महल के बारे में बहुत लिखा है जो अब मुख्य परिसर का अग्रभाग अथवा मुख्य प्रवेश द्वार है। मुख्य महल अब मंदिर परिसर के दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित है। बुशहर रियासत की राजधानी रामपुर नगर में स्थानांतरित हो जाने के पश्चात् भी लोगों में इस विख्यात धार्मिक स्थल की धार्मिक मान्यता एक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल के रूप में बरकरार रही। बाद में नए हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग (राष्ट्रीय उच्च मार्ग-22) जो सतलुज नदी के किनारे-किनारे निर्मित हुआ है, के बाद भी इस स्थान की भव्यता और वैभव पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। बल्कि घने जंगलों की भव्य पर्वतशृंखलाओं के मध्य समुद्रतल से लगभग दो हजार मीटर ऊपर स्थित छोटे भू-भाग पर स्थित यह स्थान अपने प्राकृतिक सौंदर्य एवं मनोरम दृश्यवलियों के कारण धार्मिक एवं साहसिक पर्यटन प्रेमियों के लिए पसंदीदा गंतव्य बनकर उभरा है।

आज सराहन एक शांत छोटा-सा शहर है, लेकिन यहां स्थित प्राचीन मंदिरों, महलों में लगे पत्थरों और इमारती लकड़ी के हर टुकड़े में प्राचीन वैभव और शानो-शौकत की सुगंध आज भी महसूस की जा सकती है। वास्तव में सराहन धार्मिक-संस्कृति का दक्षिण का अंतिम स्थल है। उत्तरी छोर की सीमा पर किन्नौर जिले का कोठी गांव स्थित है। कोठी गांव देवी चंडिका के भव्य काष्ठ मंदिर के लिए जाना जाता है बल्कि यह भारत की मुख्य भूमि के हिंदू और तिब्बत के बौद्ध-धर्मों की दो संस्कृतियों का संगम स्थल के रूप में विख्यात है। गांव में इन दोनों धर्मों की संस्कृतियों के मिश्रित स्वरूप



भीमाकाली मंदिर सराहन रेखाचित्र : लेखक

और लोकाचार के अटूट संबंधों के अनूठे रूप को आज भी देखा जा सकता है।

शिमला से 184 किलोमीटर दूर स्थित सराहन तक नए हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग पर स्थित से तथा रामपुर वाया गौरा मशनू मार्ग से ज्यूरी पहुंचा जा सकता है। विभिन्न जलवायुगत विविधताओं से गुजरते हुए इस मार्ग पर यात्रा करना हालांकि थकान भरा और उबाऊ है, लेकिन क्षेत्र की मनोरम दृश्यवलियां और प्राकृतिक सुंदरता वास्तव में ही देखने लायक हैं। इस सड़क पर यात्रा करते समय हर मोड़ पर किसी नई ही दुनिया का आभास होता है। दूर-दूर तक फैली दृश्यवलियां मन को मोह लेती हैं। सराहन पहुंचते ही लंबी यात्रा की सारी थकान मिट जाती है और उबाऊपन एकदम छू-मंतर हो जाता है। यहां से चारों ओर दूर-दूर तक खत्म न होने वाली पर्वतशृंखला के परिदृश्य, वन्य परिवेश में ग्राम्य जनजीवन को समेटे प्रदूषण-रहित स्वच्छ वातावरण, घाटी के ठीक नीचे कल-कल बहती सतलुज नदी में चांदी की परत का आभास देते निर्मल जल के मनोरम दृश्य देखकर रोम-रोम पुलकित और आनंदित हो उठता है। ऐसे सुरम्य स्वर्गनुमा स्थल पर कहीं भी खड़े होकर ऐसे लगता है जैसे ऊंचे बादलों के संग आसमान में तैर रहे हों। ट्रैकिंग के लिए हिमाचल में सबसे अधिक शानदार मार्ग नारकंडा तथा सराहन के मध्य स्थित है जो हिमालय के लिए सबसे अधिक शानदार 'ट्रैकिंग रूट' भी खदराला, सुंगरी, बाहली, तकलेच गौरा तथा दारन घाटी से होकर सराहन पहुंचता है।

सराहन की सम्मोहक प्राकृतिक सुंदरता के विपरीत यह स्थल सदियों पुराने भव्य देवी भीमाकाली मंदिर के लिए विख्यात है। आजादी के उपरांत विभिन्न शक्ति पूजा पद्धतियों के धार्मिक पुनर्जागरणवाद के दौर में सतलुज घाटी में यह एक प्रमुख शक्तिपीठ बनकर उभरा। नगर से ऊपर ऊंचे स्थान पर घने पेड़ों में स्थिति यह मंदिर सतलुज के दूसरे किनारे पर 5680 मीटर ऊंचे श्रीखंड शिखर के सामने अवस्थित है जो किसी भव्य एवं उदात्त देवशक्ति की उपस्थिति का आभास देता है।

भीमाकाली मंदिर परिसर 100 गुणा 45 वर्गमीटर क्षेत्र के वर्गाकार समतल स्थल पर फैला है। यहां भीमाकाली के दो मंदिर हैं। प्राचीन मंदिर कुछ टेढ़ा हो गया है। अतः उसके साथ ही उसी शैली में एक और मंदिर बनाया गया है। नए मंदिर में देवी की स्थापना की गई है। ऊपरी मंजिल में भीमाकाली की अष्टधातु से बनी अष्टभुजाओं वाली मूर्ति स्थापित है। प्रतिमा के इर्दगिर्द वेदिका है। भीमाकाली की प्रतिमा एक मीटर ऊंची है। देवी को सोने-चांदी के छतरों से अलंकृत किया गया है। एक अन्य मूर्ति देवी पार्वती की बताई जाती है। मंदिर में स्थापित देवी की इन दोनों मूर्तियों में एक कन्या रूप में है और दूसरी विवाहिता रूप में। अलग-अलग मंज़िलों में रखी गईं इन दोनों मूर्तियों के पौराणिक महत्त्व को देखते हुए बुशहर के राजाओं की इनके प्रति विशेष आस्था रही है। महल के मध्य में कुल देवी के लिए मंदिर निर्मित किया गया। काफी समय तक यह मंदिर शाही परिवार का निजी देवालय रहा। देवालय परिसर के मध्य में एक आयताकार प्रांगण है। मंदिर का निर्माण पहाड़ी पद्धति से हुआ है और इसमें लकड़ी का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। छत के आच्छादन के लिए छोटी स्लेटों का प्रयोग किया गया है। मंदिर के द्वार कपाटों पर रजत (चांदी) शिल्प का उत्कृष्ट कार्य किया गया है। काष्ठ शिल्प में भी कारीगरों ने अपनी कला का हुनर दिखाया है। मंदिर में रजत शिल्प का कार्य बुशहर के राजा पदम सिंह (1914-47) द्वारा करवाया गया है जिसमें स्थानीय किन्नौरी रजत शिल्पियों ने अपने परंपरागत शिल्प को सुंदर तरीके से उभारा है। परिसर में निर्मित सभी भवन उस समय मध्य हिमालय में प्रचलित काष्ठ और पाषाण कला पर निर्मित हुए हैं।

मंदिर परिसर प्रांगण के मध्य में स्थित सबसे ऊंचे समतल भाग पर पत्थर निर्मित बड़ा ठोस प्लेटफार्म है जिसपर दो ऊंचे भव्य वर्गाकार मंदिर टावर खड़े हैं। ये दोनों कोट (टावरनुमा) मंदिर समूचे परिसर और अन्य सभी भवनों से सबसे ऊंचे हैं। परिसर की दायीं दिशा में स्थित टावर मंदिर मुख्य देवी का है जबकि परिसर में बायीं ओर स्थित मंदिर को 1930 तक सहायक इमारत अथवा भंडार के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।

वर्ष 1905 के भयानक कांगड़ा भूकंप के कारण परिसर के दाहिने भाग में स्थित प्राचीन मंदिर टेढ़ा हो गया था। 1905 में इस भूकंप से समूचे पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में भारी तबाही हुई थी। मंदिर के भव्य भवन का निर्माण काठकुणी शैली में होने के कारण यह इतने बड़े भूकंप के तीव्र झटकों को सहन करने में सक्षम रहा था। इसीलिए यह मंदिर भवन ध्वस्त तो नहीं हुआ लेकिन कुछ टेढ़ा अवश्य हो गया था। जबकि इसी भूकंप में कांगड़ा जिले में कांगड़ा

किला सहित पत्थर से बने सभी भारी भरकम ढांचे और बड़े भवन ध्वस्त हो गए थे। देवी भीमाकाली का मुख्य मंदिर हालांकि अब नियमित प्रयोग में नहीं है, लेकिन इसके रजत मढ़ित द्वार शिल्प और नक्काशी का उत्कृष्ट नमूना है जो पूरे क्षेत्र में और कहीं देखने को नहीं मिलता। द्वार कपाटों को चांदी से मढ़ा गया है और चांदी के पतरों पर हिंदू पौराणिक प्रसंगों और देवी-देवताओं के चित्र उकेरे गए हैं । यह कार्य बुशहर रियासत के राजा शमशेर सिंह (1850-1914) द्वारा स्थानीय शिल्पियों से करवाया गया था। ऊपरी सतलुज घाटी में ये उम्दा पारम्परिक रजत शिल्पकार (सुनार) आज भी अपनी कलाकारी को जीवित रखे हुए हैं। लेखक ने इन शिल्पियों को वर्ष 1988 में मंदिर परिसर में कार्य करते हुए स्वयं देखा है जिनमें किन्नौर के कोठी गांव के निवासी रामदास, धर्मसुख, रामजीदास व धनराज और रामपुर के दियोठी गांव के प्यारे लाल, दौलत राम, मुकंद लाल तथा गंगा राम शामिल हैं। इस क्षेत्र के शिल्पकारों ने बताया कि धातु के मोहरे बनाने और धातु की मूर्ति तैयार करने की प्रक्रिया में पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में कुछ मर्यादाओं तथा पारंपरिक नियमों का पालन आज भी किया जाता है। लेकिन मंदिर के अन्य सामान तथा संगीत का साजो-सम्मान तैयार करने के लिए ऐसी किसी मर्यादाओं और पारंपरिक नियमों का पालन नहीं किया जाता। लेखक ने उत्तर प्रदेश के हनोल स्थित महालु देवता मंदिर में ऐसी मर्यादाओं का पालन करते हुए देखा जब 1986 में एक पारंपरिक काष्ठ कला कारीगर मंदिर की छत में काष्ठ कारीगरी का कार्य कर रहा था।

परिसर के बायीं ओर स्थित मंदिर की वृहद ढांचागत संरचना की शीर्ष दो मंज़िलों के चारों ओर बंद बरामदा है। सबसे ऊपर के बरामदा को निचली मंज़िल के बरामदे से भी अधिक चारों ओर बढ़ाया गया है ताकि मंदिर के वृहद संरचनागत ढांचे को अधिक मजबूती प्रदान की जा सके। इन बरामदों को मंदिर के गर्भ गृह में स्थित देवी-देवताओं के कक्ष के परिक्रमा पथ के रूप में प्रयोग किया जाता है। इन बरामदों की लकड़ी पर फूल-पत्तों के वानस्पतिक अलंकारों को रुचिकर ढंग से उकेरा गया है। समूचे ढांचे पर ढलाननुमा छत बनाई गई है। नीचे के हिस्सों पर भी कलात्मक स्लेटनुमा छत है। मंदिर के चारों कोनों पर लकड़ी से निर्मित घंटीनुमा आकृतियां हैं, जो इसे स्थानीय शैली की अनूठी पहचान देती हैं। हरेक पेंट पर आकर्षक 'गेबल्स' सुपर-इम्पोस किए गए हैं। मंदिर की समूची छत व्यवस्था को उच्च आरोही वृताकार छतरी के रूप में अभिषिक्त किया गया है जो मंदिर के मध्य में स्थित होने के कारण इसके भारी भरकम ढांचे को कुछ हद तक प्रति संतुलित करता प्रतीत होती है। इन सभी अध्यारोपणों के साथ बायीं ओर स्थित यह टॉवर दायीं ओर स्थित दूसरे टावर से ऊंचा नज़र आता है। मंदिर की छत की ऐसी कारीगरी का एक अन्य उदाहरण केवल रामपुर स्थित दरबार दीर्घा में ही देखा जा सकता है जो न केवल भीमाकाली मंदिर की समकालीन कला है बल्कि इनकी कारीगरी की शैली और बनावट भी मिलती-जुलती है।

बायीं ओर स्थित मंदिर का विकास और पुनरुत्थान कार्य काफी समय बाद वर्ष 1930 के लगभग किया गया जब देवी की रजत मूर्ति को टेढ़े हुए मंदिर परिसर के गर्भगृह से दूसरे मंदिर में स्थापित किया गया। इससे पूर्व बायीं ओर के मंदिर को साधारण त्रिअंकी छत से आवृत किया गया जो दायीं ओर मंदिर से छोटा प्रतीत होता है। यह तथ्य जेम्स वेली फ्रेजर के वर्ष 1820 के दस्तावेज से भी सत्यापित होता है। ए.एच. फ्रैंकल द्वारा उनकी कृति 'एंटीक्वीटीज़ ऑफ इंडियन-तिब्बत' के 1909 में लिए गए चित्र भी फैज़र के रेखाचित्रों की प्रामाणिकता को सत्यापित करते हैं।

दायीं ओर के मंदिर के साथ निचली सतह पर एक छोटा चबूतरा है जिसपर लौह त्रिशूल स्थापित किए गए जो लांकड़ा वीर के प्रतीक हैं। इस चबूतरे के साथ दायीं ओर एक गहरा कुआं है। लोगों का विश्वास है कि इसमें पाताल भैरव निवास करते हैं।

जब कोई भी आंगतुक इस मंदिर में एक सादे द्वार से प्रवेश करता है, द्वार के कपाट जो टेढ़े मंदिर की ओर खुलते हैं। एक सीधा रास्ता धरातल मंज़िल के कक्ष की ओर जाता है जो विविध प्रकार की आनुष्ठानिक शिल्प वस्तुओं से भरा पड़ा रहता है। इस कमरे से सीढ़ियों का छोटा रास्ता ऊपर मंदिर के गर्भगृह की ओर तीसरी और चौथी मंज़िल तक पहुंचता है। तीसरी मंज़िल पर स्थित मंदिर वेदिका काफी छोटी है लेकिन इसके उम्दा नक्काशीयुक्त द्वार और जाली लगी खिड़की से भीतर तक देखा जा सकता है। यहां मुख्य द्वार पर लगी सिल्वर लॉकिंग चेन बहुत ही दिचलस्प है जो 1987 में दियोठी गांव के शिल्पकार द्वारा बनाई गई है। इसे भीमाकाली के विवाह कक्ष के रूप में जाना जाता है।

चौथी मंज़िल पर मुख्य मंदिर स्थापित है। इसमें देवी भीमकाली की दुर्गा के रूप में मूर्ति स्थापित की गई है जिसे चांदी से पॉलिश किया गया है। इस मूर्ति की कलाकृति व शैली गुप्तकालीन कला से प्रभावित लगती है और यह कला बाद के वर्षों में पाल-प्रतिहास सारूप्यता के तहत इस क्षेत्र में विसारित रूप में पनपती रही। मंदिर की वेदी पर तकरीबन 15 मोहरे और अन्य धातु की मूर्तियां विद्यमान हैं जिन्हें अब चारों ओर से मजबूत लोहे की ग्रिलों से बंद करके तिजोरीनुमा कक्ष में परिवर्तित कर दिया गया है। मंदिर वेदिका पर स्थापित धातु मूर्तियों में से दो महात्मा बुद्ध तथा एक-एक शिव और पार्वती की हैं। इस कक्ष में एक बुद्ध की संगमरमर की अनूठी मूर्ति है। मंदिर में स्थापित सभी मूर्तियों को इतने भारी वस्त्र और मालाओं से सुसज्जित किया गया है कि इनके दर्शन करना भी कठिन हो जाता है। अंत में कहा जा सकता है कि किन्नौर जिले के कामरू, सपनी स्थित कोट मंदिर तथा भीमाकाली मंदिर सराहन के वास्तुशिल्प में एकरूपता देखी जा सकती है जो

अपने आपमें एक अनूठी कला है। जब हम कोट शैली में निर्मित इन तीनों मंदिरों का बुशहर रियासत के उदय और विस्तार के इतिहास के संदर्भ में अध्ययन करते हैं तो इन ऊंचे टावरनुमा ढांचों की निर्माण योजना का पता स्वतः ही लग जाता है। राजगद्दी की सुरक्षा और धार्मिक आस्था दोनों को ध्यान में रखते हुए कामरू स्थित दुर्गनुमा मंदिर एवं महल मिश्रित स्वरूप में निर्माण किया गया था ताकि पड़ोस की रियासतों के उभरते साम्राज्यों की चुनौतियों से बेहतर तरीके से निपटा जा सके। सपनी में राजा द्वारा अपनी सीमाओं को सुदृढ़ कर साम्राज्य स्थापित करने के उपरांत देवी का मंदिर तथा महल के अलग दो भवन डिजाइन किए गए और फिर दोनों ढांचों की संरचना को जोड़ दिया गया। सराहन में भी कोट मंदिर परंपरा को जारी रखा गया तथा एक टावर का निर्माण भीमाकाली के मंदिर के रूप में किया गया तथा साथ लगते भाग में दूसरे कार्यों के लिए दो-मंज़िले ढांचे का निर्माण किया गया जहां रियासत की राजधानी कामरू से सराहन स्थानांतरित करते समय राज-शासन से जुड़े लोग ठहरा करते थे। यह सारा घटनाक्रम दसवीं सदी के आस-पास घटा होगा जब इस मंदिर परिसर के प्राचीनतम भाग का निर्माण हुआ होगा।

भीमाकाली मंदिर परिसर सराहन इन तीनों मंदिरों में सबसे बाद में बना है। परिसर में स्थित मंदिर टावर इसके आस-पास के सभी भवनों से बिलकुल अलग हैं। परिसर में टावर सहित सभी भवन बाद में बने हैं जिसका पता सपनी स्थित भवनों में की गई नक्काशी कला एवं शिल्प की शैली से चलता है।

बीजट देवता मंदिर

शिमला जिले की चौपाल तहसील के सराहन गांव की हमल घाटी के मुकुट पर स्थित बीजट देवता मंदिर कई मायनों में बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मंदिर निर्माण में गुप्त और कुषाण कालीन मंदिर निर्माण शैली का बिना परिवर्तन किए प्रयोग किया गया है। कलात्मक सजावटी-कार्यों में अनेक लोक तत्त्वों का समावेश देखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर परिसर के भव्य द्वार कपाटों पर जन प्रचलित लोक प्रसंग चित्रित किए गए हैं जो एकदम प्रखर, सुस्पष्ट तथा सहज प्रबलता से परिपूर्ण हैं। कुश्तियों और शिकार के दृश्यों का चित्रण लोगों के रोजमर्रा के जीवन से प्रेरित प्रतीत होता है। जबकि मध्य में प्रमुखता से उत्कीर्ण किए वृताकार सजावटी मूल तत्त्व शायद उस समय संस्थापित बौद्ध मूलभाव का लोक रूप हो सकते हैं। वहीं दूसरी ओर मुख्य द्वार (भंडार) के सामने प्राचीन मंदिर के ढांचागत काष्ठ तत्त्व की सजावट को बेहद पेशेवर तरीके से संवारा गया है।

मंदिर की बनावट व डिजाइन पहाड़ी क्षेत्रों में बने अन्य काष्ठ मंदिरों से बिलकुल भिन्न है। मंदिर परिसर को कुषाण शैली के अनुरूप वर्गाकार रेखांकन में योजना रूप दिया गया है। वृहद वर्गाकार प्रांगण के चारों ओर मंदिर संरचना/ढांचा तैयार किया गया है और बीच का हिस्सा खुला है। तीन ओर से बड़े बरामदों के पीछे पंक्तिबद्ध कक्ष बनाए गए हैं। चौथी दिशा में अग्रभाग पर दो कोट शैली (टावरनुमा) के ऊंचे भवन हैं और इन दोनों को नीचे एक जगह से अलग-अलग किया गया है। इस मध्यवर्ती भवन में ही मंदिर परिसर का मुख्य द्वार बनाया गया है। परिसर में मंदिर की ऊंची इमारत के अलावा बाकी सभी भवन दोमंजिले हैं और ऊंचे टावरनुमा भवन परिसर के शेष भवनों से चार गुना ऊंचे हैं।

मुख्य द्वार के बिलकुल सामने के किनारे लेकिन परिसर के मध्य में बाहरी दिशाओं में फैली इमारती संरचना पर उम्दा काष्ठकला एवं नक्काशी की गई है। और इसकी आलंकरित त्रिअंकी-छत काष्ठ काला का उत्कृष्ट नमूना प्रतीत होती है। यह अवश्य ही देवता का मुख्य मंदिर रहा होगा। संभवतः कालांतर में यह मंदिर वज्रसत्त्व का हो सकता है जब यह बौद्ध भिक्षुओं के अधिकार क्षेत्र में था। यह वही बौद्ध देवता वज्रसत्त्व था जो सदियों से चली आ रही दंतकथाओं में बीजट देवता के नाम से संबोधित होने लगा।

बीजट देवता मंदिर परिसर अस्तित्व में आने के बाद से लेकर स्पष्टतयः अनेकानेक बार इसका पुनरुद्धार एवं सुधार कार्य किया गया लेकिन इस मूल वृताकार स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

भीमाकाली मंदिर परिसर सराहन इन तीनों मंदिरों में सबसे बाद में बना है। परिसर में स्थित मंदिर टावर इसके आस-पास के सभी भवनों से बिलकुल अलग हैं। परिसर में टावर सहित सभी भवन बाद में बने हैं जिसका पता सपनी स्थित भवनों में की गई नक्काशी कला एवं शिल्प की शैली से चलता है।

लेकिन ताज्जुब की बात है कि बीजट देवता का मुख्य मंदिर अब मुख्य द्वार की बगल में दाएं कोट (टावर) पर स्थित है। यह स्थल मंदिर गर्भ-गृह के लिए किसी भी दृष्टिकोण से तर्कसंगत नहीं लगता लेकिन यह आनुषंगिक देवता के लिए उपयुक्त स्थल हो सकता था। सोच-समझकर विचार करने पर यह उचित लगता है कि मुख्य द्वार के सामने आगे बढ़ाया गया भाग शायद गर्भ-गृह के लिए उपयुक्त स्थल हो सकता था जो अब बिलकुल वीरान है। इसका क्या कारण रहा होगा, यह आज भी रहस्य ही है। संभवतयः शंकराचार्य के शैवमत पुनर्जागरण आंदोलन के दौरान मुख्य द्वार के सामने वज्रसत्त्व स्थल को दरकिनार करके मंदिर मूर्ति को नए रूप में कोट मंदिर में स्थापित कर दिया गया होगा। स्थापना की इस प्रक्रिया में बुद्ध की मूर्ति को इसलिए वहां रहने दिया क्योंकि बुद्ध को हिंदू धर्म मान्यताओं में भगवान विष्णु का दसवां अवतार माना गया है। यह भी जिज्ञासा का विषय है कि क्षेत्र में बौद्ध वज्रयान के वर्चस्व काल में बौद्ध तांत्रिक देवी-देवताओं की मूर्तियों को कैसे हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियों के रूप में परिवर्तित किया होगा और बौद्ध मंदिर भी हिंदू धार्मिक संस्थान कैसे बन गए? वज्रयान

तांत्रिक देवी-देवता वज्रसत्त्व और उनकी भार्या वज्रवरही को हिंदू पौराणिक कथाओं में शिव और शक्ति रूप में प्रतिस्थापित किया गया है।

रैरमूल मंदिर कंढाहरण

चौपाल मार्ग पर बलसन क्षेत्र में कंढारण एक छोटा-सा गांव है जहां जोगिनी का एक छोटा लेकिन भव्य कोट मंदिर है जिसे अब स्थानीय लोगों द्वारा देवी कहा जाता है। लगभग 700 गुणा 700 वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र में 610 सेंटीमीटर ऊंचे वर्गाकार पत्थर की चिनाई के ठोस चबूतरे पर यह दोमंज़िला मंदिर निर्मित है। चबूतरे के सम्मुख सीढ़ीनुमा तंग मार्ग लकड़ी की बालकनी पर खत्म होता है। इसी बालकनी से एक द्वारा धरातल मंज़िल के कक्ष के लिए उपलब्ध करवाया गया। इस मंज़िल से एक सीढ़ी अंतिम मंज़िल तक जाती है जहां देवी स्थापित है। इस मंज़िल में चारों दिशाओं में बाहर की ओर बालकनी है जिसका प्रयोग परिक्रमा-पथ के रूप में किया जाता है। इस कोट मंदिर के गर्भ-गृह के ऊपर ऊंची ढालयुक्त अवतल शैली के साथ मिश्रित ढालू व त्रिअंकी छत और चल मार्ग के ऊपर चारों ओर बढ़ी हुई छत से आच्छादित किया गया है। धरातल मंज़िल पर बाहर बढ़ी हुई बालकनी को भी अवतल (नतोदर) त्रिअंकी छत दी गई है। बालकनी की छत के कोर-किनारों के कोणों पर लकड़ी की भव्य घंटियां लगे मोल्डिड झब्बों के साथ सजाया गया है। मंदिर की काष्ठ कला साधारण है और इस पर कोई उत्कीर्ण नहीं हुआ है। मंदिर संरचना बहुत ही प्रभावशाली और संतुलित है।

बायोंदर देवता मंदिर बछूंच

पब्बर घाटी के भीतरी क्षेत्र के बंछूच गांव में स्थित बायोन्दर देवता मंदिर भी दिलचस्प कोट शैली में बना है जो रोहड़ू से सुगरी सड़क मार्ग पर मचोटी गांव तक आठ किलोमीटर दूर और उसके बाद नदी पार दो किलोमीटर की खड़ी चढ़ाई के बाद आता है। यह कोट मंदिर एक ऐसे स्थल पर निर्मित है जहां कालांतर में प्राचीन प्रतिष्ठित शिखराकार शिला मंदिर हुआ करता था। मंदिर परिसर में इमारती ढांचों के टुकड़े, अनेक पाषाण मूर्तियां जिनमें से कुछ लघु शिला मंदिर में स्थापित भी हैं, बिना देखभाल के इधर-उधर देखे जा सकते हैं। इनमें से सफेद संगमरमर की 25 सेंटीमीटर ऊंची शिवमूर्ति तथा इसी आकार की काले ग्रेनाइट की बिना पहचान की मूर्ति काफी दिलचस्प लगती है। इसके अलावा यहां स्थानीय लोकास्था की दो काष्ठ मूर्तियां हैं। इस मंदिर के आस-पास के समूचे क्षेत्र के अन्वेषण व खोजबीन की नितांत आवश्यकता है ताकि इस बहूमूल्य धरोहर को नष्ट होने से बचाया जा सके।

कहा जाता है कि यह मंदिर लगभग 500 वर्ष पूर्व मंडी के कारीगरों ने बनाया था। कहा जाता है यहां पर स्थित पहले मंदिर को बुशहर रियासत के लोगों ने क्षतिग्रस्त किया था जिससे राजा को देवता का शाप झेलना पड़ा था। किसी देववाणी या देवात्मा ने इस शाप से मुक्ति पाने के लिए राजा को उस स्थल पर शीघ्र मंदिर बनवाने का परामर्श दिया ताकि देवता को शांत किया जा सके। तदोपरांत राजा ने मंडी से कारीगर बुलाकर वर्तमान काष्ठ मंदिर का निर्माण करवाया। इस लोक कथा में कितना सत्य है, इस बारे कुछ नहीं कहा जा सकता। स्थानीय लोकप्रिय काठ-कुणी निर्माण शैली के विपरीत लकड़ी-दीवार में शुष्क पत्थर की चिनाई की गई है। इस तरह की दीवार चिनाई केवल मंडी जिले में की जाती है जो वर्तमान में भी वहां के इमारती लकड़ी की कमी वाले क्षेत्रों में प्रचलित है।

मंदिर में प्रयुक्त हरे पत्थर भी रामपुर की खदानों से लाए गए थे। यह मंदिर आठ मीटर ऊंचे ठोस चबूतरे पर बनी दोमंज़िला इमारत है। धरातल मंज़िल के लिए प्रास बालकनी द्वारा पत्थर के प्रांगण से बाह्य सीढ़ी दी गई है। धरातल मंज़िल के 800 गुणा 800 वर्ग सेंटीमीटर के बाह्य भाग में 730 गुणा 730 सेंटीमीटर आकार का बड़ा वर्गाकार कक्ष है जिसकी 35 सेंटीमीटर मोटी पत्थर की दीवारें हैं। इस कक्ष को दो भागों में विभक्त किया गया है- एक पवित्र ज्योति के लिए और दूसरा श्रद्धालुओं के लिए है।

पहली मंज़िल को अंदर सीढ़ी से जोड़ा गया है और यह भी दो भागों में विभक्त है- एक गर्भ-गृह, दूसरा भंडार। सजावटी छत व्यवस्था के साथ मंदिर के आकार को बढ़िया तरीके से कलात्मक रूप दिया गया है। मंदिर की छत मिश्रित ढालू व त्रिअंकी शैली के साथ बेहद अलंकारिक है।

समरकोट जोगिनी मंदिर

छूंच गांव से सुगड़ी की ओर कुछ किलोमीटर की दूरी पर सड़क के किनारे समरकोट गांव आता है जहां खड़ी एक ऊंची कोट मंदिर इमारत का नाम है समरकोट। यह दुर्गनुमा कोट बहुत ही प्राचीन है। संभवतयः इस क्षेत्र का प्राचीनतम जब यह क्षेत्र खूंदों में बंटा हुआ था। इस क्षेत्र में इस खूंद संस्था के समाप्त होते ही इनके दुर्गो ने भी अपना महत्त्व खो दिया और ये भुला दिए गए। इनमें से अधिकतर तो अपने आप ही समाप्त/क्षतिग्रस्त दो गए और इनके अवशेष बिना किसी देख-भाल के इधर-उधर पड़े रहे। समरकोट का दुर्ग इस क्षेत्र के रक्तरंजित इतिहास के कुछेक जीवित अवशेषों में से एक है, जो सदियों की उपेक्षा व प्रकृति की मार के बावजूद आज भी शेष हैं। स्थानीय पर्वतीय टीले पर शोभायमान यह इमारत सामरिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है।

यदि यह कोट जोगिनी का वास न रहा होता तो यह शायद बहुत पहले ही लुप्त हो गया होता। इस क्षेत्र के लोग जोगिनी से डरते भी हैं और विपत्ति और आपदा की स्थिति में जोगिनी की पूजा-अर्चना करना कभी नहीं भूलते। संकटपूर्ण समय के आवसरिक मौकों पर कोट में काफी भीड़ जुटती है। इस प्रकार सदियों पुराना यह कोट आज भी जीवित है।

11, शिवालिक भवन, संजौली, शिमला-171 006,
मो. 94180 42767

आस्था स्थल

श्रद्धा और संस्कृति के परिचायक
जनपद के मंदिर

• अनिल गोमा

हिमाचल प्रदेश में शोभित मन्दिर और देवालय यहां के गौरवमय इतिहास और समृद्ध देव संस्कृति के परिचायक हैं। मन्दिरों की अनूठी वास्तुकला और इनके साथ जुड़ी पौराणिक मान्यताओं का अनुषंग देव अनुयायियों के साथ-साथ पर्यटकों को भी हिमालय की देव परम्परा की सत्वता का अहसास कराता है।

शिमला जिला के हर गांव में देवता का मन्दिर है और हर परिवार का अपना इष्ट देव। मन्दिर यहां के जीवन दर्शन, सांस्कृतिक धरोहर और मान्यताओं के प्रतिबिंब हैं।

राजधानी शिमला में ऐतिहासिक हनुमान मन्दिर जाखू, जो रिज मैदान के ऊपर जाखू पहाड़ी के शिखर पर स्थित है। ऐसी मान्यता है कि लंका युद्ध में मेघनाथ के बाण ने लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया था, उसके बाद हनुमान आकाश मार्ग से संजीवनी बूटी लेने के लिए हिमालय की ओर द्रुतगति से आ रहे थे, तो अचानक उनकी दृष्टि जाखू पर्वत पर तपस्या में लीन यक्ष ऋषि पर पड़ी। कालान्तर में उनके नाम पर ही (यक्ष याक याकू- जाखू) इस स्थान का नाम पड़ा। तब हनुमान संजीवनी बूटी का परिचय जानने के लिए यहां उतर गए और उसके बाद लक्ष्य प्राप्ति के लिए द्रोण पर्वत की ओर चले गए।

जिस स्थान पर हनुमान उतरे थे, वहां पर आज भी उनके चरण चिन्हों को मन्दिर के पीछे एक कुटिया में संगमरमर से निर्मित करके सुरक्षित रखा गया है। ऋषि को दिए अपने वचन के अनुसार श्री हनुमान जी वापसी के दौरान इस स्थल पर नहीं आ पाए और बाद में उन्होंने ऋषि को दर्शन दिए। उनके अन्तर्ध्यान होने के तुरन्त बाद एक मूर्ति प्रकट हुई, जो आज भी मन्दिर में विद्यमान है।

जाखू मन्दिर के मुख्यद्वार के समीप ही बाबा बालक नाथ का भव्य मन्दिर शोभायमान है। हाल ही में पुरातन हनुमान मन्दिर के साथ ही हनुमान की 108 फीट ऊंची प्रतिमा स्थापित की गई है। पिछले कुछ वर्षों में जाखू मन्दिर परिसर में श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए अनेक सुविधाएं प्रदान की गई हैं । जाखू मन्दिर में धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए एक निजी कम्पनी के सहयोग से यू.एस. क्लब शिमला से जाखू मन्दिर तक रोप-वे भी स्थापित किया जा रहा है।

आज जिस स्थान पर शिमला नगर बसा है, उसे पहले श्यामला, शुमला और शिमलू नामों से जाना जाता था। सन 1815 में अंग्रेजों ने स्थानीय शासन से लेकर इसे अपने अधीन कर लिया। उन्होंने 1823 में इस स्थान को विकसित करने के लिए यहां भैगोलिक सर्वेक्षण आरम्भ किया। सर्वेक्षण दल में अधिकांश कार्यकर्ता बंगाली थे। जहां आज रेलवे बोर्ड भवन है वहां सर्वेक्षण दल का कैम्प था। इस स्थान के समीप ही, जहां आज कालीबाड़ी मन्दिर स्थापित है एक प्राचीन गुफा हुआ करती थी, इसमें एक साधु माता चण्डी की पूजा करता था। सर्वेक्षण में आए बंगाली कार्यकर्ता नियमित रूप से पूजा के लिए उस साधु के पास जाते थे। इस साधु की मृत्यु के पश्चात बंगाली सर्वेक्षण कार्यकताओं ने माता चण्डी की नियमित पूजा का क्रम जारी रखा, वे शीघ्र ही जयपुर से काली माता जी की एक प्रतिमा लेकर आए और उसकी विधिवत रूप से प्रतिष्ठा की। इस प्रकार कालीबाड़ी मन्दिर की स्थापना हुई।

हनुमान मन्दिर जाखू मार्ग पर एक अन्य साधु श्यामला माता की पूजा किया करता था । एक घमंडी अंग्रेज ने उसकी प्रतिमा को फेंक दिया। जब कुछ बंगाली श्रद्धालुओं को इस बात का पता चला तो वह इस प्रतिमा को ढूंढ कर लाए और 1835 में इसे कालाबाड़ी मन्दिर में स्थापित किया।

सन 1889 में प्रथम बार इस मन्दिर की प्रबंधन समिति का गठन किया गया। 1925 और 1931 में मन्दिर का निर्माण कार्य हुआ। नए मन्दिर भवन के निर्माण के बाद 1931 में मण्डी के राजा मेजर सर जोगेन्द्र सेन (जो कि बंग सेन् शासक के वंशज थे) द्वारा यहां पूजा करवाई गई।

शिमला-सोलन बस मार्ग पर तारादेवी स्थान से लगभग 3 किलो मीटर की दूरी पर मां तारादेवी का भव्य मन्दिर है। पहाड़ी पर

जिस स्थान पर यह मन्दिर है, उसे तारब नाम से भी जाना जाता है, इस मन्दिर के नामकरण की अन्य कथाएं भी प्रचलित हैं। मन्दिर में अष्टधातु की भव्य प्रतिमा स्थापित है। मन्दिर के प्रांगण में उगे पेड़ पर श्रद्धालू मौली बांधकर मां से अपनी मुराद पूरी करने की कामना करते हैं। मन्दिर प्रबन्धन द्वारा मां तारादेवी प्रांगण का जीर्णोद्धार कर इसे भव्य रूप दिया गया है, इस मन्दिर के समीप ही, हाल ही में पहाड़ी शैली में एक अन्य मन्दिर भी निर्मित किया गया है।

शिमला का प्रसिद्ध हाटकोटी मन्दिर शिमला से लगभग 120 किलोमीटर दूरी पर पब्बर नदी के किनारे स्थित है। मन्दिर परिसर में मां हाटेश्वरी के मन्दिर के साथ ही भगवान शिव का मन्दिर भी है, जिसकी भव्यता देखते ही बनती हैं। मां हाटेश्वरी मन्दिर के द्वार के समीप एक विशाल ताम्र कलश लोहे की जंजीर से बंधा है। मान्यता के अनुसार यह कलश मन्दिर के पुजारी को एक स्वप्न के बाद पब्बर नदी में बहता हुआ मिला था। कहा जाता है कि जब भी बरसात में भारी बारिश होती है तो इस कलश से सीटी की आवाजें आती हैं। मन्दिर के गर्भगृह के शिखर पर पैगोड़ानुमा छत है और चारों ओर मण्डप बना है।

सराहन का भीमाकाली मन्दिर पहाड़ी स्थापत्य शैली में बना भव्य मन्दिर है। शिमला से लगभग 180 किलो मीटर की दूरी पर स्थित सराहन की भीमाकाली का पुराणों में भी उल्लेख मिलता है। यह मन्दिर ऐतिहासिक एवं कला की दृष्टि से अदभुत है। सराहन, बुशहर राज्य की राजधानी रही है। भीमाकाली देवी का पौराणिक महत्व रहा है और बुशहर के राजाओं की मां भीमाकाली के प्रति विशेष आस्था रही है। उन्होंने महल के मध्य कुलदेवी के मन्दिर का निर्माण किया। मन्दिर में शक्ति देवी की धातु की मूर्ति स्थापित है और इसकी काष्ठकला अद्भुत है। मन्दिर में देवी के दर्शन के लिए देश के कोने-कोने से भारी तादाद में श्रद्धालु आते हैं।

रामपुर से लगभग 17 किलो मीटर की दूरी पर नीरथ गांव में सूर्य नारायण का मन्दिर है। मन्दिर की वास्तुकला अद्भुत है। मन्दिर के गर्भगृह में पाषाण सूर्य प्रतिमा स्थापित है और मान्यता है कि इस मन्दिर को भगवान परशुराम द्वारा स्थापित किया गया है। यह मन्दिर प्रदेश में सूर्य का एक मात्र मन्दिर माना जाता है।

रामपुर से लगभग 11 किलो मीटर की दूरी पर दत्तनगर में प्राचीन दत्तात्रेय मन्दिर है। मन्दिर में लकड़ी की वेदिका पर भगवान दत्तात्रेय की मूर्ती स्थापित है। इस मन्दिर में धातु से बनी अन्य प्रतिमाएं भी स्थापित की गई हैं।

शिमला से लगभग 50 किलो मीटर की दूरी पर शाली टिम्बा पर मां भीमाकाली मन्दिर स्थित है। इस मन्दिर तक जाने के लिए खटनोल तक वाहन के माध्यम से पहुंचा जा सकता है और उसके पश्चात लगभग 10 किलो मीटर की दूरी पैदल तय करनी पड़ती है। यह मन्दिर श्रद्धालुओं के आकर्षण का मुख्य केन्द्र है और यहां विदेशी पर्यटक भी वर्ष भर भारी तादाद में शिरकत करते हैं।

नारकण्डा से लगभग 10 किलो मीटर दूर पहाड़ी पर हाटू मन्दिर स्थित है। पहाड़ी की चोटी पर स्थित इस मन्दिर का हाल ही में जीर्णोद्धार भी किया गया है। यहां मां के दर्शन के लिए श्रद्धालू दूर-दूर से आते हैं। इस मन्दिर के परिसर तक सड़क सुविधा उपलब्ध है।

शिमला से लगभग 60 किलो मीटर की दूरी पर गिरि गंगा के तल से कुछ दूरी पर बलग का भव्य शिव मन्दिर है। शिखर शैली में निर्मित इस मन्दिर की वास्तुकला अदभुत है। इस मन्दिर में भगवान विष्णु और मां दुर्गा की मुर्तियां भी स्थापित की गई हैं और बाहरी दीवारों पर कई प्रकार की प्रतिमाएं अंकित हैं।


हाटू मंदिर : नारकंडा

शिमला जिला में बिजट महादेव का प्राचीन मन्दिर सराहाँ में है। यहां चौपाल होते हुए पहुंचा जा सकता है। यह मन्दिर पुरातात्त्विक दृष्टि से अदभुत है। बिजट महादेव चौपाल क्षेत्र के इष्ट देव हैं, इस क्षेत्र मे हर वर्ष बिशु मेला लगता है।

शिमला के रोहड़ू क्षेत्र में शिखड़ू देवता का प्राचीन मन्दिर है। इस क्षेत्र के लोगों में देवता के प्रति अटूट श्रद्धा है। विभिन्न धार्मिक आयोजनों के दौरान इस मन्दिर की आभा देखते ही बनती हैं।

शिमला नगर सिर्फ अपने ऐतिहासिक महत्त्व के लिए ही प्रख्यात नहीं हैं बल्कि इसके उपनगरों में विभिन्न मन्दिर भी सभी के आकर्षण का मुख्य केन्द्र हैं, जिसमें संकटमोचन मन्दिर भी प्रमुख है। शिमला से लगभग 6 किलो मीटर की दूरी पर स्थित इस मन्दिर



में हनुमान, सीता राम और शिव जी की मूर्तियां स्थापित की गई हैं। मन्दिर का निर्माण पहाड़ी शैली में किया गया है। मन्दिर के समीप ही दक्षिण भारत शैली में गणेश के मन्दिर का निर्माण किया गया है। मन्दिर प्रबंधन द्वारा परिसर के जीर्णोद्वार के साथ-साथ यहां धार्मिक महत्त्व में अनेक पौधों का रोपण किया गया है। मन्दिर प्रबंधन द्वारा संकटमोचन मन्दिर, तारादेवी मन्दिर और जाखू मन्दिर की वेबसाईट भी तैयार की गई है ताकि पर्यटकों को इन मन्दिरों के बारे मे जानकारी प्रदान की जा सके। इन मन्दिरों में हर रविवार को भण्डारों का आयोजन भी किया जाता है।

शिमला नगर के समीप कामना देवी मन्दिर, माहू नाग शगीन मन्दिर, ढींगू देवी मन्दिर, धानु देव मन्दिर, काली मां मन्दिर जतोग और खुशहाला मन्दिर हैं। यहां स्थानीय लोगों के साथ-साथ पर्यटकों की भी भारी भीड़ रहती है। शिमला नगर में लिफ्ट के समीप शिव मन्दिर, अनाज मंडी के समीप राधा कृष्ण मन्दिर, राम मन्दिर, मालरोड के समीप शिव मन्दिर, पंथाघाटी में पारद शिवलिंग मन्दिर समेत अनेक देवालय हैं।

शिमला जिला में स्थानीय देवताओं के मन्दिरों की वास्तुकला और सौन्दर्य अदभुत है। अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्वार भी किया जा रहा है। हाल ही में रोहडू के समीप नारायण देवता मन्दिर का निर्माण किया गया है लकड़ी पर मनमोहक नक्काशी और तराशे गए पत्थरों को जोड़कर नारायण देवता का मन्दिर काठ कुणी कला का अनूठा नमूना है। मन्दिर के चारों ओर नक्काशी किए गए 42 इंच मोटे और 25 फुट ऊंचे खम्भों को स्थापित किया गया है।

मन्दिर निर्माण में लकड़ी की नक्काशी सांगला और भावानगर के कारीगरों ने की है। पत्थर को तराशने का कार्य करसोग के कारीगरों ने, तराशे गए पत्थरों को लगाने का कार्य सिरमौर के कारीगरों ने किया है। इस भव्य मन्दिर को 50 से अधिक कारीगरों ने लगभग छः साल में बनाया है।

शिमला के मतियाणा में माननेश्वर मन्दिर, डोम देवता मन्दिर गुठाण, शरमला मन्दिर, चिखड़ेश्वर मन्दिर चिखड़, नंगलदेवी मन्दिर, धर्मपुर देवी मन्दिर, देवता बैन्द्रा मन्दिर दियोरी कोटखाई, डूम देवता मन्दिर डूम कोटखाई, शिवजी महाराज मन्दिर पुड़ग कोटखाई, मां काली मन्दिर चियोर कोटखाई, शिरगुल देवता मन्दिर थरोच चौपाल, लांकड़ाबीर मन्दिर चौपाल, नाहर सिंह देवता मन्दिर दलशार कोटखाई, नांदिन माता मन्दिर खनेटी, धदंरवाड़ी मन्दिर क्वार, जाख मन्दिर डोडरा, धारा देवता मन्दिर क्वार, शिरगुल देवता मन्दिर चूड़धार, महासू देवता मन्दिर नेरवा, दुर्गा माता मन्दिर ध्वास, नरसिंह देवता मन्दिर धामी, काली माता मन्दिर कालीहट्टी, हनुमान मन्दिर धामी, भीमाकाली मन्दिर रतनपुर (धामी) अंबिका माता मन्दिर दियोरीधार धामी, देवध्रैत मन्दिर धैचड़ी धामी, भवानी माता मन्दिर घण्डल, सराईकोटी मन्दिर रामपुर, माता मन्दिर रवोपड़ी रामपुर, उन्नू महादेव मन्दिर ज्यूरी, देवता खडाहन मन्दिर ननखड़ी, देवता सोली मन्दिर ननखड़ी, बिजेश्वर मन्दिर जुन्गा, मादग मन्दिर मादग, कालीघाट मन्दिर सुन्नी, शिव मन्दिर सुन्नी, सत्य नारायण मन्दिर सुन्नी, हनुमान मन्दिर सुन्नी, सीपु देवता मन्दिर सीपुर, देवता कुरगन मन्दिर, छवालड़ी, शिव देवता मन्दिर, मूल कोटी, हनुमान मन्दिर सीपुर, देवता शुराली मन्दिर चमयाना, भद्रकाली माता तलाई मशोबरा, कालीमाता मन्दिर टिक्कर, दुर्गा माता मन्दिर देवधार क्यार कोटी, शिलाई माता मन्दिर बसन्तपुर, बथिदलू देवता पजयाली खटनोल, पन्दोई महराज मन्दिर पंदोआ, देवीधार मन्दिर, देव कुरगण मंदिर नलावण, मढोडी देवता मन्दिर मढोडघाट, देवता बनाड़ मन्दिर पुजारली मांदल, क्यालू देवता मन्दिर रोटान, देवता मन्दिर पुजारली-4, देवता शिलादेश मन्दिर शिलादेश समेत शिमला जिला के अनेक भव्य मन्दिर हैं।

जिला के हर गांव और बस्ती में मौजूद भव्य मन्दिर समाज को एक सूत्र में पिरोए रखने में सबसे अहम भूमिका निभाते हैं। यहां सदियों से विद्यमान देव परम्पराएं आज भी समाज की सबसे महत्वपूर्ण पथ प्रदर्शक हैं।

जिला लोक सम्पर्क अधिकारी, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 001, मो. 94181 03637



भगवती तारा

• गोपाल दिलैक

प्रकृति के मूल से निसृत अविरल आनंद, नवचेतना और नवस्फूर्ति का संचार करने वाली शक्ति को वेदों में अदिति कहा गया है। उसे देवमाता भी कहा गया है। काठक शास्त्र के उपनिषद् में उल्लेख किया गया है, "जिसका भेद न हो ऐसी अदिति नाम की शक्ति देवतामय है।" वेदत्रयी, ब्राह्मण, आरण्यक आदि में आद्य शक्ति के उपास्यरूप का वर्णन मिलता है। श्रौत, उपनिषद्, सूत्र, आगमन (तंत्र विद्या) आदि में भी शक्तिवाद पर विपुल साहित्य की रचना हुई है। हिंदू धर्म के अनुरूप बौद्ध धर्म में भी शक्ति साधना का निरूपण तंत्र विद्या के आधार पर हुआ है। बौद्ध महायान तांत्रिकों की एक मुख्य शाखा को वज्रयान कहा जाता है। बौद्ध वज्रयानों का तंत्र क्लाप हिंदू तंत्र विद्या से मिलता-जुलता है। मंत्र भी संस्कृत में हैं केवल देवता के नाम का अंतर है। बौद्धों की वज्रवाराही देवी प्रायः ब्राह्मणों की वारही (दंडिनी) के समान है। उपासना क्रम भी लगभग एक-सा है। बौद्धों की विशेष देवी का दूसरा रूप 'तारा' है। जिस प्रकार हिंदुओं में शक्ति का प्राधान्य है, ठीक उसी प्रकार बौद्ध महायानों में तारा का स्थान सर्वोपरि है।

ब्राह्मण और बौद्ध ओंकार (प्रणव) को तार अर्थात् ईश्वर का रूप मानते हैं। संभवतः उस देवता की पत्नी को तारा के नाम से पुकारा गया है। हिंदूमत तार-तारा को शिव-शक्ति भी मानता है। बौद्ध ग्रंथों में अवलोकितेश्वर की शक्ति तारा कही गई है। इसी प्रकार तंत्रशास्त्र में शिव अर्थात् अक्षोम्य की शक्ति तारा कही है। श्रुति में सूर्य को नक्षत्र कहा है। आगम शास्त्र में इनकी शक्ति तारा के नाम से प्रसिद्ध हुई है। निगम शास्त्र ने संपूर्ण विश्व की रचना का आधार सूर्य को माना है। हिरण्यगर्भ विद्या में सौरमंडल को हिरण्यगर्भ कहा है। विश्वाधिष्ठाता हिरण्यगर्भ की शक्ति को तारा कहा गया है। शिव-घोर-भेद से इसके दो रूप बतलाए हैं। समुद्र मंथन में घर्षण से आग्नेय परमाणु उत्पन्न हुए, वही पिंड रूप में परिणत होते हुए सहसा प्रज्वलित हो उठे, उस आग्नेय पिंड का नाम सूर्य हुआ है। भयंकर रुद्राग्नि से ही तो सूर्य को रुद्र भी कहा गया है। संसार के कल्याण के लिए अक्षोम्य (शिव) ने तारा के सान्निध्य में उस हलाहल का पान किया था। आगम शास्त्र में तारा को जलप्लावन की देवी कहा गया है। वह जल के तांडव से मानव की रक्षा करती है। इस प्रकार तार-तारा के नानारूपों का सृष्टि में समन्वय होता है।

तारा के उपास्य रूप का दिग्दर्शन सर्वप्रथम बौद्ध मतानुयायी की वज्रयान शाखा में होता है। बौद्ध ग्रंथ 'साधनमाला' में उल्लेखित है कि तारा की पूजा सबसे पहले भोट देश (तिब्बत) में प्रचलित थी। स्वतंत्र तंत्र में स्पष्ट किया गया कि तारा मेरु पर्वत के पश्चिम भाग में 'चोलना' सरोवर तट से उत्पन्न हुई है। इससे प्रतीत होता है कि प्रारब्ध में तारा की उपासना लद्दाख के आसपास आरंभ हुई

है। कालांतर में इन बौद्ध स्थलों से मां तारा की उपासना का प्रादुर्भाव हुआ। परिणामस्वरूप अन्य प्रमुख बौद्ध स्थानों कसया, बौद्धगया, सहरसा आदि मंदिरों में भी तारा की पूजा की जाने लगी। तंत्र चूड़ामणि में इक्यावन शक्तिपीठों तथा देवी भागवत पुराण में एक सौ आठ देवी पीठों का सविस्तार वर्णन दिया गया है। भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थापित इन शक्ति स्थलों में मिथिला देश (वर्तमान बिहार) के महिषि नामक गांव का एक प्राचीन शक्तिपीठ उग्रतारा के नाम से विख्यात है। यह दस महाविद्याओं में एक महाविद्या तारा की पूजनीय स्थली है। बंगाल के वीरभूमि जिला के तारापुर में भी एक प्रसिद्ध तारापीठ है। इस देवी स्थान के सिद्ध महात्मा वामाक्षेपा का जीवन मां तारा की उपासना में बीत गया।

देश के सुप्रसिद्ध तारापीठों में हिमाचल प्रदेश के शिमला शहर के समीप तारब टिले पर समुद्रतल से 7200 फुट की ऊंचाई पर स्थित भगवती तारा का भव्य धाम भी एक है। इस मंदिर की स्थापना क्योंथल रियासत के सेन वंशज ने करवाई है। सेन शासक मूलतः बंगाल के निवासी थे। मुगल सम्राट शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण के भय से सूर्यसेन बंगाल छोड़कर इलाहबाद (प्रयाग) आ गए थे। सेन वंश की अग्रणी पीढ़ी के गिरिसेन क्योंथल रियासत के संस्थापक हुए। इन्होंने क्योंथल की राजधानी जुनगा में स्थापित की। बंगाल के सेन वंश को कुल-इष्ट 'तारा' ने रियासती वंश क्रम के 67वें नरेश भूपेंद्र सेन को साक्षात् दर्शन देकर चेताया था।

देश के सुप्रसिद्ध तारापीठों में हिमाचल प्रदेश के शिमला शहर के समीप तारब टिले पर समुद्रतल से 7200 फुट की ऊंचाई पर स्थित भगवती तारा का भव्य धाम भी एक है। इस मंदिर की स्थापना क्योंथल रियासत के सेन वंशज ने करवाई है।

जनश्रुति है कि एक बार राजा भूपेंद्र सेन जुग्गर के जंगल में आखेट पर गए थे। जंगल में चलते-चलते राजा को एक पहाड़ी पर शेर की दहाड़ सुनाई दी। शेर की आवाज सुनकर राजा शिकार के लालच में उसी दिशा में गए। कुछ दूर चलकर एक देवी ने राजा को साक्षात् दर्शन देकर कहा, "हे राजन् मैं तुम्हारी कुल-इष्ट तारा हूं। यहां मेरा मंदिर बनवाकर उसमें मेरी मूर्ति स्थापित करवा देना। मैं तुम्हारे कुल की रक्षा करूंगी।" यह वचन देकर वह दिव्य ज्योति अंतर्ध्यान हो गई। इस दृष्टांत से राजा भाव-विह्वल हो उठा। राजा ने कुल देवी को प्रसन्न करने के लिए जुग्गर के जंगल का एक विस्तृत भू-भाग मां तारा के नाम कर वहां एक मंदिर बनवाया तथा उस मंदिर में भगवती तारा की काष्ठ प्रतिमा स्थापित करवाई।

लेजेंड ऑफ द पंजाब भाग-एक के पृष्ठ 367-379 पर सिरमौर के राजा मही प्रकाश की हार (हारुल) का उल्लेख करते हुए आर.सी. टेम्पल ने लिखा है- राजा मही प्रकाश ने क्योंथल रियासत पर अनूपसेन (1670-1692) के शासनकाल में आक्रमण किया था। देशु-की-धार में हुए घमासान में मही प्रकाश की हार हुई। आखिर मही प्रकाश ने रानी गुलेर की मदद से क्योंथल की सेना को वापस हटाया था। इस हारुल का लोक कथानक इस प्रकार है- जब राजा मही प्रकाश ने क्योंथल रियासत पर आक्रमण किया तो उस समय क्योंथल नरेश नाबालिग था। तब राजकुमारी ने शीतला मां तारा के मंदिर में जाकर टिका की रियासत की रक्षा के लिए याचना की थी। मां तारा के मंदिर से युद्ध पताका लगाकर रानी रणक्षेत्र में गई। शत्रु की धमाकेदार तोप व बंदूक की गोलियां उस देवध्वज के आगे थम-सी जाती थीं। यह लोक धारणा समूची रियासत में प्रचलित रही। इस प्रकार रानी क्योंथल के हाथों राजा मही प्रकाश की हार हुई।

हिमाचल प्रदेश का इतिहास ग्रंथ के पृष्ठ 285 पर क्योंथल रियासत का वर्णन देते हुए मियां गोवर्धन सिंह ने स्पष्ट किया है- "क्योंथल राजवंश की वंशावली में राजा बलवीर सेन (1882-1901) 74वें वंशक्रम पर है।" शिमला हिल स्टेटस गज़ेटियर-1910 में उल्लेख मिलता है कि राजा बलवीर सेन के शासनकाल में तारानाथ नामक एक सिद्ध योगी जुग्गर के जंगल की ऊंची चोटी पर धूना रमाकर तप करने लगे। उनकी घोर तपस्या के बल से वर्षा के पानी की एक भी बूंद उनके धूने पर नहीं गिरती थी। उनकी चमत्कारिक शक्ति को सुनकर क्योंथल के राजा बलवीर सेन भी योगी से मिलने गए। योगी ने राजा से कहा कि- "अगर तुम इस स्थान पर भगवती तारा का मंदिर बनवाकर इसमें मां तारा की अष्टादश भुजी अष्टधातु की प्रतिमा स्थापित करवा देते हो तो रियासत में खुशहाली और समृद्धि आएगी।" यह भी दंतकथा है कि एक बार क्योंथल नरेश मुगल सल्तनत के हुक्मनामा पर दिल्ली गए थे। दिल्ली प्रस्थान करने पर राजा को अपनी भुजा में लगे ओजस्वी ताबीज को निकालने का ध्यान न रहा। यह ताबीज सेन राजवंश के हर उत्तराधिकारी को वंश परंपरा के अनुसार कुल-इष्ट तारा की ओर से पहनाया जाता था। देवी रूपी ताबीज की कुलीन मर्यादाओं को पवित्र रखने के आशय से राजा उसे दिल्ली ले जाना नहीं चाहता था। उसने वह ताबीज मार्ग में पड़ने वाले गनपैरी नामक गांव में बने देवी मंदिर में रख दिया। दिल्ली पहुंचने पर राजा बलवीर सेन को भगवती तारा ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा- "मैं गनपैरी में हूं। इस गांव के सामने ऊपर की ओर ऊंची चोटी पर मेरा मंदिर बनवाकर उसमें मेरी मूर्ति स्थापित करवा देना। इससे तुम्हारे राजकीय यश की अभिवृद्धि होगी।" यह संभवतः वही पहाड़ी बताई गई है, जहां योगी तारानाथ ने डेरा डाला था।

तद्‌युगीन परिस्थितियों में राजा बलवीर सेन ने उसी पहाड़ी पर माता तारा का एक मंजिला मंदिर बनवाया, जहां योगी तारानाथ तपस्यारत थे। कालांतर में यही पहाड़ी तारब पहाड़ी के नाम से

विख्यात हुई। राजा का हुक्म पाकर हस्तशिल्पी ने मूर्ति निर्माण का कार्य पंडित भवानीदत्त की देखरेख में संपूर्ण किया। मार्कंडेय पुराण में महिषासुरमर्दिनी स्वरूपी भगवती तारा की अष्टादश भुजाओं वाली अष्टधातु की प्रतिमा जब लोह शिल्पी राज दरबार में प्रस्तुत करता है तो मूर्ति को देखकर राजा दंग रह जाता है। राजा प्रसन्न होकर दस्तकार को बहुत-सी स्वर्ण मुद्राएं और धन इनाम में देता है। उम्मीद से अधिक पारितोषिक पाकर शिल्पी की खुशियों का ठिकाना न रहा।

जगजननी तारा की मूर्ति को जुनगा से तारब की पहाड़ियों तक पहुंचाने के लिए शंकर नामक राज हाथी को सजाया गया। इस शोभा यात्रा में शामिल विशाल जनसमूह के साथ मंत्र-तंत्र का लोकाचार पंडित भवानीदत्त ने निभाया। ढोल-नगाड़ों की देव दुंदुभि तथा बलि के साथ मूर्ति को तारब की पहाड़ियों तक पहुंचाया गया। यहां बने मंदिर में भगवती तारा की मूर्ति पंडित भवानीदत्त ने योगी तारानाथ की उपस्थिति में वाममार्गीय पद्धति से स्थापित करवाई। इसके पश्चात मंदिर में प्रतिवर्ष शारदीय नवरात्र की अष्टमी को झोटे का तिलक कर राज-बलि चढ़ाई जाती थी।

राजा हिमेंद्र सेन (1916-1942) ने तारा देवी मंदिर में पशु-बलि बंद करवाने का प्रयास किया था। जनश्रुति है कि क्योंथल नरेश हिमेंद्र सेन ने सन् 1942 ई. को तारा देवी मंदिर में श्री विग्रह के समक्ष बलि प्रथा बंद करने का आग्रह किया और देवी को वचन दिया- "हे जगदम्बा अगर तू बलि चाहती है तो मैं स्वयं अपने आपको अर्पित करता हूं लेकिन पशुबलि नहीं दूंगा।" यह शब्द कहकर राजा मंदिर से महल की ओर प्रस्थान करता है। दरबार में पहुंचकर राजा की अचानक मृत्यु हो जाती है। इस अनहोनी घटना के पश्चात तारा देवी मंदिर में झोटा बलि बंद हो गई। पुजारी व पंडितों को दान-दक्षिणा भी दी जाती थी। राज परिवार भगवती तारा के सामने नतमस्तक होकर विगत वर्ष के पापों से मुक्ति की प्रार्थना कर आगामी वर्ष के लिए खुशहाली और समृद्धि की कामना करता था। राजा की भांति रियासत की प्रजा का भी मां तारा के प्रति अगाध विश्वास रहा है। सेन राजवंश के उत्तराधिकारी हिमेंद्र सेन और हितेंद्र सेन (1925-2000) ने तारा देवी मंदिर के जीर्णोद्धार और आवासीय परिसर विस्तार के कार्य को गहन रुचि के साथ करवाया था।

मां तारा की प्रत्येक भुजा परशु, वाण, गदा, वज्र, पद्म, शूल, धनुष, दंड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, चक्र, घंटा, पाश, मधुपात्र, कुंडिका आदि आयुद्धों से सुसज्जित है। अष्टधातु में निर्मित दरबार की वेदिका पर महामाया की प्रतिमा के सम्मुख मां तारा का वाहन शेर दायीं ओर तथा महिषासुर बायीं ओर है। भगवती की मुख्य प्रतिमा के साथ एक ओर अष्टभुजी महाकाली तथा दूसरी ओर चतुर्भुजी महासरस्वती की काष्ठ प्रतिमाएं हैं। देवी मंदिर प्रांगण में पूर्व ओर प्रवेशद्वार के सामने लांकड़ावीर और पश्चिम में बटुक भैरव के लघु मंदिर हैं। देवी मंदिर की दोनों दिशाओं पर स्थापित भगवती के वीरों के यह नूतन मंदिर अपने सौंदर्य की आभा चारों ओर बिखेर रहे हैं।

सांध्यकालीन पूजा व आरती के बाद जगनियंता के शयन के लिए गर्भगृह में ही शय्या लगाई जाती है जिस पर मां तारा रात्रि शयन करती है। यह द्विकाल देवी पूजा नगाड़ों की प्रबाद और नब्द के साथ की जाती है। तारा देवी की पहाड़ियों का नैसर्गिक सौंदर्य मन को छू लेता है। तारा देवी मंदिर के पृष्ठभाग पर लगभग आधा किलोमीटर की दूरी पर एक अन्य पहाड़ी पर दूधाधारी देवी का पुरातन मंदिर है। इस मंदिर में वैष्णवी शक्ति की पूजा की जाती है। यह देवी दूध, क्षीर आदि सात्त्विक भोज से प्रसन्न होती है। यहां स्थानीय लोग रक्षा बंधन के 15 दिनों के बाद पड़ने वाली कुशोत्पाटनी अमावस्या को खीर का भोग चढ़ाते हैं।

तारादेवी मंदिर के आसपास बिखरे चीड़, बान और देवदार के मिश्रित वनों की हरियाली से मंदिर का दृश्य अति मोहक दिख पड़ता है। यहां से शिमला शहर की छवि के मुंह बोलते चित्र देखने को मिलते हैं। यहां सैलानी रम्य प्राकृतिक भू-दृश्यों का भरपूर आनंद उठाने आते हैं। तारादेवी मंदिर में चैत्र तथा आश्विन नवरात्रों के मेलों को धूमधाम के साथ मनाने की प्रथा है। शारदीय नवरात्र की अष्टमी को राज परिवार के सदस्य मंदिर में आकर अब बकरे के स्थान पर नारियल की बलि चढ़ाता है। नारियल बलि के लिए आज भी रियासती बलि-वर्द-बलि-अस्त्र का प्रयोग किया जाता है। चांदी की परत से मड़ा यह अस्त्र भगवती तारा के मंडप के साथ गर्भगृह में रहता है। मां तारा के दर्शन के लिए नवरात्रों में श्रद्धालुओं का तांता-सा लग जाता है। एक परंपरा के अनुसार नवरात्रों की तृतीया को ग्रामवासी गनपैरी से तारारूपी भगवती की लघु प्रतिमाएं लाकर तारा देवी मंदिर में मां तारा की प्रमुख प्रतिमा के साथ अष्टमी तक रख देते हैं। नवमी के दिन वह मूर्तियां वापस गनपैरी पहुंचा दी जाती हैं। नवरात्रों के कुल चढ़ावे का एक चौथाई भाग भगवती तारा की ओर से गनपैरी की देवी को विदाई स्वरूप दिया जाता है। गनपैरी मंदिर की इन मूर्तियों में एक लघु स्वर्ण मूर्ति राजा बलवीर सेन ने गनपैरी मंदिर में ताबीज रखने के परिप्रेक्ष्य में बनवाई थी। सन् 1984 में तारा देवी मंदिर हिंदू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान एवं पूर्त विन्यास अधिनियम के अंतर्गत सरकारी नियंत्रण में लिया गया है। वर्ष 1987 में गठित तारादेवी मंदिर न्यास इस मंदिर की व्यवस्था देख रहा है। क्योंथल रियासत की वंशवर्धिनी भगवती तारा का भव्य धाम शिमला शहर से 18 किलोमीटर की दूरी पर तारा देवी की रमणीय पहाड़ियों पर स्थित है। कालका-शिमला राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर शिमला बस स्टैंड से सात किलोमीटर पर तारादेवी रेलवे स्टेशन पड़ता है।

दिलैक निवास, विकास नगर, डाकघर कुसुम्पटी,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171009

आस्था

आदिशक्ति देवी ज्वालाजी मंदिर : चेकुल

• डॉ. हिमेन्द्र बाली 'हिम'

मध्य हिमालय की सुरम्भ पर्वत श्रृंखला पीर पंजाल की अप्रतिम चोटी नारकण्डा हाटू के आंचल में अवस्थित चेकुल गांव कुमारसैन तहसील के पश्चिम में स्थित है। इसी गांव में ज्वाला मां चेकुल की दुर्गा के रूप् में वज्रेश्वरी देवी, हाटु कालिका एवं अन्याय देवी-देवगण के साथ दैवीय आभा को प्रक्षेपण कर रही है। चेकुल गांव सीमा सड़क संगठन मार्ग किंगल-धामी पर किंगल से केवल तेईस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। समुद्रतल से लगभग साढ़े तीन हजार फुट की उंचाई पर स्थित यह गांव ज्वाला मां के मन्दिर के लिए सुविख्यात है। नारकण्डा की सहचर चोटी देरठु से निःसृत चमोला खड्ड का मनोहारी निनाद चहुं ओर फैली विशाल हरीतिमा इस क्षेत्र को देव लोक का आलोक प्रदान करती है। सतलुज नदी घाटी में अवस्थित आदि शक्ति जगद्माता दुर्गा मां चेकुल यहां के लोक जीवन के केन्द्र में स्थित है।



ज्वाला जी मां चेकुल के पूर्व में उतुंग शिखर देरठु में अरण्य वासिनी देरठु महामाया लगभग दस हजार फुट की उंचाई पर खामोश निविड़ वनों के मध्यस्थ निवास करती है। पश्चिम में पांच इलाकों के अधिपति महादेव पंदोई लोक जीवन के आस्था स्तम्भ के आधार हैं। इस मध्य हिमालयी क्षेत्र में हिमालय पुत्री वेद नदी शतद्रु (सतलुज) रक्षताल (मानसरोवर) से निकल मैदानी क्षेत्रों की ओर बहती है। इसी सतलुज के बायीं ओर पटाखरा नामक स्थान पर पाण्डवों ने अज्ञातवास काल में विचरण किया और चट्टान पर एक द्विपंक्ति में अभिलेख लिख कर अपनी यात्रा का इतिवृत पीछे छोड़ दिया। समीपस्थ पंदोआ में पांडवों ने भूत-भावन शिव की प्रतिष्ठा व आराधना सम्पन्न की। उन्हीं आर्य पुत्रों के कारण वह स्थान पाण्डव से पंदोआ हुआ। उत्तर में शिवान सांगरी में देवेन्द्र थानेश्वर व मलेच्छ देव धर्म संस्कृति के केन्द्र में विराजमान है। दक्षिण में भड़ेवग गांव में आर्येत्तर देव मरेच्छ धार्मिक आस्था के स्तम्भ रूप में विराजमान है । मां ज्वाला जी चेकुलेश्वरी के चेकुल गांव में स्थापना के पीछे प्रसिद्ध घटना प्रचलित है। वस्तुतः हिमाचल में शक्ति पूजा प्राचीन काल से विद्यमान रही है। इसके विकास में शैव धर्म ने विशेष भूमिका निभाई। दुर्गा के काली, गौरी, आसुरी, पार्वती, कालका, ज्वाला, मनसा, चिन्तपूर्णी, नैनादेवी, महिषासुरमर्दिनी, मृकुला, जालपा आदि अनेक नाम है। प्राचीन काल में पार्वती को शिव की धर्म पत्नी के रूप में प्रकलित किया गया था और उसकी पूजा शिव के साथ-साथ की जाती थी। इस पर्वतीय क्षेत्र में हर गांव व पर्वत-शिखर पर देवी के मन्दिर अथवा थान (चबूतरा) सहज ही देखे जा सकते हैं। जान मार्शल तथा अन्य भारतीय विद्वानों ने देवी को मातृ देवी, भूमि देवी या गृह देवी का नाम दिया है। हिमाचल में आज हर परिवार की एक गृह देवी होती है, जिसकी पूजा विशेष दिनों में गृह स्वामी के द्वारा सम्पन्न की जाती है।

भारत में मातृ देवी की पूजा सैन्धव घाटी सभ्यता में भी प्रचलित थी। वह उस समय जनन क्रिया की देवी मानी जाती थी। वैदिक साहित्य में श्री लक्ष्मी वाक सरस्वती (नदी का दैवीय स्वरूप) तथा पृथ्वी आदि रूपों में देवी का उल्लेख मिलता है। कांगड़ा क्षेत्र में शक्ति की पूजा अधिक प्रचलित मालूम होती है। यहां से कतिपय शाक्त मदिरों के अवशेष मिले है। कोट कांगड़ा से प्राप्त अभिलेख में मंदिर के सम्बन्ध में द्विलिपीय (शारदा व देवनागरी) वर्णन उल्लिखित है। इस अभिलेख में यहां प्रतिष्ठित देवी को ज्वालामुखी नाम दिया गया

है, जिसे कालान्तर में भवानी कहा जाने लगा।

ब्रह्माण्ड पुराण में आशुतोष भगवान शिव को यह कहते हुए उद्धृत किया गया है कि कलयुग में देवताओं के लिये यदि कोई स्थान उपयुक्त बना है वह जालन्धर पीठ है। जालन्धर पीठ और कोई क्षेत्र नहीं स्वयं हिमाचल प्रदेश है। जालन्धर पुराण मे भी हिमाचल प्रदेश को जालन्धर पीठ के अन्तर्गत माना गया है।

विपाशायाः परं पारं समारम्भ विशिष्टकम्।
हिमालयावधि स्वस्ति क्षेत्र तत्सर्वसम्मत॥
जालन्धराऽभिधं सर्व सिद्धीनाम निलयः सदा।

अर्थात जालन्धर-पीठ का यह विशेष क्षेत्र व्यास नदी के पार से लेकर हिमालय पर्यन्त विस्तृत है। यह क्षेत्र कल्याणकारी और सभी सिद्धियों का घर है।[4] कलयुग में संत्रस्त देवी-देवता तथा तीर्थों ने अपनी पवित्रता की रक्षा एवं सुरक्षा के लिए शिव से याचना की। भगवान शिव ने उन्हें सुझाव दिया।

एतज्जालन्धरं क्षेत्रं यतः सर्वोत्तमोत्तमम्
अत्रागत्यांशतो यू यं सन्तिष्ठध्व मिहैव हि
॥ ब्रहमाण्ड पुराण ॥

अर्थात जालन्धर क्षेत्र तीर्थों और देव स्थानों में श्रेष्ठ है। अतः यहां आकर निवास करो। यहां तुरन्त पाप हरण करने वाली लोकपावनी ब्यास नदी है, और सधः सिद्धि प्रदायिनी चंडिका वज्रेश्वरी, चामुण्डा और ज्वालामुखी है। इस प्रकार हिमाचल प्रदेश का सम्पूर्ण क्षेत्र शिव शक्ति का रमण क्षेत्र है। चूंकि मां पार्वती नागाधिराज हिमालय की पुत्री है और शिव उनके पति। भगवान शिव का निवास स्थान हिमालय के इस क्षेत्र यथा- किन्नर कैलाश (रल्डङ) मणिमहेश, चूड़धार बिजलेश्वर, श्री खण्ड आदि स्थानों पर माना जाता है। अतः चेकुल मां ज्वाला की पीठ की स्थापना के पीछे भी उदभट् शाक्त उपासक का कथानक सन्निहित है।

कश्यप गोत्रीय हर सहाय देवी दास व धनीराम सुन्नी तहसील के अन्तर्गत छोटा बल्ल इलाके के गांव चटयाड़ निवासी श्री मोती के पुत्र थे। राणा कुमारसैन ने इनकी इमानदारी और कर्तव्य निष्ठा से अभिभूत होकर उन्हें अपनी रियासत चेकुल क्षेत्र में स्थापित किया। यह क्षेत्र सघन वनों से आच्छादित था। अतः वन्य प्राणी प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। वास्तव में यह राणा का बासा था, जहां वह अपने विशिष्ठ साथियों के साथ वर्ष में एक बार आखेट के लिए प्रवास करता था।

छोटा बल्ल से कुमारसैन में स्थापित होने के कारण कश्यप गोत्रीय परिवार बाली कुल नाम से विख्यात हुए। इस परिवार के पास पर्याप्त पशुधन एवं भेड़ बकरियां थी। भेड़ बकरियों के इस रेवड़ पर अक्सर बाघ घात लगाकर निरीह पशुओं को अपना ग्रास बना लेता था। पशुधन के इस तरह नष्ट होते देख बाली वंशज पुरूषत्रय- हरसहाय देवी दास और धनी राम ने आद्यशक्ति मां ज्वाला जी से त्राणार्थ याचना की। भक्त वत्सला मां ने भक्त हरसहाय, अग्रज भक्त की आर्त प्रार्थना से द्रवित होकर व्याघ्र के प्रकोप को समाप्त कर दिया। चूंकि व्याघ्र शक्ति का वाहन होने के कारण इस क्षेत्र में विचरण करते थे। मां सिंह का आरूढ़ होकर वन्य विहार किया करती थी।

ज्वाला मां के इस चमत्कार से अभिभूत होकर भक्त ने चेकुल में जालन्धर पीठ (त्रिगर्त) की अधिष्ठात्री ज्वाला जी को स्थापित करने का संकल्प लिया। इस संकल्प को पूर्ण करने के लिये भक्त नंगे पांव ज्वालामुखी के लिये रवाना हुआ। यह घटना 19वीं शताब्दी के पूर्वाद की है। सैंकड़ों मील की पद यात्रा के उपरान्त भक्त ज्वालामुखी मां के पादारविन्द में शरणागत हुआ।

ज्वालामुखी उत्तर भारत का प्रमुख शक्ति पीठ रहा है। शिव पुराण आदि शैव शाक्त पुराणों के अनुसार यहां दक्ष पुत्री शिव पत्नी की जिह्वा गिरी थी। वस्तुतः इस क्षेत्र का नाम महाभारत काल में त्रिगर्त-तीन गढ़ों वाला प्रदेश था। प्राचीन काल में सम्भवतः जालन्धर और त्रिगर्त पर्याय शब्द थे। सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र पश्चिम में अलबरूनी के समय रावी नदी तक और कनौज के काश्मीर तक जालन्धर अथवा त्रिगर्त के अन्तर्गत था। यह क्षेत्र जालन्धर पीठ एवं जाल-धरायण के नाम से भी सुविख्यात था। जालन्धर पीठ अपने नाम के अनुसार असुरराज जालन्धर सम्बन्धित रहा है जिसकी कथा लोक विश्रुत है। दैत्यराज जालन्धर जिस क्षेत्र पर राज्य करता था, वह जालन्धर क्षेत्र था। ब्रहमा, विष्णु और शिव ने जालन्धर दानव को मारा और इस क्षेत्र को पाप मुक्ति का तीर्थस्थल बना दियाः-

हत्वा जलन्धरं दैत्यं ब्रहमा विश्णु महेश्वरौः।
कथितं प्रीतिपुर्वं तु वचनं हर्शं - सयुंतै।।

जो प्राणी इस जालन्धर पीठ की यात्रा नहीं करेंगे उनके पापों का शमन नहीं होगा। युद्ध के समय जालन्धर का वक्षस्थल जिस स्थान पर गिरा उसे जालन्धर पीठ कहा लाने लगा। एक जनश्रुति के अनुसार ज्वालामुखी को जालन्धर दैत्य का मुख माना जाता है। इस पुराकथा में ज्वालामुखी उस दैत्य का मुख है। शिव पुराण में वर्णित आख्यान के अनुसार भगवान विष्णु द्वारा खण्डित सती की जिह्वा यहां गिरी। सती के खण्डित शरीर के 51 अवशेष जिन स्थानों पर गिरे वहां शक्ति पीठों की स्थापना की गई। अन्य जनश्रुति के अनुसार इस स्थान पर लगभग 800 वर्ष पूर्व तेलीराज सम्प्रदाय के दक्षिणवासी ब्राह्मण को मां ने स्वपन में इस स्थान पर प्राकट्य का आदेश दिया। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार कांगड़ा के प्रथम राजा भूमिचन्द के समय उसकी गाय मन्दिर के आस पास जंगल में चरने जाया करती थी। उनमें से एक विशेष गाय दूध नहीं दे पाती थी। इस रहस्य को खोजा गया तो पता चला कि एक सुन्दर लड़की गाय का दूध निकाल लेती थी। जब पीछा किया गया तो वह लड़की ज्योजिपुंज में आविर्भूत हो गई। श्रद्धानवत राजा भूमिचन्द ने ज्वाला मां के मन्दिर का घटनास्थल पर निर्माण किया। ऐसा भी

माना जाता है कि पाण्डु पुत्र पाण्डव भी ज्वालामुखी आए और जगजननी के मंदिर का जीर्णोद्धार किया।

श्रद्धाभिभूत हरसहाय भक्त ने भक्त वत्सला मां के द्वार में शीश नवाया और अपने हृदयाकाश में मां को प्रतिष्ठित किया। मां की दिव्य प्रतिमा लेकर वह नगर कोट धाम मे स्थित वज्रेश्वरी देवी के शरणागत हुआ। वह भक्ति में अभिभूत हो तप तितिक्षा द्वारा वज्रेश्वरी मां को भी अपनी संरक्षिका के रूप में अपनी कर्मभूमि में स्थापित करना चाहता था। इस युग में बने शाक्य मंदिरों में वज्रेश्वरी देवी का मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है जो कांगड़ा की संरक्षिका मानी जाती है। इसे प्राचीन काल में वागेश्वरी कहा जाता था। वाक (वाणी) देवी एक वैदिक देवी थी, जिसका तादात्म्य बाद में दुर्गा के साथ किया गया। कहा जाता है कि यहां अश्वमेघ यज्ञ हुआ था और तभी इस देवी की स्थापना हुई।

पौराणिक काल में हिमालय के साथ साथ पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर समस्त पर्वतीय भाग में पीठ स्थापित कर उन्हें विभिन्न पीठों में बाटां गया। ये पीठ पूर्व में कामाख्या और उत्तरवर्ती कूर्माचल, केदार, कुलान्त, जालन्धर और शारदा पीठ है। इनमें जालन्धर पीठ का केन्द्र बिन्दु भगवती वज्रेश्वरी देवी का दिव्य मन्दिर स्थित है। जालन्धर पीठ का क्षेत्र बैजनाथ तथा देहरा के बीच 48 कोस के वृत में फैला है। इस जालन्धर पीठ-परिक्रमा में 64 तीर्थ और अनेक मन्दिर स्थपित है।

अतः जालन्धर पीठ जिसके अन्तर्गत हिमालय (महासु) क्षेत्र था, अधिष्ठात्री होने के कारण भक्त ने वज्रेश्वरी मन्दिर में तपोनिष्ठ होकर मां की गहन साधना की। मां के संरक्षण को पाने और सतलुज उपत्यका चेकुल में कोट कांगड़े वाली माता को मां ज्वाला के साथ प्रतिष्ठित करने के निमित व्यग्र होकर प्रार्थना की।

ज्वाला जी मां चेकुल के पूर्व में उत्तुंग शिखर देरठु में अरण्य वासिनी देरठु महामाया लगभग दस हजार फुट की ऊंचाई पर खामोश निविड़ वनों के मध्यस्थ निवास करती है। पश्चिम में पांच इलाकों के अधिपति महादेव पंदोई लोक जीवन के आस्था स्तम्भ के आधार हैं।

वज्रेश्वरी देवी कांगड़ा की संरक्षिका मानी जाती है। इससे अभिप्राय यह है कि यह वाणी की देवी मंत्र, तंत्र और पुराणों की देवी मानी जाती है। इस मन्दिर के बारे में ऐसा माना जाता है कि यहां सती का नाम वक्षस्थल गिर कर वज्र के समान कठोर हुआ। इस लिए इसे स्तनपीठ भी कहा जाता है। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार सागर के पोषित पुत्र जालन्धर का वध करने के पश्चात उसका पृष्ठ भाग वज्र के समान कठोर हो गया जिसे भगवती वज्रेश्वरी ने अपने पैरों से रौंदकर इसी स्थान पर अटल कर दिया। लोक-विश्वास है कि इस पीठ में सम्पूर्ण देवी देवता और तीर्थ अंश रूप में निवास करते हैं यहां पशु की भी मृत्यु होने से उसे सदगति प्राप्त होती है। कहते है कि जालन्धर दैत्य का वध करने के कारण महादेव जी को जो पाप लगा था। उसकी शान्ति के लिए उन्हे इसी स्थान (पीठ) की शरण लेनी पड़ी थी। यहीं श्री तारा देवी की उपासना करने से उनका पाप दूर हुआ था। ऐसा भी माना जाता है कि जालन्धर दैत्य के कान वाले भाग पर गढ़ (किला) का निर्माण किया गया। अतः इस नगर का नाम कानगढ़ (कांगड़ा) हुआ जो समय बीतने पर कांगड़ा प्रसिद्ध हो गया। कुछ लोगों के मतानुसार आरम्भ में वज्रेश्वरी मां का मन्दिर कांगड़ा किले में था। ऐसे भी प्रसंग मिलते है कि काबुल इत्यादि देशों के शासक अपनी धन सम्पत्ति को सुरक्षा की दृष्टि से कांगड़ा किले में रखते थे।

देवी भक्त ने भाव विह्वल होकर मां के दिव्य विग्रह को रक्षार्थ साथ लिया और अपने निवास स्थान में मां ज्वाला और वज्रेश्वरी मां को प्रतिष्ठापित किया। आद्याशक्ति की स्थापना के साथ नारकण्डा के समीपस्थ उतुंग चोटी पर स्थित हाटु कालका महामाया को भी प्रतिष्ठापित किया गया। हाटु की कालका की ज्वाला जी और वज्रेश्वरी माता के साथ स्थापित करने के पीछे एक घटना सन्निहित है। मां हाटु का मन्दिर कचीनघाटी गांव में ओडी-बड़ागांव सड़क पर स्थापित है। जनश्रुति के अनुसार पूर्व में शांगरी व कुमारसैन क्षेत्र में भयानक प्लेग का प्रयोग फैल गया। हजारों लोग महामारी से काल कलवित होने लगे। इस अप्रत्याशित महामारी को रोकने के लिए बाली वंशज भक्त ने हाटु कालका को त्राणार्थ पुकारा। भक्त वत्सला कालिका ने प्लेग के प्रकोप को रोक लिया। कृतज्ञ भक्त ने यहां शीषार्थ घाटी में पहाड़ी शैली में मां कालिका के मन्दिर का निर्माण किया। तदन्तर उस देवी भक्त हर सहाय ने चेकुल ग्राम में पीठाधीश्वरी ज्वाला जी और वज्रेश्वरी मां के साथ हाटु कालिका (कालका) को प्रतिष्ठापित किया।

हाटु कालका को द्रौपदी का रूप माना जाता है कि राजा युधिष्ठिर ने परीक्षित को राज पाठ प्रदान किया। पाण्डवों में महाभारत युद्ध में हुई क्षति से अथाह जुगुप्सा उत्पन्न हुई। वे स्वर्गारोहण के लिए हिमालय की ओर चल पड़े। ऐसी मान्यता है कि पाण्डव इस दौरान हाटु के सुरम्य स्थल में रुके। यहीं द्रौपदी का प्राणान्त हुआ। पाण्डु पुत्र भीम ने यहां द्रौपदी को देवी रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार महाभारत की मुख्य नायिका पांचाल पुत्री द्रौपदी कालका रूप में हाटु शीर्ष पर जगत कल्याण के लिए प्रतिष्ठित हुई । यहां मन्दिर के समीपस्थ भीमकाय दो शिलाएं भीम के चूल्हे के दो पाट माने जाते हैं, हाटु कालका ने कुमारसैन राणा की क्योंथल राज्य के आक्रमण से रक्षा की थी। कथानक के अनुसार पटियाला राजा ने क्योंथल के राजा को कुमारसैन रियासत पर आक्रमण कर अपने राज्य में विलय का आदेश दिया। जब क्योंथल

की सेना शिलारू पहुंची तो उन्हें मां के प्रताप से उन से भी विशाल सशस्त्र सेना कुमारसैन राणा को नारकण्डा से अपनी ओर बढ़ती दिखाई दी। अतः भयत्रस्त प्रतिपक्ष की सेना पीछे हट गई इस दैवीय अनुकम्पा से कुमासैन का विलय टल गया। एक लोकवार्ता इस घटना के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैः

कुण बोलो कै कमारण्णु थोड़े,
बारह बीशौ पौलकी ठारह बीशौ घोड़े।[10]

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार भम्भूराय भामासुर का वंशज माना जाता था। इसका राज्य टौंस नदी (पौराणिक तुमसा नदी) से लेकर नोगली तक फैला था। अन्य आख्यान उसे बंगर देश अर्थात कुरुक्षेत्र से आया बताता है।[11] मस्तगढ़ के उपर एक पर्वत शिखर पर बाघी और खदराला के मध्य उसका परकोट बना हुआ था। वह हाटकोटी की महिषासुरमर्दिनी का अनन्य भक्त था। मां के दर्शन कर वह हाटु टिब्बे पर तपस्या किया करता था। इस मनोहर स्थान पर भम्भुराय ने माता की मूर्ति स्थापित कर रखी थी।[12]

कुमारसैन क्षेत्र में प्रचलित लोकवार्ता के अनुसार लाठी गांव का एक शिर्कोटू ब्राहमण रात के समय मन्दिर में सोया हुआ था। उसे बड़ी छेड़खानी हुई। उसने शावर मंत्र से तंग कर रही देवियों को 'तुम्बी, में बन्द कर दिया। वह उन देवियों को सतलुज नदी में फेंकना चाहता था। इस प्रयोजन से वह सतलुज की ओर प्रवृत हुआ। माता (माताओं) ने अपनी मुक्ति के लिए कोटेश्वर महादेव (बूढ़ा महादेव) से प्रार्थना की।[13] एक अन्य आख्यान के अनुसार ओबू और शोबू नामक दो ब्राहमणों ने तंत्र विद्या से कोटेश्वर, देवी और दो मातृकाओं को एक 'तुम्बी, में बन्द कर हाटकोटी से 40 मील दूर सतलुज में फेंकना चाहा।[14] उपरोक्त पहली लोकवार्ता के अनुसार महादेव कोटेश्वर ने माताओं की प्रार्थना सुनी। महादेव के दैविय प्रभाव से नीचे सतलुज की ओर चलते अंधेरा और उपर कोटी-मढोली की ओर चलते प्रकाश दिखाई देता। हठात जब वो शिर्कोटू आगे बढ़ने लगा तो कराड़ी की धार परूआ के पास तुम्बी फट गई। उस तुम्बी से तीन देवियां निकली। महा काली हाटु की चोटी पर विराजमान हुई। दूसरी माता महालक्ष्मी रूप में कचेड़ी विराजमान हुई। तीसरी माता आकाश मार्ग से शतद्रु पारकर कुल्लु जिले के पांजवी स्थान और तदन्तर लुहरी के समीपस्थ खेगसू में रहने लगी। यहां वह महासरस्वती के मूल रूप में स्थापित हुई। हाटु की कालका अपनी सहेलियों के साथ घूमती हुई नीचे सतलुज के बायीं ओर दो बार खेखर आई :-

हाटवी कालके केपू-खेखरा शांह दी आई।
रामसिंह राणेये धाना रूंवदी लौंदी लाई।।

खेखर से महाकाली हाटु ने ऐसा लामण गाया कि तत्कालीन राणा ने क्षमा याचना मांगते हुए देवी के निमित्त कई बकरे भेंट किए।[15]

उपरोक्त दूसरे आख्यान के अनुसार जब दोनों ब्राह्मणों ने महादेव व मातृकाओं को सतलुज में फेंकना चाहा तो परोई बील नामक स्थान पर तुम्बी ठोकर लगने से फट गई। कोटेश्वर महादेव ने निकटस्थ बणा व भेखल की झाड़ियों में शरण ली। एक माता ने कचेड़ी व दूसरी ने खेगसू में अपने को प्रतिष्ठित किया।[16] महादेव ने स्वयं को मढोली व कुमारसैन मे अधिपति के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस आख्यान में हाटु कालका का उल्लेख विलुप्त है। एक अन्य वृतान्त के अनुसार कचेड़ी के सकेतरू पुजैरा परिवार 100 से भी अधिक पीढ़ियों पहले काशी से आकर हाटकोटी मे बसे। उन में से एक कुमारसैन के कचेड़ी गांव में आदि शक्ति भगवती के साथ आया। इस आदि भगवती को उसने बहन और कोटेश्वर के साथ तुम्बी में बन्द कर दिया। तदोपरान्त पुर्वाख्यान के अनुसार माता कचेड़ी में स्थापित हुई। कचेड़ी के अन्य देवी पुजारी के अनुसार आदि शक्ति को कभी भी तुम्बी में कैद नहीं किया गया। कुम्हारसैन के प्रथम शासक कीर्ति सिंह ने माता को महादेव कोटेश्वर की बहन स्वीकार किया और कचेड़ी में मन्दिर का निर्माण किया। पुजारी के अनुसार आदि भगवती निःसन्देह हाटकोटी से आई है।[17]

उपरोक्त लोक वार्ता एवं आख्यान से स्पष्ट है कि हाटु कालका का सम्बन्ध महाभारत काल से रहा है। माता का सम्बन्ध चाहे पांचाली अथवा हाटेश्वरी से जोड़ा जाए परन्तु यह स्पष्ट है कि हाटु कालका आदि शक्ति का जागृत स्वरूप है। वह महिषासुर मर्दिनी है। परम्पराएं एवं धार्मिक अनुष्ठान में पर्वकाल में महिष की बलि का विधान मां को हाटेश्वरी का स्वरूप प्रमाणित करता है। कोटेश्वर के साथ तुम्बी में जो दो मातृकाओं को ब्राह्मण सतलुज में प्रवाहित करना चाहते थे, उन में से एक देवी हाटकोटी बताई जाती है। यह भी लोकधारणा है कि तुम्बी के फट जाने के बाद माताएं हाटु चली गई।[18] फिर एक माता खेगसू में कुसुम्बा बनी और दूसरी हाटकोटी में प्रतिष्ठित हुई। आदि सत्य तो परमेश्वरी ही

चेकुल में ज्वाला जी मन्दिर के निर्माण एवं यहां स्थापित आद्य शक्तियों व अन्य अधीनस्थ देवी-देवताओं के सम्बन्ध मे गर्भ गृह के द्वार के उपर काष्ठ फलक पर अभिलेख में यह इतिहास उत्कीर्णित हैः- 'ॐ गणेशाय नम संवत् 1939 शाढ़ गते 09 को येहे मंदर देवी जी ज्वालामुखी का हरस्याई देवीदास, घनीराम बेटे मोती के पोते रांमी के ने राजधानी से गंगु मिस्तरी ने हाटु कालका कोट कांगड़े वाली नारसिंह, लांकड़ा वीर हनुमान जी की संग्वायद हरस्याई ने अपणे हाथ से बणाया।'

जाने, परन्तु यह सर्व विदित है कि हाटु कालका पौराणिक काल से इस सुरम्य शिखर पर विराजमान होकर लोकरक्षा के लिए सदैव तत्पर है।

चेकुल में त्रिवेदी ज्वाला जी, वज्रेश्वरी और हाटु कालका के साथ नारसिंह व लंकड़ावीर द्वारपाल के रूप में मन्दिर परिसर में प्रतिष्ठापित है। नारसिंह (नाहरसिंह) 52 वीरों में एक है। तान्त्रिक के विश्वास अनुसार नारसिंह भी 12 माने जाते हैं। ये एक दूसरे के भाई माने जाते है। ये अनिष्टकारी न होकर पूज्य है। लंकड़ावीर (लौंकड़ा) भी 52 वीरों में से एक है। लौंकड़ावीर को (देवी) काली का पुत्र माना जाता हैं। वस्तुतः नारसिंह व लौंकड़ावीर मां ज्वाला चेकुल में द्वारपाल की भूमिका में है। मन्दिर परिसर में कुमारसैन रियासत के अधिपति कोटेश्वर महादेव का लघु मन्दिर है। बाली (कश्यप गोत्रीय) कुल के महामहिम (पूर्वज) को यह स्थान कुमारसैन के राजा ने प्रदान किया था। उससे पूर्व यह क्षेत्र राणा का वासा (आखेट स्थल) था। चूंकि कोटेश्वर महादेव ने ही कुमारसैन रियासत का ऐह लौकिक राज्य राणा कीर्ति सिंह को दिया था। स्वयं स्वर्गिक राज्य चलाते आ रहे हैं। ज्वाला जी के मन्दिर परिसर में वीर हनुमान का लघु मन्दिर है जो पूरे क्षेत्र की अनिष्ट शक्तियों से रक्षा करते हैं। प्रस्तर की एक शिला में बड़ी चट्टान पर भूमि देव खोडू का स्थान है। पशुधन और दूध-घी सरीखी सम्पदा के संरक्षक रूप में यहां गौण देव का मन्दिर है। दूरस्थ क्षेत्रों से आकर लोक पशुधन और दूध-घी की अभिवृद्धि की यहां मनौती करते हैं। खोडू और गौण इस परिवार की मूल भूमि भज्जी (छोटा बल्ल) से लाए गए है। खोडू की भज्जी क्षेत्र में बड़ी मान्यता है। ठियोग क्षेत्र के 'चिखड़ेश्वर' महादेव के सगाह (देव मन्दिर सीढ़ी) में इसका वास है। यहां इसे भज्जी का देव कह कर पूजा जाता है।

चेकुल में ज्वाला जी मन्दिर के निर्माण एवं यहां स्थापित आद्या शक्तियों व अन्य अधीनस्थ देवी-देवताओं के सम्बन्ध मे गर्भ गृह के द्वार के ऊपर काष्ठ फलक पर अभिलेख में यह इतिहास उत्कीर्णित है :- 'ॐ गणेशाय नम संवत् 1939 शाढ़ गते 09 को येहे मंदर देवी जी ज्वालामुखी का हरस्याई देवीदास, घनीराम बेटे मोती के पोते रांमी के ने राजधानी से गंगु मिस्तरी ने हाटु कालका कोट कांगड़े वाली नारसिंह, लांकड़ा वीर हनुमान जी की संग्वायद हरस्याई ने अपणे हाथ से बणाया।' अतः संवत् 1939 में इस मन्दिर का निर्माण सम्पन्न हुआ। मन्दिर शंक्वाकार है,जो पिरामिड व पहाड़ी शैली का सम्मिश्रिण है। गर्भ गृह में त्रिदेवियां स्थापित हैं। एक लौह गुर्ज है जिस पर नाग उत्कीर्णित है सम्भवतः नाग शिव मत का समावेश यहां द्रष्टव्य है। गौ दुहते गोप, शिव परिवार और विघ्न विनायक गणेश की धातु प्रतिमाएं स्थापित हैं। गर्भ गृह के बाहर प्रदक्षिणा पथ है। मां के द्वार के सम्मुख आंगन में द्वारपाल लांकड़ावीर व नारसिंह की आदम कद प्रतिमाएं हैं।

ज्वाला जी भगवती के मन्दिर में कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर रमैश (हरिवंश का अपभ्रंश) का आयोजन किया जाता है। पूर्व में इस अवसर पर गूगा गाथा का भावपूर्ण गायन होता था। गौण के मन्दिर में हर तीसरे वर्ष 'भाटी' का अनुष्ठान होता था। दूध-घी के अधिपति होने के कारण मन्दिर में जमा घी के पकवानों को बनाया जाता है। ज्वाला जी कोटेश्वर महादेव की बहन है। हर छमाही में महादेव के गूर यहां देवावेश में लोंगों को आशीष प्रदान करते हैं।

ज्वाला जी माता की स्थापना से लेकर आज तक इस क्षेत्र में धन-धान्य की कमी नहीं रहती। हर संक्रांति पर मन्दिर में पूजा की परम्परा है। लोग दुख-संताप के समय कुल देवी का स्मरण करते हैं। मनौती पूर्ण होने पर देवी का गृह में आवाहन करते हैं। आदि दैविक आदि भौतिक संताप की स्थिति में भक्त की करुण पुकार सुनकर आद्या शक्ति दुखों का तत्क्षण नाश कर देती है।

प्राचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय संधु जिला शिमला, हि.प्र.-171212, मो. 94184 57274

सन्दर्भ

1. Charles Eliot Hinduism and Buddhism, A Historical Sketch Vol 1 London, 1967 PP. 274-90.
2. Samuel Beal, Travels of Hiuen Tsang,Vol .II Calcutta 1958. Dr. L.P. Pandey Prachin Himachal Etihas Dharam aur Sanskriti New Dehli 1971 P. 115
3. J.Hutchinson and J.Ph. vogal History of Punjab Hill States, Lahore 1933 PP.108-110.
4. जालन्धर पुराणम् प्रथमोऽध्याय, 20
5. Alberuni's India Vol.1 P-205
6. मियां गोवर्धन सिंह, हिमाचल प्रदेश का इतिहास, नई दिल्ली 1995 पृ. 43
7. जालन्धर पुराणम सप्तामोऽध्याय, 1.
8. Dr. L.P. Pandey Ancient Himachal History Religion and Culture, New Dehli 1971, P-118
9. हिमाचल प्रदेश के धार्मिक संस्थान, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला 2004 पृ. 9.
10. श्री हेत राम, भण्डारी हाटु मन्दिर।
11. H.A. Rose, A glossary of the tribes and Castes of the Punjab and North-West Frontier Province 1883 P.454.
12. हिमाचल प्रदेश के धार्मिक संस्थान,भाषा एवं संस्कृति विभाग हि.प्र. 2004 पृ 65.
13. शास्त्री लोकनाथ सतलुज घाटी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, निरमण्ड 2001. पृ 181.
14. H.A. Rose op, cit, P. 276
15. शास्त्री लोक नाथ मिश्र सतलुज घाटी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि निरमण्ड 2001 पृ. 181.
16. H.A. Rose op,cit, p.276
17. Dr. Sukh Dev Singh Charak, History and Culture of Himalayan States Vol III. Himachal Pradesh Part III, New Delhi 1978 . p.123.
18. डा. बंशी राम शर्मा, हिमाचल लोक संस्कृति के स्रोत दिल्ली, 1986 पृ. 151.

लोक संस्कृति

हिमाचली लोकगीतों में शिमला

● हंसराज भारती

लोकगीत वृहद लोक संस्कृति का एक अभिन्न अंग होते हैं जिनके माध्यम से हम लोक संस्कृति के चिंतन, मनन और संस्कारों से रू-ब-रू होते हैं। लोकगीत लोक संस्कृति का दर्पण होते हैं। एक सरल, सहज, संगीतमय निश्छल अभिव्यक्ति। लोक जिसे अनुभव करता है जो उसे प्रभावित करता है, झकझोरता है, अच्छा लगता है, जिसके साथ तारतम्य जुड़ता है, उसे गीत-संगीत के माध्यम से एक हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

हिमाचल प्रदेश के लोकगीत हों और उनमें शिमला का जिक्र न हो ऐसा कैसे हो सकता है? होना भी नहीं चाहिए और है भी नहीं। हिमाचली लोकगीतों में चाहे वे किसी भी क्षेत्र और बोली से संबद्ध हों, बीच-बीच में शिमला का नाम अवश्य आता है। इसका स्पष्ट प्रमाण है कि शिमला सिर्फ शहर, पर्यटन स्थल या राजधानी भर ही नहीं है। यह पहाड़ी लोक जीवन के साथ भी अपना आत्मीय लगाव रखता है। यहां के जनजीवन के साथ शिमला का एक अटूट रिश्ता है तब से जब न हिमाचल प्रदेश का निर्माण हुआ था और न शिमला यहां की राजधानी थी। तब भी यह 'पहाड़ों की रानी' आम पहाड़ी माहणु को लुभाती थी। इसके नाम का एक दबदबा था। क्योंकि शिमला में तब साहब ही नहीं, लाट साहब भी रहते थे। और लाट साहब तो लाट साहब ही थे। उनके आगे उन दिनों आमजनों की क्या बिसात थी?

कहावत प्रसिद्ध है कि पहाड़ की औरत, पहाड़ के रास्ते और मौसम, इन्हें हर कोई आसानी से समझ नहीं सकता। औरत, पहाड़ के जीवन पथ की वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द पूरे पहाड़ की जिंदगी घूमती है। औसत पहाड़ी औरत को जीवन भर कठोर श्रम करना पड़ता है। यह श्रम ही उसकी पहचान है। शिमला में तो 'साहब' लोग रहते हैं जो आराम का जीवन जीते हैं। तभी तो इस गीत के माध्यम से उस नारी को कहना पड़ता है-

चक्की पर कम्मा रखाई जायां/ फेरी सिमले जो चली जायां।

चंबा, कांगड़ा, हमीरपुर, मंडी, बिलासपुर आदि क्षेत्रों से भले ही शिमला दूर हो पर यहां के जीवन पर भी इसकी छाप और असर है। तभी तो जवान गबरू को कहना पड़ता है-

ओ बिमला, छुट्टी दो दिनां री मिली हो
चल सैर कराऊं शिमला...।

तो दूसरी ओर भले ही बहुत सारे स्थान शिमला से दूर-पार हों परंतु शिमला पूरे हिमाचल की शान और बान है। पूरे पहाड़ का दिल शिमला में रूह बनकर धड़कता है-

म्हारे देसा रा दिल ओ दिल्ली ओ/ म्हारे पहाड़ा रा दिल शिमला

शिमला में लाट साहब और उनकी गोरी मेमें रहती थीं। जिन्हें सामान्य जन दूर से ही बड़ी हसरत से देखते थे। इस लोकगीत में शिमला का जिक्र इसी संदर्भ में आया है-

हरी डालीया रा नौंव बिमला
अग्गे-अग्गे मींम चलदी
पीछे चलदा हो सारा शिमला।

चंबा, शिमला से काफी दूर है और अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए विख्यात है। चंबा के इस लोकप्रिय लोकगीत में शिमला का नाम भी आता है-

माए नी मेरीए, जम्मूए दी राहे/ चंबा कतनी की दूर हो
शिमले नी बसणा, स्पाटूए नी बसणा
बसणा चंबे जरूर हो।

चंबा मोह के कारण भले ही शिमला में न बसना मजबूरी हो लेकिन शिमला का जिक्र तो बसने, रहने के संदर्भ में फिर भी हो रहा है। आम लोकमानस के मन पर शिमला की एक छाप है जो उसकी बातों, व्यवहार आदि से प्रकट होती है। फिर भी गाहे-बगाहे शिमला जाना शिमला में सरकारी बाबूओं का ही बोलबाला है। तभी तो कहना पड़ रहा है कि अकेली का दिल नहीं लगेगा-

जाणा कि सिमले कद्दु औंणा/ मेरा नीं कल्लीया जीऊ लगदा

इसी प्रकार एक और गीत में नायक, नायिका को उलाहना देते हुए कहता है कि तुम बार-बार शिमला की ही बात करती रहती हो। ऐसा क्या है शिमला में-

फेरी तू बोलदी-शिमला-शिमला...

शिमला में ऐसा बहुत कुछ है जो किसी को भी लुभाने की कशिश रखता है। फिर शिमला पर फिदा होने वाले जवां हों, प्यार व आकर्षण की डोर से बंधे हों, आंखों में सपनों का रंगीन संसार बसा हो और ऐसे में सावन के महीने में शिमला घूमने का मौका मिल जाए तो फिर कहना ही पड़ता है-

शिमले रीयां उच्ची नीचीयां धारां हो जानी
हौले-हौले पौंदीयां ठंडीयां फुहारां
जीऊ करदा इत्थी रैहणे जो...

गांव व डाकघर बसंतपुर, सरकाघाट, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश-175 042 मो. 98163 17554

लोक संस्कृति

हिमालयी संस्कृति को समृद्ध करते
संस्कार एवं लोकगीत

● डॉ. उषा रानी

शिमला नगरशक्ति के महाबिन्दु का एक जीवंत स्वरूप है, क्योंकि इसके पूर्व में ढींगू देवी, पश्चिम में कामना देवी तथा दक्षिण में तारा देवी विद्यमान हैं। इन तीनों को मिलाने पर जो त्रिकोण बनता है, वह त्रिकोणात्मक प्रकृति का वास्तविक सत, रज, तम् रूप है।

हिमालय आदिकाल से ही ऋषि-मुनियों और देवी-देवताओं का निवास-स्थल रहा है। हिमाचल प्रदेश इसी विशाल हिमालय के पश्चिमी खण्ड का एक क्षेत्र है। विश्व के सांस्कृतिक परिदृश्य में हिमाचल प्रदेश का विशेष महत्त्व है। वैदिक तथा पौराणिक काल में यह क्षेत्र विभिन्न सांस्कृतिक आध्यात्मिक परम्पराओं का प्रमुख केन्द्र रहा है। अनेक पौराणिक जातियों की क्रीड़ास्थली एंव देवताओं की यह धरती हिमालय क्षेत्र के ऐतिहासिक तथ्यों को अपने अन्दर समेटे हुए है। भारतवर्ष के उत्तरी राज्यों से उसका सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से अपना एक विशेष महत्त्व है।

शिमला जनपद हिमाचल प्रदेश के मध्यभाग में स्थित है जिसे भीमापीठ भी कहा जाता है। यह जनपद आज भी लोगों के लिए पुराने इतिहास का केन्द्र है। शिमला जनपद की रामपुर तहसील में सराहन नामक स्थान पर देवी भीमाकाली का सबसे प्राचीन मन्दिर है। इसके नाम पर भले ही इस जनपद का नामकरण नहीं हुआ है अपितु शिमला शहर में स्थित श्यामला देवी नाम पर इस जनपद का नामकरण हुआ। शिमला नगरशक्ति के महाबिन्दु का एक पार्थिक स्वरूप है, क्योंकि इसके पूर्व में ढींगू देवी, पश्चिम में कामना देवी तथा दक्षिण में तारा देवी विद्यमान हैं। इन तीनों को मिलाने पर जो त्रिकोण बनता है, वह त्रिकोणात्मक प्रकृति का वास्तविक सत, रज, तम् रूप है। इन तीनों माताओं के मध्य में श्यामला देवी विद्यमान है। साहित्यकार एस.आर. हरनोट के अनुसार, ''आजकल जहां कालीबाड़ी का विशाल मन्दिर तथा भवन स्थित है, प्राचीन समय में वहां महाशक्ति श्मामला देवी का काले पत्थरों से बना एक छोटा सा मन्दिर था। उसमें एक साधु रहता था उस काल में इस देवी की बहुत मान्यता थी, बहुत से अंग्रेज अफसरों को देवी के चमत्कार देखने को मिले, जिसका उन्होंने बहुत सी किताबों में वर्णन किया है। इसी महाशक्ति श्यामला के कारण शिमला पुकारा जाने लगा।''[2]

शिमला जनपद के पूरे मौसम को तीन ऋतुओं में बांटा जाता है। तौंदी (ग्रीष्म ऋतु) बशकाल (वर्षाऋतु) हयूंद (शरद् ऋतु) इस प्रकार शिमला जनपद के मुख्यतः तीन ही ऋतुएं होती हैं जिनमें ग्रीष्म ऋतु अप्रैल से जून तक होती है। शिमला जनपद में मध्यगर्मी के महीने में अधिक गर्मी महसूस नहीं होती क्योंकि यहां ठण्डी हवाएं चलती रहती हैं। वर्षा ऋतु का मौसम जुलाई से सितम्बर तक माना जाता है तथा शरद ऋतु अक्तूबर से मार्च तक 6 महीने की मानी जाती है। हालांकि अधिकतर सर्दी मध्य नवम्बर से मध्य फरवरी तक होती है। इस जनपद के चारों तरफ कल-कल करते नदी नाले और पर्वतों के मध्य में स्थित अनेक मनोरम घाटियां हमारे मन मयूर को नृत्य करने के लिए बाध्य कर देती है।

शिमला जनपद एक कृषि प्रधान जनपद होने के कारण यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। शिमला जनपद के लगभग 75 प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर हैं। इस जनपद के ऊपरी क्षेत्रों में तो 90 प्रतिशत जनता कृषि-बागबानी कार्य से जुड़ी है। लेखक शरभ नेगी के अनुसार ''डोडरा क्वार की अर्थ व्यवस्था मूल कृषि प्रधान है। देश के शेष देहाती क्षेत्र की भान्ति यहां के लगभग 90 प्रतिशत लोग कृषि से सम्बन्धित व्यवसाय से जुड़े हैं।''[4] मक्की, गेहूं, चावल, ओगला, फाफरा, कोदा, दालें, अदरक, सरसों, मटर, राजमाह, कोल्थ, बीन, टमाटर, मूली, आलू आदि जनपद की मुख्य फसलें हैं। आलू का इस जनपद के कृषकों के आर्थिक विकास में विशेष महत्त्व है।

शिमला जिले में कृषि कार्य के अन्तर्गत बागबानी को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। इस जनपद के मुख्यतः सेब, आड़, खुरमानी, पलम, बादाम, अंगूर, अखरोट तथा नाशपाती आदि फसलों का उत्पादन होता है। शिमला जनपद को मुख्यतः सेबों की

भूमि माना जाता है, ''इस जिला के कोटगढ़ थानाधार तथा वीरगढ़ में सर्वप्रथम सेब के पौधे यहां लगाए थे। उनके सेब के बगीचे को बारू बाग के नाम से पुकारते हैं।'' अतः वर्तमान में शिमला जनपद में टिक्कर, कोटगढ़, नारकण्डा, कोटखाई में चिढ़गांव, रोहड़ू, ठियोग, फागू, मत्याना, कुमारसैन, जुब्बल आदि क्षेत्रों में सेब के बाग हैं। कृषि तथा बागबानी के अतिरिक्त यहां के लोगों का अन्य मुख्य व्यवसाय पशु पालन भी है। नगाड़ जाति के लोगों का मुख्य व्यवसाय किल्टे, टोकरी आदि बनाना है। इसके साथ-साथ चटाइयां बनाना, कपड़ा बुनना, जूते बनाना, आभूषण व धातु कला आदि यहां के लोगों की आजीविका के प्रमुख साधन हैं।

जनपद के बर्फीले क्षेत्रों में देवदार के घने जंगलों की छाया में बहुमूल्य गुच्छियों का उत्पादन भी होता है। यह ठण्डे स्थानों पर मार्च-अप्रैल में निकलती (उगती) है। शिमला जनपद में टिक्कर, खड़ा पत्थर, खदराला, कुपवी चौपाल चिड़गांव, डोडरा-क्वार में गुच्छियों का अधिक उत्पादन होता है। प्राकृतिक साधनों के कारण औद्योगिक क्षेत्र में भी विकास हो रहा है। शिमला जनपद का एकमात्र औद्योगिक क्षेत्र शिमला से लगभग 15 किलोमीटर दूर शोघी नामक स्थान पर स्थित है। यहां अनेक औद्योगिक इकाइयों को स्थापित किया गया है। यहां मुख्यतः मेहंदी बनाने व सुपरमेक्स ब्लेड बनाने तथा पानी की टंकी बनाने के कारखाने हैं। इससे प्रदेश के पढ़े-लिखे बेरोजगार युवाओं को रोजगार के साधन उपलब्ध हुए हैं। इसके साथ इस जनपद के गुम्मा, चिढ़गांव, राजघाट आदि स्थानों पर भी औद्योगिक क्षेत्र स्थापित किए गए हैं। इसी के साथ व्यापार, राजकीय सेवा, मजदूरी आदि भी इस जनपद के लोगों के जीवनयापन के अन्य साधन हैं।

शिमला जनपद के रोहड़ू, चिड़गांव, रामपुर, ननखड़ी, कुपवी आदि क्षेत्रों में छुरा विवाह की प्रथा भी थी। इस प्रकार के विवाह में दुल्हन कुल देवता का छुरा या खुखरी विवाह कर लाती है इस प्रकार के विवाह में बारात नहीं जाती। यह प्रथा अब प्रायः समाप्त ही है।

जनपद में रीति-रिवाज प्रायः हिमाचल प्रदेश के अन्य जनपदों के रीति-रिवाजों से मिलते-जुलते हैं। जनपद में स्त्री के गर्भवती होने से सम्बन्धी भी अनेक रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है। गर्भवती होने पर स्त्री का घर से बाहर जाने पर व कुछ कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। स्त्री न तो सूर्यग्रहण और न चन्द्रगहण देख सकती है। ऊपरी शिमला में यह ग्रामीण क्षेत्र में बच्चे के जन्म के समय गर्भवती स्त्री को घर निचली मंजिल में रखा जाता है। डोडरा क्वार जैसे क्षेत्र में प्रसव के समय स्त्री को ओबरा (जहां पशु बांधे जाते हैं) में रखा जाता है। रोहडू में इस स्थान को पाण्ड कहते हैं। बेटा पैदा होने पर पिता की टोपी में जूब (ध्रुवा) लगाई जाती है, रामपुर बुशहर में ग्यारहवें दिन के उत्सव को गन्तरयाला कहा जाता है।

डोडरा क्वार में तो शिशु को एक वर्ष तक घर से बाहर ले जाने की प्रथा को 'बायरे आननी' कहते हैं। इस अवसर पर मिठाइयां बांट कर लोगों का मुंह मीठा करवाया जाता है। शिमला जनपद में वैवाहिक रीति-रिवाजों का अलग ही महत्व है। नागेन्द्र शर्मा के अनुसार, ''जनपद में विवाह वह रीति है जो नर नारी को पारिवारिक जीवन में प्रवेश दिलाती है। विवाह का महत्व केवल रीति सम्बन्ध या सन्तानोत्पत्ति से ही नहीं है बल्कि सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र में भी इसका महत्त्व है।''[7] शिमला जनपद के रोहड़ू, चिढ़गांव, रामपुर, ननखड़ी, कुपवी आदि क्षेत्रों में छुरा विवाह की प्रथा भी थी। इस प्रकार के विवाह में दुल्हन कुल देवता का छुरा या खुखरी विवाह कर लाती है इस प्रकार के विवाह में बारात नहीं जाती। यह प्रथा अब प्रायः समाप्त ही है।

शिमला जनपद के ऊपरी पर्वतीय क्षेत्रों में बहुपत्नी प्रथा देखने को मिलती है जिसका मुख्य कारण औलाद न होने की स्थिति में तथा खेती-बाड़ी के काम में हाथ बंटाना रहा होगा। शिमला जनपद में एक प्रथा और भी है जिसे 'रीत' विवाह कहा जाता है। इस रीत शब्द का पर्यायवाची शब्द 'राश' है। रीति या राश वर पक्ष द्वारा कन्या के माता-पिता को विवाह के समय तक कन्या के ऊपर लालन-पालन पर हुए व्यय के बदले दिया जाता है। साथ ही साथ तलाकशुदा पुरुष या स्त्री के दूसरे विवाह को शिमला जनपद में गाहर के नाम से पुकारा जाता है।

जनपद में लोग मुख्यतः सादा भोजन ही पसन्द करते हैं। त्योहारों पर वे विभिन्न प्रकार के पकवान बनाते हैं। इतिहासकार रूप शर्मा के अनुसार, ''शिमला जिले के लोग खाने-पीने के शौकीन हैं। वे हर पर्व पर नाना प्रकार के पकवान बनाते हैं। इसमें गेहूं से बने सिडकू, माश की दाल के भल्ले, चावल तथा देसी घी का अधिक प्रयोग होता है। उच्च क्षेत्रों के लोग मांस आधारित भिन्न-भिन्न पकवान बनाते हैं।''[8] अतः शिमला जनपद में कुछ विशेष त्योहारों, मेलों, पर्वों तथा विवाह आदि के प्रमुख अवसरों पर कुछ विशेष पकवान बनाए जाते हैं। यहां के मुख्य पकवानों में माह-भल्ले, मालपूड़े (मालपुए) पटाण्डे, चिलड़े, असकलु, भटूरा, सिड़कू (सिड्डू) पोलडू, भटूरा, मीट (डलकी) इत्यादि हैं। रोहड़ू निवासी सन्तराम रोहाल के मतानुसार, ''मीट (डलकी) के साथ को लय के इन्डरे यहां बड़े चाव के साथ खाए जाते हैं। यहां के समाज में मांस खाने की प्रथा आम है और मेहमानों के लिए मास परोसना सर्वोत्तम मेहमानवाजी मानी जाती है। वर्ष के अन्त में नवम्बर और दिसम्बर के मध्य रोहड़ू में बकरे काटने की भी प्रथा है।''[9] शिमला जनपद के लोग मक्की, गेहूं के आटे के साथ-साथ कोटों तथा ओगले के आटे का भी प्रयोग करते हैं।

इस जनपद में विभिन्न पकवानों के साथ मदिरापान की प्रथा भी है। यह प्रथा इस जनपद के ऊपरी क्षेत्रों जिसमें रामपुर, रोहड़ू,

चिड़गांव तथा डोडरा क्वार आदि में प्रमुख रूप से पाई जाती हैं। डोडरा क्वार में आज भी सुरापान की प्रथा प्रचलित है। रचनाकार सरभ नेगी के अनुसार, ''यहां के मेलों, त्यौहारों और उत्सवों का मदिरा के साथ चोली दामन का साथ है। यही नहीं यहां के समाज में कुछ एक त्यौहारों और उत्सवों का तो सृजन ही मात्र मदिरापान के लिए किया गया है। नई संभ्रात की सूर, भेड़ वालुरी सूर सावन के मेले की सूर आदि ऐसे उत्सव हैं जिनमें पीना और पिलाना उत्सव का प्रमुख कार्यक्रम होता है।''[10] अतः सूरापन की प्रथा शिमला जनपद के ऊपरी क्षेत्रों में ही अधिक पाई जाती है।

संस्कार

संस्कारों का हमारे जीवने में विशेष महत्त्व है। जीवन के प्रमुख अवसरों पर होने वाले संस्कार व्यक्ति के दायित्वों और स्थितियों को उसके सामने तथा समुदाय के अन्य सदस्य के सामने लाकर सामाजिक सुव्यवस्था में सहायक होते हैं। अधिकांशतः विद्वान सोलह संस्कारों को मान्यता प्रदान करते हैं।

1. गर्भाधान, 2. प्रसवन संस्कार, 3. सीमांतोनयन संस्कार, 4. जातिकर्म संस्कार, 5. नामकरण संस्कार, 6. निष्क्रमण संस्कार, 7. अन्नप्राशन संस्कार, 8. चूड़ाकर्ण संस्कार, 9. कर्णभेद संस्कार, 10. विधारम्भ संस्कार, 11. उपनयन संस्कार, 12. वेदारम्भ संस्कार, 13. केशान्त संस्कार, 14. समावर्तन संस्कार, 15. विवाह संस्कार, 16. अन्त्येष्टि संस्कार

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विशेष महत्त्व है। संस्कारों का समन्वित रूप ही संस्कृति है संस्कारों का महत्त्व इसलिए भी है कि ये संस्कार धर्म के अभिन्न अंग माने गए हैं।

भारतीय संस्कृति में नारीत्व की पूर्णता मातृत्व से मानी गई है। नारी के लिए माँ बनने का अवसर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और हर्ष का होता है। जन्म संस्कार लोकगीत प्रायः पुत्र के जन्म के अवसर पर गाए जाते हैं क्योंकि परम्परागत विश्वास के अनुसार कुल को चलाने वाला पुत्र ही होता है। कन्या का जन्म इतना हर्ष और उल्लास से नहीं मनाया जाता था, परन्तु वर्तमान समय में यह धारणा बदलने लगी है। जन्म संस्कार लोकगीत का प्रचलन मुख्यतः शिमला जनपद के ऊपरी व निचले दोनों क्षेत्रों में है। जन्म संस्कार लोकगीत में मुख्य गीत निम्न हैं-

लोकगीतों में गर्भवती महिला की गर्भावस्था सम्बन्धी विभिन्न माह की मनोदशाओं का चित्रण किया गया है जिसका वर्णन इस प्रकार है।

वेदना (वेदणा) लोकगीत

पहले का महीना लागा ऐभे दूजड़ा हो।
मेरे नी पैरिए काम काज ऐभे सुझणा हो।।
दूजड़े का महीना लागा ऐभे चौथड़ा हो।
मेरे नी पैरिए काम काज ऐभे बहुता हो
पांजूए का महीना लागा ऐभे छेऊआं हो
मेरे भी प्यारिये काम काज ऐभे रोहिए हो
सातूवें का महीना लागा ऐभे आठुआ हो
मेरे नी प्यारिए ऐढ़ा धूपा ऐभे सेकुदी हो
नऊंवे का महीना लागा ऐभे दशुआ हो
मेरे भी प्यारिए काम काज ऐभे रहियो हो।''[11]

भावानुवाद : उपरोक्त वेदना लोकगीत में गांव की स्त्रियां सामूहिक रूप से गर्भवती महिला की मनोदशा का वर्णन करते हए कहती हैं कि मुझे गर्भाधान किए हुए एक माह हो गया है और दूसरा महीना लग गया है। इसलिए वह प्यारिए शब्द अपने घर के सदस्य के लिए प्रयुक्त करती हैं कि मेरे प्यारे अब मुझसे घरेलू कार्य नहीं होगा। इसी क्रम में वह तीसरा, चौथा महीना पूरा होने पर कहती है कि अब मुझसे ज्यादा काम नहीं हो सकता। पांचवें व छठे महीने पर गर्भवती महिला कहती है कि अब तो घर का सारा काम ऐसे ही रहेगा। सातवें व आठवें महीने पर वह कहती है अब मुझसे किसी प्रकार की दौड़ धूप नहीं होगी तथा नौंवा महीना पूरा होने व दसवां शुरू होने पर वह कहती है कि मेरे प्यारे अब मुझसे किसी भी प्रकार का काम-काज नहीं हो सकता। इस प्रकार पूरे गीत में गर्भवती महिला की नौ महीने की मनोदशाओं का चित्रण किया गया है।

पुत्र जन्म सम्बन्धी गीत

पुत्र जन्म अनंत कामनाओं की चरम परिणति मानी जाती है। इस अवसर पर शिमला जनपद के विभिन्न क्षेत्रों में भी हर्ष एवं उल्लास का वातावरण रहता है। पुत्रजन्म पर परिवार व आस पड़ोस की स्त्रियां विशेषकर लोकगायिकाएं एकत्रित होकर गृह के द्वार पर बैठकर लोकगीत गाकर वातावरण को गीतमय बना देती है जैसेः

जन्मेया कृष्ण मुरारी, जी धोरो देवकी दे,
काहे दा करवा करवाईये
काहे दा नीर मगवाऊँ
जन्मेया कृष्ण मुरारी जी धरौ देवकी दे
मिट्टी दा करवा करवाईये
जगना दा नीर मंगवाऊ''[12]

भावानुवाद- पुत्र के जन्म पर लोकगायिकाएं माता को देवकी की उपमा तथा पुत्र को कृष्ण के स्वरूप जानकर लोकगीत गाती हैं। वे गाते हुए कहती है कि देवकी माता के घर में श्रीकृष्ण का जन्म हो गया है अतः वे कहती हैं कि अब जब श्रीकृष्ण का जन्म हो गया है तो ऐसे अवसर पर किस चीज का करवा करवाया जाए और बालक को नहाने के लिए पानी कहां से मंगवाया जाए आगे वे गाती हैं कि देवकी बालक को नहाने के लिए यमुना से पानी मंगवाया जाए।

इस प्रकार पुत्र जन्म पर सारा परिवार हर्षोल्लास से परिपूर्ण होता है। बालक का जन्म होते ही नाना-नानी, दादा-दादी, मामा-मामी को बधाइयां बांटने जाते हैं। शिमला जनपद में पुत्र जन्म पर जो बधाई गीत गाया जाता है उसका विवरण इस प्रकार है :-

'पेहली जूब कुला रे देवता के वेणी
गोरिया की औखी होई वे
दूजी जूब कुला रे परोहिता के देणी
तेरी जजमानणिये होलरा जाया वे
तिजी जे जूब मेरी अम्मा के देणी
धिये तेरी घोलरू जाया ते
शुद्ध पंजीरी, घिए एरियां को हंडियाँ
साथी भेज्या माम्या वे।।''[13]

भावानुवाद- प्रस्तुत गीत में गायिकाएं बधाई गीत गा रही है। वे गाते हुए कह रही हैं कि पहली जूब (एक प्रकार की घास जिसे पूजा में प्रयोग किया जाता है दुर्बा) को बधाई का प्रतीक मानकर वे कहती है कि पहली बधाई कुल के देवता को जिनकी कृपा से मुश्किल समय बीत गया है। दूसरी बधाई कुल के पुरोहित को जिनकी यजमानी में होलरा (हृष्ट-पुष्ट) बालक ने जन्म लिया है। आगे गाती हैं कि (गर्भवती स्त्री) अपनी माँ को सन्देश भेजती है कि मुझे शुद्ध पंजीरी घी से बना मेवा मटकियों में भरकर बच्चे के मामा के हाथ भेज दो इस प्रकार पूरे गीत में हर्ष व उल्लास का वातावरण बन जाता है।

मुण्डन संस्कार लोकगीत

'मुण्डन' को चूड़ाकरण संस्कार के नाम से जाना जाता है यह संस्कार बालक के प्रथम बार केश काटने से सम्बन्धित है। इस संस्कार के मूल में बालक के स्वास्थ्य व सौन्दर्य की भावना तन्दरुस्त व सुन्दर होता है। लोकधारणा के अनुसार मुण्डन प्रथम, तृतीय पंचम व सप्तम वर्ष में करवाना शुभ माना जाता है। यह संस्कार प्रायः किसी मन्दिर, किसी तीर्थ स्थान विशेष पर सम्पन्न किया जाता है। जिसकी मनौती पहले ही मानी जा चुकी होती है। स्थानीय भाषा में मुण्डन संस्कार को जटी खोलना, जड़ोलन या जडुलू के नाम से पुकारा जाता है। शिमला जनपद में जब बालक के पहली बार बाल काटे जाते हैं तो गांव की औरतें एकत्रित होकर गीत का गान करने लग जाती हैं-

''शादो बुलाओ कुला रे पुरोहित के
भाऊवा रे संस्कार कराणे
शादो बुलाओ मामा-मामी के
भाऊवा रे संस्कार कराणे
शादो बुलाओ बुआ-बुबे के
बेटे रे संस्कार कराणे
शादो-बुलाओ नाई के
बेटे रे बाल कटवाणे
शादो बुलाओ सुन्निए सुनारे
भाऊवे रे संस्कार कराणे
अच्छीए जे घड़िए अच्छे लग्ने
भाऊवे रे संस्कार कराणे।।''[14]

भावानुवाद- मुण्डन के समय महिलाएं गाते हुए कहती हैं- कुल के पुरोहित को निमन्त्रण दो, हमने अपने बालक के बाल कटवाने हैं इसी प्रकार बालक के मामा-मामी, बुआ और फूफा को भी निमन्त्रण दो। आगे वे गाती हैं कि मुण्डन का निमन्त्रण नाई को भी दो साथ ही साथ सुनार को भी निमन्त्रण भेजो कि हमारे यहां बालक के बाल कटवाने है। अन्त में वे गाती हैं कि अच्छी सी घड़ी व लग्न में बालक के बाल कटवाने हैं।

विवाह संस्कार लोकगीत

जनपद में विवाह संस्कार का अपना ही महत्त्व है। विवाह संस्कार में आरम्भ से अन्त तक जितने भी कार्य किए जाते हैं उन सभी में विवाह के लोकगीत गाए जाते हैं। इन लोकगीतों में प्रसन्नता की भावना अधिक होती है परन्तु उनके साथ ही साथ बेटी के विवाह के समय गाये जाने वाले गीतों को सुनकर कठोर से कठोर हृदय वाला व्यक्ति भी रो पड़ता है। महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले इन वैवाहिक गीतों में हर्ष व विषाद आदि की मिश्रित अनुभूतियां इस विवाह संस्कार को आदि से अन्त तक सरस, रोचक व आकर्षक बनाए रखती हैं।

तेल बटना लोकगीत

दुल्हे को तेल व हल्दी का मिला-जुला मिश्रण या लेप का बटना लगाया जाता है। जिसका प्रयोग वर या वधू को कांतिमय बनाने के लिए किया जाता है। लोकपरम्परा के अनुसार तेल बटने का प्रयोग वर को रामस्वरूप या वधू को सीता स्वरूप बनाने के लिए किया जाता है। तेल डालने के पश्चात् वर वधु ईश्वर स्वरूप बन जाते हैं तथा उन्हें इसके पश्चात किसी भी तेज शस्त्र या तेज धार औजार से कार्य करना निषेध माना जाता है। तेल डालने का कार्य पांच, सात, नौ या ग्यारह स्त्रियों द्वारा सम्पन्न होता है। बटने वाले कटोरे से दूब को उठाकर वर वधु के सिर को तीन बार छुआती है तेल के साथ-साथ बटने का लेप भी तीन चरणों में मला जाता है। तेल बटने वाली महिलाएं हास-परिहास तथा छेड़छाड़ के साथ इस मंगल कार्य को करती हैं। तेल डालने का कार्य मुहुर्तानुसार आरम्भ किया जाता है- वर-वधु को तेल डालते समय औरतें गाती हैं-

''तेलौ लाए तेलीया
तेलौ कुणिए संजोए
तेलौ लाए तेलीया
तेलो मामुए संजोए
जुग जीवें मामे तेरे
जिने तेरे तेल संजोया
तेलो लाए तेलिया
तेलो कुनिए संजोए
मामिए सुहागिणे तेल मानिए संजोए
तेला लाए तेलीया
तेलो कुणिए संजोए

तेलो लाए तेलीया
तेलो आमिए संजोए
अमीए सुहागिणे तेल आमिए संजोए।''[15]

भावानुवाद : महिलाएं गाती हैं कि वर वधु को तेल लगाओ पर यह तेल बटना किसने बनाया है। तेल बटना मलो यह मामा ने बनाया है। तेरा मामा युग-युग जिये जिन्होंने यह तेल बनाया है। आगे गाती हैं कि तेल बटना प्यार से लगाओ ये तेल बटना किसने बनाया है। तेल बटना मलो यह तेल बटना मामी ने संजोया है। मामी सुहागिन ने यह तेल बनाया है तथा इसी प्रकार यह तेल बटना मलो यह किसने बनाया है। तेल बटना माँ सुहागिन ने बनाया है। इस प्रकार सभी रिश्तेदारों व सगे-सम्बन्धियों को सम्बोधित करते हुए यह रस्म अदा की जाती है।

केलटी पूजन लोकगीत

शिमला जनपद के विवाह संस्कार में केलटी का अत्यधिक महत्त्व है। एक तरफ वर को तेल पड़ रहा होता है तो दूसरी तरफ केलटी पूजन की तैयारी की जाती है। तेल वटणा के पश्चात् वर या वधू को स्नान के पश्चात् केलटी को कुल पुरोहित बाहर पानी के पास लाकर वहां इसका कन्या या वर के माता-पिता के हाथों पूजन करवाया जाता है। फिर पूजा के पश्चात् माता-पिता इसे विवाह के लिए बने विशेष तोरण (द्वार) से अन्दर पूजा घर में विराजमान किया जाता है। लोकमान्यता है कि वर-वधू को ईश्वर स्वरूप बनाने के लिए केलटी का पूजन किया जाता है। केलटी लाने के समय जो लोकगीत गाया जाता है उसका वर्णन इस प्रकार है-

केलटिए डालिए बूटिए ताखे निऊँजदे चाले
लाड़ी रे आया बापू तां तौ निऊँजदे चाले
केलटिए डालिए बूटिए ताँ तौ निऊँजदें चाले
आच्छीए सायते आच्छीए मुश्ते तां तो निऊँजदे चाले
केलटिए डालिए बूटीए ताखे निऊँजदे चाले।''[16]

भावानुवाद- केलटी को विवाह में लाते समय और पूजन के समय औरतें गाती हैं कि केलटी डालिए-बूटिए अर्थात् जो केलटी का पौधा है वह एक प्रकार की बूटी का काम भी करती है। उसे निमन्त्रण देने जा रहे हैं। कन्या के माता-पिता केलटी को विवाह में निमन्त्रण देने को चल रहे हैं। ऐसे में वे गाते हुए कहती हैं कि अच्छी सायत व अच्छे मुहूर्त जो पुरोहित द्वारा निश्चित किया गया है उसमें केलटी को निमन्त्रण करता है। केलटी माता रूपी पौधा जो बूटी भी है, को विवाह में निमन्त्रित किया जा रहा है। इस प्रकार केलटी पूजा के समय उपरोक्त गीत को हर्षोल्लास के साथ गाया जाता है।

मामा स्वागत गीत

वर या वधु के मामा के स्वागत का गीत गाया जाता है। ऐसे समय पर जब मामा कुछ देरी से आते हैं तो जनपद में एक छोटा सा लोकगीत प्रचलित है-

बाहरे नीकलो सोरिए बेबुआ
मामु तेरे आंगने आए
बैणा पूछे आपने भाई से
किंदी लाई भाइया इतनी देर।''[17]

भावानुभाव- स्त्रियां गाती हैं मामा के आने पर मामा बोल रहा है कि मेरी सगी बेबुआ (भानजी) बाहर निकलो⁄ आपका मामा बाहर खड़ा है अर्थात् तुम्हारे आंगन में मामाजी आ गए हैं। तभी आगे कन्या या वर की माँ अपने भाई से पूछती है कि मेरे भाई इतनी देर कहाँ लगाई अर्थात् वह अपने भाई से देरी से आने का कारण पूछती है।

मेहंदी लोकगीत

विवाह में वर वधु को मेहंदी लगाने की रस्म है। मेहंदी दोनों हाथों पांव में बहुत ही आकर्षक ढंग से लगाई जाती है। वर को भाभी, चाची या बहनें मेहंदी लगाती हैं तो वधु को मुख्यतः सहेलियां ही मेहंदी लगाने का कार्य करती हैं। इस अवसर पर लोकगीत है-

मेहंदी कटोरे नौ गज डोरे
बेटे रे हाथों दे संजोए
बापू रे आंगने खड़ी होए मामया
हाथै करै मेहंदी कटोरे
कुण भरे मेहंदी दे कटोरे?
कुण सुहागिणे माला गदाएं?
सिया सुहागिने माला गदाएं
मेहंदी कटोरे नौ गज डोरे
बेटे रे हाथों दे संजोए
बापू रे आंगने खड़ी होए मामया
हाथै करै मेहंदी कटोरे
कुण भरे मेहंदी दे कटोरे?
सेई भरौ मेंहदी कटोरे।
मेहंदी कटोरे नौ गज डोरे
बेटे रे हाथों दे संजोए
भाभी सुहागिणे माला गुंदाए
सैई भरौ मेंहदी कटोरे।''[18]

अनुवाद- मेहंदी लगाते समय ग्रामीण महिलाएं गाती हैं कटोरे में मेहंदी है और नौ गज की डोरी बेटे के हाथ में लगी है। दूल्हे की माँ आँगन में खड़ी है उसके हाथ में मेहंदी से भरी कटोरी है। आगे गाती है कि वर के लिए किस सुहागिन ने माला बनाई है और मेहंदी का कटोरा किसने भरा है। सीता सुहागिन ने मेहंदी का कटोरा भरा है। मेहंदी कटोरे से डोरी वर के हाथ लगी है। वे आगे गाती हैं किस सुहागिन ने मेहंदी बनाई है और किस सुहागन ने माला गुंथी है। वर-वधु की सुहागन भाभी ने और मेहंदी कटोरे में लेकर खड़ी है। अतः स्पष्ट है कि वर या वधु की भाभी के द्वारा मेहंदी का निर्माण किया जाता है कि मेहंदी लोकगीत में सगे-

संबन्धियों का महत्व प्रस्तुत किया जाता है। समाज में परिवार एवं गांव की महत्ता का मिश्रण भी लोकगीत में है।

स्नान गीत

तेल बटना के पश्चात् घर व आस-पड़ोस की स्त्रियां वर-वधु को नहलाने के लिए आंगन में लेकर आती हैं और नहाने से आंगन में कीचड़ हो जाता है उस दशा का चित्रण इस गीत में हैं-

आंगने चीकड़ (कीचड़) कुणिए किया
कुणिए डोलया पाणी वे।
आंगण चीकड़ रामे (वर) किया
मोरिए डोलया पाणी वे।
आपणी अम्मा दा लाडला नहाया
आंगने चीकड़ तिनीए ही किया
आई लाड़े री चाची टीका लाणी
से तो बेचारी का करे लातों पादों डेवा पाणी
आंगणे चीकड़ कुनी किया
कुणिए डोलया पाणी वे।''

भावानुवाद- आंगन मैं कीचड़ किसने किया है और पानी को आंगन में किसने गिराया है। आंगन में कीचड़ दुल्हे ने किया है और सभी औरतों ने पानी गिराया है। आंगन में माँ के लाड़ले को नहलाया गया था उसी ने यह कीचड़ फैलाया है। दुल्हे की चाची उसे तिलक लगाने के लिए जैसे ही आती है उस बेचारी के पांव इस पानी में डूब जाते हैं जिस कारण उसे तिलक लगाने में समस्या आ जाती है।

घोड़ी या बारात के प्रस्थान के समय का लोकगीत

शिमला जनपद में दुल्हा जब तैयार होकर घोड़ी पर चढ़ता है तो उस समय एक लोकगीत गाया जाता है। जिसे घोड़ी गीत के नाम से जाना जाता है। वर के घोड़ी पर बैठने के कारण इस लोकगीत की कल्पना हुई मालूम होती है घोड़ी लोकगीत दृष्टव्य है-

''आओ बे आमाजी पूजो घोड़ली,
बेटा वे तेरा शावरी कै चाला
राजा दा बजीर बी चाला
घोड़लिए रण बावलिए
आओ वे बाबूजी पूजो घोड़ली
पुत्र वे तेरा ब्याणै कै चाला
राजा दा बजीर बी चाला
फौजा दा सरदार बी चाला
घोड़लिए रण बावलिए
आओ वे चाचाजी पूजो घोड़ली
भतीजा वे तेरा शावरी कै चाला
राजा का बजीर भी चाला
घोड़लीए रण बावलीए
आओ बे दादी जी पूजो घोड़ली
पोता वे तेरा बयैणै के चाला
राजा का बजीर बी चाला
फौजा का सरदार बी चाला
घोड़लिए रण बावलिए
आओ वे भाभी जी पूजो घोड़ली
देवर वे तेरा शावरी कै चाला
राजा का बजीर बी चाला
फौजा का सरदार भी चाला
घोड़लिए रण बावलिए।।''[20]

भावानुवाद-उपरोक्त घोड़ी लोकगीत में घोड़ी की सुन्दरता का वर्णन तथा सभी रिश्तेदारों द्वारा घोड़ी पूजन किया गया है।

कन्यादान लोकगीत

भारतीय संस्कृति में कन्यादान महादान माना गया है। शिमला जनपद में भी इस रीत की परम्परा है। कन्यादान के समय कन्या का पिता कन्या का हाथ वर के हाथ में देकर माता-पिता दोनों जल से भरे कलश को दोनों के हाथों में डालकर संकल्प करते हैं। इस कन्यादान के समय एक लोकगीत प्रचलित हैं-

काम्पया ना काम्पया धरती माता
हो रहा कन्यादान
औरो औरों दा दान जद कदी होंदा
कन्या दा दान होंदा आज
काम्पया ना काम्पया धरती माता
हो रहा कन्यादान
गऊ दा दान जद कदी होंदा
कन्या दा होंदा आज
काम्पया ना काम्पया धरती माता
सोना-चांदी दा दान जद कदी होंदा
कन्या दा होन्दा आज
काम्पया री काम्पया धरती माता
हो रहा कन्यादान
नाजो दा दान जद नही होंदा
कन्या रा होंदा आज।''21

भावानुवाद-कन्यादान के समय लोकगायिकाएं गाती हैं, हे धरती माता आप कांपना मत क्योंकि कन्यादान हो रहा है और चीजों का दान तो किसी भी दिन किया जा सकता है किन्तु कन्यादान तो आज हो रहा है। कन्या के माता-पिता आप भी मत कांपना क्योंकि आज आपकी लाड़ली का कन्यादान हो रहा है। बाकी चीजों सोना, चांदी, गाय तथा अनाज का दान तो कभी भी किया जा सकता है किन्तु कन्या का तो आज ही दान होना है।

गृह प्रवेश लोकगीत

(वर के घर में) वर वधु के विवाह सम्पन्न होने पर कन्या के माता-पिता विदाई करते हैं तथा इसके पश्चात् वधु का ससुराल में

गृह प्रवेश करवाया जाता है तब लोक गायिकाएं गीत गाती हैं-

"अन्दरे आवै बहुए बड़ा द्वार नीवीं र आवै
अन्दरे आवै बहुए शौरा शाशु नीवीं र आवै
अन्दरे आवै बहुए जेठिए जैठैनी नीवीं र आवै
अन्दरे आवै बहुए नणद नणदोई नीवीं र आवै
अन्दरे आवै बहुए बुआ-बुबे नीवीं र आवै
अन्दरे आवैं बहुए मामे मामी नीवीं र आवै
अन्दरे आवै बहुए चाचौ चाची नीवी र आवै।।"[22]

भावानुवाद- उपरोक्त गीत दुल्हन के गृह प्रवेश के समय गाया जाता है कि आप अन्दर आ जाओ पर इस घर में द्वार के सामने झुककर आना इसी तरह अपने सास-ससुर, जेठ-जेठानी ननद- ननदोई, फूफा-फूफी, मामा-मामी, चाचा-चाची के सामने ही झुककर या उनके चरण स्पर्श कर उनसे आशीर्वाद लेते हुए अन्दर आना। अर्थात् वधु को घर के सभी सदस्यों के प्रति आदर व सत्कार को अपनाने की शिक्षा दी जाती है।

पानी पनिहार लोकगीत

पानी पनिहार की रीति शिमला जनपद में बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है। इस अवसर पर गुलाबी रंग से रंगे वस्त्र जिसे 'झामण' के नाम से पुकारते हैं को दुल्हन की ओर से आए लड़के-लड़कियां वर-वधु के सिर पर ऊंचा तानकर पानी के स्थान 'वाबड़ी आदि पर ले जाते हैं। वहां पुरोहित द्वारा पूजन करवाकर वधु के सिर पर पानी से भरा कलश रखकर वर पक्ष की ओर की लड़कियां अथवा बहनों द्वारा उसी झामण के नीचे दोनों को घर लाया जाता है तथा घर पर दुल्हन द्वारा लाये गये जल को सभी रिश्तेदारों को पिलाया जाता है इसे पानी पनिहार संस्कार कहते हैं। इस संस्कार में जब वर-वधु पानी के स्थान पर जाते हैं तो वर की बहन एक थाली में जल व कुमकुम को मिलाकर उसके छापे सारे घर के साथ-साथ पूरे रास्ते में पानी के स्थान पर लगाती है जिस पर एक गीत गाया जाता है-

लाड़े रीया वैणा छापै छपाऊँ दिया
छापै वै लागै नगरिया सारे
लाडे रीया वैणा छापै छपाऊँ दिया
छापै वै लागे जमुना किनारे
लाडे रीया वैणा छापै छपाऊँ दिया
छापै वै लागै मथुरा किनारे
लाड़े रीया वैणा छापै छपाऊँ दिया
छापै वे लागै वृदांवन सारे
लाड़े रिया बैणा छापै छपाऊँ दिया
छापै वै लागै नगरिया सारे।।"[23]

भावानुवाद- इस गीत से दर्शाया गया है कि वर की बहन ने पानी-पनिहार के समय सारे गांव से लेकर पूरे नगर पानी किनारे अर्थात् स्थानों पर छापे लगवाने का कार्य सम्पन्न कर दिया है विवाह के समय पानी-पनिहार के अवसरों पर सारे घर में कुमकुम की छाप लगाना शुभ माना जाता है।

ऋतु गीत

शिमला जनपद में मुख्यतः तीन ऋतुओं का ही आगमन होता है। तौंदी (ग्रीष्म) वशकाल (बरसात) और हियुंद (शरद) इन तीनों ऋतुओं के आधार पर शिमला जनपद में विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का गान किया जाता है। वर्षा ऋतु में सावन मास में गाए जाने वाले लोकगीत हैं। इन लोकगीतों में से एक लोकगीत इस प्रकार से है-

वरशा शावना नदियो भरदी लागी
नौखे-नौखे सुरों दी गीतों भरदी लागी
पारले कोणे पाये काले बादलो जागे
ऐरो गुडां घुड़क्यो धरती काम्पदी लागी
केरो चीले केलो झूमियो झूमियो नाचीयोगा
ठण्डी कोआ बागरा पाची-पाची नाचीयोगा
धारा पान्दे धारो री उठी गवा धूवां
धुई मिलियो बादलो रा हुआ धूवां
बागे फूले फूलणो चडकु वाशे
झीरमीर वरशां शंवनां खेतीरे आशे
वरशा शांवना नदियों भरदी लागी
नौख-नौखे सुरो दी गीतो भरदी लागी।"[24]

भावानुवाद- सावन वरस उठा है। नदियां भर गई अर्थात् वर्षा ऋतु में नए-नए गीतों में नए-नए स्वरों में नदियां गा रही है। उधर उस किनारे काले-काले बादल उठ रहे हैं। बादल इतने जोर से गरज रहे हैं कि धरती कांपने लगी है। केल (देवदार) व चील के वृक्ष झूम-झूम कर नाच रहे हैं। पर्वत के शिखर पर धुन्ध उठी है। बाग में फूल खिल रहे हैं। पक्षी चहचहा रहे हैं। रिमझिम वर्षा हो रही है। खेतों में भी फसल पैदा होने की आशा जाग उठी है। अतः सारा गीत सावन की विशेषताओं पर आधारित है।

धार्मिक गीत

शिमला जनपद के सामाजिक जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां के लोग अपनी धार्मिक भावनाओं को लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करते हैं-

शाली माता से सम्बन्धित धार्मिक गीत

शिमला जनपद के अधिक पौराणिक देवी-देवताओं से लेकर स्थानीय व ग्राम्य देवी-देवताओं में धार्मिक भावनाएं जुड़ी हैं। इन देवी-देवताओं में माता शाली भी प्रमुख है जिसका मन्दिर इस जनपद की सबसे ऊँची चोटियों में से शाली चोटी पर स्थित है इसी चोटी का नामकरण यहां पर स्थित शाली माता के नाम पर पड़ा है। इस माता में लोगों की अद्भुत आस्था व विश्वास है।

(शेष पृष्ठ 151 पर)

व्यंजन

पौष्टिकता एवं जायके में लाजवाब
पारम्परिक पकवान

● नर्बदा कंवर

हिमाचल प्रदेश एक पहाड़ी राज्य है। यहां का जीवन कठिन व चुनौतीपूर्ण होने के बावजूद प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत बहुत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। जिस प्रकार मेले त्योहार हमारी देव प्रधान संस्कृति के अभिन्न अंग है, उसी तरह इन मेलों एवं त्योहारों के अवसर पर बनाए जाने वाले पारम्परिक पकवान भी लोगों के जीवन में खास अहमियत रखते हैं। ये पकवान हमारी समृद्ध संस्कृति का उतना ही महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं जितना कि हमारा रहन-सहन, पहरावा, रस्मो-रिवाज, गीत-संगीत एवं लोक नृत्य इत्यादि। किसी भी क्षेत्र का खान-पान वहां की भौगोलिक परिस्थितियों में उत्पादित अनाज पर निर्भर करता है। लोगों के जनजीवन का आधार इन्हीं परिस्थितियों और परम्पराओं पर निर्भर करता है। जीवन का हर पहलू किसी-न-किसी रूप में इन परम्पराओं और सामाजिक प्रथाओं से जुड़ा होता है। हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक विविधताओं में यहां के खान-पान की विविधताएं भी वर्णनीय हैं। हिमाचल में कुछ विशेष अवसरों पर विशेष पकवान बनाए जाते हैं जिनका इस क्षेत्र की प्रागैतिहासिक कालीन सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ सम्बन्ध रहा है।

वैसे तो हिमाचल प्रदेश के सभी जिलों में थोड़े-बहुत बदलाव के साथ एक जैसे पकवान बनाए जाते हैं। परन्तु प्रत्येक जिले में कुछ ऐसे खास व्यंजन बनाए जाते हैं जो उस जिले की विशेषता को दर्शाते हैं। सिड़कू या सिडू का जिक्र आते ही हमारे जहन में अनायास ही जिला शिमला की तस्वीर घूमने लगती है। इसके अतिरिक्त यहां पर शादी-विवाह, शांद-भूंडा, कथा-पुराण जैसे पारम्परिक अवसरों पर भी कुछ ऐसे पकवान बनाए जाते हैं जो यहां की खास पहचान हैं। इन पकवानों में प्रमुख पकैन, अस्कलू, इन्डेर बटुरू, पटांडे, चौलाई की खीर, कोदे की रोटी, बाड़ी इत्यादि। इसके अतिरिक्त मांसाहारी व्यंजन भी इस क्षेत्र में काफी प्रचलित हैं।



सिडू या सिड़कू को व्यंजनों का राजा माना जाता है जिसे गेहूं के आटे से बनाया जाता है। घर की चक्की में पीसे आटे के सिड़कू बहुत ही स्वादिष्ट और पौष्टिक होते हैं। सिड़कू बनाने के लिए एक दिन पहले से ही तैयारी करनी

सिडू : जिला शिमला में सिडू या सिड़कू को व्यंजनों का राजा माना जाता है जिसे गेहूं के आटे से बनाया जाता है। घर की चक्की में पीसे गए आटे के सिड़कू बहुत ही स्वादिष्ट और पौष्टिक होते हैं। सिड़कू बनाने के लिए एक दिन पहले से ही तैयारी करनी पड़ती है। आटे को गूंथते समय उसमें खमीरा या यीस्ट डाला जाता है। फिर उसे किसी कपड़े से लपेट कर तीन-चार घंटे तक रख दिया जाता है। सिड़कू बनाने से पहले इसके अन्दर भरी जाने वाली सामग्री जिसे स्थानीय भाषा में बेड़न कहते हैं, तैयार कर लिया जाता है। बेड़न अमूमन खस-खस, माश की दाल, भंगजीरी, अखरोट, तिल इत्यादि का बनाया जाता है। माश की दाल के बेड़न को एक दिन पहले तैयार किया जाता है इसलिए दाल को पहले दिन भिगोने को रख दिया जाता है। अच्छी तरह से भीगने के उपरांत इसे सिल-बट्टे पर पीसा जाता है। फिर गर्म पानी में डालकर इसके छिलके हाथ से मसलकर अलग किए जाते हैं। बिना छिलके के माश को एक बार फिर से सिल-बट्टे पर बारीक पीसा जाता है। इन पीसे हुए माश में स्वादानुसार नमक आदि डालकर इसे अच्छे से फेंट (मिलाना) लिया जाता है। इस फेंटी हुई सामग्री को अंजीर के पत्तों पर डाल कर सिड़कू बनाने वाले बर्तन में भाप द्वारा पकाया जाता है जिसे

स्थानीय भाषा में इन्डेर कहा जाता है। जब आटा पूरी तरह फूल जाता है जिसे स्थानीय भाषा में उसरना कहते हैं, का एक बड़ा पेड़ा बनाकर इसमें तैयार की गई बेड़न की सामग्री भरी जाती है। इसको चारों तरफ से बंद कर दिया जाता है और हल्के हाथ से थोड़ा थपथपाया जाता है।

इसके उपरांत इसे हल्का-सा तवे पर सेका जाता है। अब इसे सिड़कू बनाने वाले विशेष बर्तन या सिडू मेकर में डालकर भाप द्वारा लगभग एक घंटे तक पकाया जाता है। उसके बाद गर्म-गर्म सिडू को घी के साथ परोसा जाता है। सिड़कू खाने में भारी लेकिन पौष्टिक होता है। पहाड़ों में शारीरिक श्रम बहुत होता था, इसलिए किसान व बागबान को सुबह भरपेट सिड़कू खाने से दिन भर भारी श्रम करने के बावजूद शाम तक भूख नहीं लगती थी। मांसाहारी लोगों के लिए जो महत्त्व मीट मांस रखता है वही महत्त्व शाकाहारी के लिए सिड़कू रखते हैं।

पटांडे : शिमला जिले में तीज-त्योहारों, शादियों आदि पर पटांडे भी विशेष रूप से बनाए जाते हैं। ये भी गेहूं के आटे से बनाए जाते हैं। इसको बनाने के लिए बहुत पतला आटा बनाया जाता है। फिर बड़े तवे पर हल्का-सा घी लगाकर डोसे की तरह हाथ से चारों तरफ फैलाया जाता है। इस प्रकार दो पटांडों को जोड़कर उन्हें विशेष तरह से लपेटकर एक पटांडा बनाया जाता है। इसको शक्कर, घी और माश की दाल के साथ परोसा जाता है।

लौटे : पटांडों की ही तरह पहाड़ों में लौटे भी बनाए जाते हैं। ये मीठे और नमकीन जो भी पसंद हो, दोनों तरह के बनाए जाते हैं। इन्हें भी घी के साथ खाया जाता है। पटांडे और लौटे बहुत ही पौष्टिक और बलवर्धक होते हैं। इन्हें विशेष रूप से महिलाओं को प्रसूति के समय घी के साथ खिलाया जाता है। ये पौष्टिकता के साथ वायुरोधक भी होते हैं।

बाड़ी : गेहूं के आटे से एक और व्यंजन बाड़ी भी तैयार किया जाता है जिसे कई जगह घींडा भी कहते हैं। ये हलवे की तरह बनता है। फर्क सिर्फ इतना है कि हलवे में आटे को फ्राई किया जाता है जबकि बाड़ी सीधे पानी में पकाया जाता है। इसे भी घी के साथ खाया जाता है।

अस्कलू : त्योहारों पर बनाए जाने वाले अन्य व्यंजनों में अस्कलू का भी बहुत महत्त्व है। अस्कलू भी पौष्टिकता से भरपूर होते हैं और ये पाचनक्रिया को भी मजबूत करते हैं। ये चावल के आटे को पीसकर पत्थर के तवे पर बनाए जाते हैं जिसे स्थानीय भाषा में स्काली या चवासी कहा जाता है। मोटे पत्थर को तराश कर उसमें छोटे-छोटे खांचे बनाए जाते हैं। इन खांचों में चावल के आटे के पतले घोल को डालकर उसे पकाया जाता है। अस्कलू को प्रायः घी-शक्कर से खाया जाता है। इसके अतिरिक्त जिले में शादी-ब्याह व त्योहारों पर माल पूड़े बनाने की भी काफी पुरानी परम्परा है।

जिला शिमला में शिवरात्रि का त्योहार भी विशेष श्रद्धा और पारम्परिक तरीके से मनाया जाता है। इस अवसर पर बनाए जाने वाले पकवानों में पकैन या बाबरू, माश की दाल के भल्ले, मीठे रोट इत्यादि प्रमुख हैं। इस अवसर पर बनाए जाने वाले इन पकवानों का शिव-पार्वती की पूजा के दौरान भोग लगाया जाना बहुत शुभ माना जाता है। इन पकवानों को अगले दिन लड़की के ससुराल और अन्य रिश्तेदारों में बांटना बहुत शुभ जाता है।

कदोली : इसके अतिरिक्त शिमला जिले में चौलाई की खीर, कोदे की रोटी या कदोली विशेष रूप में अरबी का बेड़न डाल कर बनाई जाती है। यह खाने में काफी स्वादिष्ट होने के साथ पौष्टिक भी होती है। इन्हें खास तौर पर सर्दियों के मौसम के दौरान बनाया जाता है। पहले लोग कोदे की बनी रोटी को सफर में ले जाते थे। कोदे के आटे से पकाया गया भोजन कई दिन तक बासी नहीं होता है। वैसे तो कोदे के भोजन को गरीबों का भोजन माना जाता है परन्तु पौष्टिकता के हिसाब से यह हर वर्ग के लोगों की सेहत के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

शिमला जिले के ऊपरी क्षेत्र में अधिक सर्दी होने के कारण मांसाहारी व्यंजन भी काफी बनाए जाते हैं। इन व्यंजनों में सूखे मांस (मीट) की बहुत महत्ता है। लोग पहले से ही सर्दियों के लिए मीट को सूखा देते हैं जिसे घर की सबसे ठंडी जगह टांग कर रखा जाता है। सूखा हुआ मीट काफी समय तक खराब नहीं होता। इसको पकाना भी काफी सरल होता है। इसे पहले गर्म पानी में अच्छी तरह उबाल दिया जाता है। जब यह अच्छी तरह उबल जाता है तो इस पर स्वादानुसार नमक-मिर्च डालकर परोसा जाता है। इस तरह का मीट काफी पौष्टिक माना जाता है।

लवान्दिरी : मांसाहारी पकवानों में जो खास व्यंजन यहां बनाए जाते हैं उनमें लवान्दिरी, जिसे शहरों में सॉसेजिज कहा जाता है, प्रमुख है। इसमें आंतों को अच्छी तरह पानी से धो कर साफ किया जाता है। उसके उपरांत इसमें रक्त भरा जाता है। पहले इन्हें सुखाया जाता है। कई जगह इसे आग में भून कर खाते हैं तो कोई फ्राई करके। ये खासकर भूंडा व शांद महायज्ञों में बनाई जाती है।

हमारी वर्तमान पीढ़ी शहरी संस्कृति और खान-पान से अधिक प्रभावित हो रही है जिस कारण तीज-त्योहारों पर बनाए जाने वाले ये पकवान अब अतीत बनकर रह गए हैं। आने वाली पीढ़ी तो इन पकवानों को खाना तो दूर शायद इनके नाम से भी अनभिज्ञ होंगे। ये पारम्परिक पकवान स्वाद में तो लजीज हैं ही साथ में ये पौष्टिकता से भी भरपूर हैं। आज खान-पान से जितनी भी बीमारियां फैल रही हैं, यदि उन्हें कम करना है तो हमें आने वाली पीढ़ियों को इन पारम्परिक पकवानों की महत्ता बारे जागरूक बनाकर और इन्हें अधिक लोकप्रिय बनाने के प्रयास करने होंगे।

उप सम्पादक, गिरिराज साप्ताहिक, शिमला-171 005,
मो. 94180 26402

लोकाचार

जनपद की प्रमुख बोली : क्योंथली

● डॉ. जगत पाल शर्मा

यहां पर हम उस क्षेत्र तथा जिले की बोली को लेकर विचार करने जा रहे हैं जो कि भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि संसार भर में अपने प्राकृतिक सौंदर्य के कारण ख्याति अर्जित किए हुए है। पूरा-का-पूरा जिला प्राकृतिक सौंदर्य का भंडार होने के कारण पर्यटन स्थल के रूप में पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। इस आकर्षण का एकमात्र कारण इस क्षेत्र में प्राकृतिक सौंदर्य का भंडार होना ही है। इस क्षेत्र तथा जिले का नाम है शिमला।

क्योंथली[1] हिमाचल प्रदेश की प्रमुख बोलियों में से है। यह जिला शिमला की प्रमुख बोली है। स्वतंत्रता से पूर्व शिमला क्षेत्र छोटी-छोटी रियासतों में बंटा हुआ था। उस समय उन्हें शिमला पहाड़ी रियासतें[2] कहा जाता था। जितनी रियासतें थीं, प्रशासनिक दृष्टि से प्रत्येक रियासत की उसके आधार पर अलग-अलग बोली स्वीकार की गई थी। उदाहरणार्थ हंडूर रियासत के आधार पर 'हंडूरी', परगना किरन के आधार पर 'क्योंथली' आदि। इन सभी बोलियों में ध्वनि, व्याकरण और शब्द आदि को लेकर पर्याप्त समानता मिलती है, फिर भी इन सभी बोलियों के अलग-अलग रियासत की बोली होने के कारण अलग-अलग नाम से जाना गया। शिमला पहाड़ी रियासतों में सबसे बड़ी रियासत क्योंथल ही थी। और इस रियासत का क्षेत्र इन सभी रियासतों के बीच में पड़ता था। इसी कारण 'क्योंथली' ने अपने आस-पास की सभी बोलियों को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया। यही कारण है कि अन्य बोलियों की तुलना में इसका क्षेत्र काफी व्यापक एवं विस्तृत है।

'क्योंथली' मुख्य रूप से स्थानीय शहर शिमला को छोड़कर जिला शिमला की प्रमुख बोली है। इसका क्षेत्र स्थानीय शहर शिमला को छोड़कर शहर के चारों तरफ पड़ता है। इस बोली का क्षेत्र जिला शिमला तो है ही मगर इसका क्षेत्र जिला सोलन तक भी फैला है। जिला सोलन का कुछ क्षेत्र जैसे शोघी, कंडाघाट आदि इसी के अंतर्गत आता है। इस प्रकार 'क्योंथली' का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

'क्योंथली' को बोली के रूप में स्वीकार करने का श्रेय डॉ. ग्रियर्सन को ही जाता है। उन्हीं के शब्दों में :

Keonthali is the Language of the central portion of the Simla Hill States and is spoken round Simla itself and in the State of Keonthal from the later of which it takes its name.[3]

डॉ. ग्रियर्सन ने यहां पर 'क्योंथली' को भाषा के नाम से संबोधित किया है, जबकि भाषा के स्थान पर इसे बोली कहना अधिक तर्कसंगत जान पड़ता है। 'क्योंथली' में भाषा के गुणों का आज भी काफी अभाव है। इसी कारण इसे भाषा न कहकर बोली कहना ही अधिक तर्कसंगत है।

क्योंथली का हवाला देते हुए डॉ. ग्रियर्सन ने इसकी छह उपबोलियों का भी उल्लेख किया है, जो निम्नवत् हैं :-

1. सरचौली, 2. हंडूरी, 3. बराड़ी, 4. शिमला सिराजी, 5. कोची, 6. कीरनी[4]

इस प्रकार डॉ. ग्रियर्सन ने उपर्युक्त सभी उपबोलियों को क्योंथली की उपबोलियों के रूप में स्वीकार किया है। अब वास्तव में इन उपबोलियों में से कुछ एक का क्षेत्र जिला शिमला से बाहर पड़ता है; जैसे 'हंडूरी' का क्षेत्र अब जिला सोलन में पड़ता है तथा इसी प्रकार शिमला सिराजी का क्षेत्र अब जिला कुल्लू का हिस्सा है।

'क्योंथली' के नामकरण का जहां तक प्रश्न है, यह नामकरण अब तक हमारे लिए रहस्य ही था, मगर यहां पर इसी रहस्य का रहस्योद्घाटन करने की कोशिश की जा रही है। डॉ. ग्रियर्सन भी इस बात की ओर संकेत कर चुके हैं कि क्योंथल रियासत के आधार पर इस रियासत की बोली का नाम 'क्योंथली' पड़ा। यह बात तो ठीक है कि क्योंथल रियासत के आधार पर इस रियासत की बोली का नाम 'क्योंथली पड़ा, मगर विचारणीय बात यह है कि क्योंथल जो कि रियासत का नाम है, कहां से तथा कैसे आया?

क्योंथल रियासत की स्थापना का एक छोटा-सा इतिहास है। यहां पर उसी इतिहास पर एक नजर डाल लेना आवश्यक प्रतीत होता है, तभी हम किसी हद तक 'क्योंथली' के नामकरण तक पहुंच पाने में सफल होंगे अन्यथा नहीं। यह बात एकदम स्पष्ट है कि आरंभ में इस रियासत का नाम क्योंथल नहीं था। जैसे ही बंगाल से सैन वंश के राजकुमार गिरी सैन इस क्षेत्र में पहुंचे, वैसे ही उन्होंने यहां पहुंचकर अपने प्रभुत्व का प्रदर्शन किया। उनके प्रभुत्व का प्रमाण इस घटना से मिल जाता है कि एक बार राजकुमार गिरी सैन अपने कुछ सहयोगियों सहित 'चायल कोटी' नामक स्थान पर शिकार खेल रहे थे। शिकार खेलते-खेलते इनकी यहां के मूल निवासियों के साथ मुठभेड़ हो गई। इस मुठभेड़ में गिरी सैन को विजय प्राप्त हुई। इसी विजय के पश्चात यहां के मूल निवासियों ने राजकुमार गिरी सैन को पत्थर के एक चबूतरे पर बैठ कर उनका राज्याभिषेक करके, उन्हें अपने राजा के रूप में स्वीकार किया।

गिरी सैन जो इस क्षेत्र के प्रथम राजा थे, उनका दूसरा नाम 'कींथू' अर्थात् वे 'कींथू' के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। अतः इसी कारण 'कींथू' नाम के आधार पर ही इनकी रियासत का नाम 'क्योंथल' पड़ा।

जहां तक क्योंथल का बोली के रूप में नामकरण का प्रश्न है, यह समस्या क्योंथल रियासत के नामकरण पर विचार करने के पश्चात् स्वयं ही सुलझ जाती है : जैसाकि आरंभ में भी कहा जा चुका है कि 'क्योंथली' को बोली के रूप में स्वीकार करने का श्रेय डॉ. जी.ए. ग्रियर्सन को जाता है। उन्होंने क्योंथल रियासत जो कि इस क्षेत्र की सभी रियासतों में सबसे बड़ी थी, उसी के आधार पर इस रियासत की बोली को 'क्योंथली' नाम से अभिहित किया है। अतः क्योंथल रियासत की बोली ही 'क्योंथली' नाम से जानी जाती है। इस प्रकार 'क्योंथली' के उद्‌भव और विकास की कहानी क्योंथल रियासत के प्रथम राजा गिरी सैन, जिनका दूसरा नाम 'कींथू' था, से आरंभ होकर 'क्योंथली' तक पहुंचती है। अतः यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि 'कींथू' से 'क्योंथल' और 'क्योंथल' से 'क्योंथली' का विकास हुआ।

आज 'क्योंथली' का क्षेत्र मात्र क्योंथल रियासत तक सीमित न रहकर काफी दूर-दूर तक फैला है। बोली के रूप में 'क्योंथली' अब अनेक दूसरी रियासतों के क्षेत्र को भी अपने में समेटे हुए है, जैसे थियोग, भज्जी, धामी आदि। अब तो क्योंथली का क्षेत्र क्योंथल रियासत तक सीमित न रहकर पूरे जिला शिमला तक फैला हुआ है। जिला शिमला के साथ-साथ यह अब वर्तमान जिला सोलन के कुछ क्षेत्र की बोली भी है। इसी के कारण यहां पर इस बात को लेकर संक्षेप में विचार करना अनुचित न होगा कि यह जिला शिमला की मुख्य बोली हुए भी स्थानीय शहर शिमला की बोली नहीं है।

वास्तव में शिमला शहर ब्रिटिश शासन काल से पूर्व जब राजधानी नहीं थी, तब वर्तमान शहर अनेक गांवों का समूह था तथा उस समय इन गांवों में रहने वाले स्थानीय लोगों की बोली 'क्योंथली' ही थी। लेकिन अंग्रेज सरकार ने जैसे ही इन गांवों को स्वास्थ्यवर्धक क्षेत्र के रूप में समझा, तो अंग्रेज सरकार ने वैसे ही वर्तमान स्थानीय शहर शिमला में पड़ने वाले इन बारह गांवों के क्षेत्र को क्योंथल नरेश से ले लिया। यह बात 'शिमला हिल स्टेट गज़ेटियर' से स्पष्ट हो जाती है : "सन् 1830 में शिमला और उसके समीपस्थ 12 गांव अंग्रेज सरकार ने स्वास्थ्यवर्धक स्थान और वाइसराय के कार्यालय के लिए परगना रवाई के बदले में क्योंथल नरेश संसार सैन से लिए। बाद में परगना बांक्का के बदले सन् 1872 में भी कुछ जमीन अंग्रेज सरकार ने क्योंथल नरेश से ली।[6] इस प्रकार शिमला हिल स्टेट गज़ेटियर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सन् 1830 से पूर्व वर्तमान शहर शिमला में भी 'क्योंथली' ही बोली जाती थी। मगर जैसे ही अंग्रेज सरकार ने क्योंथल नरेश से इन 12 गांवों को लिया, वैसे ही इन 12 गांवों के मूल निवासियों को अपना मूल स्थान छोड़कर शिमला के समीप ही दूसरी जगह जाकर बसना पड़ा। स्वाभाविक था कि उन्हीं के साथ ही उनकी बोली को भी जाना पड़ा। इसी कारण 'क्योंथली' सन् 1830 के पश्चात् शहर की बोली नहीं रही। इसीलिए यह शहर की बोली भी नहीं है, फिर भी शहर को लेकर 'क्योंथली' की स्थिति पहले जैसी नहीं रह गई है। अब जैसे-जैसे शहर के क्षेत्र का विस्तार होता जा रहा है। वैसे-वैसे 'क्योंथली' भी अब शहर की बोली बनती जा रही है।

अब धीरे-धीरे शहर के क्षेत्र का विस्तार होता जा रहा है, शहर के आस-पास के छोटे-छोटे गांव जैसे शहर के क्षेत्र में मिलते जा रहे हैं। वैसे-वैसे क्योंथली शहर में भी प्रवेश करती जा रही है। 'क्योंथली' के शहर की बोली न हो पाने के अनेक कारण हो सकते हैं, जिसमें से मुख्य कारण निम्नवत् हैं :-

शिमला शहर ऐसा शहर है जो कि अंग्रेजों के समय से ही राजधानी रहा है और अब राज्य की राजधानी है। इस कारण यहां पर शुरू से ही दूसरे देशों और प्रदेशों के लोगों का आना-जाना निरंतर रहा है। परिणामस्वरूप दूसरे देशों और प्रदेशों के लोग ही शहर के मूल निवासी बन गए। इसीलिए शहर की भाषा एक नहीं रह सकी और इसी कारण 'क्योंथली' का शहर में प्रवेश ही मुश्किल हो गया। आज शहर में लोग हिंदी बोलते हैं या फिर अंग्रेजी, लेकिन अपने-अपने घरों में लोग अपनी-अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करते हैं।

अब धीरे-धीरे स्थानीय लोग भी शहर में बसते जा रहे हैं तथा आस-पास के गावों को भी शहर में मिलाया जा रहा है। इस कारण अब 'क्योंथली' का क्षेत्र शहर की तरफ भी बढ़ रहा है। मगर अब तक शहर की ओर इसका बढ़ना नाम मात्र का ही है। हम आने वाले कुछ वर्षो में ऐसी आशा कर सकते हैं कि शहर में भी 'क्योंथली' के वक्ताओं की संख्या बढ़ सकती है। शहर में 'क्योंथली' के वक्ताओं की वृद्धि के साथ-साथ भविष्य में कभी यह स्थानीय शहर की भी बोली (भाषा) बन सकती है।

'क्योंथली' के नामकरण को लेकर सामान्य रूप से जो विचार मन में आता है, बस यही आता है कि जब 'क्योंथल' रियासत का नाम है, तो क्योंथल नाम से कोई स्थान विशेष, व्यक्ति विशेष होना चाहिए। मगर 'क्योंथल' नाम से स्थान विशेष या व्यक्ति विशेष का विचार मात्र विचार या भ्रम बनकर ही रह जाता हैं। 'क्योंथल' नाम से न ही कोई स्थान है और न ही कोई व्यक्ति। 'क्योंथली' नाम से तो 'कींथू' का विकसित रूप है, जो कि इस क्षेत्र के प्रथम राजा गिरी सैन का दूसरा नाम था। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 'क्योंथली' का संबंध 'क्योंथल' रियासत के प्रथम राजा गिरी सैन, जिनका दूसरा प्रसिद्ध नाम 'कींथू' था, से है।

प्रस्तुत लेख में सहयोग के लिए मैं अपने शोध छात्र हर्षवर्धन जोशी के प्रति आभार व्यक्त करता हूं।

(साभार : 'हिमप्रस्थ', मार्च, 1989)

बागबानी

शिमला से सेब क्रांति का सूत्रपात

● विनोद



शिमला जिले के कोटगढ़ में वर्ष 1918 में जब सेब की लोकप्रिय डिलीशियस किस्म का पहली बार पौधरोपण किया गया था तो शायद ही किसी ने कल्पना की होगी कि यह छोटा-सा प्रयास भविष्य में एक दिन हिमाचल की आर्थिक में क्रांतिकारी परिवर्तन लाएगा। आज से 96 वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका के फिलाडेल्फिया निवासी के इस प्रथम प्रायोगिक प्रयास का ही परिणाम है कि आज शिमला, कुल्लू, किन्नौर, चम्बा और मण्डी जिलों में लहलहाते सेब के बागीचों में हर वर्ष करोड़ों सेब पेटियों का उत्पादन हो रहा है जिसका हिमाचल की आर्थिकी में सालाना तीन हजार करोड़ रुपये का अहम योगदान है। देश के हर कोने में उपलब्ध रसीले हिमाचली सेब के कारण आज प्रदेश को 'सेब राज्य' के रूप में जाना जाता है।

हालांकि हिमाचल ने सेब उत्पादन के साथ-साथ अन्य फलों के उत्पादन की दिशा में भी उपलब्धि हासिल की है लेकिन हिमाचल की अधिक पहचान सेब उत्पादन से ही है। राज्य को सेब राज्य का दर्जा दिलाने के श्रेय एक विदेशी व्यक्ति की दूरदर्शिता, सूझबूझ तथा परिश्रम को जाता है। यह महान शख्सीयत थे श्री एस.ई. स्टोक्स जिन्हें सत्यानंद स्टोक्स के नाम से जाना जाता है।

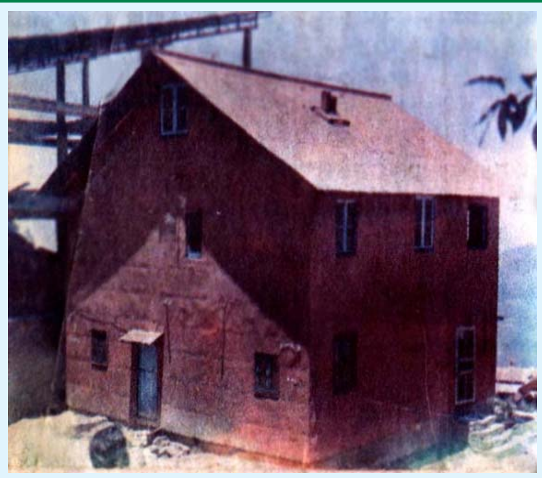
श्री स्टोक्स ने शिमला जिले के एक छोटे से गांव कोटगढ़ में वैज्ञानिक आधार पर सेब उत्पादन का कार्य आरम्भ ही नहीं किया, बल्कि स्थानीय लोगों को सेब बागान लगाने के लिए प्रोत्साहित भी किया। उनके इस प्रयास से पहाड़ों में आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सेब उत्पादन से पहाड़ों से गरीबी व कुपोषण से निजात दिलाकर राज्य में एक नए युग का सूत्रपात किया। गरीबी को दूर करने के लिए स्टोक्स ने वैज्ञानिक ढंग से नकदी फसल सेब की खेती आरंभ करवाई, सेब की फसल आने तथा ऊंचाई वाले क्षेत्रों में सेब बागानों के लगने से धीरे-धीरे आर्थिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ। सेब की कमाई से गांव खुशहाल हुए। कच्चे मकानों से पक्के मकान, शिक्षा तथा सुख-सुविधाओं का मार्ग सुनिश्चित हुआ।

रसीले सेब की प्रजातियां

श्री स्टोक्स ने कुमाऊं तथा कुल्लू की सरकारी नर्सरियों तथा अमरीका से रेड तथा गोल्डन सेब की प्रजातियों को आयात किया। हिमाचल में डिलीशियस प्रजातियां लाने का श्रेय स्टोक्स को जाता है। कमाऊं तथा कुल्लू की सेब प्रजातियां खट्टी थीं जबकि अमरीका से आयातित प्रजातियां रसदार तथा देश में पहली बार आई थीं। इनकी खेती आरम्भ होने से श्रेष्ठ परिणाम सामने आए।

श्री स्टोक्स का बागबानी का वैज्ञानिक अध्ययन तथा ज्ञान के माध्यम से स्थानीय लोगों ने सेब उत्पादन की नई प्रणाली को सीखा। इसके तहत नर्सरी तैयार करना, पौधों को लगाना, पेड़ों की



लाल कोठी

आलू आधारित प्रथम उद्यम

आज से लगभग 100 साल पूर्व जब फैक्टरी शब्द का नाम भी लोगों को पता नहीं था तो सन् 1914 में शिमला से 60 किलोमीटर दूर हिंदुस्तान-तिब्बत सड़क पर पर्यटक स्थल नारकंडा में आलू पर आधारित फैक्ट्री लगाई गई थी। इसमें प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सैनिकों के लिए चिप्स व आलू का आटा बनाया जाता था। यह पहाड़ों में लगी पहली फैक्टरी थी। 'लाल कोठी' के नाम से यह मशहूर इमारत आज भी बुलंद है। लोहे की बनी यह दो मंजिला इमारत साक्षी है कि कभी इसमें एक उद्योग था और इसके प्रांगण में सड़ रहा लोहे का जंग खाया सामान आज भी 100 साल पूर्व की कहानी बयान कर रहा है। स्थानीय लोग आज भी गर्व से इसकी कहानी बताते हैं। इसका नाम सोलन ब्रूअरी तथा नाहन फाउंडरी के साथ लेते हैं। ऐसा तो कोई व्यक्ति नहीं है जिसने इसमें कार्य किया हो पर बुजुर्गों की जवानी की कहानियां आज भी उनके होठों पर विद्यमान है। सरकार को चाहिए कि इस इमारत को अपने संरक्षण में ले और उद्योग न सही, उन व्यक्तियों को समर्पित करे जिन्होंने आज किसानों की अर्थव्यवस्था सुधारने में प्रदेश को ख्याति दिलाई है, इस लाल कोठी का हश्र भी अन्य इमारतों जैसा ही होगा। पेड़ों के कटने व कंकरीट की इमारतों का जाल इस ऐतिहासिक इमारत को भी निगल जाएगा।

दरअसल, दुनिया को आलू से परिचित कराने का श्रेय स्पेनिश आक्रमणकारियों को जाता है जिन्होंने पेरूवासियों को पीले छिलके वाले कंद से पेट भरते हुए देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ। इसे वे 'पापा' कहते थे। लौटते वक्त उन्होंने अपने जहाजों में आलू को भरा और इसे 'पटाटास' का नाम दिया और अंततः यह अंग्रेजी का 'पोटेटो' बना। इस तरह आलू स्पेन से चलकर इटली पहुंचा, फिर उत्तरी यूरोप और फिर बरमुडा होता हुआ वर्जीनिया पहुंचा।

हिंदुस्तान में आलू सत्रहवीं शताब्दी में पुर्तगाली व्यापारियों के प्रयासों द्वारा दाखिल हुआ और हमारे देश में सबसे पहले नवाब

देखभाल, प्रशिक्षण, प्रूनिंग (कांट छांट, खाद तथा कीटनाशकों का छिड़काव) प्रमुख है। इससे सेब के स्वस्थ बाग लगाने में सफलता मिली। अच्छी फसल आई। अच्छे भाव मिले तथा बागबान मालामाल हुआ। बड़ी भू-जोत वाले तो मालामाल हुए ही साथ ही छोटी-छोटी जोत वाले किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी बदल गई। शिमला जिले के साथ मण्डी, कुल्लू, किन्नौर, सिरमौर जिले सेब उत्पादित क्षेत्र के नाम से जाने लगे।

पहला बाग

श्री स्टोक्स ने वर्ष 1919 में पहला बाग लगाया। एक वर्ष उपरांत उन्होंने अमरीका से रसदार सेब की प्रजातियों का अमरीका से आयात किया। यह वो वक्त था जब अमरीका के स्टार्क ब्रदर्ज से बिना लाइसेंस लिए सेब की रायल, रेड तथा गोल्डन प्रजातियों को नहीं लगाया जा सकता था। स्टोक्स ने अपनी नर्सरी में सेब के पौधे उगाकर स्थानीय लोगों को सेब की खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने किसानों को सस्ती दरों पर सेब के पौधे दिए। गरीबों को निःशुल्क पौधे प्रदान किए। स्टोक्स ने थानाधार के बारू बाग में स्कूल आरंभ किया। फीस के बदले छात्रों को बागबानी का प्रशिक्षण दिया जाता था। इस प्रशिक्षण से पहाड़ों में सेब के बागान लगाने की जानकारी किसानों तक सुलभ हुई।

हिमाचल प्रदेश में गुणवत्ता युक्त सेब उत्पादित क्षेत्र कोटगढ़ में सेब क्रांति का सूत्रपात होने के बाद धीरे-धीरे यह आगे बढ़ी। सेब के साथ-साथ नाशपाती, आड़ू, पलम की खेती भी आरम्भ हुई।

स्टोक्स का भारत आगमन

श्री स्टोक्स वर्ष 1904 में शिमला हिल्ज़ स्टेट में सुबाथू में कुष्ठ रोगियों की सेवा के लिए आए, जहां उन्होंने पीड़ित मानवता की सेवा की, वह भी उस दौर में जब कुष्ठ रोगियों की सेवा के लिए कोई आगे नहीं आता था। स्टोक्स अमरीका के एक इंजीनियर परिवार से सम्बन्ध रखते थे। स्टोक्स के पिता की अमरीका में स्टोक्स एण्ड पैरिश मशीन कम्पनी थी, जो लिफ्ट बनाने का कार्य करती थी, जिसका बाद में ओरिस कम्पनी के साथ विलय हुआ।

वे इंजीनियर बनना चाहते थे लेकिन मानवीय विचारधारा के कारण युवा इंजीनियर का रुझान मानव सेवा की ओर मुड़ा और उसने

आफस खान ने सन् 1615 में सर टामस रो को अजमेर में परोसा था।

1814 में अंग्रेजों द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों में अपना वर्चस्व बनाने के उपरांत आलू की खेती बारे लोगों को जागरूक होने का मौका मिला। हिमाचल प्रदेश में जनजातीय क्षेत्र लाहौल में आलू की काश्त सन् 1860 में आरंभ गई थी जिसका श्रेय मोरोवियन मिशनरियों को जाता है। जर्मनी के मोरोवियन मिशनरी के पादरी ए. डब्ल्यू. हाइट को लाहौल में आलू का प्रथम बीज बोने का श्रेय है। जर्मनी से टीन के डिब्बों में बंद उन्होंने बीज का आलू मंगवाया था। मिशन कंपाउंड में उगाई जाने वाली आलू की इस प्रथम फसल की उपज से न सिर्फ पादरी हाइट बल्कि स्थानीय लोग भी चकित रह गए और यहीं से सूत्रपात हुआ आलू का जो आज लाहौल वासियों की आजीविका का मुख्य साधन है तथा देश में रोगमुक्त आलू बीज पैदा करने में क्षेत्र ने अपनी अलग पहचान बनाई है।

इसके लिए लाहौल के गुमरंग नामक स्थान पर 200 एकड़ का फार्म तत्कालीन अंग्रेज सरकार की अनुमति के बाद एक स्थानीय ठाकुर से जमीन लेकर बनाया गया था। पादरी हाइट के कार्य को आगे बढ़ाया श्री के.एस. बेन्ज़ ने जो लाहौल के उपायुक्त थे, लाहौल-पोटेटो मार्किटिंग सोसायटी बनाकर। 1966 में प्रथम बार रोगमुक्त आलू की फसल पहली बार देखने को मिली। इसके उत्पादन को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई है आलू अनुसंधान संस्थान शिमला ने, जिसे एक अप्रैल 1935 में तत्कालीन इंपीरियल, कृषि अनुंसधान संस्थान के तहत खोला गया था। शिमला के नजदीक कुफरी में वर्ष 1963 में बीज उत्पादन केंद्र खोला गया। आलू के महत्त्व को देखते हुए सन् 1949 में भारत सरकार ने पटना में केंद्रीय आलू अनुंसधान संस्थान की स्थापना की। बाद में इसे शिमला में वर्ष 1956 में स्थानांतरित कर दिया जो कि आलू अनुसंधान की उपयुक्त जगह है। देशभर में आलू उत्पादित क्षेत्रों में सात क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र कार्यरत हैं।

हिंदुस्तान में आलू सत्रहवीं शताब्दी में पुर्तगाली व्यापारियों के प्रयासों द्वारा दाखिल हुआ और हमारे देश में सबसे पहले नवाब आफस खान ने सन् 1615 में सर टामस रो को अजमेर में परोसा था।

आलू का घरेलू उपयोग तो है ही पर इसके औद्योगिक महत्त्व को भी नकारा नहीं जा सकता। आज सेब के साथ-साथ हिमाचल में आलू का भी उत्पादन हो रहा है लेकिन सेब की ओर अधिक रुझान के कारण सेब उत्पादित क्षेत्रों में आलू उत्पादन लगभग नगण्य हो गया है। 60 व 70 के दशक में शिमला जिला आलू उत्पादन का मुख्य केंद्र था। इसका जीता जागता उदाहरण शिमला जिले के ठियोग में 'पोटेटो ग्राउंड' है। वहीं शिमला रेलवे स्टेशन के नजदीक जहां आज गाड़ियों की पार्किंग है, वहां पर आलू का यार्ड है, जिसे आजकल तोड़ा जा रहा है। शिमला में आज भी राम बाजार तथा गंज बाजार में आलू के व्यापारियों की दुकानें मौजूद हैं, जो देशभर में आलू के बड़े व्यापारियों के नाम से विख्यात थे।

अपने परिवार के व्यवसाय को छोड़कर पीड़ित मानवता की सेवा की ओर कदम रखा। सुबाथू में कुष्ठ रोगियों के लिए कार्य करने वाले डॉक्टर कारलान से प्रभावित होकर 21वर्ष की आयु में भारत आए। उनके पिता ने पांच वर्ष तक प्रतिवर्ष अपने सुपुत्र को पांच सौ डालर देने की पेशकश की। उन्हें उम्मीद थी कि उनका बेटा पुश्तैनी कार्य के लिए वापस आएगा लेकिन वे यहां के होकर रह गए। पीड़ित मानवता की सेवा को केन्द्रबिंदु में रखकर स्टोक्स सुविधाजनक जीवन को पीछे छोड़कर अमरीका से भारत आ गया तथा उसने पहाड़ में बीमारों की सेवा का निर्णय लिया। जन्मभूमि अमरीका को छोड़कर उसने पहाड़ों को अपनी कर्मभूमि बनाया।

मानवता की सेवा के प्रति समर्पण तथा निष्ठा का ही प्रतिफल था कि उसे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने वर्ष 1905 में कांगड़ा में आए भीषण भूकम्प से प्रभावित परिवारों को राहत प्रदान करने के लिए वर्ष 1906 में कार्य सौंपा। उसने राहत कार्य में अनुकरणीय कार्य किया। श्री स्टोक्स ने अपने संस्मरणों में लिखा कि भूकम्प से प्रभावित परिवार इतने दयालु तथा ईमानदार थे कि वे राहत के लिए जितना पैसा जरूरी होता था, अधिक स्वीकार ही नहीं करते थे।

कोटगढ़ में आगमन

श्री स्टोक्स ने कांगड़ा में आए भूकम्प से प्रभावितों को राहत प्रदान करने में अहम योगदान दिया तथा इस कार्य के दौरान वे टायफायड रोग से ग्रसित हुए और आराम करने के लिए कोटगढ़ आए। गौरतलब है कि पहाड़ी क्षेत्रों को गोरखों से मुक्त करवाने के लिए यहां के राजाओं ने अंग्रेजों की मदद ली थी तथा क्षेत्र को खाली करवाने के उपरांत अंग्रेजों ने कोटगढ़ में अंग्रेजी छावनी बनाई। वर्ष 1912 में स्टोक्स ने हारमनी हॉल नाम से थानाधार के समीप बारी बाग में गृह का निर्माण करवाया। वर्ष 1912 में स्थानीय महिला बैंजामिन एगानिस से विवाह किया तथा उनके सात बच्चे हुए। वर्ष 1932 में वे तथा उनके परिवार ने हिन्दू धर्म स्वीकार किया तथा सेम्यूल इवान्स स्टोक्स से नाम बदलकर सत्यानन्द स्टोक्स रख लिया।

उनका विश्वास था कि एक सच्चे भारतवासी के लिए जरूरी है कि वह भारतीय की तरह जीवन व्यतीत करे व भारतीय जीवन

पद्धति को अपनाए। इसी प्रेरणा से उन्होंने अपनी अमरीका की जीवन शैली को छोड़कर भारतीय दर्शन व जीवन शैली को अपनाया। उन्होंने जीवनपर्यन्त खादी पहनी तथा हिन्दू विचारधारा को आत्मसात किया।

लोगों से अज्ञानता तथा गरीबी दूर करने के उनके स्वप्न का इस बात से पता चलता है कि उन्होंने थानाधार के नेनीधार में एंग्लो-वरनेकुलर स्कूल खोला। इस स्कूल को तीन वर्ष के उपरांत प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होने पर बंद कर दिया गया।

वर्ष 1922 में श्री स्टोक्स ने फिर थानाधार के समीप बड़बाग में 'तारा हाई स्कूल' आरम्भ किया। इस स्कूल में स्थानीय निवासियों के बच्चों के अलावा उसने अपने बच्चों को भी दाखिला दिलवाया। हालांकि स्टोक्स अपने बच्चों को उस वक्त देश के किसी भी प्रतिष्ठित स्कूल में पढ़ा सकते थे। वे श्रम के सम्मान को अधिमान देते थे तथा वे अपने छात्रों को बागीचों की देखरेख करने का ज्ञान बांटते थे। उन्होंने शिक्षा के साथ अन्य गतिविधियों को बढ़ावा दिया व बच्चों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत की।

स्वतंत्रता आन्दोलन

भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले स्वतंत्रता आंदोलन से युवा मानवतावादी व्यक्ति स्टोक्स अत्यन्त प्रभावित हुए। वर्ष 1919 में वैसाखी वाले दिन जलियांवाला बाग काण्ड से स्टोक्स के दिल में अंग्रेजों के प्रति घृणा पैदा हो गई तथा उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने का निर्णय लिया। उनकी महात्मा गांधी, सी. एफ. इंडरूज तथा लाला लाजपतराय के साथ अत्यधिक घनिष्ठता थी। उन्होंने गांधी जी द्वारा चलाए स्वदेशी अभियान में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। वे पहले अमरीकी थे जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य बने। ब्रिटिश हुकूमत ने उन्हें देशद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किया तथा उनपर ट्रिब्यून में लेख प्रकाशित करने का आरोप लगा। इसका उल्लेख गांधी जी के यंग इण्डिया में मिलता है।

श्री स्टोक्स ने वर्ष 1919 में पहला बाग लगाया। एक वर्ष उपरांत उन्होंने अमरीका से रसदार सेब की प्रजातियों का अमरीका से आयात किया। उनकी दूरदर्शिता तथा समझ ने इस क्षेत्र में रसीले सेब का उत्पादन कर आर्थिकी में मिठास घोल दी। हिमाचल प्रदेश में गुणवत्तायुक्त सेब उत्पादित क्षेत्र कोटगढ़ में सेब क्रांति का सूत्रपात होने के बाद यह धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

पहाड़ों में बेगार प्रथा

श्री स्टोक्स ने पहाड़ों में प्रचलित बेगार प्रथा के प्रति एक शक्तिशाली आंदोलन का नेतृत्व किया। स्टोक्स ने लोगों को इकट्ठा कर इसे एक जन आंदोलन की शक्ल दी तथा इस अमानवीय कृत्य के प्रति देशवासियों को जागरूक किया। इस प्रथा के तहत स्थानीय लोगों को गोरे लोगों की यात्राओं के समय उन्हें ढोने से लेकर उनके लिए सभी वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित बनानी पड़ती थी। इसके एवज़ में उन्हें कोई भी धनराशि नहीं दी जाती थी। वहीं तत्कालीन राजाओं के लिए भी वे इस प्रकार कार्य करते थे। सड़क निर्माण में भी उन्हें इस प्रथा के तहत जबरदस्ती कार्य करना पड़ता था।

स्टोक्स ने इस मुद्दे को बहुत ही प्रभावी ढंग से उठाया था। लोगों के दिलों में जो अमानवीय कृत्य की आग भड़क रही थी, उसे ज्वाला बनाने में उनके प्रयास ने चिंगारी का कार्य किया। उनके प्रयासों से आम लोगों विशेषकर गरीबों में जागृति आई तथा तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को इस प्रथा को बंद करने के लिए झुकना पड़ा। वर्ष 1921 में शिमला हिल्स में वर्षों से चल रही बेगार प्रथा को समाप्त किया गया।

श्री स्टोक्स बागबानी के साथ-साथ एक उच्च कोटि के विद्वान थे, तथा वे भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं का दिल से आदर करते थे। उन्होंने वेद, पुराण, उपनिषदों, भागवत गीता तथा तुलसीकृत रामायण का गहराई से अध्ययन किया था। मई, 1946 में उनकी मृत्यु के समय भी वे भागवत गीता के अनुवाद में व्यस्त थे। स्टोक्स ने बारोबाग में परम ज्योति मंदिर का निर्माण पहाड़ी शैली में करवाया जिसमें हवन कुंड तथा इसकी दीवारों पर उपनिषद तथा भागवत गीता के श्लोक लिखे हैं।

हिमाचल प्रदेश को इस महान समाज सुधारक, गरीबों का हितैषी, स्वतंत्रता सेनानी तथा एक जूझारू कृषक पर नाज है। उनके प्रयासों से पहाड़ों में आर्थिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। सेब के फल ने हर घर, हर परिवार को सम्पन्नता व समृद्धि का मार्ग दिखाया।

श्री स्टोक्स के इस मानवतावादी कार्य को उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रिया देवी स्टोक्स ने सदैव सहारा दिया तथा हर एक चुनौती के लिए उनका साथ दिया।

अमरीका से आए इस योगी ने पहाड़ों की तकदीर व तस्वीर बदल दी। आज इसका ही प्रतिफल है कि प्रदेश में सालाना तीन हजार करोड़ की सेब आर्थिकी है तथा इसने ग्रामीणों को मालामाल किया है।

गौरतलब है जहां सेब की पहली फसल आई, वहां अंग्रेजों ने सर्वप्रथम चाय के बाग लगाए थे लेकिन भौगोलिक दृष्टि से कोटगढ़ चाय के उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं था। जबकि स्टोक्स की दूरदर्शिता तथा समझ ने इस क्षेत्र में रसीले सेब का उत्पादन कर आर्थिकी में मिठास घोल दी।

दयाल हाउस, संजौली, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 006
मो. 94181 58987

शिमला में हिन्दुस्तानी थिएटर

प्रकृति के सान्निध्य में

आधुनिक रंगमंच का आगाज

● श्रीनिवास जोशी

पहाड़ों में आधुनिक हिन्दुस्तानी थिएटर परम्परा का श्रीगणेश शिमला से सन् 1893 में हुआ था जब सरकारी बाबुओं ने एक संस्था बनाकर इस दिशा में पहल की। चार साल बाद हिन्दुस्तानी और बंगाली समाज बने, जिन्होंने कुशलता से निरन्तर धार्मिक नाटक प्रस्तुत किए। तमिल बाबुओं ने अपनी संस्था 'मद्रास क्लब' सन् 1914 में बनाई और नाभा की कॉलोनी में एक छोटे से हॉल में नाटक करने आरम्भ किए। फागली में रहने वाले दक्षिण भारतीय बाबुओं ने अपना 'दक्ष क्लब' बनाया और वे वहां ही नाटक खेलते थे। इसी प्रकार पंजाबी क्लर्कों ने अलग क्लब की स्थापना की और लालपानी तथा बालूगंज में नाटक खेले जाने लगे। गेयटी थिएटर प्रबन्धन ने सदा से हिन्दुस्तानी नाटकों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। इन संस्थानों में से प्रत्येक को सन् 1897 तक गेयटी में वर्ष में एक बार नाटक करने की इजाजत थी, जिस पर यह आदेश पारित कर उस वर्ष से रोक लगा दी गई कि हिन्दुस्तानी नाटकों की मंच-सज्जा में बहुत अधिक सामान होता है जिससे मंच को हानि पहुंचती है।

यहां के रीगल और रिट्ज़ सिनेमा हॉल तब क्रमशः 'प्रिंस आव वेल्ज़' और 'एलफिन्सटन' हॉल कहलाते थे। इनमें अधिकतर बाहर से आई संस्थाओं के कलाकार पारसी थिएटर के नाटक किया करते थे। गेयटी जब हिन्दुस्तानी थिएटर के लिए बन्द कर दिया गया, तब इन दो हॉलों में हिन्दुस्तानी नाटक भी किए जाने लगे। इन्हीं दिनों यानी सन् 1926 से मूक फिल्मों का युग आरम्भ हुआ और फिर बोलती फिल्में आ गईं। इन हॉल के मालिकों ने इन्हें फिल्म दिखाने वाले हॉल में बदल दिया ताकि अधिक आमदनी हो। अब ये हॉल भी हिन्दुस्तानी नाटकों के लिए नहीं रहे। भारतीय नाटकों को प्रस्तुत करने के लिए भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला में कोई स्थान ही न रह गया था। हालांकि नाटक खेलने के लिए कोई उपयुक्त स्थान संस्थाओं के पास न था, पर 26 अगस्त, 1926 का 'दी ट्रिब्यून' लिखता है, "तीन साल की छोटी-सी अवधि में यहां दस भारतीय एमेच्योर ड्रामाटिक क्लब्ज़ का गठन हो गया है और इसका कारण है कि हर कोई इन क्लब्ज़ के वांछनीय सचिव के पद को हथियाना चाहता है।" भारतीयों की पद-लोलुपता से कौन वाकिफ नहीं है? इतने अधिक क्लब्ज़ बनने का एक लाभ यह हुआ कि सबने मिलकर गेयटी थिएटर प्रबन्धन के भारतीय नाटकों के लिए हॉल न दिए जाने के निर्णय को जाति और रंग-भेद की नीति का मुद्दा बनाकर उछालना आरम्भ कर दिया। एक पार्षद दुर्गादास, जो जाने-माने लेखक भी थे, ने यह बात शिमला नगरपालिका में जोरदार तरीके से उठाई। बाहर और भीतर के हल्ले से क्षुब्ध गेयटी थिएटर प्रबन्धन ने सन् 1928 में एक बार फिर यह थिएटर हिन्दुस्तानी नाटकों के लिए खोल दिया।

इसके बाद यहां चार प्रमुख नाटक संस्थाएं उभरीं जिनके नाम थे- 'इंडियन', 'एडवर्ड', 'प्रीमियर' और 'नेशनल'। उन दिनों धार्मिक नाटक देखने के लिए थिएटर में भीड़ टूट कर पड़ती थी, क्योंकि लोग अपने देवी-देवताओं को मंच पर चलते-बोलते देखना पसन्द करते थे। यही कारण था कि 'इंडियन' के नाटक 'गणेश जनम' ने यहां खूब धूम मचाई। उन दिनों सुयोग्य निर्देशकों का बोलबाला होता था, उनकी बहुत इज्जत की जाती थी। ऐसे निर्देशकों में एडवर्ड के शिवचरणदास उर्फ काका बाबू और प्रीमियर के शहादत खान होते थे। उनके इशारे पर हर कलाकार नाचा करता था। काका बाबू के निर्देशन में सन् 1928 में गेयटी थिएटर में एडवर्ड की ओर से सैयद इम्तियाज अली ताज का नाटक 'अनारकली' खेला गया था जिसमें ज़ेड. ए. बुखारी ने (जो पाकिस्तान रेडियो के महानिदेशक पद से सेवानिवृत्त हुए थे) सलीम का रोल किया था, और अनारकली बने थे आकाशवाणी के प्रोड्यूसर ऐमेरिटस रहे एस.एस.एस. ठाकुर। इन पात्रों ने हीरे और जवाहर की तरह हर दर्शक के दिल में जगह बना ली थी। वे दिन थे जब महिलाएं मंच पर नहीं आती थीं और महिला पात्र का अभिनय पुरुष ही पेटीकोट-साड़ी पहनकर किया करते थे। आग्रा हश्र कश्मीरी के नाटक 'आसीरे हिंस' से एक और कलाकार एडवर्ड ए. डी.सी. ने भारत को दिया था। वह था हिमाचल निवासी पंडित

विजय कुमार, जो मूल फिल्म 'दुख्तरे ज़माना' से नायक के रूप में फिल्म संसार में उभरा। इसके बाद न्यू थिएटर्स, मुंबई की 'संजीव मूर्ति', 'आज़ादी' और 'अभागिन' जैसी बोलती फिल्मों में इन्होंने नायक की भूमिकाएं निभाई थीं। प्रीमियर के ख्यातिप्राप्त नाटक रहे 'अजामिल उद्धार' और 'कृष्ण अवतार'। नेशनल के 'परिवर्तन' और 'भक्त प्रह्लाद' यादगार नाटकों में गिने जा सकते थे। 'परिवर्तन' नाटक से महिला शिक्षा जैसा सामाजिक मुद्दा उठाकर इस संस्था ने धार्मिक नाटक खेले जाने के चलन में बदलाव लाने का सफल प्रयास किया था।

मशहूर सिने अभिनेता और गायक कुन्दनलाल सहगल ने 'नेशनल' की ओर से यहां नाटक खेलते हुए एक हिजड़े की भूमिका निभाई थी, जिसमें उनके गाए गाने 'सैंया मोरे, लाए दे बताशे की जोड़ी' उन दिनों हर युवक शिमला के बाजारों में गुनगुनाता था। इन नाटकों की सरसराहट आस-पास की रियासतों में भी पहुंची। कोटी के टीका साहेब ने क्यार कोटी में नाटक करवाए। राणा साहेब के नाम पर शिमला के भराड़ी, (जो कस्बा उस समय कोटी रियासत में होता था) में भी रघुवीर ए.डी.सी. बनी, जिसने 'कृष्ण-सुदामा', 'बालरत्न भोज' तथा 'भक्त ध्रुव' नाटक किए। बीणा प्रसाद जोशी ने भोज और ध्रुव का रोल कुशलता से निभाया था। इन्हीं नाटकों को धामी में भी खेला गया था। उन दिनों मुख्य नाटक के बीच में एक प्रहसन खेले जाने की प्रथा थी। कंजूस की खोपड़ी एक ऐसा प्रसहन था जो इनमें से एक नाटक में खेला गया था।

आजादी से पहले 1943-44 में यहां एक नई संस्था 'थ्री आर्ट्स क्लब' बनी। इसका कार्यालय तथा रिहर्सल का स्थान एरिन विला, कैथू में था। मुर्तज़ा अली खान काज़मी के निर्देशन में इसने 'राजकुमारी लतिका' और 'औरत' नाम के लोकप्रिय नाटक प्रस्तुत किए। इन नाटकों के माध्यम से शिमला का दर्शक, मखमली खलनायक, जिसे अंग्रेज़ी में सिल्की विलेन कहते हैं, से परिचित हुआ। राजकुमारी लतिका का खलनायक दीवानचन्द, वस्तुतः भीमदत्त जोशी, मालरोड में चलते हर युवक-युवती का पसन्दीदा बन गया था। जब यह संस्था दिल्ली चली गई, तब इसकी देन नाटककार रमेश मेहता रहे। इनके नाटक उस वक्त के रंगमंच के लिए वरदान साबित हुए। ये नाटक खेलने में आसान थे। बहुत साज-सज्जा नहीं मांगते थे और एक कमरे के सेट में खेले जा सकते थे, इनके नाटक शिमला ए.डी.सी. और लिटिल थिएटर ग्रुप ने गेयटी थिएटर में खेला। तभी भारत सरकार के मुद्रणालय के क्लब से चौधरी दीन मोहम्मद का नाम उभरा। उनका नाटक 'चन्द्रगुप्त' था जिसमें उन्होंने चाणक्य का रोल करने के लिए ईद के दिन अपना सिर मुंडा लिया था। कई कट्टरों द्वारा इसका एतराज करने पर दीन मोहम्मद ने कहा था, "नाटक का कोई मज़हब नहीं होता।" चार दिन तक चलने वाले इस नाटक ने जो रात के ढाई बजे तक कालीबाड़ी हॉल में चला था, खूब वाहवाही लूटी थी।

भारत के आज़ाद होने के पश्चात् शिमला के कालीबाड़ी हॉल में इंडियन पीपल्ज़ थिएटर एसोसिएशन (इप्टा) द्वारा एक नाटक 'कुर्सी' खेला गया, जिसका निर्देशन ख्वाज़ा अहमद अब्बास ने किया था और भीष्म साहनी ने इसमें एक पात्र की भूमिका निभाई थी। यह संयोग है कि भीष्म साहनी ने अपना अन्तिम नाटक 'आलमगीर' भी शिमला में सन् 1995-96 में लिखा, जब वह भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान में 'फेलो' थे। वास्तव में वह दारा शिकोह की धर्मनिरपेक्षता से इतने प्रभावित थे कि वह नाटक उस पर लिखना चाहते थे, पर ज्यों-ज्यों वह इस पर अध्ययन करते गए औरंगजेब उनके मन-मस्तिष्क पर इतना दबाव बना चुका था कि उन्होंने औरंगज़ेब पर ही नाटक लिख डाला।

पंजाब के बंटवारे के बाद चंडीगढ़ बनने तक शिमला पंजाब की राजधानी रहा, इसलिए चालीस के दशक के अन्तिम वर्षों और पचास के दशक के अन्त तक पंजाबी थिएटर का यहां खूब बोलबाला रहा। चम्पा मंगतराय ने आई.सी. नन्दा द्वारा लिखित 'लिली दा ब्याह' का निर्देशन किया, जिसमें हरबन्स और आज्ञा गंडोत्रा ने मुख्य भूमिकाएं निभाईं। आज्ञा ने 'दीवा बुझ गया', 'बन्दर दा पंजा' के अतिरिक्त मैथिली शरण गुप्त की 'यशोधरा' में अपने पात्रों के सफल चित्रण से अपनी मंचीय प्रतिभा का उदाहरण दिया। आर.पी. पाल फिल्म संस्थान, पूना से जुड़े थे, उन्होंने 'डॉ. पलटा और परोहन' नामक पंजाबी नाटक से ख्याति बटोरी। 1955-56 में सरदार अमरीक सिंह, जो बाद में पंजाबी विश्वविद्यालय के कुलपति रहे, उन्होंने 'रेत ते पत्थर' नामक नाटक का निर्देशन किया, जिसमें सिने-स्टार प्रेम चोपड़ा ने अभिनय किया था। एक मज़े की बात यह रही कि कम बोलने वाला रोल होने के कारण वह मंच पर ही सो गए थे और साथियों के झकझोरने पर ही जगे। 'लिटिल थिएटर ग्रुप' के नाम से दिल्ली की ख्यातिप्राप्त संस्था के अंकुर भी शिमला में ही फूटे थे। प्रेम लूम्बा नाम के एक वास्तुकार की देखरेख में इस संस्था ने 'क्या करेगा काज़ी' नाटक गेयटी थिएटर में इन्हीं दिनों प्रस्तुत किया था।

कुछ और नाम भी इसी अवधि से जोड़े जा सकते हैं। हिमाचल थिएटर के 'काबुली बाला' रमेश गौड़, जिनके अन्य नाटक 'लहू के दो रंग', 'गौरी और लहू पुकारेगा' थे। इनके चाचा सुदर्शन गौड़, डीन बन्धु-क्लॉडियस और एम्बरोज आदि ने हिन्दुस्तानी नाटकों को शिमला में जीवित रखा। सुदर्शन गौड़ आज तक ऑल इंडिया आर्टिस्ट एसोसिएशन के तत्त्वावधान में हर वर्ष शिमला में मंचीय कला की अखिल भारतीय प्रतियोगिता करवाते हैं। प्रोफेसर जी.आर. सूद ने अंग्रेज़ी नाटकों का अनुवाद कर उन्हें एस.डी. और बी.एम. कॉलेज के छात्रों द्वारा करवाया। राम कुमार वर्मा के नाटकों से प्रभावित उन्होंने 'बीमार का इलाज', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'कौमुदी महोत्सव' नाटकों का निर्देशन करने के अतिरिक्त स्वयं इन नाटकों

में भूमिकाएं भी निभाईं। अपने निर्देशन काल में इन्होंने वीरा सुन्दर सिंह को अभिनय क्षेत्र में ढाला जो बाद में प्रिया राजवंश के नाम से सिने-तारिका बनी और चेतन आनन्द की 'हकीकत' फिल्म में अभिनय किया। इन्हीं दिनों शिमला ए.डी.सी. ने रमेश मेहता द्वारा लिखित 'अंडर सेक्रेटरी' नाटक से हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में कदम रखा। सन् 1952 में पृथ्वीराज अपनी मंचीय तिकड़ी 'पैसा', 'गद्दार' और 'दीवार' लेकर शिमला आए और गेयटी में उनका प्रदर्शन किया। एक विख्यात नाटकार को अपने ही शहर में देखने का अवसर शिमलावासियों को प्राप्त हुआ। पचास के दशक में राज्य का लोक सम्पर्क विभाग भी नाटक किया करता था। इससे नाटकों में 'हिन्दुस्तान हमारा', 'अमानत' और 'पागल' के अतिरिक्त प्रादेशिक लोककथा पर आधारित 'सुन्नी-भुंकु' खेला गया था जिसमें नाट्य विद्यालय में जाने से पूर्व मनोहर सिंह ने प्रमुख भूमिका बखूबी निभाई थी।

साठ के दशक में 'दी एमेच्योर्स इवनिंग' ने प्रमुखता से हिन्दी और अंग्रेजी एकांकी नाटकों का मंचन किया। इस संस्था से गढ़ोक, जसवाल और अडवानी बहनें, जोशी बंधु, राजा टिक्कू, रमेश सबरवाल, आनन्द प्रकाश जुड़े रहे। टैगोर के सफल प्रस्तुतीकरण के लिए इस संस्था को अभी तक याद किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस संस्था ने श्रीनिवास जोशी द्वारा लिखी अनेक एकांकियों का प्रदर्शन भी किया। ललित सहगल का 'हत्या एक आकार की' में मनोहर सिंह ने प्रमुख भूमिका निभाने के साथ इसका निर्देशन भी किया था। डॉ. परमार ने इस नाटक का मुख्य अतिथि बनना इस शर्त पर स्वीकार किया था कि वह केवल दस मिनट ही बैठेंगे। लेकिन उन्होंने डेढ़ घंटे का पूरा नाटक देखा और नाटक के अन्त में देर तक ताली बजाते रहे थे। ऐसा था जादू मनोहर सिंह का। इतने महान कलाकार को हमारा प्रदेश शायद पूरा सम्मान नहीं दे पा रहा है। 'मनोहर सिंह नाटक समारोह' करवाने की घोषणाओं के बावजूद यह घोषणा कागज़ों में अधिक और मंच में कम दिखाई देती है। इन्हीं दिनों राज्य की कला, संस्कृति और भाषा अकादमी ने श्रीनिवास श्रीकान्त द्वारा लिखित किन्नौरी लोक कथा पर आधारित नाटक 'लाटी शरजंग हिना डंडुव' योगेश गंभीर के निर्देशन में प्रस्तुत किया जो अकादमी का सफल नाटक कहा जा सकता है।

आकाशवाणी शिमला भी के.के. नय्यर के निर्देशन में विजय सरस्वती और मालती माथुर के साथ मंचीय नाटक के क्षेत्र में अपना मुकाम बना गई। आकाशवाणी के ही अमरनाथ और अमर सिंह की जोड़ी मंचीय 'करयाला' प्रस्तुत करने में सफल रही थी। साठ का दशक वैसे भी हिन्दुस्तानी नाटक को एक नया मोड़ दे गया था। मात्र मनोरंजन से हटकर ऐसे नाटक खेले जाने लगे जिन्होंने दर्शकों को सामाजिक समस्याओं पर सोचने के लिए भी मजबूर किया। यह दिल्ली में स्थित नाटकों के राष्ट्रीय स्कूल की देन थी। शिमला में अल्काज़ी के निर्देशन में तैयार किए गए दो नाटक 'पांचवां सवार' और 'भूखे नाविक' गेयटी में प्रदर्शित किए गए। तब नसीरूद्दीन शाह और ओम पुरी की मंचीय दक्षता देखने का अवसर शिमलावासियों को प्राप्त हुआ।

सत्तर के दशक के उत्तरार्ध और अस्सी के आरम्भ में देवेन जोशी तथा उनके साथियों की 'परिधि' ने मोहन राकेश द्वारा लिखित तथा अन्य आधुनिक नाटकों का मंचन कर शिमला में खेले जाने वाले नाटकों में दिल्ली के राष्ट्रीय स्कूल के नाटकों की छाप छोड़ी। यह एक नया आयाम था। 'आधे-अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन', 'किसी एक फूल का नाम लो', 'खामोश अदालत जारी है', 'थैंक यू', 'मिस्टर ग्लैड' एवं 'इन्द्रजीत', 'सन्ध्या छाया' जैसे नाटक इस संस्था के माध्यम से शिमलावासियों को देखने को मिले। इसी दौरान भाषा और संस्कृति विभाग द्वारा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के साथ मिलकर लगाई गई कार्यशाला से निकले रोहिताश्व गौड़, विजय शर्मा, मोहित चौहान, रवि कौशल, पवन शर्मा और भूपेन्द्र शर्मा ने टीवी और सिनेमा में दस्तक दी तथा अपनी पहचान बनाई। इस कार्यशाला के प्रशिक्षणार्थियों द्वारा देवेन्द्र राज अंकुर, जो आजकल राष्ट्रीय रेपरटरी के निदेशक हैं, उनके निर्देशन में प्रस्तुत नाटक 'आगरा बाज़ार' यहां के नाटक इतिहास में एक अमिट छाप छोड़ गया है।

एक कर्मठ रंगकर्मी नरेन्द्र चौहान, जिसने 'मैं से मैं तक' तथा

'और दौड़ो जिजीविषा' जैसे अद्भुत नाटक लिखे अभिनीत और निर्देशित किए। वह कलाकार जाने क्यों सबकुछ छोड़-छाड़कर अपने गांव में जा बसा।

अस्सी के दशक में ही भाषा और संस्कृति विभाग द्वारा एक-एक सप्ताह के नाट्य समारोह भी किए गए जिनमें हिमाचल की संस्थाओं को प्रदेश के बाहर के दलों के साथ नाटक करना होता था, ताकि उन्हें यह पता चल सके कि मुख्यधारा से वे कितने आगे या पीछे हैं। रोचकता इसमें तब आती थी जब पहली शाम नाटक प्रस्तुत करने वाला दल अपने प्रदर्शन पर नाट्य विशेषज्ञों के साथ दूसरी सुबह परिचर्चा के लिए बैठता और अपनी कमियों को जानता था। इन्हीं दिनों नादिरा ज़हीर बब्बर अपने एक नाटक 'जसमा ओढन' के साथ शिमला आई। जसमा धरती पर कपालकुण्डला अप्सरा का सौन्दर्य और रूप लेकर गुजरात की ओढ़ जाति में जन्मी थीं। नाटक हास्य और वाग्विदग्धता लिए आकर्षित करता है। नादिरा 21वीं सदी के पहले दशक में एक बार फिर शिमला आईं। इस बार वह 'जसमा ओढन' के अतिरिक्त 'दयाशंकर की डायरी' नाटक लाई जो छोटे शहर से मैट्रो पहुंचने वाले एक असफल व्यक्ति की कहानी है। आशीष विद्यार्थी ने यह भूमिका बड़ी शिद्दत से निभाई है।



नब्बे के दशक में अमला राय ने 'अभिव्यक्ति' के माध्यम से स्वदेश दीपक के 'कोर्ट मार्शल', 'काल कोठरी' और भीष्म साहनी के 'कबीरा खड़ा बाजार में' जैसे लोकप्रिय नाटकों के अतिरिक्त 'खूब मिलाई जोड़ी', 'मिले सुर मेरा तुम्हारा', 'अलाव', 'एक दुर्घटना' तथा 'भगवद्ज्जुकम्' जैसे नाटक प्रस्तुत किए। एक और संस्था जो लगातार नाटक किए जा रही है, वह 'समन्वय' है। भूपेन्द्र शर्मा नाटकों को करयाला शैली में प्रस्तुत कर यहां के लोक नाट्य पक्ष को जीवित रखने का प्रयास करते आ रहे हैं। इसी प्रयास में उनके द्वारा प्रस्तुत दो नाटक हिमेश का 'ठुनियानामा' तथा मुद्राराक्षस का 'आला अफ़सर' अनायास ही याद आते हैं। समन्वय के नाटकों की सूची में इन दो नाटकों के अतिरिक्त अधूरी मूर्ति, पोस्टर, सैंया भये कोतवाल, हरी घास पर घण्टे भर, बामुलाहज़ा होशियार, किसी एक फूल का नाम लो, खड़िया का घेरा और पेपरवेट हैं। श्रीनिवास जोशी की लिखी कहानी 'छठा मेज़' का नाट्य रूपान्तरण कर इस संस्था ने इसे भारत के विभिन्न शहरों में लगभग 36 बार प्रदर्शित किया है। समन्वय के साथ-साथ 'अभिलाषा' नाम की संस्था, जिसके कर्ता-धर्ता नीरज पराशर और दयाल रहे हैं, नाटकों के क्षेत्र में सक्रिय रही है। इनके नाटक हैं- स्वर्ग का पासपोर्ट, रौला नी पाणा, गोर्की का तलघर, थ्री पैनी ओपेरा, द डीयर डिपार्टिड, परसाई के 'हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं' और 'एक हसीना पांच दीवाने', 'रिफन्ड', 'भगवद्ज्जुकम्', 'बड़े साहेब', 'टोबा टेक सिंह', 'एक पप्पी लवली-सी'। इन्होंने 'तलघर' जो गोर्की के 'द लोअर डेप्थस' आधारित है, अक्तूबर 2003 में खेला था जो गेयटी के जीर्णोद्धार के लिए बन्द किए जाने के पूर्व अन्तिम नाटक था। प्रवीण चांदला की संस्था है 'ध्रुव शिखर'। इसने 'गोदान', 'होली', 'आरक्त क्षण', 'अंडे के छिलके', 'कॉमेडी ऑव एरर्ज़', 'सच की गोली' नाटक शिमला में खेले। अशोक हंस की 'नाट्यकार' ने हिमेश द्वारा लिखित 'अफसरू', 'लोक लोक की एही कथा', 'मस्तराम बकता क्यों है' तथा 'साम चाचा' के अतिरिक्त चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी का नाट्य रूप 'बुद्धू का कांटा' तथा 'एंटीगनी', 'आधा-शाधा राक्षस' और 'मत्तविलास' जैसे नाटक भी प्रस्तुत किए। अशोक हंस के निर्देशन में अकादमी की ओर से 'सूही माता चंबयाली रानी', 'अंधा युग', 'बाकी इतिहास' तथा 'द टाइपिस्ट' का मंचन भी हुआ। संजय सूद अपनी 'नाट्यानुकृति' के साथ प्रेमचन्द की कहानी पर आधारित नाटक 'बड़े भाई साहेब', 'सैंया भए कोतवाल', 'पागलघर', 'सड़क', 'निराश पीढ़ी', 'एक था गधा', और 'दलदल' प्रस्तुत कर चुके हैं। 'मुनीर कल्चरल फोरम' का 'मिर्ज़ा ग़ालिब' जो गुलज़ार के सीरियल से प्रभावित है, एक शानदार प्रस्तुति रही। प्रवेश जस्सल की बदौलत चल रहा यह फोरम शिमला के बाशिन्दों को 'कंजक्टिवाइटस', 'फैसला कल होगा', 'होली', 'लाडो' और 'मुआवज़ा' जैसे नाटक दिखा चुका है। विजय शर्मा के 'नाट्यानुभव' की प्रस्तुत रही है- 'अजातघर', 'रजनीगन्धा' और 'मरणोपरान्त'। राजकुमार राही की 'हिमांजलि' की देन 'लाडो' और 'मुआवज़ा' रही हैं। इसी दशक में सरोज वशिष्ठ ने अमला राय और शेखर

भट्टाचार्य के साथ कैथू जेल के कैदियों को प्रशिक्षित कर उनके साथ वहीं नाटक करवाए। इस प्रकार इन्होंने शिमला नाटक को एक नई दिशा दी। इस दिशा को आगे बढ़ाते हुए रंगकर्मी केदार ठाकुर ने सन् 2001 में आदर्श केन्द्रीय कारागार, कण्डा के 20 कैदियों को छह माह का प्रशिक्षण नाट्य परियोजना के अन्तर्गत दिया। राजेन्द्र शर्मा को हैपी के नाम से जाना जाता है। इनके रंगमंच के प्रति प्रेम के कारण 'एक्टिंग स्पेस' नामक संस्था बनी। इस संस्था ने शिमला के रंग प्रेमियों को 'होली', 'गुरुदक्षिणा', 'दुलारीबाई', 'मुहब्बत का इम्पोर्टिड नुस्खा' तथा 'एक था गधा उर्फ अलादाद खां' जैसे नाटक दिए। सुरेन्द्र गिल की 'प्रेरणा' ने 'डेथ वॉच', 'ययाति-एक प्रश्नचिह्न', 'शनिवार दोपहर दो बजे', 'अक्सपहेली', 'एक ईमानदार कोशिश', 'बकरी' और 'पैसा-पैसा-पैसा' नामक नाटक प्रस्तुत किए। आकाशवाणी के बी.आर. मेहता और कवि अरविंद रंचन ने शिमला में क्रमशः 'किराए की बीवी', 'सिंहासन खाली है' और 'सोया हुआ जल' नाटक करवाए। मोहन जोशी ने अपनी संस्था 'नटराज' के माध्यम से 'कोर्ट मार्शल' तथा 'आला अफसर' प्रस्तुत किए। 1992 में बनी 'संकल्प' ने तूल पकड़ा जब रंगमंच कला के स्नातक केदार ठाकुर ने 1998 से इस संस्था को अपना योगदान देना आरम्भ किया। 'प्रश्नचिह्न', 'लाईन, लाईन और लाईन', 'द ट्रुथ अमंग ब्लैक एंड व्हाईट', विजय तेंदुलकर का 'गिद्ध', 'द रोबो एंड द मौथ' और 'मरीचिका' जैसे सराहनीय नाटक किए।

अनुपम खेर अपना नाटक 'अनुपम खेर के साथ कुछ भी हो सकता है' सन् 2005 में शिमला आए और इसे विश्वविद्यालय के हॉल में खेला। इसमें उनकी अकेले पात्र की भूमिका है। संगीत नाटक अकादमी की कार्यशाला यहां सन् 2001 में लगी जिसमें हिमाचल प्रदेश के छह प्रशिक्षणार्थी थे। इन्होंने अपनी संस्था 'अभिनय दर्पण' बनाई। इसने 'दो ज़ाविए', 'आज इतवार है', 'कफ़न ' और 2006 में 'इडीपस' किया। केदार ठाकुर की एक और उपलब्धि यह रही कि उन्होंने प्रदेश विश्वविद्यालय के विधि विभाग के 20 विद्यार्थियों को सन् 2007 में नाट्य कार्यशाला लगाकर प्रशिक्षण दिया।

सन् 2007 में शिमला की 18 नाट्य संस्थाओं ने निर्णय लिया कि अलग अलग राह टोहने से बेहतर होगा कि संघीय ढांचे को अपना कर सब संस्थाएं एकजुट हो जावें। इस संघ ने वर्ष 2007 के ग्रीष्मोत्सव में कालीबाड़ी हॉल में कुल में से 15 संस्थाओं ने 15 नाटक किए जिसे एक सफल प्रयास कहा जा सकता है। यह संघ शीघ्र ही छिन्न भिन्न हो गया क्योंकि हर नाट्य संस्था अपनी डफली पर अपना राग छेड़ना चाहती थी। इसी वर्ष ग्रीष्मोत्सव में दूरदर्शन की ओर से श्रीनिवास श्रीकान्त का लिखा नाटक 'महासमर की गौरव गाथा' रिज में बनाए विशाल मंच पर खेला गया। यह नाटक 1857 के भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध के संदर्भ में लिखा गया है।

सन् 2003 में 'तलघर' नाटक के बाद जीर्णोद्धार के लिए बन्द किया गया गेयटी थिएटर जून 2009 में फिर से खोला गया। उसके बाद यहां खेले जाने वाले नाटकों की बाढ़ सी लग गई है। रंग प्रतिभा एक महत्त्वपूर्ण पग शिमला में नाट्य यात्रा का रहा है। यह सन् 2010 में सम्पन्न हुआ दिल्ली स्थित संगीत नाटक अकादमी का प्रोजेक्ट था। इसके अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश के छः प्रतिभाशाली युवा निर्देशकों की तलाश की गई और उन द्वारा निर्देशित नाटकों को प्रदर्शित किया गया। हिमाचल प्रदेश के इन नाटकों का स्तर जांचने के लिए तीन विशेषज्ञ भी आए। जम्मू से शारीरिक थिएटर विधा में दक्ष बलवन्त ठाकुर, लखनऊ से संस्कृत थिएटर के ज्ञाता सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ और गुवाहाटी से आधुनिक तथा लोक थिएटर के जानकार बहरुल इस्लाम यहां आए और उन्होंने सभी नाटक देखे। हर सुबह यह पिछली शाम खेले गए नाटक की चर्चा उस नाटक के निर्देशक और पात्रों से करते थे। उनकी कमियां और खूबियां उन्हें बताते थे। एक बहुत अच्छा और अर्थपूर्ण संवाद इस तरह से स्थापित होता था। मण्डी से मनजीत मन्ना के निर्देशन में 'हरारत' कुल्लू से केहर सिंह ठाकुर के निर्देशन में 'भगवान का पूत', केदार ठाकुर द्वारा निर्देशित मार्लो का डा. फॉस्टस शिमला से था और इसी शहर से सार्त्र का 'मेन विदाउट शैडोज' था जिसे रुपेश नन्दन ने निर्देशित किया था। सोलन से दुर्गेश पण्डित और नाहन से जोहेब युसुफजई अपनी अपनी कृति लाए थे। हिमाचल के निर्देशकों की कृतियां देखने के उपरान्त बलवन्त ठाकुर का कहना था कि वह इस बात से प्रसन्न है कि हिमाचल की महिलाएं मंच पर बेझिझक बोल्ड रोल करने लगीं हैं जो इस बात का द्योतक है कि पारम्परिक बन्धन से अब यहां की नारी मुक्त है। कुलश्रेष्ठ का मानना था कि हिमाचल का थिएटर मुख्य धारा के थिएटर से टक्कर ले सकता है, उसे केवल 'एक्सपोजर' की आवश्यकता है।

शिमला के अजय शर्मा की 'दी प्लेटफार्म' संस्था ने चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' सन् 2014 में खेला जिसे देवेन जोशी ने निर्देशित किया था। नाटक कुछ भागों में अच्छा था पर समग्र प्रभाव में ढीला रहा। इस संस्था ने शिमला में अनेक नाटक खेले हैं जिनके नाम गिनवाना चाह रहा हूं : रुल्ला दी कूल और टोबा टेक सिंह सन् 2005 में मरणोपरान्त 2007 में, जब शहर हमारा सोता है 2008 में, निर्वासन 2009 में, गुजजार की खराशें 2010 में और इसी वर्ष एक और नाटक वैक्सीनेटर संस्था द्वारा खेला गया। इसके संस्थापक अजय शर्मा केवल मंचीय कार्यक्रमों में ही रुचि रखते हों, ऐसा नहीं है वरन वह ललित कला तथा बौद्धिक कार्यक्रमों में भी बराबर का हिस्सा लेते रहे हैं।

भाषा और संस्कृति विभाग के सौजन्य से अब हर वर्ष एक थिएटर समारोह करवाया जाता है जिसमें 2012 में 26, 2013 में

14 और 2014 में 6 नाट्य प्रदर्शित हुए। पहले दो वर्षों के इन प्रदर्शनों में हिमाचल प्रदेश तथा अन्य राज्यों की टीमों ने भाग लिया था। 2014 के 'हिमरंग' में केवल प्रदेश की ही सृजन-कृतियां शामिल की गईं थीं जिनमें नाट्यानुकृति शिमला का 'फिर याद आए पापा', प्रणव थिएटर सोलन का 'सुभद्रा', अब थिएटर शिमला का 'आह मैं वाह मैं' और संकल्प संस्था का केदार ठाकुर द्वारा निर्देशित 'दी टाईपिस्ट', मोनाल कल्चरल एसोसिएशन,कुल्लू के केहरसिंह द्वारा निर्देशित 'चिड़िया के बहाने' और हिमाचल सांस्कृतिक शोध संस्थान, मण्डी की सीमा शर्मा का 'जंगलतन्त्रम' शामिल किया गया था। इसी वर्ष मनोहर सिंह स्मृति नाट्य उत्सव बड़ी धूमधाम से गेयटी के ऊपर वाले हॉल में मनाया गया।

इस उत्सव का समापन रतन थियम के 'मैकबेथ' से हुआ जिसे मणिपुरी में खेला गया था। नाटक के हर विद्यार्थी तथा शोध ार्थी के लिए यह नाटक ऐसे अंश दे गया कि यदि वह इन्हें अपना ले तो अपने सृजन संसार को परिष्कृत कर सकता है। एक बेहतरीन नाटक शिमला की जनता को देखने को मिला। 'खालिद की खाला' जो ब्रेन्डन थॉमस के 'चार्लीज आण्ट' पर आधारित है, उससे नाट्य उत्सव आरम्भ हुआ था। नसीरुद्दीन शाह, रत्ना पाठक शाह और सीमा पहवा ने इस्मत चुगतई की तीन कहानियों -दो हाथ, मुगल बच्चा और घरवाली का मंचन किया। विजयदान देथा का 'आदमजाद' और फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'पंचलाईट' का मंचन लोगों को हंसाने में सफल रहा। वामन केन्द्र ने मध्यम व्यायोग पर आधारित मोहे पिया का मंचन किया जिसमें संस्कृत नाटक के पुट देखने को मिले। नीलम मानसिंह ने दो नाटक प्रस्तुत किए -मन्टो का लाईसेन्स तथा ब्रेख्त का 'दी जॉब'। इस प्रकार देश के ख्यातिप्राप्त निर्देशकों के नाटकों को प्रदर्शित कर इस वर्ष का मनोहर सिंह स्मृति नाट्य उत्सव वास्तव में मनोहर सिंह को सच्ची श्रद्धाजंलि दे गया।

नसीरुद्दीन शाह, रत्ना पाठक शाह और सीमा पहवा ने इस्मत चुगतई की तीन कहानियों -दो हाथ, मुगल बच्चा और घरवाली का मंचन किया। विजयदान देथा का 'आदमजाद' और फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'पंचलाईट' का मंचन लोगों को हंसाने में सफल रहा। वामन केन्द्र ने मध्यम व्यायोग पर आधारित मोहे पिया का मंचन किया जिसमें संस्कृत नाटक के पुट देखने को मिले।

सन् 2014 में ही भाषा-संस्कृति विभाग ने एक चार दिवसीय नाट्य समारोह करवाया जिसमें सभी नाटक हिमाचल से बाहर के दलों ने प्रस्तुत किए। विनोद रस्तोगी द्वारा लिखित दो नाटक 'बंटवारे की आग' और 'प्रमोशन' खेले गए। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' और हरिशंकर परसाई का 'दस दिन का अनशन' अन्य दो नाटक रहे। सभी नाटक दर्शकों को अपनी ओर खेंचने में असफल रहे।

एक नाटक 2014 के अक्तूबर मास में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान की ओर से करवाया गया था जिसने शिमला के नाट्य फलक में कुछ नया कर दिखाया। इसमें साईक्लोरामा का प्रयोग किया गया था और प्रस्तुति भी कुछ हट कर थी । 'आवुडै' नामक इस नाटक को कंचन नटराजन ने लिखा था और इसे अभिलाषा पिल्लई ने निर्देशित किया था। तीन कलाकार दिलीप शंकर, सीमा अग्रवाल और जीजो के. मैथ्यू ने दर्शकों को बांधे रखा। आवुडै अक्का 18वीं शताब्दी की एक विलक्षण अद्वैतवादी महिला साध्वी थी, जो शेनकोट्टई से थी। यह एक ब्राह्मण बाल विधवा थी जिसने उस काल के कठोर शास्त्रसम्मत, परम्परागत सामाजिक-धार्मिक व्यवहार की प्रभावशाली आलोचना की थी। इससे तथा आवुडै के अन्य व्यवहार से ब्राह्मण समाज कुपित हुआ था। नाटक में प्रकाश, साईक्लोरामा तथा नाद ध्वनि द्वारा ब्रह्माण्ड के सर्वव्यापी आकाश और चाण्डाल की जीवन-शैली को प्रदर्शित किया जिसने नाटक को जमीनी सतह से ऊपर उठाया। थीम समझने में कठिन थी पर नई प्रकार की प्रस्तुति ने दर्शकों को बांधे रखा।

एक बात स्पष्ट तौर पर कहना चाहूंगा कि हिमाचल में बने दलों की प्रस्तुतियां बाहर के दलों की प्रस्तुतियों को बराबर की टक्कर दे रही हैं। इसलिए आयोजकों को अपने प्रदेश के दलों को प्रस्तुति के अधिक अवसर देने चाहिएं और बाहर से केवल ख्यातिप्राप्त दलों को ही बुलाना चाहिए ताकि हमारे निर्देशक जान सकें कि मुख्यधारा में किस प्रकार के नाटक खेले जा रहे हैं। जीर्णोद्धार के पश्चात गेयटी थिएटर के खुल जाने पर खूब नाटक खेले जाने लगे हैं और शिमला फिर से नाटकों का मक्का बनता दिख रहा है। रंगमंच से जुड़े सभी रंगप्रेमी साधुवाद के पात्र हैं। बहुत परिश्रम से वे नाटक लोगों के मनोरंजन के लिए प्रस्तुत करते हैं। जाने कितनी कठिनाइयों का सामना करते होंगे पर नाटक लोगों तक पहुंचाते हैं।

एक बात का अफसोस रहेगा कि शिमला में अंग्रेजों के जमाने में नाटक देखने के लिए टिकट होता था, दर्शक पैसा देकर गेयटी में दाखिल होता था। अब नाटक निःशुल्क हो गया है, हर कोई अन्दर जाता है, कुछ स्वाद चखता है और बाहर निकल जाता है। इससे मंच का कलाकार हतोत्साहित होता है, इसकी उस भगौड़े दर्शक को कोई परवाह नहीं होती। दिल्ली में श्रीराम थिएटर में टिकट द्वारा दाखिला रखा गया था।

पहले पहल दीर्घा में तीन चार ही दर्शक होते थे जिनके लिए नाटक खेला जाता था। अब दिल्ली को गर्व है कि उसने पैसे देकर नाटक देखने वालों का एक समाज तैयार कर लिया है। शिमला में भी ऐसा ही करने की आवश्यकता है।

इंग्लिश थिएटर

शिमला में खेले जाने वाले अंग्रेजी नाटकों का इतना जबरदस्त प्रभाव दुनिया में पड़ा था कि इस शहर को 'थिएटर का मक्का' कहा जाने लगा था। यहां के अंग्रेजी थिएटर के बारे में भारत के वाइसराय लॉर्ड ऑकलैंड की बहिन एमिली एडन की डायरी का एक पन्ना, 1 जून 1838 का लिखा मिलता है। वह लिखती हैं, ''हम बीती रात एक नाटक देखने गए। यहां एक छोटा-सा थिएटर है -छोटा है, गरम है और गन्दा भी है। पर काम चल जाता है।'' यह थिएटर रॉयल होटल परिसर में होता था जहां आज रानी झांसी पार्क है। 1838 में ही आगरा में जब अकाल पड़ा था तब शिमला एडीसी ने नाटक कर आगरा-निवासियों के लिए कुछ धन जुटाने की सोची थी। तब एक कलाकार ने शराब पी ली, दूसरे ने, जिसे महिला का रोल करना था, अपनी मूंछें कटवाने से इनकार कर दिया और तीसरा भालू के शिकार के लिए बर्फीले स्थान को चला गया। एमिली लिखती हैं कि तब हमने कार्यालय के क्लर्कों का सहारा लिया और उन्होंने सराहनीय कार्य किया, विशेषकर, एक आयरलैंड के निवासी ने बहुत अच्छा रोल किया था।

इसके बाद अंग्रेजों ने सब्जी मण्डी में एक चतुर्भुजीय भवन बनाया जिसे शिमलावासियों के असैम्बली रूम्ज के लिए प्रयोग में लाया जाता था। आजकल यहां पुरानी सब्जी मण्डी है। इसी के एक भाग में थिएटर था। सन् 1852 में इसकी छत गिर गई और वाद्य यन्त्र बजाने वाले इसलिए बच गए थे कि वे चाय पीने के लिए कहीं चले गए थे। थिएटर की गतिविधियां अब समीप ही एक फ्रांसीसी व्यक्ति द्वारा बनाए 'एबविल्ले' भवन में चली गईं। अंग्रेजों के मन की चाहत मालरोड पर एक सुविधासम्पन्न थिएटर हो, 30 मई, 1887 को पूरी हुई, जब गेयटी थिएटर में पहला नाटक 'टाईम विल टैल' खेला गया। तब से, विश्व युद्ध की अवधियों को छोड़कर, भारत को आजादी मिलने तक, यहां नाटक खेले जाते रहे। इन नाटकों में जाने-माने लेखक रुडयार्ड किपलिंग और स्काउट संस्था के जन्मदाता सर बेडन पावल ने भी भाग लिया था।

सन् 1922 में अमृता शेरगिल ने, जब वह नौ वर्ष की थी, एक मूकाभिनय 'पैन एंड दी लिटिल गर्ल' में मुख्य भूमिका निभाई थी। तब किसे मालूम था यह चुलबुली लड़की एक दिन भारतीय आधुनिक चित्रकला की प्रख्यात कलाकार होगी। हर वर्ष औसतन छः नाटक गेयटी थिएटर में खेले जाते थे और सन् 1896 में सबसे अधिक 21 नाटक प्रदर्शित हुए थे।

सर जॉन लॉरेंस, वायसरॉय नाटकों के अधिक शौकीन नहीं थे पर उनके कहने पर उनके घर 'पीटरहॉफ' में 1865 में दो नाटकों 'तालिस्मान' और 'आइवनहो' के दृश्य खेले गए थे। इन दोनों नाटकों के दिग्दर्शक थे श्री विलियम टेलर और इन नाटकों के सफल आयोजन के लिए सर लॉरेंस और उनकी पत्नी ने बहुत योगदान दिया। नाटकों के बाद उन्होंने स्वीकारा कि उन्हें सामाजिक सन्तुष्टि प्राप्त हुई थी। जब लॉर्ड लिटन वायसरॉय बन कर आए और शिमला के पीटरहॉफ में 1876 से 1880 तक ठहरे, तब शिमला नाटक को उनका वरद-हस्त मिल गया। 1878 में उन्होंने एक नाटक 'वालपोल' पद्य में लिखा जिसे याद करने में कलाकारों को काफी दिक्कत आई पर लेखक और सारे नाटक में निगरानी वायसरॉय की स्वयं थी। अतः हर कलाकार इस कष्ट को जुबान पर नहीं लाया और परिश्रम कर अपना रोल याद करने में लगा रहा। रिहर्सल के दौरान मंच के सामने एक चमकदार सोफा रखा जाता था जिस पर पीली साटन की गद्दियां होतीं थीं जिस पर लॉर्ड लिटन विराजमान रहते थे।

सन् 1888 में वायसरीगल लॉज बन गया था जिसमें आजकल भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान है। 1887 में गेयटी थिएटर भी खुल गया था। लॉर्ड लैन्सडॉन जो 1888 से 1894 तक वाइसरॉय रहे, उन्होंने 1889 में वाइसरीगल लॉज में एक मंच का निर्माण करवाया जहां नाटक ''ए शीप इन वुल्फ्ज क्लोदिंग' खेला गया। इसके बाद के सभी वाइसरॉय- एल्गिन, कर्जन, रीडिंग- ने वाइसरीगल लॉज में नाटक किए जाने की अनुमति दी थी। लेडी रीडिंग ने तो नाटक 'क्वीनीज' निर्देशित भी किया जिसे खूब सराहा गया था। सन् 1925 में वाइसराय की पत्नी लेडी हरमीओन बलवर लिटन ने दो छोटे छोटे नाटकों - 'एलेग्जेन्डर हॉर्स' और 'मेकर ऑव ड्रीम्ज' में रोल किया था। लिटन के जमाने को स्टेज से जुड़े लोग 'रिडल और लिडल' के समय से भी जानते हैं। यह दो सरकारी अधिकारी थिएटर के प्रति अगाढ़ स्नेह रखते थे और थिएटर के उत्थान के लिए भरपूर सहयोग देते थे।

सन् 1885 के आसपास स्नोडन, जहां आजकल इन्दिरा गांधी मेडिकल कॉलेज है, में कमान्डर-इन-चीफ रहने लगे थे। मई 1885 से अप्रैल 1893 तक यहां जनरल सर फ्रेड स्ले रॉबर्ट्स रहे जिन्हें नाटकों का बेहद शौक था। उन्होंने 1887 में इस भवन के नए बॉलरूम में एक मंच तक तैयार करवा दिया। उन दिनों के एक जाने माने रंगप्रेमी दम्पति होते थे कर्नल और श्रीमती डीन। उन्होंने इस मंच पर 'डेलिकेट ग्रांउंड' नामक नाटक खेला। कर्नल चौम्बरलिन ने यहीं पर एक प्रहसन 'लुसिया दी लैमरमूर' प्रस्तुत किया जिसका प्राक्कथन रुडयार्ड किपलिंग ने लिखा था और इसे

उनकी पुत्री ने पढ़ा था। महारनी विक्टोरिया की जुबली वर्ष मनाए जाने के अवसर से पूर्व गेयटी थिएटर सन् 1887 में खोल दिया गया था पर नियमित थिएटर यहां 1888 से आरम्भ हुआ। उस साल जून से सितम्बर तक यहां सात नाटक खेले गए। उस वर्ष का पहला नाटक 'बेट्सी' था और अन्तिम 'दी पिकपॉकेट' था। उसी साल के जुलाई माह में यह निर्णय लिया गया कि मिट्टी के तेल की रोशनी में नाटक न खेल कर अब बिजली की रोशनी में नाटक होंगे। 1896 में एक प्रहसन के बाद जैसे ही पर्दा गिरा तेल के लैम्पों की कतार स्टेज में गिर गई और नाटक के लिए बनाई गई सीनरी को भी नुक्सान हुआ। विंग्स में रखी रेत से आग पर काबू पाया जा सका। गेयटी थिएटर को महारानी की जुबली की खातिर जल्दी में तैयार किया गया था अतः 1902 में ही इसमें कुछ दरारें नजर आने लगीं थीं जो 1911 तक काफी चौड़ी हो गईं थीं। सन् 1912 में विशेषज्ञों की एक कमेटी ने 1912 में निर्णय लिया कि इसकी ऊपर की मंजिल गिरा दी जाए। उसके बाद आपने और हमने जिस गेयटी थिएटर को जाना वह वही था जो 2009 तक रहा जब इसका जीर्णोद्धार पूरा हुआ। रुडयार्ड किपलिंग ने 'प्लॉट एण्ड पेंशन' में रोल किया था पर उन्हें अच्छा एक्टर नहीं माना गया था, उनके विपरीत सर बेडन पावल एक अच्छे अभिनेता साबित हुए। 1897 में खेले गए नाटक 'सनसेट' तथा 'गीशा' में उनकी भूमिकाओं को बेहद सराहा गया। सन् 1910 में एक नाटक खेला गया था जिसका नाम था 'दी स्कारलेट पिम्परनल' उसमें एक रोल किन्हीं मिस डब्ल्यू ने किया था। उन्होंने नाटक के लिए जो परिधान बनवाया था, उसे वह गेयटी थिएटर को बेचना चाह रहीं थीं। गेयटी की कमेटी ने निर्णय लिया था कि परिधानों को खरीदा नहीं जाएगा। मिस डब्ल्यू इस पर बहुत नाराज हुईं और परिधान गेयटी में ही छोड़कर घर आ गईं। एक अदभुत घटना हुई कि ब्लैक हार्ट्स बॉल के लिए वही परिधान किन्हीं मिस एच ने पहन लिया था। फिर क्या था? मिस डब्ल्यू ने तो हंगामा खड़ा कर दिया। मिस डब्ल्यू को गेयटी को परिधान का मूल्य चुकाना पड़ा।

एक मिस्टर ब्राउन होते थे जो 1932 में 85 वर्ष की उम्र में स्वर्गवास होने से पूर्व 43 साल तक गेयटी थिएटर के व्यावसायिक प्रबन्धक, मार्गदर्शक, दार्शनिक तथा निर्देशकों और अभिनेताओं के मित्र रहे। वह आर्मी हेडक्वार्टरस में क्लर्क थे और उन्हें लॉर्ड रॉबर्टस ने क्लब में सहायक सचिव लगा दिया था। उन्हें 'सड़क का आदमी' कहा जाता था क्योंकि वह गेयटी थिएटर के बाहर सदा खड़े मिलते थे। उनके बारे में कहा जाता था कि वह क्लब के बारे में जो आज सोचते थे ड्रामा-कमेटी उसी को कल सोचती थी। उन्हें क्लब के हर भोज पर बुलाया जाता था और वह एक भाषण जरूर देते थे। हर कलाकार समझता था कि जब तक मिस्टर ब्राउन आकर उससे हाथ मिला कर 'बेस्ट ऑव लक' नहीं कहेंगे तब तक उसका अभिनय ठीक नहीं होगा। उन्हें नाटक से पहले आकर 'आज की रात, सब ठीक-ठाक' कहना होता था, तभी नाटक सफल होता था।

सन् 1934 में एक सफल नाटक खेला गया-'इन्टरफियरेंस'। इस नाटक की नायिका थीं श्रीमती एलविन। एक शाम दूसरे दृश्य के बाद वह जैसे ही विंग्स में आईं बेहोश होकर गिर पड़ीं। उस वक्त निर्देशक सदैव एक स्थानापन्न अभिनेता या अभिनेत्री तैयार रखते थे। श्रीमती किंग एलविन के लिए स्थानापन्न अभिनेत्री थीं। जब वह अपने घर में रात्रि को सोने की तैयारी कर रहीं थीं, तभी संदेश आया कि उनकी नाटक के लिए जरूरत पड़ गई है। वह दौड़ी दौड़ी गेयटी पहुंचीं और तीसरे दृश्य में नायिका का अभिनय किया।

सन् 1934 में एक सफल नाटक खेला गया-'इन्टरफियरेंस'। इस नाटक की नायिका थीं श्रीमती एलविन। एक शाम दूसरे दृश्य के बाद वह जैसे ही विंग्स में आईं बेहोश होकर गिर पड़ीं। उस वक्त निर्देशक सदैव एक स्थानापन्न अभिनेता या अभिनेत्री तैयार रखते थे।

हम जब भी नाटक की बात करते हैं तब मंच पर दिखाई देने वाले अभिनेताओं की बात करते हैं। उनका क्या जो मंच के बाहर से इतनी मदद करते हैं कि उनके योगदान के बिना नाटक सम्भव ही न हो सके। इसके लिए 1837 से 1937 तक गेयटी में हुए नाटकों के सौ साल पूरे होने पर 1937 में छपे 'सेन्टेरियन' में पीएच डेनवर के शब्दों को दोहरा रहा हूं : ''उन सब महिलाओं और पुरुषों को, जिन्होंने शिमला में थिएटर के आरम्भ होने से आजतक अनेक ऐसे दूभर और अलक्षित कार्य किए हैं जिनके न होने से मंच पर नाटक का खेलना सम्भव ही न हो पाता। चाहे परिधान संभालने वाली महिला हो, मंच सज्जा करने वाला व्यक्ति हो, अनुबोधक (prompter) हो, मंच प्रबन्धक हो, या वे व्यक्ति हों जो नाटकों के अन्तराल में, या पर्दे के पीछे , कार्यालय में, प्रेक्षागृह में या श्रृंगार कक्ष में काम करते हैं- उन सब के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं। उन्हें बहुत कम प्रशंसा और नगण्य करतलध्वनि मिलती है पर उनकी सहायता के बिना अभिनेता खड़े रह जाएंगे और निर्देशक व्यर्थ में अकड़े दिखेंगे।'' शिमला एडीसी ने 30 अगस्त, 1947 को भारत के अन्तिम ब्रिटिश वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबैटन और उनकी पत्नी लेडी एडविना के सम्मान में 'जेन स्टेप्स आउट' नाटक किया और एडीसी अपनी सुप्त अवस्था में भारत की आजादी के बाद भी चलती रही। सन् 1950 में जाने कैसे यह आर्मी हैडक्वार्टरस के हाथों में चली गई। अभी भी शिमला एडीसी में सेना के अधिकारियों का बोलबाला है पर गेयटी के तीनों मंच, जिनमें एक खुला मंच है, राज्य भाषा और संस्कृति के नियन्त्रण में हैं।

पंचवटी, ग्राम कनेना, डा. भराड़ी, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 001, मो. 94181 576598

थिएटर

शिमला रंगमंच की अविरल धारा

● संजय सूद

प्रदेश की राजधानी शिमला देश का ऐसा ऐतिहासिक नगर है जो रंगमंच के अपने विस्तृत फलक पर असंख्य कलाकारों की स्मृतियों को संजोए निरंतर प्रवाहमान है। अंग्रेजों के जमाने से ही शिमला में कलाकर्म की रस धाराएं बहती चली आ रही हैं। कभी थियेटर का मक्का कहे जाने वाले इस शहर में अंग्रेजी नाटक 'टाइम विल टेल' (Time Will Tell) 30 मई 1887 को गेयटी थियेटर में खेला गया पहला नाटक है । अंग्रेजों द्वारा यहां स्वतंत्रता से पहले से लेकर देश आजाद होने तक कई नाटक खेले गए जिसमें वेडेन पावल और कुमारी टरनर, श्रीमती एलस्मी मुख्य रूप से सक्रिय रहे जबकि प्रख्यात लेखक रूडयार्ड किपलिंग ने भी अंग्रेजी नाटकों में भाग लिया था। शिमला नगर ने रंगमंच के माध्यम से जहां कई अभिनेता सिनेमा व प्रसारण जगत को दिए वहीं शिमला में रहकर रंगमंच को जीवन्त रखने का बीड़ा आज भी कई रंगकर्मी उठाए हुए हैं । हम बात करते है उन महान कलाकारों की जो शिमला की फिज़ा से निकलकर रंगमंच और सिनेमा व प्रसारण जगत की बुंलदियों को छूने में कामयाब हुए।

स्व. जैड. ए. बुखारी आर्मी हैड क्वार्टर शिमला में बतौर फारसी अनुवादक मुलाजिम हुए थे। वह शिमला की अदबी महफिलों और नाटकों में शरीक होते थे। 1928 में इम्तियाज अली ताज का लिखा नाटक अनारकली खेला गया जिसमें उन्होंने स्वयं सलीम की भूमिका निभाई । आवाज के धनी बुखारी आल इण्डिया रेडियो मे बतौर स्टेशन डायरेक्टर दिल्ली, लाहौर, पेशावर, मुम्बई, कलकत्ता में काम करते हुए 1947 में पाकिस्तान चले गए जहां पाकिस्तान रेडियो से बतौर महानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए।

पण्डित विजय कुमार भी ऐसा ही चर्चित नाम है जो तत्कालीन पटियाला रियासत के शगीण गांव में पैदा हुए। शिमला में शिक्षण के दौरान उन्होंने कई नाटको में भाग लिया। उन्होंने आगाहाश्र कश्मीरी के नाटक 'असीरे हिंम्र' में नौशाबा के पात्र को अभिनीत किया। उन्होंने कई नाटको में नारी पात्र भी निभाएं । लाहौर कॉलेज में पढ़ते-पढ़ते उन्हें प्रीमियर फिल्म कम्पनी के बैनर तले बनी मूक चलचित्र 'दुख्तरे जमाना' में बतौर नायक फिल्म जगत में प्रवेश मिला। सावाक 'संजीव मूर्ति' फिल्म के बाद उनके पास अनगिनत प्रस्ताव आने लगे जिसके बाद इन्होंने आजादी, अभागिन, शादी की रात, आदि फिल्मों में नायक की भूमिका निभाई, पिता की बीमारी और पारिवारिक कारणों के चलते विजय कुमार को 1940 में शिमला वापिस आना पड़ा, पिता के देहांत के बाद जिम्मेदारियों का निर्वहन करते करते विजय कुमार वापिस मुबई, कलकता न जा सके । वर्ष 1955 में जब शिमला आकाश्वाणी केन्द्र की स्थापना हुई तो आकाशवाणी के निमंत्रण पर अपनी सेवाएं प्रदान की।

शिवशरण सिंह ठाकुर जिन्हें ट्रिपल एस ठाकुर भी कहा जाता था, ने स्कूली दिनों में गेयटी थिएटर में रूकमणी, शांता और अनार कली नाटकों में नारी पात्रों की भूमिकाएं निभाई थीं । उन्ही दिनों के. एल. सहगल, जैड.ए. बुखारी, मदन पुरी, और लच्छी राम जैसे सिद्धहस्त कलाकारों के साथ रंगमंच पर काम करने का अवसर इन्हें प्राप्त हुआ। लोक नाटय की आबोहवा से उठकर प्रसार जगत में, सआदत हसन मंटो, कृष्ण चंदर, राजेन्द्र सिंह बेदी और उपेन्द्र नाथ अश्क जैसे लेखकों के सम्पर्क में रहते हुए उनकी नाट्य कृतियों को रेडियो पर प्रस्तुत करने के अवसर भी इन्हें मिले थे। रेडियो व नाटक के लिए समर्पित शिवशरण सिंह ठाकुर ने विभिन्न प्रसारणों में प्रोड्यूसर, निर्देशक व संचालक के रूप में कार्य किया। इन्होंने आकाश्वाणी दिल्ली, शिमला, मुंबई और लखनऊ केन्द्रों, दूरदर्शन केन्द्र दिल्ली तथा विदेश सेवा परामर्श में अपनी सेवाएं प्रदान कर निर्देशन, अभिनय तथा कार्यक्रम की प्रभावशाली परिकल्पना के बूते आवाज की दुनिया में भरपूर नाम कमाया। विविध भारती का लोक प्रिय 'हवामहल' प्रसारण भी ठाकुर की परिकल्पना का परिणाम था। इन्हें 1987 में प्रदेश सरकार द्वारा 'सर्वोच्च निष्पादन कला राज्य सम्मान, 1991 में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और सन् 1995 में हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी की ओर से शिखर सम्मान से भी

आलंकृत किया गया। भारतीय रंग जगत की विशिष्ठ उपलब्धि मनोहर सिंह का जन्म अभिनय के कुशल चितेरे बुद्धि सिंह के यहां 12 अप्रैल 1942 को हुआ।

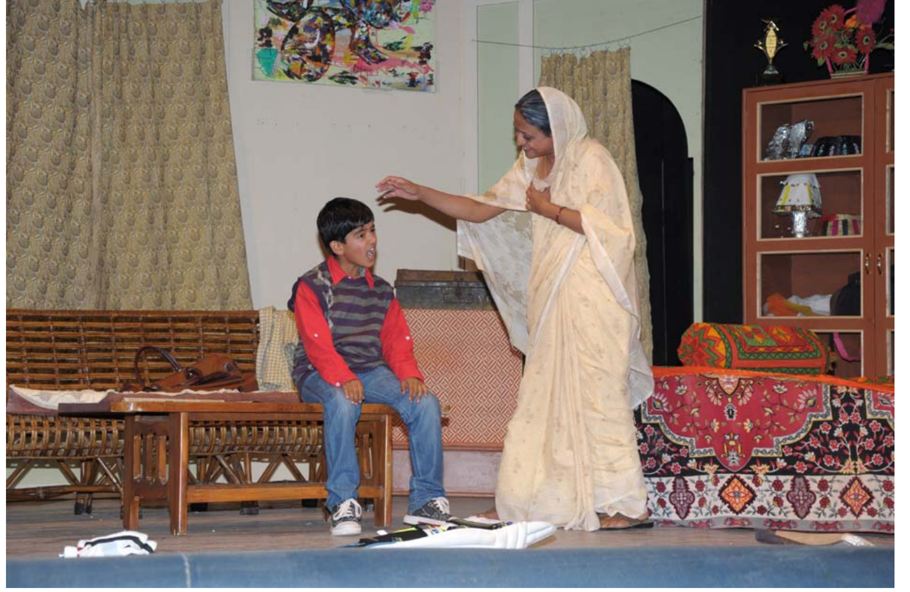
पिता के नाटकों को देखने के कारण शिशु मनोहर में भी नाट्य प्रतिभा बाल्य काल से ही थी। करियाला उनकी प्रारम्भिक प्रेरणा रही। वर्ष 1958 से मनोहर सिंह रेडियो नाटकों में भाग लेने लगे जहां उन्होंने अपनी आवाज का लोहा मनवाया। फरवरी 1962 में मनोहर सिंह हिमाचल सरकार के लोक सम्पर्क विभाग में नाटय निरीक्षक के रूप में शामिल हुए। विभाग में रहते हुए इन्होंने हिन्दोस्तान हमारा, अमानत , पागल लोकगाथा, सुन्नी-भुंकू नाटकों में मुख्य भूमिका निभाई। वर्ष 1968 में रंगकर्म का विधिवत प्रशिक्षण लेने के लिए राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली में प्रवेश लिया। यहां उन्होंने यादगार नाट्य प्रस्तुतियों में सफल अभिनय किया जिसमें तुगलक, कॉकेशियन-चाक सर्कल, औथेलो, थ्री पैनी ओपेरा, दांतोज डैथ, लुक बैक इन एंगर, महाभोज उल्लेखनीय है । वर्ष 1975 में ब्रिटिश कांऊसिल स्कॉलरशिप के अन्तर्गत ब्रिटेन की यात्रा की, जहां वह शैक्सपीयर कम्पनी से जुड़े, वर्ष 1980 का क्रिटिक आवार्ड, 1982 में संगीत नाटक अकादमी ने अभिनय के लिए अकादमी पुरस्कार और वर्ष 1983 में हिमाचल प्रदेश सरकार ने मनोहर सिंह को राज्य सम्मान से अलंकृत किया। हिमाचल प्रदेश लोक सम्पर्क विभाग की राज्य नाटक इकाई मनोहर सिंह के नेतृत्व में उम्दा नाटकों का प्रदर्शन कर शिमला नगर में अपनी धाक जमाने में काफी कामयाबी हुई थी। सुशील कुमार, दौलत राम प्रेमी, दिला राम ठाकुर, सुशील थापा, रामसरन शर्मा, ओम प्रकाश कल्याण पुरी, सिद्दीक मुहम्मद के सहयोग से नाट्य इकाई ने अत्यन्त भाव पूर्ण प्रस्तुतियों का प्रदर्शन किया। मनोहर सिंह के साथ हुई एक मुलाकात के दौरान उन्होंने बड़े ही कृतज्ञ भाव से स्व. हरिकृष्ण मट्टू तत्कालीन निदेशक लोक सम्पर्क विभाग हिमाचल प्रदेश का अपने भविष्य निर्माण में सहयोग देने के लिए उन्मुक्त कंठ से अभार प्रकट किया था।



मशहूर चरित्र अभिनेता प्राण ने बिन्नी रूबेन द्वारा लिखित अपनी जीवन गाथा एण्ड प्राण में ये रोचक तथ्य उजागर किया है, कि जीवन में पहली बार अभिनय उन्होंने शिमला में ही किया था जहां उन्होंने रामलीला में सीता की भूमिका निभाई थी जिसमें राम की भूमिका मदन पुरी ने की थी जो आगे चल कर हिन्दी सिनेमा में स्वयं अभिनेता बने। प्राण 1939 में लाहौर चले गए थे जहां 1940 में उनकी पहली फिल्म यमला जट रलीज हुई। शिमला में 60 के दशक में शाही हकीम स्व. पण्डित ज्ञान चन्द, ए.डी.सी. राम नगर के सचिव एस. विनसेंट और भारत सरकार के मुद्रणालय ए. डी.सी. के चौधरी दीन मुहम्मद का योगदान भी शिमला रंग मंच में स्मरणीय रहेगा। मास्टर होमी के रंगमंच के प्रति समर्पण और आर.सी. पाल का रंगमंचीय सहयोग भी शिमला को मिला जो बाद में बम्बई चले गए।

पचास से सत्तर के दशक के आरम्भ तक शिमला के रंगमंच रूपी समुद्र में जो लहर आई उसने प्रेम चोपड़ा, मदन पुरी, अमरीश पुरी और मनोहर सिंह जैसे अभिनेताओं को अपनी धारा के साथ बम्बई के महासागर में विलीन कर दिया जहां उन्होंने रंगमंच और सिनेमा की बुलन्दियों को छुआ। इनके जाने के बाद भी शिमला रंगकर्म की निरन्तरता बनी रही। वीणा प्रसाद जोशी, भीम दत्ता जोशी, अमर नाथ ठाकुर, अमर सिंह ठाकुर, विजय सरस्वती, रमेश गौड़ व सुदर्शन गौड़ तथा डीनबन्धुओं ने रंगकर्म की लौ को जलाए रखा। प्रोफैसर जी.आर. सूद ने 1955 में भार्गव म्युनिसिपल कॉलेज से वर्ष 2000 तक ए.डी.सी.शिमला के लिए अंग्रेजी व हिन्दी के नाटकों का मंचन किया।

सन् 1970 के दशक में शिमला रंगकर्म में विश्वविद्यालय और महाविद्यालय का बड़ा योगदान रहा। संजौली कॉलेज का लिटिल थियेटर ग्रुप जिसमें अनुपम खेर, अनिल शर्मा, नव प्रकाश परिहार, दीपक शर्मा, राजीव शर्मा सांध्या महाविद्यालय शिमला में थियेटर को विशेष पहचान दिलाई, सुमन तिवाड़ी, अनिता तिवाड़ी, शेखर भट्टाचार्य, शुभ्रा भट्टाचार्य व विजय सहगल एवं मईकल जॉन, डा. कैलाश आहलुवालिया की अगुवाई में रंगमंच में अपने जौहर दिखा रहे थे । हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में उस दौरान अंग्रेजी नाटकों का बोलबाला था । डा. त्रिपाठी के निर्देशन में देवेन जोशी, अरविंद रंचन, अजय बहादुर सिंह (पूर्व विधायक नहान), रूपेन्द्र



सरा, उमा बलजीत सिंह, नीलम सूद ने शिमला रंगमंच में अंग्रेजी नाटकों की धूम मचाई हुई थी। इसी दौरान एस.डी.वी. कॉलेज शिमला का छात्र विजय कश्यप भी एक ऐसा नाम इस क्षेत्र में उभरा जिसने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालल नई दिल्ली से नाटक का विधिवत प्रशिक्षण लेकर राष्ट्रीय रंगकर्म में कई यादगार भूमिकाएं निभाई। इन्होंने टी.वी. धारावाहिकों व फिल्मों में भी अपने अभिनय का कौशल दिखाया। योगेश गम्भीर भी शिमला रंगमंच से निकल कर राष्ट्रीय नाटय विद्यालय नई दिल्ली गए जिसके पश्चात कुछ दिन शिमला में कार्य कर पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के थियेटर व टेलीविजन विभाग के विभागाध्यक्ष रहे । अशोक हंस भी उन्हीं दिनों पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला में अभिनय कौशल में परांगत होने के लिए गए थे। वर्ष 1975 में शिमला शहर के उपनगरों में इस दौरान सुनिल अब्राहम ऐन्थनी, पोची दादा, के.सी. बैनर्जी, कैलाश ममगई व भूपेन्द्र ठाकुर नाटकों में निरन्तर रुचि लिया करते थे। शिमला नगर में कुछ और नए कलाकार जो शायद बाहर से आए अथवा यहीं के निवासी थे, भी चर्चा में आए। प्रवीण चान्दला, विमला चांदला, बी.आर मैहता, एम.आर. बादल, मधुसूदन, एस. एस. पंजाबी, सी.एच. खेवड़ा, डी.पी. रलहन सरीखे रंगकर्मियों ने शिमला रंगकर्म को सिंचित किया। 1975 से 1980 तक के समय में युवा महोत्सवों से छनकर नगर में नए चेहरे रंगमंच को प्राप्त हुए जिसमें जवाहर कौल, तेजू शर्मा, जगवीर सिंघा और अरूण शीटक के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी दौरान हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में भी रंगकर्म अपने उफान पर था। नव प्रकाश परिहार और डा. कमल शर्मा की जोड़ी ने डा. ओमपाल, डा. देवेन्द्र गुप्ता, अरविद शर्मा, वाईटस विन्संट, दिलीप शर्मा, पवन शर्मा, नरेन्द्र गर्ग, अजय सेठ, संजीव गांधी, अजय डोगरा, दिनेश आचार्य, नरेन्द्र ठाकुर, आशा कौडल, सुमन शर्मा, अर्चना शर्मा जैसे कलाकारों को मंच प्रदान किया। इन्हीं वर्षो में शिमला में महिला रंगकर्मियों के नाम भी उभर कर सामने आए सविता सूद, गोपी बुटेल, आरती सूद, भारती सूद व अनुपम शर्मा ने अपने अभिनय से रंगमंच में काफी पैठ बनाई।

वर्ष 1983 में राजकीय महाविद्यालय संजौली में भी नई रंगफौज पैर जमा चुकी थी। डा. कैलाश अहलुवालिया के निर्देशन में संजय सूद और अनिल लुथरा ने कमान सम्भाली । 1984 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली के स्नातक श्री श्रीण डोभाल शिमला आए और शिखर संस्था कि ओर से हिमाचल के कवियों की कविताओं का मंचन किया जिसमें रमण सूद, विजय छाबड़ा, राज किशोर, विजय चौधरी, जयराज कपूर, प्रदीप कंवर सहित लगभग 30 नए पुराने रंगकर्मियों ने इस अनुभव को आत्मसात किया। वर्ष 1984 में शिमला रंगकर्म में प्रतिस्पर्धा का दौर शुरू हुआ। पुराने कलाकार अब निर्देशक की पारी सम्भालने लगे थे। अशोक हंस 'बुद्धू का कांटा' नाटक को लिए सविता सूद, आरती सूद, भारती सूद बहनों और नए अभिनेता सत्य प्रकाश, अनिता कौशल, प्रवीण चांदला, मिताली बोस व सुनिता को लेकर प्रदर्शन के लिए तैयार थे । देवन जोशी भी गोपी बुटेल, विजय शर्मा, आशा कौण्डल, मोहन जोशी के साथ आधे अधूरे का मंचन कर रहे थे। मुंशी प्रेम चंद के उपन्यास गोदान का मंचन प्रवीण चांदला के निर्देशन में हो रहा था जिसमें अशोक शर्मा, देवकी नंदन, नीरज अग्रवाल, विमल सविता और आरती सूद व भारती सूद, संजय सूद, देवेन शर्मा पहली बार किसी साहित्यिक उपन्यास के पात्र बने थे। इसी दौर में एक अन्य युवा रंगकर्मी नरेन्द्र चौहान स्वयं लिखित नाटकों के निर्देशन के कारण शिमला रंग पटल पर छाया हुआ था।

वर्ष 1985 में भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में एक माह की कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें प्रदेशभर के लगभग 45 कलाकारों का चयन हुआ। शिमला से संजय सूद, अनिल लुथरा, भूपेन्द्र शर्मा, विजय शर्मा, रवि कौशल, राकेश जोशी, देवेन शर्मा, रोहिताश्व गौड़, राशी मरवाह, सोनिया आंधी और गोपी बुटेल का चयन हुआ। उल्लेखनीय है कि रोहिताश्व गौड़ ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली तथा अनिल लुथरा, राशि मरवाह और रवि कौशल ने इण्डियन थियेटर चण्डीगढ़ से नाट्य विद्या में डिप्लोमा हासिल कर मुम्बई का रुख किया।

कार्यशाला के अन्य सहपाठियों ने शिमला में नाटकों के निरंतर मंचन को अपना लक्ष्य बना लिया और इस सफर में और भी कई नए कलाकार जुड़ते गए, शैलेन्द्र कौशल, दयाल प्रसाद,

निशा मरवाह , राज कुमार अंजुबाला ने सराहनीय कार्य किया और रंगमंच को अपनाया। सांध्यकालीन महाविद्यालय में अब कमान स्वतन्त्र रूप से नव प्रकाश परिहार और डा. कमल शर्मा के हाथों में थी। युवा महोत्सवों में अपने उत्कृष्ट अभिनय से जो अभिनेता सांध्य महाविद्यालय से उभरकर आए उसमें अनिल चड्डा, ललित विक्रम, दिवेश शर्मा, अरुण उनियाल, नरेश भट्ट, प्रदीप (आकाशवाणी) प्रमुख थे। हिमाचल प्रदेश विश्विद्यालय में राकेश कंवर, अजीत वत्स, अंजु गुलेरिया ज्योतिका, हरीश पाल, नरेश मस्ताना, राजेश ठाकुर चुंनिदा नाम दर्शकों की जुबान पर थे।

अमला राय भी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से डिप्लोमा कर शिमला का रुख कर चुकी थीं। अमला राय ने अपनी रंग संस्था का गठन कर न सिर्फ शिमला रंगमंच को अमूल्य योगदान दिया बल्कि नए कलाकारों को भी मंच प्रदान किया। विजय अख्तर, निर्मला चौहान, राज कुमार अरोड़ा, चन्द्रमणी, रोजश चन्देल, शबरी बक्शी, अपर्णा भट्टाचार्य, सुरेन्द्र गिल, रामपाल मलिक जैसे रंगकर्मी अमला राय द्वारा खोजे रत्न हैं। एक व्यक्ति असीम गुप्ता रंगमंच का ऐसा कलाकार है जो मंच पर अधिक सक्रिय ना हो कर भी रंगकर्मियों की सक्रियता में बराबर का भागीदार बना रहा। श्री सुरजीत सिंह (सेवानिवृत उप-निदेशक भाषा एवं संस्कृति विभाग) का भी रंगकर्मियों को इस दौरान मंच सज्जा व अन्य कार्यों में काफी सहयोग मिलता रहा। वर्ष 1980 से 90 के अन्त तक शिमला के लगभग सभी रंग कर्मियों जिसमें, भुपेन्द्र शर्मा, संजय सूद, मोहन जोशी, सुरेन्द्र गिल, नीरज पराशर, दयाल प्रसाद, राज कुमार राही तथा प्रवेश जस्सल ने अपनी अपनी संस्थाओं का गठन कर लिया था ।

इन संस्थाओं के माध्यम से मंचित नाटकों ने शिमला रंगमंच को विपिन शर्मा जो बाद में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली गए व वहां रंगमंच में स्वतंत्र रूप से काम कर रहे हैं। सुलक्षणा ब्राम्टा, राकेश शर्मा, (सी.टी.चौनल) शशी वर्मा, रविन्द्र प्रकाश, सौरभ चौहान, परमेश शर्मा, नीतू शर्मा, अश्वनी, अजय वशिष्ठ, अधीर रोहाल और राघवेन्द्र जैसे सशक्त कलाकारों की पंक्ति को मंच प्रदान किया । इस दौरान आशीष आर. मोहन (कन्नी) भी नाटकों से जुड़े थे लेकिन तत्काल ही बम्बई का रुख किया। आज स्वतंत्र रूप से फिचर फिल्म का निर्देशन कर रहे है जिसमें खिलाड़ी 786 व अन्य फिल्में शामिल है।

वर्ष 2001 में केदार ठाकुर और राजेन्द्र शर्मा (हैप्पी) मण्डी स्थित अभिनय संस्थान से डिप्लोमा प्राप्त कर शिमला लौटे राजेन्द्र शर्मा ने शिमला में थोड़े वर्ष ही कार्य किया और वह मुबई का रुख कर गए। केदार ठाकुर और रूपेश भीमटा, रूपेश बाली ने अपनी संस्था का गठन कर शिमला रंगमंच में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। इसी वर्ष संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली के तत्त्वावधान में रंग कार्यशाला का आयोजन शिमला में किया गया जिसके तहत प्रीतम भारद्वाज, ललित भारद्वाज, रूपेश नंदन, सजंय सागर और सुरजीत ठाकुर आदि कलाकारों ने अभिनय की बारीकियां सीख कर रंगकर्म को अपनाया। इनके प्रयासों से अजय गर्ग, अभिषेक, सुशील शर्मा, अरविंद नरयाल, सोनू चौहान, अंकिता गोसांई और आदर्श भी इस रंग कारवां में जुड़ते गए।

शिमला रंगमंच के इस अभियान में बाहर से आए कलाकारों और निर्देशकों के अनुभव भी स्थानीय रंगकर्मियों को सांझा करने का अवसर समय-समय पर प्राप्त होता रहा है। पचास के दशक में पृथ्वी राज कपूर अपने नाट्कों का मंचन शिमला में करते थे। वर्ष 1964 में शेक्सपीयर थियेट्रिकल कंपनी जो शशि कपूर के ससुर (इग्लैण्ड निवासी) की थी, ने भी गेयटी में नाटक प्रस्तुत किए जिसमें शशि कपूर और उनकी पत्नी जैनिफर ने भी अभिनय किया। नसीरूद्दीन शाह और ओमपूरी ने भी शिमला में 1975 के आसपास नाटक का मंचन किया, वहीं अशीष विद्यार्थी, टॉम अल्टर और नादिरा बब्बर का अभिनय भी शिमला के रंग प्रेमियों को देखने को मिला। अनुपम खेर द्वारा अभिनित एकालाप का भी आनन्द शिमला वासियों ने उठाया। राष्ट्रीय रंगमंच के चर्चित नाम जिसमें देवन्द्र राज अंकुर, रंजीत कपूर, कीर्ति जैन, जे. एन.कौशल, बलराज पण्डित, हरपाल टिवाना, जे.एम. दमनिया, अनुराधा कपूर, श्यामा नंद जालान, शकधर आचार्य मुश्ताक काक, बलवंत ठाकुर, पियुष मिश्रा, विजय छिब्बर, भानू भारती, बी.एम.शाह और कविता नागपाल आदि के प्रवासों से रंगकर्मियों को अनुभव सांझा करने के अवसर प्राप्त हुए।

मशहूर चरित्र अभिनेता प्राण ने बिन्नी रूबेन द्वारा लिखित अपनी जीवन गाथा एण्ड प्राण में ये रोचक तथ्य उजागर किया है, कि जीवन में पहली बार अभिनय उन्होंने शिमला में ही किया था जहां उन्होंने रामलीला में सीता की भूमिका निभाई थी जिसमें राम की भूमिका मदन पुरी ने की थी जो आगे चल कर हिन्दी सिनेमा में स्वयं अभिनेता बने।

शिमला रंगमंच की चमक को और अधिक बढ़ाने के लिए जिन लेखकों का सहयोग मिलता रहा उनका जिक्र यहां करना अति आवश्यक है।

राम दयाल नीरज, रतन सिंह हिमेश, सत्येन शर्मा, जिया सिद्धिकी, अरमान शाहबी, रामकृष्ण कौशल, श्रीकान्त श्रीनिवास, एस.आर. हरनोट, श्रीनिवास जोशी, केशव नारायण, बद्री सिंह भाटिया, तुलसी रमण, ओ.पी सारस्वत, सुर्दशन वशिष्ठ ने शिमला रंगमंच के लिए कहानियां और नाटक दिए जो शिमला के रंगकर्मियों द्वारा अतीत से लेकर अब तक मंचित किए जा रहे हैं

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी,
शिमला, जिला शिमला, हि.प्र., मो. 94180 65293

पत्रकारिता

जागृति के पैरोकार

शिमला से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएं

• श्रीनिवास जोशी

एक कहानी सा लगता है कि एक राज्य की राजधानी ठंडे स्थान पर हो जहां बिजली न हो, पानी का नियमित आवंटन न होता हो, भिश्ती मशक से घर घर जा कर पानी की जरूरत पूरी करते हों, किसी किसी सड़क को ही उचित कहा जा सके और घरों को गरम रखने की कोई सभ्य व्यवस्था न हो। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि हम हॉलीवुड की फिल्म देख रहे हों जिसमें एक ऐसा शहर दिखाई दे रहा है जिसमें अंधेरा होते ही कुत्तों की भौंक के साथ बिल्लियों के कलरव की जुगलबन्दी हो रही है, रोमन गार्ड आकर दीवारों से सटी मशालों को एक लम्बे प्रदीपक से जला कर अंधेरे से निजात दिला रहा है। यह शहर 1864 का हमारा शिमला है। इस वर्ष गवर्नर जनरल और वायसरॉय सर जॉन लॉरेंस लन्दन में बैठे सेक्रेटरी ऑव स्टेट सर चार्ल्स वुड, को लिखते हैं कि उनके लिए गर्मियों में तपते तथा चिलचिलाते कलकत्ता में कार्य करना असम्भव है और वह गर्मियों में शिमला से देश का प्रबन्धन करेंगे अन्यथा उनका त्यागपत्र स्वीकार किया जाए ताकि वह इंग्लैंड वापस आ सकें। सर वुड अपने एक कर्मठ अधिकारी को खोना नहीं चाहते थे, अतः उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। गवर्नर जनरल के शिमला में रहने के कारण उनकी काउंसिल के अन्य सदस्य भी शिमला आ गए और ठंडा शिमला भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी बना और आज शिमला को भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी घोषित किए हुए 150 साल हो चुके हैं। 1864 से 1947 तक शिमला अपने इसी ओहदे पर विराजमान रहा।

1884 में पाइप द्वारा आने वाला पानी प्राप्त होना शुरू हुआ। 1903 में रेलगाड़ी शिमला पहुंची, रिक्शा-योग्य सड़कें इसके बाद बनने लगीं हालांकि कॉम्बरमियर ब्रिज और जाखू राउंड 1828 में बन गया था। 1913 को चाबा से बिजली आनी आरम्भ हुई। हालांकि इससे पूर्व 1887 में बने वायसरीगल लॉज में जेनेरेटर द्वारा चालित 16 कैन्डल वॉट के 1000 बल्ब लगा दिए गए थे। लेडी डफरिन, जो उस भवन की पहली महिला रहीं हैं, लिखती हैं, "कितना आनन्द है - एक बटन दबाओ और प्रकाश हो जाता है। मैं तो दिन में भी कई कई बार ऐसा करती हूं।"

आप सोचेंगे कि शिमला में पत्र-पत्रिकाओं की यात्रा 1864 के बाद ही आरम्भ हुई होगी। नहीं, ऐसा नहीं है। सन् 1848 में शिमला अखबार नाम से पहला साप्ताहिक समाचार पत्र निकला था। इसके प्रकाशक और सम्पादक शेख अब्दुल थे। इसे नागरी लिपि में लिथोग्राफ किया जाता था। लिथोग्राफी एक विधा होती है जिसमें पत्थर या धातु में शब्द अंकित किए जाते हैं और फिर उनमें स्याही पोत कर कागज में उतारा जाता है। वह धातु या पत्थर केवल शब्दों की स्याही ही कागज पर लाता है बाकि के स्थान की नहीं। सारा काम हाथ से होता था, बिजली की आवश्यकता नहीं होती है। आरम्भ में इस अखबार की 50 प्रतियां ही निकालीं गईं थीं -22 भारतीयों को बेची गईं थीं, 8 अंग्रेजों को और 20 निःशुल्क बांट दी गईं थीं। उस वक्त शिमला शहर की जनसंख्या 9000 हुआ करती थी। इतनी कम बिक्री और विज्ञापन आदि की कोई आय नहीं - परिणाम हुआ कि शेख साहिब का बटुआ खाली होने लगा। उन्होंने 1849 में यानि एक साल बाद ही इससे मुक्ति पाने की सोची और अखबार बन्द हो गया। 1850 में इसे द्विमासिक के रूप में फिर से आरम्भ किया गया -पहले इसकी छपाई संख्या 50 थी तो अब 66 हो गई - पर शेख साहिब की पूंजी में छेद बढ़ता गया और सन् 1851 में उन्होंने अखबार निकालने के व्यवसाय से तौबा कर

> सन् 1848 में शिमला अखबार नाम से पहला साप्ताहिक समाचार पत्र निकला था। इसके प्रकाशक और सम्पादक शेख अब्दुल थे। इसे नागरी लिपि में लिथोग्राफ किया जाता था। लिथोग्राफी एक विधा होती है जिसमें पत्थर या धातु में शब्द अंकित किए जाते हैं और फिर उनमें स्याही पोत कर कागज में उतारा जाता है।

ली। इस तरह से लिखित रिकॉर्ड के अनुसार शिमला अखबार अपनी दो साल की जिन्दगी के बाद बाल मृत्यु का शिकार बना।

इन्हीं दिनों शिमला में एल्बियन प्रेस की स्थापना हुई और यहां से एक समाचार पत्र 'दी माउन्टेन मॉनीटर' निकलना आरम्भ हुआ। 6 माह तक यह पत्र घिस-पिट कर निकलता रहा और एक सुबह कब्र में सोया हुआ मिला। दी माउन्टेन मॉनीटर ने कइयों को प्रेरित किया कि वे भी पत्र निकालें और लगभग आधा दर्जन पत्र-पत्रिकाएं उस वक्त के शिमला में नजर आने लगीं पर अंग्रेजी की कहावत का सहारा लूं तो यह सब अखबार नौं पिनों की तरह झड़ गए।

बहुत लोग जानते हैं कि 'दी सिविल एण्ड मिलिट्री गज़ेट' लाहौर से निकलने वाला समाचार पत्र था क्योंकि इसके साथ नाबेल लॉरिएट रुडयार्ड किपलिंग का नाम जुड़ा है। पर वास्तव में यह पहले शिमला से निकलता था और इसका पहला अंक 22 जून, 1872 को निकला था। इस पत्र को ऊंचाइयां दिलाने में इसके सम्पादक ईके रॉबिनसन का योगदान रहा है। आगरा से निकलने वाले पत्र मौफुसलाइट के साथ इसका विलय सन् 1876 में हुआ और इसके बाद ही यह लाहौर को स्थानान्तरित कर दिया गया। रुडयार्ड किपलिंग 1882 से 1889 तक लाहौर में इसके सम्पादकीय मण्डल में रहे।

शिमला के स्टेज के बारे में सिविल एण्ड मिलिट्रि गजेट में छपी उनकी टिप्पणी मुझे इतनी अच्छी लगती है कि अंग्रेजी में होने के बावजूद मैं उसे यहां बोलने से जरा भी नहीं हिचकिचा रहा हूं:

As tribute to your taste
We certify that Simla stage is chaste.
Mellowed by age, and cooled by tempering Time,
We find it venerable and sublime.

अप्रैल से अक्तूबर तक सात महीने भारत सरकार शिमला से चलती थी - बाकी के महीनों में 1911 तक कलकत्ता से और उसके बाद दिल्ली से ब्रिटिश सरकार चली। उन दिनों जो नियतकालिक पत्रिकाएं शिमला से निकलतीं थी, उनके नाम थे- कुरियर, स्टेशन, पायोनियर बुलेटिन, दी शिमला टाईम्स और शिमला न्यूज। सन् 1904 का शिमला जिला का गजेटियर कहता है: "साप्ताहिक दी शिमला न्यूज ही केवल एक ऐसी पत्रिका है जो विज्ञापन पन्नों से अधिक है। दी पायोनियर बुलेटिन तमाम ग्रीष्मकाल में रोजाना प्राप्त तथा भेजे जाने वाले तारों का उल्लेख करता था।" तार से मुझे याद आया कि यह दोनों खुशी और गमी के संदेशों का पर्चा होता था - कोई इसे पाकर मदहोश हो जाता था तो कोई बेहोश हो जाता था। जुलाई 14, 2013 को राहुल गांधी को अश्वनी मिश्रा द्वारा भेजे गए अन्तिम तार के साथ हमने 169 साल पुरानी इस संचार विधा को भी अलविदा कह दिया है।

दी शिमला टाईम्स का मस्तूल-शिखर कहता था 'प्रो दिओ एत इम्पीरियो' यथा 'ईश्वर और साम्राज्य के लिए' -देख लें, एक छोटा सा पत्र और डंके में चोट। यह पत्र अन्य पत्रों से अधिक चला और बाद में यह दैनिक तक हो गया था। यह पत्र 20वीं सदी के दूसरे दशक तक छपता रहा। छोटे से तत्कालीन शिमला के लिए इसमें किस प्रकार के समाचार छपते होंगे, यह मेरे लिए कौतुहल का विषय रहा और मैंने जब खोज की तो बहुत रुचिकर भाषा में कुछ तब के समाचार पढ़ने को मिले :

"राईफलमैन फरनान्डेज जो हर बात पर आपत्ति उठाता था और ड्रिल करने से भी मना करता था, 50 रुपए जुर्माने के अतिरिक्त 28 दिन की जेल की सजा पर भेजा गया था। फरनान्डेज पिछले वीरवार को सजा काटने के बाद जेल से रिहा कर दिया गया है।" दी शिमला टाईम्स 13 सितम्बर, 1917।

यही पत्र 22 नवम्बर, 1917, यानि दो माह बाद लिखता है, "शिमला राईफल्स के राईफलमैन फरनान्डेज को आज रेजिमैन्ट के समक्ष घुमाया गया और ड्रिल न करने के कारण उसका कोर्टमार्शल किया गया। सजा भी सुना दी गई, 6 माह की कैद और 100 रुपए जुर्माना। उसने अपने लिए वकील लेने से भी मना कर दिया। वह एम्बुलैंस में काम करना चाहता है और उसे सिपाही बनाया जा रहा है। हम सरकार की नीति के विरुद्ध बात कर रहे हैं और समझते हैं कि यदि वह इंग्लैंड में होता तो शायद उसके साथ वह नहीं होता जो यहां हो रहा है।"

1918 में जब विश्व युद्ध-प्रथम समाप्त हुआ तब यही अखबार 14 नवम्बर, 1918 को लिखता है: "सोमवार को सात बजे के थोड़ी देर बाद जब युद्धस्थिति समाप्त होने की घोषणा दूरभाष द्वारा शिमला के चारों कोनों में फैल गई तब दिन की महानता के द्योतक के रूप में गिरिजाघरों के घंटे झनझना उठे। कैथोलिक कैथेडरल, क्राईस्ट चर्च और सेंट एन्ड्रयूस के घंटों की मधुर आवाजें लम्बी और तीव्र थीं और बार्न्स कोर्ट तथा संजौली के बीच की घाटी चेल्सी कान्वेन्ट के घंटाघर से उभरती आवाजों से गूंज रही थी।"

17 अप्रैल, 1919 को दी शिमला टाईम्स का कथन है "विश्व युद्ध के दौरान नाचने पर पूर्ण पाबन्दी थी। अब जब सब कुछ सामान्य हो गया है, तब नाच भी खुल गए हैं - इसीलिए 25 अप्रैल को वायसरीगल लॉज में नाच होगा।"

इस अखबार के कुछ चटपटे विज्ञापन भी सुन लें: "एक नव-विवाहित जोड़े के लिए अक्तूबर माह में किसी युरोपियन परिवार के साथ रिहाइश और भोजन की सुविधा चाहिए। दैनिक या मासिक लागत बताएं।"

" एक सिख स्नातक को नौकरी चाहिए -सरकारी अथवा निजी। सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं।"

लिडल्स शिमला वीकली एक और लोकप्रिय साप्ताहिक रहा है। इसका प्रकाशन सन् 1930 से आरम्भ हुआ था। लिडल्स प्रेस उस जगह होता था जहां स्कैन्डल प्वाईंट में आजकल स्टेट बैंक

ऑफ पटियाला है। मई 4, 1935 को यह समाचार देता हैः "वास्तुकला के प्रशंसित भवनों में से एक रिज में स्थित शिमला का बैंडस्टैंड है जिसमें आजकल आशियाना रैस्टॉरैन्ट चल रहा है। जो ठेकेदार यह भवन बना रहा था, उसके पास सामग्री की कमी पड़ गई, तब उसने बैंडस्टैंड की छत गवर्नमैन्ट हाई स्कूल की स्लेटें चुरा कर पूरी कर दी। अगर इस बात पर किसी को कोई शक है तो वह उन छोकरों से इस बारे में जानकारी ले सकता है जो शाम को बैंडस्टैंड के इर्द-गिर्द खेलते रहते हैं।"

रामगढ़िया गज़ेट, एक पंजाबी साप्ताहिक, शिमला से 1920 में निकलना आरम्भ हुआ। यह सिखों की राजनीतिक जागरूकता को प्रतिबिम्बित करता था और उनकी धार्मिक-दार्शनिक सोच को दर्शाने वाले पहले पत्रों में से एक था। इसके सम्पादक हजारा सिंह अस्सी थे। एक बार इसका छपना बन्द हो गया था पर फिर से चालू हो गया था। चंडीगढ़ से कुछ देर छपने के बाद सन् 1996 में यह सदा के लिए बन्द हो गया।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में फौजी अखबार भी शिमला से निकला पर बहुत लम्बी कहानी न कहता हुआ सिमट गया। वर्ष 1942 में जब महात्मा गांधी कारावास में थे तब राजकुमारी अमृत कौर ने अपनी कोठी मेनरविला, समरहिल से महात्मा गांधी के पत्र 'हरिजन' का सम्पादन किया था। क्या आप जानते हैं कि महात्मा गांधी का जो पत्राचार राजकुमारी अमृत कौर के साथ होता था, उसमें गांधी कौर को मूर्ख या विद्रोही लिख कर सम्बोधित करते थे और पत्र का अन्त तुम्हारा तानाशाह या तुम्हारा योधा या तुम्हारा डाकू लिख कर सम्पन्न करते थे?

फिर आई स्वतन्त्रता। शिमला में स्वतन्त्रता का बड़ा जश्न सचिवालय के बाहर लगे ध्वज-स्तम्भ में झंडा फहरा कर किया गया था। हजारों लोग यहां एकत्र हुए थे। पंजाब का लोकप्रिय समाचार पत्र दी ट्रिब्यून शिमला आ गया और मालरोड में तारघर के साथ बनी बैंटनी से 25 सितम्बर, 1947 को दो पृष्ठ का अंक निकलता था। इसके पृष्ठों की संख्या लगातार बढ़ती रही - पहले 6 हुई और जनवरी 1948 के अन्त तक 8 हो गई। तब इसके सम्पादक राणा जंग बहादुर होते थे। उन के बाद जे. नटराजन आए और शिमला से यह पत्र अम्बाला छावनी गया तथा वहां से अन्ततः चंडीगढ़, जहां से यह पत्र उत्तर क्षेत्र के प्रमुख दैनिक के रूप में अभी अपनी पैठ बनाए हुए है। शिमला से दी ट्रिब्यून छपने से हिन्दुस्तान टाइम्स ने प्रेरणा ली और शिमला से दो-पृष्ठीय परिशिष्ट निकालना आरम्भ किया। सन् 1955-56 तक यह व्यवस्था चलती रही।

हिमाचल प्रदेश का गठन सन् 1948 में हुआ और नए प्रदेश के अपने पत्र-पत्रिकाओं का होना पढ़ने लिखने वालों को झकझोरने लगा। आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा और शम्भु दत्त शास्त्री ने उसी वर्ष से एक साप्ताहिक 'विश्वशान्ति' शिमला से निकालना आरम्भ किया जिसमें हिमाचल प्रदेश के समाचार और प्रदेश पर विचार दिए जाने लगे। यह साप्ताहिक भी अनेक अन्य पत्रों की भांति आर्थिक संकट की बलि चढ़ गया।

आचार्य दिवाकर दत्त ने अक्तूबर 12, 1956 को संस्कृत में एक मासिक पत्रिका 'दिव्य ज्योति' शिमला से निकालनी आरम्भ की। इसके सम्पादक थे केशव शर्मा। यदि भारत की नहीं तो उत्तरी भारत की सम्भवतः यही एक संस्कृत की पत्रिका थी जिसने अपनी यात्रा के पचास वर्ष पूरे किए हों। चालीस और पचास के दशक में शिमला से निकलने वाले अनेक पत्र-पत्रिकाओं को संजोया। मदन लाल मधु और महेन्द्र प्रताप जोशी ने 'सुधा' नाम का एक साहित्यिक साप्ताहिक निकाला। घनश्याम ने 'हिम ज्योति' नाम से साप्ताहिक शुरू किया जिसका सम्पादन कुछ देर बाद रतन सिंह हिमेश ने किया। हिमेश ने अपना सम्पादकीय कौशल 'हिम तरंग' को भी दिया और अन्ततः शिक्षा विभाग के मासिक 'शिक्षा जगत' का सम्पादन करना आरम्भ कर दिया। प्रदेश के एक राजनेता हीरा सिंह पाल ने सन् 1948 में 'हिमाचल संदेश' आरम्भ किया जिसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारधारा को व्यक्त किया जाता था। इसका सम्पादन जयनन्द शास्त्री करते थे। एक अन्य कांग्रसी राजनेता जे.बी.एल.खाची ने अंग्रेजी साप्ताहिक 'चौलेंज' सन् 1956 में आरम्भ किया था। इस पत्रिका को चलाने में खाची का सहयोग जे.एन. कौल ने दिया था। इसी वर्ष स्वयं- सम्पादित जयचन्द की 'हिमवाणी' भी आरम्भ हुई। यह सभी पत्रिकाएं अधिक से अधिक 5-6 साल चलीं और जाने कहां विलोप हो गईं।

सन् 1955 शिमला के पत्र- पत्रिकाओं के इतिहास में एक मीलपत्थर कहा जा सकता है। शिमला से लोक सम्पर्क तथा पर्यटन विभाग ने, जी हां, यही नाम होता था तब इस विभाग का, एक पत्रिका निकाली 'हिमप्रस्थ' जिसके सम्पादक थे हरि कृष्ण मिट्टू और रामदयाल नीरज। इसमें कहानियों, कविताओं, आलेखों के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश में घटित घटनाएं संक्षेप में तथा चित्रों के माध्यम से दी जातीं थीं। इस पत्रिका ने हिमाचल के लेखकों की पहचान प्रदेश से बाहर बनानी आरम्भ की। बाहर और भीतर, इस पत्रिका का स्वागत हुआ। तब से लेकर आज तक यह पत्रिका निरंतर प्रकाशित हो रही है।

द्वारिका प्रसाद उनियाल का दी 'हिमालयन टाईम्स' उन दिनों का एक ख्यातिप्राप्त साप्ताहिक माना जा सकता है।

ग्रामीण विकास विभाग ने 1954 में एक विभागीय पत्रिका 'झरना' आरम्भ की जिसमें विकास सम्बन्धी लेख होते थे। जब पंचायत गतिविधियों ने जोर पकड़ा तब इस पत्रिका का नाम बदल कर 'पंच जगत' कर दिया गया। शिक्षा विभाग ने भी हिमशिक्षा नाम

से एक पत्रिका 60 के दशक के अन्त में निकालनी आरम्भ की जिसके सम्पादक हरिराम जस्टा थे।

सन् 1966 में पंजाब के कुछ भागों का विलय हिमाचल प्रदेश में किया गया और पहले से लगभग दुगनी जनसंख्या वाले बृहत्तर हिमाचल बनने के बाद हवा में यह बात तैरने लगी कि हिमाचल का अपना एक दैनिक समाचार पत्र होना चाहिए। हवा में तैरने को तैयार हुए सीताराम खजूरिया जिन्होंने वीर हिमाचल नामक दैनिक का सम्पादन कार्य सन् 1975 में सम्भाला। उन दिनों के आवाजाही के साधन, छपाई सामग्री, समयानुसार समाचार एकत्र करना शिमला जैसे एक-घोड़े वाले शहर में कठिन हो गया और अगले ही साल इसे शिवालिक संदेश का नाम देकर इसका रुख चंडीगढ़ को कर दिया गया।

अंग्रेजों के समय में एक पत्र में शिमला के डिप्टी कमिश्नर के लिए चार पंक्तियां छपीं थीं :

'It is hard we know
In a place so slow
To earn advancement and promotion
DCs in Shimla come and go.'

मैं समझता हूं कि जब मैं उन पत्रिकाओं के नाम आपके सामने रखूंगा जो 60 और 70 के दशक में शिमला से निकलीं थीं तब आपको शिमला का लेखन के प्रति रुझान नजर आएगा और आप भी यदि यही मानते हो कि शिमला ब्रिटिश टाईम्स से सैरगाह, आमोद-प्रमोद, कुल-कल्लोल का स्थान रहा है तो सम्भवतः शिमला के प्रति आपका दृष्टि-परिवर्तन हो। हिम प्रताप और हिम केसरी 1969-70 में शुरु हुईं और आठ-नौ साल तक चलीं। हिमाचल दर्पण 1965 में गोपीराम और कश्मीर सिंह ने आरम्भ किया और बाद में रामरतन पाल अपनी मृत्यु तक इसे सम्पादित करते रहे। कामेश्वर पंडित ने हिमाचल जनता का सम्पादन 1967-68 में किया था। लोकराज पत्रिका 1970 से 1974 तक छपती रही। महेन्द्र प्रताप जोशी की हिमवान 1970-71 में धमाकेदार रही। पर्वत की गूंज बिशम्बर लाल सूद का अखबार 1971 में छपना आरम्भ हुआ और उनकी कुछ वर्ष पूर्व हुई मृत्यु तक छपता रहा। राधा रमण शास्त्री की हिमबाला, खुशी राम शर्मा का हिमाचल सौन्दर्य और सीता राम खजूरिया का अंग्रेजी में न्यूज पोस्ट इस दौरान की अन्य पत्र-पत्रिकाएं हैं।

हिम-भारती, पहाड़ी भाषा में निकलने वाली पत्रिका भाषा, कला और संस्कृति अकादमी की देन है जो सन् 1967 में छपनी आरम्भ हुई और आज भी छप रही है। अकादमी ने ही एक लोक कला, संस्कृति, भाषा और साहित्य की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'सोमसी' सन् 1974 से निकालनी आरम्भ की। 'श्यामला' नामक संस्कृत पत्रिका अकादमी ने सन् 1989 से वार्षिकी के रूप में निकालनी आरम्भ की थी जिसे बाद में अर्ध-वार्षिक कर दिया गया। बलदेव शर्मा का मासिक पत्र शैल 1974 में निकलना आरम्भ हुआ जिसे जल्दी ही साप्ताहिक में परिवर्तित कर दिया गया था।

एक साप्ताहिक समाचार पत्र 'गिरिराज' सूचना एवं लोक सम्पर्क विभाग ने सन् 1978 में शुरू किया। 1984 में इसकी बिक्री 10,000 तक पहुंच गई थी। यह हर ग्राम पंचायत और सरकारी इदारों में जाने लगा। आज इसकी प्रसार संख्या 15 हजार से भी अधिक है।

सन् 1983 में शिमला में एक लेखक सम्मेलन हुआ था जिसकी रिपोर्ट देते हुए श्रीकृष्ण लिखते हैंः " आजादी के बाद दूर तक याद करें तो भी हिमाचल प्रदेश के साहित्यिक इतिहास में इससे पहले ऐसा कभी नहीं हुआ कि गुजरात से लेकर बंगाल और कश्मीर से लेकर महाराष्ट्र तक से शिमला आकर इतने अधिक लेखक एक साथ बैठे हों और देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के साथ साहित्यिक समस्याओं पर गंभीर विचार-विमर्श किया हो। यह अवसर जुटाया था हिमाचन प्रदेश के संस्कृति विभाग के सहयोग से शिमला की साहित्यिक संस्था शिखर ने। शायद हिमाचल के साहित्यिक इतिहास में यह भी पहला ही अवसर होगा कि यहां से शिखर जैसी साहित्यिक लघुपत्रिका का प्रकाशन शुरु हुआ, जिसके प्रवेशांक का इस अवसर पर अग्रज कथाकार जैनेन्द्र कुमार ने विमोचन किया।" 'शिखर' केशव के सम्पादन में एक अनियतकालीन पत्रिका के रूप में निकलनी आरम्भ हुई और इसके आठ अंक निकले।

भाषा और संस्कृति विभाग ने 1985 में विपाशा का पहला अंक निकाला। यह हिम-संस्कृति का बदला हुआ नाम था। इस नामकरण संस्कार में पंडिताई मैंने भी निभाई थी। सन् 1984 में मैं विभाग का निदेशक नियुक्त किया गया था और मैंने कहा 'हिम' नाम घिसा पिटा सा हो गया है - कोई नाम सोचो जो हिमाचल से जुड़ा भी हो और हमारी संस्कृति को हरा भरा भी रख सके। तब नाम सूझा विपाशा। शतद्रु, विपाशा और परुषणी यानि रावी, हिमाचल प्रदेश में बहने वाली तीन प्राचीन नदियां हैं जो आज भी यहां की लोक-नदियां कही जा सकतीं हैं। पीरपांजाल पर्वत शृखला के रोहतांग से निकल कर प्रदेश के मध्य से होकर बहने वाली आज की व्यास का नाम है-विपाशा। सन् 1984 में ही विभाग की उर्दू पत्रिका 'फिक्रोफन' निकलनी आरम्भ हुई जिसके सम्पादक थे धर्मपाल आकिल। जिस लगन और कर्तव्यनिष्ठा से उन्होंने पत्रिका को उसके लड़खड़ाते दिनों में सम्भाला वह काबिलेतारीफ है। डा. शबाब ललित और उनके बाद आजकल सुरेश शौक उसका सम्पादन कर रहे हैं। आकिल के बाद शबाब ललित ने फिक्रोफन का सम्पादन ग्यारह साल तक किया और इस पत्रिका को अपने जीवन का हिस्सा मान कर किया। मैं उनके आखिरी दिनों में जब उनसे उनके घर में मिला था। अपना एक शेर कहा था :

"दायरों के इस सफर की इन्तिहा कोई नहीं।

लौट महवर (एक्सिस) की तरफ ऐसे सफर को छोड़ दे।''

गौतम ने अंग्रेजी की एक मासिक पत्रिका हिम वॉयस 80 के दशक में आरम्भ की थी जो कुछ अंक निकलने के बाद पाठकों के आशीर्वाद रूपी ऑक्सीजन के सिलैन्डर के सहारे जी और फिर दम तोड़ गई। इसी दौरान सन्तोषी का दैनिक हिमाचल सेवा बड़े ही तूर्यनाद से आरम्भ हुआ था पर चंडीगढ़ से निकलने वाले दैनिकों की चकाचौंध में आंखों से ओझल हो गया। जिया सिद्दीकि सरीखे विद्वान ने लोक-सम्पर्क विभाग से सेवानिवृत्ति के उपरान्त एक सीमित उद्देश्य से छपने वाले हिमालय सूर्य का सम्पादन करना स्वीकार किया और सन् 1996 में रंगीन साप्ताहिक निकालना आरम्भ किया। एक पाक्षिक सन् 2008 में निकलना आरम्भ हुआ - जनपक्ष मेल - इसके मुख्य सम्पादक थे अनिल किम्टा। इसकी साज-सज्जा, चित्र-प्रकाशन, विन्यास इतना भव्य और सुन्दर था कि दिल्ली से निकलने वालीं आउटलुक और इंडिया टुडे का मुकाबला करता था। शायद दो साल चली होगी यह मेल, फिर इसके सामने आया लाल सिग्नल कभी हरा न हो पाया।

हिमाचल ट्रिब्यून, देव एस पांधी द्वारा सम्पादित, साप्ताहिक सन् 2000 से लगातार छप रहा है। यह हिमाचल टाईम्स नामक दैनिक का अंश है जिसका सम्पादन शिमला से पांधी द्वारा किया जाता है। संचायिका मेल, हर शाम निकलने वाली पत्रिका अप्रैल 1998 से मार्च 2000 तक चली। भारतेन्दु शिखर भी अप्रैल 2000 में आरम्भ हुआ और दो साल चलने के बाद सम्पन्न हुआ। इंडियन एक्सप्रेस जैसे प्रख्यात अखबार ने शिमला में सम्पादित 'शिमला न्यूजलाईन' 22 अप्रैल 2000 में आरम्भ की थी जो 17 फरवरी 2001 को अपने अन्तिम अंक के साथ समाप्त हुई।

लिटक्रिट इन्डिया नाम से अंग्रेजी की एक अर्ध-वार्षिक पत्रिका सन् 1997 में निकलनी आरम्भ हुई। इसका प्रवेशांक 12 पन्नों का पैम्फलेट जैसा है परन्तु सामग्री में हिमाचल तथा बंगाल के कवियों की रचनाएं हैं। यह पत्रिका अंग्रेजी भाषा में लिखे गए सृजनात्मक और आलोचनात्मक लेखों के लिए उन लेखकों के लिए एक प्लेटफार्म थी जो अच्छा लिख रहे हैं पर छपने के लिए पत्रिकाओं की तलाश में भटक रहे हैं। इसका सम्पादन पत्रिका के आरम्भ में डा. दिनेश सिंह ने किया। इसकी रूप-सज्जा और पृष्ठ-संख्या में लगातार बढ़ोतरी होती रही और इसके साथ एक और सम्पादक एनडीआर चन्द्रा जुड़े। इस पत्रिका ने न केवल भारत के बल्कि विदेशों के कवियों की रचनाएं भी छापीं। यह पत्रिका ग्यारह साल लगातार छपने के बाद सन् 2008 में बन्द हो गई। कारण वही पुराना रहा -आर्थिक संकट। इसके स्थान पर अर्ध-वार्षिक हाईफन नामक द्विभाषी पत्रिका-अंग्रेजी और हिन्दी में सन् 2010 से आनी प्रारम्भ हुई है। इसका सम्पादन भी डा. दिनेश सिंह ही कर रहे हैं। यह आर्थिक लाभ को ध्यान में न रखते हुए राजनीति से दूर अन्तरानुशासनिक शोध पर केन्द्रित अन्तरराष्ट्रीय पत्रिका के रूप में निकाली जा रही है। इसमें साहित्य के साथ सामाजिक सरोकार भी उठाए जाते हैं। हाल में इसका हाइकु विशेषांक निकला है।

प्रगतिशील इरावती, एक और समृद्ध पत्रिका है जो साहित्य सृजन व विचार की संवाहक है। यह सन् 2005 से निकलनी आरम्भ हुई। पहले धर्मशाला इसका सम्पादकीय पता रहा, बाद में हमीरपुर हो गया। इसके सम्पादक राजेन्द्र राजन हैं।

आश्रय, खलिनि से 'सेतु' नामक अर्धवार्षिक पत्रिका डॉ. देवेन्द्र गुप्ता के सम्पादन में सन् 2006 से लगातार निकल रही है।

यहां मैं यह भी कहना चाहता हूं कि विश्वविद्यालय, कॉलेज, स्कूल, हिमाचल प्रदेश प्रशासकीय अधिकारियों की 'पल्स', भारतीय प्रशासनिक अधिकारियों की 'गार्डियन', विधान सभा की पत्रिका, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान की पत्रिका, हिमाचल प्रदेश प्रशासनिक संस्थान की भी पत्रिकाएं निकल रही हैं, पर उनका वर्णन यहां नहीं कर रहा हूं क्योंकि वे विशेष वर्ग के लिए निकलने वाली पत्रिकाएं हैं।

मैं उन सभी महानुभावों का आभार व्यक्त करना चाहता हूं जिन्होंने शिमला से पिछले 166 सालों में ढेर सारी पत्रिकाएं निकाल कर पत्र-पत्रिका सफर में हमें, यानि पाठकों को, सहयात्री बनाया। शिमला से ही क्यों, पूरे हिमाचल से निकलने वाले पत्र-पत्रिकाओं के जनकों को मैं साधुवाद देता हूं जिनमें बिलासपुर से निकलने वाला 'सत्यम, शिवम, सुन्दरम' का मस्तूल वाक्य लिए, अठारह साल से चल रहा शब्द मंच भी है जिसका सम्पादन जय कुमार कर रहे हैं।

मैं पत्र-पत्रिकाओं की यात्रा के अन्तिम पड़ाव में सेतु के 2009 में निकले सातवें अंक के सम्पादकीय के साथ अपनी बात सम्पन्न करता हूं। यह सम्पादकीय पत्र-पत्रिकाओं की राह में आने वाली महत बाधा की ओर ध्यान आकर्षित करता है, जो थक-हार के बैठ जाने से हट कर चलते रहने का संदेश देता है। ''मुझे इस बात का अहसास होने लगा है कि लघु पत्रिका का जीवन बहुत संक्षिप्त होता है। सोचा था राह पर निकल रहा हूं सब कुछ ठीक रहेगा और कारवां बढ़ेगा। भूल ही गया था कि हिन्दी की रंग-बिरंगी पत्रिकाओं का सम्बन्ध व्यापारिक घरानों परिवारों से रहा है। इधर विश्वव्यापी मंदी के चलते विज्ञापनों पर भी मार पड़ रही है। ऐसी मार लघु-पत्रिकाओं को भी खाद-पानी से वंचित कर रही है। इस स्थिति का मुक़ाबला करने के लिए कदाचित हमें भी मितव्ययता, कुशलता और प्रभावशीलता जैसे वित्तीय प्रबन्धन के सूत्र पकड़ने पड़ेंगे क्योंकि 'द शो मस्ट गो ऑन'।

पंचवटी, ग्राम कनेना, डा. भराड़ी, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 001
मो. 94181 576598



संस्मरण



बहुरंगी लोक संस्कृति से रू-ब-रू

डोडरा-क्वार की यात्रा

• डॉ. सूरत ठाकुर

यदि पहाड़ों के असली सौंदर्य और रंग बिरंगी लोक संस्कृति के दर्शन करने का सच्चा लुत्फ उठाना हो तो उसके लिए हिमाचल प्रदेश के दूर-दराज के गांवों में जाइए। वहां के खेत-खलियान और पेड़-पौधे अपनेपन का एहसास दिलाते हुए मिलेंगे। जो भी पथिक यहां के गांवों में भ्रमण करता है, वह अपने साथ यहां की सुखद अनुभूतियों को समेटकर अपनी यात्रा को सफल समझकर दोबारा आने की लालसा लिए हुए वापिस लौटता है। मेरा भी जी करता है कि जीवन भर इसी तरह पहाड़ों की सैर पर निकलता रहूं। इसी चाहत से दूर-दराज के गांवों में जाने का अवसर मिल ही जाता है। देशाटन के बारे में जहन में हमेशा एक कवि की ये पंक्तियां गूंजती रहती हैं :- तुम रहे झील के पानी की तरह इस जग में
गर दरिया बनते तो बहुत दूर तक निकल सकते थे।

मुझे कुल्लू मण्डी के सांस्कृतिक अध्ययन दल के साथ शिमला जिले के पिछड़े एवं दुर्गम क्षेत्र डोडरा-क्वार जाने का अवसर मिला। यह सांस्कृतिक अध्ययन दल डॉ. विद्याचंद ठाकुर जिला भाषा अधिकारी मण्डी के नेतृत्व में गया था। उनके अतिरिक्त इस दल में मण्डी के छायाकार बीरबल शर्मा, कुलदीप गुलेरिया तथा मेरे सहित तीन व्यक्ति शामिल थे। रात्रि के 10.00 बजे मण्डी से बस द्वारा पहले चरण का सफर रात को शिमला होते हुए हाटकोटी तक किया। वहां अगली प्रातः 10.00 बजे बस से उतरे और सीधे मंदिर की ओर मुड़ गए।

हाटकोटी मंदिर

जुब्बल से 10 किलोमीटर आगे और रोहड़ू से 11 किलोमीटर पीछे हाटकोटी स्थित है। सरस्वती नगर के बायीं तरफ यह स्थान कोटि(करोड़ों) देवताओं का स्थान माना जाता है। प्रसिद्ध भाषाविद् मौलूराम ठाकुर का कहना है कि मूलतः हाटी शब्द से हाट शब्द व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है स्वर्णनिर्मित स्वर्णमय। इस तरह हाटकोटी का भाव करोड़ों देवी देवताओं की स्वर्णमयी धरती या नगरी हुआ। मंदिर में सातवीं-आठवीं शताब्दी की बनी हुई महिषासुरमर्दिनी की अष्टधातु की मूर्ति के दर्शन करके धन्य हुए। आठ भुजाओं वाली चार फुट ऊंची मूर्ति के दाहिने हाथों ने त्रिशूल, माला, चक्र और खड्ग और बायें हाथों में से तीन ने धनुष, घंटा, और ढाल तथा चौथे हाथ ने असुर केश पकड़े हुए हैं। देवी के सामने शुद्ध घी का दिया हर समय जलता रहता है। लोगों का मानना है कि हाटकोटी देवी का मंदिर द्वापर युग में राजा विराट ने बनवाया था। इसके साथ अन्य मंदिर भी बनाए गये थे, जिन्हें स्थानीय लोग'पांजो पांडू रै घोर्डू' के नाम से जानते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि दुर्गा ने महिषासुर को इसी स्थान पर मारा था। महिष दैत्य के दो प्रमुख सेनापति दुर्मुख और वाष्कल यहीं पर मारे गए थे। इनमें से दुर्मुख वर्तमान दरकोटी से और वाष्कल वर्तमान विष्कलटा नदी-क्षेत्र से सम्बन्धित माने जाते हैं। महिषासुर के पिता का नाम रंभ था। पिता के मरने पर पुत्र ने उसके नाम पर रंभीकोट या रंभीगढ़ राजधानी स्थापित की थी जो वर्तमान रांवीगढ है। इसी तरह हाटकोटी मंदिर समूह के निकट सोनपुर नामक पहाड़ी है, जिसके शिखर पर लगभग आधा किलोमीटर लम्बा-चौड़ा मैदान है। यह महिषासुर का केंद्र स्थान स्वर्णपुर बताया जाता है। मैदान के बीच

एक छोटा सा मंदिर है, जिसमें महिषासुर मर्दिनी की एक प्रस्तर प्रतिमा है। मैदान के दक्षिणी किनारे पर शिखर से कुछ नीचे लगभग 2 मीटर ऊंची और एक मीटर चौड़ी गुफा है। कहते हैं कि यह स्थान मूलतः राजा विराट का दुर्ग था। इन संदर्भों से विद्वानों ने माना है कि माता दुर्गा और महिष दैत्य का युद्ध यहीं हुआ था तथा यहां असुर के दमन पर दुर्गा स्वयं स्थापित हुई थी।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार दो बहनें लोक कल्याण हेतु प्रभु खोज में चल रही थी। चलते हुए छोटी बहन पीछे रह गई और बड़ी बहन आगे निकल गई। बड़ी बहन आगे जाकर एक स्पाट शिला पर समाधिस्थ हो कर अन्तर्ध्यान हो गई। बाद में वहीं पर एक मूर्ति प्रकट हुई और वहां के राजा ने मूर्ति को स्थापित करके मंदिर बनवाया। लोगों का यह भी मानना है कि कुल्लू जिला के खेखसू की कुसुम्भा और हाटेश्वरी दोनों सगी बहने हैं।

जुब्बल के राजा पदमचन्द्र ने सन् 1885 ई. में शिखर शैली के इस मंदिर की छत के आमलक को हटाकर छत को ढलवां बनाकर उस पर संगमरमर का आमलक चढ़ाया और उस पर सोने का कलश लगवाया। मंदिर के साथ एक शिव मंदिर भी है, जिसके आगे के दोनों हाथों में वीणा है तथा पीछे के एक हाथ में डमरू और दूसरे में मुण्ड माला धारण किए हुए हैं। मंदिर के भीतर पत्थर की अनेक मूर्तियां है। मंदिर के बाहरी भाग में दोनों ओर दो खड़े सिंहों की प्रतिमाएं हैं। नीचे की एक पंक्ति में नौ छोटी-छोटी मूर्तियां हैं जिनके दायीं ओर गणेश हैं। एक मूर्ति शिव के वीरभद्र रूप में और शेष सप्त मात्रिकाएं दिखाई गई हैं। इनके बाहर चंवर लिए हुए दो युवतियों की प्रतिमाएं हैं। मूर्ति के दोनों ओर तोरण पर 'भट श्री स्थानेन क्रापीतम कायस्थ देहल पुत्रापदमनाभ राघव वादितव्य घटीतम' लिखा हुआ है। मंदिर के बाहर दरवाजे के साथ एक चरु अर्थात् पुराना धातु का बर्तन जंजीर से बंधा हुआ नजर आया, जिसका दूसरा सिरा मंदिर के अन्दर दीवार से बंधा हुआ था। इसे बांधने के पीछे पुजारी ने बताया कि एक बार भादों महीने में पब्बर नदी में बाढ़ आई हुई थी। मंदिर के पुजारी को स्वप्न हुआ कि नदी में दो कलश बह रहे हैं। पुजारी नींद से जागने पर पब्बर नदी की तरफ दौड़ा तो देखा सचमुच दो कलश नदी में बह रहे थे। उसने दोनों कलशों को पकड़ कर मंदिर में पहुंचाया और मंदिर के दरवाजे के दोनों ओर रख दिया। कुछ दिनों बाद नदी में दोबारा बाढ़ आई तो वे दोनों कलश शोर मचाते और सीटी बजाते हुए नदी की ओर चलने लगे। पुजारी उनको चलता देख उनके पीछे भागा। उसके पकड़ में आने से पहले ही एक चरु नदी में बह गया।

पुजारी ने जैसे-तैसे दूसरे चरु को पकड़ लिया और उसे लाकर गणेश मूर्ति के साथ जंजीर से बांध लिया। आज भी जब कभी नदी में बाढ़ आती है तो कलश जंजीर से छूटने का उपक्रम करते हुए सीटियां बजाना शुरू करता है। शिमला जिला के तीन प्रमुख देवता डोमेश्वर, महासू और शिरगुल के अवतरण में भी इसी देवी का हाथ माना जाता है। हाटकोटी को विराट नगरी कहने के पीछे मौलू राम ठाकुर का तर्क है कि दुर्गा माता मंदिर के सामने छोटे से पर्वत टीले के दूसरी ओर पब्बर, विषकलटी और रावीं नदियों के संगम पर दायीं ओर एक विशाल समतल क्षेत्र है। इसमें देवी और कुछ लोगों के बड़े-बड़े खेत हैं। इस क्षेत्र को स्थानीय लोग पराहट कहते हैं। यह शब्द संस्कृत शब्द विराट का ही तद्भव रुप है-पराहट, बराट या विराट। यह संगम जुब्बल, कोटखाई, ठियोग और रोहड़ू क्षेत्र के लोगों का पवित्र तीर्थ स्थल माना जाता है। देवी का पुजारी भी यहां पर स्नान करके, झारी में पानी भर कर देवी स्नान के लिए लाता है। इस स्थान के पीछे मंदिरों के समूहों के खंडरात अभी भी दिखाई देते हैं। कहते हैं कि यह राजा विराट का दुर्ग था। इसके नीचे दक्षिण पूर्व की दिशा में दो मीटर ऊंची और एक मीटर चौड़ी गुफा है, जिसके मुख द्वार पर दो शिलालेख खुदे हुए हैं, उन्हें पहचाना नहीं जा सका। हाटकोटी के साथ टीले की दूसरी तरफ परहाट गांव विराट नगरी को सार्थक करता हुआ अवस्थित है। यहां पर पुरा-अवशेष अभी भी मौजूद हैं। यहां पर वर्ष में चैत्र शुक्ल पक्ष और आश्विन शुक्ल पक्ष में दो प्रमुख मेले लगते हैं, जिसमें श्रद्धालु दूर-दूर से आकर शिरकत करते हैं। लोग इस अवसर पर बच्चों के मुंडन भी करवाते हैं। मानता के तौर पर बकरे भी चढ़ाये जाते हैं। मंदिर परिसर में कीर्तन भवन, यज्ञशाला और सराय बनी हुई है।

हाटकोटी का अवलोकन करने के बाद हमने रोहड़ू की राह ली। रोहड़ू के बायीं तरफ 12 किलोमीटर की दूरी पर टीले पर स्थित गांव मूसली में पांडव मंदिर है जिसमें द्रोपदी सहित पांच पांडवों की मूर्तियां विराजमान हैं। यहां पर प्रत्येक 45 वर्ष के बाद एक हवन कुंड में विशाल हवन किया जाता है जिसमें दूर-दूर से लोग आकर शामिल होते हैं।

घाटी को उर्वरा बनाती पब्बर

इस क्षेत्र को पब्बर नदी घाटी के नाम से भी जाना जाता है। पब्बर नदी का उद्गम चंद्रनाहन से होता है। यह झील रोहड़ू उपमण्डल के अंतिम गांव जांगलिक से 45 किलोमीटर दूर समुद्र तल से 4267 मीटर ऊंचाई पर चांशल दर्रे के दायीं तरफ स्थित है। रोहड़ू क्षेत्र की समृद्धि में इस नदी का बहुत योगदान है। चंद्रनाहन से पब्बर एक धारा के रूप में प्रवाहित होती हुई वींगू नामक पहाड़ के पार्श्व में से होकर माईला गांव में माईला खड्ड से मिलकर नदी का रूप धारण करती है। यहां से यह दिउदी, बरशील, धमवाड़ी, गुम्मा, संदासू गांवों के खेतों को सींचती हुई चिड़गांव पहुंचती है। चिड़गांव में आन्ध्रा खड्ड इसमें मिलती है। यहां पर एक विद्युत परियोजना भी बनी है। बड़ियारा में मोराल डंडा से मथरेटी खड्ड इसमें मिलती है। उसके बाद यह सीमा, सैंजी होते हुए रोहड़ू पहुंचती है। रोहड़ू में इसमें शिकड़ी खड्ड मिलती है। यहां से यह दक्षिण पूर्व की तरफ जाती है और आगे उत्तराखण्ड के आराकोट में यमुना की सहायक नदी तौंस में जा मिलती है। इस घाटी के किनारे पब्बर नदी



के जल द्वारा सिंचाई होने से धान के क्यार अधिक हैं। इसके जल में पलने वाली ब्राउन और रेनबो ट्राउट मछली प्रजातियां इसकी विशेषता है।

रोहड़ू से दूसरी बस द्वारा चिड़गांव होते हुए शाम के 6.00 बजे हम टिक्कर गांव पहुंचे। घाटी के अधिकांश मकान पहाड़ी छत शैली के दिखे। अधिकांश मकान काठकुणी से निर्मित तीन से पांच मंजिल के दिखाई दिए। पांच मंजिल वाले मकानों में धरातल मंजिल 'ओबरा' कहलाती है। इसमें पशु रखे जाते है। दूसरी मंजिल 'फोड' कहलाती है। इसमें अनाज वगैरह रखा जाता है। तीसरी मंजिल आवासीय कक्ष तथा चौथी व पांचवीं मंजिल छत के नीचे हालनुमा कक्ष होते हैं। आवासीय मंजिल के चारों तरफ बरामदा होता है, जिसे स्थानीय बोली में 'तौंग' कहा जाता है। फोड़ के एक हिस्से में माहुटियां रखीं होती हैं, जिनमें मधुमक्खियां पाली जाती है। रोहड़ू, किन्नौर आदि क्षेत्रों में घर से थोड़ी दूर पर 'कोठार' भी होते हैं, जिनमें अनाज रखा जाता है। नयी महिलायें कुर्ता, पजामी तथा ढाठू पहनती हैं। साठ साल से ऊपर की महिलायें 'जुड़की' पहनती हैं। पुरुष लम्बी ऊन की जुड़की के साथ चूड़ीदार पायजामा पहनते हैं। गाची कमर में महिला पुरूष दोनों द्वारा पहनी जाती है। गहनों की यहां की महिलायें बहुत शौकीन है। गोखरू, दरोटू, बरागर, आज भी पहने जाते हैं। टिक्कर से हमें पैदल चलना था। बस से उतरते ही हमें डोडराक्वार जाने वाले दो व्यक्ति मिले। उनमें से एक का नाम खूब राम था, जो डोडरा क्वार में पुलिस चौकी में कुक था। दूसरा मान बहादुर, क्वार में वन विभाग की निरीक्षण कुटीर में चौकीदार था। हमने उनसे आग्रह किया कि वे हमारा डोडरा-क्वार तक मार्गदर्शन करें। वे दोनों सहमत हो गए। उन्होंने बताया कि टिक्कर से 5 किलोमीटर ऊपर चढ़ाई पर लोट नामक गांव में रहने और भोजन की व्यवस्था है। अतः हम शाम को ही टिक्कर से चल कर रात्रि 9.00 बजे लड़ोट गांव पहुंचे। समुद्र तल से 2575 मीटर की ऊंचाई पर स्थित यह गांव रोहड़ू तहसील का आखिरी गांव है। हमारे पास वहां के वन विभाग के एक छोटे से गैस्ट हाऊस का परमिट था, परन्तु वहीं ढाबे वाले के पास भोजन की व्यवस्था थी, अतः हमने उसी के पास ठहरना उचित समझा। मार्गदर्शकों ने रात को ही हमें बताया था कि प्रातः सांध्य बेला में ही चांशल दर्रे की चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। 11.00 बजे दिन से पहले इस दर्रे को लांघना आसान होता है। हमने रात में ढाबे वाले से नाश्ते और लंच के लिए परांठे बनाने को कह दिया। सुबह 6.00 बजे उठकर 7.00 बजे तक अपना सामान पैक करके चांशल जोत की ओर चल पड़े। हालांकि अगस्त माह में जोत पर हमेशा धुंध छाई रहती है, परन्तु उस दिन मौसम साफ था।

चांशल की चढ़ाई

चढ़ाई चढ़ते हुए हमको आधा घण्टा ही हुआ था कि अचानक मेरे पेट में असहनीय पीड़ा आरम्भ हुई। मेरे कहने पर साथियों ने टीले पर कुछ देर तक आराम किया। मेरी व्यथा सुनकर हमारे पत्रकार साथी बीरबल शर्मा ने मुझे पेट दर्द की दवा दी। दवाई खाने के बाद भी मुझे चढ़ाई चढ़ने में कठिनाई हो रही थी। एक बारगी तो निर्णय लिया कि वापिस मुड़ जाऊं, लेकिन पुनः ख्यालआया कि पहाड़ों पर चढ़ते समय कोई यात्री यात्रा बीच में ही छोड़कर वापिस लौटता है तो अशुभ संकेत होता है। इससे दूसरे साथियों का मनोबल भी गिर जाता है, अतः मन में पक्का निश्चय करके ऊपर को ही चढ़ता रहा। 9.30 बजे तक हम एक पानी वाली जगह पर पहुंच गए। ठण्डे पानी में कुछ ऐसी औषधि थी कि पानी पीते ही मेरे पेट का दर्द ठीक हो गया।

वहां से ऊपर की चढ़ाई वृक्ष रहित थी। हम जितना ही ऊपर चढ़ रहे थे, ऑक्सीजन कम होती जा रही थी, जिससे चढ़ने में मुश्किल होने लगी थी। वनस्पति रहित क्षेत्र में हरी घास के लम्बे-चौड़े चरागाहों में भेड़ों के दो तीन झुण्ड नजर आ रहे थे। ठीक 12.15 बजे हम चांशल दर्रे पर थे। प्रायः दर्रे पर ठण्डी हवा के झोंके चलते हैं, यहां पर भी हवा के झोंके वेग गति से चल रहे थे। परन्तु आंखें थी कि प्रकृति के अदभुत नजारों को देखकर तृप्त ही नहीं हो रही थी। कादम्बिनी के संपादक रहे राजेंद्र अवस्थी के संपादकीय कालचिंतन में प्रकृति के बारे में लिखे एक-एक शब्द स्मृतिपटल में घूम रहे थे- 'प्रकृति बालमन की तरह खेलती है। नवयुवती की तरह अपने उभरते हुए अंगों को देखती है। फिर वह सभी पूर्ववर्ती मान्यताओं के उलझन भरे अभेद्य उपादानों को ध्वस्त कर ऐसा झीना आंचल हवा में फेंकती है कि हवा भी पूछती है कहां है मेरा आंचल। हवा नंगी नहीं होती। हमारा भ्रम है कि हवा वस्त्रहीन है। वह लहरें लेती है, पालने झुलाती हैं, हवा थपेड़े मारती है, हवा दुलराती है। हवा में लोरियों का अजस प्रवाह है, हवा में संगीत है, हवा में गीत है, हवा चतुर है, हवा चालाक है, हवा मांगती है, तो हवा देती भी है।' चारों ओर का मनमोहक दृश्य देखकर हम पिछली सारी थकान भूल गए। समुद्र तल से 4500 मीटर की ऊंचाई पर स्थित चांशल दर्रे पर भगवान शिव के एक छोटे से मंदिर के आसपास छोटे-छोटे पत्थर खड़े किए हुए थे। इन पत्थरों के बारे में

खूबराम ने बताया कि ये पत्थर शिवजी को भेंट किए जाते हैं। शिवजी से सफलता पूर्वक जोत को पार करने की कामना की जाती है। पुहाल लोग यहां पर समय-समय पर भेड़ू चढ़ाते हैं। चांशल दर्रे से रोहड़ू तहसील के अधिकाश गांवों चिड़गांव, टिक्कर, जुब्बल तथा डोडरा-क्वार का दृश्य बड़ा ही मनोरम दिखाई दिया।

चांशल दर्रे पर काफी देर तक आराम करने के बाद हमने डोडरा के लिए उतराई में पग बढ़ाने आरम्भ किए। जितनी चढ़ाई लड़ोट गांव से चांशल दर्रे तक चढ़ी थी, डोडरा पहुंचने के लिए उतनी ही उतराई उतरनी थी। चांशल से 5 किलोमीटर नीचे गजां थाच के आसपास भी भेड़ों के बहुत से झुण्ड चर रहे थे। एक स्थान पर पीठ पर 40 लीटर की कैनी उठाए तीन चार गुज्जर मिले, जो अपना दूध रोहड़ू ले जा रहे थे। गजां थाच में दो गुज्जर परिवार अपनी भैंसों के साथ ठहरे हुए थे। उनकी झोंपड़ी में हमने दो किलो दूध पिया। गजां थाच से डोडरा तक लगभग 6 किलोमीटर का रास्ता घने जंगल से होकर गुजरता था। खरश, रखाल, रई, तोस के आसमान छूते पेडों के बीच से होकर गुजरना अच्छा लग रहा था। डोडरा-क्वार के लिए बिजली पहुंचाते सड़क के किनारे बिजली के खम्बे भी देखे।

लगभग शाम 5.00 बजे हम डोडरा पहुंचे। रोपण खड्ड के दायीं तरफ समुद्र तल से 2200 मीटर की ऊंचाई पर स्थित 150 घरों वाले गांव डोडरा में सरकार ने लगभग सभी सुविधायें उपलब्ध करवाई हैं। छोटे बच्चों को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहन देने के लिए महिला एवं समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित एक आंगनवाड़ी केंद्र में 80-90 शिशुओं को लाभ पहुंच रहा था। मिडल स्कूल में 170 छात्र पढ़ रहे थे, जिसमें लड़कियों की उपस्थिति 35 प्रतिशत थी। आयुर्वैदिक चिकित्साल्य, पशु चिकित्साल्य, पटवारखाना, वन रक्षक का दफ्तर तथा खाद्य आपूर्ति विभाग का डिपो सरकारी सुविधा की साक्षी थी। गांव की सभी गलियां पक्की थी। कुछ दिन पहले ही एक डिस्क एंटीना भी लगाया गया था, जिससे लोग दूरदर्शन के कार्यक्रमों का लुत्फ लेने लगे थे। कुछ घरों में सूर्य ताप विद्युतीकरण भी देखने को मिला।

गांव के पटवारी ठाकुर सिंह ने बताया कि डोडरा पंचायत में पुजारली तथा चमडार गांव शामिल हैं। इस पंचायत में 232 हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य है। डोडरा में फाफरा, चुलाई, कोदा, तथा राजमाह की मुख्य फसलें होती है। यद्यपि लोगों का रहन-सहन साधारण दिखा, परन्तु लोग जागरूक लगे। मेहमानों का विशेष ध्यान रखते हैं। लोकनृत्यों के प्रति विशेष रुझान है। हमारे अनुरोध पर यहां के युवक-युवतियों ने आधे घण्टे के अन्दर नाटी का आयोजन किया। गांव के बीच में सतलुज शैली में बना देवता जाख का तीन मंजिला पुरातन मंदिर पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण और पूर्णतः सुरक्षित था। मंदिर के तोरण द्वार की लकड़ी पर भगवान विष्णु की मूर्ति उकेरित थी। दरवाजों में दस, बीस, पच्चीस, और पच्चास पैसे के अनगिनत सिक्के श्रद्धालुओं द्वारा चिपकाये हुए थे।

पटवारी ने बताया कि इस गांव का प्रमुख उत्सव फागुन मास में होने वाला फाग है। 15 माघ को स्वर्ग से सकुशल लौटने पर देवता का गूर भारथा सुनाता है और उसी दिन फाग उत्सव का दिन निश्चित किया जाता है। डोडरा में नंदवाण, जेतवाण, भुगवाण तथा परवाण इन चार खानदान के लोग रहते हैं। इन्हीं खानदान के लोग ही फाग उत्सव में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

जेतवाण खानदान के 17 परिवार हैं, इनमें से हर घर से एक व्यक्ति 'ओइड़ा' बनता है। ओइड़ा एक दिन पूर्व एकांत में सोता है और दूसरे दिन प्रातः उठकर जब वह घर लौटता है, तो उसे देवी के नाम से तैयार की गई सूर की बोतल दी जाती है, जिसे वह मांस अथवा सब्जी के साथ ग्रहण करता है। उसके बाद गांव के लोग उसके पास आकर उसे सफेद लट्टे की पगड़ी पहनाते हैं। उस समय उस घर के आंगन में वाद्यवादन होता है। तत्पश्चात ओइड़ा और गांव



वाले गांव के मध्य एक निश्चित स्थान पर एकत्र होते हैं। वहां पर भी उसे सूर पिलाई जाती है। शाम के समय सभी ओइड़े अपनी-अपनी खुखरी और थैलेनुमा वस्त्र लेकर गांव के उत्तरी भाग की ओर प्रस्थान करते हैं। वहां पर बर्फ के गोलों को अपने थैलों में भरकर बिना बात किए गाजे-बाजे के साथ गांव लाया जाता है। मंदिर में पहुंचने पर हवा में बंदूक से फायर किया जाता है। मंदिर की दीवार पर बने छेद से मंदिर के अन्दर की मूर्ति पर रखे कंवल फूल को बर्फ के गोलों से गिराने का प्रयत्न करते हैं। फिर सभी गांव वाले आपस में बर्फ से खेलते है। उसके बाद सभी ओइडे माला में नाचते हैं और नंदवान खानदान का एक व्यक्ति उनकी खुखरी लेकर और उन्हें घर ले जाकर सूर से उनकी सेवा करते है। तीन चार दिन तक खाने-पीने का दौर चलता है। स्त्रियां नाटी में व्यस्त हो जाती हैं।

रात्रि डोडरा के वन विभाग के रैस्ट हाऊस में बिताने के बाद अगली सुबह हम क्वार की ओर निकले। डोडरा से क्वार की दूरी

6 किलोमीटर थी। जहां डेढ़-दो घण्टे में आसानी से पहुंच गए। डोडरा से गोसांगू पुल तक उतरे। गोसांगू पुल धार्मिक दृष्टि से डोडरा-क्वार तहसील के लोगों का आस्था का केंद्र है। डोडरा नाला और रोपण खड्ड के संगम पर स्थित गोसांगु पुल में एक चाय के स्टाल में चाय पीने का अलग ही आनन्द था। क्वार में हमारे दोस्त वीरसिंह के क्वार्टर में रात बिताई। वीरसिंह हिमाचल प्रदेश खाद्य एवं आपूर्ति विभाग में खाद्य निरीक्षक के पद पर थे। वे शिमला के रामपुर उपमण्डल के अन्तर्गत पंद्रह-बीस इलाके के सरपारा गांव के थे। रात उनके वहां गुजारने के बाद अगली प्रातः जिशकुन गांव की राह ली। रास्ता रोपण खड्ड की बायीं और दायीं तरफ से होता हुआ 6 किलोमीटर लम्बा था। 11.30 बजे हम जिशकुन पहुंच गए। क्वार में बताया गया था कि जिशकुन गांव में हमें एक स्टॉल में खाना मिल जाएगा। जब हम वहां पहुंचे तो मालूम हुआ कि ढाबे का मालिक कई दिनों से बीमार है, जिस कारण ढाबा बन्द पड़ा है। भोजन प्राप्त करने का और कोई साधन न देखकर हमारे एक साथी ने गांव के एक नौजवान से कहा कि वह हमें भोजन तैयार करें, हम उसे रुपये दे देंगे। उस युवक ने सहर्ष खाना बनाना स्वीकार किया। जिशकुन गांव में लगभग 120 घर थे। गांव के बीचो-बीच संवत् 2018 में बना देवता जाख का एक छोटा सा मंदिर था। देवता अधिकतर जाख गांव में ही रहता था। कभी-कभी जिशकुन के मंदिर में भी देवता की पालकी लाई जाती थी। जिशकुन गांव के ठीक सामने उत्तर की ओर 6 किलोमीटर की दूरी पर धारा और जाखा से पीछे रोपण जोत होते हुए सांगला घाटी को पैदल रास्ता है। स्थानीय लोगों से मालूम हुआ कि जाख देवता का सम्बन्ध किन्नौर के वेरिंग नाग के साथ है। दोनों देवता एक दूसरे के यहां आते जाते रहते हैं। डोडरा के बाद जाखा दूसरी पंचायत है, जहां देवता जाख को पूजा जाता है। जाख पंचायत के अन्तर्गत बाउटा, पंडार, जिशकुन, जाखा, धारा तथा मटयान्टु गांव पड़ते हैं। दोपहर का भोजन करने के बाद हम 5.00 बजे तक क्वार लौट आए।

प्राध्यापक राजकीय महाविद्यालय,
कुल्लू हि.प्र.- 175101 मो. 98163-99807

प्रशासनिक मुख्यालय क्वार

डोडरा-क्वार का उपमण्डल मुख्यालय क्वार में है वहां हम उपमण्डलाधिकारी से मिले। विकास के बारे में उपमण्डलाधिकारी ने बताया कि इस वित्तीय वर्ष में यहां रास्तों को खच्चर योग्य बनाना, खड्डों पर पुलों का निर्माण करना, तथा अन्त्योदय, आई.आर.डी.पी., अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों के उत्थान के कार्य किए जा रहे हैं। डोडरा क्वार की संस्कृति बड़ी रुचिकर है। पूरी तहसील में देवता जाख की मान्यता है। देवता के कर्मचारियों में पूजगी, कारदार, गूर तथा हलबंदी अर्थात् चौकीदार मुख्य हैं। पूरी तहसील के सभी गांवों में हर वर्ष 20 श्रावण से 8 भादों तक देवता के मेले मनाये जाते हैं। देवता की पालकी को रंग बिरंगे नये-नये परिधानों से सुसज्जित किया जाता है। पुरुष, स्त्रियां, बच्चे सभी पारम्परिक वेशभूषा में नाटी में मस्त रहते हैं। पुरुषों की अपेक्षा महिलायें नाटी में अधिक शरीक होती हैं। लड़कियां पूरे वर्ष रात के भोजन के बाद आधी रात तक नृत्य गीत में मग्न रहती हैं। इस क्षेत्र में 70 प्रतिशत प्रेम विवाह होते हैं। विधिवत विवाह भी होते है। इसमें लड़के लड़की की इच्छानुसार घर के बड़े बात चलाते है। मंगनी करते समय लड़के वाले लड़की को खर्चे के लिए कुछ पैसे देते हैं। विवाह की तिथि देवता ही निश्चित करता है। एक परम्परा यह भी है कि यदि निश्चित दिन किसी कार्यवश दुल्हा घर से दूर गया हुआ हो तो उस स्थिति में उसकी दुल्हन को नारियल के साथ विवाह करके लाया जाता है। कई बार देवता से पूछ कर दुल्हे के छोटे भाई को ही दूल्हा बनाकर दुल्हन लाने भेजा जाता है। बाद में जब दुल्हा घर लौटता है तो वह दुल्हन को पत्नी के रूप में स्वीकार करता है।

पर्यटकों के साथ यहां के लोगों का व्यवहार सौहार्दपूर्ण है। क्वार में भी जब हमने यहां की पारम्परिक वेशभूषा में नाटी देखने की इच्छा व्यक्त की तो गांव के युवक-युवतियों ने सहर्ष हमारा अनुरोध स्वीकार कर लिया। डोडरा-क्वार की औरतें आभूषणों की बहुत शौकीन दिखीं। चाहे युवती हो, चाहे प्रोढ़ हो या बूढ़ी औरत हो सबने चांदी के गहने पहने हुए थे। गले में चांदी की टोरटरी, तथा रुपये की माला दोलड़ी, कान में मुगड़ी, और कनताली, सिर पर झालार, टोपी के ऊपर तुनकी, कमर में चांदी की गाची, कलाई में दामुले आदि चांदी के गहने इनके सौंदर्य में चार चांद लगा रहे थे। अगले दिन क्वार से पहले गोसांगु पुल, वहां से उत्तर प्रदेश जो वर्तमान में उत्तराखण्ड के नाम से अलग प्रदेश बन गया है, के उत्तरकाशी होते हुए वापिस लौटना था। गोसांगु पुल में देवता जाख को प्रणाम करके हमने एक घण्टे के अन्दर सेवाग्राम से 5 किलोमीटर दूर दांताधार में पहुंचकर एक ढाबे में दोपहर का भोजन किया। दांताधार के ठीक सामने बायीं तरफ घुणी गांव तथा नीचे खाना गांव में महासू देवता तथा बटासन देवता के मंदिर दिखाई दिए। दोपहर 3.00 बजे दांताधर से चल पड़े। रास्ता रोपण खड्ड के साथ-साथ था। शाम 7.00 बजे तक हमारा सफर ठीक रहा, परन्तु उसके बाद अन्धेरा होते ही जोर की वर्षा होने लगी। एक तो अनजान रास्ता, दूसरे अन्धेरा और उस पर वर्षा के कारण एक-एक पांव उठाना भारी पड़ रहा था। फिर भी हम चलते रहे और रात 9.00 बजे नैटवाड़ पहुंच गए। वहां एक ढाबे में भोजन करके वहीं सो गए। अगली सुबह नैटवाड़ से बस पकड़ी और विकास नगर, पौंटा, चंडीगढ़ होते हुए इस इच्छा से लौट आए कि एक बार फिर डोडरा-क्वार जाएंगे।

मील पत्थर

आदि सभ्यताओं की राहों की निशानियां

प्राचीन व्यापारिक मार्ग

● प्रो. प्यार सिंह ठाकुर

पहाड़ों से पहाड़ मिले, धारों से धार
नदियों से नाले मिले, वादियों से दर्रे
राहें बनती गईं, फासले कम होते गए
लोग चलते गए और कारवां बनता गया।

उपर्युक्त पंक्तियां प्राचीन हिमाचल प्रदेश की कठिन भौगोलिक परिस्थितियों पर सटीक बैठती हैं। आज समूचे प्रदेश में सड़कों का जाल बिछा हुआ है और अब पहाड़ ठिगने लगने लगे हैं। परंतु आज के सड़क मार्ग प्राचीन राहों की निशानियां हैं। आज के शहर, घाटियां इन प्राचीन राहों पर बने यात्रियों व व्यापारियों के ठहराव के निशान हैं। हिमाचल प्रदेश की ये प्राचीन राहें पहाड़ों के ऊपर दूर-दूर तक दिखाई देती हैं और नयनों को सुंदर लगती हैं। ये सर्पीली राहें, घाटियां, ढलानें, दर्रे सचमुच कभी हिमाचली जनमानस की भाग्य रेखाएं हुआ करती थीं। इन राहों पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पड़ावों (ठहरावों) का निर्माण किया गया ताकि आने-जाने वाले राही, व्यापारी आराम से ठहर सकें। स्थानीय राजा लोग व धनवान व्यापारियों द्वारा इन ठहरावों का निर्माण करवाया। समय ने करवट बदली और ये ठहराव गांव के रूप में अस्तित्व में आए। आज बहुत से गांव सराहन, सराय आदि कभी व्यापारियों, यात्रियों के ठहराव थे। देव-आस्था होने पर स्थानीय राजाओं व व्यापारियों ने इन ठहरावों पर मंदिरों व सरायों (धर्मशालाओं) का निर्माण करवाया।

हिमाचल प्रदेश की ये प्राचीन राहें पहाड़ों के ऊपर दूर-दूर तक दिखाई देती हैं और नयनों को सुंदर लगती हैं। ये सर्पीली राहें, घाटियां, ढलानें, दर्रे सचमुच कभी हिमाचली जनमानस की भाग्य रेखाएं हुआ करती थीं। इन राहों पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पड़ावों (ठहरावों) का निर्माण किया गया ताकि आने-जाने वाले राही, व्यापारी आराम से ठहर सकें।

विदेशी व्यापारियों व घुमन्तू यात्रियों के यात्रा-विवरणों का उल्लेख इन मार्गों को दर्शाता है। पश्चिमी हिमाचल के भीतरी क्षेत्रों में सतलुज घाटी से होते हुए मार्ग का विकास हुआ जो कि हिमालय पार के व्यापारिक केन्द्रों को भारत के मुख्य भाग में विकसित व्यापारिक केन्द्रों से जोड़ता रहा है। बुशहर के ऊपरी क्षेत्र व्यापार मार्ग के चलते बहुत महत्त्वपूर्ण रहे हैं क्योंकि ये लद्दाख और तिब्बत को जाने वाले मार्ग में पड़ता है।

लद्दाख, तिब्बत, कश्मीर, मध्य एशिया तथा देश के अनेक देशों के व्यापारिक वर्ग हिमाचल में आकर स्थानीय व्यापारियों के साथ व्यापारिक आदान-प्रदान करते रहे हैं। बुशहर रियासत की राजधानी रही रामपुर व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। रामपुर नगर अच्छी किस्म की ऊन, शाल के लिए प्रसिद्ध रहा है। ये ऊनी वस्त्र हिमालय पार के चारागाह स्थलों से लाकर देश के अन्य व्यापारियों को बेचे जाते थे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी हिमालयन व्यापार नीति बनाकर इन इलाकों को अपने अधिकार क्षेत्र में लाने का प्रयास किया। ब्रिटिश सरकार पश्चिमी हिमालय से लेकर तिब्बत के व्यापारिक मार्ग पर अपना कब्जा करना चाहती थी। अतः 1814-15 की आंग्ल-नेपाल लड़ाई के बाद सुगौली-संधि के तहत पहाड़ी राज्य सीधे ब्रिटिश सरकार के अधीन आ गए। पहाड़ी रियासतों के अधिकारियों, राजाओं को सनद (ब्रिटिश पत्र) प्रदान की गई परंतु इन रियासतों का स्वामित्व उन्हें सशर्त दिया गया कि वे ब्रिटिश व्यापारियों को अपनी रियासतों में बिना कर व चुंगी दिए व्यापारिक सामान सहित आने-जाने की आज्ञा प्रदान करेंगे तथा कई निःशुल्क मजदूर भी उपलब्ध करवाएंगे ताकि सड़कों को चौड़ा किया जा सके। पिंजौर महत्त्वपूर्ण मार्ग था जो कि मैदानी क्षेत्रों को जोड़ता था। यह पिंजौर से लेकर तिब्बत तक बुशहर क्षेत्र व तिब्बत के बीच अंतर्राष्ट्रीय सीमा बनाता था। यह रियासत प्राचीन काल में किन्नौर, तिब्बत तक फैली हुई थी। इस अंतर्राष्ट्रीय मार्ग को सही रखने की जिम्मेवारी बुशहर रियासत को दी गई थी। यही पारंपरिक मार्ग आज का हिंदुस्तान-तिब्बत राजमार्ग के नाम से जाना जाता

है। सन् 1860 के बाद हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग शिमला तक वाहनों के लिए ठीक हो गया था। शिमला से आगे का रास्ता पैदल मार्ग ही रह गया क्योंकि पैसे का अभाव था। इस मार्ग के साथ भलकू की कहानी जुड़ी हुई है। इन्होंने आधुनिक हिंदुस्तान तिब्बत का सर्वेक्षण एक साधारण कम्पास से किया था। इसी के आधार पर अंग्रेजों ने शिमला-कालका रेलवे लाइन को जन्म दिया। भलकू मेट के परिवार वालों का कहना है कि इन्होंने 1847 के आस- पास श्रमिक के रूप में लोक निर्माण विभाग में नौकरी शुरू की थी। भलकू चायल के गांव से तालुक रखते थे। विभाग में लगभग 30 वर्ष नौकरी की थी। नारकंडा के पश्चात आज के हिंदुस्तान तिब्बत मार्ग में बहुत बदलाव हुआ। आज का आधुनिक मार्ग काफी नीचे ऊपर उठकर गांवों से दूर सतलुज के किनारों से जाता है। बदलती परिस्थितियों में नए गांव इस मार्ग के किनारे बस गए हैं और पुराने गांव भी इस मार्ग तक बिखर गए हैं। किन्नौर के साथ अधिकतर व्यापार तिब्बत के लोगों द्वारा किया जाता था। भारतीय व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए सन् 1929 में पंजाब सरकार (ब्रिटिश सरकार) ने सर एडवर्ड वेकफिल्ड को आंग्ल- तिब्बती व्यापारिक संबंधों के लेकर नियुक्त किया था। ब्रिटिश व्यापारी एजेंसी गरतोक में स्थापित की गई थी। साथ ही 1929 में सर एडवर्ड वेकफिल्ड को तिब्बत के अधिकारियों, शासक से बातचीत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने नियुक्त किया था। रामपुर का लवी का मेला प्राचीन पारंपरिक व्यापारिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। रामपुर का बसाया जाना व्यापारिक आवश्यकताओं के तहत ही हुआ है।

सरकारी आवास, नजदीक मानसिक स्वास्थ्य अस्पताल, गांव बाग, डाकघर समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 005, मो. 98175 51904

नदी घाटी सभ्यता और पहाड़

सतलुज तथा सरस्वती नदियों की घाटियों से सिन्धु तथा हड़प्पा सभ्यता के नगरों को पक्की ईंटें बनाने के लिए बहुत लकड़ी जाया करती थी। सतलुज नदी के किनारे रोपड़ के पास कोटला निहंग खान में इस सभ्यता के जो अवशेष प्राप्त हुए, उनमें एक मुहर और कुछ कुल्हाड़ियां भी थीं। 'मोहनजोदड़ो' से त्रिमुखी जानवरों की मुहरें भी प्राप्त हुई हैं जिनके सींग हिमालय में पाए जाने वाले जंगली बकरे के प्रकार के हैं।

वर्ष 1964 में शिमला जिले की तहसील रोहड़ू में रोहड़ू नामक नगर के पास पब्बर नदी के किनारे चिड़गांव के लिए मोटर योग्य सड़क बनाते हुए जब खेत को आठ-नौ फुट नीचे काटा जा रहा था तो उसकी तह में 8 गुना 8 गुना 3 इंच आकार की ईंटों का बना हुआ फर्श मिला जो बहुत ही सुंदर ढंग से बनाया गया था। वर्षा ऋतु में वहां कुछ खिलौने भी मिले। इन खिलौनों में दो मिट्टी के बने हुए बैल और दो बैलगाड़ी के पहिए हैं। बैलों के कुहान आदि वैसे ही हैं जैसे कि हड़प्पा आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। एक पहिए पर बेलबूटे का कार्य किया हुआ है। यहां से मिट्टी के बर्तनों में टुकड़े भी बहुत पाए गए। हिमाचल की इन भीतरी घाटियों में मिट्टी की इन आकृतियों का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि प्रागैतिहासिक काल में यहां के लोगों का सिन्धु तथा सरस्वती सभ्यता के लोगों के साथ आदान-प्रदान था।

शैव व शाक्त मत के समान ही हिमाचल में नाग मत भी प्रचलित था। हिमाचल में नागों के अनेक मंदिर हैं। इनमें नाग देवता की पत्थर तथा धातु की मूर्तियां पाई जाती हैं। नाग पूजा के उदाहरण सिन्धु सभ्यता के अवशेषों में भी प्राप्त होते हैं। एक मुद्रा पर नाग की पूजा करते हुए एक व्यक्ति का चित्र है। एक और मुद्रा पर योग आसन में बैठे शिव हैं जिनमें घुटनों पर और सामने चार नाग दिखाए गए हैं जो स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करता है कि शैव परंपरा और नागों का यह सम्बन्ध प्रागैतिहासिक है। पालतू जानवरों का उपयोग यहां के निवासियों ने सामान ढोने तथा परिवहन के लिए आरंभ किया। पशुओं के सामन ढोने की सुविधा के कारण उन्होंने सिन्धुवालों के साथ अपने व्यापारिक सम्बंध कायम किए। सिन्धु घाटी को निर्यात होने वाली वस्तुओं में मुख्य थीं देवदार की लकड़ी, बारहसिंगा के सींग, जड़ी-बूटियां और शिलाजीत। इसके बदले में वहां से खाद्य सामग्री, सूती कपड़ा और धातु के औजार आयात करते होंगे। देवदार की लकड़ी का निर्यात नदियों के माध्यम से सिन्धु घाटी के स्थल मोहनजोदड़ो तक पहुंचा होगा, ऐसा इतिहासकारों का मत है तथा आज से छह दशक पूर्व का हिमाचल से नदियों के माध्यम से लकड़ियां मैदानों तक जाती थीं। अंग्रेजों ने भारत में रेल लाइन के निर्माण में भी यहां के जंगलों से लकड़ियों का प्रयोग किया है।

(साभार : हिमाचल का इतिहास, मियां गोवर्धन सिंह)

संदर्भ :

1. Majumdar, R.C. History anmd Culture of the Indian People : Vedic Age Lindon, 1952, p. 196
2. Annals of Bhandharkar Oriented Research Institute, Vo, XXIII, 1942, p. 187

यातायात

खुशहाली की जीवन रेखा

हिंदुस्तान-तिब्बत सड़क

● विनोद भारद्वाज

दूरी व प्रगति सूचक चिह्न 'मील पत्थर' वहीं रहते हैं लेकिन रास्ता आगे चलता रहता है। ये मील पत्थर मार्ग पर गुजरने वाले हर पथिक, काफिले को मंजिल तक पहुंचाने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। मनुष्य ने अपने कदमों से हजारों मील लम्बे रास्ते को नापा है। इसी जिजीविषा से उसने नए स्थलों, क्षेत्रों की खोज की है। पैदल चलने के साथ-साथ उसने घोड़ों, खच्चरों, ऊंटों, हाथियों से सुविधानुसार अपनी यात्रा तय की है। पहाड़ों पर उसने पगडंडियों, ढलानों, नदी, नालों को लांघकर अपनी यात्रा को पूरा किया है।

मनुष्य ने पहाड़ों के सीने को चीर कर राह बनाई है। यह राह किसी जीवन रेखा से कम नहीं है जिसने सड़क मार्ग के रूप में पहाड़ के जीवन को दुर्गम से सुगम बनाया है।

ऐसा ही एक जीवन रेखा है- हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग जो अंबाला से आरंभ होकर तिब्बत की सीमा तक पहुंचती है। इस मार्ग ने 165 वर्षों के दौरान इतिहास को बनते तथ बदलते देखा है। इन सबके गवाह हैं मार्ग पर लगे वे मील पत्थर जो आगे बढ़ने का संकेत आज भी करते हैं। हिमाचल में परवाणू में प्रवेश के साथ यह सड़क सोलन, शिमला व किन्नौर जिलों को लांघती हुई तिब्बत तक पहुंचती है। यह इस क्षेत्र की प्रगति, उन्नति तथा संपन्नता का मुख्य मार्ग है, जिसने इन क्षेत्रों की तकदीर व तस्वीर बदली है।

पर्यटकों को हिमाचल की वादियों में लाना तथा यहां उत्पादित कृषि व बागबानी उत्पादों को देश तथा विदेशों की मंडियों तक पहुंचाने में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

इस मार्ग को बनाने में तत्कालीन लॉर्ड डलहौजी की कल्पना तथा भलकू जमादार के योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। सबसे ऊपर क्षेत्र की श्रमशक्ति को नमन, जिनके खून-पसीने से लथपथ कड़ी मेहनत के आगे उत्तुंग पहाड़, ढलानें, नाले भी बौने रह गए। हिंदुस्तान तिब्बत मार्ग में अनेक छोटे-बड़े मार्ग आकर मिलते हैं। यह मुख्य नदी की तरह हैं, जिसमें अनेक धाराएं समाहित होती हैं। इस मुख्यधारा पर प्रतिवर्ष बागबानी का लगभग दो हजार करोड़ का व्यापार होता है। पर्यटन तथा अन्य क्षेत्रों में योगदान का इस बात से पता चलता है कि इस मार्ग के इर्दगिर्द स्थित सभी कस्बे तथा गांव आज समृद्धि के पर्याय हैं।

सहस्राब्दि के आंरभ में हिंदुस्तान-तिब्बत सड़क ने निर्माण के 150 वर्ष पूरे किए हैं। जून 1850 में हिंदुस्तान में ब्रितानिया के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी (1848-1856) ने हिंदुस्तान-तिब्बत सड़क के निर्माण का सपना संजोया था। सड़क के निर्माण को मंजूरी देने के पीछे आज अनेक कारण इतिहास के पन्नों में मिलते हैं, इसमें मुख्यतः चीन व तिब्बत के साथ बड़े पैमाने पर व्यापार शुरू करना था। इस उद्देश्य की सत्यता वर्षों पूर्व नेपोलियन महान द्वारा अंग्रेजों पर की गई टिप्पणी से सही साबित होती है जिसमें उसने ब्रितानियों को 'एक व्यापारी समुदाय' की संज्ञा दी थी।

तत्कालीन ईस्ट इंडिया कंपनी के पास मौजूद तमाम मशीनरी को इस सड़क निर्माण में प्रयोग किया गया था। उस समय इस सड़क निर्माण को 'ग्रेट हिंदुस्तान-तिब्बत रोड' का नाम दिया गया। इसका निर्माण कार्य कमांडर-इन-चीफ सर चार्लज नेपियर की अध्यक्षता में आरंभ हुआ। मेजर कनेडी, सचिव नेपियर को इस कार्य का जिम्मा सौंपा गया। स्थानीय भाषा में उस समय इस कार्य को 'किंनगरी साहिब का सड़क' कहा जाता था।

सर जॉन लायरैंस जो वर्ष 1863-69 तक हिंदुस्तान के वायसराय रहे, ने 1851 में कहा था कि विगत 1850 में लॉर्ड डलहौजी द्वारा मैदानों को चीनी सीमा से जोड़ने का जो कार्य शुरू किया था, वह प्रगति पर है। इस परियोजना पर अभी 15 वर्ष और लगेंगे तथा जहां तक इस सड़क का सवाल है यह पुरानी सड़क से कहीं अच्छी व कम ढलानदार है। इस सड़क का निर्माण मुफ्त में रियासतों द्वारा भेजे गए मजदूरों द्वारा किया जा रहा है जो कि उस समय प्रचलित बेगार प्रथा व बिना वेतन मजदूरी प्रथा की पुष्टि करता है।

परंतु है यह सत्य है कि 19वीं सदी में कालका से शिमला के मध्य सड़क को 'ग्रेट ट्रक रोड' कहा जाता था। यह सड़क

हम पाठकों की जानकारी के लिए प्रमाण-पत्रों के कुछ मूल अंश यहां प्रस्तुत कर रहे हैं

10 जुलाई, 1858 को शिमला से सुपरिंटेंडेंट, हिल रोड, कैप्टन डब्ल्यू बरगिज द्वारा जारी प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि भलकू जमादार को जुलाई से अक्तूबर 1857 को दिल्ली में फील्ड फोर्स में नियुक्त किया गया, जबकि उसके श्रेष्ठ गुणों का पूर्ण दोहन नहीं किया गया। भलकू सेना परिवहन ट्रेन के साथ वितरण एजेंट नियुक्त था।

तदोपरांत उसे शिमला के उत्तर में हिंदुस्तान-तिब्बत सड़क निर्माण में लगातार नियुक्त किया जिसमें उसने अच्छा कार्य किया।

2 मार्च, 1862 को सुबाथु से डिप्टी कमिशनर, हिल स्टेट डब्ल्यू.एम. हेय द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र

मैं शिमला हिल्ज़ को भारी मन से छोड़ते हुए अपने दोस्त भलकू की सरकारी सेवाओं के प्रति निष्ठा को सहारते हुए कुछ शब्द लिख रहा हूं।

अथक परिश्रमी, एकनिष्ठ और ईमानदार व्यक्ति किसी भी श्रेणी में मिलना नामुमकिन है और मैं विश्वास करता हूं कि वह इस महान सड़क के निर्माण से सरकारी सेवा में जुड़ा रहेगा जिसे वह निष्ठापूर्ण चाहता है, वह अपनी पूर्ण लगन से इस कार्य को अंजाम देने में जुटा है।

25 जुलाई, 1868 को कोटगढ़ से अधिशासी अभियंता कैप्टन ए.एम. लंग द्वारा जारी प्रमाण पत्र

भलकू सब-ओवरसियर जो कि लोक निर्माण विभाग में कार्यरत है, विगत दस वर्षो से हिल रोड डिविजन से जुड़ा है। वह जिस पद पर कार्यरत है, उसके लिए अत्युत्तम है। वह विलक्षण प्रतिभा का धनी, निडर, क्रियाशील, निपुण आरोहक, किसी भी दुर्गम रास्तों को चढ़ने व लांघने में दक्ष, बुशहर के निवासियों पर पूर्ण नियंत्रण तथा उनसे अधिक से अधिक कार्य लेने में निपुण। अत्यधिक बुद्धिमान तथा पहाड़ी सड़क के निर्माण में उपयुक्त होने वाले सभी कार्यों की सुगमता से समझ रखता है। कठिन पहाड़ी रास्तों में सर्वेक्षण के कार्य में उसका कोई सानी नहीं है। भलकू असाधारण उत्साही और धैर्यशील व्यक्ति है जो रात-दिन सड़क निर्माण व सर्वेक्षण में जुटा रहता है।

वह हिल रोड के निर्माण में विलक्षण प्रतिभा तथा सरकार की प्रशंसा का पात्र है।

29 सितंबर, 1870 को आरचिड करेगिन द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र

भलकू, सब-ओवरसियर हिंदुस्तान-तिब्बत रोड में, जब मैंने 1865 से कार्यभार संभाला है, तब से तैनात है। वह इस तरह की

घोड़ा-गाड़ी, पालकियों तथा उस समय चलने वाले वाहनों के लिए उपयुक्त थी। इस सड़क की ढलान बहुत ज्यादा नहीं थी तथा सड़क के किनारे यात्रियों के ठहरने के लिए विश्राम गृहों की उपलब्धता थी तथा इनमें नौकरों की व्यवस्था बहुतायत में होती थी। पुरानी सड़क पालकी में सवारी करने वालों, खच्चरों व कुलियों के लिए उपयुक्त थी तथा अनेक स्थानों पर यह ढलानदार थी।

कालका तथा शिमला के मध्य सरकारी घोड़ा गाड़ी सेवा तथा बैलगाड़ी ट्रेन चलती थी। उस समय कालका से शिमला तथा शिमला से चीनी सीमा ही मुख्य सड़क थी। इस सड़क का कुछ हिस्सा ब्रितानिया सरकार के पास था तथा कुछ हिस्सा जिन रियासतों से यह सड़क गुजरती थी, उनके पास था।

आज इस सड़क पर 165 वर्षों से जीवन अनवरत चल रहा है। परंतु बहुत कम लोगों को यह मालूम होगा कि आरंभिक दिनों में कालका से शिमला पहुंचने के लिए दो मार्ग थे।

पुरानी सड़क कसौली, सुबाथु होते हुए शिमला पहुंचती थी जो मात्र पैदल यात्रियों, घोड़ों, खच्चरों, गधों और पशुओं के लिए थी तथा इस पर पहिया गाड़ी नहीं चलती थी। इस सड़क की लंबाई कालका से शिमला 41 मील थी। कालका से कसौली 9 मील, कसौली से कक्कड़हट्टी 11 मील तथा सायरी से शिमला की यात्रा 10 मील थी। इस मार्ग पर यात्रियों को ठहरने की पूर्ण व्यवस्था थी। कसौली में दो, कक्कड़हट्टी में एक, हरिपुर में एक सरकारी होटल के अलावा दो निजी होटल थे तथा सायरी में एक होटल था। इस तरह इस मार्ग से कालका से शिमला तक की यात्रा आठ घंटों में पूरी होती थी। पालकी से आने वाले यात्री शिमला 20 घंटों में पहुंचते थे।

नई कार्ट रोड जो कि अधिक घुमावदार थी, डगशाई तथा सोलन से होकर शिमला पहुंचती थी। इस मार्ग से शिमला की दूरी साढ़े सत्तावन मील थी। इसमें कालका से धर्मपुर 15 मील, धर्मपुर से सोलन 12 मील, सोलन से क्यारीघाट साढ़े चौदह मील तथा क्यारीघाट से शिमला 16 मील थी। इस मार्ग पर धर्मपुर, सोलन तथा क्यारीघाट में विश्राम गृह मौजूद थे। इस मार्ग पर पहिया गाड़ियों

पहाड़ी सड़क निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। मैं उसे ईमानदार, फुर्तीला और अपने कार्य में लगन रखने वाला समझता हूं। उसमें बेतहाशा सहनशक्ति है। जब कार्य पर लगा हो तो वह कार्य के मध्य में कभी भी प्रसन्न नहीं होता। ढलानों पर सर्वेक्षण करने की कला का बखान करना ही मुश्किल है जिसे वह बखूबी से करता है।

6 नवंबर, 1870 को धर्मपुर से अधीक्षण अभियंता, विहार वृत ले. कर्नल डेविड बदिगज द्वारा भलकू को लिखे पत्र के अंश

मैंने नजीर अली को दो बार पत्र द्वारा सूचित किया कि वे तुम्हें बताएं कि मैं पहाड़ों पर आया हूं तथा मैं आपसे मिलना चाहता हूं। मुझे लगता है कि उसने मेरे पत्रों का कोई नोटिस नहीं लिया।

मैं बहुत बीमार हूं तथा लिखने में असमर्थ हूं। मैं आज अंबाला जाऊंगा तथा बाद में आगरा जहां मैं दस दिन तक रहूंगा। मेरी बहुत इच्छा थी कि मैं आपसे (भलकू) दोबारा मिलूं। मेरे भाई ने पिछले वर्ष आपका संदेश दिया था। उन्होंने मुझे बताया कि आपने बुशहर में उनकी सहायता की।

यह मेरे लिए बहुत निराशा की बात है कि मैं आपसे नहीं मिल सका, उसका पूर्ण रूप से युसुफ जिम्मेदार है।

अगर मैं जिंदा रहा तो मैं बंबई होता हुआ यूरोप जाऊंगा। मैं वापस हिंदुस्तान नहीं आऊंगा। मैं सदैव आपसे मुत्तलिक किसी भी कार्य को अंजाम दूंगा क्योंकि मैं हिंदुस्तान में आप जैसे बहुत ईमानदार, चुस्त, सच्चे इनसान को जानता हूं।

अगर आप मेरे को आगरा में मेजर रोस, आर.ए. के पते पर पत्र-व्यवहार कर बता सकते हो कि मैं आपको इंग्लैंड से क्या भेजूं, इस पर मुझे प्रसन्नता होगी। मुझे मालूम है कि आपका सांसारिक चीजों में मोह नहीं है, लेकिन कोई एक चीज तो होगी जो आप पसंद करते होंगे।

मैं इससे अधिक नहीं लिखूंगा, लेकिन आपकी राजी-खुशी की कामना करता हूं। और आप अपने से ऊपर के अधिकारियों को खुश रखने में कामयाब होंगे।

जनवरी 9, 1877 को शिमला से उप अरण्यपाल वन, सतलुज मंडल ले. कर्नल सी. बचलोर द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र

भलकू सब-ओवरसियर निर्माणाधीन हिंदुस्तान-तिब्बत रोड पर कोटगढ़ से आगे का इंचार्ज था। इस समय मैं हिल रोड मंडल का इंचार्ज था। मुझे इस समय में भलकू के कार्य का व्यक्तिगत निरीक्षण करने का मौका नहीं मिला। लेकिन सहायक अभियंता श्री डेविस ने अपनी निरीक्षण दौरे में भलकू के कार्य की प्रशंसा की है।

के चलने की अनुमति थी तथा मैदानों से आने वाले भारी वाहन जिनमें घोड़ा घाड़ी, बैलगाड़ी मुख्य थे, इस मार्ग से गुजर सकते थे।

वर्ष 1874 में दो पहिया गाड़ी जिसे तांगा गाड़ी कहा जाता था जो मुख्यतः हिंदुस्तान के मैदानी इलाकों में चलती थी, को यात्रियों की सुविधा के लिए आरंभ किया गया था। इससे शिमला की यात्रा 8 घंटों में पूरी होती थी।

हिंदुस्तान-तिब्बत रोड शिमला से आरंभ होता था। यह शिमला से शुरू होकर फागू, ठियोग, मतियाना, नारकंडा, कोटगढ़, निरथ, रामपुर, सराहन, तरंडा, पांडा, निचार, वांगतू, काल्पा (चीनी), रारंग, एकपा और जांगी तक जाती थी। जांगी में सड़क का अंतिम छोर था। इसके आगे के बारे में मेजर मोरडन की गाइड में (1893) में उल्लेख मिलता है कि यह दुर्गम मार्ग लाबरग, सुगनम, नामगिया तथा अंत में शिपकी पहुंचता था। यह मार्ग शिमला से 228 मील था। शिमला से शिपकी को जाते समय रास्ते में नारकंडा से थोड़ा आगे जाने पर एक वैकल्पिक मार्ग- बागी, खदराला, तकलेच होकर जाता था, जो कि अंत में मुख्य मार्ग से रामपुर के समीप मिल जाता था। यह 22 मील का सफर बहुत ही लुभावना माना जाता था। अंग्रेज इसे अपर फारेस्ट रोड कहते थे तथा यह घने जंगलों से गुजरता था। शिमला से शिपकी के मध्य 11 विश्राम गृह थे, जिन्हें डाक बंगला कहा जाता था। जो 8 से 11 मील पर स्थित थे। उस समय इस सड़क की चौड़ाई 6 फुट के लगभग थी।

अश्व मार्ग जिसे 'हिंदुस्तान-तिब्बत रोड' कहा जाता था, शिमला से आरंभ होकर इसके अंदरूनी इलाकों महासू, ठियोग, नारकंडा, कोटगढ़, रामपुर से गुजरती हुई बुशहर रियासत की चीनी तहसील के अंतिम छोर तक पहुंचती थी। यह सड़क सतलुज को कोटगढ़ से साढ़े आठ मील की दूरी पर मिलती थी। सतलुज के बाएं किनारे चलते-चलते यह रामपुर से साढ़े अठावन मील की दूरी पर वांगतू में सतलुज पर बने पुल से गुजरती थी तथा सतलुज के दाएं किनारे चलते-चलते यह चीनी तक पहुंचती थी। रास्ते में एक सड़क इससे अलग होकर उत्तर-पश्चिम को मुड़कर स्पीति को पार

करते हुए लेह तथा यारकंद पहुंचती थी। रामपुर से लेह मार्ग की विस्तृत जानकारी सर डेबिज ट्रेड रिपोर्ट, 1862 में मिलती है।

उस वक्त शिमला के अंदरूनी इलाकों में समान ढोने के लिए खच्चर ट्रेन (म्यूल ट्रेन) शिमला के उपनगर संजौली से आरंभ होती थी तथा संजौली की पहाड़ी को लांघकर ढली, फागू, ठियोग व नारकंडा तथा रामपुर रियासत तक जाती थी। संजौली से ढली तक का रास्ता अत्यंत दुर्गम था। उस समय इस रास्ते को आसान बनाने के लिए ढली व संजौली के मध्य सुरंग बनाने की सोची गई। इस सुरंग को बनाने में 18 हजार कैदियों व मुफ्त मजदूरों ने काम किया। यह कार्य वर्ष 1850 में मेजर बरिगज की देखरेख में शुरू हुआ था तथा 1851-52 की सर्दियों में पूर्ण कर लिया गया था। आरंभ में पहाड़ में छेद बनाकर सुरंग रूपी रास्ता बनाया गया। यह 1902 तक इसी रूप में रहा। इसी वर्ष लॉर्ड किचनर घोड़े से इसे पार करते वक्त इस अंधेरी सुरंग में अपनी टांग तोड़ बैठे, तब इस सुरंग को चौड़ा करने व मरम्मत करने की बात सोची गई।

वर्ष 1850 में लॉर्ड डलहौजी द्वारा शुरू की गई परियोजना ने इस क्षेत्र को देश के विभिन्न भागों से जोड़ा तथा तिब्बत व यारकंद, कश्मीर से ऊन, सूखे मेवों, बहुमूल्य पत्थरों का बड़े पैमाने पर व्यापार हुआ। इस व्यापार का जीता जागता उदाहरण है इस मार्ग पर पड़ने वाले रामपुर में आज भी आयोजित होने वाला लवी मेला है।

पुरानी हिंदुस्तान-तिब्बत रोड को अब राष्ट्रीय उच्च मार्ग नं. 22 के नाम से जाना जाता है। यह अब अंबाला से आरंभ होकर तिब्बत की सीमा पर स्थित कौरिक तक जाती है। इसी सड़क के माध्यम से आज इसके साथ लगते इलाकों में समृद्धि आई है। कड़छम तक इस सड़क देखरेख का कार्य हिमाचल प्रदेश लोक निर्माण विभाग के पास है तथा इससे आगे का हिस्सा सीमा सड़क संगठन के पास है।

यह मार्ग आज भी देशी ही नहीं अपितु विदेशी पर्यटकों के लिए लुभावनी यात्रा से कम नहीं है। इस मार्ग पर आज बसें, जीपें, कारें, ट्रक तथा अन्य वाहन दौड़ रहे हैं। परंतु वर्षों की इस यात्रा ने उन लोगों को भुला दिया है जिनकी बदौलत यह मार्ग इन क्षेत्रों की जीवन रेखा बना है। इस मार्ग पर असंख्य मजदूरों ने अपना बलिदान दिया है। हम सब उन सभी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। इन गुमनाम मजदूरों की याद में रामपुर से 20 किलोमीटर की दूरी पर ज्यूरी नामक स्थान पर एक स्मारक बनाया गया है।

आज मात्र कुछ लोगों को यह मालूम है कि कालका से शिमला तक आने वाली रेल लाइन का सर्वेक्षण भलकू नाम के एक व्यक्ति ने किया था। परंतु इससे भी महत्त्वपूर्ण है कि रेल मार्ग के सर्वेक्षण से पहले भलकू ने हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग के सर्वेक्षण में भी अहम भूमिका निभाई थी। वर्ष 1858 से 1878 तक भलकू को अंग्रेज उच्च अधिकारियों द्वारा दिए गए प्रमाण-पत्रों में इसके जीवंत उदाहरण मिलते हैं। इसमें भलकू को हिल रोड मंडल का सब ओवरसियर की उपाधि दी गई है।

हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग का कार्य वर्ष 1850 में आरंभ हुआ। कार्य आरंभ होने पर विभिन्न अधिकारियों ने अपने प्रमाण-पत्रों तथा भलकू को लिखे पत्रों में उसकी ईमानदारी, लगन व कर्तव्यनिष्ठा का जो बखान किया है, ऐसा आज देखने को नहीं मिलता। इतिहास के पन्नों में दर्ज यह दस्तावेज उस महान व्यक्तित्व की विलक्षण प्रतिभा का बखान करते हैं जिस बारे में आज की पीढ़ी को कुछ भी मालूम नहीं है। भलकू इंजीनियर की कारीगरी के चर्चे हिंदुस्तान ही नहीं, बल्कि इंग्लैंड में भी होते थे।

कहते हैं कि एक बार वायसराय की पत्नी ने भलकू से मिलने की इच्छा प्रकट की। जब भलकू उनके सामने गए तो उस पर पहले तो वह हंसी और फिर बोली, भलकू तुम सुंदर क्यों नहीं हो? भलकू ने तुरंत उत्तर दिया, सुंदरता की आवश्यकता आपको है हमें तो दिमाग की जरूरत है। जब उसने चांदी के रुपये व दो पगड़ियां उसे देनी चाही तो भलकू ने पगड़ियां ही कबूल कीं।

भलकू के बाल्यकाल, शिक्षा व मृत्यु के कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलते। जनश्रुति है कि वे जगन्नाथ पुरी की यात्रा के दौरान जब मंदिर में गए तो वहीं अंतर्ध्यान हो गए।

1850 में लॉर्ड डलहौजी की कल्पना को सरंजाम दिया भलकू ने। अशिक्षित इंजीनियर ने दुनिया के सामने वह मिसाल कायम की जिसका उदाहरण कहीं और देखने को नहीं मिलता। हिंदुस्तान-तिब्बत सड़क पर भलकू के नाम पर एक भी मील पत्थर, स्थान नहीं है। मात्र सड़क से हटकर शिमला से कुछ दूर मशोबरा व ठियोग के मध्य 16 किलोमीटर के हिस्से की सड़क आज भी स्थानीय लोग भलकू रोड के नाम से जानते हैं। आज तक किसी ने उस महान व्यक्ति के नाम पर सड़क का नामकरण की नहीं सोची।

उस वीर पुरुष के लिए हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि कालका-शिमला रेलमार्ग व हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग के निर्माता के नाम हम कुछ हिस्से समर्पित करें ताकि हम भावी पीढ़ी को पहाड़ों के इस महान फक्कड़ इंजीनियर की याद दिला सकें।

उस वीर पुरुष के लिए हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि कालका-शिमला रेलमार्ग व हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग के निर्माता के नाम हम कुछ हिस्से समर्पित करें ताकि हम भावी पीढ़ी को पहाड़ों के इस महान फक्कड़ इंजीनियर की याद दिला सकें।

दयाल हाउस, जाखू रोड, संजौली, शिमला-6

(हिमप्रस्थ, जुलाई, 2000)



हिमाचल का आकर्षण
कालका-शिमला रेलमार्ग

● एस.आर. हरनोट

हिमाचल प्रदेश की बहुमूल्य धरोहरों के इतिहास में 9 नवंबर, 2008 का दिन सदैव स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज रहेगा क्योंकि इसी ऐतिहासिक दिन प्रदेश के प्रतिष्ठित कालका-शिमला रेलमार्ग को विधिवत रूप से विश्व धरोहर का दर्जा प्राप्त हुआ। प्रदेश के लिए इस ऐतिहासिक उपलब्धि की शुरुआत 7 जुलाई, 2008 को उस समय हुई जब कनाडा के क्यूबेक में यू. एन. शैक्षणिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संस्थान (यूनेस्को) की बैठक में कालका-शिमला रेलमार्ग को विश्व धरोहर का दर्जा प्रदान किया गया। चायल निवासियों, विशेषकर झाजा गांव के बाशिंदों के लिए यह दिन इसलिए विशेष महत्त्व रखता था कि इसी गांव के एक अनपढ़ फकीर ने इस रेलमार्ग के सर्वेक्षण में न केवल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई लेकिन ब्रिटिश सरकार के बड़े-से-बड़े इंजीनियरों को भी आश्चर्य चकित कर दिया था। बताया जाता है कि अपनी असफलता के लिए इंजीनियर जॉन बड़ोग ने तो आत्महत्या ही कर ली थी क्योंकि उसने इस मार्ग की सबसे लंबी सुरंगों का सर्वेक्षण गलत कर दिया था जिसे भलकू ने ही सही किया था। यह बात सर्वविदित है कि बाबा भलकू की सूझबूझ और दिव्य शक्तियों के परिणामस्वरूप ही यह रेलमार्ग शिमला पहुंचा लेकिन उन्हें न तो हिमाचल में और न ही भारतीय रेल से वह सम्मान कभी मिल पाया जिसके बाबा भलकू हकदार थे। यही कारण है कि आज हमारे पास उनका एक मौलिक चित्र भी मौजूद नहीं है जबकि ब्रिटिश शासकों के आदमकद चित्र आज भी हमारे दफ्तरों, संस्थानों और रेलवे के कार्यालयों में सम्मान के साथ शोभा बढ़ाते दिखते हैं। शिमला-कालका रेलमार्ग का सर्वेक्षण सन् 1887 में हुआ था। इसी वर्ष के अंत में इस रेलमार्ग की रिपोर्ट तैयार करके ब्रिटिश प्राधिकरण की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत कर दी गई।

ब्रिटिश सरकार ने इस रोमांचक रेलमार्ग की स्वीकृति दे दी और अनेक औपचारिकताएं पूरी करके इस रेल मार्ग पर पटरियां बिछाने का काम अंबाला-दिल्ली कंपनी को सौंपा गया जिसे पूरा होने में तीन वर्ष लगे और नवंबर, 1903 को इसपर पहली रेलगाड़ी कालका से शिमला के चलाई गई। यह बाबा भलकू का ही करिश्मा था कि उन्होंने जाबली से आगे उस समय अपनी एक साधारण लकड़ी की छड़ी से इस रेल मार्ग का सर्वे किया जब ब्रिटिश इंजीनियर की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उनके इंजीनियरों और

अफसरों ने बहुत प्रयास किए कि इस रेलमार्ग को आगे ले जाया जाए लेकिन उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि जाबली से आगे इसकी ऊंचाई को कैसे कम किया जाए और कहां से आगे ले जाया जाए।

बताया जाता है कि भलकू उस समय हिंदुस्तान-तिब्बत रोड में काम कर रहा था और उसके किसी साथी ने जब यह बात उसे बताई तो उसने इस कार्य को अंजाम देने के लिए अपनी सेवाएं देनी चाही लेकिन कुछ अंग्रेज अफसरों और इस मार्ग के निर्माण में तैनात ब्रिटिश सरकार के तकनीकी अधिकारियों और कर्मचारियों ने जब भलकू का हुलिया देखा तो उसका खूब मजाक उड़ाया। लेकिन कुछ अफसरों को उसकी दिव्य शक्तियों का पता था और उसे यह काम सौंप दिया। काम सौंपते ही उसने अपनी छड़ी से जब आगे का सर्वेक्षण किया तो उसकी समझ और बुद्धि को सलाम करना पड़ा। उसके बाद शिमला तक रेलमार्ग और सुरंगों के निर्माण में भलकू की सेवाएं ली जाती रहीं। यही नहीं, बाबा भलकू का हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग के निर्माण में भी बड़ा योगदान रहा है। उनके उत्कृष्ट काम को देखते हुए अंग्रेज इंजीनियरों ने उन्हें कई बार पत्र लिखकर सम्मानित किया और 18.9.1875 को ब्रिटिश सरकार के लोक निर्माण विभाग के अंतर्गत 25 सालों की अति विशिष्ट और अभूतपूर्व सेवाओं के लिए प्रथम श्रेणी ओवरसीयर की पदोन्नति प्रदान की गई। शायद भारत या विश्वभर में यह पहला और आखिरी ऐसा उदाहरण है जब एक निपट अनपढ़ व्यक्ति को उसकी असाधारण योगयता के लिए बिना शैक्षणिक योग्यताओं के इतने बड़े पद पर सम्मानित किया गया। इससे स्पष्ट है कि अंग्रेज सरकार के

छुक-छुक ट्वॉय ट्रेन

● कुमार विपिन

विश्व की ऐतिहासिक घरोहरों में शुमार हिमाचल प्रदेश का कालका-शिमला रेल ट्रैक किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यह रेल ट्रैक अपना लंबा इतिहास समेटे है और यहां जैसा आनंद कहीं ओर नहीं उठाया जा सकता। बाबा भलकू के कुशल सर्वे के बूते अंग्रेजों ने इस रेल लाइन को तैयार करके एक ऐसा अनूठा रेलवे ट्रैक तैयार किया, जो देश- विदेश के लाखों पर्यटकों का मनमोह लेता है। यूनेस्कों से कालका-शिमला रेल ट्रैक को विश्व धरोहर का दर्जा देकर इसका महत्त्व काफी बढ़ा दिया है। यह आज प्रदेश की ऐसी धरोहर बन गई है, जिसे विश्व के सभी देशों से मान्यता मिली है। समुद्र तल से 4200 फुट की ऊँचाई पर यह रेल ट्रैक पहुंचाया गया है। इस पर छुक-छुक टाय ट्रेन चलती है और यहां रेल के सफर का आनंद उठाने के लिए हजारों सैलानी कालका से शिमला पहुंचते हैं। कुल 48 किलोमीटर का सफर तय करने में यह टाय ट्रेन करीब पांच घंटे का समय लेती है। इस धीमी गति की ट्रेन 22 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से यह रेल चलती है और इस पर सफर करके अलग की आनंद आता है। कालका- शिमला रेल ट्रैक वर्ष 1891 में प्रस्ताव तैयार किया गया था। तत्कालीन वायस राय लार्ड कर्जन ने नवंबर 1903 में रेल ट्रैक का कार्य आरंभ किया गया था। कुल 96 किलोमीटर लंबा रेल ट्रैक तैयार किया गया। यह ट्रैक सबसे अधिक ढलानदार होने के कारण गिन्नीज बुक ऑफ वर्ड रिकार्ड में दर्ज है। ब्रिटिश शासनकाल में यह भारत का रत्न जड़ित मुकुट के रूप में पहचान बनाए हुए है। कालका से शिमला तक के ट्रैक पर पहाड़ों से जब रेल गुजरती है तो प्राकृतिक सुंदरता देखते ही बनती है। शिमला तक पहुंचते ही पर्यटक स्वयं को एक अलग की दुनिया में पाते हैं। कालका-शिमला रेल ट्रैक पर नैरो गेज की रेल चलती है। पहले यहां भाप का इंजन रेल के डिब्बों को खींचता था परंतु समय के साथ ही अब यहां डीजल इंजन चलता है। भाप का इंजन भी पर्यटन सीजन में रेल को खींचता है और रेल का आनंद उठाने के लिए विदेशी पर्यटक खासी संख्या में उमड़ते हैं। इस ट्रैक पर अब 46 नंबर सुरंग नहीं है परंतु शिमला को जोडने वाली 103 नंबर सुरंग का अस्तित्व आज भी है। सबसे बड़ी सुरंग बड़ोग की है, जिसकी लंबाई 1.1 किलोमीटर है। पूरे कालका-शिमला रेल ट्रैक में कुल 800 पुल और 700 मोड़ हैं। वर्ष 1965 में यहां डीजल इंजन चलाया गया।

बाबा भलकू संग्रहालय

बाबा भलकू को याद करने और उनके तकनीकी ज्ञान को मौजूदा युवा पीढ़ी तक पहुंचाने के लिए भारतीय रेलवे ने शिमला में उनकी याद में एक रेल संग्रहालय स्थापित किया है। इस रेल संग्रहालय में एक छत के नीचे प्रदेश में रेल नेटवर्क का इतिहास मौजूद है। वर्तमान में यह संग्रहालय देशी व विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इस रेल संग्रहालय में भाप चालित इंजन का समारूप, हाथ संचालित लीवर हैड लाइट, आराम कुर्सी, आपातकालीन चिकित्सा यंत्र, सफर में खाने के लिए इस्तेमाल होने वाले चीनी मिट्टी के बर्तन, टिली लैंप, मोहरें, मशाल पॉट, सिक्का एवं टिकट जांचने के लिए हाथ संचालित मशीन इत्यादि शामिल हैं।

इसके अलावा रेल मरम्मत में काम आने वाला सामान भी संग्रहालय में रखा गया है। इसमें हीरा जड़ा हुआ कांच काटने का यंत्र, तेल कुप्पी. पटरी पर लगने वाले नेट बोल्ट आदि शामिल हैं। सामान का वजन तोलने के लिए लंदन में निर्मित मशीन और रेल फैक्टरी में काम करने वाले मजदूरों को समय की सूचना देने वाली पीतल की घंटी कालका से संग्रहित की गई है।

बड़े इंजीनियर और दूसरे अफसर भलकू की चमत्कारिक दिव्य शक्तियों और निष्ठा के कितने कायल थे।

यहां गौर करने वाली बात यह है कि पहले भी और वर्तमान समय में भी कितने ही भगवा चोला पहने बाबा, साधु और ओझे मिल जाएंगे जो देवताओं और ईश्वर के नाम पर लोगों को बेवकूफ बनाकर अपनी रोजी-रोटी चलाते हैं। दिव्य शक्तियों की सिद्धियों का दावा करने वाले ऐसे लोगों ने आम जनता को सदियों से अपने झूठे मायाजाल में फंसा रखा है। लेकिन बाबा भलकू ने ईश्वरीय शक्तियों के होते हुए भी कोई इस तरह का काम नहीं किया। उन्होंने अपनी दिव्य शक्तियों का, जो भी उनके पास थीं, का प्रयोग अत्यंत ईमानदारी के साथ हिमाचल प्रदेश के विकास के लिए किया जिसके लिए हिमाचल को सदैव उनका ऋणी होना चाहिए। जिन अंग्रेजों के पास उस समय इतनी आधुनिक तकनीक मौजूद थी और भारत जैसे देश को उन्होंने अपनी सत्ता के अधिकार में ले लिया था और शिमला को अपनी राजधानी बनाकर कई बरसों रखा, वह केवल भलकू की बदौलत संभव था। बाबा भलकू न होता तो अंग्रेज न तो कालका-शिमला रेलमार्ग को जाबली से आगे निकाल पाते और न ही सामरिक महत्त्व के हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग का निर्माण ही कर सकते थे। जहां कहीं भी सड़क बनाते ब्रिटिश इंजीनियर असफल हो जाते, वहां उनके काम भलकू बाबा आते। जहां पुल न बनता वहां उन्हें बाबा भलकू की सेवाएं लेनी पड़तीं।

यह आश्चर्य अवश्य होता है कि हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग पर लगभग 30-35 वर्ष काम करने पर उन्हें कई प्रशंसा पत्र और पदोन्नतियां मिलीं परंतु कालका-शिमला रेलमार्ग के लिए जो उनका योगदान रहा, उसकी प्रशंसा में शायद कहीं कुछ नजर नहीं आता। फिर भी उनके आश्चर्यचकित कर देने वाले काम आज भी हमारे सामने हैं और जिस रेलमार्ग को उस साधारण से दिखने वाले भलकू बाबा ने अंजाम दिया उसे आज विश्व धरोहर का दर्जा मिला है और भलकू के साथ पूरा हिमाचल सम्मानित हुआ है। साथ ही चायल और वहां स्थित उनका पैतृक गांव भी।

अंग्रेज अफसर सम्मान से भलकू को 'भलकू जमादार' पुकारते थे। उनके जन्म के बारे में भी कोई निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं है। माना जाता है कि उनका जन्म चायल के गांव झाजा में सन् 1820 के आसपास हुआ था। उनकी मृत्यु के बारे में भी कोई जानकारी नहीं है। यह आम धारणा है कि वे 1890-95 के किसी वर्ष तीर्थ यात्रा के लिए गए थे, जहां से वापस नहीं लौटे। इससे यह अनुमान लगया जा सकता है कि बाबा भलकू इस रेलमार्ग का सर्वे करने के पश्चात् ही कहीं चले गए थे।

रेल ट्रैक एक जानकारी

नैरो गेज 762 एमएम
ट्रैक की लंबाई 96 किलोमीटर
प्रोजेक्ट 1901 में आरंभ हुआ
प्रोजेक्ट 1903 में पूरा हुआ
रेल 9 नवंबर, 1903 में चली
ट्रैक में कुल पुल 800
सबसे बड़ी सुरंग बड़ोग 1.1 कि.मी. लंबी
कुल मोड़ 900 जोकि कुल ट्रैक का 70 फीसदी हिस्सा
1965 में डीजल इंजन चलाया
रेल में कुल 7 कोच
रेल कार की सुविधा भी उपलब्ध

कालका-शिमला रेलमार्ग ने जब अपने सौ वर्ष पूरे किए तो 'बाबा भलकू स्मृति एवं जन विकास समिति, चायल' ने एक स्मारिका प्रकाशित की जो शायद उनकी स्मृति, काम और किंवदंतियों पर पहला महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जिसमें अनेक विद्वानों ने अपनी भागीदारी दी थी। इस उपलक्ष्य पर समिति और प्रदेश सरकार के सहयोग से चायल बाजार में बाबा भलकू की एक प्रतिमा भी स्थापित की गई। चायल बाजार बाबा भलकू के पैतृक गांव झाजा से लगभग 7 किलोमीटर दूर है। झाजा तक अब सड़क मार्ग है। उनका पैतृक मकान आज भी दर्शनीय है और दूर से किसी छोटी रेलगाड़ी जैसा ही दिखता है। भलकू जिस कमरे में रहता था उसमें अब उनके ही परिवार के लोग रहते हैं। इस गांव के लोगों और बाबा भलकू के वर्तमान पीढ़ी के वरिष्ठ सदस्यों को यह मलाल अवश्य है कि बाबा भलकू की प्रतिमा उनके पैतृक गांव में लगनी चाहिए थी और चायल के साथ यह स्थान भी एक पर्यटक स्थल बनाया जा सकता था। वहीं उनसे संबंधित दस्तावेजों का एक म्यूजिमयम भी बन सकता था। उनका मानना है कि चायल में बाबा भलकू की प्रतिमा तो लगा दी लेकिन देखरेख के अभाव में उस पार्क की स्थिति अच्छी नहीं है।

झाजा गांव में बाबा भलकू का जो एक मात्र घर है वह लकड़ी का है जिसकी पहली मंजिल पर रहने के कमरे हैं और निचली मंजिल पर पशु बंधे रहते हैं। उसकी स्थिति भी अच्छी नहीं है। उस गांव में मिट्टी और लकड़ी का वही एक मात्र घर रह गया है। एक दिन वह घर भी कहीं स्मृतियों में ही न रह जाए, इसलिए यदि जन विकास समिति या प्रदेश सरकार उसे धरोहर के रूप में बचाने के प्रयास कर पाए तो यह भी बाबा भलकू के लिए एक बड़ी और सच्ची श्रद्धांजलि होगी। हिमाचल के लिए यह गर्व की बात है कि आज कालका- शिमला रेलमार्ग को दार्जीलिंग हिमालयन रेलवे, नीलगिरि माउंटेन रेलवे और छत्तीसगढ़ शिवाजी टर्मिनल के साथ विश्वधरोहर का दर्जा मिला है। देश-विदेश के पर्यटकों के लिए इस खिलौना रेल में सफर करना एक अजूबे से कम नहीं है।

इस धरोहर रेलमार्ग को वर्ष 2008 में उस समय प्रदेश के मुख्य मंत्री प्रो. प्रेम कुमार धूमल और केंद्रीय रेल मंत्री डॉ. आर. वेलू ने 9 नवंबर को शिमला में आयोजित समारोह में विधिवत रूप से राष्ट्र को समर्पित किया। (हिमप्रस्थ, नवंबर, 2008)

ओम भवन, मोरले बैंक इस्टेट, निगम विहार, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 002

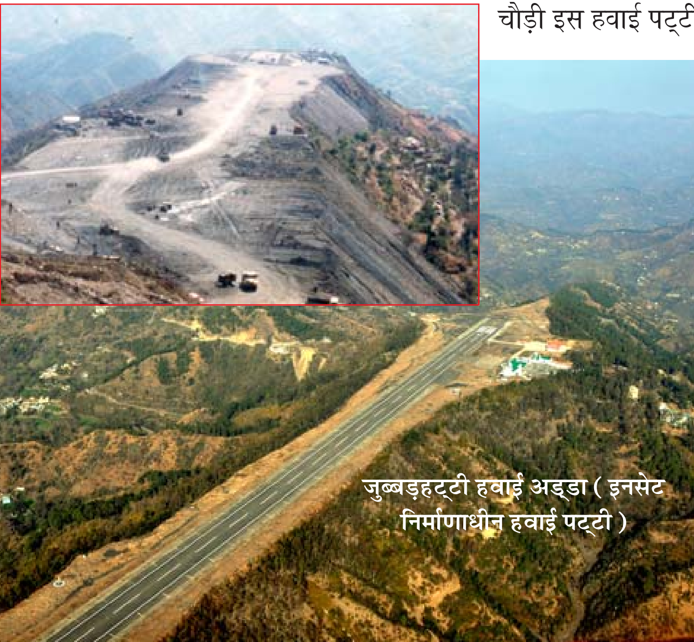
जुब्बड़हट्टी हवाई अड्डा

हवाई मानचित्र पर शिमला

• मोहिनी

हिमाचल प्रदेश के शिमला जिले में भले ही अंतर्राष्टीय स्तर की नियमित हवाई सेवा उपलब्ध न हो, लेकिन मौजूदा समय में संचालित हवाई यातायात सेवा से पर्यटन गतिविधियों को नई उड़ान मिली है। राजधानी शिमला से करीब बाईस किलोमीटर की दूरी पर स्थित जुब्बड़हट्टी एयरपोर्ट इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस हवाई पट्टी के बनने से शिमला विश्व हवाई मानचित्र पर अंकित हुआ है। राज्य के गग्गल (कांगड़ा), जुब्बड़हट्टी (शिमला) तथा भूंतर (कुल्लू) स्थित तीन हवाई अड्डे हैं । इसके अतिरिक्त जनजातीय क्षेत्रों तथा प्रदेश के प्रमुख स्थानों पर हैलीपैड उपलब्ध हैं। शिमला जिले में अनाडेल हैलीपैड तथा शिमला के हवाई अड्डा की अपनी एक विशेष पहचान है। शिमला हवाई अड्डा पहाड़ी क्षेत्र में निर्माण प्रौद्योगिकी की अनूठी मिसाल है। समुद्रतल से 5072 फुट की ऊंचाई पर स्थित यह हवाई अड्डा देशभर में सबसे अधिक ऊंचाई पर स्थित नागरिक हवाई अड्डे के रूप में जाना जाता है। शिमला से लगभग 18 किलोमीटर की दूरी पर इस हवाई अड्डे का निर्माण कार्य 15 अप्रैल, 1981 को आरम्भ हुआ था तथा वर्ष 1983 में तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री वीरभद्र सिंह के पहली बार सत्ता संभालने पर इसके निर्माण को गति मिली। 4700 फुट लम्बे तथा 300 फुट चौड़ी इस हवाई पट्टी का निर्माण तत्कालीन परिस्थितियों के मद्देनज़र एक कठिन कार्य था। प्रदेश के लिए यह गर्व की बात है कि इसका निर्माण प्रदेश के लोक निर्माण विभाग के दक्ष अभियंताओं व कुशल श्रमशक्ति द्वारा सम्पन्न किया गया था। इससे पहले देश में कहीं भी राज्य स्तर पर लोक निर्माण विभाग द्वारा हवाई अड्डा निर्माण जैसी बड़ी परियोजना का कार्य सम्पन्न नहीं किया गया था। यहां हवाई अड्डा बनाने का सर्वेक्षण 1973 में किया गया तथा 1974 में केन्द्रीय सर्वेक्षण दल ने अनुमति दी। अनोखी डाली के नाम से प्रसिद्ध इस पहाड़ी के शिखर को अथक प्रयासों तथा आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल से छह माह के रिकार्ड समय में समतल किया गया था। इसका कार्य रात-दिन चलाया गया। रात को बुलडोजरों की लाइट तथा लकड़ी जला कर इस कार्य को सम्पन्न किया गया। निर्माण में तेजी के लिए स्थल पर ही अस्थायी शिविर तथा टेंट स्थापित किए गए थे। आखिरी पड़ाव में बिजली की रोशनी में कार्य को अंजाम दिया गया। इस कार्य की देखरेख अधीक्षण अभियंता श्री एस.के. वैद्य तथा अधिशासी अभियंता श्री ठाकुर दास शर्मा के कंधों पर थी। तत्कालीन प्रमुख मुख्य अभियंता श्री एम.एल. बंसल के नेतृत्व में विभाग ने लगभग सौ श्रमिकों तथा बीस दक्ष अधिकारियों ने उत्साह से इस कार्य को आगे बढ़ाया। मुख्य मंत्री श्री वीरभद्र सिंह का यह सपना था कि शिमला हवाई मानचित्र पर आए। इसके लिए उन्होंने इस कार्य में विशेष रुचि दिखाई। इस वृहद परियोजना पर 5.25 करोड़ रुपये व्यय हुए जिसमें भूमि अधिग्रहण भी शामिल है तथा उस समय इस पर आया खर्च बहुत ही कम आंका गया था। हवाई अड्डे के समीप मां काली का मंदिर जिसकी स्थनीय निवासी 'नागे दा बेड़ा' के नाम से पूजा- अर्चना करते थे, की इस निर्माण कार्य में अपार कृपा रही। लगभग सात साल तक चले इस कार्य में एक भी दुर्घटना घटित नहीं हुई जबकि हजारों टन बारूद का इस्तेमाल पहाड़ी को उड़ाने तथा स्थल को समतल करने में किया गया। इस परियोजना के प्रभारी श्री ठाकुर दास शर्मा को आज भी याद है कि इस कार्य को करना आसान नहीं था। इसमें सभी कर्मियों ने बहुत ही उत्साह से कार्य किया। निर्माण से जुड़े सभी कर्मचारियों को सरकार द्वारा सम्मानित भी किया गया। वर्ष 1987 में सरकार द्वारा खरीदे गए सभी बुलडोजरों को यहां कार्य पर लगाकर एक अभियान के तहत इसको पूर्ण किया गया। हवाई अड्डे के दोनों ओर जालीनुमा पुख्ता दीवार बनाई गई। 24 मई, 1987 में तत्कालीन नागरिक उड्डयन मंत्री जगदीश टाइटलर ने इस हवाई अड्डे को राष्ट्र को समर्पित किया।

इस कार्य से जुड़े सभी श्रमिकों को भी उद्घाटन अवसर पर यहां आए वायुदूत के जहाज में सफर करवाया गया व प्रशस्ति-पत्र और नकद पुरस्कार से सम्मानित किया गया।



जुब्बड़हट्टी हवाई अड्डा (इनसेट निर्माणाधीन हवाई पट्टी)

कमरू निवास, ढली, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 012, मो. 94180 47686

ऊर्जा

रोशनी का प्रकल्प

नाथपा झाकड़ी जलविद्युत परियोजना

● विनोद शर्मा

तेरह अप्रैल, 1989 का दिन सम्पूर्ण हिमाचल विशेषकर शिमला जिले के निवासियों के लिए ऐतिहासिक एवं यादगार तारीख है। बैसाखी के पर्व पर मानसरोवर से निकलने वाली सतलुज नदी पर रामपुर बुशहर से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक शांत स्थल झाकड़ी में नदी के प्रवाह पर बनने वाली सबसे बड़ी जलविद्युत परियोजना का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ था। तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी के हाथों से इस महत्त्वाकांक्षी परियोजना की आधारशिला रखी गई। वर्तमान मुख्य मंत्री श्री वीरभद्र सिंह उस समय के इन यादगार लम्हों के साक्षी बने, जिनकी परिकल्पना तथा प्रयासों से 1500 मेगावाट की नाथपा झाकड़ी जलविद्युत परियोजना का कार्य आरम्भ हुआ।

आज भी याद है 13 अप्रैल की वह तारीख जब जनपद के रामपुर क्षेत्रवासी तथा साथ लगते जिलों- किन्नौर, कुल्लू, मण्डी से लाखों की संख्या में लोग अपने पारम्परिक परिधानों/ वाद्य यंत्रों के साथ शिलान्यास स्थल पर बसों, ट्रकों, छोटी गाड़ियों व पैदल चलकर पहुंचे थे। रामपुर के निवासी श्री प्रदीप नेगी के शब्द आज भी याद हैं कि भाखड़ा बांध कब शुरू हुआ, वह तो हम देख नहीं सके लेकिन आज सतलुज नदी पर झाकड़ी परियोजना को देखने का हमें सौभाग्य मिल रहा है। झाकड़ी में जहां आज भूमिगत विद्युत केन्द्र है पर सभा स्थल बनाया गया था, सतलुज के दोनों ओर पहाड़ी पर लोगों का हुजूम ही नज़र आता था। इस ऐतिहासिक दिन सभी की आंखों के सामने एक समृद्धि का सपना साकार होने जा रहा था। आलम यह था कि रामपुर शहर में केवल बूढ़े, नवजात बच्चे तथा अस्पताल में दाखिल मरीज व मजबूरी में रहने वाले ही शहर में बचे थे। सभी कार्यालय खुले थे, लेकिन खाली थे, सड़क व बाजार वीरान, शहर लगभग पांच घंटे तक सुनसान सा नज़र आया। मानो कर्फ्यू लगा हो। कुछ लोग तो इतने उत्साहित थे कि वे अपने घरों में ताला लगाना भी भूल गए थे। सारे मार्ग बस एक ही स्थल को जा रहे थे, वह था झाकड़ी में नाथपा झाकड़ी जलविद्युत परियोजना का शिलान्यास स्थल। सम्पूर्ण घाटी लोक वाद्य यंत्रों से गुंजायमान थी। परियोजना की सम्पूर्ण जानकारी के लिए शिलान्यास स्थल के नजदीक एक विस्तृत मॉडल बनाया गया था। इस सारे इंतजाम का जिम्मा तत्कालीन हिमाचल प्रदेश विद्युत बोर्ड के अध्यक्ष पदमश्री कैलाश चन्द महाजन के कंधों पर था। प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी इसी तारीख को प्रातः 9.10 बजे नई दिल्ली से हवाई मार्ग से सराहन पहुंचे। वहां उनके स्वागत में खड़े लोगों से प्रधान मंत्री ने बात की। सराहन से सड़क मार्ग से ज्यूरी तथा झाकड़ी आए। सराहन से लेकर झाकड़ी तक सम्पूर्ण मार्ग पर लोगों का उत्साह देखते ही बनता था। राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर का मीडिया दल इन ऐतिहासिक क्षणों को कलमबद्ध करने के लिए झाकड़ी पहुंचा था।



1913 में जगमगाया शिमला

पन्द्रह जुलाई 1913 को शिमला पहली बार बिजली की रोशनी से जगमगाया था। कैप्टन, बाद में कर्नल बैसल बैटी को शिमला को रोशन करने का श्रेय जाता है। शिमला के समीप नोटी खड्ड से कंकरीट की चैनल बनाकर सतलुज नदी के ऊपर एक जलाशय बनाया गया। यहां से पाइपों के माध्यम से पानी को चाबा स्थित विद्युत गृह तक ले जाकर बिजली उत्पादन आरम्भ हुआ। चाबा मशहूर स्थल सुन्नी से लगभग दस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। अंग्रेजों ने वर्ष 1909 में 1.75 मेगावाट चाबा जलविद्युत परियोजना का कार्य आरम्भ किया तथा वर्ष 1913 में इसे पूर्ण कर दिया गया। 100 वर्ष पुरानी मशीनरी जिसे इंग्लैंड से लाया गया था, से आज भी विद्युत उत्पादन हो रहा है। यह एक ऐतिहासिक उद्यम के रूप में ख्याति प्राप्त है, जो कम लागत में निर्मित हुआ। आज इसका संचालन हिमाचल प्रदेश विद्युत बोर्ड के अधीन है।

हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता श्री के.एस. तोमर वर्तमान में हिमाचल प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष हैं, जनसत्ता के महादेव चौहान, ट्रिब्यून के एस.पी. शर्मा, यूएनआई के ए. के. भण्डारी, आकाशवाणी से मि. रंधावा, पीटीआई से पी.सी. लोम्ही, इंडियन एक्सप्रेस के विजया के. पुष्करना सहित लगभग 50 संवाददाताओं ने इन ऐतिहासिक क्षणों को देश व दुनिया के लिए कलमबद्ध किया। जालंधर दूरदर्शन का एकमात्र इलैक्ट्रॉनिक दल भी विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। श्री राजीव गांधी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सोनिया गांधी ने सराहन प्रस्थान से पूर्व यहां स्थित भीमाकाली मंदिर में पूजा- अर्चना की। वे बाल/बालिका आश्रम भी गए। तत्कालीन ऊर्जा राज्य मंत्री कल्पनाथ राय, केन्द्रीय खाद्य एवं आपूर्ति राज्य मंत्री श्री सुखराम तथा राज्यपाल पी.के. एस. गांधी भी प्रधान मंत्री के साथ थे।

1500 मेगावाट की इस परियोजना का कार्य वर्ष 1989 में आरम्भ हुआ। इससे क्षेत्र में विकास तथा उन्नति के नए युग का सूत्रपात हुआ। यहां का आर्थिक परिदृश्य बदल गया। रामपुर तथा साथ लगते इलाकों में अनेक नई गतिविधियों का विस्तार हुआ। नए भवनों, नए प्रतिष्ठानों का निर्माण होने लगा। स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर पैदा हुए। इस परियोजना का कार्य नाथपा में बांध निर्माण, नाथपा से झाकड़ी तक 27.394 किलोमीटर लम्बी भूमिगत विद्युत गृहों का निर्माण, एक साथ आरम्भ हुआ। देशी तथा विदेशी कम्पनियों के सहयोग से परियोजना का कार्य दिन-रात जारी रहा। विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित इस परियोजना पर 8187 करोड़ रुपये व्यय हुए। आज इस परियोजना से प्रतिवर्ष 6612 मिलियन यूनिट विद्युत उत्पादन हो रहा है।

वर्ष 1989 में परियोजना का निर्माण आरम्भ हुआ तथा मई 2004 में इंजीनियरों, श्रमिकों के अथक प्रयासों से विद्युत उत्पादन आरम्भ हुआ। आरम्भ में वर्ष 1980 में राज्य विद्युत बोर्ड ने 538.38 करोड़ रुपये की लागत से 1020 मेगावाट की परियोजना स्वीकृत करवाई थी। वर्ष 1983 में श्री वीरभद्र सिंह के पहली बार प्रदेश के मुख्य मंत्री बनने पर इस परियोजना की विभिन्न स्वीकृतियों तथा वित्त पोषण की स्वीकृतियों को गति मिली। इस परियोजना के निर्माण को आरम्भ करवाने तथा यहां से विद्युत उत्पादन आरम्भ होने का श्रेय श्री वीरभद्र सिंह की दूरदर्शी सोच को जाता है। इस परियोजना का सपना प्रथम मुख्यमंत्री डॉ. वाई.एस. परमार का था। अपने सम्बोधन में श्री राजीव गांधी ने इसका उल्लेख किया था। सतलुज नदी बहाव पर बनी देश की पहली इतनी बड़ी परियोजना है। इसने क्षेत्र ही नहीं, बल्कि प्रदेश की समृद्धि की नई गाथा लिखी है। परियोजना के निर्माण के साथ-साथ क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर का विद्यालय (डी.पी.एस.), अत्याधुनिक अस्पताल, परियोजना में नवीन विश्राम गृह, अनेक होटल, रेस्तरां तथा नई कालोनियां आबाद हुई। आधुनिक इंजीनियरिंग की मिसाल इस परियोजना को निहारने वालों की कमी नहीं है। परियोजना उत्पादन स्थल झाकड़ी से लेकर मैदानी इलाके पंजाब तक बने दैत्यकार खम्बों पर बिछी तारों के माध्यम से उत्पादित ऊर्जा को हरियाणा, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा राजधानी दिल्ली तथा चण्डीगढ़ को सम्प्रेषण किया जा रहा है। ये इन क्षेत्रों को रोशन करने के साथ-साथ उद्योगों को बिजली भी उपलब्ध करवा रही है। 1500 मेगावाट नाथपा झाकड़ी परियोजना की विद्युत इकाइयों से होने वाली जल निकासी का उपयोग कर एक और भूमिगत 412 मेगावाट क्षमता रामपुर परियोजना का भी निर्माण किया गया है। इस वर्ष यहां से भी विद्युत उत्पादन आरम्भ हो गया है। इसका कार्य वर्ष 2007 में आरम्भ हुआ था। भाखड़ा के उपरांत सतलुज नदी पर नाथपा झाकड़ी परियोजना विकास का एक नया अध्याय है जो आधुनिक निर्माण प्रौद्योगिकी व संचालन का एक नवीनतम उदाहरण है। इस परियोजना से प्रदेश को 12 प्रतिशत ऊर्जा निःशुल्क जबकि 25 प्रतिशत ऊर्जा उत्पादित दरों पर प्राप्त हो रही है। अप्रत्यक्ष लाभों में इससे क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधियों सहित बागबानी, कृषि व औद्योगीकरण को बढ़ावा मिला है। इसी का परिणाम है कि आज राज्य में स्थापित उद्योगों को निर्बाद्ध विद्युत आपूर्ति मिल रही है। इस परियोजना से एक शांत क्षेत्र में सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान का नया अध्याय लिखा गया है।

कोजी कॉर्नर, ऑफिसर्ज कॉलोनी, राजगढ़ रोड, सोलन, हिमाचल प्रदेश-173 212, मो. 94181 58987

शिक्षा लोक

ज्ञान का उत्कृष्ट केंद्र शिमला

● रवि सहगल

शिक्षा सम्पूर्ण मानव जाति के सर्वांगीण विकास में संजीवनी का कार्य करती है जो समाज को स्वस्थ बनाकर राष्ट्र को नवऊर्जा के साथ नई दिशा प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति ने शिक्षा की महत्ता को तब समझ लिया था जब दुनिया की अधिकांश आबादी खानाबदोश थी। हिमाचल में शिक्षा का प्रचार-प्रसार धीमी गति से आगे बढ़ा। रियासत काल में कुछ पाठशालाएं व संस्कृत विद्यालयों के माध्यम से ज्ञान का प्रकाश फैला। वर्ष 1815 में अंग्रेजों द्वारा पहाड़ी रियासतों को अपने आधिपत्य में लेने के उपरान्त शिक्षा क्षेत्र को गति मिली। प्रदेश में शिक्षा के विस्तार जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में शिमला शहर व जनपद का अहम योगदान रहा है। दरअसल देश की स्वतंत्रता और बाद में हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने से बहुत पहले ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान शिमला भारत की



ग्रीष्मकालीन राजधानी के रूप में विश्व मानचित्र पर स्थापित हो गया था। तब से लेकर आज तक शिक्षा के क्षेत्र में हुए उत्तरोत्तर विकास के परिणामस्वरूप वर्तमान में शिमला जिले में सरकारी व निजी क्षेत्र में तीन हजार से भी अधिक शिक्षण संस्थान गुणात्मक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। इन संस्थानों में दो विश्वविद्यालय (एक सरकारी क्षेत्र, एक निजी क्षेत्र), 12 राजकीय महाविद्यालय, 7 निजी कॉलेज, एक मेडिकल कॉलेज, एक इंजीनियरिंग कॉलेज, पांच संस्कृत कॉलेज (दो सरकारी, तीन निजी क्षेत्र में) दस सरकारी एवं निजी बी.एड. कॉलेज, दो प्राइवेट एम.एड. कॉलेज, एक विधि कॉलेज, 242 सीनियर सेकेंडरी स्कूल, 119 हाई स्कूल, 355 मिडल स्कूल तथा 2318 प्राथमिक स्कूल मुख्य रूप से शामिल हैं, जो विद्यार्थियों को गुणात्मक शिक्षा मुहैया करवा रहे हैं। यह जिला ब्रिटिश काल के दौरान ही शिक्षा का प्रमुख केन्द्र स्थापित हो चुका था और उस समय यहां अनेक उत्कृष्ट शिक्षण संस्थान अस्तित्व में आए जो आज तक शिक्षा के प्रसार-प्रचार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते आ रहे हैं। शिमला के कुछ प्रमुख विद्यालय ऐसे हैं जिनकी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशेष पहचान है और शिक्षा की अलख जगाए हुए हैं।

बिशप कॉटन स्कूल

बिशप कॉटन स्कूल एशिया के सबसे पुराने बोर्डिंग स्कूलों में एक है। इस स्कूल की स्थापना 28 जुलाई, 1859 को बिशप जॉर्ज एडवर्ड लिंच कॉटन ने की थी, जो बाद में एक युद्ध के दौरान मारे गए थे।

वर्ष 1859 तक भारत में पब्लिक स्कूल की अवधारणा नहीं थी। यही कारण है कि बिशप कॉटन स्कूल का इतिहास सार्वजनिक तौर पर काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस स्कूल ने देश में पब्लिक स्कूलों के विकास और शिक्षा क्षेत्र के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वर्ष 1840 में इंग्लैंड में भी कुछ ही अच्छे स्कूल स्थापित थे जबकि भारत में नाम मात्र निजी विद्यालय और मिलेट्री आश्रम थे जहां आमतौर पर सभी को शिक्षा की सुविधा नहीं थी।

वर्ष 1857 के दौरान भारत में संकटकालीन समय को देखते हुए विक्टोरिया की महारानी ने व्यक्तिगत तौर पर बिशन कॉटन को कोलकाता का बिशप, भारत, बर्मा व सिलोन द्वीप का मेट्रोपोलिटन बिशप नियुक्त किया था। 28 जुलाई, 1859 को बिशप कॉटन ने किसी पहाड़ी स्टेशन पर पब्लिक स्कूल स्थापित करने के लिए सर्वेक्षण करवाया। इस उद्देश्य के लिए अधिकांश गिरजाघरों से धन राशि एकत्रित की गई जिसका उपयोग शिमला के जतोग में बिशप स्कूल स्थापित करने में किया गया। वायसरॉय ने इस स्कूल के लिए भूमि व भवन का योगदान दिया। बिशप कॉटन ने इंडिया पब्लिक स्कूल फंड से 17 हजार रुपये लेकर तीन निजी घरों को खरीदा। इस प्रकार 15 मार्च, 1863 को यह स्कूल विद्यार्थियों के लिए खोला गया।

इस विद्यालय में 16 मार्च, 1863 को प्रवेश पाने वाले फेडेरिक नैलर पहने विद्यार्थी थे। उसके उपरांत 35 अन्य लड़कों को स्कूल में दाखिला दिया गया और वर्ष 1864 तक विद्यार्थियों की संख्या 65 तक जा पहुंची।

कुछ समय बाद इस विद्यालय को स्थानांतरित करने की आवश्यकता महसूस की गई क्योंकि जतोग में जहां यह विद्यालय स्थापित था, वहां से सार्वजनिक रास्ता निकलता था जिसकी वजह से असुविधा हो रही थी। सितंबर व अक्तूबर, 1864 के दौरान बिशप कॉटन ने स्वयं स्कूल को अन्यत्र स्थानांतरित करने के लिए दस स्थानों का चयन किया और अंततः नोल्सवुड स्पर पर सहमति बनी जो क्योंथल के राजा की संपत्ति थी।

काफी लंबे समय तक समझौता वार्ता चली जिसमें वायसरॉय ने भी हस्तक्षेप किया। स्कूल के नए भवन का शिलान्यास 26 सितंबर, 1866 को वॉयसराय सर जॉन लॉरेंस ने किया। वह सर हैनरी लॉरेंस के बड़े भाई थे जिन्होंने सनावर में मिलेट्री आश्रम स्थापित किया था जिसे अब लॉरेंस स्कूल चायल के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार सितंबर, 1868 में यह विद्यालय वर्तमान स्थान नोल्सवुड को स्थानांतरित हो गया।

जीसस एण्ड मैरी



जीसस एण्ड मैरी स्कूल जिसे चैल्सी के नाम से भी जाना जाता है, की स्थापना वर्ष 1864 में हुई। मदर सैंट लूईस गोंजागा इसकी पहली अधिकारी थीं। इस संस्थान को पहले ब्रिटिश सैनिकों के उन बच्चों के लिए अनाथ आश्रम के रूप में स्थापित किया गया था, जिन्होंने अपने अभिभावक खो दिए थे अथवा उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं था। इन बच्चों की देखभाल सुनिश्चित बनाने के लिए आगरा के बिशप परिचारिकाओं (सिस्टर) के पास भेजते थे। उनकी देखभाल व शिक्षा के लिए सेना कुछ धनराशि प्रदान किया करती थी। अनाथ बच्चों के साथ कुछ आवासी बच्चों को भी यहां रखा जाता था। इन सभी बच्चों की गुणात्मक शिक्षा पर खास ध्यान दिया जाता था।

इस स्कूल के विस्तार के लिए वर्ष 1869 में सिस्टर को सहायता प्रदान की गई। उस समय विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर 155 हो गई थी। वर्ष 1873 में चैल्सी प्रार्थनालय आश्रम का निर्माण किया गया और प्रत्येक वर्ष इस भवन के विकास की दिशा में अतिरिक्त सुधार किए जाते रहे जिसके परिणामस्वरूप यह संस्थान विकसित होता गया। वर्ष 1940 तक सेना के सेवा नियमों में काफी बदलाव आ चुके थे और अनाथ आश्रमों की आवश्यकता नहीं रह गई थी। इस प्रकार यह अनाथालय जिसे सेंट फ्रांसिस स्कूल के नाम से जाना जाता था, प्राथमिक विद्यालय बन गया जबकि मुख्य भवन में वरिष्ठ विद्यालय आरंभ हुआ।

1941 से 1945 के अंतराल में इस स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या में काफी वृद्धि दर्ज की गई। इस दौरान पाठ्यक्रम में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और भारतीय इतिहास के शिक्षण व भारतीय भाषाओं को विशेष महत्त्व दिया गया। उधर, भारत की स्वतंत्रता के लिए समझौते के प्रयासों को बल मिलने से ब्रिटिश अधिकारियों ने देश छोड़ने की योजना बना ली जिसके कारण इस स्कूल को एक बार फिर परिवर्तन के दौर से गुजरना पड़ा।

1946 में भीषण अग्निकांड में चैल्सी स्कूल का अधिकांश भवन नष्ट हो गया। विद्यार्थियों को ईगल माउंड भेज दिया गया और कुछ वर्षों तक कक्षाएं सेना द्वारा उपलब्ध करवाए गए शिविरों में चलाई गईं। 1947 में उत्तरी क्षेत्र में राजनीतिक उथल-पुथल के संकेतों के बीच तथा 1948 में वास्तव में समस्या गहराने से यह स्कूल प्रभावित हुआ। उस समय लगभग 50 प्रतिशत विद्यार्थी पाकिस्तान से थे और सिस्टर के लिए यह बहुत संतोष की बात थी की सेना की पेहरेदारी में छात्राओं को सीमा तक पुहंचाने के प्रबंध किए गए। लड़कियों के अलावा, यहां मुस्लिम सेवादार भी थे जिन्हें सुरक्षापूर्वक उनके घरों तक पहुंचाया गया।

देश में पुनः शांति का वातावरण स्थापित हुआ लेकिन स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या घट गई थी। चैल्सी स्कूल को पुनः स्थापित करने में कुछ वर्षों का समय लगा और फिर यहां विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर 1700 हो गई।

ऑकलेंड हाऊस

ऑकलेंड हाऊस का इतिहास काफी रोचक है। वर्ष 1836 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड ऑकलेंड ने अपने और अपनी बहनों के इस्तेमाल के लिए इस भवन को खरीदा था। बाद में वॉयसराय अन्यत्र चले गए और इस भवन को बेच दिया गया। स्कूल प्रबंधन ने 1868 में ऑकलेंड हाऊस को खरीद लिया।

जे.बी.डी. एक्विलर ने 1864 में लड़कियों को ईसाई सिद्धांतों पर आधारित गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने के लिए स्कूल खोलने की योजना पर कार्य आरंभ किया। उनके इन प्रयासों को व्यावहारिक रूप डलहौजी में चर्च से संबंधित महिलाओं ने दिया जिन्होंने स्कूल के लिए धनराशि एकत्रित करना शुरू किया और उनकी मांग थी इस स्कूल को धर्मशाला में खोला जाए। लेकिन, बिशप कॉटन की पत्नी के प्रोत्साहन के बाद इसे 1866 में शिमला के जाखू में आरंभ किया गया।

यूरोपीय लड़कियों के लिए 'दि पंजाब गर्ल्स स्कूल' स्थापित किया गया। दो वर्षों बाद, स्कूल प्रबंधन ने ऑकलेंड हाऊस को

खरीदा और स्कूल का नाम इसके अनुरूप बदल दिया गया। यह स्कूल 32 विद्यार्थियों के साथ आरंभ हुआ और 6 नवंबर, 1869 में इसे वर्तमान स्थान के लिए स्थानांतरित किया गया। उसके उपरांत स्कूल भवन में काफी विस्तार और परिवर्तन किए गए।

धन की कमी और अपर्याप्त शिक्षकों के अभाव में इस स्कूल को शुरुआती दौर में काफी संघर्षों से गुजरना पड़ा। 1904 में चौल्टनहैम लेडीज कॉलेज की मिस स्ट्रॉग इस स्कूल की मुख्य अध्यापिका बनीं और वह अपने साथ चौल्टनहैम से और अध्यापकों को भी लाईं। यह स्कूल अचानक प्रसिद्ध हो गया और इसे ''चौल्टनहैम कॉलेज ऑफ इंडिया'' कहा जाने लगा। लेकिन स्कूल की परीक्षा का दौर अभी समाप्त नहीं हुआ था। 1905 में भूकम्प के कारण स्कूल भवन को बहुत नुकसान पहुंचा जिसके कारण लड़कियों को कुछ समय तक शिविरों में रहना पड़ा। मरम्मत कार्य के बावजूद इस भवन को स्कूल चलाने के लिए उपयुक्त नहीं माना गया और सरकार ने इस भवन को गिराकर इसी स्थान पर नया भवन बनाने का महत्त्वपूर्ण फैसला लिया।

स्कूल की आवासीय लड़कियों को अस्थायी तौर पर स्टेरलिंग कैसल में स्थानांतरित किया गया। 1920 में नए भवन पर कार्य आरंभ हुआ जो जनवरी, 1921 में बनकर तैयार हो गया।

1908 से 1952 की अवधि तक लाहौर की सेंट हिल्डाज सोसाइटी ने इस स्कूल के लिए प्रधानाचार्यों और स्टाफ के अन्य सदस्यों को उपलब्ध करवाया। भारतीय लड़कियों को इस स्कूल से शिक्षा ग्रहण करने और यूरोपीय सहपाठियों के साथ स्कूल की सभी गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

ऑकलेंड हाऊस स्कूल के इतिहास में एक और बड़ी घटना स्कूल परिसर का विस्तार था जिसके अंतर्गत 1962 में बैलवेडर इस्टेट का अधिग्रहण कर स्कूल के दायरे में शामिल किया गया।

यह विद्यालय निरंतर आगे बढ़ता रहा और समय के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई और विश्व के सभी हिस्सों से लड़कियां यहां शिक्षा ग्रहण करने लगीं।

लॉरेटो कान्वेंट तारा हॉल

लॉरेटो कान्वेंट तारा हॉल विश्वव्यापी इंस्टीच्यूट ऑफ ब्लैस्ड विर्जिन मैरी परिवार से संबंधित है जिसे लॉरेटो के नाम से भी जाना जाता है। इसकी स्थापना 16वीं शताब्दी में अंग्रेजी महिला मैरी वार्ड ने की थी। उनकी इच्छा थी कि विश्व और समाज में महिलाओं को उनका अधिकार और उचित स्थान मिले जिसमें महिला शिक्षा भी शामिल थी।

शिमला का लॉरेटो कान्वेंट तारा हॉल भारत में स्थापित कुल 15 लॉरेटो स्कूलों में एक है। यह विद्यालय अंग्रेजी माध्यम में बारहवीं तक लड़कियों को शिक्षा प्रदान कर रहा है और इसका संचालन शिमला लॉरेटो एजुकेशनल सोसाइटी करती है।

लॉरेटो बहनें पहाड़ी क्षेत्रों में लड़कियों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने की इच्छा के साथ 1892 में शिमला आईं थीं। उन्होंने यहां तारा हॉल और बैलेव्यू परिसंपत्तियां खरीदीं और 30 नवंबर 1895 को यहां बस गईं। इसके तुरंत बाद सुविधा से वंचित बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए समीप में ही सेंट जोसेफ स्कूल खोला। वर्ष 1904 में सेंट जोसेफ और तारा हॉल को मिलाकर एक स्कूल बनाया गया। 1946 में मॉल रोड पर विल्लोज बैंक में डे स्कूल खोला गया जिसे लॉरेटो शैलेट डे के नाम से जाना जाता है। 1964 में दरभंगा के महाराजा से दरभंगा हाऊस खरीदा गया जहां पर वर्तमान स्कूल भवन है।

1913 में स्कूल में कैंब्रिज परीक्षाएं आरंभ की गईं और 1916 में उच्च विद्यालय परीक्षाओं में पंजाब में पहला स्थान प्राप्त किया। वर्ष 1992 में इस स्कूल ने अपना शताब्दी वर्ष मनाया।

वर्ष 1995 से लेकर 13 वर्षों तक स्कूल सेकरेड हार्ट सिस्टर्स के प्रबंधन के अधीन रहा। वर्ष 2008 में लौरेटो सिस्टर्स के पुनः शिमला आगमन पर उनका स्वागत किया गया। 2010 में यह स्कूल सीबीएसई बोर्ड में परिवर्तित हो गया और जमा एक व जमा दो की कक्षाएं भी आरंभ की गईं। तारा हॉल स्कूल की शैक्षणिक और सांस्कृतिक धरोहर केवल शिमला ही नहीं बल्कि समूचे उत्तर भारत में प्रसिद्ध है।

उच्च शिक्षा का विद्या मंदिर
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय

शिक्षा के क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश नित नए आयाम स्थापित कर रहा है। इसका सीधा श्रेय यहां की प्रगतिशील सरकारों द्वारा खोले गए शिक्षण संस्थानों को जाता है। शिमला की समरहिल पहाड़ी पर स्थित हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय भी इन्हीं शिक्षण संस्थानों में शामिल है जो पिछले 45 वर्षों से उच्च शिक्षा की लौ जलाए हुए निरंतर आगे बढ़ रहा है। 22 जुलाई 1970 को प्रदेश विश्वविद्यालय की स्थापना विश्वविद्यालय एक्ट के अधीन की गई थी। करीब 200 एकड़ क्षेत्र में इसका परिसर है। वर्तमान में इसमें 12 संकाय और 28 विभाग कार्यरत हैं। साथ ही चिकित्सा, दंत चिकित्सा, आयुर्वेदा, तकनीकी व इंजीरियरिंग के अलावा 250 से अधिक सरकारी व गैर सरकारी हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय से संबंद्धता प्राप्त हैं। इसके अलावा क्षेत्रीय केन्द्र धर्मशाला व दूरवर्ती शिक्षा का प्रावधान भी हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के तहत किया गया है। कर्मचारी भी अपनी उच्च शिक्षा आगे बढ़ा सकें, इसके लिए सांध्य महाविद्यलाय भी शिमला से में खोला गया है। जिसमें शाम के समय कक्षाएं चलती हैं।

सेंट एडवर्ड्स स्कूल

वर्ष 1900 में आगरा प्रांत के विभाजन से पूर्व, मिलसिंगटन में लड़कों के लिए एक कैथालिक स्कूल हुआ करता था जिसे सेंट माइकल्स स्कूल के नाम से जाना जाता था। लेकिन 1910 में आगरा में विभाजन के उपरांत यह स्कूल बंद हो गया।

मई, 1911 में शिमला प्रांत के मुख्य पादरी ऐ.ई.जे, कैनीली जब शिमला के टाउन हॉल में एक जनसभा को संबोधित कर रहे थे, जनता ने शिमला में लड़कों के लिए कैथॉलिक स्कूल की मांग उठाई। उन्होंने इस संदर्भ में आयरलैंड में सुपीरियर जनरल से आग्रह किया जिन्होंने काफी वर्षों तक विचार-विमर्श के बाद शिमला में लड़कों के लिए कैथॉलिक स्कूल आरंभ करने का निर्णय लिया।

इस प्रकार, 1924 में आयरलैंड के दो ईसाई भाई शिमला पहुंचे और यहां पर ईगलमाउंट में मुख्य पादरी से भेंट की। मुख्य पादरी ने उनका स्वागत करते हुए स्कूल आरंभ करने के लिए मिलसिंगटन और मैदानों का प्रस्ताव रखा।

आयरलैंड के ईसाई भाइयों ने स्कूल का नाम सेंट एडवर्ड्स रखा और 9 मार्च, 1925 को शिमला के लोगों का आह्वान किया कि अपने लड़कों को इस स्कूल में दाखिला दिलाएं। उपलब्ध रिकॉर्ड के अनुसार, पहले दिन 42 लड़कों को सेंट एडवर्ड्स में दाखिला दिया गया। स्कूल प्रातः 9 बजे आरंभ होता था और उस समय कुल छह लोगों का स्टाफ था। स्कूल मुख्यतः कैथॉलिक लड़कों के लिए आरंभ किया गया हालांकि अन्यों को भी स्कूल में प्रवेश पर मनाही नहीं थी। कहा जाता है कि 1925 के अंत तक विद्यार्थियों की संख्या 98 तक जा पहुंची थी।

1928 की सर्दियों के अंत तक नौ और कक्षा कक्ष निर्मित किए गए और इस स्कूल को 1929 में स्थायी मान्यता प्राप्त हुई। मार्च, 1932 में जब वर्तमान स्कूल भवन का निर्माण किया गया, तब इसे बोर्डिंग स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया।

1948 में भारत में बदलती परिस्थितियों और युद्ध की आशंका के कारण अभिभावकों ने अपने लड़कों को शिमला भेजने से इनकार कर दिया जिसके कारण बोर्डिंग को बंद कर दिया गया और के.जी कक्षाएं आरंभ की गईं। इस प्रकार, सेंट एडवर्ड्स एक बार फिर डे स्कूल बन गया। ईसाई भाइयों ने संस्था के प्रति अपने 60 वर्ष के कर्मठ योगदान के उपरांत सेंट एडवर्ड्स स्कूल को शिमला-चंडीगढ़ के प्रांत को सौंप दिया। वर्तमान में इस स्कूल का प्रबंधन शिमला चंडीगढ़ प्रांत के बिशप के अधीन शिमला चंडीगढ़ एजुकेशनल सोसाइटी कर रही है।

1998 में इस स्कूल ने एक और मील पत्थर स्थापित करते हुए वरिष्ठ माध्यमिक पाठशालाएं आरंभ कीं जिसके लिए 1998 में नए स्कूल खंड का निर्माण आरंभ किया गया। वर्ष 2000 में इस स्कूल ने अपने अस्तित्व के 75 वर्ष पूरे किए और इस विशेष अवसर पर शिमला के लोगों को उपहार देते हुए बिशप ने अप्रैल, 2001 से पुनः प्राथमिक कक्षाएं आरंभ करने का निर्णय लिया। अभिभावकों और विद्यार्थियों के आग्रह को स्वीकारते हुए स्कूल प्रबंधन ने 2008 में सीबीएसई, नई दिल्ली से सम्बद्धता प्राप्त की।

सेंट थॉमस

सेंट थॉमस स्कूल का शिलान्यास 29 जून, 1912 को भारत के तत्कालीन वॉसराय लॉर्ड हार्डिंज ने किया था। यह भवन पहले गिरिजाघर हुआ करता था जिसे हरबर्ट वैलर ने एक विशेष वास्तुकला से निर्मित किया था। इसके सभागार को कम सुविधा प्राप्त परिवारों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। 1924 में यह स्कूल पूर्ण रूप से स्थापित हुआ और उस समय के शिक्षा विभाग के साथ पंजीकृत किया गया। इस स्कूल की स्थापना हेलेन जेरवुड ने की थी जो ब्रिटेन की पथ प्रदर्शक शिक्षाविद् और धर्म प्रचारक थीं। वह दिल्ली और शिमला में शिक्षण संस्थान स्थापित करने के उत्साह के साथ भारत आईं थीं उन्होंने 1924 से 1939 तक सेंट थॉमस स्कूल की प्रधानाचार्य के तौर पर अपनी सेवाएं दीं।

उस समय जब भारत में पर्दा प्रथा थी और लड़कियों को स्कूल जाने की अनुमति नहीं थी, हेलेन जेरवुड ने विशेष तौर पर लड़कियों के लिए स्कूल आरंभ किए। सैंट थॉमस स्कूल औपचारिक रूप से 1924 में शिमला में स्थापित किया गया। उन्हीं ने दिल्ली में तीस हजारी स्कूल, सेंट थॉमस स्कूल और सेंट मार्टिन्स डायोसेसन स्कूल की स्थापना की थी।

वर्तमान में सेंट थॉमस स्कूल वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला है जिसमें छात्रों और छात्राओं दोनों को शिक्षा प्रदान की जा रही है। यह स्कूल सीबीएसई, नई दिल्ली से सम्बद्धता प्राप्त है। यह स्कूल अमृतसर प्रांत के बिशप के अंतर्गत क्रिश्चियन माइनॉरटी संस्थान है। अमृतसर प्रांत के बिशप इसके चैयरमेन हैं।

शिमला जनपद का एक महत्त्वपूर्ण स्कूल गार्टन मिशन स्कूल कोटगढ़ वर्ष 1843 में डियोसिस ऑफ अमृतसर (सी.एन.आई.) के तहत खोला गया। यह एशिया में सबसे पुराने स्कूलों में से एक है। इस स्कूल की स्थापना ईसाई मिशनरियों द्वारा की गई थी जिन्होंने कोटगढ़ में अस्पताल व गिरजाघर का निर्माण करवाया था। इस स्कूल का नाम शिमला में मशहूर पब्लिक सर्वेंट जोरटन के नाम पर रखा गया। यह स्कूल का एक लम्बा इतिहास है तथा यह छात्रों को पारम्परिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा प्रदान कर रहा है। 1877 में कोटगढ़ में सेंट मेरी गिरजाघर के खुलने के साथ साथ लगते गांवों में भी स्कूल खोले गए। इसका उल्लेख Murrys Hand Book of Punjab, 1883 में मिलता है। आजादी के उपरांत इस स्कूल के प्रधानाचार्य श्री एस.एस. विल्सन रहे जो कि पूर्व कुलपति हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला स्वर्गीय डॉ. अनिल विल्सन के पिता थे। इनके कार्यकाल में गार्टन स्कूल ने अपनी प्रसिद्धि की

(शेष पृष्ठ 143)



पदम उच्च विद्यालय रामपुर

● कृष्ण नेगी

उत्तुंग पहाड़ों के मध्य बसे रामपुर बुशहर का गौरवमय इतिहास है। यहां के हर एक भवन, देवालय और मार्ग की अपनी एक अलग कहानी है। राजमहल, प्राचीन बौद्ध मंदिर, विद्यालय, पुराना कचहरी व एस.डी.एस. कोर्ट, रघुनाथ मंदिर, सतलुज नदी पर विक्टोरिया पुल, झूलानुमा पुल इस क्षेत्र के उस वैभव की कहानी बयां करते हैं जिस पर आज सभी क्षेत्रवासियों को नाज है। रामपुर शहर सदियों से सतलुज नदी के निर्मल जल का स्पर्श पाकर पल्लवित होता रहा है। तेज प्रवाह तथा गर्जना से निरंतर अग्रसर सतलुज के इस शोर को अगर कोई मंद कर सका है तो वह है वर्ष 1891 से हिन्दुस्तान-तिब्बत मार्ग पर शहर के एक छोर पर स्थित पदम महाविद्यालय। यह सच है कि स्कूल ज्ञान का वह मंदिर होता है, जहां से शिक्षा ग्रहण कर जीवन की राह बदली जा सकती है। स्थापना के समय इसे प्राथमिक विद्यालय के रूप में खोला गया। वर्ष 1906 में इसे स्तरोन्नत कर एंग्लो वर्नकुलर स्कूल बनाया गया। वर्ष 1909 में स्कूल का नामकरण तत्कालीन राजा शमशेर सिंह के नाम पर शमशेर मिडल स्कूल रखा गया। वर्ष 1919 में इसे महाराजा पदम सिंह ने हाई स्कूल में स्तरोन्नत किया। इस विद्यालय का उल्लेख महान साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'किन्नर देश में' भी किया है। उन्होंने बुशहर प्रजा मण्डल के नेता मास्टर अनुलाल का उल्लेख तथा तत्कालीन अध्यापक वर्ग के साथ वार्तालाप का उल्लेख किया है। राहुल जी ने पदम विद्यालय के वर्ष 1948 में हेडमास्टर पंडित दौलत राम का भी उल्लेख किया है। उनके शब्दों में- ऐसे स्कूल अब कहां हैं? होते तो किसका दिल फिर से विद्यार्थी बनने का नहीं करता। वर्ष 1984 में इस विद्यालय की हीरक जयन्ती मनाई गई तथा इस समारोह की अध्यक्षता तत्कालीन (वर्तमान) मुख्य मंत्री श्री वीरभद्र सिंह ने की। इस स्कूल के उत्थान में अहम योगदान के लिए इसका नामकरण महाराजा पदम सिंह के नाम पर पदम विद्यालय किया गया। इस विद्यालय को शीर्ष पर ले जाने तथा वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में श्री वीरभद्र सिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यह विद्यालय क्षेत्रवासियों विशेषकर शिमला, कुल्लू, मण्डी तथा किन्नौर जिलों के युवाओं के लिए एक ज्ञान का स्रोत रहा है। इस विद्यालय ने पहाड़ों में ज्ञान का प्रकाश फैलाया। विद्यालय रूपी इस मंदिर ने अनेक ऐसे विद्यार्थी पैदा किए हैं, जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में मुकाम हासिल कर विद्यालय का नाम रोशन किया है। स्कूल में लगे बोर्ड पर उन विद्यार्थियों के नाम पढ़े जा सकते हैं तथा उस पर लिखी इबारत- पदम हाई स्कूल रामपुर के शीर्ष पुराने छात्र जो सार्वजनिक, नागरिक तथा सैन्य क्षेत्र में उत्कृष्ट पदों पर आसीन हुए। पदम विद्यालय के लिए यह गर्व की बात है कि प्रदेश के प्रथम गृह मंत्री पं. पदम देव इस स्कूल के छात्र रहे। वहीं मुख्य सचिव व विधान सभा के अध्यक्ष श्री ठाकुर सेन नेगी, निदेशक कृषि व कुलपति यादवपुर शिलांग व हि. प्र. विश्वविद्यालय के श्री लक्ष्मी सिंह नेगी, निदेशक स्वास्थ्य सेवाएं डॉ. जिया लाल, न्यायमूर्ति हिमाचल उच्च न्यायालय ठाकुर चेत राम, मुख्य सचिव श्री भगत चन्द नेगी, निदेशक/आयुक्त पशु पालन एवं कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति श्री गोपी चन्द नेगी, पुलिस महानिदेशक श्री इन्द्र भगत नेगी, प्रधान अरण्यपाल श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा, वानिकी विश्वविद्यालय सोलन के उपकुलपति डॉ. दौलत राम ठाकुर, एयर वाईस मार्शल श्री विश्वनाथ भारद्वाज, मेजर जनरल अयोध्या प्रसाद भारद्वाज, ब्रिगेडियर श्री लेखराज सिंह व श्री गोविन्द सिंह खिमटा, विंग कमांडर श्री हरीश भारद्वाज व श्री वेद प्रकाश भागरा, कर्नल सर्वश्री सुरेन्द्र साही नेगी, प्रभु लाल नेगी व दुर्गा नन्द जिंगटा। श्री अग्र दास, श्री गुरदेव सिंह तथा श्री ज्योति लाल मेहता को राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार मिला है। इसी विद्यालय के छात्र वर्ष 1995 में एच.ए.एस. में प्रथम आए डॉ. प्रमोद शर्मा तथा वर्ष 1996 में राज्य न्यायिक सेवा में वर्ष 1996 में प्रथम आए श्री मुकेश बंसल हैं। शिक्षा के प्रकाश स्तम्भ पदम विद्यालय रामपुर ने इस वर्ष अपनी स्थापना के 123 वर्ष पूरे कर लिए हैं।

प्रधानाचार्य, वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला, दत्त नगर, रामपुर, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश, मो. 94184 54915

लोक संस्कृति

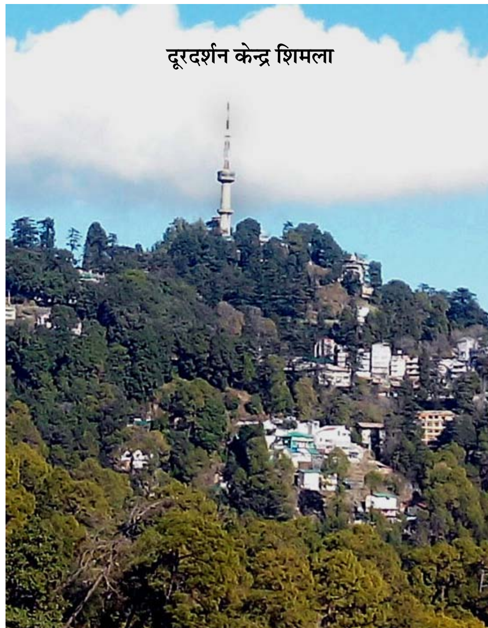
लोगों के अंग-संग

आकाशवाणी व दूरदर्शन

● डॉ. राजेश के. शर्मा

हिमाचल की प्रगति को सर्वप्रथम आम जन तक पहुंचाने में लोक सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश की मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का अहम योगदान है। इसके अप्रैल, 1959 के अंक में प्रकाशित तत्कालीन उपराज्यपाल हिमाचल प्रदेश श्री बजरंग बहादुर सिंह भद्री के शब्द आज भी उस समय की प्रगति एवं अर्थव्यवस्था को दर्शाते हैं- "सात वर्ष पूर्व की बात, जब हिमाचल सुनियोजित अर्थव्यवस्था के लिए अग्रसर हुआ तो यातायात के थोड़े से साधन, बिखरी हुई आबादी, कृषि योग्य भूमि का अभाव, निम्न स्वास्थ्य स्तर, निरक्षरता तथा अल्प आय जैसी बातों के कारण अलंघनीय कठिनाइयां सामने आईं। लेकिन सतत् प्रयत्नों द्वारा सफलतापूर्वक परिचालित विभिन्न स्कीमों से अल्पकाल में ही प्रदेश सर्वतोमुखी अवस्था में परिवर्तित हुआ है।" इसके अतिरिक्त विभाग की दृश्य इकाई ने गांव-गांव तक रेडियो व चलचित्र के माध्यम से विकास का चित्रण किया। पचास की उम्र पार कर चुके निवासियों के जहन में आज भी गांव- गांव में प्रोजेक्ट पर दिखाई जाने वाली फिल्मों तथा वृतचित्रों की यादें ताजा हैं। गांव के मध्य में होने वाले कार्यक्रम इस पहाड़ी प्रदेश के लोगों को देश व दुनिया की झलक दिखाई थी।

हिमाचल प्रदेश में आकाशवाणी की शुरुआत 16 जून, 1955 में हुई। प्रदेश की राजधानी शिमला में प्रारम्भिक तौर पर काउंसिल चैम्बर भवन में आकाशवाणी केन्द्र और समरहिल में चैडविक हाउस में इसका 2.5 किलोवाट का शॉर्टवेव ट्रांसमीटर स्थापित किया गया था। लेकिन वर्ष 1971 में शिमला आकाशवाणी केन्द्र से 23 किलोमीटर दूर बल्देयां में 100 किलोवाट का एन.ई.सी.एम.डब्ल्यू. ट्रांसमीटर स्थापित किया गया। आकाशवाणी केन्द्र शिमला का स्थायी कार्यालय अब अम्बेडकर चौक के निकट आकाशवाणी भवन में स्थित है। हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी राज्य में आकाशवाणी केन्द्र शिमला आज मनोरंजन के साथ-साथ सूचना के संप्रेषण एवं प्रसारण का एक महत्त्वपूर्ण साधन है जिसकी पहुंच 75 प्रतिशत आबादी तक सुलभ है। प्रदेश के आरम्भिक काल में रेडियो ने लोक गीतों, खेती के नए प्रयोग, समाचार, बाजार भाव, खेती-बाड़ी, किसान भाइयों के पत्र तथा रेडियो रूरल फोरम जैसे कार्यक्रम नियमित रूप से प्रसारित कर लोगों में एक नई जागृति लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।


दूरदर्शन केन्द्र शिमला

गांव-गांव में लोक सम्पर्क के माध्यम से रेडियो गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था। इसके लिए पंचायतों में रेडियो लगाकर उसका प्रसारण गांव में लाउडस्पीकर पर करने का प्रावधान किया गया। उस समय रेडियो रूरल फोरम के प्रभारी श्री सत्येन्द्र शर्मा ने मीलों पैदल चल गांव-गांव में रेडियो के माध्यम से प्रसारित कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने में एक प्रशंसनीय कार्य किया। इसमें उनका सहयोग खण्ड स्तर पर तैनात तकनीकी कर्मचारी जिसे रेडियो मैकेनिक कहा जाता था, ने किया। कम्यूनिटी लिस्निंग केन्द्र देश सहित हिमाचल के कोने- कोने में स्थापित हुए। यह जानकारियों के सम्प्रेषण का

मुख्य जरिया बना। लोग जागरूक हुए, नई खेती तकनीकों को अपनाया तथा ग्राम खुशहाल बने। शिमला जिले के रामपुर, कुम्हारसेन, ठियोग, कोटखाई, चौपाल, रोहड़ू, सुन्नी में स्थापित रेडियो मैकेनिक कार्यालयों के माध्यम से लोगों को जानकारियां उपलब्ध हुई। इस दौरान बैटरियों के माध्यम से रेडियो को चलाया जाता था। बिजली न गांवों में थी और न ही बिजली से चलने वाले रेडियो बाजार में आए थे। रामपुर में तैनात रेडियो मैकेनिक श्री चई जो बाद में सहायक रेडियो इंजीनियर के पद पर सेवानिवृत्त हुए तथा जुब्बल-कोटखाई में रहे श्री डी. आर. भण्डारी ने मीलों पैदल रास्ता तय कर गांव-गांव तक रेडियो व चलचित्र के माध्यम से लोगों को जागरूक किया।



आकाशवाणी केन्द्र शिमला

राज्य के आरम्भिक काल में रेडियो ही सम्पर्क का एक मात्र साधन थी। अखबारें तो मात्र प्रदेश के शहरों विशेषकर, सोलन, शिमला, धर्मशाला तथा छावनी क्षेत्रों तक ही सीमित थी। आज भी शिमला रेडियो स्टेशन ने अपनी विश्वसनीयता यथावत बनाए हुई है। सायं 7.50 बजे आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले समाचार बुलेटिन को सुनने वालों की कमी नहीं है। यहां से प्रतिदिन 14 घंटे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। आकाशवाणी का श्रोताओं पर इतना प्रभाव है कि राज्य में निजी एफ.एम. रेडियो का कोई भी प्रभाव नहीं है। हाल ही में 100 वाट के मानवरहित ट्रांसमीटर चम्बा जिले के भरमौर, लाहौल-स्पीति के केलंग, शिमला जिले में रामपुर तथा बिलासपुर जिले के बरठीं में लगाए गए हैं। 10 किलोवाट का एक ट्रांसमीटर लगाकर एफ. एम. शिमला भी आरम्भ किया गया है।

आज भी शिमला रेडियो स्टेशन ने अपनी विश्वसनीयता यथावत बनाए हुई है। सायं 7.50 बजे आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले समाचार बुलेटिन को सुनने वालों की कमी नहीं है। राज्य की 75 प्रतिशत जनसंख्या तक रेडियो की पहुंच है। यहां से प्रतिदिन 14 घंटे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। आकाशवाणी का श्रोताओं पर इतना प्रभाव है कि राज्य में निजी एफ.एम. रेडियो का कोई भी प्रभाव नहीं है। हाल ही में 100 वाट के मानवरहित ट्रांसमीटर चम्बा जिले के भरमौर, लाहौल-स्पीति के केलंग, शिमला जिले में रामपुर तथा बिलासपुर जिले के बरठीं में लगाए गए हैं। 10 किलोवाट का एक ट्रांसमीटर लगाकर एफ.एम. शिमला भी आरम्भ किया गया है।

रेडियो के बाद हिमाचल में दूरदर्शन का पदार्पण वर्ष 1995 में हुआ। दूरदर्शन के क्षेत्रीय केन्द्रों की विस्तार योजना एवं हिमाचल की लम्बित मांग के दृष्टिगत शिमला में 7 जून, 1995 को केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री कर्नल के.पी. सिंह देव ने मुख्य मंत्री श्री वीरभद्र सिंह व राज्यपाल श्री सुधाकर राव नाईक की उपस्थिति में दूरदर्शन केन्द्र शिमला का विधिवत उद्घाटन किया। 15 जून, 1995 से इस केन्द्र से औपचारिक रूप से प्रसारण आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में स्थानीय कार्यक्रमों की अवधि मात्र आधे घण्टे रखी गई। 8 अक्तूबर, 2000 से स्थानीय कार्यक्रमों की प्रसारण अवधि दो घण्टे की गई। पहली नवम्बर, 2000 से केन्द्र से 15 मिनट का प्रादेशिक समाचार बुलेटिन आरम्भ हुआ। 15 अगस्त 2005 से पांच मिनट का एक अतिरिक्त समाचार बुलेटिन आरम्भ हुआ। 15 अगस्त 2005 से पांच मिनट का एक अतिरिक्त समाचार बुलेटिन आरम्भ हुआ। इससे पहले राज्य को दूरदर्शन के लिए जालंधर दूरदर्शन केन्द्र पर ही निर्भर रहना पड़ता था जिसकी पहुंच प्रदेश में बहुत कम थी। दूरदर्शन के कार्यक्रम राज्य में 70 प्रतिशत से अधिक की आबादी द्वारा देखे जा रहे हैं। दूरदर्शन का कृषि दर्शन लोकप्रिय कार्यक्रमों में से एक है तथा 12 स्थानीय बोलियों- सिरमौरी, कुल्लवी, मण्डयाली, किन्नौरी, लाहौली, स्पीति, ऊपरी तथा निचले महासवी, बिलासपुरी, चम्बयाली, पंगवाली और कांगड़ी में कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं। आकाशवाणी शिमला तथा दूरदर्शन केन्द्र शिमला, हिमाचल की शान व पहचान है। हिमाचल के विकास तथा उन्नति के कार्यक्रम को लोगों तक पहुंचाने में इनका बड़ा योगदान है। आज भी यह इसी गति से अपना योगदान दे रहे हैं। इंटरनेट के इस युग में इन प्रसारणों ने अभी भी अपनी विश्वसनीयता कायम रखी है। शिमला प्रदेश के दूरदराज क्षेत्रों में आज भी रेडियो तथा दूरदर्शन लोगों का साथी है।

सहायक सम्पादक, निदेशालय सूचना एवं जन सम्पर्क, शिमला-171 002, मो. 94180 09893

रोमांचक फिसलन

स्कीइंग व स्केटिंग की सैरगाह

● योग राज शर्मा

प्रकृति ने हिमाचल प्रदेश में जी खोलकर आकर्षण बिखेरा है। यहां की धवल पर्वत शृंखलाएं, हरी-भरी घाटियां, नदी-नाले, लोक उत्सव व पहाड़ी जन मानस में प्रचलित सांस्कृतिक परंपराएं सहज ही हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। ऐसे में प्रदेश की ऊंची-ऊंची चोटियों पर बर्फ की जो चादर बिछ जाती है, उसका अपना एक अलग ही महत्त्व है। हृदयस्पर्शी ऐसे दृश्यों को देखकर ऐसा लगता है कि मानों हम स्वर्ग का कोई नजारा देख रहे हों। इन स्थानों पर साहसिक गतिविधियों के लिए कई महत्त्वपूर्ण स्थान उपलब्ध हैं। शिमला जिले में कुफरी व नारकंडा दो ऐसे स्थान हैं जहां पर आप सर्दियों के मौसम में रोमांचक गतिविधियों में शुमार स्कीइंग का लुत्फ उठा सकते हैं। इसके अलावा शिमला में अंग्रेजी हुकूमत के दौरान बने एशिया के एकमात्र प्राकृतिक स्केटिंग रिंग का नजारा भी सर्दियों के मौसम में देखने लायक होता है। बर्फ की कुछ सेंटीमीटर परत पर संगीत की धुनों पर स्केट पहनकर पाद नृत्य करते हर उम्र के लोगों को देखने का एक अलग ही आनंद है।

स्कीइंग : शिमला से 65 किलोमीटर दूर नारकंडा हिमालय की प्रमुख स्की ढलानों में से एक है यहां से दृष्टिगोचर होते बर्फ से लदे पहाड़ लोगों को प्रसन्नचित करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। यहां की स्की ढलान न सिर्फ नौसिखिये लोगों के लिए बेहतर विकल्प प्रदान करती है बल्कि स्कीइंग में दक्ष हो चुके खिलाड़ियों के लिए भी यहां पर कई तरह की प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती हैं। इनमें क्रास कंट्री स्कीइंग, स्नोबोर्डिंग, जैसी स्पर्धाएं शामिल हैं। यहां पर सुरक्षा बलों के साथ-साथ विदेशों से आने वाले पर्यटकों के लिए भी स्कीइंग व दूसरे खेलों का प्रशिक्षण दिया जाता है। देवदार के घने वृक्षों के बीच यहां पर प्राकृतिक रूप से बनी ढलान पर स्कीइंग की बारीकियां पिछले कुछ सालों से लगातार सिखाई जा रही हैं। पर्वतारोहण संस्थान मनाली के सहयोग से यहां पर दैनिक व साप्ताहिक आधार पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। यहां पर होने वाली राष्ट्रीय स्तर की स्कीइंग व फरवरी माह में होने वाला विंटर कार्निवाल आकर्षण का प्रमुख केन्द रहता है। इसी तरह राजधानी शिमला से 19 किलोमीटर दूर प्रसिद्ध पर्यटक स्थल कुफरी भी स्कीइंग के शौकीनों के लिए सर्वश्रेष्ठ सैरगाहों में शामिल है। समुद्रतल से 2500 मीटर की ऊंचाई पर स्थित कुफरी में अंग्रेजी शासनकाल के दौरान 1930 से ही स्कीइंग की शुरुआत हो गई थी। वर्तमान में कुफरी स्कीइंग क्लब यहां पर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को सफलता पूर्वक आयोजित कर रहा है। यहां पर स्कीइंग के अलावा आइस स्केटिंग, स्नो बोर्डिंग, ट्रैकिंग व हाइकिंग की सुविधा भी साहसिक खेलों के शौकीनों के लिए मुहैया करवाई जा रही है।

स्केटिंग शीतकालीन खेलों में शुमार आइस स्केटिंग भी सर्दियों के मौसम में पर्यटकों के लिए हमेशा से ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसके लिए शिमला का ऐतिहासिक आइस स्केटिंग रिंक एक ऐसा विकल्प है जो देश में कहीं पर भी उपलब्ध नहीं है। 1920 में यह स्केटिंग रिंक उस समय अस्तित्व में आया जब एक अंग्रेज ब्लैसिंगटन ने टेनिस कोर्ट को गीला कर रखा था। वर्तमान बस अड्डे से सटे इस कोर्ट को जब ब्लैसिंगटन ने देखा तो इसमें डाला गया पानी बर्फ के रूप में जम गया था। उसके बाद से यहां पर स्केटिंग की गतिविधियां शुरू हो गई। शिमला में स्थित यह आइस





स्केटिंग रिंक देश में सबसे बड़ा व दक्षिण एशिया का प्राकृतिक रूप से बना रिंक है जहां पर स्थानीय लोगों के साथ-साथ सैलानी भी संगीत की मधुर धुनों के बीच स्केटिंग का लुत्फ उठाते हैं। इस आइस स्केटिंग रिंक पर बर्फ जमाने के लिए किसी भी तरह के कृत्रिम उपकरणों का प्रयोग नहीं किया जाता। दिसंबर से फरवरी माह के बीच यहां पर स्केटिंग का सीजन चलता है। मौसम में ठंडक और साफ आसमान स्केटिंग के लिए उपयुक्त रहता है। स्केटिंग की स्पर्धाओं के अलावा यहां पर प्रशिक्षण की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं।

गोल्फ कोर्स नालदेहरा

राजधानी शिमला से करीब 23 किलोमीटर दूर नालदेहरा में गोल्फ कोर्स भी अंग्रेजी हुकूमत के दौरान से चला आ रहा है। तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने इसे बनवाया था। प्राकृतिक छटा बिखेरे यहां की सुंदर पहाड़ियों को देख लार्ड कर्जन इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी बेटी अलेग्जेण्ड्रा का नाम नागदेहरा रखा था। चूंकि इस स्थान पर नाग देवता का मंदिर भी है। इसी आधार पर वायसराय ने अपनी बेटी का नाम भी नागदेहरा रखा जो बाद में नालदेहरा नाम से प्रसिद्ध हो गया। पहले इस गोल्फ कोर्स में नौ छेद थे जिसका विस्तार कर अब 18 किया गया है। देश के कठिनतम गोल्फ कोर्सों में नालदेहरा का गोल्फ कोर्स भी एक है। इसके अलावा शिमला के अनाडेल मैदान में भी एक गोल्फ कोर्स लोगों के आकर्षण का केन्द्र है।



विश्व का सबसे ऊंचा
एस्ट्रो टर्फ हॉकी मैदान शिलारू

शिमला जिला मुख्यालय से 52 किलोमीटर दूर समुद्रतल से 7500 फुट की ऊंचाई पर स्थित शिलारू हॉकी एस्ट्रो टर्फ को विश्व के सर्वाधिक ऊंचे हॉकी स्टेडियम का गौरव प्राप्त है। इस मैदान में अगस्त 2009 में 3.5 करोड़ रुपये की लागत से कृत्रिम टर्फ बिछाया गया था। हाई एल्टीच्यूड ट्रेनिंग सेंटर शिलारू, दरअसल देश के पूर्व प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी का ड्रीम प्रोजैक्ट था जिसका शिलान्यास फरवरी, 1987 में किया गया था। भारतीय खेल प्राधिकरण द्वारा निर्मित बहुउद्देशीय स्टेडियम परिसर को वर्तमान में हाई एल्टीच्यूड ट्रेनिंग सेंटर के रूप में विकसित किया गया है जहां अब खिलाड़ियों एवं प्रशिक्षण स्टाफ के लिए हॉस्टल सहित हैड बॉल, वालीबॉल, बैडमिंटन, बास्केट बॉल व टेबल टेनिस, फैंसिंग, जिम्नेजियम तथा रेसलिंग जैसी खेलों के लिए स्तरीय इनडोर प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध हैं। भारतीय हॉकी टीम के पूर्व कप्तान परगट सिंह ने शिलारू में इस प्रशिक्षण केन्द्र के स्थापित होने पर बड़े गर्व से कहा था कि भारतीय हॉकी खिलाड़ियों को भी ऊंचे क्षेत्रों में हॉकी प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध होगी जिससे भारतीय टीम अब यूरोपीय माहौल में भी बेहतर तरीके से हॉकी खेलने में सक्षम होगी। गौरतलब है कि इस हाई एल्टीच्यूड ट्रेनिंग सेंटर की शुरुआत भारतीय हॉकी जूनियर टीम के प्रशिक्षण के साथ हुई थी।

ज्ञान का उत्कृष्ट केंद्र शिमला

(पृष्ठ 137 से आगे) नई ऊंचाइयों को छुआ। (यहां से शिक्षा ग्रहण किए विद्यार्थी डॉ. भूपेन्द्र भारद्वाज के शब्दों में इस स्कूल ने क्षेत्र में ज्ञान का प्रकाश फैलाया तथा बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया। इसी का परिणाम है कि क्षेत्र में महिला एवं पुरुष दोनों जागरूक हुए तथा उन्होंने बागबानी में दक्षता हासिल कर कोटगढ़ क्षेत्र को एक समृद्ध इलाका बनाने में योगदान दिया। पहले इसे प्राथमिक स्कूल के रूप में खोला गया तथा यह शहर का भारतीय पद्धति पर आधारित पहला स्कूल था। इस स्कूल का संचालन आर्य प्रतिनिधि सभा सुन्दरनगर द्वारा किया गया। इसी तरह डी.ए.वी. लक्कड़ बाजार स्कूल की स्थापना 1934 में की गई। अनेक पड़ावों को पार किया है। हाई स्कूल से सीनियर सेकंडरी पब्लिक स्कूल तथा आज डी.ए.वी. सीनियर सेकंडरी पब्लिक स्कूल के नाम से जाना जाता है। आज का दयानन्द पब्लिक स्कूल, अंग्रेजों के वक्त में लेडी इरविन स्कूल के नाम से जाना था।

इसके अतिरिक्त जनपद में और भी बहुत से ऐसे शिक्षण संस्थान हैं जिन्होंने देश को उच्च श्रेणी के राजनेता, शिक्षा-विद्, साहित्यकार, सेना अधिकारी और उच्च प्रशासनिक अधिकारी दिए हैं। इन शिक्षण संस्थानों में सेंट बीड्स कॉलेज, नवबहार, शिमला, एस.डी. स्कूल शिमला, डी.ए.वी. सीनियर सेकंडरी स्कूल लालपानी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने देश-विदेश में प्रदेश का नाम रोशन किया है।

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी, निदेशालय, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 002, मो. 94182 88075

इतिहासविद्

मियां गोवर्धन सिंह

कलम से किया हिमाचल को समृद्ध



• वेद प्रकाश

''एक बार मैं किसी आवश्यक कार्य के लिए पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़ गया हुआ था। वहां यूनिवर्सिटी के प्रांगण में पुरानी किताबों की नीलामी हो रही थी। मेरी नजर एक पुरानी किताब पर पड़ी जिसका नाम था, 'सेटलमैंट ऑफ पिंजौर'। मुझे पुरानी किताबें खरीदने का बहुत शौक था, इसलिए मैंने वह पुस्तक तुरन्त खरीद ली। वापिस शिमला आकर जब मैंने वह पुस्तक पढ़ी तो उसमें पिंजौर के साथ लगते पहाड़ी क्षेत्र परवाणू के बारे में एक रोचक जानकारी पढ़ने को मिली। इसमें लिखा था कि इस पहाड़ी क्षेत्र का परवाणू का हिस्सा सिरमौर रियासत की फॉरेस्ट लैण्ड के अन्तर्गत पड़ता है। इसी दौरान वर्ष 1962 में हिमाचल प्रदेश और हरियाणा राज्यों के बीच इस क्षेत्र को लेकर विवाद चल रहा था। इस मामले को लेकर सारे दस्तावेज परवाणू के इलाके को हरियाणा में दर्शा रहे थे। मैंने वह पुस्तक हिमाचल प्रदेश के सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, श्री हेम चन्द शर्मा को थमा दी और उन्हें बताया कि इसमें परवाणू क्षेत्र को सिरमौर रियासत का हिस्सा बताया गया है। प्रदेश सरकार ने इसी पुस्तक को आधार बनाकर परवाणू पर अपना दावा प्रस्तुत किया और हिमाचल की इस दलील पर परवाणू हिमाचल प्रदेश को मिल गया। मुझे खुशी हुई कि पुस्तक संकलन के मेरे शौक की वजह से इतना बड़ा फैसला हिमाचल प्रदेश के हक में आया और प्रदेश का प्रवेश-द्वार परवाणू हमारे राज्य में शामिल हो गया।'' उक्त उद्‌गार हिमाचल प्रदेश के चलते-फिरते 'विश्व शब्दकोष' के नाम से विख्यात मियां गोवर्धन सिंह के हैं जो उन्होंने वर्ष 2002 में प्रदेश के लेखक नेमचन्द अजनबी के साथ शिमला के संजौली की ढिंगूधार में स्थित उनके घर में एक अनौपचारिक भेंट के दौरान व्यक्त किए थे। उन्होंने पुस्तकों के प्रति अपने शौक के बारे में बताया कि वर्ष 1947 में जब देश आजाद हुआ तो अंग्रेज देश छोड़कर शिमला से वापिस जा रहे थे लेकिन न जाने कहां से मेरे मन में आया कि मुझे हिमाचल पर अंग्रेजों द्वारा लिखी पुस्तकों को खरीदना चाहिए। इस प्रकार मैंने उस समय उनसे बहुत सारी पुस्तकें खरीद कर संकलित कर ली। इसके बाद पुस्तक संग्रह का वही शौक उनके लिए जुनून बन गया और उन्होंने अपना एक निजी पुस्तकालय बना लिया। पुस्तकों, विशेषकर जीवनियों के संग्रह तथा पढ़ने के शौक ने उन्हें लेखक बना दिया। वर्ष 1950 में इसी शौक को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने इब्राहिम लिंकन की जीवनी पर हिन्दी में पुस्तक लिखी। पुस्तकालय में रखी इन्हीं पुस्तकों को वह अपनी दो सुपुत्रियों के बाद तीसरी संतान मानते थे। यही नहीं, मियां जी ने वर्ष 1966 में हिमाचल के पुनर्गठन के समय विशाल हिमाचल के निर्माण में भी दस्तावेजों को संकलित करने तथा हिमाचल प्रदेश लोक सम्पर्क विभाग द्वारा भाषा के आधार पर प्रकाशित पुस्तक जिसे विभाग द्वारा संकलित किया गया, के लिए हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी में उपलब्ध दस्तावेजों को एकत्रित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। परिणामस्वरूप तत्कालीन मुख्य मंत्री डॉ. यशवन्त सिंह परमार के प्रयास सफल हुए और हिमाचल को वृहद आकार मिला। मियां गोवर्धन सिंह हिमाचल प्रदेश की एक ऐसी शख्सीयत थे जिन्होंने अपनी कलम से न केवल प्रदेश में इतिहास लेखन विधा को समृद्ध बनाया बल्कि हिमाचल से संबधित बिखरे पड़े दुर्लभ रिकॉर्ड व जानकारियों को संकलित कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। पुस्तकों के प्रति उनका लगाव इतना जग-जाहिर था कि प्रदेश दौरे पर आने वाले बड़े-बड़े राजनेता भी उनके पुस्तक प्रेम के मुरीद थे। भारत के पूर्व राष्ट्रपति जब भी छुट्टियां बिताने शिमला आते तो वह पुस्तकों के चयन के लिए मियां जी की सेवाओं का लाभ लेना कभी नहीं भूलते। इसी प्रकार देश की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी जब अपनी छुट्टियां बिताने शिमला आईं तो उनके लिए पुस्तकों चयन मियां जी ने ही किया था। श्रीमती इन्दिरा गान्धी उनके कार्य से इतना प्रभावित हुई कि उन्होंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। मियां गोवर्धन सचिवालय लाइब्रेरी में बेहतरीन पुस्तकों का संकलन कर उन्हें सलीके से लगाते थे कि प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री डा. परमार लाइब्रेरी में पांच-पांच घंटे व्यतीत करते। यही नहीं, मंत्रियों में लाल चन्द प्रार्थी और के दिनों में सत महाजन सचिवालय लाइब्रेरी में नियमित रूप से आते थे। हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायलय के मुख्य न्यायधीश जस्टिस बेग तो मियां जी के इतने कायल थे कि वह सर्वोच्च न्यायलय के जस्टिस बनने के बाद भी सचिवालय लाइब्रेरी में अकसर आते रहते थे।

मियां गोवर्धन सिंह की पुस्तक 'आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर :

हिमाचल प्रदेश' में पेनेलुप चेटवुड ने लिखा है : "यह सच्चाई है कि हिमाचल के मुख्यमंत्री या उच्च अधिकारी जब भी किसी दूरस्थ गांव में अभिभाषण के लिए जाते थे, तो उनके सचिव मियां जी को दूरभाष पर सामग्री उपलब्ध करवाने को कहते थे। जितनी देर में मुख्य मंत्री या आला अफसर जब पुस्तकालय में दाखिल होते, तो उन्हें मेज पर सम्बन्धित पुस्तकें सुलभ होतीं। अपने वृत्तान्त में पेनेलुप ने लिखा है- जब वह पहली बार सचिवालय पुस्तकालय में उनके भाई जिराड के किन्नौर संस्मरणों को पढ़ने गई तो उन्होंने किन्नौर जिले पर अंग्रेजी में लिखी अन्य पुस्तकों की उपलब्धता बारे पूछा, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि मात्र दस मिनट के भीतर ही लगभग बीस से तीस सम्बन्धित पुस्तकें उनके मेज पर थीं।

मियां गोवर्धन सिंह के पास 'द ऐण्ड ऑफ द हेबिटेबल वर्ल्ड' पुस्तक की लेखिका पेनेलुप चैटवुड का प्रशंसा पत्र मौजूद था जिसमें पेनेलुप ने लिखा है कि 'मियां गोवर्धन सिंह भारत बल्कि पूरे विश्व के अत्यंत सक्षम, ज्ञानी और अपने कार्य के प्रति लाइब्रेरियनों में से एक हैं।' पेनेलुप की पोती ने तो अपनी पुस्तक 'ग्रेंडमदर्ज फुट स्टेप्पस' में मियां जी पर एक पूरा लेख लिखा है। शिमला जिला के जुब्बल के गांव शड़ी में 8 अगस्त, 1928 को जन्में मियां गोवर्धन सिंह के बचपन में ही उनकी माता श्रीमती कंदी देवी का देहान्त हो गया था। इनके पिता श्री नरदास सिंह भी बीमार रहने लगे। वर्ष 1946 में इनके पिता का जब देहान्त हुआ उस समय बालक मियां नौवीं कक्षा में पढ़ते थे। इसके बाद दादा-दादी की देख-रेख में ही इनकी परवरिश हुई। शिमला के हाई स्कूल से दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने वर्ष 1949 में एस.डी. कॉलेज से स्नातक की डिग्री प्राप्त की। इस दौरान वह न केवल प्रजामंडल के सक्रिय सदस्य रहे बल्कि साथ ही साथ उन्होंने अपनी पढ़ाई को भी जारी रखते हुए 1955 में पंजाब विश्वविद्यालय से पुस्तक विज्ञान में डिप्लोमा किया। रियासतकालीन दौर में क्योंथल रियासत के भू-बन्दोबस्त में नायब तहसीलदार और बाद में भू-रिकॉर्ड विभाग में नौकरी की। उसके उपरान्त हि. प्र. विधानसभा में नियुक्ति के दौरान उन्होंने विधानसभा पुस्तकालय की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंततः वह हिमाचल प्रदेश सचिवालय में नियुक्त हुए जहां से उन्होंने अपने लेखन कार्य को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया।

मियां गोवर्धन सिंह के कार्यों को देखकर पुस्तक-प्रेमियों और इतिहासवेताओं को नाज होना स्वाभाविक है कि इस महान शख्सीयत ने अकेले ही इच्छाशक्ति से हिमाचल के हर पहलू को कलमबद्ध कर इसे आने वाली पीढ़ियों के लिए बहुमूल्य धरोहर के रूप में संजोया है।

मियां गोवर्धन के लेखन कार्य को सही मायनों में उस समय विशेष पहचान मिली जब 1962 में धर्मयुग में उनकी 'लामण' और 'झूरी लोकगीतों को 'जुब्बल की नारियों में प्रेम गीत' नामक शीर्षक से पहला लेख प्रकाशित हुआ। इसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। उन्होंने हिमाचल प्रदेश के विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखीं। उनकी पुस्तकों में 'गाइड टू शिमला', 1972, 'हिमाचल प्रदेश-पास्ट एण्ड प्रजेण्ट',1975 (सह लेखन), ट्रेडिशनल मीडिया ऐण्ड फोक आर्ट ऑफ हिमाचल प्रदेश, 1981, हिस्ट्री ऑफ हिमाचल प्रदेश, 1982, आर्ट एण्ड ऑर्किटेक्चर आफ हिमाचल प्रदेश, 1983, सोशल कल्चरल एण्ड इकॉनोमिक सर्वे आफ हिमाचल प्रदेश, 1985, डिस्क्रिप्टिव बिबलियोग्राफी ऑफ हिमाचल पदेश, 1985, हिमाचल प्रदेश : हिस्ट्री, कल्चर एण्ड इकॉनोमिक, 1988, फेस्टीवल्ज, फेयरज एण्ड कस्टम्ज ऑफ हिमाचल प्रदेश, 1992, हिमाचल प्रदेश का इतिहास, 1996, वुडन टेम्पल्ज ऑफ हिमाचल प्रदेश, 1999, तथा हिमाचल प्रदेश : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण (सहलेखन), 1999 मुख्य रूप से शामिल है जो विद्यार्थियों, शोधार्थियों और इतिहास जिज्ञासुओं के लिए किसी खजाने से कम नहीं हैं। मियां जी के अनमोल रचना संसार में अनेकों ऐसे शोध लेख भी शामिल है जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। 'हिमाचल प्रदेश का इतिहास' पुस्तकों को तेईस वर्ष के अनुसन्धान एवं शोध के उपरांत प्रकाशित किया गया। यह पुस्तक हिमाचल को मूल रूप से जानकारी उपलब्ध करवाने वाली पहली पुस्तक थी। इसके अलावा मासकम्यूकेशन इन्स्टीटयूट आफ दिल्ली तथा हिरोशिमा विश्वविद्यालय जापान के लिए बिबलियोग्राफी पर सराहनीय कार्य तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए पंगवाल पर रिसर्च कार्य मील पत्थर कहे जा सकते हैं। हिमाचल प्रदेश पर वृहद लेखन कार्य को देखते हुए प्रदेश सरकार ने वर्ष 1986 में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ हिमाचल प्रदेश' के लिए 'डा. यशवंत सिंह राजकीय पुरस्कार' से समानित किया। वर्ष 1996 में उन्हें हिमाचल प्रदेश कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी द्वारा पहाड़ी संस्कृति में उनके अहम योगदान के लिए 'शिखर सम्मान' से सम्मानित किया गया। मियां जी जीवन के अंतिम पड़ाव में बीमारी की वजह से गांव चले गए थे, लेकिन उनके स्वास्थ्य में अधिक सुधार नहीं हुआ। हिमाचल प्रदेश का यह महान इतिहासवेता आखिरकार 3 मार्च 2003 को इस दुनिया को सदा के लिए अलविदा कह गया। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न विषयों- कला, इतिहास, संस्कृति सहित संगीत एवं लोक संगीत पर किए गए वृहद कार्य और इतिहास लेखन की दुर्लभ एवं उपयोगी कृतियों में सदैव वह जीवित रहेंगे। उनके लिए सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि सचिवालय पुस्तकालय का नामकरण मियां गोवर्धन सिंह के नाम पर किया जाए।

मोबाइल 94180 06164

श्यामला घाटी का जादुई सम्मोहन



गेयटी थियेटर : रंगमंच प्रतिभाओं का निखार स्थल

आज का रिज, एक खुला-खुला, सरकारी कार्यक्रमों आदि का तयशुदा मैदान है। यहां महात्मा गांधी से लेकर, इंदिरा गांधी, डॉ. यशवन्त सिंह परमार तथा दौलत सिंह' की मूर्तियां अपने-अपने समय के गौरवशाली इतिहास का स्मरण करातीं नज़र आती हैं। देश के प्रसिद्ध मूर्ति निर्माता प्रो. एम.सी. सक्सेना द्वारा लोक शैली में निर्मित एक 'हिमाचली बाला' की भव्य मूर्ति भी डॉ. परमार के निकट स्थापित है जो प्रतिदिन असंख्य दर्शकों/ पर्यटकों का ध्यान आकृष्ट करती है। 'स्कैंडल' से रिज़ की ओर जाते हुए, आपने भी देखा होगा कि इसका वामांग बैठ रहा है। सरकार इसे खड़ा करने में लगी हुई है। पर जो इतने सालों से खड़ा है, थोड़ा बैठने का अधिकार तो उसे भी है। स्कैंडल प्वाइंट पर अमर स्वतंत्रता सेनानी लाला लाजपत राय की मूर्ति है जिसमें वह आज भी देश के गद्दारों को तर्जित करते नज़र आते हैं। अब स्कैंडल प्वाइंट का परिवर्तित सरकारी नाम लाला लाजपतराय चौक हो गया है। चलो, स्कैंडल प्वांइट से तो अच्छा ही है।

आनन्द का मंच

शिमला के प्रसिद्ध सांस्कृतिक मंच, 'गेयटी थियेटर' का उद्घाटन 30 मई, 1887 ई. में हुआ। यहां खेले गए पहले नाटक का नाम था 'टाइम विल टैल' था। उस समय रामलीला, कृष्णलीला आदि धार्मिक नाटकों का ही अधिक प्रचलन और महत्त्व था। लोगों के मनोरंजनार्थ चलती-फिरती मण्डलियों द्वारा ये धार्मिक लीलाएं की जाती थीं। शिमला में गेयटी थियेटर के बनने से न केवल नाट्य-प्रेमियों अपितु, गीत, संगीत, कला के शौकीनों, हुनरमंदों को भी प्रोत्साहन मिला। सरकार के भाषा विभाग के अधिकार में आने से पूर्व, यह ए.डी.सी. (एमैच्योर ड्रामाटिक क्लब) के अधिकार में था, अभी दो वर्ष पूर्व ही इसका पुनरुद्धार/ जीर्णोद्धार होने से यह अपने पूर्व रूप को प्राप्त हुआ है। अब यह हिमाचल प्रदेश सरकार के अधीन है। एक समझ के तहत अब इसकी ऊपर की मंजिल के दो हॉल, ललित कला अकादमी दिल्ली को सरकार ने किराए पर उठा दिए हैं। ललित कला अकादमी की कलाकृतियां और साहित्य, कला पारखियों, कला के शौकीनों के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं। दुमंज़िला 'गेयटी' के दोनों बड़े प्रेक्षागृहों में प्रतिदिन कोई-न-कोई कार्यक्रम होता रहता है। स्थानीय प्रतिभाओं को निखारने में भी गेयटी का बड़ा योगदान है। सरकार के अधिसंख्य साहित्यिक आयोजन भी इसी थियेटर में होते हैं।

शिमला में क्राइस्ट चर्च का उठा आकार, दूर-दूर से शिमला को रेखांकित कर जाता है। चर्च कहता है हां-हां मैं आज भी यहां हूं। मेरे पास आओ। यहां आकर आप भी एक ऊंचाई का अनुभव करेंगे। ऊंचाई, पाने के लिए थोड़ी कठिनाई तो सहनी ही पड़ती है। व्यक्तित्व को ऊंचा उठाने पर ही बड़ाई मिलती है। चर्च से थोड़ा नीचे उतरने पर 'लेडीज़ पार्क' है, जो अब 'रानी झांसी' पार्क हो गया है। स्वातंत्र्य हेतु बलि हो जाने वाली महानायिका रानी झांसी की एक प्रेरणास्पद मूर्ति भी यहां स्थापित है जो देशभक्ति की भावना की परिचायक है।

शिमला की अपनी अनेक विशेषताएं हैं जिनके कारण शिमला विश्वमानचित्र पर अंकित है। वायसरीगल लॉज, में जहां महात्मा गांधी भी कभी रहे, एक अद्भुत वास्तु कला का प्रतीक है, आजकल यह राष्ट्रपति भवन के नाम के अनन्तर, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के नाम से जाना जाता है। शोधार्थियों हेतु गहन अध्ययन का सर्वोत्तम स्थान है। इसका पुस्तकालय बड़ा समृद्ध है।

इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली आदि के कॉफी हाउसों की तरह, शिमला/मॉल का काफी हाऊस यहां के निवासियों और आगन्तुकों के लिए एक बड़ा आश्वस्तिकर स्थान है। कभी आजादी से पूर्व पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी यहां कॉफी का आनन्द लिया था। शिमला का कॉफी हाउस, आज़ादी से पूर्व राजनीतिक चर्चाओं और साहित्यिक बरसों का केन्द्र था। आजकल कॉफी हाउस में, या तो रिटायर्ड, टायर्ड अथवा केवल, कॉफी के घनघोर प्रेमी ही बैठे मिलते हैं। नई चाल के छोकरे, इस कॉफी के बदले 'एसप्रैसो' कॉफी के शौकीन हैं। इंडियन काफी हाउस के अलावा और भी कई रेस्तरां मॉल का आकर्षण हैं। रिज़ पर का 'आशियाना' अपनी लोकेशन के कारण एक सर्वोत्तम ठिकाना है।

शिमला का समाज और संस्कृति

शिमला का समाज, सभ्य, शालीन, महत्त्वाकांक्षी, शौकीन और संस्कारवान् है। मॉल पर आप, समाज के सभी तबकों/दर्जों, ओहदों और रुचियों के लोगों को देख/ मिल सकते हैं। शिमला, प्रदेश का ऐसा केन्द्रीय आकर्षण है, जिससे सभी सामाजिकों/ नागरिकों के तार जुड़े होते हैं।

अंग्रेज़ों के समय तो मॉल पर, थूकना तक मना था, और ऐसा करते पाया जाने पर जुर्माना होता था परन्तु आज़ाद भारत के स्वतंत्र नागरिक, बहुत-सारे कानूनों से स्वयं को मुक्त मानते हैं।

नारकण्डा, पहुंचकर एक मार्ग, रामपुर होते हुए किन्नौर से भारत-तिब्बत-छोर तक चला जाता है और एक मार्ग, नीचे से दायीं ओर मुड़कर, थानाधार तथा कोटगढ़ (प्रसिद्ध सेब गांव) की तरफ निकल जाता है।

यहां, सायंकाल में, सभी जातियों, धर्मों, समुदायों, सम्प्रदायों, वर्णों, वर्गों के अधिकारी, व्यापारी, कुछ एक-दूसरे से मिलने तो कुछ चहलकदमी के लिए आते हैं। शिमला/ शिमला का मॉल, सभी तरह के व्यक्तियों, नेताओं, प्रणेताओं, साहित्यकारों, पत्रकारों, डॉक्टरों, मरीजों, मालिकों-मजदूरों से, आबाद रहता है। यहां, पूरे प्रदेश की सामासिक, संस्कृति के दर्शन कर सकते हैं आप।

आज का शिमला, अपने कई भरे-पूरे नगरों/ उपनगरों से समृद्ध एक पहाड़ी महानगर है, जहां की जलवायु, आयु के लिए धौंकनी का कार्य करती है। घनी प्रकृति का 'घणा' प्यार, मन को अपार संतोष और ऊर्जा से भर देता है। महात्मा गांधी ने कभी कहा था- "Nature has withheld nothing of its riches"- अर्थात् प्रकृति ने अपनी समृद्धि का एक-एक भव्य; और एक-एक मोहक अंश यहां प्रकाशित कर दिया है।

शिमला की महिमा और खुशहाली में किसी-न-किसी रूप में योग करने वाले इसके उपनगरों में, जतोग, टूटू, समरहिल, बालूगंज, चक्कर, फागली, नाभा, कैथू, टूटीकंडी, खलीनी, नया शिमला, छोटा शिमला, कुसुम्पटी, पंथाघाटी, भट्ठाकुफर, संजौली, ढली, लौंगवुड, भराड़ी आदि उल्लेख्य हैं। इसकी संस्कृति, इसकी राजनीति, इसकी आर्थिकी, इसकी तासीर बनाने में इनका अपूर्व योग है। आज शिमला, जहां व्यापार की एक वांछित स्थली बनती जा रही है, वहीं यह, अपनी सेब संस्कृति, बेमौसमी सब्जी और शॉलों की मार्किट तथा मशरूम उत्पादन के कारण, निजी खजानों और सरकारी कोष को भरने में भी अग्रणी है।

उपनगरीय छटा

शिमला में उदित होती भोर और दिनास्त की संध्या अन्यन्त मोहक हैं। ऊर्जावान भोर जहां प्राणों के प्रवाह को संपुष्ट करती है

यदि आप शिमला से थोड़ा बाहर झांकें तो अनेक मनमोहन स्थलियां तथा प्रकृति की अथक कारीगरी की बेजोड़ दृश्यावलियां, आपको निमन्त्रण देती हुई मिलेंगी। सर्दियों में बर्फ़ से लदी कुफरी घाटी यदि स्कीइंग के लिए, स्केटिंग के लिए कमाल का स्थान है तो इन्हीं दिनों आगे बढ़ने के क्रम में ठियोग, थोड़ी देर ठहर कर दूर-दूर तक निर्गुण ब्रह्ममय प्रकृति के आक्षितिज श्वेतकल्पान्त को निहारने का अवकाश उपलब्ध कराता है। ठियोग से आप दाहिनी ओर के रास्ते; खड़ा पत्थर के मार्ग से हाटकोटी और चौपाल के लिए जा सकते हैं। जुब्बल क्षेत्र में, शिमला से सौ किलोमीटर दूर, 1370 मीटर की ऊंचाई पर पुण्यतोया पब्बर नदी के दाएं किनारे पर यह मंदिर स्थित है। हाटकोटी के चार-पांच किलोमीटर के परिवेश में नदी के आस-पास नागर शैली के शिखराकार कई मंदिर एवं प्रस्तर मूर्तियां देखने को मिलती हैं। ये सब पुरातत्त्व महत्त्व के हैं। हाटकोटी के इस शक्ति स्थल को हाटकेश्वरी दुर्गा कहते हैं। यहां सिंहवाहिणी अष्टभुजा देवी की भव्य कांस्यमूर्ति है।

असुरों, राक्षसों को मारने के लिए शक्तिरूपिणी देवियों ने समय-समय पर अपनी सत्ताएं स्थापित की हैं। भारत के विभिन्न स्थानों पर, शक्ति के अनेक नामों और रूपों की स्थापनाएं, भारत में कभी बहुत-बड़ी हुई स्त्री क्रांति की ओर संकेत करती हैं। भारत में स्त्री सशक्तिकरण का यह एक महाअभियान रहा होगा। अधर्म अन्याय की सीमोत्तर यत्र-यत्र, यादा-यादिकता की अधिकता में, असत् के उच्छेद के लिए सत् की प्रतिष्ठा एक अनिवार्य स्थिति की तरह होती है। यहां से आप रोहड़ू की ओर भी प्रस्थान कर सकते हैं। रोहड़ू एक उर्वर, समृद्धिशाली, सभी प्रकार की फलौषधियों सभी प्रकार के वृक्ष प्रकारों और सभी तरह की मनोवृत्तियों के रमने के लिए, अनूकूल, मनोरम घाटी/ स्थल है।

छैला से यदि आप चाहें तो हिमाचल/शिमला के सघनतम वनक्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। चौपाल में आज गांव की समस्याओं के समाधान के लिए कोई चौपाल जमे या न जमे, परन्तु कभी यह इलाके के मसलों के हल के लिए अवश्य वांछित रही होगी। चौपाल उत्तर प्रदेश की सीमा से लगता, श्यामलतम वनक्षेत्र, अनेक जड़ी-बूटियों और विभिन्न नस्लों के आकर्षक प्राणियों से, भरा-पूरा भूमिखंड है। शिमला का उपांत होने के कारण, चौपाल भले ही पहले शिक्षा, सड़कों, बिजली, पानी से महरूम था- परन्तु डॉ. राधारमण शास्त्री के वहां से पहली बार, प्रदेश सरकार में शिक्षा मंत्री बनने और राजनीतिक जागरूकता आने से अब यह इलाका विकास के मार्ग पर अग्रसर है।

नारकण्डा

नारकण्डा, पहुंचकर एक मार्ग, रामपुर होते हुए किन्नौर से भारत-तिब्बत-छोर तक चला जाता है और एक मार्ग, नीचे से दायीं ओर मुड़कर, थानाधार तथा कोटगढ़ (प्रसिद्ध सेब गांव) की तरफ निकल जाता है। नारकण्डा, शिमला से 65 किलोमीटर की दूरी पर है। यह स्थान, यदि नार + कंडा (कण्ढा) से बना माना जाए तो

इसका अर्थ हुआ नार- अर्थात् जल की चोटी। कंडा (कण्ढा) कण्डी (कण्ढी) को स्थानीय भाषा में धार, चोटी अथवा ढलानदार पहाड़ी कहा जाता है। संस्कृत में पानी को नार कहते हैं, आपो नारा इति प्रोक्ताः। तो इसका अर्थ हुआ, नार अर्थात् जल, अथवा जलरूप बर्फ़/ तुहिन/ तुषार का पहाड़। इसका एक अर्थ नार अर्थात् अनार (स्थानीय उच्चारण में अकार घिस जाने से) का पहाड़/ पहाड़ी भी हो सकता है। इस पहाड़ या इसके आस-पास की पहाड़ियों पर अनार/दाड़ू ज्यादा होते हैं। जैसे दाड़ला घाट वैसे नारकण्ढा। शिमला में, जब, जब भी ठंडी हवा चलती है अथवा बर्फ़ की सुगबुगाहट होती है तो लोग कहते हैं 'नारकंडा' में बर्फ़, बारिश हुई अथवा हो रही होगी। शिमला में, ऊपर के नगरों/ उपनगरों में, नारकंडा बर्फ़ का स्पर्श अथवा बारिश का अनुभव करने वाले पहले स्थानों में गिना जाता है।

नारकंडा से 'हाटू' पहुंचना अगम तो नहीं, किन्तु दुर्गम अवश्य है। करीब सात किलोमीटर की खरी चढ़ाई वाली यह सड़क कई मोड़ों, कोणों एवं खतरनाक मार्गों से होती हुई गाड़ी की चौड़ाई जितनी ही चौड़ी है। पूरी-पूरी संकरी सड़क, 'हाटू पीक' पर पहुंच कर एक गंजे समतल पठार पर जाकर खुलती है। वहां से दूर-दूर की पहाड़ी बस्तियां और मीलों फैले देवदारु वनों की छावनियां, मोर्चा बांधे तैनात कमांडोज़ की तरह दिखती हैं। श्रद्धा और पर्यटन दोनों ही दृष्टियों से, यह एक मोहक, सुन्दर, स्वास्थ्यवर्धक तथा आस-पास के इलाके के लिए आस्था का केन्द्र है। अब 'हाटू' मंदिर एक भव्य निर्माण का दर्शनीय स्थल है। पर्वतीय शैली में पिरामिड टाइप का यह देवालय एक शक्तिस्थल के रूप में ख्यात है। असुरों/ दुष्टों को मारने के लिए जितने भी शक्तिस्थल हों, उतने ही कम।

यदि हम आगे की ओर रुख करें तो शिमला जिले के अन्तिम प्रसिद्ध-समृद्ध नगर रामपुर में पहुंच जाएंगे। रामपुर, बुशहर के राजा रामसिंह द्वारा बसाई गई एक रियासत है जिसके पूर्व में तिब्बत पश्चिम में कुल्लू, उत्तर में किन्नौर-स्पीति तथा दक्षिण में टिहरी गढ़वाल जिलों की सीमाएं हैं। रामपुर- बुशहर, एक प्राचीन राजधानी रही है जिसके सिंहासन को अब तक 123 शासक सुशोभित कर चुके हैं। इसके प्रथम संस्थापक शासक राजा प्रद्युम्न सिंह तथा वर्तमान में प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह इसी राज परिवार के वंशज हैं।

रामपुर की पुरोगामिता

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित करते हुए इंडियन नेशनल कांग्रेस के संस्थापक मिस्टर ए.ओ. ह्यूम ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अभिप्रेरित करते हुए एक बार कहा था-

Sons of Ind. why sit you idle
Wait ye for some deva's aid
Buckle to, be up and doing
Nations by themselves are made

- by Vipin Pubby in Simla Then and Now,
Pg 38 पर उद्धृत।

ये पंक्तियां हमारे औपनिषदिक वाक्य, जिसे स्वामी विवेकानंद भी दोहराते थे 'उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' से अद्भुत मेल खाती हैं। महान अभिप्रेरणाएं कई बार महान् विभूतियों के मुख से एक-समान आविष्कृत हो जाती हैं।

राजा रामसिंह द्वारा बसाए जाने और नगर में भगवान् रामचन्द्र के मंदिरों की संख्या अधिक होने से यह स्थान रामपुर कहलाया। बुशहर शब्द, निस्संदेह विषहर से विकसित है। बहुत संभव है, यहां अनेक विषों का उपचार करने वाले विषवैद्य रहते हों जो भयंकर विषों के प्रभाव को हर लेते हों। इसको विषहर-विसाहट, बुशहर आदि कई अन्य नामों से भी पुकारा जाता है।

भीतरी हिमालय की यह रियासत, सदानीरा वैदिक नदी सतलुज के किनारे बसी होने के कारण शस्यश्यामला तथा सदा हरी-भरी सबुज घाटी क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। यहां देवदारु, शीशम, रई, कैंथ आदि अनेक तरह के वृक्ष हैं जो समाज की अनेक जातियों और वर्णों की तरह, अपने-अपने स्थानों पर अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। यहां की स्थानीय परम्पराएं, और वैष्णवी संस्कार मिलकर एक धनी समाज का निर्माण करते हैं। यहां सेब तथा अन्य फल, करों के माध्यम से प्रदेश की अर्थ-व्यवस्था में, अपना योग करते हैं। बुशहर का 'भूण्डा उत्सव' जो हर बारह वर्ष पश्चात् होता है, देशभर के संस्कृति-अध्येयताओं के लिए आकर्षण का केन्द्र है। यहां का लवी मेला/ महोत्सव एक बहुत बड़ा सांस्कृतिक व्यापारिक मेला है जिसमें तिब्बत तक के व्यापारी शिरकत करते हैं। इसमें अब स्थानीय उत्पादों के साथ- साथ कई प्रकार की देशी-विदेशी वस्तुओं का क्रय-विक्रय भी शामिल हो गया है।

भीमा तु नीलवर्णा सा

शिमला के धार्मिक-ऐतिहासिक छोर शोणितपुर सराहन की चर्चा भी मैं यहां उचित समझता हूं। यहां अवस्थित भगवती भीमाकाली, जो राजपरिवार की कुलदेवी है, इलाके भर की आस्था का केन्द्र भी है। भीमाकाली दुर्गा का ही एक रूप है। इसका वर्ण नीला तथा शक्ति, शत्रु के लिए भयकारी है- दुर्गा सप्तशती में कहा गया है-

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः ॥
भीमा देवीति विश्यातं तन्मे नामेभविष्यति
(श्रीदुर्गासप्तशती-11/50-52)

सराहन में देवी के दो मंदिर हैं। पहला मंदिर भूडोल के कारण थोड़ा तिरछा हो गया था, अतः 1962 में वर्तमान राजा साहब ने उसी के पास, उसी तरह का मंदिर बना दिया। यहां नवरात्रों और अन्य

प्रमुख हिन्दू पर्वों पर श्रद्धालु आते हैं। मान्यता है कि सराहन का प्राचीन नाम शोणितपुर है जो कभी दैत्यराज वाणासुर की राजधानी थी। सराहन में राज परिवार के महल हैं। पहाड़ की ऊपरी सतह पर बसा सराहन, आध्यात्मिक शांति और प्राकृतिक दृश्यों के, दिलखुश-अवसर जुटा देता है।

अब मैं आपको शिमला के एक अन्य मनोरम प्रसिद्ध स्थल चायल का संक्षिप्त परिचय देकर, शिमला के साहित्यिक वातावरण से परिचित कराऊंगा। आज चायल, भले ही ज़िला सोलन की सीमा में हो, किन्तु कभी यह शिमला क्षेत्र में ही था। फिर, शिमला, आने वाला प्रत्येक पर्यटक, चायल जाना चाहता है, दूसरे शिमला के साथ लगते चायल को लोग, शिमला से अभिन्न भी मानते हैं। शिमला से चायल, 45 किलोमीटर की दूरी पर, तथा कंडाघाट से लगभग 30 किलोमीटर के फासले पर 7054 फुट की आल्हादक ऊंचाई पर अवस्थित है। यह एशिया का सर्वोच्च क्रिकेट ग्राउंड है जिसे पंजाब की पटियाला रियासत के महाराजा भूपिन्द्र सिंह ने स्थापित किया था। महाराजा को क्रिकेट का बेहद शौक था। चायल, अंग्रेज़ों के अधिकार, फिर महाराजा के अधीन न होने से पहले क्योंथल स्टेट का हिस्सा था जिसे अमर सिंह थापा ने सन् 1814 ई. में जीता भी था।

चायल की राजगढ़ पहाड़ी पर स्थित चायल का राजमहल, महाराजा भूपिन्द्र सिंह के योग्य सुपुत्र महाराजा यादवेन्द्र सिंह ने बनवाया था जिसे स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिमाचल के प्रथम दूरदर्शी मुख्य मंत्री डॉ. यशवंत सिंह परमार ने 20 लाख रुपयों में खरीद कर हिमाचल में मिला लिया था।

चायल एक बहुत ही सुंदर, मनोरम देवदार वृक्षों के मध्य, घने जंगल/ वन-प्रान्तर के बीच, कुदरत के असंख्य नज़ारों से खुशहाल स्थल है। ग्रीष्म में लाखों की संख्या में सैलानी यहां आते हैं। पर्यटक घने वनों के किस्म-किस्म के स्वास्थ्यवर्धक वृक्षों, पौधों, लताओं-वनस्पतियों से गंधायित वायु के झोकों से अपने आवास तक पहुंचते-पहुंचते तरोताज़ा हो जाते हैं। उनका मन, नीरोग और आधि, आधी रह जाती है। चायल में, क्रिकेट ग्राउंड के समीप एक सिद्ध बाबा का स्थान है जहां प्रायः प्रत्येक श्रद्धालु जाता है। चायल से करीब दस किलोमीटर की दूरी पर एक ऊंचे टीले पर उसी बाबा ने (बाबाओं के नाम नहीं होते) एक भव्य विशाल 'काली' महामाई का मंदिर निर्मित कराया है जो अपने 'कमांडिंग व्यू' के कारण आस- पास की आबादी, बस्तियों के लिए अहर्निश, निगहेबान की तरह है। काली का मंदिर होने से इस टिब्बे का नाम अब 'काली टिब्बा' पड़ गया है। पहले चायल फिर काली मंदिर तक का रास्ता, बहुत संकरा और गड्ढों से भरा है। मैं भी परिवार समेत दो बार वहां गया हूं। बेटा, वहां जाकर बहुत खुश होता है पर कहता है पापा, यदि रास्ता ठीक हो तो महीने दो महीने में एक बार तो आना हो ही सकता है। मैं कहता हूं बेटे, शिखरों और सर्वोच्च आसनों के रास्ते, दुर्गम पथों, संकरी घाटियों, घने वनों और तंग दर्रों से होकर ही गुज़रते हैं। ऊंचाई पाने के लिए कठिनाइयां राहों को मुश्किल बनाती ही हैं।

मॉल के हकदार

दोस्तो, मॉल पर केवल हमारा और आपका ही मालिकाना हक नहीं है अपितु इसके कुछ और भी हकदार हैं। एक प्रकार से ये इसके मूल निवासी हैं। मूल निवासियों के अबाध अधिकार होते हैं। परन्तु मैं आपको एक सावधानी से अवश्य अवगत करा दूं कि शिमला में (वैसे अन्य स्थानों पर भी) आने-जाने पर आपको इन मूल बाशिंदों अर्थात् बन्दरों से सदा सतर्क रहना पड़ेगा। ये प्राणी शराफत से, चालाकी से, घुड़की से, फुर्ती से सदा आपके सामान को छीन लेना अपना हक समझते हैं। ये माल पर रहने के कारण, माल और उसकी हर वस्तु पर अपना स्वामित्व मानते हैं। मैं इन्हें माल का हकदार कहता हूं। 'बन्दर' कई स्वार्थी मानव समूहों की तरह ही एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता में रहते हैं। विरोधी टोली से, इनके घमासान, आए दिन, मॉल पर तमाशा खड़ा किए रहते हैं। इस जाति में भी, प्रत्येक वानर सेना के अपने, राजा और रानियां होते हैं। शहरों के बन्दर, बड़े हिमाकती हैं जो अब डराने, धमकाने, झीनाझपटी और लूटखसोट के 'सरदार' हो गए हैं।

बन्दरों के मुकाबिले 'लंगूर' (लांगूल अर्थात् लम्बी पूंछ वाले, सफेद बन्दर) थोड़े डरपोक होते हैं। ये दूसरे हिमाकती बन्दर नेताओं और कुत्तों तक से डरते हैं। लाल दादा बन्दर तो कुत्तों को हत्थे चढ़ने पर उनकी 'थपड़ैल' भी कर डालते हैं। हां, इन लंगूरों का छलांग लगाते समय, लक्ष्य के दूर रह जाने पर, हवा से हवा में होते हुए पिछली डाल पर वापस लौट आना, बड़ा आश्चर्यकर है। पेड़ों पर छलांगते/ फलांगते वानरों/ लंगूरों को देखकर महाकवि बाणभट्ट ने इन्हें 'शाखामृगाः' कहा था।

शिमला, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक सद्भाव एवं प्रकृति-अध्यात्म के सहज मिश्रित बोध-फलों और रस का ही सर्वातिशायी स्थान नहीं अपितु यह साहित्य की ऊंचाइयों और गहराइयों की भी उर्वरा भूमि है। शिमला के साहित्यिक आयोजनों/ मंचों पर, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', भवानी प्रसाद मिश्र, ओम्प्रकाश आदित्य, विश्वप्रकाश दीक्षित बटुक, गीतकार गोपालदास नीरज, गीतकार शम्भुनाथ सिंह, डॉ. बलदेवी वंशी, कुंवर जावेद आदि न जाने कितने ही नामी-गिरामी रचनाकार अपनी-अपनी रचनाओं का पाठ कर गए हैं। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान में तो कितने ही साहित्य साधक/ सर्जक आकर रहे हैं जिनमें गीतकार गुलज़ार साहब, डॉ. रघुवंश, कहानीकार निर्मल

लाल चावल

धार्मिक अनुष्ठान से आरम्भ होती है लाल धान की खेती

लाल चावल का उत्पादन शिमला जिले के चौहारा व रानसर घाटी की रोहड़ू तहसील की पब्बर नदी के साथ लगते लगभग 1000 हेक्टेयर क्षेत्र में होता है। इसके अतिरिक्त इसका उत्पादन प्रदेश के कांगड़ा तथा कुल्लू जिले के कुछ ही इलाकों में होता है। यह चावल 200 रुपये से 250 रुपये किलो की दर पर बाजार में बिकता है। ओबराय क्लॉर्क होटल समूह ने प्रदेश के जिन व्यंजनों को अपने शिमला स्थित तीन होटलों तथा दिल्ली में मेहमानों को परोसना आरम्भ किया है। उनमें लाल चावल भी शामिल है।

शिमला जिले के चौहारा क्षेत्र में छोहरटू, चम्बा जिले में सूकाटा, जिंजन, करड, कुल्लू जिले की जाटू, देवाल, मताली कांगड़ा जिले की देसी धान, काली झानी, आछू है। चौहाटू देश की पहली प्रजाति है जिसे फसल प्रजातियों के संरक्षण अधिनियम 2012 के तहत पंजीकृत करवाया गया है। सरवण कुमार कृषि विश्वविद्यालय पालमपुर के शोधकर्ताओं डॉ. कौशिक, ऊषा कुमारी तथा धरेन्द्र सिंह ने राज्य में पाई जाने वाली लाल चावल की 16 प्रजातियों पर शोध किया है। लाल चावल की पलम लाल धान एवं प्रजाति में 21.9 पीपीएस लौह तथा 19.8 पीपीएस जिंक पाया जाता है जिसमें कैंसर रोधी तत्त्व बहुतायत में पाए जाते हैं। इसका पता इस बात से चलता है कि अभी भी शिमला जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में गर्भवती महिलाओं तथा बच्चों को लाल चावल विशेष तौर पर खिलाया जाता है और यह परम्परा सदियों पुरानी है। लाल धान की मताली का उपयोग उच्च रक्तचाप तथा बुखार की स्थिति में दिए जाने का प्रचलन है। जाठू चावल को लगाने की एक आनुष्ठानिक प्रक्रिया है। बीज को भिगोने से लेकर बीजने तक इष्ट देवता की अनुमति ली जाती है। धान रोपित करने से पूर्व पौधों को मंदिर में रखा जाता है। धान की पहली फसल के चावलों को पका कर इष्ट देवता को अर्पित किया जाता है। इसे रिश्तेदारों, पड़ोसियों तथा परिवार के सदस्यों में वितरित करने की परम्परा है। लाल चावल की कुछ फसल को किसानों द्वारा हर वर्ष धार्मिक अनुष्ठान के लिए पहले ही अलग करके रख लिया जाता है। अप्रैल-मई की संक्रांति को बीजों को भिगोया जाता है तत्पश्चात इसे भोज-पत्र से एक माह तक ढका जाता है। एक माह उपरांत इसकी नर्सरी बीजी जाती है। आषाढ़ माह की संक्रांति (जून-जुलाई) को पौधों की रोपाई की जाती है। जाठू चावल की कटाई कार्तिक माह की संक्रांति (अक्तूबर-नवम्बर) को आरम्भ होती है। नई फसल को नए साल में माघ माह में खाया जाता है तथा इसे विशेष तौर पर बनाए गए कुठाड़ में रखने की परम्परा है। फसल भण्डार घर अभी भी रोहड़ू, डोडरा-क्वार तथा शिमला जिले के पन्द्रह-बीश क्षेत्रों में ग्रामीणों द्वारा विशेष तौर पर बनाए जाते हैं। ऐसे भण्डार गृहों का निर्माण मोहन-जोदाड़ो सभ्यता में भी मिलता है तथा रोहड़ू के समीप उत्खनन में सिंधु तथा हड़प्पा सभ्यता से सम्पर्क के सुबूत मिलते हैं।

● दिनेश शर्मा,
गांव नलावण डाकघर चलाहल, उप तहसील धामी, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश, मो. 941870 96495

वर्मा तथा प्रो. श्यामाचरण दुबे आदि नाम उल्लेख्य हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समिद्ध, साहित्य सृजन की पावन समिधा यहां भी निरन्तर जाज्वल्यमान है। भाषा, कला संस्कृति अकादमी और भाषा विभाग के साथ-साथ कितनी ही अनेक साहित्यनुरागिणी संस्थाओं द्वारा गेयटी थियेटर, विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों में कितने ही आयोजनों से यहां का साहित्यिक, सांस्कृतिक संसार मुखरित रहता है। आज शिमला में, कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक निबन्ध के अलावा, यात्रा संस्मरण, रिपोर्ताज का आश्वस्तिकर सृजन हो रहा है। महिलाओं का भी इस कार्य में भरसक योग है। नाम परिगणन अनावश्यक है। मंच आयोजनों के अतिरिक्त रेडियो और दूरदर्शन से निरन्तर साहित्यिक प्रसारण, श्रोताओं जिज्ञासुओं, पारखियों को उद्वेलित/आंदोलित करते रहते हैं। राजधानी से लोक संपर्क विभाग, भाषा विभाग, साहित्य अकादमी तथा कुछ निजी प्रयासों से निकलने वाली पत्रिकाएं साहित्य के सतत् प्रोत्साहन और प्रकाशन में सन्नद्ध हैं। पूरे प्रदेश का आधे से ज्यादा साहित्यिक वातावरण शिमला में सक्रिय है।

मित्रो ! शिमला को आप पहाड़ों की रानी कहो या पर्वतों का सरताज, प्रकृति का ज़रखेज़ बाग कहो या तपस्वियों की तपोभूमि यह आपको हमेशा विस्मित करता रहेगा। यदि कोई स्वच्छ-स्वास्थ्यसमृवर्धक, नीरोग लोक चाहिए, पहाड़ की सरलता और गरिमा चाहिए, यदि कोई, ऐतिहासिक, श्रेष्ठ सामाजिक, साहित्यिक अथवा कोई आध्यात्मिक-सांस्कृतिक नगरी का अनुभव चाहिए, तो यह सदा आपके स्वागत को तत्पर है। प्रकृति की यह लीलाभूमि कुदरत की असंख्य नेमतों से सराबोर है।

जी-6, नॉल्सवुड कॉलोनी, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 002, मोबाइल 94180 54054

इससे सम्बन्धित लोकगीत है-

"शाली माता रा सोणा नजारा
लागो जीय के प्यारा हो
शाली माता रा सोणा नजारा
लागो जीय के प्यारा हो
खटनोलो तेई बसो दे जाणा तेथो उबी लागो चढ़ाई हो
करे जीय री पुरी तू माता तांखे देणी कड़ाई हो....
शाली माता रा सोणा नजारा
लागो जिया के प्यारा हो
बिना बादलो गुलद लागौ तेरी लीला न्यारी हो
कलीयुगो दा तेरा सहारा परै वीपता म्हारी हो
शाली माता रा सोणा नजारा हो
लागो जीये के प्यारा हो।।"[25]

भावानुवाद- इस धार्मिक लोकगीत में शाली माता की महिमा का गुणगान किया गया है। शाली माता का मन्दिर इतना प्यारा है कि जिसे देखकर हमारा मन खुशी से भर जाता है। इस मन्दिर में जाने के लिए शिमला से खटनोल तक बस में जाना पड़ता है और वहां से ऊपर पैदल चढ़ाई है। हे माँ आप हमारी मन की मुराद पूरी करना हम आपको कड़ाई (प्रसाद) चढ़ाएंगे। आपकी लीला इतनी प्यारी है कि बिना बादलों के भी वर्षा होती है व फूल खिलते हैं। कलयुग में हमारी मुसीबतों को समाप्त करने वाली आप ही हैं।

मृत्यु संस्कार लोकगीत

मृत्यु होने पर जब शरीर का दाह संस्कार किया जाता है। उसे मृत्यु या अन्तयेष्टि संस्कार कहा जाता है। हिन्दुओं के अनुसार यह जीवन का अन्तिम संस्कार है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिस व्यक्ति का यह संस्कार उचित रीति से पूर्ण हो जाता है उसका परलोक संवर जाता है। इस संस्कार की पद्धतियों में अर्थी या शव का उठाना, शव यात्रा, कपाल क्रिया, अशौच, अस्थि चयन, शान्ति कर्मकाण्ड आदि आते हैं। शिमला जनपद में इस अवसर पर घर की स्त्रियाँ या पुरुषों द्वारा विलाप करते समय जो शब्द लयवद्ध अवस्था में निकलते हैं उन्हें ही मृत्यु संस्कार लोकगीत में शामिल किया जा सकता है-

हाय मेरेया मालका
तू माखे कली छाडी र कौवे डेवा
हाय मेरेया मालका
ऐबे आंव कसरे भरोसे जीवनी अस
हाय मेरेया मालका
माखै साथी कवै न लौवी गवा
हाय मेरेया मालका
तू माखै कली कवै छाड़ी गया।"

भावानुवाद- प्रस्तुत शब्दावली में पत्नी अपने पति की मौत पर अपनी छाती व टांगों को दोनों हाथों से जोर-जोर से पीटते हुए साथ ही साथ रोते हुए कहती है कि मेरे पति तुम मुझे अकेली क्यों छोड़ गए। अब मैं किसके भरोसे जिन्दा रहूंगी तुम मुझे अपने साथ क्यों नही ले गए। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग शिमला जनपद में मृत्यु के समय किया जाता है।

शिमला जनपद में लोकगीतों का भण्डार है। यहां की संस्कृति व लोकगीत ग्रामीण जनता के स्वाभाविक सरल व सुगम हृदयगार है जिनमें उनके सुख-दुख और करूणा के विविध रंग आदि प्राकृतिक रूप से प्रकट होते हैं। इस जनपद विशेष की सम्पूर्ण संस्कृति तथा लोकजीवन का समग्र चित्रण यहां के लोकगीतों में देखने को मिलता है। संस्कारों के अवसर पर जब गीत गाए जाते हैं तो ग्रामीण स्त्रियों की गाने की होड़ लग जाती है। प्रत्येक गीत का अपना एक भाव होता है। ये लोकगीत मनोरंजन के साथ-साथ एक सन्देश भी लोगों को प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण जनपद में थोड़ी बहुत शब्दगत व लयबद्ध विविधता देखने को मिलती है परन्तु उन सबके पीछे मूल भाव सम्पूर्ण जनपद में एक समान है। इस जनपद के लोकगीत यहां की लोकसंस्कृति का आईना हैं। अतः कहा जा सकता है कि शिमला जनपद में प्रचलित लोकगीत यहां की संस्कृति को सहज रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

अतिथि संकाय (हिन्दी), सान्ध्य कालीन अध्ययन केन्द्र, शिमला-1 मो. 98164-94954

सन्दर्भ

1. जगमोहन बलोखरा, हिमाचल प्रदेश सामान्य ज्ञान, वाणी प्रकाशन
2. एस.आर. हरनोट, हिमाचल के मन्दिर व उससे जुड़ी मान्यताएं, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. एस.आर. हरनोट, हिमाचल के मन्दिर व उससे जुड़ी मान्यताएं, राधा कृष्ण प्रकाशन।
4. सरभ नेगी, डोडरा-क्वार निवासी
5. रूप शर्मा, हिमाचल प्रदेश : अन्धकार से प्रकाश की ओर, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली। 6. वही
7. नागेन्द्र शर्मा, हिमालय का उत्तरांचल, रामपुर बुशहर, बलीभद्रा प्रकाशन, रामपुर बुशहर।
8. रूप शर्मा, हिमाचल प्रदेश: अन्धकार से प्रकाश की ओर, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली।
9. संत राम रोहाल, रोहड़ू निवासी
10. सरभ नेगी, डोडरा क्वार, निवासी
11. पार्वती वर्मा, गांव व डॉ शोघी, तहसील व जिला शिमला, हि. प्र.
12. सुन्नी देवी, गांव धानोखरी, डा. जाठिया देवी, तहसील व जिला शिमला हिमाचल प्रदेश।, 13. वही।
14. जमना देवी, गांव पजैली, डाकघर बड़ोग, तहसील ठियोग, जिला शिमला हिमाचल प्रदेश।
15. वही।, 16. वही।
17. शिव कुमार उपमन्यु पहाड़ी लोकगीत-साहित्य संस्कार गीत।
18. पार्वती वर्मा।
19, 20, 21, 22, 23, 24 एवं 25 तारा देवी।

जिला शिमला : एक नज़र

क्षेत्रफल	5131 वर्ग किलोमीटर
आबादी	8,14,010 (2011)
उप-मण्डल	7-शिमला शहरी, शिमला, ग्रामीण, ठियोग, रामपुर, रोहड़ू, चौपाल और डोडरा-क्वार
तहसील	12- शिमला शहरी, शिमला ग्रामीण, सुन्नी, ठियोग, रोहड़ू, चिड़गांव, रामपुर, कुमारसैन, चौपाल, कुपवी, कोटखाई और जुब्बल
उप-तहसील	8- टिक्कर, ननखड़ी, जुन्गा, नेरवा, धामी, देहा, कोटगढ़ और डोडरा-क्वार
विकास खण्ड	10- मशोबरा, रामपुर, जुब्बल, रोहड़ू, ठियोग, चौपाल, नारकण्डा, ननखड़ी, बसन्तपुर और छोहारा (चिड़गांव)
विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र	8-चौपाल, ठियोग, कुसुम्पटी, शिमला ग्रामीण, शिमला शहरी, जुब्बल-कोटखाई, रोहड़ू (आ.), रामपुर (आ.)
ग्राम पंचायतें	363
साक्षरता दर	कुल 84.55 प्रतिशत, महिलाएं 77.80 प्रतिशत, पुरुष 90.73 प्रतिशत
जनगणना गांव	2855
राजस्व गांव	3378
रेल मार्ग	कालका-शिमला
हवाई अड्डा	जुब्बड़-हट्टी
अभयारण्य	हिमालयन वन्यजीव संरक्षण एवं चिड़ियाघर, कुफरी
प्रमुख जलविद्युत परियोजनाएं	चाबा, नोगली, आन्ध्रा, घानवी, नाथपा झाकड़ी, सावड़ा-कुड्डू

हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 जनवरी 2015 अंक : 10

प्रधान सम्पादक
राकेश शर्मा

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

आवरण चित्र एवं रेखांकन
सर्वजीत सिंह

कम्पोजिंग एवं पृष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्कः 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि आपने कितना दिया है, बल्कि यह महत्त्वपूर्ण है कि देते समय आपने कितने प्रेम से दिया है।
– मदर टैरेसा

इस अंक में

अपनी बात

सर्वप्रथम पाठकों को नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएं। नया साल आप सबके जीवन में सुख-समृद्धि लेकर आए, यही हमारी हार्दिक कामना है। हिमाचल प्रदेश के लोगों के जीवन में जनवरी महीने का विशेष महत्त्व है। प्रदेशवासियों के लिए यह एक दिलचस्प संयोग ही है कि पूर्ण राज्यत्व दिवस के अगले ही दिन हम गणतंत्र दिवस को राष्ट्रीय पर्व के रूप में बड़े उत्साह एवं हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। 15 अप्रैल 1948 को 30 पहाड़ी रियासतों के विलय के बाद अस्तित्व में आए हिमाचल प्रदेश को वर्तमान स्वरूप एवं आकार प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत एवं लम्बा राजनीतिक संघर्ष करना पड़ा। प्रदेश के मेहनतकश एवं ईमानदार लोगों और नेताओं के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप हमें 25 जनवरी, 1971 को एक अलग राज्य के रूप में अपना भाग्य स्वयं निर्धारित करने का सुअवसर मिला। लगभग शून्य से अपनी विकास यात्रा आरम्भ करने के बाद यह प्रदेश आज पहाड़ी क्षेत्रों में विकास का पर्याय बना है और प्रगति के पथ पर निरंतर अग्रसर है। अपनी इस यात्रा के 44 वर्षों में प्रदेश ने विकास के हर क्षेत्र में श्रेष्ठ प्रदर्शन किया। परिणामस्वरूप देश के पर्वतीय क्षेत्रों के विकास में यह एक आदर्श राज्य बनकर उभरा है। हिमाचल ने उद्योग, ऊर्जा, कृषि-बागबानी, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तीकरण तथा युवा कल्याण जैसे अहम क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है। वर्तमान प्रदेश सरकार ने केवल एक माह पूर्व ही अपने कार्यकाल के दो वर्ष पूरे किए हैं। इस अवधि के दौरान प्रदेश समान एवं संतुलित विकास के पथ पर न केवल निरंतर अग्रसर हुआ है, बल्कि सरकार की विकासोन्मुखी और जन कल्याणकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के बेहतर कार्यान्वियन से राज्य का हर क्षेत्र तथा समाज का हर वर्ग लाभान्वित हुआ है। युवाओं को रोजगार एवं स्वरोजगार के पर्याप्त अवसर मुहैया करवाकर युवा-शक्ति को राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में लगाने की दिशा में सरकार आगे बढ़ रही है। सरकार की महत्त्वाकांक्षी कौशल विकास भत्ता योजना के सकारात्मक परिणाम देखने को मिल रहे हैं। इस योजना से अब तक 61 हजार युवा लाभ उठाकर स्वावलम्बन की राह अपना चुके हैं। प्रदेश की आर्थिकी को सुदृढ़ बनाने के लिए संसाधन सृजन के प्रयासों को गति प्रदान की गई है। प्रदेश सरकार के पारदर्शी, जवाबदेह, संवेदनशील एवं कुशल प्रशासन से राज्य में एक ऐसा प्रतिस्पर्धात्मक माहौल बना है, जिसके परिणामस्वरूप यह पहाड़ी प्रदेश ऊर्जा, उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण तथा पर्यटन जैसे क्षेत्रों में निवेशकों के लिए पसंदीदा गंतव्य बन कर उभरा है। प्रदेश में औद्योगिक विकास को गति प्रदान करने के लिए वर्तमान सरकार ने 'निमंत्रण से निवेश' के रूप में एक अनुकरणीय पहल की है जिसके उत्साहवर्धक परिणाम देखने को मिले। प्रदेश सरकार के इस नवीन प्रयास के परिणामस्वरूप देश के नामी औद्योगिक घरानों से 2500 करोड़ रुपये का निवेश आकर्षित करने में सहायता मिली है। इससे हजारों युवाओं को रोजगार के अवसर मिलने के साथ-साथ प्रदेश की आर्थिकी भी सुदृढ़ होगी। हमारी यह कामना है कि हिमाचल प्रदेश नए साल में विकास के हर क्षेत्र में नई ऊर्जा और स्फूर्ति के साथ नई बुलंदियों को प्राप्त करे। नव वर्ष के प्रथम अंक में नियमित सामग्री के साथ-साथ हिमाचल प्रदेश के पूर्ण राज्यत्व तथा नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर सामग्री जुटा कर इसे पठनीय एवं रुचिकर बनाने का प्रयास किया है।

- सम्पादक

पूर्ण राज्यत्व दिवस

हिमाचल ने लिखी पहाड़ी क्षेत्रों के विकास की गाथा



मुख्य मंत्री श्री वीरभद्र सिंह का पूर्ण राज्यत्व दिवस पर आलेख

पच्चीस जनवरी का दिन हिमाचलवासियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण दिन है, क्योंकि इसी ऐतिहासिक दिन वर्ष 1971 में हमारे प्रदेश को पूर्ण राज्यत्व का दर्ज़ा मिला। इसके साथ ही हमारा प्रदेश भारतीय गणतंत्र का 18वां राज्य बना और प्रदेशवासियों को अपना भविष्य संवारने व विकास के लिए स्वयं का मार्ग चुनने का अवसर प्राप्त हुआ। खुशी के इस अवसर पर मैं हिमाचल प्रदेश के सभी लोगों को हार्दिक बधाई देता हूँ। मैं उन महान नेताओं के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अनेक कठिनाइयों व चुनौतियों का सामना करते हुए हमारे पर्वतीय राज्य को एक पृथक पहचान व दर्ज़ा सुनिश्चित बनाया। इस अवसर पर हम, हिमाचल निर्माता तथा प्रदेश के प्रथम मुख्य मंत्री डॉ. यशवन्त सिंह परमार को भी अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं, जिन्होंने पूर्ण राज्यत्व के इस आन्दोलन की अगुआई की और प्रदेश के विकास की ठोस नींव रखी।

वर्ष 1971 में लगभग शून्य से अपनी विकास यात्रा आरम्भ करते हुए हमारा प्रदेश न केवल देश के पर्वतीय क्षेत्रों के विकास का आदर्श बनकर उभरा है, बल्कि आज यह विकास के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी राज्य के रूप में आंका जाने लगा है। इसका श्रेय जहां हिमाचल प्रदेश के मेहनतकश व ईमानदार लोगों को जाता है, वहीं केन्द्र एवं प्रदेश में रही कांग्रेस सरकारों की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कांग्रेस सरकारों ने न केवल प्रदेश के सर्वांगीण विकास को अपना मूल मंत्र बनाया, बल्कि अपने विकास प्रयासों को नई दिशा भी दी। हिमाचल प्रदेश तथा यहां के लोग सौभाग्यशाली रहे कि उन्हें केन्द्र तथा प्रदेश में आरम्भ से ही कांग्रेस नेतृत्व का स्नेह व आशीर्वाद प्राप्त होता रहा। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु ने प्रदेश को पृथक राजनीतिक पहचान प्रदान की तथा पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की उदारता के कारण ही 25 जनवरी, 1971 को हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्यत्व का दर्ज़ा प्राप्त हुआ।

इन 44 वर्षों में प्रदेश ने विकास के लगभग सभी क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक रुपान्तरण के साथ-साथ पर्वतीय क्षेत्र के विकास की नई गाथा लिखी। आज, हिमाचल प्रदेश देश में एक अग्रणी आर्थिकी तथा पर्वतीय क्षेत्रों के विकास में आदर्श के रूप में उभरा है। प्रदेश ने उद्योग, ऊर्जा, बागबानी, कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों में अभूतपूर्व प्रगति की है। पारदर्शी, जवाबदेह तथा संवेदनशील प्रशासन ने प्रदेश में एक ऐसा प्रतिस्पर्धात्मक माहौल सृजित किया, जिसके फलस्वरूप हिमाचल प्रदेश ऊर्जा, उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण तथा पर्यटन जैसे क्षेत्रों में निवेश के लिए एक पसन्दीदा स्थल बन कर उभरा है। प्रदेश में प्रति व्यक्ति आय, जो वर्ष 1971 में मात्र 651 रुपये थी, आज बढ़ कर 92,300 रुपये हो गई है। वर्तमान मूल्यों के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद 1971 के 223 करोड़ रुपये के मुकाबले 82,585 करोड़ रुपये हो गया है, जबकि वार्षिक योजना आकार 2.11 करोड़ रुपये से बढ़कर वर्ष 2014-15 में 4400 करोड़ रुपये हो गया है। इसी प्रकार खाद्यान्न उत्पादन 9.36 लाख मी.टन से बढ़कर 15.20 लाख मीट्रिक टन तथा फल उत्पादन वर्ष 1971 के 1.49 लाख मी. टन के मुकाबले 8.66 लाख मी. टन पहुंच गया है। प्रदेश में 1971 में केवल 4963 शिक्षण संस्थान थे, जबकि आज 15,545 शिक्षण संस्थान प्रदेश के दूर-दराज़ क्षेत्रों में गुणात्मक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

वर्तमान प्रदेश सरकार ने केवल एक माह पूर्व ही अपने कार्यकाल के दो वर्ष पूरे किए हैं। इन दो वर्षों में हमारी सरकार ने प्रदेश का समान व संतुलित विकास सुनिश्चित बनाया है। विभिन्न कल्याण योजनाओं के कारगर कार्यान्वयन को सुनिश्नित बनाते हुए हमारी सरकार ने जन-कल्याण को सर्वोपरि रखा है। सरकार ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति, अन्य पिछड़ा वर्गों, युवाओं, महिलाओं तथा अन्य कमज़ोर वर्गों के उत्थान के लिए कल्याण योजनाओं पर विशेष

बल दिया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महिला सशक्तीकरण तथा बाल- विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। सरकार की सभी नीतियां एवं कार्यक्रम प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र तथा समाज के हर वर्ग के कल्याण के प्रति समर्पित रहे हैं।

'रोज़ी-रोटी-मकान' की मूलभूत आवश्यकता को पूरा करने के लिए हमारी सरकार ने कौशल विकास भत्ता योजना, राजीव गान्धी अन्न योजना तथा राजीव आवास एवं इन्दिरा आवास जैसी महत्वाकांक्षी योजनाएं आरम्भ की हैं। प्रदेश के युवाओं के कौशल विकास के लिए 500 करोड़ रुपये की कौशल विकास योजना आरम्भ की गई है। योजना के तहत युवाओं को रोज़गार के अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध करवाने के लिए उन्हें उद्योगों की मांग के अनुरूप प्रशिक्षित किया जा रहा है। अब तक 61,000 से अधिक युवा इस योजना का लाभ उठा चुके हैं। प्रदेशवासियों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए राज्य में राजीव गांधी अन्न योजना चलाई जा रही है। राजीव आवास योजना तथा इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत आवासहीन पात्र लोगों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता में वृद्धि की गई है। इसी प्रकार प्रदेश के सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों को घर से स्कूल आने-जाने के लिए राज्य पथ परिवहन निगम की बसों में निशुल्क यात्रा सुविधा दी जा रही है। गर्भवती महिलाओं तथा प्रसव उपरान्त माता-शिशु को अस्पताल से सुरक्षित घर पहुंचाने के लिए मुफ्त '102-जननी एक्सप्रेस सेवा' आरम्भ की गई है। प्रदेश में 3,04,911 पात्र लोगों को 550 रुपये प्रतिमाह की बढ़ी हुई दर से सामाजिक सुरक्षा पेंशन दी जा रही है।

प्रदेश का विकास मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि पर निर्भर करता है, क्योंकि राज्य की 90 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या इन्हीं क्षेत्रों में बसती है। प्रदेश की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों पर निर्भर है। राज्य सरकार प्रदेश की ग्रामीण आर्थिकी को सुदृढ़ करने पर विशेष बल दे रही है। प्रदेश में 111.19 करोड़ रुपये की डॉ. वाई.एस. परमार किसान स्वरोज़गार योजना का कारगर कार्यान्वयन किया जा रहा है। योजना के अंतर्गत 8.35 लाख वर्ग मीटर क्षेत्र को संरक्षित खेती तथा 8.20 लाख वर्ग मीटर क्षेत्र को सूक्ष्म सिंचाई के अधीन लाया जा रहा है। अब तक 250 पॉलीहाउस का निर्माण कर 50,000 वर्गमीटर क्षेत्र को संरक्षित खेती के तहत लाया गया है। मुख्य मंत्री आदर्श कृषि गांव योजना के अंतर्गत प्रदेश की प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र की 2 पंचायतों के लिए कृषि विकास योजनाएं तैयार की जा रही हैं। गत दो वर्षों में इस योजना के तहत 7.37 करोड़ रुपये खर्च किए गए हैं। हमारी सरकार रबी मौसम के दौरान सभी प्रकार के बीजों पर 50 प्रतिशत उपदान दे रही है। मिश्रित उर्वरकों पर उपदान की दर को 500 रुपये प्रति मी. टन से बढ़ाकर 1000 रुपये प्रति मी.टन किया गया है। इसके अलावा, सभी प्रकार के कीटनाशकों एवं पौध-संरक्षण सामग्री पर 50 प्रतिशत उपदान दिया जा रहा है। राज्य में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए 35,729 किसानों को जैविक खेती के लिए पंजीकृत किया गया है तथा 13,138 हेक्टेयर क्षेत्र को जैविक खेती के अधीन लाया गया है। बागबानी हमारी आर्थिकी की रीढ़ है, अतः प्रदेश सरकार इस क्षेत्र को विशेष अधिमान दे रही है। हमारी सरकार का प्रयास हिमाचल प्रदेश को देश का 'फल-राज्य' बनाना है। प्रदेश में विभिन्न प्रकार के फलों के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए इस अवधि में बागबानों को 27.11 लाख फल पौधे वितरित किए गए हैं तथा लगभग 23,500 हेक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र को बागबानी के अंतर्गत लाया गया है। सेब, आम तथा नींबू प्रजाति के फलों के लिए मंडी मध्यस्थता योजना चलाई जा रही है, ताकि बागबानों को उनके उत्पाद के उचित मूल्य मिल सकें। बागबानों को 80 प्रतिशत उपदान पर 'एंटी-हेल-नेट' प्रदान किए जा रहे हैं तथा गत दो वर्षों में 26,83,200 वर्ग मीटर क्षेत्र को एंटी-हेल-नेट के अधीन लाया गया है।

प्रदेश का विकास मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि पर निर्भर करता है, क्योंकि राज्य की 90 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या इन्हीं क्षेत्रों में बसती है। प्रदेश की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों पर निर्भर है। राज्य सरकार प्रदेश की ग्रामीण आर्थिकी को सुदृढ़ करने पर विशेष बल दे रही है।

हमारी कृषि-आर्थिकी में उच्च उत्पादकता स्तर को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब हम ज़्यादा से ज्यादा कृषि भूमि को सिंचाई सुविधाएं प्रदान कर सकें। हमारी सरकार अधिक से अधिक कृषि योग्य क्षेत्र को सिंचाई के अधीन लाने तथा प्रत्येक व्यक्ति को स्वच्छ पेयजल प्रदान करने के प्रति वचनबद्ध है। हमारी सरकार प्रदेश के नदी-नालों के चरणबद्ध तटीकरण पर भी विचार कर रही है, ताकि प्रदेश के जल संसाधन का समुचित उपयोग किया गया सके। गत दो वर्षों के दौरान 269.21 करोड़ रुपये खर्च कर 8153 हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचाई सुविधा प्रदान की गई। ऊना ज़िले में 922.48 करोड़ रुपये की स्वां नदी तटीकरण परियोजना का कार्य प्रगति पर है। इस महत्त्वाकांक्षी परियोजना से स्वां नदी सहित ज़िले की सभी 73 नदियों का तटीकरण किया जाएगा तथा 7163.49 हेक्टेयर क्षेत्र को कृषि योग्य बनाया जा सकेगा। कांगड़ा ज़िले की इन्दौरा तहसील में छौंछ खड्ड के तटीकरण पर भी 180 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं। इस अवधि के दौरान 459.95 करोड़ रुपये व्यय कर 4599 बस्तियों को स्वच्छ पेयजल प्रदान किया गया, जबकि वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान 1181 बस्तियों को पेयजल सुविधा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। गत दो वर्षों के दौरान जलाभावग्रस्त क्षेत्रों में 3254 हैंडपम्प स्थापित किए गए हैं।

हमारे प्रदेश की कृषि-आर्थिकी में पशुपालन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रदेश में पशुपालन तथा डेयरी विकास गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाएं आरम्भ की गई हैं। दूध के प्रापण मूल्य में 2 रुपये प्रति लीटर की वृद्धि की गई है। दुधारु पशुओं की बेहतर नस्लें विकसित करने के लिए भ्रूण हस्तांतरण तकनीक को अपनाया जा रहा है। कृत्रिम गर्भाधान सुविधाओं को सुदृढ़ करने तथा उन्नत नस्ल के पशु तैयार करने के लिए 626.33 लाख रुपये का

प्रावधान किया गया है।

हमारे समाज में महिलाओं की अहम भूमिका के दृष्टिगत हमारी सरकार यह सुनिश्चित बना रही है कि महिलाएं किसी भी प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक अवसरों को चुनने के लिए सक्षम हो सकें। सरकार ने महिलाओं के कल्याण व सशक्तीकरण के लिए राज्य महिला कल्याण बोर्ड का गठन किया है। मुख्य मंत्री कन्यादान योजना के अंतर्गत देय वित्तीय सहायता को 21,000 रुपये से बढ़ाकर 25,000 रुपये किया गया है, जबकि अन्तरजातीय विवाह तथा विधवा पुनर्विवाह के लिए वित्तीय सहायता को भी 25,000 से बढ़ाकर 50,000 रुपये किया गया है। राज्य सरकार, प्रदेश के उपेक्षित एवं कमज़ोर वर्गों के कल्याण के प्रति वचनबद्ध है। अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान 1325 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं, जबकि अनुसूचित जनजाति के कल्याण व जनजातीय क्षेत्रों के विकास पर 924 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं। अन्य पिछड़ा वर्ग में क्रीमी लेयर के निर्धारण के लिए वार्षिक आय सीमा को 4.50 लाख से बढ़ाकर 6 लाख रुपये किया गया है। भूमिहीन लोगों को भूमि उपलब्ध करवाने के लिए प्रदेश सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम को निरस्त कर दिया है। इससे जनजातीय क्षेत्र के लोगों को नौ-तोड़ के अंतर्गत भूमि उपलब्ध करवाई जा सकेगी।

हमारी सरकार का प्रयास है कि सभी को आवास सुविधा उपलब्ध हो। राजीव आवास योजना, इन्दिरा आवास योजना तथा अन्य राज्य आवास योजनाओं के अंतर्गत दी जा रही अनुदान राशि को 48,500 रुपये से बढ़ाकर 75,000 रुपये किया गया है। इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत 7649.72 लाख रुपये व्यय कर 12,170 आवासों का निर्माण किया गया है, जबकि राजीव आवास योजना के अंतर्गत 2766 आवास स्वीकृत किए गए हैं। सरकार द्वारा आवासहीन निर्धन परिवारों को शहरी क्षेत्रों में दो बिस्वा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में तीन बिस्वा भूमि निशुल्क उपलब्ध करवाई जा रही है। प्रदेश में 'मनरेगा' का कारगर कार्यान्वयन सुनिश्चित बनाया जा रहा है। इस अवधि के दौरान योजना के अंतर्गत प्रदेश में 1013.04 करोड़ रुपये खर्च कर 9,85,988 परिवारों को रोज़गार प्रदान किया गया तथा 493.48 लाख श्रम दिवस सृजित किए गए।

प्रदेश की शत-प्रतिशत जनसंख्या को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत लाया गया है। विशेष राज्य उपदान योजना के अंतर्गत प्रदेश में 4634 उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से 3 दालें, दो खाद्य तेल तथा आयोडीनयुक्त नमक उपदानयुक्त दरों पर प्रदान किया जा रहा है। सभी बी.पी.एल. परिवारों को पहले की तरह 35 किलो राशन प्रतिमाह दिया जा रहा है। इस योजना के अंतर्गत वर्ष 2013-14 के दौरान 237 करोड़ रुपये खर्च किए गए, जबकि वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान इसके लिए 220 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान किया गया है।

प्रदेश सरकार राज्य में सड़कों के निर्माण व रख-रखाव को प्राथमिकता दे रही है, क्योंकि यहां यातायात के अन्य साधन सीमित हैं। इस अवधि के दौरान 908 किलोमीटर से अधिक नई सड़कों व 98 पुलों का निर्माण किया गया तथा 187 गांवों को सड़क मार्ग से जोड़ा गया। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अंतर्गत 574 किलोमीटर नई सड़कों का निर्माण किया गया तथा 146 बस्तियों को सड़क सुविधा प्रदान की गई। इस योजना के अंतर्गत 932 करोड़ रुपये की सड़क परियोजनाएं स्वीकृत की गई हैं। 'नाबार्ड' को स्वीकृति हेतु 544 करोड़ रुपये की 170 परियोजनाएं भेजी गई हैं, जिनमें से 409 करोड़ रुपये की 131 परियोजनाओं को स्वीकृति मिल चुकी है। प्रदेश के लिए 6 नए राष्ट्रीय राजमार्ग स्वीकृत किए गए हैं, जिससे राज्य में राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लम्बाई 1753 किलोमीटर हो गई है।

हिमाचल प्रदेश ने प्रारम्भिक स्तर पर स्कूलों में विद्यार्थियों के दाखिले में शत-प्रतिशत लक्ष्य तथा ड्रॉप-आउट दर को लगभग शून्य बनाए रखने में कामयाबी हासिल की है। गत दो वर्षों के दौरान प्रदेश में 717 नए स्कूल खोले अथवा स्तरोन्नत किए गए, जबकि प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में 15 नए कॉलेज खोले गए। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान अथवा 'एम्ज़' जैसे राष्ट्रीय संस्थानों में स्नातक पाठ्यक्रमों में तथा किसी भी भारतीय प्रबन्धन संस्थान के स्नातकोत्तर/डिप्लोमा पाठ्यक्रम में दाखिला पाने वाले छात्रों को 75,000 रुपये की एकमुश्त प्रोत्साहन राशि दी जा रही है। यह सुनिश्चित बनाने के लिए कि शिक्षकों के अभाव में पढ़ाई प्रभावित न हो, गत दो वर्षों के दौरान शिक्षकों के 7457 पद भरे गए तथा विभिन्न श्रेणियों के 1755 पदों को भरने की प्रक्रिया जारी है। पी.टी.ए प्राध्यापकों की ग्रांट-इन-एड को 7500 से बढ़ाकर 10,875 रुपये, टी.जी.टी. के लिए 6950 से बढ़ाकर 10,425 रुपये तथा सी. एण्ड वी. अध्यापकों की ग्रांट-इन-एड को 6750 रुपये से बढ़ाकर 10,125 रुपये किया गया है। इसी प्रकार पैट अध्यापकों के मानदेय को बढ़ाकर 8900 रुपये किया गया है। प्रदेश के सिरमौर, कुल्लू, बिलासपुर, किन्नौर तथा लाहौल-स्पीति ज़िलों में 5 नए बहुतकनीकी संस्थान खोले गए हैं, जबकि ऊना ज़िले में 122 करोड़ रुपये की लागत से एक आई.आई.आई.टी. खोला है। प्रदेश के लिए एक भारतीय प्रबंधन संस्थान भी स्वीकृत हुआ है, जिसे सिरमौर ज़िले में खोला जाएगा।

प्रदेशवासियों को उनके घर-द्वार पर बेहतर एवं विशेषज्ञ स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जा रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रदेश के अधिकांश स्वास्थ्य सूचक राष्ट्रीय औसत से बेहतर दर्ज़ किए गए हैं। इस अवधि के दौरान प्रदेश में 50 नए स्वास्थ्य संस्थान खोले अथवा स्तरोन्नत किए गए, जिनमें से 7 अस्पताल, 9 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, 23 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा 5 स्वास्थ्य उप-केन्द्र शामिल हैं। इन्दिरा गांधी मेडिकल कॉलेज शिमला तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मेडिकल कॉलेज टाण्डा में सुपर-स्पेशिएलिटी सेवाएं प्रदान की जा रही हैं। गत दो वर्षों के दौरान लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए लगभग 730 चिकित्सकों की नियुक्ति की गई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत सफाई कर्मचारियों, कूड़ा बीनने वालों, ऑटो रिक्शा चालकों तथा टैक्सी चालकों को भी शामिल किया गया है। इस अवधि के दौरान योजना के अंतर्गत लाभार्थियों को 4.48 लाख 'स्मार्ट कार्ड' प्रदान किए गए। प्रदेश के हमीरपुर, चम्बा तथा सिरमौर ज़िलों में नये मेडिकल कॉलेज खोले जाएंगे, जिसके लिए प्रत्येक मेडिकल कॉलेज के लिए 190 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। प्रदेश के लिए 'एम्ज़' भी स्वीकृत किया गया है, जिसे बिलासपुर ज़िले में खोला जाएगा।

इन्दिरा गांधी मेडिकल कॉलेज शिमला के नए परिसर का भी निर्माण किया जाएगा।

प्रदेश में पर्यावरण मित्र, प्रदूषण मुक्त तथा रोज़गार के अधिक से अधिक अवसर सृजित करने वाले उद्योगों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। ऊना, कांगड़ा तथा सोलन ज़िले में नये औद्योगिक क्षेत्र विकसित किए जा रहे हैं। गत दो वर्षों के दौरान एकल खिड़की स्वीकृति एवं अनुश्रवण प्राधिकरण द्वारा 7582.90 करोड़ रुपये की 118 परियोजनाओं को स्वीकृति दी गई है, जिनमें 11,000 से अधिक युवाओं को रोज़गार उपलब्ध होगा। राज्य में निवेश आकर्षित करने के लिए 'निमन्त्रण से निवेश' राज्य सरकार का मूल मंत्र रहा है। नामी औद्यागिक घरानों को राज्य में निवेश आकर्षित करने के लिए देश के तीन महानगरों में 'इन्वैस्टर मीट' का आयोजन किया गया। इस प्रयास के सुखद परिणाम आए हैं तथा प्रदेश में 2500 करोड़ रुपये के निवेश प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं, जिनमें 8,000 युवाओं को रोज़गार उपलब्ध होगा। निवेशकों को सरकार द्वारा अनेक प्रोत्साहन प्रदान किए जा रहे हैं। स्टाम्प शुल्क तथा भू-उपयोगिता हस्तांतरण शुल्क में 50 प्रतिशत कटौती की गई है तथा 300 से अधिक हिमाचली युवाओं को रोज़गार प्रदान करने वाले सभी उद्योगों से प्रथम 5 वर्षों में केवल 2 प्रतिशत शुल्क वसूला जाएगा। सोलन ज़िले के बद्दी में 147 करोड़ रुपये की लागत से एक 'टूल-रूम' की स्थापना की जा रही है। हमारी सरकार ने प्रदेश में वैज्ञानिक तरीके से खनन सुनिश्चित बनाने तथा अवैध खनन पर अंकुश लगाने के लिए नए खनन नियमों को तैयार करने का निर्णय लिया है। प्रदेश में लगभग 23,000 मेगावाट जलविद्युत क्षमता उपलब्ध है, जो देश की कुल क्षमता का लगभग एक चौथाई है। हमारी सरकार निजी, सरकारी तथा संयुक्त उपक्रम की भागीदारी से इस क्षमता के दोहन पर कार्य कर रही है। 10 मैगावाट घानवी जल विद्युत परियोजना के दूसरे चरण का लोकार्पण किया गया है, जिससे प्रदेश को 12.5 करोड़ रुपये का वार्षिक राजस्व प्राप्त होगा। प्रदेश सरकार अपने उपभोक्ताओं को उपदानयुक्त दरों पर 24 घंटे निर्बाधित विद्युत आपूर्ति कर रही है। घरेलू उपभोक्ताओं को उपदानयुक्त दरों पर बिजली प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा 388 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

प्रकृति ने हिमाचल प्रदेश को असीम प्राकृतिक सौंदर्य तथा प्रदूषण-मुक्त वातावरण प्रदान किया है। प्राकृतिक तथा ग्रामीण पर्यटन को प्रोत्साहित कर प्रदेश में पर्यटन विकास को नई दिशा दी गई है। 'होम-स्टे' के अंतर्गत प्रदेश में 576 इकाइयों को पंजीकृत किया गया है। प्रदेश के जनजातीय व कठिन क्षेत्रों में खुलने वाले नये होटलों को दस वर्षों के लिए विलासिता कर में छूट दी गई है। कुल्लू-मनाली मैगा पर्यटन सर्किट के लिए 3371.51 लाख रुपये की राशि स्वीकृत की गई है। प्रदेश सरकार ने सड़क परिवहन को अपनी प्राथमिकता सूची में शामिल किया है। लोगों को आरामदेह, बेहतर तथा सुरक्षित परिवहन सुविधाएं प्रदान करने के लिए राज्य पथ परिवहन निगम के बेड़े में 500 नई बसें शामिल की गई हैं तथा जवाहरलाल नेहरु राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन के तहत 800 नई बसें खरीदने के लिए 265.11 करोड़ रुपये स्वीकृत किए गए हैं। सरकार द्वारा 'ग्रीन कार्ड' योजना आरम्भ की गई है, जिसके तहत बस किराये में 30 प्रतिशत की छूट दी जा रही है। कैंसर, किडनी एवं डायलिसिस के रोगियों को एक सहायक सहित प्रदेश के भीतर व बाहर उपचार के लिए निगम की बसों में निशुल्क यात्रा की सुविधा दी जा रही है।

वर्ष 1971 में लगभग शून्य से अपनी विकास यात्रा आरम्भ करते हुए आज हमारा प्रदेश न केवल देश के पर्वतीय क्षेत्रों के विकास का आदर्श बनकर उभरा है, बल्कि आज यह विकास के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी राज्य के रूप में आंका जाने लगा है।

कर्मचारी प्रदेश के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य सरकार के कर्मचारियों के साथ हमेशा सौहार्दपूर्ण सम्बंध रहे हैं तथा उनकी सभी जायज़ मांगों को पूरा किया जा रहा है। प्रदेश सरकार द्वारा अपने घोषणा-पत्र में किए गए वायदे को पूरा करते हुए पूर्व भाजपा सरकार द्वारा बंद किए गए राज्य प्रशासनिक ट्रिब्यूनल को बहाल किया गया है। इसका मुख्यालय शिमला में होगा, जबकि धर्मशाला में इसकी सर्किट बैंच स्थापित की जाएगी। इससे कर्मचारियों को शीघ्र न्याय मिलेगा। सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों, पैंशनरों व पारिवारिक पैंशनरों को गत दो वर्षों के दौरान 2035 करोड़ रुपये के वित्तीय लाभ प्रदान किए गए हैं। 6 वर्ष का सेवाकाल पूरा करने वाले अनुबंध कर्मियों तथा 7 वर्ष का नियमित सेवाकाल पूरा करने वाले दिहाड़ीदारों को नियमित किया जा रहा है। अकुशल श्रमिकों की दिहाड़ी को बढ़ाकर 170 रुपये किया गया है। कर्मचारियों के चिकित्सा भत्ते को बढ़ाकर 350 रुपये प्रतिमाह किया गया है। पुलिस विभाग में कांस्टेबल के 800 पद सीधी भर्ती द्वारा नियमित आधार पर भरे जाएंगे, जिनमें 640 पुरुष तथा 160 महिला कांस्टेबल शामिल हैं।

हम अपने स्वतंत्रता सेनानियों, सेवारत सैनिकों तथा भूतपूर्व सैनिकों के कृतज्ञ हैं। स्वतंत्रता सेनानियों तथा उनके परिजन समाज में सम्मानपूर्वक जीवन-यापन कर सकें, इसके लिए हमारी सरकार ने स्वतंत्रता सेनानियों की सम्मान राशि को 7,500 रुपये से बढ़ाकर 10,000 रुपये तथा उनकी विधवाओं एवं अविवाहित पुत्रियों की सम्मान राशि को 3500 से बढ़ाकर 5,000 रुपये प्रतिमाह किया है। हमारी सरकार प्रदेश्वासियों को जवाबदेही व कुशल प्रशासन प्रदान करने के लिए निरन्तर प्रयासरत है, ताकि सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का बेहतर कार्यान्वयन किया जा सके। इसके लिए प्रदेश के प्रत्येक नागरिक का सक्रिय सहयोग वांछित है, क्योंकि प्रदेश के लोग ही हमारी वास्तविक शक्ति हैं और हम उनके कल्याण के प्रति वचनबद्ध हैं।

पूर्ण राज्यत्व दिवस के इस पावन अवसर पर मैं एक बार पुन: सभी प्रदेशवासियों को हार्दिक बधाई देता हूं तथा उनके सुखमय एवं उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं। इस पावन दिन हम अपने महान स्वतंत्रता सेनानियों व नेताओं के आदर्शों एवं सपनों को साकार करने का संकल्प लें तथा एकजुट होकर निष्ठा एवं समर्पण से कार्य करते हुए हिमाचल प्रदेश को देश का सर्वाधिक विकसित राज्य बनाने के लिए पुन: संकल्पित हों।

●●●

जयंती (23 जनवरी)

क्रांतिकारी देशभक्त सुभाष चन्द्र बोस

● सुरेंद्र पाल शर्मा



भारत को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त कराने में जिन महान वीर सपूतों ने अपने प्राणों की आहुति देकर देश के लिए सर्वोच्च बलिदान दिया, उनमें सुभाष चन्द्र का नाम उल्लेखनीय है। देश प्रेम का जज़्बा उनमें कूट-कूटकर भरा था और भारतवर्ष को आजाद करवाना उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। परिस्थितियां, चाहें कैसी भी रही हों, उन्होंने देश हित को सदैव सर्वोपरि रखा और इसी को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग पर वे निरन्तर अग्रसर रहे।

सुभाष चन्द्र बोस का जन्म 23 जनवरी 1897 को उड़ीसा के कटक नगर में हुआ था। उनकी माता का नाम प्रभावती था। उनके पिता बाबू जानकी दास बोस कटक के एक प्रसिद्ध वकील थे।

जनवरी 1909 में उनको रावेन्श कॉलिजियेट स्कूल में भर्ती कराया गया। सुभाष स्कूली शिक्षा में तीक्ष्ण बुद्धि वाले एक सुशील, मेधावी तथा स्वाभिमानी छात्र थे। छात्रावस्था में सुभाष ने अपने सहपाठियों को अंग्रेज बच्चों के दुर्व्यवहार का सामना करने की प्रेरणा देकर उनके अन्दर सोया स्वाभिमान जगाया। सुभाष ने कोलकाता (तब कलकत्ता) प्रेसीडेंसी कालेज में शिक्षा ग्रहण करने के बाद कलकता विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में बी. ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। कॉलेज समय में वह अत्यंत निर्भीक, कुशाग्रबुद्धि और विवेकशील युवा के रूप में जाने जाते थे। पिता की इच्छानुसार 15 सितम्बर 1919 को सुभाष आई. सी. एस. की परीक्षा में बैठने के लिए इंग्लैंड रवाना हो गए। सन् 1920 में आई. सी. एस. की परीक्षा में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त कर ब्रिटिश प्रशासन में प्रवेश किया। वे ब्रिटिश सरकार की नौकरी करना नहीं चाहते थे। उनका मानना था कि सिविल सर्विस में रहकर पराधीन देश की जनता की सेवा नहीं की जा सकती। अतः उन्होंने 22 अप्रैल 1921 को सिविल सर्विस से त्यागपत्र दे दिया। जो उनके महान त्याग का सूचक था। सम्मान व अच्छा वेतन देने वाली नौकरी से त्यागपत्र देने का बोस का साहसपूर्ण निर्णय युवा वर्ग के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। देश प्रेम एवं राष्ट्रभक्ति के प्रति उनके लगाव ने इन्हें झकझोर दिया और वे वापिस भारत लौट आए।

सुभाष जब भारत लौटे तो उस समय यहां पर गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग अन्दोलन चल रहा था। भारत में आकर वे सर्वप्रथम महात्मा गांधी जी से मुम्बई (तब बम्बई) में मिले और उनसे देश को स्वतंत्र कराने के मुद्दे पर महत्त्वपूर्ण बातें की। उद्देश्य एक होते हुए बोस सैद्धान्तिक रूप से गांधी जी से अलग हो गए। उन्होंने अहिंसा की जगह क्रान्ति तथा ताकत के द्वारा आजादी हासिल करने के ढंग को अपनाया।

24 वर्ष की छोटी आयु में ही बोस ने चितरंजन दास के नेतृत्व में स्वन्तत्रता आंदोलन में भाग लिया। 17 दिसम्बर, 1921 को प्रिंस आफ बेल्स भारत आए। बोस ने भारत आने पर उनके खिलाफ काले झण्डे, हड़तालों व बंद के आहवान के द्वारा बहिष्कार किया। इस पर सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर दिया और छह महीने तक जेल में रखा। सुभाष दिसम्बर 1921 में पहली बार जेल गए 1921 से 1941 तक कम-से-कम ग्यारह बार गिरफ्तार हुए और

सुभाष चन्द्र बोस का

● केवल सिंह 'डलहौजी'

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिमाचल प्रदेश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अंग्रेजी हुकूमत के दौरान शिमला देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी होने के कारण इस पहाड़ी प्रदेश में राष्ट्रीय नेताओं का आना-जाना लगा रहा जिससे यहां लोगों में राजनीतिक चेतना जागृत हुई। इस दौरान महात्मा गांधी, पं. मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, पं. जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभभाई पटेल और खान अब्दुल गफ्फार खां जैसे राष्ट्रीय नेताओं के अनेकों बार शिमला आगमन से यहां स्वतंत्रता संग्राम की रणनीति पर विचार-विमर्श एवं मंथन होता था, वहीं नेता जी सुभाष चन्द्र बोस जैसे क्रांतिकारी नेताओं के राज्य के डलहौजी जैसे अन्य स्वास्थ्यवर्धक क्षेत्रों में आने से स्वतंत्रता संग्राम की गूंज प्रदेश के अन्य क्षेत्रों में भी दूर-दूर तक फैली। डलहौजी प्रदेश का एक ऐसा अन्य ऐतिहासिक नगर है, जहां गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर, सरदार अजीत सिंह तथा पं. जवाहर लाल नेहरू जैसे देशभक्त राष्ट्रीय नेता आकर ठहरे थे।

नेता जी सुभाष चंद्र बोस ने आत्म सुख त्याग कर अपनी सारी ऊर्जा, सारा ज्ञान, सारा समय, सारा जीवन भारत माता को स्वतन्त्र कराने में लगा दिया। उनका नारा था- तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा। इस दौरान ब्रिटिश राज ने नेता जी को कई बार ऐसी यातानाएं दी जिनका नेता जी के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा। नेता जी का स्वास्थ्य अत्यन्त खराब हो गया। उन्हें बुखार, खांसी के साथ- साथ टीबी ने घेर लिया था।

सन् 1932 के अंत में नेता जी की हालत बहुत बिगड़ने लगी। सन् 1933 में नेता जी इलाज के लिये यूरोप चले गये। वह यूरोप में उपचार की ओट में मुसोलिनी, रोमा रोला, जी बेलौरा और रिबनट्रास जैसे कई नेताओं से मिले। 1936 में वह वापस भारत लौटे। उनके स्वास्थ्य में कोई सुधार न था। 1936 में यरवदा जेल में उनकी तबीयत अचानक खराब हो गई। 17 मार्च, 1937 को उन्हें जेल से छोड़ दिया गया। श्रद्धानन्द पार्क में उनकी इस मुक्ति को 'ऑल बंगाल सुभाष दिवस' के रूप में मनाया गया। उन्होंने कलकता में ही कुछ दिन बिताए। उनके चिन्तनशील, कर्मठ और देश को समर्पित मन ने स्वयं के स्वास्थ्य और देश के हित में एक सफल योजना की तैयारी के लिए उन्हें स्वास्थ्यर्वक स्थल डलहौजी के लिए प्रस्थान किया। नेता जी लाहौर से रेल द्वारा पठानकोट पहुंचे। 1 मई, 1937 को पठानकोट से बस द्वारा डलहौजी पहुंचे। डलहौजी में भगतराम नामक कुली ने बोस को ऐरोमा, प्रिंस, कैपिटल आदि अच्छे होटलों के नाम बताये। इस पर बोस ने पूछा कि क्या भारतीय नाम से यहां कोई होटल नहीं है? कुली ने जबाव दिया कि मालरोड़ पर एक मेहर सिंह होटल है। भगतराम, बोस को वहीं ले गया। सामान मेहर होटल पहुंचाने के लिए भगतराम ने बोस से तीन पैसे मांगे। इस पर बोस ने भगतराम को एक रुपया देकर कहा कि मैं चाहता हूं कि मेरे देश के मजदूर को एक दिन में कम से कम एक रुपया मिले। भगतराम भांप गया कि बंगाली बाबू कोई बहुत बड़े देशप्रेमी हैं। भगतराम ने नेता जी के शब्दों का प्रचार सारी डलहौजी में कर दिया। डलहौजी की कांग्रेस सभा को यह समझने में कोई देर नहीं लगी कि डलहौजी की सुन्दर वादियों में किसका आगमन हुआ है। बोस यहां के मेहर सिंह होटल के कमरा नं. 12 में ठहरे जो आज भी कमरा नं. 12 ही है। डॉ. धर्मवीर और उनकी पत्नी जैनी (ब्रिटिश

बोस ने डलहौजी में डॉक्टर धर्मवीर की कायनैंस कोठी में कई दिन बिताए। डॉक्टर धर्मवीर ने एक विश्वस्त लड़की 'लिली' को बोस की देखभाल में लगा दिया। उन्होंने अपने चौकीदार (रसोइए) मोहन लाल को भी सारा दिन सुभाष बाबू के लिये नियुक्त कर दिया। वही उनको पहाड़ों में घुमाता और उनके अन्य काम भी करता। कायनैंस कोठी गांधी चौक डलहौजी से लगभग 300 मीटर दूर पंचपुला रोड़ पर है।

कुल मिलाकर 8 वर्ष तक जेल में रहे।

सन् 1938 में बोस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने। उन्होंने भारत की भावी सरकार की नीति की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने मुख्यतः तीन पहलुओं पर बल दिया।

देशवासियों को बलिदान के लिए तैयार करना।

देश को एकता के सूत्र में बांधना।

धार्मिक स्वायत्तता को महत्त्व देना

सन् 1939 में पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। परन्तु गांधी जी और उनके समथकों से मतभेद होने के कारण उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया और कांग्रेस से अलग हो गए । मई 1939 ई0 में उन्होंने 'फारवर्ड ब्लाक' नामक राजनीतिक दल का गठन किया। जिसमें कांग्रेस व वामपंथी विचारधारा वाले लगभग सभी लोग शामिल हो गए। मार्च 1940 ई. में सुभाष ने पूर्ण स्वराज्य के लिए सम्पूर्ण भारत में आंदोलन शुरु कर दिया। 26 जनवरी 1941 को वे घर की नजरबंद कैद से बच कर भाग निकले तथा भेष बदल कर अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए पेशावर, काबुल होते हुए मास्को पहुंचे और वहां से बर्लिन।

बोस अंग्रेजों के विरुद्ध जहां से भी हो सके सहायता प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने हिटलर से मिलकर और उन्हें न केवल देश को अंग्रेजों की अधीनता से आजाद करवाने की योजना से परिचित करवाया बल्कि सहायता के लिए भी राजी करा लिया। जर्मनी तथा उसके मित्र देशों के सैनिकों द्वारा बंदी बनाए गए भारतीय सैनिकों को संगठित कर 2 नवम्बर 1941 को 'आजाद हिंद संघ' का गठन किया तथा कार्यालय बर्लिन में खोला गया और तिरंगा झण्डा

डलहौजी आगमन

नागरिक) को भी यह सूचना मिली। चूंकि जैनी यूरोप में नेता जी की सहपाठिन रह चुकी थी, इसलिये दूसरे दिन जैनी मेहर सिंह स्वयं होटल गईं और नेता जी को उनके सामान सहित अपनी कोठी कायनैंस ले गईं। दूसरी तरफ डलहौजी के पुलिस अध्यक्ष हरबंस लाला को लाहौर से लारैंस पुलिस एस.पी. का फोन आया। एस.पी. ने हरबंस को बताया कि बोस डलहौजी आये हैं और वह डॉ. धर्मवीर की कोठी में रहेगा। यद्यपि बोस स्वास्थ्य लाभ के लिये डलहौजी आया है तथापि सरकार और वायसराय चिंतित हैं, क्योंकि बोस शांत बैठने वाला व्यक्ति नहीं है। वह कोई भी क्रांति कर सकता है। दिल्ली और पंजाब से कई गुप्तचर उनके पीछे लगा दिये गये हैं। उनकी सेवा की जिम्मेदारी भी आपकी है। यह सुनकर हरबंस की तो जैसे नींद हराम हो गई।

बोस ने डलहौजी में डॉक्टर धर्मवीर की कायनैंस कोठी में कई दिन बिताए। डॉक्टर धर्मवीर ने एक विश्वस्त लड़की 'लिली' को बोस की देखभाल में लगा दिया। उन्होंने अपने चौकीदार (रसोइए) मोहन लाल को भी सारा दिन सुभाष बाबू के लिये नियुक्त कर दिया। वही उनको पहाड़ों में घुमाता और उनके अन्य काम भी करता।

कायनैंस कोठी गांधी चौक डलहौजी से लगभग 300 मीटर दूर पंचपुला रोड़ पर है। रोड़ पर ही लोहे का गेट लगा है। गेट पर अंग्रेजी भाषा में लिखा गया है-कायनैंस इस्टेट। यहां से लगभग 30 सीढ़ियां नीचे उतर कर बिहड़ और एकदम शांत जंगल में है कोठी कायनैंस। सन् 1983 में, मैं (केवल सिंह 'डलहौजी') पंचम कक्षा का विद्यार्थी था। मैं इसी रास्ते से होकर अपने राजकीय प्राथमिक पाठशाला लोहाली जाया करता था। सड़क के आसपास उन दिनों इतना घना जंगल हुआ करता था कि गेट भी सरलता से दिखाई नहीं पड़ता था। कायनैंस कोठी के चारों तरफ बान, देवदार, तोष, बुरांस और कैंथ आदि के इतने घने पेड़ थे कि कोठी बिल्कुल भी दिखाई नहीं पड़ती थी। अजनबी के लिए इस कोठी को ढूंढना असंभव जैसी बात थी। आज वन-वनस्पति घटते ही जा रहे हैं। इसका प्रभाव कायनैंस कोठी पर भी पड़ा है। पिछले कुछ सालों से कोठी की छत का ऊपरी हिस्सा सड़क से थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ने लगा है।

वर्तमान में कायनैंस के मुख्य खण्ड में कुल सात कमरे हैं। इनमें से एक भोज कक्ष, तीन सोने के कमरे और एक वह कमरा है जिसमें सुभाष ठहरे थे। आज भी यह कमरा वैसे का वैसा ही है। कमरे के एक तरफ बेड लगा है जिस पर सुभाष सोया करते थे। दूसरी तरफ एक लकड़ी की बड़ी कुर्सी के सामने तीन बड़े दराज वाला एक सुन्दर मेज सुसज्जित है। इसी मेज पर सुभाष अपना पढ़ने-लिखने का कार्य किया करते थे। मेज के ठीक ऊपर लगा उस समय का एक बड़ा दर्पण आज भी वहीं पर सुशोभित है। कमरे में अंग्रेजी अक्षर एल के आकार का एक मजबूत बैंच है। कमरे की पश्चिम दिशा में कोठी के बाहर का बड़े- बड़े स्लेटों का आंगन और बिहड़ जंगल शीशों वाली खिड़कियों से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यहीं से पर्याप्त प्राकृतिक रोशनी कमरे में पहुंचती है। तेजू राम जी की उपस्थिति में मैंने (केवल सिंह 'डलहौजी') अपने शरीर को घुमाते हुये पूरे कमरे का अवलोकन किया। मुझे ऐसा आभास हुआ मानो कमरे में सुभाष जी की महक हो। कायनैंस कोठी के तीन कमरों में बुखारी सेकने की अच्छी व्यवस्था है। ये आज भी सही सलामत हैं। डायनिंग रूम में कुल 22 तस्वीरें लगी हैं। इनमें सुभाष चन्द्र बोस की चार तस्वीरें हैं। चार में से एक ऐतिहासिक तस्वीर चियरिंग क्रॉस (आज का सुभाष चौक डलहौजी) की है। चित्र में स्थानीय कांग्रेस के अधिकारी और डलहौजी की बड़ी हस्तियां जिनमें सरदार गोपाल सिंह, तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष गुलाम रसूल, कांग्रेस महामंत्री मुहम्मद शरीफ, रायज़ादा हंसराज, शेख रहमतुल्ला खां, मेला राम और योगराज आदि सुभाष जी को हार डालकर सम्मानित कर रहे हैं। चित्र के नीचे तिथि 5.5.1937 अंकित है। यही तस्वीर डलहौजी शहर के डी.सी. खन्ना शॉपिंग कम्पलैक्स मेहरस होटल, रायज़ारा हंसराज पुस्तकालय गांधी चौक और श्री बलदेव मोहन खोसला जी के निवास सदर बाजार में भी लगी हैं। डायनिंग रूम का फर्नीचर अत्यंत पुराना है। गोलाकार मेज की देवदार की बनी ऊपरी सतह बहुत सुन्दर है। पूरी कोठी की नक्काशी अद्‌भुत है। चौकीदार तेजू राम गांव

लहराया गया तथा जन-गन-मन राष्ट्रीय गीत गाया गया।

8 फरवरी 1943 को जर्मनी से जापान के लिए चल पड़े तथा 2 जुलाई 1943 को जापान से सिंगापुर पहुंचे। यहां पर उनकी मुलाकात रासबिहारी बोस से हुई। यहां पर 5 जुलाई 1943 को विधिवत रूप से 'आजाद हिन्द फौज' के गठन की घोषणा की जिसमें जापान द्वारा बंदी बनाए गए भारतीय सैनिक शामिल थे। बोस ने आजाद हिंद फौज का पूरा नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया तथा घोषणा की कि आजाद हिंद फौज भारतीय स्वाधीनता के लिए लड़ेगी।

सिंगापुर के विशाल टाउन हॉल में उन्होंने पहली बार इस सेना को 'दिल्ली चलो' का नारा दिया।

21 अक्तूबर 1943 को जापान में नेताजी के नेतृत्व में भारत की अस्थायी निर्वासित सरकार का गठन किया गया। वे इस अस्थायी सरकार के अध्यक्ष मनोनीत हुए।

30 दिसम्बर 1943 को सुभाष चन्द्र बोस ने अण्डेमान -निकोबार पहुंचकर पोर्टब्लेयर पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया। 7 जनवरी 1944 को आजाद हिन्द फौज का मुख्यालय सिगांपुर से बर्मा लाया गया। सन् 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध का पासा पलटने लगा और ब्रिटेन व मित्र राष्ट्रों की विजय होने लगी जिसके कारण आजाद हिन्द फौज को पीछे हटना पड़ा। 9 अगस्त, 1945 को जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया। जिससे आजाद हिन्द फौज को गहरा आघात पहुंचा। विवशता में नेता जी को युद्ध समाप्त करना पड़ा और वे वापिस सिंगापुर चले गए। देश के इस महान सपूत की मृत्यु के बारे में कुछ निश्चित नहीं है। कहा जाता है कि 17 अगस्त

धरोटा बाथरी तहसील डलहौजी के पिता श्री मोहन लाल ने डॉक्टर धर्मवीर की कोठी कायनैंस में 55 साल बिताये। तेजू राम (85 वर्ष) जब 8-10 साल के थे तब से कायनैंस में काम रहे हैं। आज तेजू राम का बेटा चौकीदार है। तेजू राम जी भी चौकीदार बेटे के साथ कायनैंस में ही रहते हैं। सुभाष, डलहौजी प्रवास के दौरान अक्सर कुर्ता, धोती, कोट और टोपी, चश्मा पहनते थे। उन्हें फोटोग्राफी का बड़ा शौक था। पहाड़ उन्हें अति प्रिय थे। वह मोहन लाल के घर धरोटा कई बार गए। घर पर जौ की रोटी, मक्की की रोटी और साग आदि जो भी बनता खुशी से खाते थे। वह मोहन लाल के पिता जी के घराट पर भी कई बार गये। नेता जी को भारत की आजादी का पूरा भरोसा था। इसलिये उन्होंने मोहन लाल और तेजू राम से कहा था कि जब भारत स्वतन्त्र हो जायेगा तो मैं तुमसे मिलने जरूर आऊंगा, उस समय मैं भारत का बादशाह होऊंगा।

सुभाष प्रतिदिन करेलून और पंचपुला जाया करते थे। गांधी चौक से डेढ़ किलोमीटर दूर करेलनू मार्ग पर एक बावडी थी जहां सुभाष पानी पीते थे और देर- देर तक बावड़ी के पास रूका करते थे। आज इस बावड़ी को 'सुभाष बावली' के नाम से जाना जाता है। डलहौजी आने वाला प्रत्येक पर्यटक इस बावली के दर्शन अवश्य करता है। कुछ साल पहले सुभाष जी की भतीजी कायनैंस कोठी आई थीं। अपने चाचा जी की याद में वह बहुत भावुक हो गई थीं यही वह कायनैंस कोठी है जिस पर 1937 में दुनिया के कई बड़े-बड़े देशों-रूस, जापान, इटली, जर्मनी आदि की नजरें लगी थीं। क्योंकि देश की स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा दम भरने वाला व्यक्ति जो कि अंग्रेज सरकार का विद्रोही था, उन दिनों यहीं बैठा था। दुनिया के वे देश इच्छुक थे यह जानने को कि यह शख्स अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये कौन सा अगला पग उठाता है? सुभाष बाबू के कारण सरकार का गुप्तचर विभाग यहां रात- दिन सक्रिय था। प्रात: सुभाष बाबू अकेले ही 4-5 मील दूर पहाड़ों पर घूमने चले जाते तो देखते ही देखते 2-3 गुप्तचर इनके पीछे हो लेते। वह उनको कह दिया करते, मित्रो! क्यों इतना दु:ख उठाते हो? मुझ पर यकीन करो मैं यहां से कहीं भी जाने वाला नहीं। जब जाना होगा तो तुम्हें सूचना दे दूंगा।

इस प्रकार सुभाष चन्द्र बोस मई 1937 से अक्तूबर 1937 तक डलहौजी में डॉक्टर धर्मवीर जी की कायनैंस कोठी में रहे। अस्वस्थ होते हुये भी बोस सदैव देश को सर्वोपरि समझते थे। ब्रिटिश राज को खत्म करने की योजनाएं बनाया करते थे। देश प्रेमी गुप्तचर डलहौजी में उनसे भेष बदलकर मिला करते थे। उन्हीं के माध्यम से बोस अपनी योजनाएं वीर सावरकर आदि क्रांतिकारियों तक पहुंचाया करते थे। सुभाष जब आये थे तो दो- तीन किलोमीटर चलकर थक जाते थे। डलहौजी की आवोहवा ने सुभाष को इतना स्वस्थ बना दिया कि वह प्रतिदिन अठारह किलोमीटर चलने लगे। भले ही कहा जाता हो कि

1945 को नेता जी ने वायुयान द्वारा सैगोन से प्रस्थान किया। सैगोन से चल कर सडरेन नामक स्थान पर उतरा। जहां पर उन्होने रात बिताई दूसरे दिन 18 अगस्त 1945 को प्रातः पांच बजे विमान पुनः उड़ा तथा फारामोसा 'वर्तमान ताईवान' द्वीप के ताइपेह स्थान पर दोपहर को उतरा। दो घण्टे विश्राम के बाद वायुयान लगभग दो बजे उड़ते वक्त दुर्घटनाग्रस्त हो गया जिसमें नेताजी सहित चार व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने अपना सारा जीवन देश को पराधीनता की जंजीरों से मुक्त कराने में लगा दिया। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य मातृभूमि की आजादी था। 23 जनवरी को उनके जन्म दिवस पर यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी कि हम सभी देशवासी, देशहित को सर्वोपरि रखें तथा देश की एकता व अखण्डता को बनाए रखने के लिए हर बलिदान को तैयार रहे।

प्रधानाचार्य
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला
दसलेहड़ा जिला बिलासपुर हि. प्र.
दूरभाष 98058 64208

लक्ष्य बनाएं - जीवन संवारें

● अनुज कुमार आचार्य

वर्तमान युग प्रतिस्पर्धा का युग है, सभी में एक-दूसरे से आगे निकलने की दौड़ लगी हुई है। यह भी उतना ही सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सफल होने के सपने देखता है और अपने आत्म-विश्वास, दृढ़-संकल्प, समर्पण, ईमानदारी और अनुशासन के बलबूते काफी हद तक अपने प्रयत्नों से उन सपनों को साकार करने में सफल भी रहता है। मेरे विचार से सफल बनने के लिए यदि हम कुछ नियमों व मूल-मंत्रों को अपनाएं तो निश्चय ही सफलता की सीढ़ियों को चढ़ना बेहद आसान हो जाएगा। सफल मनुष्य वही कहलाता है जिसका लक्ष्य एक हो और वह हमेशा उसकी पूर्ति में लगा रहे। लेकिन कोई भी लक्ष्य या ध्येय बनाने से पहले अपनी क्षमताओं का भी आकलन कर लें। तदोपरान्त दृढ़-प्रतिज्ञ होकर आगे बढ़ें। प्रसिद्ध वैज्ञानिक थामस अल्वा एडिसन, बिजली के बल्व के निर्माण में सौ बार नहीं बल्कि हजारों बार असफल रहे लेकिन उनके प्रयासों की निरन्तरता के चलते आज संसार अपने अंधकार को दूर करने में सक्षम हुआ है। ईमानदारी एक दुर्लभ गुण है। केवल सच बोलना ही ईमानदारी नहीं है बल्कि ईमानदारी का मतलब है हर कर्त्तव्य को जिम्मेदारी के साथ पूरा करना। कई बार जिंदगी में आगे बढ़ने के लिए जोख़िम भी उठाने पड़ते हैं। लेकिन यह बात हमेशा याद रखें - Calculated Risk लें Blind Risk न लें। किसी भी कार्य की 'सफलता' और 'असफलता' के पीछे जिम्मेदार कारणों में अच्छी या बुरी आदतों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

कहा भी गया है- "We make habits and habits make us".

मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है उसका आत्मविश्वास और जिसके पास इस ताकत का अभाव है, सही मायनों में दुनिया का सबसे दुर्बल व्यक्ति भी वही है।

सुभाष अपने भाई द्वारा उच्च न्यायालय से आग्रह के बाद पैरोल पर स्वास्थ्य लाभ के लिये डलहौजी आये थे पर यह आजादी का परवाना ब्रिटिश हुकूमत की नींद हराम करने वाला भारत का सपूत था। आज डलहौजी के प्रसिद्ध राजकीय विद्यालय का नाम नेता जी सुभाष चन्द्र बोस मेमोरियल वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय रखा गया है। डलहौजी के प्रसिद्ध समाजसेवी एवं लोक निर्माण विभाग के एक अधिकारी श्री बलदेव मोहन खोसला जी अपनी 'कलम' संस्था के माध्यम से प्रतिवर्ष 23 जनवरी को डलहौजी में एक छोटा सा जुलूस निकालते हैं। इस दिन सुभाष चौक पर स्थित नेता जी की मूर्ति पर फूलों के हार चढ़ाकर पुष्पांजलि दी जाती है। खोसला जी नेता जी के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। डलहौजी में बिताये नेता जी के उन दिनों की कहानी का वाचन व श्रवण करवाया जाता है। पूरे सेवा भाव से नेता जी को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है–

सुभाष, डलहौजी प्रवास के दौरान अक्सर कुर्ता, धोती, कोट और टोपी, चश्मा पहनते थे। उन्हें फोटोग्राफी का बड़ा शौक था। पहाड़ उन्हें अति प्रिय थे। वह मोहन लाल के घर धरोटा कई बार गए। घर पर जौ की रोटी, मक्की की रोटी और साग आदि जो भी बनता खुशी से खाते थे। वह मोहन लाल के पिता जी के घराट पर भी कई बार गये।

आडवे चक्करों में कई जीवन घूम चुके हैं।
सुभाष के कदम भी यह धरा चूम चुके हैं।

वर्तमान समय में डलहौजी के सुभाष चौक में सुभाष चन्द्र बोस की एक विशाल मूर्ति स्थापित की गई है। सुभाष चन्द्र बोस का डलहौजी प्रवास यहां के निवासियों को गौरवान्वित करता है। यही नहीं देश भक्त सरदार अजीत सिंह को भी स्थानीय लोग बहुत सम्मान देते हैं। निःसंदेह डलहौजी एक ऐतिहासिक पहाड़ी पर्यटक स्थल है। अपने रमणीक, स्वास्थ्यवर्धक और शांत वातावरण के लिये पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। चम्बा के राजा का ऐतिहासिक सुन्दर महल जिसमें वर्तमान में स्थानीय विधायिक आशा कुमारी रहती हैं डलहौजी से तीन किलोमीटर दूर जन्द्रीघाट में स्थित है। गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर, सरदार अजीत सिंह, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस और पंडित जवाहर लाल नेहरू जैसे विश्व स्तरीय व्यक्तित्वों का डलहौजी प्रवास यहां की सुन्दरता को चार चांद लगाता है। अपने लगभग छः महीने के डलहौजी प्रवास के उपरांत नेता जी सुभाष चन्द्र बोस वापस बंगाल लौट गये। इस विदाई पर डलहौजी के वासी बहुत उदास थे। साथ ही डलहौजीवासियों को खुशी थी कि नेता जी सुभाष चन्द्र बोस स्वस्थ होकर बंगाल लौटे और बंगाल की सुप्रसिद्ध दुर्गा पूजा उत्सव में जोश से सम्मिलित हुये।

डलहौजी, जिला चम्बा, हि. प्र.-176 304, मो. 94184 80032

अपने कर्मों से अपना भाग्य बनाएं। लगनशील और कर्मयोगी बनें। असफल होने पर भाग्य को कोसें नहीं। जरूरी है कि अपनी ताकत व क्षमताओं पर विश्वास रखें। प्रख्यात मोटिवेटर शिव खेड़ा के अनुसार, ज्यादातर लोग काबिलियत या अक्ल की कमी के कारण नाकामयाब नहीं होते बल्कि इरादा (Desire), रास्ता (Direction), समर्पण (Dedication) और अनुशासन (Discipline) की कमी के कारण नाकामयाब होते हैं। ज्ञानवर्धक पुस्तकों को अपना साथी बनाएं। अच्छे लोगों से मेल-जोल बढ़ाएं। कामयाब लोगों से मिलकर उनसे प्रेरणा लें। माता-पिता एवं अध्यापकों द्वारा बताए मार्ग पर चलें। जो व्यक्ति अपनी पिछली गलतियों से सबक लेते हुए आगे बढ़ता है वही सच्ची सफलता हासिल करता है। इसके अलावा सोच-समझकर बोलें - हमेशा सकारात्मक कहें व सोचें।

यदि हम अपने सकारात्मक विचारों के साथ-साथ ईश्वर पर भी पूर्ण विश्वास करें तो हमें किसी भी कार्य में सफलता मिलनी तय है। सकारात्मक सोच में एक उपचारात्मक शक्ति है। यह आशा और उत्साह की जनक है। जीवन एक परीक्षा है और सकारात्मक सोच के द्वारा ही उसमें सफलता प्राप्त होती है।

''गुरु ने अपना बनाकर मुझ को निर्णय लेना सीखा दिया।
अंधेरे दिमाग को रोशन करके मंजिल का रास्ता बता दिया।''

गुरु रविन्द्र नाथ टैगोर ने कहा है कि, ''जहां आप कुछ सीख सकते हो, वहीं झुक जाना चाहिए और जहां शान्ति मिले वहीं रुक जाना चाहिए।''

अपने ऊपर कभी भी अहंकार न करें। विनम्रता, सफल जीवन का सबसे बड़ा गुण है। सबसे बढ़कर स्वाभिमानी बनें। ऐसा कहा जाता है कि जो लोग सिर्फ सपने देखना जानते हैं, उनको रातें छोटी लगती हैं और जो सपनों को साकार करना चाहते हैं उन्हें दिन छोटे लगते हैं। यह मत भूलो, "A dream is not what you see in your sleep, but one that does not let you sleep." सपनों के बारे में तो यहां तक कहा गया है कि, "Without dream a man is a dead man."

धर्म के प्रति आस्था रखें क्योंकि सभी धर्म एकता और भाईचारे का उपदेश देते हैं। इसके अलावा ईश्वर पर विश्वास रखें कि वह हमारी मदद कर रहा है। आस्था, समझ और समर्पण निराशा को हटाते हैं। कभी भी हार नहीं माननी चाहिए।

कहा भी गया है :-

''चलते नहीं मील के पत्थर उनका काम बताना दूरी,
राह स्वयं ही चलनी होगी चाह तभी होती है पूरी।''

और यह भी याद रखें :-

''ये धरती एक उत्सव है, मनाकर तो देखो।
धरती का कण-कण उर्वर है तुम फूल खिलाकर तो देखो।''

T.G.T. (Arts), Govt. Sen. Sec. School,
Paprola, Teh. Baijnath, Distt. Kangra (H.P.)
176115, Mob. : 9736443070

दर्शन पक्ष

भगवद्गीता और आदिग्रंथ में साम्य तत्त्वज्ञान

● डॉ. रमेश सोबती

आदिग्रंथ एक निर्गुण का ग्रंथ है। यदि कहा जाए कि आदिग्रंथ में वैदिक काल से लेकर 17वीं शती ई. तक के धार्मिक विचार एवं साधना के परम्परागत विकास की रूपरेखा अंकित है, तो यह बिलकुल सही है। वेद, उपनिषद्, वेदांत, सांख्य, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण साहित्य, शांडिलीय भक्तिसूत्र, नारद भक्तिसूख आदि में अपने-अपने काल के जीवन के ब्रह्म-जगत् की मानसिक परिणति हुई है। वेदों से लेकर आदिग्रंथ तक का काव्य, जीवन के आस-पास बिखरी हुई प्रकृति से प्रभावित हुआ। इसलिए तात्त्विक दृष्टि से आदिग्रंथ में जिस जीवन की परिणति हुई है, उसकी परम्परा विकास के पीछे तक अनुसंधान किया जा सकता है। इस सम्बंध में डॉ. तारन सिंह लिखते हैं : सिक्ख धर्म अपनी धर्म पुस्तक में नितांत भारतीय है, तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखता है। गुरुग्रंथ साहिब अपने आपमें एक 'वेद' ही है। वेद के विषय में डॉ. तारन सिंह लिखते हैं, "वेद ब्रह्म के विषय में परम्परागत ज्ञान को जब तक प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसे श्री गुरुग्रंथ रूप वेद को समझाना कठिन है। इस महान ग्रंथ का आविर्भाव पुरातन सनातन ज्ञान में से हुआ है और यह ग्रंथ उसी परम्परा को विकास प्रदान करता है। इस प्रकार यह रचना नवीन भी है, परन्तु सर्वथा नवीन नहीं है, क्योंकि इसके मूल के पीछे 'वेद' है। भारतीय ब्रह्मविद्या का सम्यक् ज्ञान ही किसी मनुष्य को भी गुरुग्रंथ साहिब की वाणी का बोध कराने में सहायक सिद्ध होगा। इस ज्ञान के बिना इस महान ग्रंथ के रहस्य को जानना कठिन है। इसके साथ ही सिद्धों, नाथों आदि के चर्यापदों तथा सब्दियों ने संत काव्य को बहुत प्रभावित किया। उन्हीं की शैली तथा शब्दावली में परम्परागत विचारों को नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए संत कवि इन योगियों के मुख्य रूप में ऋणी हैं।

आदिग्रंथ गीति काव्य है। वेद भी गीति काव्य है। सिद्धों के पदों में भी गीति काव्य के बीज हैं, जो क्रमशः क्षेमेन्द्र, जयदेव के पदों में अंकुरित होता हुआ मध्यकाल में आकर पल्लवित हुआ। छंदों के माध्यम से जब मानवीय अनुभूतियां अभिव्यक्त होती हैं, तो उनमें एक विशेष प्रकार की प्रभविष्णुता आ जाती है जो पाठक के चित्त को अनायास प्रभावित करती है। आदिग्रंथ के राग-रागिनियों के निर्देश अलंकृत पद लोक परम्परा में आए हैं, इस विचार की पुष्टि में संगीत परम्परा के प्रमाण उपलब्ध हैं। ग्रंथ में जो गीत संग्रहीत हैं, उनमें जयदेव और रामानंद के गीतों को सर्वाधिक प्राचीन माना जा सकता है। लेकिन आदिग्रंथ के गेय पदों की परम्परा बहुत पुरानी है। इन पदों के साथ राग गूजरी, राग भैरवी, राग कामोद, राग मल्लारी, राग गौड़ आदि रागों का निर्देश है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी सरीखे विद्वानों का विचार है कि गीत गोविन्द काव्य के प्रणेता जयदेव के ही दो पद इस ग्रंथ में संग्रहीत हैं। गीत गोविन्द काव्य नामक जयदेव की कृति भारतीय-गीति-काव्य धारा

आदिग्रंथ गीति काव्य है। वेद भी गीति काव्य है। सिद्धों के पदों में भी गीति काव्य के बीज हैं, जो क्रमशः क्षेमेन्द्र, जयदेव के पदों में अंकुरित होता हुआ मध्यकाल में आकर पल्लवित हुआ। छंदों के माध्यम से जब मानवीय अनुभूतियां अभिव्यक्त होती हैं, तो उनमें एक विशेष प्रकार की प्रभविष्णुता आ जाती है जो पाठक के चित्त को अनायास प्रभावित करती है। आदिग्रंथ के राग-रागिनियों के निर्देश अलंकृत पद लोक परम्परा में आए हैं, इस विचार की पुष्टि में संगीत परम्परा के प्रमाण उपलब्ध हैं। ग्रंथ में जो गीत संग्रहीत हैं, उनमें जयदेव और रामानंद के गीतों को सर्वाधिक प्राचीन माना जा सकता है।

की अमूल्य निधि है।

आदिग्रंथ काव्य इसी काव्य परम्परा का ऐतिहासिक विकास है, जिसमें इस परम्परा के इतिहास क्रम के भी दर्शन होते हैं। भाषा तत्त्व की विशेष महत्ता इस आदिग्रंथ में भी निहित है। इस तत्त्व की परम्परा के लिए गुरुग्रंथ की परम्परा को नाथ-योगी साहित्य में सहज भाव से खोजा जा सकता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं : कबीरदास आदि साधकों ने नाथपंथियों और सहजयानियों के बहुत से शब्द, पद और दोहे ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिए थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि कबीर ने अनेक बातें पूर्ववर्ती साधकों से ग्रहण की थीं, फिर भी कबीर की साधना वही नहीं थी, जो इन योगियों या सहजयानियों की थी। कबीर आदि ने योगियों और सहजयानियों के पारिभाषिक शब्दों की अपने ढंग से व्याख्या की। जिस प्रकार वैष्णव शास्त्रों से गृहीत होकर भी उनके राम, दशरथ सुत नहीं थे, ठीक उसी प्रकार उनका सहज, शून्य, षटचक्र, समाधि, इडा, पिंगला आदि भी सहजयानियों और योगियों के इन्हीं शब्दों से भिन्न अर्थ थे। विद्वान लेखक डॉ. उमेश मिश्र 'भारतीय दर्शन' में लिखते हैं, "गीता का मुख्य ज्ञान : कर्त्तव्यपालन, आत्मा की अमरता, अनासक्त कर्म, भक्ति और भक्त की महिमा, भगवान का स्मरण, शोक, मोह की निवृत्ति, निष्काम कर्म की महिमा, माया, भगवान की शक्ति, अद्वैत तत्त्व, वासुदेव तत्त्व तथा धर्म परायणता है। गीता के इन सब तत्त्वों ने आदिग्रंथ काव्य पर अमिट छाप छोड़ी है। आदिग्रंथ में भगवान का जो स्वरूप वर्णित है, वह गीता वाला ही है। गीता के ज्ञान की गुरमति ज्ञान पर छाप को स्वीकार करते हुए नामदेव जी कहते हैं :

"गुरमति राम नाम गहु मीता।
प्रणवै नमा इउ कहे गीता॥ (गोंड नामदेव आ. गं. पृ. 874)

संत जयदेव की रचना आदिग्रंथ में सबसे प्राचीन है। वे कहते हैं : मन से, सृजन से पूर्व वह आदिपुरुष ही था। 'मन आदि गुण आदि वरवाणिया।' (आ.ग्र.पृ. 1106) वह निरंकार वर्तमान, भूत और भविष्य में विनाशरहित है और आनंदस्वरूप है, 'भवभूत भाव समविअं परम प्रसनमिदे।' (आ.ग्र. पृ. 536) नामदेव कहते हैं : युगयुगांतर से वह परमात्मा विद्यमान है। वह कब हुआ, इसका अंत किसी ने नहीं पाया। उसका स्वरूप यही है कि वह सर्वव्यापक है तथा आनंद-स्वरूप है। वह पुरुष कुल रहित और घट-घट में निवास करता है। 'आदि जुगादि, जुगों जुग ताका अंत न जानिआ। सरब निरंतरि रामु रहिअ रवि ऐसा रूप बरवानिआ। गोविंद गाजै सबद बाजै। आनंदरूपी मेरो रामइआ। अकुल पुरख इक चकितु उपा मन घटि घटि अंतरि ब्रहमु लुकाइआ।' (आ. ग्र. पृ. 1359)। गोरखनाथ की भांति नामदेव जी भी अंत में उसी ब्रह्म में 'सुनंसमाधिस्थ' होने का विचार प्रकट करते हैं। 'नामा कहै चित हरि सिउ राता सुन्न समाधि समाउगे।' (आ. ग्र. पृ. 657)। कबीर जी कहते हैं कि चंद्रमा और सूर्य में उसकी ज्योति है। ज्योति में उस अनुपम ब्रह्म का प्रतिबिंब है। सारा जगत उसी ज्योति का प्रसार है। 'चंदु सूरज दुई जोति सरूप। जोति अंतरि ब्रह्म अनूप। करू रे गिआनी ब्रह्म बीचारू। जोति अंतरि घरिआ पासार।' (रामकाली कबीर आ.ग्र. पृ. 884)। गुरुनानक देव जी कहते हैं कि वह एकंकार निराला है। अमर, अयोनि, अजातीय तथा बंधन रहित है। अगम अगोचर है और उसकी कोई रूपरेखा नहीं है। वह घट-घट में निवास करता है। 'एकंकार निराला। अमर अजोनी जाति न जाला। अगम अगोचर रूप ने रेखिआ। खोजत खोजत घटि घटि पेखिआ।' (बिलावल मः 1 आदिग्रंथ, पृ. 296)। ब्रह्म की स्थिति का जो वर्णन गुरु नानकदेव जी ने किया है, वह उपनिषदों से मिलता है। 'झिलिमिलि झिलके चंदु न तारा। सूरज किरिण न बिजुलि गैणारा॥ अकथी कथउ चिहनु नहीं कोई पूरि रहिआ मनि भाइदा। पसरी किरणि जोति उजिआला। करिकिरि देखै आपि दइआला।' (आ. ग्र. पृ. 1033)। गुरु अमरदास भी सत्ब्रह्म को एक मानकर, दूसरे देवों का त्याग करने को कहते हैं, क्योंकि वह सच्चा महादेव ही सर्वव्यापक है। 'नानक सचा एकू दरूबीया परहरि अहि। नानक जह जह मै फिर उतह तह साचा सोइ। जह देखा तह एकु है गुरमुखि परगटू होइ।' (मः 3, आ.ग्र. पृ. 1413)। गुरु रामदस भी ब्रह्म को अपने निकट ही मानते हैं। 'ऐसा मेरा राम रहिआ भरपूरि। निकटि वसै नाही हरि दूरि।' (आ. ग्र. पृ. 165)। इसी निकटतम ज्योति में समाना अंतिम ध्येय है। ब्रह्म के स्वरूप एवं स्थिति का निरूपण जो महला 4 द्वारा हुआ है, वह वैदिक ब्रह्म ही स्वरूप है। इस विचार को गुरु रामदासजी ने कई स्थानों पर व्यक्त किया है। 'जोति जोति मिलाए काइआ गड़ सोहिआ राम' (आ. ग्र. पृ. 1114)। गुरु अर्जुनदेव जी कहते हैं : उस ब्रह्म की स्थिति सर्वत्र है। निरंकार का स्वरूप अचल, अडोल है तथा उसी के स्वरूप में ही सारी सृष्टि का निर्माण हुआ है। निखिल ब्रह्मांड उसी की ज्योति से प्रकाशित है। 'जोति जोति मिली सुखु पाइआ, जन नानक इकु पसारिआ जीउ।' (आ. ग्र. पृ. 97)। अतः वह ब्रह्म प्रत्येक घट में निवास करता है और सभी जीवन समान हैं। 'घट घट अंतिरि तू है वुठा। समे सांझीवाल सदाइन तू किसै न दिसहि बाहरा जीउ।' (आ. ग्र. पृ. 97)। गुरु तेगबहादुर उस ब्रह्म को निरंजन स्वरूप मानते हैं, वह प्रत्येक प्राणी के अंतरमन में निवास करता है, उसे अन्यत्र खोजने की आवश्यकता नहीं। 'काहे रे मन खोजन जाई सरब निवासी सदा अलेपा तोहि संग समाई। पुहम जिउबासु बसत है, मुकर माहि जैसे छाई। तैसे ही हरि बसै निरंतरि घट ही खोजहु भाई।' (आ. ग्र. पृ. 684)। यह है वाणीकारों का आदिग्रंथ में ब्रह्म का स्वरूप एवं स्थिति।

आदिग्रंथ में निर्गुण की सगुण स्थिति

ईश्वर अपने आप होने वाला स्वयंभूरसि है। आरम्भ में केवल ईश्वर ही था। यह जानकर कि वह ब्रह्म अशब्दं, अस्पर्शं, अरूपं, अव्ययं, अरसं, नित्यं, अगंधम्, अनादि अनंत तथा सर्वथा ध्रुव

(CONSTANT) है, मनुष्य मृत्यु से छूट सकता है। वह ब्रह्म, सत्यं, ज्ञानं, अनंत है। (सत्यं ज्ञान मनन्त ब्रह्म तैति. 2-1-1)। संसार का कर्ता वही ब्रह्म है, चर-अचर, अंडज, जारूज, स्वैदज, उद्रिभज तथा घोड़े, गाय, हाथी जो भी प्राणी हैं, जो पैरों से चलते हैं अथवा पैरों से उड़ते हैं और जो भी अचल वस्तुएं हैं, सबका प्रज्ञा-नेत्र (प्रज्ञान) द्वारा ही सृजन हुआ है। इनका आधार प्रज्ञान है। प्रज्ञान द्वारा सृष्टि की रचना हुई है। प्रज्ञान ही सर्वाधार और ब्रह्म ही प्रज्ञान है। "सर्व तत्प्रज्ञानेत्र प्रज्ञाने प्रतिष्ठतं प्रज्ञानेत्रों लोकः प्रज्ञां प्रतिष्ठा प्रज्ञान ब्रह्म।" (ऐतरेयोपोपनिषद् 3-5-3) वेद वाक्य है, मैं ईश्वर सबसे पूर्व विद्यमान सब जगत का पति हूं, मैं सनातन जगत्कारण और सब धनों का विजय करने वाला और दाता हूं। मुझे ही सब जीव, जैसे पिता को संतान पुकारती है, पुकारें। मैं सबको सुख देने वाला जगत् के लिए नाना प्रकार के भोजनों का विभाग पालन के लिए करता हूं। वह ईश्वर सारे जगत का प्रकाशक, अजर, अमर एवं जगत-उत्पत्ति का मूल कारण है, ऐश्वर्य को देने वाला है।

अहम्भुव वसुनः पूर्ण्यास्पितिरहं धनानि संजयामि शाश्वतः।
मां हवन्ते पितरां न जन्तवोहऽहं दशुर्षे विभाजामि भोजनम्॥
अहमिन्द्रौ प परा जिग्य इद्धं न मृत्यवे वतस्थे कदाचन।
सोममिन्मा सुन्वतो याचता वसु ने मे पूरवः सख्यै रिषाथना॥
॥4॥

(ऋग्वेद मंत्र 10 सूत्र 48, मंत्र 1-5)

ब्रह्म के तुल्य कोई नहीं और न उससे कोई अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनंत ज्ञान, अनंत बल और अनंत क्रिया है, वह स्वाभाविक शक्ति अर्थात् सहज समाधि उसी में ही पाई जाती है। 'न तस्यकाय्र्य करणं। च विद्यते न तत्ससमश्चाम्यधिकश्चदृश्यते। परास्य शक्ति विर्विधैव श्रुयते स्वाभाविकी ज्ञानवल क्रिया च। (श्वेताश्वतर अ. 6 म : 8) आगे चलकर श्वेताश्वतर 3-9 में फिर कहा गया है "परमेश्वर के हाथ नहीं परंतु अपने शक्ति रूपी हाथों से सबका रचन ग्रहण करता है। पग नहीं परंतु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान् है। चक्षु का गोलक नहीं परंतु सबको यथावत देखता है। श्रोता नहीं तथापि सबकी बात सुनता है। अंतःकरण नहीं परंतु सब जगत को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं। उसी को सनातन, सर्वश्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण होने से परमपुरुष कहते हैं।

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः से वत्ति।
वैद्यं न च तस्यस्ति वेता तमाहुर-ग्रयं पुरुषं महानतम।
(श्वेताश्वतर-3-19)

आदिग्रंथ पृष्ठ 464 में गुरु नानकदेवजी भी निर्गुण की सगुण स्थिति को विस्तार देते हुए कहते हैं, "उसके भय से पवन शत-शत वेगों से चलती है। उसी के भय से लाखों नदियां बहती हैं। उसी के भय से अग्नि बेगारें करती है। उसी के भय से धरती भारी बोझ को उठाए हुए है। उसी के भय से मेघ जल को धारण किए फिरते हैं। राजा धर्मराज भी उसी के भय के नीचे हैं। सूर्य और चंद्रमा भी उसी के भय में हैं तथा कोटि-कोटि कोस का मार्ग चलते हैं, आदि :-

भै विचि पवणुव है सदवाउ - भै विचि चलहि लख दरीआउ।
भै विचि अगनि कढै वेगारि - भै विचि धरती दबी भारि।
भै विचि इंद फिरै सिर मारि - भै विचि राजा धरम दुआरू।

समस्त संसार का चक्कर उसी के भय से चलता है। सबके सिर पर उसी के भय का लेख लिखा हुआ है। ऐ नानक ! निर्भय निरंकार, जो सत्य स्वरूप है, केवल एक ही है। जायसी गुरुनानक जी के सम-सामयिक थे। पद्मावत में इन्होंने लिखा है, वह परमात्मा जो सबका स्वामी है, सबका सृजन करने वाला है, उसी ने अपार समुद्र बनाया, जल के ऊपर धरती को टिकाया, जो सब भार का वहन करते हुए भी कुछ नहीं कहती, उसने ही इस आकाश को बिना किसी आश्रय के खड़ा किया है। चांद, सूर्य तथा नक्षत्रों की पंक्तियां दिन-रात उसी के डर से नीचे भागती हैं। पवन, पानी तथा धरती, सबकी पीठ पर उसी एक की चाबुक है। वह मूर्ख तथा अंध है, जो उसे छोड़कर किसी अन्य से लगाव रखता है। घट-घट में उसी की दृष्टि अथवा ज्योति है, परंतु हम अंधों को तो अपनी पीठ के पीछे भी दिखाई नहीं देता।

ए गोसाई तूं सिरजन हार। तूं सिरिजा यहु समुंद अपार।
तू जल ऊपर धरती राखें। जगत भार लै भार न भाखै।
तू यह गगन अंतरिक्ष थांमा। जहां न टेक न धूनी खांभा।
चांद सूरज और नखतन्ह पांती। तोरे डर धावे दिन राती।
पानी पवन अगिनि और मांटी। सब की पीठ तेरी है सांठी।

(पद्मावत, पद 40-7, पृ. 344)

कबीर जी कहते हैं, उस परमब्रह्म की सेवा में कोटि सूर्य चमकते हैं, कोटि कैलाश पर कोटि महादेव हैं। कोटि दुर्गाएं सेवा करती हैं, करोड़ों ब्रह्म वेदपाठ का उच्चारण करते हैं। उसके आगे करोड़ों चंद्रमा दीपकों की भांति प्रकाश करते हैं। तैंतीस करोड़ देवता भोजन करते हैं। नवग्रह के करोड़ों समूह जिसकी सभा में खड़े हैं। करोड़ों धर्मराज जिसके प्रतिहारी हैं। करोड़ों विद्याएं जिसके गुणों का गान कर रही हैं, फिर भी उस परब्रह्म का अंत नहीं पाती हैं। बावन करोड़ जिसकी रोमावली है। जिसने रावण की सेना को छला था। जिसका गुणगान सहस्र करोड़ भांति के पुराण कहते हैं। करोड़ों कामदेव जिसके अणुमात्र के समान हैं, जिसके ध्यानमात्र से हृदय बीच भावनाएं खो जाती हैं, उस सारंगपाणि (परमात्मा) से कबीर जी अभयदान की याचना करते हैं। (भैरउ कबीर आ. ग्र. पृ. 1162)। कबीर जी एक भगवान को मानकर उससे अभयप्रद की याचना करते हैं। इस विचारधारा ने संतमत की साधना-पद्धति को विशेष रूप से प्रभावित किया है। गीता में अर्जुन कहते हैं, "स्वयमेवात्मनात्मान वैत्थत्वं पुरुषोत्तम। भूत भावन भूतेश देव देव जगत्पते।" निस्संदेह आप अपने आपको स्वयं ही जानते हैं, ऐ

भगवद्‌गीता में यह भी बताया गया है कि ब्रह्म भी पूर्ण परमपुरुष के अधीन है। (ब्राह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्)। ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म की विशद व्याख्या सूर्य की किरणों के रूप में की गई है। निर्विशेष ब्रह्म भगवान् का प्रभामय किरणसमूह है। निर्विशेष ब्रह्म पूर्णब्रह्म की अपूर्ण अनुभूति है और इसी तरह परमात्मा की धारणा भी है। भगवान को सच्चिदानंद विग्रह कहा जाता है।

पुरुषोत्तम! सर्वभूतों के स्रष्टा, सब भूतों के देव, देवों के देव, आप जगतपति हैं। सिद्धों के शून्य को जगत स्वरूप मान चुके हैं और जगत का कारण तथा सर्वनियंता भी मान चुके हैं। गोरखवाणी पृ. 98 में स्पष्ट लिखा है, "ओंकार आछे बाबूमूले मंत्रधारा, ओंकार व्यपीले सकल संसारा। ओंकार नाभी हृदै देव गुर सोई, ओंकार साधे बिना सिधि षोडश या द्वादश कमलचक्र में निवास करता है। ओंकार ही देवता है ओंकार ही गुरु। ओंकार को साधे बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती। भगवान के इन गुणों का स्पष्टीकरण गीता में और भी अधिक सम्यक् रूप से हुआ है। श्रीकृष्ण कहते हैं, "सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन। अध्यात्मिविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥ (10-32) अर्थात् हे अर्जुन ! मैं समस्त सृष्टियों का आदि, मध्य और अंत हूं। मैं समस्त विद्याओं में अध्यात्मविद्या हूं और तर्कशास्त्रियों में मैं निर्णायक सत्य हूं। भगवान श्रीकृष्ण फिर कहते हैं, "यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन-न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्-10/39" अर्थात्, यही नहीं, हे अर्जुन! मैं समस्त सृष्टि का जनक बीज हूं। ऐसा चर तथा अचर कोई भी प्राणी नहीं है, जो मेरे बिना रह सके। तात्पर्य- प्रत्येक वस्तु का कारण होता है और इस सृष्टि का कारण या बीज श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण की शक्ति के बिना कुछ भी नहीं रह सकता, अतः उन्हें सर्वशक्तिमान कहा जाता है। उनकी शक्ति के बिना चर तथा अचर, किसी भी जीव का अस्तित्व नहीं रह सकता। जो कुछ कृष्ण की शक्ति पर आधारित नहीं है, वह माया है अर्थात् "वह जो नहीं है"।

कबीर का राजा राम निर्भय, तरन-तारन रामराये हैं। वह संकट में नहीं पड़ता, योनियों में नहीं आता, उसका नाम निरंजन है, वह परमात्मा सृष्टि का कर्ता है। प्रथम उसने ज्योतिस्वरूप अपने आपका सृजन किया है। तत्पश्चात प्रकृति से सब मनुष्य बने।

राजा राम त अैसा निरभउ तरन तारन राज राइआ"

(आ. ग्र. पृ. 72)

संकट नहीं परे जोनि नहीं आवै नाम निरंजन जाको रे
कबीर को सुआमी जैसा ठाकुर जा कै माइ न बापो रे॥

(आ. ग्र. पृ. 7)

"अबलि अलह नूर पाइआ, कुदरति के सभ बंदे
एक नूर ते सभ जगु उपजिआ कउन भले को मंदे॥

(आ. ग्र. पृ. 1349)

गुरु नानकदेव जी अकाल पुरुष के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं- "एउक ओं सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनि सभे गुरप्रसादि। (आ. ग्रं. पृ. 1) अर्थात् वह ओंकार एक रूप है, सत्यनामी है, कर्ता पुरुष है, निर्भय है, अकला मूर्त है। अयोनि है तथा स्वयंभूरसि होता हुआ गुरु कृपा द्वारा जाना जा सकता है। आदिग्रंथ में ब्रह्म की उस अवस्था को निर्गुण स्वरूप कहा गया है जिसमें वह शून्यावस्था में स्थित था तथा जिस अवस्था में उसके सगुण स्वरूप द्वारा किए गए समस्त सृष्टि-रचना के आकारों का विलय होगा। परंतु उपर्युक्त शक्तियों वाला सर्वशक्तिमान ब्रह्म निर्गुण से सगुण अवस्था में कार्य भी करता है।

सहस तव नैन न हैहि तोहि कउ-सहसमूरति नना एकु तोही।

सहस पद बिमलनन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही॥ (म-1, आ. ग्र. पृ. 13)

यह ब्रह्म उपनिषदों का अपरब्रह्म है। जो सगुण ब्रह्म है- "The Upanisads speak of Para Brahman and Apara Brahman. The former is higher Brahman. The later is lower Brahman. The former is indeterminate, unconditional and devoid of attributes (nirguna). The later is determinate, conditioned and endowed with attributes (saguna).

"The foundation of Hinduism"- Pp. 5

यही ब्रह्म नित्य स्वरूप एवं सत्य स्वरूप है और सृष्टि का रचयिता एवं सर्वशक्तिमान है।

सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाईं।
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिन रचाई।
रंगी रंगी भांती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई
करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिसदी वडिआई"-

(आ.ग्र. पृ. 9)

वह कीट को सम्राट एवं सेनाओं को भस्म कर सकता है।

"कीड़ा थाप देई पातसाही लसकर केर सुआह।-

(आ.ग्र. पृ. 144)

गुरु अर्जनदेव जी कहते हैं कि यह संसार उस सत्य स्वरूप की कोठरी है और वही उसमें निवासित है। गुरु अमरदास जी फरमाते हैं- वह परमात्मा अगम अगोचर है, उसका अंत किसी को भी नहीं मिला। उस ब्रह्म का वर्णन कोई क्या कर सकता है। अपना वर्णन स्वयं ब्रह्म ही कर सकता है। गुरु रामदास जी अपने गोविंद को सबसे बड़ा अगम अगोचर, आदि निरंजन तथा निरंकार

बताते हैं, उसकी गति अनिर्वचनीय है। उसकी बड़ाई असीम है। वह अलक्ष्य, अपार एवं अपरम्पार है। वह आनंदस्वरूप, अरूप, अरेख, अदृश्य, सदैव अविनाशी तथा गुणनिधान है। गुरु अर्जुनदेवी जी कहते हैं : मैंने हरिमोहन को सर्वोच्च देखा है। गुरु तेगबहादुर जी कहते हैं : ब्रह्म की गति को कोई नहीं जान सकता। तपस्वी, योगी तथा यति और बहुत से ज्ञानवान पुरुष हारकर थक गए हैं। गीता कहती है :

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(गीता 2/20)

अर्थात् : आत्मा के लिए किसी भी काल में न तो जन्म है न मृत्यु। वह न तो कभी जन्मा है, न जन्म लेता है और न जन्म लेगा। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर वह मारा नहीं जाता।

भगवद्गीता में यह भी बताया गया है कि ब्रह्म भी पूर्ण परमपुरुष के अधीन है। (ब्राह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्)। ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म की विशद व्याख्या सूर्य की किरणों के रूप में की गई है। निर्विशेष ब्रह्म भगवान् का प्रभामय किरणसमूह है। निर्विशेष ब्रह्म पूर्णब्रह्म की अपूर्ण अनुभूति है और इसी तरह परमात्मा की धारणा भी है। भगवान को सच्चिदानंद विग्रह कहा जाता है। ब्रह्मसंहिता का शुभारम्भ इस प्रकार से होता है- "ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानंद विग्रहः। अनादिरादि गोविंद-सर्वकारणकारणम्।" कृष्ण सभी कारणों के कारण हैं। वे ही आदि कारण हैं और सद्चित्त तथा आनंद के रूप हैं। आदिग्रंथ पृ. 657 में नामदेवजी कहते हैं, वह परमात्मा शरीर की कोठरी में है। वहां वह द्युतिमान है। वह अत्यंत निकट है, क्योंकि शरीरस्थ आत्मा उसी का रूप है। सब शरीरों में वही बोलता है, उसके बिना कोई कैसे बोल सकता है? वही सत्यस्वरूप विद्यमान् है। वही सर्वनियंता है।

"जोती जोती समानी-मैं गुर परसादी जानी रतन कमल कोठरी चमत्कार बीजुल तही-नेरे नाही दूरि निज आतमै रहिअ भरपूरि"

(आ. ग्र. पृ. 657)

"सभै घट राम बोलै, राम बिना को बोले रे" (आ. ग्र. पृ. 988)

"सभ महि सचा एको तिस का कीआ सभु कुछ होई"

(आ.ग्र. पृ. 1350)

इस प्रकार यह निष्कर्ष सामने आता है कि ब्रह्म के मूर्त या अमूर्त ये दो रूप हैं ब्रह्म अमूर्त है और परमात्मा मूर्त है। गीता तथा गुरुवाणी (आदिग्रंथ) के तत्त्वज्ञान साम्य है। विशेषकर भागवत की नवधा भक्ति के सभी स्वरूप आदिग्रंथ की साधना में घुले-मिले हैं और गुरमति साधना मार्ग ने उन्हें अपने अनुकूल ढंग से आत्मसात कर लिया है।

एन.आर.आई. एवेन्यू, सुखचैन रोड, फगवाड़ा (पंजाब)-144401,
मो. +91 98153 85535

कविता

नव वर्ष अभिनंदन

♦ **डॉ. आर. वासुदेव प्रशांत**

आओ, हम सब मिलकर करें नव वर्ष का अभिनंदन
और नए वर्ष में नए सूर्य का हृदय से करें वंदन

पूजा का थाल लेकर धूप, दीप और नैवेद्य सजाएं
स्वागत करने को नव वर्ष का तिलक करें और मंगीत-गीत गाएं

नूतन वर्ष दे रहा आज हमारे द्वार पर स्नेहशील दस्तक
और दर्शा रहा हमें स्वर्णिम भविष्य की सुंदर झलक

आओ, निज हृदय में व्याप्त अज्ञान-तिमिर को भगा दें कहीं दूर
औ' ज्ञान-ज्योति को जगाकर फैला दें सर्वत्र प्रकाश का नूर

लोक को संत्रस्त कर रही बुभुक्षा-राक्षसी का करें संहार
अकिंचन को दें हम प्रेम औ' अपनेपन का मधुमय उपहार

उठो, नव वर्ष की मंगलवेला में निज दुष्कर्म-विषधरों पर करें प्रहार
भ्रष्टाचार औ' घूसखोरी सरीखे दानवों का करें हम समूल संहार

आओ, भेद भुलाकर हर मानव के लिए हृदय में स्नेह भरें
हर प्राणी का संताप हर कर जन-कल्याण का मंगल-उद्घोष करें

आओ, सब प्रसन्नवदन से नव वर्ष के लिए खोलें स्वागत द्वार
और बनाएं अपने नव-जीवन को सद्वृत्तियों का आधार।

जवाहर नगर, धर्मशाला, जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-176 213, मो. 98171 87125

लेख

सत्कर्मों का संचय

● डॉ. पीयूष गुलेरी

संसार की रचना बड़ी विचित्र है। उस रचनाकार ने संसार की निर्मिति का एक ऐसा अटूट क्रम बनाया है कि प्रत्येक जीव और वस्तु का सिलसिला बराबर चला आ रहा है। वह परम रचनाकार ऐसा अद्‌भुत विधाता है कि विश्व के सभी जड़-जंगम पदार्थो और समस्त प्राणियों के आवागमन का चक्कर नियमित रूप से चला आ रहा है। जिसने जन्म लिया उसका मरण सुनिश्चित है। भले ही कोई कितना बड़ा साधु, संत, महात्मा, योगी, फ़क़ीर, मर्मज्ञ, ज्ञानवान, विवेकशील, पंडित परमभक्त ही क्यों न हो, मृत्यु को कोई भी टालने में समर्थ नहीं। इस चक्की में सभी को पिस जाना होता है।

महात्मा कबीर ने कहा है :

"चलती चाकी देख के, दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के भीत में, साबुत बचा न कोय ।।"

संत कबीर ने प्रतीकार्थ में जन्म-मृत्यु की सतता और शाश वता को ही एक प्रकार से रेखांकित किया है। संसार के भंवर में जो आया उसे डूब कर ही उतराना होगा। डूबना फिर उतराना, उतराना और फिर डूबना, यही अविरल है। इस क्रम से न कोई जीव बचा न प्राणी। न सिद्ध योगी और न ही अध्यात्मवादी परमवेत्ता। यहां तक कि जब स्वयं भगवान को भी अवतार लेकर संसार में आना पड़ा तो वे भी इस पंचमहाभूत शरीर का परित्याग कर के ही गये। कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में किसी प्राणी की कितनी ही प्रबल जीवनेच्छा क्यों न हो, मृत्यु से बचना दुष्कर है।

वास्तव में जीवन का प्रवाह अनंत है। हम कई जन्म जन्मांतरों से जन्म ले रहे हैं और अनेक शरीर त्याग कर अपने संचित कर्मों के अनुसार पुनः शरीर धारण कर जन्मते-मरते रहते हैं। भारतीय चिंतन-धारा के अनुसार ऐसा माना जाता है कि पंच महाभौतिक शरीर के अंत के पश्चात् भी सूक्ष्म शरीर की सत्ता बराबर बनी रहती है। सत्य यही है जीवन की सत्ता मरणोपरांत भी बनी रहती है। यही कारण है कि अनेक बार मृत्यु के पश्चात् कई प्राणी अपने अंतकाल की स्थिति के अनुसार प्रताड़ित, दुखी, अतृप्त और व्यग्र-आत्माओं के रूप में भूत अथवा प्रेत की स्थिति में घूमते रहते हैं, भ्रमित होते रहते हैं, प्रताड़ित महसूस करते हैं और कई बार तो ऐसी आत्माएं सांसारिक प्राणियों को भयाक्रांत अथवा भयभीत करती भी देखी गई हैं। मरणोपरांत जीव के अपने-अपने सत् अथवा असत् कर्मों के अनुसार उसे भूत-प्रेत योनि में समय बिताना पड़ता है और सूक्ष्म शरीर समेत आत्मा की गतिविधियों का क्रिया-कलाप जारी रहता है। भारतीय चिंतनधारा और लोकविश्वास के अनुसार भी मरणोपरांत अंगुष्ठ-मात्र सूक्ष्म शरीर की सत्ता विद्यमान रहती है और वही भूत, प्रेत योनियों के दुःख, संताप, कष्ट अथवा प्रताड़नाओं को भोगती है। आर्ष मान्यता है कि मृत्यु के उपरांत सूक्ष्म शरीर की सत्ता विद्यमान रहती है और उसे ही स्वर्ग-नरक में जाना पड़ता है।

संसार में अनेक बार मरणोपरांत पुनः जीवित होने वाले प्राणी अपने मरणोत्तर जीवनावधि की बड़ी विचित्र कथाएं-कहानियां सुनाते हैं। पूर्व जन्म की स्मृति के किस्से भी कम प्रचलित नहीं हैं। कुछ भी हो, जैसा कि हम कह आए है आर्ष मान्यता के अनुसार मरणोपरांत भी सूक्ष्म शरीर की सत्ता तब तक विद्यमान रहती है जब तक नया जन्म नहीं हो जाता। नया जन्म लेने में भी इस सूक्ष्मजीव की स्तर-प्रधान भूमिका का निर्वाह रहता है। नया जन्म कब, कैसे, किस कारण, किस प्रकार मिलेगा तथा किस प्रकार का शरीर धारण करना पड़ता है, यह सब हमारे संचित कर्मों पर निर्भर करता है। महात्मा तुलसी दास ने भी कर्म प्रधानता को स्वीकार करते हुए कहा हैं- "कर्म प्रधान विस्व रचि राखा जो जस करहिं सो तस फल चाखा।" कहने का अभिप्राय है कि प्रत्येक जन्म और मरण के मध्य, जो भी सत् अथवा असत् कर्म हम करते हैं उसका संचित भाग = पक्का हिस्सा, मृत्यु के पश्चात् हमारे सूक्ष्म शरीर के साथ टंकित रहता है और उस सूक्ष्म शरीर के आधार पर आत्मा की गतिविधियों का क्रिया कलाप जारी रहता है।

उपर्युक्त आत्मा के क्रिया कलापों सम्बन्धी एक लोककथा बड़ी मनोरंजक है। हमारे गांव गुलेर के अंतिम राजा बलदेव सिंह (सन् 1962 ई. परलोक वास) बड़े धार्मिक और प्रजोपकारक शासक थे। वे सनातनी विचारों के पक्षधर और पोषक थे। उनके राजकाज का तौर-तरीका भी बड़ा उत्तम था और उनकी सद्‌वृत्तियों एवं

सद्कर्मों के किस्से दूर-दूर तक फैले हुए थे। घर-परिवार, सामाजिक उत्सवों एवं चौपालों में हमारे बुज़ुर्ग, राजा साहेब के गुणगाण करते हुए बड़ी रोचक कहानियां सुनाया करते। एक बार हम खाना खा रहे थे तो हमारे घर आए महमानों के साथ राजा साहेब की आध्यात्मिक विशेषताओं और उच्च्य स्थिति पर बातचीत शुरू हो गई। बात-बात में मेरे पिता श्री कीर्तिधर शर्मा ने रियासत के एक ऐसे व्यक्ति का ज़िक्र किया, जो 'पुआर' (परलोक) गमन कर आया था। वह जितना समय परलोक में रहा, उतनी कालावधि की कथाएं सुनाता था।

परलोक में उसने राजा बलदेव सिंह के इस जन्म की कहानी सुनाई तो हम सब दंग रह गए। बचपन में इस प्रकार की कुतुहल भरी कहानियां वैसे भी बड़ी मनोरंजक और मनोहारी लगती हैं, यह तो सत्यकथा थी, जो आज तक मेरे ज़हन में है। सन् 1962 ईसवीं तक राजा बलदेव सिंह जी के जीवन काल तक, हमारी उनके प्रति यह कथा टंकित रहकर सदैव श्रद्धा का भाव जगाती रही और अबतक वैसा ही प्रभाव है तथा ताज़ा स्मृति मानस पटल पर अंकित है। परलोक जाने वाले व्यक्ति ने सुनाया था, कि जब वह कुछ समय के लिए मर गया, तो उसके शरीर से एक सूक्ष्म शरीर आगे-आगे परलोक के लिए निकल गया। रास्ते में उसे, कभी जल्दी-जल्दी, तो कभी आराम से धर्मराज के दूत लिए जा रहे थे। जाते-जाते जब वह एक यौगिक क्षेत्र से निकला तो देखता है कि चार धूने हैं। तीन धूनों पर तीन महात्मा अपनी धार्मिक गतिविधियों में व्यस्त थे लेकिन चौथा धूना खाली था। वहां धूप-अग्रु की सुगंधि व्याप्त थी किन्तु महात्मा की गद्दी खाली थी। सूक्ष्म शरीर वाले मृतक व्यक्ति ने उत्सुकतावश पूछ ही लिया, कि इस धूने का साधु कहां है ? वही परलोकगमनचारी व्यक्ति बाद में बताता था कि उसे उत्तर मिला, कि उस धूने का साधु गुलेर रियासत का राजा बलदेव सिंह नाम से राज कर रहा है। अपने सत्कर्मों के कारण पूर्व की अतृप्त कामनाओं के वशीभूत उसे पुनः जन्म लेना पड़ा और अपने संचित शुभ कर्मों के कारण वह राजसी भोग भोग रहा है। जब उसका इस जन्म का यह कर्मभोग समाप्त हो जाएगा तो वह पुनः अपने इसी धूने पर आकर तपस्यारत हो जाएगा। उसे बताया गया कि वह भूलोक में जाकर राजा के कानों में मुद्राओं और कुक्षों में वैरागन (भौड़ियों) के चिन्हों से उस साधु की पहचान कर सकता है। बाद में जब उस व्यक्ति को ग़लत पहचान के कारण समय से पूर्व ही परलोक में ले आने की ग़लती का आभास दूतों को मिला तो वे दूत उसे सरपट दौड़ाते हुए वापस मृत्यु-लोक तुरन्त छोड़ गए। उस सूक्ष्म शरीर वाली आत्मा का उसके मृत शरीर में प्रवेश होते ही वह पुनः जीवित हो गया। पुनर्प्राण पाया उसे जीवित देखकर उसके सगे-सम्बन्धी बहुत प्रसन्न हुए थे। सारे गांव और दूरवर्ती इलाके तक यह खबर फैल गई कि अमुक व्यक्ति 'पुआर' (परलोक) जा आया है। पिता जी ने हमें बताया था कि बाद में जब वह व्यक्ति बिल्कुल स्वस्थ हो गया तो अपने इष्ट-मित्रों सहित वह राजा बलदेव सिंह के दर्शन करने गुलेर रियासत में आया था। कहते हैं कि जब भरे दरबार में उसने दर्शन करके और परलोक में बताए गए शरीर चिन्हों की पहचान की पुष्टि की तो सारे लोग गदगद हो उठे। अस्तु, मृत्यु के पश्चात भूत-प्रेत योनियों का मिलना, उनमें कितने समय तक निवास करना, फिर अगले लोक में जाना अपने संचित कर्मों के अनुसार फल भोगना और फिर जन्म लेने तक सूक्ष्म शरीर की गतिविधियों और आत्मा के क्रियाकलापों का अस्तित्व बना रहता है। प्राणी के संचित कर्मों का लेखा-जोखा कौन और कैसे रखता है इसका स्पष्ट और स्थूल प्रमाण तो नहीं दिया जा सकता, लेकिन तात्त्विक और लोक-दृष्टि से ऐसा विश्वस्त रूप से माना जाता है कि कर्मों का यह लेखा-जोखा किसी अदृश्य सत्ता द्वारा बिना किसी चूक के रखा अवश्य जाता है। सभी योनियों में से मनुष्य योनि को कदाचित् इसलिए श्रेष्ठ माना जाता है कि इस योनि में हमें सत् और असत् कर्मों का न केवल ज्ञान ही होता है प्रत्युत् हम सायास अभ्यास और प्रयत्न से अपने कर्मों को निरंतर उत्तरोत्तर सुधारते भी रह सकते हैं। यह सत्य है कि, 'होगा वही जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावे साखा।' किन्तु मनुष्य में बुद्धि, ज्ञान, विवेक, उत्सुकता, अनुकरण, ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतर उठने की इच्छा आदि गुण भी भरे पड़े हैं, इसलिए वह भगवत् कृपा और गुरु के मार्गदर्शन से स्वयं में सत्कर्मों का संचय करने में समर्थ है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संचय अथवा संग्रह करना प्रायः सभी प्राणियों की जन्मजात प्रवृत्ति है। मनुष्य इस संचय प्रवृत्ति को सायास स्वयं में लाकर न केवल समाज का उत्थान कर सकता है प्रत्युत् अपने इस जन्म का समुचित लाभ उठाकर अपने सत्कर्मों के संचय द्वारा अपने आगामी जीवन को शांत, सुखी और परोपकारी स्थिति का बनाने में सफल भी हो सकता है। जीवन और मरण का मध्यवर्ती समय ही ऐसा शुभ अवसर है जब प्राणी मन, वचन और कर्मों द्वारा सत्कर्मों का संचय कर सकता

संत कबीर ने प्रतीकार्थ में जन्म-मृत्यु की सतता और शाश्वता को ही एक प्रकार से रेखांकित किया है। संसार के भंवर में जो आया उसे डूब कर ही उतराना होगा। डूबना फिर उतराना, उतराना और फिर डूबना, यही अविरल है। इस क्रम से न कोई जीव बचा न प्राणी। न सिद्ध योगी और न ही अध्यात्मवादी परमवेत्ता। यहां तक कि जब स्वयं भगवान को भी अवतार लेकर संसार में आना पड़ा तो वे भी इस पंचमहाभूत शरीर का परित्याग कर के ही गये।

है। कहा यह गया है कि संत, महात्मा, योगी और तत्त्वदर्शन के ज्ञाता महानुभाव जीवन के वास्तविक अर्थ को समझकर समय रहते पूर्ण जीवन सत्कर्मों में संलग्न रहते हैं। वे परोपकारी कार्यों में निरत रहते हैं और शुभ कर्मों के सतत अभ्यास द्वारा न केवल उनका संचयन ही करते देखे गए हैं प्रत्युत् आगामी जन्म की उत्तम तैयारी में सन्नद्ध भी रहते हैं। कथन है कि "करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान ! रसरी आवत जात ते सिल पर पड़त निसान !!" वास्तविकता यह है कि जीवन-काल में हमारी इंद्रियां सांसारिक भोग लिप्साओं में इतनी मस्त और व्यस्त हो जाती हैं कि हम अपने आगामी जन्म के प्रति एकदम अनजान बन जाते हैं। लौकिक-जीवन की चकाचौंधिया सत्ता इतनी हावी हो जाती है कि उसे ही सर्वस्व मानकर आध्यात्मिक बल का संचयन करना भूल जाते हैं, जो हमारे जन्म-जन्मान्तरों के सद्कर्मों का संचित भंडार है। तत्त्वदर्शी मानते हैं कि इसी संचित भंडार के बल पर-प्राणी को आगामी जन्म में विश्वप्रणेता परमेश्वर यथोचित् योनि प्रदान करता है।

कहना अत्युक्ति न होगा कि मनुष्य-जीवन में प्राणी को सदैव उस जगनन्नियंता के स्मरण का स्वभाव और जीवन पर्यन्त सत्कर्मों के संचय में अभ्यास-निरत रहना चाहिए। मरणोत्तर जीवन शांत, सुखी, परोपकारी और हितकारी स्थिति का रहे, इसके लिए इसी जन्म में तैयारी करनी आवश्यक है। वास्तव में मरण के समय में प्राणी की जैसी मनःस्थिति होगी वैसी ही स्थिति के अनुरूप भूत-प्रेत आदि योनियों में कर्म भोगने की बात कही गई है। विक्षुब्ध मनःस्थिति को लेकर मरने वाले अक्सर भूत-प्रेत योनियों में घूमते हैं और अपने जीवनकाल के स्वभाव के अनुसार मरणोत्तर काल में भी सांसारिक प्राणियों एवं यहां तक कि अपने सगे-सम्बन्धियों को भी प्रताड़ित करते हैं। अपने संचित कर्मों के अनुसार ही जीव को गोलोक, पितृलोक, स्वर्गलोक तथा नरकलोक में रहकर कर्मभोग भोगने पड़ते हैं, जिनसे छुटकारा पाने के लिए साधु, संत और महात्मा लोग आवागमन के चक्कर से छूटने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। लोक-चिंतन में भी इसीलिए लोक-कल्याण, सद्भावनाओं और सत्कर्मों के अभ्यास द्वारा जीवनकाल में ऐसे संस्कारों का निरंतर संचय करते रहने पर बल दिया गया है जिससे वैसी ही सद्भावनाएं मृत्यु के समय बनें अथवा बनी रहें। कहा भी गया है 'अंत मतः सो गतः' अर्थात् अंतिम समय में प्राणी की जैसी मति होती है अगले जन्म में वैसी ही योनियों में जाना पड़ता है और उसी मनःस्थिति के अनुसार सूक्ष्म शरीर को वैसे भोग भोगने पड़ते हैं। इसीलिए भारतीय संस्कृति में सदैव अनासक्त जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है, कि आगामी जन्म में भूत, प्रेत, पितर आदि योनियों में यातनाएं न भोगनी पड़ें।

अपने जीवन काल के अच्छे-बुरे स्वभाव के अनुसार ही अच्छे-बुरे नाना प्रकार के भूत-प्रेत हुआ करते हैं। सच्चरित्र, निरीह व्यक्ति मोहादि के कारण प्रेत योनि प्राप्त करके भी किसी का अनिष्ट अथवा हानि नहीं करते किंतु जो जीव, जीवनकाल में दुष्ट प्रवृत्ति के होते हैं वे मृत्यु के उपरांत भी भूत अथवा प्रेत योनि में जाकर अपनी दुष्टता से बाज नहीं आते। इसी श्रेणी के भूत अथवा प्रेत मनुष्य को भयभीत करते हैं, अत्याचारी होते हैं, दूसरों पर आक्रमण करते हैं परन्तु उनके ये उपद्रव अथवा अत्याचार सद्प्रवृत्ति, ईश्वरभक्त, साधु, संत, सज्जनों तथा दृढ़ इच्छाशक्ति एवं मनोबल वाले प्राणियों को कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते।

मरण के समय विक्षुब्ध मनःस्थिति से शरीर त्यागने वालों को विक्षुब्धता, अशांति, बेचेनी, प्रताड़ना तथा ईश्वरभक्त एवं अनासक्त प्राणियों को आगामी जन्म एवं योनियों में शांति, संतोष एवं चैन मिलती है। सद्भावों से सम्पन्न आत्मा मरणोत्तर जीवन में किसी भी योनि में जाकर हानि एवं सुरक्षा का उद्देश्य लेकर सांसारिक वस्तुओं एवं जीवों को सहायता देती रहती है और प्रियजनों की सुरक्षा के लिए अपने उस अस्तित्व का परिचय देने में समर्थ होती है। पितृवत् स्नेह, दुलार और सहयोग देना उनका कार्य, स्वभाव और उद्देश्य होता है।

शास्त्र एवं लोक में कदाचित् इसीलिए प्राणी को अंतिम समय में प्रभुस्मरण और सद्भावना-सम्पन्न, अनासक्त मनःस्थिति बनाए रखने का अभ्यास करते रहने का परामर्श दिया गया है। प्रकारांतर से इसे ही मरणोत्तर जीवन की तैयारी भी कहा गया है। आगामी जन्म में दुर्दशा से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय ऐसी जीवन-दृष्टि, जीवन-पद्धति, आचरण एवं अभ्यास को विकसित करना है जो वासनाओं एवं आकांक्षाओं से दूर मानसिक निर्लिप्तता को दृढ़ करे।

तत्त्वदर्शियों ने मृत्यु के भय से बचने का एक सीधा एवं सरल उपाय बताया है सत्कर्मों का संचय। शास्त्रोक्त एवं लोकोक्त निर्धारित कर्त्तव्यों का समुचित ढंग से पालन करना ही सुकृत्य माना गया है। किसी को दुख न देकर यथासंभव सुख देते रहना, संसार के सभी सत्कर्मों का मूलाधार है। लोकोक्त कर्मो में, सांसारिक कर्त्तव्यों के पालन तथा माता-पिता, आचार्य, अभ्यागत और समाज-सेवा पर बड़ा बल दिया गया है। अतिथि सत्कार एवं भूखे को भोजन कराना पुण्य कार्य माना जाता है। पशु-पक्षी एवं समस्त प्राणियों के प्रति आत्मवत् भाव बनाए रखने की प्रवृत्ति को दृढ़ से दृढ़तर करने के अभ्यास को श्रेष्ठ मनुष्यों का पर्याय समझा जाता है। मन एवं इन्द्रियों द्वारा हिंसा से सदैव बचना चाहिए। प्रेम-भाव, दया, दान, परोपकार एवं धार्मिक-अनुष्ठान में प्रवृत्त रहने से आत्मा का कल्याण होता है। सुपात्र को दान देना पुण्य कार्य है। दीन-हीन एवं आशक्तों की तन, मन, धन से सहायता करना तथा दूसरों को सद्कार्यों के लिए प्रवृत्त-प्रेरित करते रहना सतत् फलदायक है।

एतत् संबंधी लोकजीवन की लोकोक्ति बड़ी मनोरम और सटीक है, जिससे विदित होता है कि अनपढ़ कहे जाने वाले भी, कितनी समझदारी और लोकोपयोगी प्रेरणाएं दे जाते हैं, जो पीढ़ियों तक मार्ग दिखाने में सक्षम हैं। सत्कर्मों का समय रहते संचय करने

संबंधी कहावतें 'जेहड़ा जोड़ गया वो छोड़ गया, जेहड़ा दे गया सो ले गया।' अर्थात् संसार की वस्तुओं-धन सम्पत्ति आदि का संग्रह किया हुआ, मृत्यु के उपरांत इसी संसार में रह जाता है। बड़े-बड़े तपस्वी और ऋषि-मुनि भी इस पंचभौतिक शरीर को त्यागने के पश्चात् मृत्युलोक का धनवैभव अथवा चल-अचल सम्पत्ति को अपने साथ किसी भी प्रकार परलोक ले जाने में समर्थ नहीं हुए। इसीलिए लोक मुहावरे में प्रतीकार्थ और हास्य-व्यंग्य वाणी में कह दिया गया "जेहड़ा जोड़ गया सो छोड़ गया" अर्थात् सांसारिक लोक-संग्रह, मरणोपरांत इसी नश्वर संसार में छोड़ जाना पड़ता है। जो लोग इस भौतिक संसार के माया-जाल में उलझ कर रह जाते हैं और जीवन के वास्तविक अर्थ को नहीं समझते वे 'लोक संग्रह' में ही फंसे रहते हैं। किन्तु लोक मुहावरे के ही दूसरे चरण में जीवन का तत्त्व समझाते हुए संकेत-संकेत में व्यक्ति के उस करणीय धर्म को रेखांकित कर दिया गया है जो वह मरणोपरांत अपने सूक्ष्म-शरीर के साथ ले जाता है और मरणोत्तर कर्मानुसार सद्-असद् योनियों में सुख-दुखमय भोग भोगता है। जीवन-काल में किए गए सत्कर्म मरणोत्तर-काल में समय-समय पर प्राप्त योनियों में प्राणियों को सुख, संतोष, आनंद और शांति प्रदान करते हैं जबकि असद्कर्मों के कारण अंतिम समय में विक्षोभ और अशांति में मरने वाले प्राणी आगामी जन्म में स्वयं विक्षुब्ध-प्रताड़ित रहते हैं तथा समय-समय पर सांसारिक प्राणियों को भी प्रताड़ित और भयभीत करते रहते हैं। लोक-समाज में इस प्रकार मुहावरे के दूसरे चरण में- "जेहड़ा दे गया, सो ले गया" में प्रतीकार्थ द्वारा जीवनकाल में करणीय गुह्यभाव को समझा दिया गया है कि जो प्राणी अपने जीवनकाल में अपने परिश्रम से कमाए धन-वैभव का दरिद्र, आशक्त और दुखी प्राणियों को दान आदि देते रहने का सद्कर्म करते रहते हैं वे वास्तव में अपने जीवनकाल में सत्कर्म का संचय कर लेते हैं, जिसे वे संचित-कर्मों के फलस्वरूप अगली योनियों में सुख-पूर्वक भोगते हैं। यही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए क्योंकि यह मरणोपरांत के जीवन की असल तैयारी है।

लोकमत में दरिद्र को नारायण स्वरूप मानते हुए 'दरिद्र नारायण' कहा जाता है। संत कवियों ने तो समस्त प्राणियों में प्रभु की संकल्पना करते हुए कहा है कि हमें सभी लोगों से प्रेमपूर्वक मिलना चाहिए क्योंकि न जाने किस वेश में स्वयं प्रभु मिल जाए। सभी धर्मों में प्रेम को इसीलिए सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। अपने माता-पिता, गुरु, बुजुर्गों, समाज और प्राणीमात्र की उपेक्षा करके किसी पारलौकिक ब्रह्म की उपासना में कल्याण मानने वाले लोग स्वयं ही को धोखे में रखते हैं। जो लोग बाहिर से प्रेमी किन्तु भीतर से निःसंग होने के अभ्यास में पारंगत होते हैं, वास्तव में वे जीवन के उच्चतम शिखरों की ओर अग्रसर समझे जाने चाहिएं।

लोकचिन्तन में वट, पीपल, आम, आंवला आदि सभी प्रकार के वृक्षों का वपन, मंदिर-निर्माण, यात्रियों की सुविधा के लिए सराय बनवाना आदि 'अक्षय फल' दाता हैं। यही कारण है कि लोक-समाज में इन कार्यों को धर्म के साथ जोड़कर देखे जाने की परम्परा रही है। वास्तव में ये सभी लाभदायक तो हैं ही, प्रत्युत् सभी लोगों को सत्कार्य करते रहने की प्रेरणा भी देते हैं। अस्तु, जब तक समाज है, ऐसे लोकोपकारी कार्यों का अक्षय फल मिलते रहना स्वाभाविक ही है। शायद इसीलिए अनासक्त कर्मयोग के तत्त्वज्ञान को समझकर इसे जीवन पद्धति बना लेने को मृत्यु से निर्भय रहकर आगामी जन्म की उत्तम तैयारी माना गया है। वास-प्रवास में प्रभु-स्मरण, लोक-कल्याण का भाव और अन्तःकरण से अनासक्त कर्मयोग का अभ्यास मनुष्य को उच्चतर शिखरों पर आरूढ़ करने में समर्थ होता है। संसार में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि संत एवं भक्त अपनी मृत्यु के अंतिम क्षणों में परमात्मा के स्मरण द्वारा परम पद के अधिकारी हो गए। पूरी उम्र अनासक्त योगी के रूप में बिताने पर भी अंतिम क्षणों में हिरण शावक के मोहपाश में फंस कर 'जड़ भरत' को आगामी जन्म में हिरण की योनि में आना पड़ा था। कहा भी गया है कि 'बार-बार मुनि जतन कराहिं। अंत राम मुख आवत नाहिं।' महापुरुषों का मानना है कि जीवन में अविरल प्रभुस्मरण किये बिना अंतिम बेला में ईश्वर को याद कर लेना सरल कार्य नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस बात को हमने जीवन पर्यन्त अधिकाधिक अनुभव किया है, वही हमें अंत समय भी याद रहेगी। अंत समय में भी प्राणी के भीतर वही संस्कार एवं आकांक्षाएं प्रबल एवं तीव्र होकर उभरती हैं। मृत्यु के समय भी निरायास वही संस्कार सहज असहज प्रकट हो लेते हैं। आधुनिक-काल में महात्मा गांधी के मुख से अंतिम समय में 'हे राम' निकलना उनके पूरे जीवन के सुसंस्कारी अभ्यास का फल ही कहा जाएगा।

अतः यह बात निश्चित है कि मृत्यु के अंतिम क्षणों में उभरी भावनाएं ही मरणोत्तर काल में सक्रिय रहती हैं। इसलिए हमें जीवनपर्यन्त सत्कर्मों का संचय करने के अभ्यास में लगे रहना चाहिए। मृत्यु के समय हमारे इस पंच महाभौतिक शरीर का तो अंत हो जाता है किंतु सूक्ष्म शरीर की सत्ता फिर भी बनी रहती है।

विवेकशील लोगों की मान्यता है कि सूक्ष्म शरीर के साथ हमारी योग्यताएं, क्षमताएं, आदतें, धारणाएं आदि साथ जाती हैं और जीवधारी स्वर्ग, नरक आदि अन्य लोकों का सुखद अथवा दुखद अनुभव करता है। यह एक सनातन सत्य है कि शुभकर्मों का संचय, श्रेष्ठ परिणाम लाता है जबकि अशुभ-कर्म दुष्परिणाम का कारण बनते हैं। इसलिए कल्याण इसी में है कि शुभ कर्मों एवं सद्प्रयत्नों को अनवरत अंतिम सांस तक जारी रखा जाए जिससे संचित सत्कर्मों के बल के फलस्वरूप अगले जन्म में भी सुसंस्कारिता साथ रहे।

'अपर्णा श्री', एच-71, हाऊसिंग कॉलोनी,
धर्मशाला (हि.प्र.) 176215

लेख

प्राचीन सिरमौरी इतिहास में भूरेश्वर महादेव

● डॉ. मनोज शर्मा

किसी भी देश के प्राचीन रूप को लोक साहित्य में देखा जा सकता है। किसी स्थान विशेष की लोग गाथाओं, लोक कथाओं तथा लोक गीतों में वहां के अतीत का यथार्थ गौरव छिपा रहता है, जो वहां के निवासियों को न केवल पूर्वजों की शूरवीरता आदि को याद करके वर्तमान में अपने अन्दर भी वही भाव जागृत करने को उत्साहित करते रहते हैं बल्कि भविष्य के लिए भी पथप्रदर्शक का कार्य करते रहते हैं। इन्हीं गीतों के माध्यम से हम समय-समय पर वहां के ऐतिहासिक शूरवीरों को याद करते रहते हैं। इस प्रकार प्राचीन समय में सिरमौर के निवासी सुखपूर्वक रहते थे, यहां कौन-कौन से पौराणिक तथा ऐतिहासिक महापुरुष आते रहे तथा उन्होंने कहां निवास किया इस विषय में प्राचीन गाथाएं तथा कथाएं पर्याप्त प्रकाश डालती हैं जो आज भी प्रचलित हैं तथा जिन्हें बड़े-बूढ़े आज भी गीतों के माध्यम से सुनते रहते हैं।

प्राचीन सिरमौर की सीमाएं कहां तक फैली हुई थी, यहां के राजाओं ने किन-किन भू-भागों पर आक्रमण किया और अपने अधीन किया तथा कौन-कौन से युद्ध जीते अथवा हारे इन सब बातों का यहां के लोग गीतों तथा लोक कथाओं में वर्णन मिलता है। सिरमौर के अन्तिम राजवंश की नीव कैसे पड़ी, किस प्रकार एक बेडिन (नटनी) के शाप से सिरमौर की पुरानी राजधानी सिरमौरी ताल ध्वस्त हुआ, जो उस समय एक बड़ा वैभवशाली नगर तथा जो अब अवशेष मात्र रहा है, इसके बारे में भी एक प्रसिद्ध लोककथा है, जो लगभग यहां के सभी वयोवृद्ध निवासी जानते हैं। जिस समय सिरमौर का अन्तिम राजवंश का आरम्भ हुआ सिरमौर की राजधानी गिरी नदी के दाएं किनारे पर इसके युमना नदी में मिलने के स्थान से 10-12 किलोमीटर उत्तर पश्चिम की ओर सिरमौरी ताल था तथा यहां किसी प्रकार के अन्न तथा धन की कमी नहीं थी। यह राजधानी टोका तथा योका नाम की दो पहाड़ियों के बीच में स्थित थी। इसकी ख्याति काफी दूर-दूर तक फैली हुई थी। किंवदन्ति है कि इसकी प्रसिद्धी सुनकर राजस्थान का नट अथवा बाजीगर अपनी स्त्री सहित राजधानी में आया और उसने राजा के सम्मुख अपने करतब दिखाने की प्रार्थना की, जो राजा ने स्वीकार किया। उसने राजा को कई करतब दिखा कर मुग्ध कर लिया तथा अन्त में प्रार्थना की कि यदि उसकी पत्नी टोका और योका के बीच में एक रस्सी अथवा सूतली पर चल कर वार-पार कर जाए, तो राजा उसे क्या इनाम देगा। राजा को यह कार्य बिलकुल असम्भव प्रतीत हुआ। वास्तव में यह कार्य था ही असम्भव। अतः राजा ने तुरन्त कह दिया कि यदि वह ऐसा कर दे तो राजा उसे चलता राज्य अर्थात् राज्य की आय-व्यय का समस्त कार्य भार सौंप देगा और स्वयं नाम मात्र का राज्य करेगा। नट तो वैसे भी तमाशा दिखाने के लिए उतारू था। अतः वह अति प्रसन्न हो गया । नटनी जब रस्सी पर पार जाकर वापिस लौट रही थी तो समस्त प्रजा इस बात से भयभीत हो गई कि नटनी यथार्थ में ही राज्य की मालकिन न बन जाए, जिससे वह इस कार्य में सफल न हो सके इसलिए रस्सी को काट दिया गया। रस्सी के कटते ही नटनी गिरी नदी में गिर पड़ी। परन्तु गिरते-गिरते उसने नगर को ध्वंस होने का श्राप दे दिया और उसी रात्रि को भूचाल आया और सारा नगर भूमि में समाप्त हो गया। केवल नट ही जीवित बचा और जिसके मन में उक्त घटना के घटने से बड़ा पश्चाताप और ग्लानि हुई। उस राज्य का कार्यभार पुनः सुचारू रूप से चलाने के लिए किसी योग्य व्यक्ति की खोज का प्रयत्न करने के लिए उद्यत हुआ। इस कार्य के लिए वह पुनः राजस्थान की ओर चल पड़ा और वहां जल समेर के राजा के दरबार में उपस्थित हुआ ! उसने राजा को सारी घटना सुनाकर और अन्य अद्भुत कार्य दिखाकर राजा से उसकी गर्भवती रानी को उसके साथ सिरमौर जाने के लिए मना लिया क्योंकि उस समय वहां के राजा की दो रानियां थी जो दोनों गर्भवती थी। नट चाहता था कि वही रानी उसके साथ सिरमौर आये जो पुत्र को जन्म दें तथा उन दोनों से इस बात की जांच करने के लिए किसके पुत्र की उत्पत्ति सम्भव हो सकती है कहा कि उन दोनों को उसके साथ दूर

हिमालय में सिरमौर नामी स्थान पर चलना पड़ेगा, जहां पहुंचने के लिए दो रास्ते हैं एक सीधा परन्तु अधिक लम्बा और दूसरा टेड़ा-मेड़ा तथा दुर्गम पर छोटा और निकट है। अतः वह कौन-से मार्ग में चलना पसन्द करेंगी, जिसने छोटे परन्तु दुर्गम मार्ग से चलने की इच्छा प्रकट की, नट ने उसे ही साथ चलने को कहा क्योंकि कहते हैं जिस स्त्री के गर्भ में पुत्र हो वो निर्भीक तथा साहसी होती है। परन्तु जिसके गर्भ में पुत्री हो वह भीरू तथा डरपोक होती है। उसने उस रानी को साथ लिया और सिरमौर की ओर चल पड़ा। जब वह राजवन पहुंचे तो उन्हें एक साधु मिला जो एक बड़े ढाक के वृक्ष के निकट एक गुफा में रहता था।

उस साधु के पास सिंह रहा करते थे। साधु ने नट तथा रानी को ठहरने के लिए आसन दिया। इसी बीच में रानी को रात्रि में एक पुत्र उक्त ढाक के वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ, जिससे सिरमौर के भावी राजवंश की परम्परा चल पड़ी। साधु ने ढाक के वृक्ष के नीचे उत्पन्न होने के कारण इसका नाम ढाक प्रकाश रखा तथा इसी कारण यह वंश बाद में ढाकिया अथवा पलाशिया वंश कहलाया। कहते हैं कि जब वह पुत्र उत्पन्न हुआ तो ढाक के नीचे सिंह उसकी रखवाली कर रहे थे अतः साधु ने राजा के बड़े होने पर सिंह को राजा के स्थान के रूप में दे दिया जो बाद में राजाओं ने भी अपने साथ रखा तथा वह सिंहों को अपने साथ रखने में गर्व अनुभव करते रहे। कोई-कोई राजकुमार का नाम गर्व वंश प्रकाश तथा शुभ वंश प्रकाश भी कहते हैं। जो भी नाम हो यह निश्चित है इसी राजकुमार से भावी सिरमौर के राजाओं के वंश का प्रादुर्भाव हुआ।

कुछ लोग जो उक्त कथा पर विश्वास नहीं करते और गिरी नदी की बाढ़ को ही नगर के ध्वंस का कारण बताते हैं। गिरी नदी अब भी वर्षा ऋतु में आसपास के गांव के लिए प्रकोप का कारण बनी रहती है तथा लोगों के पशु भूमि और घर आदि वहां से बह जाते हैं। उपर्युक्त घटनायें जो विवित प्रकार से कही जाती है उनके आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ग्यारहवीं शताब्दी में वैभवशाली सिरमौर राज्य की राजधानी राजपरिवार सहित ध्वंस हो गई थी जिसके फलस्वरूप नये राजवंश की परम्परा बनी जो अजमेर के राजवंश से सम्बन्ध होने के कारण पलाशिया वंश कहलाया। इस वंश की नींव 1195 के लगभग पड़ी तथा प्रथम राजा ने केवल चार वर्ष ही राज्य किया। वंश के प्रथम राजा के अन्तिम पद पर प्रकाश को प्रत्येक राजा गद्दी पर बिठाने के पश्चात् चिन्ह रूप में धारशुभ वंश प्रकाश से प्रथम तथा महाराजा राजेन्द्र प्रकाश अन्तिम थे।

हिमाचल के प्रत्येक जनपद, मण्डल व ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति शिव महिमा के सम्मुख नतमस्तक रहता है और इस बात को सहृदय स्वीकार करता है कि 'शिव के बिना शक्ति नहीं और शक्ति के बिना शिव भी नहीं। शिव शक्ति कहीं मां और पुत्र के रूप में कहीं भाई-बहन के रूप में और कहीं पति-पत्नी के रूप में प्रकट हुए हैं। साधारणतः पारिवारिक रूप तो आम है परन्तु मां-पुत्र के रूप में रेणुका जी में एवं भाई-बहन के रूप में भूरेश्वर/ भूशिंग महादेव पच्छाद में विराजमान होने के कारण ही सम्भवतः इस जनपद को सिरमौर कहलाने का गौरव प्राप्त है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों व भूलिंगों के इतिहास में भू:लिंग कालान्तर में भूशिंग जो दुग्धाहारी भूरेश्वर महादेव के नाम से विख्यात है। सिरमौर जिले के नाहन शिमला राजमार्ग पर सराहां नैनाटिक्कर के ठीक बीच क्वागधार की ऊँची (समुद्र तल से लगभग 6500 फुट) चोटी पर विराजमान है। किवंदन्ति है द्वापर में महाभारत के युद्ध को भगवान शंकर और पार्वती जी ने इस स्थान से देखा था। लोक गाथा के अनुसार बाल्यकाल में मां के वियोग और सौतेली मां के दुर्व्यवहार से प्रताड़ित भाई-बहन पशुओं को चराने के लिए जंगल में इस शिवलिंग के आसपास रहते व शाम को पशुओं को घर ले आते थे। दैवयोग से एक दिन भयंकर आंधी तूफान में गाय का एक बछड़ा कहीं जंगल में खो जाने के कारण सौतेली मां ने उसे ढूंढ लाने के लिए भाई को भेज दिया। झंझावात व हिमपात के कारण बछड़े व भाई ने जंगल में ही प्राण त्याग दिए। दूसरे दिन जब बहन व बाप उन्हें ढूंढने के लिए जंगल में आए, तो देखा कि दोनों ही बर्फ व ठण्ड के कारण पत्थर के रूप में समा (लुप्त हो) गया। इधर बहन का विवाह एक काने व कोढ़ी से करने का निर्णय ले लिया गया। सौतले भाई ने सौतले होने के कारण जान बूझकर शर्त हार कर ऐसा किया, शर्त यह थी कि लगभग 20 किलोमीटर दूर स्थित दूसरी पहाड़ी से राणा गमोला जो काना व कोढ़ी व्यक्ति था, यदि तीर फेंककर पहाड़ी को पार कर ले तो उससे अपनी बहन का विवाह कर दिया जाए गया और यदि ऐसा न कर सके तथा उसका स्वयं का तीर पार जाए, तो गमोला को अपनी बहन उसे देनी होगी। फलस्वरूप गमोला ने तीर से पहाड़ी पार कर ली और सौतेली बहन की डोली उस काने कड़ोह के साथ जब विदा होने लगी तो अनिच्छापूर्वक उस शक्ति स्वरूपा ने उसी मार्ग पर चलने को कहा जहां उसके भाई और बछड़े ने प्राणोत्सर्ग किए थे। वहां पहुंच भाई से प्रेमपूर्वक मिलकर डोली से ढांक में छलांग लगाकर अपनी इस लीला को समाप्त करके भातृप्रेम को अमर कर दिया। हिमाचल स्कूल शिक्षा बोर्ड की हिन्दी की आठवीं कक्षा की पाठ्य पुस्तक जो सातवें दशक में लागू की गई थी, में डाक्टर खुशी राम गौतम द्वारा लिखित 'अमर प्रेम' शीर्षक की संकलित कहानी इसी देवता की यह अमर कहानी थी। पारम्परिक रूप से आज भी ढोल-नगाड़ों व वाद्य यन्त्रों सहित पुजारी व अन्य लोगों द्वारा पुजारली गांव से देवता की शोभा यात्रा निकाली जाती है। देवता का गुर/पताला मार्ग में विशेष स्थानों पर दूध की घारे देते हुए नंगे पांव त्रिशुल, छत्र चंवर धारण किए हुए पथरीले व कंटीले प्राचीन मार्ग से होते हुए यात्रा पहाड़ी के शिखर पहुंचती है, वहां पर उसी बछड़े पर दूध चढ़ाया जाता है, तथा ढांक के भंयकर मार्ग से देवता एक शिला विशेष जो लगभग 3 किलोमीटर खड़ी ढाक में मन्दिर के पार्श्व भाग में तिरछी व अति भयंकर रूप में स्थित है, पर

लघु कथा

आत्मज्ञान

● सारिका वोहरा

सरिता का सोमवार का व्रत था। वह मंदिर में शिवलिंग पर चढ़ाने के लिए दूध लाई थी। वह अभी लाइन में ही लगी थी। तभी वहां एक औरत आई। वह सभी से थोड़ा दूध अपने छोटे बच्चे के लिए मांग रही थी जो भूख से रो रहा था। परंतु किसी ने उसे दूध न दिया। सबको लगता था कि अगर इस वक्त इसे दूध दे दिया तो शिवजी नाराज हो जाएंगे। बच्चा लगातार रो रहा था। यह सब सरिता से न देखा गया। उसने अपना दूध का लोटा लिया और बच्चे के मुंह से लगा दिया। बच्चे ने देखते-देखते सारा दूध पी लिया और फिर मुस्कराने लगा। तब उसके साथ खड़ी महिला ने कहा- तूने ये क्या किया। सारा दूध इसे पिला दिया। अब शिवजी तुझसे नाराज होंगे। तब उसने कहा- इसका मतलब

ईश्वर सच्ची भक्ति से सच्ची भावना से प्रसन्न होते हैं। आपने सुना होगा बच्चों में ईश्वर होते हैं तब इस नन्हे बच्चे में भी तो ईश्वर है और वह प्रसन्न भी है दूध पीकर।

आप भोले को समझती ही नहीं। वह तो सच्ची भक्ति से सच्ची भावना से प्रसन्न होते हैं। आपने सुना होगा बच्चों में ईश्वर होते हैं तब इस नन्हे बच्चे में भी तो ईश्वर है और वह प्रसन्न भी है दूध पीकर। इतना कहकर उसने जल और बिल्व-पत्र शिवलिंग पर चढ़ाए। फिर उसने वापसी पर उस बच्चे की मां को एक संस्था की संचालिका से मिलवा दिया ताकि वह आत्मनिर्भर बनकर अपना और अपने बच्चे का ध्यान रख सके। आज कितने लोगों को ऐसा आत्मज्ञान होता है।

हाउस नं. 212/13, पड्डल, मंडी सदर, मंडी, हिमाचल प्रदेश-175 001, मो. 98160 35616

आरोहण करके दूध की धार डाली जाती है तो वहां उपस्थित सभी श्रद्धालुओं के शरीर में एक विशेष सिरहन आ जाती है और श्रद्धालु देवता की कला का साक्षात्कार करके देवता की जय-जय कार व ध ान्य-धन्य कहकर स्वयं को कृतार्थ समझते हैं। वर्ष में दो देवशयिनी तथा देवप्रबोधिनी एकादशी को यह दृश्य देखने को मिलता है। देव प्रबोधिनी एकादशी अर्थात् दीपावली के बाद ठीक 11वें दिन तो देवता रात्री को वही विश्राम कर रात्री के अन्तिम पहर में चन्द्रास्त हो जाने पर उसी शिला विशेष जिस पर पिछले तीन दिनों से दूध व घी क्विंटलों के हिसाब से डलता है पर छलांग लगाकर अठखेलियां करते हुए अपनी अमर वाणी से कारों को बताता है निःसन्तान दम्पतियों की गोद भरने का वरदान प्रदान करता है। वहीं से लगभग 3 किलोमीटर ढांक की तलहटी में स्थित मन्दिर महन्दोबाग में बैठे कारदार देववाणी सुनते ही अपनी कार रात्रि जागरण करते हैं। देव पूजन प्रारम्भ कर देते हैं। उधर पुजारली गांव जो करीब राजमार्ग से 200 किलोमीटर की दूरी के मन्दिर के पास बैठा महिला समूह देव कीर्तन करते हुए रात्रि जागरण करता है। इस प्रकार तीनों मन्दिरों में एकरूपता सिद्ध है जिसके लिए उपायुक्त समाहर्ता जिला सिरमौर द्वार पुश्तैनी पुजारी नियुक्त किये जाते रहे हैं जिसमें देवता की विलक्षण खेल आती है ।

मन्दिर के पुश्तैनी पुजारियों का भी वर्णन ऐतिहासिक काल से यहां के निवासियों से सुनने को मिलता है और इसका प्रमाण प्राचीन राजस्व प्रमाणों से भी मिलता है, इस ऐतिहासिक वर्णन में उस व्यक्ति विशेष की मुख्यता मानी गई है, उन्हें ही देव या देवा शब्द से कहा गया है। इस देवता की परम्परा में एक परिवार विशेष को ही महता दी गई है क्योंकि इस सिद्ध आत्मा का आगमन एक परिवार विशेष में ही होता है।

ऐतिहासिक वर्णन में इस परिवार विशेष ने इस परम्परा नियम को रखने की एक कठिन तपस्या कर भारतीय संस्कृति की देव धरोहर को संरक्षित किया है। इस देवता की मूल रूप से धूप दीप आदि के लिए एक शाबरी मन्त्र विशेष प्रयोग किया जाता है मन्दिर के पुजारियों का भी वर्णन ऐतिहासिक काल से यहां के निवासियों से सुनने को मिलता है और इसका प्रमाण प्राचीन राजस्व प्रमाणों से भी मिलता है, जैसे कि राजस्व प्रमाण के आधार पर 1875 से 1876 में कलेक्टर साहिब रियासत सिरमौर ने अपनी अदालत सम्वत् 1931 1932 सन् 1875-76 बाजबा श्री नन्दलाल साहिब द्वारा पूजनीय स्वर्ग श्री पाधाराम जी को मोहतमीम व मुआफीदार पुजारी के पट्टे से सम्मानित किया। सनद अज पेशगाह सहित कलेक्टर बहादुर जिला नाहन रियासत सिरमौर मबरखा 15 आषाढ़ सम्वत् 1990 सन १९३२ में अंग्रेजी बी. ए. किच्चलू साहिब कलेक्टर बहादुर जिला नाहन द्वारा महाराजा अमर प्रकाश के आदेशानुसार पूजनीय स्वर्ग श्री भूरीया राम जी को मोहतमीम व मुआफीदार पुजारी नियुक्त किया गया, उसके बाद हिमाचल सरकार बनी। महाराजा राजेन्द्र प्रकाश के आदेशानुसार मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश वाई. एस. परमार के समय एस्सिटेंड पोलीटीकल ने मुख्यआयुक्त (CHIEF COMMISSIONER) ने जिला के उपायुक्त को पत्र क्रमांक सी. 1586/48 दिनांक 17 जनवरी 1950 वित्तायुक्त (FINANCE COMMISSIONER) तत्कालीन आदेश (STANDING ORDER) के अनुसार पूजनीय स्वर्ग श्री तुलसीराम जी को पत्र संख्या SK-2508/89 DT. 28-12-1959 के अन्तर्गत मोहतमीम (मैनेजर) नियुक्त

किया । इस देवता की परम्परागत खेल के अनुसार इस परिवार विशेष में ही आती हैं।

पूजनीय स्व. श्री तुलसीराम जी के समय से इस मन्दिर की प्राचीन परम्परा के अनुरूप नियम ज्यादातर मन्दिर के विकास की दृष्टि से अर्वाचीन होने के कारण भंग हो गए एवं यह शक्ति विशेष लुप्त होने लगी। 1997 में स्व. श्री तुलसीराम जी के बाद यह परम्परा उस दिव्य शक्ति द्वारा किसी भी पुजारी विशेष में नहीं प्रकट हुई । इस परम्परा विशेष के न होने का कारण कार-सेवकों द्वारा इस विशेष परिवार को आरोपित करना शुरू कर दिया। परन्तु देव पुजारी परिवार द्वारा एक पुनः विशेष प्रयास हवन अनुष्ठान एवं देव शक्ति से सम्बन्धित कार्य (कार) पूर्ण करवाने की कोशिश से 2003 देव प्रबोधिनी ,कादशी को यह दिव्य शक्ति पुनः आचार्य मनोज शर्मा में प्रकट हो गई। समाहर्ता (डी- सी-) राजेन्द्र सिंह नेगी ने इस महान देव संस्कृति (परम्परा को संरक्षित करने के लिए) सरकार द्वारा पत्र क्रमांक सी. 1586/48 दिनांक 17-1-1950 को अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए क्रमांक एल-एफ-सी-एस. -21-91/2005-2777 दिनांक 22-03-2006 को मोहतमीम (मैनेजर) मुआफीदार पुजारी के पत्र से सम्मानित किया और अब यह आदेश हिमाचल सरकार द्वारा 11-08-1969 के तहत जारी किये गये हैं। अर्वाचीन विकास के चलते विकासात्मक एक गठन ने मूल स्वरूप को ही परिवर्तित कर दिया। नियम विशेष से जुड़ी यह दिव्य शक्ति प्राचीन परिपाटी के धूमिल होने के कारण पुनः इस शक्ति विशेष द्वारा यह जोखिम भरी व भयावहक परम्परा 2007 देव प्रबोधिनी एकादशी को विराम दे दिया। मात्र जनभावनाओं की प्रार्थना से जन देवयात्रा विशेष को ही देवकृपा युक्त पुजारी को करने का आदेश प्रदान किया।

मन्दिर के पुश्तैनी पुजारियों का भी वर्णन ऐतिहासिक काल से यहां के निवासियों से सुनने को मिलता है और इसका प्रमाण प्राचीन राजस्व प्रमाणों से भी मिलता है, इस ऐतिहासिक वर्णन में उस व्यक्ति विशेष की मुख्यतः मानी गई है, उन्हें ही देव या देवा शब्द से कहा गया है।

रामायण तथा महाभारत के युग के प्रसिद्ध वीरों जैसे :- परशुराम, कौरव, पाण्डव तथा अन्य स्थानीय घटनाओं से सम्बन्धित कितनी की कथाएं हमें उपलब्ध होती हैं। उस युग के इस भू-भाग का सम्बन्ध छोड़कर ऐतिहासिक कड़ियों का कार्य करती है। यहां की गाथाओं में यहां के राजाओं तथा अन्य वीर योद्धाओं के पराक्रम का वर्णन मिलता है। सिरमौर के गिरिपार के भू-भाग में शाठा और पांशा कबीलों का वैमनस्य रहा करता था, क्योंकि शाठा अपने आप को कौरवों और पांशा पाण्डवों के वंशज मानते चले आ रहे हैं। पुराने समय में तो इन कबीलों में तो कई बार खुलम-खुला जमकर युद्ध होते रहते थे। सामन्त काल में सिरमौर में भी कईं ठकुराइयां अथवा छोटे-छोटे जागीरदार थे उनमें से अधिकांश के विषय में हमें केवल प्रचलित लोक गाथाओं से ही पता चलता है। इस वंश में 47 राजा हुये गाथाओं में वर्णित बातों का उससे सम्बन्धित स्थानों अथवा गांवों को देखकर कल्पना कर लेते हैं। यही नहीं वहां के निवासी भी जो अपने आप को उन गाथाओं में वर्णित प्रसिद्ध पात्रों का वंशज बताते हैं अपने भीतर एक गर्व का अनुभव करते हैं तथा उनके बनाए हुए कई रीति-रिवाजों और रहन-सहन के ढंगों को आज तक बनाए हुए हैं।

आज भी कई कबीलों तथा खेलों की मित्रता तथा शत्रुता का मूल भी इन्हीं लोक कथाओं, गाथाओं तथा गीतों में ही हमें मिलता हैं। जैसे :- बरसयाण और धरेट खेल आपस में शत्रुता के कारण आज भी आपस में उसी भाव को रखते हैं व इसके साथ-साथ अपने कुल पुरोहित 'देवों' के साथ इस प्रकार 22 खेलें जो निश्चित हैं , के साथ विवाह आदि नहीं करते और यदि ऐसा कोई करता भी हो तो उसे देवदोष माना जाता है क्योंकि यह निश्चित परम्परा से विमुख होकर किया गया होता है। सिरमौर में विशेषकर तहसील पच्छाद और रेणुका के प्रत्येक बड़े-बड़े गांव में किसी न किसी देवता का मन्दिर बना होता है। इन देवताओं से सम्बन्धित कोई न कोई कथा होती है। यहां के प्रसिद्ध देवी-देवताओं में परशुराम, शिरगुल/चूड़ेश्वर, भूरशिंग/भूरेश्वर, महासू, सिरमौरी, रेणुका, भगेण, घटरायली, बाला सुन्दरी से सम्बन्धित अनेकों कथाएं यहां पर प्रचलित हैं। जिनमें इनकी वीरता साहस तथा आलौकिकता के वर्णन मिलते हैं। इन कथाओं को इन देवताओं तथा देवियों के पुजारी/भक्त बड़े रोचक ढंग से सुनाते हैं। यद्यपि इन कथाओं में कल्पना और अतिशयोक्ति से अधिक काम लिया गया है तथापि लगभग इन सभी में देवी-देवताओं के चमत्कार को दिखाकर उनके प्रति लोगों की श्रद्धा को अर्जित तथा आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया प्रतीत होता है तथापि इससे इनकी सत्यता, पौराणिकता और परम्परा का ज्ञान भी होता है।

कलियुग के चलते इन धन लोभी प्रवृत्ति, अत्याचार आदि की भावनाओं से यह दिव्य आलौकिक शक्तियां पुनः स्वर्ग की ओर गमन कर जाएगी। नश्वर संसार में दैव लीलाओं या देव संस्कृति ही एक मात्र ऐसा सहारा है जिससे वास्तविक रूप से मानव का कल्याण हो सकता है।

गांव पुजारली, डा. बाग-पशोग, तह. पछाद
जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश -173024, मो. 0 93188 42464

शोधपरक विचार

जिन बच्चों के माता-पिता अपने बच्चों को डरा या धमकाकर अपनी बात मनवाना चाहते हैं या प्रायः बच्चों पर दबाव बनाये रखते हैं, उन बच्चों की सोचने और समझने की मानसिक शक्ति कम हो जाती है, साथ ही उनमें निर्णय लेने की क्षमता भी समाप्त प्रायः हो जाती है। बच्चों का शारीरिक विकास भी बहुत धीमा हो जाता है और वे डरपोक या दब्बू स्वभाव वाले बन जाते हैं।

मानव समाज की बुनियाद बचपन में अंकुरित संस्कार

● राकेश 'चक्र'

बच्चे हमारे सभ्य समाज की बहुमूल्य निधि हैं जिस पर देश और समाज का भविष्य निर्भर है। बच्चे की सबसे पहली पाठशाला घर-परिवार से आरम्भ होती है। सभ्य एवं सुसंस्कारित बच्चे ही बेहतर कल की नींव रख सकते हैं। लेकिन वर्तमान समाज में हम अपने बच्चों के बचपन को कितनी सारी बंदिशों अर्थात् एक कमरे के अंदर कैद करने से लेकर, डराना-धमकाना, गाली-गलौच और हिंसा जैसे माहौल से बुरी तरह जकड़ रखा है। हम सब कुछ देखते-समझते हुए भी कुछ नहीं कर पाते हैं, क्योंकि लोगों के साथ उनके पूर्वाग्रह-दुराग्रह, अज्ञान और अहम् छुटाए नहीं छूटते हैं। कुछ अभिभावक समझते हैं कि बच्चे उनकी पूँजी हैं, वह इसे कैसे भी रखें, कैसा भी व्यवहार करें? हमें ऐसी मानसिकता से निजात पानी होगी जिससे बच्चों का बिना किसी भय के मानसिक विकास हो सके।

हमें संसार के प्रत्येक बच्चे के चेहरे पर मुस्कान बिखेरकर उसे हंसाना होगा, उनको भूख और कुपोषण से मुक्ति दिलाकर उन्हें खेलने-कूदने के लिए प्रत्येक गाँव से शहर तक खेल-स्थल जैसी सुविधाएं देनी होंगी। प्रत्येक बच्चे को समान शिक्षा का अधिकार देकर नैराश्य, घुटन-टूटन से उबारना, जाति-धर्म और सम्प्रदायों में फँसे दलदलों से मुक्त करवाना होगा। हमारे चेहरे से चिन्ता की लकीरें तभी मिटेंगी, जब संसार का प्रत्येक बच्चा फूलों-सा न मुस्कराने लगे, अभावों से न मुक्त हो।

शिशु जन्म से पूर्व

यदि हम विवाह बंधन में बँध गए हैं, नई-नई उमंगें, तरंगों की उड़ान भर रहे हैं। करिए, जी-भर के करिए, लेकिन यह भी सोच लीजिए कि हम पहले इन्सान हैं तथा इन्सानियत के पोषक हैं। प्रत्येक चीज का उपभोग करने की एक सीमा होती है, सीमा का उल्लंघन ही हमें दल-दल में फँसाने को तैयार बैठा रहता है।

समय पर विवाह बँधन में बँधना बहुत अच्छा होता है, न तो विलम्ब से तथा न ही उम्र से पहले। वैसे हर कोई आज अपनी मर्जी का मालिक है, ज्ञानी और श्रेष्ठ है। क्योंकि उसके साथ एक 'खास इगो' जुड़ गया है, 'मैं'। वैसे सन्तानोत्तपति का काल भी यही श्रेष्ठ होता है। इस काल में सन्तान की उत्पत्ति बच्चे को बलवान और बुद्धिमान बनाती है, बशर्ते कि गर्भावस्था शुरू होने से लेकर शिशु के जन्म तक माता-पिता के आचार-विचार, व्यवहार और माता का खान-पान ठीक-ठाक रहा हो तथा परिवार के सभी सदस्यों ने भी गर्भवती महिला को प्यार और दुलार दिया हो। जो माता-पिता गर्भावस्था काल में भी भोग और विलासों में डूबे रहते हैं, उनकी संतानें प्रायः रोग ग्रस्त और समस्या ग्रस्त पैदा होती हैं, इसलिए अच्छी संतान पाना है, तो हमें आत्म-संयम अवश्य ही बरतना चाहिए।

जन्म के बाद

देश और विदेशों में हुए शोधों से सिद्ध हो चुका है कि वही बच्चे बलवान और बुद्धिमान बनते हैं, जिन्हें माताएँ जन्मोपरान्त अपना दूध पिलाती हैं। भारतीय संस्कृति और हमारा आयुर्वेद तो इसकी वकालत प्राचीनकाल से ही करते आए हैं कि बच्चों के लिए

माँ का दूध अमृत के समान गुणकारी है, बच्चे को स्वस्थ और निरोग रखता है। लेकिन साथ ही माताएँ भी इस काल में खान-पान का उचित ध्यान रखती हों। समयानुसार सभी माताओं को जलपान, भोजन आदि करना चाहिए तथा उन्हें अपने भोजन में अंकुरित अनाज, फल, सब्जियों, दालें एवं दूध आदि लेना आवश्यक है। माँ के अच्छे विचारों का बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस बात का अध्ययन हमने भी किया है कि जिन माताओं के उचित खान-पान के साथ-साथ सकारात्मक विचार भी होते हैं, उनके बच्चों का स्वास्थ्य तथा सोच बहुत अच्छी बनती है, बच्चे अस्वस्थ तथा रोने-झीकने वाले नहीं बनते हैं। लेकिन दुर्भाग्य है कि विश्व में ऐसी माताओं की संख्या दिनोंदिन कम होती जा रही है।

काश! सौ प्रतिशत ऐसा होता, तब इस देश और संसार की स्थिति कुछ और ही होती। वर्तमान में बढ़ रही अशान्ति, असत्य, हिंसा, घृणा, अपराध आदि इसी की देन हैं। भौतिक विकास बढ़ रहे हैं, लेकिन शान्ति सुख और आनंद मनुष्य से कोसों दूर भाग रहे हैं। यदि वर्तमान को बदलना है तथा भविष्य को सुधारना है, तो माताओं को कुपोषण से बचाना ही होगा तथा माताओं को बच्चों को स्तनपान कराना ही होगा। परिवार सुधरेंगे तो समाज सुधरेगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

बच्चों को डराना-धमकाना गैर जरूरी

अनुभव और अध्ययन बताता है कि जिन बच्चों के अभिभावकों ने उन्हें जितना अधिक डराया- धमकाया अर्थात् डाँटा-डपटा या उनके साथ हिंसा की, तो ऐसे बच्चों पर ऐसा मानसिक और शारीरिक आघात पहुँचा कि वह या तो अवसादग्रस्त हो गए, या वे किसी गम्भीर बीमारी से ग्रसित हो गए या वह बदला लेने की भावना से हिंसक हो गए। बाल अपराधों में वृद्धि होने का एक प्रमुख कारण यह भी है, ऐसे बच्चों को न हम समझना चाहते हैं तथा न ही हमारा यह समाज इसे समझने के लिए कभी मन बनाता है।

जिन बच्चों के माता-पिता अपने बच्चों को डरा-धमकाकर अपनी बात मनवाना चाहते हैं या प्रायः बच्चों पर दबाव बनाये रखते हैं, उन बच्चों की सोचने और समझने की मानसिक शक्ति कम हो जाती है, साथ ही उनमें निर्णय लेने की क्षमता भी समाप्त प्रायः हो जाती है तथा बच्चों का शारीरिक विकास भी बहुत धीमा हो जाता है। ऐसे बच्चे डरपोक या दब्बू स्वभाव वाले बन जाते हैं।

प्रत्येक बच्चा माँ के गर्भ (नौ माह) के स्थापन से लेकर चार और पाँच वर्ष तक माँ तथा परिवार के वातावरण (संस्कारों) के अनुसार सब कुछ ग्रहण करता है। जो माताएँ गर्भ काल में सकारात्मक सोचती हैं, अपने धैर्य, शान्ति और संयम का परिचय देती हैं, साथ ही घरेलू कार्यों से नहीं घबराती हैं, उन माताओं की जन्म लेनी वाली संतान सहज और सामान्य ढंग से जन्म लेती है। ऐसा बालक खुशमिजाज होता है तथा रोना-धोना भी न के बराबर करता है। सकारात्मक विचार रखने वाली माताएँ अपने बच्चे को एक वर्ष तक स्वयं का ही दुग्धपान कराती ही हैं, साथ ही बच्चे को दो चार चम्मच फलों का जूस, तरल पदार्थ जिसमें (फीके, नमकीन और मीठे) तीनों स्वाद के होते हैं, देती हैं, उन बच्चों का स्वभाव भी सकारात्मक हो जाता है।

बच्चे तो उस नवजात कोमल पौधे की तरह हैं, जिसे विधिवत सींचकर, खाद देकर, काट-छाँटकर माली सुसंस्कृत रूप देता है। माली की भूल, अज्ञान अथवा लापरवाही से सुन्दर दिखने वाले उद्यान भी बीहड़ जंगलों में परिणित हो जाते हैं। अच्छे-भले दीखने वाले पौधे बेडौल और कुरूप लगते हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

प्रायः हम देखते हैं कि बच्चों के अभिभावक पहले तो बच्चों के सम्मुख ऐसे क्रिया-कलाप खेल-खेल या जाने-अनजाने में करते रहते हैं, बाद में जब बच्चा उनसे सीखकर वही सब करने लगता है, तब वह नाराज होते रहते हैं।

होता यह है कि हम पहले बच्चों को खेल-खेल में गलत बातें सिखाते हैं या उनके सम्मुख गलत बातें जाने-अनजाने में करते रहते हैं, जब वह वैसा करने लगते हैं, तब हमें बुरा लगता है, हम उन्हें डाँटते-फटकारते हैं, हिंसा करते हैं, जिसके कारण बच्चा सुधरने की बजाय और बिगड़ जाता है। यहाँ भी बच्चे का कोई दोष नहीं है, यहाँ भी बच्चे के अभिभावक ही दोषी हैं। कई माता-पिताओं को हमने देखा कि वह बच्चों के सम्मुख बीड़ी-सिगरेट पीते हैं तथा उन्हीं से दूकान से खरीदवाते हैं, तब वह बच्चे भी बीड़ी या सिगरेट का ठूठा (प्रयोग की गई सिगरेट या बीड़ी का बचा टुकड़ा) छिप-छिप कर पीकर देखते हैं कि आखिर इसमें स्वाद क्या है? जो मेरे माता-पिता पीते हैं। यदि ऐसे बच्चों को बच्चों का ही कुसंग मिल गया, तो ऐसे बच्चों को बिगड़ने में देर नहीं लगती है।

कुछ बच्चों के माता-पिता बच्चों के सम्मुख मद्यपान करते हैं या लड़ते-झगड़ते रहते हैं तथा गाली-गलौज करते हैं, तब उन बच्चों को बिगड़ने के लिए पूरा हवा और पानी (वातावरण) मिल जाता है। बाल सुधार गृह में हमने बहुत सारे किशोरों से बात की तो पता चला कि उन्होंने पहले सब कुछ अपने परिवार तथा दोस्तों से ही सीखा था। कुछ बड़े बच्चों को हमने देखा कि वह बड़े लालची, क्रोधी और इगो वाले स्वभाव के हो गए हैं, तब हमने उनके अभिभावकों का अध्ययन किया तो पता चला कि उनके अभिभावकों में यह अवगुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं।

यदि हम चाहते हैं कि हमारा बच्चा हमारे सम्मुख ऐसी बातें या कार्य न करें जो हमारे मनोनुकूल नहीं है, तब हमें शैशवावस्था से ही बच्चों के सम्मुख वह नहीं करना चाहिए, जिसे हम बच्चों से स्वयं नहीं चाहते हैं।

कहीं-कहीं बच्चे के माता-पिता दोनों ही जॉब करते हैं तथा परिवार में अन्य कोई देखभाल हेतु नहीं है या केवल नौकर-चाकर ही हैं, वहाँ बच्चा पूरी तरह मनमर्जी का मालिक बन जाता है, क्योंकि

उसके माता-पिता उसकी हर इच्छा को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं, बच्चे को समय नहीं दे पाते हैं, तो ऐसी स्थिति में बच्चा टीवी का सच्चा मित्र बन जाता है, बच्चा जो भी टीवी से ग्रहण करता है, वह उसे क्रियान्वित करने या उस वस्तु को प्राप्त करने की माँग अभिभावकों के सम्मुख रखता रहता है। माँग की पूर्ति होती रहती है, तब-तब बच्चा कुछ समय के लिए खुश हो जाता है, फिर उसकी नई-नई चीजों की माँग बढ़ती ही जाती हैं, घर में अनावश्यक वस्तुओं का ढेर लग जाता है, तथा नई-नई समस्याएँ जन्म लेती रहती हैं। जब भी उस बच्चे की माँग पूर्ति नहीं होती है, तब बच्चा अवसादग्रस्त या निरंकुश हो जाता है। दोनों ही परिस्थितियाँ बच्चे या उसके माता-पिता के लिए हानिकारक और घातक हैं। ऐसे माता-पिता को बहुत सचेत रहने की आवश्यकता है, जो दोनों जॉब ही करते हैं। उन्हें अपने बच्चों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, बच्चों के साथ अधिक से अधिक समय देना आवश्यक है, उनके साथ-साथ एक समय का भोजन तो करना ही चाहिए। बच्चा क्या कर रहा है? क्या खा रहा है? कहीं टीवी, कम्प्यूटर या मोबाइल पर गलत चीजें तो नहीं सीख रहा है। अतः बच्चों को रात्रि में शयन से पूर्व सीख भरी कहानी या स्वस्थ मनोरंजन अवश्य करवाना आवश्यक है, ताकि बच्चा अपने को अकेला महसूस न कर सके।

अभिभावक अपनी आजादी या सुकून के लिए बच्चों के हाथों में टेलीविजन का रिमोट या मोबाइल पकड़ा देते हैं, जो कि पूरे परिवार के लिए ही बहुत हानिकारक है, क्योंकि ऐसे परिवारों में नई-नई समस्याओं का जन्म होने लगता है। बच्चे के स्वभाव में परिवर्तन होने लगता है, क्योंकि बच्चा तो बच्चा है, वह हर वस्तु को जीवन की वास्तविकता समझ लेता है, उसे वह स्वयं करना चाहता है। इसी कारण आज का बच्चा झूठ, लालच, हिंसा करना, सेक्स, प्यार आदि वह बहुत जल्दी सीख लेता है। यह कहना अधिक तर्कसंगत होगा कि आज के अधिकांश बच्चे बचपन में ही युवा या प्रौढ़ बन जाते हैं।

भारतीय व्यंजनों के सेवन की आदत

देश के अधिकांश नगरों, कस्बों और ग्रामों में विदेशी व्यंजन जैसे चॉकलेट, मैगी, चाउमिन, पिज्जा, बर्गर, हॉट डॉग तथा कोल्ड ड्रिंक्स आदि ने बच्चों और बड़ों के बीच बहुत अच्छी पहुँच बना ली है। आज सभी ही इसके दीवाने हो रहे हैं। इन सब व्यंजनों का अधिक मात्रा में सेवन करने से बच्चों में मोटापा, कुपोषण, पेट के रोग, डायबिटीज, हृदय रोग तथा आँखों के रोग बढ़ रहे हैं। बीस-पच्चीस प्रतिशत बच्चों की आँखें कमजोर हो गई हैं या उनकी आँखों पर चश्मा चढ़ गया है। वैसे आँखों पर चश्मा चढ़ने में टीवी, कम्प्यूटर आदि का अधिक प्रयोग के साथ-साथ विदेशी व्यंजनों का भी बहुत बड़ा योगदान है।

अभिभावकों को यदि अपने बच्चों को मोटापा आदि गम्भीर बीमारियों से बचाना है, तो उन्हें बचपन से ही भारतीय व्यंजनों को खिलाने की आदत डालनी चाहिए, साथ ही मैदानी खेल (आउटडोर गेम) या प्राणायाम, योग आदि की ओर भी ध्यान उनको देना चाहिए। अनेकानेक भारतीय व्यंजनों में जैसे नमकीन या मीठा दलिया, उबला हुआ चना, अंकुरित अनाज, मट्ठा, मौसमी फल, दही, रोटी, दालें, सब्जियों आदि बच्चों को खिलाने से उन्हें पूरा पोषण मिलता है, कभी भी उनका मोटापा नहीं बढ़ेगा तथा न ही आँखों पर कभी चश्मा चढ़ेगा। वह स्वस्थ और मस्त रहेंगे।

शोध में पाया गया है कि जिन बच्चों के अभिभावकगण बच्चों पर पढ़ाई करने का दबाव नहीं डालते हैं, वह बच्चे अधिक बुद्धिमान और विवेकवान बनते हैं तथा वही बड़े होकर ख्याति प्राप्त करते हैं। इसमें वैज्ञानिक कारण यह है कि जो भी हम कार्य करते हैं वह दो तरह से करते हैं - मन से या किसी के दबाव से, जो कार्य जब कोई किसी के दबाव या बिना मन के बोझ समझकर करते हैं, उसे करने में हमारा चेतन-अवचेतन मन एक साथ काम नहीं करता है, जिसके कारण कार्य अच्छी प्रकार नहीं हो पाता है, दूसरे जो कार्य एकाग्र होकर मन-मस्तिष्क से किया जाता है, वह बहुत अच्छी प्रकार होता है, उसमें हमें निश्चित सफलता मिलती है।

प्रतिस्पर्धा का अनावश्यक दबाव

वर्तमान में अभिभावकों की अपने बच्चों से अपेक्षाएँ कुछ ज्यादा ही बढ़ गई हैं। उनका सपना रहता है कि बच्चा अपनी कक्षा में सबसे अव्वल आए, बल्कि कक्षा में ही नहीं विद्यालय में भी टॉप करे। इन्हीं अपेक्षाओं के चलते अभिभावकगण अपने बच्चों से पढ़ने-पढ़ने की रटन्त लगाए रखते हैं। जिस कारण बच्चा तनावग्रस्त रहने लगता है, साथ ही अभिभावकगण भी तनाव में रहते हैं। उनकी सरलता, सहजता, शान्ति उनसे कोसों दूर चली जाती है। अधिकांश बच्चों के पास खेलने-कूदने के लिए समय ही नहीं बचता है, जिससे बच्चों का शारीरिक विकास प्रभावित होता है। उनकी प्रतिरोधात्मक शक्ति कम हो जाती है। बच्चा आए दिन बीमार होता रहता है। वर्तमान में बच्चे पर विद्यालय की पढ़ाई एवं होमवर्क के अलावा, घर में आ रहे टियूटर द्वारा दिया गया होमवर्क का भार भी बना रहता है, जब बच्चे का सम्पूर्ण कार्य पूर्ण नहीं हो पाता है, तब बच्चों के साथ डाँट-फटकार तथा हिंसा की जाती है, जिसके कारण बच्चों के मन-मस्तिष्क पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा बच्चे की कार्य कुशलता में वृद्धि होने की बजाय कम होती जाती है।

शोध में पाया गया है कि जिन बच्चों के अभिभावकगण बच्चों पर पढ़ाई करने का दबाव नहीं डालते हैं, वह बच्चे अधिक बुद्धिमान और विवेकवान बनते हैं तथा वही बड़े होकर ख्याति प्राप्त करते हैं। इसमें वैज्ञानिक कारण यह है कि जो भी हम कार्य करते हैं वह दो तरह से करते हैं - मन से या किसी के दबाव से, जो कार्य जब कोई किसी के दबाव या बिना मन के बोझ समझकर करते हैं, उसे करने में हमारा चेतन-अवचेतन मन एक साथ काम नहीं करता है, जिसके कारण कार्य अच्छी प्रकार नहीं हो पाता है, दूसरे जो कार्य एकाग्र होकर मन-मस्तिष्क से किया जाता है, वह बहुत अच्छी प्रकार होता है, उसमें हमें निश्चित सफलता मिलती है।

सफलता प्राप्त करने के लिए मन-मस्तिष्क का चेतन और अवचेतन मन का साथ-साथ रहना बहुत आवश्यक होता है।

विवेकपूर्ण व्यवहार

महान गुरु श्रीराम शर्मा आचार्य जी का मानना है - चंचल, अधिक क्रियाशील बच्चों में फुरती, तेजी, जीवट अधिक होता है। उनकी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ औसत दरजे के बच्चों से अधिक काम करती हैं। बुद्धि एवं प्रतिभा भी ऐसे बच्चों में तीव्र होती है। ऐसे बच्चे तनिक भी शांत नहीं रहते। धर-पटक, तोड़-फोड़, मारना- पीटना घरवालों को परेशान करना, अभिभावकों को खिजाना ये इन क्रियाशील बच्चों की साधारण-सी बातें हैं। यदि इन बच्चों का भली प्रकार निर्माण किया जा सके, इनकी क्रियाशक्ति को रचनात्मक बनाया जा सके तो ये बच्चे जीवन में महान कार्यों का संपादन करते हैं, बच्चे माँ-बाप से अधिक सफल होते हैं। बच्चों के निर्माण में स्थान का प्रभाव भी बड़ा महत्वपूर्ण होता है। बच्चों के मानसिक स्तर पर स्थान का अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जो उनके व्यक्तित्व के निर्माणक्रम को भी प्रभावित करता है। जिन बच्चों का प्राकृतिक स्वभाव बहुत से लोगों के बीच रहने का होता है, उन्हें एकाकी और सुनसान स्थान में रखना ठीक नहीं है। इससे उनमें कई मानसिक उलझनें, भय, संदेह, शंका, विक्षिप्तता आदि पैदा हो जाएँगे। ऐसे बच्चों का मानसिक विकास और पुष्ट व्यक्तित्व का निर्माण सामूहिक रहन-सहन में भली प्रकार हो सकता है। चंचल एवं क्रियाशील बच्चों के लिए सबसे आवश्यक बात है कि उन्हें किसी न किसी रचनात्मक कार्य, खेल-कूद, भाग-दौड़ आदि में लगाए रखा जाए। जिन घरों में बच्चों को किसी रचनात्मक कार्य में लगा दिया जाता है तो वे बच्चे जीवन में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं और वे औसत दरजे के बच्चों से अधिक सफल होते हैं। ठीक-ठीक शिक्षण, निर्माण न होने पर ऐसे बच्चे औसतन बच्चों से अधिक खराब, अपराधी और भयंकर भी बन जाते हैं। विचार विवेक से शून्य बालक कभी-कभी दूसरों की देखा-देखी भी कुछ अनावश्यक माँगें कर बैठते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों का ध्यान, प्यार, दुलार और स्नेह से किसी दूसरे पहलू पर केंद्रित कर देना चाहिए। उन्हें किसी खेल में लगा दिया जाय। समझदार बच्चों को समझा भी देना चाहिए। कई माँ-बाप जो ऐसी स्थिति में बच्चों को ताड़ना देते हैं, उनकी माँगों को ठुकराते हैं, उन्हें बुरा कहते हैं, वे वस्तुतः अपने बच्चों में मचलने, जिद करने की आदत डालते हैं। बच्चों के साथ जिद करना उल्टा उन्हें अधिक जिद्दी और हठी बनाता है। किसी भी बात पर बच्चों का विरोध करने पर उन्हें उत्तेजना मिलती है और वे अधिकाधिक जिद्दी बन जाते हैं। यही खराब आदतें आगे चलकर अनुशासनहीनता, उद्दंडता, झगड़ालू प्रवृत्ति, अशिष्टता, असभ्यता को जन्म देती हैं।

बच्चों के निर्माण में स्थान का प्रभाव भी बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। बच्चों के मानसिक स्तर पर स्थान का अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जो उनके व्यक्तित्व के निर्माणक्रम को भी प्रभावित करता है। जिन बच्चों का प्राकृतिक स्वभाव बहुत से लोगों के बीच रहने का होता है, उन्हें एकाकी और सुनसान स्थान में रखना ठीक नहीं है।

विद्वानों का मानना है कि बच्चे को संतुलित लाड़-प्यार-दुलार दिया जाए, अर्थात् उतना ही जितना कि एक बच्चे के लिए आवश्यक है। बच्चों के साथ हिंसा करना या डाँटना-फटकारना उचित नहीं है क्योंकि जो भी वह सीखता है, वह अपने अभिभावकों से ही सीखता है। यदि वह अभिभावकों की कार्यशैली से कुछ बुरी बात सीख गया है, जिसे हम बच्चों की गलती या त्रुटि मानकर उनके साथ बुरा व्यवहार करने लगते हैं, तब ऐसी स्थिति में हमें अपनी त्रुटि स्वीकार करने का प्रयास करना चाहिए।

स्वयं सहज और स्वतंत्र

अभिभावकगण बच्चों को स्वतंत्र नहीं रहने देते, बल्कि वे उन पर अपना ज्ञान, अभिमान थोपने का प्रयास करते हैं। बच्चों में सहज स्वतंत्रता का भाव अधिक होता है। उनकी स्वतंत्रता में बाधा डालना, उनकी बातों का विरोध करने से बच्चों में नकारात्मक ऊर्जा का वेग बढ़ जाता है। ऐसे बच्चे अधिक जिद्दी, झगड़ालू एवं मचलने वाली वृत्ति के बन जाते हैं। बच्चों में यदि कोई सुधार लाना है, तो उनसे पहले मित्रता करिए, उनकी सहमति लीजिए, तब ऐसा करने से उनमें सकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव बढ़ता है। बच्चे में आ रही खराब आदतों को भी इसी तरह सुधारा जा सकता है। यदि हम क्रोध या हठ करके बच्चे में कोई सुधार लाना चाहते हैं, तो यह हमारी उसी तरह भूल होगी, जैसे कुपथ्य (जो खाने योग्य न हो) आचरण करके रोग को ठीक करना चाह रहे हों। कोई-कोई बच्चा अपने ही अहित की बात पर मचलता है, उसे थोड़ी देर मचलने दीजिए, उसे मारिए पीटिए नहीं। बल्कि उसे वैसा करने दीजिए, उसे ठोकर लगेगी, वह स्वतः ही एक बार में सुधर जाएगा।

90, शिवपुरी, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश-244 001
मोबाइल 0 94562 01857

लेख

सामाजिक समरसता का पर्व
मकर संक्रांति

● डॉ. रामसिंह यादव

भारतीय संस्कृति को समन्वय-आपसी स्नेह एवं भाईचारे के लिए जाना जाता है। हमारी संस्कृति की विशेषता है कि यहां व्रत, पर्व, त्योहार यहां अकेले नहीं मनाए जाते। इनमें सामूहिक भावना जगाने पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय पर्वों का मूल भाव सबके कल्याण की भावना-कामना हेतु आराधना है। इसी परिप्रेक्ष्य में यजुर्वेद का मंत्र है -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्न्तु मा काशिद दुखः भाग भवते ॥

इसी दृष्टि से मकर संक्रांति का विशेष महत्त्व है। क्योंकि यह जोड़कर-मिलकर चलने की समरसता का संदेश देती है।

वर्ष में बारह संक्रांति अर्थात प्रत्येक माह में एक संक्रांति होती है। मकर संक्रांति प्रतिवर्ष चौदह जनवरी को होती है। यह कभी पौष में पड़ती है तो कभी माघ में। मकर संक्रांति पर्व मूल रूप से सूर्योपासना का पर्व है। ज्योतिष विज्ञान के अनुसार बारह राशिं होती हैं। सूर्य जब मकर राशि में प्रवेश करते हैं तब मकर संक्रांति मनाई जाती है। मकर और कर्क राशि का संक्रमण काल विशेष महत्त्व रखता है। यह संक्रमण काल प्रत्येक छह माह के अंतराल पर होता है। सूर्य जब दक्षिणायन से उत्तरायण आता है तब मकर संक्रांति होती है। यह पर्व भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी बड़े धूमधाम एवं हर्षोल्लास से मनाया जाता है। मकर संक्रांति में स्नान-दान आदि का विशेष महत्त्व धर्मग्रंथों में प्रतिपादित किया गया है।

संक्रांति का अर्थ है सम्यक् संक्रांति अर्थात् समाज में सम्यक् परिवर्तन लाना। ऐसी सामाजिक क्रांति लाना जो शुभता सामाजिक जीवन में उन्नयन लाने वाली हो। इस दिन तिल-गुड़ का पदार्थ खाने की प्रथा है। छोटे-छोटे तिल रूपी बिखरे समाज को गुड़ रूपी आत्मीयता से बांधकर संगठित करने का उदात्त संस्कार दिया जाता है।

संक्रांति का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना अथवा एक दूसरे से मिलना। सूर्य जब एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है, उसे संक्रांति कहते हैं। पूण्य काल में स्नान, दान, जप, तप, हवन आदि करने से पुण्य मिलता है।

भगवान सूर्य के दक्षिणायन से उत्तरायण होने की पौराणिक महत्ता का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है- हे भरत श्रेष्ठ अर्जुन, अब मैं तुम्हें समझाता हूं कि वे कौन-कौन से काल हैं जिनमें प्राण त्यागने पर मनुष्य पुनः जन्म नहीं लेता है। जिन्हें ब्रह्म का बोध हो जाता है, वे योगी दिन के प्रकाश में (उत्तरायण में) अपना शरीर त्यागते हैं। वे चंद्रलोक में जाकर पुनः जन्म लेते हैं। यही कारण है कि सूर्य के उत्तरायण की स्थिति ही शुभ मानी जाती हैं

भीष्म पितामह ने शरशय्या पर सूर्य के उत्तरायण होने पर मकर संक्रांति के दिन ही अपने शरीर का त्याग किया था।

मकर संक्रांति पर्व का मेला आजकल सभी धार्मिक स्थानों पर लगता है। उज्जैन, ओंकारेश्वर, मंदसौर आदि के अलावा मकर संक्रांति पर्व पर लगने वाला सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण मेला गंगासागर पर आयोजित होता है। गंगासागर मेले की महत्ता के बारे में जनमानस में माना जाता है कि **सारे तीर्थ बार-बार, गंगा सागर एक बार** इसी दिन गंगा स्वर्ग से उतरकर भगीरथ राजा के पीछे-पीछे चलकर महर्षि कपिल मुनि के आश्रम में जाकर प्रथम बार सागर से मिली थी। गंगा के पवित्र जल से ही सूर्यवंशी राजा सागर के 60 हजार शापित पुत्र (राजकुमार) का उद्धार हुआ था। इसी घटना की याद में मकर संक्रांति के अवसर पर मेले का आयोजन होता है।

दक्षिण बिहार के मंदार क्षेत्र में लक्खी मेला लगता है। कहा जाता है कि सृष्टि के आरम्भ में भगवान विष्णु ने ब्रह्माजी की रक्षा के लिए मधु-कैटभ से युद्ध किया था। उस समय युद्ध में कैटभ तो मर गया किंतु उसका सर कट जाने वे वह शांत नहीं हुआ। अतः श्रीविष्णु ने उसका वध कर मंदार पर्वत पर रख दिया। इसलिए भगवान विष्णु को मधुसूदन की संज्ञा मिली।

पंजाब-जम्मू तथा काश्मीर में मकर संक्रांति पर्व (लोहड़ी) के रूप में मनाया जाता है, ऐसा कहा जाता है कि मकर संक्रांति पर्व

के दिन ही मथुरा नरेश कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिए 'लोहिता' नामक एक राक्षसी को गोकुल भेजा था जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में ही मार डाला था। उसी घटना के फलस्वरूप 'लोहड़ी' का पावन पर्व मनाया जाता है। लोहड़ी उत्सव सर्वाधिक उत्साह एवं उल्लास का पर्व होता है। नवदम्पति के लिए यह पर्व अति सुखदायी होता है। अग्नि प्रज्वलित कर उसकी परिक्रमा करते हुए वे नृत्य करते हैं। गीत गाते हैं और तिल-गुड़ की रबड़ी-लड्डू बांटने की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है।

दक्षिण भारत में इसी पर्व को पोंगल पर्व कहा जाता है। असम, मिजोरम, सिक्किम और पूर्वोत्तर क्षेत्र में इस पर्व को माघबिहू के नाम से मनाया जाता है। आंध्रप्रदेश में सुहागिन स्त्रियां अनेक प्रकार की वस्तुएं शरीर पर मलती हैं तथा चेहरे पर चंदन और पैरों पर हल्दी का उबटन लगाती हैं। तिल-गुड़ और बेर का प्रसाद लेकर बुजुर्गों के प्रति सम्मान प्रकट करती है।

माघकृष्ण एकादशी बटतिल एकादशी कहलाती है और इस संक्रांति को तिल संक्रांति कहते हैं। संक्रांति के अवसर पर अन्य अभीष्ट देवों की पूजा तो होती ही है किंतु सूर्य-पूजन को विशेष महत्त्व यह है कि सूर्य जब उत्तरायण पथ पर चलेगा। अतः आप सभी लोगों को आलस्य त्याग कर कर्म के लिए उसे प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन, नासिक, गंगासागर आदि अनेक तीर्थों पर स्नान करने के लिए जाने का भी यह प्रयोजन है कि उठो, सुस्ती आलस्य त्यागो और संघर्ष करते हुए कर्मपथ पर आगे बढ़ो। धर्म, जप, तप, हवन, दान, पुण्य गरीबों की सेवा कर धर्म मार्ग अपनाओ। समाज में सामाजिक समरसता का भाव जागृत कर मोक्ष हेतु ज्योतिर्मय पथ अपनाओ। मकर संक्रांति का पर्व विचारों के आदान-प्रदान और परस्पर मेल-जोल बढ़ाने का पर्व प्रकृति को मनुष्य से जोड़ने का पर्व है।

14, उर्दूपुरा, उज्जैन, मध्य प्रदेश
मो. 0 96693 00515

प्रोमिला भारद्वाज की कविताएं

क्षणों का चक्रव्यूह

समय है चक्रव्यूह
सब इसमें फंसे/ तोड़ न पाएं
क्या सभी अभिमन्यु?
गोल-गोल घूमें, कर्म करें
जब तक न आए/ निर्धारित अंत
अनभिज्ञ बन जिएं
एक-एक बूंद जीवन की पिएं
प्रत्येक को समझ/ अंतिम, करें श्रम
पूरे मनोयोग से
भ्रम मुक्त हो, एक-एक क्षण से
पाएं सहस्रों व्यर्थ गंवाए
क्षणों का उपहार
ऋण उनका चुकाएं
जी कर एक-एक क्षण
करें निर्भयता वरण
सहर्ष करें विचरण
श्रेष्ठता से अर्जुन सम
समय के चक्रव्यूह में
शालीनता से/ करते रहे उद्यम
जब तक न करे मुक्त
समय, चक्रव्यूह से
पराजित हो हम से
स्वयं।

शोधक यंत्र

पर्वत की चोटी पर
शुद्ध शीतल हवा मिली
गहरी सांसें ली/ पीये कुछ घूंट
पवित्र पवन के
रोम-रोम में हुई कम्पन्न
पीते ही पावन पवन
छू के आई होगी
चारों धाम के मंदिर
मक्का-मदीना, गिरजाघर
गुरुद्वारे सारे/ और उनमें विराजमान
आलौकिक नूर/ विचार शून्य हो
हथेलियों के प्याले बना-बना
उंडेले तन में/ पवित्र पवन के
अनगिनत प्याले भर-भर
चक्षु मूंद कर
होता गया शुद्धीकरण
सारे-का-सारा
शहरीकरण से उपजा प्रदूषण
सांसारिकता से उपजे दुर्भाव
रचे-बसे भीतर-बाहर/घुलते गए धीरे-धीरे
घुलती गई जैसे-जैसे
अंग-अंग में/ पावन पवन
छुए होंगे जिसने बदन
संतों-महात्माओं के/ लामाओं-पादरियों के
मौलवियों-ज्ञानियों के
निस्संदेह, निर्भय हो कर
अदृश्य है रोक-टोक से परे
हुए होंगे सबके चरण/ स्पर्श मात्र से
स्पंदित हुआ अंग-अंग
भीतर प्रवेश करते ही/ होने लगा शुद्धीकरण
शारीरिक, मानसिक, आत्मिक,
तन बन गया
शोधक यंत्र-
यंत्रवत स्थिर/ खड़ा ही रहे गर
पर्वत की चोटी पर
होगा बेहतर/ उसके लिए
और सबके लिए/ दुनिया में फैले
वैर वैमनस्य भरे विकास
शोधन यंत्र रूपी तन में
आते रहे/ शुद्ध हो जाते रहें
पवित्र पवन से/ स्पर्श कर-कर
पवन सम तन/ बना रहे
सर्वव्यापी शोधक का यंत्र
बन शोधन का माध्यम
करता रहे शुद्धीकरण
अंदरूनी व बाहरी
सदैव निरंतर।

प्रबंधक जिला उद्योग केंद्र
मंडी, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश-175001,
मो. 0 94180 04032

नाटक

आत्महत्या

● विजय कुमार सप्पत्ति

मुख्य कलाकार

कांस्टेबल	रामसिंह
सब इंस्पेक्टर	काम्बले
सूबेदार मेजर	रावत
डिप्टी कमांडेंट	सिंह
कमांडेंट	देवेन्द्र
सेकंड इन कमांडेंट	यादव
डॉक्टर कृष्णकुमार	सॉयकोलोजिस्ट

प्रारम्भ

स्टेज पर पर्दा उठना

सीन एक

स्टेज पर कांस्टेबल रामसिंह आता है और अपने एक साथी से जोश में हँसते हुए कहता है - "अहा अब मुझे छुट्टी मिल गयी है , अब घर जाऊँगा और माँ की गोद में चैन के कुछ दिन बिताऊंगा ।" और वो दोनों दूसरे दरवाजे से चले जाते है !

सीन दो

स्टेज पर सूबेदार मेजर रावत आता है और अपने एक दोस्त से कहता है , "अहा अब मुझे छुट्टी मिल गयी है , कितने महीने हो गए है , मैंने कब से अपनी प्यारी सी बीबी की सूरत नहीं देखी है. इस बार तो मैं चांदनी को सरप्राइज दूंगा, उसे तो बताया ही नहीं कि मैं आने वाला हूँ " दोस्त हँसता है " हां यार तेरी तो नयी नयी शादी जो हुई है ... हा हा .."और वो दोनों हँसते हुए दूसरे दरवाजे से चले जाते है !

सीन तीन

स्टेज पर सब इंस्पेक्टर काम्बले आता है और अपने आप से उदास और खुशी दोनों के स्वर में कहता है, "अब मुझे छुट्टी मिल गयी है , यहाँ से मुक्ति तो मिली , इस डिप्टी कमांडेंट ने तो जीना हराम किया हुआ है। कुछ दिन अपने घर में दोस्तों और भाइयों के साथ रहकर ज़िन्दगी के मजे लूँगा "

और वो दूसरे दरवाजे से जाने लगता है , तभी दूसरे दरवाजे से डिप्टी कमांडेंट सिंह आता है और उससे कहता है , "क्या रे सुना है , अपने घर जा रहा है , " उसे देखकर काम्बले उसे सेल्यूट करता है और सावधान की मुद्रा में खड़ा हो जाता है और कहता है, "जी श्रीमान "

सिंह उसके कंधे पर हाथ मारकर बोलता है, "अबे तो यहाँ कौन रहेंगा? कौन हमारा खयाल रखेगा? तू साले नीच जाती का आदमी , हम ठाकुरों को सीखाएगा कि लड़ाई कैसे करना और क्या करना है?"

काम्बले कुछ धीमे स्वर में अपने गुस्से को दबाते हुए कहता है "साब, मुझे देरी हो रही है, जाने दीजिये "

सिंह "ठीक है जा, आना तो तुझे यहीं है। तब देखता हूँ "

काम्बले सर झुका कर दरवाजे से चला जाता है

सीन चार

स्थान : ऑफिस का एक कोना

स्टेज पर कमान्डेंट देवेन्द्र और सेकंड इन कमान्डेंट यादव बैठे है। दोनों के बीच में मेज लगी हुई है और दोनों दोस्त ड्रिंक्स ले रहे है।

देवेन्द्र "यार यादव, मैंने तो बहुत से जवानों और ऑफिसर्स की छुट्टियां मंजूर की हैं। सब अपने घर जाएं और खुशियाँ लेकर आये, बस यही दुआ है। "

यादव "हां देवेन्द्र , सच कहा , मैं तो इन आत्महत्याओं से

दुखी हो गया हूँ।"

देवेन्द्र "मैं उम्मीद करता हूँ की जल्दी ही हम इन बातों को रोक सकेंगे।"

देवेन्द्र "मैंने एक सॉयकोलोजिस्ट को बुलाया है, वो आने के बाद हमारे कैम्प पर सबकी एक वर्कशॉप लेंगे, इससे बहुत से फायदे होने की संभावना है, शायद जवानों में छाया हुआ डिप्रेशन खत्म हो जाए।"

यादव "अमीन मेरे भाई "

देवेन्द्र "अमीन "

सीन पांच

स्थान : गाँव के एक घर का सेट

एक चारपाई और दो-तीन मूढ़े। चारपाई पर रामसिंह की माँ बैठी हुई है। एक मूढ़े पर उसकी बीबी बैठी है और दूसरे पर खुद राम सिंह .

माँ "भाई राम, तू तो अपनी जोरू को ले जा अपने साथ, ये रोज रोज के झगड़े हमें नहीं चाहिए, कभी किसी बात पर लड़ाई , तो कभी किसी बात पर झगड़ा , नहीं बेटा नहीं चाहिए बुढ़ापे में ये दुःख।"

बीबी, "हमें कौन-सा यहाँ रहना है, रोज का तकाजा, रोज के ताने, जैसे यदि आपने ब्याह कर नहीं लाया होता तो मैं कुंवारी ही बैठी रह जाती। अरे कोई कितना सहेंगे, हमारे भी दुख हैं। लेकिन रोज की लड़ाई , देखो जी, या तो चौका अलग कर लो , हमें अलग घर ले दो , नहीं तो मैं अपने घर चली"

रामसिंह "अरे चुप हो जाओ तुम दोनों , जब से आया हूँ , यही सब सुन रहा हूँ । दो दिन की शान्ति नहीं मिली मुझसे। मैं अपना काम करूँ या तुम दोनों के झगड़े सुलझाऊं!"

तीनों मिलकर बहुत सी बातें एक साथ करने और आपस में लड़ना शुरू कर देते है।

सीन छह

स्थान : एक कमरे का सेट

घर में एक पर्दा लगा हुआ है . बाहर दरवाजे पर रावत खड़ा है और खुद से कह रहा है, "आज मैं चांदनी को ऐसा सरप्राइज दूंगा कि वो याद रखेगी। "

सूबेदार रावत चुपचाप अपने घर में घुसता है और एकदम से चिल्लाता है "आय लव यू चांदनी, मैं आ गया " ऐसा कहते हुए वो भीतर घुसता है तो देखता है कि उसकी पत्नी चांदनी उसके दोस्त रवि के साथ बैठी है। रावत को देखकर दोनों घबरा जाते है और रवि जाने लगता है। रावत को पहले तो कुछ समझ नहीं आता है और फिर वो समझ जाता है कि उसकी पत्नी चांदनी ने उसे धोखा दिया है।

वो आँखों में आंसू लिए पूछता है , "क्यों चांदनी, क्यों, ऐसा किया। मेरे प्रेम में क्या कमी रह गयी। देखो , इस बार मैंने पूरे बीस दिन की छुट्टी लेकर आया था, लेकिन तुमने मुझे धोखा देकर अच्छा नहीं किया। वो भी मेरे सबसे अच्छे दोस्त रवि के साथ! धिक्कार है तुम पर। "

चांदनी , "सुनो मुझे माफ कर दो जी, अब ऐसी गलती नहीं होंगी जी "

लेकिन रावत घर से निकल जाता है। और चांदनी रोती हुई बैठी रह जाती है।

सीन सात

स्थान : एक होटल का सेट

काम्बले अपने दोस्त मोहन के साथ बैठा हुआ है और चाय पीते हुए उससे अपनी बात कह रहा है। यार मोहन, मेरी पोस्टिंग इस जगह में हो क्या गयी, मेरी ज़िन्दगी नरक बनी हुई है। एक डिप्टी कमान्डेंट सिंह मुझे रोज तंग करता है, रोज मुझे नीचा दिखाता है, सिर्फ इसलिए कि मैं दलित हूँ और मैंने एक ट्राइबल कैंप ट्रेनिंग





के दौरान गुरिल्ला फाइट सीखा हुआ है और वो मैं सभी को सीखना चाहता हूँ, बस इसी बात पर हमेशा मुझे नीचा दिखाता है, कभी कभी सबके सामने ही लताड़ देता है।

मोहन "उसकी शिकायत तो करो।"

काम्बले, "नहीं यार शिकायत करने से मुझ पर ही गाज गिरेगी, उसका ओहदा मुझसे बड़ा है। मैं ही कुछ करता हूँ।"

दोनों दोस्त चुपचाप चाय पीते है

सीन आठ

स्थान : एक कमरे का सेट

स्टेज पर राम सिंह चुपचाप बैठा हुआ है और अपने आप से बाते कर रहा है, "ये क्या ज़िन्दगी है. जिनके लिए कमाता हूँ वही आपस में इतना लड़ते हैं। तंग आ चुका हूं ऐसी ज़िन्दगी से। मैं कल ही कैम्प में लौट जाता हूँ!"

सीन नौ

स्थान : एक कमरे का सेट

स्टेज पर रावत पागलों की तरह ड्रिंक्स ले रहा है और अपने आप से बातें कर रहा है "मेरे साथ ही ऐसा क्यों हो रहा है। आखिर मेरा कसूर क्या है। मैं उसे कितना प्यार करता था अब क्या जीना .. मैं कल ही कैम्प में लौट जाता हूँ!"

सीन दस

स्थान : एक कमरे का सेट

स्टेज पर काम्बले अपने दोस्त से कहता है, "मैं इस मामले को वहां जाकर सुलझाता हूँ। मैं कल ही कैम्प में लौट जाता हूँ!"

सीन ग्यारह

स्थान : एक कमरे का सेट

स्टेज पर रामसिंह अपनी वर्दी में चुपचाप बैठा है और फिर अचानक ही सर हिलाते हुए अपनी रायफल से खुद को शूट कर देता है!

सीन बारह

स्थान : एक कमरे का सेट

स्टेज पर रावत पागलों की तरह पी रहा है और फिर अपनी रिवाल्वर निकाल कर खुद को शूट कर देता है।

सीन तेरह

स्थान : ऑफिस का सेट

स्टेज पर काम्बले को सिंह डांट रहा है, और दोनों में तेज झगडा होता है . काम्बले, सिंह की वर्दी के होल्स्टर से रिवाल्वर निकाल कर खुद को शूट कर देता है

सीन चौदह

स्थान : ऑफिस का कोना

ऑफिस की मेज पर देवेन्द्र और यादव दोनों बैठे हुए है। चुपचाप ड्रिंक्स ले रहे है।

देवेन्द्र "मुझे समझ में नहीं आता है कि मैं क्या करूं। कितना कोशिश करता हूँ, कि जवानों का मोरल डाउन नहीं हो, लेकिन ये हो जाता है और ये देखो, एक नहीं तीन तीन आत्महत्याएं। ऊपर से इन्क्वायरी के ऑर्डर्स अलग से।

यादव "कल वो सायकोलोजिस्ट आ रहा है। उसी को कहेंगे कि इन जवानों को कुछ समझाएं।"

सीन पंद्रह

स्थान : मैदान का सेट

स्टेज पर कुछ कुर्सियां है और एक माईक है जिस के पास डॉक्टर का चोला पहने डॉ. कृष्ण कुमार खड़े है। पास की कुर्सियों में देवेन्द्र, यादव और कुछ और ऑफिसर बैठे हुए हैं।

डॉ. कृष्ण कुमार कहते हैं, " आप सभी जवानों को मेरा सलाम . मैं दिल से आपके शौर्य की हौसला-आफजाई करता हूँ और ये बात मैं मानता हूँ कि आप सभी यदि हमारे बॉर्डर्स पर नहीं होते तो आज हम चैन की नींद नहीं सो पा रहे होते। सलाम आपको।

लेकिन आज मैं एक बात कहने आया हूँ और ये बात हम सभी को बहुत चिंतित कर रही है। वो बात है आपके साथियों के द्वारा आत्महत्या कर लेना। देखिये एक डॉक्टर के होने के नाते मैं आप सभी से ये कहना चाहूँगा कि ये प्रवृत्ति बहुत खतरनाक है . आत्महत्या कर लेने से कोई भी समस्या का हल नहीं होता . मैं मानता हूँ कि पारिवारिक, सामाजिक और यहाँ तक कि अपने सीनियर्स के द्वारा प्रताड़ना पाना और कष्टदायक हालात में रहना बहुत दुखदायी है, लेकिन मेरी मानिए, आत्महत्या करना कोई भी समाधान नहीं है . आपकी आत्महत्या से आपकी कहानी खत्म हो जायेगी, लेकिन जो परिवार आप पर निर्भर है, उसका क्या। उन के बारे जरा सोचिये और इस तरह के नेगेटिव खयालों से बचिए . अपने ऑफिसर्स से बात करिए और अपने प्रोब्लेम्स का समाधान लीजिये। लेकिन आत्महत्या न करें। यही मेरी आपसे विनती है क्योंकि देश को और आपके परिवार को आपकी जरूरत है।

आइए, अपने अकेलेपन को दूर करिए। मैं आपको ये कहना चाहूँगा कि अलग अलग एक्टिविटी में भाग लीजिये, अपने साथियों के साथ खूब सारी बातें करिए , परिवार और दोस्तों के साथ खूब बातें करिए , शराबा तथा अन्य ड्रग्स से दूर रहिये। रेगुलरली योग तथा दूसरे कसरत करें। दौड़े , मैडिटेशन करें और अपने आप को किसी क्रिएटिव कार्य में लगाएं और हां गाना बजाना न भूलें। संगीत जीवन के डिप्रेशन का सबसे बड़ा हल है। अब तक पिछले दस सालों में करीब 300 से ज्यादा जवानों ने आत्महत्या की है। आप उस राह पर न चलें यही मेरी आप सभी से प्रार्थना है। आप सभी का दिल से धन्यवाद ! याद रखिये आत्महत्या करना, अपने आप के प्रति और और अपने परिवार के प्रति और अपने भगवान के प्रति पाप है। जीवन सुन्दर है। इसे भरपूर जिएं। यही मेरी मंगलकामना है आप सभी के लिए।

स्टेज पर पर्दा गिरना

समाप्त

FLAT NO.402, FIFTH FLOOR, PRAMILA RESIDENCY;
HOUSE NO. 36-110/402, DEFENCE COLONY,
SAINIKPURI POST,
SECUNDERABAD- 500 094 [TELANGANA]
M : 0 98497 46500

लघु कथा

दान

• माम राज शर्मा



बस थोड़ी देर के लिए बस स्टैण्ड पर रुकी हुई थी। यात्री अपनी-अपनी सीटों पर सुस्ता रहे थे। इस दौरान बस में एक तीस-इकतीस साल का युवक भिखरी के वेश में चढ़ा। उसने यात्रियों को कुछ पर्चे बांटे। अधिकांश यात्रियों ने बिना पढ़े पर्चे उसे वापस लौटा दिए। कुछ लोगों ने कुछ सिक्के उसकी हथेली पर रख दिए। मैंने उसे कुछ नहीं दिया। मुझे उसके भिखारी होने पर संदेह-सा होने लगा। वह बस से उतरा और हमारी बस आगे बढ़ चली। मैंने इस बात को नोट किया कि भिखारी बोल नहीं पा रहा था। बस 'हूं हूं' की आवाज निकाल रहा था और सिर हिलाता था।

खैर, मैंने इस सारे विचार-जाल को छोड़ा और खिड़की से बाहर हरे-भरे लहलहाते गेहूं के खेतों को निहारने लगा।

मुझे इस शहर से दस किलोमीटर आगे अपने भाई के पास जाना था। वहां दो दिन रुकने के बाद मैं वापस घर आ रहा था। मैंने टिकट उसी शहर का लिया, जहां हमारी बस रुकी थी। इरादा कुछ खरीददारी करने का था। मैं बाजार की ओर निकला। काफी आगे जाने पर मेरी नजर थोड़ी दूर एक झुग्गी पर पड़ी। वहां दो व्यक्ति किसी बात को लेकर आपस में बहस कर रहे थे। बहस इस बात को लेकर थी कि पिछली रात शराब की बोतल पर जो खर्च हुआ, उसका आधा खर्च एक व्यक्ति अदा नहीं कर रहा था। जब मैंने ध्यान से देखा तो पाया कि वह वही भिखारी है परंतु इस समय इसकी जुबां कैंची की तरह चल रही थी।

गांव बागा डा. मेहंदोबाग, जिला सिरमौर,
हिमाचल प्रदेश

कहानी

फैसला

• चांद दीपिका

वेद मंदिर की सीढ़ियों पर बैठी एक स्त्री बड़े ध्यान से एक ही दिशा की ओर देखे जा रही थी। दिन कभी का ढल गया था। रात की खामोशी सड़क पर धीरे से उतर आई थी। इक्का-दुक्का ट्रक सड़क से गुजरता तो उसमें गति होती, तत्पश्चात् सिर झुकाकर फिर विचारमग्न हो जाती।

"मां जी भीतर चलिए। गेट बंद करने का समय हो चला है।"

"भीतर!" स्त्री ने चौंक कर कहा।

"देख नहीं रहीं रात हो चली है।" लड़के ने मधुर आवाज में कहा।

"बेटा, आप गेट बंद कर लो। मेरा क्या है छिंदा आ जाए तो मैं भी चली जाऊंगी।"

"छिंदा!"

"छिंदा, सुरेंद्र मेरा बेटा और कौन! बाजार अखरोट बादाम, अनारदाना तथा और भी अन्य सौगातें। पति-पत्नी गए हैं अब तो वो आते ही होंगे।"

लड़का गया नहीं। फिर कुछ सोच उसने कहा- "मां जी आप भीतर चलकर कमरे में बैठ तो जाएं। मैं सड़क की ओर खुलने वाली खिड़की खोल दूंगा। बाहर का सब कुछ दिखाई देता रहेगा।"

"नहीं बेटा तुम जाओ मैं यही ठीक हूं।"

स्त्री पुनः विचारों में खो गई।

वैष्णो देवी की यात्रा चाव से करके आई थी। लाटां वाली माता के दर्शनों की आस वर्षों पाले बैठी थी। सुरेंद्र के जन्म से भी बहुत पहले सुरेंद्र ने एक बार चलने को कहा था और वो तैयार हो गई थी। यात्रा बहुत बढ़िया थी। खुले दर्शन हुए थे। दो पग चलने को आतुर मंगला अपने पैरों भवन जा पहुंची थी। सुरेंद्र ने कहा भी था- मां पालकी किए देता हूं। आप से चढ़ा नहीं जाएगा।

"देख लूंगी बेटा। अभी तो चलती हूं। थक गई तो पालकी कर लूंगी।"

पालकी की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। संगत के साथ 'जै माता' के जयकारे लगाती मंगला ने भवन जाकर ही दम लिया था। हाथी मत्था, अद्‌ध कुंवारी, भैरोघाटी स्थान-स्थान पर माथा टेकती वो बहू-बेटे के साथ बस में बैठ वेद मंदिर के पास उतरी थी।

सुरेंद्र ने कहा था- मां तुम यहां पीपल के नीचे बैठ पीठ सीधी कर लो। हम तनिक मार्किट चक्कर लगा आते हैं।

सुरेंद्र पत्नी के साथ चला गया था। मंगला विचारों में पुनः माता के भवन की सीढ़ियां चढ़ने उतरने लगी।

"मां जी...।" खड़े-खड़े लड़के के धैर्य का बांध टूटने लगा था।

"बेटा तुम ठंड में ठंडे क्यों हो रहे हो? मैं यहां ठीक हूं।"

लड़के ने उसकी बांह पकड़ साहस करके कहा- मां जी बिजली चली गई है। बिजली चमकने लगी है। यदि आप अब भी न उठीं तो हम दोनों वर्षा की तेज बौछारों से भीग जाएंगे।

"सुरेंद्र!" स्त्री आकाश की ओर देख परेशान हो गई।

"सुरेंद्र भाई साहब नहीं आएंगे।" लड़के ने उसे खींच कर चलाते हुए कहा, "वो हमारे दफ्तर में पांच हजार दान दे आपको यहां वृद्ध आश्रम में छोड़ गए हैं।"

वर्षा सचमुच जोर की आई थी तब तक लड़का स्त्री का हाथ पकड़ वेद मंदिर के पिछले गेट से भीतर आ चुका था।

कुछ प्रौढ़, कुछ वृद्ध स्त्री-पुरुष इन्वर्टर की रोशनी में एक छोटे से हॉल में सिगड़ियां ताप रहे थे। एक अनजान स्त्री को देख सभी उस ओर देखने लगे।

"यह मेरी मौसी हैं पंजाब से मुझे मिलने यहां आई हैं।" लड़के ने मौका संभाल कहा।

रात मंगला ने सूली पर काटी

जब से उसकी समधिन शाहनी घर में आई थी, घर में अव्यवस्था फैल गई थी। तीन बेटों की मां शाहनी अपना घर उजाड़ बेटी का घर बरबाद करने आई थी। आरम्भ में मंगला शाहनी को पहचान न पाई। मीठी छुरी बन वो उसके घर का सुख-चैन लूटती रही। कभी लड़की को उलटी-सीधी सलाह देती तो कभी दामाद के कान भरती। लड़का तो पहले ही पत्नी का गुलाम था। देखते-भालते हुए भी अंधा बन गया। मंगला जितना शाहनी से पिंड छुड़ाने का प्रयास करती, शाहनी जोंक बन उतना ही उसका खून चूसने लगी।

प्रातः वृद्ध आश्रम के प्रबंधक आए थे। मंगला को मृतप्राय

पड़ा देख दुखद स्वर में बोले, बहन होश करो। जो हुआ सो हुआ। आजकल बच्चों के खून सफेद हो गए हैं। बेटे खराब हों तो बहुएं कहां सगी होती हैं। बाहर वालों को तो कानों खबर होनी चाहिए।

शाहनी बेटी से मिलने आई थी। देखते मालकिन बन बैठी। दामाद और बेटी को उसने गिद्ड़सिंघी सूंघा वश में ऐसा किया कि हंसता-खेलता घर बारूद का ढेर होकर रह गया। मंगला की किसी ने आवाज तक न सुनी थी। लसूड़े की भांति लसेड़ शाहनी उसकी गर्दन के चारों ओर लगातार फंदा कसे जा रही थी।

मंगला लाज-शर्म के मारे जहर पिए जा रही थी। पर अब तो समुद्र की सीमाएं भी कम पड़ने लगीं।

धोखा, फरेब, विश्वासघात !

मंगला का हृदय चीत्कार उठा था।

पत्थर की प्रतिमा बनी मंगला को लड़के ने झिंझोड़कर जगाया था। "तीन दिन हो गए हैं पानी की बूंद तक मुंह में गए। पहले कुछ खा-पी तो लो फिर जुल्म से मुकाबला करने को भी सोचेंगे।

लड़के ने जबरदस्ती ग्रास मुंह में डाल उसे खाना खिलाते हुए प्यार से कहा।

एक अपना बेटा था पढ़ा-लिखा। चाव से उसकी शादी की थी। पराया बन अनजान जगह में छोड़ चला गया था। यह लड़का अपरिचित अनजान होते हुए भी अपना था। भूखे-प्यासे बैठा उसके खाने की प्रतीक्षा किए जा रहा था।

मंगला के आंसू बह चले थे। एक अनजान लड़के के स्नेह के आगे उसने जिद्द, आक्रोश के हथियार फेंक डाले थे।

"बेटे मैं लुट गई। बरबाद हो गई।"

मंगला रोती रही। अपने आपसे लड़ती रही। अनाज ने शरीर में जा शक्ति दी थी। और प्यार ने घावों पर मरहम-पट्टी का काम किया था।

मंगला ने लड़के रजिंद्र की हथेली पर अपना कड़ा रख कर कहा था- बेटे मैं तो बाहर सुनार के पास जाने से रही। तुम स्वयं इसे बेचकर रुपये ले आओ।

सांझ रजिंद्र ने पुनः कड़ा उसकी हथेली पर धर उत्तर दिया- सुनार की दुकान पर मैं मन-ही-मन सौ बार चढ़ा और उतरा। मन ही न माना। अपनी मां का कड़ा किसी और को बेचने का। मेरे पास तनख्वाह का दो हजार रुपये पड़ा है। आप उसे ले अपना काम चला लें। मैंने आपकी टिकट कटवा दी है। वहां जाकर आप डरना नहीं। घर गृहस्थी आप की है। बाहर वाला कौन होता है उसमें दखल देने वाला?

मंगला ने रजिंद्र की आंखों में झांका। उसकी आंखें नम थीं। पलभर को उसे लगा जैसे सुरेंद्र का पिता, उसका पति सामने खड़ा हो कह रहा हो- बाहर वाला कौन होता है दखल देने वाला। उसने लड़के को वक्षस्थल से लगा लिया।

रात गए मंगला रजिंद्र को साथ ले गांव पहुंची थी। उसकी



सहेली उसे देख उससे लिपट खुशी से रो पड़ी- मंगला तुम ! हमने तो सुना था कि तू वैष्णो देवी की चढ़ाई चढ़ते घोड़े से गिरकर मर गई। शुक्र है तू सही सलामत लौट आई। यहां तो पूरे गांव में मातम पड़ गया था। घर-घर चूल्हा नहीं जला। समूचा गांव तेरे लिए आंसू बहा रहा है।

लाजो मंगला को भीतर ले आई। अंदर आ मंगला के चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही लाजो घबरा गई- यह क्या हाल बना रखा है। कहीं अस्पताल से उठकर तो नहीं आ रही। फिर मंगला के पीछे खड़े लड़के पर दृष्टि पड़ते ही वह पुनः बोली- यह लड़का !

"यह रजिंद्र है। कुछ न होते हुए भी सब कुछ। यह न होता तो तेरी मंगला...।"

लाजो ने उसके अधरों पर उंगुली धर कहा- बस... बस आगे. .. न कहना। मुझे तुझे बदहाल देख अनुमान हो चला है। बस तुम्हारे मुंह से सुनने की देर है।

"लाजो दोनों पति-पत्नी के मन में पता नहीं क्या था! या फिर शाहनी की मुझे घर-से-बेघर करने की कोई चाल थी। यह दोनों पति-पत्नी मुझे जम्मू वृद्ध आश्रम में बाजार सौगातें खरीद लाने का बहाना कर छोड़ गए। जाते-जाते कह गए यह हमारी दुखियारी मौसी है। इसका हमारे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। आप इसे अपने यहां रहने का स्थान दे दें। हमारे से जो कुछ भी जुड़ता-बनता रहेगा, आपको भेजते रहेंगे। यह यहां अपने लोगों में खुश रहेगी। इसका दिल बहल जाएगा।

"तो यह बात थी।" लाजो का मुंह आश्चर्य से खुला रह गया, "तुम्हारी समधिन के मुंह से तुम्हारी अचानक मौत की खबर सुन मुझे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। ऐसा लग रहा था कि दाल में कुछ काला अवश्य है। पर मंगला तू चिंता न कर। तू सही समय अपने घर अपने लोगों में आ पहुंची है।"

"मंगला बहन आप जीवित हो!" यह लाजो के पति सतवंत सिंह की आवाज थी। जो बाहर से आती बोलने की आवाजों को सुन

गहरी नींद से उठ कर आया था। "यहां तो आपका किरया-कर्म सब हो गया। कल धर्मशांत तथा गांव बिरादरी भाईचारे में भोज है।

मंगला हतप्रभ रह गई। लाजो ने पति से कहा- देखो जी आप भी क्या ले बैठे। बिचारी लम्बा सफर करके आई है, उसे भीतर जाकर कमर तो सीधी कर लेने दो। बातों का क्या है वो तो प्रातः भी हो जाएंगी।

रात्रि आंखों में कट गई थी। मंगला के मुंह से सारी कहानी सुनकर लाजो तरल स्वर में बोली- तुम इतना कुछ सहन करती रही और मुझे भनक तक न लगनी दी। मंगला मैं तेरी कोई पराई तो नहीं बचपन की सहेली हूं।

सतवंत ने छलछला आए नेत्रों को पोंछ कहा- पंजाब सिंह मेरा अभिन्न मित्र था। आपने तनिक संकेत तो कर दिया होता फिर हम दोनों उन सभी से निपट लेते। मैं देखता कौन मेरी देवी तुल्य बहन पर कैसे जुल्म ढाता?

पौ फटने से पूर्व मंगला उठ बैठी। पाठ-पूजा कर वह तैयार हो गई थी। लाजो ने जिद्द कर उसे नाश्ता करवाते कहा था- डर, रो-धोकर भी कहीं जीवन बीता है पगली। तुम अकेली नहीं हम सभी तुम्हारे साथ हैं इस रजिंद्र की ओर देख कल तक तू इसे जानती तक न थी। यह तेरे दुःख में दुःखी हो कितनी दूर जम्मू से चल तेरे साथ आया है। हम यहां हैं न। तुम्हारी समस्या का अवश्य समाधान करेंगे।

मंगला की आंखों से आंसू टपकते रहे।

"तू पढ़ी-लिखी है किसी की आश्रित नहीं। चालाक लोगों में घिर कमजोर पड़ गई है। उठ अपने अधिकार के लिए लड़। सारा गांव तुम्हारा साथ देगा।"

रजिंद्र को साथ ले जब मंगला लाजो और सतवंत सिंह सहित अपने घर की गली में प्रविष्ट हुई, चारों ओर खासी चहल-पहल थी। एक ओर देगबरों (बड़ी-बड़ी देगों) में खाना पक रहा था जिसकी सुगंध ने पूरे घर को सुवासित कर डाला था। सफेद कपड़े पहने स्त्री-पुरुष घर में आ रहे थे। आंगन-कमरे में सभी भरे पड़े थे। बड़े कमरे में तो तिल धरने योग्य स्थान तक न था। लाजो को भीतर आते देख भीतर बैठी स्त्रियों में तनिक हलचल हुई। इधर-उधर सरक कर उसके बैठने की शीघ्र ही जगह बना दी गई।

"सुरिंद्र जी अपनी दिवंगत माता का ध्यान कर यहां पानी छिड़को, यहां पुष्प चढ़ाओ।" मंत्रोच्चारण के मध्य पंडित जी की आवाज सुन लाजो के साथ आती मंगला ने अपने चेहरे से घूंघट उठा चिल्ला कर कहा- कौन मां.... किसकी मां! जीवित मां को छल-कपट से जम्मू वृद्ध आश्रम में छोड़ यहां उसके वैष्णो देवी की राह घोड़े से गिर-मर जाने की झूठी अफवाह फैला मगरमच्छ के आंसू बहाकर धरमशांत का झूठा नाटक किया जा रहा है। पंडित जी मेरी ओर ध्यान से देखो मैं मंगला हूं।"

मां का चंडी जैसा रौद्र रूप देख सुरेंद्र सिर से लेकर पैर तक कांप उठा। उसके हाथों पकड़ा पानी भरा लोटा छूटकर फर्श पर जा गिरा।

मंगला जीवित है ! भीड़ में जैसे बम फटा। कलयुग-घोर कलयुग।! बहू तो बहू पुत्र भी पराए हो गए। कमजोर दिल वाली औरतें तो मारे भय के रोने लगीं। शोर-शराबे की आवाज सुन सरपंच जी गांव के जाने-माने गणमान्य लोगों सहित आंगन से उठ बड़े कमरे अर्थात् बैठक में चलकर आ गए।

शाहनी अपनी लड़की के साथ जुड़कर बैठी थी। अपने नेत्र रूमाल से साफ कर लड़की पीठ पर हाथ रख शेष औरतों को सुना कर कह रही थी- मेरी बेटी मत रो। विधाता को शायद यही मंजूर था। तेरे साथ बेचारी की यही अंतिम यात्रा करनी लिखी थी। मंगला की कड़कड़ती आवाज शाहनी के कानों में भी जा पड़ी थी। उठकर खिसकने वाली ही थी कि मंगला ने बांह से पकड़कर कहा- आग लगा भागी कहां जा रही है। अपने दामाद-बेटी को भी तो साथ लेती जा। धन सम्पत्ति हड़पने के लिए तूने एक कांटा निकाल फेंकना चाहा था। ले मैं स्वयं अपने हाथों सभी कांटे निकाल तुझे पकड़ा रही हूं।

फिर सरपंच जी तथा गणमान्य लोगों की ओर उसने निःश्वास भर कहा- मैं बहू-बेटे के लिए मां नहीं मौसी हूं। जम्मू वृद्ध आश्रम में इनके हाथों भरे फार्म तथा रसीद पढ़ आपको सब ज्ञात हो जाएगा। रजिंद्र बेटे इन्हें कागज पढ़ा दो।

रजिंद्र के हाथों कागज ले सरपंच जी ने पढ़कर औरों को सौंप दिए।

मंगला ने सरपंच जी की ओर देखा। भीगे स्वर में कहा- जब इन्होंने मुझे जीते जी मार ही डाला तो फिर यह मेरे बहू-बेटे कैसे? मैं सबसे पहले इस कलयुगी बेटे सुरेंद्र को भरी बिरादरी के सामने फारखती देती हूं। अपने स्वर्गीय पति की हवेली, चल-अचल धन-सम्पत्ति जो मेरे नाम है उससे बेदखल करती हूं।

मंगला कुछ क्षण सांस लेने को रुकी और बिरादरी भाईचारे की ओर देख शांत स्वर में बोली- आज आप खाना मंगला की धरमशांत का न खाकर एक नई खुशखबरी का खाकर जाएंगे। मैं हवेली का कुछ भाग अपने रहने के लिए छोड़ शेष अपनी सखी लाजो और उसके पति सतवंत सिंह को अपने स्वर्गीय पति पंजाब सिंह की स्मृति में लड़कियों का स्कूल खोलने के लिए भेंट कर रही हूं। इस स्कूल को लाजो चलाएगी। मैं रजिंद्र और सतवंत सिंह जी इसके सहायक होंगे। मैं तो मान-सम्मान, लाज-शर्म को लेकर शाहनी और बहू-बेटे के अत्याचार सहती रही। पर मैं नहीं चाहती कि आज के बाद गांव की इस स्कूल में कोई पढ़ी-लिखी लड़की लाचार मंगला बने तथा शाहनी जैसे अनपढ़ चालाक लोगों के हाथों शिकार बन अपने भाग्य को रोती तथा तिल-तिल घुट मरती रहे।

मकान नं. 323, कोटली कॉलोनी, जम्मू तवी,
जम्मू-कश्मीर-180 005 मो. 0 94196 94912

कहानी

एक जेब मैली सी

● एल.आर. शर्मा

दोपहर को दो बजे जब मैं मेवाड़ ढाबे में पहुँचा, तो थककर चूर हो चुका था। शहर के एक शोरूम से दूसरे तक, फिर तीसरे, इस प्रकार आज मैंने सात शोरूमों के ऑर्डर लिए। क्या कहूँ, सेल्ज मैनेजर का काम ही ऐसा होता है। अब भूख जोरों से लगी थी। इस समय ढाबा ग्राहकों से खचा-खच भरा हुआ था। वैसे तो भवानीपुर-खैरगढ़ राजमार्ग पर कई ढाबे हैं, पर मेवाड़ ढाबे की बात ही कुछ और है। यह ढाबा भवानीपुर शहर से चार किलोमीटर बाहर है और अपनी विशेष पहचान बनाए हुए है। इसकी पहचान इसके खास परांठों की वजह से है, जो 'प्रताप परांठों' के नाम से जाने जाते हैं। इन 'प्रताप' परांठों में ऐसा क्या है जिससे ये अन्य परांठों से भिन्न हैं? यह जानने के लिए ढाबे के मालिक के बारे में बताना उचित रहेगा, जिसने इन परांठों का आविष्कार किया है। बात यह है कि मेवाड़ ढाबे का मालिक सुजान सिंह राजस्थान के मेवाड़ इलाके से है। सुजान सिंह के पूर्वज महाराणा प्रताप की सेना में काम कर चुके थे। अतः यह महाराणा प्रताप का बड़ा भक्त है। यह इतिहास की बात है कि बादशाह अकबर से लगातार युद्धरत रहने के कारण महाराणा प्रताप को अपने परिवार के साथ जंगलों में रहना पड़ा था। कहा जाता है कि जंगलों में रहते हुए उन्होंने घास की रोटियां तक खाईं थीं। अपने देश के लिए त्याग के ऐसे उदाहरण इतिहास में बहुत कम मिलते हैं। सम्भव है महाराणा प्रताप के ऐसे अनुपम त्याग के सम्मान में ही सुजान सिंह ने अपने ढाबे में पत्तों वाले परांठे बनाने शुरू किये हों। ऐसी कई अटकलें हैं। इन पराठों में साग और पत्ते इतने अधिक होते हैं कि ये देखने में घास की रोटियों जैसे ही लगते हैं। इनमें नाम मात्र का बेसन और आटा मिलाया होता है। एक विशेष रसोईया इनको मिट्टी के तंदूर में बिना घी तेल के पकाता है। जब ये मिर्च की चटनी के साथ परोसे जाते हैं, तो इनकी सुगंधा से पूरा ढाबा महक उठता है। इन्हीं परांठों का नाम 'प्रताप परांठे' रखा गया है। आम ग्राहक इन्हें इसलिए खाता है कि यह एक सस्ता भोजन है। पैसे वाले ग्राहक इन्हें इसलिए पसंद करते हैं क्योंकि बिना घी-तेल के बने ये पत्तों वाले परांठे स्वाद भी हैं और स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक हैं। ऐसे पैसे वाले लोग मिर्च की चटनी के अलावा दहीं तथा मक्खन भी शामिल करके इस दुर्लभ पकवान का भरपूर आनंद लेते हैं। प्रताप परांठों की बढ़ती हुइ मांग को देख दूसरे ढाबे वालों ने भी नकल करने का प्रयास तो कई बार किया, पर मेवाड़ ढाबे का मुकाबला नहीं कर सके। कई ग्राहक सुनाते हैं कि दिल्ली की मशहूर परांठों वाली गली से भी कई ढाबे वाले आकर इनको चख गए, पर वे भी वापस जाकर पालक परांठा और मेथी परांठा से आगे अपनी पाक-कला को नहीं पहुंचा सके। 'प्रताप' परांठों के लिए विशेष पत्ते और साग कहां से आता है, किसी को पता नहीं। सुनते हैं राजस्थान की नम्बर प्लेट वाला एक ट्रक हर तीसरे दिन मेवाड़ ढाबे में एक बोरी छोड़कर जाता है, शायद इसी में साग-पत्ते आते होंगे। कुछ भी हो, प्रताप परांठे ग्राहकों के दिल में समाये हुए हैं। जो इन्हें एक बार खाता है, बार-बार खाने की इच्छा रखता है।

पर मेवाड़ ढाबे में यही एक खूबी हो ऐसी बात नहीं। इस ढाबे के मालिक की अपनी जन्म भूमि मेवाड़ के प्रति आस्था समझिये या उसकी जन्मजात व्यापारिक सूझबूझ कि उसने ढाबे के सामने वाली दीवार पर महाराणा प्रताप का एक विशाल रंगीन चित्र सजाया हुआ है। ढाबे में घुसते ही, सबकी पहली नजर उसी पर पड़ती है। इस चित्र के नीचे एक नक्काशीदार आबनूस का बड़ा सा मेज रखा है, जिस पर पीतल का कछुए के आकार का एक अगरबत्तीदान सजाया हुआ है। इस अगरबत्तीदान में सदैव अगरबत्तियों का एक गुच्छा सुलगता रहता है, जिसकी भीनी-भीनी सुगंध ढाबे में सदैव तैरती रहती है। यह मेज अवश्य किसी राजमहल से लाया गया होगा, क्योंकि इस प्रकार के मेज आजकल की फर्नीचर की दुकानों में नहीं मिलते। इसी मेज की एक ओर सुजान सिंह की कुर्सी और एक छोटा मेज है। मेज पर रोज की बिक्री की नकदी रखने के लिए लोहे का एक गल्ला है। गल्ले के



आगे एक लकड़ी की तख्ती रखी है जिसमें लिखा है - “यहाँ शराब पीना और पीकर आना मना है।” स्वयं सुजान सिंह का व्यक्तित्त्व भी कम आकर्षक नहीं है। छः फुट से ऊँचा कद, उस पर छींटदार राजस्थानी पगड़ी और महाराणा प्रताप की तरह लम्बी मूँछें। इन सबसे ढाबे में ऐसा वातावरण पैदा होता था कि लोग परिवार सहित यहाँ भोजन भी करते और महाराणा प्रताप के समय के इतिहास की चर्चा भी करते।

मुझे ढाबे में आया देख सुजान सिंह ने अपने मुँहबोले नौकर को पुकार लगाई - “अबे झांवें, अगनि बाबू के लिए चार नम्बर का मेज साफ कर और ठंडा पानी रख।” साल भर से ढाबे का नियमित ग्राहक होने के कारण मुझसे सुजान सिंह का घरापा सा हो गया था। फिर वह मेरी ओर देखकर बोला - “क्यों अगनि बाबू, कैसे चल रही है कम्पनी?” मेरे अग्निहोत्री उपनाम को उसने अपनी सुविधा के लिए ‘अगनि’ बना लिया था। मैंने चार नम्बर की मेज की ओर जाते हुए इशारे से सुजान सिंह को कहा कि कम्पनी ठीक चल रही है। सुजान सिंह को नामों की कांट-छाँट की आदत सी थी। अपने इस नौकर को भी वह ‘झांवा’ कहकर बुलाता था, हालांकि इस बेचारे का नाम जुझार सिंह है। उत्तरी भारत में झांवे से पैरों को रगड़कर साफ किया जाता है। हरेक के घर में ‘झांवा’ रखा होता है। मिट्टी से बने इस औजार को कुम्हार वैसे ही तैयार करते हैं, जैसे वे घड़े इत्यादि मिट्टी के बर्तन लगाते हैं। अंग्रेजी में इसे स्क्रबर (Scrubber) कहा जा सकता है। आजकल तो बाजार में प्लास्टिक के कई प्रकार के स्क्रबर आ गए हैं और अब मिट्टी के इस सुन्दर झांवों का प्रयोग प्रायः समाप्त ही हो गया है।

सुजान सिंह की इस नाम-प्रदूषण की आदत का जुझार सिंह बुरा नहीं मानता था। मुझे भी ‘अगनिबाबू’ के संबोधन से कोई ऐतराज नहीं था, बल्कि एक प्रकार से अपनेपन का ही एहसास होता है। मैं जैसे ही बैठा, तो झांवा प्रकट हुआ, बोला - “बाबू जी, परांठा?”

- “हाँ, जल्दी लाओ।” - मैंने कहा
- “एक या दो?”
- “दो और करारे”
- “चटनी?”
- “डबल”।

इतने में एक युवक ने ढाबे में प्रवेश किया। सुजान सिंह की पुकार सुनाई दी - “झांवें, सोच बाबू के लिए भी अगनि बाबू की मेज पर ही पानी रख दे।”

झांवां उस युवक को लेकर मेरी मेज पर आ गया। युवक से बोला - “ये अगनि बाबू हैं, आप इनके साथ ही बैठ जाईये। आप आज देरी से क्यों आए?”

उस युवक ने झांवें को कोई उत्तर नहीं दिया। युवक मेरी उम्र का ही लग रहा था। कद लम्बा, शरीर पतला, चेहरे पर हल्की दाढ़ी थी। उसकी जीन और टी-शर्ट मैली थी जो उसकी दाढ़ी से मेल खा रही थी। मेरी ओर हाथ बढ़ाकर वह बोला - “मेरा नाम सुन्दर लाल सरोच है। ये लोग मुझे ‘सोच बाबू’ कहते हैं।”

“कोई नईं बात नहीं है। मैं अजय अग्निहोत्री हूँ, पर मुझे भी यहां ‘अगनि बाबू’ बुलाया जाता है” - मैंने मुस्कुराकर जबाब दिया। उसके चेहरे पर भी मुस्कुराहट फैल गई।

“आप क्या करते हैं?” - उसने मेरे पास बैठते हुए मुझसे पूछा।

“मैं एक प्रसाधन कम्पनी का सेल्ज मैनेजर हूँ। भवानीपुर शहर मेरा इलाका है।”

“मैं भी भवानीपुर शहर में ही काम करता हूँ। इस ढाबे में पाँच-छः दिनों से आ रहा हूँ। यहाँ खाना सस्ता और साफ-सुथरा है। पहले मैं एक दूसरे ढाबे में खाता था। मैंने अंग्रेजी में एम.ए. किया है। सरकारी नौकरी तो मिली नहीं। अब शहर के निजी विद्यालयों में चक्कर लगा रहा हूँ। कहीं तो मास्टरी मिल जाएगी। पर अभी सभी ने मेरी डिग्री की बजाय मेरे कपड़ों की ओर अधिक ध्यान दिया है।”

मैं उसकी सपाटबयानी पर हंस दिया। हम दोनों ने दो-दो परांठे चटनी के साथ खाए। मैंने झांवे को चाय लाने को कहा। सरोच बोला उठा - “मेरे लिए चाय नहीं।” फिर वह अपनी जेब पर हाथ फेरने लगा, जो भरी-भरी सी दिख रही थी। मैंने सोचा, शायद खर्चे में बचत करता होगा। मैंने अनुरोध किया - “आज मेरे साथ पी लो यार।”

वह चुप रहा। झांवा चाय रख गया। हम दोनों चाय सुड़कने लगे। मिर्च की चटनी के बाद मीठी चाय बड़ी स्वाद लग रही थी।

“कहां रहते हो” - मैंने पूछा।

उसने सड़क पार की ओर इशारा करते हुए कहा - “उधर, ईसपुर गांव में, रौनक सिंह नम्बरदार के घर।”

मैंने सोचा, अब वह मेरे बारे में पूछेगा, पर उसने नहीं पूछा। सुजान सिंह ठीक ही कहता था - सोच बाबू सोचता ज्यादा और बोलता कम है। शायद शब्दों में भी किफायत करता है। हम दोनों उठ गए। मैंने बिल के पैसे दिये। सरोच ने कोई ऐतराज नहीं किया - औपचारिकता निभाने के लिए भी नहीं। मैंने देखा उसकी फूली हुई जेब में बकसुआ लगा हुआ है। उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए मैंने टोका - "तुम्हारी जेब से माल बाहर निकलने को तैयार है, सरोच।"

"हाँ जी, इसमें बहुत नोट भरे पड़े हैं, कई नए हैं, कई पुराने। पर मैंने जेब पर बकसुआ लगा रखा है।" यह कहकर वह चला गया।

उसके उत्तर ने जिज्ञासा पैदा कर दी। मैं उसके बारे में और जानना चाहता था। सुजान सिंह खाने के पैसे काटते समय हमारा वार्तालाप सुन रहा था। बोला - "अगनि बाबू, मैंने कहा था कि यह बोलता कम है। बहुत पूछने पर इसके बारे में इतना ही पता चल सका कि घर में माँ-बाप और एक कुंवारी बहन है। बड़ी बहन का ब्याह कर दिया है। बाप कभी अध्यापक था, अब रिटायर हो कर घर में बैठा है। यहां से साठ किलोमीटर दूर जैतापाटन नामक गांव में है इसका घर। बाप ने अपनी कमाई मकान बनाने और बड़ी बेटी के ब्याह में लगा दी, अब इसको हर महीने पैसे भेजने पड़ते हैं।

इतना जानकर मुझे सरोच से सहानुभूति सी होने लगी, मन में आया कि उसकी सहायता करूँ। पर सोचा, मैं भी कौन सा अच्छी नौकरी पर हूँ। मैं भी तो संघर्ष ही कर रहा हूँ। फार्मेसी में स्नातक होने के बावजूद एक कम्पनी के शैम्पू, शेविंग क्रीम, नहाने का साबुन व डिटरजैन्ट की बिक्री बढ़ाने के लिए भवानीपुर के सभी शोरूमों में घूम-घूम कर ऑर्डर इकट्ठे करता हूँ। अभी मेवाड़ ढाबे में प्रताप परांठे का लंच करके दोबारा भवानीपुर के काबुली बाजार में जाने वाला हूँ, जहाँ के तीन शोरूम के अभी ऑर्डर लेने हैं।

उसके उत्तर ने जिज्ञासा पैदा कर दी। मैं उसके बारे में और जानना चाहता था। सुजान सिंह खाने के पैसे काटते समय हमारा वार्तालाप सुन रहा था। बोला - "अगनि बाबू, मैंने कहा था कि यह बोलता कम है। बहुत पूछने पर इसके बारे में इतना ही पता चल सका कि घर में माँ-बाप और एक कुंवारी बहन है। बड़ी बहन का ब्याह कर दिया है। बाप कभी अध्यापक था, अब रिटायर हो कर घर में बैठा है।

अतः मैं बस पकड़कर पन्द्रह मिनट में भवानीपुर के काबुली बाजार में पहुँच गया। सौ साल पहले इस बाजार में काबुल के पठान मेवे-किशमिश बेचते थे, ऐसा सुनते हैं। तब से यह काबुली बाजार के नाम से जाना जाता है। अब तो केवल नाम ही बाकी है। मैं "बंसल आधुनिक भण्डार" में घुस गया, जिससे मुझे इस महीने का ऑर्डर लेना था।

"देखो अग्निहोत्री जी" - भण्डार का मालिक मुझे देखते ही बोला - "जब तक आपकी कम्पनी टी.वी. पर अपने उत्पादों के विज्ञापन नहीं दिखाती, तब तक आपके ब्रैंड बाजार में बिक्री नहीं पकड़ सकते। हम आपका माल इससे अधिक नहीं बेच सकते।"

मैंने अपनी कम्पनी की गुणवत्ता का बखान किया - "पर बंसल साहब, आप हमारी क्वालिटी तो देखो। हमारे इस तितली ब्रांड डिटरजेंट से गृहणियों के हाथों पर बुरा असर होने की आज तक कोई शिकायत नहीं है। हमारे मेनका ब्रांड नहाने के साबुन में मारकीट के सब साबुनों से अधिक टी.एफ.एम. है .....

"अरे यार टी.एफ.एम. को मारो गोली। गृहणियों के हाथ छिल जाऐं या शैम्पू लोगों के बालों को झाड़ू बना दे, इसको कौन देखता है? लोग देखते हैं टी.वी. पर चकाचौंध विज्ञापन और आकर्षक पैकिंग। अंदर जो भी माल भरा है, सब बिकता है। शाहरुख खान एक शेविंग क्रीम का विज्ञापन करता है। क्या आप सोचते हैं शाहरुख खान उस शेविंग क्रीम को इस्तेमाल करता होगा? पर जब से यह विज्ञापन आ रहा है, तब से वह शेविंग क्रीम इतना बिक रहा है कि हमारे पास उसका स्टॉक खाली ही रहता है। तो भई, अपनी कम्पनी को लिखो .....

इतने में उसका एक ग्राहक आया और वह अपना वाक्य अधूरा छोड़कर उस ग्राहक के पास चला गया। मुझे भी वहां से उठना पड़ा। मैं टी.वी. पर विज्ञापन के प्रभाव के बारे में सोचने लगा। आजकल गुणवत्ता की बजाय उत्पाद बेचने की कला का बोल-बाला है। क्या बाजार का यह कानून व्यक्ति के ऊपर भी लागू होता होगा? तभी भवानीपुर से बाहर मेवाड़ ढाबे के प्रताप ब्रैंड परांठे इतने मशहूर तो नहीं? क्या सुजान सिंह भी बेचने की कला जानता है? या उसकी मेवाड़ के प्रति आस्था ही अनजाने में उसकी बेचने की कला बन गई है?

इसी उहा-पोह में मैं भवानीपुर के काबुली बाजार से वापस आ गया और सीधे मेवाड़ ढाबे का रुख किया। सरोच से मिलने की इच्छा तीव्र हो चुकी थी, पर पहले मैं चाय पीना चाहता था। बंसल शोरूम वाले ने तो आज चाय को भी नहीं पूछा। ढाबे में ग्राहकों की भीड़ में प्रोफैसर चटर्जी को बैठा पाया। वे हाथ हिलाकर मुझे अपने पास बुला रहे थे। इतने में सुजान सिंह मेरे पास आकर बोला - "अगनि बाबू, चौटर साहब आपको बड़ी देर से पूछ रहे थे। आप बैठिये, मैं झांवे के हाथ आप लोगों को चाय भेजता हूँ। मैं चटर्जी साहब के पास बैठकर उनकी बातों को सुनने लगा, पर मेरा मन

कहीं और खोया हुआ था।"

... सुजान सिंह ने चटर्जी का "चौटर" बना दिया। झांवा, अगनि, सोच और अब चौटर ..... ये सुजान सिंह भी सबके नामों के साथ खिलवाड़ करता है। पर उसका बुरा कोई नहीं मानता, मानो वह कोई अबोध बालक हो, जैसे उसको अभी नामों का ठीक से उच्चारण करना नहीं आता और फिर वे प्रताप परांठे ..... अपने ढाबे की खूबियां बढ़ाने का कितना बढ़िया तरीका है ..... ये तो ऐसा विज्ञापन है, जिसमें उपभोक्ता स्वयं भी भाग ले रहे हैं ....। मेरे मन में 'बंसल आधुनिक भण्डार' के मालिक का टी.वी. विज्ञापन वाला भाषण अभी तक घूम रहा था। मैंने अपने सिर को हल्का सा झटका दिया ताकि मैं इस विज्ञापनवाद के लफड़े को थोड़ी देर के लिए भूल जाऊँ।

प्रो. चटर्जी भवानीपुर के एक कॉलेज में इतिहास पढ़ाते हैं। मैंने इनसे बात छेड़ी - "चटर्जी साहब, ये सुजान सिंह तो मार्केटिंग का गुरु लगता है। इसने सबके नाम इस ढंग से बदल दिये कि अपनेपन का अहसास होता है। लगता है, जैसे हम ढाबे में नहीं अपने मुहल्ले में बैठे हों और ये हमारा निकट का पड़ोसी है।" वे बोले, "मैं तो इस ढाबे में पिछले तीन साल से खाना खा रहा हूँ। मैं छुट्टी वाले दिन ऐतिहासिक स्थानों की खोज में इस तरफ भी घूमने आ जाता था। कभी-कभी इस ढाबे में भी खाना खाता था। साथ ही सुजान सिंह से राजस्थान के बारे में बातें सुनता रहता था। यह किस्से सुनाने में माहिर है। कुछ समय पहले मैंने यहीं पास में रहना शुरू कर दिया। पहले ये ढाबा अन्य ढाबों की तरह ही था। सुजान सिंह का पहनावा भी सादा ही था। धीरे-धीरे इसने अपना रूप भी बदल दिया और ढाबे का भी। यह बदलाव मैंने स्वयं देखा है। अगर यह आदमी पढ़ा-लिखा होता, तो या तो लेखक होता या अभिनेता। गजब का कलाकार है, पर आदमी है चौबीस कैरेट का।"

प्रो. चटर्जी भवानीपुर के एक कॉलेज में इतिहास पढ़ाते हैं। मैंने इनसे बात छेड़ी – "चटर्जी साहब, ये सुजान सिंह तो मार्केटिंग का गुरु लगता है। इसने सबके नाम इस ढंग से बदल दिये कि अपनेपन का अहसास होता है। लगता है, जैसे हम ढाबे में नहीं अपने मुहल्ले में बैठे हों और ये हमारा निकट का पड़ोसी है।"

प्रो. चटर्जी के साथ चाय पीकर मैं सरोच के पास जाने के लिए सड़क के उस पार निकल आया। सोचा, शाम के सात बज चुके हैं, शायद वह घर ही मिल जाए। मैं सरोच के पास अर्थात् नम्बरदार रौनक सिंह के घर पहुँचा, तो सरोच एक लड़के को पढ़ा रहा था।

"नसीब, अब तू छुट्टी कर। आज इतना ही काफी है।" - मुझे आया देख सरोच ने उस लड़के की भगा दिया। मुझसे बोला - "आईये जी आइये। मैं नम्बरदार रौनक सिंह के बेटे नसीब सिंह को पढ़ा रहा था। मैं इसे अंग्रेजी, हिसाब, हिन्दी .... अर्थात् सभी कुछ पढ़ाता हूँ। .... आपने मुझे ढूँढ ही लिया। यहीं बैठ जाईये।" - उसने एक स्टूल की ओर इशारा दिया।

"हाँ" - मैंने उत्तर दिया, - "तुमसे मिलने चला आया, तुम्हारी जेब के नोटों के बारे में जानने के लिए। काफी नोट कमा लेते हो, यार, तभी तो तुम्हारी फूली हुई जेब पर नजरें अटक जाती हैं। जरा जेबकतरों से सावधान रहना। पर इतने पैसे जेब में क्यों रखते हो, भई?"

"ओह" वह मुस्कुराया - "अजी, ये पैसे वाले नोट नहीं हैं जी। ये नोट तो नेताओं के लिए गए सिफारिशी पत्र हैं, जो मैं कई सरकारी नौकरियों के साक्षात्कारों के सिलसिले में इकट्ठे करता आया हूँ। पता नहीं कब किस नोट की जरूरत पड़ जाए, इसीलिए जेब में रखता हूँ।"

"पर सरोच, तुम्हारी तो एम.ए. है न, अंग्रेजी में, और वो भी फर्स्ट डिविजन में, फिर नौकरी लगने में ...."

"मुश्किल नहीं होनी चाहिए, यही न?" - उसने मेरी बात बीच में ही काटते हुए कहा। "संक्षेप में बता दूँ, लिखित परीक्षा में तो हर बार निकल जाता हूँ, पर ये साली इंटरव्यू तो नेताओं के हाथ में ही होती है।"

सरोच ठीक कह रहा था। लिखित परीक्षा पास करना अपने वश में है, पर साक्षात्कार में तो आजकल साक्षात् मंत्री की सिफारिश चाहिए, यहां तक कि प्राईवेट स्कूलों और कॉलेजों में भी।

मैंने आगे पूछा - "गांव में तो नेताओं से मिलना आसान होता है, वहां के नेता तो सबको करीब से जानते हैं।"

- "हाँ, जानते तो हैं। पर यही बात मेरे आड़े आती है। मेरे गांव का प्रधान छेदी लाल ठाकुर मुझे अच्छी तरह जानता है। मेरे पिता जी ने उसे पढ़ाया है।"

- "वाह, फिर क्या कहने। सइयाँ भये कोतवाल वाली बात बन गई।" - "अरे नहीं, अगनि बाबू" - सरोच ने भी सुजान सिंह की तरह मेरा बिगड़ा हुआ उपनाम इस्तेमाल किया - "छेदी लाल मेरे पिता जी का एक नालायक और बिगड़ैल छात्र था। वे उसे अकसर पिछले बैंच पर खड़ा करते थे।"

- "क्या पढ़ाते थे तुम्हारे पिता जी?"

- "राजनीति शास्त्र। बारहवीं कक्षा का यह उद्दण्ड छात्र छेदी लाल पिता जी से चिढ़ता था। उसने एक बार उनको रास्ते में रोककर धमकी दी थी - "मास्टर मोहन लाल, राजनीति शास्त्र की पढ़ाई में मैं भले ही पिछाड़ी हूँ, पर याद रखना असली राजनीति यानि कि नेतागिरी में जरूर अगाड़ी रहूँगा। तब तुझे देख लूँगा।"

- "यह तो निरा गुण्डापन हुआ। फिर क्या हुआ?"

- "फिर क्या, यह बहुत पहले की बात थी, पिता जी बात को भूल गए। समय बीता और रिटायर हो गए। मेरी अंग्रेजी में

एम.ए. हो गई, वो भी प्रथम दर्जे में। डी.ए.वी. कॉलेज में मैं ही शीर्ष पर था। पिता जी खुश। गांव में नया मकान बना लिया, एक बेटी का ब्याह कर दिया। एक बेटी रह गयी। उन्होंने सोचा, तब तक बेटा नौकरी लग ही जाएगा।" - वह चुप हो गया। इतने में वह लड़का नसीब सिंह मुरादाबादी पीतल के बड़े गिलासों में दूध ले आया। ये गांव वाले भी अजीब होते हैं। शहर के इतना निकट रहने पर भी पुरानी विरासत से चिपके रहते हैं। आज के युग में भी पीतल के ये मुरादाबादी गिलास! मुझे दूध का गिलास उठाने में देर करते देख सरोच बोला - "दूध पी लो, अगनि बाबू, ठंडा हो रहा है। इन गिलासों में दूध पीने का आनंद कुछ और ही है, जैसा कि ...."

- "जैसा कि" - मैंने बीच में टोका

- जैसा कि मेवाड़ ढाबे में घास के परांठे खाने में आता है - वह बोला। दूध पीते हुए मैंने पिछली बात को पुनः छेड़ा - "छेदी लाल कौन होता है तुम्हारी नौकरी में टांग अड़ाने वाला?"

- "छेदीलाल? अरे साहब वह अब हमारी पंचायत का प्रधान है और ऐसा वैसा प्रधान नहीं है। विधायक गणपत कम्बोज के नाक का बाल है और मंत्री जी के घर में भी महीने में दो बार हाजरी भरता है और खाली हाथ थोड़े ही जाता होगा?"

- "अच्छा ऐसी बात है? पर तुम्हें कैसे पता चला?" - मैंने पूछा

- "इंटरव्यू की चिट्ठी मिलने पर मैं सीधा शिक्षा मंत्री प्रोफेसर चमन लाल गौड़ से मिला। पिता जी का रुक्का ले गया था, ये मंत्री उनके सहपाठी रह चुके थे।" मंत्री ने रुक्का पढ़ कहा, - बोले "विधायक की चिट्ठी लेकर आओ, काम हो जाएगा।"

- "फिर क्या तुम विधायक के पास गए?"

- "मैं विधायक गणपत कम्बोज के घर गया। उसने हुकम दिया, बी.डी.सी. चेयरमैन का नोट लेकर आओ। जब मैं बी.डी.सी. चेयरमैन के पास पहुँचा, तो उसने पंचायत प्रधान का नोट मांग लिया।"

- "बड़ी लम्बी जंजीर है। अच्छा फिर आगे?"

- "फिर आखिरकार छेदी लाल ठाकुर, अपने पंचायत प्रधान के पास पहुँच गया। उसने भी हुकम सुना दिया - अपनी वार्ड के पंचायत के सदस्य का नोट लेकर आओ।"

- "गांव की राजनीति में भी लाल फीताशाही? बड़े घाघ बन गये हैं ये लोग भी। अच्छा फिर आगे?"

- "फिर मैं अपनी वार्ड के पंचायत सदस्य दुर्गा दास के घर गया। वहां कई लोग बैठे बातें कर रहे थे। मुझे देखकर दुर्गा दास बड़ी कुटिलता से मुस्कुराया, बोला - कैसे आए हो मास्टर मोहन लाल के सुपुत्र?" मैंने आने का कारण बताया। उसने वहां बैठे सब लोगों को सुनाते हुए ऊँचे स्वर में कहा - "देखो, देखो - वोट देती बार तो इसके पिता मास्टर मोहन लाल कहता था कि दुर्गा दास रेत-बजरी का माफिया चलाता है, अब अपने लड़के को सिफारिशी नोट लेने को भेज दिया। अब किस मुँह से लड़के को भेजा? इस



पर सब हंसने लग। मेरे मुँह पर जैसे जोर का थप्पड़ लगा। मुझे अंदर तक उसकी आवाज सुनाई दी।"

- मैंने पूछा - "ये क्या, तुम्हें उसने थप्पड़ जड़ दिया?"

- "नहीं" - वह बोला - "यह आवाज मेरे मन में हुई जब उसने मेरे पिता का सबके सामने अपमान किया। मैं वहां से वापस होने को ही था कि उसने मुझे प्रधान के नाम का नोट बनाकर दे दिया। अपनी परिस्थितियों से विवश न होता, तो में उसका नोट कदापि न लेता।"

- "फिर?"

- "वह नोट लेकर मैं छेदी लाल प्रधान के पास आया।" वह वार्ड मेम्बर के नोट को पढ़कर बोला - "सुन्दर लाल, कह देना अपने पिता मास्टर मोहन लाल से कि छेदी लाल राजनीति शास्त्र में तो कॉलेज में पास नहीं हो सका, पर असली राजनीति में कामयाब हो गया है। आज ये छेदी लाल ठाकुर अपने गांव की पंचायत का प्रधान है। विधायक भी मुझसे सलाह लिए बिना कोई काम नहीं करता। मंत्री मुझे महीने में दो बार अपने पास बुलाता है। अब मेरी जरूरत सबको पड़ती है, तुम्हारे पिता जी को भी पड़ गई।" यह सुनाकर छेदी लाल ने मुझे नोट दे दिया और मैं वहां विधायक गणपत कम्बोज के पास पहुँचा।"

- "तुम भी खूब जीवट के आदमी हो, यार। हालात से समझौता करते हुए अपने उद्देष्य के खातिर आगे बढ़ते रहे। फिर विधायक ने क्या कहा?"

- "विधायक कम्बोज ने कहा - "वैसे तो तुम्हें मेरे पास आने से पहले बी.डी.सी. के अध्यक्ष के पास जाना चाहिए था। सही तरीका तो यही था पर छेदी लाल प्रधान ने तुम्हें मेरे पास ही भेज दिया, तो मैं तुम्हारी बात सुन लेता हूँ, क्योंकि मैं उसकी बात टाल नहीं सकता।" मैंने अपनी बात सुनाई, पर वह कहीं टेलीफोन पर बात करने लग गए। मेरी बात सुनी या नहीं, यह तो मुझे पता नहीं पर उन्होंने मंत्री के नाम एक सिफारिशी नोट दे दिया।

- "ओह, बड़ा लम्बा सफर था। अब तो मंजिल नजदीक ही होनी चाहिए थी।"

- "कहाँ, मंत्री जी से नहीं मिल सका और इंटरव्यू निकल गई।"

- "अरे .... इतनी मेहनत का ऐसा फल? पर क्यों?"

- "मंत्री जी के निजी सचिव ने इस नोट के अलावा और नोट मांगे। मैंने उसे पंचायत के वार्ड मेम्बर दुर्गा दास से लेकर विधायक कम्बोज तक के सारे नोट दिखाए, पर वह संतुष्ट नहीं हुआ। वह मेरी ओर ऐसा देख रहा था, जैसा मैं निरा मूर्ख हूँ। उसने कहा - "द्वारिका प्रसाद खन्ना को जानते हो?" मैंने कहा - "नहीं"। उसने फिर पूछा - "तो सुशील कात्याल को तो देखा होगा।" मैंने फिर 'ना' में सिर हिला दिया। झुंझला कर उसने कहा - "तो पहले जाओ और शहर में घूम कर आओ। शहर की ऐसी हस्तियों का पता नहीं है, तो इंटरव्यू में क्या खाक करोगे? मंत्री जी के सिफारिशी नोट को भी बदनाम करोगे? निराश होकर मैं मंत्री जी के कार्यालय से बाहर आ गया।"

- "पर उन आदमियों का तुम्हारी इंटरव्यू से क्या सम्बन्ध था जिनके बारे में निजी सचिव कह रहा था?"

- "ये सब मुझे टालने के बहाने थे, जो मुझे बाद में पता चला। खैर, मैं इंटरव्यू बिना सिफारिशी नोट के ही दे आया था।"

- "क्या कामयाबी मिली?"

- "अगर मिलती तो क्या मैं रौनक सिंह नम्बरदार के लड़के नसीब सिंह को पढ़ाता हुआ मिलता?"

- तो गुजारे के लिए और घर में पैसे भेजने के लिए क्या करते हो" मैंने पूछा।

- उसने कहा - "जैसा भवानीपुर आपकी कम्पनी ने आपको सौंपा हुआ है, वैसे मेरे भाग्य ने भी मुझे यह शहर सौंपा है। मैं भी भवानीपुर में काम करता हूँ, मेवाड़ ढाबे के परांठे खाता हूँ और रौनक सिंह के घर में मुफ्त रहता हूँ।"

- "भवानीपुर में क्या करते हो?"

- "कभी शहर में मुलाकात हुई तो बताऊँगा, अभी नहीं।"

मैं वहां से सीधा मेवाड़ ढाबे में आकर बैठ गया। मेरे मन में सरोच का व्यक्तित्व घूम रहा था। चटर्जी महाशय से बातचीत करते-करते और रात का भोजन करके ही वहां से निकला। कुछ दिनों के बाद मैं भवानीपुर में अपने स्टॉकिस्टों के पास घूम कर ऑर्डर इकट्ठे कर रहा था। बंसल शोरूम के अंदर जैसे ही घुसा, बंसल ने बड़ी गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया, बोला - "अग्निहोत्री जी, आपने तो कमाल कर दिया।"

- मैं - "क्या हुआ?"

- "आपकी कम्पनी के विज्ञापन टी.वी. पर आने शुरु हो गए हैं और देखो बिक्री बढ़नी शुरु हो गई है।"

- मैं - "हाँ, मैंने अपनी रिपोर्ट उसी दिन भेज दी थी, जिस दिन आपने मुझे कहा था। इतनी जल्दी असर हो गया?"

- बंसल - "असर? अरे साहब कमाल का असर हुआ है, कमाल का। आप बस अब हमारा डबल ऑर्डर बुक करो।"

मैं खुशी-खुशी ऑर्डर लिखने लगा। जैसे ही मैं शोरुम से निकला एक मूँछों वाला कुली मुझसे टकराया। मैंने क्रोधित होकर उससे कहा - "अंधा है, दिखता नहीं क्या?" कुली ने अकड़कर कहा - "नहीं।"

उसकी ढिठाई देखकर मैं उसे अभी और झाड़ने वाला था कि उसने जानी-पहचानी आवाज में कहा - "अगनि बाबू, मैं हूँ सरोच।"

मैं - "अरे, अरे, सरोच, तू ..... और कुली ..... और ये मूँछें?" मुझे हैरानी में देख सरोच बोला - "ये सब नकली हैं, अगनि बाबू। पैसा कमाने के लिए ये सब करना पड़ रहा है। आखिर कम से कम छः हजार रुपये महीने में घर को जो भेजने पड़ते हैं।"

मैंने उसे सिर से पैर तक नजर डालते हुए कहा - "क्या तुम्हारे घर वालों को ये सब पता है?"

सरोच - "नहीं, घर वालों की तरफ से मैं भवानीपुर शहर के किसी निजी विद्यालय में अंग्रेजी पढ़ा रहा हूँ।"

मुझे सरोच के चरित्र की विविधता पर हैरानी हो रही थी। कई प्रकार के विचार मन में आ रहे थे। मेरे मन में यह प्रश्न बार-बार उठ रहा था कि क्या उसके पास यही रास्ता बचा था?

मैंने विवशता के भाव से पूछा - "पर ... पर ... यार, तुम्हारे पास क्या यही रास्ता था?"

सरोच - "बिना सिफारिश के और अच्छे कपड़ों के बिना जगह-जगह ठोकरें खाने से यह काम अच्छा है। मैं अपनी मर्जी का मालिक हूँ और जितना अधिक परिश्रम करता हूँ, उतने पैसे पाता हूँ।

मैं - "पर सरोच यह कब तक चलेगा?"

सरोच ने मेरे सवाल के उत्तर में आकाश की ओर निहार कर कहा - "जब तक अगली इंटरव्यू के लिए मंत्री जी का नोट नहीं मिल जाता।"

यह कह कर वह अपनी नकली मूँछों को सहलाता हुआ, उसी तरह अकड़ के आगे निकल गया, जिस तरह वह मुझसे टकराया था और मुझे वहां सोचता हुआ छोड़ गया।

क्षण भर के लिए मैं अपने बारे में सब कुछ भूल गया। वह बंसल आधुनिक भण्डार का ऑर्डर, उसका विज्ञापनवाद भी भूल गया। मुझे सुजान सिंह का ढाबा, उसके वे घास के 'प्रताप' ब्रांड परांठे भी याद नहीं रहे। मुझे बेचारे सरोच की नोटों भरी, मैली सी जेब दिखाई दे रही थी, जिसको अभी तक और नोट की जरुरत थी।

42/5, हरिपुर, सुन्दरनगर, जिला मण्डी, हि.प्र.-175018
मो. 94181-00983

कहानी

विश्वासघात

● कमल हमीरपुरी

अनाम रियासत का राजा सुमेर चंद बड़ा दयालू और गरीब- नवाज़ था। रियाया उसे भगवान की तरह पूजती थी। रियासत में कोई अपराध नहीं होता था। अमीर-गरीब, बाघ-बकरी एक घाट पानी पीते थे। रियासत में पूर्ण राम-राज्य था। एक दिन राजा की देवी समान पत्नी भानुमति का देहांत हो गया। राजा पत्नी के वियोग में अस्त-व्यस्त हो गया। राजा को सामान्य स्थिति में लाने के लिए राजा रसोइए दीनानाथ ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजपाठ का सारा काम-काज पूर्व की भांति चलने लगा। पत्नी की कमी राजा को खलने लगी। राजदरबार का विश्वास पात्र रसोइया होने के कारण राजा का दीनानाथ के परिवार से मेल-जोल बढ़ गया। राजा की हर जरूरत का ध्यान दीनानाथ और उस की पत्नी श्रद्धा रखने लगी थी। कुछ दिनों के पश्चात श्रद्धा ने एक सुंदर बालक को जन्म दिया जिसका नाम बादल रखा।

बादल कुशाग्र बुद्धि का मालिक था। अधिकांश समय बादल राजमहल में रहता और घंटों राजा और बादल आपस में खेलते रहते। दीनानाथ इस स्थिति से चिंतित रहने लगा। एक दिन अपनी पत्नी से बेटे को राजमहल से दूर रखने की बात की तो पत्नी के सुझाव को यह कहकर टाल दिया कि पत्नी वियोग से प्रभावित राजा बच्चे से प्यार करता है, उससे खेलता है तो इसमें क्या बुराई है, बच्चा जब कुछ बड़ा होगा तो अपने आप पीछे हट जाएगा। राजा दीनानाथ का बड़ा आदर करते थे। उसकी हर बात को ध्यानपूर्वक सुनते। एक दिन दीनानाथ राजा से बड़े विनम्र होकर कहने लगे, महाराज यदि आप बुरा न मानें तो एक बात कहूं। दीनानाथ जी मैं तुम्हें रसोइया नहीं मानता। तुमने आड़े वक्त में मुझे हिम्मत दी। आज मैं पुनः राज-पाठ चलाने योग्य बना हूं। यह सब तुम्हारी बदौलत है। निस्संकोच होकर जो कहना चाहते हो कहो। दीनानाथ हिम्मत जुटाकर कहने लगे, “महाराज भगवान के असीम आशीर्वाद से बड़ा लम्बा जीवन है आपका, जीवन साथी के बिना कैसे कटेगा, आपके बाद सिंहासन पर कौन बैठेगा? रियासत का वारिस कौन होगा। मैं समझता हूं आपको शादी कर लेनी चाहिए।” राजा थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले, “दीनानाथ जी तुम ठीक कहते हो, सिंहासन का वारिस होना जरूरी है, खानदान चलाने के लिए मुझे शादी कर लेनी चाहिए। दीनानाथ हाथ जोड़कर बोले महाराज एक अरज और करना चाहता हूं, मैं अब बूढ़ा हो गया हूं। मुझे अब गांव वापस जाने की अनुमति भी दी जाए तो आपकी बड़ी कृपा होगी। राजा सुमेर चंद बोले, दीनानाथ जी अब आपका सुझाव हमने मान लिया है तो मेरी भी एक बात मान लो।”



“हुकुम महाराज।”

राजा बोले, “दीनानाथ हमारी शादी के बाद जब हमारी गृहस्थी चल पड़ेगी तो तुम्हें हम बाइज्जत छुट्टी दे देंगे।”

"ठीक है महाराज, जैसी आपकी आज्ञा।"

राजा सुमेर चंद की दूसरी शादी हो गई। राजा की शादी के बाद भी बादल का महल में आना-जाना पूर्व की भांति चलता रहा। सोलह वर्ष का हो जाने पर भी बादल खेलकूद के सिवाय कुछ नहीं करता, कुछ नहीं जानता, राजा के निकट होने के कारण उसे किसी चीज की कमी नहीं थी। घंटों राजा रानी के पास बैठे रहना। कभी-कभी राजमहल में ही सो जाना। बादल अब राजमहल में यूं घूमता जैसे यह राज परिवार का ही एक अंग है। कभी-कभार किसी गलती पर यदि महाराज बादल को फटकार लगाते तो रानी बादल की तरफदारी करने लग पड़ती।

एक दिन दीनानाथ रसोइए ने महारजा को याद दिलाया और सदा के लिए महल को छोड़कर अपने घर जाने की अनुमति मांगी। राजा ने दीनानाथ को घर जाने की अनुमति तो दे दी पर रानी के आग्रह पर बादल को अपनी रियासत का ऐहलकार नियुक्त कर सौ टका की पगार निश्चित कर दी। यह भी कहा कि बादल अपने गांव में रहकर भी रियासत के काम-काज में हाथ बंटाया करेगा। जब भी चाहेगा राजदरबार में बिना रोक-टोक आ-जा सकेगा। राजा को बादल से बड़ा लगाव था इसलिए वह भी यही चाहता था कि बादल यहीं उनके निकट ही रहे।

बादल कभी भी राजा से मंत्रणा कर सकता था, वह दरबारे-खास, दरबारे-आम में दखल देने की क्षमता रखने लगा था हालांकि वह राजदरबार में एक मामूली ऐहलकार था परंतु उससे सब दरबार खौफ खाते थे। राजहाकमों, कर्मचारियों तथा आम रियाया में उसका बड़ा दबदबा था। बिना रोक-टोक वह राजा और रानी से गुफ्तगू कर आता। राजदरबार के कुछ कर्मचारी तो दबी जुबान में यहां तक कह देते कि बादल की रानीवासा तक पहुंच है। बादल राज कर्मचारियों-अधिकारियों से महीना वसूली करने लगा था। फसल घर आने पर किसान भी नज़राना भेंट करने लगे थे। सभी वर्गों के लोग अपनी-अपनी हैसियत और आमदन के अनुसार भेंट देने के लिए बादल के घर पहुंचते थे। लोगों में इसका इतना भय था कि बिना मांगे ही इसके घर हर चीज़ पहुंचती। कर्मचारियों अधिकारियों में जिसे भी तरक्की चाहिए होती, वह पहले बादल को खुश करते तब कहीं तरक्की पाते। दीना नाथ बेटे की इस कारगुजारी और राजा-रानी से सम्बंधों बारे बहुत ही चिंता में रहने लगा।

एक दिन दोनों पति-पत्नी ने बादल को बिठा कर शादी का प्रस्ताव रखा। कहा, बेटा अब हम वृद्ध हो गए हैं। तुम कहो तो हम तुम्हारी शादी कर देते हैं ताकि हमारी भी देखभाल करने वाला कोई घर में हो सके। बेटे ने मां-बाप का यह प्रस्ताव यह कहकर ठुकरा दिया कि मुझे अभी शादी नहीं करनी है। जब करनी होगी बता दूंगा। हां, तुम्हारी देखभाल के लिए हम एक नौकर रख लेंगे। पति-पत्नी को बेटे के आगे बात करने की हिम्मत ही नहीं हुई।

बादल ने धन बटोरने के लिए रियाया पर अत्याचार ढाने आरम्भ कर दिए। पराई बहू-बेटियों पर भी नज़रें गाड़ने लगा। शराब-जुआ उसकी प्रतिदिन की आदत बन गए। राजदरबार के कोष पर बादल की कारगुजारी का दुष्प्रभाव पड़ने लगा। किसी-न-किसी तरह बादल की शिकायतें राजा तक पहुंचनी शुरू हो गईं। जब राजा, रानी से इस सम्बंध में बात करते तो रानी बादल का पक्ष लेती और कहती कि दरबार के लोग बादल से जलते हैं तभी वह उलटी-सीधी शिकायतें करते हैं। जवान पत्नी के आगे राजा बेबस हो जाते। कुछ नहीं कहते।

महाराज आप सब जानते हैं कि किसने किसके साथ विश्वासघात किया है। क्या रानी ने आपके साथ विश्वासघात नहीं किया? क्या मैंने अपने देवतुल्य पति से विश्वासघात नहीं किया? क्या प्रजापालक होते हुए आपने अपने सेवक दीनानाथ की पत्नी श्रद्धा से शारीरिक सम्बंध बनाकर उनसे विश्वासघात नहीं किया? बोलो किस-किसको मृत्युदंड दोगे। मृत्युदंड के तो आप भी उतने ही भागी हैं जितना हमारा बेटा।

राजा ने अपने गुप्तचरों के माध्यम से प्रजा में व्याप्त आक्रोश और दरबारियों की शिकायतें का संज्ञान लिया। कोष में हो रहे निरंतर घाटे का आकलन करवाया। इन सब बातों पर रानी के साथ चर्चा करने के लिए जब वह राजमहल में रानी के कक्ष में पहुंचे तो वहां रानी को बादल की बांहों में लेटा देख वह वापस बाहर लौट आए। राजा ने बादल और रानी को राजद्रोही बताकर तुरंत बंदी बनाने का हुक्म दिया। दोनों को जेल की सलाखों के अंदर डाल दिया। राजा का गुस्सा देखकर किसी की हिम्मत यह पूछने की नहीं हुई कि इनका क्या दोष है। राजतंत्र में ऐसा ही होता है। राजद्रोह का दंड मृत्युदंड है, यह खबर आग की तरह सारी रियासत में फैल गई।

दीनानाथ को जब यह खबर लगी तो वह राजदरबार में रहम की दरख्वास्त लेकर पहुंचा। परंतु राजा ने साफ इनकार कर दिया। कहा कि इनको इनके किए कि सजा अवश्य मिलेगी। राजतंत्र में दलील और अपील के लिए कोई स्थान नहीं होता। दीनानाथ जब खाली हाथ घर लौटे तो पत्नी बोली, अगर आप कहें तो मैं राजा के पास बेटे के जीवन की भीख मांगने जाऊं, पति कुछ नहीं बोले। मात्र सिर हिलाकर अपनी सहमति दी। अपनी आंखों के आंसू कोहनी उठाकर पोंछे और अंदर जाकर सो गए।

बादल की मां श्रद्धा अंधेरा होते ही राजमहल पहुंची। वह राजा से अकेले में मिली। राजा से बोली- "मैं यह नहीं पूछती कि इसने क्या गुनाह किया है मैं तो मात्र हाथ जोड़कर अरज़ करती हूं कि मेरे

लघु कथा

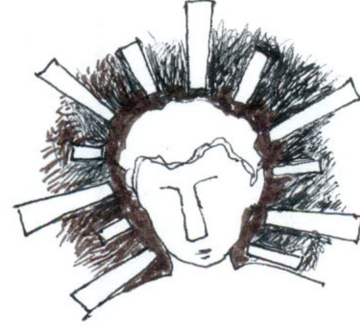
अपना-अपना सुख

• अंकुश्री

उसकी दिली इच्छा थी कि चारों ओर उजाला रहे। अंधेरे से उसे सख्त नफरत थी। इसीलिए शाम होते वह जी- जान से अंधेरे के विरुद्ध लड़ना शुरू कर देता था। अपनी शक्ति के अनुसार आस-पास के पूरे क्षेत्र को वह रोशन कर देता था। अपनी शक्ति के अनुसार आसपास के पूरे क्षेत्र को वह रोशन कर देता था। पहले वह साफ-सुथरा था। रोशनी फैलाते-फैलाते उसका मुंह काला हो गया। धीरे-धीरे उसका भीतरी भाग भी काला हो गया। लेकिन वह खुश था कि उसके प्रकाश से आसपास का अंधकार दूर हो गया है। जल-जल कर प्रकाश फैलाने में भी उसे बड़ा सुख मिलता था। आसपास का पूरा वातारण उसके प्रकाश से खुश था। इस कारण वह, एक अदना-सा दीपक सबकी प्रशंसा का पात्र बन गया था। दीपक की यह उपलब्धि पवन को बड़ी नागवार गुजरी। उसने अपनी गति तेज कर दी। पास बैठे एक आदमी ने पवन की तेज गति के कारण झिलमिलाते हुए लौ को देखकर दीपक को अपनी हथेलियों की ओट में कर लिया। दीपक बुझने से बच गया।

इस पर पवन झुंझलाया और उसने अपनी गति और तेज कर दी। इस बार दीपक नहीं बच पाया। वह बुझ गया। लेकिन पवन के शांत होते पास के आदमी ने फिर से दीपक जला दिया। चारों तरफ उजाला फैल गया। दीपक बड़ा खुश हुआ।

लेकिन दीपक जितना खुश हुआ, पवन उतना ही नाखुश



हो गया। उसने अपना रुख बदल लिया। गति तेज कर उसने तूफान का रूप ले लिया। इससे दीपक न केवल बुझ गया, बल्कि गिर कर तुरंत टूट भी गया। उसके दो टुकड़े होकर आसपास बिखर गए। बत्ती कहीं गिरी, तेल कहीं गिरा।

दीपक को पवन की इस बेरुखी से बड़ा दुःख हुआ। उसे यह दुख अपने गिरने और टूटने का नहीं था। उसे दुःख था बुझने का, जिससे आसपास फिर से अंधेरे ने अपने पांव पसार लिए थे।

सिदरौल, प्रेस कॉलोनी, पोस्ट बॉक्स 28, नामकुम, रांची, झारखंड-834 010

बेटे का जीवन बख्श दो। यह मेरा ही बेटा नहीं है, यह आपका भी बेटा है। याद करो उन दिनों जब रानी जी का देहांत हो गया था तो आप मुझे महल में बुला कर घंटों अपना मन बहलाते। आपकी व्यथा को देखकर मैं सब चुपचाप सह जाती। यह बेटा आपकी उस व्यथा की निशानी है। इसे जीवन-दान दे दो। राजा बोला, श्रद्धा यही तो दुःख है कि यह हमारा बेटा है। इसने मेरे साथ, राजदरबार के साथ, जनता के साथ विश्वासघात किया है। तपाक से श्रद्धा बोल उठी, महाराज आप सब जानते हैं कि किसने किसके साथ विश्वासघात किया है। क्या रानी ने आपके साथ विश्वासघात नहीं किया? क्या मैंने अपने देवतुल्य पति से विश्वासघात नहीं किया? क्या प्रजापालक होते हुए आपने अपने सेवक दीनानाथ की पत्नी श्रद्धा से शारीरिक सम्बंध बनाकर उनसे विश्वासघात नहीं किया? बोलो किस-किसको मृत्युदंड दोगे। मृत्युदंड के तो आप भी उतने ही भागी हैं जितना हमारा बेटा। राजा जी यदि आपने हमारी इस निशानी को मृत्युदंड दिया तो मैं भी आत्महत्या कर लूंगी।"

श्रद्धा इतना कहकर चली गई। उसने राजा के उत्तर की प्रतीक्षा तक नहीं की।

दूसरे दिन राज दरबार सजा। रानी और बादल को जंजीरों से जकड़ कर राजदरबार में हाजिर किया गया। राजा सुमेर चंद सिंहासन पर बैठे और हुक्म सुनाया, "राजद्रोह के कारण रानी और बादल को आजीवन कारावास।"

दीनानाथ पत्नी सहित राजदरबार में उपस्थित हुए और राजा को धन्यवाद देकर सदा के लिए गांव एवं रियासत छोड़ कर चले गए।

कहां गए? किसी को कोई पता नहीं।

गांव व डाकघर डोहग-देहरियां वाया रानीताल, जिला कांगड़ा हिमाचल प्रदेश-176 029, मो. 0 98056 88993

कहानी

मान–अपमान

● भीम सिंह नेगी

राकेश जब पैदा हुआ तो उसके मां-बाप की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। जन्म से ठीक-ठाक पैदा हुआ था। परंतु जब वह दो वर्ष का हुआ तो पोलियोग्रस्त हो गया और उसके आधे शरीर को लकवा मार गया, चलने-फिरने के काबिल भी नहीं बचा। उसके माता-पिता घबरा गए। उन्होंने जहां तक भी संभव हो सकता था, उसका इलाज करवाया। परंतु वह ठीक नहीं हुआ। अब उन्हें अपनी भूल पर पछतावा हो रहा था कि यदि समय पर बच्चे को दो बूंद पोलियो की पिला दी होती तो आज उनका बच्चा इस हालत में न होता। परंतु अब कुछ नहीं हो सकता था। आखिर में बेबस माता-पिता ने सब परमपिता परमात्मा के भरोसे छोड़ दिया। मगर उसके लालन-पालन में कोई कसर नहीं छोड़ रखी। राकेश जब छह-सात वर्ष का हुआ तो उसके माता-पिता ने उसे स्कूल में दाखिल करवा दिया। राकेश शरीर से तो अपाहित था परंतु उसका दिमाग बिलकुल ठीक काम करता था। बल्कि यूं कहिए कि आम बच्चों के मुकाबले तेज था।

राकेश दूसरे बच्चों की तरह पढ़ने-लिखने लगा। हालांकि लिखने में उसे परेशानी होती थी। परंतु वह हिम्मत से काम लेता था और स्कूल का हर कार्य समय पर कर दिया करता था। उसके शिक्षक उसकी लगन व हिम्मत देखकर अचम्भित थे। उन्होंने उस पर पूरा-पूरा ध्यान दिया। उसे हर वक्त आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। उसके माता-पिता हर रोज कंधे पर उठाकर उसे स्कूल छोड़ आते और छुट्टी के उपरांत घर भी इसी तरह ले आते। राकेश अपनी इस दुर्दशा पर कई बार बहुत दुखी होता। परंतु वह कर क्या सकता था? किसे दोष दे सकता था? उसका यह दुःख उस वक्त और भी बढ़ जाता, जब दूसरे बच्चे उसे लंगड़ा, अपाहिज कहकर उसका मजाक उड़ाते। उसे चिढ़ाते। वह सब सहन करता। उसने अपने को कभी कमजोर नहीं होने दिया।

राकेश दूसरे बच्चों की तरह पढ़ने-लिखने लगा। हालांकि लिखने में उसे परेशानी होती थी। वह हिम्मत से काम लेता था और स्कूल का हर कार्य समय पर कर दिया करता था। उसके शिक्षक उसकी लगन व हिम्मत देखकर अचम्भित थे। जबकि सुनील अपने मां-बाप की इकलौती संतान थी। उनके जरूरत से ज्यादा लाड़-प्यार ने उसे उद्दंड बना दिया था व पूरी तरह बिगाड़ कर रख दिया था। सुनील पढ़ाई की तरफ कम व उलटी-सीधी हरकतों की तरफ ज्यादा केंद्रित रहता था।

एक दिन एक लड़का जिसका नाम सुनील था, उसे बुरी तरह तंग करने लगा। राकेश ने तंग आकर इसकी शिकायत अपने गुरुजी से कर दी। जब शिक्षक ने सुनील को डांटा और समझाने की कोशिश की, तो सुनील ने शिक्षक व उसके सारे सहपाठियों के सामने ही राकेश को अपमानित करते हुए उसे लगड़ा-लूला, अपाहिज व न जाने क्या-क्या कहकर सम्बोधित कर डाला और 'तुझे देख लूंगा।' ये धमकी भी दी। राकेश को सुनील की इस हरकत से बहुत गहरी ठेस लगी। राकेश ने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि वह एक दिन कुछ ऐसा बनकर दिखाएगा कि फिर किसी की हिम्मत उसे ऐसा कुछ कहने की नहीं होगी। उसने वहीं से जी-जान से पढ़ाई में मेहनत करना शुरू कर दी। हालांकि बाद में शिक्षक ने सुनील को उसकी बदतमीजी की खूब सजा भी दी। परंतु उसपर कोई असर नहीं हुआ।

सुनील अपने मां-बाप की इकलौती संतान थी। उनके जरूरत से ज्यादा लाड़-प्यार ने उसे उद्दंड बना दिया था व पूरी तरह बिगाड़ कर रख दिया था। सुनील पढ़ाई की तरफ कम व उलटी-सीधी हरकतों की तरफ ज्यादा केंद्रित रहता था। कई गंदी आदतें भी उसने डाल ली थी।

समय बीतते देर नहीं लगती। राकेश अब बड़ा हो चुका था और व्हील चेयर पर आसानी से इधर-उधर स्वयं आ-जा सकता था। उसने जीवन में भरपूर मेहनत

कर रखी थी व उसके फलस्वरूप वह पी-एच. डी. तक कर गया था और वह भी पूरे प्रदेश में प्रथम श्रेणी में। वह एक डिग्री कॉलेज में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हो गया। हर कॉलेज का विद्यार्थी एवं कर्मचारी उसकी योग्यता, मृदुभाषा व अच्छे व्यवहार के आगे नतमस्तक था और उसकी बहुत ज्यादा इज्जत करते थे। सरकार को जब इस बात का पता चला तो उसने उसे कॉलेज का प्रमुख बना दिया। कॉलेज का मुखिया बनने के बाद राकेश ने एक पढ़ी-लिखी, समझदार, सुशील लड़की से शादी कर ली। अब उसका जीवन सुख-शांति से कटने लगा।

उधर, सुनील की गंदी आदतों ने उसे कहीं का नहीं छोड़ा। पढ़ना-लिखना बीच में ही छोड़कर वह दर-दर की ठोकरें खाने लगा। यह तो उसके पूर्व जन्म का कोई अच्छा कर्म ही था कि उसे भी एक समझदार, नेक स्वभाव पत्नी मिल गई थी।

एक बार उसी डिग्री कॉलेज में जिसमें राकेश प्रमुख था,



चपड़ासी की कुछ रिक्तियां भरने हेतु सादे कागज पर प्रार्थना-पत्र आमंत्रित किए गए। सुनील की पत्नी को जब इस बात का पता चला, तो उसने सुनील को वहां आवेदन करने के लिए प्रेरित किया। सुनील ने अपनी पत्नी का कहा मानते हुए सादे कागज पर अपने कुछ मांगे गए प्रमाण-पत्र लगाकर आवेदन कर दिया। कुछ ही दिनों बाद वहां से इंटरव्यू के लिए बुलावा-पत्र आ गया।

निश्चित तिथि को सुनील वहां पहुंच गया। जब उसके इंटरव्यू की बारी आई और वह अंदर गया, तो उसके पैरों तले से जमीन खिसक गई। राकेश को प्रमुख की कुर्सी पर बैठे देखकर वह उससे नज़रे नहीं मिला पाया। वह भीतर-ही-भीतर आत्मग्लानि से भर गया। उसे राकेश के सामने खड़े रह पाना मुश्किल लग रहा था। उसकी टांगे लड़खड़ाने लगी थीं। दिल कर रहा था कि वहां से भाग जाए। उसकी हालत बहुत ज्यादा दयनीय हो चुकी थी। राकेश ने जब सुनील की हालत देखी तो उसे उसपर तरस आ गया। परंतु वे वाक्य भी एकदम याद आ गए, जो कभी सुनील ने स्कूल वक्त में सबके सामने उसे कहे थे और बुरी तरह अपमानित किया था।

राकेश एकदम गंभीर हो गया था। वह यह तय नहीं कर पा रहा था कि इस वक्त सुनील के साथ क्या व्यवहार किया जाए। सुनील का इंटरव्यू लिया जाए या उसे खाली हाथ बाहर भेज दिया जाए। काफी विचार करने के बाद राकेश की इनसानियत जाग गई। उसने प्यार से सुनील का साक्षात्कार लिया और घर भेज दिया। राकेश एक बहुत ही सुलझा हुआ नेक इनसान था। दूसरों के साथ गलत व्यवहार करने पर व सबके सामने किसी को अपमानित करने पर दूसरों के दिल पर क्या गुजरती है, इस बात को राकेश भली-भांति जानता था।

इस घटना के बाद घर आकर सुनील बहुत बेचैन रहने लगा। उसे जरा-सी भी आशा की किरण नज़र नहीं आ रही थी कि राकेश उसको अपने यहां नौकरी पर रख लेगा। उसे बार-बार अपने पर गुस्सा आ रहा था कि क्यों बिना सोचे-समझे उसने राकेश के साथ ऐसा बुरा बर्ताव किया था। वह इस मानसिक द्वंद्व के कारण कुछ चिड़चिड़ा-सा भी हो गया था। सुनील की पत्नी को जरा भी समझ नहीं आ रहा था कि आखिर हुआ क्या है बहुत बार उनके ऊपर कई तरह की मुसीबतें आईं, परंतु उसने सुनील को कभी इतना ज्यादा परेशान नहीं देखा था। वह बारम्बार इसका कारण जानने की चेष्टा कर रही थी परंतु सनील कोई जवाब ही नहीं देता था। इसी स्थिति में पंद्रह-बीस दिन व्यतीत हो गए।

एक दिन डाकिया एक पत्र सुनील को पकड़ा गया। उस पत्र को जब सुनील ने खोला और पढ़ा, तो खुशी से उछल पड़ा। वह पत्र उसकी नियुक्ति का था। उसने जब यह बात अपनी पत्नी व परिवार के अन्य सदस्यों को बताई तो सभी खुश होकर भगवान का शुक्रिया अदा करने लग पड़े। सुनील की आंखों में आंसू आ गए। आंसू नौकरी प्राप्ति के इतने नहीं थे, जितने कि राकेश की महानता के थे। इस वक्त राकेश उसे भगवान से कम नज़र नहीं आ रहा था। उसने मन-ही-मन यह शपथ ले ली कि जिंदगी रहते वह अब कभी किसी को ऐसी बात नहीं कहेगा और न ही किसी के साथ ऐसा कोई अनुचित व्यवहार करेगा जिससे दूसरे के दिल को ठेस लगे। उसने यह प्रण भी कर लिया कि वह अपनी तमाम गंदी आदतों का भी त्याग कर देगा तथा जो उसकी शिक्षा अधूरी रह गई है, उसे पूरा करने में लग जाएगा।

हि. प्र. राजकीय मुद्रणालय, घोड़ा चौकी,
शिमला-171 005, मो. 94599 23978

सपना मांगलिक की दो लघु कथाएं

एक दूजे के लिए

विनोद ने हर तीसरे माह रक्तदान का संकल्प लिया था। एक दिन एक कैम्प में रक्तदान करने के पश्चात वह घर लौटा तो कुछ दिन पश्चात बड़ी कमजोरी महसूस होने लगी। डॉक्टर से जांच करवाई तो पता चला उसे एड्स है। विनोद के हाथ हवन का पवित्र कार्य करते हुए जले थे, चिंगारी से खेलते वक्त नहीं। यही सोच कर विनोद बहुत दुखी रहने लगा था। सारे दोस्त और रिश्तेदार उससे कतराने लगे थे जैसे उसने कोई गन्दा कार्य कर दिया हो या वह अछूत हो। विनोद बहुत अकेला पड़ गया। एक दिन अपने कम्प्यूटर पर सर्फ करते वक्त उसकी निगाह एड्स के मरीजों की कम्युनिटी पर पड़ी। उसने इसके बारे में जानने की कोशिश की तो पता चला यह एक संस्था है जो एड्स के रोगियों द्वारा ही एड्स के प्रति लोगों को जागरूक करने और एड्स रोगियों की मदद एवं देखभाल करने हेतु बनाई गई है। विनोद ने देखा ऐसी एक नहीं अनेक संस्थाएं हर राज्य में बनायीं गयीं हैं। विनोद इन संस्थाओं से जुड़ा और यहाँ के सदस्यों को देख उनकी कहानियां और अनुभव सुनकर उसे अपना दुःख अब कम लगने लगा। विनोद इन संस्थाओं से जुड़कर बहुत खुश था उसका समाज सेवी हृदय फिर से समाज में एड्स के प्रति जागरूकता फैलाने के उद्देश्य में जुट गया। इस संस्था के कार्यक्रम और सेमीनार देश-विदेश में होते थे जिनमें विनोद बढ़ चढ़कर हिस्सा लेता था। ऐसे ही एक आसाम में होने वाले कार्यक्रम में उसकी मुलाकात वैदेही से हुई जो कि एक डॉक्टर थी, एड्स पीड़ित प्रसूता को रास्ते में प्रसव पीड़ा से जूझते हुए देख अपने को ना रोक पायी और बिना ग्लब्स के उसका प्रसव करा दिया। प्रसूता की तो डिलीवरी हो गयी मगर वैदेही स्वयं इस रोग की चपेट में आ गयी। अस्पताल प्रबंधन ने उसे नौकरी से निकाल दिया। क्योंकि उनके अस्पताल में एड्स पीड़ित डॉक्टर होने की बात अगर एक बार फैल जाती तो कोई भी अच्छा खासा मरीज उस अस्पताल में इलाज कराने नहीं आता। और अस्पताल की कमाई पर इस सबका असर पड़ता। वैदेही उपेक्षा का दर्द झेल चुकी थी इसलिए अपने जैसे इन उपेक्षित भाई-बहनों की सेवा को ही उसने अपने जीने का मकसद बना लिया था। इस सेमीनार में विनोद और वैदेही दोनों कि जब मुलाकात हुई और दोनों को जब पता चला कि उनकी कहानी और जीवन का उद्देश्य एक ही है तो उन्हें ईश्वर के उस कठोर निर्णय का भी अर्थ समझ आ गया जो दोनों के जहन में अकसर प्रश्न बनकर उभरता था कि भलाई का नतीजा उन्हें बुराई के रूप में आखिर क्यों मिला? उन्हें समझ आ गया था कि ईश्वर ने उन्हें यह रोग आखिर क्यों दिया? वह उन दोनों से क्या चाहता है? और दो अलग अलग राज्यों में निवास कर रहे लोगों को आज क्यों मिलवाया है। दोनों ने भगवान् को धन्यवाद दिया और एक दूसरे को जीवन भर साथ निभाने का वचन भी। अब दो जीवन अपने एक जीवन लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ रहे थे।



देखभाल

राहुल मातादीन का इकलौता पुत्र था जो सॉफ्टवेयर इंजीनियर बनकर अमेरिका बस गया था। मातादीन यूँ तो अकेले जीवन काट रहा था, मगर कुछ हमउम्र रिटायर मित्रों से मिलजुलकर मन बहला लेते थे। एक दिन अचानक राहुल का फोन आया कि-इस उम्र में वह उनको अकेले भारत में नहीं रहने देगा ,वैसे भी भारत में अब उनकी देखभाल करने वाला कोई है भी तो नहीं इसलिए वह उन्हें अमेरिका ले जाने के लिए आ रहा है। पुत्र के मन में अपने लिए इतनी चिंता जान मातादीन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने मित्रों को खुशी-खुशी अपने अमेरिका जाने के विषय में बताया। वह मित्रों से बिछड़ने की वजह से कुछ उदास जरूर थे लेकिन पुत्र और पुत्रवधू के प्रेम और सेवा के सुख को सोच अमेरिका जाने को उतावले भी हो रहे थे। राहुल चार दिन बाद आने वाला था। और यह चार दिन मातादीन के लिए चार वर्ष से भी लम्बे गुजरे। नियत समय पर राहुल आया और मातादीन के सामने अमेरिका के गुणगान करते हुए पूछा कि वह घर को ताला लगाकर जायेंगे या बेचकर। मातादीन उदास स्वर में गिड्गिदाये कि इस घर में राहुल की माँ की यादें हैं। इसे बेचना उचित नहीं है। मगर राहुल का तर्क था कि उनके जाने के बाद इसकी देखभाल कौन करेगा, इसलिए इसे बेच देना ही सही है। पुत्र पर भरोसा कर मातादीन ने उसे घर बेचने की अनुमति दे दी। मातादीन जी राहुल के साथ अमेरिका पहुँच गए। दो कमरों के फ्लैट में मातादीन को सोने के लिए ड्राइंग रूम के सोफे का बिस्तर मिला। सुबह बहुरानी ने अपने ऑफिस जाने से पहले घर की देखभाल करने का तरीका भी उन्हें समझा दिया।

एफ-659, कमला, नगर, आगरा-282 005,
मो. 95485 09508

पुस्तक-समीक्षा

वैश्विक रचनाकारों की कर्मभूमि का दस्तावेज

● डॉ. हेमराज कौशिक

सुधा ओम ढींगरा अमेरिका की प्रवासी हिंदी लेखिका हैं। वे हिंदी प्रचारिणी सभा कनाडा और उत्तरी अमेरिका की त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी चेतना' की सम्पादक हैं तथा स्वयं एक कथाकार और कवयित्री हैं। उनके तीन कहानी संग्रह 'कमरा नं. 103', 'कौन सी ज़मीन' तथा 'बसूली' और तीन कविता संग्रह 'धूप में रूठी चांदनी', 'तलाश पहचान की' तथा 'सफर यादों का' प्रकाशित हैं। अनुवाद और साक्षात्कार को लेकर भी उन्होंने कृतियों का सृजन किया है तथा अमेरिका के प्रवासी कवियों का संकलन 'मेरा दावा है' शीर्षक से संपादित किया है। उनकी सद्य प्रकाशित कृति 'वैश्विक रचना : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं' हैं जिसमें चौबीस हिंदी साहित्य-सर्जकों के साक्षात्कार हैं। इनमें से तेईस साक्षात्कार स्वयं सुधा ओम ढींगरा ने लिए हैं और अंतिम साक्षात्कार कंचन सिंह चौहान ने सुधा जी का लिया है। लेखिका की इन साक्षात्कारों की प्रेरणा 'गर्भनाल' पत्रिका रही है। इस संदर्भ में वे कहती हैं- "'गर्भनाल' पत्रिका में मेरा हर माह विश्व के साहित्यकारों के साथ बातचीत का स्तम्भ था, जो लगभग चार वर्ष तक चला। इस पुस्तक के लिए तेईस साहित्यकारों के साक्षात्कार उन्हीं में से चुने गए हैं।" पत्रकारिता जगत् में प्रवेश करते ही लेखिका की साक्षात्कार विधा से साहित्यिक यात्रा का समारम्भ हुआ। विदेशों और सुदूर स्थित लेखकों के साक्षात्कार के लिए उन्होंने फोन, ऑनलाइन और स्काइप जैसी आधुनिक तकनीकों और उपकरणों का उपयोग किया है। इस पुस्तक में सात देशों के हिंदी लेखकों के साक्षात्कार लिए गए हैं। अमेरिका से वेद प्रकाश बटुक, सुषमवेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार, पुष्पा सक्सेना, डॉ. मृदुल कीर्ति, रेखा मैत्र, देवी नागरानी, शशि पाधा, राकेश खंडेलवाल और अनिता कपूर के साक्षात्कारों की प्रस्तुति है। कनाडा से प्रो. हरिशंकर ओदश, श्याम त्रिपाठी, ब्रिटेन से तेजेंद्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, अचला शर्मा, दिव्या माथुर, खाड़ी देशों से कृष्ण बिहारी, पूर्णिमा वर्मन, डेनमार्क से अर्चना पैन्यूली, नार्वे से सुरेश शुक्ल 'शरर आलोक' भारत से एस.आर. हरनोट और रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' के साक्षात्कार सुधा जी ने लिए हैं। अमेरिका में रह रही सुधा ओम ढींगरा का साक्षात्कार कृति के अंत में **कंचन सिंह चौहान** द्वारा लिया गया है। इन साक्षात्कारों के माध्यम से वैश्विक रचनाकारों के व्यक्तित्व, कृतित्व और साहित्य विषयक चिंतन को बखूबी समझा जा सकता है। वैश्विक रचनाकारों को एक स्थान पर प्रस्तुत कर समकालीन प्रवासी लेखन की समस्याओं और चुनौतियों को सामने लाया है। प्रत्येक देश के प्रवासी हिंदी लेखकों का परिवेश भिन्न होता है। अतः संवेदनाभूमि का स्वरूप भी भिन्न होता है। उनके साहित्य में नया परिवेश और परिस्थितियां अभिव्यक्ति का माध्यम बनती हैं। प्रवासी रचनाकारों की रचनाओं में एक सांस्कृतिक आघात व्यंजित होता है। मूल देश से दूर प्रवास में मन में नाना द्वंद्व अंतर्द्वंद्व, जीवन मूल्यों की टकराहट की अनुभूति होती है, जो रचना की विषय वस्तु बनती है। सुधा जी द्वारा लिए गए इन साक्षात्कारों में यह तथ्य समान रूप में उभरकर सामने आया है। इन साक्षात्कारों के माध्यम से लेखिका ने विश्व साहित्यकारों से संवाद करके वैश्विक रचनाशीलता की मानसिकता, उनकी संवेदना के विविध धरातल, रचना प्रक्रिया, रचना की प्रेरणा, प्रेरक रचनाकार आदि विविध पक्ष सामने आए हैं। प्रवासी हिंदी रचनाकार, प्रवासी हिंदी साहित्य सृजन सम्बंधी अनेक प्रश्नों को लेखिका ने उठाया है। प्रवासी लेखक और प्रवासी साहित्य जैसी संज्ञाएं क्या उपयुक्त हैं, इससे जुड़े मुद्दों को भी इन साक्षात्कारों में उठाया है। बहुत से लेखक इस संज्ञा को उपयुक्त नहीं समझते, कुछ लेखकों को इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नज़र नहीं आती। स्वयं प्रवासी लेखकों ने प्रवासी लेखकों के संकलन निकाले हैं। **तेजेंद्र शर्मा** का कहना है, "सच्चाई यह है कि विदेशों में बसे लेखक प्रवासी हैं और लेखक तो वे हैं ही। अतः उन्हें प्रवासी लेखक कहने में कोई हर्ज नहीं है। आज सरकार ने प्रवासी मंत्रालय बना दिया है, प्रवासी दिवस जनवरी में मनाया जाता है, विश्वविद्यालयों में प्रवासी साहित्य विभाग खोल दिए गए हैं,

प्रवासी साहित्य पढ़ाया जा रहा है और उस पर शोध हो रहा है।"

साक्षात्कार अत्यंत लोकप्रिय और उपयोगी विधा है। पाठक साक्षात्कारों को पढ़ते हुए लेखक से निकटता अनुभव करता है। साक्षात्कार की सफलता और सार्थकता साक्षात्कार लेखक की प्रतिभा, संवाद करने की दक्षता मनोविज्ञान की गहरी पैठ, वाणी माधुर्य और सौंदर्य पर अवलम्बित होती है। सुधा ओम ढींगरा द्वारा लिए गए साक्षात्कारों में ये गुण विद्यमान हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में **सुशील सिद्धार्थ** ने 'संवादधर्मिता साक्षात्कार का सौंदर्य है' में सुधा ढींगरा की इन विशेषताओं की ओर संकेत किया है।

सुधा ओम ढींगरा ने साक्षात्कार के लिए प्रश्नों का कोई निर्धारित प्रारूप तैयार नहीं किया है, बल्कि प्रत्येक रचनाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व की गहरी समझ के आधार, उनके प्रश्नों का स्वरूप और अनुक्रम विविधमुखी रहा है। यही कारण है कि बहुत से साक्षात्कार विस्तृत और कुछ सीमित रहे हैं। पूर्णिमा वर्मन के साक्षात्कार में हिंदी में इंटरनेट की भूमिका पर बल है और एस.आर. हरनोट से लिए गए साक्षात्कार में रचना के सामाजिक आधार पर बल है। **कृष्ण बिहारी** कवि, कथाकार, नाट्य लेखक और पत्रकार हैं। उनसे की गई बातचीत में उनके कृतित्व के विविध पक्षों का उद्घाटन है। उनका लेखन दूसरे प्रवासी लेखकों से किन अर्थों में भिन्न है या वे लेखक कैसे बने, ऐसे प्रश्न उनके रचनाकर्म से सम्बंध रखते हैं। **वेद प्रकाश 'बटुक'** से लिए साक्षात्कार में अमेरिका में हिंदी की स्थिति, साहित्य में उसका स्थान और साहित्य के मूल्यांकन को प्रमुख रूप में उभारा है। **सुषम बेदी** अमेरिका के उन रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में सृजन किया है। अपने लेखन के विषयों के सम्बंध में वे कहती हैं, "मुझे मानवीय रिश्तों, रिश्तों के बीच व्यक्ति की अपनी पहचान, मानव मन की गुत्थियां, उलझनों को समझने, उनकी पड़ताल में गहरे उतरते चले जाने में हमेशा रुचि रही है। उनका मानना है कि लेखक की पहचान एक देश से जोड़ी जाए, यह जरूरी नहीं। **सुदर्शन प्रियदर्शिनी** भारत और विदेशों में महिला साहित्यकारों के लेखन में भिन्नता के सम्बंध में कहती हैं "विदेशों में रहने वाली महिलाएं कल्पनाओं के पंखों पर नहीं उतरती। स्वप्नों में नहीं जीती क्योंकि स्वप्नों और वास्तविकता में विराट भिन्नता है।" **अनिल प्रभा कुमार** अपनी रचना प्रक्रिया के सम्बंध में कहती हैं "आकार, घटना बाह्य चाहे हों पर जब मैं परकाया में प्रविष्ट होकर सब अनुभव जीती हूं, तभी लिख पाती हूं। एक प्रेरणा का स्रोत या केंद्र-बिंदु कहीं से उठता है और फिर वह मेरी ही कोख में पनपता है।" कथाकार **पुष्पा सक्सेना** स्त्री विमर्श और स्त्री आंदोलन के सम्बंध में पूछे जाने पर कहती हैं, "सरल शब्दों में नारी अस्मिता के लिए सैद्धांतिक या वैचारिक चिंतन तथा स्त्री-आंदोलन को व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक प्रयास के रूप में देखती हूं।" **डॉ. मृदुला कीर्ति** अपने साक्षात्कार में कहती हैं, "दिव्य काव्य कृपा साध्य होता है, श्रम साध्य नहीं।" **रेखा मैत्र** के दस कविता संग्रह प्रकाशित हैं। उनके साक्षात्कार में कविता से जुड़े प्रश्न ही प्रमुख रूप में आधार रहे हैं। वे कविता को अनायास सहज अभिव्यक्ति मानती हैं। **देवी नागरानी** से साक्षात्कार लेते हुए सुधा जी ने ग़ज़ल के प्रति आकर्षण, प्रेरणा, हिंदी-उर्दू ग़ज़ल की भिन्नता, ग़ज़ल का मूल स्वर और मीटर आदि पर बातचीत की है। देवी नागरानी ग़ज़ल के सम्बंध में कहती हैं, "ग़ज़ल अब हमारी तहज़ीब की आबरू बन गई है।" **शशि पाधा** भी मूलतः कवयित्री हैं। उन्होंने गीत, नवगीत, दोहा हाइकू आदि विविध काव्य रूपों में सृजन किया है। साक्षात्कार लेखिका ने उनकी काव्य कृतियों की राह से गुज़रते हुए उनकी रचना प्रक्रिया, छंदबद्ध और छंदमुक्त कविता की भिन्नता, रचना का मूल स्वर, रचनाशीलता में पाठक और समाज की भूमिका सम्बंधी सवाल उठाए हैं।



सुधा जी ने अमेरिका के कवि सम्मेलनों में गीतों के बादशाह कहलाए जाने वाले कवि **खंडेलवाल** जी से साक्षात्कार में आज की कविता और रचनात्मक परिदृश्य सम्बंधी अनेक प्रश्न पूछे हैं। आज की कविता में यथार्थ के नाम पर बौद्धिकता को वे अस्वीकार करते हैं। अपनी ज़मीन से जुड़कर की जाने वाली कविता मन की जिन गहराइयों में पहुंचती है, उसकी कल्पना तथाकथित बौद्धिक स्तर की कविता में नहीं हो सकती।" अनिता कपूर से संवाद प्रमुख रूप में नारी स्वातंत्र्य, स्त्री विमर्श पर केंद्रित रहा है। प्रो. हरिशंकर आदेश के साक्षात्कार में हिंदी की वैश्विक स्तर पर स्थिति और प्रवासी लेखकों के प्रति दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। **श्याम त्रिपाठी** ने विदेश में रहते हुए हिंदी के पठन-पाठन और सृजनशीलता को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। सुधा जी ने उनसे साक्षात्कार में उनके द्वारा संचालित 'हिंदी चेतना' पत्रिका के अंकुरित, पलवित और पुष्पित होने से जुड़े सवाल पूछे हैं। **तेजेंद्र शर्मा** ने साहित्य की विविध विधाओं में सृजन किया है। वे प्रमुख रूप में कवि और कथाकार हैं। लेखिका ने उनकी रचना प्रक्रिया, चरित्र सृष्टि, सृजनशीलता की परिपक्वता, लेखनी में टर्निंग पांइट, स्त्री विमर्श, नारी आंदोलन भारतीय हिंदी कहानी की स्थिति, साहित्यिक गुटबंदी और बाज़ारवाद, प्रवासी लेखन से जुड़े सवाल पूछे हैं। इन संदर्भों में उनकी सारगर्भित टिप्पणियां आकर्षित

करती हैं। **उषा राजे सक्सेना** कवयित्री और कहानीकार हैं। उन्होंने निबंध भी लिखे हैं और सम्पादन का भी अनुभव है। वे लेखन में सामाजिक बोध को बहुत आवश्यक मानती हैं। लेखक और पाठक दोनों समाज के अंग हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। **अचला शर्मा** यह मानती हैं कि हम अपने समय और परिवेश की अवहेलना नहीं कर सकते। **अर्चना पैन्यूली** डेनमार्क के गिने-चुने कथाकारों में से हैं। उनका 'वेयर डू आई बिलाना' उपन्यास बहुत चर्चित रहा है। उन्हें राष्ट्रकवि प्रवासी साहित्यकार से भी सम्मानित किया गया है। सुधा जी ने इस उपन्यास के कथ्य और शिल्प पर विचारों को साझा किया है। कथा साहित्य की समकालीनता पर भी विचार व्यक्त किए गए हैं। **सुरेश शुक्ल 'शरद आलोक'** नार्वे से स्पाइल पत्रिका निकालते हैं। नार्वे में हिंदी की स्थिति, प्रवासी साहित्यकार कहलाना कैसा लगता है, साहित्यिक गुटबंदियों सम्बंधी प्रश्नों के उत्तर इनके साक्षात्कार में उपलब्ध हैं। **पूर्णिमा वर्मन** मानती हैं कि हिंदी में इंटरनेट पर अभी बहुत काम करना है। कवि एवं कथाकार **कृष्ण बिहारी** 'निकट' पत्रिका के सम्पादक हैं। विचारधारा और रचना के सम्बंध, साहित्यिक गुटबंदियों और बाज़ारवाद पर उनके विचार साक्षात्कार में प्रमुख रूप में उभरे हैं। **एस.आर. हरनोट** उपन्यासकार, कहानीकार और यात्रा वृतांत लेखक हैं। उनका मानना है कि रचना में प्रयोगों पर अधिक ध्यान रचना का मूल समाप्त कर देता है। वे प्रवासी शब्द का प्रयोग विदेशों में रह रहे भारतीय लेखकों के लिए उपयुक्त नहीं समझते। **रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'** की लघु कथा लेखन में अधिक रुचि रही हैं। इस विधा में उनकी बहुत-सी कृतियां हैं। सुधा जी ने लघु कथा लेखन पर उनका साक्षात्कार केंद्रित रखा है। पुस्तक के अंत में कंचन सिंह चौहान ने **सुधा ओम ढींगरा** का साक्षात्कार लिया है। यह अपने आपमें इस पुस्तक की नवीनता है। इस विस्तृत साक्षात्कार में कंचन सिंह चौहान ने सुधा जी के प्रारम्भिक जीवन के संघर्ष से लेकर सृजनशीलता तक के सफर के अनेक पड़ाव विवृत किए हैं जो पाठक को भावविभोर, प्रेरित और आकर्षित करते हैं। सुधा जी ने साक्षात्कार विधा की परम्परा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है, एक साक्षात्कारकर्ता को किस प्रकार पूर्व तैयारी के साथ इस विधा में अग्रसर होना चाहिए तथा किस प्रकार के गुण और विशिष्टता अपेक्षित होती है, इसे भी इस सम्वाद में व्यक्त किया है। सुधा ओम ढींगरा ने प्रत्येक साक्षात्कार से पूर्व प्रत्येक रचनाकार का जीवन परिचय दिया है जिससे उनके जीवन-वृत्त और कृतित्व सम्बंधी जानकारी पाठक को मिल जाती है। साक्षात्कार प्रारम्भ करने से पहले लेखिका ने प्रत्येक रचनाकार के व्यक्तित्व के आंतरिक और बाह्य पक्षों, उनसे भेंट करने या सम्वाद करने के संस्मरणात्मक अनुभवों नितांत काव्यात्मक और चित्रात्मक भाषा में मूर्तिमान किया है। इस अवसर पर प्रस्तुत उनकी टिप्पणियों में लेखिका की आलोचनात्मक और सृजनात्मक दृष्टि का बोध होता है। इन साक्षात्कारों में सुधा जी ने वैश्विक रचनाकारों के साहित्य सृजन, सृजन की प्रेरणा और रचनाशीलता की प्रासंगिकता सम्बंधी विविध पक्षों के उद्घाटन में जिस दक्षता और पूर्व तैयारी का परिचय दिया है, यह इस पुस्तक की उपलब्धि है। साक्षात्कार के लिए प्रस्तुत प्रश्नों की क्रमबद्धता, प्रासंगिकता, स्पष्टता और परिपक्वता इसके प्रमाण हैं। मारिशस, जर्मनी आदि देशों में प्रवासी हिंदी साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। कुछ ऐसे देशों के रचनाकार भी इसमें सम्मिलित होते तो पुस्तक की अर्थवत्ता और अधिक बढ़ जाती। निश्चित रूप में इस क्रम में द्वितीय खंड इस कमी को पूरी करेगा। यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सुधा ओम ढींगरा द्वारा लिए गए ये साक्षात्कार वैश्विक रचनाकारों की रचनाभूमि के दस्तावेज हैं।

बातल अर्की, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश-173 208,
मो. 94180 10646

पुस्तक का नाम :	वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं (साक्षात्कार)
लेखिका :	सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक :	शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब सम्राट कॉम्पलैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर, मध्य प्रदेश-466 001
पहला सजिल्द संस्करण :	2013
मूल्य :	250 रुपये

- जल में मीन का मौन है, पृथ्वी पर पशुओं का कोलाहल और आकाश में पंछियों का संगीत। लेकिन मनुष्य में जल का मौन, पृथ्वी का कोलाहल और आकाश का संगीत सब कुछ है। - **रवींद्रनाथ ठाकुर**
- किसी भी व्यक्ति का चरित्र इस बात से आंका जा सकता है कि वह अनजान लोगों के साथ कैसा व्यवहार करता है। **- मदर टेरेसा**
- किसी भी चीज की कामना करो तो वह मिल ही जाती है, लेकिन कामना छोड़ दो तो चीजें खुद चली आती हैं। **- स्वामी शिवानंद**
- आकाश में उड़ने वाले पंछी को भी अपने घर की याद आती है। **- प्रेमचंद**

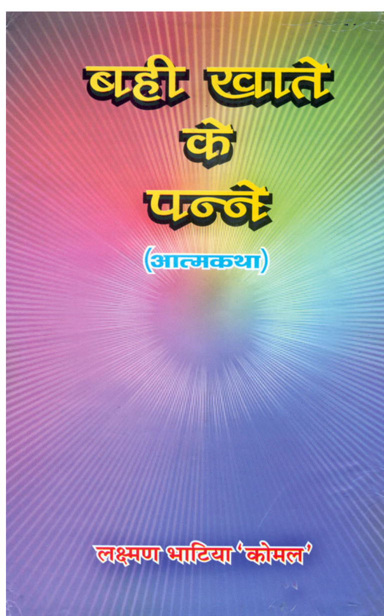
पुस्तक-समीक्षा

ज़िंदगी के बही-खातों के संतुलित पन्ने

• डॉ. उषा बंदे

'बही खाते के पन्ने' लक्ष्मण भाटिया 'कोमल' की आत्मथा है जो उन्होंने सिंधी में लिखी और जिसका भाषांतर श्री खीमन मूलाणी ने हिंदी में किया है। ये तीनों भाग 'आत्मकथा' अवश्य हैं क्योंकि इनमें उनके जीवन के उतार-चढ़ाव, सुख-दुःख, गूढ़ विचारधारा और रूमानी प्रवृत्ति की कहानी है परंतु इसमें बयान की हुई घटनाएं, हल्की-फुल्की कथाएं और ऐतिहासिक संदर्भ इसे एक रोचक कहानी का रूप दे देते हैं। आत्मकथा हमेशा पीछे देखती है और भूतकाल को उकेरकर वर्तमान के सामने खड़ा कर देती है। इसमें याद्‌दाश्त अर्थात् 'मेमोरी' की अहम भूमिका होती है परंतु प्रश्न उठता है कि स्मरण-शक्ति पर कितना विश्वास किया जाए क्योंकि आत्मकथा का दावा तो होता है कि जो कुछ बयां किया है, सत्य है। श्री भाटिया भी यह दावा करते हैं फिर भी मानते हैं कि उन्होंने अपनी कहानी को कल्पना के पंख दिए हैं। पर इन पन्नों में सत्य और स्वप्न, वास्तव और कल्पना की सीमा-रेखा कहां रखें, यह प्रश्न अवश्य उठता है। पर कहानी इतनी रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है कि पढ़ते-पढ़ते साहित्यिक 'थीयरी' (सिद्धांत) हम भूल जाते हैं।

लेखक अपनी कहानी अपने जन्म से नहीं बल्कि अपनी आज की आयु से शुरू करता है कि 'मैं मरने से पहले अपने जीवन के कुछ मीठे और कड़वे सत्य दर्ज कर लूं।' और हमें आश्वासन देता है कि वह केवल 'सत्य' ही लिखेगा। यह और बात है कि वह सत्य थोड़ा नमक-मिर्च लगाकर पेश किया जाएगा। लेखक का जन्म सिंध (पाकिस्तान) के नवाबशाह के कंडियारो नगर में विभाजन से पूर्व हुआ। जीवन रईसों वाला था, घर में अथाह सम्पन्नता थी। बड़ी जमींदारी थी और किसान-मजदूर सीधे-सादे थे जिन्हें लेखक के अत्याचारी जमींदार दादाजी का रोष सहने की आदत पड़ गई थी। सिंधी-हिंदू और सिंधी-मुसलमान भाईचारे से रहते थे। उनकी भाटिया कौम तीन सौ वर्ष पूर्व जैसलमेर से (राजस्थान) भागकर यहां आकर बसी थी, तब से सिंध इलाका, सिंधु नदी, गांव कंडियारो, जमींदारी डभरा उनके अपने हो गए थे। यहां इस कौम की जड़ें जम गई थीं।



फिर आया विभाजन, मज़हबी अत्याचार, पलायन और दर-दर की भटकन का दौर। उस समय भाटिया जी की आयु थी बारह के लगभग। 'जलदुर्गा' में भेड़-बकरियों की तरह ठूंसकर वह अपनी मां और भाई-बहनों के साथ 'ओखा' (गुजरात) पहुंचे जिसका अत्यंत स्पष्ट और सुचित्रित वर्णन रोंगटे खड़े कर देता है। बालक लक्ष्मण ने भूख देखी, भूख से मरते सहयात्री देखे, भूख-जनित स्वार्थपरता देखी और ज़िंदगी के विभिन्न नज़ारे देखे। भारत में आकर रिफ्यूजी कैम्पों की घुटन में वह युवा हो गया फिर कमाई करने की आवश्यकता से युवा लक्ष्मण ने क्या कुछ नहीं किया- अजमेर में दरगाह से बाहर एक फूलवाले के पास नौकरी, कानपुर में दीवारों और खम्बों पर सिनेमा के पोस्टर चिपकाना, रेड- लाईट बस्ती के सामने जूते बेचना और जानकीबाई की हवेली (बनारस) में नर्तक बनना। इन सबके वर्णन के साथ ही इन शहरों और बस्तियों का गहराई तक दर्शन करवाने में लेखक माहिर है।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' में नौकरी मिलने के बाद जीवन में स्थिरता आई। लेखक की साहित्य में रुचि थी। उन्होंने अनेक सम्मेलनों में भाग लिया। लगभग पूरे देश का भ्रमण किया और ख्यातनामा हस्तियों से

पुष्पा मेहरा के शीत ऋतु पर हाइकु

एक

बनी जो दूरी
सूरज से धरा की
धरा दुखारी।

दो

बुनने लगा
बर्फ़ का ताना-बाना
माघ-महीना।

तीन

आया जो पौष
हिमकोट पहने
आयी प्रकृति।

चार

सूर्य की जर्सी
कुहासा चुरा भागा
धरा ठिठुरी।

पांच

फैला है धुआं
न आग, न लपट
न जलधारा।

छह

रोई जो रात
पीती रही थी आंसू
धरा सहेली।

सात

सिसका चांद
अनबोला ही रहा
बिदा हो गया।

आठ

प्रेम-विहीन
ये मन, हिमखंड
ऊष्मा रहित।

नौ

देता है ताप
धनी-घर हीटर
झुग्गी में धूप।

दस

तना खड़ा है
हिम-किरीट धारे
ये गिरिवर।

ग्यारह

स्वर्ण-रश्मियां
जड़ रही हैं स्वर्ण
दमके गिरि।

बी-201, सूरजमल विहार
दिल्ली-92,
दूरभाष : 011. 22166798

मित्रता की। नरगिस और संजय दत्त के वे करीबी मित्र थे। लेखक-लेखिकाओं में राजेंद्र सिंह बेदी, कर्तुलिन हैदर, अमृता प्रीतम जैसे लोगों के साथ उठना-बैठना हुआ, ए.के. बिरोही जैसे नाटककार से सराहना प्राप्त की और सिंधी साहित्य के लिए उन्होंने अथक काम किया। 'बही खाते के पन्ने' लेखक की उदार विचारधारा, संवेदनशीलता, स्मरण-शक्ति और इतिहास, साहित्य, धर्म आदि का गहन ज्ञान सामने लाता है। इतना ही नहीं, विभाजन से पूर्व सिंध के इलाके में चल रही राजनैतिक गतिविधि यां, वहां के बड़े नेता, वहां की संस्कृति और आपसी प्रेम ऐसी कई बातों का ज्ञान हमें होता है। तभी डॉ. मुरलीधर जैतली अपनी भाग-2 के लिए लिखी भूमिका में लिखते हैं कि यह आत्मकथा भाटिया जी के जीवन की वारदातों का ब्योरा नहीं है। यह सिंधी जाति की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। (पृ. 10 भाग-2)

पूरी आत्मकथा में स्थान-स्थान पर अपनी ज़मीन से उखड़ने का दर्द है। सिंधु नदी का उल्लेख है, कंडियारो एकबारगी फिर देखने की इच्छा है। वैसे लेखक भाग्यवान ही है क्योंकि साहित्य सम्मेलनों के लिए और पत्रकारिता की नौकरी के कारण कई बार कराची जाना हुआ।

लेखक :	लक्ष्मण भाटिया 'कोमल'
पुस्तक :	बही खाते के पन्ने (आत्मकथा) भाग 1, 2, 3
मूल भाषा :	सिंधी
हिंदी अनुवाद :	खीमन यू मूलाणी
प्रकाशक :	मॉडर्न पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
मूल्य :	300/- रुपये

आत्मकथा के तीनों खंड चुटकीले नुक्ते, वाक्य-चातुर्य और हास्य-विनोद की घटनाओं के कारण मनोरंजक हो गए हैं। लक्ष्मण भाटिया अपनी जीवन-कथा क्रमानुसार नहीं लिखते। बचपन की यादों के बीच कभी भाटिया कौम का इतिहास लिखते हैं, तो सम्मेलनों के मंडप में से जवानी की रंगरलियों से वाकिफ कराते हैं। फिर अचानक उनका स्वर गंभीर हो जाता है जब वे किसी धार्मिक स्थल के महत्त्व को बताते हैं। कुल मिलाकर यह आत्मकथा एक सुंदर उपन्यास का आनंद देती है। तृतीय खंड उन्होंने अपनी पत्नी गोपी को समर्पित किया है और इस भाग का स्वर शांत, आदरयुक्त और संतुलित है। अपने बेटे-बहू, पौत्र और पत्नी के सान्निध्य में पुस्तकों से घिरे लेखक संतुष्ट प्रतीत होते हैं।

पुस्तक की भाषा में प्रवाह है यद्यपि यह अनुवादित है, शैली रोचक है, कव्हर और प्रकाशन अच्छा है पर प्रूफ की गलतियां उलझ पैदा करती हैं।

वैक्सलो, लोअर कैथू, शिमला-171 003, 098161 14490

साहित्यिक रपट

कतरा-कतरा ज़िंदगी बचा कर रखिए...

● कुल राजीव पंत

एज केयर इंडिया, हिमाचल की शिमला इकाई ने अपने आयोजनों की कड़ी में एक नई पहल करते हुए पिछले दिनों रोटरी टाउन हॉल में भाषा एवं संस्कृति विभाग के सहयोग से एक कवि गोष्ठी का आयोजन किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता इंजीनियर जी.के. नाग ने की तथा डॉ. अरुण शर्मा, निदेशक भाषा संस्कृति विभाग मुख्य अतिथि के रूप में मौजूद रहे।

कार्यक्रम का संचालन संस्था के सचिव डॉ. वी.के.शर्मा ने किया। संस्था का संक्षिप्त परिचय देते हुए डॉ. शर्मा ने बताया कि एज केयर इंडिया की शिमला इकाई शिमला तथा शोघी केंद्रों का संचालन करती है। अप्रैल से दिसम्बर तक संस्था के विभिन्न कार्यक्रम चलते रहते हैं। इस वर्ष संस्था ने पांच मेडिकल कैम्पों के अतिरिक्त दस विभिन्न कार्यक्रम किए। इन आयोजनों में वरिष्ठ नागरिकों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। संस्था के केन्द्रों में पत्र- पत्रिकाएं उपलब्ध कराई जाती हैं और यह स्थान वरिष्ठ नागरिकों के मिलने-जुलने तथा विचार-विमर्श के लिए उचित मंच सिद्ध हो रहे हैं।

एज केयर शिमला द्वारा कवि गोष्ठी का आयोजन

कवि गोष्ठी में 11 कवियों ने भाग लिया। लगभग छह दशकों से लेखन कर्म में लीन प्रदेश के वरिष्ठ कवि रामकृष्ण कौशल ने बदलता मौसम ग़ज़ल के माध्यम से नई सरकार की नीतियों से समाज में व्यापक परिवर्तन की उम्मीद यूं जाहिर की-

हर हाथ में हो काम, हर चेहरा हो लाल दोस्तो
लगता है रंग लाएगा, नई तकनीक का इस्तेमाल दोस्तो।

सी.आर.बी. ललित हिंदी तथा पहाड़ी के चर्चित कवि-गीतकार हैं। जीवन को नई चुनौतियां देते, तेजी से बदल रहे आज के माहौल के मर्म को भेदते हुए गीत में उन्होंने कहा-

इन तूफान के झोंकों में, अविचल रहना बहुत कठिन है।

आज जहां भ्रष्टाचारियों द्वारा देश को लूटने की होड़ लगी है, वहीं बापू गांधी ने गरीबी को देखते हुए जीवन भर केवल एक वस्त्र ही पहना। इस विरोधाभास को डॉ. मस्त राम शर्मा, सचिव, संस्कृत अकादमी ने यूं बयां किया- इंद्र देवता अब नहीं मांग पाओगे हड्डियों का दान, आज भ्रष्टाचारी कर रहे खाली तिजोरियां देश की। गरीबी को देखते हुए, गांधी बापू हो गए थे, एक वस्त्र लंगोटी के सहारे।

नरेश बंटा ने अंग्रेजी भाषा में चौदह पंक्तियों के अनुशासन में बंधे सॉनेट 'टू माई लव' प्रस्तुत किया। यह सॉनेट उन्होंने सन् 1959 में अपनी युवावस्था में लिखा था। रजनी कांत शर्मा साहित्य की सभी विधाओं में लिखते हैं। इस मौके पर उन्होंने दो ग़ज़लें प्रस्तुत कीं। सामाजिक विद्रूपताओं पर कटाक्ष करते हुए उन्होंने कहा-

सर छुपाने की जगह नहीं,
खुला पड़ा आकाश यहां पर।

तथा ग़ज़ल पर अपने विचार यूं व्यक्त किए -

ग़ज़ल को तलवार होना चाहिए
जलता हुआ इक अंगार होना चाहिए।

भारतीय संगीत में गहन रुचि रखने वाली डॉ. मनोरमा शर्मा की अब तक कविता के दो संग्रहों के अतिरिक्त 26 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। शब्द की सत्ता के मर्म को तलाशते तथा किताबों की बेखौफ दुनिया में उनके अर्थ टटोलते हुए उन्होंने कहा-

किताबों से सबसे जादा
डरते हैं तानाशाह
सबसे पहले
वह कोशिश करते हैं
इन्हें नष्ट करने की।

अपनी बात बढ़ाते हुए उन्होंने कुछ इस तरह कहा- किताबें जब भी बांची और बचाई जाएंगी तो वह हाथ समझदार ही होंगे, जो हर युग में किताबें टटोलते रहते हैं।

इस मौके पर उन्होंने चांदनी शीर्षक से प्रस्तुत गीत में सम्बंधों की परतों को प्रभावी ढंग से फरोल कर रखा।

प्रो. आर.डी. शर्मा ने अपने चिर-परिचित अंदाज में ग़ज़ल प्रस्तुत की-

कतरा-कतरा जिंदगी बचा कर रखिए
धूप की किरण मुट्ठी में दबा कर रखिए।
उम्मीदें बहुत हैं रहमत से
सिरहाने उम्मीदों के महल सजा कर रखिए।

ब्रह्मानंद देवरानी ने पिता को समर्पित कविता में पिता के कोट के माध्यम से रिश्तों की बारीकियों को बखूबी बयां किया। समकालीन हिंदी कविता के चर्चित कवि तेज राम शर्मा ने किताबों की दुनिया के माध्यम से समकालीन यथार्थ पर तीखे व्यंग्य किए। कभी ड्राइंग रूम की शोभा बनने वाली पुस्तकें अब घर से ही गायब हो रही हैं। पुस्तकों की बेदखली के मर्म को उधेड़ते हुए वह कहते हैं- सुनहरी जिल्दी वाली जब कुछ/ ड्राइंग रूम की ओर जाने लगी/ तो पत्नी चिल्लाई/ ड्राइंग रूम में रखता है कोई किताबें/ ज्यादा शोर मचाया तो/ घूमते ही रहते हैं यहां कबाड़ी। आज की पीढ़ी का द्वंद्व कविता में कुछ इस तरह उभर कर आया- रामायण और महाभारत की टेक लिए/ खड़ी नहीं रहना चाहती/ अति आधुनिक छरहरी कविता पुस्तकें।।

संस्था के अध्यक्ष इंजीनियर जी.के.नाग ने कवियों तथा श्रोताओं का कार्यक्रम में पधारने के लिए धन्यवाद किया। उन्होंने कहा कि मानव ने सबसे पहले शायद कविता में ही बात की होगी। हिंदी कविता के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की कविता की प्रवृत्तियों को उन्होंने प्रमुख कवियों की कविताओं के उद्धरण देते हुए स्पष्ट किया। इसके साथ-साथ वह उर्दू ग़ज़ल के प्रमुख ग़ज़लकारों का भी जिक्र करते रहे। कवि गोष्ठी को सफल बताते हुए उन्होंने कहा कि भविष्य में भी संस्था इस तरह के साहित्यिक आयोजन करती रहेगी।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. अरुण शर्मा, निदेशक भाषा संस्कृति विभाग ने वरिष्ठ नागरिकों की देखभाल के लिए समर्पित संस्था एज केयर इंडिया की शिमला इकाई द्वारा किए जा रहे विभिन्न कार्यों की प्रशंसा की तथा संस्था द्वारा कवि गोष्ठी का आयोजन सराहनीय कदम बताया। उन्होंने कहा कि साहित्यिक कार्यक्रम वरिष्ठ नागरिकों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छी खुराक का काम करते हैं। इस मौके पर डॉ. शर्मा ने प्रदेश के दुर्गम क्षेत्र किन्नौर की कठिन स्थितियों को उकेरती कविता अनाम उदासी तथा रात भर जगी आंख का भी पाठ किया।

कार्यक्रम के अंत में डॉ. परमजीत कौर ने संस्था की ओर से सभी कवियों-श्रोताओं का धन्यवाद किया।

प्लैजैंट कॉटेज, संजौली, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 006,
मो. 94189 82383

सुरेश चंद शर्मा 'बटोही' की कविताएं

पाथेय

कुछ अतीत कुछ वर्तमान का
पाथेय बांध चला पथिक
यह जीवन का आधार उसका
जिस पर जीता वह रह-रह कर।
मधुर, तिक्त, कषाय, कटु
यह जीवन का पोषाहार
जिसको चखना पड़ता सबको
यह ही जीवन सार।
कभी अकेला कभी जमघट
कभी बीहड़ कभी पाषाणों में
कभी सुरम्य रसीली बादी
चुकता जाकर मरघट पर।
नहीं समझ पाता कोई
इसके स्वाद का वह ही भोगी
अपनी-अपनी समझ है सबकी
इस पाथेय की रुचि-शुचि।



ज़िंदगी का रूप



आह दिल में
नयनों में नीर
ज़िंदगी ये कैसी !
चलती, बोलती, देखती तस्वीर।
खुल गए सब द्वार
चहल-पहल सब ओर
घुटनभरी ज़िंदगी
जैसे हर कोई लाचार।
भव्यता की चौखट, है राजद्वार
हैं खड़े सब ओर पहरेदार
फिर भी ज़िंदगी
नाव जैसे बिन पतवार।
क्या-क्या छुपा है इस कृति में
समझें न कोई इसकी तामीर
बदलता जाए हर पल
जिंदगी ये कैसी तदबीर!

गांव पाटी-चव्यार डा. धरोट, जिला सोलन,
हिमाचल प्रदेश-173 213, मो. 98160 41894

हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 फरवरी 2015 अंक : 11

प्रधान सम्पादक
डॉ. एम.पी. सूद

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

आवरण एवं रेखांकन
सर्वजीत सिंह

कम्पोजिंग एवं पृष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्कः 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

जो बदलाव आप दूसरों में देखना चाहते हैं, पहले स्वयं में लाइए।

– महात्मा गांधी

इस अंक में

अपनी बात

विश्व बैंक ने हाल ही में 'शिखरों को छूता हिमाचल : हिमाचल में सामाजिक-समावेशी तथा सतत् विकास' नामक अपनी एक नई रिपोर्ट प्रकाशित की है जिसमें हिमाचल प्रदेश द्वारा विगत दशकों के दौरान प्राप्त उपलब्धियों का एक वृहद सामाजिक आकलन किया गया है। विश्व बैंक जैसी सर्वोच्च बैंकिंग संस्था द्वारा प्रकाशित यह ताजा रिपोर्ट तमाम प्रदेशवासियों के गौरव का वह दस्तावेज है जो इस दौरान हिमाचल प्रदेश जैसे पर्वतीय राज्य में हुए विकास के दावे को पुख्ता करता है। इस रिपोर्ट में प्रदेश की सफलता का मूल्यांकन तथा आगामी वर्षों में बदलते परिवेश में आधारभूत ढांचागत वृद्धि के साथ निरंतरता को बनाए रखने का भी उल्लेख किया गया है। हिमाचल प्रदेश को इस मुकाम तक ले जाने का श्रेय जहां सत्तासीन प्रदेश सरकारों की दूरदर्शी नीतियों एवं कार्यक्रमों व कुशल कार्यान्वयन एजेंसियों को जाता है, वहीं प्रदेश के मेहनती एवं कर्मठ नागरिक भी इसके बराबर के हकदार हैं। रिपोर्ट के अनुसार प्रदेश ने विगत दो दशकों के दौरान आर्थिक वृद्धि जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में असाधारण उपलब्धियां हासिल करते हुए प्रदेश में लोगों को न केवल गरीबी से निजात दिलाई है, बल्कि विकास के कई मानकों में तो इसने अन्य राज्यों को पीछे छोड़ दिया है। देश में प्रति व्यक्ति आय के मामले में यह शीर्ष श्रेणी राज्यों में शामिल है जो कि एक प्रभावशाली एवं अनुकरणीय उपलब्धि आंकी गई है। आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ मानवीय विकास मानकों में भी प्रदेश की उपलब्धियों को श्रेष्ठ आंका गया है। श्रम शक्ति के क्षेत्र में राज्य में महिलाओं की भागीदारी का अनुपात सर्वश्रेष्ठ पाया गया है। प्रदेश के नागरिक पर्यावरण के प्रति जागरूक एवं सजगता के मामले में देशभर में अग्रणी हैं। हिमाचल प्रदेश शायद देश का पहला राज्य है जहां पॉलीथीन के लिफाफों के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबंध है। सम्पूर्ण स्वच्छता के क्षेत्र में भी प्रदेश की उपलब्धियां सराहनीय रही हैं और उत्तर भारत के राज्यों में हिमाचल खुले में शौचमुक्त बनने की ओर अग्रसर है। रिपोर्ट में उद्धृत हुआ है कि राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई दूरदर्शी नीतियों और उनके बेहतर कार्यान्वयन के लिए अमल में लाई गई कारगर पद्धति यहां समावेशी विकास का जरिया बनी हैं। हिमाचल प्रदेश में देश के अन्य राज्यों की बनिस्पत कम गरीबी का सबसे बड़ा कारण है कि प्रदेश में अस्तित्व में आने के तुरंत बाद यहां भूमि-सुधारों को सही परिप्रेक्ष्य में लागू किया गया परिणामस्वरूप आज प्रदेश के 80 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास आजीविका के लिए कृषि भूमि उपलब्ध है। इससे विभिन्न सामाजिक वर्गों में समान भूमि वितरण सुनिश्चित हुआ है जिससे राज्य में अंतर समूह असमानताओं को समाप्त करने में भारी सफलता मिली है। प्रदेश ने अपनी विकास यात्रा को निरंतर आगे बढ़ाने और भविष्य में प्रगति सुनिश्चित करने हेतु जलविद्युत क्षमता का दोहन, वन एवं पर्यावरण संरक्षण, जलागम प्रबंधन पर्यटन तथा औद्योगीकरण जैसे क्षेत्रों को व्यापक स्तर पर बढ़ावा दिया है। रिपोर्ट के अनुसार हिमाचल प्रदेश देशभर में एक स्थिर, समावेशी और सुशासित राज्य के रूप में उभर कर सामने आया है जिस पर हर प्रदेशवासी को गर्व होना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में राज्य का उपलब्धियां शीर्ष पर आंकी गई हैं। शिक्षा के विकास व प्रसार से राज्य में जागृति आई है। सही मायनों में अनेक क्षेत्रों में अर्जित उपलब्धियों के द्वार शिक्षा की पहुंच तथा उपलब्धता ने खोले हैं। यह सच्चाई ही है कि जागरूक समाज ही प्रगति की राह पर आगे बढ़ सकता है। इस अंक में नियमित सामग्री के साथ-साथ विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट पर विशेष सामग्री जुटाई गई है।

–सम्पादक

विकासात्मक लेख

हिमाचल में सामाजिक समावेश से सतत् विकास

गरीबी उन्मूलन व मानवीय विकास में बना शीर्ष राज्य

● विनोद भारद्वाज

गरीबी उन्मूलन से सभी वर्ग लाभान्वित

ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक उन्नति हुई संभव

बाल मृत्य दर देश भर में सबसे कम

सभी को स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता

सामाजिक समूहों में समान भू-आवंटन

भू-सुधारों से मिली सफलता

शिक्षा के क्षेत्र में राज्य की उपलब्धि सराहनीय

सभी वर्गों को शिक्षा उपलब्ध

पर्वतीय राज्य हिमाचल प्रदेश ने विकास के विभिन्न पैमानों में उपलब्धियों हासिल कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। राज्य ने विगत दो दशकों में आर्थिक वृद्धि के क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धि हासिल की है। राज्य ने आर्थिक उन्नति के साथ सामाजिक समावेश का एक प्रभावी संतुलन स्थापित किया है। इस उपलब्धि से उसने अन्य राज्यों को पीछे छोड़ते हुये लोगों को गरीबी से निजात दिलाई है। देश में प्रति व्यक्ति आय में राज्य दूसरे स्थान पर है जोकि एक प्रभावशाली उपलब्धि आंकी गई है जबकि 90 प्रतिशत से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। हिमाचल प्रदेश को गठन के समय एक पिछड़े, अविकसित राज्य के नाम से जाना जाता था, लेकिन इसने इन नए कीर्तिमानों से नए नामकरण से अपनी पहचान व साख बनाई है। हिमाचल का नाम आते ही उसे विकसित, प्रगतिशील व समृद्ध राज्यों की श्रेणी में ध्वजवाहक के रूप में देखा जाने लगा है।

आर्थिक वृद्धि के साथ अन्य मानवीय विकास मानकों में भी राज्य की उपलब्धि श्रेष्ठ आंकी गई है। शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्धि देश में सर्वाधिक है। अन्य राज्यों के मुकाबले श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी का अनुपात सर्वश्रेष्ठ है।

राज्य तथा यहां के नागरिकों में पर्यावरण के प्रति सजगता सर्वोपरि है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है कि हिमाचल प्रदेश देश का पहला राज्य है, जिसने पॉलीथीन के लिफाफों के उपयोग पर प्रतिबंध लगाया है। सम्पूर्ण स्वच्छता के क्षेत्र में भी राज्य की उपलब्धि सराहनीय रही है तथा उत्तर भारत के राज्यों में हिमाचल शीघ्र ही खुले में शौच मुक्त बनने की ओर अग्रसर है।

इन सकारात्मक परिणामों से यह सिद्ध हुआ है कि हिमाचल प्रदेश का समाज स्थायी एवं समावेशी है। अन्तर समूह असमानताएं निम्न स्तर पर है, जबकि अनुसूचित जाति तथा जनजाति का अनुपात कुल जनसंख्या का 30 प्रतिशत है।

हाल ही में विश्व बैंक की एक नई रिपोर्ट 'शिखरों को छूता हिमाचलः हिमाचल में सामाजिक समावेश तथा सतत् विकास' हाल ही में प्रकाशित हुई है। यह विगत दशकों के दौरान राज्य की उपलब्धियों का एक वृहद

सामाजिक आकलन है। यह अंतर विभागीय प्रयास है तथा सतत् विकास की राह पर आगे बढ़ते हुये राज्य की विकास यात्रा का आकलन संभव हुआ है। हिमाचल प्रदेश एक विशेष राज्य की श्रेणी में आता है, जिसकी बदौलत राज्य को विकासात्मक धनराशि प्राप्त करना आसान है। प्राप्त धनराशि के विभिन्न क्षेत्रों में व्यय होने के कारण सकारात्मक परिणाम सामने आये हैं। इससे अंतर समूह समानता को भी बढ़ावा मिला। यह रिपोर्ट अन्य राज्यों के लिये भी एक मार्गदर्शक का कार्य कर सकती है। राज्य की उपलब्धियों से लाभ उठाकर वे अपने राज्यों में सामाजिक समावेश का लक्ष्य हासिल कर सकते हैं।

विश्व बैंक की रिपोर्ट में राज्य की अनूठी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी अहम बताया गया है, जहां सशक्तिशील समाज निर्माण में उत्तरदायी प्रशासनिक व्यवस्था तथा विश्वसनीय नेतृत्व अहम भूमिका निभा रहा है। राज्य की सफलता की कहानी के पीछे भी इसी शक्ति का हाथ है। प्रदेश के दूरस्थ गांवों तक कठिन भौगोलिक परिस्थितियों के बावजूद राज्य जनसेवाएं प्रदान करने के प्रति कटिबद्ध है। इस कार्य में सशक्त सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देकर, स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता को बढ़ावा दिया है। विकासात्मक कार्यक्रमों में सांस्कृतिक मापदण्डों की बदौलत महिलाओं की भागीदारी से राज्य को स्वच्छता, टीकाकरण तथा स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति जैसे क्षेत्रों में सफलता हासिल हुई है।



हिमाचल पर विश्व बैंक द्वारा पहली बार विकासात्मक रिपोर्ट प्रकाशित

विश्व बैंक द्वारा तैयार की गई इस रिपोर्ट को मैत्रैय बोराडिया दास, सोमया कपूर मेहता, इमसैट आकटे दास तथा लीवा जुम्बेटे द्वारा तैयार किया गया है। यह इंटरनेट पर www.worldbank.org पर उपलब्ध है। विश्व बैंक द्वारा वृहद सामाजिक आकलन पहली बार किया गया है। रिपोर्ट के अध्ययन के दौरान शिमला जिले के कुफरी के समीप कनूरनाला तथा रामपुर के समीप निरसू गांव में कृषि, पर्यावरण तथा विद्युत इकाई स्थापना का भी आकलन किया गया है। इस रिपोर्ट को तैयार करते हुये प्रदेश सरकार के अनेक विभागों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, वन, समाज कल्याण, ऊर्जा, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के सांख्यिकी प्रभाग, उच्च अध्ययन संस्थान, रामपुर विद्युत परियोजना, एनजेपीसी जैसे संगठनों से भी आंकड़े एकत्रित किये गये हैं।

राज्य के सशक्त सामाजिक ताने बाने की बदौलत आपसी सौहार्द के माध्यम से प्रगति के पथ पर अग्रसर है। रिपोर्ट में उद्धृत हुआ है कि राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों तथा उनके कार्यान्वियन के लिये अमल में लाई गई पद्धति के माध्यम से ही राज्य के समावेशी विकास हासिल करने में सफलता मिली है। वर्ष 1950 तथा 1970 के दशक में राज्य में लागू भू-सुधारों से समावेशी विकास की नींव पड़ी। भू-सुधारों का ही प्रतिफल है कि 80 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास अपनी भूमि तथा सामाजिक समूहों के बीच भी एक समान भूमि उपलब्ध है। यह स्थिति अन्य राज्यों के मुकाबले बेहतर आंकी गई है। इससे अनुसूचित जाति की आबादी अत्याधिक लाभान्वित हुई तथा कृषि कार्यक्रमों के सफलतापूर्वक लागू होने से लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति मजबूत हुई। राज्य की नीतियां पर्यावरण के सतत् विकास को ध्यान में रखकर लागू की गई हैं। यह लोगों की पर्यावरण के प्रति पारम्परिक संरक्षण की ठोस भावना के अनुरूप है। विकास पथ पर आगे बढ़ते हुये हिमाचल प्रदेश ने भविष्य की प्रगति के लिये जल विद्युत उत्पादन, वॉटरशैड प्रबन्धन, पर्यटन तथा औद्योगिक विकास को बढ़ावा दिया है तथा इन क्षेत्रों को बढ़ावा देते हुये राज्य ने इस बात को ध्यान में रखा है कि पुरातन सामाजिक व्यवस्था व सतत् पर्यावरण विकास प्रभावित न हो। राज्य की सबसे बड़ी चिंता लिंग अनुपात घटना तथा कुपोषण है। कुपोषण के तहत एक तिहाई बच्चे आते हैं जो कि 2005-06 के मुकाबले तो अधिक हैं तथा यह आंकड़े राष्ट्रीय अनुपात से भी कम है। लिंग अनुपात को बढ़ावा देने वाली श्रेष्ठ 50 पंचायतों को सम्मानित किया जा रहा है। राज्य के लाहौल स्पीति जिले में लिंगानुपात देश में प्रथम स्थान पर है।

राज्य प्रगति के क्षेत्रों में उभर रही चुनौतियों का भी सामना कर रहा है। शिक्षित युवाओं को सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करना है। उनकी कौशल दक्षता में वृद्धि कर नये क्षेत्रों में रोजगार प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त बुजुर्गों को भी श्रेष्ठ देखभाल देनी है। रिपोर्ट के अनुसार शहरी क्षेत्रों में बढ़ती आबादी के दृष्टिगत सुविधाओं के विस्तार की आवश्यकता है जिससे शहरों में नई आर्थिक गतिविधियों के अवसर सृजित हो सकें। विश्व बैंक की रिपोर्ट का निष्कर्ष है कि राज्य के निवासी आर्थिक विकास को सहर्ष स्वीकार कर रहे हैं, उनका सहयोग सामाजिक तथा पर्यावरण के निरंतर संरक्षण पर ही निर्भर करता है। भविष्य में वृद्धि की आवश्यकताओं में संतुलन बनाये रखने के लिये सामाजिक तथा पर्यावरण का सतत् विकास एक बहुत बड़ी चुनौती है, जिसके अनुरूप

नीतियों का निर्धारण किया जायेगा। इस रिपोर्ट से स्पष्ट हुआ है कि भू-सुधारों को राज्य के गठन के आरम्भ में लागू कर गरीबी उन्मूलन के लिए सशक्त आधार प्रदान किया। हिमाचल के लिए यह सत्य है कि यहां लगभग हर परिवार के पास अपना घर तथा जमीन है। जमीन होने से वह मेहनत कर अपना गुजर-बसर तो कर रहा है लेकिन उस जोत से उसने परिवार की आर्थिकी को भी जरिया बनाया है।

रिपोर्ट में सिद्ध हुआ है कि सेवाओं की प्रदत्तता तथा समाज में समावेशी विकास को सरकार द्वारा बल दिया जा रहा है। आज राज्य में सामाजिक समावेश को बढ़ावा मिल रहा है। एक सशक्त व सम्पन्न हिमाचल बनाने के लिए महिला सशक्तीकरण को भी बढ़ावा दिया गया है। सामाजिक सुरक्षा के तहत जनसंख्या का एक बड़े तबके को सहायता प्रदान की जा रही है। विभिन्न श्रेणियों के लगभग 3.05 लाख लोगों को सामाजिक सुरक्षा पेंशन प्रदान करने पर प्रतिवर्ष 235 करोड़ रुपये व्यय हो रहे हैं।

विश्व बैंक की रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि हिमाचल ने शानदार मानवीय विकास परिणामों के साथ अभूतपूर्व प्रगति हासिल की है।

सतत् विकासात्मक नीतियों से अग्रणी राज्य बना हिमाचल–वीरभद्र सिंह



मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह ने हाल ही विश्व बैंक द्वारा हिमाचल के विकास के परिदृश्य पर जारी रिपोर्ट पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुये कहा कि विभिन्न क्षेत्रों में राज्य द्वारा अर्जित उपलब्धियों पर हिमाचल प्रदेश के हर नागरिक को नाज है तथा इससे यह सिद्ध हो गया है कि प्रदेश तेजी से एक खुशहाल राज्य बनने की ओर अग्रसर है। रिपोर्ट में राज्य की छवि स्थिर, समावेशी तथा सुशासित राज्य के रूप में उभरी है। सरकार द्वारा प्रदेश के कल्याण के लिये लागू समावेशी व सतत् विकासात्मक नीतियों का ही प्रतिफल है कि आज हिमाचल देश का अग्रणी राज्य बना है जिसकी पुष्टि विश्व बैंक ने की है। शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन, पर्यावरण तथा समाज के कमजोर वर्गों के लिये लागू की गई नीतियों एवं कार्यक्रमों के सार्थक परिणाम आये हैं। सरकार भविष्य में भी राज्य के समान, संतुलित एवं तीव्र विकास की वचनबद्धता के साथ कार्य करेगी। रिपोर्ट में स्पष्ट है कि हिमाचल का छोटा आकार प्रगति का आधार बना है। कम आबादी और इसका कम घनत्व तथा छोटा राज्य होने के कारण यहां राजनीतिज्ञों, प्रशासकों, सेवा प्रदात्ताओं तथा नागरिकों के आपसी सम्पर्क प्रगाढ़ हैं तथा वे आम आदमी की पहुंच में हैं। इससे सभी में एक सशक्त सामाजिक सम्पर्क है जिससे प्रगति की राह प्रशस्त हुई है। हिमाचल प्रदेश ने स्वास्थ्य, शिक्षा, लिंग अनुपात तथा ग्रामीण आधारभूत ढांचा विकास में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। उन्होंने इस शोधपरक रिपोर्ट के लिये विश्व बैंक के प्रयासों की सराहना की।

विश्व बैंक रिपोर्ट के तथ्य

गरीबी

राष्ट्रीय अनुपात का मात्र एक तिहाई। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन में आशातीत कमी। वर्ष 1993-94 में 36.8 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011 में 8.5 प्रतिशत। इससे ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में सामाजिक समूह लाभान्वित।

शिक्षा

देश भर में शीर्ष पर। कमजोर वर्ग सर्वाधिक लाभान्वित। अनुसूचित जाति तथा जनजाति वर्ग के बच्चे सैकेण्डरी तथा उच्च शिक्षा में आगे। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में राज्य का प्रयास सराहनीय। दक्षिण राज्यों कर्नाटक तथा तमिलनाडु सहित अन्य राज्यों के मुकाबले राज्य की स्थिति बेहतर।

महिला सशक्तीकरण

महिला श्रम शक्ति में श्रेष्ठ सफलता। सिक्कम के उपरांत हिमाचल इस क्षेत्र में दूसरे स्थान पर। वर्ष 2011-12 में ग्रामीण क्षेत्रों में 60 प्रतिशत महिलाएं श्रम शक्ति में भागीदार थीं जो राष्ट्रीय अनुपात 27 प्रतिशत से अधिक है। यह आंकड़े केरल तथा तमिलनाडु के बराबर हैं तथा पड़ोसी राज्यों से दोगुने हैं।

आम जन के विचार

- 'कोई भी किसी का उत्पीड़न नहीं करता। गरीबों को कोई दबाता नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जगह खुश है।'
- 'यहां की संस्कृति खुली तथा विश्वास करने वाली है। अगर आप अपना सामान बाजार में भूल जाते हैं तो हर हालत में उसे आप पा लोगे।
- 'कोई भी करोड़पति या भिखारी नहीं। सभी के पास घर हैं।'

शिमला जिले के निरसू तथा कुफरी में विश्व बैंक दल द्वारा लोगों से लिये गये साक्षात्कार के अंश

सम्पर्क : 94181 58987

शोधपरक आलेख

हिमाचल प्रदेश की राजनीति में जनजातीय महिलाओं की सशक्त भागीदारी

यह शोध पत्र हिमाचल प्रदेश और इसके जनजातीय क्षेत्र की महिलाओं की राजनीति में भागीदारी पर है। प्रस्तुत शोध पत्र लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा और पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का सांख्यिकीय (Statistical) अध्ययन पर आधारित है। क्योंकि राष्ट्रीय परिदृश्य पर ही राजनीति में महिलाएं अभी भी पिछड़ी हुई हैं इसलिये राष्ट्रीय, प्रादेशिक और जनजातीय महिलाओं का राजनीति में प्रतिनिधित्व और भागीदारी पर एक साथ विश्लेषण किया गया है। क्योंकि राजनीति में पूरे परिदृश्य को समझे बगैर जनजातीय महिलाओं की राजनीति में भागीदारी का विश्लेषण करना सम्भव नहीं था। प्रदेश की पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण मिल चुका है। महिलाओं ने जमीनी स्तर पर (Grass root level) राजनीति की कमान संभाल ली है। अब नजर है लोकसभा में महिला आरक्षण बिल पर जो महिलाओं को राजनीति में प्रतिनिधित्व की सुरक्षा के साथ नेतृत्व की चुनौतियां भी खड़ी करेगा।

● डॉ. देवकन्या ठाकुर

हाल ही में सम्पन्न 16वें लोकसभा चुनाव में वर्ष 1984 (64.01प्रतिशत) के बाद देश में पहली बार 66.4 प्रतिशत रिकॉर्ड मतदान हुआ है। वर्तमान लोकसभा में अब तक की सबसे अधिक 61 महिलाएं चुनकर आई हैं जबकि 15वीं लोकसभा में यह आंकड़ा 59 था। महिलाओं का प्रतिनिधित्व 11.2 फीसदी है। भारत सरकार के मन्त्रिमण्डल में 25 प्रतिशत महिलाएं हैं। वर्ष 1952 में पहली लोकसभा में कुल 4.9 प्रतिशत महिलाएं थीं। वर्ष 1957 में महिलाओं का मतदान प्रतिशत 39 प्रतिशत था जबकि पुरुषों का 56 प्रतिशत था। वर्ष 2009 में महिलाओं का वोटिंग प्रतिशत 55.8 प्रतिशत था और 2014 में 65.7 प्रतिशत रहा। यानि पहली लोकसभा से लेकर 16वीं लोकसभा तक कुल 30 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। हमारे देश में जिस रफ्तार से महिलाओं का वोटिंग प्रतिशत बढ़ा है उस रफ्तार में महिलाओं का प्रतिनिधित्व नही बढ़ा है। (देखें तालिका-एक)

वर्ल्ड बैंक के मुताबिक वर्ल्ड डेवेलपमेन्ट इंडिकेटर्ज सर्वे में अफगानिस्तान में 28 प्रतिशत, स्वीडन 45 प्रतिशत, हालैंड 31.3 प्रतिशत, नार्वे 40 प्रतिशत, फिनलैंड 43 प्रतिशत, बांग्लादेश 20 प्रतिशत, न्यूजीलैंड 32 प्रतिशत ,जर्मनी 33 प्रतिशत, डेनमार्क 39 प्रतिशत, इजराइल 23 प्रतिशत, नेपाल 33 प्रतिशत, पाकिस्तान 21 प्रतिशत तथा रूस में 14 प्रतिशत महिलाएं इन देशों की सम्बंधित राष्ट्रीय संसदों में प्रतिनिधित्व कर रही हैं। महिला प्रतिनिधित्व में भारत 105 वे नंबर पर आता है। यहां तक कि नेपाल, पाकिस्तान और बांग्लादेश में स्थिति ज्यादा अच्छी है।

हिमाचल प्रदेश की राजनीति में महिलाएं

अप्रैल 1948 को 30 पहाड़ी रियासतों के विलय के बाद हिमाचल प्रदेश आस्तित्व में आया और 25 जनवरी 1971 को हिमाचल को पूर्ण राज्य का दर्जा मिला। वर्तमान में हिमाचल में 12 जिले 78 डेवलपमेन्ट ब्लॉक, 137 तहसीलें व उपतहसीलें, 3,243 पंचायत समिति, 12 जिला परिषद्, एक म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन और 20 म्युनिसिपल कमेटी और 28 नगर पंचायत हैं। 68 विधानसभा क्षेत्र हैं इनमें तीन सीटे अनुसूचित जनजाति और 16 सीटें अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिये आरक्षित हैं। राज्य में 4 लोकसभा सीट है जिनमें से एक सीट अनुसूचित जाति के लिये आरक्षित है और तीन सीटें राज्यसभा के लिये हैं। हिमाचल प्रदेश में पहली बार स्टेट वैधानिक चुनाव वर्ष 1952 में हुये जब यह इंडियन यूनियन का पार्ट-सी (ग श्रेणी) का राज्य बना। 31 अक्तूबर 1956 को विधानसभा भंग होने पर 1957 में टेरिटोरियल काऊंसिल इलेक्शन हुये और इसके बाद वर्ष 1962 में चुनाव हुये।

तालिका एक : लोकसभा टर्नआउट लोकसभा चुनाव 2014

		लोकसभा चुनाव 2014	लोकसभा चुनाव 2009
1	कुल मतदान	55.38 करोड़	41.7 करोड़
2	कुल मतदाता	83.41 करोड़	71.69 करोड़
3	कुल वोटर टर्नआउट प्रतिशत	66.4 %	58.19%
4	महिला वोटर टर्नआउट	67.09%	60.24%
5	पुरुष वोटर टर्नआउट	67.09%	60.24%
6.	जेन्डर गैप	1.46%	4.42%

एक जुलाई 1963 में विधानसभा के पुनःप्रवर्तन के बाद 1967 से अब तक नियमित रूप से चुनाव हुये और अब तक हिमाचल प्रदेश में कुल 14 बार विधानसभा चुनाव हुये हैं। (देखें : तालिका-दो)

वर्ष 1982 और 1985 में महिला वोटर की संख्या पुरुष मतदाताओं से ज्यादा थी। वर्ष 1998 से लेकर 2012 तक महिला मतदाताओं ने पुरुष मतदाताओं से ज्यादा मतदान किया। विधानसभा चुनावों में महिलाओं का वोट प्रतिशत अच्छा रहा। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में भी महिलाओं का वोट प्रतिशत बेहतर रहा। (देखें : तालिका-तीन विधान सभा चुनाव 2012 में जनजातीय क्षेत्र की महिलाओं का वोट प्रतिशत)

तीनों जनजातीय क्षेत्रों में महिलाओं ने सामान्य से ज्यादा मतदान किया है। हिमाचल प्रदेश विधानसभा चुनावों में महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर मतदान किया है।

हिमाचल प्रदेश विधानसभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व पर नजर डाली जाए तो महिला प्रतिनिधियों को अंगुलियों पर गिना जा सकता है। वर्ष 1972 से पहले स्टेट लैजिस्लेटिव असैबली टेरिटोरियल काऊंसिल में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम था। हिमाचल से सुश्री उमावती टेरिटोरियत कांऊसिल के लिये चुनीं गई। सुश्री सत्यवती डांग (1957-1967) तक Territorial Council के लिये नामांकित हुई थीं। सुश्री देवेन्द्रा कुमारी 1962 से 1967 तक के लिए चुनी गई। और सुश्री सुभद्रा अमीन चन्द 1962 से 1967 तक टेरीटोरियल कांउसिल की सदस्य रहीं। सुश्री सरला शर्मा 1966 में हिमाचल प्रदेश लेजिस्लेटिव असैंबली की सदस्या रहीं। जबकि 1967 से 1971 तक कोई भी महिला सदस्य राज्य लैजिस्लेचर में नही थीं।

वर्ष 1972 में लता ठाकुर, पदमा देवी, सरला शर्मा और चन्द्रेश कुमारी ने चुनाव लड़ा और चारो महिलाएं जीतकर विधानसभा में आई। श्रीमती लता ठाकुर लाहुल स्पिति से विधायक बनीं। वे हिमाचल स्टेट यूथ कांग्रेस अध्यक्ष रहीं और इंडियन यूथ कांग्रेस की सेक्रेटरी भी रही। वर्ष 1972 और 1974 और 1975 में तात्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी और उनके बेटे राजीव गांधी ने लाहुल स्पिति का दौरा किया। वर्ष 1941 में जन्मी लता ठाकुर का निधन वर्ष 1976 में एक सड़क दुर्घटना में हो गया। वर्ष 1974 में श्रीमती विद्या स्टोक्स अपने पति एवं विधायक श्री लाल चन्द्र की मृत्यु के बाद 1974 में चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंची। वर्ष 1977 में 9 महिलाओं ने चुनाव लड़ा किन्तु सिर्फ एक महिला श्यामा शर्मा ने ही चुनाव जीता। 1982 में तीन महिलाएं विद्या स्टोक्स, चन्द्रेश कुमारी और श्यामा शर्मा विधानसभा पहुंची। 1985 में विद्या स्टोक्स, विप्लव ठाकुर और आशा कुमारी चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंची।

वर्ष 1990 में चार महिलाएं श्यामा शर्मा, विद्या स्टोक्स, लीला शर्मा और सुषमा शर्मा विधानसभा पहुंची। वर्ष 1993 में तीन महिलाएं विप्लव ठाकुर, आशा कुमारी और कृष्णा मोहिनी विधानसभा पहुंची। वर्ष 1998 में विद्या स्टोक्स, आशा कुमारी और कृष्णा मोहिनी ने कांग्रेस से और उर्मिल ठाकुर, सरवीण चौधरी और निर्मला देवी ने बी.जे.पी के टिकट पर चुनाव जीता। किन्तु सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर वर्ष 1999 में कृष्णा मोहिनी को अयोग्य घोषित किया गया। 2003 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस की चार महिला उम्मीदवार विद्या स्टोक्स, आशा कुमारी, अनीता वर्मा और चन्द्रेश कुमारी चुनाव जीतीं। 2007 में पांच महिलाएं कांग्रेस से विद्या स्टोक्स, बीजेपी से सरवीन चौधरी, उर्मिल ठाकुर, रेणु चड्ढा और विनोद कुमारी चन्देल सहित पांच महिलाएं विधानसभा के लिये चुनीं गई। वर्ष 2012 में बीजेपी से सरवीन चौधरी और आशा कुमारी और विद्या स्टोक्स सहित 3 महिलाएं विधानसभा पहुंची। (देखें : तालिका चार : वर्ष 1972-2012 तक हिमाचल प्रदेश विधान सभा में महिला प्रतिनिधित्व)

हिमाचल विधानसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व उनके वोट प्रतिशत के मुकाबले बहुत कम है। वर्ष 2003 में 31 यानि 7.60 और वर्ष 2012 में 34 यानि (7.40) महिलाओं ने चुनाव लड़ा। पुरुषों के मुकाबले यह संख्या बेहद कम है। अगर हम अपने जनजातीय क्षेत्रों की बात करें तो वर्ष 1972 में सिर्फ एक महिला उम्मीदवार लता ठाकुर ने चुनाव लड़ा और जीतकर विधानसभा भी पहुंची। उनके पहले या उनके बाद जनजातीय क्षेत्रों में चुनाव लड़ने का साहस किसी भी महिला ने नहीं दिखाया।

तालिका दो : महिला पुरुष मतदान अनुपात

	वोटर लाख में			मतदान प्रतिषत			
वर्ष	कुल	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष	महिला	महिला पुरूष मतदान अनुपात
1972	18.05			49.95			
1977	19.97	10.27	9.70	58.57	62.16	54.76	−7.40
1982	22.12	11.02	11.10	71.06	73.29	68.85	−4.44
1985	23.52	11.73	11.84	70.36	71.91	68.83	−3.08
1990	30.58	15.47	15.11	67.73	69.48	65.97	−3.51
1993	32.67	16.43	16.24	71.72	72.21	71.21	−1.00
1990	36.28	18.27	18.01	71.23	70.24	72.23	+1.91
2003	41.01	20.8	20.20	73.51	73.4	75.92	+2.78
2007	46.06	23.36	22.68	71.61	69.67	74.55	+4.88
2012	46.08	23.78	22.32	73.51	70.82	76.35	+5.53

वर्ष 2012 में भरमौर से सात और लाहुल स्पिति से भी सात पुरुष उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा और किन्नौर से 6 पुरुष उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा जबकि महिला वोट प्रतिशत जनजातीय क्षेत्रों में भी बेहतरीन रहा।

हिमाचल प्रदेश में महिलाएं अपने वोट का महत्त्व समझतीं है उनका वोट प्रतिशत किसी भी पार्टी के समीकरण बना भी सकता है और बिगाड़ भी सकता है। (देखें तालिका-पांच हिमाचल प्रदेश में लोकसभा चुनाव 2014 में महिला वोटर टर्नआउट)

वर्ष 2014 में कुल महिला वोटर टर्नआउट 65.46 प्रतिशत रहा जबकि पुरुष वोट प्रतिशत 63.43प्रतिशत रहा। इस तरह जेंडर गैप कुल 2.03 प्रतिशत रहा।

इस तरह विधान सभा चुनाव की तरह लोकसभा चुनावों में महिलाओं ने पुरुषों से ज्यादा मतदान किया। वर्ष 2014 के लोकसभा चुनावों में हिमाचल के जनजातीय क्षेत्र भरमौर में कुल 67699 मतदाता थे जिनमें से 35073 पुरुष और 32626 महिला मतदाता थे। इनमें से कुल 41799 लोगों ने मतदान किया। जिनमें 22673 पुरुष और 19126 महिला मतदातोों ने वोट दिया। कुल 64 प्रतिशत पुरुषों और 58.62 प्रतिशत महिलाओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। भरमौर में कुल 61.74 प्रतिशत मतदान हुआ।

लाहुल स्पिति में 22581 मतदाता है जिनमें 11281 पुरुष और 11300 महिला मतदाता है। कुल 14083 लोगों ने मतदान किया जिनमें 7190 पुरुष और 6893 महिलाओं ने वोट दिया। 61 प्रतिशत महिलाओं ने और 63.74 प्रतिशत पुरुषों ने मतदान किया। कुल 62.37 प्रतिशत मतदान लाहुल स्पिति में हुआ। लाहुल स्पिति में महिला मतदाताओं की संख्या पुरुष मतदाताओं से ज्यादा है। किन्नौर में कुल 53526 वोटर है जिनमें 27444 पुरुष और 26082 महिला मतदाता है। जबकि कुल 36494 लोगों ने मतदान किया। किन्नौर में कुल 68.18 प्रतिशत मतदान हुआ जिनमें से 68.06प्रतिशत महिलाओं और 68.30 प्रतिशत पुरुषों ने मतदान किया। (देखें तालिका छह : मंडी संसदीय क्षेत्र के अंतर्गत जनजातीय क्षेत्रों में महिला मतदान प्रतिशत और तालिका-सात हिमाचल प्रदेश में लोक सभा चुनाव 2014 और 2009 में महिला मतदान प्रतिशत)

लोकसभा चुनावों की अगर बात करें तो जनजातीय क्षेत्र भरमौर, लाहुल-स्पिति और किन्नौर प्रदेश के मण्डी संसदीय क्षेत्रों में आते हैं। इसके अलावा 14 और क्षेत्र मण्डी संसदीय क्षेत्र में आते हैं।

तालिका तीन : विधानसभा चुनाव 2012 में जनजातीय क्षेत्र की महिलाओं का वोट प्रतिशत

	मतदाता			मतदान			कुल प्रतिषत	महिला प्रतिषत
भरमौर	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल		
	33487	30223	63710	25078	23192	48270	75.77	76.12
लाहुल स्पिति	11329	11015	22344	8526	8385	16911	75.68	76.12
किन्नौर	26750	25100	51850	19542	18908	38450	74.16	75.33

तालिका चार : वर्ष 1972-2012 तक हिमाचल प्रदेश विधानसभा में महिला प्रतिनिधित्व

वर्ष	कुल सीट	कुल उम्मीदवार	महिला उम्मीदवार प्रतिशत	विजयी महिला उम्मीदवार	पार्टीवाइज महिला उम्मीदवार INJ	JP	BJP	JD
1972	68		5	5(7.35)	5			
1977	68	330	9(2.72)	1(1.47)		1		
1982	68	441	9(2.04)	3(4.41)	2	1		
1985	68	294	8(2.72)	3(4.41)	3			
1990	68	454	17(3.74)	4(5.88)	1		2	1
1993	68	416	16(3.85)	4(5.88)	4			
1998	68	369	25(6.78)	7(10.29)	4		3	
2003	68	408	31(7.60)	4(5.88)	4			
2007	68	336	25(7.44)	5(7.35)	1		4	
2012	68	459	34(7.40)	3(4.41)	2			

वर्ष 1952 के पहले लोकसभा चुनावों में राजकुमारी अमृत कौर मण्डी-महासू संसदीय क्षेत्र से कांग्रेस पार्टी के टिकट पर चुनकर आई और वे केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल में स्वास्थ मन्त्री भी रहीं। मुख्यमन्त्री वीरभद्र सिंह की पत्नी श्रीमती प्रतिभा सिंह वर्ष 2004 और वर्ष 2014 में मण्डी संसदीय क्षेत्र से चुनाव लड़ चुकी है। वर्ष 2004 में श्रीमती प्रतिभा सिंह चुनाव जीती थी और वर्ष 2014 का लोकसभा चुनाव प्रतिभा सिंह हार गई थीं। वर्ष 1984 में कांगड़ा संसदीय क्षेत्र में चन्द्रेश कुमारी चुनी हुई और इस तरह आज तक कुछ 3 महिलाएं ही संसद पहुंची।

वर्ष 2014 के लोकसभा चुनावों में कुल 4 महिलाओं ने चुनाव लड़ा। कांगड़ा संसदीय क्षेत्र से कुल 12 उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा जिनमें मात्र एक महिला सुश्री आरती सोनी शिव सेना की उम्मीदार थीं। हमीरपुर से कुल 10 उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा जिनमें उर्मिला शर्मा, समाजवादी पार्टी और कमलकांत बत्तरा आप पार्टी की उम्मीदवार थीं। मण्डी संसदीय क्षेत्र में कुल 9 उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा जिनमें एकमात्र महिला श्रीमती प्रतिभा सिंह ने कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ा। जबकि शिमला संसदीय क्षेत्र से कुल 7 लोगों ने चुनाव लड़ा जिनमें एक भी महिला नहीं थी। इस तरह हिमाचल के चार संसदीय क्षेत्रों से 23 पुरुष उम्मीदवारों और चार महिला उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा। महिलाओं का यह आंकड़ा उनके मत-प्रतिशत से कहीं भी मेल नहीं खाता है।

राज्य सभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व लोकसभा से बेहतर रहा है। लीला देवी महाजन (1956-62) मण्डी से राज्य सभा के लिये भेजी गई। सत्यवती डांग (1968-74), मोहिन्द्र कौर (1964-67) और (1978-1984), उषा मल्होत्रा (1980-86) और चन्द्रेश कुमारी (1996-2002), विप्लव ठाकुर (2006) राज्य सभा में हिमाचल का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं। अगर विधानसभा और लोकसभा चुनावों में महिला वोटर प्रतिशत देखा जाये तो वह पुरुषों के अनुपात के लगभग बराबर है। और अगर हम महिला प्रतिनिधित्व की बात करें तो वे मुख्यतः राज परिवार या फिर बड़े राजनीतिक परिवारों की महिलाएं ही हैं जो राजनीति में आई हैं। जबकि साधारण महिलाएं हमेशा ही राजनीति से दूर रखी गई।

आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाएं प्रायः महिलाओं से जुड़े मुद्दों या फिर अन्य क्षेत्र में कुछ ऐतिहासिक नहीं कर पाई। ऐसे में वे महिलाएं जो ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़ी हुई हो। जो आधी आबादी का सही मायनों में प्रतिनिधित्व करती हों और महिला वोट प्रतिशत की ही तरह महिला प्रतिनिधियों की प्रतिशतता भी मेल खाती हों। ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को नेतृत्व के लिये आगे आना होगा। अपनी जरूरतों को, अपने मुद्दों को लेकर खुद खड़ा होना होगा। ये महिलाएं कहां से आएंगी। उन्हें

तालिका पांच : हिमाचल प्रदेश में लोकसभा चुनाव 2014 में महिला वोटर टर्नआउट

	पुरुष मतदाता	पुरुष मतदान	प्रतिशत पुरुष	महिला मतदाता	महिला मतदान	प्रतिशत महिला	कुल मतदाता	कुल मतदाता	कुल प्रतिशत
कांगड़ा	645888	392927	60.84	612713	406518	66.35	1258601	799445	63.52
मण्डी	587833	377569	60.23	562575	348525	61.95	1150408	726099	63.12
हमीरपुर	633572	395804	62.47	614127	439401	71.55	1247699	835205	66.99
शिमला	607137	403332	66.43	516226	334425	61.22	1153363	737757	63.97
कुल हि.प्र.	2474430	1569632	63.43	2335641	1528869	65.46	4810071	3098501	64.42

तालिका छह : मंडी संसदीय क्षेत्र के अंतर्गत जनजातीय क्षेत्रों में महिला मतदान प्रतिशत

	मतदाता			मतदान			वोटर टर्नआउट		
	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल
भरमौर	35073	32626	67699	22673	19126	41799	64.65	58.62	61.74
लाहुल स्पिति	11281	11300	22581	7190	6893	14083	63.74	61.00	62.37
किन्नौर	27444	26082	53526	18743	17751	36494	68.30	68.06	68.18

तालिका सात : हिमाचल प्रदेश में लोकसभा चुनाव 2014 और 2009 में महिला मतदान प्रतिशत

	लोकसभा चुनाव 2009			लोकसभा चुनाव 2014			2009/2014 मतदान अनुपात
हि.प्र.	कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	
	67.49	68.82	65.84	71.41	72.87	69.69	3.92

कहां से सहारा मिलेगा। वे राजनीतिक समझ कैसे विकसित करेगी। ऐसे में पंचायती राज संस्थान, जो की लोकतन्त्र की पहली सीढ़ी है, महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। पंचायती राज संस्थानों में बुनियादी तौर पर कार्य हो रहा है।

हिमाचल में पचांयती राज संस्थानों में महिला प्रतिनिधित्व

हिमाचल प्रदेश में पंचायती राज प्रणाली की स्थापना वैधानिक रूप से वर्ष 1954 में हिमाचल प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत की गई। हिमाचल प्रदेश पंचायती राज अधिनियम 1952 के लागू होने से पूर्व प्रदेश में 280 ग्राम पंचायतें थीं और उक्त अधिनियम के लागू हो जाने के पश्चात वर्ष 1954 में 266 ग्राम पंचायतें गठित की गईं जिनकी संख्या 1962 में बढ़कर 638 हो गई। एक नवम्बर 1966 में पंजाब के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों को हिमाचल में मिलाया गया, परिणामस्वरूप प्रदेश में ग्राम पंचायतों की संख्या बढ़कर 1665 हो गई। मिलाए गये क्षेत्रों में पंजाब पंचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत त्रि-स्तरीय पंचायती राज प्रणाली गठित थी। जबकि हिमाचल में द्विस्तरीय प्रणाली थी। पुराने तथा नये क्षेत्रों की पंचायती राज व्यवस्था में एकरूपता लाने के उद्देश्य से हिमाचल प्रदेश पांचयती राज अधिनियम 1968 को 15 नवम्बर 1970 से लागू किया और सम्पूर्ण प्रदेश में दो स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था स्थापित की गई। इसके अतिरिक्त राज्य में न्यायिक कार्यो के लिये अलग से न्याय पंचायतें गठित थी, परन्तु 1977 में न्याय पंचायतों का आस्तित्व समाप्त करके न्यायिक कार्य ग्राम पंचायतों को सौपे गये। उपरोक्त अधिनियम के वर्ष 1970 में लागू होने के पश्चात् ग्राम सभा क्षेत्रों का समय-समय पर पुनर्गठन तथा विभाजन करके नई ग्राम सभाओं का गठन किया गया। वर्ष 2005-2006 में नई ग्राम पंचायतों का गठन किया गया। वर्तमान में प्रदेश में 3243 ग्राम पंचायतें, 77 पंचायत समितियां तथा 12 जिला परिषदें गठित की गई हैं। पंचायती राज में 73वां और 74वां संवैधानिक संशोधान एक्ट (1993) साधारण महिलाओं को राजनीति में लाने के लिये एक मील का पत्थर साबित हुआ। ग्रामीण स्तर पर महिलाओं को नेतृत्व में 33 प्रतिशत आरक्षण मिला और वर्ष 1995 में 33 प्रतिशत महिलाएं आरक्षण के साथ पंचायती राज संस्थानों में आई और इसके बाद हिमाचल सरकार ने ऐसा एतिहासिक कदम उठाया जिसने ग्रामीण पृष्ठभूमि की महिलाओं को बराबरी पर लाकर खड़ा कर दिया। वर्ष 2008 में पंचायती राज अधिनियम संशोधन 2008 के अन्तर्गत महिलाओं को पंचायती राज संस्थानों और शहरी निकायों में 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया जबकि वर्ष 1995 से पहले पंचायती राज और शहरी निकायों में महिला प्रतिनिधित्व केवल 2 प्रतिशत था। हिमाचल प्रदेश सरकार ने अप्रैल 2008 में हिमाचल प्रदेश पंचायती राज संशोधन अधिनियम 2008 बिल पास किया और पंचायती राज संस्थानों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देने वाला देश का पहला राज्य बना।

हिमाचल प्रदेश में वर्ष 2011 में सम्पन्न पंचायती राज चुनावों में 3243 ग्राम पंचायत प्रधानों में 1639 महिलाएं आरक्षण से आई और ग्राम पंचायत प्रधान में 50.54 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है। 19413 ग्राम पंचायत सदस्यों में 11317 महिलाएं चुनकर आई है और ग्राम पंचायत सदस्यों में 58.30 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है। हिमाचल प्रदेश में कुल 77 पंचायत समिति अध्यक्ष हैं जिनमें 42 महिलाएं आरक्षण से चुनकर आई हैं और अध्यक्ष पंचायत समिति में महिलाओं में कुल 54.55 फीसदी प्रतिनिधित्व है। 1682 पंचायत समिति सदस्यों में 863 महिला सदस्य हैं और 51.31 फीसदी महिला प्रतिनिधित्व पंचायत समिति सदस्यों में है। 12 जिला परिषद अध्यक्षों में से 6 महिलाएं आरक्षण से जिला परिषद अध्यक्ष पद पर पहुंची। कुल 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व महिलाओं का है। 251 जिला परिषद सदस्यों में 128 महिला सदस्य हैं। इस तरह कुल 51 प्रतिशत महिलाएं जिला परिषद सदस्य हैं।

इसके अलावा कुछ महिलाएं अनारक्षित पदों पर भी चुनकर आई हैं जिनमें कुल 32 महिला प्रधान, 20 महिला उपप्रधान ग्राम

पंचायत और 352 महिलाएं ग्राम पंचायत सदस्य के रूप में अनारक्षित श्रेणी से चुनकर आई है। पंचायत समिति में 3 महिलाएं अध्यक्ष पद उपाध्यक्ष और 25 महिलाएं अनारक्षित श्रेणी से पंचायत समिति सदस्या के रूप में चुनी गई है। जिला परिषद में 2 महिलाएं अध्यक्ष, 2 महिलाएं उपाध्यक्ष और 4 महिलाएं सदस्य अनारक्षित श्रेणी से चुनी गई हैं। (देखें तालिका-आठ वर्तमान कार्यकाल में पंचायतों में आरक्षण का विवरण, नौ, दस आदि)

अनुसूचित क्षेत्र में PESA प्रावधान

प्रदेश के अनुसूचित (जनजातीय) क्षेत्रों में पंचायतों की स्थिति :-

जिला किन्नौर व लाहौल स्पिति का सम्पूर्ण क्षेत्र तथा चम्बा जिला के दो विकास खण्ड नामतः पांगी व भरमौर अनुसूची-अ क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

राज्य में अनुसूची-अ के क्षेत्र में दो जिला परिषद् नामतः किन्नौर व लाहौल स्पिति तथा जिला चम्बा की जिला परिषद का एक भाग, 7 पंचायत समितियां नामतः कल्पा, निचार, पूह, लाहौल, स्पिति, भरमौर एवं पांगी तथा 151 ग्राम पंचायतें गठित की गई हैं :-

किन्नौर	65
1. कल्पा	23
2. निचार	18
3. पूह	24
लाहौल स्पिति	41
1. लाहौल	28
2. स्पिति	13
चम्बा	45
1. भरमौर	29
2. पांगी	16

PESA के प्रावधान के अनुसार अनुसूची -अ के क्षेत्रों में अनुसचित एवं अनुसूचित जाति से सम्बद्ध व्यक्तियों को सदस्यों के पदों पर आरक्षित किया जा रहा है।

राज्य सरकार ने अनुसूची-अ क्षेत्र में रहने वाले जनजातीय व्यक्तियों के लिए पंचायत के तीनों स्तर पर अध्यक्ष के पदों पर 100 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया है और कुल पदों में से एक तिहाई पदों के जनजातीय क्षेत्र की महिलाओं को आरक्षित किया गया है। जनजातीय क्षेत्रों में रहने वाली अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की जनसंख्या के आधार पर आरक्षण देने की मांग प्राप्त हुई जो अध्यक्ष के पदों हेतु 15 प्रतिशत से 27 प्रतिशत तक है जो अन्यथा केन्द्रीय अधिनियम से 40 की धारा 4(जी) के अन्तर्गत वर्जित हैं।

(शेष पृष्ठ 55 पर)

तालिका आठ : अनारक्षित पदों पर चुनी गई महिलाओं की संख्या का विवरण

ग्राम पंचायत की स्थिति में				
क्र.सं.	राज्य का नाम	अनारक्षित पदों पर चुनी गई महिलाओं की संख्या		
		प्रधान	उप–प्रधान	सदस्य
1	हिमाचल	32	20	352

तालिका नौ : अनआरक्षित पदों पर चुनी गई महिलाओं की संख्या का विवरण

पंचायत समिति की स्थिति में				
क्र. सं.	राज्य का नाम	अनारक्षित पदों पर चुनी गई महिलाओं की संख्या		
		अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	सदस्य
1	हिमाचल प्रदेश	3	11	25

तालिका दस : अनारक्षित पदों पर चुनी गई महिलाओं की संख्या का विवरण

जिला परिषद् की स्थिति में				
क्र. सं.	राज्य का नाम	अनारक्षित पदों पर चुनी गई महिलाओं की संख्या		
		अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	सदस्य
1	हिमाचल प्रदेश	2	2	4

कुल जोड़ 37 33 381 451

आलेख

पहली मूक फिल्म 'राजा हरीशचन्द्र'

● राजेन्द्र राजन

भारतीय सिनेमा ने एक सदी का सफर तय कर लिया। हमारी जिन्दगी में यह दृश्य-श्रव्य माध्यम इस कदर रच बस चुका है कि चाहकर भी हम इसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकते। सिनेमा हमारे चेतन-अवचेतन, भावनाओं-संवेदनाओं राग-विराग को जिस प्रकार प्रभावित करता है वह अवश्य आसक्ति को जन्म देता है। सिनेमा की गिरफ्त इतनी सुदृढ़ है कि कभी कभी तो उसकी अनुपस्थिति की कल्पना मात्र हमें असहज बना देती है। एक ऐसा कला माध्यम जिसे हम प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में हर वक्त ओढ़ते- बिछाते हैं। सिनेमा ने सौ बसन्त देख लिये। लेकिन पहली भारतीय मूक फिल्म के निर्माण में दादा साहब फालके ने जिस बड़े संघर्ष का सामना किया वह स्वयं में एक रोचक गाथा से कम नहीं है।

राजा हरीशचन्द्र का प्रीमियर 21 अप्रैल 1913 को पहली दफा मुम्बई के ग्रान्ट रोड़ स्थित ऑलंपिया थियेटर में हुआ था। प्रीमियर में भारतीय व ब्रतानी हुकूमत के खास मेहमानों के अलावा समाचार पत्रों के संपादक भी आमन्त्रित थे। आम दर्शकों के लिये यह फिल्म 3 मई 1913 को मुम्बई के ही कोरोनेशन थियेटर में रिलीज की गई। सड़कों पर भगदड़ जैसा माहौल था और दर्शकों के बीच धक्का-मुक्की व लम्बी कतारों पर नियन्त्रण रखना बेहद मुश्किल था। फिल्म 21 दिन तक चली। फिर इसे महाराष्ट्र के अनेक गांवों में दिखाया गया। फिल्म की अप्रत्याशित सफलता के दृष्टिगत फालके को फिल्म के अतिरिक्त प्रिन्टस बनवाने पड़े।

राजा हरीशचन्द्र की बेपनाह कामयाबी ने भारतीय फिल्म जगत में जोरदार दस्तक दी। इस फिल्म ने भारत में ही नहीं, लन्दन तक हजारों सिने प्रेमियों को आश्चर्यचकित कर दिया। 1849 में जब पहली बार 'स्टिल फोटोग्राफी' का आविष्कार हुआ था तो लोग भयभीत हो गये थे। उस जमाने में फिल्म जैसे अजूबे कला माध्यम का उदय एक 'सांस्कृतिक आघात' (Cultrual Shock) से कम नहीं था। लोगों में यह चर्चा आम थी कि कैमरा जब किसी व्यक्ति का चित्र खींचने के लिए क्लिक करेगा तो वह उसके शरीर से उसकी आत्मा को सोख लेगा। 40 वर्ष बाद 1889 में जब यह पता चला कि स्थिर छायाचित्र कला को चलती फिरती फिल्म में बदला जा सकता है तो लोग सकते में आ गये। जर्मनी के लूमियेर ब्रदर्श ने 1895 में पहली बार जब दो-दो मिनट की फिल्में दर्शकों को दिखाई तो वे थियेटर से भाग खड़े हुए।

सिनेमा के आविष्कार के चन्द सालों में ही भारत में फिल्म निर्माण का बीड़ा धुंडीराज गोविन्द फालके ने उठाया। वे बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। चित्रकार, नाटककार, जादूगर और न जाने क्या-क्या? मुम्बई में उस वक्त यदा कदा विदेशों में बनने वाली पाश्चात्य विषयों पर आधारित छोटी छोटी मूक फिल्मों का प्रदर्शन होता था। फालके चाहते थे कि हिन्दुस्तान के धार्मिक आख्यानों पर फिल्में बनें और भारतीय दर्शक विदेशी फिल्मों से प्रभावित न हों। वह चाहते थे कि कला माध्यम को कोई मौलिक भारतीय चेहरा प्रदान करे।

बहरहाल दादा साहब फालके के दिलो दिमाग पर रामायण, महाभारत के साथ-साथ अन्य धार्मिक व ऐतिहासिक कथाओं का गहरा प्रभाव था। उन्होंने 1911 में राजा हरीशचन्द्र के निर्माण का निर्णय लिया। मगर इस फिल्म के निर्माण में उन्हें जिस कड़े संघर्ष, परेशानियों का सामना करना पड़ा और जो समस्यायें उन्हें कदम कदम पर दरपेश आयीं उसे फीचर फिल्म के माध्यम से 2009 में दर्शकों के समक्ष लाया गया। मराठी भाषा में निर्मित इस फिल्म का नाम है 'हरीशचन्द्राची फैक्टरी'। चूंकि यह फिल्म मराठी में बनी इसलिये इसका प्रचार प्रसार क्षेत्रीय भाषा की फिल्म के रूप में ही सिमट कर रह गया। आइये हरीशचन्द्राची फैक्टरी के माध्यम से दादा साहब फालके की संघर्ष गााथा को समझने का प्रयास करें।

'हरीशचन्द्राची फैक्टरी' फालके द्वारा दरपेश मुश्किलातों को न केवल रेखांकित ही करती है अपितु उसके जुनून व 'पागलपन' को भी हास्य व्यंग्य अंदाज में बयां करती है जिसके चलते वे भारतीय सिनेमा के जनक कहलाए। फिल्म के निर्माता निर्देशक हैं पुणे में मराठी रंगमंच के युवा रंगकर्मी प्रकाश मोकाशे। मोकाशे का फिल्म निर्माण का कोई पूर्व अनुभव नहीं था। फालके और

मोकाशे में सामान्य संयोग यह है कि दोनों ने अपने अपने घरों का सामान बेचकर या फिर घरों को गिरवी रखकर फिल्म निर्माण के वास्ते वित्तीय संसाधन जुटाये।

मोकाशे की फिल्म हरीशचन्द्राची फैक्टरी का पहल प्रदर्शन पुणे के भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान में 2009 के मई माह में 'फिल्म एप्रीसिएशन कोर्स' के छात्रों के लिये किया गया था। संयोगवश मैं भी इस कोर्स में हिमाचल से एकमात्र प्रतिभागी के रूप में शामिल था।

हरीशचन्द्राची फैक्टरी का प्रदर्शन इन्स्टीच्यूट के ही एक थियेटर में हुआ था और अगले दिन प्रातः 9 बजे पहली लैक्चर क्लास में मोकाशे के अलावा फिल्म के नायक नन्दू राघव (फालके) नायिका विभाभावरी देशपांडे (फालके की पत्नी सरस्वती) और कैमरामैन परिचर्चा के लिये उपस्थित थे। फिल्म पर चार घण्टे तक बहस चली और कोर्स के छात्रों ने मोकाशे और कलाकारों पर फिल्म के बारे में प्रश्नों की बौछार कर डाली थी। माह भर के प्रशिक्षण कोर्स में यह फिल्म चर्चा का विषय बनी रही। अगर फालके की पहली फिल्म राजा हरीशचन्द्र की संघर्षगाथा को फिल्म के ही माध्यम से दर्शकों तक पहुंचाने वाली हरीशचन्द्राची फैक्टरी फीचर फिल्म हिन्दी में न बनी होती तो फालके की दास्तान भारत के करोड़ों दर्शकों तक ना पहुंच पाती। हिन्दी सिनेमा के मौजूदा दौर की पतनशीलता के दृष्टिगत हमारे निर्माता निर्देशकों में कल्पनाशीलता व लीक से हटकर कुछ नया कर दिखाने के जुनून का अभाव है। वे सिनेमा जैसे कला माध्यम को नोट छापने की मशीन मानते हैं।

आखिर हरीशचन्द्राची फैक्टरी में ऐसा क्या है जो 2009 में क्षेत्रीय भाषा फिल्म श्रेणी में आस्कर के लिए नामांकित हो गयी।

'हरीशचन्द्राची फैक्टरी' फालके के छोटे बेटे से शुरू होती है जो स्लेट पर कुछ लिख रहा है। उसकी मां (सरस्वती) उससे राजा हरीशचन्द्र के बारे में कुछ सवाल पूछती है जिसका वह सही सही उत्तर देता है। फालके की प्रिन्टिंग प्रेस के हिस्सेदार से अनबन हो जाती है और वह जादू के खेल के जरिये स्कूली बच्चों का मनोरंजन करता है। जब स्थानीय लोग उस पर हमला करते हैं तो वह अपने बेटे के साथ भागकर 'पिक्चर पैलेस' में शरण लेता है जहां विदेशी फिल्में दिखाई जा रही हैं। थियेटर में दिखाई जा रही एक फिल्म में बुल फाइट का दृश्य है जिसे देखकर दर्शक भाग उठते हैं। इसी थियेटर में चन्द रोज बाद फालके क्राइस्ट को सूली पर चढ़ाए जाने की फिल्म देखता है। विदेशी फिल्में देख देखकर वह थियेटर के फर्श पर सो कर ही रातें बिताता है। उसके पड़ोसी और शुभचिंतक समझते हैं कि फालके पागल हो चुका है और इलाज के लिये उसे मुम्बई के ही एक मेंटल हास्पिटल में ले जाते हैं। फालके को जब वस्तुस्थिति का पता चलता है तो वह अस्पताल से भाग जाता है। उस पर भारतीय विषयों पर मौलिक फिल्म निर्माण का जुनून सवार हो जाता है और घर का सामान और पत्नी के गहने बेचकर वह फिल्म निर्माण की कला सीखने के लिये लन्दन रवाना हो जाता है।

लंदन के एक रेस्तरां में उसकी भेंट एक मराठी मानुष से होती है जो फालके की सहायता के लिये अपना हाथ बढ़ाता है। इसी बीच मुम्बई में उसकी पत्नी तीसरे बच्चे को जन्म देती है। लंदन में फिल्म निर्माण के प्रशिक्षण के बाद वह कैमरे के साथ घर लौटता है। फिल्म निर्माण के लिये लोगों व शुभचिंतकों का समर्थन जुटाने के लिये वह गमले में मटर के बीच के अंकुरण व उसके पौधे के रूप में आकार ग्रहण करने के दृश्यों का फिल्मांकन करता है और उसकी 'ग्रोथ' को फिल्मांकन के जरिये दर्शकों को दिखाता



है। वे उसके चमत्कार से अभिभूत होकर उसके ड्रीम प्रोजेक्ट यानी 'राजा हरीशचन्द्र' के धार्मिक आख्यान को सैलुलाइड पर उतारने के वास्ते फालके का सहयोग करने के लिये जी जान से जुट जाते हैं।

वे फिल्म के लिये धन जुटाने के लिये अभिप्रेरित होते हैं और राजा हरीशचन्द्र के निर्माण की नींव रखनी शुरू होती है। स्टूडियो के लिये एक बड़ा घर किराए पर लिया जाता है। फिल्म के लिए बढ़ई, पेन्टर, धोबी आदि की भर्ती के लिये अखबार में विज्ञापन दिया जाता है। पर जब उम्मीदवारों को इंटरव्यू के लिये बुलाया जात है तो फालके को यह देखकर ताज्जुब होता है कि एक भी उम्मीदवार बैकस्टेज पर काम करने के लिये तैयार नहीं है और सबके सब एक्टर बनने के लिये अपना हाथ खड़ा करते हैं। असल में यह सौ पहले फिल्म जैसे नैसर्गिक कला माध्यम के प्रति आमजन के हद दर्ज तक आकर्षक को दर्शाता है।

फिल्म का वह सीन अत्यन्त रोचक और मर्मस्पर्शी है जब फालके राजा हरीशचन्द्र की पत्नी तारामती के किरदार के लिए दर दर भटकता है। यह तलाश उसे वेश्यालयों तक ले जाती है और वह हताशा में एक वेश्या को तारामती की भूमिका के लिये अपने घरनुमा स्टूडियो में ले आता है। सब उसका विरोध करते हैं और वेश्या का दलाल उसे डरा धमका कर पुनः वेश्यालय में ले जाता है। फिर एक रेस्तरां में चाय पीते वक्त फालके की नजर सालुंके नाम के बावर्ची पर पड़ती है जो उसे तारामती के रोल के लिये मुनासिब किरदार जान पड़ता है। फालके जब सालुंके को फिल्म में भूमिका का ऑफर देता है तो वह तपाक से तैयार हो जाता है। लेकिन वह तारामती के रोल के लिये अपनी मूंछे कटवाने के लिये तैयार नहीं होता। वह तर्क देता है कि उसके परिवार में मूंछे केवल पिता की मृत्यु के उपरान्त ही कटवाई जा सकती है। फालके सालुंके के पिता को बुलाता है और उसे समझाता है कि तारामती राजा हरीशचन्द्र की पत्नी है और उसकी भूमिका निभाने के वास्ते उसके बेटे की मूंछे कटवानी होगी। ऊहापोह के बाद सालुंके का बाप फालके का मश्विरा मान लेता है और अपने बेटे की मूंछे कटवा देता है।

एक अन्य दृश्य में जब फालके की यूनिट जंगल में शूटिंग कर रही होती है तो पुलिस सभी कलाकारों व यूनिट के अन्य सदस्यों को हिरासत में लेकर उन्हें हवालात में बन्द कर देती है। यूनिट के सदस्य पुलिस को अपने मूल मकसद के बारे में समझाने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि पुलिस विभाग फिल्म जैसे अभिजात कला माध्यम से उस वक्त कतई अनभिज्ञ था। स्वयं फालके को पुलिस थाना पहुंचकर वस्तुस्थिति के लिये स्पष्टीकरण देना पड़ता है। फालके के तर्क से संतुष्ट होकर थानेदार राजा हरीशचन्द्र (नायक) के पांव में गिरकर उससे आशीर्वाद ग्रहण करता है। फिर जंगल में वह एक सिपाही के साथ धूप में छाते के नीचे खड़ा होकर शूटिंग का मनोयोग से अवलोकन करता है।

शूटिंग के दौरान फालके का बड़ा बेटा घायल हो जाता है। लौटते वक्त ट्रेन में ही रखे कैमरे के लैंस को उसका बेटा एकाग्र होकर निहारता है। यहीं मोकाशे के निर्देशन की परिपक्वता झलकती है। बाद में कैमरे के लैंस के दृश्यों को डिफ्यूज कर हरीशचन्द्राची फैक्टरी का निर्माण पूर्ण होते हुए दिखाया गया है।

फिल्म में मुम्बई के कोरोनेशन थियेटर में उमड़ी भीड़ को नियन्त्रित करने के दृश्य अद्भुत हैं। यहां तक कि दर्शकों की भीड़ के कारण थियेटर के बाहर लकड़ी की रेलिंग का टूटना, फिर उसे हटाना इस बात का प्रतीक है कि लोगों में भारत की पहली मूक फिल्म को देखने में कला की उत्तेजना थी।

राजा हरीशचन्द्र में काम कर रहे कलाकारों को घर परिवार व समाज का इस बात के लिये विरोध सहना पड़ा कि वे क्यों फिल्म में काम कर रहे हैं। इसी वजह से फालके को उन्हें यह समझाना पड़ा कि वे लोगों को यह बताएं कि वे हरीशचन्द्राची फैक्टरी में काम कर रहे हैं। फिल्मों के प्रति वह दौर हमारे समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण का प्रतीक था।

लन्दन में पहली भारतीय मूक फिल्म यानी राजा हरीशचन्द्र के प्रदर्शन के लिये फालके को न्यौता मिलता है। अंग्रेजी फिल्मकार उसकी फिल्म व प्रतिभा से इस कदर प्रभावित होते हैं कि फालके को ब्रिटेन में ही रहकर फिल्में बनाने का ऑफर देते हैं। लेकिन फालके अपने तर्क से उन्हें निरुत्तर कर देता है। अगर वह इग्लैंड में रहकर फिल्में बनायेगा तो भारत में भारतीय फिल्में कौन बनाएगा? अतः वह स्वदेश लौट आता है। बन्दरगाह से ट्राम में बैठकर जब वह अपने परिवार के साथ घर लौट रहा होता है तो सड़क पर उसे एक खिलौने बेचने वाला मिलता है जो ट्राम में बैठ जाता है। फालके यह देखकर आश्चर्यचकित हो उठता है कि उसके नाम पर खिलौने बनने व बिकने लगे हैं। 'फालके हाथी चार आने' सुनकर उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। अपनी लोकप्रियता की बुलन्दी का नमूना देखकर वह अभिभूत हो उठाता है। इसी दृश्य के साथ फिल्म का अन्त होता है।

'राजा हरीशचन्द्र' का निर्माण 1911 में शुरू हुआ था और उसे पूरा होने में दो साल लगे। हरीशचन्द्राची फैक्टरी 2008 शुरू हुई और 2009 मई में इसका प्रीमियर हुआ। सितम्बर 2009 में हरीशचन्द्राची फैक्टरी को 'सर्वोत्तम विदेशी भाषा फिल्म श्रेणी में आस्कर के लिये नामांकित किया गया। इससे पूर्व 2004 में मराठी

की एक अन्य फिल्म श्वास 'आस्कर' के लिये नामजद हुई थी। मगर दोनों ही फिल्में प्रतिस्पर्धा की दौड़ में पिछड़ गयीं। अलबता 2009 में हरीशचन्द्राची फैक्टरी ने 15 पुरस्कार जीते। कोल्हापुर, अहमदाबाद, पुणे में हुए फिल्म समारोहों में फिल्म को सर्वश्रेष्ठ फिल्म के पुरस्कार से नवाजा गया। 2009 में ही मुम्बई में हुए 46वें महाराष्ट्र राज्य फिल्म पुरस्कार समारोह में 'हरीशचन्द्राची फैक्टरी' को 'सर्वश्रेष्ठ फिल्म', सर्वश्रेष्ठ निदेशक तथा सर्वश्रेष्ठ कला निर्देशन के पुरस्कार हासिल हुए। कला निर्देशन की खूबी यह है कि फिल्म में मुम्बई का 100 वर्ष पूर्व का वातावरण पैदा किया गया है। फिल्म में सौ साल पहले की मुम्बई को देखना कम दिलचस्प नहीं है। कास्टिंग में रेखांकन के जरिए मुम्बई के ऐतिहासिक स्थलों का चित्रण आकर्षित करता है तो पार्श्व संगीत फिल्म की निरन्तरता व सम्प्रेषण को समृद्ध करता है। राजा हरीशचन्द्र में राजा की भूमिका दत्राये दमोदर ने निभाई थी तो तारामती का किरदार सांकुले ने अदा किया था। दूसरी ओर हरीशचन्द्राची फैक्टरी में फालके की भूमिका मराठी के मंजे हुए कलाकार नन्दू राधव ने सफलतापूर्वक अदा की तो फालके की पत्नी सरस्वती के किरदार को मराठी रंगमंच व फिल्मों की ख्याति प्राप्त अभिनेत्री विभाभावरी देशपांडे ने बखूबी जीवन्त किया।

राजा हरीशचन्द्र में काम कर रहे कलाकारों को घर परिवार व समाज का इस बात के लिये विरोध सहना पड़ा कि वे क्यों फिल्म में काम कर रहे हैं। इसी वजह से फालके को उन्हें यह समझाना पड़ा कि वे लोगों को यह बताएं कि वे हरीशचन्द्राची फैक्टरी में काम कर रहे हैं। फिल्मों के प्रति वह दौर हमारे समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण का प्रतीक था।

यह कम खेदजनक नहीं है कि 3700 फीट लम्बी व 40 मिनट की अवधि की पहली मूक भारतीय फिल्म 'राजा हरीशचन्द्र' की चार रीलों में से केवल पहली व आखरी रीलें ही उपलब्ध हैं। यह फिल्म पुणे की 'राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय' में उपलब्ध है। यही नहीं पहली भारतीय सवाक फिल्म 'आलमआरा' का एक भी प्रिन्ट कहीं उपलब्ध नहीं है। कहते हैं अर्देशर इरानी ने जिस स्टूडियो में इस फिल्म का निर्माण किया था वह आग की भेंट चढ़ गया था।

करीब एक करोड़ रूपये की लागत से बनी हरीशचन्द्राची फैक्टरी के निर्माता निर्देशक प्रकाश मोकाशे ने पुणे में अपने घर को गिरवी रखकर वित्तीय संसाधन जुटाए। फालके ने भी घर का सामान बेचकर और अपना घर गिरवी रखकर अपनी पहली फिल्म के लिये धन जुटाया था। मोकाशे को 2009 में हरीशचन्द्राची फैक्टरी को रिलीज करने में अनेक दिक्कतें दरपेश आयीं। वे फिल्म पर हुए खर्च की वसूली नहीं कर पाये क्योंकि यह लीक से हटकर एक ऐसी ऐतिहासिक फिल्म थी जो फिल्म निर्माण में फालके की संघर्षगाथा को केन्द्र में रखकर बनाई गयी है। चर्चा में आने के बाद जब यह फिल्म देश विदेश में फिल्म समारोहों में दिखाई गयी तो महाराष्ट्र में इसे देखने के लिये सिनेमाघरों में सैलाब उमड़ा। ढेरों पुरस्कार बटोरने के बाद संभवतः मोकाशे को अपनी फिल्म से इतनी आय हुई कि वे अपने घर को बिकने से बचा पाये।

फालके के जुनून को मोकाशे ने अपनी फिल्म में रूपांतरित किया। फालके की ही तरह मोकाशे भी फिल्म निर्माण में प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था। लेकिन वे मराठी रंगमंच से जुड़े हुए हैं।

फालके की स्मृति में 1970 में उनकी जन्म शताब्दी पर दादा साहब फालके पुरस्कार शुरू हुआ था जो भारतीय सिनेमा का सर्वोच्च पुरस्कार माना जाता है। 30 अप्रैल 1870 को जन्में धुंडीराज गोविन्द फालके का निधन 16 फरवरी 1944 को हुआ था। अपने जीवन काल में फालके ने 95 बड़ी व 26 लघुचित्रों का निर्माण किया। आखरी दिनों में उन्हें गुरबत और तंगहाली का दौर देखना पड़ा। सौ वर्ष पूर्व फालके ने जिस भारतीय फिल्म कला निर्माण का बीज बोया था वह आज वृहद वृक्ष का रूप ले चुका है।

गांव बल्ह डा. मौंहीं
तह. व जिला हमीरपुर-177 030
मो. 94180 20610

नोबेल पुरस्कार-2014

साहित्य :	मत्रिक मोदियानो (फ्रांस)
शांति :	कैलाश सत्यार्थी (भारत) व मलाला यूसुफजई (पाकिस्तान)
चिकित्सा :	जॉन जो कीफे (अमरीका-ब्रिटिश) तथा मे-ब्रिट मोजर व एडवर्ड मोजर (नार्वे के वैज्ञानिक दम्पति)
रसायन विज्ञान :	एरिक बेत्जिग (अमरीका), विलियम ई. मोर्नर (अमरीका) तथा स्टीफन डब्ल्यू हेल (जर्मनी)
भौतिक विज्ञान :	इसामू अकासाकी (जापान), हिरोशी अमानो (जापान) एवं शुजी नाकामुरा (जापानी मूल के अमरीकी वैज्ञानिक
अर्थशास्त्र :	जीन तिरोल (फ्रांस)

आलेख

शिवरात्रि : कुछ भूले-बिसरे चित्र

● डॉ. बी.एल. कपूर

मण्डी की शिवरात्रि को अंतर्राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में सप्ताह भर मनाया जाता है। बदलते समय के कारण इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहे हैं। पहले सैरी बाजार ही उत्सव स्थली होती थी। फिर एक-दो दिन पड्डल मैदान में मेला जुटता था, विशेषकर वे दिन विजय हाई स्कूल के छात्रों की खेलों के लिए तथा रियासती पुलिस के उपयोगी प्रदर्शनों के कारण पड्डल मैदान में आयोजित होते थे। अब तो सारा तामझाम इसी मैदान में जुगाड़ कर लेता है। मजे का विषय है कि अब यह मैदान भी छोटा पड़ गया प्रतीत होता है। पुराने जमाने में देवताओं की संख्या सीमित थी। देवताओं को रथों में बैठने के लिए राजाज्ञा आवश्यक थी तथा उसके लिए कठिन प्रक्रियाओं का प्रावधान था। अब तो सैकड़ों नित नए रथ सज-धज कर आ विराजते हैं। पुरानों में दो देवताओं की कमी बहुत खलती है। ज्वालापुर के वरनाग और साथ लगते क्षेत्र के चन्द्रोही दोनों ने शिवरात्रि में सम्मिलित होना बंद कर दिया है। दोनों देवता देव पराशर को दादू पुकारते हैं अतः दोनों चचेरे भाई हुए। दोनों ही मंडी राज्य के देवाधिदेव राजमाधव के मंत्री भी स्वीकारे जाते हैं। आश्चर्य की बात यह थी कि दोनों शिवरात्रि में भिड़ जाते थे। दोनों के रथों के कारकूनों का प्रयत्न रहता था कि उनका रथ सर्वप्रथम राजमाधव के सम्मुख उपस्थिति दे। यही बात राज्य के राजा से प्रथम भेंट के दिन भी देखी जाती थी। अच्छी खासी धमकधक्के वाले दृश्यों सहित इस प्रसंग को लोग-बाग बड़े चाव और उत्सकुता से निहारते थे और इसे लम्बी चर्चा का विषय भी बना देते थे। अब न वरनाग आते हैं और न ही देव चण्डोही। जब आते ही नहीं तो भी आपसी द्वंद्व और आगे हो जाने की होड़ का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

पुराने जमाने में देवताओं की संख्या सीमित थी। देवताओं को रथों में बैठने के लिए राजाज्ञा आवश्यक थी तथा उसके लिए कठिन प्रक्रियाओं का प्रावधान था। अब तो सैकड़ों नित नए रथ सज-धज कर आ विराजते हैं। पुरानों में दो देवताओं की कमी बहुत खलती है। ज्वालापुर के वरनाग और साथ लगते क्षेत्र के चन्द्रोही दोनों ने शिवरात्रि में सम्मिलित होना बंद कर दिया है।

पूर्वकाल में प्रत्येक देवता के बैठने का स्थान निश्चित था और उसका पूर्णतः पालन होता था। वर्तमान चांदनी के सम्मुख देवी-देवताओं की कतार बैठती थी। पूर्ववर्ती केसरी बंगले की ओर पहला स्थान थाची के बिथू नारायण का रहता था और सिद्धकाली मंदिर की ओर चुहार और द्रंगसीरा के देवता बैठते थे। रियासती काल के अंतिम दिनों में सम्भवतः 1944-45 में तरौर के मांहूनाग को रथारूढ़ होने की राजाज्ञा प्रदान हुई थी और देव का रथ बहुत बड़े समूह के साथ भी अपने कम्पकम्पी और अद्‌भुत कृत्यों के साथ थे जो शीशा तथा कांटेदार झाड़ियों को भरपूर चबा कर देवशक्ति का प्रदर्शन करते हुए अच्छी खासी भीड़ जमा करने में समर्थ थे। देवता की पहचान उसका लाल झण्डा जिस पर छोटा-सा चांदी का छत्र रहता था, जिसका आकर्षण छोटी वय के बालकों में कुतूहल की वस्तु थी। साथ में भारी भरकम पैसों का ढेर जिसे प्रतिदिन देवता के सम्मुख फैलाया जाता था। इससे दर्शक यह अनुमान लगाते थे कि देवता का यह प्रतिदिन का चढ़ावा है जिसे साथ के देवता के देवलू तत्काल नकारने में पीछे नहीं रहते थे कि यह तो इनका प्रतिदिन का प्रदर्शन है। देव माहूं नाग को आरम्भ में बैठने का स्थान निश्चित नहीं था अतः उसे कतार में सबसे पहले बैठा दिया गया, इससे थाची के बीथू नारायण को अनादर का भान हुआ और देवता के रथ को उन्होंने पूर्व-कालीन कृष्णा कॉटीज वाली कतार में ला बैठाया। यह सिलसिला चलता रहा और अंततः बीथू- नारायण का प्रथम स्थान उसी देवता को मिला और माहूंनाग को भी उचित जगह मिल गई। रियासती काल के पश्चात अभी तीन सालों से पुनः बीथू नारायण

शिवरात्रि में आने लगे हैं अन्यथा उनकी अनुपस्थिति पुराने लोगों को बहुत खलती रही।

शिवरात्रि पर्व के अंतिम पड़ाव को पूजा कहते थे। यह जरूरी नहीं था कि यह मेलों का सातवां दिन हो। पूरे ग्रह-नक्षत्र आदि के अध्ययन के पश्चात यह दिन तय होता था। इसको पूजा नाम इसलिए मिला क्योंकि देवताओं को इसी दिवस उचित सत्कार के साथ बहुमूल्य वस्त्रों/चादरों तथा अन्य सामग्री भेंट की जाती थी। भडन्ती के बेहड़ में राजा स्वयं प्रमुख देवताओं को तिलक, अक्षत और पुष्पों को अर्पित करता था तथा चादरों से सम्मानित करता था। अन्य देवताओं की सामग्री उनके पुजारी या गुर के माध्यम से प्रस्तुत की जाती थी। तत्पश्चात् सभी देवता चौहट्टे बाजार में आ विराजते थे अतः पूजा दिवस का दूसरा नाम चौहटे की जातर भी था। उस दिन का विशेष आकर्षण बुढ़ा बिगल देवता को सभी देव समाज का अभिनंदन था। देव बिंगल की करंडी को देवलू कंधे पर रख चौहट्टे के पादके (विष्णु पाद) के समीप खड़े रहते और समस्त ग्रामीण देव समाज वहां आकर देव बिंगल का अभिवादन करते थे। यह प्रथा अब समाप्तप्राय है और अब तो इस दिवस को चौहट्टा में इतना भीड़ भड़ाका रहता है कि पांव रखने को भी जगह नहीं मिलती। जहां आजकल गांधी भवन की इमारत है वहां एक विशाल कोठी थी जिसे चौहट्टे के वजीर की कचहरी कहते थे। उस काल खंड में करंडी बहुत छोटी थी। अब वह आकार में बड़ी कर दी गई है और रजत छत्र भी जोड़ दिया गया। हां, इस देवता का अभी भी पूर्णाकार रथ नहीं है। कभी कभार देव समाज और राजतंत्र में कुछ मुद्दों पर ठन भी जाती थी। एक बार रियासती काल में चौहार के तीनों दिग्पालों को उन्हें अर्पित चादरें उनकी प्रतिष्ठा और पद के अनुकूल न मिलने पर उन्होंने चादरों को वापस कर रोष प्रकट किया था। उचित संशोधन करने में भी राज्य की ओर से देर नहीं की गई और देवताओं के अनुरोध को स्वीकारा गया था। इसी प्रकार बुजुर्गों के मुख से सुना है कि एक बार भयंकर सूखा पड़ा। बहुत मिन्नतों के पश्चात भी बादल नहीं बरसे। कहते हैं राजा ने चौहार के तीनों देवताओं को माधोराय में कैद कर दिया। देवताओं ने आश्वासन न दिया कि अवश्य वर्षा होगी। अबकी बार राजा महल पहुंचा ही नहीं था कि मूसलाधार पानी बरसा और बरसता ही रहा। इस घटना के प्रभाववश धन्यवाद के रूप में तीनों देवताओं को शुद्ध स्वर्ण छत्र समर्पित किए थे जो आज भी इनके रथों का अलंकरण करते हैं।

89/1, प्रभा निकेतन, मंडी, हिमाचल प्रदेश-175 001

कविता

स्नेह भरा आंचल

● नीलिमा

मां का स्नेह भरा आंचल
कितना पावन कितना निर्मल
कितना अनुपम कितना कोमल।
निःस्वार्थ प्रेम के रंग में डूबा,
कितना निश्छल कितना उज्ज्वल॥

मां का स्नेह भरा आंचल
कर्तव्यों को निभाती संभल,
दुखों से बचाती पल-पल।
सुंदर जीवन देने की चाह में,
अपना जीवन जलाती हर पल॥

मां का स्नेह भरा आंचल
त्याग और बलिदान की मूर्ति
अंगारों पर चलती
ममत्व के रस में डूबी
प्रेम की धारा में बहती
भविष्य की चिंता में रहती विकल॥

मां का स्नेह भरा आंचल
लेकिन हाय ! काश... ऐसा होता,
पुत्र भी मां को समझ रहा होता
खुशियों से मां का आंचल भर देता,
जीवन मां का सफल कर देता।
स्वार्थ से परे रहता हर पल॥

मां का स्नेह भरा आंचल
लेकिन ये तो सपने हैं
सपने कभी न अपने हैं
काश ! ये सपना सच हो जाता,
हर मां का जीवन संवर जाता॥

मां का स्नेह भरा आंचल
आज की मां है कितनी व्याकुल
कितनी निष्कपट कितनी विकल
कितनी प्यारी कितनी अविरल
इतना सब होते हुए भी
मां का आंचल कितना विह्वल
कल भी था और आज भी विकल॥

हर्बर्ट विला, लोअर कैथू, शिमला-171 003, मो. 80911 25874

आलेख

लोक संस्कृति एवं देव समागम का अनूठा पर्व मण्डी शिवरात्रि

● जयपाल

प्रकृति की गोद में स्थित हिमाचल प्रदेश को प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध राज्य के रूप में जाना जाता है। यहां की देवप्रधान संस्कृति से ओत-प्रोत लोगों के जन-जीवन में लोक आस्था की जड़ें आज भी पूर्ववत उतनी ही मजबूत हैं। हिमाचल प्रदेश एक ऐसा राज्य है जिसके हर क्षेत्र और हर जिले की अपनी एक अलग संस्कृति एवं विशेष पहचान है। प्रदेश के मध्य में स्थित मण्डी जिला अपनी समृद्ध लोक संस्कृति एवं गौरवमय इतिहास के लिए जाना जाता है। सुकेत और मण्डी रियासतों के विलय के बाद अस्तित्व में आए इस जनपद में बौद्ध, सिख और हिन्दू धर्मों का समान रूप से प्रभाव रहा है और शायद इसी कारण यह प्राचीनकाल से ही यह व्यापारिक गतिविधियों के साथ-साथ धार्मिक सद्‌भाव और ज्ञान-विज्ञान का भी गढ़ माना जाता रहा है। रियासतकाल में यह पहाड़ी रियासत भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार का प्रमुख केन्द्र हुआ करती थी जहां से यारकंद, लेह-लददाख, लाहुल-स्पीति और कुल्लू से आने वाले व्यापारी मण्डी नगर में पड़ाव के बाद वर्तमान पंजाब राज्य के मैदानी क्षेत्रों की ओर रवाना होते थे। प्राचीनकाल में नगर के चौहाटा बाजार को पहाड़ों में पहले विकसित बाजार का दर्जा हासिल था और तत्कालीन पहाड़ी रियासतों में इसे सबसे समृद्ध रियासत के रूप में जाना जाता था।

यदि धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो सम्पूर्ण भारतवर्ष में दो ही ऐसे स्थान हैं जो आज भी शिव महिमा की प्राचीनतम अवधारणा से जुड़े हुए हैं- उनमें से पहला है वाराणसी यानी काशी और दूसरा ऋषि मांडव की तपोस्थली मण्डी यानी छोटी काशी। इन दोनों नगरों की एक समान नदी-घाटी सभ्यता के साथ यहां शिव मंदिरों की बहुलता है और इसी कारण मण्डी को देश की छोटी काशी के नाम से विभूषित किया गया है। मण्डी नगर को शिवालयों की नगरी कहना अतिशयोक्ति न होगी। यह विचित्र संयोग ही है कि मण्डी में भगवान शिव के विभिन्न रूपों में जितने मन्दिर उपलब्ध हैं, उतने समस्त भारत में शायद ही अन्यत्र हो। यहां भूतनाथ, पंचवक्त्र, त्रिलोकीनाथ, अर्द्धनारीश्वर, सिद्धशम्भू आदि अनेक मन्दिर पाए जाते हैं जो यहां प्राचीनकाल से प्रचलित शिवोपासना की विभिन्न पद्धतियों के परिचायक हैं।

सुकेती और व्यास नदियों के संगम स्थल के आर पार बसे मण्डी नगर को हिमाचल की सांस्कृतिक राजधानी भी कहा जाता है। यह ऐतिहासिक नगर अपनी कोख में अनेकों ऐसे रहस्य एवं महत्त्वपूर्ण जानकारियां समेटे हुए हैं, जो धार्मिक विद्वानों एवं इतिहासवेताओं के लिए जिज्ञासा का केन्द्र रहे हैं। मण्डी का नाम मण्डी क्यों और कैसे पड़ा, इसके बारे में कहा जाता है कि माण्डव्य ऋषि के नाम पर ही नगर का नामकरण मण्डी के रूप में हुआ है। यहां के सौन्दर्य से प्रभावित होकर मांडव्य, शुकदेव, लोमश, मार्कण्डेय आदि कई ऋषियों ने इसे तपोस्थलि के रूप में चुना।

शिवरात्रि पर्व समस्त भारत में प्रतिवर्ष माघ कृष्ण-चतुर्दशी को मनाया जाता है जिसमें व्रत, शिव के चिन्तन व भजन में रात्रि जागरण का विशेष महत्त्व है लेकिन मण्डी में मनाए जाने वाले इस पर्व की महिमा ही निराली है क्योंकि यहां देवी-देवताओं के समागम का अनूठा दृश्य मण्डी नगरी को देवमय बना देता है।

हिमाचल प्रदेश की छोटी काशी एवं ऐतिहासिक मण्डी नगरी का प्रसिद्ध शिवरात्रि पर्व यहां के जन-जीवन में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वसंत के आगमन के साथ ही मण्डी में महाशिवरात्रि का पर्व जिसे 'मण्डी री जातरा' कहा जाता है, प्रारम्भ हो जाता है। चारों ओर ढोल-नगाड़ों तथा शहनाई के मधुर स्वरों पर मण्डी नगरी उल्लास से नाच उठती है। विभिन्न दिशाओं से जब देवी-देवता देवलुओं और बाजे-बजंतरियों के साथ मण्डी जनपद में प्रवेश करते हैं तो यह नगरी स्वर्ग सी प्रतीत होने लगती है। देवरथों के साथ बजने वाले वाद्ययंत्रों की गूंज से समस्त वातावरण देवमय हो जाता है। सैंकड़ों वर्षों से मनाये जाने वाले इस अनूठे एवं पारम्परिक पर्व में देव समागम एवं लोक संस्कृति का सामंजस्य देखने को मिलता है और यही कारण है कि मण्डी की शिवरात्रि समूचे उत्तरी भारत में अलग पहचान रखती है।

मण्डी के अन्तर्राष्ट्रीय शिवरात्रि महोत्सव के शुभारम्भ से ही इस जनपद के सांस्कृतिक परिदृश्य का आकलन प्रारम्भ हो जाता

है। इस महोत्सव का मुख्य आकर्षण यहां का विशाल देव समागम है। लोकमत के अनुसार शिवरात्रि के वर्तमान स्वरूप का आगाज मण्डी के राजा इश्वरी सेन के समय 1788-1826 के समय से आरम्भ हुआ जब वे कांगड़ा के राजा संसारचन्द की कैद से मुक्त हुए तो मण्डी में उनका स्वागत हुआ और उस समय से शिवरात्रि अपने वर्तमान स्वरूप में आई। इस पर्व को विधि-विधान से आयोजित करने का श्रेय राजा सूरज सेन को जाता है।

शिवरात्रि उत्सव देव-मिलन के साथ-साथ मानव-मिलन का भी पर्व है। देव परम्परा का यह अनूठा संगम आस्था, विश्वास और मान्यता का पर्व भी है जो हिमाचल की अनूठी देव परम्परा और मानव रिश्तों को उजागर करता है। इस महोत्सव में मण्डी जनपद के लगभग सभी समीपस्थ एवं दूरस्थ जगहों से देवगण पालकियों, रथों और देवचिन्हों के साथ पधार कर इस पर्व की गरिमा को बढ़ाते हैं।

शिवरात्रि उत्सव आरम्भ होने से एक दिन पूर्व सभी आमंत्रित सम्माननीय देवी-देवता मण्डी पहुंच जाते हैं। मण्डी जनपद के प्रमुख देवताओं में देव कमरूनाग, जिन्हें बड़ादेव भी कहा जाता है, का मेला समिति द्वारा मण्डी की सीमा पर जाकर स्वागत किया जाता है और उन्हें पूरे सम्मान के साथ नगर में लाया जाता है। वे नगर में पधार कर माधवराव जी को मिलने के उपरान्त टारना स्थित माता श्यामाकाली के मन्दिर चले जाते हैं और पूरे मेले के दौरान वहीं ठहर कर लोगों को अपने दर्शन देते हैं तथा केवल मेले के अन्तिम दिन ही नगर में आते हैं और एक परिक्रमा कर वापिस कमरूघाटी की ओर चले जाते हैं। देव कमरूनाग की केवल छड़ी ही शिवरात्रि के समय लाई जाती है ।

इस महोत्सव के शुभारम्भ के दिन श्री माधवराव जी की शोभायात्रा, जिसे स्थानीय भाषा में 'जलेब' भी कहा जाता है, निकाली जाती है जो अनेक स्थानों से होती हुई पड्डल मैदान पहुंचती है। माधवराव जी की अगुवाई में निकाली जाने वाली इस शोभा यात्रा में उनके पीछे अन्य देवी-देवताओं के साथ गणमान्य व्यक्ति, अधिकारी, होमगार्ड व पुलिस जवानों के अतिरिक्त हजारों की संख्या में लोग भी शामिल होते हैं। पड्डल मैदान पहुंचने पर श्री माधवराव जी का मण्डी जनपद से आए देवी-देवताओं से मिलन होता है।

मेले के दौरान न केवल शहर एवं आसपास के श्रद्धालु अपितु बड़ी संख्या में दूसरे राज्यों से भी लोग एवं पर्यटक प्रतिदिन इन देवी-देवताओं के दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। मेले में देवमिलन का दृश्य तो देखते ही बनता है जबकि विभिन्न वाद्य-यंत्रों का मधुर संगीत लोगों को भक्ति रस से विभोर कर देता है। दिन भर तो लोग मेले में लगी दुकानों एवं स्टालों पर खरीददारी करने के अतिरिक्त मिठाई का आनन्द लेते हैं जबकि रात्रि के समय प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकार अपने कार्यक्रमों की प्रस्तुतियों से लोगों का भरपूर मनोरंजन करते हैं जिनमें लोगों का उत्साह देखते ही बनता है।



मण्डी शिवरात्रि महोत्सव का मुख्य आकर्षण यहां का विशाल देव समागम है। लोकमत के अनुसार शिवरात्रि के वर्तमान स्वरूप का आगाज मण्डी के राजा इश्वरी सेन के समय 1788-1826 के समय से आरम्भ हुआ

इस अवसर पर लगाई जाने वाली सरकारी विभागों की प्रदर्शनियों के माध्यम से आगन्तुकों को प्रदेश की विकासात्मक यात्रा की सजीव झलक देखने को मिलती है और मेले में आए लोगों के चेहरों पर खुशी, उत्साह एवं उमंग की रौनक भी स्पष्ट झलकती है। इस उत्सव के दौरान व्यापारिक गतिविधियों के अतिरिक्त खेलों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता है। मेले के अन्तिम दिन आमंत्रित देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना कर उन्हें उपहार स्वरूप चादरें एवं अन्य भेंट प्रदान कर सम्मानित किया जाता है। महोत्सव के अन्तिम दिन भी जलेब निकाली जाती है। मेले में आए देवी-देवता श्री माधव राव जी से अन्तिम भेंट कर अपने-अपने क्षेत्र को लौट जाते हैं और इसी के साथ ही शिवरात्रि उत्सव का समापन भी हो जाता है।

क्षेत्रीय कार्यालय, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, मंडी,
जिला मंडी हिमाचल प्रदेश, मो. 94184 26133

विकासात्मक आलेख

विकास एवं समृद्धि के पथ पर मण्डी जिला

● मंजुला

हिमाचल प्रदेश की तत्कालीन सुकेत और मण्डी रियासतों को मिलाकर, 15 अप्रैल, 1948 को अस्तित्व में आए मण्डी जिला ने विकास के सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है। 3950 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला मण्डी जिला सात उपमण्डलों, 13 तहसीलों, छह उपतहसीलों, 10 विधानसभा क्षेत्रों तथा 10 विकास खंडों में विभक्त है जो अस्तित्व में आने के उपरांत विकास के पथ पर निरंतर अग्रसर है। वर्तमान प्रदेश सरकार के गत दो वर्षों के कार्यकाल के दौरान जिले ने अभूतपूर्व उपलब्धियां हासिल कर नए मील पत्थर स्थापित किए हैं। मंडी जिले की आर्थिकी में कृषि एवं बागबानी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जिले में इस अवधि में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत 8.83 करोड़ रुपये व्यय किए गए। मुख्यमंत्री आदर्श कृषि गांव योजना के तहत जिले के प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र की दो-दो पंचायतों को 10-10 लाख रुपये प्रदान किए जा रहे हैं और योजना के अंतर्गत गत दो वर्षों में एक करोड़ रुपये व्यय किए गए। राष्ट्रीय टिकाऊ कृषि मिशन के तहत मण्डी जिला के लिए चार जलागम परियोजनाएं स्वीकृत है जिसके तहत चालू वित्त वर्ष के दौरान 1.6 करोड़ रुपये की राशि खर्च की गई।

जिले में कार्यान्वित राष्ट्रीय बायोगैस व खाद प्रबंधन कार्यक्रम, पिछड़ा क्षेत्र उप-योजना, जनजाति क्षेत्र उप-योजना, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, अनुसूचित जाति उप-योजना, मृदा परीक्षण जैसी योजनाओं से किसान व्यापक रूप से लाभान्वित हुए हैं।

डा. यशवंत सिंह परमार किसान स्वरोजगार योजना के तहत किसानों को पॉलीहाउस लगाने के लिए 85 प्रतिशत तक अनुदान दिया जा रहा है। वर्ष 2014-15 के दौरान जिले में 1.90 करोड़ रुपये खर्च कर 138 पॉलीहाउस का निर्माण किया जा रहा है। 'आत्मा' परियोजना के तहत जिले में 2 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई जबकि राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत 1.88 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं। जिले में कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए फसल विविधीकरण प्रोत्साहन परियोजना आरंभ की गई है। मार्च 2018 तक कार्यान्वित की जाने वाली इस परियोजना पर 300 करोड़ रुपये खर्च किए जायेंगे।

बागबानी मिशन के विभिन्न घटकों के अंतर्गत गत दो वर्षों में 4.98 करोड़ रुपये की अनुदान राशि बागबानों को जारी की गई। मिशन के तहत 26,307 वर्ग मीटर क्षेत्र को संरक्षित खेती में लाया गया। सेब जीर्णोद्धार योजना के तहत 105 हेक्टेयर क्षेत्र लाया गया तथा 74 लाख 86 हजार रुपये की अनुदान राशि बागबानों को उपलब्ध करवाई गई। बागबानों को विभिन्न उन्नत किस्मों के 4,70,490 फल पौधे आवंटित किए। 1568 हेक्टेयर क्षेत्र बागबानी के तहत लाया गया। विद्युत उपदान योजना के तहत घरेलू उपभोक्ताओं को सस्ती दरों पर बिजली उपलब्ध करवाई जा रही है। विद्युत उपभोक्ताओं को इस अवधि के दौरान 38279 नये सर्विस कुनेक्शन प्रदान किए गए। मध्य क्षेत्र मण्डी के तहत आने वाले क्षेत्रों में 12356 लकड़ी के खम्बों को बदला गया। जिले में इस अवधि में 33 केवी की 12 किलीमीटर एच.टी. लाईन तथा 11 केवी की 150 किलोमीटर तारें बिछाई गई जबकि 248 किलोमीटर नई एलटी लाईनें तथा 201 किलोमीटर पुरानी एलटी की पुरानी तारों को नई तारों में बदला गया। जिले में 268 नये विद्युत वितरण केन्द्र लगाने का लक्ष्य रखा गया है। 177 वितरण ट्रांसफारमर का संवर्धन किया गया। 92433 इलेक्ट्रो-मकेनिकल मीटरों को एल्क्ट्रोनिस मीटरों में बदला गया। 44 किलोमीटर टूटी हुई पीवीसी केबल को बदला गया।

मण्डी जिले में इस अवधि में लगभग 71 करोड़ रुपये की राशि व्यय कर 124 किलोमीटर सड़कों का निर्माण किया गया। जिले के 14 गांवों को सड़क सुविधा प्रदान की गई। अब तक जिला की 469 ग्राम पंचायतों से 426 को सड़कों से जोड़ा जा चुका है जिले के आबादी वाले 2824 गांवों में से 2065 को सड़क सुविधा से जोड़ा जा चुका है। जिले में इस अवधि में 153 किलोमीटर सड़कों की टायरिंग, 15 पुलों तथा 50 भवनों का निर्माण किया गया। सीआरएफ के अंतर्गत जिले के लिए एक पुल तथा एक सड़क परियोजना स्वीकृत जिस पर 17.42 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं जबकि राज्य सड़क परियोजना के तहत 3 सड़क परियोजनाएं स्वीकृत की गई हैं। नाबार्ड के तहत 12 तथा प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत 35 योजनाएं स्वीकृत की गईं जिन पर 100 करोड़ से अधिक की राशि खर्च की जा रही है।

जिले में शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जा रही है। मण्डी जिले में गत दो वर्षों में 17 नई प्राथमिक पाठशालाएं खोली गई जबकि 21 प्राथमिक, 39 माध्यमिक तथा 30 उच्च विद्यालयों को स्तरोन्नत किया गया। जिला में राजीव गांधी विद्यार्थी डिजिटल योजना के तहत 750 नेटबुक आवंटित किए गए। जिला में विभिन्न

छात्रवृत्ति योजनाओं के अंतर्गत दो वर्षों के दौरान लगभग 5 करोड़ रुपये की राशि विद्यार्थियों को आवंटित की गई। जिले में 213 वरिष्ठ माध्यमिक पाठशालाओं में सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षा, 26 पाठशालाओं में व्यावसायिक शिक्षा आरंभ की गई जबकि 98 पाठशालाओं में सूचना प्रौद्योगिकी तकनीकी प्रयोगशाला एवं स्मार्ट क्लास रूम बनाए गए।

जिले में दो वर्षों में निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध करवाने पर 4.43 करोड़ रुपये की राशि खर्च की गई। जिला में सरकारी स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों को महात्मा गांधी स्कूल वर्दी योजना के तहत दो वर्षों के दौरान 2,49,342 सेट निःशुल्क प्रदान किए गए। जिले में कार्यान्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को गति प्रदान की गई है। मण्डी जिले में मनरेगा के तहत दो वर्षों के दौरान लगभग 223 करोड़ रुपये व्यय कर एक करोड़ 12 लाख कार्यदिवस सृजित किए गए।

प्रदेश सरकार द्वारा आवास योजनाओं के तहत वित्तीय सहायता को 48,500 रुपये से बढ़ाकर 75,000 रुपये किया गया। इन्दिरा आवास योजना के तहत 13.21 करोड़ रुपये खर्च कर 1762 घरों तथा राजीव आवास योजना के तहत 3.5 करोड़ रुपये खर्च कर 406 घरों का निर्माण किया गया।

जिले में लोगों को घरद्वार के समीप बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाई जा रही हैं। मण्डी में 20 करोड़ रुपये की लागत से मातृ एवं शिशु अस्पताल तथा 45 करोड़ रुपये की लागत से आर. सी. सी. सी. कैंसर अस्पताल की स्थापना की जा रही है। जिले के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत 6.63 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं। वर्ष 2014 में 8 नए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र खोले गए जबकि 3 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को सामुदायिक केंद्रों में स्तरोन्नत किया गया। जिला में नए स्वास्थ्य संस्थान भवन बनाने व उनकी मरम्मत के लिए लगभग 8 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं। वर्तमान प्रदेश सरकार के दो वर्षों के कार्यकाल के दौरान जिले में 1318 उप गांवों को पेयजल उपलब्ध करवाया गया। वर्तमान में जिले के कुल 10343 उपगांव में से 8742 उपगांवों को मार्च 2014 तक 70 लीटर प्रति व्यक्ति की दर से पेयजल उपलब्ध करवाया जा रहा है। जिले के जलाभावग्रस्त क्षेत्रों में गत दो वर्षों के दौरान 367 हैंडपंप स्थापित जिससे जिले में स्थापित हैंडपम्पों की संख्या बढ़कर 3821 हो गई है। जिले में 502 हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान की गई। जिला की कुल 12405 हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधा के अंतर्गत लाया जा चुका है। जिले में 104 करोड़ रुपये की लागत से मध्यम सिंचाई योजना बल्ह वैली चरण एक व दो का कार्य पूर्ण। इस योजना से जिले की 2780 हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधा उपलब्ध।

वर्तमान सरकार के दो वर्ष के कार्यकाल में जिले में उद्योगीकरण में तेजी आई है। जिले में 110 लघु एवं सूक्ष्म उद्योग स्थापित जिनमें लगभग 18 करोड़ 50 लाख रुपये का पूंजीनिवेश तथा 676 हिमाचलियों को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए। प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम के तहत जिले के 128 लाभार्थियों को 2.5 करोड़ रुपये की आर्थिक सहायता उपलब्ध। ग्रामीण दस्तकार/ग्रामीण औद्योगिक योजना के तहत जिले के 3466 लाभार्थियों को विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षण प्रदान किया गया जिसमें 37 लाख रुपये की आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई गई। औद्योगिक जागरुकता कार्यक्रम के अंतर्गत जिले के पिछड़ा क्षेत्र के 491 बेरोजगार युवाओं को विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

ग्रामीण इंजीनियरिंग पर आधारित प्रशिक्षण के तहत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले 31 अनुसूचित जाति परिवारों के युवाओं को औद्योगिक इकाइयों में प्रशिक्षण दिया जा रहा है जिसमें 5.88 लाख रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की गई। खाद्य प्रसंस्करण मिशन के तहत पांच औद्योगिक इकाइयों को 68.69 लाख रुपये की अनुदान राशि प्रदान की गई।

विकास को मानवीय रूप देने के लिए सामाजिक कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है। जिले में वर्तमान में 59785 पात्र व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा पेंशन के तहत लाया गया गया हैं जिन्हें दो वर्षों में 92.98 करोड़ रुपये की राशि वितरित की गई। इसी अवधि में जिला में 4928 नये पेंशन मामलों को स्वीकृति प्रदान की गई। जिले में वर्तमान प्रदेश सरकार के दो वर्षों के कार्यकाल में गृह अनुदान योजना के तहत अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के 858 लाभार्थियों को नए मकानों के निर्माण के लिए 6.40 करोड़ रुपये की राशि प्रदान की गई जबकि अनुवर्ती कार्यक्रम के तहत अनुसूचित जाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के 1786 लाभार्थियों को 29 लाख 91 हजार रुपये व्यय कर सिलाई मशीनें प्रदान की गई। दो वर्षों में जिले में विकलांग छात्रवृत्ति योजना के तहत 702 विद्यार्थियों को 35 लाख 6 हजार रुपये तथा राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना के अंतर्गत 534 परिवारों को एक करोड़ से अधिक की राशि प्रदान की गई।

जिले में राष्ट्रीय पोषाहार कार्यक्रम के तहत 54317 बच्चों तथा 29968 धातृ एवं गर्भवती महिलाओं को पोषाहार प्रदान किया गया जबकि शालापूर्व शिक्षा के तहत इस अवधि में 40018 बच्चों को लाभान्वित किया गया। मुख्यमंत्री कन्यादान योजना के तहत 201 कन्याओं को 46 लाख 59 हजार रुपये वित्तीय सहायता प्रदान। महिला स्वयं रोजगार योजना के अंतर्गत 64 महिलाओं को लाभान्वित किया गया। मदर टेरेसा मातृ सम्बल योजना के अंतर्गत दो करोड़ से अधिक की राशि खर्च की गई।

उपभोक्ताओं को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत आटा, चावल व चीनी जैसी आवश्यक वस्तुएं कम दामों पर उपलब्ध करवाई जा रही हैं। वर्तमान राज्य सरकार के दो साल के कार्यकाल के दौरान मण्डी जिला में 34 नई उचित मूल्य की दुकानें खोली गई। उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से लगभग 2 लाख 93 हजार राशनकार्ड धारकों को उचित मूल्य पर खाद्य वस्तुएं वितरित कर लाभान्वित किया गया।

जिला लोक सम्पर्क अधिकारी,
मंडी जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश

शोधपरक लेख

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी-विमर्श

● मंजु लता

हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथाकार मैत्रेयी पुष्पा का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला अलीगढ़, ग्राम सिर्कुरा में 30 नवम्बर 1944 को एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनकी माता का नाम कस्तूरी तथा पिता का नाम हीरालाल था। इनका आरम्भिक जीवन गाँव में जिला झाँसी में बीता जिसकी स्पष्ट झलक इनके कथा- साहित्य में मिलती है। इनका जीवन बहुत ही कष्टों एवं अभावों में बीता है। मैत्रेयी पुष्पा अभी अठारह महीने की ही थी, जब इनके पिता का देहान्त हो गया। इनके पिता एक ऐसे इन्सान थे जो अंग्रेजों से टक्कर लेने का दम रखते थे। पिता की मृत्यु के बाद घर की सारी जिम्मेदारी इनकी माता 'कस्तूरी' पर आ गई जिसके कारण वे नौकरी पर चली जाती थी और मैत्रेयी को घर पर अकेले रहना पड़ता था। इनका जीवन माँ, बाप के प्यार से वंचित रहा। इनकी आरम्भिक शिक्षा अलीगढ़ में हुई। आठ वर्ष की आयु में माता द्वारा इन्हें गुरुकुल कन्या विद्यालय में भर्ती करवाया गया, जहाँ इन्होंने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। बुन्देलखण्ड कॉलेज झाँसी से इन्होंने हिन्दी विषय में एम.ए. किया। आरम्भ में इनकी पढ़ाई में रूचि नहीं थी। इनकी माता जी इन्हें जबरदस्ती शिक्षा देना चाहती थी। क्योंकि उनका मानना था - "शिक्षा का धन उसके पास है। सिर्फ खा-पहनकर सुखी हो जाये, ऐसा उसकी चेतना गवारा नहीं करेगी। आज नहीं तो कल, उम्र के साथ समझ में आ जायेगा कि उसका धर्म क्या है? जिम्मेदारी क्या सौभाग्यवती रहने में ही है? सम्मान और अपमान के भेद का रहस्य खुलेगा।"[1] बहुत जल्दी ही मैत्रेयी की समझ में माता की बताई बात आ गई। शिक्षा के क्षेत्र में इनको बहुत से कष्टों से गुजरना पड़ा है। विपरीत परिस्थितियों के चलते भी मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी पढ़ाई पूरी की। इन्होंने प्रण कर लिया कि बहुत जल्दी ही वह माँ के सपनों को पूरा करेगी।

मैत्रेयी पुष्पा अति आत्मविश्वासी और स्पष्टवादी महिला है, जिसका प्रभाव हमें इनकी रचनाओं के माध्यम से मिल जाता है। इन को बचपन से ही लिखने का शौक रहा है। जो आगे चलकर इनके जीवन का आधार बना। वे साहित्य सृजन में अपनी प्रतिभा को विस्तृत करने के लिए रेणू जी को सम्बल मानती हैं। इन्होंने एक से बढ़कर एक साहित्य कृति समाज को दी है। इसके लिए इन्हें कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा के आत्मविश्वासी होने का प्रमाण इस बात से भी मिल जाता है कि विवाह के कई वर्षों बाद भी इन्होंने लेखन कार्य किया और अभी भी कर रही हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य-जगत में अपनी एक विशेष पहचान बनाई। मैत्रेयी पुष्पा दृढ़- विश्वासी महिला हैं, जिस बात को मन में ठान लेती हैं, उसे पूरा किये बिना पीछे नहीं हटती है और यही बात इनके कथा- साहित्य के नारी पात्रों में देखने को मिलती है। इन्होंने आज के दौर में बुंदेलखंड अंचल के अभावग्रस्त जीवन तथा वहाँ पर व्याप्त विकृतियों और अन्य सामाजिक कुरीतियों को अपने साहित्य के माध्यम से उठाया है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि मैत्रेयी पुष्पा स्वयं बुंदेलखण्ड अंचल के अभावग्रस्त जीवन से सम्बद्ध रही है। ग्रामीण अंचल के जीवन को इन्होंने निकट से देखा है, और भोगा है। इनके साहित्य में पुरुष-प्रधान व्यवस्था के प्रति आक्रोश का भाव जगह-जगह झलकता है। इनके साहित्य के केन्द्र में नारी रही है। मैत्रेयी पुष्पा नारी की स्वतन्त्रता की पक्षधर हैं। इन्होंने स्त्री-लेखन को आधार बनाया जिसकी जरूरत लम्बे समय से महसूस की जा रही थी। इन्होंने नारी से जुड़ी समस्याओं को व्यापक सामाजिक विधान से जोड़कर चित्रित किया है। इनके साहित्य में नारी-पात्र मुख्य रूप से उभरकर सामने आये हैं जो अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन नारी पात्रों के माध्यम से मैत्रेयी ने नारी-शक्ति के नये आयाम खोजने का प्रयास किया है। एक साक्षात्कार में वे कहती हैं - "उस पुरुष व्यवस्था से मुझे चिढ़ है जो स्त्री के चारों ओर बंधन डालती है। हजार वर्षों से ज्यादा समय से देशी-विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचार, बलात्कार और उनके हरम की सजावट के सामान। उधर घर में पुरुष का आहत अहं और सुरक्षा की घेरेबन्दी। परिणामस्वरूप पर्दा, ढेरों गहने और अधंकार। सदियों से ढर्रा बन गया है उसमें स्त्री के सर उठाने से अंधड़ उठने का अंदेशा।"[2] अपने पूरे साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा ने नारी की दशा पर प्रकाश डाला है।

उपन्यास मानव जीवन का, उसके समग्र रूप में चित्रण करने वाला सबसे सशक्त साहित्यिक माध्यम है। समृद्धि तथा

लोकप्रियता की दृष्टि से आज उपन्यास की बराबरी कोई दूसरी साहित्यिक विधा नहीं कर सकती। उपन्यास गद्य साहित्य का वह समर्थ रूप है, जिसमें प्रबन्ध काव्य का सा सुसंगठित वस्तु विन्यास, महाकाव्य सी व्यापकता, गीतों की सी मार्मिकता, नाटकों सा प्रभाव, गाम्भीर्य तथा छोटी कहानी की सी कलात्मकता एक साथ मिल जायेगी। उपन्यास मानव सभ्यता की महान् लोक-कला है। एक साहित्यकार अपनी पूरी बात को उपन्यास के माध्यम से ही व्यक्त कर सकता है। हिन्दी साहित्य जगत में उपन्यास साहित्य भारतेन्दु युग से ही अपना महत्त्व व स्वरूप निर्धारित किए हुए है, परन्तु वर्तमान समय में 'उपन्यास' साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है। परिस्थितियों से संघर्षरत मानव को उसकी उपलब्धियों को जितनी पूर्णता के साथ एक उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से समाज के सामने लाता है, उतनी उपलब्धियों के साथ कोई कवि या नाटककार नहीं। मैत्रेयी पुष्पा ने भी उपन्यासों के माध्यम से समाज का चित्रण जितने व्यापक फलक पर किया है उतना कोई उपन्यासकार नहीं कर सका। इनके उपन्यासों के केन्द्र में नारी सर्वत्र विराजमान रही है।

मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास 'स्मृति -दंश' एक छोटी- सी उपन्यासिका है। इसमें एक गरीब और अनाथ लड़की भुवन तथा पागलपन के शिकार उसके पति कुँवर विजय सिंह की कहानी है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने समाज में पुरुष के प्रभुत्व तथा नारी की दयनीय स्थिति का त्रासद वर्णन किया है। भुवन का पति पागल है, यह उसे शादी की पहली रात को पता चलता है। उसका पति उसे बार-बार हाथ धोने के लिए, बर्तन धोने के लिए कहता है। अपने पति की इस अवस्था को देखकर भुवन चुप्पी साध लेती है। अंत में वह अपने परिवार वालों के साथ अपने पति को पागलों के अस्पताल भेजने का निर्णय लेती है। उसे विश्वास होता है, कि उसका पति ठीक हो जायेगा, परन्तु वह ठीक नहीं होता। जब भुवन के पति को अस्पताल ले जा रहे होते हैं तो उसे घर पर ही रहने को कहते हैं। भुवन का जेठ अपनी पत्नी को भुवन की देखभाल करने के लिए कह देते हैं। भुवन की जेठानी उन पर शक करती है और बन्दूक उठाकर अपनी जान देने की धमकी देती है। भुवन बीच में आ जाती है। इसी हाथापाई में गोली भुवन पर चल जाती है। भुवन की मौत हो जाती है। इस प्रकार भुवन थोड़ी -सी जिंदगी जीने के लिए रोज तिल-तिल मरती है। परन्तु उसकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। समाज द्वारा नारी पर गलत निर्णयों को थोपने एवं नारी द्वारा उसे विवशतापूर्ण निभाने की कहानी भुवन की न होकर सम्पूर्ण नारी जाति की है।

मैत्रेयी पुष्पा का 'बेतवा बहती रही' उपन्यास इस पुरुष-प्रधान समाज के मध्य नारी की त्रासद स्थिति, उसके संघर्ष तथा उसके साहस का चित्रण करता है। आज व्यक्ति प्रगति, विकास और बौद्धिक ऊँचाई के स्तर पर पहुँच गया है, परन्तु नारी के प्रति उसका दृष्टिकोण आज भी वैसे का वैसा ही है। तभी तो मीरा के नाना कहते हैं, "सूरज, बेटी तो मुख जोहती गईया है रे . ...।"[3] 'बेतवा बहती रही' उर्वशी के पीड़ा और उसके संघर्ष की कहानी है। उर्वशी की पीड़ा वहां से शुरू होती है, जब उसके पति के मरने के बाद उसकी शादी उसके पिता के उम्र के व्यक्ति बरजोर सिंह से कर दी जाती है। उसकी शादी नहीं बल्कि उसका सौदा किया जाता है। उसका भाई यह सब करता है। उर्वशी चुपचाप सब कुछ सहन कर जाती है। वह छटपटाती भी है, परन्तु उसकी छटपटाहट सुनने वाला इस पुरुष-प्रधान समाज में कोई नहीं। स्त्री जीवन का बड़ा ही मार्मिक वर्णन मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में किया है। आज भी स्त्री के जीवन को बोझ समझा जाता है। बेटे के जन्म पर जहाँ खुशियाँ मनाई जाती हैं, वहीं बेटी के जन्म पर शोक मनाया जाता है। स्त्री को अपना जीवन ही व्यर्थ लगने लगता है। उर्वशी अपनी व्यथा अपनी सखी मीरा के साथ इस प्रकार बाँटती है," मीरा भगवान काहे के लाने बिटिया को जन्म देता है? वो नहीं जानत कि लड़की पैदा होके कितों को विपदा में डार देगी। देख नहीं रही मीरा तुम ... हम न होते तो इती क्लेश मचती"[4] बरजोर सिंह धन के बल पर उर्वशी से शादी करता है। वह उससे शादी करके अपनी काम-वासना तृप्त करता है। उर्वशी घुट-घुट कर जीती है। उसे अपने बच्चे से अलग रखा जाता है। परन्तु उर्वशी हिम्मत नहीं हारती। वह परिस्थितियों का विरोध करती है, जो बरजोर सिंह को गवारा नहीं। वह नहीं चाहता कि उर्वशी उसके किसी भी कार्य में दखल करे। उर्वशी के साहस को देखकर बरजोर सिंह उसे 'सलो प्वाइजनिंग' देता है, जिससे उर्वशी धीरे -धीरे मौत के मुँह में चली जाती है। इस प्रकार बरजोर सिंह परिवार में अपने प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए जहर का सहारा लेता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने इस यथार्थ को प्रकट किया है, कि आज इस पुरुष-प्रधान समाज को नारी का यह तेज गवारा नहीं है। वह उसे अपने पैरों की जूती समझता है और जिस तरह से चाहे, वैसे रखना चाहता है। परन्तु साथ ही लेखिका ने यह भी स्पष्ट किया है, कि नारी को अपनी लड़ाई स्वयं ही लड़नी होगी।

'इदन्नमम' में महानगरीय मध्यवर्ग की संघर्ष करती और पाँवों के नीचे जमीन की तलाश करती कथा-नारियों के बीच गाँव की मन्दा एक अजीब निरीह, निष्कवच, निश्छल, संकल्प-दृढ़ नारी का व्यक्तित्व चित्रित किया है। इस उपन्यास में मुख्य रूप से ग्रामीण अंचल का पिछड़ापन उजागर हुआ है। 21 वीं शताब्दी में प्रवेश करने पर भी विकास की किरन इन अंचलों तक नहीं पहुँच पाई है। सामन्ती और पूंजीवादी लोग आज भी गरीबों का शोषण करते हैं। मन्दा इन गरीब लोगों की सहायता करती है। वह गाँव के लोगों को उनके अधिकारों से परिचित करा के उनमें चेतना पैदा करती है। गाँव के लोग अनपढ़ तथा गरीब होने के कारण इन

सामन्तों तथा पूंजीवादियों के शोषण का शिकार बनते आये थे। मन्दा की वजह से ही गाँवों के लोग चुनावों का बहिष्कार करते हैं। 'इदन्नमम' के नारी पात्रों के सम्बन्ध में मैत्रेयी पुष्पा अपने एक साक्षात्कार में कहती हैं, -"इदन्नमम नारी पात्रों का जीवंत इतिहास है। इसमें आत्मसंघर्ष है। यह संघर्ष किसी भी प्रदेश की किसी भी आँचलिक नारी का हो सकता है।"[5] उपन्यास में चाहे मन्दा की दादी बऊ हो, कुसुमा भाभी हो या फिर मंदा हो, अपनी -अपनी मान्यताओं पर अडिग हैं। बऊ पुरानी पीढ़ी की प्रतिनिधि ा हैं। अपने पुत्र महेन्द्र की पत्नी प्रेम के प्रति उनकी घृणा, प्रेम बहू का घर की मर्यादा को लांघ जाना उनकी बर्दाश्त के बाहर है। दूसरी तरफ 'प्रेम' है, जो पुरानी मान्यताओं को नकारते हुए रतन यादव के संग भाग जाती है। वह यह मानती है, कि शारीरिक भूख को शांत करने से बड़ी कोई चीज नहीं है। इसी उपन्यास की 'कुसुमा भाभी' परित्यक्ता हैं। इनके पति 'यशपाल' ने उन्हें छोड़कर दूसरा विवाह कर लिया है। कुसुमा भी इन पुरानी रूढ़ियों को तोड़ते हुए अपने ही घर के दाऊ जू के संग प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करती है। मंदा वास्तविक अर्थों में एक जुझारू युवती है। वह गाँव में नारियों की शिक्षा पर बल देती है। तीन पीढ़ियों की यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानान्तर भी रखती है और एक दूसरे के विरुद्ध भी। गाँव की इस कहानी को मैत्रेयी पुष्पा ने लोक -कथाओं के माध्यम से स्वाभाविक ढंग से लिख दिया है, मानों मंदा और उसके आसपास के लोग खुद अपनी बात कह रहे हों - अपनी भाषा और अपने लहजे में, बुंदेलखण्ड लयात्मकता के साथ ... अपने आसपास घरघराते क्रैशरों और ट्रैक्टरों के बीच।

मैत्रेयी पुष्पा के अन्य उपन्यासों की तरह उनका 'चाक' उपन्यास भी गाँव की दास्तान सुनाता है जिसकी प्रमुख पात्र है सारंग नैनी। मैत्रेयी पुष्पा ने नारी को धुरी बनाकर अपने साहित्य को रचा है। सारंग का पति 'रंजित' विपरीत परिस्थितियों पर भी उसका साथ नहीं देता है, तो वह अकेले ही इस समाज की चुनौतियों से लड़ने का फैसला करती है। सारंग का पति पर से विश्वास उठ जाता है। सारंग के ससुर गजाधर सिंह उसका साथ देते हैं। वह उसका साहस बढ़ाते है, "आज तू रंजीत का रूप हो गई मेरे लिए, उससे जो उम्मीद लगाई थी, सपने देखे थे, तू पूरे कर रही है, आग पर चलकर। बेटा जो तपना सीख लेता है, वह कुन्दन हो जाता है।"[6] अपने ससुर की बातों से उसे दोगुना साहस मिलता है। वह श्रीधर मास्टर के साथ मिलकर चुनावों में अपने पति के विरुद्ध पर्चा भर आती है। वह श्रीधर मास्टर के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। मास्टर श्रीधर उसके अन्दर नई चेतना का निर्माण करते हैं, जिससे उसके अन्दर सही गलत को पहचानने की समझ आ जाती है। वह अन्याय के विरुद्ध अपने पति तक से उलझ जाती है। जब वह चुनावों में पर्चा भरने जाती है, तो उसे लगता है कि मेरी जैसी बेशर्म औरत कोई न होगी, परन्तु बहुत जल्द ही उसकी समझ में आ जाता है, " ऐसा क्या करने जा रहे हैं, कि जान हथेली पर ... क्या हम सबके हकदार नहीं ? छीन रहे हैं, किसी का अधिकार या चोरी कर रहे हैं अपनी इच्छा को रखने के लिए?"[7] इस प्रकार सारंग सही और गलत का निर्णय स्वयं करती है। वह चुनाव में खड़ी हो जाती है, और गाँव की सभी औरतें उसका साथ देती हैं।

सत्काम लिखते हैं, "पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में, हिन्दी उपन्यास के क्षितिज पर महिला उपन्यासकारों का आधि ापत्य रहा जिनमें मैत्रेयी पुष्पा का नाम प्रमुख है। इन्होंने न केवल पिसती और जूझती नारी के दर्द और विडम्बनाओं का चित्रण है बल्कि भारतीय समाज व्यवस्था पर सवालिया निशान लगाते हुए उसे कटघरे में खड़ा कर दिया है।"[8] 'झूला-नट' उपन्यास भी नायिका प्रधान है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र 'शीलों' है। शीलों उपन्यास में न भूले जा सकने वाली नारी पात्र है। शीलों के पति सुमेर ने उसे छोड़ दिया है और उस की सास ने उसे बालकिशन की घरवाली मान लिया है। बालकिशन उसका देवर है। बाल किशन ने भी उसे अपनी पत्नी मान लिया है। शीलों चालाक एवं जुझारू वृत्ति की स्त्री है। वह बालकिशन से बछिया कराने से इन्कार कर देती है, क्योंकि उसकी नजर पति की जायदाद पर रहती है। वह समाज से लड़ती हुई पति की जायदाद में हक पाती है, बालकिशन जो उसका देवर है, शीलों से देह में रमा रहता है, हमेशा शीलों के साथ मौका देखते ही अपनी अतृप्त कामवासना को शांत करना चाहता है। बालकिशन हीन भावना का शिकार है। हमेशा अपनी तुलना अपने भाई के साथ करता रहता है। वह अपनी पत्नी और माँ के बीच 'नट' की तरह झूलता रहता है। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने पुराने रीति-रिवाजों एवं संस्कारों के कारण होने वाले अनमेल विवाह से परिवार में आए बिखराव का वर्णन किया है। पति द्वारा परित्यक्त शीलों हारती नहीं बल्कि अपनी नजर और पैनी रखती है। वह अपनी सारी निराशा अपने देवर बालकिशन पर और अपनी सास पर निकालती रहती है। शीलों के सम्बन्ध में मैत्रेयी पुष्पा लिखतीं हैं- "गाँव-की साधारण-सी औरत है शीलों न बहुत सुन्दर न बहुत सुघड़ .... लगभग अनपढ़ न उसने मनोविज्ञान पढ़ा है, न समाजशास्त्र जानती है। राजनीति और स्त्री-विमर्श की भाषा का भी उसे पता नहीं है। पति उसकी छाया से भागता है। मगर तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की मार न शीलों को कुँए-बावड़ी की ओर धकेलती है और न आग लगाकर छुटकारा पाने की ओर। वशीकरण के सारे तीर-तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत - एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजिविषा ..... . उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी अंगुली ही उसका भाग्य लिख रही है........... और उसे ही बदलना होगा।"[9] पता नहीं झूला-नट शीलों की कहानी है या बालकिशन की ! हाँ अन्त तक,

प्रकृति और पुरुष की यह लीला अप्रत्याशित उदात् अर्थ में जरूर उद्‌भासित होने लगती है।

मैत्रेयी पुष्पा ऐसी कथाकार हैं, जिनकी पैनी दृष्टि से समाज की कोई भी समस्या अछूती नहीं रही है। कबूतरा जाति के लोगों के जीवन का चित्रण इन्होंने अपने 'उपन्यास' 'अल्मा कबूतरी' में किया है। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने एक अलग जमीन की तलाश कर 'कबूतरा' जाति के जीवन को उपन्यास का विषय बनाया है। मौत से भी बदत्तर जिंदगी जीने वाले इन लोगों की ओर लेखिका की नजर पड़ी। जिसकी तरफ अभी तक किसी की नजर नहीं गयी थी। 'अल्मा कबूतरी में कज्जा जाति के 'मन्साराम' और 'कबूतरी 'कदमबाई' की प्रेम कहानी है। यह सिर्फ इन दोनों के प्यार की कहानी ही नहीं बल्कि दो जातियों के टकराहट की कहानी है जिसमें हार निर्बल की ही होती है। इन दोनों के प्रेम से उत्पन्न 'राणा' के अन्दर कज्जा जाति के लक्षण देख कर कदमबाई छली सी रह जाती है। कदमबाई अपने जाति के लोगों से टक्कर लेकर अपने बेटे राणा को रामसिंह के पास पढ़ने भेजती है। वहाँ उसकी मुलाकात 'अल्मा' से होती है। जो उसे बच्चे से मर्द बनाती है और समाज की हर समस्या से टक्कर लेती हुई अंत में बबीना विधानसभा से प्रत्याशी चुन ली जाती है। अल्मा इस उपन्यास की केन्द्र-बिन्दु है। अल्मा की कहानी एक ऐसी विद्रोही नारी की कहानी है, जो पशुओं से भी बदतर ज़िंदगी जीती है। उसे एक जगह से दूसरी जगह और दूसरी से तीसरी जगह समाज के ठेकेदारों के द्वारा बेचा और खरीदा जाता है जिसमें इस देश की बागडोर सम्भालने वाले मन्त्री, गृह मन्त्री तक शामिल होते हैं। शरीर के साथ-साथ उसकी आत्मा भी लहूलुहान होती हैं। परन्तु वह हिम्मत नहीं हारती। कुँवारी माँ बनने का साहस दिखाती है। इसी उपन्यास की एक अन्य नारी पात्र 'भूरी' भी अपना शरीर बेचकर अपने बेटे रामसिंह को पढ़ाती है। वह अपने बेटे को इसलिए पढ़ाती है, क्योंकि वह समाज में सम्मान की जिंदगी जी सके। परन्तु रामसिंह, बेटा सिंह डाकू के नाम पर मारा जाता है। इस उपन्यास में नारी की त्रासद स्थिति, उनके संघर्ष तथा उनकी अस्मिता का चित्रण बहुत मार्मिक ढंग से हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा इनके बारे में लिखती हैं- "कभी-कभी सड़कों, गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध सुर्खियों में दिखाई देने वाले कंजर, साँसी, नट, मदारी, सपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजोर, बावरिया, कबूतरे- न जाने कितनी जन जातियाँ हैं जो सभ्य समाज के हाशियों पर डेरा लगाए सदियाँ गुजार देती हैं- हमारा उनसे चौकन्ना सम्बन्ध सिर्फ कामचलाऊ ही बना रहता है। उनके लिए हम हैं 'कज्जा' और 'दिकू' यानि सभ्य-सम्भ्रांत, 'परदेसी' उनका इस्तेमाल करने वाले शोषक-उनके अपराधों से डरते हुए, मगर उन्हें अपराधी बनाए रखने के आग्रही। हमारे लिये वे ऐसे छापामार गुरिल्ले हैं जो हमारी असावधानियों की दरारों से झपट्टा मार कर वापस अपनी दुनियां में जा छिपते हैं। कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में .... स्त्रियां शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर ....।"[10] किस प्रकार से ये लोग आज भी इन गन्दी बस्तियों में रहने को मजबूर हैं। सरकार इन की तरफ कोई ध्यान नहीं देती। यहाँ तक कि पुलिस प्रशासन भी इन की औरतों के साथ गन्दा व्यवहार करते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा को नगर में रहते हुए गाँव का मोह नहीं छोड़ पाया है। यह उनके इस उद्धरण से पता चलता है, "इस महानगर में बने वातानुकूलित गृह-कक्ष मुझसे बुन्देलखण्ड के खपरैल ढके कोठों का मोह नहीं छीन पाये हैं। गाँव से आये आमंत्रण पर पाँव स्वतः ही त्वरित गति से उठते है।"[11] मैत्रेयी पुष्पा आज भी गाँव से जुड़ी हैं और 'अगनपाखी' उपन्यास लिखने की प्रेरणा भी उन्हें यहीं से मिली। 'अगनपाखी' की 'भुवनमोहिनी' की कथा नई नहीं है। अनेक उपन्यासों, फिल्मों और लोककथाओं में रूप बदल-बदलकर कर आती है। सम्पति के लिये भाईयों के झगड़े, पत्नियों और विधवाओं के हत्याअनुष्ठान भारतीय सामंती परिवारों में हजारों बार दोहराए जाते रहे हैं। ऐसे ही एक सामंती परिवार के अधपगले लड़के के साथ भुवन का विवाह कर दिया जाता है और फिर वही सांमती दाँवपेच। भुवन अपने पति के साथ खुश नहीं है। वह चन्दर को चाहती है, जो रिश्ते में उसकी बहन का लड़का है। जब भुवन की माँ को इन दोनों के प्रेम-प्रसंग का पता चलता है, तो वह अपनी जान देने की कोशिश करती है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास के माध्यम से सम्बन्धों के इन खोखले रिश्तों को उतार फेंकने का प्रयास किया है। इन दोनों का प्रेम समाज की नजरों में महापाप है। भुवन को न चाहते हुए भी अपने पति के साथ रहना पड़ता है। वह अपना पत्नी धर्म निभाते हुए अपने ससुराल में रहती है। अपनी जेठ की यातनाओं को सहती है। जेठ की नजर अपने बिमार भाई तथा भुवन की जायदाद पर है। उसका जेठ अपने भाई को किसी साजिश के तहत मरवाकर सारी सम्पत्ति अपने नाम करवा लेता है। वह भुवन को सती होने के लिए कहता है। परन्तु भुवन उसकी सारी चाल समझ जाती है और चन्दर के साथ भाग जाती है। उसका जेठ सोचता है, कि उसने बेतवा में कूद कर जान दे दी, और वह भाई की जायदाद का वारिस स्वयं को घोषित करता है। परन्तु

मैत्रेयी पुष्पा को नगर में रहते हुए गाँव का मोह नहीं छोड़ पाया है। यह उनके इस उद्धरण से पता चलता है, "इस महानगर में बने वातानुकूलित गृह-कक्ष मुझसे बुन्देलखण्ड के खपरैल ढके कोठों का मोह नहीं छीन पाये हैं। गाँव से आये आमंत्रण पर पाँव स्वतः ही त्वरित गति से उठते है।" मैत्रेयी पुष्पा आज भी गाँव से जुड़ी हैं और 'अगनपाखी' उपन्यास लिखने की प्रेरणा भी उन्हें यहीं से मिली।

भुवन चार महीने बाद कुँवर अजय सिंह की अर्जी के विरोध में अपनी जायदाद के लिये कोर्ट में अर्जी दाखिल करती है। स्त्री का दायरा घर की चार दीवारी तक सीमित है। उसे अपनी मर्जी से जीने का अधिकार नहीं। शादी करते वक्त भी उसकी राय जानना जरूरी नहीं। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने एक ऐसी नारी का चित्रण किया है, जो इस सामन्ती प्रथा को चुनौती देती है। जो सम्बन्धों के ढकोसलों को न मानते हुए अपने भानिज चन्दर के साथ भाग जाती है। नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। 'अगनपाखी' की भुवन नारी मुक्ति की मशाल बनकर हमारे सम्मुख उपस्थित होती है।

'विजन' उपन्यास में भी मैत्रेयी पुष्पा ने नारी जीवन के संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। इसमें भी अपनी अस्मिता और व्यक्तित्व को तलाशती स्त्रियाँ हैं। बस परिवेश, स्थान, काल और महौल अलग है। 'विजन' उपन्यास 'अगनपाखी' उपन्यास से मेल खाता है। 'अगनपाखी' में गाँव है, जमींदार हैं, जमींदार के घर की स्त्रियाँ हैं, वहाँ व्याप्त ढकोसला और ढोंग है और उसमें उजबुजाती स्त्री है, तो दूसरी ओर अस्पतालों के चमकते कॉरीडोर, जीन्स और एप्रिन पहने स्टैथिस्कोप लटकाए ' डॉक्टर-डॉक्टरनियाँ .... मोबाइल फोन और ए. सी. गाडियाँ .... और इनके बीच दो महिला डॉक्टर हैं, उनका शहरी परिवेश है। परन्तु कथा वही है - नारी के संघर्ष और अपनी अस्मिता की तलाश की। 'विजन' डॉक्टरों, खासकर आँख के डॉक्टरों के इर्द-गिर्द घूमती कथा है। कथा के दो प्रमुख नारी पात्र हैं- डॉ. नेहा और डॉ. आभा। नेहा मध यवर्गीय परिवार की लड़की है। माँ- बाप ने बहुत मुश्किलें झेल कर उसे डॉक्टर बनाया। वह बहुत काबिल डॉक्टर है। परन्तु उसके ससुर उसे बहू के रूप में ज्यादा और डॉक्टर के रूप में कम देखते हैं। उस की सलाहों को नजर अंदाज करते हैं। सफल ऑपरेशन करने पर भी उसे सराहना नहीं, आलोचना का सामना करना पड़ता है। वह शरण आई सेंटर की एक रिसेप्शनिस्ट मात्र बन कर रह जाती है। नेहा छटपटाती तो बहुत है, पर ससुर और पति के बिछाए जाल को तोड़ नहीं पाती। दूसरी तरफ डॉक्टर आभा निडर, साहसी और आत्मविश्वासी नारी हैं। आभा का पति भी डॉक्टर है। डॉक्टर होने के बावजूद उसका पति चाहता है, कि वह सास-ससुर की सेवा करे, उनके साथ रहे। आभा के स्वभाव में 'एरोगेंस' है, वह नेहा की तरह दब्बू नहीं है। वह जानती है, कि वह एक डॉक्टर है और डॉक्टर का सबसे पहला कर्त्तव्य उसकी ड्यूटी है। उसका एक मात्र काम सास-ससुर की सेवा करना ही नहीं है। पति के साथ मार-पीट होने के बाद वह पति से तलाक लेकर अकेले रहने का फैसला करती है। अस्पताल में हो रहे अन्याय को वह सहन नहीं कर सकती। समाज से लड़ने के लिए वह खुद को तैयार कर लेती है। अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के प्रयास में उसे अपनी नौकरी से भी हाथ धोना पड़ता है, परन्तु वह हार नहीं मानती। मैत्रेयी पुष्पा का यह उपन्यास नारी जीवन के संघर्ष तथा अपनी अस्मिता की तलाश में रत नारी का चित्र उपस्थित करता है।

'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथात्मक उपन्यास है। अपने एक साक्षात्कार में मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं- "इसे उपन्यास कहूँ या आपबीती? इसे जो कहा जाए, यही है, हमारी कहानी।"[12] इसमें मैत्रेयी कम और इनकी माता 'कस्तूरी' की कहानी ज्यादा है। इनकी माता जी ने अपने जीवन में बहुत से कष्टों को झेला है। पति की मृत्यु के बाद घर की सारी जिम्मेदारी, बेटी की जिम्मेदारी इन्होंने अपने कंधों पर ले ली। कस्तूरी का विधवा होने पर भी उनके द्वारा शिक्षा ग्रहण करना नारी का साहसिक प्रयत्न है। उस समय में औरतों को ज्यादा घर से बाहर निकलने पर पाबन्दी थी, परन्तु तब भी कस्तूरी समाज से टक्कर लेते हुए अपना संघर्ष जारी रखती है। कस्तूरी अपनी बेटी मैत्रेयी को उच्च शिक्षा दिलाना चाहती थीं, परन्तु मैत्रेयी का मन पढ़ाई में नहीं लगता था। कस्तूरी की जिद थी कि किसी भी तरह वह पढ़ जाए। बहुत जल्द ही मैत्रेयी अपनी माँ को समझ जाती है और अपनी पढ़ाई पूरी करती है। जब कस्तूरी की शादी हुई, तो घर वालों ने उसे दो पीतल के कलशों की तरह बेच दिया। इसके बाद जब मुँह दिखाई के समय औरतों ने उसे आठ सौ में खरीदी घोड़ी कहा तो वह हक्की-बक्की रह गई। बीस दिन जीकर बेटा मर गया। कस्तूरी को बेटे का एहसास तब हुआ जब वह रोज-रोज मैत्रेयी के लिए लड़का ढूँढ़ने जाती थी और थक हार कर वापस आ जाती थी। मैत्रेयी पुष्पा लिखती है, "पुरुषों जैसे काम करने से पुरुष जैसी नहीं मान ली जाती स्त्री। सामाजिक कामों के चलते उसे किसी पुरुष की जरूरत होती है, भले वह पाँच या दो साल का हो। पति और बेटा कहाँ से लाये कस्तूरी?"[13] इस प्रकार से कस्तूरी को अपने जीवन में बहुत संघर्ष करना पड़ा। उस समय का सामाजिक जीवन रूढ़ियों और परम्पराओं में जकड़ा हुआ था। जिसके चलते माँ- बेटी को संघर्ष करना पड़ा। नारी मुक्ति की जो दृष्टि कस्तूरी के माध्यम से लेखिका ने संप्रेषित की है, निःसन्देह क्रान्तिकारी है।

मैत्रेयी पुष्पा का 'कही ईसुरी फाग' प्राचीन संस्कृति को जागृति प्रदान करता है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास को रच कर अन्य उपन्यासों की तुलना में एक अलग जमीन की तलाश की है और फागों के महत्त्व को प्राथमिकता दी है। किस प्रकार से आज हमारी संस्कृति लुप्त होती जा रही है। जो आज इस संस्कृति को बचाए हुए है, उन्हें किस प्रकार से बड़े-बड़े होटलों के मालिक खरीद कर, पैसे के बल पर इसको पूरी तरह से खत्म कर देना चाहते है। दूसरी तरफ मैत्रेयी पुष्पा ने 'कही ईसुरी फाग' में 'ईसुरी' और 'रजऊ' के प्रेम सम्बन्धों को प्रगाढ़ता प्रदान की है। इस उपन्यास में लोक कवि ईसुरी की उन फागों को विशेष महत्त्व दिया गया है जो उसकी प्रेमिका रजऊ के लिए थी। ईसुरी, रजऊ से प्यार करता

है, जो पहले ही शादीशुदा थी। ईसुरी, रजऊ के नाम की फागें रचता और गाँव-गाँव गाता फिरता। इन फांगों में मांसलता ज्यादा होती। लोग सुनते और चटकारे लेते। जब रजऊ के पति प्रताप को पता चलता है, कि रजऊ भी ईसुरी को चाहने लगी है, तो वह उसे छोड़ कर चला जाता है। वह अंग्रेजों की पलटन में शामिल हो जाता है और वापस नहीं आता। रजऊ की सास उसे गालियां बकती, उसके आगे विनती करती, कि ईसुरी से मिलना बंद कर दे। परन्तु रजऊ भी उसके प्यार में तड़पने लगी। उसकी सास उसका बाहर जाना बंद कर देती है। रजऊ को सब बदचलन कहने लगे और उसके बारे में बताना वैश्या का पता देने के समान समझते। रजऊ, ईसुरी से प्रेम करती थी, परन्तु वह उसे पा न सकी। वह घर से भागकर 'गंगिया बेड़िनी' के साथ 'देशपत' नामक क्रान्तिकारी के दल में शामिल हो जाती है। वह दोनों 'देशपत' को अंग्रेजों के खुफिया अड्ड़ों का पता देती। रजऊ भी 'देशपत' के साथ मिलकर क्रान्तिकारी बन कर अंग्रेजों से लड़ते-लड़ते अपनी जान दे देती है। इस उपन्यास में भी मैत्रेयी पुष्पा ने नारी-शक्ति का ही आह्वान किया है। किस प्रकार से एक साधारण नारी क्रान्तिकारी बन जाती है। दूसरी तरफ स्त्री-पुरुष के प्रेम का चित्रण हुआ है, जो दुनिया भर के कलाओं का आधार है। मैत्रेयी पुष्पा ने लोक-साहित्य को भी महत्ता प्रदान की है। ईसुरी रचित फागों में मांसलता अधिक आ जाती है। इसमें थोड़ा जोखिम जरूर है, परन्तु यह हमारे समाज में लोकप्रिय रहा है।

'त्रिया-हठ' के बारे में मैत्रेयी पुष्पा लिखतीं हैं, "मैंने अपनी कलम फिर उठा ली है। बारह वर्ष बाद। मेरा अपना उपन्यास 'बेतवा बहती रही' ही कलम के दायरे में है। जिस समय मैंने यह रचना साहित्य-जगत् में सुधी पाठकों, समीक्षकों को सौंपी, उस वक्त उसके मुकम्मल होने के प्रति मैं आश्वस्त -सी थी या नहीं थी, निश्चित रूप से तय नहीं कर सकी, मगर मेरी प्रकृति पर तब शाँति और संतोष की छाया- सी जरूर थी।"[14] इस उपन्यास में देवेश अपनी माँ उर्वशी के बारे में उनकी अन्तरंग सखी मीरा से जानना चाहता है, कि उसकी माँ कैसी थी। देवेश को कई सवालों ने आ घेरा, जिसका जवाब वह मीरा से चाहता है। उसकी माँ की दूसरी शादी बरजोर सिंह (मीरा के पिता) से हुई थी। जहाँ उसे जहर देकर मारा गया था। वह इसी बारे में जानना चाहता है, कि क्या उसकी माँ इतनी बुरी थी। वह बार-बार मीरा का पीछा करता है, परन्तु मीरा उसे सच्चाई बताने से कतराती है। वह चाहती है, देवेश किसी और व्यक्ति से ही उर्वशी के बारे में जान ले। क्योंकि वह इस मुद्दे पर कोई बात नहीं करना चाहती। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में भी नारी- चेतना का परिचय दिया है। आज नारी हर क्षेत्र में आगे है। वह राजनीति में भी कूद पड़ी है। इस उपन्यास में मीरा की मामी जो प्रधान-पद के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़ी हुई है, मीरा से कहती हैं, "हम तुम्हें कब से टेर रहे बिन्नू, यहाँ क्यों बैठी कोठा में ? देवेस के संग बैइकर अपना टेम न खराब करो। इन दिनों उन्हें तो मतारी की झख चढ़ी है। गढ़े मुरदे उखाड़ रहे हैं। आग लगै! देखा कि ये पढ़े-लिखें हैं, निराट सिर्री है। हमारे केहर को और बिलमाए फिर रहे हैं। वे भी कहीं इनकी तरह मुँह उठाए न फिरें। हमने तो कह दी है बेटा, चुनाव में ठाड़े तो हम रहेगें, जीत गए तो काम तुमको भी उठाना पड़ेगा। हम अगूँठाछाप क्या कर पाएँगे? गोपालपुरा की बसोरिन प्रधान थी, ऐसी सताई कि नासिया ऐलकारों ने झूठे कागदों पर अगूँठा निसानी ले ली। डाँड़धर दिया। बिचारी रामलली को भैंसिया बेचके रकम भरनी पड़ी। लो, चाहे कोई कुछ कहे, हम तो केहर से ही कराएँगें राजकाज।"[15] इस प्रकार से आज एक अगूँठा छाप औरत भी अपने अधिकारों के प्रति सजग है। इस उपन्यास के बारे में मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं- "बेतवा बहती रही' पुस्तक को पाठकों ने बहुत सराहा। उसके प्रत्याशित अंत पर बहुत-सी स्त्रियाँ मुग्ध हुई और रो पड़ी। फोन आए, पत्र आए। हम आपस में संगति बिठाते हुए एक नजर आए। आप माने या न माने मगर यही कहानी प्रभावहीन हो गई। विलगन और आँसुओं में वह ताकत कहाँ, जो कथा को सफल ही नहीं, सार्थक भी बना दे। इसी आधार पर 'बेतवा बहती रही' पढ़िए और तब तक कोई राय न बनाइए, जब कि पुस्तक में आए पात्रों से जुड़ी यह दूसरी कहानी न पढ़ लें। यह मैं इसलिए कह रही हूँ कि मेरी करूणाजनित कथा-क्रंदन भरी पुस्तक के बारे में आप सुन चुके हैं या पढ़ चुके हैं, जिसने अपनी विस्तारवादी प्रकृति से वास्तविकता और गल्प के अन्तर को मिटा डाला। लेकिन गल्प ही तो ऐसा सशक्त साधन है, जो वास्तविकता का सच्चा भरोसा देता चलता है।"[16] यह उपन्यास 'बेतवा बहती रही' का दूसरा भाग है। मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि मेरा अपना उपन्यास 'बेतवा बहती रही' ही कलम के दायरे में है। मैंने एक अजीब-सा झटका खाया। और अब! दूसरी कहानी देवेश और स्मिता की खोज है। उन्हीं के अनुसार लिखी गई इस कथा में मेरी कलम-भर शामिल है।

सन्दर्थ ग्रंथ-सूची

1 हंस, कस्तूरी कुंडल बसै, मार्च -2001 पृ. -210
2 मैत्रेयी पुष्पा से सुदर्शन नारंग की दो टुक बात, हंस, अक्तूबर -2004
3 मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, 4 मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, 5 मैत्रेयी पुष्पा, चाक, 6 सत्यकाम, नारी अस्मिता की तलाश, समीक्षा, अप्रैल-जून -2002, 7 मैत्रेयी पुष्पा, झूला-नट, 8 मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा -कबूतरी, 9 मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, 10 मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, 11 गोपालराय हरदयाल, समीक्षा, संवेदना प्रत्यय और व्यक्तित्व से साक्षात्कार जुलाई-सितम्बर, 2002
12 मैत्रेयी पुष्पा, त्रिया-हठ, पुस्तक कवर से
13 मैत्रेयी पुष्पा, त्रिया-हठ

गाँव व डाकघर महादेव, तहसील सुन्दरनगर जिला मण्डी
हिमाचल प्रदेश-175018,
मो. 98171 63092

साहित्यिक लेख

हिमाचल में कहानी की धारा सदी का पहला दशक

● हंसराज भारती

इस सदी यानी इक्कीसवीं सदी का पहला दशक इतिहास की स्मृति बन चुका है। पिछली सदी के अंतिम चरण में यानी सन् 1998 में हिमाचल ने अपनी स्थापना के पचास वर्ष पूरे कर लिए थे और इस सदी के दशक के अंत तक षष्टपूर्ति भी हो गई। इन वर्षों में हिमाचल प्रदेश ने अपनी 'पहाड़ी छवि' अर्थात् गरीबी, पिछड़ापन और अशिक्षा को पछाड़ते हुए समृद्धि और विकास के नए अध्याय लिखे हैं। यद्यपि भौगोलिक, प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इकाई के रूप में प्रदेश का पृथक स्वतंत्र अस्तित्व एवं पहचान है। परंतु भाषा और साहित्य के क्षेत्र में ऐसी स्थिति नहीं है। साहित्यिक पहचान के लिए हम दिल्ली के मोहताज हैं। विगत सदी के आठवें दशक में हिमाचल की ओर से हिंदी कहानी विधा में एक सशक्त शुरुआत हुई थी दिल्ली दखल की। इससे पहले भी छिटपुट प्रयास हुए थे। नवें और दसवें दशक में हिमाचल के कई लेखकों ने राष्ट्रीय क्षितिज पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। यह सिलसिला इस सदी के प्रारम्भ में साथ और अधिक तीव्र और प्रखर हुआ।

वर्ष 2000 में प्रदेश से प्रकाशित 'हिमप्रस्थ' पत्रिका (जो वर्ष 1955 से निरंतर प्रकाशित हो रही है) ने दो अंकों में प्रकाश्य कहानी विशेषांक निकाला था। इसमें प्रदेश के स्थापित कहानीकारों की कहानिहयां प्रकाशित हुई थीं। हिमाचल के साहित्यिक क्षेत्र में एक विशिष्ट योगदान के लिए 'हिमप्रस्थ' की भूमिका ऐतिहासिक और निर्विवाद है। प्रदेश का हर नामवर कहानीकार हिमप्रस्थ में प्रकाशित हुआ है। 'हिमप्रस्थ' ने नवोदित और स्थापित दोनों को स्थान दिया है। इसके पश्चात वर्ष 2002-03 में जब कथाकार केशव हिमप्रस्थ के कर्ता-धर्ता थे, तो एक कहानी विशेषांक वृहद आकार में निकाला गया था। इस विशेषांक में बाहरी प्रदेशों के कहानीकार भी शामिल थे। इस विशेषांक में गम्भीर समीक्षात्मक लेखों, टिप्पणियों का अभाव था जो प्रदेश की पूरी कहानी रचनाशीलता का निष्पक्ष लेखा-जोखा प्रस्तुत करते। तीन वर्ष की अवधि में वास्तव में ये 'अपने-अपने' विशेषांक थे। विडम्बना यह रही कि विशेषांक के बाद कहानियों पर आलोचना, समीक्षा, टिप्पणी या लेख हिमप्रस्थ में नहीं छपे।

यूं इस सदी के दशक के प्रारम्भ से पहले भी प्रदेश के कई लेखकों ने राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में अपनी स्तरीय कहानियां प्रकाशित करवाने में सफलता और नाम दोनों प्राप्त किए थे। इनमें सुशील कुमार फुल्ल, बद्री सिंह भाटिया, एस.आर. हरनोट, नरेश पंडित, केशव, राजकुमार राकेश, सुदर्शन वशिष्ठ, रेखा आदि के नाम प्रमुख रहे हैं। बहुत पहले सुंदर लोहिया, योगेश्वर शर्मा।

वर्ष 2003 में भाषा विभाग ने एक कहानी प्रतियोगिता का आयोजन करवाया जिसमें प्रदेश के 84 कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रतियोगिता के प्रति रुचि दिखाई थी। इसमें हंसराज भारती (मंडी) की कहानी 'लखबीर कौर की चिट्ठी' को प्रथम, सोलन के शंकर लाल शर्मा की 'बोलोगी नहीं राधा' को द्वितीय और सोलन के ही डॉ. अशोक गौतम की 'ठीक ही तो है' को तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसी वर्ष (2003) में प्रदेश के चर्चित और स्थापित कथाकार एस.आर. हरनोट को अंतरराष्ट्रीय इंदु शर्मा कहानी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार प्रतिवर्ष लंदन में आयोजित समारोह में प्रदान किया जाता है। यह पुरस्कार अब तक आधा दर्ज से अधिक हिंदी के प्रतिष्ठित कहानी लेखकों को प्राप्त हो चुका है। फरवरी 2003 में ही अकादमी पुरस्कारों की घोषणा व वितरण हुआ था। इसमें राजकुमार राकेश की कहानी विधा में पुरस्कार प्राप्त हुआ। राजकुमार राकेश की कहानियां 'इंडिया टुडे' (साहित्यिक वार्षिकी 2000), जनसत्ता (दीपावली विशेषांक 2000) आदि में राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित और चर्चित रहीं। राकेश अपनी तरह के विरले कथाकार हैं।

हिमाचल में कहानी विधा के ऊपर डॉ. सुशील कुमार फुल्ल ने सर्वाधिक कार्य किया है। प्रदेश में कहानी लेखन के पूरे इतिहास को इन्होंने अपने अनेक तथ्यपरक लेखों के द्वारा और फिर इस दशक में 'हिंदी कहानी के सौ वर्ष' नामक ग्रंथ के माध्यम से

लिपिबद्ध किया है। इस ग्रंथ में प्रदेश के 56 कहानीकारों (नए व पुराने) की श्रेष्ठ माने जाने वाली कहानियां सम्पादकीय टिप्पणी सहित संकलित हैं। हिमाचल में कहानी विकास की पूरी परम्परा को समझने के लिए यह पुस्तक एक प्रमाणिक दस्तावेज की हैसियत रखती है।

मुरारी शर्मा आठवें दशक से हिंदी कहानी के दरवाजे पर दस्तक देने लग गए हैं। इनकी कुछ कहानियां पहले पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं बिना किसी विशेष नोटिस के। परंतु इस दशक के दौरान इनकी रचनाशीलता अपने पूरे निखार पर रही। राष्ट्रीय व प्रादेशिक पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियां छपती रहीं व चर्चा में भी रहीं।

हिंदी की प्रतिष्ठित और चर्चित पत्रिका 'हंस' में प्रकाशित इनकी कहानी 'बाणमूठ' को रमाकांत स्मृति पुरस्कार प्रदान किया गया। यह प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त करने वाले वे प्रदेश के पहले कथाकार हैं। 'बाणमूठ' का सफल नाटय मंचन कई बड़े नगरों और महानगरों में सम्पन्न हुआ है।

इसी दशक के सातवें-आठवें वर्ष में एक ऐसा विस्फोट हुआ जिसने हिमाचल सहित पूरे हिंदी क्षेत्र के साहित्यिक सिंहासनों को हिलाकर रख दिया। इस धमाके का जिक्र किए बिना इस दशक की कहानी यात्रा का सफर अधूरा ही माना जाएगा। ये विस्फोट था स्नोवा बार्नो। स्नोवा बार्नो कांड ने एक साथ कई प्रश्नों का जन्म दिया। एक नहीं अनेक महारथी स्नोवा के पीछे हाथ धोकर पड़ गए। परंतु इस माध्यम से स्नोवा ने हिंदी के 'महान संपादकों' और लेखकों, समीक्षकों की जिस प्रकार से कलई खोली, इनके चेहरों से नकाए हटाए, इसकी दाद तो देनी ही चाहिए। कहानी या कहानी का लेखक? इस प्रश्न और कुछ अन्य सटीक प्रश्नों के उत्तर दिए या जाने बिना इस कांड का पटाक्षेप हो गया। सभी 'महान' अपने-अपने दड़बों में वापस आ गए। स्नोवा के असली रूप को जानकर गालियां, तोहमतें, मलालतें, नसीहतें देते हुए। यह सब कहानी को लेकर ही हुआ।

इसके पश्चात 2008 में 'विपाशा' द्वारा अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। देशभर के 221 कहानीकारों ने इसमें भाग लिया। प्रदेश से भी बड़ी संख्या में प्रतिभागी कहानीकार थे। इस प्रतियोगिता में कुल सात (चार सांत्वना पुरस्कार) में से तीन पुरस्कार हिमाचली लेखकों ने प्राप्त किए। पदम गुप्त अमिताभ की 'हिल स्टेशन की एक शाम', त्रिलोक मेहरा की 'भ्यागड़ा' और योगेश्वर शर्मा की 'पानी पी लो भैया'। ये पुरस्कार स्वयं इन लेखकों और प्रदेश की रचनाशीलता के लिए बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी। इन पुरस्कारों ने यह भी सिद्ध किया कि हिमाचली कहानीकार राष्ट्रीय मुख्यधारा से उन्नीस नहीं हैं। इस वर्ष दो-तीन गोष्ठियों और कुछ आलेखों को पढ़ने-सुनने का अवसर मिला जिसमें हिमाचल के कहानीकारों पर चर्चा अपेक्षित थी। 'पानी पी लो भैया' पर तो खूब चर्चा हुई और लिखा भी गया। परंतु इन दो कहानिहयों जो निस्संदेह उच्चकोटि की कहानियां हैं, पर 'विद्वानों' ने एक शब्द तक न कहा, न लिखा। ये कैसी विडम्बना है और हमारी समीक्षा कैसे मेहरबाहनों की मेहरबानियों पर है?) इस विशेषांक में आलोचकों, निर्णायकों के समीक्षात्मक लेख भी शामिल थे। इस प्रतियोगिता की पुरस्कृत ही नहीं अपितु चयनित बीस-इक्कीस कहानियां भी प्रकाशित हुईं जो अच्छा सराहनीय प्रयास था।

वर्ष 2010 में प्रदेश की एक बहुचर्चित साहित्यिक पत्रिका 'सेतु' का कहानी विशेषांक डॉ. देवेंद्र गुप्ता के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रदेश के चौबीस पुराने व नए कहानीकारों की कहानियां, उनके वक्तव्य सहित प्रकाशित हुई। इसमें समयावधि में प्रकाशित रचनाओं को लिया गया था। इस विशेषांक में कहानी के संदर्भ में समीक्षात्मक लेख भी थे। इसमें हिमाचल में कहानी लेखन में कुछ अनचीन्हे प्रतिभाशाली लेखकों भी स्थान मिला और नितांत नवोदितों को भी। यह प्रयास प्रशंसनीय रहा कई संदर्भों में।

इसी दशक के अंत में 'कथा में पहाड़' नामक संकलित संग्रह भी प्रकाश में और इस पर साहित्यिक क्षेत्रों में चर्चा भी हुई। इसके सम्पादक श्रीनिवास श्रीकांत प्रदेश के जाने-माने साहित्यकर्मी हैं। इस पुस्तक में प्रदेश के अतिरिक्त दूसरे प्रदेशों के कहानीकार भी संकलित थे विशेषतया उत्तराखंड के जिन्होंने 'पहाड़' के बारे में कहानियां लिखीं। हिमाचल से इस संग्रह में एस.आर. हरनोट, केशव, सुंदर लोहिया, सुशील कुमार फुल्ल, बद्री सिंह भाटिया, मुरारी शर्मा, रेखा, राजेंद्र राजन आदि की कहानियां हैं।

चंद्ररेखा डढवाल अब तक कविता लेखन में अधिक सक्रिय थीं। परंतु इस दशक में वे एक समर्थ कहानी लेखिका के रूप में भी उभर कर सामने आईं। इनकी कहानी को 'कमलेश्वर स्मृति' पुरस्कार प्राप्त हुआ और 'वागर्थ' में छपी इनकी कहानी काफी चर्चित रही। इस दौर में अन्य कवियों ने भी कहानी लेखन की ओर अपना रुझान प्रदर्शित किया है।

इस सदी के प्रथम दशक के दौरान ही प्रदेश से स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं के रूप में 'इरावती' और 'पर्वत राग' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। जो साहित्यिक पत्रिकाओं के अकाल से जूझते इस पहाड़ी प्रदेश के लिए एक सुखद झोंके की तरह है। दोनों पत्रिकाओं ने कहानी को केंद्रित करके अच्छे अंक निकाले।

इसी दशक के दौरान प्रदेश के कई परिचित, स्थापित कथाकारों के नए कहानी संग्रह प्रकाशित हुए और इन पर चर्चा भी हुई। परंतु यह सब निरपेक्ष भाव से नहीं, अपने-अपने खेमों के भाग-गुणा के हिसाब से। इसलिए कई अच्छे संग्रह और लेखक वांछित चर्चा और नोटिस के बगैर रह गए। ऐसा वर्षों से होता आ रहा है। यह उपेक्षा, स्वयंभू प्रवृत्ति कई नवोदितों को विमुख करती

राधेश्याम भारतीय की लघु कथाएं

आजादी

कामिनी की शादी अभी दो महीने पहले ही हुई थी। एक दिन अपनी सास से कहने लगी, "मां जी, मुझे यह घूंघट निकालना अच्छा नहीं लगता।"

"क्या! क्या कहा? बहू अब तो बोल दिया। दोबारा ऐसी बात जुबान से न निकालयो। तीस साल हो गए हमें आज तक घूंघट न उठा। जुबां भले ही खुल गई हो बड़ों के सामने पर घूंघट तो कभी नहीं।"

"मां जी... मैं पढ़ी-लिखी हूं। ससुर जी मेरे पिता समान हैं और जेठ जी मेरे बड़े भाई जैसे तो क्या मैं उनकी बेटी जैसी नहीं।"

"वे सब तो ठीक है... पर जमाना क्या कहेगा?"

"मां जी जमाना बहुत आगे निकल चुका है।"

"बहू, मुझे डर लगता है। कहीं बड़ों ने... बाकी मैं तुझे कुछ नहीं कहूंगी।"

कामिनी ने अगले दिन से घूंघट निकालना बंद कर दिया। चार दिन बड़ों ने अपनी-अपनी पत्नियों से कहा। पर, जेठानियों ने कामिनी का पक्ष लिया। और तो और फिर उन्होंने तो घूंघट निकालना बंद कर दिया।

आज कामिनी उस समय हतप्रभ रह गई, जब सास बैठक के सामने से दो चक्कर लगा गई जबकि ससुर के पास उससे अधिक उम्र के व्यक्ति बैठे थे।

आज कामिनी उस समय हतप्रभ रह गई, जब सास बैठक के सामने से दो चक्कर लगा गई जबकि ससुर के पास उससे अधिक उम्र के व्यक्ति बैठे थे।

भटकती आत्मा

अभी दो दिन पहले ही सड़क पर तारकोल बिछाया गया था।

आज शाम जब एक साइकिल सवार वहां से अपने गांव जा रहा था, तो उसे किसी के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी।

पहले तो वह चलता रहा। लेकिन कहीं कराहट फिर से सुनाई पड़ी तो वह रुक गया और इधर-उधर देखने लगा। एकदम उसकी समझ में कुछ नहीं आया। वह वहीं खड़ा होकर देखने लगा।

यहां तो दूर-दूर तक न तो कोई पेड़ ही दिखाई देता और न ही कोई राह चलता आदमी। फिर आवाज किसकी है?" उसने स्वयं ही प्रश्न किया और फिर हिम्मत कर आवाज लगाई, "अरे कौन है... सामने आओ।"

"कोई होता तो सामने आता। मैं... मैं... तो बेमौत सुलाया गया पेड़ हूं। यह सड़क लील गई मुझे। अरे मुझे मारना ही था तो मुझे जड़ समेत मारते। मैं कम-से-कम यूं न भटकता। अरे जालिमों ने जल्दी-जल्दी में मेरा ऊपरी हिस्सा तो काट लिया पर जड़ें इसी सड़क के नीचे दबी हैं जब भी यह रोलर मेरे ऊपर को गुजरता है तो मैं न चाहते हुए भी कराह उठता हूं। आप मेरी जड़ों को निकालकर मुझे मुक्ति दिला दो।"

"अरे आवाज तो आ रही है...पर... कोई दिखता नहीं। लगता है यह मेरा वहम हो।" और वह फिर से साइकिल पर सवार हो गया।

आप भी जा रहे हो। कोई नहीं है मेरी सुनने वाला। किसी को मेरे दुःख-दर्द से कोई लेना-देना नहीं।

मेरी अन्तर्तात्मा में उसके कराहने की आवाज यूं ही गूंजती रही।

नसीब विहार कालोनी, घरौंडा, करनाल, हरियाणा-132 114, मो. 0 93153 82236

है तो कई निरंतर साधना के बावजूद अचिह्नित रह जाते हैं।

इस दशक के शुरुआती दौर से एक-दो वर्ष पहले प्रदेश में कई प्रमुख समाचार-पत्रों ने अपने संस्करण प्रारम्भ किए। परंतु दशक के अंत तक कमोबेश ये पन्ने बंद हो गए।

इस लेख के माध्यम से एक दशक की कथा-यात्रा के पड़ावों का उल्लेख किया गया है। वह भी स्मृति आधार पर। यह तथ्य निर्विवाद रूप से सामने आया है कि प्रदेश में इस दशक की सक्रियता, पिछली सदी के अंतिम दो-तीन दशकों के मुकाबले अधिक कारगर रही है। इस दशक में अधिक लेखकों ने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पैठ बनाई है। और अधिक अच्छी समय सापेक्ष, समकालीन मुहावरे को इंगित करने वाली कहानियां रची गई हैं या रची जा रही हैं। अब हिमाचली लेखकों को महज 'पहाड़ की तरफ' का कहकर आंख ओझल नहीं किया जा सकता है।

इस विवरण में कोई क्रम-घटना या नाम विशेष छूट गया हो तो इसे मात्र चूक समझा जाए न कि किसी की उपेक्षा। सभी स्तरीय सृजनशीलता को हमारा नमन है। हिंदी कहानी के फलक पर इस दशक के मध्य प्रदेश में कई सम्भावनाशील नए कथाकार सामने आए हैं जो भविष्य के प्रति उम्मीदें जगाते प्रतीत हो रहे हैं। इन सबको शुभकामनाएं।

बीपीओ बसंतपुर, सरकाघाट, मंडी, हिमाचल प्रदेश-175 042, मो. 98163 17554

साहित्यिक आलेख

प्रेमचंद की कहानियों में गीतों का महत्त्व

● कृष्णवीर सिंह सिकरवार



प्रेमचंद साहित्य क्या है? इस विषय में थोडा कह लूं। मुख्तलिफ लोगों की मुख्तलिफ राय है। कोई विशेषज्ञ कहते है कि साहित्य जीवन की आलोचना है, साहित्य बड़े मस्तिष्क की उपज है, साहित्य हृदय की उमंगों और भावों का दिग्दर्शन है लेकिन मेरी राय में- "जो दिल से निकले और दिलों पर असर करे, वास्तव में वही 'साहित्य' है।'' यह विचार हिन्दी साहित्य के महान कथाकार मुंशी प्रेमचंद के है, जो 'हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी' नामक दिये भाषण के अंश से उद्धृत है। यह भाषण 7 अप्रैल 1935 को पं. माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता में 'तुलसी उत्सव कमेटी' तथा 'ललित साहित्य मण्डल' खण्डवा द्वारा आयोजित अभिनंदन समारोह में दिया गया था।[1]

प्रेमचंद ने कितने ही सरल व सहज भाव से साहित्य की परिभाषा दी है, यह हम उनके द्वारा रचित साहित्य को पढ़कर सहज ही अंदाजा लगा सकते है क्योंकि उन्होंने जो भी साहित्य लिखा वह दिल से ही लिखा और दिल में ही उतरा, यह हम भारतवासियों से ज्यादा कौन जान सकता है, इतने वर्ष गुजर जाने के पश्चात् भी प्रेमचंद के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने पहले थे। उनके विचार आज भी पाठकों का मार्गदर्शन करते हैं। इस कारण ही उन्हें उपन्यास सम्राट व कहानी सम्राट कहा जाता है।

प्रेमचंद ने लगभग साहित्य की सभी विधाओं में लिखा व ख्याति प्राप्त की। उनके द्वारा लिखी गई कहानियां आज भी पाठकों का भरपूर मनोरंजन करने के साथ-साथ एक सीख भी देती हैं। प्रेमचंद ने अपने लेखन में जहां-तहां अपने भावों को व्यक्त करने के लिये गीत, दोहे, भजन, शेर-ओ-शायरी, रामायण की चौपाई व कविताओं का भरपूर मात्रा में प्रयोग किया है। इनके द्वारा प्रेमचंद पात्रों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते थे । कभी-कभी हास्यबोध दर्शाने के लिये, कभी प्रेम व प्यार की बातों के लिये, कभी पात्रों के दर्द को व्यक्त करने के लिये, कभी गहराई की बातों को व्यक्त करने के लिये इन गीतों का प्रयोग वे लेखन में करते रहते थे। इन गीतों, दोहों व कविताओं की वजह से कहानियों में निरन्तरता बन जाती थी व इसका असर एक अलग ही तरीके से पाठक के दिल में होता था। पाठक भी ऐसी प्रस्तुति को पसंद करते थे यही कारण है कि प्रेमचंद द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयोग किये गये ऐसे गीतों, दोहों व कविताओं की भरमार है व उनका प्रयोग काफी मात्रा में किया है। प्रस्तुत आलेख में प्रेमचंद द्वारा रचित केवल कहानियों में फैले हुये इन गीतों, भजनों, दोहों व कविताओं की व्याख्या कहानी के प्रथम प्रकाशन वर्ष अथवा उनके कालक्रमानुसार की गई है। इस आलेख का मकसद केवल इतना ही है कि पाठक प्रेमचंद की इस साहित्यिक यात्रा में उनके द्वारा प्रयोग किये गये गीतों, भजनों, कविताओं, चौपाइयों, शेर-ओ-शायरी का रसास्वादन लें व देखें कि इनके प्रयोग के बाद कहानी एक अलग ही भाव पैदा करती है।

सर्वप्रथम उनके द्वारा प्रयोग किये गये गीत का प्रयोग वर्ष जून 1908 में प्रकाशित प्रेमचंद के पहले उर्दू कहानी संग्रह 'सोजेवतन' में प्रकाशित कहानी 'यही मेरा वतन है' में देखने को मिलता है। प्रस्तुत कहानी में लेखक अनुसार गांव की वृद्ध स्त्रियां सफेद धोती पहने, हाथों में लोटा लिये, स्नान के लिये जा रही है और रास्ते में गीत गाती जाती है, गीत इस प्रकार है-

"हमारे प्रभु अवगुन चित न धरौ।''[2]

उपरोक्त संकलन में ही प्रकाशित एक अन्य कहानी 'शोक

का पुरस्कार' में भी एक गीत मिलता है-

"पिया मिलन है कठिन बावरी।''[3]

वर्ष अगस्त-सितम्बर 1910 में 'जमाना', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'रानी सारंधा' में लेखक ने कहानी की नायिका के द्वारा एक मधुर गीत को गवाया है जो इस प्रकार है-

"बिन रघुवीर कटत नहिं रैन ।''[4]

वर्ष जनवरी 1911 में 'जमाना', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'विक्रमादित्य का तेंगा' में लेखक ने कहानी की विधवा पात्र वृंदा के द्वारा एक गीत की रचना की है वह इस प्रकार है-

"बता दे कोई प्रेमनगर की डगर
मै बौंरी पग-पग पर भटकूं, काहू की कुछ नाही खबर
बता दे कोई प्रेमनगर की डगर ।''[5])

इसी कहानी में वृंदा के द्वारा गाये दो गीत अलग-अलग देखने को मिलते हैं जिनमें एक मीरा का भजन है-

"सिया रघुवीर भरोसो-ऐसो।''[6]

दूसरा गीत इस प्रकार है-

"सब दिन नहीं बराबर जात।''[7]

मार्च 1911 में 'जमाना', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'दोनों तरफ से' में भी एक गीत की रचना लेखक ने की है। इस गीत का प्रयोग प्रेमचंद ने इसके पूर्व 'सोजेवतन' प्रथम उर्दू कहानी संग्रह की कहानी 'शोक का पुरस्कार' में भी किया था। यहां पर कहानी की पात्रा कोलेसरी यह गीत गाती है-

"पिया मिलन है कठिन वावरी।''[8]

अगस्त-सितम्बर 1911 में 'जमाना', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'आखिरी मंजिल' में लेखक ने एक तड़पा देने वाला दर्दभरा गीत प्रस्तुत किया है, एवं इस गीत का प्रयोग लेखक ने कहानी में कई जगह किया है।

"मैं साजन से मिलन चली,
सजन बसत कौन सी नगरी, मैं बौरी ना जानूं ।
न मोहे आस मिलन की उससे ऐसी प्रीत भली,
मैं साजन से मिलन चली ।''[9]

जनवरी 1912 में 'जमाना', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'आल्हा' में लेखक ने कहानी के अनुसार महोबा राज्य के राजा परमालदेव के दरबार के सम्मानित सदस्य आल्हा और ऊदल भाइयों ने महोबा का नाम रोशन कर दिया था । दोनो भाई कहानी में यह गीत गाते है-

"बडे लडइया महोवे वाले,
जिनके बल को बार न पार ।''[10]

जनवरी 1913 में 'जमाना', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'त्रिया-चरित्र' में मगनदास के द्वारा एक सुन्दर गीत का वर्णन किया गया है, यहां पर सुबह के वक्त कहानी पात्रा रंभा आटा पीस रही थी उस शांतिपूर्ण सन्नाटे में चक्की की आवाज बहुत सुहानी मालूम होती थी और उससे सुर मिलाकर अपने प्यारे ढंग से यह गीत गाती थी-

"झुलनियां मोरी पानी में गिरी,
मैं जानूं पिया मोको मनै हैं ।
उलटी मनावन मोको पड़ी,
झुलनियां मोरी पानी में गिरी.... ।''[11]

जून 1913 में 'हमदर्द', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'शंखनाद' में भी एक गीत का वर्णन लेखक के द्वारा मिलता है। इस कहानी में बूढ़ा चौधरी अपने आवारा पुत्र बांका गुमान जो कि कोई कार्य नहीं करता है, दिन भर आवारागर्दी करता रहता है। उसे एक कपड़े की दुकान खोलकर देता है। इस दुकान में गुमान के दस-पांच गाढ़े मित्र जमा है। चरस का दम लग रहा है व खयाल की ताने उड़ रही है। गीत इस प्रकार है-

"चल झटपट री, जमुना तट री, खडी नटखट री ।''[12]

वर्ष जुलाई 1913 में 'जमाना', उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'अंधेर' में लेखक ने बड़े ही रोचक अंदाज में गीत की पृष्ठभूमि का वर्णन किया है । प्रेमचंद कहते है कि- "साठे व पाठे दो लगे हुये मौजे थे। दोनों गंगा के किनारे। खेती में ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी इसलिये आपस में फौजदारियां खूब होती थी। आदिकाल से उनके बीच होड़ चली आती थी। साठे वालों को यह घमंड था कि उन्होंने पाठे वालों को कभी सिर न उठाने दिया। उसी तरह पाठे वाले अपने प्रतिद्वंद्वियों को नीचा दिखलाना ही जिंदगी का सबसे बडा काम समझते थे । उनका इतिहास विजयों की कहानियों से भरा हुआ था। पाठे के चरवाहे यह गीत गाते हुये चलते थे''-

"साठे वाले कायर सगरे पाठे वाले है सरदार ।''

और साठे के धोबी गाते-

"साठे वाले साठ हाथ के जिनके हाथ सदा तरवार,
उन लोगन के जनम नसाये जिन पाठे मान लीन अवतार ।''[13]

इसी कहानी में एक और गीत देखने को मिलता है जो खेत की रखवाली कर रहे साठे का गौरव गोपाल द्वारा अपनी मडैया में बैठकर नींद को भगाने के लिये धीमे स्वर मे यह गीत गा रहा है-

"मैं तो तोसे-नैना लगाय पछतायी रे ।''[14]

अगस्त-सितम्बर 1913 में 'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'सिर्फ एक आवाज' में कहानी अनुसार एक धार्मिक कार्यक्रम में भाग लेने के लिये गांव के सैकड़ों आदमी जा रहे है उनका रोचक वर्णन खुद प्रेमचंद के ही शब्दो में- "ऐसे-ऐसे बूढ़े लाठियां टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे, जिन्हें तकलीफ देने की यमराज ने भी कोई जरूरत न समझी थी। अंधे दूसरो की लकड़ी के सहारे कदम बढ़ाए जाते थे। कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था। किसी के सर

पर कपड़ों की पोटली, किसी के कंधे पर लोटा डोर, किसी के कंधे पर कांवर। कितने ही आदमियों ने पैरों पर चीथड़े लपेट लिये थे, जूते कहां से लाएं। मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान था कि मन किसी का मैला न था। सबके चेहरे खिले हुये, हंसते-हंसते बातें करते चले जा रहे थे। कुछ औरते गा रही थीं।''-

''चांद सुरज दूनो लोक के मालिक ।
एक दिना उन्हूं पर बनती,
हम जानी हमहीं पर बनती ।''[15]

अगस्त 1914 में 'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'शिकारी राजकुमार' में लेखक ने क्या मनोहारी दृश्य की कल्पना की है । लेखक कहता है कि- "शीतल, मंद, सुगंध चल रही थी । सूर्य भगवान अस्ताचल को पयान करते हुये इस लोक को तृषित नेत्रों से देखते जाते थे और संन्यासी एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ गा रहा था।''-

"ऊधो ! कर्मन की गति न्यारी ।''[16]

जनवरी 1916 में 'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'दो भाई' में लेखक ने मां का बेटों के प्रति प्यार व अनुराग का बड़ा ही मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया है। लेखक के अनुसार- "प्रातःकाल सूर्य की सुहावनी धूप में कलावती दोनो बेटों को जांघों पर बैठा दूध और रोटी खिलाती थी... दोनों मुंह में कौर लिये, कई पग उछल-कूदकर फिर जांघो पर आ बैठते और अपनी तोतली बोली में इस प्रार्थना की रट लगाते थे, जिसमें एक पुराने सहृदय कवि ने किसी जाड़े के सताए हुये बालक के हृदयोद्‌गार को प्रकट किया है''-

"दैव-दैव घाम करो तुम्हारे बालक को लगता जाड़ा ।''[17]

अक्टूबर 1916 में 'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'जुगनू की चमक' में लेखक ने एक जगह तुलसीदास की चौपाई का प्रयोग किया है, चौपाई है-

"आपतकाल परखिए चारी,
धीरज धर्म मित्र अरू नारी ।'' [18]

वर्ष नबंवर 1916 में 'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'धोखा' में इस गीत का वर्णन कई जगह किया गया है गीत इस प्रकार है-

"कर गए थोड़े दिन की प्रीति।
कहां वह प्रीत, कहां यह बिछुरन, कहां मधुवन की रीति।
कर गए थोड़े दिन की प्रीति।'' [19]

जुलाई 1917 में 'सरस्वती' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'ईश्वरीय न्याय' में एक जगह कहानी अनुसार चमार और चमारिनों के नाच का वर्णन है, लेखक कहता है कि- "अस्तबल में चमारों के यहां नाच हो रहा था। कई चमारिनें बनाव-सिंगार करके नाच रही थीं। चमार मृदंग बजा-बजाकर गाते थे।''-

"नाहीं धरे श्याम, घेरि आए बदरा,
सोवत रहे हुं सपन एक देखेउं रामा।
खुलि गई नींद ढरक गए कजरा,
नाहीं घरे श्याम, घेरि आए बदरा। [20]

जनवरी 1920 में 'जमाना' उर्दू मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'आत्माराम' में कहानी का नायक महादेव नाम का एक सुविख्यात सुनार भोर होने से पहले एक मधुर गीत गाता था जिससे लोग समझ जाते थे कि भोर हो गयी है। उसके पास एक तोता भी था उसे भी वह यह गीत सुनाता था। प्रस्तुत कहानी में इस गीत का प्रयोग कई बार जगह-जगह परिस्थितियों के अनुसार किया गया है, गीत है-

"सत्त गुरूदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरन में चित्त लागा।'' [21]

फरवरी 1924 में 'माधुरी' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'सैलानी बंदर' में कहानी का नायक जीवनदास नाम का एक गरीब मदारी अपने बंदर मन्नू को नचाकर अपनी जीविका चलाया करता था। बंदर के नाचने पर मोहल्ले के बालक इकट्ठे हो जाते और शोर मचाकर कहते थे कि-

"ओ बंदरवा, लोयलाय
बल उखाड़ूं टोयटाय ।
ओ बंदर, तेरा मुंह है लाल
पिचके-पिचके तेरे गाल ।
मर गई नानी बंदर कीय
टूटी-टांग मुछदंर की ।'' [22]

मन्नू बंदर को इस शोरगुल में बड़ा मजा आता था इस पर लडके फिर कहते-

"बंदर मामू औरय
कहां तुम्हारा ठौर।'' [23]

मार्च 1924 में 'माधुरी' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'वज्रपात' में कहानी अनुसार नादिरशाह व उसकी सेना द्वारा दिल्ली में कत्लेआम मचा रखा था उसका सामना करने की हिम्मत किसी की भी नहीं होती थी। अंत में जब सेना की पैशाचिक क्रूरता पराकाष्ठा को पहुंच गई, तो मुहम्मदशाह के वजीर से न रहा गया। वह कविता का मर्मज्ञ था, खुद भी कवि था । जान पर खेलकर नादिरशाह के सामने पहुंचा, और यह शे'र पढ़ा-

"कसे न मांद कि दीगर ब तेगे नाज-कुशीय
मगर कि जिंदा कुनी खल्क रा व बाज कुशी।'' [24]

इस शे'र का प्रयोग लेखक ने कहानी में कई जगह बार-बार किया है।

जनवरी 1926 में 'सरस्वती' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'लैला' की शुरुआत इस प्रकार होती है कि- "यह कोई न जानता था कि लैला कौन है, कहां से आई है, और क्या

करती है। एक दिन लोगों ने एक अनुपम सुंदरी को तेहरान के चौक में अपने डफ पर हाफिज की यह गजल झूम-झूमकर गाते सुना''-

"रसीद मुजरा कि ऐयामे-गम न ख्वाहद मांद,
चुनां न मांद, चुनी नीज हम न ख्वाहद मांद।'' (25)

और सारा तेहरान उस पर फिदा हो गया। यही लैला थी । इसी कहानी में एक जगह शेर कहा गया है। लेखक के अनुसार- "एक दिन संध्या समय तेहरान का शाहजादा नादिर घोड़े पर सवार उधर से निकला। लैला गा रही है। नादिर ने घोड़े की बाग रोक ली और देर तक आत्म विस्मृति की दशा में खड़ा सुनता रहा। गजल का पहला शेर यह था''-

"मरा दर्देस्त अंदर दिल, अगर गोयम जवां सोजद।
वगैर दम दरकशम, तरसन कि मगजो उस्तखां सोजद ।'' (26)

नवम्बर 1926 में 'सरस्वती' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित हास्य व्यंग्य में डूबी हुई कहानी 'निमंत्रण' की हास्य शैली का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि कहानी की शुरुआत ही इस प्रकार होती है कि- "पंडित मोटेराम शास्त्री ने अंदर जाकर अपने विशाल उदर पर हाथ फैरते हुये यह पद पंचम स्वर में गाया''-

"अजगर करें न चाकरी, पंछी करे न काम,
दास मलूका कह गए, कि सबके दाताराम।'' (27)

पाठक कहानी का असली मजा कहानी पढ़ने के बाद लगा सकते हैं। कहानी पूरी तरह हास्य व्यंग्य की चासनी में डूबी हुई है जिसमें एक स्वस्थ हास्य भी है और व्यंग्य की काट भी है। इसी कहानी में पंडित मोटेराम शास्त्री के अभिन्न परम् मित्र चितांमणि द्वारा एक रामायण की चौपाइयों का पाठ किया गया है, पाठ की पंक्ति इस प्रकार है-

"रहा एक दिन अवधि अधारा-
समुझत मनदुख भयउ अपारा ।
कौशलेश दसरथ के जाए-
हम पितु बचन मानु बन आए ।
उलटि-पलटि लंका कपि जारी-
कूद पडा तब सिंधु मझारी।
जेहि पर जाकर सत्य सनेहू-
सो तेहिं मिले न कछु संदेहू।
जामवंत के वचन सुहाए-
सुनि हनुमान हृदय अति भाए।'' (28)

कहानी में आगे हम देखते है कि पंडित मोटेराम चितांमणि द्वारा उपरोक्त रामायण की चौपाइयों के पाठ का जवाब कोई श्लोक, कोई मंत्र, कोई कविता याद न आने पर राम नाम के पाठ द्वारा देते है। पंडित मोटेराम कहते है कि-

"राम भज, राम भज, राम भज रे मन।'' (29)

वर्ष 1926 में प्रकाशित हिन्दी कहानी संग्रह 'प्रेमप्रतिमा' में संकलित कहानी 'गुरूमंत्र' भी हास्य व्यंग्य की एक उत्कृष्ट रचना है इस कहानी में भी पं. मोटेराम शास्त्री और उनके अभिन्न मित्र चितांमणि द्वारा वैराग्य धारण कर एक हलवाई की दुकान के सामने बैठकर खंजड़ी बजा-बजाकर यह भजन गाते है-

"माया है संसार सँवलिया, माया है संसार
धर्माधर्म सभी कुछ मिथ्याय यही ज्ञान-व्यवहार
संवलिया माया है संसार ।
गॉजे, भंग को वर्जित करते है उन पर धिक्कारय
संवलिया माया है संसार ।'' (30)

मार्च 1927 में 'माधुरी' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'सती' में लेखक ने गीत से पहले की पृष्ठभूमि के विषय में लिखा है कि- "रत्नसिंह के साथ मुश्किल से सौ आदमी थे, किन्तु सभी मंजे हुये, अवसर और संख्या को तुच्छ समझने वाले, अपनी जान के दुश्मन। वे वीरोल्लास के भरे हुये एक बीर-रस पूर्ण पद गाते हुये घोड़ों को बढ़ाए चले जाते थे''-

"बांकी तेरी पाग सिपाही, इसकी रखना लाज ।
तेग-तबर कुछ काम न आवे
बख्तर, ढाल व्यर्थ हो जावे ।
रखियों मन में लाग
सिपाही बांकी तेरी पाग ।
इसकी रखना लाज ।'' (31)

जनवरी 1928 में 'विशाल भारत' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'अग्निसमाधि' में नायक पयाग अपने खेत की ओर जा रहा है और चरस की तरंग में यह भजन गाता जाता था-

"ठगिनी क्यों नैना झमकावै ।
कद्दू काट मृदंग बनाए, नीबूं काट मजीरा ।
पांच तरोई मंगल गावें, नाचे बालम खीरा ।।
रूपा पहिर के रूप दिखावे, सोना पहिर रिझावे ।
गले डाल तुलसी की माला, तीन लोक भरमावे ।।
ठगिनी...।।'' (32)

अक्तूबर 1928 में 'माधुरी' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'अभिलाषा' में कहानी की नायिका तीजे का व्रत रखती है और देवी से प्रार्थना करती है कि हम दोनों पति-पत्नी में प्यार हमेशा बना रहे व हम दोनों प्राणियों में कभी मन मुटाव न हो यही मेरी अभिलाषा है, उसी समय इस गीत की रचना लेखक द्वारा की गई है । प्रस्तुत गीत का प्रयोग लेखक ने कहानी में कई बार किया है-

''अनोखे से नेही के त्याग,
निराले पीडा के संसार !
कहॉ होते हो अंतर्द्धान,

लुटा करके सोने-सा प्यार !'' [33]

अप्रैल 1929 में 'माधुरी' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'पर्वत-यात्रा' में पहाड़ के पानी के विषय में बताया गया है कि पहाड़ का पानी बहुत खराब होता है। एक बार लग गया तो प्राण ही लेकर छोड़ता है, और संग्रहणी (पेट से संबंधित बीमारी) तो प्रायः सभी को हो जाती है। इस सबंध में गोसांई जी ने भी पहाड़ के पानी की निंदा इन शब्दों में की है-

"लागत अति पहाड़ का पानी ।
बड दुःख होत न जाइ बखानी ॥'' [34]

अप्रैल 1930 में 'हंस' हिन्दी मासिक पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'समर-यात्रा' में देश के प्रति अपनी भावना के उद्‌गारों को कुछ यूं प्रकट किया गया है-

"एक दिन वह था कि हम सारे जहां मे फर्द थे,
एक दिन यह है कि हम सा बेहया कोई नहीं।'' [35]

गुरुवार 26 जनवरी 1933 को 'भारत' हिन्दी अर्द्ध साप्ताहिक में प्रकाशित कहानी 'रंगीले बावू' में बाबू रसिकलाल एक नामी वकील है परन्तु उनका रहन-सहन, उठना-बैठना, चलना- फिरना कहानी लेखक को पसंद नहीं है, परन्तु बाबू रसिकलाल लेखक के दोस्त हैं और उन्होंने लेखक की बेटी की शादी में बहुत मदद की थी। इस कारण लेखक बाबू रसिकलाल से कुछ कह नहीं पाते है। कहानी में प्रस्तुत शे'र बाबू रसिकलाल की कहानी लेखक से बहुत दिनों बाद भेंट होने के कारण रसिकलाल ने शे'र का वर्णन कुछ यूं किया है-

"तुम्हे गैरों से कब फुरसत,
हम अपने गम से कब खाली?
चलो, बस हो चुका मिलना,
न तुम खाली न हम खाली ।'' [36]

इसी कहानी में एक जगह और शे'र का वर्णन देखने को मिलता है। बाबू रसिकलाल के बड़े लड़के के विवाह होने के संबंध में कहानी लेखक को निमंत्रण पत्र भेजकर बुलाया गया है उसी निमंत्रण पत्र में एक उर्दू का शेर यूं लिखा था-

"इस शौकें फिरावां की या रब,
आखिर कोई हद भी है कि नहीं,
इंकार करे वह या वादा,
हम रास्ता देखते रहते हैं ।'' [37]

13 मार्च 1933 में 'जागरण' हिन्दी साप्ताहिक में प्रकाशित कहानी 'रसिक संपादक' हास्य व्यंग्य से ओतप्रोत एक मजेदार कहानी है। कहानी का सारांश कुछ इस प्रकार है कि- "नवरस नामक पत्रिका के संपादक पं. चोखेलाल शर्मा है, उनके द्वारा पुरुषों के लेख कितने ही अच्छे क्यों न हो, रद्दी की टोकरी में डाल दिये जाते है परन्तु देवियों के लेख कैसे भी हों तुरन्त स्वीकार कर लिये जाते है। प्रस्तुत कविता पं. जी को एक कामाक्षी नामक देवी से प्राप्त हुई है। पं. जी के अनुसार कविता इतनी सुदंर अक्षरों में लिखी गई है व लेखिका का नाम इतना मोहक है कि पं. जी उसका एक कल्पना चित्र बना लेते है। परन्तु कामाक्षी से भेंट होने पर पं. जी का सारा उत्साह जाता रहता है क्योंकि जिस कामाक्षी के विषय मे उन्होंने सोचा था वह बिलकुल उसके उलट निकली, अन्त में पं. जी को बहुत पछताना पड़ता है।'' बाकी पाठक कहानी को पढ़कर देखे उन्हें खुद कहानी रोचक लगेगी। फिलहाल कामाक्षी द्वारा पं. जी को भेजी कविता की पंक्तियां इस प्रकार है कि-

"क्या तुम समझते हो मुझे छोड़कर भाग जाओगे?
भाग सकोगे?
मैं तुम्हारे गले में हाथ डाल दूंगी
मैं तुम्हारी कमर में कर पाश कस दूंगी,
मैं तुम्हारा पांव पकड़कर रोक लूंगी,
तब उस पर सिर रख दूंगी ।
क्या तुम समझते हो, मुझे छोड़कर भाग जाओगे?
छोड़ सकोगे?
मैं तुम्हारे अधरों पर अपने कपोल चिपका दूंगी,
उस प्याले में जो मादक सुधा है-
उसे पीकर तुम मस्त हो जाओगे।
और मेरे पैरों पर सिर रख दोगे।
क्या तुम समझते हो मुझे छोड़कर भाग जाओ।'' -'कामाक्षी' [38]

जुलाई, 1934 में 'जागरण' हिन्दी साप्ताहिक मे प्रकाशित कहानी 'पंडित मोटेराम की डायरी' में पं. मोटेराम के माध्यम से लेखक द्वारा तुलसीदास का दोहा कहलवाया गया है-

"सुत बनितादि जानि स्वारथ रतन न करू नेह सबही ते,
अंतहुं तोहि तजेंगे पामर, तू न तजे अबही ते।'' [39]

इसी कहानी में एक जगह और कबीर के भजन का इस्तेमाल किया गया है । कहानी अनुसार पं. मोटेराम को ऐसा लगता है कि मैं अब बच नहीं पाऊंगा, उस वक्त पं. जी को कबीर का वह पद याद आता है जिसे पढ़कर कभी-कभी वे हंसा करते थे, भजन इस प्रकार है-

"दिवाने मन भजन बिना दुख पैहो,
पहिला जनम भूत का पैहो, सात जनम पछतैहों
कीरा पर के पानी पैहों, प्यासन ही मरि जैहो ।
दूजा जनम सुवा का पैहों, बाग बसेरा लैहों
टूटे पंख बाज मंडराने, अधफड प्रान गंवेहो ।
बाजीगर के वानर होइहौं, लकडिन नाच नचौहो
ऊंच-नीच से हाथ पसरिहौं, मॉगे भीख न पैहों ।
तेलिन के घर बैला होइहौं, आंखिन ढॉप ढंपेहो
कोस पचास घरे मॉ चलिहौं, बाहर होन न पैहो ।
पॉचवॉ जनम ऊंट का पैहों, बिन तोले बोझ लदैहों
बैठे तो उठन न पैहों, घुरच-घुरच मरि जैहो ।

धोबी घाट के गदहा होइहौं, कटी घास न पैहों
लादी-लादि आपु चढ बैठों, लैके घाट पहुंचौहो ।'' [40]

सितंबर 1938 में प्रकाशित 'वारदात' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'कोई दुःख न हो तो बकरी खरीद लो' में कहानी लेखक को दूध की तकलीफ होने के कारण लेखक एक बकरी पाल लेता है जिसके कारण दूध की तकलीफ से मुक्ति तो मिल जाती है, परन्तु इसके बाद लेखक को विभिन्न-विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों से को गुजरना पड़ता है। पाठक यह कहानी को पढ़ेंगे तब पता चलेगा। कहानी हास्य रंग मे डूबी हुई एक रोचक व मजेदार रचना है। लेखक कहानी में कहता है कि- "एक हफ्ते तक किसी तरह की शिकायत पैदा न हुई गरम-गरम दूध पीता था और खुश होकर गाता था''-

"रब का शुक्र अदा कर भाई जिसने हमारी गाय बनाई।
ताजा दूध पिलाया उसने लुत्फे-हयात चखाया उसने।
दूध में भीगी रोटी मेरी उसके करम ने बख्शी मेरी।
खुदा की रहमत भी है कैसी भोली-भोली सूरत ।'' [41]

दिसम्बर 1935 में 'जामिया' उर्दू मासिक पत्रिका में प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में कहानी के दलित पात्र घीसू और माधव गांव से मिले कफन के पैसे दारू में उड़ा देने के बाद नशे में चूर होकर यह पद गाते हैं। इस कहानी में पद को पूरा नहीं दिया गया है परन्तु इस कहानी से पूर्व में वर्ष जनवरी 1928 में प्रकाशित कहानी 'अग्नि-समाधि' में इस पद को पूरा दिया गया है। प्रस्तुत कहानी में इस पद की केवल प्रथम पंक्ति ही दी गई। पंक्ति इस प्रकार है-

"ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी.......!'' [42]

इस प्रकार हम उपरोक्तानुसार कह सकते है कि प्रेमचंद ने अपने प्रथम संग्रह की कहानी से लेकर विश्वप्रसिद्ध कहानी 'कफन' तक की यात्रा में कितनी ही जगह गीतों, दोहों, भजनों, रामायण की चौपाईयों, शे'र-ओ-शायरी एवं कविताओं का प्रमुखता के साथ वर्णन किया है। इन सामग्री के प्रयोग से कहानियों म। एक रोचकता एवं भावुकता का प्रचार प्रसार देखने को मिलता है। प्रेमचंद ने इसी तरह अपने उपन्यासों म े भी इस प्रकार की सामग्री का उपयोग प्रचुर मात्रा में किया है। पाठक उपरोक्त कहानियों को पढ़े और उनमें प्रयोग किये गये गीतों, कविताओं आदि का लाभ लें। इस दिशा में कहने का मेरा यह छोटा सा प्रयास है।

आवास क्रमांक एच-3, राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, एयरपोर्ट, वायपास रोड, भोपाल-462033 (म.प्र.)
मोबा. नं. 9826583363

संदर्भ संकेत :

(1) यह लेख भाषण 'धर्मवीर' पत्रिका के 13 अप्रैल 1935 में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद पूर्ण विवरण के साथ डॉ. श्रीकांत जोशी ने 'वीणा' मासिक पत्रिका के अप्रैल 1988 के अंक में 'कथा-पुरुष' प्रेमचंद की खण्डवा-यात्रा शीर्षक लेख से पुनः संकलित कर प्रकाशित करवाया था। यही लेख 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खण्ड-2' में संकलन व संपादनकर्ता डॉ. कमल किशोर गोयनका ने संकलित कर प्रकाशित करवाया । बाद में 'जनवाणी प्रकाशन भाग-7', नई दिल्ली द्वारा 'हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी' शीर्षक से पृष्ठ : 454 से 456 तक संकलित।

(2) प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग-1, संकलन व संपादन-डॉ. कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ : 95 से उद्धृत ।

(3) वही, पृष्ठ : 98, (4) वही, पृष्ठ : 155, (5) वही, पृष्ठ : 193, (6) वही, पृष्ठ : 194, (7) वही, पृष्ठ : 199, (8) वही, पृष्ठ : 217, (9) वही, पृष्ठ : 217, (10) वही, पृष्ठ : 276, (11) वही, पृष्ठ : 349, (12) वही, पृष्ठ : 388, (13) वही, पृष्ठ : 412, (14) वही, पृष्ठ : 413, (15) वही, पृष्ठ : 419, (16) वही, पृष्ठ : 461

(17) प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग-2, संकलन व संपादन-डॉ. कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ : 33 से उद्धृत।

(18) वही, पृष्ठ : 67, (19) वही, पृष्ठ : 73, (20) वही, पृष्ठ : 145, (21) वही, पृष्ठ : 317-323,

(22) प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग-3, संकलन व संपादन-डॉ. कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ : 238-239 से उद्धृत।, (23) वही, पृष्ठ : 238-239, (24) वही, पृष्ठ : 256-259,

(25) प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग-4, संकलन व संपादन-डॉ. कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ : 41 से उद्धृत।, (26) वही, पृष्ठ : 42, (27) वही, पृष्ठ : 128, (28) वही, पृष्ठ : 142, (29) वही, पृष्ठ : 142, (30) वही, पृष्ठ : 175, (31) वही, पृष्ठ : 210-211, (32) वही, पृष्ठ : 280, (33) वही, पृष्ठ : 417

(34) प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग-5, संकलन व संपादन-डॉ. कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ : 91 से उद्धृत।, (35) वही, पृष्ठ : 246

(36) प्रेमचंद कहानी रचनावली भाग-6, संकलन व संपादन-डॉ. कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ : 226 से उद्धृत।, (37) वही, पृष्ठ : 229, (38) वही, पृष्ठ : 276-277, (39) वही, पृष्ठ : 433, (40) वही, पृष्ठ : 434, (41) वही, पृष्ठ : 492, (42) वही, पृष्ठ : 570

लघु कथा

मरद की सोच

● सिद्धेश्वर

रेलवे स्टेशन पर लोगों की भीड़ लगी हुई थी। भीड़ को देख मैं करीब गया, तब देखा कि एक युवती बेहोश पड़ी हुई है।

"...अरे ...रे ...रे ...रे ...रे ....! बेचारी मर गई है क्या? अरे भैया इस लड़की को कोई बचाओ। बेचारी मूर्च्छित पड़ी हुई है।..."

"क्यों? क्या हुआ भाई? लड़की मूर्च्छित कैसे हुई ..."

"लगता है, उसकी सांस बहुत धीमी चल रही है। बचेगी नहीं क्या?"

"कहीं मर तो नहीं गई?"

"नहीं भई, अभी मरी नहीं है। अभी भी जान है इसके भीतर!" उस लड़की के बाएं हाथ की नाड़ी को पकड़ते हुए एक व्यक्ति ने कहा।



"स्साली... शराब पी रखी है। नशे में बेहोश पड़ी है। इसके बदन पर ठंडा पानी डालो। तब इसका नशा छू-मंतर हो जाएगा।..."

भीड़ में से कुछ लोग, बगल में चाय की दुकान की ओर भागे। किसी ने गिलास तो किसी ने मग से उस बेहोश युवती के ऊपर पानी की बौछार कर दी। भीड़ में उस युवती के सम्बंध में चर्चाएं अब भी जारी थीं।

"इसका मरद कहां है भई?"

"मरद अपनी जोरू का इतना ही खयाल रखता, तब इस युवती को नशे की हालत में, प्लेटफार्म पर गिरने-पड़ने की जरूरत ही क्यों पड़ती?" जितने लोग उतनी बातें हो रही थीं।

"इस युवती के सिर पर थोड़ा पानी और डालो भाई। अभी पूरी तरह नशा टूटा नहीं है।"

युवती के पूरे जिस्म पर पानी की बौछार पड़ते ही शरीर थोड़ा हरकत में आ गया। पूरा बदन भीग कर और नशीला हो गया था।

थोड़ा नशा टूटते ही, वह युवती अपनी कलाइयों में पहन रखी चूड़ियों को फर्श पर पटक-पटक कर तोड़ने लगी।

उसकी इस अदा पर कुछ लोग टकटकी लगाए, जिज्ञासु आंखों से देख रहे थे तो कुछ लोगों के बीच चर्चाएं गरम होती जा रही थीं।

"लगता है अपने मरद से चिढ़ गई है बेचारी। इस पर कितना जुल्म ढाया होगा उसका मरद।..."

"अरे नहीं भाई! तुम भी कैसी बातें कर रहे हो? हमें तो ई औरत ही छिनार लग रही है। घरेलू किस्म की इज्जतदार औरत कहीं शराब पीती है क्या?"

"घर की औरत शराब पीकर इस कदर प्लेटफार्म पर नौटंकी नहीं कर सकती..." भीड़ के बीच चर्चाएं और गरम होती जा रही थीं।

"ठीक कहते हो यार। इसे जरा होश में तो लाने दो। नहीं तो कहीं प्लेटफार्म से नीचे कूद पड़ी रेलवे लाइन पर तो आफत हो जाएगी।"

एक व्यक्ति साहस बटोर कर, उस औरत के पीछे से उठकर प्लेटफार्म के किनारे से घसीट कर उसे बीच में लाने लगा। तब उसके दोस्त ने, ऐसा करने से मना करते हुए कहा-

"तेरी जोरू लगती है क्या रे? तेरी स्साली लगती है क्या, जो बड़ा मेहरबान हो रहा है उस पर?"

उसकी बातों को सुनकर तमाशबीन लोग अपनी हंसी नहीं रोक सके और 'ही ही ही ही...' कर हंसने लगे। तभी उस सभ्य व्यक्ति ने कहा-

"मेरी न जोरू, न साली, परंतु हमारे देश की एक औरत तो है ही!"

भीड़ के बीच 'ही ही ही ही ही' की व्यंग्यात्मक हंसी गूंजने लगी। सभी लोग उस औरत को होश में लाने का प्रयत्न करने में जुटे हुए थे। परंतु कुछ लोग ऐसे भी थे, जो उस औरत को बेहोशी की हालत में देखना चाह रहे थे ताकि होश में आते ही....

इसी बीच एक सज्जन ने जोर की आवाज लगाई। तुम सबको लाज नहीं आती। बेहोश तो तुम लोग हो गए हो। वरना उस औरत के ऊपर पानी उड़लने से पहले उसकी साड़ी से उसकी नंगी छाती को नहीं ढक देते?"

अवसर प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स नं. 205, करबिगहिया, पटना-800001, मो. 0 92347 60365

लघु कथा

कूड़े वाला

● डॉ. कमल के 'प्यासा'

बरसते पानी के साथ ठंड का प्रकोप भी बढ़ता जा रहा था। भीखे कांपते हाथों से गेट पर दस्तक देते हुए पुकारे जा रहा था।

"बीबी जी कूड़ा...! कूड़े वाला बीबी जी...!" कमरे में बैठी बीबी सुना-अनसुना करती हुई चाय की चुस्कियों के साथ अपना नाश्ता करने में व्यस्त थी।

"कूड़ा...! बीबी जी कूड़ा...!" भीखू ने कांपते-कांपते फिर जोर से आवाज लगाई।

"सबर नहीं... दो मिनट तो ठहर जा... मुआ आ जाता है सुबह-सुबह..., चाय भी आराम से नहीं पीने देता।" कहते-कहते बीबी ने कूड़े का डिब्बा उठाया और भीखू की बोरी में डालते हुए कहने लगी, "चाय तो पीने दिया कर भीखू... बोलते ही जाता है। थोड़ी देर रुक नहीं सकता था?"

"बीबी जी देखो पानी बरस रहा है... सारा भीग गया हूं. .. । ठंड से न हो गई है खड़े-खड़े...! बीबी जी दो घूंट चाय तो पिला तो... बड़ी मेहरबानी होगी... ।"

भीखू कांपते हाथों से कूड़े के डिब्बे को पकड़ते हुए (बड़े ही दयनीय स्वर में आग्रह करते हुए) बोल रहा था।

"बर्तन लाए हो...?"

"अभी लाता हूं...बीबी जी...", कहते-कहते भीखू (कूड़े की बोरी उठाए) चाय का बर्तन लाने के लिए भागते हुए आगे बढ़ता है... और जल्दी-भागते हुए फिसल कर धड़ाम से नीचे जा गिरता है। भीखू का सिर पत्थर से टकराकर खून से लथपथ हो जाता है। इधर-उधर के लोग इकट्ठे होने लगते हैं और शरीर ठंड से नीला पड़ जाता है। देखते-ही-देखते एंबुलेंस पहुंच जाती है। भीखू को स्ट्रेचर पर डालकर अस्पताल पहुंचा दिया जाता है।

तीन चार दिन से भीखू कूड़ा लेने नहीं आया तो बीबी जी तंग आकर बुदबुदाते हुए अपने आपमें बोलते हुए कहती है, "हरामखोर आज भी नहीं आया... कब तक इस कूड़े को समेटती रहूंगी...! मांगते हुए तो शरमाते नहीं, कभी फटा-पुराना कपड़ा. .. कभी चाय तो कभी कुछ। लेकिन काम न करने का कोई-न-कोई नया बहाना ढूंढ ही लेते हैं। ...आए तो पूछती हूं. .. ।" बीबी न जाने आवेश में क्या-क्या बोले जा रही थी।

काश....! बीबी ने उसे अपने बर्तन में ही चाय पिला दी होती... डिस्पोजेबल गिलास ही दे दिया होता... तो इतना बखेड़ा ही न खड़ा होता, लेकिन बीबी तो इस सबसे बेखबर थी... ।

अब भीखू के स्थान पर त्वारू कूड़ा लेने लगा है। त्वारू के पास कूड़ा इकट्ठा करने की वही भीखू बाली बोरी है। जिस एंबुलेंस में भीखू को डालकर अस्पताल पहुंचाया गया था, वही एंबुलेंस अब मरीजों और शवों को ले जाने के लिए प्रयोग की जा रही है... स्ट्रेचर का प्रयोग भी सभी लोग कर रहे हैं। बीबी को भी भूखे की दुखद मृत्यु की जानकारी हो गई है। अब उसने त्वारू को चाय पीने के लिए एक बेकार (क्रैक) कप दे दिया है। त्वारू ने उसे गेट के समीप वाली झाड़ी की आड़ में रख दिया है ताकि जरूरत पड़ने पर उसका प्रयोग कर सके।

प्रूथी 34/7, अप्पर समखेतर, मंडी, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश-175 001, मो. 98821 76248

गीत

फागुन

● सुरेन्द्र अग्निहोत्री



फागुन बन खिल उठे गोरी तेरे अंग,
मौसम वासंती हुआ छायी बहुत उमंग।

सेमल पलाश सरसों के बने हुये हैं रंग,
मन हुआ है बावला खेले होली संग।

रातें ठंडी सी हुई बहती मधुर सुगंध,
नैनों के तीरे तले प्रेमी की सौगन्ध।

मन मयूर सा नाचता पीकर जम के भंग,
रंगों के त्योहार में छाया जमके रंग।

मीठा सा एहसास देता गोरी तेरा ढंग,
नैनन की पिचकारी से घायल मोरा अंग।

आमों की अमराई में सपनों की है जंग,
अबीर, गुलाल की धूम में तेरा मेरा संग।

ए-305, ओ.सी.आर. बिल्डिंग, विधान सभा मार्ग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, मो. 94155 08695

कहानी

चिराग बुझ गया

● डॉ. जयकरण

महीना अक्तूबर का था और रविवार का दिन था। उस सुबह मैं सूरज निकलने के बाद जागा था। सर्दियों में वैसे भी गांव में धूप देरी से आती है। मैं नहा -धो कर अपने कमरे में बैठा चाय पीता हुआ अखबार पढ़ रहा था। बच्चे दूसरे कमरे में तब तक सो रहे थे, क्योंकि उनका भी आज छुट्टी का दिन था। नाश्ता करने के बाद टेबल पर पड़े न्यूज पेपर को बारी-बारी पढ़ने के लिये उठाने लगा। फिर खयाल आया, बाजार जाकर कटिंग-वटिंग भी करवा आता हूँ, वापसी आती बार डीपू से इस महीने का राशन भी लेता आऊंगा। सारा दिन घर पर बैठा-बैठा भी बोर हो जाऊंगा।

कपड़े चेंज करते हुए पत्नी को आवाज लगा कर पूछने लगा, "बाजार तक जा रहा हूँ, कोई सामान वगैरा तो नहीं लाना क्या?"

"जरूर कोई फोन आ गया होगा, नहीं अभी तक तो आराम से अखबार पढ़ रहे थे। देख लो, जैसी आपकी मर्जी। सोचा था घासनी में झाड़ी-वाड़ी काट आते। सभी गांव वाले सर्दी आने तक लकड़ी के ढेर लगा देते हैं, एक हम ही हैं जो सब के बाद जागते हैं। एक दिन छुट्टी का मिलता है उस दिन के लिये भी आप कोई न कोई काम खोज लेते हो। आप को तो घर के कामों की कोई फिकर नहीं रहती। ऊपर से मजदूर भी नहीं मिलते, नहीं तो उनसे करवा लो .....।"

संडे के पूरे कामों की सूची मुझे सुनाती हुई वह किचन में चली गई।

मैं अभी बालों को कंघी कर ही रहा था कि चाय का गिलास मेरी ओर थमाते हुई वह बोली, "रोज बाजार से आते हो बाल कटवाने के लिये संडे ही चुनना था क्या? सुबह के लिये सब्जी भी देख लेना, जितना जल्दी हो सके घर पहुँच जाना। कम से कम शाम की पनेल (दोपहर बाद का समय) तो लग जायेगी। कुछ तो काम निकलेगा।"

थैला मेरी ओर बढ़ाते हुए पत्नी ने कहा था।

बगल में थैला दबाए मैं सड़क की ओर चल दिया। बस का समय साढे बारह बजे गांव से चलने का था। गांव में ही कुछ दूरी पर स्टोन क्रेशर था, जहां दिन भर गाडियों का आना-जाना लगा रहता था। शायद कोई लिफ्ट मिल जाये यही सोच कर मैं सड़क पर जा खड़ा हो गया। टीं टीं टीं करता गाड़ी का हॉर्न काफी देर से मेरे कानो में गूंज रहा था। मैने दो दिन पहले ही नया फोन खरीदा था ,उसी के फंक्शन सीखने में इतना व्यस्त था कि मुझे सिर उठाने कि फुरसत तक नहीं थी। वैसे भी मोबाइल आज के जमाने में किसी को इग्नोर करने या अपने आप को बिजी रखनें का अच्छा साधन है।

"हेलो भाई साहब सुनिए। कंधे पर हाथ का आभास होते ही मैं चौंक कर पीछे की ओर मुड़ा। मेरे सामने सफेद रंग की बोलरो गाड़ी खड़ी थी जिसके फ्रंट शीशे पर पुलिस लिखा था। आज इस गांव में सुबह-सुबह पुलिस...क्यों? क्या? जैसे अनगिनत प्रश्न मन में कौंधने लगे।

"क्या आप इसी गांव के रहने वाले हैं?" कंधे से हाथ हटाते हुए भद्रपुरुष ने मुझ से सवाल किया था।

"जी!, जी हाँ।"

भद्र पुरुष ने गाड़ी में बैठे अपने सहयोगी साथी की ओर हाथ बढ़ाकर फाइल मांगी और मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "जरा इस फोटो को गौर से देखो, क्या आप इस लड़के को पहचानते हैं ?"

मैंने फाइल अपने हाथों में ली और फोटो को पहचानने की कोशिश करने के अंदाज से इधर-उधर घुमाने लगा।

"जी हाँ यह तो इसी गांव का है।"

"देखिये हम पुलिस के आदमी हैं। हमें इस लड़के के बारे में कुछ जानकारी चाहिए थी"

"जी, पूछिये"

"इसका नाम क्या है? "

"जी, सोनू सभी इसे इसी नाम से जानते हैं। वैसे स्कूल में इसका कोई दूसरा नाम है जो मुझे इस वक्त याद नहीं आ रहा है।"



"इसके मां-बाप क्या करते हैं?"

"जी, इसके पिता जी गांव में ही छोटा-मोटा मिस्त्री का काम करके परिवार का पालन-पोषण करते हैं। थोड़ी बहुत खेती बाड़ी है, दोनों काफी बुजुर्ग हैं। मां काफी समय से बीमार चल रही है। पता नहीं कितनी मन्नतों से छह लड़कियों बाद यह एक बेटा पैदा हुआ है। आजकल कॉलेज जाता है। सुना है बी.ए. कर रहा है। बुजुर्गों को उम्मीद है, बेटा पढ़-लिखकर परिवार की जिम्मेवारी संभाल लेगा। लेकिन क्षमा चाहता हूं, क्या मैं यह जान सकता हूं कि, "उसके बारे में इतनी पूछताछ क्यों की जा रही है" और मैं एक ही साँस में न जाने क्या-क्या बोल गया

"देखिए ज्यादा तो अभी हम आपको बता नहीं पायेंगे, लेकिन इतना जरूर बता देते हैं कि इस लड़के के लक्षण ठीक नहीं है। भले ही गरीब परिवार से होगा, परन्तु इस की दोस्ती बड़े घरों के बिगड़ैल लड़कों से है। आज वैसे भी दो प्रकार के घरों में ही लड़के बिगड़ रहे हैं, एक तो बिलकुल गरीब परिवार में क्योंकि वे आसानी से बाहरी चकाचौंध से प्रभावित हो उसे भोगना चाहते हैं। वैसे भी वे परिवार के बूते पर उन्हें पूरा करने में असमर्थ होते हैं। या फिर बड़े घरानों के। इनके पास धन दौलत इतनी अधिक है कि वे उसे पचा नहीं पाते। मां-बाप दिन -रात नैतिक-अनैतिक तरीके से पैसा कमाने में लगे रहते हैं। उन्हें मालूम नहीं कि उनके पास कितनी सम्पत्ति है और कितनी खर्च हो चुकी है। उनकी औलाद किस राह पर चल रही है। सोचने का उनके पास समय ही नहीं और न ही वे कभी यह जानने की जरूरत महसूस करते। यदि कभी किसी से या कहीं से पता चल भी जाये कि कुल चिराग किस नक्शेकदम पर चल रहा है तब तक पानी सिर से ऊपर पहुंच गया होता है"

"परन्तु सोनू ऐसा तो लगता नहीं, कहीं किसी ने गलत इंफोर्मेशन तो नहीं दे दी।"

"जनाब इनके गिरोह ने नाक में दम कर रखा है, शहर के स्कूल, कॉलेज ,आई .टी. आई .सभी जगह इन्होंने नशे के अड्डे जमा रखे हैं। पुलिस स्टेशन में हर रोज फोन कॉल्स व शिकायतें आती हैं। इन शैक्षणिक संस्थानो में एडमिशन के समय ही गांवों के स्कूलों से सपने साकार करने आने वाले भोले -भाले लड़को को यह गिरोह अपने जाल में फंसा लेता है। ये युवा सुबह घर से कॉलेज जाने के बहाने निकल जाते हैं , दिन भर बाइक पर घूम-घूम कर नये चेहरों की तलाश करते फिरते हैं। एक बार जो इनके शिकंजे में फंस गया उसका फिर बाहर निकल पाना कठिन हो जाता है।खुद तो ये खाक पढेंगे, परन्तु पढने की नियत रखने वालों को भी ये रास्ते से विचलित करनें में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ते। आज काफी युवा पढ़ाई पूरी करने की अपेक्षा नशे के इन सौदगरों को ढूंढते फिरते हैं। नशे की लत इन युवाओं को इस कदर लग चुकी है, चाहे उन्हें रोटी मिले या न मिले परन्तु नशे का सामान मिलना चाहिए। बहुत से अभिभावक रोज चौकी आकर हम से मिलते हैं, किस प्रकार उनके मासूम बच्चों की मुस्कान उनके चेहरों से छिन गई है जिसे लौटाने की गुहार वे पुलिस से लगाते हैं।"

"क्या अभी तक किसी को पकड़ने में सफलता भी मिल पाई है या नहीं।"

"काफी दिनों से अभिभावकों के सहयोग से पुलिस ने अपने स्तर पर भी अभियान तेज कर दिया है। तब जा कर कहीं आठ-दस लड़कों को हिरासत में लेने में हम कामयाब हो पाये हैं। जगह- जगह छापे मारे जा रहे हैं। गिरोह की सूची में इसका नाम भी शामिल है। इस तक तो हम पहुंच ही जायेंगे, लेकिन पुलिस यह पता लगाना चाहती है कि इस गैंग को आखिर आशीर्वाद किसका है? नशीले पदार्थों की खेप इन तक किन माध्यमों से पहुंच रही है? यह तभी संभव है जब पूरा गिरोह पुलिस की हिरासत में होगा। हमने शहर के सभी शैक्षणिक संस्थानों में भी अभियान तेज कर दिया है। आप मानेंगे नहीं इनके कॉलेज में पूछ-ताछ करने पर पता चला कि इन्हें एक ही क्लास में कदमताल करते तीन-तीन साल हो गए हैं। इस साल तो कॉलेज में इनका एडमिशन तक नहीं हुआ। कॉलेज स्टूडेंट का पास बनवा कर सरकार को भी चूना लगा रहें है तथा मां-बाप की आँखों में धूल भी झोंक रहे हैं।"

मैं हक्का-बक्का रह गया। मेरा माथा ठनका, इतना भोला-भाला चेहरा और कारनामें ...? जब मिलता सीधा पांव पर झुक प्रणाम करता। कोई सोच भी नहीं सकता था कि इतना पाजी होगा। आखिर यह इस गिरोह में कैसे फंस गया? पर इस में इस बेचारे का भी क्या दोष ? यदि पिछवाड़ा कमजोर हो तो हर कोई भटक जाता है। मुझे याद आया, काफी दिनों से सोनू कहीं नजर नहीं आया था, नहीं तो घर के पास से आते जाते या फिर कभी-कभार बस में दिख ही जाता था। फिर धीरे-धीरे उसकी हर एक एक एक्टिविटी मेरी आँखों के आगे घूमने लगी। थोड़ी देर पहले तक मेरी नजरों में जो शराफत का मसीहा बन घूम रहा था, अब उसका बदला- बदला रूप मेरी आँखों के सामने परिक्रमा

करने लगा। लम्बे बाल, नेरो बोटम जीन्स, कानों में बाली, आँखें लाल कुछ तो बदलाव के लक्षण थे।

"इन युवाओं की सांसें अफीम, चरस, गांजों की खुराक पर टिकी हुई है। मौत का यह सामान इन लोगों की लाइफ लाइन बना हुआ है। छोटी उम्र में शुरू कि ये गए नशे उनके शरीर को अंदर से खोखला कमजोर बना देंगे। जनाब नशे के ये सौदागर युवाओं में मौत के सर्टिफिकेट बाँट रहे हैं। हम आप को सचेत किये देते हैं कि आप लोग आस-पड़ोस के लड़कों का भी ध्यान रखें। यदि एकाध भी इनके चंगुल में फंस गया तो उसका जीवन भी बर्बाद समझो। खुद तो डूबे ही डूबे कहीं औरों को भी न ले डूबे। अभी तक जो रोग शहरों के संस्थानों तक सीमित है ऐसा न हो कहीं गांव भी इसके चंगुल में फंस जाए। प्रशासन अपनी ओर से हर तरह से इन पर शिकंजा कस रही है। परन्तु ऐसे अभियानों में पब्लिक का सहयोग अहम भूमिका निभा सकता है। हमने कुछ नशेड़ी युवकों को नशा निवारण केन्द्रों में भर्ती कर रखा है। वे नशे की इस लत से अपने आप को बाहर निकालना चाहते हैं। प्लीज आप उसका घर तथा वहां तक जाने का रास्ता बताने का कष्ट करें। क्या इस वक्त हमें वह घर पर मिल सकता है?"

"शायद यहां से उसका घर दिखाई न दे, आप थोड़ा उधर चलें।"

मैंने हाथ का इशारा करते हुए बताया, उधर नीचे अखरोट के पेड़ के साथ जंग खाए टीन की छत्त दिखाई दे रही है, बस वही उसका मकान है। परन्तु मेरी आपसे रिक्वेस्ट है, यदि घर पर उसकी बूढ़ी माँ अकेली हो तो यह मत कहना कि हम पुलिस के आदमी हैं और सोनू को ढूंढ रहे हैं। बेचारी महीनों से खाट पर पड़ी है, कहीं ऐसा न हो कि बेचारी मानसिक संतुलन ही खो बैठे"

"तो क्या हम लोग इसी रास्ते से निकल जाएँ "

"हां, थोड़ा नीचे पहुंचनें पर रास्ते में बिजली के खम्बे में लेटर बॉक्स लटका हैं वहां दो रास्तें होंगे, आप राइट वाले रास्ते पर चले जाना।"

रास्ता बता मैं पीछे मुड़ा ही था कि उतने में बस भी आ गई, बस को हाथ दिया और उसमें चढ़ गया। मैंने कब कंडक्टर से टिकट ली और कब अपने गंतव्य पर पहुंचा मुझे पता ही नहीं चला। रास्ते भर मेरे दिमाग में पुलिस वालों की बातें मन्दिर में बजने वाली घंटियों की तरह गूँज रही थी।" कितने मासूमों की मुस्कान उनके चेहरों से छिन गई होगी? "जैसे शब्द बार-बार मेरा पीछा कर रहे थे। बाजार के कामों को जल्दी-जल्दी निपटा कर मैनें वापसी की बस पकडी और घर पहुंच गया। पत्नी से न कुछ मैने पूछने की कोशिश की और न ही उसने कुछ बताया। मैंने यही सोच अपना मन मना लिया कि शायद इस बात की खबर अभी गांव में न हो।

पत्नी चाय की प्याली कब टेबेल पर रख कर चली गई मुझे पता ही नहीं चला।

"खाना तैयार है , मुंह हाथ धो लो।"

मैं आनन-फानन में उठा हाथ में पानी का जग उठाये वाश्वेशन के पास गया जिसमें पानी कभी कभार ही आता था, हाथ मुहं धो मैं खाना खाने के लिए बैठ गया। बच्चों नें भी अभी खाना शुरू किया था, पत्नी ने थाली मेरी ओर बढ़ाई। हम सभी ने दोपहर का भोजन लगभग दो बजे किया।

"थोड़ी देर आराम कर लो, मैं भी तब तक बर्तन वगैरा धो लेती हूँ , फिर दराट तेज करती हूँ।"

तीन बजे से ऊपर का समय होगा ,पत्नी ने बाहर से ही आवाज लगाते हुए, "कहा चलो चल पड़ते हैं फिर जल्दी वापिस भी आना है। बच्चे तब तक बांवड़ी से दो-दो फेरे पानी के ले आयेंगे। आज कल वैसे भी अंधेरा जल्दी हो जाता है।"

चाह कर भी आज मेरा मन किसी काम को करने के लिये तैयार नहीं था, परन्तु पत्नी के आदेश को टाला भी नहीं जा सकता था।

"सुनो, यदि एक कप चाय मिल जाये तो कुछ फ्रेश हो जाता। पता नहीं आज क्यों मन उदास-सा है।"

मुझे लगा जैसे मेरी बात पत्नी के कानों तक पहुंची ही न हो, परन्तु थोड़ी ही देर में वह चाय की दो प्यालियां हाथ में लिये मेरे सामने खड़ी थी।

चाय-वाय पी कर हम दोनों काम पर निकल गए। अंधेरा होते ही हम वापिस घर पहुंच पाये। पत्नी गाय को घास देने ओबरे गोशाला, में चली गई। मैं बच्चों के साथ टीवी देखने में बिजी हो गया। खयाल आया की आरती का समय बितता जा रहा है, मैं हाथ-पांव धो कर पूजा वाले कमरे में जा कर पूजा करने लगा। आज मेरा ध्यान पूजा-पाठ की अपेक्षा रतिया चाचा तथा उनके तीन सदस्यों के परिवार पर ज्यादा जा रहा था। तीनों चेहरे रह-रह कर मेरी आँखों से ओझल होने का नाम नहीं ले रहे थे।

काफी प्रयास करनें के बाद भी जब मैं पूजा-पाठ में एकाग्रता बनाने में सफल नहीं हो पाया तो उठकर वापिस टीवी के पास आकर बैठ गया। टीवी पर अभी नैशनल न्यूज चल ही रही थी, पत्नी ने बेटे को आवाज दी, "चलो-चलो खाना तैयार है। जल्दी से खाना खाओ और सो जाओ। सुबह स्कूल भी जाना है। पापा से भी कह दो।"

मैं जैसे ही टीवी बंद करने लगा, चुटकी थोड़ा चिड़चिड़े अंदाज में बोली।

"पापा टीवी बंद मत करो"

"बेटा मम्मी खाना खाने बुला रहे हैं। उसके बाद थोड़ी देर देख लेना।"

"पापा मेरा खाना यहीं ला दो। मुझे डोरीमॉन देखना है।

मैंने खाने की थाली, पानी का गिलास चुटकी को लाकर रख

दिया। बेटे ने हमारे साथ ही रसोई में खाना खाया।

डिनर करते समय कई बार दिमाग में दिन वाली घटना किसी फिल्म की रील की तरह घूमने लगी। पत्नी के साथ उस घटना को शेयर चाह कर भी नहीं कर पा रहा था। करूं तो कैसे, और कहाँ से? कौर को नीचे निगलने की कोशिश करता, लेकिन वह ऊपर आ जाता। पानी का गिलास हाथ से नीचे रखने का मौका ही नहीं मिल रहा था। बड़ी हिम्मत जुटा कर उलटे हाथ से माथे को पोंछते हुए प्रयास किया।

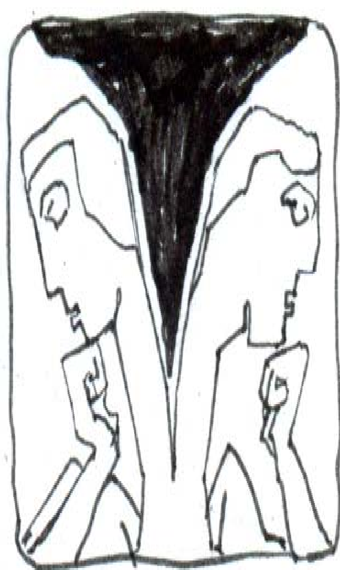
"आजकल रतिया चाचा कहीं दिखते नहीं ? चाची कैसी होगी? आजकल दवाइयां कहाँ से चल रही होंगी?"

"पता नहीं दो तीन दिन पहले चाचा जी मिले थे। बता रहे थे किसी वैद जी से दवा लाये हैं। उससे काफी आराम है। कह रहे थे आजकल सोनू की वजह से बड़े परेशान हैं। कई-कई दिनों घर नहीं आता। आपसे बात करने को कह रहे थे। संडे को, हाँ आज को ही आने की बात कर रहे थे। शायद काम पर से ही लेट लौटे हों। आप ही टाइम निकाल कर हाल चाल पूछ आते।"

"सोनू के बारे में क्या बोल रहे थे। कहीं आजकल बिगड़ तो नहीं गया वो लड़का। देखता हूँ काफी दिनों से वह काफी बदला-बदला दिखता है।"

"अजी सोनू अभी बच्चा है। यदि सोनू बूढ़े, गरीब मां-बाप का बच्चा है तो क्या हुआ? आखिर गरीबों के भी तो शौक होते हैं। शौक बचपन में पूरे नहीं करेगा तो क्या बुढ़ापे में आकर पूरे करेगा? परन्तु इसमें आपका भी क्या दोष ह्यूमन नेचर ही ऐसा होता है, दूसरों के बच्चों में ही दोष दिखाई देते हैं।"

"बात वह नहीं जो तुम समझ रही हो। पता करने वाली बात तो यह है कि आखिर सोनू की वह कौनसी बात है जिससे चाचा-चाची भी परेशान हो रहे हैं। सुबह सड़क में मुझसे भी पुलिस वाले सोनू के बारे में पूछताछ कर रहे थे। यदि वह कुछ उलटा-सीधा काम करता है तो इन बुजुर्गों का क्या होगा? यदि उन्हें आठ दस साल जीना होगा तो वे आठ दस महीने ही जी पाएंगे।"



पुलिस का नाम सुनते ही मेरी पत्नी हैरान हो कर बोली, "अच्छा तभी दोपहर को जब मैं घास लेकर आ रही थी तो सरजू चाची रास्ते में खड़ी मुझे रोककर बता रही थी कि थोड़ी देर पहले कोई दो आदमी उनके घर पर आकर सोनू के बारे में पूछ रहे थे। बेचारी बहुत परेशान लग रही थी।"

"चाचा जी उस समय घर पर नहीं होंगे क्या?"

"वह तो सुबह ही काम पर निकल गये थे।"

"चाची जी ने उनसे फिर क्या कहा होगा। "

"कह रही थी कि मैने तो ठीक-ठीक बता दिया कि तीन चार दिन से घर ही नहीं आया है। परन्तु वे दोबारा आने को कहकर गये हैं। कहते-कहते बेचारी की आँखों से आंसू छलक पड़े थे।"

मैं फिर सोनू के बचपन में खो जाता हूँ। एक दम सीधे-साधे चाचा-चाची इतनी कन्यायों के बाद बेटा होने को उसे अवतार ही मानते थे। दोनों खुद चीथड़े पहन, उसकी हर ख्वाहिश, हर मांग पूरी करने को उधार तक मांगते फिरते थे। सरजू चाची उसे कभी एक नाम से नहीं बुलाती थी बल्कि अनगिनत नामों से सम्बोधित किया करती थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरा छोटा भाई भी प्राइमरी में इसी के साथ पढ़ता था, जब मेरे भाई ने मिडल स्कूल पास कर लिया तब जा कर सोनू पांचवी कक्षा में पहुंचा। हालांकि इनकी उम्र में ज्यादा अंतर नहीं था, किन्तु हर कक्षा में वह अड़ जाता था। उसके पीछे वाले छात्र आगे निकल जाते। आगे पता नहीं कैसे -कैसे प्लस टू कर गया होगा, आजकल कॉलेज जाता था, परन्तु आज जो सुना उससे तो मेरे पाँव तले की जमीन ही खिसक गई थी।

बेचारे चाचा-चाची पढ़े लिखे तो थे नहीं, गिनती भी दस तक नहीं आती थी। अगर कहीं आठ-दस दिन ध्याड़ी के लग जाते तो उसका हिसाब-किताब जुड़ाने मेरे पास आते थे। शायद इसी कमजोरी का फायदा इनका लाडला उठा गया। मेहनत मजदूरी का हिसाब जोड़ने में अपनी छोटी सी भूमिका निभाकर नोट गिनने में ही हेरा-फेरी कर जाता होगा। क्योंकि चाचा जी भी काफी समय से हिसाब जुडाने नहीं आये थे। बिस्तर पर लेटा कभी इधर कभी उधर करवटें बदलते रात काफी हो चुकी थी। उस रात न जाने मुझे कब नींद आई। मुझे इतना याद रहा कि दो तीन बार पत्नी ने मुझ से पूछने की कोशिश की "क्या आज नींद नहीं आ रही है?" मुझे कब नींद आई, इस बात का एहसास मुझे तब हुआ जब सुबह पांच बजे का अलार्म मेरे मोबाइल में बजा।

मैं हमेशा की तरह सुबह उठा, खुद नहा धो कर बच्चों को भी नहला कर तैयार किया। एक दिन ऑफिस जाने के बाद अगले दिन फिर छुट्टी थी। घटना घटे चौबीस घण्टे से भी ज्यादा का समय बीत चुका था ,परन्तु मैं भुला नहीं पाया था। अभी भी यह अहसास होता था जैसे पुलिस का हाथ मेरे कंधे पर टीका हुआ है।

मैं सुबह-सुबह आंगन में टहलते हुए धूप का आंनंद ले रहा था। रतिया चाचा हाथ में लाठी लिये टक-टक की आवाज करते आंगन में पहुंच गये। जिस दिन से पुलिस वालों से संपर्क हुआ था उसी दिन से मन अशांत था। कैसे जा कर रतिया चाचा से पूछूं? कैसे उनका सामना करूं? परन्तु इस समय तो वे बिलकुल मेरे सामने खड़े थे। पाँव स्पर्श कर प्रणाम किया, "चाचा जी बड़े दिनों से कहीं दर्शन नहीं हुए। आजकल चाची जी कैसी है? और वे बिना उत्तर दिए वहीं पांव के ऊपर लाठी के सहारे बैठने लगे।

"यहां नहीं, चलो चलो अंदर बैठते है" और मैने उन्हें बाजू से सहारा देने का प्रयास किया।

"बेटा तू कौन-सा रोज हमारी खैरख्वाह पूछने आता है? वैसे भी हम कौनसे तेरे सगे हैं? हम पर क्या-क्या बीतती है उससे तुझे क्या लेना देना?" कहते -कहते उनके कदम कमरे की ओर बढ़ने लगे। कमरे में पहुँचते-पहुँचते उन्होंने शिकवे-शिकायतों की एक लम्बी लिस्ट पढ़ दी। शायद आज वे अन्दर से बहुत आहत थे।

मैंने उन्हें कुर्सी पर बैठने का इशारा किया, परन्तु वे फर्श पर बिछी चटाई पर बैठ गये।

"चाचा जी, आराम कर लिया करो। इस उम्र में भी आप सुबह उठ कर ध्याड़ी लगाने भागे रहतें हैं। अब सोनू जवान हो गया है। वह भी कमा कर ला सकता है। उसकी उम्र में हम कमाने लग गये थे। अब वह बच्चा तो रहा नहीं, उसे भी जिम्मेवारी का अहसास हो जाने दो। उसी समय पत्नी सिर पर दुपट्टा सरकाते हुए , हाथ में पानी का गिलास लिये कमरे में आई। उसने चाचा जी के पांव छू प्रणाम किया और पानी का गिलास थमाया, हाल-चाल पूछा और वापिस किचन में चली गई। थोड़ी देर बाद उसने दो कप चाय टेबल पर रख दिए।

"बेटा चाय के चक्र में क्यों पड़ी? और फिर अपने लिए क्यों नहीं लाई।"

"हम अभी-अभी चाय पी कर हटे थे, चाय तो बची हुई है , यदि आप कहते हैं तो थोड़ी-सी अपने लिए भी ले आती हूँ।"

इस तरह हम सब चाय पीने लगे। अचानक मेरी नजर चाचा जी के चेहरे पर जा पड़ी, उनकी आँखों से आंसू बह रहे थे।

"चाचा जी क्या बात है? आपकी आँखों में ये आंसू कैसे?

"क्या बताऊँ बेटा , एक ही कुल चिराग था। बड़े लाड़-प्यार से पाला था, न जाने किसकी नजर लग गई कि वह हमारे कहे से बाहर है। उसने हमें बड़ा परेशान कर रखा है। यहां तक, कल तो पुलिस उसे ढूँढते-ढूँढते घर तक आई थी। न जाने कैसे-कैसे लफंगों की संगत में रहता है? हम तो कॉलेज की फीस, कपड़े सारा खर्चा दे रहे हैं।"

और चाचा जी हिचकियाँ लेकर जोर-जोर से रोने लगे।

"चाचाजी, ये कैसी बातें कर रहे हैं आप? सोनू अभी बच्चा है। हम सब उसे समझायेंगें तो वह समझ जायेगा, लेकिन यह तो बताओ कि आखिर उसने कर क्या रखा है?"

"तुझ से क्या छुपा है बेटा ? क्यों जानकर अनजान बन रहा है ? क्या तू सब कुछ मेरे मुंह से सुनना चाहता है? घर से तो रोज कॉलेज को जाता था रास्ते में क्या करता फिरता है हमें क्या पता? हमारे तो किसी बुजुर्ग ने पुलिस नहीं देखी, इस नालायक ने ये दिन भी दिखा दिया। सोचते थे बुढ़ापे में सहारा बनेगा, लेकिन यह तो हमे जीते जी ही मारना चाहता है। अब तुम दोनों ही बताओ कि मैं क्या करूँ? गांव में कोई दूसरा ऐसा है भी नहीं जिससे मैं अपना दुःख दर्द साँझा कर सकूँ। मेरे ऊपर जब भी कोई बिपता आती है मैं तुम्हारे पास ही आता हूँ। अब आगे का रास्ता भी तुम ही बताओ।"

"चाचाजी आप हिम्मत मत हारो। इस वक्त वह घर पर है क्या?"

"बेटा सच पूछो तो उसे देखे बिना हमें भी कई दिन हो गए है।"

"आप लोगों ने तो आज तक उसकी हरकतों का जिक्र हमसे कभी नहीं किया। हाँ, कल जब चाचीजी ने उसके बारे में बातें बताई तब जाकर हमें पता चला", पत्नी ने कहा।

"बेटा मैं उसे समझानें की हर संभव कोशिश करता रहा, पर उस पर कोई असर ही नहीं पड़ा। यहां तक अब तो वह मेरे मुँह तक लगने लगा है, कुछ ज्यादा कह दिया तो, बिना खाए ही सो जाता है। उसे समझाने पर उसके या दोस्त आड़े आ जाते हैं। आजकल आधी-आधी रात तक मोबाइल पर न जाने कहां, किससे बातें करता रहता है ? नाश हो इस मोबाइल का, हमारा टाइम फिर ठीक था। बेटा भगवान ही मालिक है"

"चाचाजी आप ठीक कहते हैं ज्यादा आजादी भी आजकल की औलाद को बिगाड़ देती है। बच्चे मनमानी करने लगते हैं। आज हमारी मान-मर्यादा चरमरा गई है।"

"बेटा , हमारे भी अपने जमाने में दोस्त होते थे। हमारी भी चौकड़ी बैठती थी। आस-पड़ोस में गबराई (गोबर ढोने के लिए एकत्रित होना) गुड़ाई (मक्की आदि फसलों को गोड़ने के लिए एकत्रित होना) में उछल-कूद, सारी-सारी रात ताश खेलना, हंसी मजाक करना, दिन भर खेलते थे पर हमनें माँ-बाप की इज्जत पर आंच तक नहीं आने दी। कोई गलत काम न हो जाये बस यही डर बना रहता था। परन्तु आज की औलाद सारी सीमाएं लाँघ चुकी है।"

"चाचाजी आप अकेले नहीं है, इस दुनिया के सभी माता-

पिता अपनी औलाद से किसी-न-किसी वजह से परेशान है। उनका खाना पीना हराम हो गया है" और कहते हुए मैं सामने रखे पानी के गिलास को एक ही साँस में न जाने कब गट कर गया।

"बेटा, उसे एरों-गैरों के साथ बाहर जाने से रोकता हूँ। पर उसके मुँह से अक्सर यही सुनने को मिलता है,

"पिता जी अब मैं दूध पीता बच्चा नहीं हूँ। अब मैं बालिग हो गया हूँ। अब मैं अपने तरीके से जिंदगी जिऊंगा।"

साथ में खड़े उसके दोस्त हम बूढ़ों पर उस समय हंस रहे होते हैं।

"चाचाजी आदमी अपनें बच्चों के साथ अंत तक चिपका रहना चाहता है। ऐसा कर हम खुद भी परेशान रहते हैं और वे भी परेशानी महसूस करते हैं।"

"उसे हमारी इज्जत की क्या परवाह। यदि पुलिस ने उसे पकड़कर अंदर कर दिया तो गांव बिरादरी में मुझे जो बेइज्जत होना पड़ेगा, उससे उसे क्या फर्क पड़ता है?"

हम दोनों ने चाचा जी का मनोबल बढ़ाने का पूरा प्रयास किया। साथ ही उन्हें आश्वस्त भी किया।

"भले ही सोनू की संगति अच्छी नहीं है, परन्तु वह बुरा लड़का नहीं है। पुलिस तो उसे केवल शक के आधार पर ढूँढ रही है। देख लेना सोनू पर कोई आंच नहीं आयेगी।" कहते हुए पत्नी की आँखें भर आई।

"भगवान करे तुम्हारी बात सच हो। जब से यह सब सुना है, मुझे न तो भूख है और न ही प्यास।"

"चाचा जी ,तो क्या आपने खाना नहीं खाया क्या" पत्नी ने आश्चर्य से उनके मुँह की ओर ताकते हुए पूछा।

"बेटा कल से ही हमारे घर में चूल्हा तक नहीं जला"

सुन कर पत्नी उठी, आँखों को दुपट्टे से पोंछती हुई किचन की ओर गई और दो परांठे प्लेट में डालकर टेबल पर रख दिये। चाचा जी ने उन परांठों की तरफ देखा तक नहीं और इधर -उधर हाथ घुमा कर अपनी लाठी ढूंढने लगे।

"बेटा, बचपन से खा ही तो रहा हूँ। अब तो पेट भी भर गया है। बस अब यही इच्छा है कि ऊपर वाला अपने पास बुला ले तो चैन मिले।"

पल भर में खबर आग की तरह पूरे गांव में फैल गई। आते-जाते लोग सोनू के बारे में ही बातें करते। जितने मुंह उतनी बातें।

"अरे, सुना है खुद ही खाता-पीता तो भी दिल मानता, पर वह तो दूसरों के बच्चों को भी बिगाड़ने पर तुला हुआ था।"

दो दिन पहले तक जो बात केवल दो परिवारों के बीच थी, तीसरे दिन पूरे गांव में आग की तरह फैल गई। घर-घर में चर्चा होने लगी। माँ-बाप अपने लाडलों को नसीहत देने में जुट गए।

"अरे अगर गलत रास्ते पर चलोगे तो रतिये के सोनू की तरह भुगतोगे। इससे अच्छा तो बेचारा बे-औलाद ही था। कम से कम ये दिन तो नहीं देखने पड़ते। क्या मिला लड़का पा कर भी ? कम से कम लड़कियां इस तरह के दिन तो नहीं दिखाती"

पीठ पीछे लोग उल्लाहनों और तानों की लड़ी पिरो देते। गांव में उड़ती-उड़ती खबर आई कि सोनू को पुलिस ने पकड़ लिया है और उसे पांच दिन का पुलिस रिमांड भी मिल गया है। चाचाजी दिनभर थाने, कचहरी के तथा सुबह-शाम पंच प्रधान के चक्कर काटते फिरते। कहीं से भी सहायता की उम्मीद की कोई किरण उन्हें दिखाई नहीं दे रही थी। ऊपर से चाचीजी की तबीयत भी दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। चाचाजी बेचारे दवा-दारू का इंतजाम करे या बेटे की जमानत का? पड़ोसी होने के नाते हम लोगो से भी जो कुछ बन सका, सहायता करने से पीछे नहीं हटे। दिन-रात दौड़ धूप की। अच्छे वकील से बात की। जिन्होंने भरोसा दिलाया, "जमानत के लिए जल्दबाजी न करें। जल्दबाजी से केस बिगड़ सकता है,क्योंकि ऐसे केसों में बहुत जल्द जमानत नहीं मिलती, क्योंकि जो जुर्म इसने किया है उसके साथ अभिभावकों की भावनाएं तथा युवाओं की जिंदगी जुडी हुई है। इसलिए सब्र से काम लें। संयम रखें। जमानत करवाना मेरा काम है, आप केवल फीस का इंतजाम करें"

चाचाजी पर वकील साहब की सलाह का कोई असर नहीं दिख रहा था। वे कभी उनके पांव पड़ते तो कभी रोते धोते, सोनू मेरा इकलौता बेटा है, "यदि उसे कुछ हो गया तो मैं अपनें प्राण दे दूंगा, मैं जिन्दा नहीं रहूँगा, वकील साहिब मेरे सोनू को जल्द से जल्द छुड़वा लो।"

मैंने उन्हें सँभालते हुए खड़ा किया। वकील साहब के साथ फीस तय हुई, जिसे दो किस्तों में जमा करवाना था। आधी कल सुबह तथा आधी जमानत होने के तुरंत बाद। फीस जमा होने के बाद ही वे केस की फाइल तैयार करेंगे, ऐसा उन्होंने कह दिया था और हम दोनों बाहर आ गए।

वकील साहब के दफ्तर से बाहर निकलते ही कल सुबह के लिए पच्चीस हजार का इंतजाम, बस यही टेंशन दिमाग में थी।

"चाचाजी आप कितने रुपयों का इंतजाम कर सकते हो। बेटा मेरे पास तो इस वक्त नकद ढाई-तीन हजार हो सकते हैं। लेकिन तेरी चाची के कुछ गहने पड़े हैं, वो कब काम आएंगे। सोचा था सोनू की बहू के लिए इसे धुलवा के नया बनाएंगे, अगर इससे कुछ बन जाये तो इसे गिरवी रख देते हैं। मेरे पास खेत हैं उन्हें बेचक रकम का इंतजाम कर लेंगे। एक बार बस वह इस झमेले से छूट जाये। वह निर्दोष साबित हो जाये, यही काफी है। बुजुर्गों की खेती बहुतेरी पड़ी है। नहीं तो कोई हाथ का काम सीख लेगा, किसी के यहाँ ध्याड़ी-मजदूरी कर लो तो भी इंसान दो वक्त की रोटी तो कमा ही सकता है। आदमी की सिर्फ कमाने की नियत होनी चाहिए।"

"चाचाजी खेत के लिए अभी कौन खरीददार बैठा है? गांव

में फिर कौन इतनी बड़ी रकम इन खेतों की देने वाला है? चाचाजी आप अभी बेकार की चिंता छोड़ें। कल की फीस तो मैं कहीं न कहीं से जमा करवा ही दूंगा" बस स्टैंड पर आकर हमने घर की बस ली और वापिस घर आ गए।

अगले दिन सुबह हम दोनों सोनू से थाने में मिलकर सीधे वकील साहब के दफ्तर में पहुँच गए। फीस जमा करवाने के बाद उन्होंने फाइल तैयार कर जगह-जगह कागजों पर चाचाजी के अंगूठे के निशान लगवाये और केस कोर्ट में दाखिल कर दिया। "कल केस कोर्ट में हियरिंग के लिए लग जायेगा, आप लोग अभी घर चलें जाएँ , कल सुबह देख लेना" हमें बता कर वकील साहब पीछे मुड़ कर दूसरे क्लाइंट से बात करने लगे।

कुछ दिनों तक इसी तरह पेशियों का सिलसिला चलता रहा। केस में तारीख-पर-तारीख मिलती रही। चाचाजी पेशियों पर जाते रहे और मैं हर रोज की तरह अपनी ड्यूटी पर नियमित जाने लगा। एक दिन शाम को चाचा जी मेरे घर आ गए , "बेटा शायद कल सोनू की जमानत हो जाएगी।"

वकील साहिब कह रहे थे, "रतिया जी लगता है अब आपका और इंतजार खत्म हुआ ,यदि जज साहब कल बैठे तो सोनू की जमानत कल ही हो जाएगी। नहीं तो केस और लम्बा लटक सकता है। क्योंकि जज साहब कल के बाद लम्बी छुट्टी पर जाने वाले हैं।"

कुछ दिनों तक इसी तरह पेशियों का सिलसिला चलता रहा। केस में तारीख-पर- तारीख मिलती रही। चाचाजी पेशियों पर जाते रहे और मैं हर रोज की तरह अपनी ड्यूटी पर नियमित जाने लगा। एक दिन शाम को चाचा जी मेरे घर आ गए , "बेटा शायद कल सोनू की जमानत हो जाएगी।"

"बेटा वे कल के लिए फीस की बात भी कर रहे थे। इसलिए तुझे भी चलना पड़ेगा क्योंकि लिखा पड़ी मेरे बस से बाहर है।"

"हाँ फीस तो कल जमानत से पहले जमा करवानी ही पड़ेगी।"

"उसकी चिंता अब तुम मत करो बेटा। फीस का इंतजाम मैंने कर लिया है। तुम्हारे तो पहले ही मेरे ऊपर सैंकड़ों अहसान हैं।"

"चाचाजी आपने किसी से उधार ले लिए क्या ?"

"बेटा शायद मैं तुम्हें बताना भूल गया था , मैने तेरी चाची के सारे गहने गिरवी रख दिए हैं। भगवान ने चाहा तो गहने तो फिर भी बन जाएंगे। परन्तु..........."

रात बहुत हो चली थी, चाचा जी मुझे कल सुबह जल्द तैयार हो जाने को कहकर चले गए।

सुबह मैं जल्दी जागा चाय-वाय पी, नहा धोकर पहली बस के लिए तैयार हो गया। चाचाजी ने मुझे आवाज लगाई और हम दोनों सड़क की ओर चल दिए।

बस उस दिन अपने सही टाइम पर थी। रास्ते भर चाचाजी की आँखों में एक अजीब-सी चमक थी। भगवान की प्रार्थना में उनके हाथ जो घर से जुड़े वे बस में पूरे रास्ते जुड़े रहे। बार-बार एक ही बात दोहरा रहे थे, "बस एक बार सोनू रिहा हो जाये। उल्लू के पठे को खेतों में काम करवाऊंगा। कॉलेज जाना तो कल से ही बंद समझो, कहते-कहते रोने लगे। कितने दिन हो गए हम लोगों ने पेट भर खाना नहीं खाया। उसके घर वापसी पर फिर से कितनी रौनक आ जायगी, यह बात उसकी समझ से बाहर है। उसकी माँ कितनी खुश होगी, रो-रोकर जिसकी आँखों के आंसू भी सूख चुके हैं। वह आज बाहर आ जाये मैं उसे तेरे पास ही रखूँगा। तू ही उसे सुधार सकता है। तू उसे अपने जैसा क्यों नहीं बना देता? मैं तेरे पांव पड़ता हूँ। मैं सारी उम्र तेरा नौकर बन कर रहूँगा।"

"चाचाजी अब चुप भी हो जाओ। सब्र से काम लो।"

समझा-बुझा कर बड़ी मुश्किल से मैं उन्हें कोर्ट तक पहुँचाने में कामयाब हो पाया। कोर्ट पहुँच कर वकील साहब से मिले। उन्होंने हमें सलाह दी कि हम पीछे वाली चेयर्स पर बैठ जाएँ।

"दो तीन केसों के बाद आवाज पढ़ जाएगी, हमारा केस लंच से पहले लग जायेगा।" कहते हुए वकील साहब दोनों हाथों में फाइलें उठाये कोर्ट में अंदर चले गए। वकील साहब की सलाह के अनुसार हम कोर्ट के अंदर पीछे कोने में जाकर बैठ गए। इंतजार में दोपहर हो गई। पुलिस के सिपाही मुजरिमों को लेकर कोर्ट के बाहर बरामदे में खड़े थे, परन्तु उन में सोनू कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। जज साहब उठ कर लंच के लिए निकल गए। वकील साहब रुमाल से माथे का पसीना पोंछतें तथा हांफते हुए हमारे पास आये।

"अभी-अभी खबर मिली है कि पुलिस सोनू को कोर्ट ला रही थी कि रास्ते में कहीं उसने ऊँचे ढांक से छलांग लगा दी। उसे काफी गहरी चोटें आई है, हालत बहुत गंभीर है। पुलिस उसे अस्पताल लेकर गई है। आप लोग ऐसा करो कि जल्द से जल्द अस्पताल पहुँच जाओ, जैसे ही मैं फ्री होता हूँ मैं आपको वहीं मिलता हूँ। सुनते ही चाचा जी एकटकी लगाये खाली पड़ी जज साहब की कुर्सी को देखते जा रहे थे। वे जहां बैठे थे पूरी तरह वहीं जम गए थे। आंसुओं की एक धारा उनकी आँखों से होती हुई कमीज के पल्ले पर आकर ठहर गई थी।

"बेटा जिस बात का डर था वही हुआ। नालायक को समझाते-समझाते थक गया। गँवा बैठा न अपनी जान।"

"चाचाजी घबराने की जरूरत नहीं है , उठो चलकर उसका

हाल-चाल पता करते हैं, ऐसी अशुभ बातें करना इस वक्त अच्छी बात नहीं है" और वे इधर-उधर हाथ घुमा कर लाठी उठा खड़े हो गए। अस्पताल पहुँचते ही हम सीधे कैजुअलिटी वार्ड की ओर चाल दिए। मेरा मन अंदर से बड़े संकट में था, यदि सचमुच सोनू को कुछ हो गया तो मैं बुजुर्ग को कैसे सम्भालूंगा? वार्ड के बाहर ही पुलिस के दो सिपाही खड़े थे, जो चाचा जी को पहचानते थे। हमें रोकते हुए बोले, "आप लोगों ने थोड़ी देर कर दी, सोनू इज नो मोर!" सुनते ही मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। मुझे जीवन में पहली बार लगा जैसे मेरे शरीर के अंदर से कोई अंग निकाल दिया गया हो। मेरी हालत को देखते ही चाचाजी भांप गए जरूर कोई अच्छी खबर नहीं है।

"क्या बात है बेटा क्या कह रहे हैं ये पुलिस वाले, देर कर दी, तो ठीक है परन्तु जो अंग्रेजी में बोला वो तो मेरी समझ में कुछ नहीं आया।"

"चाचाजी जो होना था सो हो गया। ऊपर वाला भी क्या-क्या रंग दिखाता है। "सुनते ही चाचा जी धड़ाम से फर्श पर गिर पड़े। उनकी लाठी, चश्मा फर्श पर गिरकर कहीं दूर तक चले गए थे। मैं क्या करूँ कुछ समझ नहीं पा रहा था? कुछ देर के लिए लोगों की एक भीड़ इकट्ठी हो गई, जो जल्द ही छंट गई। चाचाजी मेरे सामने निर्जीव अवस्था में पड़े थे। मैं असहाय चारों तरफ से मुसीबतों में घिर गया था। नजदीक कोई नहीं आ रहा था जिसे सहायता के लिए पुकारूँ। पुलिस वाले ने ही अपने बैग से पानी की बोतल निकाल कर मेरी ओर बढ़ाई। मैंने बोतल से पानी के छींटें चाचा जी के मुहं पर डाले। उन्होंने सिर हिलाया, आँखें खोली।

"चाचाजी अब तबियत कैसी है।"

"बेटा मेरी तबियत को कुछ नहीं होता। तू मेरा एक काम कर मुझे थोड़ा-सा जहर लाकर दे दे। यही मेरी आखरी इच्छा है अब मैं जी कर करूंगा भी क्या? किसके लिए जियूँगा। इस पागल के सिवा हमारा इस दुनिया में कौन था?"

"बाबा जी चलो चल कर साइन कर दो, कुछ ही देर में डेडबॉडी मिल जाएगी। घर पर भी किसी के पास सन्देश पहुंचा दो" कहता हुआ वह पुलिस वाला वार्ड में चला गया।

पुलिस की गाड़ी गांव में पहुंची, अँधेरा होने को था। गांव के सात-आठ लोग सड़क पर पहुँच गए थे, जिन्हें मैंने पत्नी के द्वारा खबर पहुंचा दी थी। डेडबॉडी हमरे हवाले कर, गाड़ी वापिस चली गई। पूरा गांव शोक में डूब गया था।

खबर मिलते ही चाचीजी का क्या हाल हुआ होगा यही विचार रह-रह कर मेरे मन में घूम रहा था। इतनी बड़ी दुखद खबर उन्हें कैसे सुनाई गई होगी ? मेरे मन में बार-बार यही खयाल आ रहा था।

चादर की डोली बना कर हम डेडबॉडी को घर ले आये। मेरी पत्नी गांव की पंद्रह-बीस औरतों के साथ पहले ही आँगन में पहुँच चाचीजी को संभाले हुए थी। हम आँगन में पहुंचे, लाश को जमीं पर रखते ही चाची जी पागलों की तरह उठकर अपने लाडले से लिपट गई। उस समय वह बिलकुल भी नहीं रो पा रही थी। मृत बेटे से लिपटी कुछ पल तो बिखरे सफेद केशों में व सफेद शॉल ओढ़े वह ऐसे लग रही थी मानो बर्फ के ढेर को आदमी की आकृति में बिठाया गया हो। एकाएक चाची ने रोना शुरू किया कि वहां पर मौजूद सभी को रुला दिया। बेटे की मौत ने उन्हें अंदर से पूरी तरह तोड़ दिया था। वह छाती पीट-पीट कर रो रही थी। कभी वह अपना सिर दीवार के साथ तथा कभी फर्श पर पटक रही थी।

सारे रिश्तेदार शाम को ही पहुँच गए थे। रोते-रोते आने जाने वालों के विलाप से रात बड़ी भावुक बन गई थी। सुबह होते ही सारी तैयारी कर ली गई थी। चाचा-चाची किसी भी कीमत पर लाश को उठाने नहीं दे रहे थे। नाते-रिश्तेदारों तथा गांव के बुजुर्गों द्वारा समझाने-बुझाने के बाद ही हम लाश को ले जा सके। अश्रुपूर्ण एवं दुखदाई अंतिम संस्कार पूर्ण हुआ।

धीरे-धीरे लोग वापिस जाने लगे। चाचा- चाची कमरबंद कस कर आने-जाने वालों के सामने खड़े रहे। एक-के-बाद-एक दिन बीतते चले गए। तेरहवें दिन धर्मशान्त की रस्म भी पूरी हो गई।

धर्मशान्त को हुए अभी एक हफ्ता भी नहीं बीता था कि एक शाम चाचाजी रास्ते से ही मुझे यह कह कर बुलाने लगे कि जल्दी से मैं नीचे आ जाऊं। तेरी चाची की तबीयत बहुत खराब हो गई है। वह कुछ भी नही बोल रही।

"चाचाजी क्या बात है ? क्या हो गया चाची को "

रोते-रोते उन्होंने बताया "पता नहीं बेटा, अभी घर पहुंचा तो देखा कि वह चुप-चाप सोई हुई है। बार-बार आवाज लगाने पर भी जब वह नहीं उठी तो मैं भागा-भागा सीधा तुम्हारे पास आ गया। वह बिलकुल अचेत पड़ी हुई है।"

मैंने जल्दी से चप्पल पहनी और सीधा चाचा जी के घर की ओर दौड़ गया। सुनते ही पत्नी भी मेरे पीछे भागी। चाचीजी अंतिम सांसें न जाने कब की ले चुकी थी। पूरा गांव एक बार फिर से शोक में डूब गया था। बेटे के वियोग ने माँ को अधिक देर जीवित नहीं रहने दिया। चाचा जी के जीवन में अकेलापन व एक सन्नाटा भर गया था। कुछ समय बाद उनकी आँखों की रोशनी चली गई थी। उन्हें सुनाई भी कम देने लगा था। अब उन्होंने काम पर जाना भी बंद कर दिया था। वह आँगन में बोरी पर लेटे सारा-सारा दिन अपनी किश्ती टोपी से मुंह ढके धूप सेकते रहते थे। आने जाने वाले को वह केवल आवाज से या फिर कदमों की आहट से ही पहचान पाते थे।

गांव व डाकखाना सलाना
तहसील व जिला शिमला
मो. 9459969717

कहानी

स्वीकार-अस्वीकार

● जितेन्द्र शर्मा

हुआ यूं कि अच्छे-खासे निगम जी के माथे पर संध्या के साथ लापता होने का किस्सा यूं चिपका कि जिंदगी भर ठनक के साथ चिपका ही रहा। उन्हें देखते ही, वो किस्सा याद आए बिना नहीं रहता। उन दिनों की बात है, जब मैं बारहवीं कक्षा में था। श्री पी. एन. निगम मेरे कक्षा अध्यापक थे और गणित पढ़ाते थे। खास बात यह थी कि गणित जैसे विषय को बड़े सहज व सरल ढंग से पढ़ाया करते थे। छात्रों में गणित में रुचि उत्पन्न हो गई थी। मुझ जैसे गणित से घबराने वाले साधारण छात्र को भी एक-के बाद-एक हल करने में आनंद आने लगा था। गणित में वे पारंगत थे, कोई भी प्रश्न उन्हें अटकाता नहीं था- सहजता से वे प्रश्नों को हल कर देते। पढ़ाने की विधि आसान व रोचक थी। कठिन विषय छात्रों को आसान करके पढ़ाते। इसी कारण गणित के अध्यापक के रूप में उनकी ख्याति पूरे शहर में थी। शहर के दो रईसों के यहां भी वे अच्छी रकम लेकर ट्यूशन पढ़ाने जाया करते थे। अन्य अध्यापकों का लुंज-पुंज तरीके से रहना उन्हें पसंद नहीं था। वे कायदे से साफ-धुले, प्रेस किए हुए कपड़े पहनते। सेंट लगा सफेद चिट्टा, तह किया रूमाल जेब से निकालकर नाक साफ करते। विदेशी 'परफ्यूम' की खुशबू से उनके कक्षा में प्रवेश करते ही कमरा खुशबू से महक उठता। उनका व्यक्तित्व छात्रों को अच्छा लगा। इकहरा बदन, सांवला रंग, तीखे नाक-नक्श, आत्मीय आंखें, पतली और तलवार कट हल्की मूंछें, मंझला कद, गुरुजी को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करते। वे विषय की गहरी पैठ व शाही अंदाज के कारण छात्रों में लोकप्रिय थे। सबसे सम्मान पाते। कुछ छात्रों के वे 'रोल-मॉडल' थे। वे उन जैसा दिखना चाहते थे।

यकायक विश्वास करना कठिन था कि व्यवस्थित व अनुशासित सर अपनी शिष्या को लेकर चम्पत हो गए। यह एक सम्मानित व्यक्ति पर दाग था, पर दाग सच्चाई पर टिका था।

उनके इस प्रकार अदृश्य होने पर, छात्रों में मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई। कुछ इसे गलत ठहराते, तो कुछ कहते, इसमें गलत क्या है? यह स्वाभाविक है। जहां आग और फूंस साथ होगा, वहां पर आग लगेगी ही। ये कौन तय करता कि क्या सही है, और क्या गलत। क्या होना चाहिए और क्या नहीं। हर आदमी अपनी दृष्टि से सही होता है, जो उसे गलत समझ रहा है, वह भी अपने नजरिए से सही होता है।

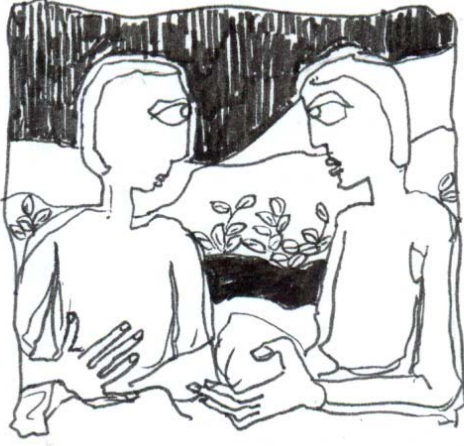
अधेड़ व बुजुर्ग इस कृत्य को अनैतिक व अपराध की श्रेणी में रख रहे थे। अधिकतर युवाओं का तर्क था- लड़की बालिग थी, अपनी इच्छा के साथ गई, तो इसमें अपराध जैसा क्या है? शास्त्रों में भी तो गंधर्व विवाह का खूब वर्णन मिलता है।

जंगलात के नामी ठेकेदार सुरेश चंद गर्ग की अठारह-उन्नीस वर्षीय बड़ी आंखों वाली सुंदर, चंचल कन्या को निगम सर पिछले दो साल से उनके घर पर जाकर ट्यूशन पढ़ा रहे थे। आलीशान कोठी डालनवाला में थी, उसके बरामदे में मेज और कुर्सी बिछी थी। वहीं पर सबकी आंखों के सामने सर संध्या को पढ़ाया करते। संध्या की मां स्वयं सर के लिए चाय-पानी, नाश्ता आदि का प्रबंध करवाती। उसे संतोष था कि लड़की अच्छे अंक लेकर पास हो रही है। पढ़ाई के अलावा और क्या खेल चल रहा है, इसकी भनक घर के किसी सदस्य को नहीं थी। शाम चार बजे संध्या मां से कहकर गई थी कि अपनी सहेली साधना के घर जा रही है। संध्या गई तो फिर लौटी नहीं। लौटती तब अगर वहां गई होती। संध्या के घर पर खलबली मच गई। चारों ओर लोग दौड़ाए गए। कुछ अता-पता नहीं चला। किसी ने बताया कि दोनों को रेलवे स्टेशन पर देखा गया था। अब कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी कि संध्या निगम सर के साथ ही गई है।

जगह-जगह पोस्टर चिपकाए गए और थाने में रिपोर्ट भी दर्ज करा दी गई, पर कुछ पता नहीं चला। एक माह से ऊपर हो गया।

जिन लोगों की निगम सर से घनिष्ठता थी, उनका कहना था कि सर ने कच्ची गोलियां नहीं खेलीं। लड़की जरूर बालिग रही होगी, तभी सर उसे ले भागे। कोई अंदाजा लगाता, जरूर मुंबई गए होंगे। बड़े बाप की बेटी है, घर से खूब माल लेकर गई होगी। कोई

यकायक विश्वास करना कठिन था कि व्यवस्थित व अनुशासित सर अपनी शिष्या को लेकर चम्पत हो गए। यह एक सम्मानित व्यक्ति पर दाग था, पर दाग सच्चाई पर टिका था।



कहता- आस-पास गए होंगे, शायद मसूरी गए हों। दो-चार दिन में लौट आएंगे, देख लेना। शहर में पान की दुकान और नुक्कड़ पर चर्चा जोरों पर थीं। कुछ युवक गुरु जी के इस साहसिक कदम के प्रशंसक हो गए थे और सोचते कि उन्हें मौका मिले तो वे भी ऐसा करके दिखा सकते। चर्चा की आंच धीमी नहीं पड़ी। एक माह से ऊपर हो गया था, दोनों का कोई सुराग नहीं मिला। स्थानीय समाचार-पत्र में प्रथम पृष्ठ पर समाचार प्रकाशित हुआ कि निगम सर और संध्या विवाह के बंधन में बंध गए। उसी शाम रोज ही साथ घूमने वाला मेरा मित्र अखबार की प्रति के साथ आया। उसी अखबार में छपी उस घटना को मुझे सुनाया। लिखा था- संध्या और निगम सर ने नैनीताल में कोर्ट मैरिज की है। उनके पास विवाह का सर्टिफिकेट है। मेरा मित्र जो बहुत ही अधिक संदेवनशील था, उस घटना को अपने अंतर की तह तक महसूसने में लगा था। उदासी से उन्हीं की चर्चा करता और फिर बात करते-करते कहीं दूर खो जाता। गुरु जी के छात्रों व चाहने वालों ने सुख की सांस ली। चलो अच्छा हुआ! प्रेम विवाह कर गुरुजी ने साहसिक कार्य किया और अपनी साख बचाए रखी पर निगम सर के लिए आगे का सफर ठीक नहीं रहा।

समाचार-पत्र में तीसरे दिन छपा 'निगम सर हिरासत में'। स्थानीय समाचार-पत्रों की बिक्री बढ़ गई। इस कांड की रोज ही, नई खबरें सुनने में आ रही थीं।

संध्या के साथ विवाह बंधन में बंधने के बाद निगम सर उसे अपने एक कमरे के मकान में ले आए। अगले दिन पुलिस की सहायता से जंगलात के नामी धनी सम्मानित ठेकेदार सुरेश चंद गर्ग अपनी बेटी को, उसकी इच्छा के विरुद्ध जबरन अठारह कमरों और सात बाथरूम वाले बंगले में ले आए। प्यारी-सी दिखने वाली सांवली, विशालाक्षी संध्या ने प्रतिरोध किया। खाना-पीना छोड़ दिया। कुछ भी हो, निगम सर के साथ ही रहेंगी। उसने उनके साथ विवाह किया है- वह उन्हें प्यार करती है। उनके बिना नहीं रह सकती। घर-परिवार द्वारा सख्ती बरतने पर भी उसका मन अटल रहा। तंग आकर उसने आत्महत्या का प्रयास किया, पर उसे बचा लिया गया। कोर्ट में केस चल रहा था। सर संध्या को ही जीवन साथी बनाने पर अड़े थे। हम लोग सोचते थे जीत सर की ही होगी। संध्या और वे पति-पत्नी के रूप में रहकर एक मिसाल प्रस्तुत करेंगे। पर ऐसा हो न सका।

सर को स्कूल से आचरण-दोष के कारण निकाल दिया गया। वे एक साल तक मुकद्दमा लड़ते रहे। संध्या को कड़े पहरे में घर के अंदर कैद कर दिया गया। दोनों मिल नहीं पाए। आर्थिक तंगी के कारण सर टूट गए। मुम्बई ले जाकर एक उद्योगपति के साथ संध्या को ब्याह दिया गया। निगम सर और संध्या, नदी के दो किनारे हो गए। आपसी सहमति पर गर्ग साहब ने मुकद्दमा वापस ले लिया। निगम सर अकसर ओल्ड डालनवाला की आबकारी में दिखाई पड़ने लगे।

यह कहानी पचास साल पुरानी है। जब देवदास पिक्चर देखकर युवाओं का मूड़ हफ्तों खराब रहता था। वे देवदास के संवाद बोलते थे और शराब पीते थे। "कौन कम्बख्त कहता है कि मैं जीने के लिए पीता हूं। मैं तो पीता हूं कि सिर्फ सांस ले सकूं।"

उसी समय की बात है- मेरे हर सुख-दुःख का साथी और घंटों साथ में बिताने वाले मित्र ने अंग्रेजी साहित्य, एम.ए. में दाखिला ले लिया था। लेकिन सिर्फ चार महीने बाद उसने कॉलेज जाना छोड़ दिया। वह उदास रहने लगा। कारण था टॉमस हार्डी का उपन्यास 'टैस'। मिलने पर वह कहता टेस का क्या कसूर था कि उसे जीवन भर यातना भोगनी पड़ी। हम लोग परिस्थितियों के शिकार हैं। उसे उस पुस्तक के भ्रम-मंडल से निकलने में लम्बा समय लगा।

आज की बात होती तो ऐसा न होता। मोबाइल एस.एम.एस. और फेसबुक द्वारा दोनों का सम्पर्क-संवाद बना रहता। संध्या के पहले विवाह के बाद और दूसरे विवाह के पहले भी। संचार क्रांति ने प्रेम-प्रक्रिया बदल दी। मंद गति का प्रेम राग, हाथ में आए मोबाइल से सहज प्राप्य और तीव्र गति का संगीत हो गया।

एक वो भी जमाना था
प्यार ही प्यार था जब
अब सब कुछ है
हाथ में आईफोन है
नहीं है तो
जेब में सहेजा खुशबुओं भरा
प्रेम पत्र
और शब्दों में
उकेरा गया अपनापन।

रायपुर रोड, अधोईवाला, देहरादून, उत्तराखंड, मो. 95571 63702

कहानी

रामदेई

● डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

पसीने से तार-तार हो रखी थी रामदेई। जैसे ही उसने घास का भारा चौक में बिसाया, कमर पर लपेटी धोती का पल्लू खोला, सिर पर रखा, फिर उसी पल्लू से पसीने को साफ किया। आसमान की तरफ देखा। अचानक बादलों के बीच से सूर्यदेव दिखाई दे गए। घाम पणधारियों (बिना घड़ी समय जानने का मापन) को भी पार कर चुका था। यह जान वह जैसे कांप गई। अभी उसकी सास पूरे गांव को सिर पर रखेगी और गला फाड़-फाड़ कर कहेगी-

'दुष्ट! यह समय है पुंगडे, खेत से घर आने का........ तेरे सोरज्यू (ससुर) भूख से तेबारी में औंधे मुंह सिर किए बैठे हैं...। लोगों के चूल्हों की आग बुझ चुकी है... सुबह से खर्क में भैंसी तिस्वोकि (प्यासी) ही है........ गऊशाला में आटी (गोबर) मूंडा भर ऊपर आ गई है। घर में पानी की गागर, बंठे, तमाळि सब खाली हैं.... तेरे बाप को इसीलिए दिए थे हमने पैंसे कि तू लाट साब की बच्ची बन बस, खाने की बात पर घर आ। लोग दुणगोड सक कर तीसरे गोड के लिए पुंगड़े चले गए हैं..... जाने किस बुरी घड़ी लाए हम ऐसी कुजात ब्वारी!' जाने एक ही श्वास में विषैले नाग सी बातों के कितने डंक मार देती सास।

बस, घुट-घुट कर रह जाती रामदेई। रतबेणे में गऊशाला की आटी निकालकर, उन सबके लिए खाना बनाकर जैसे एक रोटी खुद के लिए निकाली ही थी खाने को, कि सास ने टोक दिया-

'ब्वारी अभी क्या आग लग गई तेरे पेट में ... पहले एक पुंगड़ा गोड के आ.... सारी पुंगड़्यों में खौड़ (खर-पतवार) से काल उठ गया है... तुझे पहले अपने पेट भरने की पड़ी है.... जा फटाफट .... और सुन....... पुंगड़ा सक कर (पूरा कर) ही आना घर' मुंह तक गया रोटी के कौर का हाथ अचानक रुक गया। वह सब ढककर टोकरी में रखा व नीने पेट चली गई कोदे के खेत में चाला (हरा खर-पतवार) निकालने।

सावन का घुप्प आकाश। पहाड़ियों पर चारों ओर छाया हुआ कोहरा। जी भर रोने का मन करता रामदेई का, कि कैसे भाग लेकर आई है वह इस संसार में। न आप घर न बाप घर...। पिसती रहती है दिन-रात काम की चक्की में...फिर भी कौन है ऐसा जो उसके काम व मेहनत की रत्ती भर भी कद्र कर दे। सास पुंगड़्यूं में आने का नाम नहीं लेती... काम को हाथ तक नहीं लगाती... बस-सब कुछ रामदेई के भरोसे। ...और बिना काम के खिट-खिट ऐसी कि जैसे अंतड़ियां रख देती निकालकर।

पुंगड़े में कोदा कम व खौड़ अधिक... ज्यों लगी काम करने तो डूब गई धुन में... ऊपर से पुंगड़े को पूरे सकने की मजबूरी अलग। भूख से पेट-पीठ एक हो रहे थे। सारियों से सब लोग भात खाने या बनाने घर चल दिए थे... अभी आधा पुंगड़ा भी नहीं सका था रामदेई ने...। बिना काम सके कैसे जा सकती है घर। लोगों के घरवाले पुंगारियों के लिए रोटी-पानी लेकर आए। लेकिन रामदेई का कौन था जो उसके लिए कुछ भी ला देता।

सावन के आकाश की तरह ही भर-भर आता उसका भावुक मन। रो-रोकर, खुदेड़ गीत गा-गाकर जैसे-तैसे गुजर-बसर कर लेती रामदेई अपना जीवन। तीज-त्योहारों पर धियांणियां माइके जातीं तो मन मसोस कर रह जाती रामदेई... निरमैत्या जो ठहरी। किसके पास जाए... कोई भी तो नहीं है माइके के घर में... जब तक सुभाष व गंगा भैजी थे घर में ... जब-तब न सही... काम के बगत तो बुला ही देते थे माइके ...।

इस बहाने गांव की सखी-सहेलियों, बड़े-बुजुर्गों व गांव के देवी-देवताओं के दर्शन हो जाते। धन्य हो उठती रामदेई....... जब-तब मैत्यूं व ग्रामदेवों का आभार करना न भूलती। लेकिन अब ताले टंके हैं पूरी तेबारियों पर। जाकर रोना आता है।

मां-पिताजी कब उसे छोड़ चल बसे थे, ठीक-ठीक याद नहीं है रामदेई को। जब से उसने होश संभाला तब से स्वयं को किसी न किसी का काम करते ही पाया। मो-पेड़े व सोरे-भारों की ही नहीं पूरे गांव की बहन-बेटी थी रामदेई। बात खड़ीक, बांज, क्वीर्याळ, तिमले व भैवंल के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों से घास काटने की हो, चीड़-देवदारु के बड़े पेड़ों से सूखी लकड़ी काटने की, सुदूर के जंगलों से पथेला, बांज का घास-पात लाने की या फिर नाक की धार सी

चढ़ाई वाले घट्ट से अनाज पीस कर लाने की, या घुटने-घुटने पानी में सेरों की रोपाई की लवाई-मंडाई या बौण-कमौण (खेती-किसानी) में खेती के किसी जटिल कार्य को करने की... हर कार्य का एकमात्र विकल्प थी पूरे गांव में रामदेई।

जिस दिन विदा हुई, गांव की चाची-ताइयों की आंखें दिनों तक नम रहीं। वे डांडी-घाटियां, वे जंगल सूने लगने लगे जिन्हें अपनी कोकिल कंठी खुदेड़ गीतों के स्वर से वह जब-तब गुंजा दिया करती थी।

कितनी ही बार एकांत में सोचा करती रामदेई... कि भगवान किन्हीं-किन्हीं को आजीवन ही दुखों का उपहार किस निर्ममता से दे देते हैं... और किसी की झोली में सुख ही सुख डाल देते हैं... क्या न्याय है यह ईश्वर का? किसी के जीवन में राख मिट्टी के भाव भी नहीं बिकती...। वह उन्हीं अभागे इन्सानों में रही है जिसकी मेहनत व निष्ठा को समय ने कभी भी कोई महत्त्व नहीं दिया है।



काम से कभी भी जी नहीं चुराया रामदेई ने। वह तो कर्म की पुत्री थी... बड़े से बड़े व असंभव कार्य वह स्वयं ही कर सकती थी। एक बार जब वह जंगल गाय-बैल लेकर गई शाम को लौटी तो सास ने बुरी तरह से डांटा-

'हे कुबुद्धि! ऐसे भरता है चीड़ के पिल्टे में जानवरों का पेट ... ऊंचे-ऊंचे बीठों पर ले जाओ बड़ी घास में...। सौंण के महीने का क्या मतलब... जब जानवरों की कूखी नहीं भरी।'

जब वह बीठा ले गई तो चरते-चरते एक बड़ा बैल उसी पहाड़ी में भेल पड़ गया (गिर गया)। बस फिर तो जीना दूभर कर दिया उसका-

'अब तेरा बाप लगाएगा साट्यूं (धान) क्यों ले गई थी बैल को मारने के लिए बीठा?' क्या कहे रामदेई, साहस बटोर कर कहती-

'हे ज्यू, आप ही के कहने पर तो ले गई थी बीठा..... अपने हाथ की क्या बात थी। आप घबराओ नहीं ... मैं सब व्यवस्था कर दूंगी।' जो कहती वह कर दिखाती रामदेई।

मनख्या की बगत पर बैलों की जगह स्वयं मनख्या (स्वयं जुतकर) मनख्या लगाया रामदेई ने पूरे कंधे छिल गए। लोगों के खेतों की गुड़ाई कर बदले में अपना हल लगवाया।

किसी की भैंस ब्याही उसकी कट्यी पाली उसने। जब वह ब्याही तो आवभगत करती रामदेई व घी, दूध पर कब्जा किया सास ने। दूध बेचती लेकिन उसे देने को मन न होता रत्ती भर। पति मिला तो बिलकुल परचेत... उसकी समस्याओं को दुगुना जरूर कर दे... लेकिन निवारण एक का न कर सके... मां की बातों में आकर हाथ तक छोड़ देता उस पर।

बहुत बार मन में आता कि नदी में छलांग मार दे या फांस खा ले....... या फिर चली जाए चुपचाप अपने माइके। लेकिन सुबदरा बुआ की बात मन में घूम-घूम जाती-

'लाटी! बेटी की डोली उठे पिता के घर से और अर्थी पति के घर से... ससुराल छोड़ भागना कुल की मर्यादा के विरुद्ध है।' बस इसी मर्यादा से बंधी दुख के कोल्हू में पिसती रहती दिन-रात।

दुखों को सहने की आदी है रामदेई... बात-बात में कहती थी. ... वह जीवन भी क्या जीवन, जिसमें दुख न हों... लेकिन दुखों के बाग में प्रेम की वाणी की छौंक भी जरूरी है और वर्षों से प्रेम के दो बोल सुनने के लिए ही तरसती रही है रामदेई। कोई दो बोल भले बोल दे तो सबके बदले का सारा दुख स्वयं ही खुशी-खुशी झेल दे वह।

समय ने पलटा खाया। गांव में चुनाव का मौसम आया। रामदेई की कर्मठता से प्रभावित होकर गांव वालों ने उसे गांव के प्रधान के पद पर निर्विरोध चुन लिया। रामदेई का नारीत्व जागा, उसने सहर्ष स्वीकार किया कि इस संसार में कोई तो है उसकी मेहनत का प्रशंसक। दुखों में डूबी रामदेई अब गांव व ग्रामीणों के विकास की नई-नई योजनाएं बनाती।

समय के साथ-साथ रामदेई के नेतृत्व में गांव विकास की ऊंचाइयां छूता... महिलाएं स्वाभिमानी व आत्मनिर्भर होने लगीं। बच्चे परिवार भी अनुकूल हो गया। रामदेई को लगा बुरे समय में ही सारी स्थितियां प्रतिकूलता की घात लगाती हैं... अच्छे दिनों में उनकी एक नहीं चलती। अब सावन का यह घटाटोप आकाश उसे दुख नहीं देता बल्कि अपने जैसी हताश नारियों व पुरुषों के जीवन में प्रेरणा के दीप बनकर नई-नई आशाएं जगाता है।

'अभिव्यक्ति' 157, गढ़ विहार, फेज-1,
देहरादून, उत्तराखंड-248 005

डॉ. प्रत्यूष गुलेरी की कविताएं

नया रूप

मन में जो आए
लिख दो/ कविता तो नहीं
कविता समय मांगती है
मांगती चिंतन
सिर्फ कलम कागज़
दवात, कविता नहीं
सिर्फ स्याही उंडेल दी
बना दिए चित्र
मनमर्जी के या/ शब्दों के घोड़े
दौड़ा दिए चौतरफा।
कविता हृदय की
गहराइयों में बसती है
कंदराओं में
कभी-कभार उतरती है
बदरी बन/ तन-बदन पर
बरसती है/ हम नहा उठते हैं
गंगा में, यमुना और
गोदावरी में
अवतरित होते हैं/ बार बार
नया रूप लेकर
नित काया-कल्प होता है।

इंद्रधनुष

कविता से
मजाक तो मत करो
बंधु !
फटाफटा दूध का लिफाफा काटो
पलट दो उबलने उबालने के लिए।
तेज आंच कविता नहीं मांगती
उसका तन बदन जल जाता है
पतीली की तरह
ऊपर और नीचे से।
मीठी आंच में कविता सेंको
तपाओ गलाओ और
मिलाओ दूध की तरह
मन-मन में खाओ-पचाओ।
कविता कभी-कभार होती है
रोज़-रोज़ नहीं होती
रोज़-रोज़ बुढ़िया
बबरू नहीं पकाती
रोज़ रोज़ बदरिया
बरसती नहीं
रोज़ रोज़ ज़रूरी नहीं
सतरंगी इंद्रधनुष उतरें
कविता के सतरंगी इंद्रधनुष
बनते हैं कविता के आकाश पर
बस... कभी कभी !!
तभी कहता हूं-
कविता से मजाक तो मत करो।

मूर्त रूप

कविता भी उटकती है बंधु
कई-कई दिन/ नींद की तरह
इसका रिश्ता / दूध से छाछ
और फिर माखन तक का
सफर है कविता का।
दूध से दही जम ही जाए
इतना आसां नहीं / जाग लगता है
सोच समझ कर
तभी चक्के का चक्का
उतार लो सालम / उटक जाए तो
न वह दूध रहता है / न दही
सब बिखर जाता है
अनघड़ कविता की तरह
दही बिलोते-बिलोते
माखन तैराना लस्सी में
घर गांव की / औरत से पूछो
इतना आसान नहीं
ठीक कविता की तरह
महीन शब्दों के / मनकों में
धागा पिरो कर
खूबसूरत माला को
मूर्त रूप देने जैसा है।

कीर्ति कुसुम, सरस्वती नगर, पो. दाड़ी-धर्मशाला, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176 057, मो. 94181 21253

शबनम शर्मा की कविताएं

विडम्बना

तुम्हारे घर कदम रखते ही
जिम्मेदारियों का बोझ
सुबह से रात कब हो जाती
पता ही न चला
कभी बच्चों की किलकारियां
कभी उनका रूठना-मनाना
घर में दोस्तों संग धमाल मचाना
याद है मुझे।
करके नन्ही-नन्ही शरारतें
छिप जाना, फिर मुस्कुरा कर
सिर्फ यही कहना मां, पापा से
मत बताना, याद है मुझे।
दिन, हफ्तों में
हफ्ते महीनों में
महीने वर्षों में बदल गए
वो नन्ही मुस्कुराहटें, हंसी
में, और हंसी परायेपन में
बदल गई
पता न चला
तरस जाता दिन कि दो बातें करूं
दो पल बिठाऊं उन्हें अपने पास
पर आज वो मेरी जगह ले चुके
वक्त का मोहरा बदल चुका
तब मेरे पास वक्त न था
आज वो व्यस्त हैं
विडम्बना, शायद इक मजबूत डोर
स्नेह, विश्वास और प्यार की
जोड़े है मुझे उन संग।

वो पल

आज बहुत खुश हूं मैं
महसूस की है
तेरी आवाज में वो खुशी की कंपन
जो तेरे पैदा होने पर
तेरे बाप ने की थी
चाहती थी मेरे सामने
तू भी महसूस करे
कि क्या होता है मां-बाप बनना
किस तरह तड़पते हैं
औलाद की खुशी पाने को
मेरा जिंदगी का यही अनमोल
क्षण है आज
जब तूने सुनी है
यह प्यारी नन्हे की
किलकारी

संस्कार

नन्ही कली से
कब तू बड़ी हो गई
चल दी शाला, फिर
ससुराल, आज छोड़
मेरा आंगन, जा रही
तू बनने किसी और के
घर की तुलसी
तो सौंपती हूं तुझे
सबसे छिपकर इक नन्ही सी पोटली
सिर्फ संस्कारों से भरी
कभी भी तुझे
जरूरत पड़े, शांत मन से
खोल लेना, ये तुम्हें देंगी
हर समस्या का हल
संभाल कर रखना
चूंकि, जोड़ी है इसमें
मैंने रकम तिल-तिल
करके, सिर्फ दो शब्द
सुनने हेतु
वाह, क्या मां रही होगी
इस बेटी की !

अनमोल कुंज, पुलिस चौकी के पीछे, मेन बाजार, माजरा, तह. पांवटा साहिब,
जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश-173 021, मो. 0 98168 38909

अहद प्रकाश की चार ग़ज़लें

जो मीठा है

मुझसे मेरा मन रूठा है
जाने कैसे वह टूटा है
अंदाज़े तो यह कहते हैं
जो मीठा है वह झूठा है
हम तो लुटने वाले न थे
धोखा देकर ही लूटा है
अपनापन ले गईं हवाएं
जगह जगह औपचारिक खूंटा है
शायद नेता का साला हो
इसीलिए इतना झूठा है।



सादा राम कहानी

दुनिया में हैरानी है
यह किसकी नादानी है
रंग बिरंगे रावन हैं
सादा राम कहानी है
भूख गरीबी बेकारी
यह तो बात पुरानी है
कदर कदम दुश्वारी है
बोल कहां आसानी है
वादे नारे प्रदर्शन
कब तक यह नादानी है
बूढ़ी सदी कराहते लोग
साया है या पानी है
रोड पे किसने लिखा है
आगे भौर सुहानी है।

घूंघट

बेसबब लोग आते हैं क्यों
हमसे चेहरे छिपाते हैं क्यों
हम तो हैं आईने दोस्तो
वह हमें तोड़ जाते हैं क्यों
हम जिन्हें याद करते हैं रोज़
वह हमें भूल जाते हैं क्यों
जुगनुओं को शिकायत नहीं
आप भी जगमगाते हैं क्यों
एक बूढ़ी इमारत तले
वे घरौंदे बनाते हैं क्यों
मोम की है वधू आने वाली सदी
आप घूंघट उठाते हैं क्यों

जानवर

ठन गई अब पैमानों में
भगदड़ है मैखानों में
कौन है कितना बड़ा जानवर
दौड़ है यह इंसानों में
सभ्य लोग होंगे हमसे
चर्चा है हैवानों में
सड़कों पर नंगे हैं लोग
कपड़े सजे दुकानों में
अहम प्रकाश से मिलिएगा
चलिए कब्रस्तानों में।

एम.आई.जी. 304, पुष्पम अपार्टमेंट भारत टॉकिज के पास,
भोपाल, मध्य प्रदेश

रितेन्द्र अग्रवाल की कविताएं

किले का सच

किले !
तुम उत्साहित क्यों हो?
जब, खो चुके हो
अपनी आभा और शान
कभी हुआ करती थी
चहल पहल
मचता था
शोर नक्कारों का
फहराता था
परचम प्राचीर से

तरसता था
हर कोई प्रवेश को
पर तुम!
सिर ऊंचा किए
खड़े रहते
गर्व से
मानो
मुस्कुरा रहे हो
लोगों की मजबूरियों पर
आज जब
यह सब नहीं है
फिर भी?
हां, मैं खुश हूं
क्योंकि
अब मैं देख रहा हूं
हर तरफ
शोर करते बच्चे
स्वच्छंद विचरते लोग
सूखे ताल
ढहती प्राचीरें
खंडित मूर्तियां
और पा रहा हूं
अपने को
आम लोगों के करीब
लगता है
वह सब काल्पनिक था
वास्तविक सच तो
यही है।

एक मासूम

जाड़े की एक शाम
बदनसीब मासूम
बदन से ज़ार- ज़ार
कपड़ों से तार तार
कातर निगाहों से
लोगों को निहारता
रोटी की फरियाद करता
लोग,
टेढ़ी निगाहों से देख
डांट बताते
बिना दिए निकल जाते
अपने को लाट साब बुलवाते।
शाम ढलने लगी
रात होने लगी
पीड़ा बढ़ने लगी
पेट पीठ मिलने लगे।
दो घूंट पानी उतारा
जमीं की खाट पर
आकाश की चादर ओढ़
पैर पसारा
पीड़ा थी
इसलिए
पैरों को पेट से सटाकर
प्रयास करने लगा
भूख मारने लगा
अचानक,
आंख लग गई
पीड़ा सदा को मिट गई
अगली सुबह
सब अफसोस कर रहे थे
बुतपरस्ती का नमूना
पेश कर रहे थे।

11/500, मालवीय नगर, जयपुर, राजस्थान-302 017

कविता

तुम

● **फिरोज कुमार 'रोज'**

ईश्वर ने जो दिया
उसे स्वीकार करो तुम
ईश्वर की बख्शी
हर वस्तु से प्यार करो तुम
बढ़ते रहो निरंतर मंजिल की ओर
यू न किसी के सहारे
का इंतजार करो तुम

सच्चा गुरु मिल जाए
उसे मानो अपनी दौलत
यूं न मायावी दौलत से
प्यार करो तुम
समय की धारा में
बहते जाओ लक्ष्य की ओर
यूं न बीते वक्त
का इज़हार करो तुम

मेहनत से कमाई
दो रोटी में
भी है बरगत
यू न
बेटी बहू
का व्यापार करो तुम
जो वादे किए तुमने
उन्हें निभाओ
मेहनत से
दूसरों की खाई
कसम पर
न इकरार
करो तुम
जितना मुमकिन हो
पांव जमीं पर रख कर
प्यार निभाना तुम 'रोज़'
यूं न चांद तारों को
तोड़ लाने जैसा
झूठा प्यार
करो तुम।

नजदीक ब्रह्मकुमारी आश्रम, कॉलेज रोज बनीखेत, जिला चम्बा, हिमाचल प्रदेश-176 303, मो. 94590 62936

हिमाचल प्रदेश की राजनीति में जनजातीय महिलाएं

(पृष्ठ 8 से जारी)

राज्य में यह समस्या विशेष रूप से जिला किन्नौर में आई क्योंकि अनुसूचित जनजाति जनसंख्या के अन्दर अनुसूचित जाति, जनसंख्या रहती है। जनसंख्या का यह अंश अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की हैसियत का लाभ उठा रहा है। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में वर्ष 2011-16 के कार्यकाल के लिये पंचायतों में आरक्षण का प्रावधान है इन जनजातीय क्षेत्रों (किन्नौर लाहुल-स्पिति और पांगी, भरमौर) में कुल 151 ग्राम पंचायत प्रधान है जिनमें 50 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिये आरक्षित थे। 77 महिलाएं 50.99 प्रतिशत आंकड़ों के साथ चुनी गई। जनजातीय क्षेत्रों में कुल 811 सदस्य ग्राम पंचायत चुने। इसमें भी महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण था। जबकि चुनकर कुल 479 यानि 59.06 प्रतिशत महिलाएं आईं। इनमें अनुसूचित जाति की 76 महिलाएं और अनुसूचित जनजाति की 363 महिलाएं आरक्षण के जरिये आई। जबकि सामान्य वर्ग से 40 महिलाएं आरक्षण के जरिये आई। अध्यक्ष पंचायत समिति में कुल 7 प्रतिनिधि चुनकर आए जिनमें अनुसूचित जनजाति की 4 महिलाएं चुनी गई। कुल 57.14 प्रतिशत महिलाएं पंचायत समिति अध्यक्ष चुनी गई। जिला परिषद के 2 पदों में से एक पद पर अनुसूचित जनजाति की महिला आरक्षण से चुनकर आई। जिला परिषद के 23 सदस्यों में से कुल 13 महिलाएं आरक्षण से आईं जिनमें 2 महिलाएं अनुसूचित जाति, 10 महिलाएं अनुसूचित जनजाति और एक महिला सामान्य वर्ग में आरक्षित पद से चुनकर आई। इस तरह कुल 56.52 प्रतिशत महिलाएं जिला परिषद सदस्य के रूप में चुनी गई।

लाहुल स्पिति

लाहुल स्पिति में कुल ग्राम पंचायत प्रधान 41 हैं जिनमें लाहुल उप मण्डल में 25 और स्पिति उपमण्डल में 13 प्रधान हैं। जिले में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण है। कुल 14 महिलाएं अनुसूचित वर्ग से चुनी गई और 50 प्रतिशत महिला प्रतिनिधि चुनी गई। स्पिति उपमण्डल में कुल 13 पदों में से 7 महिलाएं चुनकर आई। इस तरह 53.85 प्रतिशत महिलाएं पंचायत प्रधान चुनी गई।

कुल 209 ग्राम पंचायत सदस्य में से 144 लाहौल उपमण्डल से और 65 स्पिति उपमण्डल से सदस्य ग्राम पंचायत के रूप में चुने गए।

लाहुल उपमण्डल में 15 पद अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिये आरक्षित थे। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिये 56 पद और सामान्य वर्ग की महिलाओं के लिये 13 पद आरक्षित है। इस तरह कुल 84 महिलाएं सदस्य ग्राम पंचायत के रूप में चुनी गई और यह प्रतिशतता 58.33 प्रतिशत पहुंच गई।

स्पिति उपमण्डल में 65 पदों में से 7 पदों पर अनुसूचित जाति की महिलाएं 29 पर अनुसूचित जनजाति की महिलाएं और 4 पदों पर सामान्य वर्ग की महिलाएं आरक्षण से आई। इस तरह कुल 40 महिलाएं आरक्षण के माध्यम से चुनकर आईं। कुल 61.54 महिलाएं स्पिति उपमण्डल में ग्राम पंचायत सदस्य के रूप में चुनकर आई।

इस तरह लाहुल स्पिति में कुल 209 सदस्य ग्राम पंचायत में 124 महिलाएं चुनी गई जोकि 59.33 प्रतिशत है। लाहुल स्पिति में कुल 2 अध्यक्ष पंचायत समिति के पद है जिनमें लाहुल उपमण्डल में 1 पद अनुसूचित जनजाति के सामान्य वर्ग के लिये आरक्षित है। इस तरह लाहुल मण्डल में कोई भी महिला पंचायत समिति अध्यक्ष पद पर नहीं है। स्पिति उपमण्डल में अनुसूचित जनजाति की एक महिला अध्यक्ष पंचायत समिति आरक्षण के जरिये चुनकर आई है।

इस तरह लाहुल स्पिति में अध्यक्ष पंचायत समिति में 50 प्रतिशत महिला विद्यमान हैं। लाहुल स्पिति में कुल 30 पंचायत समिति सदस्य हैं जिनमें 15 लाहुल और 15 स्पिति उपमण्डल के प्रतिनिधि हैं। लाहुल उपमण्डल में एक महिला अनुसूचित जाति, 6 महिलाएं अनुसूचित जनजाति और 2 महिलाएं सामान्य वर्ग से आरक्षण के जरिये आईं। इस तरह कुल 9 महिलाएं आरक्षित प्रतिनिधि के रूप में आईं और कुल 60 प्रतिशत महिलाओं का प्रतिनिधित्व रहा जबकि स्पिति उपमण्डल में एक महिला अनुसूचित जाति से 6 महिलाएं अनुसूचित जनजाति से और 1 महिला सामान्य वर्ग से और कुल 8 महिला अम्मीदवारों के साथ यह आरक्षण 53.33 प्रतिशत रहा।

लाहुल स्पिति उपमण्डल में 17 महिला उम्मीदवारों के साथ आरक्षण 56.67 प्रतिशत रहा। लाहुल स्पिति में जिला परिषद के कुल 10 सदस्यों में 6 महिलाएं चुनी गई। जिनमें एक अनुसूचित जाति, 4 अनुसूचित जनजाति और एक सामान्य वर्ग की महिला उम्मीदवार हैं। जिला परिषद में कुल 60 प्रतिशत महिलाएं आरक्षण के जरिये चुनकर आई।

किन्नौर

जिला किन्नौर के तीनों उपमण्डल कल्पा, निचार और पूह में 65 ग्राम पंचायत प्रधान हैं। कल्पा में 23 ग्राम पंचायत प्रधान में से 12 पद अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिये आरक्षित हैं।

इस तरह कुल 52.17 प्रतिशत महिला प्रधान कल्पा उपमण्डल में हैं। निचार उपमण्डल में 18 में से 9 महिलाएं अनुसूचित जनजाति की हैं। कुल 50 प्रतिशत महिला प्रतिनिधि है। पूह उपमण्डल में कुल 24 प्रधान हैं जिनमें 12 महिला जनजातीय आरक्षण से हैं। इस तरह 50 प्रतिशत महिला ग्राम पंचायत प्रधान है। जनजातीय जिला किन्नौर में 65 ग्राम पंचायत प्रधानों में कुल 33 महिलाएं आरक्षण के जरिये चुनकर आई। इस तरह महिलाओं का 50.77 प्रतिशत प्रतिनिधित्व है। जिला किन्नौर में कुल 359 ग्राम पंचायत सदस्य हैं। इनमें कल्पा उपमण्डल में 127 सदस्यों में से 74 महिलाओं के लिए आरक्षित हैं जिनमें 12 अनुसूचित जाति 62 अनुसूचित जनजाति की महिलाएं हैं। कुल 58.27 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है। निचार उपमण्डल में कुल 104 ग्राम पंचायत सदस्य हैं जिनमें 61 महिलाएं हैं। इनमें 10 महिलाएं अनुसूचित जाति, 49 अनुसूचित जनजाति और 2 महिलाएं सामान्य वर्ग की हैं। इस तरह 58.65 प्रतिशत प्रतिनिधित्व महिलाओं का है। पूह उपमण्डल में 128 ग्राम पंचायत सदस्यों में से 12 पद अनुसूचित जाति, 54 पद अनुसूचित जनजाति और 10 पद सामान्य वर्ग की महिलाओं के लिये आरक्षित है। इस तरह कुल 76 महिलाएं पूह उपमण्डल में ग्राम पंचायत सदस्य है और 59.38 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है।

किन्नौर में कुल 359 ग्राम पंचायत सदस्यों में 211 पद महिलाओं के लिये आरक्षित हैं। इस तरह कुल 58.77 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व ग्राम पंचायत सदस्यों में है। जनजातीय जिला किन्नौर में 3 पंचायत समिति अध्यक्ष हैं। कल्पा और पूह उपमण्डलों में एक एक पद पर अनुसूचित जनजाति की महिला को आरक्षण है। जबकि निचार में अनुसूचित जनजाति वर्ग में पुरुष प्रतिनिधि है।

इस तरह किन्नौर में अध्यक्ष पंचायत समिति के 2 पदों पर महिला प्रतिनिधि हैं। और 66.67 प्रतिशत प्रतिनिधित्व महिलाओं का है। किन्नौर में 45 पंचायत समिति सदस्य हैं जिनमें तीनों उपमण्डल से 15-15 प्रतिनिधि हैं। कल्पा में कुल 8 महिलाएं पंचायत समिति सदस्य हैं जिनमें एक महिला अनुसूचित जाति और 6 महिला अनुसूचित जनजाति और एक महिला सामान्य वर्ग से आरक्षित है और कुल 53.33 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है। निचार उपमण्डल में 8 महिला सदस्यों में से एक अनुसूचित जाति की महिला 5 अनुसूचित जनजाति की महिला और 2 सामान्य वर्ग की महिलाओं को आरक्षण है। इस तरह कुल 8 महिलाओं के साथ 53.33 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को हैं। पूह उपमण्डल के 15 में से 8 महिलाओं का प्रतिनिधित्व है। जिनमें एक अनुसूचित जाति की महिला और 6 अनुसूचित जनजाति की महिला और एक सामान्य वर्ग की महिला के लिये आरक्षण है। इस तरह कुल 53.33 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को पंचायत समिति सदस्य में है। जनजातीय जिला किन्नौर में जिला परिषद सदस्य के 10 पद है जिनमें से 5 पद महिलाओं के लिये आरक्षित है। एक पद अनुसूचित जाति की महिला और 4 पद अनुसूचित जनजाति की महिला के लिये आरक्षित हैं। इस तरह कुल 50 प्रतिशत महिलाएं जिला परिषद सदस्य में प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

चम्बा-पांगी और भरमौर

भरमौर उपमण्डल में कुल 29 पंचायते हैं इनमें अनुसूचित जनजाति की कुल 15 महिलाएं ग्राम पंचायत प्रधान है। इस तरह 51.72 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है। पांगी उपमण्डल में कुल 16 प्रधान ग्राम पंचायत है जिनमें अनुसूचित जनजाति की 8 महिलाएं ग्राम पंचायत प्रधान में आरक्षण के माध्यम से आई। भरमौर उपमण्डल में 157 ग्राम पंचायत सदस्य हैं जिनमें 93 महिलाएं है। इनमें 16 महिलाएं अनुसूचित जाति, 70 महिलाएं अनुसूचित जनजाति से और 7 महिलाएं अन्य वर्ग से आरक्षण के जरिये आई है। इस तरह कुल 59.24 प्रतिशत महिलाएं सदस्य ग्राम पंचायत भरमौर में आरक्षण के जरिये आई। पांगी में कुल 86 ग्राम पंचायत सदस्यों में से कुल 86 ग्राम पंचायत सदस्यों में से कुल 51 महिलाएं हैं जिनमें 4 महिलाएं अनुसूचित जाति, 43 महिलाएं अनुसूचित जनजाति और 4 महिलाएं सामान्य वर्ग से आरक्षण के जरिये आई। इस तरह कुल 59.30 प्रतिशत महिलाएं ग्राम पंचायत में आरक्षण के जरिये पहुंची। भरमौर में एक पंचायत समिति अध्यक्ष है जो कि अनुसूचित जनजाति में पुरुष प्रतिनिधि है। पांगी उपमण्डल में अनुसूचित जनजाति की एक महिला पंचायत समिति अध्यक्ष है। पंचायत समिति सदस्य में भरमौर उपमण्डल में 15 सदस्यों में से 8 महिलाओं के लिये आरक्षित है इनमें एक अनुसूचित जाति, 6 अनुसूचित जनजाति और एक सामान्य वर्ग की महिला के लिये आरक्षित है। इस तरह कुल 53.33 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को पंचायत समिति के सदस्यों में है। पांगी उपमण्डल में 15 पंचायत समिति के सदस्य पदों में से 8 पद महिलाओं के लिये आरक्षित है। इनमें 7 पद अनुसूचित जाति और एक पद अनुसूचित जनजाति की महिला प्रतिनिधि आरक्षण के माध्यम से आई है। इस तरह पांगी में पंचायत समिति सदस्य में

जनजातीय महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के लिये सबसे पहले उनकी दैनिक समस्याओं का हल होना चाहिये ताकि उन्हें राजनीति में हिस्सा लेने का समय मिले। महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार मिलना चाहिए। महिलाओं और समाज में गलत धारणा बनी हुई है कि उन्हें घर के कार्यों में ध्यान देना चाहिए न कि सामाजिक जीवन या राजनीति में उनकी रुचि होनी चाहिए। अधिकतर का मानना है कि राजनीति महिलाओं के बस की बात नहीं है।

53.33 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है।

जनजातीय महिलाओं में राजनीतिक रुझान

वैसे तो राष्ट्रीय परिदृश्य में महिलाओं की राजनीति में भागीदारी उनके वोटिंग अनुपात के मुकाबले बेहद कम है। हिमाचल के आंकड़े भी निराशाजनक ही है। जनजातीय क्षेत्रों की बात करें तो लोकसभा में जनजातीय क्षेत्र की महिलाओं ने 1952 से लेकर 2014 तक वोट ही डाला है। विधानसभा चुनावों में केवल एक ही नाम जनजातीय क्षेत्रों से आता है वह है लता ठाकुर। किन्तु असमय मृत्यु से एकमात्र जनजातीय महिला नेता को हमें खोना पड़ा। जनजातीय क्षेत्रों में महिलाओं का राजनीति में न आने का मुख्य कारण उनका अर्थव्यवस्था के कामों में व्यस्त रहना है। महिलाएं खेती बाड़ी, पशु पालन , कालीन बुनना, शॉल बनाना जैसे हथकरघा के अन्य कामों में व्यवस्थ रहती हैं। बच्चों का पालन पोषण, परिवार का ध्यान रखना इन सबके बाद एक महिला को राजनीति और सामाजिक कार्यो के लिए कितना समय मिलेगा? हिमाचल के जनजातीय क्षेत्रों में कठिन भौगोलिक स्थिति के मद्देनजर महिलाओं को यात्रा करने में भी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। सदियों से प्रचलित बहुपति प्रथा और बोधा-श्रमणियों के रूप में जीवन व्यतीत करना जैसी सामाजिक प्रथाओं ने महिलाओं की सोच के दायरे को एक सीमित सीमा के अन्दर बांधे रखा। सबसे बड़ा कारण जो महिलाएं जनजातीय क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है उसका कारण यहां के कस्टमरी लॉ (वाजिब उल अर्ज) के मुताबिक पैतृक सम्पति पर महिलाओं को अधिकार न मिलना है। ये महिलाएं जनजातीय क्षेत्रों को मिले वो वितीय अनुदानों का फायदा नहीं उठा पाती क्योंकि इन्हें भू-अधिकार नहीं है। ज्यादातर महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं। सरकार द्वारा जनजातीय महिलाओं की जरूरत के मुताबिक उनके उत्थान के लिये अलग से कोई योजना नहीं है। इन क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान के लिए वही योजनाएं चलाई जा रही है जोकि देश और प्रदेश की अन्य महिलाओं के उत्थान के लिये है। घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं के लिये यहां किसी तरह के आश्रयगृह (HomeShelter) नहीं है।

जनजातीय महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाई जाये

जनजातीय महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के लिये सबसे पहले उनकी दैनिक समस्याओं का हल होना चाहिये ताकि उन्हें राजनीति में हिस्सा लेने का समय मिले। महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार मिलना चाहिये। महिलाओं और समाज में गलत धारणा बनी हुई है कि उन्हें घर के कार्यों में ध्यान देना चाहिये न कि सामाजिक जीवन या राजनीति में उनकी रूची होनी चाहिये। अधिकतर का मानना है कि राजनीति महिलाओं के बस की बात नहीं है।

पुरुष प्रधान समाज में तो महिलाओं को राजनीति में आना गलत माना जाता है। वैसे हैरानी की बात है कि हमारी राजनीतिक पार्टियां जो महिला सशक्तिकरण के ढोल पीटते नहीं थकते वे चुनावों के दौरान टिकट आवंटन में महिला उम्मीदवारों को तरजीह नहीं देते। पिछले कुछ वर्षों में महिला रिजर्वेशन बिल को लेकर जो नाटकीय प्रकरण होते रहे हैं, सभी उससे वाकिफ हैं। इसके अलावा राजनीति का अपराधीकरण असुरक्षा, जागरूकता की कमी आत्मविश्वास की कमी, समय की कमी महिलाओं को राजनीति में आने से रोकते हैं। हाल ही में विदेश मन्त्री सुषमा स्वराज ने कहा है कि वे महिला आरक्षण बिल को संसद में पूरे जोर से उठायेंगी। महिलाओं को राजनीति में भागीदार बनाने के लिये उनमें शिक्षा, राजनीतिक जागरुकता, दृढ़ इच्छाशक्ति, आत्मविश्वास, परिवार और राजनीतिक पार्टियों का सहयोग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। पंचायती राज एवम् ग्रामीण विकास विभाग महिला जन प्रतिनिधियों के सशक्तिकरण के लिये समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाता है जिसमें महिलाओं को पंजायती राज से जुड़े विभिन्न कार्यक्रमों और प्रशासनिक कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाता है। महिलाएं अपनी मुश्किलों और परेशानियों को लेकर खुलकर चर्चा कर सके इसके लिये पंचायती राज मन्त्रालय भारत सरकार ने सभी राज्यों को आदेश दिये है कि महिलाओं से जुड़े मुददों जैसे घरेलू हिंसा, आंगनबाड़ी सेंटर, स्वास्थ्य, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा पर रोकथाम, सफाई व्यवस्था और पेयजल पर खुली बातचीत के लिये महिला सभा का आयोजन किया जाये और जिला और मण्डल स्तर पर कार्यरत अधिकारी महिला सभा का आयोजन सुनिश्चित करेंगे। ग्रामीण विकास विभाग द्वारा महिलाओं की सुरक्षा के लिये मातृशक्ति बीमा योजना चलाई जा रही है। यह योजना केवल महिलाओं के लिए हैं। इस योजना के अर्न्तगत 10 वर्ष से 75 वर्ष की महिलाएं जो गरीबी रेखा से नीचे है, लाभ की पात्र है। प्रदेश की भौगोलिक और आर्थिक स्थितियों को देखते हुये दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं की सुरक्षा की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश सरकार ने मातृशक्ति बीमा योजना प्रारम्भ की है। इसका बीमा सम्बन्धित पूर्ण व्यय सरकार द्वारा वहन किया जा रहा है। वर्ष 2010-11 से 2013-14 में वित विभाग द्वारा ग्रामीण विकास विभाग को जनजातीय क्षेत्र के लिये दी गई :-

वर्ष	राशि	लाभान्वित परिवार
2010-11		
जिला चम्बा	25 लाख	2
किन्नौर	7 लाख	7
लाहुल स्पिति	1 लाख	1
2011-12		
जिला चम्बा	3 लाख	3
जिला किन्नौर	3 लाख	3
जिला लाहुल स्पिति	1 लाख	1

2012-13

जिला चम्बा	38 लाख	38
जिला किन्नौर	3 लाख	3
जिला लाहुल स्पिति	2 लाख	2
2013-14		
जिला चम्बा	33 लाख	33
जिला किन्नौर	6 लाख	6
जिला लाहुल स्पिति	0	0

इस योजना के तहत परिवार की बीमागत महिला की मृत्यु या अपंगता जो निम्न प्रकार से हुई हो, की स्थिति में राहत प्रदान करती हैं। 1. किसी भी प्रकार की शल्य चिकित्सा के दौरान जैसे कि नसबन्दी, सिजेरियन,गर्भाशय, वक्षस्थल निकालने, बशर्ते मृत्यु ऑपरेशन से सात दिन के भीतर हुई हो।

2. प्रजनन के समय किसी भी प्रकार की दुर्घटना से।

3. डूबने से, बाढ़ में बहने से, भू-स्खलन, कीट डंक, सर्पदंश, भूचाल, आंधी या तूफान से।

4. विवाहित महिला के पति की दुर्घटना में हुई मृत्यु पर भी लागू है। इसके अलावा एकल नारी योजना के तहत विधवा एवम् अविवाहित महिलाओं को वित्तीय सहायता दी जा रही है। हाल ही में हिमाचल सरकार द्वारा महिलाओं को राशन कार्ड में परिवार का मुखिया घोषित किया गया। जमीनी स्तर पर महिलाओं के पक्ष में बदलाव बहुत तेजी से हो रहे हैं। लेकिन सरकार का कोई भी प्रयास फलीभूत नहीं होगा जब तक कि महिलाएं स्वयं अपने राजनीतिक और सामाजिक कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होगी।

महिलाओं को स्वयं राजनीति के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करनी होगी। अपने घरेलू और पारम्परिक कार्यों से समय निकाल कर हर महिला को राजनीति के लिये कुछ समय देना होगा। राजनीतिक पार्टियों को भी महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिये। केवल महिला होने के नाते नहीं बल्कि महिलाओं की काबिलियत के आधार पर उन्हें विभाग दिये जाएं। जीतने वाली सीट में महिला उम्मीदवारों को भी टिकट दी जाये। महिलाओं को उनकी योग्यता दिखाने का मौका पंचायती राज संस्थानों में मिला है। इसका उन्हें भरपूर फायदा उठाना चाहिये। व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ उन्हें अपनी राजनीतिक समझ भी विकसित करनी चाहिए।

राजनीतिक सशक्तीकरण के लिये महिलाओं को आरक्षण दिया गया है। हालांकि आरक्षण महिलाओं की भागदारी बढ़ाने का जरिया है। महिलाएं अपनी काबिलियत को प्रभावशाली तरीके से अन्जाम देने में समर्थ होती हैं तो आने वाले समय में वे अपनी योग्यता के आधार पर चुनकर आयेगी और राजनीति में अपराधीकरण के कारण कई बार महिला प्रतिभागी हिंसा, शोषण और अपराधियों की शिकार ही जाती हैं। राजनीति में भी महिलाओं को सुरक्षित महसूस करवाना होगा।

महिलाओं का मतदाता उम्मीदवार और राजनेता के रूप में आना हमारी लोकतान्त्रिक प्रणाली के लिये तो अच्छा है ही, साथ में हमारे समाज की तरक्की और पुर्ननिर्माण के लिये भी बेहतर होगा। हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में सकारात्मक सोच और बदलाव महिलाओं को राजनीति में आने की लिये प्ररित करेंगे।

कार्यालय सतलुज जलविद्युत निगम, बी.सी.एस. चौक, शिमला, हिमाचल प्रदेश

हिमप्रस्थ में ऊना जिला विशेषांक

'हिमप्रस्थ' मासिक पत्रिका में शीघ्र ही ऊना जिला विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। अंक में विशेष रूप से ऊना जिला का इतिहास, सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक महत्त्व, देव संस्कृति, मेले व त्योहार, लोक साहित्य एवं संस्कृति, पर्यटन, ऐतिहासिक एवं पौराणिक धार्मिक स्थल तथा विकास इत्यादि पर सामग्री प्रकाशित की जाएगी। इस अंक के लिए आपका सहयोग अपेक्षित है। विस्तृत जानकारी के लिए गिरिराज/हिमप्रस्थ कार्यालय में सम्पर्क करें।

- वरिष्ठ सम्पादक

समीक्षा

कहानी कौशल में भाषा संस्कार

● डॉ. पूजा अवस्थी

शब्द की शक्ति से ही साहित्य बनता है। शब्द के संस्कार के बिना कविता, कहानी, निबन्ध या कोई भी विधा प्रभावी नही बन पाती। शब्द का सही प्रयोग ही किसी भी विधा को श्रेष्ठ साहित्य की श्रेणी में ला खड़ा करता है। यही गद्य और पद्य में अंतर करता है। वास्तव में साहित्यकार शब्दों का शिल्पी होता है।

कथाकार सुदर्शन वशिष्ठ की कहानियों में एक सघनता हमेशा विद्यमान रही है जो अनावश्यक विवरणों के न होने और शब्दों की मितव्ययता के कारण रचना को ठोस बनाती है। कथ्य या शैलीय दोनों में कहीं भी बिखराव न होने से एक ठोस रचना का निर्माण होता है। यह विशेषता उनकी छोटी कहानियों में अधिक देखने को मिलती है। सार संक्षेप की तरह छोटी कहानियों (घर बोला, पहाड़ पर कटहल, दादा का प्रेत, पहाड़ देखता है, सोच का शाप) के अतिरिक्त वसीयत, मां और मोबाइल, वायरस, नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि जैसी अपेक्षाकृत लम्बी कहानियों तक ऐसे शिल्प के दर्शन होते हैं।

सन् 1969 में प्रकाशित प्रथम कहानी संग्रह ''अंतरालों में घटता समय'' से लेकर उनके नौवें संग्रह ''नेत्रदान'' तक कहानी कहने की कला, भाषा की शक्ति, शैली का शिल्प, अंदाजेबयां की शोखियां, कथा कौशल की बुलंदियां निरंतर विकसित होती चली गईं हैं। सादी भाषा में साधा हुआ शिल्प, साधारण बात कहते हुए विशिष्ट तक पहुंच जाना इन की खासियत रही है। नित नये परिवेश में नई कथा कहना, और एक नये संसार में ले जाना और उसी परिवेश के अनुरूप बयान करना कहानियों का मर्म है। कोई कथ्य, कोई स्थिति, कोई परिवेश, कोई वातावरण दोहराया नहीं जाता बल्कि हर कहानी में एक नया संसार दिखाई पड़ता है। पात्रों की सोच को समझना और उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना एक और गुण है। बहुत से प्रसंगों में पात्र की मनोस्थिति को पाठक पर भी छोड़ दिया गया है कि वह उसे समझे और विचारे।

प्रस्तुत कहानी संग्रह 'नेत्रदान' में भी ये तमाम खूबियां विद्यमान है बल्कि कहानीकार की पैनी दृष्टि से भाषा का संस्कार और गहरा हुआ है।

संग्रह में उन्नीस कहानियां हैं और एक प्राक्कथन, जो मोनोलोग में लिखा तो अपने तईं हैं मगर साहित्य की समसामयिक समस्याओं का एक दस्तावेज है। धर्मयुग के समय से ले कर आज तक की यात्रा में हुई तबदीलियों को बिना लाग लपेट के खुलेमन से कहा गया है :

'शिमला जैसे शांत और सोये हुए शहर में मेरे जैसे निस्तेज और पीलियाग्रस्त साहित्यकार रहते हैं जो रोज शाम मॉल रोड़ पर बिना किसी उद्देश्य के एक सिरे से दूसरे तक पैण्डुलम की तरह डोलते हैं। स्कैण्डल प्वाईंट से शेरे पंजाब तक धीमे धीमे जाते हैं, वापिस आ जाते हैं। फिर रेंगते हुए जाते हैं..... ।''

या व्यंग्य की भाषा में साहित्यकारों के प्रकार.....अफसर लेखक, फिल्मी लेखक, नेता लेखक, अभिनेता लेखक, नारी लेखक, अर्धनारीलेखक, सरकारी लेखक, भिखारी लेखक आदि का जिक्र उल्लेखनीय है।

संग्रह की अधिकांश कहानियां अपने कथ्य और भाषा के कारण अद्‌भुत हैं जो एक कालजयी प्रभाव छोड़ती हैं। भाषा व शिल्प और स्थितियों के चित्रण के स्तर पर देखें तो अद्‌भुत प्रयोग देखने को मिलते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि कहानी की भाषा, संवाद, परिवेश का चित्र उसी माटी से निकलता है जहां की कहानी है। अतः भाषा में माटी की गन्ध बनी रहती है और यही उसकी खूबी है।

पहले कथाक्रम की दो कहानियां दादू से आरम्भ हो कर पोते के स्वयं दादू बन जाने पर भी समाप्त नहीं होती, अतः अपने में एक नहीं, छह-छह पीढ़ियों को समेटे हुए हैं। दोनों कहानियों के समय, सोच परिवेश के अंतर को जिस शिद्दत से प्रस्तुत किया गया है, कहानी कौशल का एक नमूना है।

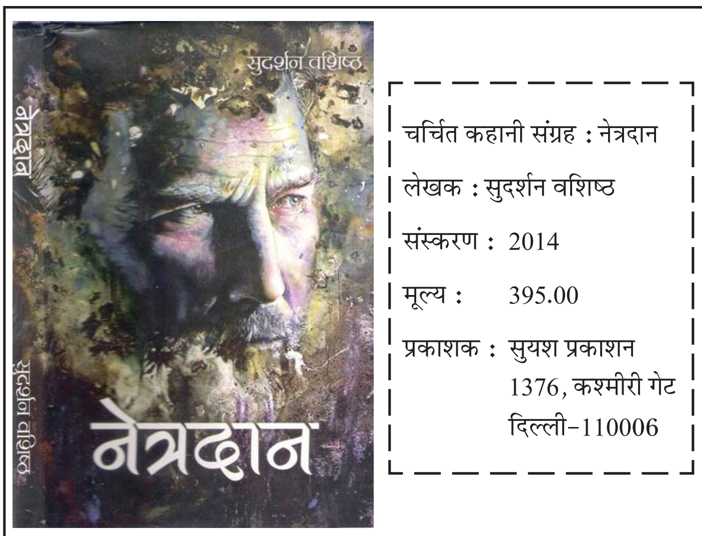
कथाओं में दादू का रोबीला चेहरा और ग्रेंडपा चिंतामणि का निरीह रूप, नीचजात संती का स्नेहसिक्त व्यक्तित्व, तो मिश्राजी की ब्याहता का बदला हुआ रुप कुछ ऐसे रेखाचित्र हैं जो कथाओं को

संपुष्ट करते जाते हैं।

पहली कथा के अंत में दादू के घर से लाल रंग से रंगी नयी ओढ़नी ओढ़े, आधा घूंघट काढ़े एक औरत निकलती है तो नन्हा मणि दादू से पूछता है, यह औरत कौन हैं!....'तेरी दादी', उत्तर पाने पर मणि उसके पैर छू लेता है। यह दृश्य मार्मिक और मारक, दोनों है। संती पानी पानी हो कर लाल ओढ़नी आकाश की ओर फैलाए मणि के पांव में गिर जाती है :

''देवा! धरती फट जाए और उसमें समा जाए!'' दूसरी कथा में चिंतामणि की पत्नी शारदा का वर्णन देखिए : ''चिंतामणि को लगता, यह जो औरत सामने बैठी है, वह नहीं है। कोई और है। इसकी आंखों की कोरों में दुर्दिनों सी झुर्रियां हैं। माथे पर अतृप्ति की लकीरें हैं। चेहरा मोटा, मुर्झाया, सख्त और क्रूर हो गया है। यही नहीं, इसकी काया ही नहीं, मन भी बदला हुआ है।........वह जो थी....एकदम खिली हुई, धूप सी उजली। हंसमुख। मखमली हाथ, ताजिंदगी साथ। रंगीन चिड़िया सी सदा चहचहाती, फुदकती, उड़ती, डाल डाल पर बैठती। कोयल सी गाती, हिरणी सी मदमाती। जिसकी चंदन गन्ध से समूचा वातावरण महक उठता, वह मुट्ठी में बंद रखना चाहता। छांव सी डोलती, वह सोना चाहता। गिलहरी सी भागती, वह देखना चाहता। तितली सी उड़ती, वह पकड़ना चाहता। बदली सी घुमड़ती, वह छूना चाहता। लहर सी उछलती, वह पीना चाहता। यह क्या हुआ उसे.......।''

अगले कथा क्रम में कथा दो से कथा छः तक सभी कहानियां जाने अनजाने नारी विमर्श को खंगालती कहानियां है जिनमें कथ्य और शब्दावली अत्यन्त कोमल का काव्यमयी है। इन सभी कहानियों का गद्य काव्य से ज्यादा कोमलकांत और शब्द की सभी शक्तियों से परिपूर्ण है।



चर्चित कहानी संग्रह : नेत्रदान
लेखक : सुदर्शन वशिष्ठ
संस्करण : 2014
मूल्य : 395.00
प्रकाशक : सुयश प्रकाशन 1376, कश्मीरी गेट दिल्ली-110006

'चंदन विष' में 'रोशनी के झरने में पानी की छोटी छोटी बूंदों की तरह किलबिलाते धूल कणों' और 'रोशनी का लाट के कमरे के बीचोंबीच दूधिया ट्यूब से जलने' के साथ सूक्ष्म वर्णन के बीच पंछियों के जोड़े में रहने की बात की गई है। 'प्रेम एक पंख था जिसे उसने उछल कर पकड़ना चाहा' जैसे वाक्यों के बीच कविता जैसे संवाद हैं :

''उजले दिन सा तुम्हारा रंग....नहीं, तुम्हारे रंग सा उजला दिन, तुम्हारे केश...शांत स्याह रात। कभी तुम पृथ्वी बन सब सहती, कभी झरना बन झर झर बहती। कभी गहरी घाटी, कुछ न कहती। कभी नदी बन सब कह जाती।'' और कहानी के अंत का सूत्र वाक्य : ''जीवन का आधार हमें परिंदों से सीखना चाहिए। परिंदों की जोड़ी में एक मर जाए तो दूसरा पागल हो जाता है। बहुत बार मर ही जाता है।......आदमी को परिंदा बनना चाहिए, जानवर नहीं।''

''सोने के कंगन'' कहानी का सार इस वाक्य में हैं, ''एक समय था जब उंगली छू जाने से पूरे शरीर में रोमांच हो जाता था। अब शरीर में कोई सेंसेशन नहीं रही। एक झनझनाहट, जो मात्र छू जाने से होती थी, अब बार बार मुआयना करवाने पर भी नहीं होती। बहुत बार यह ध्यान नहीं रहता कि कोई क्या छेड़खानी कर रहा है।''

''जंगल का संगीत'' में पेड़ की बात हो या ''साहिब है रंगरेज'' में नाग छतरी और ब्रह्मकमल की, हर जगह भाषा और शैली का चमत्कार दिखलाई पड़ता है :

''अजूबा है पहाड़ पर पेड़। ऊंचा, सीधा, समाधि में लीन योगी सा। जो जितना ऊंचा है, उतना ही शांत है। जितना पुष्ट, उतना ही अंहिसक। या पेड़ भी सांस लेता है। अपने ऊपर वार पर वार सहता है, फिर भी कुछ नहीं कहता। जानता है पेड़ यह भी कि लोहे की कुल्हाड़ी हो या दांतों वाला आरा, उसकी टहनी के बिना लोहे का टुकड़ा भर है, ठण्डा और बेजान।''

''नैनं छिंदन्ति शास्त्राणि'' में कहा है : ''जीवन का ग्राफ टेढ़ा मेढ़ा है, सीधा नहीं। यह ग्राफ सीधा हो जाए या सीधा होता हुआ टूट जाए तो भी जीवन समाप्त समझो। टेढ़ी-मेढ़ी, ऊंची-नीची होती जीवनरेखा चलती है धीरे- धीरे। रुकते-रुकते चलती है। कभी रुकती है कभी चलती है। कभी जुड़ती, टूटती, फिर जुड़ जाती।'' गाएं और माएं एक सी होती हैं, जैसे मारक वाक्य के साथ रबड़ की गुड्डियों की तरह एकदम सुन्न पड़े बच्चे, कोई जैसे चाहे, मरोड़ दे के दृश्यों से नवजात शिशु वार्ड का माहौल और गमगीन हो जाता है।

इस कथा क्रम में सबसे अधिक काव्यमय भाषा ''वसुधा की डायरी'' में है जिसका हर पैरा, हर वाक्य एक कविता कहता हैः

''आंगन मंच है

घर नेपथ्य

जिसमें सारी तैयारी चलती है।....कमरों में होती कानाफूसी, लिहाफ फुसफुसाते, रचे जाते षड्यन्त्र।''

कुछ काम सदियों से औरतों के जिम्मे हैं जैसे आंगन बुहारना और रोना :

''मरद दिन चढ़े तक सोये रहते घर के भीतरी कमरों में खुर्राटे मारते। और आंगन में पड़े होते बासी पीले नामरद पत्ते। जिन्हें हिलाने और जगाने के लिए औरतें आंगन बुहारतीं। मरदों के सोये भीतर बुहारना अपशकुन है, इसलिए पहले आंगन बुहारती है।.. .चाहे कच्चा हो , चाहे पक्का, चाहे मुश्तरकाय बहु को तो बुहारना ही है, चाहे सारी पृथ्वी हो जाए आंगन..... ।''

''वे रो देतीं थीं अचानक। और रोते रोते ही हंस देती थीं अचानक। कभी अपने में ही रोती रहतीं, कभी अपने में ही हंस देती। ऐसा केवल औरतें ही कर सकती हैं, आदमी नहीं...कभी अकेला मरद देखा आपने रोता...या तीन चार मरद झुंड में इकट्ठे बैठ रोते देखे...नहीं न।''

यह कहानी छोटी मगर बहुत मारक है। बीमार मां बाप की सेवा, पिता का सस्कार वसुधा के प्रचण्ड जीवट का परिचायक होने के साथ एक करूणा का भाव जगाता है।

'स्नेक प्लांट' में 'बण घट गए, जण बढ़ गए', 'पत्थर मार अम्बर में छेद करना', 'आदमी के काटने से सांप का मरना' जैसे मुहावरे तो ''सालिगराम की चिट्ठी'' में 'शेर जैसे बड़े जानवरों की तरफ उंगली नहीं करते, वैसे ही बड़े आदमी का नाम नहीं लेते', न चाहते हुए भी राष्ट्रहित में पत्नी की बात मानना आदि व्यंग्यात्मक वाक्य हैं।

'मां और मोबाइल' जैसी सशक्त रचना में भाषा का प्रयोग पुनः ध्यान आकर्षित करता है। 'खेत में बिजूका जैसे लिफाफा से कपड़ों' में पिता 'चिड़िया, कौओं, भेड़ और गायों से बात करती' मां बिस्तर पकड़ने पर भी बरतन मांजती, खाना पकाती रही। मां का हृदयग्राही वर्णन इन पंक्तियों में मिलती है :

''मां ने ताप धूप की तरह सेंका। घर में ताप अदृश्य भूत की तरह घुसा जिससे मां धुआं धुआं हो गई।....यह वही कमरा है जहां मां का दर्द परिंदे सुनते थे....जब कमजोर पड़ी तो ढोरडंगर बिक गए। तब से छत के टूटे सलेटों पर, आम अमरूद पर, पास के बांस के झुरमंट पर बैठे परिंदे उससे बात करते।...सच, मां काग भाषा जानती थी।''

काग भाषा के साथ मोबाइल भाषा का जिक्र है जिसमें बिलकुल शॉर्ट में लिखा जाता है। साथ ही 'मोबाइल उसे मां जैसा लगता। एकदम अपना और करीब, जिसके सिरहाने सिर रख कर सोया जाता, जिसे हर पल अपने दिल के करीब रखा जाता। कहानी के अंत में मोबाइल का टूटना और जुड़ना एक अद्भुत स्थिति को दर्शाता है : ''तभी मोबाइल चिंघाड़ने लगा। उसने मुंह दबा दिया। दूसरी बार चिंघाड़ा। फिर मुंह मरोड़ा। तीसरी बार जब चिंघाड़ा तो हड़बड़ी में फर्श पर गिर गया और दो टुकड़े हो गया।. .....साथी ने मोबाइल उठा कर एकदम जोड़ दिया। जोड़ते ही वह जीवित हो उठा और इस बार थर्राते हुए जोर जोर से कांपा।''

एक बेहतरीन कहानी ''हदे निगाह तक'' में जिस वातावरण की अपेक्षा थी, वह कथाकार ने सहज ही निर्मित किया है। धड़धड़ाती ट्रेन का अजगर की तरह फुंकारना और 'केंचुली चढ़े सांप की तरह सुरंग में घुसना' एक अजीब विजुअल उत्पन्न करता है जिस में सुंरग का गहराता अन्धेरा और 'टप् टप् और चप् चप् की आवाजें जैसे कोई जानवर पानी पी रहा हो' का भय है। ऐसे ही एक दूसरे विजुअल में 'बड़ी बड़ी लम्बी जटाओं वाले साधु लाल लाल आंखें किए चिलम एक दूसरे की ओर बढ़ा रहे थे।.....पीले लेप और काले रंग के बीच उनकी लाल आंखें बाज सी चमक रही थीं।' इस सब के बीच सबसे दहलाने वाला दृश्य मॉरचुरी का है :

''सिपाही ने एक रैक को हैण्डल से पकड़ बाहर खींचा तो सफेद चादर में लिपटी लाश बाहर आ गई। जोर से खींचने से उसका सिर देर तक हिलता रहा।....उसने गले के पास से चादर कांपते हाथों से खोली।...बहुत अजीब सा चेहरा था उसका एकदम पीला, जैसे जहर फैल गया हो। कुम्हलाए हुए ताजे फूल सा...शाख से टूट लटकी हुई हरी डाल सा।''

इस शिनाखत में 'पांच फुट से कुछ ज्यादा बुजुर्ग जिसकी पाव भर हड्डियां थीं', का अपने पोते को एक रैक में देख कर भी न देखने की स्थिति अत्यन्त मार्मिक हैं। बूढ़े ने कहा ''....हां, मैंने पहचान लिया...वही था। उसका अबोध चेहरा कितना उलझनभरा, हैरान परेशान और पस्त त्रस्त हो गया था। उसकी आंखें खुली थीं, मैंने हौले से बंद कर दीं और... ।''

यूं तो कहानी में पीर पैगम्बरों नजूमियों के पास जाना, महामृत्युंजय का पाठ कराना, शमशान में तिल फेंकना आदि बहुतेरे प्रसंग ऐसे है जो मन को झकझोर देते हैं किंतु इस प्रसंग में पोते का मृत शरीर देख लेने पर भी बूढ़े का शिनाख्त करने बार बार आना और न रहने पर भी घर वालों के लिए जिंदा रखना एक बहुत ही मारक स्थिति है।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'नेत्रदान' यूं तो व्यंग्य कहानी है किंतु जहां आवयश्क बना, वहां कविता सी बानगी देखने को मिलती है यथा :

''उसकी आंखें बहुत बड़ी बड़ी थीं, फैली हुईं, एकदम बाहर। जब पलकें उठतीं तो सीप सी खुलतीं। बीच में मछली की आंख की तरह झिलमिलातीं। पानी पारे सा थरथराता। लगता, नीचे झुकेगी तो आंखें एकदम से नीचे गिर जाएंगी।''

अंगदान के विचार से व्यंग्य में उल्लेख आता है : ''और जिस आदमी की ताजा ताजा बाई पास सर्जरी हुई है, वह अपना बीमार दिल किसे दान करेगा।... क्या बीमार और पुराने अंग भी दान में लिए जाते होंगे! उसकी पीठ में दर्द है। लगता है लकड़ी की तरह कभी भी टूट जाएगी। घुटनों में गठिया, मेदा हमेशा खराब रहता है, सांस फूलती है, एक किडनी काम नहीं करती... ऐसे ही हैं उसके अंग। घिसे पिटे, सड़े गले, जंग लगे। रिप्लेस और रिपेयर हुये। कई बार डेंटिंग पेंटिंग हो चुकी है।...... पुराने घिसे पिटे और बुरी तरह इस्तेमाल किये हुए अंग क्या दान करेगा!''

कहानी के अंत में नेत्रदान के समय पुरोहित की इच्छा है कि उसकी आंखें कुछ नया, कुछ अच्छा देखें। वह सोचता है :

''वह ऐसा न देखे, जो मैंने देखा। वह देखे ऐसा, जो मैं नहीं देख सका। वह देखे भरा भरा संसार, ठण्डे मीठे झरने। उसे दिखाई दे हरा ही हरा....मखमली हरी घास, हरे हरे पेड़, चहचहाते परिंदे। वह न देखे बिल्ली बनते बुजुर्ग, बाघ बनते बच्चे। वह न देखे बाज, उड़ते जहाज देखे। वह न देखे सूखी धरती, उड़ती आंधियां, तपते रेगिस्तान।.....वह न देखे अलसाते राजा, शातिर दरबान। न देखे मस्ती करते मन्त्री, चटोरे संतरी, मसखरे बजंतरी। वह न देखे दरबारी वर्कर, डरपोक अफसर, सरकारी तस्कर।...बड़े लोग न सही, छोटे-छोटे बच्चे देखे। पूरा आकाश न सही, एक खिड़की ध ूप देखे। पूरी धरती न सही, एक आंगन घास देखे। न देखे सिमटते गांव, जलते शहर न देखे।....पूरे आराम न सही, छोटे छोटे सुख देखे। वह देखे खिलते फूल, खेलते बच्चे। पीली सरसों और पतंग। होली के रंग, तितली के पंख।''

वशिष्ठ की कहानियां बाह्य जगत की न हो कर आन्तरिक संसार की कहानियां हैं। कथाकार की यात्रा बाहर से भीतर की ओर है। अतः इन में भीतरी संवेदनाओं के अम्बार हैं जो भाषा को बार बार मुहावरेदार, कोमलकान्त और काव्यमय बनाता है। ये कहानियां मन से लिखी गई हैं, बुद्धि से नहीं। मन चीजों के मर्म को पकड़ता हुआ गहरे तक खंगालता है। अतः भाषा और शब्द का चमत्कार बार बार सहज भाव से संस्कारित हो कर निकलता है।

अमर उजाला, टिम्बर हाउस, शिमला-171001

एक कोशिश और...
लीक से हटकर आम आदमी की कहानियां

● **बाल कवि घमंडीलाल अग्रवाल**

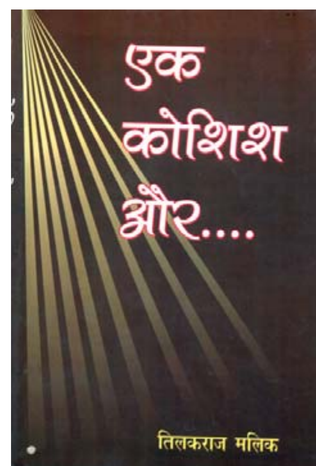
श्री तिलकराज मलिक, रिटायर्ड कमांडडैंट बी.एस.एफ. वर्तमान में अधिवक्ता के रूप में समाज सेवा में कार्यरत हैं। वह मूलरूप से अहिंदी भाषी प्रदेश से हैं और लीक से हटकर लिखने वाले किस्सागो हैं, जो आम भाषा में आम आदमी के लिए लिखते हैं।

हाल में ही प्रकाशित इनके कहानी संग्रह में 15 कहानियां हैं। इस संग्रह की अधिकांश कहानिहयां आम आदमी के इर्द-गिर्द घूमती हैं और उनके रोजमर्रा की हीनताओं को उजागर करती हैं। इस संग्रह की पहली कहानी 'आदत' जो पति-पत्नी के बनते-बिगड़ते रिश्तों की व्यथा है। पत्नी हमेशा पति को प्रोत्साहित करती है कि तुम अभी इतने बूढ़े नहीं हुए कि तुम बूढ़ों जैसी बातें करो। पति-पत्नी की नोंक-झोंक के सुखद परिणामों के साथ यह कहानी समाप्त होती है। 'आस' इनसान की हैवानियत को दर्शाती है, परंतु अंत बहुत सुखद है। कहानी 'बाजार' समाज से तंग आकर पलायन करने वाली एक महिला की कहानी है। लेखक की लेखनी भूख जैसे विषय पर अधिक गतिशील है इसलिए कहानी 'भूख' में उसने अपनी लेखनी को चरम सीमा पर पहुंचा दिया है। उसका मानना है कि भूख तो भूख है, चाहे वह पेट की भूख हो या शरीर की। 'गोत्र' कहानी गोत्र में जलते हुए उत्तर भारत की कहानी है। और इसका सुखद अंत विदेश में जाकर घटता है। 'डर' और 'इनसान' दोनों कहानियां मानव सम्बंधों से ऊपर उठकर जीने का दम भरती हैं। 'जन्मपत्री, कसाई, खुदा की नियामत' आदि कहानियां आदर्शवादी हैं। 'मुर्दा' कहानी एक निराश युवक की गाथा है। इसके विपरीत 'नीयत' कहानी आज के समाज की नीयत को दर्शाती है। कहानी 'नन्ही मां' पर पुस्तक 'रिश्तों के लेवल' का अधिक प्रभाव है। 'पंचायती फैसला' एवं 'सम्पूर्ण औरत' समाज में अवैध सम्बंधों की संस्कृति को दोहराती है। कहानी 'संस्कार' भी कुछ इसी विषय पर है।

कहानी 'शरी' छिछड़ों में लिपटे ऐसे मानव की कहानी है, जो अधमरा शमशान में पहुंच जाता है और जलने की जिद करता है। कहानी 'ठूंठ' एक मधुर प्रेम कहानी है जहां शरीर अर्थ नहीं रखते।

'वारिस वो सात दिन, वो अंकल, यही जीवन है' । ये सभी कहानियां दिल को छू लेने वाली हैं। 'चप्पल एवं दादी की शादी' कहानी आज के पूंजीवादी समाज में लीक से हटकर लिखी कहानियां हैं जिनमें लेखक ने रूढ़िवादी प्रथाओं को बुरी तरह नकारा है। 'आखिरी कोशिश एवं इंतजार' संदेशवाहक कहानियां हैं। इस संग्रह की सारी कहानियां, कहानी की विशेषताओं एवं शैली पर पूर्ण उतरती हैं। उनमें कहानी के सम्पूर्ण गुण हैं। तिलकराज मलिक की सभी कहानियां, हमारे आसपास घटित होती प्रतीत होती हैं। इनमें सच्चाई और परिवर्तन की एक लहर है। अंत में मैं यही कहूंगा कि प्रत्येक कहानी संदेश वाहक और प्रश्न वाहक है।

785/8, अशोक विहार, गुड़गांव, हरियाणा-122 006, मो. 92104 56666



पुस्तक : एक कोशिश और....

लेखक : तिलकराज मलिक

प्रथम संस्करण : 2013

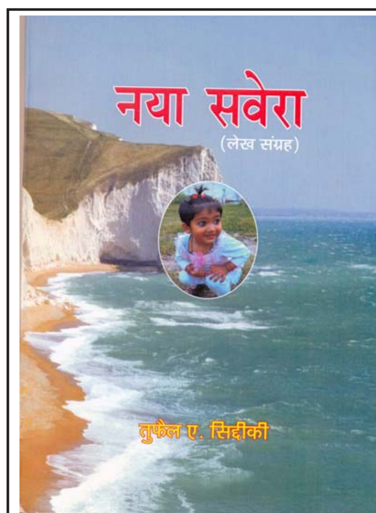
मूल्य : 200 रुपये

प्रकाशक : अंकुर प्रकाशन ए-31 सी, न्यू गुप्ता कॉलोनी, दिल्ली-9

देश-दुनिया की खबर लेते निबंध

● **अनन्त आलोक**

हमारे आस पड़ोस, देश दुनिया में दिन प्रति दिन अनेकों घटनाएँ, दुर्घटनाएं घटित होती रहती हैं। समाचार पत्र और इलेक्ट्रोनिक मीडिया इन्हें बढ़ा-चढ़ाकर परोसता है और हम रसास्वादन करते हैं। समाचार पत्रों एवं इलेक्ट्रोनिक मीडिया को अपना व्यवसाय करना है अतः स्वभाविक है कि वे वही दिखायेंगे जो बहुसंख्यक समाज पसंद करे, जिससे उनकी टी आर पी बढ़े और उनका व्यवसाय उन्नति करे। ऐसे में एक सजग एवं बुद्धिजीवी लेखक का कर्तव्य है कि वो उसकी निष्पक्ष पड़ताल करे, विश्लेषण करे एवं जनता को वास्तविक स्थिति से अवगत करवाए। ऐसे ही सजग एवं प्रखर लेखक हैं तुफैल ए सिद्दीकी। यहाँ समीक्षित पुस्तक 'नया सवेरा' इनका दूसरा लेख संग्रह और तीसरी पुस्तक है। पुस्तक में कुल 46 निबंध संकलित हैं। लेखक ने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, शैक्षिक, महिला विमर्श आदि लगभग सभी विषयों पर निर्मम लेखनी चलाई है। संकलित निबध समसामयिक विषयों पर तुरंत प्रतिक्रिया है जो समाचार पत्रों के लिए लिखे गए हैं और प्रकाशित भी हुए हैं। चुनावी वायदों पर प्रतिक्रिया देते हुए लेखक कहता है कि सभी राजनैतिक पार्टियाँ चुनाव के समय जनता से 56 भोग के वायदे कर जाती हैं लेकिन ये नहीं सोचती कि ये वायदे पूरे कैसे होंगे और न ही जनता को ये बताने की जरूरत समझती हैं कि इसके लिए धन कहाँ से आएगा।



पुस्तक : नया सवेरा (लेख संग्रह)

लेखक : तुफैल ए सिद्दीकी

प्रकाशक : आशिमा पब्लिकेशन्स 187/5, शमशेरपुर, पांवटा साहिब जिला सिरमौर

हिमाचल प्रदेश 173025

मूल्य : 75 रुपये

एक ओर देश महंगाई के बोझ तले पिस रहा है दूसरी ओर खाद्यान्नों के आभाव का रोना सरकारें हरदम रोती रहती हैं इस पर लेखक कहता है कि खाद्यान्नों की देश में कोई कमी नहीं है लेकिन उचित भण्डारण व्यवस्था एवं प्रबंधन के अभाव में हजारों टन अनाज सड़ रहा है तथा चूहों व अन्य जानवरों का ग्रास बन रहा है। आज देश भ्रष्टाचार के मायाजाल में बुरी तरह से उलझा हुआ है। इस पर लेखक 'व्यक्तिगत स्तर पर मिटेगा भ्रष्टाचार लेख में कहते हैं कि हम स्वयं को सुधार लें तो समाज खुद ब खुद सुधार जाएगा। वास्तव में इस समस्या का इससे अच्छा उपाय कोई और है भी नहीं।

लेखन दो प्रकार से प्रेरित होता है; स्वानुभूति और सहानुभूति। हमारे देश में हज पर जाने वाले हाजियों को केंद्र सरकार सब्सिडी देती है जिस पर सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार से इस नीति पर पुनर्विचार करने को कहा। इस पर तल्ख लेखक ने प्रश्न दागा कि आखिर हाजियों ने हज के लिए सब्सिडी मांगी कब थी। हालाँकि लेखक ने एक ही लेख में इसका खंडन और मंडन भी कर दिया।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में समय समय पर कुछ परिवर्तन हुए हैं। इसमें अंक के स्थान पर ग्रेडिंग सिस्टम लागू हुआ तो लेखक ने कहा कि आखिर इससे फर्क क्या पड़ा, पहले अच्छे अंक लाने का दबाव विद्यार्थियों पर था और अब अच्छा ग्रेड लाने का दबाव है। किसी भी निति को यों तो बहुत सोच विचार कर लागू किया जाता है, लेकिन उसका वास्तविक परिणाम और प्रभाव लागू होने पर ही पता चलता है, अतः नीतियों का विश्लेषण बुद्धिजीवियों के स्तर पर होना भी आवश्यक है। संकलन का सर्वोत्तम निबंध निश्चित रूप से 'प्रत्येक व्यक्ति को हो सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक आजादी' है। जिसमें लेखक ने भूमिका से लेकर विषय प्रतिपादन, मंडन और उपसंहार तक विषय को पकड़े रखा। प्रत्येक भाग को पर्याप्त स्थान दिया। वाक्य विन्यास और भाषा पर यहाँ पूरा ध्यान दिया गया है। वाक्यों का गुंफन अटूट प्रतीत होता है। निबंध में लेखक कहता है कि जिस आजादी के लिए शहीद भगत सिंह ने अपनी जान की बाजी लगा दी, वह आजादी अभी तक प्रत्येक भारतवासी को नसीब नहीं हुई।

'नकल के लिए अक्ल 'लेख में लेखक ऐतिहासिक सन्दर्भों का सहारा लेकर नकल के विश्लेषण के साथ साथ मंडन करता है।

अंत में कहा जा सकता है कि कुछ निबंध वर्णनात्मक और विवेचनात्मक शैली में लिखे गए हैं जो विषयानुरूप हैं। बाकी के निबंध संलाप शैली का अनुसरण कर रहे हैं। संकलन में कुछ लेख न तो निबंध ही बन पाए हैं और न प्रबंध लेख ही बन पाए हैं। वे केवल एक रूपरेखा ही बन कर रह गए हैं। इन पर लेखक को कुछ और कार्य करने की आवश्यकता है। कुछ निबंध बिना भूमिका के सीधे खंडन या मंडन पर आ गए, कुछ में निष्कर्ष विषयांतर हो गया है। एक बात की प्रशंसा करनी होगी कि लेखक ने न केवल देश में घटित घटनाओं पर तुरंत प्रतिक्रिया दी है अपितु वैश्विक स्तर पर भी सभी मुद्दों की गहन छानबीन की है। पुस्तक का कवर तो सुंदर और आकर्षक है लेकिन भीतरी पृष्ठों की साज-सज्जा और डिजाइनिंग साधारण सी प्रतीत होती है। इसको अधिक आकर्षक और सुंदर बनाया जा सकता था। कुल मिला कर पुस्तक पठनीय है। विषय विचारोत्तेजक हैं। मैं लेखक के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

'साहित्यालोक ' बायरी , ददाहू
सिरमौर, हिमाचल प्रदेश 173022, मो 09418740772

कविता

जिंदगी

● रोशन लाल पराशर

सपनों से जिंदगी
बढ़ती सदा आगे
जिंदा रहें सपने
इसी का नाम जिंदगी।

खुली आंखों से देखे सपने
रह गए जो अधूरे
करें खुद पर भरोसा
कि इस साल हो वे पूरे।

खुद से करें वादा
न करें कोई काम ऐसा
जिसपर होना पड़े शर्मिंदा
अपनी ही नजरों से।

खुद की जरूरतें तो
न हो पाई कभी पूरी
दुनिया की रस्मों को
निभाने की भी मजबूरी।

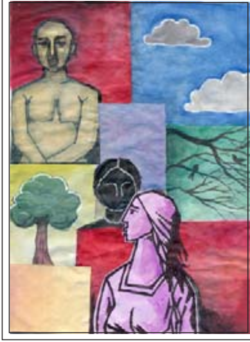
वादे भी चलते हैं
जिंदगी के साथ-साथ
करें हौंसले से पूरा
मिलेगी खुशियों की सौगात।

खिल-खिलाकर हंसती है जिंदगी
कभी दुःख-दर्द है जिंदगी
यूं हार-जीत की
कहानी है जिंदगी।

पूजा निवास, लोअर फागली, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 004, मो. 98160 54093

हिमप्रस्थ

वर्ष : 59 मार्च 2015 अंक : 12



प्रधान सम्पादक
डॉ. एम.पी. सूद

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

आवरण एवं रेखांकन
सर्वजीत सिंह

कम्पोजिंग एवं पृष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालयः हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्कः 50 रुपये, एक प्रति : 5 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

हम सभी की मदद नहीं कर सकते। लेकिन हर कोई किसी-न-किसी की मदद जरूर कर सकता है।

– अज्ञात

इस अंक में

लेख

विकास

कहानी

कविता/ग़ज़ल/हाइकू

समीक्षात्मक लेख

अपनी बात

'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहां स्त्रियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं। वैदिक और प्राचीन काल में भारतीय महिलाओं को समाज में उच्च्य दर्जा प्राप्त था। समय के हर दौर में महिलाओं ने बार-बार न केवल अपनी प्रतिभा को साबित किया, बल्कि जरूरत पड़ने पर समाज को नई राह भी दिखाई है। आज के वर्तमान युग में महिलाओं ने सागर की गहराइयों को नापने से लेकर एवरेस्ट को फतह करने तक अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है। देश की होनहार महिलाओं ने अंतरिक्ष में भारतीय परचम लहराने के साथ-साथ राष्ट्रीय स्वाभिमान की परिचायक गणतंत्र दिवस परेड की अगुवाई और वाघा बॉर्डर पर कमान संभालने जैसे दायित्व बाखूबी निभाकर नारी शक्ति को गौरवान्वित किया है। भारत में महिलाओं के सम्मान एवं स्थिति का इस बात से भी पता चलता है कि भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने कार्यकाल में एक सशक्त भारत की नींव रखी। 1971 के युद्ध, सहित अनेक ऐसे कदम उठाए जिससे भारत की दुनिया में साख बढ़ी। लेकिन दुनिया का सबसे सशक्त लोकतंत्र कहलाने वाला अमेरिका अभी तक राष्ट्रपति के पद पर किसी महिला को नहीं बिठा पाया है। लेकिन बावजूद इसके हमारे समाज में महिलाओं की दशा और दिशा का दूसरा पहलू बहुत ही दयनीय एवं सोचनीय है। बेटों की चाह में कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध से न केवल महिला-पुरुष लिंग अनुपात बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है, बल्कि इससे समाज में महिलाओं के प्रति विकृत मानसिकता का जहर भी फैलता जा रहा है। स्त्री तो मानव शरीर की निर्मात्री है तो उसकी हर स्तर पर अवहेलना क्यों? महिला चिंतन के नाम पर 8 मार्च देशभर में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस दिन महिलाओं के सम्मान में आयोजन किए जाते हैं। क्या इस प्रकार के आयोजनों का महिलाओं के प्रति हमारी रूढ़िवादी सोच पर कोई प्रभाव पड़ता है? महिलाओं के प्रति उदार मानसिकता अपनाने की प्रक्रिया बहुत ही धीमी गति से चल रही है। महिला दिवस पर बेशक हम महिलाओं का कितना भी सम्मान करें, लेकिन जब तक महिलाओं को ग्राम पंचायत से संसद तक उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, तब तक सही मायनों में जमीनी स्तर पर वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। इस दिशा में समाज में नवजागरण का मोर्चा महिलाओं को स्वयं भी संभालना होगा। अपराध को जड़ से खत्म करना है, तो महिला को स्वयं आगे आना होगा, क्योंकि एक महिला ही अपनी संतान को सुसंस्कृत, शिक्षित और सुव्यवस्थित इनसान बना सकती है। एक शिक्षित महिला पूरे परिवार को शिक्षित बना सकती है। महिला कल्याण की दिशा में सरकारी स्तर पर किए जा रहे प्रयास तभी फलीभूत हो सकते हैं, जब हम संगठित प्रयासों से आगे बढ़ेंगे। अब समय आ गया है कि ममत्व, क्षमा व त्याग की प्रतिमूर्ति मदर टेरेसा की तरह ही कोई और महिला समाज में नवचेतना का संचार करे। निर्भया जैसे जघन्य अपराधों को रोकने के लिए महिलाओं की आबरू रक्षा में रानी झांसी की तरह तलवार उठाकर बुराई का डटकर मुकाबला करे और समाज को नई राह दिखाए। महिलाओं के उत्थान और उनके सम्मान की रक्षा के लिए हम सभी को एकजुट होकर प्रयास करने होंगे, क्योंकि देश की आधी आबादी को साथ लेकर ही हम सही मायनों में विकास के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं।

–सम्पादक

आलेख

आधुनिक दौर में विलुप्त होती पुरातन ग्रामीण संस्कृति

● डॉ. आर. के. शुक्ला

प्रारम्भ में मानव पूर्णतया प्रकृति पर अवलम्बित था, और प्रत्येक ऋतु में निर्बाध घूमता-फिरता था। धीरे-धीरे उसने फल-फूल, कन्दमूल, मांस खाकर वृक्षों के नीचे व गुफाओं में रहना आरम्भ किया। इस प्रकार जब मनुष्य को खाने-पीने, शरीर ढांपने और झोंपड़ी में रहने की आवश्यकता अनुभव होने लगी, तो वही अवस्था भारतीय सभ्यता की उत्पादिका कही जा सकती है। इतिहासकारों का मत है कि नव-पाषाण काल के अन्त तक यहां ग्रामीण सभ्यता स्थापित हो गई थी। लोग पशुपालन और खेतीबाड़ी करने लगे थे। मिल-जुलकर रहने, एक-दूसरे की सहायता करने, उदारता बरतने व प्रेमभाव रखने की भावात्मक प्रगति ने मनुष्य को समूहजीवी-प्राणी के रूप में विकसित किया, और वह परिवार एवं ग्राम बनाकर रहने लगा। उत्तर वैदिक काल में यहां जौ, गेहूं, मूंग, उड़द, चावल, कपास व तिलहन की खेती होती थी। लोग गाय, बैल, भेड़, बकरी, कुत्ता, घोड़ा आदि पशु पालते थे। उपज बढ़ाने के लिए खेतों में गोबर की खाद डाली जाती थी। हल बहुत भारी होते थे। एक हल में चौबीस बैलों तक जोते जाने का उल्लेख है।[1] वाजसनेयी संहिता में कृषक, गोप, लोहार, सुनार, कुम्हार, धोबी, वैद्य, मछुए, नाविक, नट, नाई, जुलाहे, रथकार, सारथी, गडरिये आदि पेशावरों का वर्णन मिलता है। विभिन्न उद्योग-धन्धों में काम करने वाली स्त्रियों की भी जानकारी मिलती है - जैसे रंगने वाली (रजयिनी), सुईकारी या कसीदा काढ़ने वाली (पेशस्कारी), बांस का काम करने वाली (कंटकीकारी), बेंत की टोकरी बनाने वाली (विदलकारी) आदि।[2]

वास्तविक भारत आज भी गांवों में बसता है। हिमाचल प्रदेश भारत का एक पहाड़ी राज्य है। इस प्रदेश की नब्बे प्रतिशत जनता ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। यहां की अपनी एक समृद्ध संस्कृति है, जिसमें विविधता व गहनता के साथ-साथ जीवंतता व व्यावहारिकता है। वर्षों की सांस्कृतिक विरासत आज भी यहां के लोकजीवन में स्पष्ट झलकती है। लोग कृषि, बागवानी, पशुपालन व अन्य घरेलू काम-धन्धे करते हैं। ग्रामीण लोग कर्म में विश्वास करते हैं और कृषि कार्य को अपना धर्म व पूजा मानते हैं। उनका विचार है कि अगर वे हल नहीं चलाएंगे तो धरती बंजर हो जाएगी। इसलिए भीषण गर्मी व ठिठुरती सर्दी में भूख-प्यास की परवाह किए बिना हल चलाकर तथा अन्य कार्य करते हुए रात को सुख की नींद सोते हैं। बत्तर (फसल की बुआई) के समय लोग अपने-अपने कार्यों में इतने मग्न होते हैं, मानों समय उनके लिए ठहर गया हो। हलों में जुते बैलों और उनके गले में बंधी घंटियों की आवाज तथा किसानों की बैलों को हांकने की आवाज से आसपास का सारा वातावरण संगीतमय होता है। क्षेत्र और ऋतु के आधार पर यहां मक्की, धान, उड़द, मूंग, तिल, सोयाबीन, राजमा, गेहूं, जौ, चना, सरसों, मटर, अलसी, कपास, गन्ना आदि की खेती होती है। इसके साथ-साथ लोग बैंगन, भिंडी, हल्दी, टमाटर, अदरक, मिर्च, जिमीकन्द, आलू, कचालू, गोभी, मूली, गाजर, प्याज, लहसुन, मेथी, धनिया आदि भी उगाते हैं। सेब, बादाम, नाशपाती, पलम, आड़ू, आम, अनार, अमरूद, संतरा आदि फल उत्पादन भी करते हैं। कुछ लोग पॉलीहाउस में फूल व सब्जियां उगाकर अपनी आर्थिकी सुदृढ़ करते हैं।

कृषि-बागवानी के साथ-साथ हिमाचली ग्रामीण लोग पशुपालन प्रमुखता से करते हैं। यहां गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा आदि पशु पाले जाते हैं। गाय, भैंस व बकरी से दूध, दही तथा भेड़ों से ऊन प्राप्त की जाती है। बैल खेतों में हल जोतने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। इन पशुओं को अलग मकान में रखा जाता है जिसे पशुशाला (गोढ़ या ग्वायण) कहते हैं। पशुओं को स्वच्छ चारा खिलाने के लिए पशुशाला के अन्दर और बाहर खुरलियां बनाई जाती हैं जिनके साथ खूंटे से पशु बांधे जाते हैं। इन पशुओं के गोबर से खेतों के लिए उत्तम खाद तथा आवश्यकता पड़ने पर आग जलाने के लिए उपले बनाए जाते हैं। घोड़ा सामान ढोने तथा कुत्ता घर, पशुधन व कृषि की रखवाली करने के काम आते हैं। कुछ लोग मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, रेशम के कीड़े पालने तथा मशरूम उगाने का काम भी करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में लोक-कला के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं। कृषि एवं पशुपालन सुचारू रूप से करने के लिए लकड़ी और लोहे के अनेक उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। गांव के कुछ लोग जिन्हें 'लोहार' कहते हैं, वे हल, जुंगड़ा, दराती, किलनी, कुदाली, कुल्हाड़ी इत्यादि बड़े कलात्मक ढंग से बनाते हैं। ये लोग घरों के लिए दरवाजे, खिड़कियां, छतों पर शैल व टीन डालने तथा संदूक, पलंग, मेज, कुर्सी, सीढ़ी, तकली, बेलवा, चरखा, परवातड़ा आदि बनाने का काम भी करते हैं। विवाह के अवसर पर प्रयुक्त होने वाली डोली, तोरण व वेदिका के लिए विभिन्न मोर, तोते तथा भवनों व देवालयों में लकड़ी पर बनी विभिन्न कला-कृतियां यहां की काष्ठ कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। गांव के कुछ लोग मिट्टी के वर्तन बनाने का काम करते हैं। ये लोग किसी उचित स्थान से मिट्टी लाकर उसे तैयार कर अपने हाथों की अद्‌भुत कला से चाक पर घड़े, दूध-दही के लिए बर्तन, दीपावली के लिए दीपक, करवाचौथ पर सुहागिनों के मनभावन कुज्जे, तथा विवाह एवं मृत्यु के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मिट्टी के विभिन्न वर्तन बनाते हैं। कुछ लोग दूर-दराज से बांस लाकर उनसे पतली-पतली छड़े निकालकर अनाज सुरक्षित रखने के लिए पेडियां, विवाह-उत्सवों पर पके हुए चावल डालने के लिए टोकरे, घास, उपज, गोबर उठाने के लिए विभिन्न आकारों के टोकरे व किल्टे, रोटियां रखने के लिए करण्डू, पौधों के लिए रक्षा-कवच आदि बनाते हैं। कुछ लोग चमड़े के जूते बनाने का काम करते हैं।

पहाड़ी राज्य होने के कारण हिमाचल में पत्थर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कुछ ग्रामीण लोग बंजर भूमि से पत्थर निकालकर उन्हें छैनी और हथौड़े से तराशकर भवनों, मन्दिरों, कुओं के निर्माण तथा ओखली, घरेलू चक्की, पनचक्की आदि बनाने में प्रयुक्त करते हैं। कुछ लोग पत्थरों से मकान, देवालय, पशुशाला, कुआं, बावड़ी, चेकडैम, सड़कों पर पुल आदि बनाने का काम करते हैं। यहां के अनेक प्राचीन दुर्गों, मन्दिरों, भवनों, कुओं, पुलों आदि में बड़े-बड़े आयताकार, वर्गाकार, अर्धवृत्ताकार पत्थरों का प्रयोग हुआ है। कुछ लोग सदाबहार नालों पर पनचक्की चलाकर आटा पीसने का काम करते हैं। इन पनचक्कियों को लोकभाषा में 'घराट' कहते हैं। कुछ लोग सोने-चांदी के आभूषण बनाने का काम करते हैं। ये लोग विवाह-उत्सवों के लिए जनता की इच्छानुसार मंगलसूत्र, नथ, चाक, बालियां, कांटे, तिल्ली, हार, चेन, चूड़ियां, पायल, बिछवे, रत्न जड़ित अंगुठियां, देवालयों में चढ़ाने के लिए छत्र आदि बनाते हैं। कुछ लोग बाल काटने का काम करते हैं। मुण्डन संस्कार, विवाह एवं मृत्यु होने पर इन्हें विशेष रूप से बुलाया जाता है। कुछ लोग कथा, हवन-यज्ञ, शान्तिपाठ, जन्मपत्री बनाने का काम करते हैं। इन्हें 'पंडित' कहते हैं। जन्मदिवस, विवाह-उत्सव, मृत्यु होने पर इनका मुख्य काम होता है। कुछ लोग विवाह-उत्सव, श्राद्धदि अवसरों पर अतिथियों को भोजन बनाकर खिलाने का काम करते हैं। इन्हें 'बोटी' कहा जाता है। कुछ लोग आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों की जानकारी रखते हैं। वे रोगियों की नब्ज देखकर उन्हें आयुर्वेदिक दवाईयां पीसकर गोलियों एवं पुड़ियों के रूप में देते हैं। इन्हें 'वैद्य' कहते हैं।

पहाड़ी राज्य होने के कारण हिमाचल में पत्थर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कुछ ग्रामीण लोग बंजर भूमि से पत्थर निकालकर उन्हें छैनी और हथौड़े से तराशकर भवनों, मन्दिरों, कुओं के निर्माण तथा ओखली, घरेलू चक्की, पनचक्की आदि बनाने में प्रयुक्त करते हैं। कुछ लोग पत्थरों से मकान, देवालय, पशुशाला, कुआं, बावड़ी, चेकडैम, सड़कों पर पुल आदि बनाने का काम करते हैं।

ग्रामीण लोग तकली से रूई और भेड़ों की ऊन कातते हैं। महिलाएं दोपहर को व देर रात तक चरखा चलाकर सूत व ऊन कातती हैं। कुछ लोग खड्डी पर सूत व ऊन के शॉल, कम्बल, मफलर आदि बनाने का काम करते हैं। पहले महिलाएं सूत कातकर खड्डी से उसका चादर रूपी कपड़ा बनवाकर सूई-धागे से जोड़कर पलंग पर बिछाने के लिए गद्दे (खंदोलू) तैयार करती थीं। कमीज, दुपट्टे, रूमाल आदि पर विभिन्न बेल-बूटे व अन्य चित्र बनाकर कढ़ाई करती थीं। कुछ लोग चीड़ की पत्तियों से टोकरियां आदि, पुआल और हल्दी के सूखे पत्तों से बिन्ने और मंजरियां, सन्न और बगड़ घास से चारपाई के लिए बाण और पशुओं को बांधने के लिए रस्से तैयार करते थे। विभिन्न मशीनों के प्रयोग में आने पर कुछ लोग मशीनों से कपड़े सीलने, आटा पीसने, लकड़ी चीरने, रूई पिंजने, धान कुटने, तिल व सरसों से तेल निकालने तथा वाहन चलाने का काम करते हैं। ग्रामीण लोग कथा-कहानी गढ़ने, बांसुरी वादन, नृत्य, गायन, अभिनय, नेतृत्व, लेखन, अध्यापन, सैनिक, न्यायिक एवं प्रशासनिक कार्यों में भी प्रवीण होते हैं। कच्चे घरों के फर्श का गोबर से आलेपन-चित्रांकन, करवाचौथ, अहोई अष्टमी व दीपावली के अवसर पर रंगोली डालना तथा हरितालिका तीज पर मिट्टी के शिव-पार्वती, गणेश, बैल, चूहा, मोर, तोता, चिड़ियों की मूर्तियों का निर्माण करना, ग्रामीण महिला मस्तिष्क के कलात्मक विकास का द्योतक हैं।

हमारे पूर्वज श्रम-परिश्रम के महत्त्व को भली-भान्ति जानते थे और उनमें जीवन जीने की अद्‌भुत कला थी। तभी शायद किसी कवि ने कहा है -

यह जीवन एक उत्सव है, मनाकर तो देखो,

धरती का कण-कण उर्वर है, तुम फूल खिलाकर तो देखो।

ग्रामीण लोग कड़ी मेहनत करके अपना पेट भरते हैं। कुदाल-फावड़े से वे इतना पसीना बहाते हैं कि बीमारियां उनके शरीर को छूने से कतराती हैं। भारतीय संयुक्त परिवार प्रणाली में बाप-दादा



की मुख्य भूमिका होती है। वे परिवार व समाज में आई जटिलताओं को अपने अनुभव एवं निःस्वार्थ भाव से सुलझाकर नित्य सुख-शान्ति का बीजा-रोपण करते हैं। सभी लोग अपने से बड़े लोगों के पांव छूकर उनका आशीर्वाद लेना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। बच्चे हंसते-खेलते अपने मां-बाप, दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-चाची आदि से अनेक घरेलू काम-धन्धे सीख लेते हैं। दूर शहर से शिक्षा ग्रहण करके या नौकरी करके कुछ दिनों के बाद जब वे अपने गांव और घर में पहुंचते हैं, तो अपने लोगों से मिलकर उन्हें जो प्रसन्नता एवं आन्तरिक संतुष्टि मिलती है उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस परिवार व समाज में श्रम और कर्त्तव्यनिष्ठा की उत्कृष्ट प्रेम-भावनाएं विद्यमान हैं, उसके सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर दूसरों को सुखी बनाने के निमित बड़े से बड़ा त्याग कर सकते हैं। जहां इस तत्त्व की कमी होती है, वहां के लोग अपनी संकुचित स्वार्थपरता के कारण शीघ्र ही अपना अस्तित्व खो देते हैं। इस प्रकार गांव समाज व परिवार का एक आदर्श व्याकरण है, जहां जीवन की परिभाषाएं प्यार, प्रेरणा और अनुभव के आधार पर गढ़ी जाती हैं। हमारे बुजुर्ग परिवार की भावात्मक नींव को सुदृढ़ करके सुरक्षा एवं सामाजिक एकता स्थापित करने का श्रेष्ठ कार्य करते हैं।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार हिमाचल प्रदेश में पिछले एक दशक में 572 नए गांव अस्तित्व में आए। परन्तु इस अवधि में कहीं प्राकृतिक प्रकोप से, कहीं शहरों व सड़कों के विस्तार तथा भवनों के निर्माण के लिए, कहीं नदी-नालों पर बांध बनाने से कृषि योग्य भूमि का एक बड़ा भाग कृषि-कार्यों से कट गया है। इससे प्रदेश के हजारों लोगों को विस्थापित होने का दंश सहना पड़ा है, और दर्जनों बेघर हुए लोगों की भावनाओं को गहरी ठेस पहुंची है। ग्रामीण क्षेत्रों में तेंदुआ, भालू, सूअर, बन्दर जैसे जंगली जानवरों का आतंक, आवारा पशुओं द्वारा खेती को क्षति पहुंचाना, समय पर पर्याप्त वर्षा न होना, बढ़ती कृषि लागत, कृषि उपज का उचित मूल्य न मिलना तथा खेती व पशुपालन को सम्मानजनक दृष्टि से न देखा जाना आदि कारणों से लोग कृषि व्यवसाय से विमुख होते जा रहे हैं। अधिकांश कृषि कार्य मशीनों से होने के कारण बैलों अर्थात् गौवंश की स्थिति दिन प्रतिदिन दयनीय हो रही है। भूगर्भ जलस्तर कम होने और पुराने कुओं, बावड़ियों आदि जलस्रोतों की उचित देखभाल न होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ पेयजल मिलना एक गंभीर समस्या है। जल संकट से पनघट व पनचक्की संस्कृति, कई दुर्लभ पक्षी प्रजातियां और बहुमूल्य जड़ी-बूटियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। प्लास्टिक वस्तुओं के अत्यधिक उपयोग से गांव का प्राकृतिक वातावरण प्रदूषित हुआ है और मिट्टी व बांस के वर्तन बनाने वाले लोगों के हाथों में भी प्लास्टिक के बर्तन शोभायमान हैं। टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाईल, इंटरनेट के इस युग में आंगन में ऋतु राग गाने वाला बंजारा, चरखा कातती महिलाएं, मौज-मस्ती करते बच्चे तथा चोंच खोलकर उड़ती-छिपती चिड़ियों के झुंड़ कम ही दिखाई देते हैं। संयुक्त परिवार शीघ्रता से टूट रहे हैं। पारिवारिक रिश्तों में रिक्तता व गांठे पड़ रही हैं और मिठास व संवेदना गुम हो रही है। खेतिहर, पशुपालक, बुनकर आदि लोग अपने पुश्तैनी काम-धन्धे छोड़कर शहरों में छोटी-मोटी नौकरी करना अधिक पसंद कर रहे हैं। आज गांव के लोगों, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, देवालयों में रखी हुई मूर्तियों आदि सब में असुरक्षा का वातावरण स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

हमारे देश में गांव बसाने की परम्परा बहुत पुरानी है। हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने से पहले यहां की पहाड़ी रियासतों के अनेक शासकों ने नए गांव बसाये। कहलूर-बिलासपुर रियासत के हीराचन्द, अमरचन्द और विजयचन्द नामक राजाओं ने क्रमशः हीरापुर, अमरपुर और विजयपुर गांव बसाये। जनसाधारण की सुख-सुविधाओं एवं भावनाओं को ध्यान में रखते हुए यहां इन्होंने कई कुएं, बावड़ियां व तालाब खुदवाये तथा मन्दिर और रास्ते बनवाये।[3] स्वतंत्र भारत में ग्रामीण विकास के कार्यों के लिए समय-समय पर अनेक योजनाएं चलाई गईं। वर्तमान समय में आदर्श ग्राम योजना के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश के 225 ग्रामों का वर्ष 2016 तक आदर्श ग्राम बनाने का लक्ष्य रखा गया है। इन

गांवों में 100 जिला सोलन से और 125 जिला सिरमौर से चयनित किए गए हैं। अब सांसद आदर्श ग्राम योजना आरम्भ की जा रही है। हिमाचल प्रदेश में शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, पेयजल, विद्युत, दूरसंचार, पर्यटन सेवाओं का गुणात्मक विस्तार करने तथा कृषि, बागवानी, पशुपालन, हस्तशिल्प आदि क्षेत्रों के लिए अधिक लाभदायक योजनाएं कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, बागवानी, पशुपालन, हथकरघा, हस्तशिल्प आदि पर आधारित अधिक लघु औद्योगिक इकाइयां स्थापित करके और ग्रामीण उत्पादों के लिए उचित मूल्य का सुरक्षित बाजार उपलब्ध करवाकर इन काम-धन्धों के प्रति लोगों की हताशा को समाप्त किया जा सकता है। पुराने कुओं, बावड़ियों आदि जलस्रोतों की मरम्मत एवं साफ-सफाई करवाकर और प्रत्येक घर की छत के वर्षा-जल को जल संग्रहण टैंक में इक्ट्ठा करके ग्रामीण पेयजल समस्या को कम किया जा सकता है। गांव में मिनी सचिवालय स्थापित करके वहां एक छत के नीचे पंचायत घर, पटवारघर, डाकघर, बैंक, दूरभाष केन्द्र, सार्वजनिक वितरण केन्द्र उचित मूल्य की दुकान, ग्रामीण उत्पादों की दुकान तथा विद्युत, पानी, कृषि, बागवानी, वन, उद्योग आदि विभागों की सेवाएं उपलब्ध करवाकर जनसाधारण के लिए सुविधाजनक बनाया जा सकता है। यह सचिवालय सड़क, इंटरनेट, स्वच्छ पेयजल, शौचालय आदि सुविधाओं से भरपूर होना चाहिए और स्वास्थ्य केन्द्र, आयुर्वेदिक केन्द्र, पशु औषधालय, खेल परिसर एवं शिक्षण संस्थान इसके समीप स्थित होने चाहिए। उत्कृष्ट कार्य करने वाले लोगों को समय पर पुरस्कृत करने से उनमें तथा समाज में कर्त्तव्यपरायणता की भावना बढ़ेगी और कला एवं संस्कृति का विकास होगा। जीवन की ऊर्जा को सही दिशा में लगाकर देशहित व मानवता की रक्षा के लिए हम सबको एकजुट होकर सत्यनिष्ठा से निरन्तर काम करना होगा।

प्राध्यापक,राजकीय महाविद्यालय
बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश

संदर्भ :

1. हरिदत्त वेदालंकार य भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 51
2. डा. राधाकुमुद मुखर्जी य हिन्दू सभ्यता, पृ. 110
3. गणेश सिंह य शशिवंश विनोद, पृ. 120, 129

कविता

कसक

• पुष्पा राव



मुझे अंधेरे नहीं भाते
भरी दोपहरी
भारी परदों से
रोशनी को बाहर ढकेलता
अंधेरा कमरा।

स्वस्थ निर्मल प्राण के
अंदर न घुसने देने का उपक्रम
बंद झरोखे और द्वार
झाड़फानूस से फूटती
नकली रोशनी।

एयर कंडीशनर की नकली
शीतल बयार
लोगों का वार्तालाप
हाई सोसायटी वाले लोगों का
ऊपरी मिलन।

अंततः एक एक के
व्यवहार की, वेशभूषा की
व्याख्या या आलोचन
सब बेमतलब
उकता देने वाला
बनावटी ऐसे
कैसे बनते चले जा रहे हम।

नुमाइशी चीज़ सा
पिंजड़े का पंछी
वाणी का धनी
बस उतना जितना
कोई सिखा दे
पर समय ही किसे है
नए शब्द देने का
मधुभाषी पिक
बोलने लगा है
कौए का सुर
कर्ण कटु जो लगे

ढका जाता है
उसका आवास
रात का भ्रम जगाने
वह अंधेरे से घिरा
तपसी की सी
मौन समाधि में लीन चुप हैं
इस लम्बी भ्रांति में
उसकी श्वासें ही न चुक जाएं
मन आशंकित है।

उम्र के तकाजे
शक्ति छीजती है
असहायता के हीन भाव से
उबरे तो कैसे कोई !
मन विद्रोह चाहे
वाणी मुखरित होने को
कसमसाए
पर अभिमान की देहरी
रोक दे, विवेक जगा दे
ऊपर उठ जाओ
उस भाव से।

अपनी क्षमताओं को
उपलब्धियों को
बिसार दे कोई और
तो हम दोषी कैसे?

कल्पक हाईट, 7वां तल, 29 ए पैरी क्रॉस रोड, बांद्रा (पश्चिम) मुम्बई-50, मो. 9820623030

आलेख

पारस्परिक सौहार्द और समभाव का उत्सव

● डॉ. कीर्तिवर्धन

होली का त्योहार है, प्यार और मनुहार का,
रंगों का साथ है, अबीर और गुलाल का।

होली भारत का वैदिक कालीन पर्व है। इसका प्रारंभ कब हुआ, इसका कहीं उल्लेख या कोई निश्चित आधार तो नहीं मिलता परन्तु वेदों एवं पुराणों में अवश्य इस त्योहार के प्रचलित होने का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में होली की अग्नि में हवन के समय वेद मंत्र 'रक्षोहणं बल्गहणम' के उच्चारण का वर्णन आता है।

होली पर्व को भारतीय तिथि पत्रक के अनुसार वर्ष का अन्तिम त्योहार कहा जाता है। यह पर्व फाल्गुन मास की पूर्णिमा को संपन्न होने वाला सबसे बड़ा त्योहार है। इस अवसर पर बड़े -बूढ़े ,युवा -बच्चे, स्त्री-पुरुष सबमें ही जो उल्लास व उत्साह होता है, वह वर्ष भर में होने वाले किसी भी अन्य उत्सव में दिखाई नहीं देता है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में इसी फाल्गुन पूर्णिमा से प्रथम चातुर्मास सम्बन्धी 'वैश्वदेव' नामक यज्ञ का प्रारंभ होता था, जिसमे लोग खेतों में तैयार हुई नई आषाढ़ी फसल के अन्न -गेहूं, चना आदि की आहुति देते थे और स्वयं यज्ञ शेष प्रसाद के रूप में ग्रहण करते थे। आज भी नई फसल को डंडों पर बांधकर होलिका दाह के समय भूनकर प्रसाद के रूप में खाने की परम्परा 'वैश्वदेव यज्ञ' की स्मृति को सजीव रखने का ही प्रयास है। संस्कृत में भुने हुए अन्न को होलका कहा जाता है। संभवतः इसी के नाम पर होलिकोत्सव का प्रारंभ वैदिक काल के पूर्व से ही किया जाता है।

यज्ञ के अंत में यज्ञ भस्म को मस्तक पर धारण कर उसकी वन्दना की जाती थी, शायद उसका ही विकृत रूप होली की राख को लोगों पर उड़ाने का भी जान पड़ता है। समय के साथ-साथ अनेक ऐतिहासिक स्मृतियां भी इस पर्व के साथ जुड़ती गई।

नारद पुराण के अनुसार- परम भक्त प्रहलाद की विजय और हिरण्यक्शिपु की बहन 'होलिका' के विनाश का स्मृति दिवस है। कहा जाता है कि होलिका को अग्नि में नहीं जलने का आशीर्वाद प्राप्त था। हिरण्यक्शिपु व होलिका राक्षस कुल के बहुत अत्याचारी थे। उनके घर में पैदा प्रह्लाद भगवान् भक्त था , उसको खत्म करने के लिए ही होलिका उसे गोद में लेकर अग्नि में बैठी थी मगर प्रभु की कृपा से प्रहलाद बच गया और होलिका उस अग्नि में ही दहन हो गई। शायद इसीलिए इस पर्व को होलिका दहन भी कहते हैं।

भविष्य पुराण के अनुसार कहा जाता है कि महाराजा रघु के राज्यकाल में 'ढुन्दा' नामक राक्षसी के उपद्रवों से निपटने के लिए महर्षि वशिष्ठ के आदेशानुसार बालकों को लकड़ी की तलवार-ढाल आदि लेकर हो-हल्ला मचाते हुए स्थान स्थान पर अग्नि प्रज्वलन का आयोजन किया गया था। शायद वर्तमान में भी बच्चों का हो-हल्ला उसी का प्रतिरूप है।

होली को वसंत सखा 'कामदेव' की पूजा के दिन के रूप में भी वर्णित किया गया है।

'धर्माविरुधोभूतेषु कामोअस्मि भरतर्षभ' के अनुसार धर्म संयत काम संसार में ईश्वर की ही विभूति माना गया है। आज के दिन कामदेव की पूजा किसी समय सम्पूर्ण भारत में की जाती थी। दक्षिण में आज भी होली का उत्सव 'मदन महोत्सव' के नाम से ही जाना जाता है।

वैष्णव लोगों के किए यह 'दोलोत्सव' का दिन है। ब्रह्मपुराण के अनुसार --

नरो दोलागतं दृष्टा गोविंदं पुरुषोत्तमं।
फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं ब्रजेत।।

इस दिन झूले में झूलते हुए गोविन्द भगवान के दर्शन से मनुष्य बैकुंठ को प्राप्त होता है। वैष्णव मंदिरों में भगवान् श्री मद नारायण का अलौकिक श्रृंगार करके नाचते गाते उनकी पालकी निकाली जाती है।

कुछ पंचांगों के अनुसार संवत्सर का प्रारंभ वैष्णव पक्ष के प्रारंभ से और कुछ के अनुसार शुक्ल प्रतिपदा से माना जाता है।



विश्वव्यापी पर्व है होली

होलिकोत्सव विश्वव्यापी पर्व है। भारतीय व्यापारियों के कालांतर में विदेशों में बस जाने के बावजूद उनकी स्मृतियों में यह त्योहार रचा बसा है और समय के साथ साथ यह पर्व उन देशों की आत्मा से मिलजुल कर, मगर मौलिक भावना संजोते हुए विभिन्न रूपों में आज भी प्रचलित है। इटली में यह उत्सव फरवरी माह में 'रेडिका' के नाम से मनाया जाता है। शाम के समय लोग भांति-भांति के स्वांग बनाकर 'कार्निवल' की मूर्ति के साथ रथ पर बैठकर विशिष्ट सरकारी अधिकारी की कोठी पर पहुंचते हैं। फिर गाने-बजाने के साथ यह जुलूस नगर के मुख्य चौक पर आता है। वहां पर सूखी लकड़ियों में इस रथ को रखकर आग लगा दी जाती है। इस अवसर पर लोग खूब नाचते-गाते हैं और हो-हल्ला मचाते हैं।

फ्रांस के नार्मन्दी नामक स्थान में घास से बनी मूर्ति को शहर में गाली देते हुए घुमाकर, लाकर आग लगा देते हैं। बालक कोलाहल मचाते हुए प्रदक्षिणा करते हैं।

जर्मनी में ईस्टर के समय पेड़ों को काटकर गाड दिया जाता है। उनके चारों तरफ घास-फूस इकट्ठा करके आग लगा दी जाती है। इस समय बच्चे एक दूसरे के मुख पर विविध रंग लगाते हैं तथा लोगों के कपड़ों पर ठप्पे लगा कर मनोविनोद करते हैं।

स्वीडन नार्वे में भी शाम के समय किसी प्रमुख स्थान पर अग्नि जलाकर लोग नाचते गाते और उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। उनका विश्वास है की इस अग्नि परिभ्रमण से उनके स्वास्थ्य की अभिवृद्धि होती है।

साइबेरिया में बच्चे घर-घर जाकर लकड़ी इकट्ठा करते हैं। शाम को उनमें आग लगाकर स्त्री -पुरुष हाथ पकड़कर तीन बार अग्नि परिक्रमा कर उसको लांघते हैं।

अमेरिका में होली का त्योहार 'हेलोईन' के नाम से 31 अक्टूबर को मनाया जाता हैं। 'अमेरिकन रिपोर्टर' ने अपने 12 मार्च 1954 के अंक में लिखा- हैलोइन का त्योहार अनेक दृष्टि से भारत के होली त्योहार से मिलता-जुलता है। जब पुरानी दुनिया के लोग अमेरिका पहुंचे थे तो अपने साथ हैलोइन का त्योहार भी लाये थे। इस अवसर पर शाम के समय विभिन्न स्वांग रचकर नाचने-कूदने व खेलने की परम्परा है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में पूर्णिमा पर मासांत माना जाता है जिसके कारण फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को वर्ष का अंत हो जाता है और अगले दिन चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से नव वर्ष आरम्भ हो जाता है।

इसीलिए वहां पर लोग होली पर्व को संवत जलाना भी कहते हैं। क्योंकि यह वर्षांत पूर्णिमा है अतः आज के दिन सब लोग हंस गाकर रंग-अबीर से खेलकर नए वर्ष का स्वागत करते हैं।

इतिहास में होली का वर्णन

वैदिक कालीन होली की परम्परा का उल्लेख अनेक जगह मिलता है। जैमिनी मीमांसा दर्शनकार ने अपने ग्रन्थ में 'होलिकाधिकरण' नामक प्रकरण लिखकर होली की प्राचीनता को चिन्हित किया है।

विन्ध्य प्रदेश के रामगढ़ नामक स्थान से 300 ईसा पूर्व का एक शिलालेख बरामद हुआ है जिसमें पूर्णिमा को मनाये जाने वाले इस उत्सव का उल्लेख है।

वात्सायन महर्षि ने अपने कामसूत्र में 'होलाक' नाम से इस उत्सव का उल्लेख किया है। इसके अनुसार उस समय परस्पर किंशुक यानी ढाक के पुष्पों के रंग से तथा चन्दन-केसर आदि से खेलने की परम्परा थी

सातवीं सदी में विरचित 'रत्नावली' नाटिका में महाराजा हर्ष ने होली का वर्णन किया है। ग्यारहवीं शताब्दी में मुस्लिम पर्यटक 'अलबरूनी' ने भारत में होली के उत्सव का वर्णन किया है। तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकारों के वर्णन से पता चलता है कि उस समय हिन्दू और मुसलमान मिलकर होली मनाया करते थे।

सम्राट अकबर और जहांगीर के समय में शाही परिवार में भी इसे बड़े समारोह के रूप में मनाये जाने के उल्लेख हैं।

होली पर्व का वैज्ञानिक आधार

भारत ऋषि मुनियों का देश है। ऋषि-मुनि यानी उस समय के वैज्ञानिक जिनका सार चिंतन- दर्शन विज्ञान की कसौटी पर खरा-परखा, प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करता रहा है। पश्चिम के लोग भारत को भूत-प्रेत व सपेरों का देश कहते हैं , मगर वह भूल जाते हैं कि विश्व में भारत ही एक मात्र देश है जिसके सारे त्योहार, पर्व, पूजा पाठ, चिंतन-दर्शन सब विज्ञान की कसौटी पर खरा-उतरते हैं।

हमारे ऋषि-मुनियों ने विज्ञान व धर्म का ताना-बाना बुना और ताने-बाने से निर्मित इस चदरिया को त्योहारों व पर्वों के नाम से समाज के अंग-अंग में प्रचलित किया।

भारत में मनाया जाने वाला होली पर्व भी विज्ञान पर आधारित है। इसकी प्रत्येक क्रिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव स्वास्थ्य और शक्ति को प्रभावित कराती है। एक रात में ही संपन्न होने वाला होलिका दहन, जाड़े और गर्मी की ऋतु संधि में फूट पड़ने वाली चेचक, मलेरिया, खसरा तथा अन्य संक्रामक रोग कीटाणुओं के विरुद्ध सामूहिक अभियान है। स्थान-स्थान पर प्रदीप्त अग्नि आवश्यकता से अधिक ताप द्वारा समस्त वायुमंडल को उष्ण बनाकर सर्दी में सूर्य की समुचित उष्णता के अभाव से उत्पन्न रोग कीटाणुओं का संहार कर देती है। होलिका प्रदक्षिणा के दौरान 140 डिग्री फारनहाईट तक का ताप शरीर में समाविष्ट होने से मानव के शरीरस्थ समस्त रोगात्मक जीवाणुओं को भी नष्ट कर देता है।

होली के अवसर पर होने वाले नाच-गान, खेल-कूद, हल्ला-गुल्ला, विविध स्वांग, हंसी-मजाक भी वैज्ञानिक दृष्टि से लाभप्रद हैं। शास्त्रानुसार वसंत में रक्त में आने वाला द्रव आलस्य कारक होता है। वसंत ऋतु में निद्रा की अधिकता भी इसी कारण होती है। यह खेल-तमाशे इसी आलस्य को भगाने में सक्षम होते हैं।

महर्षि सुश्रुत ने वसंत को कफ पोषक ऋतु माना है।

कफश्चितो हि शिशिरे बसन्तेअकार्शु तापितः।
हत्वाग्निं कुरुते रोगानातस्तं त्वरया जयेतु।।

अर्थात शिशिर ऋतु में इकट्ठा हुआ कफ, वसंत में पिघलकर कुपित होकर जुकाम, खांसी, श्वास, दमा आदि रोगों की सृष्टि करता है और इसके उपाय के लिए ---

तिक्ष्नैर्वमननस्याधैर्लघुरुक् षैश्च भोजनैः।
व्यायामोद्वर्तघातैर्जित्वा श्लेष्मान मुल्बनं।।

अर्थात तीक्ष्ण वमन, लघु रुक्ष भोजन,व्यायाम,उद्वर्तन और आघात आदि काफ को शांत करते हैं। ऊँचे स्वर में बोलना, नाचना, कूदना, दौड़ना-भागना सभी व्यायामिक क्रियाएं हैं जिससे कफ कोप शांत हो जाता है।

होली रंगों का त्योहार है। रंगों का हमारे शारीर और स्वास्थ्य पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है। प्लाश अर्थात ढाक के फूल यानी टेसुओं का आयुर्वेद में बहुत ही महत्त्व पूर्ण स्थान है। इन्ही टेसू के फूलों का रंग मूलतः होली में प्रयोग किया जाता है। टेसू के फूलों से रंगा कपड़ा शरीर पर डालने से हमारे रोम कूपों द्वारा स्नायु मंडल पर प्रभाव पड़ता है। और यह संक्रामक बीमारियों से शरीर को बचाता है।

यज्ञ मधुसुदन में कहा गया है ----

एतत्पुष्प कफं पितं कुष्ठं दाहं तृषामपि।
वातं स्वेदं रक्तदोषं मूत्रच्छं च नाशयेत।।

अर्थात ढाक के फूल कुष्ठ, दाह, वायु रोग तथा मूत्रच्छादी रोगों की महा औषधि है।

दोपहर तक होली खेलने के पश्चात स्नानादि से निवृत होकर नए वस्त्र धारण कर होली मिलन का भी विशेष महत्त्व है। इस अवसर पर अमीर-गरीब, छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, का कोई भेद नहीं माना जाता है यानी सामाजिक समरसता का प्रतीक बन जाता है होली का यह त्योहार।

शरद और ग्रीष्म ऋतु के संधिकाल पर आयोजित होली पर्व का आध्यात्मिक व वैज्ञानिक आधार है। जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है कि हमारे सभी पर्व-त्योहार विज्ञान की कसौटी पर खरे-परखे है। बस आवश्यकता है उसकी मूल भावना को समझने की। वर्तमान समय में होली पर्व भी बाजारवाद की भेंट चढ़ता जा रहा है। विभिन्न रासायनिक रंगों के प्रयोग ने लाभ के स्थान पर स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने का प्रयास किया है। कुछ व्यक्तियों द्वारा होली के हुडदंग में शराब या अन्य नशीले पदार्थों का सेवन करके वातावरण खराब करने का प्रयास किया जाता है।

जो पर्व आपसी भाईचारे एवं वर्ष भर के मतभेदों को भुलाकर एक होने का है , उस पर किसी प्रकार की रंजिश पैदा करना होली की भावना के विपरीत है।

गुलाल में कुछ रंग इंसानियत के मिलाएं ,
उसे समाज के बदनुमा चहरे पर लगाएं ,
हर गैर में भी 'कीर्ति' अपनापन नजर आयेगा
होली फिर से राष्ट्र प्रेम का त्योहार बन जाएगा।

और अंत में -होली के इस पवित्र अवसर पर अपने सभी देश वासियों के लिए एक विनम्र सन्देश :-

खून की होली मत खेलो , प्यार के रंग में रंग जाओ ,
जात-पात के रंग ना घोलो , मानवता में रंग जाओ।
भूख -गरीबी का दहन करो , भाई-चारे में रंग जाओ,
अहंकार की होली जलाकर , विनम्रता में रंग जाओ।
ऊँच-नीच का भेद खत्म कर, आज गले से मिल जाओ ,
होली पर्व का यही सन्देश, देश प्रेम में 'कीर्ति' रंग जाओ।

'विद्या लक्ष्मी निकेतन'
53-महालक्ष्मी एन्क्लेव, जानसठ रोड,
मुजफ्फरनगर, (उत्तर प्रदेश)-251001

हेमचन्द्र सकलानी की कविताएं

रंगों के पंख

जन जन को लग जायें रंगों के पंख
आओ खेलें इस होली में हम कुछ ऐसे रंग
रंग ऐसा जो रंग रंगा जाये मन को
रंग ऐसा जो ढक जाये मन के काले रंग को
रंग पवित्र लग जाये तो जैसे गंगा है
रंग लगे ना तो जैसे बदरंगा है
रंग कोई रंग नहीं जीवन है मोहकता है
रंग में ही तो सत्यं, शिवं, सुंदरता है
बिन रंग जीवन जैसे फूल है
बिन रंग जीवन चुभता जैसे शूल है
रंग, रंग होते हैं कुछ सपनों के
रंग, कुछ रंग होते हैं अपनों के
बदलो बदलो सब कुछ पर रंग मत बदलो
सभ्यता, संस्कृति, सौहार्द के तुम ढंग मत बदलो
बाजार के रंगों से खेली तो क्या होली है
खेलो खेलो भावनाओं के गुलाल से खेलो
रंग बिरंगे प्यार की फुव्हार से खेलो
मन के रंग से खेलो दिल की उमंग से खेलो
द्वेष का रंग पड़ जाये फीका इस ढंग से खेलो
रहे न किसी को कोई मलाल
आओ खेलें इस होली में हम कुछ ऐसा गुलाल।

रंग

रंग उसने भी
लगाया होगा
रंग तुमने भी
लगाया होगा
होली तो उसी ने
खेली होगी
जिसने दिल दिल से
मिलाया होगा।



यूं तो जलाये होंगे
तुमने वृक्ष
अपने को भी
गरमाया होगा
होली तो उसी ने
जलायी होगी
जिसने दुर्गुणों को
जलाया होगा।
फागुन ने जब
मौसम में
बिखेरे होंगे रंग
हुड़दंग सबने
मिलजुल के मचाया होगा
दुख दर्द के
काले मेघों पर सबने
खुशियों का
इन्द्र धनुष सजाया होगा।
मन में लिये झोली
शुभकामनाओं की
वो मेरे दर तक आया होगा
दरवाजे पर देकर उसने
पलभर में
सारी दुश्मनी को
भुलाया होगा।

1/240 विद्यापीठ मार्ग, विकास नगर, देहरादून, उत्तराखंड

प्राचीन गणतंत्र

साम्प्रदायिक सौहार्द को समर्पित मलाणा का फागली उत्सव

● डॉ. सूरत ठाकुर

कुल्लू जिला में समुद्र तल से 12000 फुट की ऊंचाई पर स्थित चंद्रखणी चोटी के उत्तरपूर्व में प्राचीनतम गणतंत्र का प्रतीक मलाणा गांव अवस्थित है। ऋग्वेद में बहुत से गणतंत्रों का वर्णन हुआ है जिन्हें जनपद कहा जाता था। उनमें से अधिकतर मिट गए। परन्तु गणतंत्र का प्राचीनतम स्वरूप मलाणा गांव में आज भी जस का तस देखने को मिलता है। कदाचित् यह इसलिए सुरक्षित रह पाया क्योंकि यह गांव हिमालय की ऐसी घाटी में आबाद है जहां पहुंचना सभी के लिए आसान नहीं है।

यह गांव प्राचीनतम संस्कृति का द्योतक है। क्योंकि आज भी इस गांव की परम्पराएं, रीतिरिवाज तथा मेले-उत्सव उसी तरह मनाए जाते हैं, जिस तरह सदियों पूर्व मनाए जाते थे।

गांव का आबाद होना

स्थानीय लोकश्रुति के अनुसार किन्नौर से दो व्यक्ति सैंज घाटी से होते हुए खांडेधार का जोत लांघने के बाद पार्वती घाटी के गांव रशोल में पहुंच गए। वहां पर वे दोनों एक घर में मेहमान बनकर रहने लगे। कुल्लू में मेहमान को देवतुल्य मानकर उसकी आवभक्त की जाती है। जिसके घर में वे रह रहे थे उसकी दो जवान बेटियां थी। दोनों मेहमान युवकों को युवतियों से प्रेम हो गया। युवतियां भी उनसे प्रेम कर बैठी। उस समय इस गांव में परम्परा थी कि गांव की लड़कियां किसी भी बाहरी युवक से विवाह नहीं कर सकती थी। बाहरी व्यक्तियों द्वारा गांव की लड़की को भगाना अपराध माना जाता था। एक दिन वे चारों गांव से भाग गए और भागते हुए जोत की तरफ भाग गए। जब गांव वालों को पता चला कि बाहर से आए हुए दो युवक गांव की दो लड़कियों को भगा ले गए हैं, तो उन्हें खोजने निकल पड़े। परन्तु वे दोनों युवक लड़कियों को लेकर जोत को लांघकर ऐसे स्थान पर पहुंच गए जहां पहुंचना मुमकिन नहीं था, इसलिए रशोल गांव वालों ने उनकी तलाश करनी छोड़ दी।

वीरान स्थान पर भोजन की कोई व्यवस्था नहीं थी। वे चारों कंदमूल खाकर गुजारा करते। कभी-कभी जंगली पशु घोरल, कक्कड़, जंगली बकरी आदि खाकर पेट की क्षुधा शांत करते। धीरे-धीरे जंगली पौधे काठू की खेती करना आरम्भ किया। एक दिन एक भाई ने भूख को मिटाने हेतु अपने परिवार को जंगली गाय का मांस खिलाया। उसने दूसरे को भी खाने का आग्रह किया परन्तु उसने गौमांस भक्षण को ठीक नहीं समझा। तब से उसने गौमांस खाने वाले भाई को मलेच्छ समझकर उससे दूरी बना ली और उसे अछूत मानकर उसके परिवार के साथ खाना पीना बन्द कर लिया। कालान्तर में उनका परिवार बढ़ता गया और वे दो से सात परिवार बन गए। उन्होंने खेती करनी तो आरम्भ कर ही दी थी अतः सातों परिवारों ने आप ठाकरी के तहत अपने लिए भूमि का चयन भी कर लिया। आज पूरा गांव इन सात परिवारों का वंशज है। हालांकि आज पांच सौ परिवार हैं और आबादी डेढ़ हजार के आसपास है।

आप ठाकरी के बाद वहां पर वाणासुर आया। उसने इन्हें अपने आधिपत्य कर लिया और यहां का शासक बन बैठा। जब तक जमलू यहां नहीं आया था। ये सात परिवार के वंशज वाणासुर के ही अधीन रहते थे।

जमलू का आगमन

एक कथा के अनुसार जमलू देवता ने चंद्रखणी से ठारह करडुओं को कुल्लू में लाकर स्थापित किया है। कहते हैं कि देवता जमलू हिमालय से स्पिति के रास्ते से लाहुल के घेपन तथा बरशैणी के देवता जगथम के साथ अपने साथ करडू में ठारह देवताओं की प्रतिमाएं उठाए हुए हामटा होते हुए चंद्रखणी चोटी पर पहुंचे। चंद्रखणी की दूसरी ओर मलाणा के शासक वाणासुर को उन के आने का संकेत मिला और उसने पर्वत शिखर पर आकर जमदग्नि को ललकारा। उनमें काफी द्वंद्व हुआ। बाणासुर जमदग्नि को परास्त नहीं कर सका। परन्तु बाणासुर ने करडू के भीतर रखी देवताओं की मूर्तियों को भारी आंधी और तूफान द्वारा उड़ा दिया और वे मूर्तियां जहां-तहां गिरी देवता रूप में प्रतिष्ठित हुई। यही बाद में ठारह करडू देवता कहलाए। बाद में जमलू ने वाणासुर को मलाणा गांव से भी बेदखल कर के अपना प्रभुत्व कायम कर लिया।

प्रशासनिक व्यवस्था

यह पांच सौ घरों का बड़ा गांव है जो दो भागों और चार चुघों

में बंटा हुआ है जिसमें दो भाग धारा बेहड़ तथा सौरा बेहड़ और चार चुघ थम्याणी, नगवाणी, दुराणी, और पलचाणी कहलाते हैं।

गांव का प्रशासन चलाने के लिए दो सदन है। एक ऊपरी सदन जिसे ज्येष्ठांग कहा जाता है। ज्येष्ठांग में ग्यारह प्रतिनिधि होते हैं जिनमें से तीन प्रतिनिधि बड़ा पुजारी नगवणी चुघ से, कारदार अर्थात् कर्मिष्ट थम्याणी चुघ से और गूर दुराणी और पलचाणी में से किसी एक से चुने जाते हैं। पुजारी देवता के बाद सबसे बड़े अधिकारी के रूप में कार्य करता है। कर्मिष्ट देवता के कार्य का लेखा जोखा रखता है। गूर के द्वारा देवता आदेश देता है। ये तीनों प्रतिनिधि आजीवन होते हैं। शेष आठ सदस्य चारों चुघों से देवता द्वारा चार वर्ष के लिए चुने जाते है। इनमें किसी एक के निकाले जाने पर या त्यागपत्र देने पर सभी आठ सदस्यों को सेवानिवृत्त मानकर दोबारा चुनाव कराए जाते हैं। दूसरे सदन को लोअर हाऊस या कोर कहा जाता है। गांव के हर घर का मुख्य इसका सदस्य होता है। कोर के अतिरिक्त चार और अधिकारी भी चुने जाते हैं जिन्हें पोगलदार कहा जाता है। इनके कार्य पुलिस कर्मचारी जैसा होता है। ज्येष्ठांग के आदेशों का पालन करवाना, कोर के सदस्यों को मंत्रणा के लिए आमंत्रित करना इत्यादि कार्य ये पोगलदार ही करते हैं।

अकबर को समर्पित फागली

मलाणा गांव में वर्ष भर देवता जमलू के उत्सव मनाए जाते हैं। बैसाख में जेठा विरशू, ज्येष्ठ मास में कापु साजा, श्रावण में शाउण जातर, पोष में दीयाली तथा फागुन मास में फागली। बाकी सभी उत्सव देवता जमलू को समर्पित रहते हैं, केवल फागली अकबर को समर्पित रहती है। इसमें देवता जमलू की कोई भागीदारी नहीं होती। जनश्रुति है कि एक बार देवता के खजाने से एक साधु को दो टके दिए गए। कुछ दिन गांव में बिताने के बाद साधु दिल्ली चला गया। वहां राजा अकबर के सिपाहियों ने साधु से वो दो टके वसूल किए और खजाने में जमा कर दिए। इसके बाद राजा बीमार रहने लगा, जिसका ईलाज करने में राजवैद्य असफल हुए। तब एक रात राजा को स्वप्न में देवता जमलू ने दर्शन देकर बताया कि वह अपने खजाने से उसके दिए हुए टके मलाणा पहुंचाए, तभी वह ठीक हो सकते है। साथ ही यह भी बताया कि खजाने में ढूंढने पर दोनों टके एक साथ चिपके हुए मिलेंगे। प्रातः राजा ने वे दोनों टके खजाने से निकलवा कर मलाणा भेज दिए। टके देखकर देवता जमलू खुश नहीं हुए, उन्होंने अकबर के प्रतिनिधियों को आदेश दिया कि अकबर को यहां स्वयं आकर क्षमा मांगनी होगी तभी उसका रोग दूर हो सकता है। उसके प्रतिनिधि जमलू देवता का संदेश लेकर अकबर के पास पहुंचे । अकबर बादशाह का मलाणा आना सम्भव नहीं था, अतः उसने अपने प्रतीक रूप में स्वयं की स्वर्ण मूर्ति बनवा कर सोने-चांदी के छतरों व घोड़ों के साथ अपने प्रतिनिधियों के हाथों मलाणा भिजवा दिए। साथ ही जमलू देवता से प्रार्थना की कि वर्ष में एक दिन उसकी मूर्ति को निकालकर उसकों मेढा हलाल करके समर्पित किया जाए। तब से मलाणा गांव में अकबर के आग्रह पर फागली मनाने की परम्परा आरम्भ हो गई। इस पूरी प्रक्रिया में देवता जमलू स्वयं शामिल नहीं होता। इसके अतिरिक्त वर्ष भर मनाए जाने वाले सभी उत्सवों में देवता जमलू स्वयं उपस्थित रहता है।

फागुन मास में देवता जमलू द्वारा निर्धारित एक निश्चित दिन प्रातः सूर्योदय से पूर्व फागली मनाने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। सबसे पहले गांव के सात परिवारों के मुख्य परिवारों के देवताओं की पूजा की जाती हैं क्योंकि यही सात परिवार यहां के आरम्भ के हैं। ठारह करडू की मूर्ति को ठारह करडू के मंदिर से निकालकर ढोल नगाड़े की देवधुन के साथ भंडार से रणसिंगे, काहल, करनाहल, छंछाले, कणसी, छत्र, छड़ी, इत्यादि के साथ माता रेणुका के मंदिर में लाकर रखा जाता है। यह फागली का शुभारम्भ माना जाता है।

फागुन मास में देवता जमलू द्वारा निर्धारित एक निश्चित दिन प्रातः सूर्योदय से पूर्व फागली मनाने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। सबसे पहले गांव के सात परिवारों के मुख्य परिवारों के देवताओं की पूजा बलि देकर की जाती हैं क्योंकि यही सात परिवार यहां के आरम्भ के हैं। इन्हें मेमने की बली पाची देकर समर्पित की जाती हैं। इस प्रक्रिया को आप ठाकरी कहा जाता है। ठारह करडू जिस टोकरी में जमलू देवता राजा घेपन तथा जगथम के साथ स्पिति से होते हुए कुल्लू के समस्त देवी-देवताओं को लाए थे। उसी टोकरी में ठारह करडू की मूर्ति को ठारह करडू के मंदिर से निकालकर ढोल नगाड़े की देवधुन के साथ भंडार से रणसिंगे, काहल, करनाहल, छंछाले, कणसी, छत्र, छड़ी, इत्यादि के साथ माता रेणुका के मंदिर में लाकर रखा जाता है। यह फागली का शुभारम्भ माना जाता है।

दोपहर 12.00 बजे के बाद माता रेणुका के मंदिर से ठारह करडू जमलू के खड़ग के अतिरिक्त रणसिंगे काहल, छंछाले, छत्र, फलौहरे इत्यादि सारा सामान ठारह करडू के मंदिर से होते हुए गांव के पीछे देवदार के वृक्ष के नीचे एक बड़ी चट्टान तक जलूस के साथ लाया जाता है। सबसे आगे पांच व्यक्ति कंधे पर जलती एक बड़ी मशाल उठाए चलते हैं। उनके बाद पुजारी, कारदार तथा रणसिंगे, काहल, छत्र, फलौहरे झण्डे उठाए लगभग सौ व्यक्ति चलते हैं। उनसे आगे ढोल नगाड़े बजाने वाले वादक देवधुन बजाते हुए चलते हैं। जब पूरा काफिला बड़ी चटटान के पास पहुंचता है तो

चट्टान के साथ बनी देवता की छोटी देहरी में रखे चांदी के निशान, घोड़े, हाथी, हरिण, बकरे, भेड़ इत्यादि जिन्हें प्रातः ही बड़े भण्डार से निकालकर रखा होता है, से निकालकर बड़ी चट्टान के पास लाया जाता है। वहां पर पुजारी उनको चोकोर थड़े पर बर्फ के ऊपर तरतीब से रखता है। इन्हें छूने से पहले पुजारी को ठण्डे पानी से स्नान करना पड़ता है। स्नान करके वह लाछू बड़ा सफेद काला पट्टू निकालकर नई धोती पहनता है। तत्पश्चात् तरतीब से घोड़े इत्यादि को सजाता है। चांदी का छत्र भी सजाया जाता है। चांदी के छत्र के ऊपर सोने का छत्र टिकाया जाता है। तत्पश्चात् थड़े के चारों ओर तीन चक्कर लगाता है। फिर पुजारी एक दूसरी धोती लेकर उसके सामने उत्तर दिशा की तरफ उस धोती से आसन बनाता है। आसन के ऊपर अकबर की मूर्ति रखता है। जिस समय वह अकबर की मूर्ति रख रहा होता है, उस समय उसके दो सहायक मूर्ति को अदब से सलाम करते हैं। उसके बाद एक बड़ा मेढ़ा थड़े के पास लाया जाता है। उसके वहां लाते ही गांव के बाहर से आए व्यक्तियों को अगला दृश्य देखने की मनाही होती है ताकि वे उस दृश्य को देखकर घबरा न जाएं। यह प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद ही गांव वाले भोजन करते है। सांध्यबेला में गांव की महिलाएं महामाई के मंदिर में जाकर उसकी पूजा करती हैं। इसके अगले दो दिन के बाद चौथे दिन गांव के चुने हुए तीन व्यक्ति मुखौटे पहनकर नृत्य करते हुए गांव का पूरा चक्कर लगाते हैं। इनमें एक पुरुष स्त्री वेष में उसकी पत्नी तथा पुत्र के रूप में होते हैं।

पांचवें दिन महामाई के मंदिर से सारा सामान उसी शोभायात्रा के साथ भण्डार तथा ठारह करडू के मंदिर में रखा जाता है। जमदग्नि के खड़ग से भी पर्दा हटा लिया जाता है।

छोटी फागली में लालहड़ी नाच

चैत्र मास की संक्रांति से आरम्भ होकर मासान्त तक छोटी फागली मनाई जाती है। इस पूरे मास में विवाहित महिलाएं ठारह करडू के मंदिर के पीछे सौह (देवप्रांगण) में शाम ढले ही देव स्तुति गाती हैं, जबकि कुंवारी कन्याएं श्रानी गीत गाती हैं। कन्याएं रात भर मंदिर की सराय जिसे मौढ़ कहते हैं, में रहती है। उनके साथ युवक भी लालहड़ी नृत्य में शामिल होते हैं।

लालहड़ी युवक और युवतियों का नृत्य है, मेलों त्योहारों में युवक और युवतियां सामूहिक रूप से इस नाच में शिरकत करते हैं। अलहड़ और मदमस्त यौवन के प्रतीक इस लास्यपूर्ण एवं श्रृंगार प्रधान लोकनृत्य में प्रेम का आदान-प्रदान होता है। लालहड़ी अथवा लालहरी वास्तव में लाल और हरी शब्दों के संयोग से बना है। लाल यौवन का और हरा मस्ती का प्रतीक। भरपूर यौवन में पूरे शरीर में लाली छा जाती है और हरी भरी जवानी में मदमस्त प्रेमी और प्रेमिका का मिलन जीवन साथी के परिणय सम्बन्धों में परिवर्तित होता है।

इस नृत्य में मुख्यतः युवक-युवतियों की दो टोलियां आमने-सामने लाईन बनाकर लोकगीतों की पंक्तियों के साथ नृत्य करती हैं। पहले युवतियों की टोली एक गीत की पंक्ति गाती हुई युवकों की टोली की तरफ नाचते हुए जाती हैं। जब गीत का एक अन्तरा पूरा होता है तो वे पीछे की ओर लौटना शुरू करती हैं। उनके पीछे लौटते ही युवकों की टोली उस गीत के अन्तरे के बोलों के साथ तुकबन्दी करती हुई उसी लय में गीत गाते हुए उनकी तरफ बढ़ती है। इस तरह तुकबन्दी करते हुए दोनों समूह आधे पौने घण्टे तक एक गीत में ही नृत्य करती हैं। एक गीत के बाद दूसरा गीत, दूसरे के बाद तीसरा और फिर न जाने कितने गीतों को गाते हुए यह नृत्य रात भर चलता है। कई बार दोनों समूहों में युवक और युवतियां इकट्ठा मिलकर नाचते हैं।

एक लोकगीत जो लालहड़ी नृत्य का प्रसिद्ध गीत है, की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैः-

मेली लोड़ी पाणी रै नाल़ा शिवादासिऐ
मेली लोड़ी पाणी रै नाल़ा तेरे सो।
राती बोला मेली लो सुपने सुपने
दोती बोला पाणी रै नाल़ा तेरे सो।
शोखे बोला फूटी लो कौकड़ी कौकड़ी
खोज बोला पाणी रा आल़ा तेरे सो।
शिरा बोला पादै लाऊ फूलै रा डोलह
गौल़ा बोला चांदी री माल़ा तेरे सो।
हौसदा तेरा लो खाखड़ू खाखड़ू
छाती धिना लोहै रा ताला तेरे सो।

मलाणा में चैत्र की संक्रांति से लेकर वैसाख की संक्रांति तक कुंवारी कन्याएं सांझ ढलने पर देव मंदिर के बरामदे में मुख्य द्वार के पास इकट्ठा होती हैं और देवस्तुति में श्रानी गीतों का गायन करती हैं। श्रानी गीतों का गायन लगभग एक घण्टे तक चलता है। तत्पश्चात् सभी कन्याएं देवता के सौह में आकर लालहड़ी लोकनृत्य करती है। लालहड़ी लोकनृत्य में नाचने वाली अपने दोनों हाथों को खुला करके दूसरे की पीठ की तरफ बढ़ाती हैं और पीठ के पास दूसरी के हाथ के साथ मिलाती है। इस तरह एक लम्बी सीधी लाईन बन जाती है। जो युवती देर से आती है वह किनारे पर इसी तरह अपने को जोड़ती है। यह नृत्य रात्रि एक दो बजे तक चलता है। यद्यपि यह केवल कुंवारी कन्याओं का ही नृत्य है परन्तु कभी-कभी युवक भी इस में शामिल हो जाते हैं। वैसाख की संक्रांति तथा उसके बाद होने वाले विरशू के मेलों में नए नए डिजाईन के पटटू ओढ़कर मेला स्थान में यह नृत्य मेले में चार चांद लगाता है। प्रेम के प्रतीक इसी लालहड़ी लोकनृत्य में इसी मास में युवक और युवतियां अपने जीवन साथी का चयन करके परिणय सूत्र में बंधते है।

प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय कुल्लू हि.प्र.
मो. 9816399807

महिला दिवस

महिला सशक्तीकरण से शांति स्थापना

● डॉ. भारती गांधी

कोई भी बच्चा सबसे ज्यादा समय अपनी माँ के सम्पर्क में रहता है और माँ उसे जैसा चाहे बना सकती है। इस सम्बन्ध में एक कहानी मुझे याद आ रही है जिसमें एक माता मदालसा थी जो बहुत सुन्दर थी। वे ऋषि कन्या थी। एक बार जंगल से गुजरते समय एक राजा ने ऋषि कन्या की सुन्दरता पर मोहित होकर उनसे विवाह का प्रस्ताव किया। इस पर ऋषि कन्या ने उस राजा से कहा कि ''मैं आपसे शादी तो कर लूंगी पर मेरी शर्त यह है कि जो बच्चे होंगे उनको शिक्षा मैं अपने तरीके से दूंगी।'' राजा उसकी सुन्दरता से इतनी ज्यादा प्रभावित थे कि उन्होंने ऋषि कन्या की बात मान ली। शादी के बाद जब बच्चा पैदा हुआ तो उस महिला ने अपने बच्चे को सिखाया कि बुद्धोजी, शुद्धोजी और निरंकारी जी। मायने तुम बुद्ध हो। तुम शुद्ध हो और तुम निरंकारी हो। आगे चलकर यह बच्चा महान संत बन गया। उस जमाने में जो बच्चा संत बन जाते थे उन्हें हिमालय पर्वत पर भेज दिया जाता था। इसी प्रकार दूसरे बच्चे को भी हिमालय भेज दिया गया। राजा ने जब देखा कि उसके बच्चे संत बनते जा रहें हैं तो उन्होंने रानी से प्रार्थना की कि 'महारानी कृपा करके एक बच्चे को तो ऐसी शिक्षा दो जो कि आगे चलकर इस राज्य को संभाले।' इसके बाद जब बच्चा हुआ तो महारानी ने उसे ऐसी शिक्षा दी कि वो राज्य को चलाने वाला बन गया। बाद में हिमालय पर्वत से आकर उसके दोनों भाईयों ने अच्छे सिद्धांतों पर राज्य को चलाने में अपने भाई का साथ दिया।

आज महिलाओं को चाहिए कि वे न केवल अपनी दक्षता, सहभागिता व नेतृत्व क्षमता को सिद्ध करें बल्कि उन सभी भ्रांतियों और कहावतों को भी मुँह तोड़ जवाब दें, जो उनका कमजोर आँकलन करती हैं

प्रत्येक बच्चे का हृदय बहुत कोमल होता है। यदि हम किसी पेड़ के तने पर कुदेर कर 'राम' लिख दें तो पेड़ के बड़े होने के साथ ही साथ 'राम' शब्द भी बढ़ता हुआ चला जाता है। इसलिए हमें अपने बच्चों में बचपन से ही ईश्वरीय गुणों को डाल देना चाहिए। बचपन में बच्चों के मन-मस्तिष्क में डाले गये गुण उसके सारे जीवन को महका सकते हैं। सुन्दर बना सकते हैं। वास्तव में बचपन में डाले गये जिन विचारों के साथ बच्चा बड़ा होता जाता है धीरे-धीरे वह उन विचारों के करीब पहुँचता जाता है। इस प्रकार बच्चा एक पेड़ के तने के समान होता है। पतली टहनी को जितना चाहो उतना मोड़ सकते हों, लेकिन यही टहनी यदि मोटी डाल बन गई तो फिर हम उसे मोड़ नहीं सकते और अगर हमने उसे जबरदस्ती मोड़ने की कोशिश की तो उसके टूटने की संभावना ज्यादा हो जाती है। इसलिए हमें प्रत्येक बच्चे के हृदय में बचपन से ही गुणों को डाल देना चाहिए। बड़े होने पर बच्चों में इन गुणों को नहीं डाला जा सकता। आज महिलाओं को चाहिए कि वे न केवल अपनी दक्षता, सहभागिता व नेतृत्व क्षमता को सिद्ध करें बल्कि उन सभी भ्रांतियों और कहावतों को भी मुँह तोड़ जवाब दें, जो उनका कमजोर आँकलन करती हैं क्योंकि :-

नारी हो तुम, अरि न रह सके पास तुम्हारे।
धैर्य, दया, ममता बल हैं विश्वास तुम्हारे।
कभी मीरा, कभी उर्मिला, लक्ष्मी बाई।
कभी पन्ना, कभी अहिल्या, पुतली बाई।
अपने बलिदानों से, युग इतिहास रचा रे।
नारी हो तुम, अरि न रह सके पास तुम्हारे।
अबला नहीं, बला सी ताकत, रूप भवानी।
अपनी अद्भुत क्षमता पहचानो, हे कल्याणी।
बढ़ो बना दो, विश्व एक परिवार सगा रे।
नारी हो तुम, अरि न रह सके पास तुम्हारे।
महिला हो तुम, मही हिला दो, सहो न शोषण।
अत्याचार न होने दो, दुष्टों का न हो पोषण।
अन्यायी, अन्याय मिटा दो, चला दुधारे।
नारी हो तुम, अरि न रह सके पास तुम्हारे।।

इस प्रकार धैर्य, दया, ममता और त्याग चार ऐसे गुण हैं जो कि महिलाओं में पुरुषों से अधिक पाये जाते हैं। महात्मा गांधी ने

कहा था कि "जब आदमियों में स्त्रियोचित्त गुण आ जायेंगे तो दुनिया में 'रामराज्य' आ जायेगा।" आज अमेरिका की आर्मी में बहुत सारी औरतें भी हैं। माँ ही बच्चों की सबकुछ होती है। वह जिस तरह से चाहेगी दुनिया को चलायेगी। अगर उसके हाथ में ताकत आ जायेगी तो कभी भी दुष्टों का पोषण नहीं होने पायेगा। शांति स्थापना के लिए हमें बच्चों को प्रेम, दया, करुणा, न्याय, भाईचारा, एकता एवं त्याग आदि सिखाना है। और चूंकि सारी मानवजाति एक समान है इसलिए विश्व से भेदभाव को दूर करने के लिए प्रत्येक बच्चे को एक समान शिक्षा दी जानी चाहिए। आज सारे विश्व की शिक्षा में एकरुपता लाने की आवश्यकता है। दुनिया के घावों को भरने के लिए हमें शांति रूपी मलहम का प्रयोग करना चाहिए। अब्दुल बहा ने कहा है कि विश्व में शांति आदमियों के द्वारा नहीं लायी जायेगी बल्कि महिलाओं के द्वारा लाई जायेगी। यह शांति तभी आयेगी जब कि महिलाओं के पास निर्णय लेने की शक्ति या क्षमता आ जायेगी। इसलिए हमें महिलाओं को सशक्त बनाना है। उन्हें अच्छी शिक्षा देनी है। उन्हें अच्छी नौकरी देनी है। उन्हें ऊँचे ओहदों पर बैठाना है।

संस्थापिका-निदेशिका, सिटी मोन्टेसरी स्कूल, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

कविता

बचपन

● चेतना बिष्ट



बचपन
नई कोंपल-सा नाजुक
गीली मिट्टी-सी खुशबू भीनी-भीनी।

फूलों सा खूबसूरत
दुआ-सी मासूमियत
इन्द्रधनुष सा सतरंगी
फुर्ती तरंगों सी।

तारों भरे आसमान में मानो
बिखेरता अकेले चांदनी चांद-सी
रंगमंच के कलाकारों
सा छोड़ता अमिट छाप गहरी।

कभी पूछता सवाल
अपनी उत्सुकता के चलते
तो कभी कर देता निरुत्तर
अपने बेपरवाह जवाबों से।

गरीबी व परिवार वाहन के चलते
रोज़ी-रोटी कमाने, चंद रुपयों के लिए
लग जाता है दांव पर, कुछ मासूमों का बचपन
बचपन
कभी जिस बीड़ी को बनाए
उसी बीड़ी के धुएं-सा
विलीन हो जाता है आकाश में
तो कभी जिन पटाखों को बनाए
उन्हीं पटाखों के जलने पे
जल जाता उनके शोर में।

कभी निर्माण उद्योग में सीमेंट की भांति
दीवारों में चिन जाता
तो कभी बाज़ारों में चीज़ें
बेचते-बेचते गुम हो जाता।

कभी कोयले की खदानों में काम करने से
बेरंग काला हो जाता
तो कभी हीरे मोतियों को चमकाते चमकाते
धुंधला हो जाता।

कभी दूसरों की जूठन
साफ-साफ करते करते
मैला हो जाता।
तो कभी बोरियां उठाते उठाते
थक जाता।

कभी कालीन बुनते-बुनते
खो जाती हाथों की गरमाहट
तो कभी रेशम बनाते बनाते
कठोर हो जाती हाथों की बनावट।

कभी सड़कों पे करतब दिखाता
प्रदर्शित करना अपना हुनर
तो कभी लाल बत्तियों पे
मांगता भीख पैसों की।

कभी संकटपूर्ण उद्योगों में कार्य करने से
आ जाता जीवन उसका खुद का जोखिमों के घेरे में
तो कभी बंध जाता
बंधुआ मजदूरी के जाल में।

कभी मंडराता खतरा जीवन की सुरक्षा पे
और होता आकर्षित अनैतिक व असामाजिक तत्त्वों की ओर
तो कभी करके निडरता से अपराध संगीन
पहचान ही ना पाता खुद को ही आईने में।

बी-6, टॉप फ्लोर, इंद्रा एन्क्लेव, नेब सराय, नियर इग्नू, नई दिल्ली-110068, मो. 97113 44318

आलेख

नारी अबला नहीं...

● उमा ठाकुर

पूरे विश्व में प्रत्येक वर्ष आठ मार्च अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस आयोजन का लक्ष्य महिलाओं की समाज में स्थिति और दशा सुधारने के लिए सघन प्रयासों जैसे मुद्दों पर गहन विचार-मंथन होता है। गोष्ठियों व सम्मेलनों के माध्यम से महिलाओं से जुड़ी समस्याओं का हल करने का प्रयास किया जाता है।

प्राचीन काल से ही भारत में नारी का उच्च स्थान रहा है। पौराणिक काल की पार्वती से लेकर त्रेता युग की सीता, द्वापर युग की यशोदा, अहिल्या और आधुनिक युग में कस्तूरबा और मदर टेरेसा के नारी हृदय में दया, करुणा, ममता और प्रेम हमेशा विद्यमान रहा। महिला मानव सृष्टि की जननी है, वह मनुष्य जीवन की जन्मदात्री है। नारी का त्याग और बलिदान भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। मनु ने 'मनु स्मृति' में स्त्रियों का विवेचन करते हुए लिखा है, 'जहां स्त्रियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं, जहां उनकी प्रतिष्ठा नहीं होती, वहां सब क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं। अर्थात् 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवताः। दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, महिलाओं को उच्च शिक्षा न देना आदि सामाजिक कुरीतियों ने समाज में महिलाओं की स्थिति को दयनीय बना दिया था जिसका असर आज भी समाज में बरकरार है।

आज पूरे विश्व में महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चल रही हैं। चारदीवारी से निकलकर महिलाएं पुरुषों के साथ समाज के हर क्षेत्र में आत्मविश्वास के साथ काम कर रही हैं। कामकाजी महिलाएं हों या फिर गृहिणी, सभी कुशलता के साथ घर-परिवार चला कर सामाजिक दायित्व निभा रही हैं। महिलाओं की जिंदगी में तमाम तरह के बदलाव आ रहे हैं लेकिन हमारे देश में आज भी उन्हें समाज में व्याप्त बुराइयों और घरेलू प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। समाचार पत्रों में आए दिन नारी की अस्मिता को तार-तार कर लहूलुहान करने के किस्सों से पन्ने भरे मिलते हैं। जहां नारी की मनोस्थिति को बयां करने के लिए 'शब्द' भी कम पड़ जाते हैं, वहीं दूसरी ओर घिनौनी मानसिकता वाले यह चेहरे भीड़ का हिस्सा बन जाते हैं, फिर किसी की लाडली का चीरहरण कर उसे उम्रभर समाज के इन उजले चेहरों से चेहरा छुपाने के लिए मजबूर कर देते हैं। सुबह की पहली किरण के साथ अखबार के पन्नों को पलटती मां का दिल गुमनाम लाडली के साथ हुए इस घिनौने अपराध की खबर पढ़कर जरूर सिहर उठता है।

समाज के निर्माण में महिलाओं की अहम भूमिका है। हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले के दूरस्थ क्षेत्र की प्रसिद्ध समाज सेविका किंकरी देवी ने पर्यावरण को बचाने में अहम योगदान दिया। बदलते परिवेश में हिमाचल की ग्रामीण महिलाएं भी स्वयं सहायता समूह चलाकर मधुमक्खी पालन, पापड़ व बड़ी तैयार करना, सिलाई व कढ़ाई का काम घर बैठकर अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत कर रही हैं।

वहीं, शहरी परिवेश की शिक्षित महिलाएं घर परिवार की जिम्मेदारियों के साथ अपने कॅरिअर के प्रति भी सजग हैं। सेना, एयर हॉस्टेस, पायलट, प्रशासन, विज्ञान, टैक्नॉलोजी, शिक्षा, मेडिकल, इंजीनियरिंग आदि क्षेत्रों में वह अपना लोह मनवा चुकी हैं।

वर्तमान संदर्भ में यदि हम महिलाओं की समाज में स्थिति की बात करें तो उसके सशक्तीकरण का प्रमाण हमें मिल जाएगा। महिला सशक्तीकरण का मतलब है समाज में महिलाओं की स्थिति

> **वर्तमान संदर्भ में यदि हम महिलाओं की समाज में स्थिति की बात करें तो उसके सशक्तीकरण का प्रमाण हमें मिल जाएगा। महिला सशक्तीकरण का मतलब है समाज में महिलाओं की स्थिति को सशक्त करना है फिर चाहे वह ग्रामीण परिवेश से हो या फिर शहरी परिवेश से। सबसे पहले महिला को मानसिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त करना होगा।**

डॉ. योगेन्द्र बहल की कविताएं

मौसम

न हों ऐसे हालात कभी,
कि सब्र का प्याला भर जाए
और दर्द बढ़े यह इतना कि,
फिर मौत का डर भी मर जाए।
की कोशिश लाख थी हमने कि
जी लें हम भी इक हसरत से
कभी दिल टूटा कभी हम टूटे
कभी टूटे तारे किस्मत के
न जाने क्यों हर बार यूं ही
हम बने निशाना मौसम का
सीने में रही इक आग लगी,
आंखों में कतरा शबनम का
है सहने की कोई सीमा भी
जब अंतर तक ही रो जाए
कोई आखिर यही कहेगा कि,
जो होना है वो हो जाए।



हम

एक ही हसरत दिल में बाकी,
तारों में खो जाएं हम
उम्र से लम्बी रात हो कोई,
आंख मूंद सो जाएं हम।

रिश्तों के नामों से अब तो,
सोच के भी डर लगता है
न कोई मेरा अपना हो,
न किसी के अब हो पाएं हम।

बहुत उड़े हम ख्वाहिश लेकर,
आसमान इक अपना हो
पंख हुए पर इतने घायल,
शायद ही उड़ पाएं हम।

जाने कैसे लोग वो होंगे,
जो हिस्सों में जीते हैं
हम तो यारो इतना टूटे,
शायद ही जुड़ पाएं हम।

तुम्हें मुबारिक तेरी दुनिया,
गुलशन में रहने वाले
हम को न आवाज़ लगाना,
शायद न आ पाएं हम।



घात

आहत मन, खामोश सी सांसें,
आंखें पत्थर बनी हुई।
किसको जा बतलाएं हम,
पीड़ा अपनों से सनी हुई।
हमने कितने स्वप्न संजो कर,
इक आकाश बनाया था।
अपनों जैसे तारे थे,
अपनों सा चांद सजाया था।
जाने किसकी नज़र लगी,
और सपने सारे चूर हुए।
आह तलक न निकल सकी,
चुप रहने को मजबूर हुए।
क्यों होता है ऐसा अकसर,
किससे जाकर बात करें।
अपनों से ही प्यार करें हम,
और अपने ही घात करें।

स्कूल रोड, मनाली, जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश,
मो. 98160 55005

को सशक्त करना फिर चाहे वह ग्रामीण परिवेश से हो या शहरी परिवेश से। सबसे पहले महिला को मानसिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त करना होगा। जब तक महिलाओं के प्रति हमारी मानसिकता में बदलाव नहीं आता, उनका वैचारिक विकास नहीं होता, तब तक वह स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम नहीं हो सकतीं। महिला यदि शिक्षित होगी तो पूरे परिवार को शिक्षित कर सकती है, समाज को सुदृढ़ कर सकती है, पूरे राष्ट्र को सुदृढ़ कर सकती है। महिला यदि शिक्षित होगी तो उसे अपने अधिकारों का भी ज्ञान होगा। अपने ऊपर हो रही घरेलू हिंसा या फिर समाज की प्रताड़ना की शिकायत करने के लिए उसे कहां जाना है, उसे न्याय कैसे मिल सकता है, इन सभी के प्रति वह और ज्यादा सजग होगी। महिला जब सक्षम, शिक्षित और स्वावलम्बी होगी तो सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का लाभ लेने के लिए भी आगे आएगी। साथ ही समाज की अशिक्षित महिलाओं को भी दिशा देने का काम कर सकती है।

केवल महिला दिवस के दिन ही विचार गोष्ठी व सम्मेलन करने से महिलाओं के प्रति हमारा दायित्व पूरा नहीं हो जाता। जरूरत है तो इस बात की कि हर दिन महिलाओं के प्रति उसकी सोच के प्रति हमारा सम्मान जागे। जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए उसे प्रेरित करते रहने की। इसकी शुरुआत तो हमें अपने घर से ही करनी होगी। 'नारी अबला नहीं सबला है', इसी सोच के साथ हमें अपनी मानसिकता को मजबूत करना होगा।

धौलटा निवास, नजदीक विंटेज़ इंस्टीच्यूट,
शिमला-171002, मो. 94594 83571

विकासात्मक लेख

एकीकृत जलागम प्रबंधन कार्यक्रम
आजीविका और उत्पादन संवर्धन की एक अनूठी योजना

● प्रेम ठाकुर

हिमाचल में वर्षा पर निर्भर खेती में सुधार लाने के लिये नवीनतम सोच और तकनीकी को अपनाने की जरूरत पर बल दिया जा रहा है। प्रदेश सरकार ने क्षेत्र विकास, जल एंव मृदा संरक्षण, वनीकरण और स्थायी भूमि प्रबंधन के लिये जलागम विकास कार्यक्रम का राज्य में प्रभावी कार्यान्वियन किया है। यह कार्यक्रम राज्य में आजीविका और उत्पादन को बढ़ावा देने का मुख्य स्त्रोत बनकर उभरा है। हिमाचल एक ऐसा पहाड़ी राज्य है जहां कृषि योग्य भूमि कम है और इसमें से भी कम क्षेत्र में सिंचाई हो पाती है, ऐसे में राज्य में फसल उत्पादकता में वृद्धि लाने, किसानों की चारा और ईंधन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जलागम विकास चलाया जा रहा है। जलागम विकास कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य प्रदेश में मौजूदा बंजर व अनउपजाऊ भूमि, खाली पड़ी भूमि, सूखाग्रस्त क्षेत्रों को विकसित करना है। इसके अतिरिक्त, भूमि, जल व प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करके पारिस्थितिकीय संतुलन को बहाल करने के साथ रोजगार सृजन, गरीबी उन्मूलन, सामुदायिक सशक्तिकरण और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के आर्थिक संसाधनों को मजबूत करना है।

जलागम विकास कार्यक्रम के मुख्य तीन उप-घटकों में एकीकृत बंजर भूमि विकास कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम तथा मरुस्थल विकास कार्यक्रम शामिल हैं। इन तीनों घटकों को नया दृष्टिकोण देते हुए केन्द्र सरकार ने वर्ष 2008 से एकीकृत जलागम प्रबन्धन कार्यक्रम (आईडब्ल्यूएमपी) को आरम्भ किया है। आईडब्ल्यूएमपी से पूर्व प्रदेश को तीन उपघटकों के अन्तर्गत 894914 हेक्टेयर क्षेत्र के उपचार के लिये 529.82 करोड़ रुपये की राशि स्वीकृत की गई है। इसके तहत एकीकृत बंजर भूमि विकास कार्यक्रम चम्बा, हमीरपुर, कांगड़ा, किन्नौर, कुल्लू, मण्डी, सिरमौर व सोलन जिलों में कार्यान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत 254.12 करोड़ रुपये की लागत की कुल 67 परियोजनाएं स्वीकृत करके 452311 हेक्टेयर भूमि के उपचार का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। एकीकृत सूखाग्रस्त भूमि विकास कार्यक्रम को बिलासपुर, ऊना और सोलन जिलों में कार्यान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 116.50 करोड़ रुपये की कुल 412 माइक्रो जलागम परियोजनाएं स्वीकृत कर 205833 हेक्टेयर भूमि का उपचार निर्धारित किया गया है। मरुस्थल क्षेत्र विकास कार्यक्रम को प्रदेश के जनजातीय जिलों लाहौल-स्पिति तथा किन्नौर जिला के पूह में कार्यान्वित किया गया है। कार्यक्रम के तहत 159.20 करोड़ रुपये की 552 माइक्रो जलागम परियोजनाओं पर कार्य करके 236770 हेक्टेयर क्षेत्र को उपचारित करने के लक्ष्य पर कार्य किया जा रहा है।

आईडब्ल्यूएमपी की शुरुआत के उपरान्त उक्त तीनों घटकों के लिये केन्द्र सरकार द्वारा सांझा दिशा निर्देश जारी किये गये हैं। इस कार्यक्रम के तहत राज्य के लिये नई परियोजनाओं की मंजूरी के लिये सामरिक नीति दस्तावेज आवश्यक है। कार्यक्रम के तहत प्रदेश सरकार ने राज्य के वर्षा सिंचित 3112472 हेक्टेयर क्षेत्र विकास के लिये 4668 करोड़ रुपये की योजना तैयार करके केन्द्र सरकार से अनुमोदित करवाई है।

आईडब्ल्यूएमपी की शुरुआत के उपरान्त उक्त तीनों घटकों के लिये केन्द्र सरकार द्वारा साझा दिशा निर्देश जारी किये गये हैं। इस कार्यक्रम के तहत राज्य के लिये नई परियोजनाओं की मंजूरी के लिये सामरिक नीति दस्तावेज आवश्यक है। कार्यक्रम के तहत प्रदेश सरकार ने राज्य के वर्षा सिंचित 3112472 हेक्टेयर क्षेत्र विकास के लिये 4668 करोड़ रुपये की योजना तैयार करके केन्द्र सरकार से अनुमोदित करवाई है। प्रदेश के कुल भौगोलिक क्षेत्र में सिंचित भूमि, बर्फ से ढके क्षेत्र, घने वन क्षेत्र, गैर कृषि भूमि के अलावा एकीकृत बंजर भूमि विकास कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम तथा

मरुस्थल विकास कार्यक्रमों को इस कार्यक्रम में शामिल नहीं किया गया है। शेष क्षेत्र जिनमें वन व गैर वन भूमि शामिल हैं, को सामरिक योजना में विचार के लिये शामिल किया गया है तथा अगले 12 से 15 वर्षों के बीच एकीकृत जलागम प्रबन्धन कार्यक्रम के तहत प्रस्तावित क्षेत्र में कार्य किया जाएगा।

आईडब्ल्यूएमपी के अन्तर्गत प्रदेश में 163 परियोजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। इनके अन्तर्गत वर्ष 2014-15 तक 1260 करोड़ रुपये व्यय करके 839972 हेक्टेयर भूमि के उपचार का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसमें से अभी तक 70074 हेक्टेयर क्षेत्र के उपचार पर 164 करोड़ रुपये व्यय किये गए हैं। यह कार्यक्रम दीर्घकालिक अवधि के लिये तैयार किया जाता है और इसके लिये चरणबद्ध तरीके से धनराशि केन्द्र सरकार से प्राप्त होती है। पिछले दो वर्षों के दौरान 375 करोड़ रुपये की लागत की 53 नई परियोजनाएं इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वीकृत की गई हैं जिसके तहत 249916 हेक्टेयर भूमि को कवर किया जाएगा। आईडब्ल्यूएमपी के सफल कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थानों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। योजनाओं के लिये प्रस्ताव ग्राम पंचायत स्तर पर तैयार किये जाते हैं।

अतः कार्यक्रम की सफलता पंचायती राज संस्थानों की सक्रियता पर भी निर्भर करती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रदेश सरकार ने सभी हितधारकों के क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण के लिये विश्वविद्यालयों और प्रतिष्ठित संस्थानों से विशेषज्ञों को बुलाया जाता है। इसके अतिरिक्त, समय-समय पर जागरूकता शिविरों का भी आयोजन किया जा रहा है। आईडब्ल्यूएमपी के अन्तर्गत पशुधन और मत्स्य पालन का व्यवस्थित तरीके से प्रबंधन, दुग्ध उत्पादन और डेयरी उत्पादों तथा इनके विपणन के लिये किसानों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। वर्षा सिंचित क्षेत्रों में पशुधन को लोगों की आय एक प्रमुख स्त्रोत बनाना इसके उद्देश्यों में है। जलागम विकास परियोजनाओं के साथ पशुपालन गतिविधियां जुड़ने से योजना के तहत चिन्हित क्षेत्रों में लोगों को आजीविका के बेहतर एवं टिकाऊ साधन सुनिश्चित होंगे। कार्यक्रम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिये जलागम समिति द्वारा विभागीय तकनीकी की मदद से ग्राम पंचायत स्तर पर स्वंय सहायता समूहों का गठन किया गया है। इन समूहों में गरीब, लघु एवं सीमान्त किसान, मजदूर, महिलाएं, चरवाहे और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग शामिल किये गए हैं। इन समूहों की आजीविका जलागम परियोजना से सीधे तौर पर जुड़ी है। प्रत्येक स्वयं सहायता समूह को नोडल एजेन्सी द्वारा निर्धारित धनराशि उपलब्ध करवाई जाती है।

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी, सूचना एवं जन सम्पर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, शिमला-171 002

'नीली क्रांति' से साकार हुआ आर्थिक आत्मनिर्भरता का संकल्प

• सचिन संगर

हिमाचल प्रदेश में मत्स्य उद्योग लोगों को आजीविका के अनेकों अवसर उपलब्ध करवाने के साथ-साथ राज्य के लिए राजस्व सृजन का भी महत्त्वपूर्ण स्त्रोत बनकर उभरा है। प्रदेश सरकार ने राज्य में नीली क्रांति लाने के उददेश्य से अनेक कदम उठाए हैं। वर्तमान प्रदेश सरकार युवाओं को स्वरोजगार अपनाने के लिए प्रोत्साहित करने पर बल दे रही है। इसी कड़ी में युवाओं को मत्स्य पालन गतिविधियों की ओर आकर्षित करने के लिए अनेक प्रोत्साहन प्रदान किए जा रहे हैं।

आर्थिक सहायता और आवश्यक तकनीकी जानकारी के रूप में दिए जा रहे प्रोत्साहनों के फलस्वरूप मत्स्य पालन प्रदेश में आर्थिक स्वावलंबन का आधार बना है। सरकार के प्रयासों तथा मछली पालन के प्रति लोगों की बढ़ती रुचि के फलस्वरूप राज्य के प्रमुख जलाशयों में गत वर्ष 5238 मछुआरों को पूर्णकालीन स्वरोजगार उपलब्ध करवाया गया है, जिनमें गोविन्द सागर में 2652, पौंगडैम में 2479, चमेरा में 74 तथा महाराजा रणजीत सागर में 33 मछुआरे शामिल हैं।

युवाओं को मत्स्य पालन गतिविधियों में संलग्न करने के लिए प्रदेश में अनेक योजनाएं लागू की गई हैं। मत्स्य पालन के लिए एक हैक्टेयर क्षेत्र के तालाब निर्माण में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के लाभार्थियों को एक लाख रुपये जबकि सामान्य श्रेणी के लाभार्थियों लिए 80 हजार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है। मत्स्य फार्म मत्स्य पालन गतिविधियों का आधार हैं। हिमाचल प्रदेश मत्स्य पालन विभाग द्वारा 12 मछली बीज फार्मों के माध्यम से मत्स्य सहायक सेवाएं उपलब्ध करवाई जा रही है। इन 12 मत्स्य फार्मों में से 6 ट्राऊट मछली जबकि अन्य 6 कार्प मछली के फार्म कार्यरत हैं। हिमाचल

प्रदेश की जलधाराओं में मछलियों की मुख्यतः ट्राऊट, महशीर सहित बेरीलस, ग्लाईप्टोथोरेक्स इत्यादि प्रजातियां पाई जाती हैं। प्रदेश में नीली क्रांति लाने के उद्देश्य से मछली की दो नई प्रजातियां हंगेरियन कामन कार्प व अमूर कामन कार्प आयात की गई हैं।

राज्य के सभी जलस्रोतों से विगत दो वर्षों की अवधि में 13628.17 लाख रुपये मूल्य की 16818.32 मी. टन मछली का उत्पादन किया गया। जिसमें विभागीय ट्राऊट फार्मों व निजी क्षेत्र से 490.74 मी. टन ट्राऊट मछली का उत्पादन हुआ। प्रदेश में रेनबो ट्राऊट पालन तकनीक के सफलतापूर्वक हस्तांतरण के फलस्वरूप निजी क्षेत्र में 100 ट्राऊट इकाइयों की स्थापना की गई है।

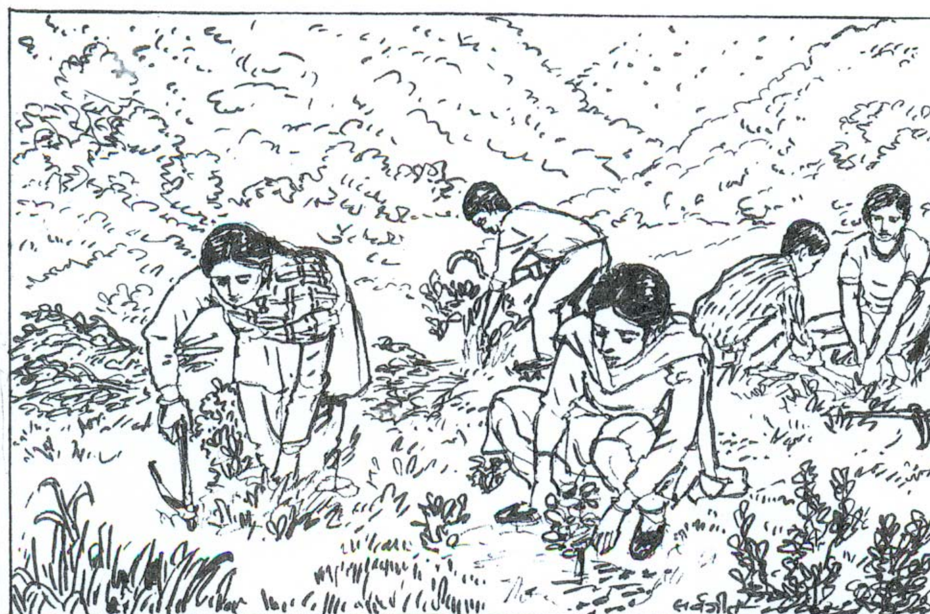
प्रदेश सरकार मछुआरों की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। राज्य में मत्स्य आखेट की गतिविधियों में कार्यरत 11251 मछुआरों को जीवन सुरक्षा निधि के अन्तर्गत लाया गया है। मत्स्य आखेट के दौरान मृत्यु होने अथवा पूर्ण अपंगता की दशा में उनके आश्रितों को 2 लाख रुपये तथा आंशिक अपंगता की दशा में 1 लाख रुपये प्रदान किए जाने का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त, अस्पताल में उपचार के दौरान व्यय पर 10 हजार रुपये का बीमा छत्र प्रदान किया जाता है। योजना के अन्तर्गत केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार 50:50 के अनुपात में बीमा प्रीमियम राशि का वहन करती है।

प्रदेश सरकार मछुआरों की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। राज्य में मत्स्य आखेट की गतिविधियों में कार्यरत 11251 मछुआरों को जीवन सुरक्षा निधि के अन्तर्गत लाया गया है। मत्स्य आखेट के दौरान मृत्यु होने अथवा पूर्ण अपंगता की दशा में उनके आश्रितों को 2 लाख रुपये तथा आंशिक अपंगता की दशा में 1 लाख रुपये प्रदान किए जाने का प्रावधान है।

प्रदेश सरकार मत्स्य आखेट गतिविधियां बंद सीजन के दौरान भी मछुआरों को आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाती है। इस उद्देश्य से बचत एवं राहत योजना के अन्तर्गत मछुआरों को बंद सीजन के दो माह के दौरान 1800 रुपये की धनराशि दो किस्तों में दी जाती है। इसके लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा अनुपातिक 600-600 रुपये का योगदान दिया जाता है, जबकि शेष राशि प्रत्येक मछुआरे द्वारा मत्स्य आखेट गतिविधियों वाले 10 माह में 60 रुपये प्रतिमाह की दर से जमा करवाई जाती है।

प्रदेश सरकार द्वारा मत्स्य पालन स्वरोजगार अपनाने वाले उद्यमियों को प्रशिक्षण एवं तकनीकी मार्गदर्शन भी उपलब्ध करवाया जाता है। इसके अलावा, तालाबों तथा टेंकों के जीर्णोद्धार, नये तालाब तैयार करने, फिश फीड यूनिट स्थापित करने के अतिरिक्त एकीकृत मत्स्य पालन इत्यादि के लिए प्रदेश सरकार द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई जा रही है।

सहायक लोक सम्पर्क अधिकारी, सूचना एवं जन सम्पर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, शिमला-171 002



हिमाचल भ्रमण

पर्यटन विकास के लिए सुविधा और सुरक्षा

● अनुज कुमार आचार्य

हिमाचल प्रदेश, भारत के पांच प्रमुख पर्यटन स्थलों में से एक है। लगभग 55,673 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले इस राज्य में 7 हजार मीटर की ऊंचाई वाली पर्वतमालाएं है। यहां का उत्तम जलवायु, हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां, प्राकृतिक छटा और आभायुक्त दृश्यावली, वनाच्छादित भौगोलिक परिदृश्य, नदियां और गिरी कन्दराएं अनायास ही यहां आने वाले सैलानियों का मन मोह लेती हैं। वर्ष पर्यन्त यहां देश-विदेश से पर्यटकों का तांता लगा रहता है और पर्वतीय राज्य हिमाचल प्रदेश, सैलानियों की आवाजाही, चहल-पहल से गुलजार रहता है। 'ईको-टूरिज्म स्टेट' के रूप में हिमाचल प्रदेश की एक अलग छवि उभरी है। जम्मू-कश्मीर में जारी अलगाववादी और आतंकवादी गतिविधियों के कारण भी पर्यटन के नजरिए से हिमाचल प्रदेश सुरक्षित राज्य है। शिमला, मनाली एवम् डलहौजी जैसे स्थल तो निर्विवाद रूप से पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते ही हैं, वहीं अब साहसिक पर्यटन गतिविधियां भी राज्य में जोर पकड़ती जा रही हैं। देवभूमि के नाम से विश्वविख्यात हिमाचल प्रदेश के गांव-गांव में स्थित देवालय, ज्वालामुखी, ब्रजेश्वरी, चामुण्डा, नैना देवी और चिंतपूर्णी सरीखे प्रख्यात शक्तिपीठ, कुल्लू स्थित रघुनाथ मंदिर और बैजनाथ का प्राचीन शिवमंदिर जैसे अनेकों ऐसे स्थल हैं जो धार्मिक पर्यटन के साथ-साथ भक्तों-पर्यटकों की श्रद्धा एवं आस्था के केन्द्र बने हुए हैं। इस प्रकार हिमाचल प्रदेश प्राकृतिक, धार्मिक और साहसिक पर्यटन की अपार संभावनाओं वाला राज्य बना हुआ है।

देवभूमि के नाम से विश्वविख्यात हिमाचल प्रदेश के गांव-गांव में स्थित देवालय, ज्वालामुखी, वज्रेश्वरी, चामुण्डा, नैना देवी और चिंतपूर्णी सरीखे प्रख्यात शक्तिपीठ, कुल्लू स्थित रघुनाथ मंदिर और बैजनाथ का प्राचीन शिवमंदिर जैसे अनेकों ऐसे स्थल हैं जो धार्मिक पर्यटन के साथ-साथ भक्तों-पर्यटकों की श्रद्धा एवं आस्था के केन्द्र बने हुए हैं। इस प्रकार हिमाचल प्रदेश प्राकृतिक, धार्मिक और साहसिक पर्यटन की अपार संभावनाओं वाला राज्य बना हुआ है।

यद्यपि बीते दशक से, हिमाचल प्रदेश की सरकारों द्वारा बद्दी-बरोटीवाला क्षेत्र का औद्योगिकीकरण कर वहां आर्थिक गतिविधियों को सिरे चढ़ाने का सिलसिला जारी है ताकि राज्य के शिक्षित युवाओं की रोजगार सम्बन्धी चिंताओं का निराकरण किया जा सके। लेकिन इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि राज्य की आर्थिकी को मजबूती प्रदान करने में धार्मिक, प्राकृतिक एवम् साहसिक पर्यटन की गतिविधियों से भी मजबूती मिली है। अपनी ईमानदार, मेहनती और मिलनसार छवि एवम् प्रवृत्ति के कारण हिमाचल प्रदेश के नागरिकों ने देश-विदेश में अपनी अलग छाप छोड़ी है। लेकिन जब हम हिमाचल प्रदेश में पर्यटन संभावनाओं की पड़ताल करते हैं तो लगता है कि अभी भी इस पर्वतीय राज्य में पर्यटन गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए काफी कुछ किया जाना बाकी है। आवश्यकता है कि नए-पुराने पर्यटक स्थलों की पहचान कर उन क्षेत्रों का चरणबद्ध विकास किया जाए और वहां बेहतर सड़कें, आवागमन प्रबन्धन, रहने, खाने-पीने की सुविधाओं में बढ़ौत्तरी और सुधार हेतु एक नियमित योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाया जाए। हिमाचल प्रदेश में पर्यटन गतिविधियों को पंख लगें, इसके लिए राज्य सरकार को मुख्यतः 'सुविधा एवं सुरक्षा' की अवधारणा पर कार्य करना होगा ताकि स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पर्यटकों की नजर में हिमाचल प्रदेश पसंदीदा गंतव्य स्थल बनकर उभरे।

1986 में, हिमाचल प्रदेश के जिला-कांगड़ा में बैजनाथ उपमंडल के अन्तर्गत बीड़ से 14 किलोमीटर

दूर लगभग 2400 मीटर की ऊंचाई पर स्थित बिलिंग घाटी, हैंग-ग्लाइडिंग प्रतियोगिताओं के आयोजन के साथ विश्व मानचित्र पर साहसिक पर्यटन स्थल के रूप में उभरकर सामने आई थी। अब बिलिंग घाटी पैरा-ग्लाइडिंग खेलों के 'मक्का' के रूप में विश्व पटल पर प्रसिद्धि हासिल कर चुकी है। पिछले 20 वर्षों से यहां पर अक्तूबर-नवम्बर और फरवरी से अप्रैल के महीनों में नियमित रूप से देश-विदेश के सैंकड़ों की तादाद में साहसिक खेलों से जुड़े सैलानियों और हजारों दर्शकों का तांता लगा रहता है। इसी वजह से चौगान, बीड़, जोगिन्दर नगर और बैजनाथ क्षेत्रों में होटल एवं रेस्टोरेन्ट कारोबार को भी बढ़ावा और स्थानीय लोगों को रोजगार मिला है। इसके अलावा बिलिंग के निकटवर्ती मैदानी क्षेत्रों के लोगों, छावनी क्षेत्र के सैनिक परिवारों के लिए, सर्दियों के मौसम में होने वाला हिमपात भी यहां आने के लिए आकर्षित और प्रेरित करता है। लेकिन यहां कुछ समस्याएं भी हैं यथा- प्रदेश सरकार के लोक निर्माण विभाग द्वारा बीड़ से बिलिंग तक के 14 किलोमीटर लम्बे सड़क मार्ग को पक्का करवाया गया है तथापि संकरी सड़क में आवागमन के समय चौपहिया वाहन चालकों को भारी असुविधा होती है, ऊपर से ढांक वाले किनारों पर पैरापिट न होने से चालकों में असुरक्षा की भावना भी रहती है। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इस पर्यटक स्थल को पहुंचने वाले सड़क मार्ग को तत्काल चौड़ा करके, स्टील की रेलिंग लगवाने की जरूरत है। इसके अलावा पर्यटकों के लिए टैक्सी चालकों की आपसी खींचतान एवं कई मौकों पर उनकी आपसी मारपीट, परिवार के साथ आने वाले पर्यटकों में खौफ पैदा करती है। बिलिंग की ऊंचाई वाले इलाकों में युवाओं और बाईकर्स गैंग के लड़कों द्वारा की जाने वाली हुल्लहड़बाजी, महिलाओं- लड़कियों में भय पैदा करती है। पुलिस सुरक्षा का पुख्ता बंदोबस्त, जांच-पड़ताल और तलाशी व्यवस्था का न होना पर्यटन सम्भावनाओं की खामियों की ओर इशारा करता है। यह मात्र बीड़-बिलिंग जाने वाले पर्यटकों का दर्द नहीं है वरन् सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश के अधिकांश पर्यटन स्थलों में व्याप्त खामियां- अव्यवस्थाएं पर्यटकों को डराती नजर आती हैं। कुल्लू के रघुनाथ मंदिर से चोरी हुई भगवान राम की मूर्ति सहित प्रदेश के अन्य मंदिरों से कीमती दुलर्भ मूर्तियों एवम् सामान की चोरियां सुरक्षा व्यवस्था में कमजोरी को दर्शाती हैं। प्रदेश सरकार द्वारा पर्यटन-पयर्टक गतिविधियों के विकास के लिए तैयार नीतियों पर सख्ती से अमल होना जरूरी है। पर्यटन सुविधाओं की राह में प्राकृतिक रुकावटें भी हैं। प्रदेश सरकार के सद्प्रयासों से 'आर्यन ऐविऐशन' द्वारा प्राचीन हिमानी चामुंडा मंदिर के दर्शनों के लिए शुरू करवाई गई हैलीकाप्टर सुविधा लगातार खराब मौसम की बेरुखी की भेंट चढ़ गई। उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार एक बार पुनः इस हैलीकाप्टर सेवा को शुरू करवाने के साथ, राज्य के अन्य पर्यटक स्थलों में भी हैलीकाप्टर एवं रोप-वे सुविधाओं की स्थापना पर तेजी से कार्रवाई करेगी। सरकारी अतिथि गृहों में आम नागरिकों और पर्यटकों को कमरे न मिलना भी एक अन्य बाधा है। लोक निर्माण विभाग, वन विभाग एवम् अन्य सरकारी 'रेस्ट हाऊसों' की सुविधाओं का पर्यटन के दृष्टिकोण से सदुपयोग होना चाहिए। हाल ही में मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह द्वारा शिमला में 34 करोड़ रुपयों की लागत से बनाए जाने वाले राजकीय अतिथि गृह के निर्माण का शिलान्यास इस दिशा में एक सकारात्मक कदम है। इतना ही नहीं हिमाचली नागरिकों को प्राथमिकता के आधार पर चंडीगढ़-दिल्ली स्थित हिमाचल भवनों में भी कमरे आसानी से उपलब्ध हों, इसकी भी व्यवस्था पर्यटन विभाग के अधिकारियों को करनी होगी।

हिमाचल प्रदेश में पर्यटन गतिविधियों को बढ़ावा देने से रोजगार के अवसर बढ़ें और प्रदेश की आर्थिकी को बल मिले, इसके लिए जरूरी है कि शासन द्वारा तेजी से फैसले लिए जाएं और पर्यटन से सम्बन्धित कामों के लिए अधिक बजट का आबंटन हो। रेल-सड़क कनेक्टिविटी के अलावा संचार सुविधाओं के सुदृढ़ीकरण पर भी ध्यान देने की जरूरत है। पर्यटक स्थलों पर सी.सी.टी.वी. कैमरे, पुख्ता सुरक्षा इंतजामात और पुलिस की तैनाती होने से निःसन्देह पर्यटक राज्य के रूप में हिमाचल प्रदेश की ख्याति एवम् गौरव को चार चांद ही लगेंगे।

गांव नगान डाकघर खरानल, तह. बैजनाथ, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176 115, मो. 97364 43070



भूमंडलीकृत सभ्यता में निर्मम होता मनुष्य

● श्वेता रस्तोगी

ईश्वर द्वारा प्रदत्त सृष्टि पर सभी का समानाधिकार है, चाहे वे मनुष्य हो, प्रकृति और पशु-पक्षी हो। मनुष्य स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानने के अहम् में पूरी धरती पर अपना एकाधिकार जमाना चाह रहा है। इसी संकीर्णतावादी सोच के कारण वह प्रकृति और वन प्राणियों का शोषण करने से भी नहीं हिचकता। मनुष्य की इसी सोच ने पारिस्थितिक असंतुलन को जन्म दिया। पारिस्थितिक चिंतन के प्रति प्रतिबद्ध एस.आर. हरनोट ऐसे ही रचनाकार हैं जिन्होंने अपने लेखकीय प्रतिबद्धता द्वारा पर्यावरण और क्षरित होती मानवीय संवेदनाओं जैसे समस्याओं को अपनी कहानी संग्रह 'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' में दिखाने का प्रयास किया है। यह कहानी संग्रह अपने लघु कलेवर में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विसंगतियों के चिंतन को आत्मसात करते हुए स्वस्थ समाज की परिकल्पना पर बल देता है।

इस कहानी संग्रह की हर कहानी सांस्कृतिक, पर्यावरणीय समस्याओं जैसे विविध पहलुओं को दर्शाती है। 'आभी' नामक कहानी की नायिका आभी नामक चिड़िया है जिसका कार्य झील में गिरे तिनके को उठाना है ताकि झील गंदी न हो। जो चेतना मनुष्यों में होनी चाहिए, उसी चेतना को लेखक ने आभी नामक चिड़िया में दिखाकर मनुष्य की कुंद होती चेतना पर प्रहार किया है। लेखक ने मनुष्य द्वारा प्रकृति के शोषणकारी रूप का भी चित्रण किया है। झील के किनारे घूमने आए लोगों का वर्णन करते हुए लेखक कहता है- "दिनभर कितने लोग यहां घूमने आते हैं। कोई पेड़ की ओट में बैठे खाते-पीते हैं और वहीं प्लास्टिक के लिफाफे, चिप्स और पानी की खाली बोतलें फेंककर चल देते हैं।"[1] मनुष्य के इन कुकृत्यों का आभी नामक चिड़िया के मन में दर्द को बड़े ही संजीदगी से दिखाया गया है- "वह जोर-जोर से चहचहाती है, तड़पती है। कई आभियां उसकी चहचहाटें सुनकर वहां पहुंच जाती हैं...। एक-दूसरे से पंख सटाए वे उस कचरे को उठाना चाहती हैं, पर लाख कोशिशों के बावजूद भी नहीं उठा पातीं। वे मंदिर के गुम्बदों पर कतारों में बैठकर चहचहाने लगती हैं। यह चहचहाना आम नहीं है। इस झील की निर्मलता को प्रदूषित करने का दर्द है।"[2] इतना ही नहीं रात के अंधेरे में किस प्रकार पेड़ों के काटने का क्रम और पशुओं के शिकार का क्रम चलता है। इसे भी लेखक ने अपनी कहानी में दिखाया है- "उनके कंधों पर तेज कुल्हाड़े और तीखे दांतों वाले आरे पूरे जंगल को डरा देते हैं। पेड़ कुल्हाड़ी की चमक और उन वहशी जंगल माफियाओं के मन के घोर पाप से थरथराते रहते हैं।"[3] विलुप्त होती मानवता और डर के साये में जीते पशु-पक्षियों की मनःस्थिति को लेखक ने इस प्रकार वाणी दी है- "आभी अब झील में गिरते तिनकों और पत्तों से ज्यादा इनसानों से डरने लगी है।"[4] मनुष्य के वहशीपन, प्रकृत तथा वन प्राणियों के असंतुलन की चिंता आभी नामक पक्षी में दिखाकर लेखक ने मनुष्य में बढ़ती पाश्विक प्रवृत्ति की ओर इशारा किया है। इसी क्रम में 'जूजू' और 'लोग नहीं जानते थे कि उनके पहाड़ खतरे में हैं', 'हक्वाई' कहानी को देख सकते हैं। 'लोग नहीं जानते थे उनके पहाड़ खतरे में हैं' शीर्षक कहानी में मनुष्य द्वारा पहाड़ों के सौंदर्य के अवलोकन को दिखाया है, पर अब मनुष्य अपनी महत्त्वाकांक्षा पूर्ति करने हेतु किस प्रकार पहाड़ों को काट कर फैक्ट्री के निर्माण में संलग्न है।

संकीर्णतावादी सोच के कारण वह प्रकृति और वन प्राणियों का शोषण करने से भी नहीं हिचकता। मनुष्य की इसी सोच ने पारिस्थितिक असंतुलन को जन्म दिया। पारिस्थितिक चिंतन के प्रति प्रतिबद्ध एस. आर. हरनोट ऐसे ही रचनाकार हैं जिन्होंने अपने लेखकीय प्रतिबद्धता द्वारा पर्यावरण और क्षरित होती मानवीय संवेदनाओं जैसे समस्याओं को अपनी कहानी संग्रह 'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' में दिखाने का प्रयास किया है। यह कहानी संग्रह अपने लघु कलेवर में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विसंगतियों के चिंतन को आत्मसात करते हुए स्वस्थ समाज की परिकल्पना पर बल देती है।

मनुष्य के इस शोषक रूप को बखूबी कहानीकार ने चित्रित किया है।

'मांएं' शीर्षक कहानी में लेखक ने कन्याभ्रूण हत्या, बुजुर्गों की उपेक्षित स्थिति, सड़कों पर भीख मांगने वाली स्त्रियों की शोषित स्थिति को दिखाया है। लड़की के जन्म लेने के बाद उसे विपत्ति समझकर अपने पिता द्वारा कूड़ेदान में फेंक दी जाती है पर एक बंदरिया जिसने अपना बच्चा कुछ दिन पहले खो दिया है, उस नवजात कन्या शिशु को कूड़ेदान से उठाकर जंगल के खूंखार जानवरों से उसकी रक्षा करती है। इस तरह एक बंदरिया में मानवीय संवेदना और मातृत्व प्रेम दिखाकर कहानीकार ने मनुष्य की संवेदनहीन स्थिति पर व्यंग्य किया है। 'आस्थाओं के भूत' शीर्षक कहानी में धर्म के नाम पर होने वाली अनैतिक साजिशें और पशु-बलि जैसी धर्मांध चीजों को बढ़ावा देने वाली कुरीतियों को भी इस कहानी में प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित किया गया है। पशु बलि का त्रासद चित्र इस कहानी में इस प्रकार दिखलाई पड़ता है- "दोष का निवारण बिना बकरी या बकरा दिए नहीं मिटता। महीने भर देवी के नाम से बकरे और बकरियां आते रहते हैं। वक कटते जाते हैं... जो बकरियां कटती नहीं, उन्हें अच्छे दामों में इधर-उधर बेच दिया जाता है जिससे भी अच्छी, खासी आमदनी होती।"[5] मंदिरों में चढ़ावे को देखकर लोभियों के खून में किस प्रकार लड्डू फूटते हैं, इसका इस प्रकार वर्णन किया गया है- "मंदिर में इतना नकद और सोना-चांदी आता था कि उसकी चमक सभी के घरों और चेहरों पर बिखरी देखी जा सकती थी।"[6]

'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' कहानी लिटन ब्लॉक नामक इतारत के गिराए जाने जैसे मुद्दे को उठाया गया है। वर्षों के पारम्परिक धरोहर को मनुष्य की लोलुप प्रवृत्ति किस प्रकार धराशायी करती है, इसका उल्लेख इस कहानी के इस प्रसंग में मिलता है- "जब इस इतारत को गिराने का काम शुरू हुआ तो बंदरों, कुत्तों के साथ-साथ नसमू और कुबड़ी भी बेघर हो गए। बंदरों और कुत्तों को तो कोई फर्क नहीं पड़ा, पर नसमू का बना बनाया बसेरा उजड़ गया। उस पर एक साथ दोहरी मार पड़ी थी। लिटन ब्लॉक के गिर जाने से एक दिन पहले सरकार ने जैसे ही प्लास्टिक के लिफाफों और दूसरी चीजों पर प्रतिबंध की घोषणा की तो पहला हमला उनके आशियाने पर हुआ क्योंकि वह एक फटे-पुराने प्लास्टिक के तिरपाल से बनाया गया था।"[7] इस कहानी की शैली पर विचार करें तो हरनोट जी ने बड़े ही सरल, सहज और संजीदगी से कहानी की मार्मिकता को पाठकों तक संप्रेषित करने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' अपने व्यापक अर्थों में धार्मिक, सांस्कृतिक विषमताओं की आड़ में मनुष्य की क्षीण होती नैतिकता और संवेदना पर करारा व्यंग्य करती है। भूमंडलीकृत युग में मनुष्य विकास की अंधी दौड़ में इतना निर्मत होता जा रहा है कि वह प्रकृति, पशु-पक्षियों का अंधाधुंध शोषण कर उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दे रहा है। मनुष्य की निर्मम स्थिति पर के. वनजा का कहना है- "उपभोग संस्कृति का मुख्य स्वभाव 'फेंक देना' और विस्मृत हो जाना है। उसकी सृष्टि है आधुनिक पारिस्थितिक संकट।"[8]

शोध छात्रा, कलकत्ता विश्वविद्यालय, मो. 80132 81659

संदर्भ सूची

1. हरनोट, एस.आर. लिटन ब्लॉक गिर रहा है, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला, प्रथम संस्करण-2014, पृ.12, 12, 13, 14, 106, 106, 130

2. वनजा, के. साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2011, पृ. 12

कविता

नहीं चाहता

● मिस्दाक़ आज़मी



मैं नहीं चाहता कोई बच्चा
रेलगाड़ी का फर्श साफ करे
नट की रस्सी पे अब नज़र आये
जिस्म को मोड़ने का फ़न सीखे
शेर के मुंह में हाथ डाले
तपते भट्टों की ईंट ढोये
होटलों और शराबखानों की
अपने दामन से मेज़ साफ करे
सांप को रखके इक पिटारे में
शाहराहों पे भीख भी मांगे
नाच गाने से सबको खुश करदे
बूट पालिश में खूब माहिर हो
बाप के साथ काम पर जाए
मां के आंचल से दूर हो जाए
मैं चाहता हूं हर बच्चा
अपने बचपन में सिर्फ बच्चा हो।

गांव जौमा, पो. मेजवां फूलपुर, जिला आज़मगढ़,
उत्तर प्रदेश-276304, मो. 94514 31700

आलेख

भीष्म साहनी के लेखन में यथार्थवाद

● डॉ. सुनीता

भीष्म साहनी वामपंथी विचारधारा की एक ऐसी शख्सीयत थी जो समाजवाद को प्रोत्साहन व महत्त्व देती थी। भीष्म साहनी का यथार्थवाद प्रेमचन्द की परम्परा का होते हुए भी कई मायनों में उनसे भी आगे है। भीष्म साहनी को अपने साहित्य में दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ी और वे, एक ओर तो आधुनिकता-बोध की विसंगति और पराएपन के खिलाफ थे और दूसरी ओर रुढ़ियों, अंधविश्वासों वाली धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध थे। इसके साथ ही राष्ट्रीय चरित्र के सम्प्रदाय निरपेक्ष-लोकतंत्र निर्माण की भूमिका भी बनाते हैं। जनता के नैतिक संघर्ष के प्रति समझदारी पैदा करना भी भीष्म साहनी के कथा-यथार्थवाद की एक विशेषता है। भीष्म साहनी के साहित्य से जनवादी मनुष्य की धारणा बनती है।

"भीष्म साहनी ने भारतीय समाज में फिरकापरस्ती, कट्टर धार्मिकता और धर्मांधता के सामाजिक संदर्भ को न केवल पर्त-दर-पर्त उघाड़ा है, बल्कि हिंदू और मुस्लिम कट्टरवादिता का चित्रण भी किया है जिनकी घृणा का पात्र अकसर गरीब ही बनते हैं, चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम। इसी धर्मांधता के कारण इन साम्प्रदायिक तत्त्वों को समाज में एक-दूसरे का खून बहाने की खुली स्वतंत्रता मिल जाती है। जो सामाजिक एकता को बनाए रखना चाहते हैं, उन्हें मौत के घाट उतारा जाता है।"[1] आज जबकि विश्व साम्राज्यवादी जनता की आजादी के विरुद्ध आक्रामक हो गया है, राष्ट्रीय स्वतंत्रता को समाप्त करने की साजिशें बना रहा है, वह देशीय पूंजीवाद से मिलकर लोकतंत्र की नसों को काट रहा है। भीष्म साहनी के शांत और शालीन व्यक्तित्व की रचना में मार्क्सवादी द्वंद्ववाद की सृजनशीलता के गुण विद्यमान हैं। भारत में मध्यवर्ग का मन अभी तक आधुनिकीकरण की धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रीय चेतना से विरक्त है। भीष्म साहनी ने अपने साहित्य में मध्यवर्ग के संस्कारों को बदलने का प्रयास किया है। भीष्म साहनी ने राष्ट्रीय भावात्मक एकता की वस्तुपरक परिस्थितियों को स्पष्ट किया है।

"भीष्म साहनी ने भारतीय समाज में फिरकापरस्ती, कट्टर धार्मिकता और धर्मांधता के सामाजिक संदर्भ को न केवल पर्त-दर-पर्त उघाड़ा है, बल्कि हिंदू और मुस्लिम कट्टरवादिता का चित्रण भी किया है जिनकी घृणा का पात्र अकसर गरीब ही बनते हैं, चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम। इसी धर्मांधता के कारण इन साम्प्रदायिक तत्त्वों को समाज में एक-दूसरे का खून बहाने की खुली स्वतंत्रता मिल जाती है। जो सामाजिक एकता को बनाए रखना चाहते हैं, उन्हें मौत के घाट उतारा जाता है।"

'तमस' में तत्कालीन राजनीतिक दलों को विधिवत् राजनीतिक पार्टियों के रूप में लिया गया है जिसमें स्वयं प्रमुख पार्टी के बहुत से अवसरवादी सदस्य भी दंगों के बारे में चिंतित नहीं हैं। शिष्टमंडल के अधिकांश सदस्य संकीर्ण, व्यक्तिवादी हैं तथा सभी को अपनी-अपनी पड़ी हुई है। बख्शी जी, एक समझदार तथा ईमानदार व्यक्तित्व वाले लगते हैं, लेकिन उनकी समझदारी को विशुद्ध राजनीतिक चेतना स्थिति में न देखकर हम उसे एक वयोवृद्ध की निर्मल अनुभवी भावना के अंतर्गत समझ सकते हैं। राजनीति चाहे पार्टी में या बाहर भ्रष्ट तरीकों को अपनाकर रुपये कमाना या पार्टी टिकट प्राप्त करना एक साधारण बात समझते हैं। जनता का प्रतिनिधि योग्यता के आधार पर नहीं, बल्कि पैसे के आधार पर चुनावों में खड़ा किया जाता है। अंतरिम सरकार होते हुए भी प्रशासन की बागडोर अंग्रेज के हाथ में थी। अंग्रेजों द्वारा चलाए गए साम्प्रदायिक दंगों के अंत का बख्शी जी के पास कोई जवाब नहीं था और न ही पार्टी के पास उसके विरुद्ध कोई कारगर नीति। देश की सत्ता सम्भालने वाले ही ऐसे लोग है तो देश का क्या हाल होगा, अगर शासन चलाए वाले ही अनैतिक तरीके अपनाए, तो जनता के हित की बात कौन करेगा?

भारतीय समाज में बहुत जनसंख्या हिंदू धर्म को मानने

वालों की है। वे अपनी संस्कृति और धार्मिक इतिहास तथा धार्मिक परम्पराओं के साथ अंतर्गर्भित है।

उपन्यासकार भीष्म साहनी भारत विभाजन के समय हुए साम्प्रदायिक दंगों के मुक्तभोगी रहे हैं तथा साम्प्रदायिकता में निहित धर्म को प्रमुख माना है। उपन्यास का आरम्भ भी धार्मिक उन्माद से होता है। मुरादअली नामक कमेटी के कारिंदे ने पांच रुपये का एक नोट उसकी जेब में ठूंसते हुए यह काम सौंपा था, "हमारे सलोतरी साहब को एक मरा हुआ सुअर चाहिए, डॉक्टरी काम के लिए।"[2] उसके बाद सुअर को मस्जिद के पास फेंक दिया। मुसलमान भड़क उठे। बाद में गाय की हत्या की सूचना भी उपन्यासकार देता है, "सुना है कोई गाय भी मारी गई है। गंदे नाले के पास कोई मार कर फेंक गया है।"[3] हिंदू धर्म के लोग गाय को माता के समान पूजनीय मानते हैं। इन सभी कारणों से भारत में होने वाले साम्प्रदायिक दंगों में 'धर्म' प्रमुख भूमिका निभा रहा है, जिसका वर्णन भीष्म साहनी ने अपने उपन्यास 'तमस' में किया है।

जहां मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग कर रही थी, मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता 'पाकिस्तान- जिन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे और मुस्लिम लीग का कहना था कि कांग्रेस मुसलमानों की प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। कांग्रेस हिंदुओं की जमात है किस तरह से मुरादअली नामक व्यक्ति नत्थू से सुअर की हत्या करवाता है और बाद में वही सुअर एक मस्जिद की सीढ़ी पर पाया जाता है। मस्जिद में सुअर के शव को देखकर मुसलमान उत्तेजित हो जाते हैं क्योंकि मुस्लिम धर्म में सुअर को एक बहुत ही पवित्र पशु माना जाता है। अतः मस्जिद की सीढ़ी पर सुअर का शव देखकर मुसलमान इसे अपने धर्म की तौहीन मानते हैं। मुस्लिम साम्प्रदायिकता भी हिंदू साम्प्रदायिकता की भांति दंगों की विनाश लीला से कम घिनौनी भूमिका नहीं निभाती।

अंग्रेज शासकों ने योजनाबद्ध रूप से हिंदुओं और मुसलमानों के आपसी घृणा भाव को बढ़ावा दिया ताकि हिंदू और मुसलमान आपस में लड़ते रहें और हम देश पर अधिक-से-अधिक समय तक शासन कर सकें। उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रिचर्ड के कार्यकलाप तथा व्यवहार पर केंद्रित है। ...'तमस' में साम्प्रदायिक शक्तियों की पहचान के साथ-साथ साम्प्रदायिकता विरोधी संदेश इतना अधिक स्पष्ट है कि उसे किसी भी तरह से नकारा नहीं जा सकता।

अंग्रेज शासकों ने योजनाबद्ध रूप से हिंदुओं और मुसलमानों के आपसी घृणा भाव को बढ़ावा दिया ताकि हिंदू और मुसलमान आपस में लड़ते रहें और हम देश पर अधिक-से-अधिक समय तक शासन कर सकें। उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रिचर्ड के कार्यकलाप तथा व्यवहार पर केंद्रित है। रिचर्ड दंगाग्रस्त क्षेत्र का डिप्टी कमिश्नर है। रिचर्ड को सारी घटना का ज्ञान होता था। लेकिन वह स्थिति को सामान्य बनाए रखना नहीं चाहता था, उससे उसकी दोगली नीति का स्पष्ट पता चलता है। शासक एक ओर धर्म के नाम पर गरीब जनता को लड़ाते हैं। और फिर अपनी सहानुभूति दिखाते हैं।

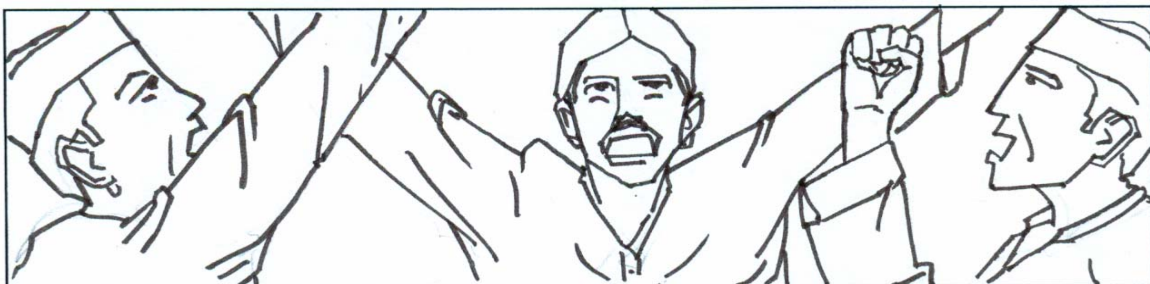
सांकेतिक रूप में इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतंत्रता पूर्व के भारत में शासक वर्ग इन्हीं साम्राज्यवादी विघटनकारी नीतियों का अनुसरण करते हुए, अपनी सत्ता को बनाए रखना चाहता था। वह जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति न कर पाने के फलस्वरूप उन्हें बदहाली, भुखमरी, गरीबी, महंगाई आदि समस्याओं के बीच जीता हुआ छोड़कर आपस में ही लड़ाए रखना चाहता है, ताकि वे सत्ता के खिलाफ संघर्ष में एकजुट न हो सके। देशभर में बार-बार भड़क उठने वाले साम्प्रदायिक दंगे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण माने जा सकते हैं।

अंत में कहा जा सकता है कि 'तमस' में साम्प्रदायिक शक्तियों की पहचान के साथ-साथ साम्प्रदायिकता विरोधी संदेश इतना अधिक स्पष्ट है कि उसे किसी भी तरह से नकारा नहीं जा सकता।

गांव व डाकघर ढैर, तह. आनी, जिला कुल्लू,
हिमाचल प्रदेश-172 025

संदर्भ

1. भीष्म साहनी उपन्यास साहित्य, विवेक द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली-1998
2. भीष्म साहनी 'तमस' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973
3. वही



कहानी

अन्तरात्मा की आवाज

● डॉ. श्याम मनोहर व्यास

यह आम धारणा है कि सरकारी कर्मचारी सरकार के दामाद होते हैं, पक्की नौकरी, पेंशन, छुट्टियां और ऊपर से आमदनी अलग। रमेश भी उसी श्रेणी में आता है। पिता की सिफारिश और अपनी योग्यता के बल पर वह भी कस्बे की इसी मुनसिफ मजिस्ट्रेट कोर्ट में क्लर्क के पद पर लग गया। थोड़े समय के पश्चात् वह वरिष्ठ क्लर्क के पद पर पदोन्नत हो गया। पंद्रह हजार रुपये मासिक वेतन से किसी तरह से गृहस्थी की गाड़ी खींच रहा है।

रविवार का दिन सरकारी कर्मचारियों के लिए आराम का दिन होता है। शनिवार को रात्रि को ही रविवार का दिन कैसे व्यतीत किया जाए, इस पर परिवार के बीच चर्चा होने लगती है।

प्रातः के नौ बज गए हैं पर रमेश महाशय अभी तक पलंग पर पड़े सुस्ता रहे हैं। रात्रि की थकान उसके चेहरे पर साफ नजर आ रही है। पत्नी कुसुमलता चाय का कप लेकर आ गई तो वह एक मधुर मुस्कान चेहरे पर लाकर चाय का कप ले लेता है और पलंग पर उठ बैठता है।

आज रमेश ने सपरिवार कस्बे के समीपस्थ 'जयसमन्द' रमणीय स्थल पर जाने का प्रोग्राम बनाया था। चाय पीकर वह आराम से कुर्सी पर आकर बैठ गया और समाचार पत्र पढ़ने लगा। उसको अखबार की चटपटी खबरें व बेबाक संपादकीय बड़े अच्छे लगते हैं। किंतु आज के आनंद का उपयोग करना उस दम्पति के भाग्य में नहीं था। उसी समय एक तांगा उसके घर के सामने आकर रुका। कुसुम उठी, द्वार खोला तो देखा उसकी ननद राधा अपने चार बच्चों के साथ द्वार पर खड़ी है। कुसुम एक बार तो सकते में आ गई। वह अवाक उनकी ओर देखती रह गई, किंतु दो-तीन क्षण के बाद ही वह सम्भल गई।

बरबस मुख पर हंसी लाकर उसने कहा, "आओ, आओ बहन, अरे! रमा, कांता, सुरेश, महेश अंदर आओ न, बेटो चलो।" कुसुम ने बढ़कर ननद के हाथ से बक्सा ले लिया और अंदर आ गई।

तब तक रमेश भी बाहर आ गया था। चार बच्चों के साथ बहन को आते देखा, उसका एक बार तो मुंह उतर गया। चिंता की रेखाएं चेहरे पर उभर आईं। मन उदास हो गया, पर वह शीघ्र सम्भल गया। रमेश ने एक कृत्रिम मुस्कान चेहरे पर लाकर बहन का स्वागत किया और बोला, "आओ, राधा मैं रक्षा-बंधन पर तुम्हें बुलाना ही चाहता था, किंतु तुम स्वयं ही आ गई। चलो अच्छा रहा। कुसुम सबके लिए चाय-नाश्ता तैयार करो और फिर शीघ्र भोजन बना लो। सफर से आए हैं, बच्चों को भूख लगी होगी।"

रमेश इस प्रकार से कह रहा था, जैसे बहन की प्रतीक्षा ही कर रहा था और घर में सब सामान भरा पड़ा है।

एकाएक कुसुम की दृष्टि से वह चौंक उठा। वह पैनी नजर उसके हृदय में चुभती, घुसती चली गई, जैसे कुसुम कह रही हो, "श्रीमान् जी, आज्ञा देना जितना सरल होता है, उसका पालन उतना ही कठिन होता है।"

कुसुम गृहिणी के नाते अपने कर्तव्य के प्रति सजग और सावधान है, वह भली-भांति जानती है कि जीवन में ऐसा आपातकाल आता ही रहता है, ऐसे समय में गृहिणी का कर्तव्य है कि वह घर में ऐसी व्यवस्था बनाए रखे, जिससे घर को इज्जत बच जाए। फिर उसके ही तो ऐसे संस्कार थे कि अतिथि देवता के समान पूजा जाता है।

कुसुम सोच रही थी, "भाई के घर बहुत दिनों बाद बहन आई है, महीने बीस दिन तो रहेगी ही। विदाई के समय बहन व उसके बच्चों के लिए कपड़ों की व्यवस्था भी करनी पड़ेगी। कुसुम घर-गृहस्थी के कार्य से निवृत्त होकर जब शाम के समय रमेश से एकांत में मिली तो रमेश ने उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "कुसुम ! तुम्हारी कठिनाइयों को मैं समझता हूं। राधा का आना... ।"

बीच में ही कुसुम ने प्रतिरोध के स्वर में कहा, "किसी मेहमान का आना और विशेष कर बहन का आना तो हमारा

सौभाग्य है। मुझे तो इस कालखंड पर तरस आता है, जिसमें अभावों की मृत्यु नहीं होती, जन्म ही जन्म होता है। महंगाई और अभाव मानवीय मूल्यों को समाप्त कर रहे हैं। जिन स्वजनों को देखकर मन-ही-मन व्यक्ति हताश हो उठते हैं कि इनके आने से घर का बजट गड़बड़ा जाएगा।" रमेश ने कहा, "वेतन तो एक तारीख को मिलेगा। आज तो बाईस ही है, काम कैसे चलेगा?"

"यह बात तो सच है। वेतन मिलने में अभी आठ दिन बाकी हैं। आठ दिन तक कैसे काम चलाया जाएगा। घर में सामान एक-दो दिन का ही है।" कुसुम ने भी अपनी समस्या रखते हुए कहा।

रमेश चिंता के प्रहार से आहत हो उठा।

पति को चिंताग्रस्त देख कुसुम ने हाथ में रखी एक वस्तु उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "लो, इसे बेचकर रुपये ले आओ।"

रमेश विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखता ही रह गया। आज भी ननद और उसके बच्चों के लिए गहना दे देने वाली औरतें हैं। कुसुम ने अपनी उंगली से सोने की अंगूठी निकाल कर रमेश को दे दी थी। रमेश को पशोपेश में देखकर कुसुम ने पुनः कहा, "मैं



आपकी चिंता समझती हूं। आप अधिक सोच-विचार न करें। इसे लीजिए, सीधे सुनार की दुकान पर जाइए, इसे बेचिए और सामान ले आइए। घर की इज्जत का प्रश्न है।"

रमेश कुछ नहीं बोला, बोलता भी क्या।

समस्या का समाधान इसके सिवा था भी क्या। उसने हाथ बढ़ाकर अंगूठी ले ली। वह बाजार की ओर चल पड़ा। उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचने लगी। वह अपनी डिग्री, नेताओं के आश्वासनों एवं अपने भाग्य को धिक्कारने लगा। सामने एक बड़ी हवेली की दीवार पर लगे चुनाव वाक्यों को देखकर वह मन-ही-मन कुपित हो उठा- धन और धरती बंटकर रहेगी। कोई अभावग्रस्त नहीं रहेगा। सच्चा समाजवाद आएगा। हमें वोट दो, हम स्थिर सरकार बनाकर गरीबी दूर करेंगे। चुनाव के दिनों में नेताओं द्वारा दिए गए ये भाषण अंश उसे बिच्छू के डंक की तरह डसने लगे। आजादी के बाद भी समाज में विषमता की खाई बढ़ती ही गई।

वह सोचने लगा- पचास वर्षों में समाजवाद के नारे, सरकार व नेताओं के आश्वासन, गरीबी के राक्षस को नहीं मार सके। वह गरीबी का खून चूस रहा था, सो चूस ही रहा है। महंगाई की मार आदमी का जीना अलग से कठिन बना रही है।

आज चारों ओर बेईमानी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी एवं कालाबाजारी का दौर-दौरा है। नम्बर-दो के धंधे से कमाने वाले ही जीवन में गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। उनके यहां किसी वस्तु की कमी नहीं है। उसका ही साथी गोविंद कोर्ट में बिना बीस रुपये लिए फाइल वकीलों व अभियुक्तों को नहीं दिखाता। सिंचाई विभाग का मामूली-से-मामूली क्लर्क भी शाम को घर लौटता है तो सौ-डेढ़ सौ रुपये के नोट उसकी जेब में होते हैं। क्लर्क के ही मजे हैं तो अफसरों की पौ-बारह। उसके साथ पढ़ा नरेश सिविल इंजीनियर है। नौकरी लगे अभी दो वर्ष ही नहीं हुए हैं और उसने स्कूटर फ्रिज खरीद लिया है और अब मकान बनवाने के लिए प्रयत्नरत है। विचारों के इस ऊहापोह में सर्राफा बाजार आ गया। तभी उसे याद हो आया कि एक सर्राफ उसकी पहचान का है, जो अकसर उसके ऑफिस में आता है।

वह उसी की दुकान पर गया।

सर्राफ भी उसे जानता था।

देखते ही बोला, "आइए, रमेश बाबू। आज कैसे कष्ट किया?"

बिना कोई भूमिका बांधे रमेश बोला, "सेठजी, एक रकम बेचनी है।"

सर्राफ ने आश्चर्य से कहा, "रकम बेचनी है और वह भी आपको।"

"क्यों इसमें आश्चर्य की क्या बात है?"

"आश्चर्य की बात है इसलिए तो अर्ज कर रहा हूं।" जरा चलिए भीतर बैठकर बात करें।" सर्राफ बोला।

सर्राफ उसे दुकान के भीतरी भाग में ले गया। उस कमरे की सामने वाली भीत के सहारे गद्दी-तकिए लगे थे। शेष तीन और अलमारियां रखी थीं, जिसमें सोने-चांदी के आभूषण और जवाहरात रखे थे।

सर्राफ ने रमेश की आंखों में अपनी आंखें गड़ाते हुए कहा, "आप मुनसिफ कोर्ट में वरिष्ठ लिपिक अर्थात पेशकार हैं। इतने बढ़िया पद पर रहते हुए भी आप घर की रकम बेचने आए हैं, बड़े आश्चर्य की बात है। आपके पूर्व में जो पेशकार थे, उन्होंने कितना पैसा कमाया, जानते हैं आप।"

"नहीं तो। और मुझे इससे क्या मतलब?" रमेश ने कहा।

सर्राफ ने बताया, "उनके घर गए होते तो पता चलता। उनका घर आधुनिक सुख-साधनों से सम्पन्न है। उनके यहां मोटर

साइकिल है, सोफासेट हैं, टीवी है, फ्रिज है, सब कुछ है। सोने के आभूषण भी हैं, अच्छा बैंक बैलेंस है। वे भी तो आपके ही पद पर थे। आजकल वे इसी कस्बे के सेशन कोर्ट में हैं। वेतन तो वे उतना ही पाते थे जितना आप पाते हैं।" सर्राफ कुछ रुका, फिर कुछ सोचकर बोला, "रमेश बाबू जानते हैं। आप। बड़े साहब और उनमें मिलीभगत थी। दोनों ने मिलकर खूब पैसा झाड़ा।"

रमेश बोला, "सेठजी, मैं तो अंगूठी बेचने आया हूं। ये सारी दलीलें सुनने नहीं। इसका कितना रुपया मिलेगा, बताइए।"

सर्राफ ने उसे समझाते हुए कहा, "आप तो बुरा मान गए बाबूजी मैं आपकी भलाई के लिए कह रहा था। आपको पेशकारी का मौका मिला है। बहती गंगा में हाथ धो लो। अपनी आर्थिक दशा को मजबूत कर लो। ये दिन फिर नहीं आने को। आज कौन दूध का धुला है। सब अपने कपड़ों में नंगे हैं। आपके भी बच्चे हैं।"

पिता होने के नाते उनके पालन-पोषण, पढ़ाई-लिखाई का भार आप पर ही है। लड़की बड़ी होगी तो उसके दहेज की व्यवस्था भी आपको ही करनी पड़ेगी। आज के इस महंगाई के युग में बिना ऊपरी आमदनी के काम नहीं चल सकता। आप सोचिए जरा। सर्राफ की बातें अब रमेश पर धीरे-धीरे असर करने लगी थीं। उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल-सी मच गई।

उसे मौन देखकर सर्राफ फिर बोला, "रमेश बाबू, इस अंगूठी के वैसे चार सौ रुपये बनते हैं, पर मैं आपको पांच सौ रुपये देने को तैयार हूं। आप अभी रुपये ले जाइए। अंगूठी भी ले जाइए। मुझे आप पर भरोसा है। एक-दो महीने में रुपये चुका देना।" यह कहकर उसने सौ-सौ के पांच नोट जेब में से निकालकर रमेश को दे दिए और अंगूठी भी वापस कर दी।

उसके मन में अब तरह-तरह के विचार उठने लगे। उसने एक जगह कहीं पढ़ा था- 'वेश्याओं के बीच रहने वाली सती का सतीत्व ठिठोली का विषय बन जाता है। चरित्रहीन व्यक्तियों के मध्य चरित्रवान व्यक्ति उपहास का ही पात्र बनता है।' मेरे पीठ पीछे भी मेरे सहयोगी 'गांधीजी', 'राजा हरीशचन्द्र' आदि नामों से पुकार कर मेरा मजाक उड़ाते हैं। कोई भी मुझे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। उसके मानस में कोहराम-सा मच गया।

रमेश ने अंगूठी पेंट की जेब में छिपा ली और रुपये लेकर घर की ओर रवाना हो गया।

उसके मन में अब तरह-तरह के विचार उठने लगे। उसने एक जगह कहीं पढ़ा था- 'वेश्याओं के बीच रहने वाली सती का सतीत्व ठिठोली का विषय बन जाता है। चरित्रहीन व्यक्तियों के मध्य चरित्रवान व्यक्ति उपहास का ही पात्र बनता है।' मेरे पीठ पीछे भी मेरे सहयोगी 'गांधीजी', 'राजा हरीशचन्द्र' आदि नामों से पुकार कर मेरा मजाक उड़ाते हैं। कोई भी मुझे सम्मान की दृष्टि से नही देखता। उसके मानस में कोहराम-सा मच गया।

पाप और पुण्य में संघर्ष हुआ। आखिर पाप ने पुण्य पर विजय पा ली। असत्य सत्य पर हावी हो उठा। उसने तय कर लिया कि सर्राफ के कहे अनुसार समय का पूरा सदुपयोग करेगा। मेरे साथी भी वही कर रहे हैं तो मैं क्यों पीछे रहूं। क्यों अभावों में, चिंता में ग्रस्त रहूं। उसने फिर सोचा- कम-से-कम रिश्वत किस प्रकार ली जाए, इसका भी गुर अपने साथियों से मुझे सबसे पूर्व सीख लेना चाहिए।

वह रुपये लेकर कुसुम के पास पहुंचा और उसे रुपये दे दिए। कुसुम के चेहरे पर फैली विषाद की रेखाएं हर्ष में बदल गईं। वह आश्वस्त हो गई कि अब वह मेहमानों की खातिर में कमी नहीं आने देगी।

रमेश ने शाम को सबको पिक्चर भी दिखलाई। अगले दिन उसने अपने साथियों में बैठकर रिश्वत लेने के सारे तौर-तरीके सीख लिए।

अगले दिन काम की अधिकता के कारण वह नौ बजे ही ऑफिस आ गया था। आज उसका मुख रौब से चमक रहा था। इसलिए कि आज वह रिश्वत लेने का संकल्प लेकर आया था। अभी वह अलमारी से फाइल निकाल ही रहा था कि एक देहाती उसकी टेबल के सामने आकर खड़ा हो गया।

फटेहाल और दीन-हीन आकृति।

रमेश ने हिकारत भरी दृष्टि से उसे देखा और कहा-

मेरे पास दस बीघा जमीन है। उसमें दो बीघा पर नाथूसिंह ने जबरदस्ती कब्जा कर रखा है। जोतने जाता हूं तो वह बंदूक लेकर आता है। गांव के सभी उससे डरते हैं।"

"फिर।"

"सो उस पर मैंने दावा कर दिया है, परसों पेशी है।"

"वकील किया।"

"फिर यहां आने की आवश्यकता क्या है?"

"पैरवी तो वह करेगा ही बाबूजी, उसके बाबू ने राय दी कि मैं आपसे मिलूं। आप बड़े साहब से मिलकर मेरे पक्ष में फैसला करवा सकते हैं।"

रमेश की कातर दृष्टि से देखते हुए ग्रामीण ने कहा।

"तुम्हारे हक में फैसला हो जाएगा, पर पांच हजार रुपये देने होंगे।" रमेश ने अपना पासा फेंका।

ग्रामीण ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "बाबू जी, गरीब आदमी हूं। इतने रुपये नहीं दे सकूंगा।"

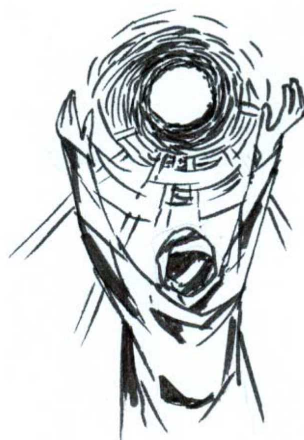
रमेश ने उसे डांटते हुए कहा, "गरीब हो तो मुकद्दमा क्यों लड़ते हो। जाओ, रुपये कल लेकर आओ तो बात करना।" यह कहकर वह अपने कार्य में व्यस्त हो गया। ग्रामीण भी निराश मन

आचार्य डॉ. पी.सी. कौडल की कविताएं

मेरा शहर

अपने शहर की तो गलियां
क्यों हुई हैं पराई आज
जिन्हें हम अपना घर
आंगन समझते थे
सुनसान है मेरा वो शहर
मेरे शहर की वो गलियां
कहां गई वो चहल-कदमी
चमक दमक?
घूमते थे सारे
शहर के नौजवां
इन गलियों में।
आज सन्नाटा है-
वीरानगी है
क्यों जल रहा है मेरा शहर?

क्यों मंडरा रहे हैं
घोर अनिष्टों के बादल
मेरे प्रिय शहर के ऊपर।
आंसू बहा लो मेरे शहरवासियो
उठ चुका है जनाजा
मेरे चंद भाइयों का अकारण
और हम मुंह छिपाए बैठे हैं।
दुबक कर भय से
अपने-अपने आशियानों में
ऐसा क्यों?
उठो! तोड़ दो वो सब बंधन
और कर दो आजाद
अपने शहर को।



मौत

मैं कहता था
यह धोखेबाज है
न जाने कब धोखा दे जाए
तुम्हें विश्वास नहीं था न मुझ पर
अब तो हो गया होगा
जब सच्चाई पड़ी है सामने।
देख लो अब जितना चाहो
या नज़र फेर लो
डरते रहो
इस धोखेबाज से
हर घड़ी, हर पल
बढ़ रही है मौत
निरन्तर इस ओर
न जाने कब दबोच ले
और कर दे बेहाल
अपने पैने दांतों से
अब भी वक्त है
बना लो इरादा
उस दयालु प्रभु से
मिलाप करने का।

गांव डडोह, डाकघर ढाबन, तह. बल्ह, जिला मंडी,
हिमाचल प्रदेश-175027, मो. 98170 15648

से चला गया। दूसरे दिन प्रातः ही घर पूछता हुआ वही ग्रामीण रमेश के घर पर आ पहुंचा। हाथ जोड़कर उसने रमेश को नमस्कार किया और फिर अपनी फटी बनियान की जेब से पांच हजार रुपये निकाले और रमेश के हाथ में थमा दिए। तदन्तर वह रमेश की ओर इस प्रकार से देख रहा था मानो मौन भाषा में कह रहा हो कि अब तो काम बन जाएगा।

रमेश ने उससे पूछा, “कल तो तुम कह रहे थे कि गरीब आदमी हूं। रुपये नहीं दे सकता। फिर ये रुपये कहां से ले आए।”

ग्रामीण ने रुआंसे स्वर में कहा, “बाबू जी, मैंने अपनी बेटी के विवाह के लिए पेट काटकर किसी तरह पांच हजार रुपये इकट्ठे किए थे। मैंने सोचा था कि चाहे परिवार भूखों भी मर जाए, पर इनमें से रुपये नहीं निकालूंगा। लेकिन भगवान को और ही मजूंर है। रुपये निकालने ही पड़े।”

यह बात सुनकर रमेश को लगा कि वह आसमान से धरती पर आ गिरा है; उसने रिश्वत लेने का विचार तत्काल त्याग दिया। उसने पांच हजार रुपये ग्रामीण को लौटाते हुए कहा-

“लो भाई ये रुपये वापस ले लो। वैसे तुम्हारा काम हो जाएगा। तुम्हारी जरूरत मेरी जरूरत से महत्त्वपूर्ण है।” ग्रामीण के उदास चेहरे पर हर्ष की रेखाएं दौड़ आईं। वह रमेश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए रुपये लेकर चला गया।

रमेश भी अंगूठी लेकर सर्राफ की दुकान पर जाकर उसे दे आया और कुछ नहीं बोला। उसने आज से दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह अपने सिद्धांत से नहीं हटेगा।

उसका अंतर्द्वंद्व और विचारों की उथल-पुथल सब समाप्त हो गई थी। उसने आत्मा की आवाज सुन ली थी।

15 पंचवटी, पो. उदयपुर, राजस्थान-313 004,
मो. 93521 03162

कहानी

आत्मघात

● डॉ. दादूराम शर्मा

'चिरंजीव नहीं रहा' यह खबर दो घंटे के भीतर संदेशवाहकों और दूरभाष द्वारा आसपास के गांवों में और सभी रिश्तेदारों में जंगल की आग की तरह फैल गई। जो भी सुनता, हतप्रभ रह जाता। सबकी जुबान पर केवल उसकी मौत की चर्चा- "कब हो गई? क्यों हो गई? कैसे हो गई?"

चिरंजीव श्रीनाथ शुक्ल का बत्तीस वर्षीय इकलौता पुत्र! हंसमुख, मिलनसार, जुझारू, भविष्य के सुखद स्वप्नों को साकार करने में जुटा रहने वाला कर्मठ तरुण! अपने पिता के लिए 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इस वैदिक उक्ति को चरितार्थ करने वाला। मनुष्य अपने जीवनकाल में स्वयं जिन आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर पाता, उन्हें पुत्र के रूप में जन्म लेकर पूरी करता है। उसके पिता का संकल्प था कि उनका गांव का जीवन भी शहरी जीवन की तरह सभी सुख-सुविधाओं से सम्पन्न हो जाए, सभी खेतों में सिंचाई के साधन हों और कृषि अधुनातन वैज्ञानिक साधनों और तरीकों से की जाए और सचमुच उसने अपने पिता की ही नहीं, अपने दादाजी की भी आकांक्षाओं को अपनी लगन से मूर्तरूप देकर सारे इलाके में 'एक होनहार युवक और जागरूक कृषक' की ख्याति अर्जित कर ली थी। वह शहरी जीवन में पला-बढ़ा ग्रेजुएट था किंतु बाबू-साहबी उससे कोसों दूर थी। पढ़-लिखकर कृषि कार्य से जी चुराने वाले युवकों को उनके मां-बाप चिरंजीव का उदाहरण देकर समझाते। उसे देखकर कलमघिस्सू नौकरी के लिए दर-दर ठोकरें खाते शिक्षित बेरोजगार शहर की ओर पलायन का विचार छोड़कर अपने पैतृक कृषि-कार्य में लग जाते। खेतिहर मजदूरों के मुहल्ले में रहता था वह। उसके प्रयास से नल-जल योजना के अंतर्गत उसके मुहल्ले में भी पाइप लाइन पहुंच गई थी, दो पब्लिक टैप (जनता नल) लग गए थे। उसने निजी नल लगवाया था जिससे किसी को भी पानी भरने की मनाही नहीं थी। मुहल्ले वालों के साथ श्रमदान और स्वयं अर्थदान करके उसने पूरे मुहल्ले में बोल्डरों और पक्की मुरम की सड़क बनवा ली थी। मुहल्ले में उसके नेतृत्व में गणेशजी के साथ-साथ दुर्गोत्सव में दुर्गाजी की भी स्थापना होने लगी थी।

ब्राह्मणों की बस्ती के इस मुहल्ले में मरार, गोंड, रज्झड़ और अहीरों के अतिरिक्त चार घर चौधरियों (चमारों) के भी हैं। दो मरार और दो चमार उसकी खेती में बटाईदार हैं। सबके साथ समानता का व्यवहार करता था वह। चमार भी उसके घर कप-बसी में चाय पीते थे। वह सभी के साथ उठता-बैठता था, उनके सुख-दुःख में शामिल होता था। हां, ब्राह्मण उसके इन व्यवहारों से नाराज अवश्य थे। किंतु उसे किसी की कोई परवाह नहीं थी क्योंकि वह अपने मुहल्ले वालों को छोड़कर कभी किसी के यहां नहीं जाता था और बमुश्किल कहीं जाता भी था तो तीज-त्योहार में अपनी ससुराल जो संयोग से इसी गांव में थी।

उसका एक छह वर्षीय बेटा भी था जो अपने दादा-दादी के साथ कटनी जिले के विकास खंड बहोरीबंद में रहता था। उसके दादाजी वहां कृषि विस्तार अधिकारी थे। प्रीमेच्योर डिलीवरी से जन्मे उस बालक प्रशांत की श्रवणेंद्रिय पूर्ण विकसित नहीं हो पाई थी। इसलिए वह ठीक से सुन नहीं पाता था जिससे उसकी वागेंद्रिय भी प्रस्फुटित नहीं हो पाई थी इसलिए वह स्वाभाविक रूप से बोल नहीं पाता था। सहज चेतना का भी भली-भांति विकास नहीं हुआ था उसमें। दादा-दादी उसे अपने साथ रखकर पढ़ाने का प्रयास कर रहे थे। गांव में चिरंजीव और उसकी पत्नी खेती-बाड़ी संभालने के साथ-साथ वयोवृद्ध दादी की सेवा-सुश्रुषा भी कर रहे थे कि अचानक यह वज्रपात! पच्चीस वर्षीय तरुणी पत्नी, शिथिलांग वृद्ध दादी और अबोध असामान्य बेटे का एक मात्र सहारा, अपने माता-पिता की आंखों का तारा चिरंजीव सबको असमय छोड़कर क्यों चला गया? हृदयाघात की भी तो उम्र नहीं थी उसकी।

उस दिन मोरछठ थी। मई में उसके छोटे साले का विवाह हुआ था। उसके विवाह की मोर और खाम समारोहपूर्वक जलाशय

में सिराये जाने थे। उसका ससुराल में सपरिवार निमंत्रण था। वह हमेशा से अपनी पत्नी के साथ ही ससुराल जाता था और भोजन करके उसे साथ लेकर लौट आता था। किंतु आज उसने पत्नी को भोजन में सहयोग देने के लिए भेज दिया था और आंगन में तब तक टहलता रहा था जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो गई थी। फिर घर के भीतर जाकर उसने दरवाजा बंद कर लिया था। ग्यारह बजे उसकी सास उसकी दादी मां का भोजन लेकर आईं। बार-बार पुकारने और दस्तक देने पर भी जब दरवाज नहीं खुला तो उन्होंने खिड़की से झांककर जो दृश्य देखा तो उनके होश उड़ गए। दत के मलगे से बंधी नायलोन की रस्सी में गर्दन फंसाकर झूल रहा था वह। उनके जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने पर मुहल्ले के लोग जमा हो गए। दरवाजा तोड़ा गया। तब तक उसके दोनों साले भी दौड़कर आ चुके थे। पत्नी भी रोती-बिखलती दौड़ी आई और पछाड़ खाकर गिर पड़ी। शायद जीवन शेष हो, ऐसा सोचकर लोगों ने उसे नीचे उतार लिया, रस्सी खोल दी गई किंतु प्राण-पखेरू तो कब के उड़ चुके थे।

दो माह पहले ही समीपस्थ ग्राम विलंदा के सैकड़ों वर्ष पुराने शिव मंदिर का दोनों गांव वालों ने आस-पास के गांव वालों के सहयोग से जीर्णोद्धार कराया था। वह भी मंदिर जीर्णोद्धार समिति का सदस्य था। सभी कार्यों में बढ़-चढ़कर सक्रिय भूमिका निभाई थी उसने। रुद्र महायज्ञ का आयोजन था। यज्ञ की पूर्णाहुति की पूर्व संध्या पर सिवनी जिले की धरित्री की अपने जन्म से धन्य करने वाले द्वारका एवं ज्योतिपीठ के अधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानंदजी सरस्वती महाराज ने पधारने की ही नहीं अपितु प्रवचनोपरांत अपने रात्रि-विश्राम की भी स्वीकृति दे दी थी। विलंदा से उसका गांव दो किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में है। गांव के पूर्वी छोर पर उसका घर है। विलंदा में स्वामीजी को ठहराने के लिए कोई उपयुक्त मकान न होने से उसने ही स्वामीजी की चरण-धूलि से अपने घर को पवित्र करने का संकल्प लिया था। देखते-देखते कच्चे आंगन का सीमेंटीकरण हो गया और एक छोटा-सा मंच भी बन गया, जिस पर बैठकर स्वामीजी को श्रद्धालुओं को सम्बोधित करना था। बाउंड्रीवाल बन गई। लोहे का विशाल गेट लग गया। यही नहीं, मकान से पूर्व की ओर खाली जगह में स्वामीजी के ठहरने के लिए पक्के स्नानागार और शौचालय की सुविधा से युक्त पृथक कक्ष भी बनकर तैयार हो गया। नियत तिथि में स्वामीजी पधारे। उसके घर पर पूजा-आरती की। सबको पूजा का और अपनी अमृतवाणी का प्रसाद दिया और आशीर्वाद भी। फिर विलंदा चले गए। यज्ञस्थली में उपस्थित श्रद्धालुओं को अपने ज्ञानामृत का पान कराकर स्वामीजी अपरिहार्य कारणों से सीधे सिवनी चले गए। इसलिए पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार उसके घर आकर रात्रि विश्राम नहीं कर पाए, जिसकी बड़ी वेदना थी उसके मन में। और क्यों न होती? उनके सुखपूर्वक रात्रि विश्राम के लिए ही तो दो लाख रुपये खर्च करके वह निर्माण कार्य कराया था उसने। बीज और खर्च का अनाज रखकर डेढ़ सौ क्विंटल सोयाबीन और सवा सौ क्विंटल गेहूं इस कार्य के लिए औने-पौने बेच डाला था उसने। सुनते हैं इस बात को लेकर पिता-पुत्र के बीच कुछ विवाद भी हो गया था और पिता बेटे से नाराज होकर अपनी ड्यूटी पर चले गए थे।

जनरेशन गैप (पीढ़ियों का अंतराल) के कारण पिता-पुत्रों में प्रायः संवादहीनता दिखाई देती है। किंतु श्रीनाथ और चिरंजीव न केवल कृषि के विषय में घंटों विचार-विमर्श करते थे अपितु अन्य पारिवारिक और सामाजिक मुद्दों पर भी दोनों में खुलकर चर्चा होती थी। दोनों के मित्रवत् संवाद को देखकर लगता था कि श्रीनाथजी ने इस नीति वाक्य को जीवन में अक्षरशः उतार लिया था कि पुत्र जब सोलह साल का हो जाए तो उससे मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए- 'प्राप्ते तु षोडषे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्'। फिर दोनों के बीच ऐसा क्या हो गया होगा जिसने चिरंजीव के मन में जीवन के प्रति घोर वितृष्णा का भाव जगाकर उसे आत्महत्या करने को विवश कर दिया?

तीन वर्ष पहले सुलखनी-विलंदा को मुख्य सड़क से जोड़ने का कार्य लोक निर्माण विभाग ने अपने हाथ में लिया था। सुलखनी के दोनों ओर सड़क पूरी हो चुकी थी। गांव के भीतर सड़क निर्माण का कार्य इसलिए रुका पड़ा था क्योंकि गली बहुत संकरी थी। चौड़ीकरण में अधिकांश लोगों के आंगन समाप्त हो जाते और कुछ लोगों के तो मकानों के कोने भी टूट जाते। अतः उसने एक योजना बनाई थी कि सभी प्रगतिशील लोग पांच-पांच हजार रुपये इकट्ठे करके गांव के भीतर लगभग पांच सौ मीटर लम्बी सड़क बनवा लें। अपने जैसे पच्चीस लोगों की सूची भी बना ली थी उसने जो तन-मन-धन से इस कार्य के लिए तैयार थे। बरसात के बाद यह योजना भी क्रियान्वित हो जाती किंतु ग्राम का दुर्भाग्य कि उसे नवजीवन देने को कटिबद्ध युवक ने अपने ही जीवन को समाप्त करने के लिए कमर कस ली?

उसके माता-पिता को छोड़कर सभी कुटुम्बीजन आ चुके थे। घर के बीचोबीच उसका शव रखा था। उसे चारों ओर से घेरकर बैठी महिलाएं बिलख रही थीं। बहू का तो बुरा हाल था। वह विक्षिप्त-सी हो गई थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक यह क्या हो गया? क्यों हो गया?

कितना चाहता था वह उसे। वह प्रतिदिन दोपहर में आजी-मां को नहला-धुलाकर और भोजन कराकर उनके विश्राम की व्यवस्था कर देती थी तब तक वह भी खेत से लौट आता था। लौटते ही उन्हें पान कूटकर देता, तम्बाकू बनाकर खिलाता और सुला देता था। तब स्नान करता। संक्षिप्त पूजन करता फिर दोनों पति-पत्नी साथ-साथ भोजन करते थे। विवाह के सात वर्ष हो गए थे किंतु सात दिन के लिए भी वह उससे अलग नहीं रहा था। जहां



भी जाते दोनों साथ-साथ जाते और साथ ही लौट आते थे। गणेश चतुर्थी के दिन पूर्व भाद्रपद (भादों) के शुक्ल पक्ष की तृतीया को अपने अखंड सौभाग्य के लिए स्त्रियां 'हरतालिका व्रत' रखती हैं। बहू के साथ उसने भी हरतालिका व्रत रखा था और रात में तीजा बांधकर और पूजन कराकर भोजन किया था। आधी रात तक गा-बजाकर जब मुहल्ले की महिलाएं अपने-अपने घर चली गई थीं तो उसके साथ सवेरे तक वह भोले भंडारी के भजन गाता रहा था। कैसा मधुर कंठ दिया था ईश्वर ने उसे।

दोनों में कभी कहा-सुनी भी नहीं हुई। रिश्तेदार तो क्या, मुहल्ले वाले भी उनके पारस्परिक प्रगाढ़ प्रेम को देखते तो यही अशीषते कि दोनों की जोड़ी सलामत रहे। अग्नि को साक्षी करके सभी गुरुजनों और स्वजनों के बीच जिसने उसका पाणिग्रहण किया था, हवन वेदिका के सात फेरे लेकर जन्मभर साथ निभाने का वचन दिया था, वही पति अपने चिरंजीव नाम को व्यर्थ करके आज सभी स्वजनों, परिजनों और शुभचिंतकों के स्नेहाशीषों, गुरुजनों के आशीर्वादों और सबसे बढ़कर जगद्गुरु शंकराचार्य के 'अखंड सौभाग्यवती भव' के अमोघ आशीर्वाद को भी व्यर्थ करके उसे हमेशा के लिए अकेली असहाय छोड़कर चुपचाप चला गया! काश, मृत्यु का कारण कोई दुर्घटना या हृदयाघात होता तो इस दारुण वज्राघात को वह विधि का विधान मानकर किसी तरह झेल पाने के लिए स्वयं को तैयार भी कर लेती। किसी लम्बी बीमारी के बाद मृत्यु होती तो उसे धीरज बंधाने के लिए इतना तो काफी रहता कि उसके इलाज और सेवा-सुश्रुषा में उसने कोई कसर उठा नहीं रखी। किंतु उसने तो स्वयं ही मृत्यु का वरण किया था। खुद ही उसका और सभी का साथ हमेशा के लिए छोड़ देने का घातक निर्णय ले लिया था!! फिर भी आत्महत्या के पहले यदि वह आगाह कर देता, उन परिस्थितियों और कारणों का संकेत कर देता, जिनके कारण उसने ऐसा आत्मघाती निर्णय लिया था तो शायद कोई हल ढूंढकर उसके जीवन को बचाया जा सकता था। आत्महत्या के पूर्व लोग 'सुसाइड नोट' रख जाते हैं वह भी तो उसने नहीं रखा था। सभी आगंतुक स्वजन बहू से पूछ रहे थे- "बहू, यह सब कैसे हो गया?" किंतु क्या उत्तर देती वह इसका? उत्तर उसके पास होता तब न। वह स्वयं भी तो उत्तर खोज रही थी। लगातार बहने वाली अश्रुधारा और हर बार पूछे जाने पर उसके उद्दाम दुःखावेग का हिचकियों में फूट पड़ना केवल इतना ही बतला रहे थे कि उसकी आत्महत्या का कारण चाहे जो भी रहा हो किंतु एक बात तो साफ थी कि उसका तो सब कुछ लुट चुका था और प्रबल झंझावात में टूटकर गिरे वृक्ष की अवलम्ब- विहीन लतिका-सी वह धरती पर लौटने को विवश थी।

कदाचित सभी पिताओं की तरह उसे भी एक पूर्ण विकसित स्वस्थ संतान की चाह थी, जो उसे 'पापा' कहकर पुकारती किंतु वह उस विकलांग पुत्र के छह वर्ष का हो जाने पर भी पूरी नहीं हो पाई थी। शायद उसके मन में यह धारण स्थिर हो गई थी कि अब वह कभी पिता नहीं बन पाएगा! कुछ लोग कानाफूसी कर रहे थे कि उसे अपने पुरुषत्व पर ही संदेह हो गया था, तो कुछ पत्नी के चरित्र पर संदेह को उसकी आत्महत्या का कारण निरूपित कर रहे थे किंतु तथ्य तो उसके साथ ही हमेशा के लिए मौन हो चुका था।

गांव के कोटवार द्वारा आत्महत्या की प्राथमिकी (एफ.आई. आर.) दर्ज कराए जाने पर चार बजते-बजते बारह किलोमीटर दूरस्थ चौरई थाने से सब-इंस्पेक्टर गायधने, एक मुख्य आरक्षक और दो आरक्षकों के साथ तफतीश (जांच) के लिए आ गए। भरा-पूरा घर देखकर और मुहल्ले वालों से दोनों के प्रगाढ़ प्रेममय दाम्पत्य का साक्ष्य पाकर सब-इंस्पेक्टर बोल पड़ा- "अपनी पच्चीस वर्षों की नौकरी में पहली बार आत्महत्या का ऐसा केस देख रहा हूं जिसका सुराग खोज पाना मेरे लिए मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन भी है।" और पंचनामा की औपचारिकताएं पूरी कर सवेरे पोस्टमार्टम के लिए लाश चौरई पहुंचाने की हिदायत देकर वह भला आफिसर लौट गया।

उसकी दादी पांच पचानवे वर्ष की हो चुकी थी। वे न तो ठीक से चल पाती थीं और न ही देख और सुन पाती थीं। बेटे-बेटियों को भी अपना नाम सदैव जोर-जोर से बताना पड़ता था तब कहीं जाकर किसी तरह वे पहचान पाती थीं। फिर थोड़ी देर बाद भूल भी जाती थीं इसलिए दिन में सभी को कई बार अपना परिचय देने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था उनके सामने। भोजन करने के थोड़ी देर बाद ही भूल जाती और फिर भोजन मांगने लगतीं। बड़ी कठिनाई से उन्हें याद दिलाया जाता कि उन्होंने अभी-अभी भोजन किया था। "यह क्या हो गया? क्यों इतने लोग इकट्ठे हुए हैं? क्यों रो रहे हैं सब लोग?" यह सब उनकी समझ

से परे था। बस, बीच-बीच में अपने कमरे से आकर इतना ही पूछतीं- "चिरंजीव, तू अभी तक क्यों सोया है? बेटा, उठता क्यों नहीं? देख तो घर में कितने मेहमान आए हैं? इनसे कुशल-क्षेम पूछ। स्वागत कर बेटा, इनका। बहू, तू ही क्यों नहीं जगाती बेटी, इसे?" और चुप्पी साध लेतीं। उनकी बातें सुनकर स्त्रियां आर्तनाद कर उठतीं और वे सबके चेहरों को टुकुर- टुकुर देखती रहतीं। फिर थोड़ी देर बाद कहतीं- "जहां यह सो रहा हे, मैं यहीं मचिया पर बैठी थी। बहू को मायके पहुंचाकर यह लौटा। दरवाजा अंदर से बंद कर लिया। मेरे पास आया और बोला, "दादी मां, अब मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता। थक गया हूं मैं। अपने मंझले बेटे के घर चली जाओ।" मैं बोली- "बेटा, तेरे स्वर्गीय दादाजी मेरी सेवा का भार तुझी को सौंपकर गए हैं। इसके लिए अपनी पंद्रह एकड़ जमीन भी तो उन्होंने वसीयत की है तेरे नाम" तो चिल्लाकर बोला, "मैं तुम्हारी सारी जायदाद तुम्हें लौटाए जा रहा हूं। अब मुझपर तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं रही।" मैंने पूछा, "बेटा, कहां जाएगा तू?" तो बोला, "इस दुनिया से तंग आ गया हूं मैं। परलोक जाने का निश्चय कर लिया है मैंने।" और उसने मुझे हाथ पकड़कर उठाया और घसीटते हुए ले जाकर पीछे के कमरे में रखी कुर्सी पर बैठा दिया। फिर मेरे देखते-देखते सीढ़ी निकाली इसी कमरे की कड़ी से उसे टिकाया। नायलॉन की पतली रस्सी लेकर कड़ी पर चढ़ गया। मेरे देखते-देखते मलगे से रस्सी बांधी और फिर उसका फंदा बनाकर उसमें गर्दन फंसा ली और कड़ी पर से कूद पड़ा। सब लोग बोलो तो क्या हो गया इसे? यह उठ क्यों नहीं रहा है? बोल क्यों नहीं रहा है?

दिन के लगभग दस बजे घटी इस घटना के दस घंटे बाद आठ बजे रात में उनका हृदयविदारक आर्तनाद सबको करुणाविगलित करता हुआ फूट पड़ा। शायद कोई उन्हें समझाने में कामयाब हो गया था कि चिरंजीव अब कभी नहीं बोलेगा, कभी नहीं उठेगा।

दिन के लगभग दस बजे घटी इस घटना के दस घंटे बाद आठ बजे रात में उनका हृदयविदारक आर्तनाद सबको करुणाविगलित करता हुआ फूट पड़ा। शायद कोई उन्हें समझाने में कामयाब हो गया था कि चिरंजीव अब कभी नहीं बोलेगा, कभी नहीं उठेगा। चिरंजीव के दादाजी की अनुभवी आंखों ने अपनी छोटी बहू (उसकी मां) में विशाल हृदयता और सेवाभाव के गुणों को तो पढ़ ही लिया था साथ ही चिरंजीव में भी एक कुलदीपक की समस्त सम्भावनाएं देख ली थीं इसलिए अपने तीनों पुत्रों को वितरित करने के बाद अपने भरण-पोषण के लिए बचाई गई अपने नाम की पंद्रह एकड़ जमीन उन्होंने उसके नाम वसीयत कर दी थी। परंतु उन्हें तो पोते की सेवा नसीब नहीं हुई क्योंकि चिरंजीव जब ग्यारह साल का था तभी उन्होंने इस संसार से विदा ले ली थी। हां, अपनी आयु के अंतिम तीन वर्षों में वे पक्षाघात से पीड़ित रहे। उस अवधि में छोटी बहू ने उनकी इस तरह देखभाल की थी जैसी एक मां अपने अबोध शिशु की करती है- "नित्य क्रिया कराना, सहारा देकर चलाना, नहलाना-धुलाना और अपने हाथों से भोजन कराना। जो भी देखता, छोटी बहू को आशीषता और प्रार्थना करता कि परमात्मा सभी को ऐसी ही बहू दे। बड़े-बूढ़े दुआएं देते- "बेटी, दूधों नहाओ, पूतों फलो।" उसके नाना तो जब भी मिलते, भाव-विह्वल होकर कह उठते- "पुत्रि, पवित्र किए कुल दोऊ।"

दादीजी की सेवा मां ने पूर्ण मनोयोग से की थी तो दादी की सेवा में उसने भी कोई कसर उठा नहीं रखी थी। कृषि का समग्र प्रभार लेकर उसने पिता को शासकीय सेवा के लिए निश्चिंत और मुक्त कर रखा था। रिश्तेदारी में होने वाले विवाहादि कार्यक्रमों में भी उसके माता-पिता ही जाते थे। उसकी कहीं जाने की बाध्यता हुई भी तो रात तक घर लौट ही आता था। सारी खेती दो ट्यूबवैलों से सिंचित थी और उसकी लगन और मेहनत का फल भी खूब दे रही थी। किंतु लोग तो यही कहते कि दादाजी का आशीर्वाद फलीभूत हो रहा है उसको! फिर अकस्मात यह कैसा वज्रपात! लुट गया क्षणभर में सब कुछ! किसी सुख-स्वप्न का दुखांत जागरण !!!

उसके दोनों ताऊ और नानी के मामाजी रामायण, महाभारत और पुराणों के आख्यान सुनाकर शोक-विह्वल परिवारजनों को सान्त्वना देने का असफल प्रयास कर रहे थे कि लगभग साढ़े दस बजे रात में उसके माता-पिता उसके पुत्र प्रशांत के साथ आ गए। यहां से साढ़े तीन सौ किलोमीटर दूर कर्तव्यस्थ उसके पिता को फोन पर उसके गम्भीर रूप से अस्वस्थ होने की सूचना दी गई थी और फौरन यहां के लिए रवाना हो जाने का आग्रह किया गया था। उनके आते ही शोक की सरिता में फिर से बाढ़ आ गई। मां ने अपने इकलौते बेटे की मृत देह को देखा तो न तो वह डाढें मारकर रोई, न पछाड़ खाकर गिरी और न ही उसकी आंखों से आंसू की एक भी बूंद गिरी अपितु वह उसके सिर के पास जाकर जड़वत् बैठ गई। पिता ने कलेजे पर पत्थर रखकर किसी प्रकार बहू से पूछा, "बेटी, क्या हो गया था इसे?" पर वह तो उनके पैरों पर लोट-लोट कर विलाप करने लगी। बहुत देर बाद वे सबके बीच आकर बैठ गए और पूछा, "क्या हार्ट अटैक हो गया इसे?" जब उन्हें आत्महत्या की बात बतलाई गई तो वे दोनों हाथों से अपना माथा ठोंकते हुए फूट पड़े, "वाह रे! बेटे, अच्छा सिला दिया, तूने इस बदनसीब बाप को। मैंने अपना सारा प्रावीडेंट फंड निकालकर खेती की व्यवस्था में लगा दिया, इस आशा में कि सेवानिवृत्त होकर मैं भी खेती में तुम्हारा हाथ बंटाऊंगा, अपने कृषि के ज्ञान को कार्य रूप में परिणत करूंगा और बुढ़ापा चैन से कटेगा। परंतु पता नहीं

किस जन्म के बैर का बदला लेकर तू हमें मझधार में छोड़कर चला गया। किस चीज की कमी थी तुझे? सफलताएं तेरे कदम चूम रही थीं फिर क्यों कि तूने आत्महत्या? बेटे, छोटे बेटे को कंधे पर बैठाकर चलने में पिता को जो सुख मिलता है, उसे सभी जानते हैं। किंतु जवान बेटे की अर्थी कंधों पर लेकर चलने में जो मर्मांतक पीड़ा होती है, उसका अनुभव तो मुझ जैसे विरले बदनसीब बाप ही कर सकते हैं। भगवान, ऐसा किसी दुश्मन के साथ भी न हो।"

प्रशांत की कुछ समझ में नहीं आया। उसने एक-दो बार 'पापा-पापा' पुकारा और चुपचाप दादी की गोदी में सो गया। सुबह उठा तो अपनी बुआ के समवयस्क लड़के के साथ पीछे आंगन में लगे लोहे के झूले में झूलता रहा।

चौरई से लाश का पोस्टमार्टम कराकर लोग लगभग ग्यारह बजे लौटे। बारह बजे के करीब शवयात्रा निकली। प्रशांत साथ में ऐसे चल रहा था जैसे किसी जुलूस में जा रहा हो। काश उसे पता होता कि वह अपने पिता को चिरविदा देने जा रहा है! उसके फूफाजी ने उसे गोद में उठा लिया और सीने से लगाकर चलने लगे। पुरुष होने के मिथ्या अहम् ने रुदन के जिस उद्दाम प्रवाह को बलपूर्वक रोके रखा था, वह पूरे वेग से फूट पड़ा। श्मशान में उसका शव चिता पर रखा गया। अपने फूफाजी के निर्देशन में प्रशांत पिता के शव को नाच-नाचकर मुखाग्नि दे रहा था जैसे कोई तमाशा हो रहा हो! श्रीनाथ डबडबाई आंखों से कभी पुत्र की प्रज्वलित चिता को देख रहा था तो कभी शून्य में ताक रहे थे और अभी अपने अबोध पोते को देख रहे थे, जिसे इस बात का ज्ञान ही नहीं था कि उसने क्या खो दिया है?

आज के तथाकथित बुद्धिवादी युग में ज्वलंत यक्ष प्रश्न है यह आत्महत्या। क्यों कर लेते हैं आत्महत्या ऐसे लोग जिनके कंधों पर परिवार के उत्तरदायित्वों का गुरुतर भार होता है? यदि आत्महत्या के समय क्षणभर को भी उनके मन में यह विचार आ जाए कि उनके न रहने पर परिवार के अन्य लोगों की क्या दशा होगी, किस तरह झेल पाएंगे वे इस भीषण आघात को? तो शायद वे आत्महत्या करने का विचार ही छोड़ दें। मनुष्य एक जिम्मेदार सामाजिक प्राणी है। वह पैदा तो स्वतंत्र होता है किंतु उसके बाद सर्वत्र पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों के बंधन में जकड़ जाता है और कुछ भी करने को स्वतंत्र नहीं रह जाता, इसलिए उसका जीवन भी उसका नहीं रह जाता, परिवार, समाज, राष्ट्र और यहां तक कि विश्व की धरोहर बन जाता है वह। तभी तो आत्महत्या को सभी धर्मों में 'घोर पाप', समाज में 'सबसे निंदनीय कर्म' और कानून की दृष्टि में 'जघन्य अपराध' माना जाता है।

कायरता, पलायनवादी मनोवृत्ति या क्लैव्य (अत्यधिक मानसिक दुर्बलता) ही आत्महत्या का कारण है। धीर-वीर पुरुष प्रतिकूल परिस्थितियों से जीवन भर जूझते रहते हैं किंतु उनसे भागकर आत्महत्या नहीं करते। घोर अवसाद से आक्रांत दुर्बल मन ही भावावेग के चरम क्षण में आत्महत्या का सर्वनाशी कदम उठा लेता है। अभावग्रस्तता भी आत्महत्या का कारण नहीं है क्योंकि सम्पन्न लोग ही सर्वाधिक आत्महत्या करते हैं। अमेरिका जैसे प्रथम दुनिया के समृद्ध देशों में तीसरी दुनिया के दरिद्र देशों की तुलना में आत्महत्याओं का प्रतिशत बहुत अधिक है।

वह अत्यधिक भावुक युवक था। अति भावुकता मन की दुर्बलता की परिचायक है, जिससे परिचालित होकर व्यक्ति कभी-कभी विवेकहीन निर्णय भी ले लेता है, जो उसे भारी संकट में डाल देता है। उसकी इस दुर्बलता का लाभ तथाकथित हितैषी रिश्तेदारों ने भरपूर उठाया और उसे शंकराचार्य जी के प्रवास की अवधि में उनकी और उनके आगंतुक भक्तगणों की सेवा का समग्र भार सौंप दिया और अति उत्साह में उसने इतना खर्च कर डाला जिससे उसकी आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो गई जिससे पिता-पुत्र में विवाद हो गया और नाराज पिता खेती-बाड़ी से उदासीन हो गए और उसे उसके हाल पर छोड़कर ड्यूटी में चले गए। जिससे उसने स्वयं को अकेला और असहाय अनुभव किया होगा साथ ही अपराध-बोध ने उसके मन में ऐसी कुंठा को जन्म दिया होगा जिससे वह अवसादग्रस्त हो गया होगा और अंततः आत्महत्या जैसा घातक कदम उठाने को विवश हो गया होगा।"

कहते हैं, क्षणभर का सत्संग व्यक्ति के जीवन की दिशा बदल देता है, संतों के चरण पड़ने से स्थान पावन हो जाता है। वातावरण बाधामुक्त और पुनीत हो जाता है और सत्संगियों के समस्त पाप-ताप धुल जाते हैं, उनके मन में ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है। काश, ऐसा कुछ उसके साथ भी हो जाता!

बटाईदारों से ज्ञात हुआ कि जबसे उसके पिता ड्यूटी पर सुलखनी से गए थे तभी से वह बुझा-बुझा-सा रहने लगा था। खेती-बाड़ी के कार्यों में भी उसकी कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी। खेत भी वह कम ही जाता था। लोगों से मिलना-जुलना भी कम कर दिया था। बहुत जरूरी होने पर ही बोलता था वर्ना चुपचाप रहता था। उसकी खुराक भी कम हो गई थी। दुबला होता जा रहा था दिनोदिन। पत्नी-पति की समस्त मनोदशा और गतिविधियों की सूक्ष्म जानकारी रखती है। रीता पढ़ी-लिखी है। वह इन सारी बातों की जानकारी गांव में ही रहने वाली अपनी मां को, भाइयों को और ताऊ जी आदि अन्य रिश्तेदारों को दे सकती थी, पत्र लिखकर या फोन करके अपने सास-ससुर को बुलवा सकती थी। किंतु उसने ऐसा कुछ किया नहीं जिससे उसके पति के असामान्य होते जीवन को सामान्य बनाने की दिशा में कोई ठोस कदम उठाए जाते, उसे किसी अच्छे मनोचिकित्सक को दिखाकर उस मनोरोग

से, जिसकी परिणति आत्महत्या में हुई, उसे मुक्त कराया जा सकता। उसकी इस अक्षम्य उदासीनता और चूक ने उसका सब कुछ छीन लिया और जीवन भर संताप झेलने के लिए उसे अकेली छोड़ दिया।

कहते हैं, क्षणभर का सत्संग व्यक्ति के जीवन की दिशा बदल देता है, संतों के चरण पड़ने से स्थान पावन हो जाता है। वातावरण बाधामुक्त और पुनीत हो जाता है और सत्संगियों के समस्त पाप-ताप धुल जाते हैं, उनके मन में ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है। काश, ऐसा कुछ उसके साथ भी हो जाता! आत्महत्या के लिए रस्सी गले में डालते समय उसके मन में जगद्‌गुरु का सत्संग, उनका उसे और उसकी पत्नी को दिया गया आशीर्वाद क्षणभर को इतना विवेक तो जगा देता कि उसके इस तरह चले जाने पर उसकी पच्चीस वर्षीय युवा पत्नी का क्या होगा? किसके सहारे काटेगी वह अपनी पहाड़-सी जिंदगी? विकलांग पुत्र तो उसकी जिंदगी का सहारा बनने से रहा। बूढ़ी दादी का क्या होगा? माता-पिता इस सदमे को कैसे झेल पाएंगे? इकलौते बेटे की आत्महत्या का घातक जहर पीकर वे अपने बूढ़े शरीरों को मौत से कब तक बचा पाएंगे?

महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी (मध्य प्रदेश)-480661,
मो. 0 88789 80467

राजीव कुमार 'त्रिगर्ती' की कविताएं

कविता में गांव

जिसने जिया है गांव
और जी रहा लगातार सांस-दर-सांस
वह उलटे हाथ से भी लिखेगा गांव
तो गांव उतर आएगा हू-ब-हू
अपनी मुस्कुराहटों के साथ
अपनी तमाम पीड़ाओं के साथ
अपने आंसुओं के साथ

करेगा कोशिश पीने की तमाम दुख-दर्द
तमाम कष्टों को छिपाता हुआ
साक्षात उतर आएगा गांव
इस खुशी में
कि लिखा है किसी अपने ने गांव

आज अधिकांश कविताओं में
मात्र शब्द भर दिखता है गांव
मात्र और मात्र कविता बनाने की जिद में
लिखा गया होता है गांव
जबकि यह तय है कि
शब्द भर नहीं होती कविता।

गीत गाते बच्चे

गीत गाते बच्चे
किसी भी मुल्क के
गांव-शहर या जंगल में
किसी भी पहाड़, पठार, समुद्र के किनारे
धरोहर की तरह होते हैं
उन्हें गाते देख
गाने को मन करता है
वे गाते हैं
युद्ध, देश-प्रेम और शृंगार के गीत
पूरी मस्ती में
समझते हुए आधे-अधूरे ही
और इतने भाव के साथ
कि जैसे उन्हें ही सुना जाता हो
पूरे विश्व में
श्रेष्ठ गायकों के रूप में

गीत गाते बच्चों को
उतार लिया जाना चाहिए
दिलों में हमेशा-हमेशा के लिए
किसी भी बुरे वक्त में
उन्हें यादकर
लग जाना चाहिए गाने
गीत गीत बच्चों की
उतार लेनी चाहिए तस्वीरें
बनानी चाहिए बड़ी ही सुन्दर फिल्में
संकलित करने चाहिए उनके गीत
बुरे वक्त के लिए
हम बच्चों के
बुरे वक्त की तस्वीरें उतारते हैं
जब वे कराह रहे होते हैं
रो रहे होते हैं
या खाली होती हैं उनकी आंखें
किसी युद्ध, बाढ़, भूकम्प या
विस्थापन जैसे
प्राकृतिक-अप्राकृतिक कारणों से
या मानव के कुछ
अमानवीय व्यवहारों के कारण।

तुम्हारे प्रकाश में

तुम जब पड़े रहोगे
या खड़े रहोगे/ तो पड़ी रहेंगी
तुम्हारे साथ तुम्हारी इच्छाएं
तुम जब बढ़ते चलोगे
चढ़ते चलोगे/ तो बढ़ती रहेंगी
चढ़ती रहेंगी/ तुम्हारी इच्छाएं भी
तुम्हारे साथ/ तुम जागते रहो
तुम्हारे जागने से/ जाग उठे शायद
रात में भी सूर्य/ तुम्हारे प्रकाश से
जगजगा उठे धरती।

गांव लंघु डाकघर गांधीग्राम तह. बैजनाथ
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176125

कहानी

माहौल का असर

● वैदेही कोठारी

उठो... सुबह के आठ बज गए, आज संडे है तो क्या 12 बजे तक सोएंगे। मीना रूपेश व चीनी को उठाती है। मां आज तो सोने दो थोड़ी देर, ठीक है पर रूपेश आप तो जाग जाइए। ओढ़ने की चादर समेटते हुए बोलती है, मैं चाय बनाती हूं आप बालकनी में आइए वहीं पर चाय पीते हैं। रूपेश मुंह धोकर बालकनी में रखी चेयर पर बैठता है। मीना अखबार भी ले आना। मीना हां में जवाब देती है। मीना चाय के साथ अखबार भी ले आती है। मीना रूपेश को चाय देती है, और खुद भी चाय पीने लगती है। मीना भी चाय पीते पीते अखबार के पन्ने पलटने लगती है। एक खबर पर नजर टिक जाती है। हे भगवान, लगता है रोज रोज एक जैसी खबरें छपने लगी। रूपेश पूछता है क्यों ऐसा क्या पढ़ लिया, देखो न हर दूसरे दिन ऐसी खबर छपती है। पड़ोसी ने पड़ोसी की हत्या कर दी या पड़ोसी ने घर लूट लिया। ऐसी खबर पढ़कर तो डर लगने लगा है। आज पड़ोसी ही पड़ोसी का दुश्मन बन गया है। हां भाई आज किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। चाय की चुस्की लेते अखबार में देखते हुए रूपेश बोलता है। मीना झट से बोली, हम कितने खुशनसीब है कि हमें हरीश श्वेता जैसे पड़ोसी मिले, वरना आजकल कौन किसका होता है। चाय खत्म होती नहीं, तभी बेडरूम से आवाज आती है म मा....म मा....हां बेटी आती हूं मेरी चीनी उठ गई, गुडमोर्निंग बेटू चलो ब्रश कर लो। चीनी को गोद में उठा कर बाथरूम में उतार देती है। ब्रश में पेस्ट लगाकर चीनी को देती है। चीनी ब्रश करके जल्दी आओ मैं नाश्ता बनाती हूं। मीना किचन में जाकर नाश्ता बनाती है। मीना किचन से आवाज देती है। चीनी नल चालू करके मत रखो पानी बर्बाद होता है। जल्दी आओ तुम्हारी पसंद का नाश्ता बनाया है।

-आ रही हूं मां....

-मुंह हाथ टावेल से पोछ लो

-हा मां पोंछ लिया।

बाथरूम से किचन में आती है,क्या बनाया मां?

-सरप्राइज है पहले डाइनिंग टेबल पर बैठो फिर बताती हूं... मीना नाश्ते की प्लेट लगाकर डाइनिंग टेबल पर चीनी के सामने रखते हुए कहती है ये तुम्हारी पसंद के आलू पनीर के पराठे और गाजर का हलवा। चीनी देखकर कहती है वाव... ये तो मेरी पसंद की डिश है। प्लेट रखकर मीना परांठे बनाने में व्यस्त हो जाती है। चीनी खाते खाते बोलती है, आज संडे है इसलिए मेरी पसंद का ब्रेक फास्ट बनाया आपने। हां चीनी रोज तो ऑफिस जाने की जल्दी रहती है तो.. मैं तुम्हारी पसंद का कुछ बना ही नहीं पाती हूं। इसलिए......रूपेश आप भी नहा कर नाश्ता कर लो,

-आता हूं तुम बना लो साथ में करेंगे, ठीक है? थोड़ी देर में रूपेश भी डाइनिंग टेबल पर आ गए, रूपेश कहते है तुम भी आ जाओ सभी साथ में नाश्ता करते हैं।

ठीक है, मीना ने कहा। मीना हाथ धोकर रूपेश की प्लेट लगाकर खुद की प्लेट भी लगा लेती है। मीना कहती है आज हमारे पड़ोसी स्वेता हरीश की शादी की सालगिरह है इसलिए शाम को उनके घर भी जाना है। ठीक है चलेंगे। रूपेश मीना से पूछता है कितने साल हो गए हमारे पड़ोसी की शादी को? मीना बताती है श्वेता की शादी को पांच साल हो गए है। रूपेश कहता है हां शादी करके जब आए थे तो लगता था कि पता नहीं कैसे लोग होंगे? पड़ोस नाता रखेंगे कि नहीं... हां रूपेश सही कह रहे हो। हां वह अपनी चीनी को भी अपनी बेटी जैसा प्यार करते हैं बहुत ध्यान रखते हैं, अपनी चीनी का...हां सही कह रही हो हमारी चीनी है ही चीनी जैसी स्वीट डाल जैसी प्यारी जो भी देखे मोहित हो जाए। सारी बातें डाइनिंग टेबल पर ही होती रही। मीना कहती है रूपेश परसो अपनी चीनी का जन्म दिन भी है, अरे हां कितने साल की हो गई है हमारी चीनी? मीना बोलती है कैसी बात कर रहे हो, आपको नहीं मालूम कि सात साल की हो जाएंगी। देखो चीनी तुम्हारे पापा कितने भुलक्कड़ हो गए हैं। सॉरी बाबा गलती हो गई सभी लोग हंसने लगे है।



अच्छा बाबा बोलो क्या तैयारी करना है चीनी का बर्थ डे कैसे मनाना है घर पर या होटल में, घर पर ही मनाते है चीनी के दोस्तो को बुलाएंगे ज्यादा कुछ नहीं कर पाएंगे क्यों कि उस दिन मेरे बैंक की छुट्टी भी नहीं है, ठीक जैसा तुम कहो। चीनी क्या चाहती है बताओ।

चीनी- पापा घर पर ही बर्थ डे मनाएंगे। मैं अपने दोस्तों को अपने खिलौने भी दिखा सकूंगी।

ओके चलो इस बार क्या गिफ्ट चाहिए।

पापा बार्बी डाल हाउस चाहिए।

ठीक है ला देंगे और कुछ राजकुमारी साहिबा ... सभी लोग हंसने लगे।

चलो आज के काम जल्दी जल्दी निप्टा लेते हैं, फिर श्वेता आंटी के लिए गिफ्ट भी लाना है। बाजार जाना है।

हां मां में अपना होमवर्क जल्दी से पूरा कर लेती हूं, आप मुझे भी ले जाएंगी न बाजार।

ठीक है, तुम जल्दी नहा लो फिर होमवर्क खत्म कर लो, मैं भी घर के काम जल्दी कर लेती हूं, फिर हम बाजार जाएंगे।

-मां मुझे चाकलेट आइसक्रीम खाना है।

-ठीक है, चलेंगे तो खा लेना पर किसी चीज की जिद्द नहीं करना ठीक है,

-ओके मां नहीं करूंगी।

चीनी- पापा से पूछना क्या वह अपने साथ बाजार चलेंगे?

ठीक है मां मैं पूछ कर बताती हूं। मां पापा नहीं चलेंगे, उनको ऑफिस का काम करना है ठीक है फिर हम ही चलेंगे।

दोपहर के दो बज गए, चीनी घड़ी देखती है और कहती है मां आपका काम हो गया क्या? मेरा होमवर्क कम्पलीट हो गया है, मीना बोलती है -नहीं चीनी आज संडे है तो थोड़ा एक्स्ट्रा काम निकल आता है, बस एकाध घंटे में हो जाएगा। चीनी एकाध घंटे तुम टीवी देख लो अभी धूप भी तेज है अपन चार बजे तक चलेंगे, हे भगवान संडे के दिन कितने काम होते है, मीना कहते हुए घर की साफ-सफाई करने लगती है, सारा काम निपटते तक तीन बज जाते हैं, मैं भी थोड़ा आराम कर लूं, फिर चार बजे बाजार भी जाना है।

चार बजने के पहले चीनी मां को उठा देती है, मां उठो बाजार जाना है चार बज गए हैं।

अच्छा बाबा उठती हूं,

मां मैं तो तैयार हूं आप जल्दी से तैयार हो जाइये।

अच्छा मैं चाय पी लूं फिर निकलते है, रूपेश हम बाजार जा रहे हैं घर का ध्यान रखना ... जाते जाते बोलती हुई निकली,

हे भगवान कितनी भीड़ थी बाजार में इतनी जल्दी जल्दी खरीदारी की फिर भी घर आते आते इतनी देर हो गई, हां मां अपने को तैयार भी होना है। हां चीनी ये अच्छा है कि हमें पड़ोस में ही जाना है ज्यादा दूर नहीं जाना है। चीनी से मीना पूछती है, श्वेता हरीश को गिफ्ट पसंद तो आएगा न, हा मां गिफ्ट बहुत सुंदर है जरूर पसंद आएगा, घर भी आ गया, घर के दरवाजे की बेल बजाई रूपेश ने दरवाजा खोला, खोलते ही रूपेश बोला बहुत देर हो गई, हां यार बहुत भीड़ थी आज बाजार में हां आज संडे है इसलिए सभी लोग मार्केट में खरीदारी करते हैं, चलो फ्रेश हो जाओ फिर चलते हैं, मैं पंद्रह मिनिट में तैयार होती हूं, चीनी तुम्हारे नए कपड़े निकाल दिए है, पहन लो, हां मां पहनती हूं, सब लोग हो गए तैयार कि नहीं रूपेश तेज आवाज में बोलता है। हां बाबा तैयार हो गए, चलो मीना बोलती है। ताला लगा दो रूपेश, लगाता हूं।

रूपेश हरीश के घर की बेल बजाता है, अंदर से आवाज आती है, आ रही हूं, दरवाजा खोलते ही मीना रूपेश शादी की सालगिरह की बधाई देते है। श्वेता हरीश धन्यवाद बोलते है अंदर आइए, श्वेता बोली। सभी लोग ड्राइंग रूम में बैठ जाते है। मीना पूछती है श्वेता से हमारे अलावा और कोई नहीं है क्या? हरीश बोला- आज आप ही हमारे मेहमान है और किसी को नहीं बुलाया, हम ही लोग आपस में खूब सारी बाते करेंगे और मजे से खाना खाएंगे क्यों श्वेता सही कहा, हां बिलकुल ठीक कहा, चारों लोग आपस में बातें करने लगते है। मीना श्वेता से उसके कालेज के बारे में पूछती है, कैसा चल रहा है कालेज, कब से सेमेस्टर है, हां यार 15 दिन बाद चालू हो जाएंगे, आजकल कालेज में भी बहुत काम प्रिंसिपल देने लगे है, वैसे भी कालेज में आए दिन कुछ न कुछ कार्यक्रम होते रहते हैं इसलिए समय ही नहीं मिलता है, और तुम्हारा बैंक का काम कैसा चल रहा है, ठीक ही चल रहा है, रूपेश हरीश से पूछता तुम्हारा बिजनेस कैसा चल रहा है, फिलहाल तो ठंडा चल रहा त्योहारों पर ही अपना काम चलता है। चीनी सब की बाते सुन

कर बोर हो रही थी श्वेता ने देखा कि चीनी बोर हो रही है तो उसको विडियो गेम खेलने के लिए बैठा दिया। चीनी खुश हो गई, थेंक्यु आंटी, सभी लोग आपस में हसीं मजाक करने लगे। हरीश बोला- खाना भी खिलाओ यार भूख लगने लगी है। श्वेता बोली- हां खाना तैयार है, डाइनिंग टेबल पर रखना है। आप सभी लोग डाइनिंग टेबल पर बैठ जाइये। मैं खाना लगाती हूं, चीनी तुम भी आ जाओ खाना खाने, सभी लोग बातों के साथ खाने का भी मजा ले रहे थे। मीना बोली-खाना बहुत टेस्टी बनाया श्वेता, हां भाभी रूपेश भी बोला, खाना खाने के बाद सौंफ खाई। मीना ने घड़ी देखी तो दस बजने वाले थे, मीना ने कहा अरे बाप रे बहुत देर हो गई अब हमें घर जाना चाहिए। हां यार बहुत देर हो गई, बातों बातों में समय का पता ही नहीं चला श्वेता बोली। सभी लोगों ने एक दूसरे को गुडनाइट बोला और घर आ गए।

दूसरे दिन-

सुबह-सुबह मीना को रोज खाना बनाकर रखना, खुद का व

श्वेता के मन की सारी शंकाएं समाप्त हो गई। उसने अपनी बेटी को गले लगा लिया। वह मन ही मन खुद को कोसने लगी, मन ही मन उसने कहा हे भगवान मुझे माफ करना मैने सज्जन आदमी पर शक किया लेकिन मैं भी क्या करूं आजकल के माहौल का असर ही कुछ ऐसा है कि कितना भी सज्जन व्यक्ति क्यों न हो, उसके प्रति भी शंका पैदा हो जाती है। लेकिन भगवान का लाख लाख शुक्र है कि अब भी कुछ अच्छे लोग इस दुनिया में मौजूद हैं।

चीनी का टिफिन बनाना, व नाश्ता बनाने का काम वह खुद ही करती, बाकी ऊपर का काम कामवाली कर देती थी। 10 बजे मीना को बैंक जाना रहता है। वह रूपेश से बोलती है आप चीनी को स्कूल बस में बैठा देना में जा रही हूं, चीनी को बाय कहती हुई मीना अपने बैंक चली जाती है, उधर कामवाली से रूपेश घर का काम करवाता और चीनी को स्कूल के लिए तैयार कर देता है। चीनी बेटा जल्दी जूते पहनों स्कूल बस आने वाली है, हां पापा हो गई रेडी, अचानक बस के हार्न की आवाज आती है, रूपेश उसे स्कूल बस में बैठा देता है। चलो अब मैं भी अपनी कोचिंग के लिए तैयार हो जाऊं, इतनी देर में कामवाली भी अपना काम कर लेती और रूपेश भी तैयार होकर अपनी कोचिंग क्लास लेने चला जाता है। दोपहर को अचानक हरीश का फोन मीना के मोबाइल पर आता, मीना फोन उठाती, हां हरीश भाईसाब आज अचानक आपका फोन आया सब ठीक तो है न, हां भाभी सब ठीक है, मैंने इसलिए फोन लगाया था कि चीनी घर आ गई है, क्यों? चीनी ने बताया की आज किसी कारणवश स्कूल की छुट्टी जल्दी हो गई है। आपके घर ताला लगा था इसलिए चीनी मेरे घर पर है आप चिंता न करें। अच्छा ठीक है भाई साब मैं आती हूं। यह कह कर फोन कट कर दिया। हे भगवान आज ही जल्दी छुट्टी होनी थी चीनी की, स्कूल वाले भी कोई खबर नहीं देते की आज जल्दी छुट्टी होने वाली है। अब मैं पांच बजे से पहले जा भी नहीं सकती हूं, चलो अच्छा है कि हरीश भाईसाब घर पर हैं, वरना मेरी बेटी कहां जाती, स्कूल बस, वाले फोन लगाते और क्या?

कहने को बहुत अच्छे हैं हरीश भाईसाब पर... कैसे विश्वास कर लू, टीवी पर सावधान इंडिया व क्राइम पेट्रोल में कैसा कैसा दिखाते हैं, आए दिन अखबारों में कैसी कैसी खबरें छपती है, युवक ने मासूम बच्ची का यौन शोषण किया, फरार है... अधेड़ ने मासूम के साथ गलत हरकत की बाद में डराया.....। कहीं मेरी चीनी के साथ कुछ गलत तो नहीं हो रहा होगा, उसके साथ कुछ गंदी हरकत तो नहीं कर रहे होंगे, पता नहीं चीनी को क्या दिखा रहे होंगे, कोई गंदी फिल्म तो नहीं दिखा रहे होंगे, स्वाती भी अभी कालेज में होगी उसका फोन भी अनरीचेबल बता रहा है। आजकल फोन भी कभी सही समय पर नहीं लगता है। न श्वेता को फोन लग रहा है न रूपेश को। मीना इसी विचारों में बार-बार घड़ी देखती अब उसका मन काम में लग ही नहीं रहा था, कब पांच बजे और वह घर जाएं। जैसे ही पांच बजे मीना ने अपनी गाड़ी उठायी और तेज रफ्तार में गाड़ी चलाने लगी, और भगवान से प्रार्थना कर रही थी, कि मेरी चीनी सही सलामत हो। घर आते ही उसने हरीश के घर की बेल बजाई। हरीश ने दरवाजा खोला तो चीनी केक व चाकलेट खाते हुए टीवी पर कार्टून देखती हुई नजर आई। श्वेता के मन की सारी शंकाएं समाप्त हो गई। उसने अपनी बेटी को गले लगा लिया। वह मन ही मन खुद को कोसने लगी, मन ही मन उसने कहा हे भगवान मुझे माफ करना मैने सज्जन आदमी पर शक किया लेकिन मैं भी क्या करूं आजकल के माहौल का असर ही कुछ ऐसा है कि कितना भी सज्जन व्यक्ति क्यों न हो, उसके प्रति भी शंका पैदा हो जाती है। लेकिन भगवान का लाख लाख शुक्र है कि अब भी कुछ अच्छे लोग इस दुनिया में मौजूद हैं।

(स्वतंत्र पत्रकार)
48 राजस्व कालोनी, रतलाम (मध्य प्रदेश)



लोक कथा

ठुंडू-कम्बराऊ की ऐतिहासिक लोकगाथा

● सरला शर्मा

भारतवर्ष सांस्कृतिक विविधता एवं बहुलता से भरपूर देश है। भारत के पश्चिमी हिमालय में स्थित हिमाचल प्रदेश विभिन्न जातियों के लोगों तथा विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल है। यहां का लोक साहित्य अत्यंत प्राचीन है। इसमें लोक जीवन के आशा-निराशा तथा हर्ष-विषाद के भावोद्गार हैं। इस क्षेत्र का लोक साहित्य यहां के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से ओत-प्रोत है। साहित्य समाज का दर्पण है। दर्पण में वही प्रतिबिम्बित होता है, जो समक्ष प्रस्तुत होता है। लोक साहित्य समाज का वास्तविक दर्पण है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, हँसती है, रोती है, उन सब को लोक साहित्य के अंतर्गत रखा जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से शिमला जनपद की चौपाल तहसील का लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध एवं पुष्ट है। चौपाल क्षेत्र के लोक साहित्य में लोकगाथाएँ परिलक्षित होती हैं। यहां के लोक साहित्य में स्थानीय जन जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति निहित लोक साहित्य के निमार्ण में समग्र समाज का हाथ होता है। लोक साहित्य जीवन का सजीव, अनगढ़ तथा प्राचीन माध्यम है, जो अपनी विविध विधाओं द्वारा अपने समाज, उसकी संस्कृति एवं विभिन्न परम्पराओं को अभिव्यंजित करता है तथा चिरकाल तक सुरक्षित भी रखता है। लोकगाथा लोक साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विधा है। लोक साहित्य की सभी विधाओं में लोकगाथा का प्रमुख स्थान है। लोकगाथा के माध्यम से प्राचीन जनजीवन बोलता, हँसता, गाता, रोता और सिसकता हुआ लगता है। लोकगाथाओं में संस्कृति व सभ्यता की दिव्य झांकी प्रस्तुत होती है तथा लोक जीवन की संगीतमय अभिव्यंजना दृष्टिगोचर होती है। लोकगाथाओं में प्राचीन लोक जीवन के विभिन्न तत्त्वों की अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है। पुरातन लोक जीवन की छाया सच्चे अर्थों में लोकगाथाओं में वर्णित होती है।

लोकगाथा का अर्थ

लोकगाथा शब्द लोक जीवन का प्रबन्ध काव्य है, जिसमें न केवल परम्परा का बोध होता है बल्कि लोक स्वभाव लोक चित्र की अनुभूति होती है। लोकगाथा लोक साहित्य की वह विधा है, जिसमें किसी चरित्र नायक की सम्पूर्ण जीवन की कथा स्वाभाविक रूप में वर्णित हो तथा नायक की सम्पूर्ण जीवन कथा के साथ-साथ जन रूचि का विशेष धयान रखा जाता हो। गाथा का अर्थ गीत है। लोकगाथा लोक कंठ से ही विकसित होती है, जिसमें लोगों के सुख-दुःख और भावनाओं को कथात्मक गीत के माधयम से गाया जाता है। इस सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि शिष्ट साहित्य में जो स्थान महाकाव्य का है, लोक साहित्य में वही स्थान लोकगाथा का है। अतः जीवन के विभिन्न पक्षों को समग्र दृष्टि से देखने के कारण लोकगाथा लोक मानस की सार्थक अभिव्यक्ति है।

चौपाल तहसील में प्रचलित ठुँडू-कम्बराऊ की ऐतिहासिक लोकगाथा जो यहां की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालती है। यह प्राचीन समय की एक ऐतिहासिक लोकगाथा है। चौपाल क्षेत्र में ठाकुरों के आपसी वाद-विवाद का वर्णन इस लोकगाथा में सुनने को मिलता है। यहां के आकर्षक गीत लामण, भारथ, नाटी, पवाड़े, झूरी, बार, भारण, पांजड़ों तथा भोंरू आदि स्वरूपों में इतिहास को समेटे हुए हैं।

यह प्राचीन काल से आपसी बैर की एक ऐतिहासिक कहानी है। इस आपसी वैर को उस जमाने में 'बौइर' बैर का जमाना कहते थे। शिमला जनपद की तहसील चौपाल में हामल नामक परगने में 'ठुँडणा' निवासियों को ठुँडू कहते हैं। ठुँडू लोग अपनी भेड़ों को सर्दियों में बर्फ और सर्दी से बचाने के लिए गर्म इलाकों की चरागाहों वाले क्षेत्र सिरमौर रियासत के कम्बराऊली क्षेत्र 'नौइड़ा' में ले जाया करते थे। एक बार कम्बराऊओं ने ठुँडूओं से जंगल का टैक्स वसूल करने की बात कही तो ठुँडूओं ने टैक्स देने से मना कर दिया। इसी बात पर ठुँडूओं और कम्बराऊओं में तकरार हुई और दोनों पक्षों के व्यक्ति मौत के घाट उतारे गए, जिसका वर्णन इस लोकगाथा में मिलता है-

एक समय की बात है ठुँडू लोगों की भेड़ें धनला नामक स्थान

पर पहुँची। ऊँचे पहाड़ों पर दुधली फूली हुई है और 'घासणी' गर्म स्थानों पर गानी फूली है। धनला क्षेत्र में ठुँडूओं ने डेरे बना दिए हैं। जैसे ही ये समाचार कम्बराऊओं को मिलता है वैसे ही कम्बराऊ नौ जवानों ने एक सभा बुलाई। इन ठुँडूओं ने हमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी परेशान कर रखा है, अब हम इनसे जंगल का महसूल 'टैक्स' वसूल कर ही छोड़ेंगे। कम्बराऊ के चार जवान धनला नामक गाँव में किसी स्थान पर पहुँचते हैं। सबला नामक ठुँडू से पूछा गया ऐ ठुँडू तुम कहां से धनला आ गए हो। सबला नामक ठुँडू ने कहा मैं और मेरे साथी धनला हर साल आते हैं। हम अपनी भेड़ों को चुगाने यहां लाते हैं। ये जो सीधे मैदान और सुन्दर वादियाँ है भला किसको आकर्षित नहीं करती। ठुँडूओं से कम्बराऊओं ने जंगल के टैक्स की मांग की। जीता नाम का ठुँणटा बोलने लगा, देखो भाई! बरसों से हम अपनी भेड़ों को चराने यहां लाते हैं जंगल का टैक्स हमने कभी भी नहीं दिया है। कम्बराऊ जवानों ने कहा कि कर नहीं दोगे तो हम तुम्हारी भेड़ें, हांक लेंगे। ठुँडूओं को बहुत क्रोध आ गया। उन्होंने कहा यदि राजपूतानी के गर्भ से जन्में हो तो भेड़ को छड़ी तो छुआना। क्रोध में आकर कम्बराऊओं ने खुद ही भेड़ों का बाड़ा खोला और भेड़ों एवं मेमनों को काट दिया। सबला को प्यास महसूस हो रही थी, तो सबला पानी पीने के लिए पानी की बावड़ी के पास गया वहीं पर कम्बराऊ जवानों ने उसे काट कर मौत के घाट उतार दिया। सभी कम्बराऊ कम्बराऊली गाँव में आकर देवी के मन्दिर के पास एकत्रित हुए और प्रांगण में नारे लगाने लगे। ठुँडू की पत्नी को जब यह खबर मिलती है तो उसके पाँव तले जमीन खिसक गई। ओह! मेरे पति को मार दिया गया। सबला का पिता रो-रो कर अपने सफेद बाल नोचता है। पुत्र की मौत के नारों को सुन सकने की सामर्थ्य उसमें नहीं हैं। सबला की हत्या हुए तीन महीने ही हुए थे कि ठुँडूओं को सबला की आत्मा ने तंग करना शुरू कर दिया। ठुँडूओं ने पूरे हामल परगना के लिए

लोकगाथा : ठुंडू कम्बराऊ

मौए री मौआईयै कै रे मौआए, भेड़ो गोई ठुँडू री धैनले खै जाए।
टीरौ फूलौ दुधले घासणी दो गानै, सौंय पौड़ी धैनले ठुँडू री छानै।
ऐज़े गोए खौबरा कम्बराऊ खै जाए, नोइये कम्बराऊटै खुमले छाड़े पाए।
ऐनिऐ लेऐ ठुँडूऐ बारी दै खाए, बौणो रा बणोकरा लौणा उगाए।
मौए री मौआईयै कै रे मौआए, चार झौणे कम्बराउरै धैनलै खै आए।
ठुँडू च्छाड़ा सौबला नेशणा लाए, केथु गोआरे ठुँडूआ धैनलै खे आए।
सौयें तेरे धैनलै राझौ ली भांगो, ठुँडू आगौ कम्बराऊटै बणौकरा मांगौ।
ऐरो तो लागा बोलदा ठुँडटा जीता, बौणों रा बणोंकरा कौधी भी ना दीता।
ठुँडू औ कम्बराऊ रे जाए गोए औ तेड़ो, देन्ऐ ना बणोकरा तेरी हाकुला भेड़ौ।
सौंये तैरै धैनले राझौ ला कीता, जेया बेटा ऐ खौशणी रा लाए भैड़ा दा छीटा।
आफी तो गाड़ा कम्बराऊए गाबटू रा बाड़ा, बौणौं रा बणोकरा हामे कसरा नी छाड़ा।
धरौ फीरौ बागरौ नालटै हीशौ, ठुँडू लागे सौबलै पाणी रे चीशौ।
सौये तैरै धैनले चीकीला माटा, बांओ आगै धैनले सौबला काटा।
जौधै कम्बराऊटै कम्बराऊली आऐ, ठाहरी आगे तैनीऐ लींबरौ लाए।
काडै शुणों ठुँडणै खौलिऐ डोबौ, मेरा काटा मालक कैले रा जेघ्आ गोबौ।
रूंदा लागा रीठुआ चूणौ ला पोलू, बेटे रा लागा लीम्बरौ शुण बी ना बौलू।
सौयें तेरे धैनले रींगौ ला सांपौ, चीजै लागो म्हीने खे सौबलै रो पापौ।
कांडे री काजी ठुँडूऐ हामलौ खै लाए, जाणै हौला दाईया पौखौ खै आए।
सौबलै रा बौदला देणा उगाए, पापै लेऐ सौबले रे धणयौ खाए।
ठाहरी आगै ठुँडणे खुमलै पाए, खुमली दी बातड़ी भेखलु ए जाए।
नौ नाली हामलों खोबरा आए, भीखा जालै कालसी चानणे खे जाए।
खौली री मंगरोलिए उड़ौ लो भूसौ, खोज देऔ पाबुचा झौगड़े रो देसौ।
गरौह आणै खोजओं तोंई दिशाशूलौ, देस दीतो पाबुचौ जेघ्ठो रो मूलौ।
भीखा गोऐ कालसे धैरो खे आए, मीना गोआ बशाओरा नेडिए आए।
नौ नाली हामलौ सरायै रोई आए, हाथौ जोड़ेयों औरजा बीजटौ खे लाए।
तैरा देवा भरोशा तेरेई हीठौ, मेरे जाणा पौखौ खे पूरे ला पीठौ।
उतरे दिते बीजटे हाथौ दे शौरे, खोड़ी जा ठुँडूआ टाटिऐ कोसी दा नी डौरे।
लाणी लाई काकरै झोकड़ो खे धऔ, गाजी आ बुदराऊआ पौखों खे आऔ।
डांगरा लान्दा बिउजा खौशटा चांटा, लहुरिए लान्दा मुन्उपान्दा छांटा।
मौए री मौआईयै कै रे मौआए, टिरौ छाड़ा बागाणी लिम्बोरौ लाए।
ढाकै ना ठाकुरियै रिगों ला गूणी, बगणी लागा लिम्बरौ कामरौली शुणी।
टीरौ लाई बागणी ठुँडूऐ नाटी, टीरो देणो बागणी जगदेऊ काटी।
पुनयों रै जुइणों पौछयौ भीतै, जाकै तैने रौणपौतै डूंगै दे दीते।
नौइयै गोए ठुणटै धैरो खे आए, सौबले रा बदला दीता उगाए।
ठाहरी आगे ठुँडणे लीम्बरौ लाए, मूंड जोगदवौ रो चौरी ए दबाए।
देऔ तोबै बिजटो रे हिच्छा लकाए, जोगदेवौ रा डांगरो दितो चौरीऐ लटकाए।

कविता

एकांतवास

• अरविंद कुमार मुकुल

औ एकांतवास
खा भी जाओ मुझे
जिंदगी दे मत
तड़पाओ मुझे

ओ मेरे चारों तरफ
कि सूनी दीवारें
कुछ तो बोलो
कम से कम
तुम तो मुझे अपना कहो
आखिर मैं आदमी हूं
आदमी के नाते कोई मुझसे प्यार तो करो



जरा सोचो
शांत मेरे चारों तरफ का परिवेश

बंद हो गई है हवा
और कैमरे के अंदर
अनखींचे फिल्म रील सा
मुझमें घुटन हो रही है
जल्दी क्लिक करो
शायद कोई तस्वीर
उतर आए।

एल.एफ. 27, श्रीकृष्णापुरी, पटना, बिहार-800001,
मो. 9931918578

संदेशवाहक भेजा। हमारे बिरादरी अगर हमें अपना सगा समझते हो तो युद्ध के लिए तैयार हो जाऐं। हमें सबला की हत्या का बदला लेना है। सबला की आत्मा हमें तड़पा रही है। ठुँडणा स्थान पर स्थित देवी के मन्दिर के प्रांगण में सभा बुलाई गई। भेखलु नामक व्यक्ति अपनी राय जाहिर करता है, नौजवान कालसी और भीखा चानणा गाँव जाओं और आक्रमण के लिए दिन दिखाओ। ज्योतिषी ने ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति को युद्ध का दिन मुहूर्त के रूप में दिया। बैशाख का महीना था, सभी नौ नाली हामल के लोग सरांह में आकर बीजट देवता के सामने हाथ जोड़कर अर्ज करने लगे। देवता हमें युद्ध में जाना है, हमें तुम्हारा ही आसरा है और हम यही आस लगाए बैठे हैं कि युद्ध में हमारी रक्षा करना। बिजेश्वर महाराज ने प्रकट होकर ठुँडूओं के हाथ में तीर थमा दिया। ऐ ठुँडू! सीना तान कर युद्ध में जाओ। तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। गाँव ठुँडणा से चल कर सब लोग काकरा नामक स्थान पर पहुँचे। काकरा के समीप झोकड़ नामक स्थान है, उस गाँव का मुखिया गाजी नामक बुद्धराऊ है। ठुँडूओं ने गाजी बुद्धराऊ को कहा कि तुम भी युद्ध में शामिल हो जाओ। सभी ठुँडू कम्बराऊली पहुँच गए। ठुँडूओं ने धनला के जंगल में कम्बराऊ जोगदेव को मौत के घाट उतार दिया और सबला की हत्या का बदला ले लिया। जोगदेव का कटा हुआ सिर चबूतरे में दबा दिया गया। जोगदेव का डांगरा (फरसा) चबूतरे पर लटकाया गया। पूर्णिमा का चाँद पश्चिमी दीवार पर अपना प्रकाश बिखेर रहा था। जोगदेव के पोते रणपत ने डर कर गहरी खाई में छलांग लगा कर अपनी जान गंवा दी। ठुँडू नौजवान सबला की हत्या का बदला ले कर खुशी-खुशी वापस हामल आ गए। वापस आकर उन्होंने देवता बिजट महाराज की मन्नत पूरी की।

चौपाल क्षेत्र में ठुँडू-कम्बराऊ की लोकगाथा बहुत प्रसिद्ध है। इस लोकगाथा को विशेष रूप से बकरीद में मुंजरा नाटी पर गाई जाने की प्रथा है। इस लोकगाथा में प्राचीन इतिहास वर्णित रहता है। यह लोकगाथा तत्कालीन खश (ठाकुर) व (ब्राह्मण) भाट कबीलों के राजनीतिक, ऐतिहासिक व सामाजिक पक्ष की गाथा है। ठुँडू-कम्बराऊ की लोकगाथा में सामंतवादी परम्पराओं, आपसी बैर तथा वर्चस्व पर आधारित घटनाएँ या प्रसंग लोकगाथाओं में वर्णित हैं। इस गाथा में सबला ठुँडू के कत्ल की घटना, युद्ध में ठुँडूओं के जाने की घटना तथा जोगदेव और उसके पोते रणपत की हत्या की घटना का वर्णन है।

गाँव हनल, डॉ. नकौड़ा पुल,
तहसील चौपाल, जिला शिमला,
(हि.प्र.)-171211, मो.- 9418718206

हाइकु कविताएं

● डॉ. ओम्प्रकाश सारस्वत

तब वसन्त
गाता खिलखिलाता
था दिग्दिगन्त

तब वसन्त
खेले था एकल भी
गुड़ि-पतंग

अब वसन्त
आता ज्यों चुप्पा कोई
लुटा कंत

या कोई फिर
इमली नीचे सोया
हो वीर, हन्त!

अब वसन्त
घूमे है अलबेला
अधीर कंत

वासन्ती दिन
कस्तूरी से महकें
ज्यों पल-छिन

मार ने तान-
तान मारे, गुलों के
असंख्य बाण

लुटी प्रकृति
हौं जूं सः का परम
पाठ पढ़ती

शिव के देश
रति ने खो दिया था
प्रिय प्राणेश

विवस्त्रा खेतों
में ही सुखाती धोती
हताश रोती

वसन्त ने ही
रची पहली प्रति
प्रेम की लिपि

वसन्त ने ही
बनाई ये भोग भू
तपी कर्म भू

मैथुनी गाथा
रंगों में सहवास
चाहों से नाता

वसन्त ने ही
दी, कण्ठों को मिठास
गीतों को प्यास

बागों में वोह
कलियों संग नाचा
शर्म को धो-धो

मधु ने बांटे
कमलों के अध्यात्म
गुलों को कांटे

वासन्ती लीला
खुशियों से फूलों का
मुखड़ा पीला

फूली सरसों
प्रेमी करता, कल
आज, परसों

कभी स्वच्छंद
पंजाब के हारों ने
गाया वसन्त

सरस्वती ने
खेतों में संस्कार रोपे
जनों को सौंपे

वेदों के गान
तटों पे लहके औ,
हवा में महके

हो के निर्द्वन्द्व
रचे गुलाबी पीत
गायत्री छंद

मेघों के झूले
सारस जमीन पे
उतरना भूले

जीवन बिन्दु
तक, हलान हुआ,
जो होता सिन्धु?

झरता पत्ता
झर गया, संदेहों
से भर गया

पतझड़ की
तपस्या रंग लाई
उगी ललाई

फूलों के भाग
हिस्से में आई हंसी
रंगों के बाग़

सुस्त आंगन
खग नाचे तो नाचा
मन-प्रांगण

कोई भी ठांव
वैसी न हुई मीठी
जैसा कि गांव

जग की ताल
बजाए जा, बेहोशी
में भी गाए जा

जठराग्नि में
ही जली यज्ञशाला
स्मरणशाला

उम्र यूं ही तो
गई आई, अच्छाई
भी क्या कमाई?

पता नहीं, क्या
किसका एहसास
लिया, क्या दिया?

कृतज्ञता भी
निभायी पर कहीं
दी न दिखाई

दिल को ठगा
यूं ही समझते थे
खुद को बड़ा

स्वयं को कोसा
देखा नहीं सपना
कोई अपना



महत्त्वाकांक्षाओं
से रहे दूर, ढोंग
से भी सुदूर

हम भी किसी
के चरण चापते
लाभ नापते

दया-कृपा के
भी दायरे में आते
लोगों को भाते

पग-पग ही
सदा स्वाभिमान ने
टोका, रोका भी

चिन्तामुक्त हो
रहता हूं, कहता
हूं, सच्ची है जो

भलाई यदि
न हुई, तो बुराई
भी नहीं ही की

जग में निष्ठा
की भी तो होती ही है
कोई प्रतिष्ठा

हरेक व्यक्ति
की अपनी है सीमा औ
अपनी शक्ति

फिर प्रज्ञा भी
तो नहीं ही बंटती
नहीं ही छंटती

वह कीचड़
में नहीं मिलती, न
हाथ पे खिलती

अच्छा करके
ही होता है आदमी
अच्छा आदमी

अच्छे आदमी
ही चाहिए दुनिया
को, मुनिया को

द्राक्षा की बेल
की चाहिए, सदा ही
रेलमपेल

धूप ने ठगा
मरुस्थल, दर्शा के
मारीचि जल

जल-धन की
मांग पर, जलधर
ने झाड़े कर

मेघों ने तान
दिए पाल, झीलों में
हुआ धमाल

गर्मी से भागे
मेघ, पहुंच गए
हिम के देस

देते ही रहे
तसल्ली, औ बाढ़ ने
डुबा दी पल्ली

खेलते ही रहे
'मिचौली' भीगी पर
एक न चोली

यादों की चिट्ठी
आई, विरहन ने
पढ़ी लिखाई

मेघों ने बांटी
सौगात, केन्द्र-जैसी
कुछ खैरात

अपने राज्यों को
'गफ्फा', औरों को
ज़ोर का धप्फा

बदली ने खोले
बाल, औ कृषक भी
नाचा दे ताल

मोरों में भरी
खुमारी, पावस की
देख सवारी

तुहिन, बिन
पूछे आती, धूप भी
रपट लिखाती

फूलों ने किया
कमाल, बूढ़ों में भी
भरा उबाल

भौंरे ने फूल
को चूमा, कलियों का
उत्साह दूना

कैसे भी ओढ़,
'शाल' की कैसे होगी
काल से होड़

काहे की दौड़,
एक दिन घटेगा
रनों का जोड़

'काम' ने छोड़ा
मर्यादा ने बांधा जो
लाज का घोड़ा

कोई भी अति
अन्ततः देती ही है
घाव औ क्षति

यौवन, सत्ता
मूढ़ता औ घमंड
देते हैं गच्चा

बाढ़ और सूखा
दोनों ही मारते हैं
धरा को भूखा

धन का नशा
और गुमां, अनर्थों
का एक कुआं

आसमानों में
उड़ते हैं, वे बैठ
के खदानों में

शरीर को ये
कौन छोड़ के जाता
फिर न आता

बांधों ने मांगा
पानी, औ नदिया की
लुटी जवानी

डाली पे बर्फ़
झाग से लिखे हुए
प्रेम के हर्फ़

ईश की आभा
हरित गलीचे पे
पीताभ द्वाभा

ये इन्द्रधनुष,
अक्षत रंगों के रे
रंग कलश

बर्फ़ या लूण
अल्लाह ने लुटा ही
लाखों की गूण

हिम का ज्वार
इसी तरह आता
है बार-बार

तुषार-लीला
घंटों की बारिश औ
कोई न भीगा

ठंड के तीर
दिल्ली में घुस आया
जैसे कश्मीर

उतरी शांति
दाह मिटा पृथ्वी का
औ मिटी भ्रांति

जलों के प्राण
हिमनदों के नीचे
घुटती जान



ऋतु की सत्ता
ना चाहे तो कदापि
बूंद न पत्ता

जग का रस
एक तुहिन और
तुहिन बस

रस्तों पे जाम
घोड़ों के इंजिन पे
'फुल्ल' लगाम

चौराहों पर
मैं-मैं, तू-तू, हुंकृति
कैसी संस्कृति?

सभा-सभा में
हाथापाई, मूल्यों की
खुली धुनाई

लोकसभा में
पेप्पर स्प्रे, लागा ज्यों
सासों पे स्टे

पात-पात पे
गीत, बर्फ ने लिखे,
धूप में छिपे

तनाव-लीला
द्वन्द्वों भ्रमों के क्षण
मार्ग सर्पीला

अहं की सत्ता
मैं न मानूं की रट
जड़ इयत्ता

रे! व्यभिचार
दरवाजे लांघ के
मिले न द्वार

कामी की लार
कहीं भी टपके है
कैसा हो थाल

ढीला अंगोछा
कहीं भी खुल जाए
हुआ जो ओछा

कच्ची मर्यादा
कब रोक सकी है
कोई भी वादा

संस्कार यदि
हैं, तब कस्में क्यों?
कोई रस्में क्यों?

पशु ही लांघें
रिश्तों की मर्यादाएं
सारी रेखाएं

कच्ची मिट्‌टी को
ही पकाते, घड़के के
योग्य बनाते

योग्य बनाना
है, हुनर बढ़ाना
राह पे लाना

जो भी आदत
नहीं बदलती वो
पक्का छलती

पक्के घड़ों का
स्वभाव बस
जस का तस

खून की लत
बड़ी गफ़लत, तू
जे जक़रत

किसी इल्लत
को छोड़ना, हवा को
जैसे मोड़ना

ये दुनिया की
लियामतें, चुम्बक
सी है आदतें

इनसे बचो
इनको छोड़ो और
इनपे है सो

सुबह सा देख
आते हुए क्षण को
फंसा न पेच

शीशे को साफ
रख मन में आस
विश्वास रख

रात तो आनी
है, रास्ता न भूले ये
बड़ी सियानी

रूहों पे जज़िया
कैसे होंगे दीदार
तरसे जिया।

जी-6, नॉल्सवुड कॉलोनी,
शिमला, हिमाचल
प्रदेश-171002, मो. 94180
54054

समीक्षा

एक सफ़र-दरिया दरिया साहिल साहिल

● राशि जमला फ़ारुकी

जाहिक अबरोल काव्य जगत की एक जानी-पहचानी शख्सीयत है। उनका ग़ज़ल संग्रह 'दरिया दरिया-साहिल साहिल' एक स्तरीय काव्य रचना है जो भाषा और साहित्य के प्रति असीम प्रेम व लगाव से ही संभव हो पाया है।

'हज़रत अली' (हज़रत मुहम्मद के दामाद) का क़ौल है- "बातें दुहराई न जातीं तो कब की ख़त्म हो चुकी होतीं।" अपनी रोज़मर्रा ज़िंदगी में भी हम बातों की पुनरावृत्ति का अनुभव करते ही रहते हैं। यही सूरत-ए-हाल शे'र-ओ-सुख़न की भी है। 'ग़ालिब' का इरशाद है कि-

सब कहां कुछ लाल : ओ-गुल में नुमायां हो गईं
ख़ाक में क्या सूरतें होंगी कि पिन्हां हो गईं

'नासिख़' का क़ौल है-

हो गये दफ़न हज़ारों ही गुलअंदाम उसमें
इसलिये ख़ाक से होते हैं गुलिस्तां पैदा

एक मिसाल और, क़तील शिफ़ाई का शे'र

'क़तील' अब दिल की धड़कन बन गई है चाप क़दमों की
कोई मेरी तरफ़ आता हुआ महसूस होता है।

अंग्रेज़ी की एक कहावत है कि Great men think alike.

महान लोग सोचते तो एक ही तरह से हैं लेकिन प्रकट करने की शैली का फ़र्क़ नुमायां होता है। एक ही विषय को अपने अद्वितीय अंदाज़ में अपने डिक्शन में कह देना ही शाइरी है। वरना बातें तो कब की ख़त्म हो चुकी होतीं। वो तो हमेशा दुहराई जाती रहेंगी।

'मजरूह' सुलतानपुरी का विश्व प्रसिद्ध शे'र है-

मैं अकेला ही चला था जानिब-ए-मंज़िल मगर
लोग साथ आते गए और कारवां बनता गया।

अब ज़रा ज़ाहिद अबरोल का यह शे'र मुलाहज़ा फरमाइए-

आज ही की मुश्किल है, लड़ रहे हैं हम तन्हा
कल तो यह जहां सारा, अपने साथ हो लेगा।

'मजरूह' का शे'र तो फिर भी, सामयिक विशेषता का है, तात्कालिक है।

'ज़ाहिद' के शे'र की गूंज तो भविष्य में दूर तक सुनाई देती है। इसलिए कि अगर मक़सद नेक हो तो प्रमाणिक परिणाम का विश्वास आरम्भ से ही होना आवश्यक है। निदा फ़ाज़ली का एक दोहा है-

बच्चा बोला देखकर मस्जिद आलीशान
अल्लाह तेरे एक को इतना बड़ा मकान

ज़ाहिद अबरोल का शे'र है-

लाखों इंसां बेघर हैं/ एक खुदा के लाखों घर

एक मिसाल और...

हर एक लाश में कुछ ख़्वाब सांस लेते हुए
हर इक वजूद में जैसे मरा हुआ सा कुछ... राशिद जमाल फ़ारूकी

ज़ाहिद अबरोल का शे'र है-

हर एक ज़िहन ख़्यालों का बन गया मरकद
हर एक दिल में उमीदों का क़त्ल जारी है।

इन मिसालों से ज़ाहिर है ज़ाहिद अबरोल का अपना अनुभव, देखने का नज़रिया और अपना ही ज़ाती लहजा है जिसमें अगर कुछ पहले कही हुई बात को दुहराते भी हैं तो आवाज़, लफ़्ज़ियात और प्रकट करने की शैली उनकी अपनी ही होती है। उनके कलाम का मुतालआ हैरत के अजीब-ओ-ग़रीब अध्याय खोलता है और आप अश अश करने पर मजबूर हो जाते हैं।

उर्दू, हिंदी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य से लाभान्वित होना उनके अदबी, ज़िहनी, फ़िक्री और अक़्ली क्षितिज को विस्तार प्रदान करता है और नतीजे के तौर पर उर्दू शाइरी मालामाल हो रही है। मुझे उनकी ताज़ातरीन किताब 'दरिया दरिया साहिल साहिल' के पठन के दौरान ऐसे ऐसे उत्तम अशआर का ख़ज़ाना हाथ लगा है कि मैं अपनी इस खुशी में अपने पाठकों को भी शामिल करना चाहूंगा।

इश्क़ के विषय उर्दू शाइरी की रूह है लेकिन इश्क़िया जज़्बात और एहसासात को रिवायती घिसे-पिटे रंग से बचाकर ज़ाहिद अबरोल ने अपनी एक अलग ही पद्धति इख़्तियार की है।

जो देखना है कैसे जिया हूं तिरे बग़ैर
दोनों तरफ़ से मोम की बत्ती जला के देख

न छेड़ ज़िक्र मुहब्बत की पाकबाज़ी का
मिरा ख़्याल तिरे जिस्म को टटोले है

तुझ से मैं झूठमूठ रूठा था
मुझको कुछ अपने आज़माने थे

मेरी आंखों में तो आंसू थे न कुछ देख सका
दूर तक पीठ तिरी तकता रहा दरवाज़ा

दोनों तरफ़ से मोम की बत्ती जलाने का तसव्वुर अंग्रेज़ी मुहावरे To burn the candle at both ends से लिया हुआ है

और बड़ी खूबसूरती से इसे शे'री पैकर में ढाला गया है। अफ़लातूनी मुहब्बत (Platonic Love) की पवित्रता का खोखला ढोल पीटने की बजाय शारीरिक आवश्यकता के सच की स्वीकृति दूसरे शे'र में अच्छी लगती है। अपनों को आज़माने के लिए 'अपने खास' से रूठ जाने की अदाकारी कई बार ज़रूरी ठहरती है वरना फ़रेब से बचना मुश्किल हो जाए। वक्त-ए-रुख़्सत आंसू भरी आंखों की बेबसी और बेज़बान दरवाज़े की बेकसी ने शे'र को अश्कों से गीला कर दिया है। लज़्ज़त-ए-वस्ल की इससे बेहतर तशरीह और क्या हो सकती थी कि ठहरे पानी को कंकर फेंक कर गतिशील करके देख लिया जाए। आख़िरी शे'र में खुशी और उदासी दोनों को बोझ मान कर शे'र में संतुलन क़ायम किया गया है, वरना आम इंसान तो सिर्फ़ उदासी ही को बोझ समझता है। यह तमाम अशआर ज़ाहिद अबरोल की सोच की नवीनता का पता देते हैं। ज़ाहिद अबरोल के यहां आशावाद क़दम-क़दम पर फ़िक्र के फूल महकाता है और 'कर्म' की तरफ़ प्रेरित करता नज़र आता है-

सवाल आयें तो कांटों की तरह उनका भी
जवाब फूल सा दो और खूब खिलकर दो
मेरे शहर में आना हो तो अगले बरस ही आना तुम
अब के बरस तो इस नगरी में आगज़नी का मौसम है।

कांटों जैसे सवालों का फूलों जैसा महकता और खिला-खिला जवाब देने की प्रेरणा प्रमाणित सोच का लक्षण है। इस साल अगर शहर में आगज़नी है तो अगले बरस अवश्य अमन की हवाएं चलेंगी क्योंकि किसी भी मौसम को चिर स्थायित्व नहीं मिलता। फिर नकारात्मक सोच क्यों? सब कुछ दिल के मौसम पर मुनहसिर है। बाहर का मौसम बेमानी होता है। यह आशावादी बातें जीने का हौसला देती हैं।

अब मैं चाहता हूं कि ज़ाहिद अबरोल के कुछ ऐसे नायाब अशआर आप मुलाहज़ा फ़रमाएं जहां लहजे में हल्का सा तंज़ है जो एक दमदार शाइर के लहजे में होना आवश्यक होता है कि वो सामयिक कड़ुवाहटों का अनुवाद भी होता है और चिकित्सक भी। वो एक बेहतर दुनिया के ख़्वाब देखने का अधिकारी है तो उसे कटुभाषी/सत्यभाषी होने का अधिकार भी प्राप्त है।

ज़ाहिद ख़ुदा का हो कि किसी आशना का घर
इज़्ज़त मिली न उसको तहीदस्त जो गया
एक गुलचीं की हवस देख के यह सोचा था
सिहन-ए-गुलशन ने कि वो काश बियाबां होता
मेरे हसीन ख़्वाबों को सालिम निगल गए
मैं अज़्दहों के शहर में कैसे रहा, न पूछ
मिरा तो वो है जो मेरी ज़मीं को रास आए
कि काइनात में यूं तो बहुत से सूरज हैं।
वो लाख अपना ख़ून बहाएं ग़ैर ही समझे जाएंगे
अपने बच्चे ख़ून भी चूसें, अपने ही कहलाएंगे

और यह शे'र इंतहाई अहम है-

मेरे लिए न था मुश्किल ख़ुदा भी बन जाना
मगर खुदा के लिए दूसरा ख़ुदा भी न था

ऊपर लिखे अशआर शाइर के विशेष विज़न का परिणाम है। लिहाज़ा दुखजनक बातों की एक दुनिया यहां आबाद है। ख़ुदा के घर से परिचित के घर तक पैसे की माया। फूल तोड़ने वाले की हवस से गुलशन के आंगन का पानी-पानी होना। हिलती दीवारों के इशारे को वक़्त होते समझ जाने का सदुपदेश, किस्मत के ज़ोर आज़माई के नतीजे में सीढ़ियां चढ़कर फिसल फिसल जाने की मजबूरी, क्या-क्या विषय और किस खूबी से अदा किए गए हैं। हम अपनी पीठ पर पूरी दुनिया के बोझ को हैसियत का अन्याय मान कर उठाते फिरते हैं, सिर्फ़ ज़ाहिद अबरोल ही सोच सकते हैं कि करवट लेकर सब कुछ उलट दिया जाए।

ख़ुदपसंदी ऐसी कि अपनी ही आवाज़ों से भरे कान लिए हर शख़्स घूम रहा है फिर दूसरों की आवाज़ को क्योंकर सुनेगा? यह तमाम अशआर उर्दू शाइरी में बढ़ोतरी का सबब बन गए हैं।

ज़ाहिद अबरोल की एक विशिष्टता यह भी है कि वो हिंदू देवमालाई हवालों और इस्लामी क़िस्सों के संकेतों का सफल प्रयोग कर किताबी बातों को हमारी रोज़मर्रा से जोड़ते हैं और उनके अदृश्य किरदार हमारे दरम्यान सांस लेते नज़र आते हैं। बीते हुए को वर्तमान में समन्वित करने और ऐतिहासिक कथाओं और मज़हबी हवालों को सामयिक अनुभूति से हमआवाज़ करने का काम देखना हो तो यह अशआर देखें-

बीमारी की हालत में 'सुग़रा'[1] को जो छोड़ आये
उनका भी जिगर देखो और अज़्म-ए-सफ़र देखो
'कृष्ण' ने कंकर बहुत फेंके मगर
अब के 'राधा' का घड़ा कच्चा न था
विष की गागर सर पे उठाये सब मुल्कों में घूम गया
भटके हुए इस बंजारे को कोई 'शिव' मिल जाए तो

'फिराक़' गोरखपुरी और बृजनारायण 'चकबस्त' की सिहतमंद रिवायत का यह विस्तार ज़ाहिद अबरोल के यहां अर्थों की नई dimensions का पता देता है। ज़ाहिद अबरोल जैसा genius शाइर इतनी विस्तृत, अर्थपूर्ण और सफल शाइरी करने के बावजूद शायद अभी संतुष्ट नहीं है। वो अपनी क्षमताओं की नई सम्भावनाओं की तलाश में अभी तक उद्विग्न है और यह बात उम्मीद बढ़ाती है कि ख़याल की प्रचुर उड़ान और फितरत में प्रचुर संतुलन और चिरस्थायित्व की दुआ करके लबों पर है।

मिरे ख़ुदा मिरी फितरत में है सबुकपाई
मिरे ख़्याल को परवाज़ दे, सबात मुझ।

सी-1452, आईडीपीएल टाउनशिप
वीरभद्र, ऋषिकेश, उत्तराखंड-249202,
मो. 94567 53096

1. हजरत इमाम हुसैन की बीमार बेटी जिसे वो उसकी बीमारी के कारण अपने परिवार के आखिरी सफर में साथ नहीं ले जा पाए।

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 'डी' के अन्तर्गत अपेक्षित 'हिमप्रस्थ' मासिक के स्वामित्व एवं अन्य विषयों से सम्बन्धित विवरण

फार्म-4 (नियम 8 देखिये)

प्रकाशन स्थान	'हिमप्रस्थ' कार्यालय हिमाचल प्रदेश, राजकीय मुद्रणालय परिसर, शिमला-171005
प्रकाशन अवधि	मासिक
मुद्रक	सी. पी. वर्मा नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला-171005
नागरिकता	भारतीय
प्रधान सम्पादक	डॉ. एम. पी. सूद
नागरिकता	भारतीय
वरिष्ठ सम्पादक	यादविन्दर सिंह चौहान
नागरिकता	भारतीय
सम्पादक	वेद प्रकाश
नागरिकता	भारतीय
प्रकाशक	डॉ. एम. पी. सूद निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला-171002
नागरिकता	भारतीय
उन व्यक्तियों के नाम और पते जो मासिक के स्थायी स्वामी हैं, जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक सांझेदार/हिस्सेदार हों	हिमाचल प्रदेश सरकार एलर्जली, शिमला-171002

मैं डॉ. एम. पी. सूद यह घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य है।

(डॉ. एम. पी. सूद)
निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग
हिमाचल प्रदेश